Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080182

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RF-494

080182

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080182

सचित्र] विशाल भारत [मासिक

सम्पादक :—बनारसीदास चतुर्वेदी : : संयुक्त सम्पादक :—ब्रजमोहन वर्मा

भाग १९] जनवरी–जून, १९३७ [अंक १०९-११४

विषय-सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
अंगरेज भारतमें क्यों हैं ?	श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय; अनु० धन्यकुमार जैन	४८१
अन्तिम बात (कविता)	मरणोन्मुखी—स्व० कौशलेन्द्र राठौर, मरणोन्मुखीके प्रति—श्री करुणेश	६५२
अफीमकी पिनक (कहानी)	श्री रघुकुल तिलक	३८७
अभाव (कहानी)	श्री बी० एन० कौल	१७४
आदेश (कविता)	श्री चित्रभास, बी० ए०	६९
आधुनिका	श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्याचार्य	१३५
आवारेकी यूरोप यात्रा	डा० सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी०	५२२, ६५५
आशा (कविता)	श्री उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश', एम०ए०	४५८
आश्वासन	श्री रामप्रसाद सिह 'आनन्द'	१५६
उद्बोधन (कविता)	श्री गिरजाशंकर मिश्र 'गिरीश'	५४८
एक आदर्श पत्रकार (सचित्र)	बनारसीदास चतुर्वेदी	७०
एक चीनी दार्शनिक और अराजकवाद		१७३
एक भोला अतिथि (कहानी)	एच० डब्ल्यू० नेविनसन	४०२
एकला (गुजराती) और अकेलापन	श्री प्रह्लाद पारीख	२७६
एकाकी (कविता)	श्री भगवतीचरण वर्मा	३७६
कल-आज (कविता)	श्री मोहनलाल गुप्त	३९९
कविकी तरंग (कविता)	श्री गिरीश	३२७
कानन (कविता)	श्री ठाकुर गोपालशरण सिंह	५९३
काम्काज (कहानी)	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	२६७
काला शैतान (कहानी)	ब्रजमोहन वर्मा	५३९
किस पार (कविता)	श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	४७३
कुमुद (कहानी)	श्रीमती शन्नोदेवी चतुर्वेदी, हिन्दी-रत्न	५१
'केशवकी काव्य-कला'	श्री मयाशंकर याज्ञिक, बी० ए०	५५१
कोयलेकी खानोंमें आग	श्री गंगासागर मिश्र	१५७
खरा या खोटा ? (कहानी)	श्री हरदयाल 'मौजी'	२७७
गीत (कविता)	श्री बालकृष्ण राव	१७७
गुजरात-साहित्य-परिषद-सम्मेलन (सचित्र)	श्री ललिताचरण गोस्वामी, बी० ए०	१६५
गोवध क्या रोका जा सकता है	श्री श्रीराम शर्मा	३९
ग्राम्य साहित्यकी माँग	श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'	३२८
चकोर (कविता)	श्री राजेश्वर	२००
चकोरी (कविता)	श्री केसरी	१
चयन :—		
संस्कृत-साहित्यमें क्या है ?	श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी	६७३
एक आवश्यक प्रश्न	श्री श्रीप्रकाश	६७७
साहित्य और स्वाधीनता	श्री जैनेन्द्रकुमार	६७८
चले चलो, चले चलो !		४१९
चार अध्याय (उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनु० धन्यकुमार जैन	८७, १९४
चिट्ठी-पत्री	श्री जैनेन्द्रकुमार	४६०
चिर-यात्री (कविता)	श्री आरसीप्रसाद सिह	४३६
छोटी बच्ची (कविता)	मौलाना अल्ताफ हुसेन हाली	५३७
ज़ंज़बार और भारतीय (सचित्र)	श्री सत्यदेव वेदालंकार	३५८
जापानमें मोटरका व्यवसाय	श्री धर्मचन्द सरावगी	६६८
जावाकी एक झलक (सचित्र)	श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०	[illegible]
जावाके 'केडावूंग' कारखानेकी यात्रा	श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०	४४५
तनिक विचारिये तो	श्री श्रीराम शर्मा	६७९
तिब्बत-प्रवेश (सचित्र)	श्री अभयसिंह परेरा	६२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित (कविता) श्री रणछोड़दास ४१५
द्वितीया (कविता)—श्री अज्ञेय ४९६
दुर्भाग्य (कहानी)—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ४७४
दूरागत (कविता) - श्री जयकिशोरनारायण सिंह ३१
दूध और उसके उपयोग—
कुँवर सुरेन्द्रसिंह, 'इन्द्र', आई० डी० डी० ४४१
दूध देनेवाली गायोंको खिलाना—
कुँवर सुरेन्द्रसिंह 'इन्द्र', आई० डी० डी० २८२
देहाती मज़दूर—श्री रामजीवन शर्मा ४३२
नई कहानीका प्लाट—श्री अज्ञेय १२
नायिका-भेद—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ६४६
निराश कवि (कविता) —
श्री देवनारायण कुँवर 'किसल्य' ५१३
नेपालकी एक झलक (सचित्र)—
श्री अभयसिंह सिंहलीय ३०९
डा० नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकलचर—
श्री हरिहरप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी० ५०४
पंथी (कविता)—श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' ९६
परित्यक्ता (कविता) - श्रीमती होमवती ६१७
पर्वतीय प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति—
श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला २०१
पहेली (कविता)—श्री विनयकुमार १२१
पापी (एकांकी नाटक)—
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए०, एल-एल० बी० ६११
पिताका प्रेम (कहानी) श्री श्रीकृष्ण पारख, बी० ए० ६१८
पुस्तकें कैसे बिकें—बनारसीदास चतुर्वेदी ;
श्री श्यामनारायण कपूर ; प्रो० शंकरसहाय सक्सेना २१६
पोलिश आज़ादीके सैनिक (सचित्र)—
कुमारी इवा रुजका ४५
प्रगतिशील साहित्य किसे कहना चाहिए ?—
श्री ललिताचरण गोस्वामी, बी० ए० ५५७
प्रतिच्छाया (कहानी)—श्री जुगुलकिशोर शुक्ल ६४
प्रतीक्षा (कविता)—श्री महावीरसिंह दत्त ५४४
प्रथम मिलन (कविता)—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ४२
प्रात-प्रदीप (कविता)—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ३८६
प्राणोंका प्रलय (कहानी)—श्री सुधाकर दीक्षित, एम० ए० ३२०
फीरोज़खांकी बन्दूक (कहानी)—श्री आर० टी० ;
अनु० ब्रजमोहन वर्मा ४२०
बगुला भगत (कहानी)—श्रीमती होमवती ४९८
बन्दरोंकी समस्या—श्री श्रीराम शर्मा ३०३
बर्मी बर्माकी राजधानी मांडले (सचित्र)—
ब्रजमोहन वर्मा १३९
बरफसे दबे नगरमें (सचित्र)—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ३५३
बाज़ी (कहानी)—श्री कमलाकान्त वर्मा ५०९
बापूका ग्रामीण जीवन (सचित्र)—
श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए० ५९६
भाई-बहन (कहानी)—श्रीमती सत्यवती मलिक ५४५
'भारत-भारती'के गायकसे भेंट—श्री काका कालेलकर ६४७
भारतमें ग्रामीण दरिद्रता और उसके उन्मूलनके साधन—
श्री बैजनाथ तिवारी, बी० ए० २७३
भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता—
श्री शिवदानसिंह चौहान २४९
भारतमें लोहे और इस्पातका व्यवसाय—
श्री रामनारायण कपूर, बी० एस-सी० ५६३
भावी सन्तति (कविता)—श्री नरेन्द्र शर्मा ३०६
भूल (कहानी)—अनु० श्री श्रीकृष्ण पारख, बी० ए० २९७
'मध्ययुग काव्य और श्रीकृष्ण'—
श्री ललिताचरण गोस्वामी, बी० ए० ३९६
मध्ययुग काव्य और श्रीकृष्ण—दूसरा पक्ष—
श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय ६४४
ममता (कहानी)—शास्त्राचार्य 'विश्वरूप' ३२
महाकवि विद्यापति ठाकुरका हस्तलिखित भागवत—
श्री भुवनेश्वर झा, बी०ए०, बी०एल० ६९५
महिला-मंडल :—
नृत्य-यात्राके अनुभव (सचित्र)—
कुमारी अमला नन्दी ३३२
माँ ! मुझे लोरी सुना—श्री देवेन्द्र सत्यार्थी २०६
'मातृ-प्रेम' - श्री रवीन्द्र १५२
मानवी रेडियो—श्री श्रीराम शर्मा ६८८
मीर साहब (सचित्र)—बनारसीदास चतुर्वेदी १२२
मृत्यु (कविता)—श्री विनयकुमार ११
मुरगे (कहानी)—श्री धर्मवीर, एम० ए० ६०१
मूक उत्तर (कहानी)—श्री एस० के० दत्त ५३४
मूर्खोंके कटाक्ष—श्री तुर्गनेव ६८७
मेरी यूरोप-यात्रा—श्री ऋषिराम, बी० ए० ५६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कितनी भूलमें था (कहानी)—
प्रो० मार्कण्डेय सिंह, एम० ए० ४१०
मैथिल ग्राम्य गीत—श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' ६३७
यह आर्य-धर्म संगठन !—भदन्त आनन्द कौसल्यायन ८१
यह आर्य-धर्म संगठन !—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और भदन्त आनन्द कौसल्यायन २८९
याद (कहानी)—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ३६४
याद (कविता)—श्री राजेश्वर १०७
युद्ध-प्रयाण (कविता)—श्री रामेश्वर ५०
यूरोपमें आर्य-जाति तथा भारतीय सभ्यता—श्री अमृतवसन्त २
रसवन्ती (कविता)—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ४०७
रामचरितमानस—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ९७
राष्ट्र-भाषामें शब्दोंकी कमी—धन्यकुमार जैन ५८०
वंशज (कहानी)—श्रीमती सुभद्रा काटजू (हाकसर) ४१
विदा (कविता)—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ६३
विद्या-भवनकी वनशाला (सचित्र)—श्री वंशगोपाल झिंगरन, एम०एस-सी० ४९१
विभेद (कविता)—श्री आरसीप्रसाद सिंह २३३
विमर्श (कविता)—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ५०३
'षड्यन्त्र' (कहानी)—श्री व्रजमोहन गुप्त ४५१
शाहशादोंका ड्रिक (कहानी)—श्री बलराज साहनी, एम० ए० २०९
श्रमजीवी (कविता)—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ६६५
संग्राममें इंजीनियरिंग—श्री रामदीन पाण्डेय, एम० ए० २९४
सजल गान (कविता)—श्री परमानन्द शुक्ल, बी० ए० ८०
सन्देश (कविता)—श्री राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह २६४
सम्पादकीय विचार—
१—तानाशाही और सुख-समृद्धि, अंगरेजी तानाशाहीने भारतकी एकता और समृद्धिके लिए क्या किया ?, कांग्रेस - सभापतिका भाषण, फैजपुर - कांग्रेसका अधिवेशन, 'विशाल भारत'का दसवाँ वर्ष, मालवीयजी-की हीरक-जयन्ती, कौन्सिल-प्रवेशपर श्रद्धेय गणेशजी, श्रीमान नेहरूजीकी तत्परता, निराशाजनक और खेदप्रद, सरकार और होमियोपैथी, अपने पाँव विवाई, प्रिन्स क्रोपाटकिनके अन्तिम दिन, 'लूटि जाइ सो लूटि', डिक्टेटरशिप ?, यह आर्य-धर्म संगठन !
२—आज़ादीकी प्रतिज्ञापर मुमानियत, भारतीयोंके नागरिक अधिकार, अनुशासन और न्याय, राजनीति और साहित्य, साहित्य-सम्मेलनका सभापतित्व, साहित्य और जनसत्ता, देव-पुरस्कार और चुनाव-प्रथा, अलीगढ़के विद्यार्थियोंकी प्रशंसनीय सलाह, ब्रिटिश साम्राज्यकी दो तसवीरें, इंग्लैण्डकी जनसत्तात्मकताका नमूना, क्या हम कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे ? २२४-३२
३—निर्वाचनमें कांग्रेसकी सफलता, महात्मा गांधीकी स्वाधीनता, शान्ति-रक्षाका अनोखा उपाय, शासनका मोह, बर्माका पोस्टेज, सम्मेलनका सभापतित्व, सेवा-उपवनका बीज, अनुशासनके अपवाद, सर सिकन्दर हयात और साम्प्रदायिकता, लक्ष्मी-सरस्वती-संग्राम, गोरी सभ्यताके कारनामे, प्रवासी भारतीय और भारत-सरकार ३४२-५०
४—बजट और गवर्नर जनरल, एशियाई कौन है ?, गांधी-संग्रहालय, प्राचीन वि०भा०से भारतका सम्बन्ध, नायिका-भेदका पुनरागमन, देव-पुरस्कार, भाषा और संस्कृति, हमारे राजनैतिक नेता और साहित्य-सेवी, मुजरिम ४६१-७२
५—थर्ड - क्लासके भाड़ेमें वृद्धि, गोरे सिपाहियोंको पाँच बार भोजन, जंज़बारके विरुद्ध कार्रवाई, साहित्यका भविष्य, हिन्दी-यात्री-मंडल, महात्माजीका निर्णय, कर्तव्य या सौदा, आल इंडिया कांग्रेस कमेटीमें मुसलमान, स्व० ठा० महेन्द्रपाल सिंह, उड़ीसामें हिन्दी-प्रचार, मि० वाल्डविनकी सचाई, प्रशंसनीय दान, देव-पुरस्कारके नियमोंमें संशोधन ५८२-९२
६—विलायतमें भारतीय सिविल सर्विसके प्रवेशार्थी, मुसलमानोंका कांग्रेसमें भाग न लेनेके कारण, लेखक हो तो ऐसा, हमारे संग्रहालय, स्व०डा० सण्डरलैण्डकी सहृदयता और स्वधीनता-प्रेम, डा० सण्डरलैण्डके जीवन-चरितकी आवश्यकता, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका शिमला - अधिवेशन, युक्तप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, चले चलो, भाषाके विषयमें हमारा मुख्य लक्ष्य, मुसलमानोंको नेक सलाह, निरर्थक हिंसा, लार्ड स्नेलकी बहक, स्व० मुंशी अजमेरीजी ६९९-७१२
समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार—
१—'माधुरी' का कहानी-अंक, 'ओसवाल-नवयुवक' ४५९
२—'बालहित', 'गुजरात कला-कलाप' ५७८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रधारा—आचार्य काका कालेलकर ; अनु० श्री रामकृष्ण भारतीय १५३
सातवाँ व्यक्ति— ६३४
साहित्यका भविष्य—श्री जवाहरलाल नेहरू ४८६
साहित्य-मन्दिरमें—बनारसीदास चतुर्वेदी २८
'सुभाषित'— ६६६,६७०,६९४
सेवा-उपवन (सचित्र)—बनारसीदास चतुर्वेदी २३६
स्त्री और प्रेम—श्रीमती होमवती १४९
स्वप्नोंका जागरण (कविता)—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ३३१
स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका एक महत्त्वपूर्ण भाषण— ३३७
स्व० राजाबहादुर रुक्मांगद सिंह (स०)—श्री श्रीराम शर्मा ३७९
स्वीडेनमें सहयोग-आन्दोलन (सचित्र)—
श्री लक्ष्मीश्वर सिंह तथा फ्रू ओलगा इंगहोम— ६८९
हबीबुल्ला रायल बारबर (सचित्र)—श्री ज्वालादत्त शर्मा ६६७
हमारा साहित्य और साम्यवाद—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ३७१
हमारे तीर्थ (सचित्र)—बनारसीदास चतुर्वेदी ९९
हमारे नगरोंमें दूधकी समस्या—
श्री एम० पी० केदार, आई०डी०डी० ६८२
हमारी लिपिका प्रश्न—श्री कमलाकान्त वर्मा ६०६
हमारी संस्कृति और साहित्यका सम्बन्ध—
श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्याचार्य ५६
हास्य या रुदन (कविता)—
श्री नीलकण्ठ तिवारी जख्मी, बी०ए० ५२१
हिन्दी-प्रचारके लिए नया क्षेत्र—
श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ २८६
हिन्दी-समाज शान्तिनिकेतन—श्री राय सोमनारायण सिंह ४१६
होमियोपैथी और भारत (सचित्र)—
श्री कृष्णगोपाल सक्सेना, एच० एम० बी० १९

लेखक-सूची

श्री अज्ञेय—
नई कहानीका प्लाट १२
द्वितीया (कविता) ४९६
श्री अभयसिंह सिंहलीय—
नेपालकी एक झलक (सचित्र) ३०९
तिब्बत-प्रवेश (सचित्र) ६२४
कुमारी अमलानन्दी—
नृत्य-यात्राके अनुभव (सचित्र) ३३२
श्री अमृतवसन्त—
यूरोपमें आर्य-जाति तथा भारतीय सभ्यता २
श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०—
जावाकी एक झलक (सचित्र) १७८
जावाके 'केडावूंग' कारखानेकी यात्रा ४४५
श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—रामचरितमानस ९७
मौ० अल्ताफ हुसेन हाली—छोटी बच्ची (कविता) ५३७
आनन्द कौसल्यायन, भदन्त—यह आर्य-धर्म-संगठन ! ८१,२९१
श्री आर० टी० ; अनु० व्रजमोहन वर्मा—
फीरोज़खांकी बन्दूक (कहानी) ४२०
श्री आरसीप्रसाद सिंह—
विभेद (कविता) २३३
चिर-यात्री (,,) ६९
कुमारी इवा रुजका—पोलिश आज़ादीके सैनिक (सचित्र) ४५
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए०, एल-एल० बी०—
विदा (कविता) ६३
स्वप्नोंका जागरण (कविता) ३३१
प्रात-प्रदीप (,,) ३८६
किस पार (,,) ४७३
पापी (एकांकी नाटक) ६११
श्री उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश', एम० ए०—
आशा (कविता) ४५८
श्री ऋषिराम, बी० ए०—मेरी यूरोप-यात्रा ५६९
एच० डब्ल्यू० नेविन्सन—एक भोला अतिथि (कहानी) ४०२
श्री एम० पी० केदार, आई० डी० डी०—
हमारे नगरोंमें दूधकी समस्या ६८२
श्री एस० के० दत्त—मूक उत्तर (कहानी) ५३४
श्री कमलाकान्त वर्मा—
बाज़ी (कहानी) ५०९
हमारी लिपिका प्रश्न ६०६
श्री करुणेश—अन्तिम बात (कविता) ६५२
श्री काका कालेलकर ; अनु० श्री रामकृष्ण भारती—
सहस्रधारा १५३
श्री काका कालेलकर—'भारत-भारती' के गायकसे भेंट ६४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री कृष्णगोपाल सक्सेना—होमियोपैथी और भारत १९
श्री केसरी—चकोरी (कविता) १
स्व० कौशलेन्द्र राठौर—अन्तिम बात (कविता) ६५२
श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'—ग्राम्य साहित्यकी माँग ३२८
श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय—
प्रथम मिलन (कविता) ४२
हमारा साहित्य और साम्यवाद ३७१
श्री गंगासागर मिश्र—कोयलेकी खानोंमें आग १५७
श्री गिरजाशंकर मिश्र 'गिरीश'—उद्बोधन (कविता) ५४८
श्री गिरीश—कविकी तरंग (कविता)— ३२७
श्री ठाकुर गोपालशरण सिंह—कानन (कविता) ५९३
श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—
काम-काज (कहानी) २६७
यह आर्य-धर्म-संगठन २८९
बरफसे दबे नगरमें (सचित्र) ३५३
याद (कहानी) ३६४
दुर्भाग्य „ ४७४
श्री चित्रभास, बी० ए०—आदेश (कविता) ६९
श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'—श्रमजीवी (कविता) ६६५
श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ—
हिन्दी-प्रचारके लिए एक नया क्षेत्र २८६
श्री जयकिशोरनारायण सिंह—दूरागत (कविता) ३१
श्री जवाहरलाल नेहरू—साहित्यका भविष्य ४८६
श्री ज्वालादत्त शर्मा—हबीबुल्ला : रायल बारबर (स०) ६६७
श्री जुगुलकिशोर शुक्ल—प्रतिच्छाया (कहानी) ६४
श्री जैनेन्द्रकुमार—
एक पत्र ४६०
साहित्य और स्वाधीनता ६७८
श्री तुर्गनेव—मूर्खोंके कटाक्ष ६८७
श्री देवनारायण कुँवर 'किसलय'—निराश कवि (कविता) ५३३
श्री देवेन्द्र सत्यार्थी—माँ ! मुझे लोरी सुना २०६
धन्यकुमार जैन—राष्ट्र-भाषामें शब्दोंकी कमी ५८०
श्री धर्मचन्द सरावगी—जापानमें मोटर-व्यवसाय ६६८
श्री धर्मवीर, एम० ए०—मुरगे (कहानी) ६०१
श्री नरेन्द्र शर्मा—भावो सन्तति (कविता) ३०६
श्री नीलकण्ठ तिवारी 'जख्मी', बी० ए०—
हास्य या रुदन ? (कविता) ५२१
श्री परमानन्द शुक्ल, बी० ए०—सजल गान (कविता) ८०
श्री प्रह्लाद पारीख—एकला (गुजराती) और अकेलापन २७६
बनारसीदास चतुर्वेदी—
साहित्य-मन्दिरमें २८
एक आदर्श पत्रकार (सचित्र) ७०
हमारे तीर्थ ९९
मीर साहब (सचित्र) १२२
पुस्तकें कैसे बिकें २१६
सेवा-उपवन (सचित्र) २३६
श्री बलराज साहनी, एम० ए०—
शाहज़ादोंका ड्रिंक (कहानी) २०९
श्री बालकृष्ण राव—गीत (कविता)— १७७
श्री बी० एन० कौल—अभाव (कहानी) १७४
श्री बैजनाथ तिवारी, बी० ए०—
भारतमें ग्रामीण दरिद्रता और उसके उन्मूलनके साधन २७३
श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'—पंथी (कविता) ९६
श्री ब्रजमोहन गुप्त—षड्यन्त्र (कहानी) ४५१
ब्रजमोहन वर्मा—
बर्मी वर्माकी राजधानी मांडले (सचित्र) १३९
फ़ीरोज़खांकी बन्दूक़ ४२०
काला शैतान ५३९
श्री भगवतीचरण वर्मा—एकाकी (कविता) ३७६
श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला—
पर्वतीय प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति २०१
श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी—विमर्श (कविता) ५०३
श्री भुवनेश्वर झा, बी० ए०, एल-एल० बी०—
महाकवि विद्यापति ठाकुरका हस्तलिखित भागवत ६९५
श्री मयशंकर याज्ञिक, बी० ए०—'केशवकी काव्य-कला' ५५१
श्री महावीर सिंह दत्त—प्रतीक्षा (कविता) ५४४
प्रो० मारकण्डेय सिंह, एम० ए०—
मैं कितनी भूलमें था (कहानी) ४१०
श्री मोहनलाल गुप्त—कल-आज (कविता) ३९९
श्री रघुकुल तिलक—अफीमकी पीनक (कहानी) ३८७
श्री रणछोड़दास—दलित (कविता) ४१५
श्री रवीन्द्र, अनुवादक—मातृ-प्रेम १५२
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ; अनु०—धन्यकुमार जैन
चार अध्याय (उपन्यास) ८७,१९४
श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश'—मैथिल ग्राम्य गीत ६३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राजेश्वर—
याद (कविता) १०७
चकोर (") २००
श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह—सन्देश (कविता) २६४
श्री रामजीवन शर्मा—देहाती मज़दूर ४३२
श्री रामदीन पाण्डेय, एम० ए०—संग्राममें इंजीनियरिंग २९४
श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'—रसवन्ती (कविता) ४०७
श्री रामनारायण कपूर, बी० एस-सी०—
भारतमें लोहे और इस्पातका व्यवसाय ५६३
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय—अंगरेज भारतमें क्यों हैं ? ४८१
श्री रामप्रसाद सिंह 'आनन्द'—आश्वासन १५६
श्री रामेश्वर—युद्ध-प्रयाण (कविता) ५०
श्री राय सोमनारायण सिंह—
हिन्दी-समाज शान्ति-निकेतन (सचित्र) ४१६
श्री ललिताचरण गोस्वामी, बी० ए०—
गुजराती-साहित्य-परिषद-सम्मेलन (स०) १६५
'मध्ययुग-काव्य और श्रीकृष्ण' ३६६
प्रगतिशील साहित्य किसे कहना चाहिए ? ५५७
श्री लक्ष्मीनारायण 'भारतीय'—
मध्ययुग-काव्य और श्रीकृष्ण—दूसरा पक्ष ६४४
श्री लक्ष्मीश्वर सिंह और फ्रू ओलगा इंगहोम—
स्वीडेनमें सहयोग-आन्दोलन (स०) ६८९
श्री वंशगोपाल झिंगरन, एम० एस-सी०—
विद्या-भवनकी वनशाला (सचित्र) ४९१
श्री विनय कुमार—
मृत्यु (कविता) ११
पहेली (") १२१
श्री 'विश्वरूप' शास्त्राचार्य—ममता (कहानी) ३२
प्रो० शंकरसहाय सक्सेना—पुस्तकें कैसे बिकें ? २१६
श्रीमती शन्नोदेवी चतुर्वेदी—कुमुद (कहानी) ५१
श्री शिवदान सिंह चौहान—
भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता २४९
श्री श्रीकृष्ण पारख, बी० ए०, अनुवादक—
भूल (कहानी) २९७
पिताका प्रेम (कहानी) ६१
श्री श्रीप्रकाश—एक आवश्यक प्रश्न ६७७
श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०—
बापूका ग्रामीण जीवन (सचित्र) ५९६
श्री श्रीराम शर्मा—
गोवध क्या रोका जा सकता है ? ३९
बन्दरोंकी समस्या ३०३
स्व० राजाबहादुर रुक्मांगद सिंह (सचित्र) ३७९
तनिक विचारिये तो ६७९
मानवी रेडियो ६८८
श्री श्यामनारायण कपूर—पुस्तकें कैसे बिकें ? २१६
डा० सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी०—
आवारेकी यूरोप-यात्रा— ५२२,६५५
श्री सत्यदेव वेदालंकार—ज़ंज़बार और भारतीय (सचित्र) ३५८
श्रीमती सत्यवती मलिक—भाई-बहन (कहानी) ५४५
श्री सुधाकर दीक्षित, एम० ए०—
प्राणोंका प्रलय (कहानी) ३२०
श्रीमती सुभद्रा काटजू (हाकसर)—वंशज (कहानी) ४१
श्री सुरेन्द्रसिंह, कुँवर, 'इन्द्र,' आई० डी० डी०—
दूध देनेवाली गायोंको खिलाना २८३
दूध और उसके उपयोग ४४१
श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्याचार्य—
हमारी संस्कृति और साहित्यका सम्बन्ध ५६
आधुनिका १३५
संस्कृत-साहित्यमें क्या है ? ६७३
श्री हरदयाल 'मौजी'—खरा या खोटा ? (कहानी) २७७
श्री हरिहरप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०—
डा० नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकलचर ५०४
श्रीमती होमवती—
स्त्री और प्रेम १४९
बगुला भगत (कहानी) ४९८
परित्यक्ता (कविता) ६१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

तिरंगे चित्र —

आश्रमवासिनी श्री चिन्तामणि कर १२१

एक जापानी पुल हीरो शीगे ३५३

एकान्त – श्री निवेदिता वसु १

कांचन और कुणाल श्री चिन्तामणि कर २३३

ग्रामीण शान्ति –श्री वासुदेव राय ५९३

शकुन्तला—श्री शचीन्द्रनाथ मित्र ४७३

सादे चित्र—

अंकाराके दो चित्र— ८५

अफरीदी कारीगर – ५४९

अमलानन्दीके ४ चित्र – ३३५

अमीर अली 'मीर'— १३७

अमेरिकामें भयानक बाढ़— ३५२

इंग्लैण्डमें स्पेनके बच्चे— ६३६

इटलीकी पहाड़ी सेना— ३२६

इम्तियाज़ अली, श्रीमती— ८६

ए०एन० मुकर्जी, डाक्टर, एम० डी०— २६

एच० डब्ल्यू० नेविनसन— ७७

एडवर्ड कार्पेन्टरका आश्रम— १०५

एमर्सन— १०३

एमर्सनकी समाधि— १०४

कटियारी राज्यके पहलवान— ३८३

कम्बोडियाके ४ चित्र— ६५३-५४

कलकत्ता-विश्वविद्यालयके ३ चित्र— १६३-६४

कलकत्ता-होमियोपैथिक मेडिकल कालेजके ४ चित्र २३-२६

कुरुक्षेत्रमें अर्जुन—श्री धीरेन्द्रकृष्णदेव वर्मा ३०७-०७

खान अब्दुलगफ्फार खाँ— ५९८

गुजराती-साहित्य-परिषद-सम्मेलनमें – महात्मा गांधी, सर गिरजाप्रसाद, आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, दत्तात्रय कालेलकर, महादेव देसाई, रामनारायण पाठक, पोपटलाल शाह, अतिसुखशंकर त्रिवेदी–१६५-६६

गुजराती-साहित्य-सम्मेलन-सम्बन्धी ३ चित्र— १७०-७२

गुलमर्गके ४ चित्र— ३५४-५७ ; ६ चित्र – ३७७-७८

गैससे बचनेकी नकाब— ३५१

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार— ३५५

चीन-सम्बन्धी ३ चित्र— ३२५

छायाकी माया और निर्जनता—फोटो, श्री परिमल गोस्वामी— २६६

ज़ंज़बारके ४ चित्र— ३५९-६१

जापानका नया मंत्रिमंडल— ३५२

जापानके दो चित्र— ११२

जापानमें लड़कियोंका राइफल चलाना— ३२६

जार्ज लैन्सबरीका भाषण— ६३६

जावा और बाली द्वीपके १२ चित्र— १८१-८९

जेमी मोदी— ३२६

तिब्बत-सम्बन्धी ९ चित्र— ६२५-३१

थोरो और थोरोका निकुंज— १०६

दर्रा दानियालके ४ चित्र— ४३-४४

नकाब बनानेका कारखाना— १३८

नारीमैनका भाषण— ५४९

नेपाल-सम्बन्धी १५ चित्र— ३०९-१८

पत्थरमें तराशा हुआ एक रथ— १८

पनघट— ५५०

पेरिसमें विश्व-प्रदर्शिनी— ४४०

पोलैण्ड सम्बन्धी ४ चित्र— ४५-४८

फैजपुर कांग्रेसके तीन चित्र— १११

बुद्धकी मूर्ति— १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीति-चित्र—
हरिण
सारस } —श्री सुधांशु चौधरी ३०७-०८
सहानुभूति
मदरास-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ३ चित्र— ३८७
मांडलेके ७ चित्र— १४०-४६
श्रीमती माणिकलाल प्रेमचन्द— ८६
मीरा बेन घोड़ेपर सवार— ५९९
राष्ट्रपति बर्मामेंके दो चित्र— ६३५
रास इमरू— १३८
रुक्मांगद सिंह, राजाबहादुर— ३८१
लक्ष्मीश्वर सिंह— ६९४
लन्दनमें भारतीयोंके दो चित्र— ५७५
लाहौरकी संगीत-प्रेमी छात्राएँ— ८६
लीबियाके दो चित्र— ४३९
विक्टोरिया-जलप्रपात - ३८८
विद्या-भवन (उदयपुर) सम्बन्धी ५ चित्र — ४९२-९५
शान्ति-निकेतनके हिन्दी-समाजके २ चित्र— ४१७-१८
शान्ति-निकेतनमें चीनी-भवनके ४ चित्र— ४८९-९०;
२ चित्र— ५३१
संसारका सबसे बड़ा पुल— ३८८
'स्की'का प्रदर्शन— १६४
स्वीडेन-सम्बन्धी ५ चित्र—६७१-७२ ; ६ चित्र—६८९-९३
सेगाँवमें महात्मा गांधी— ५९७
सेवा-उपवनके २८ चित्र—२३२-४७ ; एक चित्र— २६५
सेतुबन्ध रामेश्वरके २ चित्र— ५३२
स्पेन-सम्बन्धी ४ चित्र— ४०५-०६ ; २ चित्र— ४४०
हबीबुल्ला रायल बारबर— ६६७
हिंडनबुर्ग वायुयान — ५७६
हिटलरका फौज निरीक्षण— ३५१

वार्षिक मूल्य ६) छै रुपया

"विशाल भारत" कार्यालय
१२०।२, अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता

विदेशोंके लिए ९) या १४ शिलिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विशाल-भारत

२८ जनवरी ९३६ को प्राप्त
ग्राहक नं० ५८३८

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

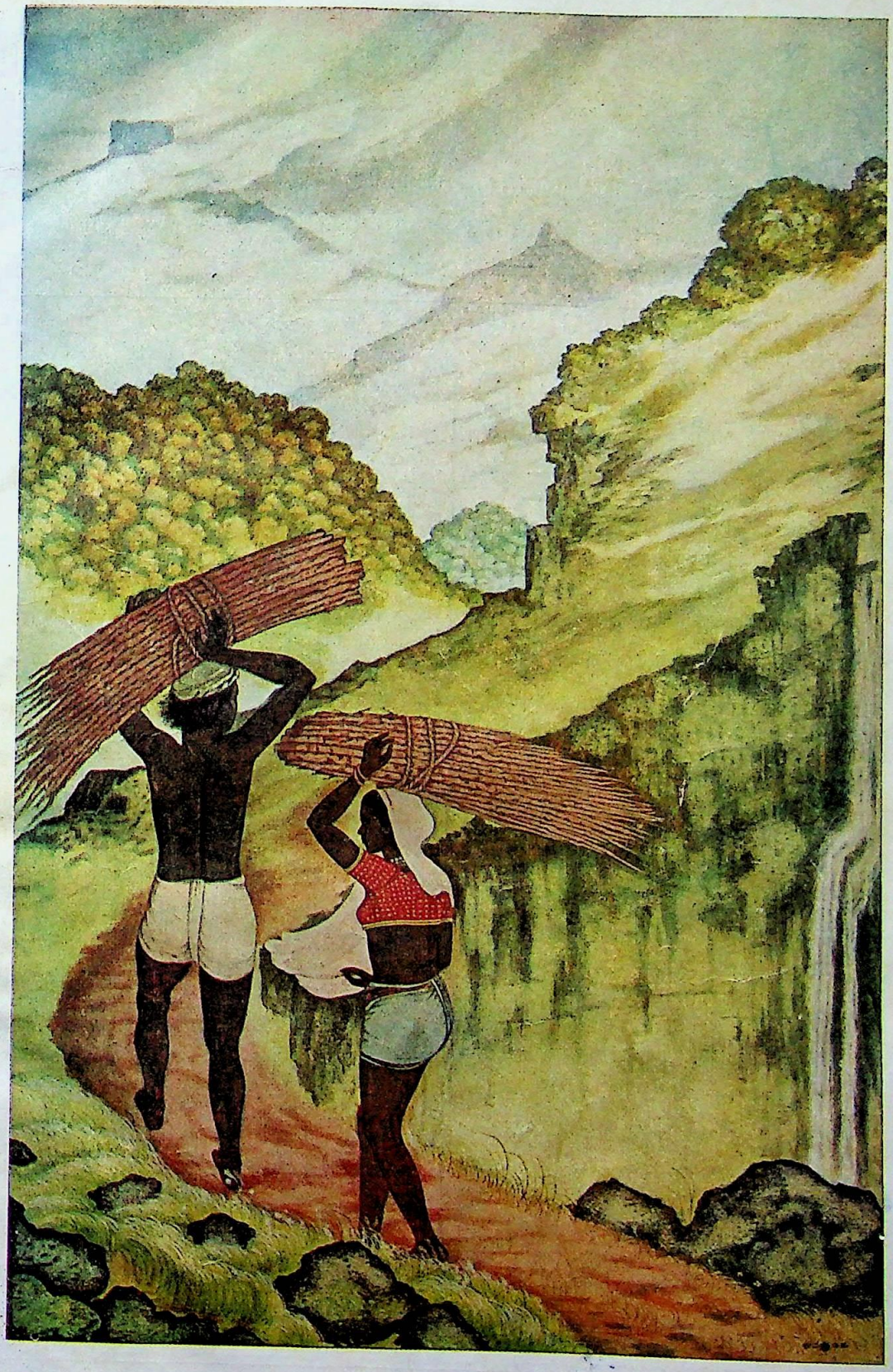

माघ १९९३
जनवरी १९३७

'विशाल भारत' कार्यालय,
१२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता

वार्षिक मूल्य ६)
एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वकवि रवीन्द्रनाथकी नई पुस्तक

'शिक्षा कैसी हो ?'

प्रकाशित हो गई। इसमें 'शिक्षाका स्वांगीकरण', 'शिक्षाका विकीरण' और 'आवरण' शीर्षक तीन अत्यन्त महत्व और सारगर्भित निबन्ध हैं। भारतकी शिक्षा अन्धगतिसे किस ओर दौड़ी जा रही है, इस विषयपर बहुत ही गम्भीरता साथ विचार किया गया है, और साथ ही भावी मार्ग भी दिखाया गया है। मूल्य सिर्फ ।-) पाँच आना।

रवीन्द्रनाथका नया उपन्यास छप रहा है

'चार अध्याय' मूल्य १)

■

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका

सामाजिक उपन्यास

'कुमुदिनी'

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

"....ठेस खाया हुआ कोमल नारी-हृदय (इस उपन्यासकी) प्रत्येक पंक्तिमें बोल-सा उठता है।... कुमुदिनी भारतीय नारीका सच्चा प्रतिविम्ब है।" —'सुधा'

सुन्दर जिल्द, बढ़िया कागज, मूल्य ३) रु०

■

कविकी श्रेष्ठ कहानियाँ

'षोड़शी'

लेखक—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

महाकवि रवीन्द्रनाथकी कहानियोंके विषयमें कुछ कहनेकी अपेक्षा कुछ न कहना ही अच्छा है। इस संग्रहमें कविकी १६ श्रेष्ठ कहानियाँ दी गई हैं। सुन्दर और मजबूत जिल्द, मूल्य २)

■

'गल्पगुच्छ'

कविकी युवावस्थामें लिखी हुई श्रेष्ठ कहानियोंका एकत्र समावेश। बढ़िया छपाई, उमदा जिल्द, मूल्य १॥)

'रूसकी चिट्ठी'

लेखक—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

"....किसानों, नौजवानों और शिक्षा प्रेमियोंको तो अवश्य पढ़ना चाहिए।" —प्रता

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका आँखों-देखा रूसका तुल सचित्र वर्णन। आर्टपेपरपर १२ चित्र। मूल्य १।।) स

■

हास्यरसाचार्य परशुरामका हास्यरस

'लम्बकर्ण'

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

उच्चश्रेणीकी सुरुचिपूर्ण हास्य-व्यंग्यकी सचित्र कहानि 'लम्बकर्ण', 'जाबालि', 'हनुमानजीका सपना', 'उलट और 'गल्पिका'। मूल्य १।) सजिल्द।

■

'कार्लमार्क्स'

सुप्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयालकी लेखनीसे साम्यवादके जन्मदाता और उसका सिद्धान्त। मूल्य

■

'प्रेमप्रपंच'

तुर्गनेवका उपन्यास

रहस्यमय प्रेमका उमदा खाका। मूल्य १।) सजि

मैनेजर—'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

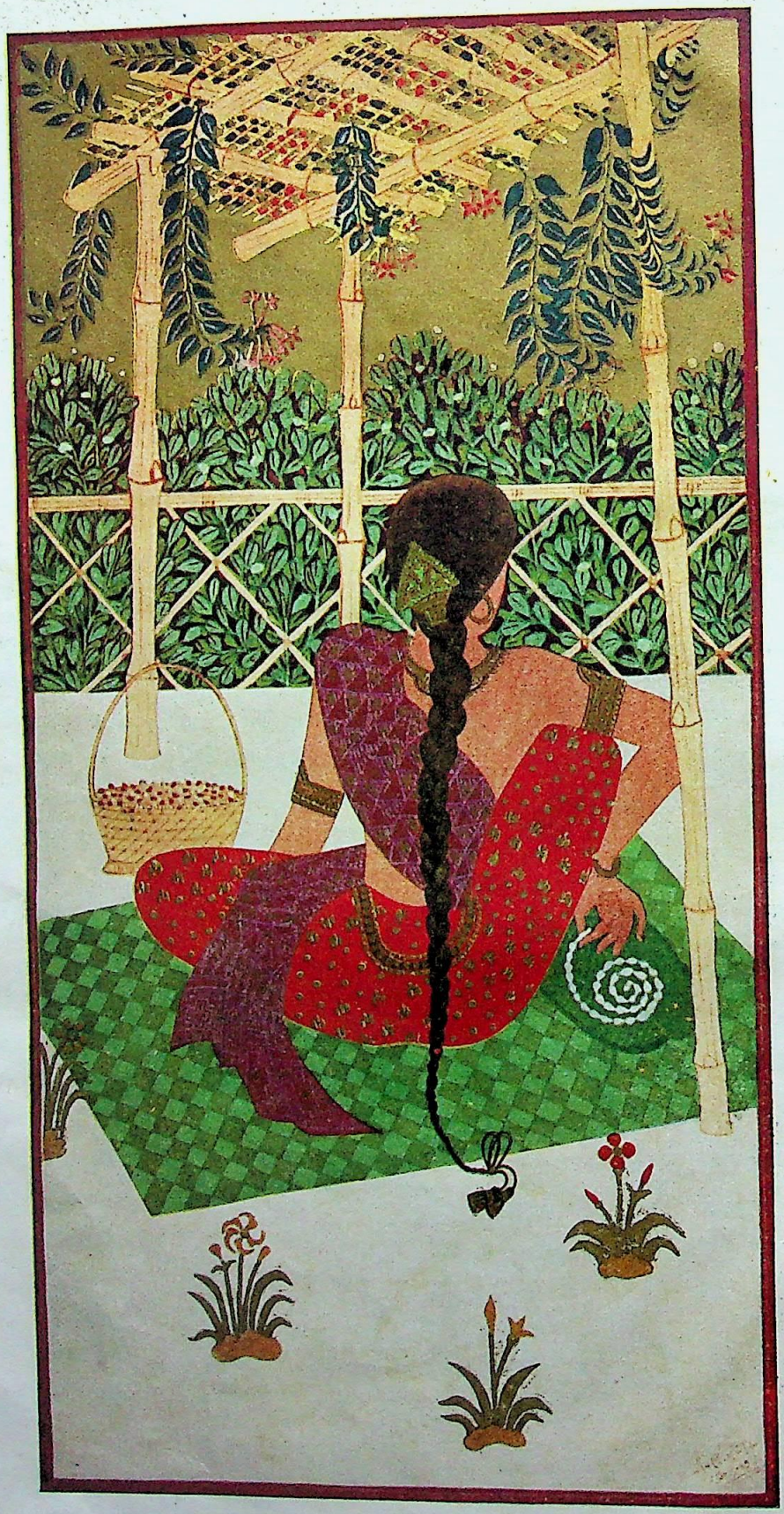

एकान्तमें [श्री निवेदिता वसु

'विशाल भारत']

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

भाग १९, अंक १] माघ १९९३ :: जनवरी १९३७ [पूर्ण-अंक १०९.

चकोरी

श्रीयुत केसरी

चुगती चिनगारी कि जले प्राणोंमें ऐसी प्यास पिया !
युग-युग बुझे न, दृग पीवें शाश्वत तेरा हिम-हास पिया !
हिय पीवे अंगार नयनमें चुवे अमिय-रस-धार पिया !
होड़ आग-पानीकी रे !—कहता जग जिसको प्यार पिया !
कठिन प्यार—क्षण-क्षणकी विषम प्रतीक्षा जिसके है मानी
अरे प्यार ! ओ कल्प-कल्पकी लगन हृदयकी दीवानी !
पली जहाँ अंचल छायामें उससे क्यों इतनी ग्लानी
तज वसुधाकी चाह चली बनने तू चन्द्रलोककी रानी !
"प्यास बुझेगी मृग-मरीचिकामें ?—कैसी यह नादानी
करे प्राप्यकी खोज लगन जो मनको वह चिर-कल्याणी ।"
यहाँ साधनाको पागलपन कहते विज्ञ विश्व-ज्ञानी
ऐ रे मेरे प्राण ! शून्यमें कैसी निधि तूने जानी ?
जाना प्राप्य-अप्राप्य न, जाना तुझको केवल एक पिया !
आह ! न लूँगी मैं विवेक देकर अपनी यह टेक पिया !

स्वप्नमयी जगसे न्यारी मैं चिर-वियोगिनी सुकुमारी
ज्वालाकी है सेज और आहोंकी मेरी फुलवारी
चिर तपस्विनी, बैठ प्रेम-पचाग्नि बीच जपती माला
एक बूँद अमृतके हित मैं, जन्म-जन्मसे विष प्याला
पीती हूँ सोल्लास अमर विष पी मीरा मैं मतवाली
तन-मन बेच अरी मैंने यह विरह-रतन निधि है पाली

झूल-झूल शूलीपर जीते-जी ईसा होना सीखा
एक व्रती मैं सती सुहागिन चिता-सेज सोना सीखा
विरह-मृत्युको जीत हुआ मृत्युंजय मम अनुराग पिया !
जलती हियकी आग इधर घुलता है उधर सुहाग पिया !

मिली जलनकी लगन साधनाका चिराग यह नूरानी
उदय-अस्त छूनेवाले स्वप्नोंकी बस्ती मस्तानी
और प्राप्य क्या ? तुम्हीं बताओ जगके स्वप्नहीन ज्ञानी !
वह तो अमरावती !—जिसे मरघट कहते तू वीरानी ।

बनजारेकी सफर परख पाया जिसने मोती प्यारा
एक सफर-भर—अरे क्षितिज जब उसका जीवन-ध्रुवतारा
एक खोज-भर—अन्तहीन यह पंथ, इयत्ता कहाँ ? कहो
लैला कहाँ मिली मजनूको—अरे मर्त्य ! तू मौन रहो
एक स्वप्न ही स्वर्ग, स्वर्गपर क्यों न मर्त्यका नाज़ रहे
अहे शाह मुमताज ! विश्वमें क्यों न तुम्हारा ताज रहे

एक स्वप्न-सा एक स्वर्ग-सा बने रहो अनमोल पिया !
तन-मन जीवन-मरण लगा मैं रहूँ चुकाती मोल पिया !

एक स्वप्नमें सराबोर मैं वन-वासिनि यामिनि-दुलारी—
एक दृष्टि उद्ग्रीव रहूँ तपती ज्यों मानिनि शैलकुमारी—
कहीं किसी गिरि-तटी बीच कुंजोंकी जहाँ घनी अँधियारी—
"उड़ आ, उड़ आ, चन्द्रलोकमें भरती छबिसे अपनी क्यारी ।"—
तारे गाते गीत—जहाँ गाता समीर दे-दे मृदु ताली—
उठ-उठ अलस-भरी मुग्धे ! लो आया वह तेरा वनमाली !—
जहाँ कुमुदिनी मना रही हो अपने प्राणोंकी दीवाली—
पी समस्त जगकी ज्वाला मैं वहीं बैठ गाऊँ मतवाली—

आज वह स्वर्ग मर्त्य मिल जाये
जगतीकी साधना-शिलापर चन्द्रलोक बिछ जाये
आज यह स्वर्ग मर्त्य मिल जाये
जग-ज्वालाका सिन्धु छानकर
नीलकंठ-सी गरल पानकर
मैंने प्रीति अमिय-कलशी उर्वशी चन्द्र विकसाये
आज यह मर्त्य स्वर्ग बन जाये
जिसे युगोंसे हियमें पाली
चमक उठी वह आग निराली
बन राका वह आज सुधासे वसुधाको नहलाये
आज यह स्वर्ग मर्त्य मिल जाये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपमें आर्य-जाति तथा भारतीय सभ्यता

श्री अमृतवसन्त

मध्य-एशिया और आर्य-जाति

भारत और यूरोपकी जातियाँ किसी एक ही आदिम जातिकी सन्तति हैं, यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। तुलनात्मक भाषा-शास्त्रके अनुसार भारत और यूरोपकी भाषाएँ एक ही माताकी पुत्री हैं। इसी कारण उन्हें भारतीय आर्य-भाषाएँ (Indo-European Languages) कहा जाता है। भाषाओंके इस सादृश्यके आधारपर ही भारत और यूरोपके आर्य-निवासियोंको एक ही वंशका माना गया है। आर्य-जातिकी एक शाखा भारत और ईरानकी ओर गई तथा दूसरीने यूरोपमें प्रवेश किया। इन शाखाओंके इस प्रकार दोनों ओर फैलनेका केन्द्र-स्थान मध्य-एशिया माना जाता है, क्योंकि वह इन देशोंके ठीक बीचमें स्थित है। इसी आधारपर मध्य-एशियाको आर्य-जातिकी आदि-भूमि माननेका सिद्धान्त प्रचलित हुआ। यद्यपि इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें पुरातत्त्व-सम्बन्धी कोई प्रमाण मध्य-एशियामें प्राप्त नहीं हुआ है।

एशिया-माइनर और आर्य-जाति

परन्तु अब युगने पलटा खाया है। इतिहासके निर्माणमें पुरातत्त्वको विशेष महत्त्व दिया जाने लगा है, क्योंकि पुरातत्त्व किसी युगकी संस्कृतिको प्रत्यक्ष रूपसे हमारे सामने खड़ा करता है। आजकल जो ऐतिहासिक सिद्धान्त पुरातत्त्व द्वारा सिद्ध नहीं होता, वह स्वीकार नहीं किया जाता। कुछ वर्ष पूर्व एशिया-माइनरमें बेबीलोनियन लिपि तथा भाषामें एक सन्धि-पत्र प्राप्त हुआ था। यह सन्धि-पत्र हिटाइट (Hettite) और मित्तानी जातियोंके राजाओंके बीच लिखा गया था। इसमें मित्तानी-जातिका राजा दुइश्शरत अपने देवोंकी शपथ खाता है :—

> "इलानी मित्तर अस्सुइल इलानी उरुवना अस्सुइल इल्ल इनदार नसअततिया अन्ना।"

अर्थात्—'मित्तर (मित्र), उरुवना (वरुण), इनदार (इन्द्र) और नसअतिया (नसत्य) देव साक्षी हैं।' यह सबसे पहला प्रसंग था कि किसी अन्य देशमें वैदिक देवोंके नाम प्राप्त हुए हों। आर्य-जातिके प्रारम्भिक इतिहासके विषयमें इस सन्धि-पत्रने एक क्रान्ति-सी मचा दी, क्योंकि इसके द्वारा यह सिद्ध हो गया कि आर्य लोग पश्चिम-एशियामें भी जा पहुँचे थे, जहाँ उन्होंने अपने राज्य भी स्थापित किये थे। ये मित्तानी लोग ऐसे ही आर्य थे। इस सन्धि-पत्रमें राजाका नाम भी दुइश्शरत (दशरथ) पाया जाता है। पुराणोंमें अनेक दशरथोंका उल्लेख है। यह दशरथ कौन-सा था, यह जाननेके लिए हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं। यह सन्धि-पत्र ईसासे २,००० वर्ष पूर्वका माना जाता है।

आर्योंके भारत-आगमनके सम्बन्धमें प्रचलित सिद्धान्त

इस आविष्कारने केवल आर्य-जातिके इतिहासमें ही नहीं, बल्कि पश्चिम-एशियाकी सेमाइट-जातियोंके इतिहासमें भी अनेक परिवर्तन कर दिये। मेसोपोटामियाको यूरोपियन विद्वान किस प्रकार सभ्यताकी आदि-भूमि मानते हैं, यह हम अपने पिछले लेख 'सुमेर-सभ्यताकी जन्मभूमि भारत' ('विशाल भारत', नवम्बर १९३६) में बता चुके हैं। इस प्रदेशपर आदिम-कालसे ईरानकी विजय तक इस सेमाइट (Semite) जाति*ने राज्य किया था। इसलिए सारे पश्चिम-एशिया और मिस्रमें प्राचीन कालमें राज्य करनेवाली जातियोंको सेमाइट ही माना जाता था; परन्तु इस सन्धि-पत्रने यह बात प्रमाणित कर दी कि

---

* यह यूरोपियन विद्वानोंका सिद्धान्त है कि मेसोपोटामियामें राज्य करनेवाले सुमेर और बेबीलोनियन लोग सेमाइट थे। वास्तवमें यह सिद्धान्त गलत है। उरको तथा अन्य स्थानोंकी खुदाइयोंमें इन जातियोंके जो अस्थि-पंजर प्राप्त हुए हैं, उनकी परीक्षासे ज्ञात हुआ कि सुमेर लोग वास्तवमें आर्य थे, न कि सेमाइट या द्राविड़, जैसा कि अब तक माना जाता है। सर आर्थर कीथ जैसे मानव-वंश-विद्याके आचार्यने भी इस बातको स्वीकार किया है। इस सुमेर-जातिके विषयमें पिछले लेखमें प्रकाश डाला जा चुका है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक आर्योंने भी कम-से-कम कुछ समय तक इस प्रदेशमें राज्य किया था। एशिया-माइनरमें प्राचीन कालमें जो जाति राज्य करती थी, उसको यूरोपियन विद्वान हिटाइट (Hettite) कहते हैं, क्योंकि उनका यह नाम बाइबिलमें लिखा हुआ पाया जाता है। उनका वास्तविक नाम खत्ती था। वे अपनेको 'खत्तिया' भी लिखते थे। उनकी राजधानीके अवशेष एशिया-माइनरमें 'बोग़ाज़-केई' के निकट पाये गये हैं। फान ओपेनहेम नामक जर्मन विद्वानने कुर्दिस्तानमें 'तल-हलफ' नामक ग्रामके निकट उनकी प्रारम्भिक राजधानीका पता लगाया है। इसके पश्चात् ही खत्ती अर्थात् हिटाइटोंने बोग़ाज़-केईके निकट अपनी राजधानी स्थापित की थी। इस खत्ती जातिके एशिया-माइनरमें जो लेखादि प्राप्त हुए हैं, उनकी भाषाके विषयमें सबसे विशेष बात यह थी कि वह बेबीलोनियन लिपिके समान चित्राक्षर-लिपिमें लिखी हुई होते हुए भी आर्य-भाषा प्रमाणित हो चुकी है। यही कारण है कि अब सारे विद्वानोंने यह स्वीकार कर लिया है कि खत्ती लोग आर्य-भाषा-भाषी थे। इस जातिके पुरुषोंके जो चित्र एशिया-माइनर और मिस्रमें प्राप्त हुए हैं, उनसे यह भी सिद्ध हो चुका है कि वे स्वयं भी आर्य-जातिके थे। इन अन्वेषणोंने आर्य-जातिके प्रसारके विषयमें प्रचलित 'मध्य-एशिया' के सिद्धान्तको असत्य सिद्ध कर दिया, और अब पाश्चात्य विद्वानोंने यह सिद्धान्त उपस्थित किया है कि आर्य लोग एशिया-माइनरसे मेसोपोटामिया और ईरानके स्थल-मार्गसे भारतवर्षमें आये थे।

आर्योंकी मूल-भूमि

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या एशिया-माइनर ही आर्य-जातिकी आदि-भूमि थी, या वे और कहींसे वहाँ आकर बसे थे? इस विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंके अनेक मत हैं, और क़रीब-करीब सबके मतानुसार वे लोग यूरोपसे ही एशिया-माइनर पहुँचे थे। यूरोपमें आर्य-जातिका आदि निवास कहाँ था, इस विषयमें ही अधिक मत-विभिन्नता पाई जाती है। कोई दक्षिण रूस, कोई लिथुआनिया, कोई डैन्यूब और राइन नदियोंकी उपत्यकाओं और कोई भूमध्यसागरके निकटस्थ देशोंको आर्य-जातिकी आदि-भूमि मानता है। डा० प्राणनाथ विद्यालंकारने भी अपनी 'The Aryans Before 1000 B. C.' नामक लेखमालामें एक दूसरे ही दृष्टि-बिन्दुसे इस अन्तिम सिद्धान्तका ही समर्थन किया है। यहाँ हम पाठकोंको याद दिलाना चाहते हैं कि अपने पिछले लेख 'सुमेर-सभ्यताकी जन्म-भूमि भारत'में हमने संसारमें सभ्यताकी आद्य-स्थापक मानी जानेवाली मेसोपोटामियाकी सुमेर-जातिको भारतके सुराष्ट्र (काठियावाड़) प्रदेशसे वहाँ पहुँची हुई प्रमाणित किया है। आर्य-जातिकी आदि-भूमि कौन-सी थी और उन लोगोंका किस मार्ग द्वारा प्रसार हुआ, इस विषयपर अपना मत प्रदर्शित करनेके पूर्व इस सुमेर-जाति और खत्ती-जातिके बीच क्या पारस्परिक सम्बन्ध था, इसपर प्रकाश डालना होगा।

सुमेर और खत्तियोंका सम्बन्ध

भारतकी प्राचीन राज्यवंशावलियाँ सुमेर-राज्यवंशावलियोंसे मिलती हुई हैं, इस विषयपर अपने पिछले लेखमें हम लिख चुके हैं और उदाहरण भी दे चुके हैं। सुमेर लोगोंकी भाँति खत्ती लोगोंके कुछ प्रारम्भिक राजाओंके नाम भिन्न-भिन्न खत्ती लेखों तथा मुद्राओंपर प्राप्त हुए हैं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इन खत्ती राजाओंके नाम वही हैं, जो प्रारम्भिक सुमेर राजाओंके हैं।

सुमेर-वंशावलियों द्वारा ज्ञात होता है कि उनके प्रथम राजा उक्कुसिने मेसोपोटामियाके दक्षिणमें ईरानकी खाड़ीके किनारे स्थित 'इरीदु' नामक बन्दरगाहमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। उसने तीस वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् उसके पुत्र बक्कुसने बारह वर्ष राज्य करनेके बाद मेसोपोटामियाके उत्तरी प्रदेशमें 'किश' नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। इससे सिद्ध होता है कि इरीदु बयालीस वर्ष तक राजधानी रहा; परन्तु इरीदुकी खुदाईमें कोई भी ऐसी वस्तु प्राप्त नहीं हुई, जिससे यह सिद्ध हो सके कि राजधानी स्थापित करनेके पश्चात् उक्कुसि और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बक्कुस दोनोंने वहीं रहकर शासन किया हो। इसके बजाय एशिया-माइनरमें प्राप्त खत्ती-जातिके लेखोंमें इन दोनों राजाओंके नाम, मुद्राएँ तथा चट्टानोंपर खुदी हुई मूर्तियाँ तक प्राप्त हुई हैं।* इससे यह सिद्ध होता है कि उक्कुसि (इक्ष्वाकु) सर्वप्रथम सुराष्ट्रसे समुद्र-मार्ग द्वारा इरीदुके बन्दरगाहपर उतरा और उसे जीतकर अपनी राजधानी बनाया। इसके पश्चात् शीघ्र ही वह मेसोपोटामियाको पार करके उत्तरमें एशिया-मारनरमें आया, जहाँ तल-हलफमें उसने अपनी एक और राजधानी स्थापित की। इसके पश्चात् उसके पुत्र बक्कुस (विकुक्षि) ने भी यहीं राज्य किया और अपने राज्य-कालके बारहवें वर्षमें वह पुनः मेसोपोटामियामें फुरात और दज़लाकी घाटीमें उतरा और उत्तरी मेसोपोटामियामें किशनगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। इस किशको सुमेर-जातिका सबसे प्राचीन नगर माना जाता है। यहींसे मेसोपोटामियाके राजकीय इतिहासका प्रारम्भ होता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इक्ष्वाकु जब मेसोपोटामियामें भारतसे पहुँचा, तो शीघ्र ही वह मेसोपोटामियाको छोड़कर एशिया-माइनरमें क्यों जा बसा, और उसके पश्चात् उसका पुत्र विकुक्षि जब पुनः मेसोपोटामिया पहुँचा, तो उसने अपने लिए उत्तरी अर्थात् ऊपरी मेसोपोटामियामें नई राजधानी क्यों स्थापित की? इरीदुको अपनी राजधानी बनाकर वह क्यों न रहा? इस रहस्यपूर्ण प्रश्नका उत्तर यही है कि उन दिनों फुरात और दज़लामें भयंकर बाढ़ें आया करती थीं, जिनके कारण उनके किनारे बसना असम्भव हो गया था। फुरातकी सबसे पहली और भयंकर बाढ़ ही भारतीय और बेबीलोनियन साहित्यमें 'जल-प्रलय'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके चिह्न किश और उरकी खुदाइयोंमें प्राप्त हो चुके हैं। इसी 'प्रलय' नामक भयंकर बाढ़के कारण 'सरस्वती-सभ्यता'वाले भारतीय आर्य पुनः वापस चले गये थे। यह घटना ई० पू० ३४७५ की है।

मेसोपोटामियाकी भूमि अत्यन्त उर्वरा थी और अब तक है। अतः कृषक आर्य-जाति ऐसे अच्छे प्रदेशको भला क्यों छोड़ने लगी? परन्तु वह नौका-शास्त्रसे अनभिज्ञ थी, इसीलिए प्रलयके कारण उसकी इतनी अधिक हानि हुई कि यह घटना एक ऐतिहासिक घटना हो गई। इसी कारण नौका-शास्त्रमें दक्षता प्राप्त करनेके लिए आर्योंने सुराष्ट्रको केन्द्र बनाया। जब यह कार्य पूर्ण हो गया, तो पुनः आर्य लोग इक्ष्वाकुकी अध्यक्षतामें सुराष्ट्रके सामुद्रिक केन्द्रसे, समुद्र-मार्ग द्वारा, मेसोपोटामिया पहुँचे। मेसोपोटामिया और पश्चिम एशियाको पहुँचनेका यह समुद्री मार्ग बलूचिस्तान और ईरानके स्थलमार्गकी अपेक्षा अधिक सुगम और सुविधापूर्ण था। इसी कारण अबकी आर्योंने इसे ग्रहण किया। यह घटना ई० पू० ३३८३ की है; परन्तु इस बार जब आर्य पुनः भारतवर्षसे मेसोपोटामिया पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि अब भी फुरातमें बार-बार बाढ़ें आया करती हैं, इसलिए उन्होंने समझा कि कुछ काल तक इसकी उपत्यकामें बसना खतरेसे खाली नहीं है। इसका कड़वा अनुभव इससे ठीक ९२ वर्ष पूर्व प्रलयके समय उन्हें हो चुका था, इसलिए उन्होंने कुछ कालके लिए मेसोपोटामियामें बसना उचित न समझा और उत्तरकी ओर बढ़कर वे एशिया-माइनरके हरे-भरे प्रदेशमें जा पहुँचे। यही कारण है कि इक्ष्वाकु इरीदुको राजधानी बनानेके पश्चात् शीघ्र ही एशिया - माइनर जा पहुँचा और वहाँ तल-हलफके निकट उसने अपनी दूसरी राजधानी स्थापित करके एशिया-माइनरमें आर्योंका सर्वप्रथम उपनिवेश स्थापित किया। वास्तवमें फुरात-नदीकी बाढ़ोंके कारण ही आर्य प्रारम्भमें मेसोपोटामियामें नहीं बसे थे। इसका एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि जब फुरात नदीमें बाढ़ें घटने लगीं, तो वे शीघ्र ही एशिया-माइनरसे मेसोपोटामियामें आ गये; परन्तु अब उन्होंने इरीदुको राजधानी बनानेकी अपेक्षा उत्तरी मेसोपोटामियाके उत्तर-प्रदेशोंमें

* यह खत्ती (Hettite) जाति आर्यावर्त्तकी क्षत्रिय जाति थी, जो सुराष्ट्रके मार्गसे और फिर समुद्र-द्वारा मेसोपोटामियाको पार करके एशिया-माइनरमें जाकर बसी थी। बादमें यह जाति किस प्रकार स्थलमार्गसे पुनः भारतमें आई और सुराष्ट्रमें आज तक बसी हुई है, इसपर हम पिछले लेखमें एक नोट दे चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही फुरातके किनारे नया 'किश' नामक नगर बसाकर राजधानी स्थापित की। इस उच्च प्रदेशमें फुरातकी बाढ़ोंका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता था, क्योंकि बाढ़का पानी नीचेके मैदानोंकी ओर ढलककर दक्षिणी मेसोपोटामियामें ही भयंकर रूप धारण करता था। उन्होंने राजधानी उत्तरी मेसोपोटामियाके उच्च प्रदेशोंमें ही स्थापित की।

दूसरा प्रमाण यह है कि जब उन लोगोंने—बाढ़ोंका काल चला जानेपर—दक्षिण मेसोपोटामियामें 'उर' नामक नगर बसाकर अपनी दूसरी राजधानी स्थापित की, तो फुरात नदीके किनारे। जहाँ नगर बसाना था, उस स्थानको कृत्रिम उपायोंसे—मिट्टी आदि डालकर—इतना ऊँचा कर दिया था कि भविष्यमें बाढ़ आनेपर नगर तक पानी न पहुँचे। किश और उर दोनोंकी खुदाइयों द्वारा इस सिद्धान्तकी सत्यता प्रकट हो चुकी है। फुरातमें बारंबार बाढ़ें आया करती थीं, इसके चिह्न भी इन खुदाइयोंमें मिल चुके हैं। इस प्रकार यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि भारतसे आर्य लोग जब इक्ष्वाकुकी अध्यक्षतामें मेसोपोटामिया पहुँचे, तो वहाँ फुरातकी बाढ़ोंके कारण बसना उचित न समझकर वे एशिया-माइनरमें चले गये थे। वहाँ इक्ष्वाकुने तीस वर्ष तक राज्य किया था।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इक्ष्वाकु जब उपनिवेश बसानेके लिए पश्चिम-एशिया गया, तो वहाँ तीस वर्ष तक रहनेकी क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि एशिया-माइनरमें इक्ष्वाकुकी जो मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, उनके देखनेसे ज्ञात होता है कि इक्ष्वाकुका उद्देश्य वहाँ केवल भारतीय आर्योंका उपनिवेश स्थापित करना ही नहीं; परन्तु वहाँके सेमाइट आदिम निवासियोंको, जो जंगली अवस्थामें थे, अपनी सभ्यता द्वारा कृषि सिखलाना भी था। इक्ष्वाकुके हाथमें स्वस्तिका (सूर्यका चिह्न) और साथमें गरुड़का होना इसी बातका द्योतक है।

चट्टीनपर खुदी हुई एक विशाल मूर्ति बोग़ाज़-केईके निकट एक पहाड़ीके पास पाई जाती है। इसके एक हाथमें गेहूँकी बालें हैं और दूसरेमें हल है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतके ये महान राजा किस उद्देश्यको लेकर बाहर गये थे। उसके एक हाथमें कलम तथा दूसरे हाथमें तलवार नहीं थी। मानव-जाति वास्तवमें कृषिके कारण ही सभ्य बनी है। आर्य-जातिने इसका आविष्कार किया था। आर्य-जातिकी इस महान देनको मानव-जातिमें फैलाकर सभ्य बनानेके हेतु ही ये महान आर्य राजा बाहर गये थे। इस मूर्तिपर खत्ती चित्राक्षर-लिपिमें विकुक्षिका नाम 'बक्कुस' लिखा हुआ है। उसने बारह वर्ष एशिया-माइनरमें रहनेके बाद उत्तरी मेसोपोटामियामें 'किश' नामक नगर बसाया, और इस प्रकार सुमेरके राजनैतिक इतिहासका प्रारम्भ हुआ।

सुवर्ण तथा क्षत्रिय

इस प्रकार प्रारम्भमें खत्ती तथा सुमेरोंकी सभ्यता एक ही थी; परन्तु वास्तवमें वे आर्य होते हुए भी एक नहीं थे। सुमेर सु-राष्ट्र (काठियावाड़) के निवासी सुवर्ण थे और सामुद्रिक व्यापार ही प्रारम्भमें उनका धंधा था। ये वर्ण-व्यवस्थाके अनुसार वैश्य थे। खत्ती अथवा खत्तिया आर्य क्षत्रिय थे, जिन्हें सुवर्णोंके ही साथ इक्ष्वाकु अपने साथ ले गया था। उन्हें उसने एशिया-माइनरमें बसाया। सुवर्ण अर्थात् सुमेरोंने मेसोपोटामियाको अपना उपनिवेश बनाया और खत्तियोंने एशिया-माइनरको। सुमेर तथा खत्तियोंके बीच क्या सम्बन्ध था, यह हम देख चुके। अब मुख्य विषयपर आना चाहिए।

सुमेरोंके पूर्वज

खत्ती इन्द्र, वरुण, सूर्य आदि वैदिक देवोंके पुजारी थे। उनके देवोंकी जो खुदी हुई आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनसे तथा तल-हलफकी खुदाईसे यह बात प्रमाणित हो चुकी है। मित्तानी-जाति खत्तियोंकी ही एक शाखा थी, जिसके राजा दुइश्शरत (दशरथ) के सन्धि-पत्रका उल्लेख प्रारम्भमें किया जा चुका है। तल-हलफकी खुदाइयाँ करानेवाले जर्मन विद्वान ओपनहेमने भी यही सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि खत्ती लोग ही सुमेरोंके पूर्वज थे। सुमेर-साहित्यमें उनके पूर्वजोंके देशका नाम 'सुबार्तू' लिखा हुआ मिलता है। ओपनहेमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तल-हलफके आसपासके प्रदेशको ही 'सुवार्तू' माना है ; परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं थी। खत्ती सुमेरोंके पूर्वज नहीं, वरन् साथी थे और प्रारम्भमें उनकी सभ्यता एक ही थी। मेसोपोटामियाके वासी होनेके कारण सुमेरोंका सम्बन्ध पश्चिम-एशियाके दक्षिणी भागके देशोंसे अधिक रहा और खत्तियोंका निवास-स्थान एशिया-माइनर होनेसे पश्चिम एशियाके उत्तरी देश तथा दक्षिण-यूरोपसे उनका अधिक सम्पर्क रहा। इस प्रकार एक ही संस्कृतिकी इन दोनों सन्तानों—जातियों—की संस्कृति समय गुज़रनेके साथ एक-दूसरेसे भिन्न होती गई, तथापि मूलमें उनकी प्रारम्भिक संस्कृतिका प्रतिबिम्ब तो आदिसे अन्त तक बना ही रहा। सुमेरोंके पूर्वजोंकी आदि-भूमि 'सुवार्तू' वास्तवमें ऋग्वेदमें वर्णित आर्य-निवासका एक प्रदेश 'सुवास्तु' था, जो भारतके पश्चिमी भागमें था—तल-हलफके आसपासका कुर्दिस्तानका प्रदेश नहीं, जैसा कि ओपनहेमने माना है।

एशिया-माइनरका पुरातत्त्व

इस प्रकार यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि खत्ती या हिटाइट लोग वास्तवमें भारतसे जाकर एशिया-माइनरमें बसे थे, न कि एशिया-माइनरसे भारत आकर भारतीय आर्य-सभ्यताके स्थापक बने थे। अब इस बातको ज़रा पुरातत्त्व-द्वारा और भी दृढ़ कर लेना चाहिए।

भारतवर्षमें किस प्रकार मानव-जातिका जन्म तथा विकास हुआ, किस प्रकार वह यहाँ भिन्न-भिन्न पाषाण-सभ्यताओं (Stone cultures) में से होकर गुज़री और किस प्रकार—कृषिके आविष्कारके पश्चात्—सरस्वती नदीके तट-प्रदेशपर पाषाण-कालके अन्तमें उसमें ताम्र-युगकी सभ्यताका प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार यह ताम्र-सभ्यता विकसित होकर मुहेन-जो-दड़ो तथा हड़प्पाकी काँसेकी सभ्यता बनी—यह एक पृथक् विषय है। इनका विवेचन मैं अपने एक अन्य लेखमें कर चुका हूँ। इस पत्रमें प्रकाशित 'सुमेर-सभ्यताकी जन्मभूमि भारत' में यह दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार सिन्धु-सभ्यता (जिसे मैं सिन्धु - सुराष्ट्र - सभ्यता कहता हूँ) सुमेर-सभ्यताकी जननी प्रमाणित हुई है। अतः यहाँ यह बात प्रमाणित करनेकी आवश्यकता नहीं है कि खत्ती-सभ्यतापर सिन्धु-सभ्यताका प्रभाव था, जब कि उसकी बहन सुमेर-सभ्यता प्रत्यक्ष रूपसे 'सिन्धु-सभ्यता' की ही पुत्री थी। सिन्धु-संस्कृतिका प्रभाव उर, किश, सुसा और जमदेतनस्र आदि प्राचीनतम सुमेर नगरोंकी नींवमें दिखाई देता है, यही बात खत्ती नगर तल-हलफ और बोग़ाज़-केईके विषयमें भी पाई जाती है। इन काँसेकी सभ्यताके नगरोंकी नींवके नीचे ताँबेकी सभ्यताके चिह्न अथवा किसी अन्य युग या जातिके नगरोंके अवशेष प्राप्त नहीं हुए। इससे सिद्ध हुआ कि खत्ती लोग वास्तवमें कहीं बाहरसे अपनी सभ्यताको लेकर यहाँ आये थे। इन लोगोंकी चित्र-लिपि भी सिन्धु-लिपिसे बहुत निकटतम सम्बन्धित सिद्ध हुई है, जिससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि वह भी सुमेर - लिपि (जमदेतनस्र) की भाँति ही सिन्धु-लिपिकी पुत्री थी।

आर्य लोग भारतसे एशिया-माइनर पहुँचे थे

यूरोपियन विद्वान मानते हैं कि आर्य यूरोपसे एशिया-माइनर गये और वहाँसे मेसोपोटामिया और ईरानके स्थल-मार्गसे भारत पहुँचे थे ; परन्तु पुरातत्त्वके प्रमाणों द्वारा हमने इस लेखमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि आर्य अपनी आदि-भूमि भारतसे जल-मार्ग द्वारा मेसोपोटामिया होते हुए एशिया-माइनरमें जाकर बसे थे। इस सिद्धान्तानुसार उन्हें एशिया-माइनरसे ही यूरोपमें पहुँचना चाहिए। पुरातत्त्व और प्राचीन साहित्य दोनोंके आधारपर यह बात प्रमाणित हो जाती है। पहले पुरातत्त्वको ही लेना चाहिए।

यूरोपकी प्राचीन सभ्यताके अवशेष

सन् १९०२ में यूरोपके वेस और टामसन नामक दो पुरातत्त्ववेत्ताओंने यूनान (Greece) के थेसेली (Thessaly) प्रदेशमें प्रागैतिहासिक कालके स्थानोंकी खुदाई की थी, जिससे यह ज्ञात हुआ कि इन स्थानोंकी सभ्यता काँसेके युगके प्रारम्भ कालकी है। इस प्रदेशके निकट वोलोकी खाड़ीके पास डिमीनी (Dimini) नामक स्थानकी खुदाईमें काँसेके युगकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इन भग्नावशेषोंमें जो मिट्टीके पात्रादि प्राप्त हुए हैं, उनकी आकृति तथा उनके ऊपरका चित्रांकन बोगाज़-केई और तल-हलफमें प्राप्त पात्रादिके समान ही है। यूरोपकी यह सबसे प्राचीन सभ्यता 'रंगीन बर्तनोंकी सभ्यता' (Painted Pottery Culture) कहलाती है। इसका विस्तार डैन्यूब नदीकी उपत्यकासे लेकर दक्षिणमें यूनान और काले समुद्र तक तथा पूर्वमें कारपेथियन पर्वतों तक पाया जाता है। थेसेलीके पश्चात और सब जगह भी उसकी खुदाई हो चुकी है। डैन्यूबकी घाटीमें इसके चिह्न अधिक मात्रामें मिले हैं। बोगाज़-केई, तल-हलफ जमदेतनस्रके समान रंगीन मिट्टीके पात्रोंके अतिरिक्त काँसेके हथियार-औज़ार, कृषिकी वस्तुएँ, मिट्टीकी देव-मूर्तियाँ, पालतू पशुओंकी हड्डियाँ, धान्य आदि अनेक प्रकारकी पुरातत्त्व-सामग्री वहाँ प्रचुर परिमाणमें प्राप्त हुई है। इसका एकमात्र कारण यही था कि डैन्यूबकी घाटी बहुत उपजाऊ थी, इसलिए खत्ती लोग एशिया-माइनरसे आगे बढ़कर यहाँ तक आ बसे थे।

इबेरियन द्राविड़ जाति

यूरोपमें सभ्यता और कृषिके स्थापक इन भारतीय आर्योंकी प्राचीन बस्तियोंके अवशेषोंके अतिरिक्त वहाँकी पाषाणकालीन आदिम जंगली जातिकी सभ्यताकी स्मारक-वस्तुएँ भी सैकड़ों स्थानोंमें प्राप्त हुई हैं। आर्योंके यूरोपमें प्रवेश करनेके समय ब्रिटेनसे लेकर रूस तक यह जाति बसी हुई थी और शिकार करके जीवन-निर्वाह करती थी। इसको पुरातत्त्वविद इबेरियन-जाति (Iberian) कहते हैं। इस जातिवालोंका क़द नाटा और रंग गहरा होता था। ये अपने मृतकोंको ज़मीनमें गाड़कर उनपर बहुत बड़े-बड़े पत्थर चुनकर क़ब्र बनाते थे। ये क़ब्रें 'मेगालिथ' (Megaliths) के रूपमें आज तक पाई जाती हैं। ये मेगालिथ यूरोपके अतिरिक्त सारे उत्तर-अफ्रिका, 'दक्षिण-भारत' आसाम, मलाया-प्रायद्वीप, पैसफिकके द्वीप और अमेरिका तक पाई जाती है। प्रसिद्ध विद्वान हक्सलेने इन्हें द्राविड़ बतलाया है और कहा है कि "आदिम मिस्रवासी और इबेरियन भारतके द्राविड़ थे, जो अमेरिकासे लेकर स्पेन तक फैले हुए थे।" स्वीटज़रलैण्डकी झीलोंमें जिस नवपाषाण-युगकी मानव-जातिके निवासके चिह्न पाये गये हैं, वे यही लोग थे। भारतीय आर्य-कथाओंमें जिस प्रकार द्राविड़ोंको राक्षस, दैत्य और दानव कहा गया है, उसी प्रकार यूरोपकी प्राचीन कथाओंमें इन इबेरियन लोगोंको ही दानव (Demons) कहा गया है। ये कभी-कभी, शायद अपने किसी धार्मिक उत्सवके समय, नर-भक्षण भी करते थे। एशिया-माइनरके मार्गसे जब कृषक आर्य-जातिने यूरोपमें प्रवेश किया, तो उसने इन इबेरियनोंको पश्चिम यूरोपकी ओर भगा दिया। उनकी एक बड़ी संख्या इनमें मिल-जुल भी गई। स्पेन और पोर्तुगालके वर्तमान निवासी इबेरियन तथा आर्योंके मिश्रणसे उत्पन्न हुए हैं। आयरलैण्ड तथा वेल्समें भी मनुष्योंकी कुछ ऐसी संख्या पाई जाती है।

यूरोपकी भाषाओंकी उत्पत्ति

भारत और यूरोपकी भाषाएँ आर्य-भाषाएँ हैं; परन्तु उनमें एक खास भेद यह नजर आता है कि शब्द-भंडारकी दृष्टिसे ये भाषाएँ परस्पर मिलती हैं; परन्तु व्याकरणकी दृष्टिसे इनके बीच अपेक्षाकृत भिन्नता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि यूरोपमें आर्य जो भाषा बोलते थे, उसपर वहाँके आदिम निवासी इबेरियनोंकी भाषाका भी बहुत-कुछ प्रभाव पड़ा। इस प्रकार आर्य शब्दावली तथा इबेरियन व्याकरणके सामंजस्यसे यूरोपकी तरह आदिम भाषा उत्पन्न हुई, जो गाल, वेल्श, गैलिक, ब्रिटेन आदि प्राचीन यूरोपियन भाषाओंकी माता थी।

नार्डिक-केल्टोंकी भारतीय सभ्यता

यूरोपमें प्रवेश करनेवाली यह भारतीय जाति 'नार्डिक-केल्ट' कहलाती थी। इसके रीति-रिवाज़ और धार्मिक प्रथाएँ वैदिक आर्योंके समान ही थीं। ये लोग अपने मृतकोंका दाह-संस्कार करते थे और उनकी राखको एक मिट्टीके पात्रमें भरकर गाड़ देते थे। खत्तियोंमें यही प्रथा प्रचलित थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहेन-जो-दड़ोंके निवासी भी यही करते थे। भारतमें अब तक यह प्रथा प्रचलित है। डैन्यूब और राइनकी घाटियाँ तथा थेसेलीमें रंगीन मिट्टीके पात्रोंके साथ जो मिट्टीकी छोटी-छोटी देव-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, वे ठीक वैसी ही हैं, जैसी कि बोगाज़-केई, तल-हलफ, जमदेतनस्र और मुहेन-जो-दड़ोंमें प्राप्त हुई हैं। वैदिक आर्य रथका उपयोग करते थे, यह प्रसिद्ध ही है। मेसोपोटामियामें उरकी खुदाईमें अनेक रथ प्राप्त हुए हैं, जो भारतीय ढंगके हैं। खत्ती लोग भी रथका खूब उपयोग करते थे। मिस्रमें इन रथोंकी आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं। नार्डिक-केल्ट लोग भी रथका उपयोग करते थे और उनमें बैल जोतते थे। यह प्रथा वैदिक कालसे लेकर आज तक भारतमें पाई जाती है। नार्डिक लोगोंमें व्यापारके लिए सिक्कोंका प्रचलन नहीं था। वे गायोंके बदलेमें वस्तुएँ खरीदते थे। ऋग्वेद द्वारा ज्ञात होता है कि वैदिक आर्योंमें यही प्रथा प्रचलित थी। नार्डिक लोग कृषि-कार्यमें बैलोंका उपयोग करते थे। भारतमें वैदिक कालसे आज तक यही प्रथा चली आ रही है। यूरोपमें कृषि-कार्यमें घोड़ेका उपयोग बहुत बादमें शुरू हुआ।

वर्तमान यूरोपियन जातियोंके पूर्वज इन नार्डिक-केल्टोंका जीवन भारतीय कृषकोंके जीवनसे बिलकुल मिलता-जुलता है। इससे सिद्ध होता है कि जिस प्रकार इक्ष्वाकु और विकुक्षिने भारतीय वैश्योंको मेसोपोटामियामें बसाया, क्षत्रियोंको एशिया-माइनरमें और कृषकोंको यूरोपमें। ये लोग कृषक ही थे और नागरिक नहीं थे, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इस जातिकी सभ्यताके अवशेष ग्रामोंके रूपमें ही मिले हैं। इनका कोई नगर कहीं नहीं मिला।

सारे यूरोपमें इस प्राचीनतम आर्य-जातिकी सभ्यताके जो अवशेष मिले हैं, उनके पुरातत्त्व द्वारा यह बात लेशमात्र भी प्रमाणित नहीं होती कि नार्डिक-केल्टोंकी सभ्यता आर्य-जातिमें सबसे अधिक प्राचीन थी और यूरोप ही आर्य-जातिका आदि-निवास तथा सभ्यताका जन्मस्थान था। यदि इस जातिकी काँसेकी सभ्यताके अवशेषोंके नीचे ताँबेकी सभ्यताके चिह्न प्राप्त हों, फिर नवपाषाणकालके, तभी यह बात कुछ अंशोंमें सिद्ध हो सकती है। इसके पश्चात मिट्टीके पात्रोंकी उत्पत्ति और उनके आकार तथा उनपर चित्रित आकृतियाँ और रंगके क्रम-विकासका प्रश्न है। वहाँ तो केवल उस प्रकारके मिट्टीके रंगीन पात्र प्राप्त हुए हैं, जैसे कि एशिया-माइनर, मेसोपोटामिया, ईरान और भारतवर्षमें सर्वत्र प्राचीन खुदाइयोंमें प्राप्त हुए हैं और सिन्धु-उपत्यका, बलोचिस्तान, ईरान तथा मेसोपोटामियामें इनके विकासके पहलेके अनेक रूपोंमें प्राप्त हो चुके हैं। अब आता है लिपिके विकासका प्रश्न, डैन्यूबकी घाटीमें मिट्टीके कुछ पात्रोंपर एक चित्र-लिपि प्राप्त हुई है, जो डैन्यूबियन लिपि कहलाती है। इसके चित्राक्षरोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि यह खत्ती-लिपिसे निकली है, जो सिन्धु-लिपिकी पुत्री थी। यदि यूरोपमें आदिम चित्र-लिपिसे लेकर डैन्यूबियन लिपि तकके विकासकी सारी लिपियाँ प्राप्त होतीं, तो यूरोपको सभ्यताकी आदि-भूमि माना जा सकता।

भारतमें यह सारी पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त हुई है, अतः भारत ही सभ्यताकी आदि-भूमि था और यहींसे आर्य-जातिके द्वारा वह सारे संसारमें फैली। हम पुरातत्त्वकी दृष्टिसे देख चुके कि यूरोप न सभ्यताका जन्म-स्थान था और न आर्य-जातिका आदि निवास-स्थान ही। इसके विपरीत वहाँकी प्राचीनतम आर्य-जाति नार्डिक-केल्ट और उसकी सभ्यता भारतीय तथा भारतसे एशिया-माइनर द्वारा वहाँ पहुँची हुई सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, इस जातिकी प्राचीन कथाओं द्वारा भी इस सिद्धान्तका पूर्णतया समर्थन होता है।

नार्डिक-केल्टोंके वेद 'एड्डा'

वैदिक कालसे ही भारतीय आर्योंकी गाथाएँ कंठस्थ रखी जाती हैं। वेद ब्राह्मणोंको कंठस्थ रहते थे, और अब तक ऐसा करना प्रत्येक ब्राह्मणका धर्म माना जाता है। भारतीय कृषक अपने गीत तथा कथाओंको कंठस्थ रखकर ही उनकी परम्परा जारी रखते हैं। इस समय तक सुराष्ट्र (काठियावाड़)का साहित्य कंठस्थ ही रखा जाता है, जिसके लिए चारण-जाति अलग नियुक्त है। वही इसे कंठस्थ रखती है और गाँव-गाँवमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनाती फिरती है। कच्छी तथा राजस्थानी साहित्यकी भी यही दशा है। सिन्धमें भी लिपि-प्रचारसे पूर्व यही बात थी। इसका अर्थ यह नहीं होता कि लिपिके अभावके कारण यह किया जाता था। वास्तवमें प्राचीनकालमें लिपिका उपयोग हिसाब-किताब रखने तथा शासन-सम्बन्धी कार्यवाहीके ही लिए होता था। नार्डिक-केल्ट भी इसी प्रकार अपनी गाथाओंको कंठस्थ रखते थे। ये दो प्रकारकी होती थीं—एक तो पद्यबद्ध, जो सबसे प्राचीन थीं, और दूसरी गद्यबद्ध, जो बादमें प्रचलित हुईं। इन गाथाओंको एडा (Edda) कहा जाता था। यह शब्द भारतीय 'वेद'का अपभ्रंश प्रतीत होता है। उच्चारण-भेदके कारण 'व' अक्सर 'अ' हो जाया करता है। इस प्रकार वेदसे एद, एदसे एद्दा, जो बादको यूरोपियन उच्चारणानुसार एड्डा बन गया। नार्डिक-जातिमें प्रत्येक कुटुम्बका एक भाट होता था, जो गाथाएँ गा-गाकर सबको सुनाया करता था।

एड्डाओंमें इक्ष्वाकुका चरित्र

नार्डिकोंको यूरोपमें बसानेवालेका नाम एड्डाओंमें थोर कहा गया है, जिसकी राजधानी 'जिनिंग-गेप' (Gining Gap) के मैदानोंमें स्थित थी। इन मैदानोंके पास एक पार्वत्य-प्रदेश था, जिसको 'विमुर' (Vimur) नदी अलग करती थी। इस राजा थोरकी राजधानीका नाम 'विदर' (Vider) था, और वहाँसे वह जिनिंग लोगोंपर आक्रमण किया करता था, क्योंकि वे उसके शत्रु हो गये थे। इसके पश्चात् वह बर्फका पुल बाँधकर अपने एक हाथमें स्वस्तिका तथा गरुड़को लेकर इस पार अर्थात् यूरोपमें आया। एक हाथमें स्वस्तिका तथा साथमें गरुड़को रखनेवाला यह राजा थोर कौन था, इसका सहज ही पता चल जाता है। एशिया-माइनरमें इक्ष्वाकुकी जो खत्ती मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, उनपर इक्ष्वाकुकी जो आकृति चित्रित है, उसमें एक हाथमें स्वस्तिका तथा साथमें गरुड़ चित्रित है। इससे ज्ञात होता है कि एड्डाओंमें वर्णित यह राजा थोर इक्ष्वाकु ही था। सुमेरियन वंशावलियोंमें इक्ष्वाकु (उक्कुसि) का एक नाम तूर भी लिखा हुआ मिलता है। यह थोर इसी 'तूर' का अपभ्रंश प्रतीत होता है। वह 'जिनिंग-गेप'का राजा था। सुमेर-साहित्यमें मेसोपोटामियाके उत्तरमें स्थित मैदानोंके प्रदेश (एशिया-माइनर) का नाम 'जी-इन-जिन' भी पाया जाता है। 'जिनिंग-गेप' इसीका अपभ्रंश प्रतीत होता है। इससे सिद्ध होता है कि थोर (इक्ष्वाकु) एशिया-माइनरका राजा था। थोर जो बर्फका पुल बाँधकर इस पार आया, इसका अर्थ होता है कि वह बास्फोरसके मुहानेको पार करके यूरोपमें पहुँचा। थोरके हाथमें 'स्वस्तिक' रहती थी। इसका अर्थ यह है कि स्वस्तिका सूर्यकी आकृतिका चिह्न है। सूर्य प्रकाश और जीवनदाता है। कृषि-कार्यमें सूर्य कितना आवश्यक है, यह सबको मालूम है। आर्य-जाति कृषिकी आविष्कारक थी, अतः सूर्य उसका प्रधान देव बने, यह स्वाभाविक ही था। मेरे मतानुसार सिन्धु-सुराष्ट्र-सभ्यता आर्योंकी थी, न कि द्राविड़ोंकी—जैसा कि यूरोपियन विद्वानोंने माना है और हमको भी मनवाया है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब सिन्धु-सभ्यता आर्य थी, तो उसमें शिव-लिंग-पूजाका प्राधान्य क्यों माना गया है? होना तो चाहिए 'सूर्य', अगर वह आर्य थी तो। परन्तु वास्तवमें यह हमारी भूल है कि सिन्धु-सभ्यताके प्रधान देव 'शिव' थे। वहाँ मिट्टीके छोटे-छोटे शिवलिंग प्राप्त हुए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि शिव-पूजा वहाँ बसनेवाली कोई छोटी अनार्य बस्ती करती थी। वास्तवमें 'सिन्धु-सभ्यता' के प्रधान देव सूर्य ही थे। इस विषयमें अर्नेस्ट मेकेने 'The Indus Civilization' के पृष्ठ ८८ पर लिखा है—"...the sun was regarded as the greatest of all gods..." अर्थात्—'सूर्य सभी देवताओंसे बड़े माने जाते थे।' सूर्य-पूजा आर्योंकी प्रधान पूजा थी, इसीलिए उन्होंने कृषिके साथ-ही-साथ सारे संसारमें इसका भी प्रचार किया। सुमेर लोग सूर्य-पूजक थे और निप्पुर नगर सूर्य-पूजाका केन्द्र था। खत्ती भी सूर्य-पूजक थे। ५३०० वर्षके पश्चात् आज भी सुराष्ट्रमें वे 'सूर्य-पूजक' ही हैं। प्राचीन मिस्रवासी कैसे सूर्य-पूजक थे, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। दक्षिण-अमेरिकाके एन्डियन तथा पेरूके 'इनका' सूर्य-पूजक थे। 'इनका' शब्दका अर्थ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सूर्यका पुत्र' होता है। ये इनका सूर्य-पूजामें मिस्रियोंसे भी बढ़ गये थे। मेक्सिकोके अज़्टेक तथा माया सूर्य-पूजक थे और उसे नर-बलि तक चढ़ाते थे। इन देशोंमें सर्वत्र कृषिके साथ भारतीय आर्योंने सूर्य-पूजाका प्रचार किया था।

नाग और सूर्यकी प्रतिद्वन्द्विता

परन्तु आर्यों द्वारा संसारमें कृषिके साथ सूर्य-पूजा फैलनेके सहस्रों वर्ष पूर्व एक और ही सभ्यता सारे संसारमें फैल चुकी थी! यह थी नाग-पूजाकी सभ्यता और इसके उत्पादक तथा प्रसारक थे नागद्वीपके द्राविड़। यह नागद्वीप हिन्द-महासागरमें स्थित था और ई० पू० १२५० के क़रीब किसी भयंकर भूकम्पके कारण हिन्द-महासागरमें डूब गया। ये द्राविड़ लोग आजसे क़रीब बीस हज़ार वर्ष पहले ही सारे संसारमें नाग-पूजाका प्रचार कर चुके थे। सारे संसारके प्रत्येक भागके आदिम-निवासियोंमें इसकी जड़ जम गई थी। आदिम मिस्रवासी 'अहि' के नामसे इसे पूजते थे। मेक्सिकोके नाहुआ तथा टोल्टेक भी 'अहि' के नामसे इसकी पूजा करते थे। इलाममें 'सुसी-नाग' के नामसे वहाँके आदिम-निवासी सेमाइटोंमें इसकी पूजा प्रचलित थी। मेसोपोटामियामें सुमेरोंके पूर्व निवास करनेवाले द्राविड़ केल्डियन भी 'नाग-पूजक' थे। उत्तर अफ्रिकामें भी यही पूजा प्रचलित थी। इस अवस्थामें आर्योंकी सूर्य-पूजाको सर्वत्र नाग-पूजाका मुक़ाबला करना पड़ता था। अनेक जातियोंकी प्राचीन कथाओं तथा साहित्योंमें इसका उल्लेख मिलता है। मिस्रके अनेक अति प्राचीन चित्रोंमें नाग और सूर्यका युद्ध मिलता है। कथाओंमें भी यह बात पाई जाती है। मेसोपोटामियामें प्राप्त अनेक ईंटोंपर यह दृश्य अंकित पाया गया है। अमेरिकाकी माया-जातिके प्राचीन चित्रों तथा स्थापत्य-कलामें यह दृश्य चित्रित है। प्रत्येक देशमें नागपर सूर्य विजय पाता है और धार्मिक सिद्धान्तोंमें इस प्रतिद्वन्द्विताको स्थान मिल गया। संसारके संचालनमें पुण्य और बादमें पाप इन दो शक्तियोंको कार्य करते हुए पाया जाता है। नागको पापका प्रतिनिधि माना गया तथा सूर्यको पुण्यका। परन्तु सूर्य-पूजाका महत्त्व तो कृषिके लिए ही था, इसीलिए वे इसका प्रचार कर रहे थे। साथ-ही-साथ सर्वोपरि सत्ता ईश्वर-विषयक प्रचार भी वे करते थे। कुछ समय पश्चात् इस सर्वोपरि सत्ता ईश्वरको पुण्यका प्रतिनिधि माना जाने लगा। बाइबिलमें ईश्वरके प्रतिद्वन्द्वी शैतानको नागके रूपमें बताया गया है। इस प्रकार यह नाग ही बादमें शैतान बन गया।

इक्ष्वाकु सबसे पहला राजा था, जिसने पश्चिम-एशिया तथा यूरोपमें सूर्य-पूजा तथा कृषिका प्रचार किया। स्वस्तिका सूर्यका चिह्न है। इक्ष्वाकुके साथ जो गरुड़ रहता था, वह सूर्यका वाहन माना गया था। मिस्रमें गरुड़को पृथ्वीपर सूर्यका प्रतिनिधि माना गया है। मेक्सिकोमें भी यही मान्यता प्रचलित थी। इक्ष्वाकुके सूर्य-पूजक होनेके कारण ही उसका वंश सूर्य-वंश कहलाया, जिसका वह दूसरा राजा था। मिस्रके आर्य राजा भी अपनेको सूर्यका पुत्र मानते थे। पेरू (दक्षिण-अमेरिका) के राजा भी अपनेको 'सूर्य-पुत्र' कहते थे।

इस प्रकार यूरोपकी वर्तमान जातियोंके पूर्वज नार्डिक-केल्ट भारतके कृषक थे, जिन्हें यूरोपमें इक्ष्वाकुने बसाया था। इस घटनाका काल ई० पू० ३३५० था। अर्थात् इस समयसे यूरोपमें भारतीय आर्य कृषकोंने बसना प्रारम्भ किया था। सिमरी (Cymri), ऐंग्लो-सैक्सन (Anglo-Saxons), ब्रिटन (Britons), गोथ (Goths), स्कैन्डीनेवियन Scandinavian) और प्राचीन जर्मन (Early Germans) जातियाँ इन नार्डिक लोगोंमें से ही उत्पन्न हुईं।

यूरोपमें प्रलय-कथा

यूरोपकी लगभग प्रत्येक जातिमें 'जल-प्रलय'की भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित हैं, जो भारतीय तथा सुमेरियन प्रलय-कथाओंसे मिलती हुई हैं। आइसलैण्डकी प्रलय-कथाका नायक बोर (Bor) है। वेल्सकी कथाका नायक डिफेन (Dwyfan) है, लिथुआनियाकी कथाका नायक प्रामज़िमस (Pramzimas) है, टांस अल्बानियाकी कथामें नायकका नाम नहीं पाया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिनलैण्ड तथा यूराल पर्वतके दोनों ओर रहनेवाली वोगल जातिकी प्रलय-कथाका नायक नूमीतारोम (Numi-tarom) है। फ्रांसके सैवाय प्रान्तमें यह कथा प्रचलित है। ग्रीसमें तो अनेक प्रलय-कथाएँ पाई जाती हैं। प्रलय आर्य-जातिकी उस समयकी मुख्य जातीय घटना थी, जिस समय कि आजसे करीब ५३२० वर्ष पहले उन्होंने विदेशोंमें अपने उपनिवेश स्थापित करना तथा वहाँके आदिम निवासियोंको कृषि तथा आर्य-धर्मानुयायी बनाना आरम्भ किया था। प्रलयके विनाशकारी परिणामोंके कारण ही आर्य-जातिमें एक नवस्फूर्ति उत्पन्न हो गई थी, जिसके परिणाम-स्वरूप उसने विदेशोंमें पहुचना शुरू कर दिया था। जिस तरह आजकल रामायणकी कथा प्रचलित है, उसी प्रकार उस अत्यन्त प्राचीन कालमें 'प्रलय-कथा'का प्रचार हो गया था। यही कारण है कि आर्य लोग संसारके जिन-जिन देशोंमें उपनिवेश-स्थापन करने अथवा कृषि-सभ्यताका प्रचार करनेके लिए गये, वहाँ सर्वत्र आज तक दन्तकथाओंके रूपमें 'प्रलय-कथा' पाई जाती है। प्रलय यूरोपकी घटना नहीं थी। यदि आर्य-जाति तथा यूरोपकी वर्तमान जातियोंके पूर्वजोंकी आदि-भूमि यूरोप ही था, तो वहाँ मेसोपोटामिया और भारतकी प्रलय-कथा कैसे प्रचलित हुई? जब तक हम यह न मानें कि यूरोपकी प्राचीन आर्य-जातियाँ भारत तथा मेसोपोटामियासे यूरोपमें पहुँचीं, तब तक इस बातका स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। प्रलय-कथाके प्रचारसे भी यही सिद्ध होता है कि आर्य भारतसे ही यूरोपमें पहुँचे।

ट्रोजन, आयोनियन और माइसीनियन

यह तो हुई ग्रामीण आर्य कृषकोंके यूरोप-निवासकी बात। अब यह देखना चाहिए कि यूरोपमें नगरोंका बसना कैसे और कब प्रारम्भ हुआ। यूरोपकी सबसे प्रथम नागरिक जातियाँ ट्रोजन और आयोनियन थीं। ये दोनों मित्तानियोंकी भाँति ही खत्तियोंकी शाखाएँ थीं, जो बादमें उत्पन्न हो गई थीं। ट्रोजन एशिया-माइनरके पश्चिमी भागमें निवास करते थे और ट्राय इनकी राजधानी थी। आयोनियन यूनानके निकटके द्वीपोंमें निवास करते थे। यही यूनानियोंके पूर्वज थे, जिनको बाइबिलमें 'जवन' तथा प्राचीन भारतीय साहित्यमें 'यवन' कहा गया है। माइसीनियन क्रीट-द्वीपके निवासी थे। ये लोग बादमें यूनानमें जा बसे थे। इन्हींके राजा एगामेम्नन्नने ट्रायपर घेरा डाला था, जो दस वर्ष रहा था। इसीकी कथा यूरोपके आदि कवि होमरने अपने महाकाव्य 'इलियड'में लिखी है।

ग्रीक कलाकी उत्पत्ति

यूरोपकी सबसे प्राचीन स्थापत्य-कला ग्रीक स्थापत्य-कला है। यह वास्तवमें खत्ती-स्थापत्य-कलासे उत्पन्न हुई थी; परन्तु साथ-ही-साथ इसपर क्रीटन-स्थापत्य-कलाका भी प्रभाव पड़ा था।

मृत्यु

मृत्यु है जीवनका श्रृंगार!
घृणा करो तुम इसे मुझे पर, सखि! करने दो प्यार!

मुझे सजल करती जिसकी स्मृति,
यह उसकी प्रिय एक अमर कृति;
मैं होता, यह अगर न होती,
सूना था संसार!

साँझ हुई, भर गया अँधेरा,
तुमने घर में दीप उजेरा;
किन्तु बुझाया उसे तुम्हींने,
होते ही भुंसार।

--विनयकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कहानीका प्लाट

श्रीयुत अज्ञेय

रातके ग्यारह बजे हैं ; लेकिन दफ्तर बन्द नहीं हुआ है। दो तीन चरमराती हुई लंगड़ी मेज़ोंपर सिर झुकाये, बाएँ हाथसे अपनी तकदीर पकड़े और दाएँसे क़लम घिसते हुए कुछ एक प्रूफरीडर बैठे हैं। उनके आगे, दाएँ, बाएँ, सब ओर काग़ज़ोंका ढेर लगा है, जो अगर फ़र्शपर होता, तो कूड़ा कहलाता; लेकिन मेज़पर पड़ा होनेकी वजहसे 'कापी', या 'गेली', या 'आर्डरी' कहलानेका गौरव पाता है।

दफ्तरसे परे हटकर दूसरे लम्बेसे कमरेमें बिजलीके प्रकाशमें कम्पोज़िटर अपनी उलटे अक्षरोंकी दुनियामें मस्त हैं। पीछे प्रेसकी गड़गड़ाहटके मारे कान बहरे हो रहे हैं।

और कम्पोज़िंग रूमके बाहर बरामदेमें सम्पादकजी टहल रहे हैं। माथेपर झुर्रियाँ पड़ी हैं, कमरके पीछे टिके हुए एक हाथमें स्लिपोंकी पैड है, दूसरेमें पेंसिल। सम्पादकजी बैठकर काम करनेवाले जीव हैं ; लेकिन आज वे बैठे नहीं हैं। आज उनसे बैठा नहीं जा रहा है। आज सम्पादकजी व्यस्त हैं, सन्त्रस्त हैं।

विशेषांक निकल रहा है। शुरूके पेजोंमें एक कहानी देनी है। लेकिन अच्छी कहानी कोई है नहीं। क्या करूँ ? दो सड़ी-सी कहानियाँ हैं, जो देनेके काबिल नहीं हैं। लेकिन देनी तो होंगी। आग्रह करके मँगाई हैं। नख़रे करके भेजी हैं। लक्ष्मीकान्त 'शारदा' का सम्पादक है, उसकी कहानी, मँगाकर न छापूँगा तो जानको आ जायगी। आलोचनामें वैर निकालेगा। फ़ोटो भी छपायेगा, पैसे भी लेगा, उसपर देगा यह सड़ी-सी चीज़ ! नालीकी दुर्गन्ध आती है। आख़िरी पेजोंमें सही···· लेकिन पहली कहानी—कहानी तो चाहिए। कहाँसे लाऊँ ? क्या करूँ ?

लेखक बहुत हैं। मर गये लेखक। कम्बख़्त वक्तपर काम न आये तो क्या करूँ—आग लगाऊँ ?

लेकिन—पहली कहानी। क्या करूँ ? ख़ुद लिखूँ ? लेकिन—पहले ही मैं ? दीवालियापन ? लेकिन····

एकाएक घूमकर सम्पादकजीने आवाज़ दी—"लतीफ़ ! ओ मियाँ अब्दुल लतीफ़ !"

मियाँ लतीफ़ आकर सम्पादकजीके सामने खड़े हो गये। उन्होंने न आवाज़का जवाब दिया था, न अब बोले। सिर्फ़ सामने आकर खड़े हो गये।

"देखो लतीफ़, एक कहानी चाहिए। कल सबेरे तक।"

"जी। लेकिन—"

"कल सबेरे तक। एक कहानी। दो पेज। दूसरा फ़रमा।" कहकर सम्पादकजीने और भी व्यस्तता दिखाते हुए टहलाई पुनः जारी करनेके लिए मुँह मोड़ा।

"जी।" कहकर मियाँ अब्दुल लतीफ़ लौट पड़े और प्रूफ़रीडरोंसे कुछ हटकर एक टीनकी कुरसीपर बैठ गये।

मियाँ लतीफ़का नाम कुछ और है। क्या है, उससे मतलब नहीं। सब लोग उन्हें मियाँ अब्दुल लतीफ़ कहते हैं। नामसे ध्वनि होती है कि वे पागल हैं। लेकिन हैं वे वैसे नहीं। उनमें एक ख़ास प्रतिभा है। जो काम औरोंसे हताश होकर उन्हें सिपुर्द कर दिया जाता है, वह हो ही जाता है ; चाहे कैसा ही हो। इस सर्व कार्यदक्षताका परिणाम है कि वे किसी भी कामपर नियुक्त नहीं हैं, सभी उन्हें या तो मदाख़लतका अपराधी समझते हैं, या एक आलसी और निकम्मा घोंघाबसन्त। प्रूफ़रीडर समझते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मशीनमैनका असिस्टेंट है ; मशीनमैन समझता है, वह कामचोर कम्पोज़िटर है ; कम्पोज़िटरोंका विश्वास है कि वह चपरासी है। चपरासी उन्हें कह देता है कि बाबू मुझे फ़ुरसत नहीं है, इसलिए ज़रा यह चिट्ठी तुम पहुँचा देना।

और मियाँ लतीफ़ सब-कुछ कर देते हैं। कभी उन्हें याद आ जाता है कि वे सहकारी सम्पादकके पदके लिए बुलाये गये थे, तो वे उस स्मृतिको निकाल बाहर करते हैं। उससे उनकी हेठी होती है। वे क्या केवल सम्पादकके सहकारी हैं ? उन्हें 'सहकारी कुछ' कहा जा सकता है, तो 'सहकारी विधाता' ही कह सकते हैं....

ख़ैर। जैसे विधाताको सुखमें कोई याद नहीं करता, वैसे ही अब काम ठीक चलनेपर मियाँ लतीफ़की पूछ नहीं है। वे अलग कोनेमें टीनकी कुरसीपर बैठे हैं, बाएँ हाथमें दवात है, दाहनेमें कलम, घुटनेपर स्लिप-बुक और मस्तिष्कमें—मस्तिष्कमें क्या है ?

[२]

माथापच्ची।

दो पेज। दूसरा फ़रमा। कहानी अच्छी होनी चाहिए।

विशेषांक है।

रोमांस। रोमांटिक कहानी हो। रोमांटिक यानी प्रेम। प्रेम। यानी—यानी—रोमांटिक। नहीं ऐसे काम नहीं चलेगा।

क्या बचपनमें मैंने कभी प्रेम नहीं किया ? प्रेम न सही, वही कुछ अधकचरा खटमिट्ठा-सा ही सही ? कुछ—

मियाँ लतीफ़को याद आया, जब वे गाँवमें रहते थे, तब एक बार रोमांस उनके जीवनके बहुत पास आई थी। गाँवसे पूर्वकी ओर एक शिवालय था, जिसके साथ एक बगीचा था, जिसमें नीबू और अमरूदके कई पेड़ थे। लतीफ़ स्कूलसे भागकर वहाँ जाते थे। एक दिन वहीं अमरूदके पेड़के नीचे उन्होंने देखा, उनकी समवयस्का एक लड़की खड़ी है और लोलुप दृष्टिसे पेड़पर लगे एक कच्चे अमरूदको देख रही है। लतीफ़ने चुपचाप पेड़पर चढ़कर वह अमरूद गिरा दिया। वह लड़कीके पैरोंके पास गिरा। लतीफ़ खड़े रहे कि लड़की उसे उठा लेगी ; लेकिन लड़कीने वैसा न कर उनसे पूछा—"क्यों जी, तुमने मेरा अमरूद क्यों गिरा दिया ?"

"तुम्हारे खानेके लिए।" लतीफ़ ज़रा हैरान हुए ; लेकिन उन्होंने जेबमें से एक चाकू निकाला, जिसका फल कुछ टूटा हुआ था, फिर दूसरी जेबमें से एक पुड़िया निकाली, अमरूद काटा और आगे बढ़ाते हुए कहा—"यह लो, नमक-मिर्च भी है। खाओ।"

लड़कीने अमरूद तो खा लिया ; लेकिन खा चुकनेके बाद कहा—"अब बिना पूछे मेरे अमरूद मत तोड़ना, नहीं तो मैं नहीं खाऊँगी।" और चली गई।

हाँ, पहला दृश्य तो कुछ ठीक है। दूसरा ?

एक दिन फिर मिले। अबकी लड़कीने अपना नाम बताया किस्सो—लेकिन कहानीमें किस्सो कैसे आयेगा ? नाम बताया रश्मि। नहीं जी, यह बहुत संस्कृत है। रोमांटिक नाम चाहिए। किरण—लेकिन यह बहुत 'कामन' (प्रचलित) हो गया है। हाँ तो नाम बताया मदालसा। मियाँ लतीफ़ने अपना नाम और उसका नाम एक अमरूदके पेड़पर चाकूसे खोद दिये। अमरूदपर नाम बहुत साफ खुद सकता है। किस्सो—मदालसा—खुश हो गई। उसने लतीफ़के—नहीं लतीफ़ कैसे ? मदालसाने चित्रांगदके गलेमें हाथ डालकर कहा—"तुम बड़े अच्छे हो। यहाँ हमारा नाम साथ लिखा है, अब हमारा नाम साथ ही लिया जायगा।"

ठीक तो है। दूसरा दृश्य भी ठीक है। और नामोंका जोड़ा क्या फ़िट बैठता है—'मदालसा-चित्रांगद !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर—

किस्सोकी शादी हो गई। कह लो मदालसा ; पर शादी तो हो गई, और एक अहीरके साथ हुई, जिसने मुर्गियोंका फ़ार्म खोल रखा था।

रोमांटिक। दुःखान्त। मदालसा। चित्रांगद। अहीरको बलराम कह लो। लेकिन शादी तो हुई, मुर्गी फ़ार्मके मालिकके साथ तो हुई ? रोमांटिक कहानीकी नायिका रहे किस्सो और पाले मुर्गियाँ !

टन्-टन्-टन्····टन् ! घड़ीने बारह बजा दिये।

मियाँ लतीफ़ उठे। उठकर उन्होंने कुरसीको घुमाया। अब तक उनका रुख़ प्रूफ़रीडरोंकी ओर था, अब ठीक उलटी ओर दीवारकी तरफ़ हो गया, मानो कुरसीका रुख़ पलटनेसे विचार-धारा भी पलट जायगी।

रोमांटिककी ऐसी-तैसी। यथार्थवादका ज़माना है। क्यों न वैसा लिखूँ ?

यथार्थवाद। सुबह भुने चने, दुपहरको खेसारीकी दाल, शामको मकईकी रोटी और मूलीके पत्तेका साग। कभी फ़ाका। पसीना और मैल और लीद-गोबर और ठिठुरन और मच्छर। और मलेरिया और न्युमोनिया। और कुएँका कच्चा पानी और नंग-धड़ंग बच्चे।

तो, वहींसे चलें। किस्सो और बल्ली। और उनका मुर्गियोंका फ़ार्म। बीमारी आती है, मुर्गियाँ एक-एक करके मरने लगती हैं। चूज़े सुस्त होकर बैठ जाते हैं। किस्सो अण्डे गिनती है और सोचती है, भविष्यमें क्या होगा ?

बल्लीका प्रिय एक मुर्गा है, विलायती लेगहार्न नस्लका। एक दिन वह भी सुस्त होकर बैठ गया। दिन ढलते उसकी गर्दन एक ओरको झुक गई, शाम होते ऐंठ गई। बल्ली हतसंज्ञ-सा देखता रह गया। किस्सो मुर्गेको गोदमें लेकर धाड़ें मारकर रोने लगी····

किस्सो-विलाप।

अब्दुल लतीफ़की कहानी—और नायिका एक मुर्गेके लिए रोती है। कहते हैं, कालिदास 'अज-विलाप' बहुत सुन्दर लिख गये हैं। अज माने बकरा। 'मुर्गी-विलाप'।

अब्दुल लतीफ़। काठका उल्लू।

घड़ीने एक खड़का दिया।

[३]

अब्दुल लतीफ़ बाहर निकल आये। बरामदेसे नीचे झाँककर देखा, एक अख़बारके पोस्टरका टुकड़ा पड़ा था—"स्पेन-युद्ध : लाखों स्त्रियाँ—"

हाँ तो। आज संसार इतनी तूफ़ानी गतिसे जा रहा है, क्या उसमें एक भी प्लाट कामका नहीं निकल सकता ? प्लाटोंसे अख़बार भरे पड़े हैं। मुझे क्या ज़रूरत है रोमांटिक-रियलिस्टिककी, मैं सामयिक लिख दूँ—वही तो चाहिए भी।

लतीफ़ने कईएक अख़बार उठाये और पन्ने उलटने लगा।

अबीसीनियामें घोर युद्ध। इटली आगे बढ़ रहा है। मुसोलीनीकी आज्ञा : इटलीके तमाम वयस्क आदमी शस्त्र सम्हाल लें।

जर्मनीकी घोषणा : हमपर ज़बरदस्ती प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, ताकि हम निकम्मे रहें ; हमने तय किया है कि हम सब प्रतिबन्धोंको तोड़कर अपने राष्ट्रका सशस्त्रीकरण करेंगे।

ब्रिटेनमें सब ओर पुकार : इंग्लैण्ड खतरेमें है। हमारी शान्तिप्रियता हमारा सर्वनाश करेगी ! अब सशस्त्रीकरणमें ही हमारा निस्तार है, अतः हम ज़ोरोंसे अस्त्र-शस्त्र और जहाजी बेड़ोंका निर्माण करेंगे।

स्पेनमें युद्ध····पक्ष लेनेके लिए सभी राष्ट्र तैयार हो रहे हैं····

रूसमें फ़ौजी तैयारियाँ····

चीनमें लड़ाई····

जापानमें सैनिकोंकी सरगर्मियाँ····

मंचूरिया····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार-भरमें अशान्ति है। एक नहीं, असंख्य कहानियोंका प्लाट यहाँ रखा है, कोई लिखनेवाला तो हो! लेकिन प्लाट क्या बनाया जाय?

धीरे-धीरे लतीफ़के आगे चित्र खिंचने लगे, विचार आने लगे।

एक बड़ी तोप। बहुत-सा धुआँ। इधर-उधर गड़गड़ाहटकी ध्वनि। जहाँ-तहाँ लाशें। और जाने क्यों और कैसे, एक ही शब्द--कुटुम्ब। और इस सबको घेरे हुए, ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ, सर्वत्र फ़ालतू खाद्य-वस्तुओंके जलनेकी दुर्गन्ध····

और टन्-टन्-टन्····तीन!

नहीं। हाँ। उनकी कहानी युद्धके बारेमें ही तो होनी चाहिए—संसारव्यापी युद्धके बारेमें। हाँ। नहीं। हाँ, शुरू तो की जाय। हाँ।

"सर्वत्र अशान्तिके बादल--समझ लीजिए कि प्रलय-पावसमें अशान्तिरूपी घनघोर घटा उमड़ी आ रही है। सब ओर कारखाने हैं—जो कल कपड़ा बुननेकी मशीनें बनाते थे, तो आज बन्दूकें बना रहे हैं; कल मोटरें बना रहे थे, तो आज लड़ाकू टैंक बना रहे हैं; कल खिलौने बना रहे थे, तो आज बम फेंकनेकी मशीनें बना रहे हैं; कल शराब बनाते थे, तो आज भयंकर विस्फोटक पदार्थ बना रहे हैं। सारा देश पागल--सारा यूरोप पागल--सारी दुनिया पागल! इस विराट पृष्ठभूमिके आगे हमारी कहानीका नायक खड़ा है और सोचता है, क्या मैं अकेला इस सबको बदल सकूँगा, ठीक कर सकूँगा?"

उँहुँक। सब ग़लत।

नहीं।

लतीफ़ ऊँघने लगे। उन्होंने एक स्वप्न देखा। देखा कि सबेरे छः बजे घर पहुँच रहे हैं। सब लोग सो गये हैं, शायद भूखे ही सो गये हैं, क्योंकि पहले दिन जब सबेरे लतीफ़ घरसे चले थे, तब उनके शाम तक कुछ प्रबन्ध करनेकी बात थी। किवाड़ बन्द है। लतीफ़ने किवाड़ खटखटाया, फिर दुबारा खटखटाया। आख़िर उनकी पत्नीने आकर दरवाज़ा खोला और उन्हें देखते ही बन्दूककी गोलीकी तरह कहा—"खाना खा आये?" फिर क्षणभर रुककर--"नहीं, कहाँ खा आये होंगे। मिला ही नहीं होगा। भरा पेट होता, तो भला घर आते? लेकिन यहाँ क्या रखा है? यहाँ रोटी नहीं है। जाओ, हमें मरने दो।" फिर वह किवाड़ बन्द करनेको हुई; लेकिन न-जाने क्या सोचकर रह गई और एक हाथसे मुँह ढाँपकर भीतर चली गई। मियाँ लतीफ़ स्तब्ध रह गये, देखते रह गये।

तभी एक झोंकेसे स्वप्न टूट गया। वे चौंककर उठ बैठे। और उन्होंने देखा, कहानी बिलकुल साफ़ होती चली जा रही है—बन गई है। उन्होंने कलम उठाई और तेज़ीसे लिखना शुरू किया। अन्तिम वाक्य उनके सामने चमकने लगे—

"····और वह देखता है कि उसका भोजन 'आधिक्यके कारण' उसकी आँखोंके आगे जला जा रहा है, और संसारके सब राष्ट्र उसपर पहरा दे रहे हैं कि कहीं वह आग बुझा न दे, कुछ खा न ले। और देखते-देखते उसे लगने लगता है, वह अकेला नहीं है, व्यक्ति नहीं है, वह सारा ससार ही है, जो अपने ही इन शक्तिसम्पन्न गुलामोंके अत्याचारसे पिसा जा रहा है, गुलाम जो अपने मालिकके भोजनको फ़ालतू माल कहकर जलाये डाल रहे हैं···· भूखका बन्धन उसके भीतर वह प्रेम जगाता है, वह विश्वैक्य जगाता है, जो धर्म और दर्शन और बुद्धिवाद नहीं जगा सके थे। वह पूछता है, क्या सभ्यता ही हमारी गुलामीका कारण है? क्या सभ्यताका नाश कर दिया जाय?

सभ्यता क्या जवाब देती है?"

कहानी लिखी गई। लतीफ़ उठे और सम्पादकके पास ले गये।

सम्पादकने कहानी उसके हाथसे छीन ली, जल्दीसे पढ़ गये। पढ़कर कुछ शिथिल हो गये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर एक तीखी दृष्टिसे लतीफ़की ओर देखकर बोले—"तुम्हें क्या हो गया है ?"

"क्यों ?"

सम्पादकजीने धीरे-धीरे, मानो बड़ी एकाग्रतासे, कहानीको फाड़ा। दो टुकड़े किये, चार किये, आठ किये और रद्दीको हाथसे गिरा दिया, टोकरीमें डालनेकी कोशिश नहीं की। फिर संक्षेपमें बोले—"फिर लिखो।" और मानो लतीफ़को भूल गये।

"चार बज गये हैं।"

"अभी छः घंटे और हैं। दो पेज मैटर—काफ़ी समय है।"

"अच्छा, मैं ज़रा घर हो आऊँ।

"हूँ।"

[४]

यथार्थता स्वप्नसे आगे है। घर पहुँचनेपर लतीफ़ने किवाड़ खटखटाये, फिर खटखटाये; लेकिन दरवाज़ा नहीं खुला। थककर वे सीढ़ीपर बैठ गये। तब उनके सामने स्पष्ट होने लगा कि वे कहाँ हैं, क्या हैं, क्यों हैं ? यानी दीखने लगा कि वे कहीं नहीं हैं, कुछ नहीं हैं, बिला वजह हैं—धब्बेकी तरह हैं, सलवटकी तरह हैं। उनका हृदय ग्लानिसे भर गया। उन्होंने चाहा, अपना अन्त कर दें। जेबमें हाथ डाला, तो वहाँ चाकू तो था नहीं, पेंसिल थी। अतीफ़ने दृढ़तासे उसे खींचकर इस्तीफ़ा लिखना शुरू किया। उन्हें मालूम नहीं था कि वे किस पदपर से इस्तीफ़ा दे रहे हैं, अतः उन्होंने 'अपने पदसे' लिखकर काम चला लिया।

इस्तीफ़ा लेकर वे दफ्तर पहुँचे। लेकिन सम्पादकजी दफ्तरमें थे नहीं।

लतीफ़ टीनकी कुरसीपर घुटने समेटकर बैठ गये और खिड़कीसे बाहर झाँकने लगे। बाहर पौ फूट रही थी। उषामें चमक नहीं थी, उसके भूरेपनने केवल रातके स्निग्ध अन्धकारको मलिन कर दिया था।

तभी लड़केने आकर कहा—"चलिये, मा बुला रही हैं। रात-भर बाहर रहे हैं, अब तो चलिये। नाश्ता हो रहा है।"

लतीफ़ने चौंककर कहा—"क्या ?"

"मामाके यहाँसे गुड़ आया था, उसके गुलगुले बना लिये हैं।

लतीफ़ कुछ सोचमें पड़ गये, कुछ उठनेकी तैयारीमें रह गये।

"और माने कहा है, तनख़ाहके कुछ रुपये तो लेते आना। तीन-चार दिनमें भैयादूज है, कई जगह भेजने होंगे।" कहती हुई लड़की भी आ गई।

मियाँ लतीफ़ने एक गहरी साँस ली। अपना इस्तीफ़ा उठाया और उसकी पीठपर अपनी पिछले महीनेकी तनख़ाहका एक हिस्सा पानेके लिए दरख़ास्त लिखने लगे।

तभी सम्पादकजी आ गये। लतीफ़को यों घिरा हुआ और लिखता देखकर बोले—"यह क्या है ?"

पास आकर उन्होंने मोड़े हुए काग़ज़पर इस्तीफ़ा पढ़कर काग़ज़ छीनते हुए फिर पूछा—यह क्या है ?"

"कुछ नहीं, मैं नई कहानी लिखने लगा हूँ।"

सम्पादकजीने काग़ज़ उलटकर देखा और फिर ज़ोर देकर पूछा—"यह क्या है ?"

"यह मेरी नई कहानीका प्लाट है, जी।"

सम्पादकजीको एकाएक कुछ कहनेको नहीं मिला। उन्होंने बाहर जानेके लिए लौटते हुए कहा—"तुम रहे सदा वही अब्दुल लतीफ़ !"

लेकिन अब्दुल लतीफ़ तब तक लिखने लग गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान बुद्धकी एक मूर्ति। यह मूर्ति काले पत्थरकी है और पालवंशीय राज्यकालकी मूर्तिकलाका एक उत्कृष्ट उदाहरण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

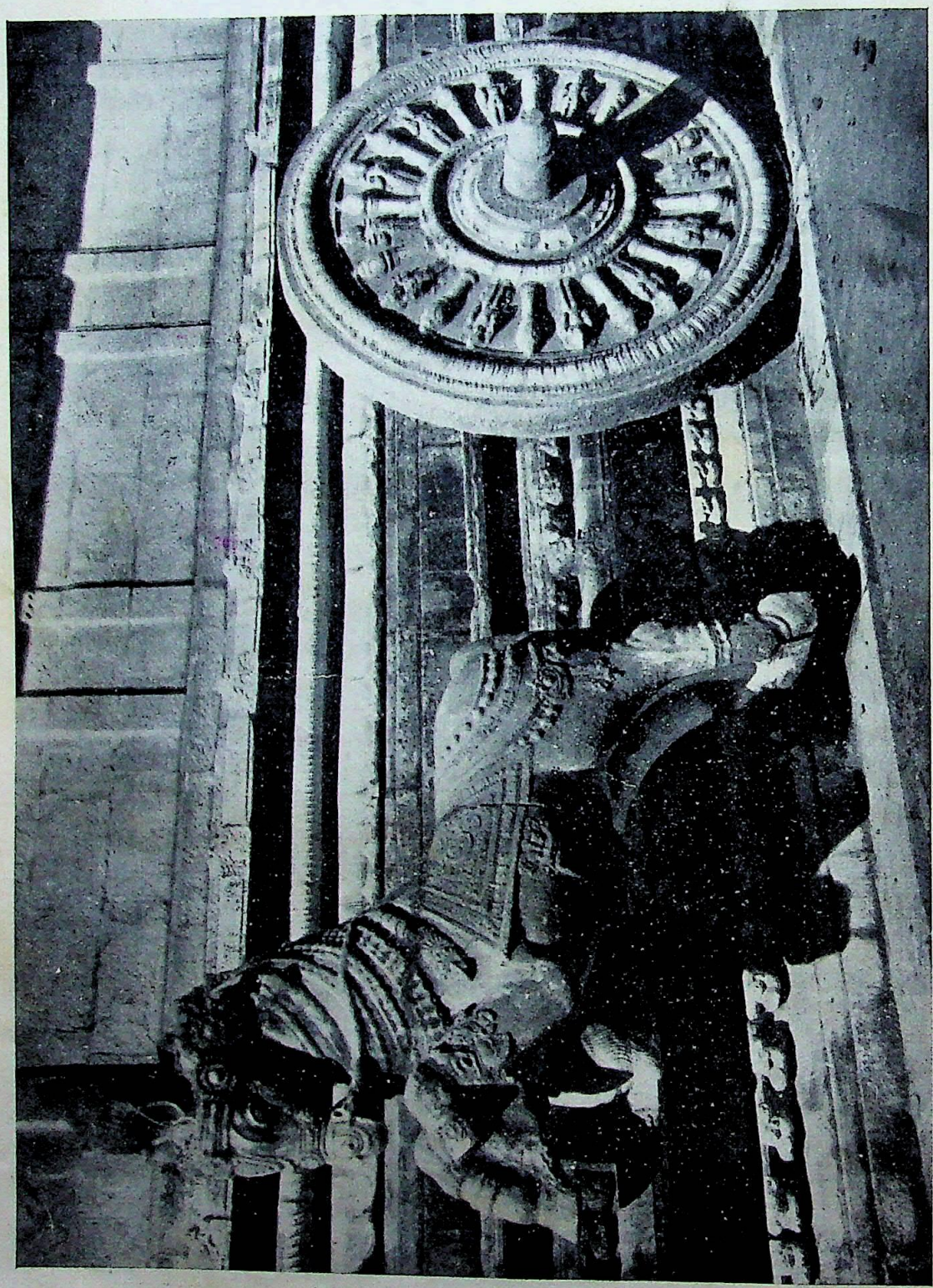

पत्थरमें तराशा हुआ एक रथ । दक्षिण-भारतकी संगतराशीका एक उत्कृष्ट नमूना, नागेश्वरस्वामीका मन्दिर, कुम्भकोणम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होमियोपैथी और भारत

डा० कृष्णगोपाल सक्सेना, एच० एम० बी०, देहली

होमियोपैथी तथा उसके जन्मदाता आचार्य हैनीमैनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एकको समझनेके लिए हमें दूसरेका अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। हैनीमैनका जन्म सन् १७५५ में जर्मनीके कोयथन नामक स्थानमें हुआ था। उन्होंने वीयानाके प्रसिद्ध विश्वविद्यालयसे एम० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। उस ज़मानेमें वे एक उच्चकोटिके डाक्टर गिने जाते थे। चिकित्सा-विज्ञानके अलावा वे दर्शनशास्त्रके बड़े ज्ञाता थे और उस समयकी सभी मुख्य-मुख्य भाषाओं (ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, जर्मन, अरबी, अंगरेज़ी, फ्रेंच आदि)के धुरन्धर पंडित थे। उनकी इस योग्यताका परिचय उन ग्रन्थोंसे चलता है, जो उन्होंने जर्मन भाषामें दूसरी भाषाओंसे अनुवाद किये हैं। रसायनशास्त्र तथा जीवतत्त्व-विज्ञानके वे अद्वितीय पंडित थे। जिस शताब्दीमें हैनीमैनने जन्म लिया था, वह शताब्दी यूरोपीय इतिहासमें तरह-तरहकी क्रान्तियोंके लिए प्रसिद्ध हो चुकी है। चिकित्सा-जगतमें क्रान्ति उपस्थित करनेका श्रेय उस कालमें आपको ही प्राप्त है। सनातनी चिकित्सा-प्रणालीसे दुःखी होकर किस तरह उन्होंने अपने चमकते हुए पेशेको लात मार दी और ग़रीबीके दिन काटकर किस तरह चिकित्साके सम्बन्धमें प्राकृतिक नियमोंको ढूँढ़ने तथा उनके प्रयोग और प्रचारमें अपना जीवन लगा दिया, वह इतिहासमें हमेशाके लिए अमर हो गया है।

आजसे डेढ़ सौ वर्ष पहले जिन सिद्धान्तोंका उल्लेख उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्गेनन' में किया है, उनका खण्डन हज़ार प्रयत्न करनेपर भी आधुनिक विज्ञानसे विभूषित चिकित्सकगण नहीं कर सके हैं। होमियोपैथीका इतिहास बतलाता है कि जो भी बड़ा-से-बड़ा विरोधी हैनीमैनका खण्डन करनेके लिए सच्चे दिलसे खड़ा हुआ, वह अन्तमें स्वयं ही होमियोपैथीके रंगमें रँग गया। इसमें कोई भी आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि सचाईका मुक़ाबला कोई भी नहीं कर सकता। 'होमियो' शास्त्र जिन सिद्धान्तोंपर क़ायम है, वे इतने अटल हैं कि उनपर बाहरी उलट-फेरका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। जिस प्रकार आकर्षणशक्ति, विद्युतशक्ति आदिके नियमोंको कोई मनुष्य नहीं बदल सकता, उसी तरह हैनीमैन द्वारा प्रदर्शित चिकित्साके सिद्धान्त नहीं बदले जा सकते, क्योंकि उनका आधार किसी मानवीय युक्तिपर नहीं है। वे सिद्धान्त उन नियमोंपर निर्भर हैं, जो प्रकृतिमें अनादि कालसे पाये जाते हैं। कोई भी विज्ञानवेत्ता अथवा विज्ञान-प्रेमी प्रकृतिके विरुद्ध नहीं कदम बढ़ा सकता। यही कारण है कि दुनियाके बड़े-बड़े चिकित्सक जो हैनीमैनकी दलीलोंके अनुसार वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा थोड़ा भी अनुभव कर लेते हैं, वे इस नई प्रणालीके भक्त हो जाते हैं। दुनियाके प्रसिद्ध सर्जन 'बायर', जिनकी पुस्तकें बड़े-बड़े मेडिकल कालेजोंमें पढ़ाई जाती हैं, होमियोपैथके ज़बरदस्त प्रशंसक थे। भूतपूर्व एडवर्ड (अष्टम)के खानगी डाक्टर सर जॉन वीयर एक मशहूर होमियोपैथ हैं। जर्मनीके कर्ता-धर्ता हर हिटलर होमियोपैथीके पक्षपाती हैं। क्या ये बातें यह प्रमाणित नहीं करतीं कि होमियोपैथीमें निश्चय ही एक अद्वितीय शक्ति निहित है?

होमियोपैथी किसी काल्पनिक तर्कबुद्धिकी उपज नहीं है। इस विज्ञानका कोई भी अंश ऐसा नहीं, जिसमें किसी बहस अथवा विभिन्न मतकी गुंजाइश हो। इस चिकित्सा-प्रणालीमें केवल उन्हीं उपायोंका अवलम्बन एक विस्तृत रूपमें किया गया है, जिनको प्रकृति स्वयं तरह-तरहकी बीमारियोंको दूर करनेके काममें लाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एलोपैथी और होमियोपैथीमें फर्क

कुछ लोग पूछ बैठते हैं कि आख़िर एलोपैथी और होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालियोंमें फर्क़ क्या है ? इन दोनों शब्दोंके शाब्दिक अर्थ समझ लेनेसे ही इनका फर्क़ मालूम हो जायगा। 'ऐलो' शब्दका अर्थ है विपरीत। ऐलोपैथी वह चिकित्सा-प्रणाली है, जिसमें रोगके लक्षणोंके विपरीत लक्षण पैदा करनेवाली दवाएँ दी जाती हैं। मान लीजिए, किसीको गर्मी अधिक मालूम हो, तो ऐसी दवा देना, जो गर्मीके विपरीत—सर्दी—उत्पन्न करनेवाली हो। होमियोपैथी ठीक इसकी उलटी है। 'होमियो' शब्दका अर्थ है समान। रोगमें जो-जो लक्षण दीख पड़ें, उन्हीं लक्षणोंको उत्पन्न करनेवाली औषधियोंका प्रयोग होमियोपैथीमें किया जाता है। हमारे शास्त्रोंका कथन है—विषस्य विषमौषधम'—यानी विष ही विषको मारता है। बस, होमियोपैथीका भी यही मूलमन्त्र है। दूसरे शब्दोंमें यों समझ लीजिए कि रोगके चोरने तन्दुरुस्तीकी दौलत चुरा ली। ऐलोपैथीवाले चोरको पकड़ने और चोरीका माल बरामद करनेके लिए साहुको काममें लाते हैं और होमियोपैथीवाले चोरको पकड़नेके लिए चोरको। हरएक पुलिसवाला बतला सकता है कि एक चोरको दूसरा चोर आसानीसे पकड़ सकता है या साहु।

अनुभव द्वारा यह पता लगा है कि कुदरत एक रोगको दूर करनेके लिए शरीरमें दूसरे समलक्षणयुक्त रोगकी उत्पत्ति करती है। इसीको साधारण बोल-चालकी भाषामें यों कह सकते हैं कि 'सजातीय अपने सजातीयका उपचार है' (Similia Similibus Curantur)। प्रकृतिका यह स्वाभाविक नियम होमिपैथीका अटल सिद्धान्त है। इसके खिलाफ़ ऐलोपैथीमें नित्य नये सिद्धान्त निकाले और पुराने रद किये जाते हैं। होमियोपैथ कार्य-कारण-सिद्धान्तके अनुयायी हैं। ऐलोपैथ केवल अन्तिम लक्षण यानी रोगको ही सब-कुछ समझते हैं। होमियोपैथ कहते हैं कि रोगके पहले भी कुछ था। हर चीज़का अस्तित्व किसी पूर्व कारणसे ही है।

ऐलोपैथ बीमारीको देखता है, होमियोपैथ बीमारको देखता है। ऐलोपैथी वाह्य लक्षणोंको दबानेकी कोशिश करती है, होमियोपैथी भीतरसे आराम करनेकी चेष्टा करती है। शरीर-विज्ञान सिर्फ शरीरके अवयवों-रग-पुट्ठोंका ही विचार करता है, होमियोपैथी उन अवयवोंमें रहनेवाली संजीवनीशक्तिपर भी ध्यान रखती हैं, क्योंकि मुर्देके शरीरमें रग-पुट्ठे मौजूद रहते हुए भी संजीवनीशक्तिके न होनेसे ही वह मुर्दा होता है।

ऐलोपैथ अपने प्रयोग जानवरोंपर करते हैं। चूँकि जानवर बोल नहीं सकते, अतः ऐलोपैथको यह पता नहीं होता कि उसकी दवाओंका मनपर क्या प्रभाव पड़ता है। होमियोपैथ अपने सारे प्रयोग जीवित तथा स्वस्थ मनुष्योंपर करके उनकी छोटी-सी-छोटी प्रतिक्रियाको लक्ष कर लेते हैं, इसीलिए दिमागी बीमारियोंमें होमियोपैथी बहुत कारगर साबित होती है। अमेरिकामें दस पागलखाने होमियोपैथिक प्रणालीपर ही चलाये जाते हैं।

ऐलोपैथी तथा अन्य सब चिकित्सा-प्रणालियोंमें जब तक रोगका निदान न हो जाय, तब तक कोई औषधि ही नहीं दी जा सकती। इसीलिए अकसर रोगका पता लगनेके पहले ही रोगी चल बसता है। होमियोपैथ रोगका निदान करनेमें माथापच्ची न करके रोगोंके लक्षणोंको देखते हैं, और जो दवा उन सब लक्षणोंके अधिक-से-अधिक अनुरूप होती है, दे देते हैं। हालमें 'झिनझिनिया' बीमारीका जो दौरदौरा हुआ था, उसमें एलोपैथ तो इसी चक्करमें रह गये कि यह रोग क्यों होता है, कैसे होता है, इसका कारण क्या है ; पर होमियोपैथीने प्रायः सारे-के-सारे मरीज़ोंको आराम कर दिया। इसी प्रकार अन्य बहुत-सी बीमारियाँ हैं, जिनका पता अभी तक ऐलोपैथी नहीं लगा सकी ; पर होमियोपैथी जिन्हें सफलतापूर्वक आराम कर रही है।

ऐलोपैथीकी दवाएँ अकसर उग्र होती हैं, जो शरीरमें पहुँचकर समूची प्रणालीको हानि पहुँचाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080182 पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

शरीरमें एक बार विष प्रविष्ट हो जानेपर उसे निकालना आसान नहीं है। इसके विरुद्ध होमियोपैथीकी दवाएँ इतनी थोड़ी मात्रामें—कभी-कभी तो एक बूँदका १०००वाँ हिस्सा—दी जाती हैं कि बादमें शरीरपर उनका कोई हानिकर प्रभाव नहीं रह जाता। फिर कड़ुवी, तीखी, कसैली, बहुत मात्रामें, तेज़ बूवाली दवाओंका खाना भी कठिन होता है; पर होमियोपैथीमें यह कोई झंझट नहीं। ऐलोपैथी रोगके बाहरी लक्षणोंको उग्रतासे दबाती है, जिससे एक स्थानपर तो लक्षण दब जाते हैं; पर दूसरी जगह और दूसरे जटिल रूपमें प्रकट हो जाते हैं। होमियोपैथी लक्षणोंको न दबाकर भीतरसे, बहुत कोमलतासे, आराम करती है। होमियोपैथीके इन्हीं उत्कृष्ट गुणोंके कारण भारतमें ही नहीं, यूरोप और अमेरिकामें भी सैकड़ों ऐलोपैथ डाक्टर अपनी प्रणालीको छोड़-छोड़कर होमियोपैथीको अपना चुके हैं। इसके विरुद्ध शायद ही कोई होमियोपैथ डाक्टर ऐसा मिलेगा, जिसने होमियोपैथी छोड़कर ऐलोपैथी ग्रहण की हो।

76129

इतिहास

हमारे मुल्कमें होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीको पहले-पहल कौन लाया था, यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। लेकिन यह मालूम है कि आजसे सवा सौ वर्ष पहले—महाराज रणजीतसिंहके ख़ालसा राज्यमें—डाक्टर जोन मार्टन हानिगबर्जरने लाहौरमें २५ वर्ष तक होमियोपैथी चिकित्सा करके काफी नाम कमाया था। सन १८५१ में बंगालके डिपुटी गवर्नर सर जान इन्टर लिटलरकी सहायतासे कलकत्तेमें नेटिव होमियोपैथिक हास्पिटल खुला था। उसके कुछ दिन बाद सर्जन ब्रुकिंगने तंजोर और पद्मकोटमें रियासतकी सहायतासे दो चिकित्सालय खोले थे और कलकत्तेमें डाक्टर फेबर टानियरने प्रसिद्ध 'कलकत्ता होमियोपैथिक हास्पिटल'की स्थापना की थी।

उस समय होमियोपैथीके प्रचारमें राजेन्द्रलाल दत्तने बहुत काम किया था। वे मरीज़ोंके घर मुफ्त जा-जाकर उनका इलाज करते थे। उनकी चिकित्साकी सफलतापर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर होमियोपैथीके कट्टर समर्थक बन गये थे। इन्हीं दत्त महाशयसे होमियोपैथी सीखकर लोकनाथ मैत्र नामक सज्जनने काशीमें प्रैक्टिस शुरू की, और उनकी चिकित्साकी सफलतापर काशीके कलक्टर मि० आयरन साइडने महाराज बनारससे कहकर वहाँ एक होमियोपैथिक अस्पताल खुलवाया था।

उन दिनों, और आज भी, अनेक ऐलोपैथिक डाक्टर होमियोपैथिक चिकित्साको नगण्य समझकर उसका मज़ाक उड़ानेकी कोशिश करते थे। कलकत्तेके डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार उन्हींमें एक थे। सरकार महाशय एक अत्यन्त प्रतिभाशाली ऐलोपैथ डाक्टर थे। वे कलकत्ता-विश्वविद्यालयके एम० डी० थे। महेन्द्रलाल केवल एक सफल चिकित्सक ही नहीं थे, वरन् एक ऊँचे दरजेके विज्ञानवेत्ता भी थे। ऐलोपैथीपर उन्होंने उच्चकोटिका साहित्य लिखा था, और 'इंडियन एसोसियेशन फार कल्टीवेशन आफ साइन्स' के जन्मदाता भी वे ही थे। पहले वे होमियोपैथीके कट्टर विरोधी थे; लेकिन होमियोपैथीकी एक किताब पढ़कर उनके वैज्ञानिक दिमाग़को जान पड़ा कि सिद्धान्तरूपसे होमियोपैथी प्रणाली ठीक ही नहीं, बल्कि उत्कृष्ट भी है। लेकिन सवाल यह था कि क्या व्यवहारमें भी वह वैसी ही साबित होगी? एक सच्चे वैज्ञानिककी भाँति उन्होंने व्यावहारिक रूपमें होमियोपैथी सिद्धान्तोंकी सचाई देखनी चाही। इतने बड़े डाक्टर और विद्वान होते हुए भी वे मान-अपमानका रत्तीभर ख़याल न करके राजेन्द्रलाल दत्तके पास शागिर्द बनकर उपस्थित हुए और सत्यका अनुसन्धान करने लगे। व्यावहारिक क्षेत्रमें भी होमियोपैथीको वैसा ही कारगर पाकर उन्होंने ऐलोपैथीको ताकपर रख दिया और जीवन-भर होमियोपैथिक चिकित्सा ही किया किये।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार भारतमें होमियोपैथीके सबसे बड़े स्तम्भ और सबसे बड़े प्रचारक थे। उन्होंने 'कलकत्ता जर्नल आफ मेडिसन' नामक होमियोपैथिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासिक पत्र निकाला था। उनकी सफलता देखकर और उनसे प्रेरणा पाकर अनेक लोगोंने होमियोपैथी सीखी और सैकड़ों एलोपैथिक डाक्टर अपनी प्रणाली छोड़-छोड़कर होमियोपैथीमें दीक्षित हो गये। धीरे-धीरे भारतमें होमियोपैथीका प्रचार बढ़ने लगा। बहुतसे लोग यहाँसे अमेरिका, इंग्लैण्ड और जर्मनीमें होमियोपैथीकी शिक्षाके लिए जाने लगे। उन देशोंमें एलोपैथी और होमियोपैथीकी समानरूपसे शिक्षा दी जाती है। उन डाक्टरोंने यहाँ भी नियमितरूपसे होमियोपैथीकी शिक्षाके लिए संस्थाएँ खोली हैं, जहाँपर सैकड़ों विद्यार्थी हर साल होमियोपैथी सीखते हैं; किन्तु ऐसी उच्चकोटिकी संस्थाओंकी संख्या बहुत कम है। अधिकतर संस्थाएँ केवल डाक्टरीकी डिग्रियाँ बेचनेके लिए ही चल रही हैं। आज आपको प्रत्येक बड़े नगर और कस्बे तकमें होमियोपैथिक डाक्टर प्रैक्टिस करते दीख पड़ेंगे।

उपयोगिता

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणाली हमारे देशके लिए खास तौरपर मौजूँ है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि हिन्दुस्तान संसारका सबसे गरीब मुल्क है, और यहाँ वही चिकित्सा सबसे उपयोगी साबित होगी, जो सबसे सस्ती हो। इस बातमें होमियोपैथी सबसे बढ़कर है। उसकी औषधियोंका दाम बहुत ही कम पड़ता है। दूसरे बहुतसे चीर-फाड़के मर्ज़ोंको भी होमियोपैथी बिना चाकू चलाये आराम कर देती है। हिन्दुस्तान देहातोंमें बसता है। देहातोंमें एक तो वैसे ही डाक्टरोंका अकाल है, दूसरे अगर कोई ऐलोपैथ प्राइवेट डाक्टर हुआ भी, तो वह बिना पूरे साज-सामानके आपरेशन नहीं कर सकता। आपरेशनका आधुनिक साज-सामान हज़ारोंसे ऊपरका होता है, जो किसी देहाती डाक्टरकी सामर्थके बाहरकी बात है। इस प्रकार अधिकांश हालतोंमें होमियोपैथी प्रत्येक दृष्टिसे ज्यादा सुलभ सिद्ध होती है। कुछ लोगोंमें यह धारणा फैल गई है कि होमियोपैथीको चीर-फाड़—सर्जरी—से कोई वास्ता नहीं। यह धारणा बिलकुल ग़लत है। अस्वाभाविक हालतोंमें, जैसे दुर्घटनासे गहरी चोट लग जाना अथवा कुछ विशेष अवस्थाओंमें, चाकूका इस्तेमाल ज़रूरी होता है और प्रत्येक सुशिक्षित होमियोपैथ उतनी ही सर्जरी जानता है, जितनी कोई ऐलोपैथ।

बच्चोंकी बीमारियोंमें तो होमियोपैथी इतनी अधिक सफल होती है कि कोई-कोई अनजान व्यक्ति यही समझ बैठे हैं कि होमियोपैथी सिर्फ बच्चोंका ही इलाज है।

उपचारके सुनिश्चित सिद्धान्त, आसान और सरलतापूर्ण इलाज, तुरत फल देना, कम ख़र्च बालानशीन—अपने इन गुणोंकी वजहसे ही होमियोपैथीने भारतमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

इसका सबसे अधिक प्रचार बंगालमें है। बिहार, युक्त-प्रदेश, पंजाब, बम्बई, मदरास आदि प्रान्तोंमें भी यह बहुत तेज़ीसे बढ़ रही है, यहाँ तक कि अब गाँवों तकमें होमियोपैथिक डाक्टर पहुँच रहे हैं।

शिक्षा

होमियोपैथीका प्रचार और लोकप्रियता देखकर कई जगह लोगोंने होमियोपैथिक कालेज खोल रखे हैं; लेकिन खेदके साथ कहना पड़ता है कि उनमें से कई कालेज तो सिर्फ नाममात्रके ही कालेज हैं। उनमेंसे कुछमें एक वर्षका कोर्स है, कुछमें दो वर्षका और कुछमें सिर्फ छै महीनेका! इन कालेजोंमें ज़रूरी पाठ्य-विषय भी नहीं रखे जाते। लोग समझ लेते हैं कि सिर्फ होमियोपैथी 'मैटीरिया मेडिका' या भैषज-विज्ञान-भर पढ़ लेनेसे कोई भी व्यक्ति डाक्टर बन सकता है। यह महज़ ख़ामख़याली है। शरीर-शास्त्र, शरीर-संस्थान, प्रसव-शास्त्र, भेषज-शास्त्र, प्राणि-विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र, मनोविज्ञान, सर्जरी आदि सम्बन्धित विषयोंका नियमित रूपसे अध्ययन किये बिना कोई भी पूरा डाक्टर नहीं बन सकता—चाहे वह होमियोपैथिक हो या एलोपैथिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब विषयोंकी बाक़ायदा शिक्षा देनेवाले कालेज हमारे देशमें मुश्किलसे दो-तीन होंगे। सुनिश्चित पाठ्य-विषयोंकी नियमित रूपसे शिक्षा देनेवाला, सबसे बड़ा और सबसे पुराना कालेज कलकत्तेका 'कलकत्ता-होमियोपैथिक कालेज' है; जिसकी स्थापना सन् १८८१ में डा० प्रतापचन्द्र मजूमदार एम० डी० द्वारा हुई। उन्होंने अमेरिकामें होमियोपैथीकी शिक्षा पाई थी और कई पुस्तकें भी लिखी हैं। इस कालेजका कोर्स साढ़े चार सालका है। किसी एलोपैथ एम० बी० बी० एस० विद्यार्थीको जितने विषय पढ़ने पड़ते हैं, प्रायः उतने ही विषय और उसी स्टैण्डर्डकी ऊँचाई तक इस कालेजमें भी पढ़ाये जाते हैं; अन्तर केवल औषधियोंका और प्रणालीका है। कालेजमें पौने दो सौसे अधिक विद्यार्थी हैं। स्टाफके सारे शिक्षक इंग्लैण्ड, अमेरिका या भारतवर्षकी यूनिवर्सिटियोंके मेडिकल ग्रेजुएट हैं। निर्धारित समयपर बाक़ायदा इम्तहान पास करनेपर ही उपाधि मिलती है। विद्यार्थियोंको व्यावहारिक शिक्षा पानेके लिए कालेजके साथ जो अस्पताल है, उसमें अप-टू-डेट ढंगके पाँच विभाग हैं—(१) मेडिकल, (२) सर्जिकल, (३) प्रसूत और स्त्री-रोग-विभाग, (४) आँख, कान, नाक और कंठ-विभाग, (५) दन्त-विभाग। बच्चोंका वार्ड अलग है। प्रसूतिका-गृहमें अनेकों माताएँ प्रसवके लिए आती हैं।

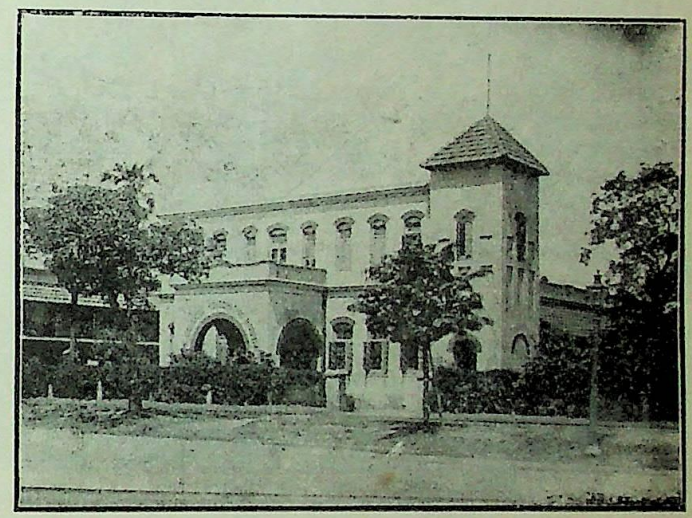

कलकत्ता-होमियोपैथिक मेडिकल-कालेज

अस्पतालमें 'इनडोर' (रहनेवाले रोगियों) और 'आउट डोर' (बाहरसे दवा लेकर चले जानेवाले रोगियों) दोनों तरहकी व्यवस्था है। अस्पतालकी लोकप्रियताका अन्दाज़ रोगियोंकी संख्यासे किया जा सकता है—

वर्ष	इनडोर रोगी (रहनेवाले)	आउट डोर (बाहरी)
१९२३	८६	१९,४६४
१९२४	१२७	२१,५३३
१९२५	१८७	१८,८१६
१९२६	१६१	१७,१११
१९२७	२०३	१६,२४६
१९२८	१८६	२०,१३७
१९२९	२४४	१९,८७८
१९३०	२१८	२४,६०६
१९३१	३१८	२८,८९०
१९३२	३७३	२६,५११
१९३३	३४३	२०,३५४
१९३४	४३५	२०,८५४
१९३५	६८२	३०,६०८

इस वर्ष ग्लासगो नगरमें संसार-भरके होमियोपैथिक डाक्टरोंकी अन्तर्राष्ट्रीय कानफरेन्स हुई थी। उसमें कलकत्ता-होमियोपैथिक मेडिकल कालेजके वाइस-प्रेसिडेन्ट और शिशु-चिकित्साके विशेषज्ञ तथा आचार्य डाक्टर ए० एन० मुकर्जी, एम० डी० (अमेरिका) भारतके प्रतिनिधि बनकर गये थे। उन्होंने लन्दनकी ब्रिटिश होमियोपैथिक सोसाइटीके सामने एक वक्तृतामें बतलाया था कि केवल बंगाल-प्रान्तमें ही वर्षमें लगभग ५,००,००० मरीज़ होमियोपैथीकी शरण लेते हैं। भारतमें होमियोपैथीका प्रचार इतना है कि अमेरिकाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

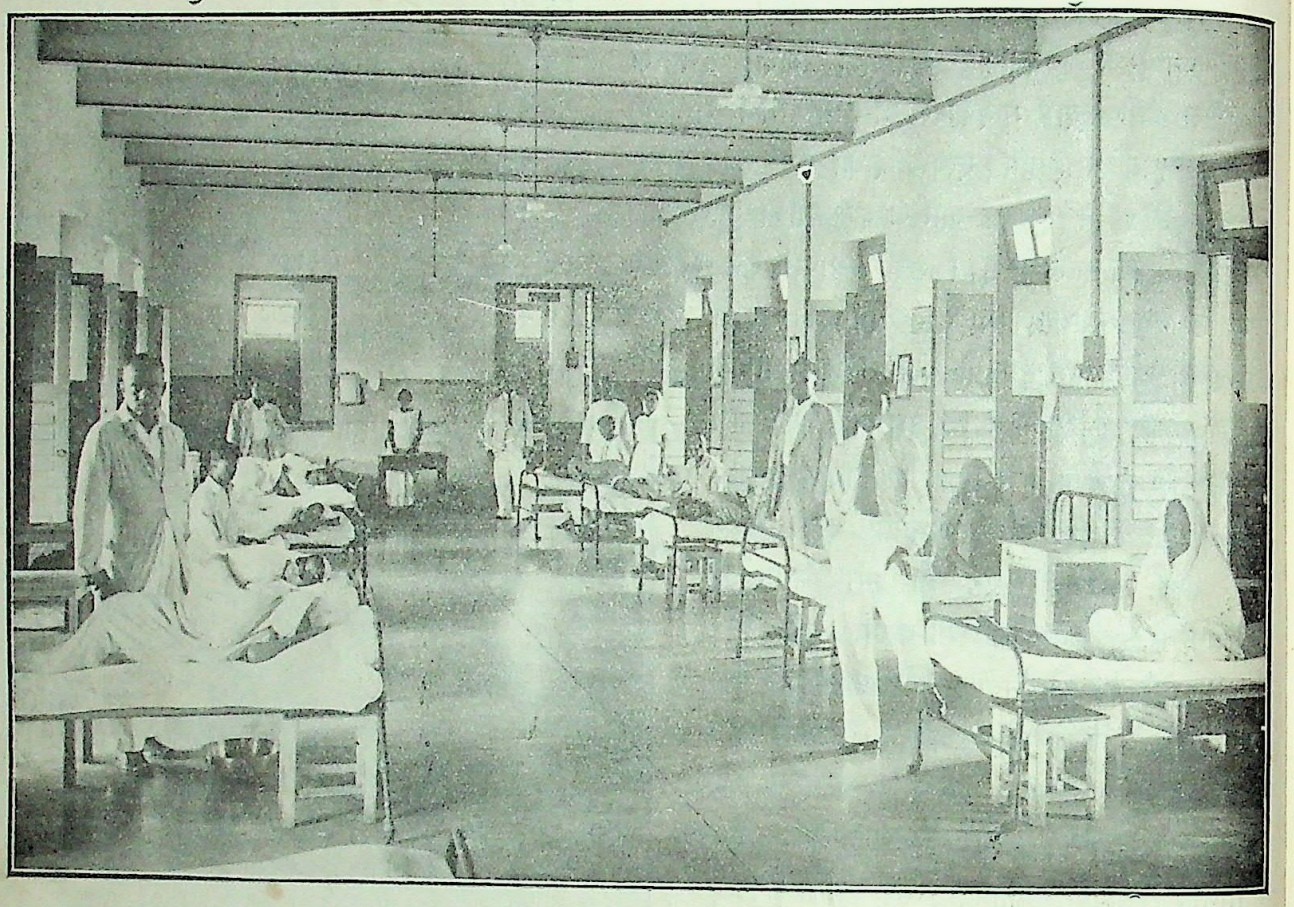

कलकत्ता-होमियोपैथिक मेडिकल कालेजमें रानी कस्तूरीमंजरी महिला-मेडिकल वार्ड

होमियोपैथिक औषधि-निर्माता बोरेक ऐण्ड टेफेलकी आधीके लगभग दवाएँ भारतमें ही खपती हैं। बंगालकी म्यूनिसिपैलिटियों द्वारा ३५ होमियोपैथिक दातव्य-चिकित्सालय चल रहे हैं। भारतके होमियोपैथोंने केवल होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीको ही नहीं अपनाया, वरन उन्होंने इस क्षेत्रमें अनुसन्धानका काम भी किया है। उन्होंने अनेक देशी औषधियोंको होमियोपैथिक ढंगपर तैयार करके सफलतापूर्वक उनका उपयोग भी किया है। वे होमियोपैथिक मासिक पत्र भी निकालते हैं। यह सब उन्होंने केवल अपने होमियोपैथी-प्रेमके कारण किया है, इसमें उन्हें सरकारसे या किसी अन्य संस्थासे कोई सहायता नहीं मिली। डा० मुकर्जीकी वक्तृताका ब्रिटिश होमियोपैथिक सोसाइटीपर अच्छा प्रभाव पड़ा और उक्त संस्थाने एक प्रस्ताव द्वारा निश्चय किया है कि कलकत्तेमें एक इन्डो-ब्रिटिश होमियोपैथिक सोसाइटी स्थापित करके भारत तथा इंग्लैण्डके होमियोपैथ डाक्टरोंका सम्बन्ध घनिष्ठ किया जाय तथा बंगाल-सरकारसे अनुरोध किया जाय कि "वह कलकत्ता-होमियोपैथिक हास्पिटल सोसाइटीको पर्याप्त सहायता दे, क्योंकि वही एक पुरानी संस्था है, जो होमियोपैथी द्वारा बहुत दिनोंसे चिकित्सा-जगतमें देशकी अपूर्व सेवा करती आ रही है।"

स्व० सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी अपने अन्तिम समय तक इस कालेजके सभापति रहे। देशबन्धु चित्तरंजन दास अपने पिताकी स्मृतिमें इस अस्पतालमें एक रोगीके रखनेका व्यय देते थे। महात्मा गांधीने कालेजमें पधारकर देशबन्धु दास और स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके चित्रोंका उद्घाटन किया था। सर सी० वी० रामनने कालेजमें हैनीमैन जयन्ती-उत्सवके सभापति बनकर होमियोपैथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

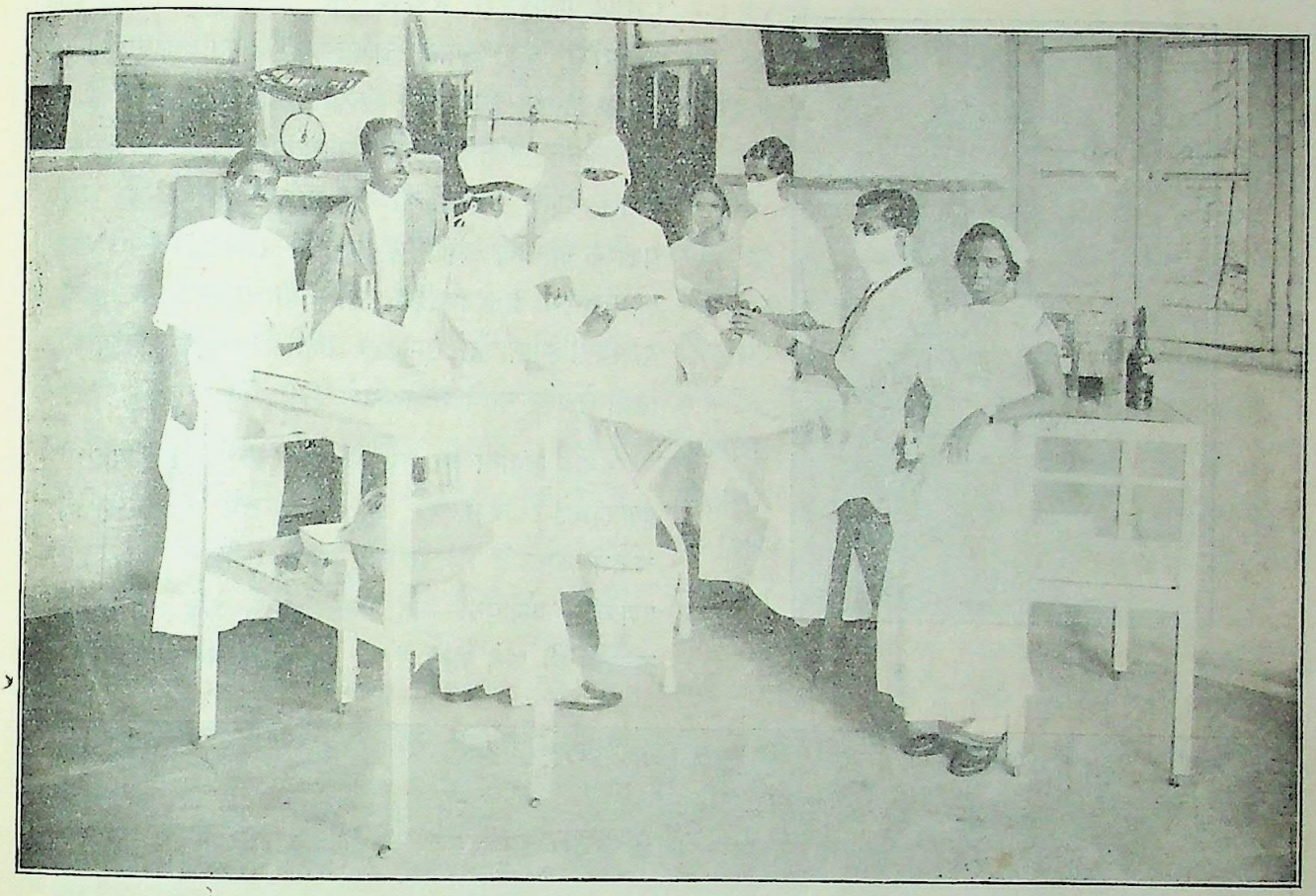

होमियोपैथिक मेडिकल कालेजमें मिसेज एल० बी० मित्र प्रसव-गृह

प्रणालीकी प्रशंसा की थी। भारतमें महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सर रामन—केवल दो ही व्यक्तियोंने नोबेल-पुरस्कार प्राप्त किया है, और ये दोनों ही महापुरुष होमियोपैथीके प्रेमी हैं। भारतके कुछ देशी नरेशोंको भी होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीकी उपयोगिता मालूम हो गई है और उनमें से दो-एक अपनी रियासतकी ओरसे छात्रवृत्ति देकर विद्यार्थियोंको होमियोपैथीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए इस कालेजमें भेजने लगे हैं।

कलकत्ता-कारपोरेशन भी अस्पतालको ५,७००) वार्षिककी सहायता देता है। बंगाल-सरकारके सर्जन-जनरल लेफ्टिनेन्ट कर्नल जे० सी० एच० लाइसेस्टर तथा सर्जन-जनरल मेजर जर्नल डी० पी० गोयल और आनरेबिल मि० रीड, आनरेबिल मिनिस्टर फार लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट, हाईकोर्टके जज जस्टिस डी० एन० मित्र, भारत-मन्त्रीकी कौंसिलके मेम्बर सुरेन्द्रनाथ मल्लिक आदि सज्जन कालेज और अस्पतालका निरीक्षण करके उसकी उपयोगिताकी सराहना कर चुके हैं।

सरकार और होमियोपैथी

इतना सब होनेपर भी न तो भारतकी केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकारें ही होमियोपैथीको स्वीकार (Recognise) करती हैं और न भारतकी कोई यूनिवर्सिटी ही उसे मानती है। सरकार या यूनिवर्सिटियोंकी ओरसे स्वीकृत न होनेका फल यह है कि आज मुल्कमें हज़ारों होमियोपैथ डाक्टर ऐसे नज़र आयेंगे, जिन्होंने होमियोपैथीकी बाक़ायदा शिक्षा नहीं पाई है और न कोई परीक्षा ही पास की है, बल्कि जो केवल दो-तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

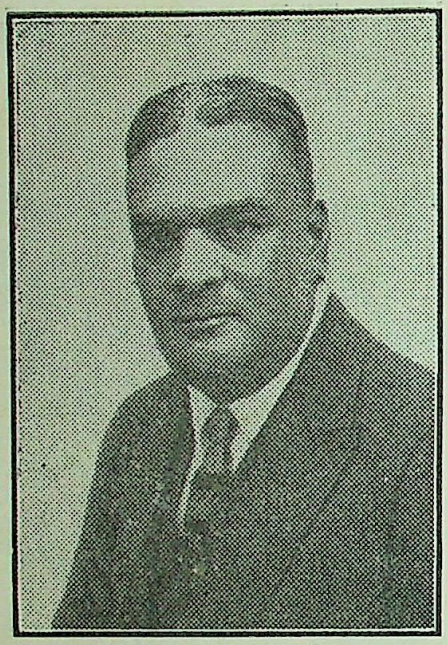

डाक्टर ए० एन० मुकर्जी, एम० डी०

पुस्तकें पढ़कर ही डाक्टर बन बैठे हैं। इनमें से दस-पाँच बहुत सफल चिकित्सक भी साबित हुए हैं; लेकिन उनकी बहुत बड़ी संख्या सर्वथा अयोग्य है। इस प्रकारके अशिक्षित लोग होमियोपैथीको हानि पहुँचाते हैं। देशमें इस तरहका कोई क़ानून नहीं, जो इस प्रकारके लोगोंको प्रैक्टिस करनेसे रोके। इससे उन लोगोंकी भी बन आती है, जो बिना पूरी शिक्षा दिये या बिना बाक़ायदा इम्तहान लिये ही होमियोपैथीकी डिग्री बेचकर रुपये सीधे करते हैं।

अब ज़माना आ गया है कि सरकार होमियोपैथी प्रणालीको स्वीकार कर ले। भारतमें पैंतीस करोड़ आदमी बसते हैं। सरकार द्वारा स्वीकृत चिकित्सा-प्रणाली—एलोपैथी—के डाक्टर सिर्फ बड़े शहरों और क़स्बोंमें ही पाये जाते हैं। देहातोंमें बसनेवाली तीस

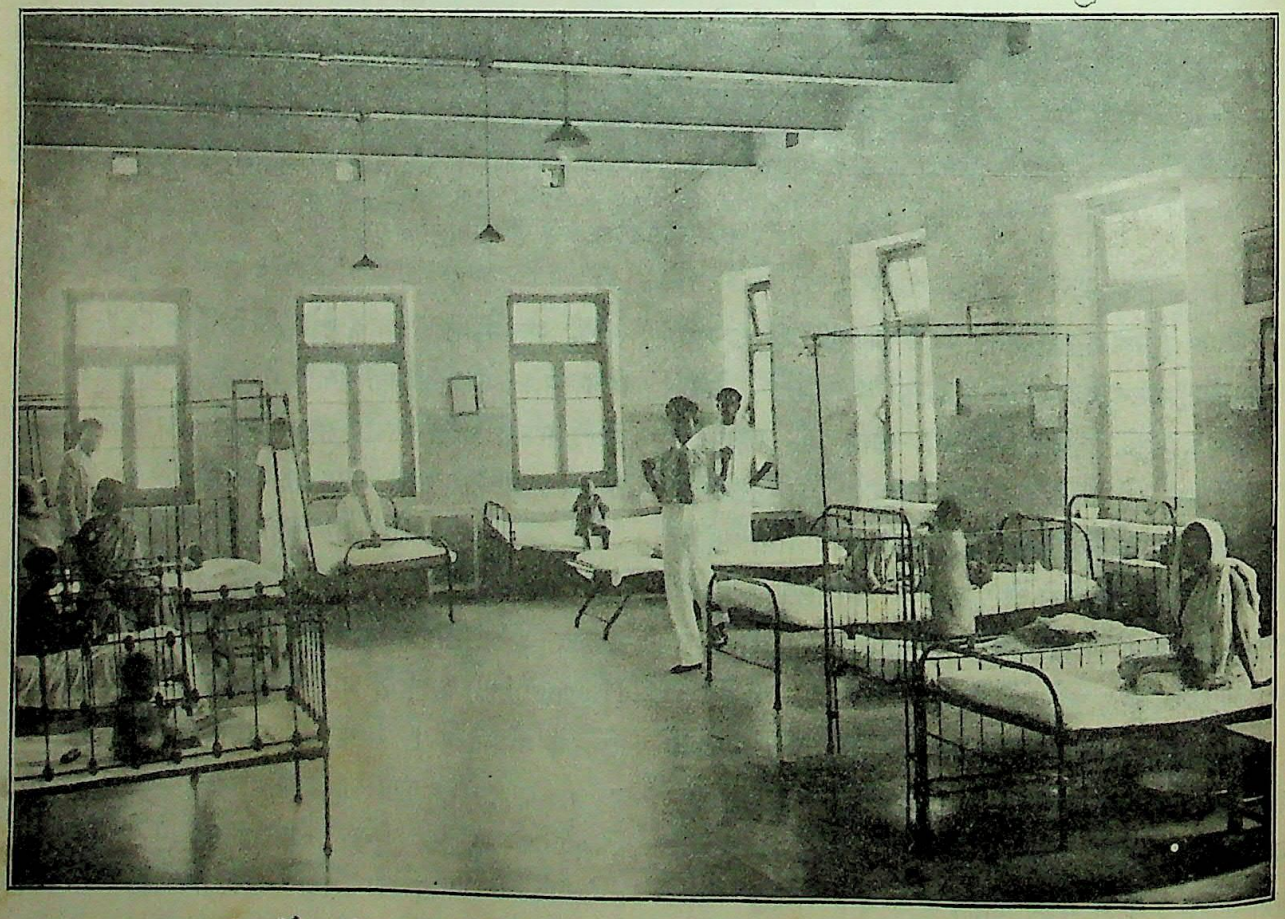

होमियोपैथिक मेडिकल कालेजमें कलकत्ता-कारपोरेशनके मेयरका खोला हुआ शिशु-विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोड़ जनता तक उनकी पहुँच नहीं है। ऐसी हालतमें जो कोई भी चिकित्सा-प्रणाली मानव-कष्टोंका निवारण कर सके, उसे स्वीकार करनेमें सरकारको मीनमेख न करनी चाहिए। सरकार समूची आबादीकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए ज़िम्मेदार है। जब सरकार सबके लिए डाक्टरी साधन उपस्थित करनेमें असमर्थ है, तब उसे दूसरोंको सहायता देनेको प्रस्तुत रहना चाहिए। सरकार होमियोपैथिक शिक्षाके लिए अच्छे डाक्टरोंकी एक होमियोपैथिक फैकल्टी बनाकर शिक्षाका स्टैण्डर्ड नियत कर दे। कलकत्ता-होमियोपैथिक कालेज सरकारी स्टैण्डर्डके अनुसार अपनी शिक्षा-प्रणाली बनानेको तैयार है। इतना ही नहीं, वह एक होमियोपैथिक यूनिवर्सिटी स्थापित करनेको भी तैयार है, जो स्वयं उच्चकोटिकी होमियोपैथिक शिक्षा देनेके साथ देश-भरके उच्चकोटिके होमियोपैथिक कालेजोंको—जिनकी शिक्षाका स्टैण्डर्ड सरकारी स्टैण्डर्डके अनुरूप होगा—अपनेसे सम्बद्ध करके उनके छात्रोंकी परीक्षा आदिकी भी व्यवस्था करेगी। बंगालमें तथा अन्य कई सूबोंमें डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और म्यूनिसिपल बोर्डोंको सरकारने होमियोपैथिक अस्पतालोंको आर्थिक सहायता देनेका अधिकार भी दे रखा है। तब कोई कारण नहीं दीख पड़ता कि सरकार उसे सरकारी स्वीकृतिसे वंचित रखे।

प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओंके सदस्योंको चाहिए कि वे इस लोकप्रिय और कमखर्च चिकित्सा-प्रणालीको सरकारी स्वीकृति दिलानेकी चेष्टा करें। बड़ौदा और त्रावनकोर रियासतोंने होमियोपैथीको सरकारी ढंगसे स्वीकार कर लिया है। क्या ब्रिटिश भारत इन देशी रियासतोंसे भी पीछे रह जायगा? राष्ट्रकी महान शक्तियाँ देशकी ग़रीबीको दूर करनेके लिए अपने अथाह परिश्रम द्वारा नित्य नये-नये प्रोग्राम बना रही हैं। क्या वह होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीको प्रोत्साहन देकर देशका बहुत बड़ा उपकार न करेंगी—विशेषकर उस अवस्थामें, जब कि देशकी बहुत बड़ी जनसंख्या अपनी ग़रीबीके कारण एलोपैथी-जैसी महँगी चिकित्सा-प्रणाली द्वारा अधिक लाभ नहीं उठा सकती है? सुनते हैं, महामना मालवीयजीको होमियोपैथीमें बड़ा विश्वास है, और वे इससे कई बार स्वास्थ्य-लाभ भी कर चुके हैं। क्या वे ऐसी उपयोगी चिकित्सा-प्रणालीकी शिक्षा देनेका हिन्दू-विश्वविद्यालयमें प्रयत्न न करेंगे? हमें पूर्ण विश्वास है कि महात्मा गांधी तथा मालवीयजी-जैसे राष्ट्रके पूज्य कर्णधार यदि ज़रा-सा भी इशारा कर दें, तो बात-की-बातमें इस अपूर्व चिकित्सा-प्रणालीकी अवस्था सुधर जायगी।

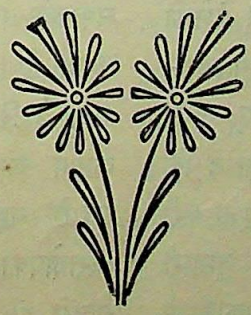

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-मन्दिरमें

बनारसीदास चतुर्वेदी

निकट-भविष्यमें हमारे साहित्यकोंके सम्मुख यह प्रश्न बड़े ज़ोरोंके साथ उपस्थित होनेवाला है कि वे साहित्य-मन्दिरमें किस देवताकी प्राणप्रतिष्ठा तथा पूजा करेंगे ? इस प्रश्नका उत्तर सभीको देना पड़ेगा। हम उन लोगोंकी बात नहीं कहते, जो 'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै' के सिद्धान्त(?)के अनुयायी हैं, क्योंकि उनकी आत्मा रबरकी तरह लचीली है और उनका मार्ग सरल है। वक्त देखकर वे बारी-बारीसे अमानुल्ला और बच्चासक्का दोनोंको अपना आराध्यदेव मान सकते हैं, और ज़मानेकी गतिके अनुसार आज वे हिटलर महान(?)के गुण गा सकते हैं, तो कल स्टैलिनके चरण-चंचरीक बन सकते हैं। अपने मालिकोंका मुँह देखकर जिनकी पूँछ हिलती है, वे साहित्यिक श्रेणीके जीव नहीं, किसी अन्य जातिके भले ही हों और उनका अधिक ज़िक्र करना ही नामुनासिब होगा।

किस देवताकी प्रतिष्ठा करें ?

हाँ, तो सवाल यह है कि हम लोग अपने साहित्य-मन्दिरमें किस देवताकी प्रतिष्ठा करेंगे ? एक बात हमें बिलकुल प्रारम्भमें ही और साफ़-साफ़ कह देनी चाहिए, वह यह कि कोई भी लेखक जो अन्तः प्रेरणाके बजाय किसी बाहरी शक्ति या ज़ोर-ज़बरदस्तीके सामने सिर झुकाता है, वह अपनेको और अपने पेशेको बदनाम करता है और वह दरअसल इस मन्दिरसे अपनेको बहिष्कृत कर लेता है। मान लीजिए, अगर कल मार्क्स अथवा लेनिनके अनुयायी हमें आज्ञा दें कि 'तुम साहित्य-मन्दिरमें इन दो देवताओंकी पूजा करो और वर्गवादकी आरती उतारो, नहीं तो तुम्हारी स्वतन्त्रताका अपहरण किया जायगा', तो कोई भी दमदार लेखक प्रिंस क्रोपाटकिनके शब्दोंमें इसका एक ही जवाब दे सकता है :—

"For us the dictatorship of an individual or of a party (at bottom the very same thing) has been finally condemned...We know whither every dictatorship leads even the best intentioned namely to the death of all revolutionary movement."

—'हम लोगोंके यहाँ किसी व्यक्ति-विशेष या ख़ास पार्टीकी डिक्टेटरी (और मूलमें दोनों चीज़ें एक ही हैं) हमेशाके लिए निन्दनीय करार दी जा चुकी है। डिक्टेटरीका फल सदा यही होता है कि उससे समूचे क्रान्तिकारी आन्दोलनका ख़ात्मा हो जाता है, चाहे वह डिक्टेटरी कितने ही अच्छे उद्देश्यसे क्यों न की गई हो।'

हम लोग अपनी लेखनीपर किसी प्रकारका भी नियन्त्रण नहीं चाहते, यह बात हमारे मित्रों तथा शत्रुओंको कान खोलकर सुन लेनी चाहिए।

साहित्य जनताके लिए हो

इस सिलसिलेमें आचार्य नरेन्द्रदेवजीके उन महत्त्वपूर्ण शब्दोंको उद्धृत करना ग़ैरमौजूँ न होगा, जो उन्होंने युक्तप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलनके अवसरपर कहे थे—"अपने साहित्यकी गति-विधिपर भी हमको सदा ध्यान रखना चाहिए। प्रगतिशील साहित्यको प्रस्तुत करनेमें हमको भी सहयोग करना चाहिए। नये समाजके गठन-कार्यमें साहित्यसे बड़ी सहायता मिल सकती है। साहित्यिकोंकी ओरसे यह आवाज़ उठाई जाती है कि राजनीतिज्ञ साहित्यपर भी अपना नियन्त्रण कायम करना चाहते हैं। संसारके साहित्यिकोंका सदासे यह कायदा रहा है कि वे राजनीतिज्ञोंके हस्तक्षेपका विरोध करते आये हैं। वे राजनीतिको सदासे ही तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते आये हैं और राजनीतिज्ञोंसे वे सदा सशंक रहते हैं। यह बात अकारण नहीं है ; किन्तु जो लोग सामाजिक जीवनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बदलना चाहते हैं वे साहित्यकी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं ? साहित्यकी प्रत्येक कृति, चाहे उसका स्वरूप और विषय कुछ भी क्यों न हो, कुछ-न-कुछ राजनीतिक परिणाम अवश्य उत्पन्न करती है। यदि लेखक राजनीतिक परिस्थितिसे परिचित हो और बुद्धि-पूर्वक लेखन-क्रियाको सम्पन्न करे, तो उस क्रियाका परिणाम इच्छानुकूल हो सकता है। इससे हम अवश्य चाहेंगे कि हमारे साहित्यिक वर्तमान राजनीतिका ज्ञान प्राप्त करें। यदि वे जीवनसे सम्पर्क रखना चाहते हैं और सफल कलाकार बनना चाहते हैं, तो इस युगमें जब वर्ग-संघर्ष प्रबल वेगसे चल रहा है, कैसे अपनेको इससे अलग कर सकते हैं ? जीवनकी कथा ही यह है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

"प्रान्तके साहित्यकोंसे मेरा नम्र निवेदन है कि वे जनताके लिए साहित्य प्रस्तुत करें। इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए सरल भाषाका प्रयोग करना आवश्यक होगा। चूँकि हमारे प्रान्तकी भाषाको राष्ट्रकी भाषा बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसलिए हमारे साहित्यका सारे देशपर प्रभाव डालना अनिवार्य है।"

हर्षकी बात है कि आचार्य नरेन्द्रदेवजीने जो कुछ कहा है, बड़े शिष्टतापूर्ण शब्दोंमें और लेखकोंके गौरवके अनुकूल ही, क्योंकि वे स्वयं उच्चकोटिके साहित्यिक और लेखक हैं। यदि उनके सम्प्रदायके अन्य लोग भी इसी दूरदर्शिता तथा उदारतासे काम लें, तो राजनैतिक कार्यकर्ताओं और साहित्य-सेवियोंका सहयोग बहुत दूर तक हो सकता है ; पर मुश्किलकी बात तो यह है कि पूँजीपतियोंसे लगाकर साम्यवादियों तक जो कोई भी सत्ताको अपने हाथमें लेना चाहता है, वह साहित्यिकोंकी शक्तिका उपयोग अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें करनेके लिए लालायित रहता है। प्रत्येक सच्चे साहित्यिकका कर्तव्य है कि वह इनसे अपनी मानसिक स्वाधीनताकी रक्षा करे, क्योंकि साहित्य-सेवीसे आप मानसिक स्वाधीनता छीन लीजिए, तो वह न घरका रहेगा, न घाटका। रोमाँ रोलाँके ये शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—

"Independence of thought is an essential force in humanity. It will not be intimidated. If you persecute it, you will no doubt get the applause of all the false intellectuals, the careerists, the cowards of the market-place. But the real men of thought would be the heroes of the persecution: its martyrs, if need be. For out of their suppressed conviction a new faith will spring up. Reflect! Do not play with fire! It will consume you."

—'मानव-समाजके लिए विचारोंकी स्वाधीनता एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। वह किसीके डराने या धमकानेसे दब नहीं सकती। यदि उसपर आप ज़ोर-ज़ुल्म करेंगे, तो भले ही आप झूठे साहित्यिकों, पदलोलुपों और बाज़ारू कायरोंके प्रशंसापात्र बन जायँ ; लेकिन स्वाधीनताके असली पुजारी आपकी तारीफ़ नहीं करेंगे, बजाय इसके वे आपके अत्याचारोंका शिकार बनना अधिक पसन्द करेंगे और ज़रूरत पड़नेपर वे इसके लिए शहीद भी हो जायँगे। पर उनके स्वाधीन विचारोंके दमनके परिणाम-स्वरूप एक नवीन विश्वासका जन्म होगा। ख़ूब सोच-समझ लीजिए। आगके साथ खिलवाड़ न कीजिए ; वह आपको निगल जायगी।'

साहित्यिकोंसे

प्रत्येक प्रकारकी डिक्टेटरशिपके पक्षपाती लोगोंको साहित्यिकोंकी स्वाधीनतापर हाथ डालनेके पहले इन शब्दोंपर गौर कर लेना चाहिए। पर मानसिक स्वाधीनताके मानी यह नहीं हैं कि साहित्यिक युद्ध-क्षेत्रसे दूर भाग जाय। अपनी मानसिक स्वाधीनताकी रक्षा करते हुए स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेना, यही साहित्यिकके लिए सर्वोत्तम मार्ग है। सजीव बने रहनेके लिए ही साहित्यिकको युद्धमें भाग लेना चाहिए। यदि साहित्यिक सजीव न रहा, तो वह लिखेगा ही क्या ? मुर्दे सड़ा करते हैं, लड़ा नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सिलसिलेमें एक पुराना किस्सा याद आता है। किसी भोग-विलासी बादशाहके मुल्कपर आक्रमण हुआ था। बहुत दिनों तक हज़रत बेख़बर रहे ; पर जब दुश्मन क़िलेके नज़दीक आ पहुँचे, तो मसला पेश हुआ कि आख़िर दुश्मनोंको रोकनेका क्या इलाज किया जाय? अन्तमें यह तय पाया कि हम लोग चूड़ियाँ पहन लेंगे और पर्देके भीतरसे हाथ निकालकर दुश्मनोंसे कहेंगे—

"मुए इधर न आइयो, इधर ज़नाने हैं।"

जो साहित्यिक ज़नाने बनकर संकटको टालना चाहते हैं, उनसे कुछ कहनेकी ज़रूरत नहीं।

स्वाधीनता-संग्राममें कैसे जुटें ?

तो फिर स्वाधीनता-संग्राममें किस प्रकार जुटा जाय ? इस प्रश्नका फैसला प्रत्येक साहित्यिक अपने लिए खुद ही कर सकता है। कोई भी ऐसा फरमूला नहीं बतलाया जा सकता, जो सबपर लागू हो। हमें 'मनसा वाचा कर्मणा' अपने सिद्धान्तका प्रतिपालन करना चाहिए, बस यही एक मुख्य बात है। अपनी अन्तरात्माके प्रति सत्य व्यवहार करनेमें ही हमारी और हमारे देशकी कुशल है। गान्धीवादकी गंगा और साम्यवादकी जमुना ये दोनों ही धाराएँ भारतीय संगममें बह रही हैं। साहित्यिक अपनी प्रवृत्तिके अनुसार किसीमें भी अवगाहन कर सकता है, बशर्ते कि उसके पाँव उखड़ न जायँ और वह स्वयं बह न जाय। आतंकवादकी तृतीय धारा निरर्थक तथा हानिकारक है, क्योंकि वह रेगिस्तानमें जाकर विलीन हो जाती है। गंगा या जमुना किसी भी धारामें आप अवगाहन करें ; पर यह न भूल जायँ कि 'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा।'

किसी भी सच्चे साहित्यिकके लिए उसका मन, उसकी मानसिक स्वाधीनता, उसका व्यक्तित्व सबसे अधिक मूल्यवान चीज़ है। महाकवि मिल्टनने एक जगह लिखा था—"जो कोई भी साहित्यिक प्रशंसनीय विषयोंपर लिखना चाहे, उसे पहले अपने जीवनको सच्ची 'कविता' बना लेना चाहिए—खुद उसका जीवन-रूपी छन्द सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ सुवर्णों द्वारा रचित होना चाहिए।" यदि किसी साहित्यिकके व्यक्तित्वमें सजीवता नहीं, सच्चा कवित्व नहीं, तो कोई भी राजनैतिक कार्य उसे ऊँचा उठा नहीं सकता।

साहित्य चिरस्थायी चीज

हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि राजनैतिक दलबन्दियाँ क्षणस्थायी हैं और साहित्य उनसे कहीं ऊँची चीज़ है। वह ऊँचे धरातलपर है और चिरस्थायी चीज़ है। सिपहसालार अब्दुर रहीम खानखानाकी मुहीमोंका हाल सिर्फ ऐतिहासिक कीड़े ही जानते हैं ; पर कविवर रहीमकी रचनाएँ आज लाखों हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी ज़बानपर हैं। राजनैतिक आदमीके नेता और देवता बदलते रहते हैं। आज वह किसीकी पूजा करता है, तो कल किसी दूसरेकी आराधना। प्राचीनकालके कवियोंने राजनीतिकी उपमा चंचला वारवधूसे दी थी, और उनके कथनमें सत्यका अंश था ; पर साहित्य-सेवीके मन्दिरकी अधिष्ठात्री एक ही देवी है, और वह है 'मानसिक स्वाधीनता'। कोई भी 'वाद' उसका गण भले ही बन जाय, उसका सिंहासन हर्गिज़ नहीं ले सकता।

Princes and Captains leave a little dust,
And Kings a dubious legend of their reign
The swords of Caesars, they are less than rust
The Poet doth remain.

राजपुत्र और कप्तान (सेनानी) थोड़ी-सी धूल छोड़ जाते हैं,
और बादशाह अपने शासनके कुछ सन्देह-जनक क़िस्से,
सीज़रों (सीज़र-जैसे महान विजेताओं) की तलवारें मोरचेसे भी बदतर रह गई हैं
परन्तु कवि (बराबर) मौजूद रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरागत

श्री जयकिशोरनारायण सिंह

मैं बाँध तरी शीतल तटपर
इस पार अकेला आया हूँ,
'मैं दूरागत हूँ', यही एक
सन्देश जगतमें लाया हूँ।

दुर्भिक्ष देखता कभी, कभी
श्रावण - संध्या की जलधारा,
मैं जाता हूँ अपने पथपर
खद्योत मिले या ध्रुवतारा।

किसका है यह चिर-विश्व और
किसकी यह मिट्टीकी धरणी,
इस मृत्यु-सिन्धुमें है किसने
छोड़ी मानवताकी तरणी ?

वह कौन पुण्यका प्रभु, जिसको
कहती है जगती वरदाता,
या कौन पापका स्वामी, जो
अभिशाप लिये जगमें आता ?

इस पुण्य - पापसे जगतीके
सम्बन्ध भला कितना मुझको ?
मैं दूरागत हूँ, यही एक
बस ज्ञात यहाँ इतना मुझको।

[२]

अपने हाथोंसे पहन एक
दिन क्षणभंगुरताकी माला,
अब स्वयं एक दिन सिर धुनता
जग खूब बना रोनेवाला !

बजती विराट वंशी, जिससे
'भूमा' की कुछ मुखवायु यहाँ,
बस, उसी वायुको जग कहता,
मानवकी उज्ज्वल आयु यहाँ।

जानें, किस एकाकीपनसे
कब ऊब, फूँक उसने मारी,
सहसा नीरवताके नीचे
बज उठी यहाँ वंशी सारी।

वह बजा रहा, मैं बजता हूँ,
मिलता आनन्द अशेष मुझे,
छोड़ेगा चुप हो जाऊँगा
बोलो, इसका क्या क्लेश मुझे ?

फिर क्यों न तृप्तिसे ही अपना
आरम्भ और अवसान करूँ ?
मैं दूरागत हूँ, विष पीकर—
भी यहाँ अमृतका गान करूँ।

[३]

आया वसन्त दक्षिणसे वन—
फूलोंका लिये शरीर अभी,
कर उठा एक पलमें गर्जन
पश्चिमसे ग्रीष्म-समीर अभी।

पूरबसे घन आषाढ़ उठा,
हिल गई वलाकाकी माला,
हेमन्त-शिशिर पलमें दौड़ा
आया उत्तरसे मतवाला।

इस कोलाहलके बीच यहाँ
कुछ देर शरद भी मुसकाई,
फिर तरुण-कासवनमें, तृष्णा—
इस वृद्ध विश्वकी लहराई।

पर हाय, किसीकी भी जगती
कर सकी न मन-भर अगवानी,
प्रिय रुका न कोई, वृद्ध हुई
यों ही यह मिट्टीकी रानी।

है मिला अचानक आज वहीं
यौवनका भंगुर भार मुझे,
मैं दूरागत हूँ, करने दो
पल-भर अपना शृंगार मुझे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता

शास्त्राचार्य 'विश्वरूप'

"सुनते हो, लोलारक छठका नहान है। मानकी, भोली, लीला, सब जा रही हैं। यदि हुकुम दो तो मैं भी स्नान कर आऊँ। कौन जाने, भई, किस रूपमें भगवान मिल जाते हैं। शायद इसीसे हमारी मनोकामना पूर्ण हो जाय। माधुरी बहन तो कहती थीं, कितनोंका तो इससे भला हुआ है, गोद भर गई है।"—एक बार प्रार्थना मिश्रित जिज्ञासासे पतिकी ओर देखकर किशोरीने लज्जासे सिर झुका लिया।

"हूँ....तुम भी कितनी भोली हो, किशोरी! यदि उस नहानमें इतनी शक्ति होती, तो आज वहाँ सोनेका घाट बन गया होता। कितने राजे-रजवाड़े तो निःसन्तान पड़े हुए हैं। एक बच्चेके बिना ही तो सारा राज्य, सारा महल और सारा सुख-ऐश्वर्य अँधेरा हो रहा है। उन्हें क्या तुम्हारे इस लोलारक-नहानका पता नहीं? खूब है; मगर इसपर विश्वास कौन करता है? और यदि हमें कोई सन्तान नहीं हुई, तो उससे हानि ही क्या है? कितने ही ऐसे बच्चे हैं, जिन्हें ठंडसे बचनेके लिए वस्त्र और सूखे गलेको तर करनेके लिए एक बूँद दूध भी तो मयस्सर नहीं होता। क्या ज़रूरत है दरिद्र और गुलाम सन्तान पैदा करने की? और माननेसे ही तो सब-कुछ है। किसी भी बच्चेको तुम अपना बच्चा समझकर प्यार कर सकती हो।"

"जाने दो, इसीसे तो मैं तुमसे कुछ कहती नहीं। तुम्हारे मतमें तो देवी-देवता, धर्म-कर्म कुछ भी नहीं हैं। एक तुम हो और एक तुम्हारी अकेली बुद्धि है। तुम्हारी इस नास्तिकताका ही तो फल है कि आज हमें बाँझिन होनेका ताना सहना पड़ता है।" कहते हुए किशोरीका गला भर आया और आँखोंमें बरसात लग गई।

स्त्रियोंको विधाताने यह एक ऐसा अमोघ अस्त्र प्रदान किया है, जिसके सामने पुरुषका सारा बल, सारी विद्या और सारी हेकड़ी हवा हो जाती है—हार माननी पड़ती है। किशोरीके पति रामलालने घबड़ाकर उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"अरे, यह तुम करती क्या हो? दुखी होनेकी तो कोई बात नहीं है। मैंने कब कहा कि हम नहीं चलेंगे? मैं तो दुनियाकी बातें कह रहा था। अच्छा, तो कब चलना होगा? सब तैयारी कर डालो। मुझे भी तो नहीं छोड़ोगी। मेरे कपड़े धोनेके लिए दे देना।"

"परसों। आख़िर तुम करते सब-कुछ हो; मगर पहले रुला लेते हो। न-जाने तुम्हारी यह आदत कब छूटेगी?" कहते हुए उसकी मुसकराहटके साथ उसकी आँखें और आँखोंका काजल मुसकरा पड़ा।"

"इसमें आदत और न आदतका तो कोई सवाल नहीं है। तुम्हारी आँखोंमें तो सदा ही बादल छाये रहते हैं; जब चाहती हो, बरसा देती हो। भई, तुम्हारी ज़ातको समझना बड़ा ही कठिन है! ख़ैर, छोड़ो इन पचड़ोंको; जाना तो है ही, रात क्यों बेकार करें, सोना चाहिए।"

किशोरी सोनेका प्रयत्न कर रही थी; पर उसे नींद नहीं आ रही थी। आशाके सुनहले पर्देपर एक सलोना शिशु खेल रहा था, माता—किशोरी—उसे लोरियाँ सुना रही थी। आनन्दका ऊफान हृदयमें न समाकर आँखोंसे ढुलक रहा था।

[२]

पन्द्रह वर्ष पहले मुग्धा किशोरी दुलहिन बनकर इस घरमें आई थी। सासने एक सुन्दर बालक उसकी गोदमें डाल दिया, कहने लगीं, मेरी बहूको ऐसे फूल-से लाल होंगे, घर भर जायगा। किशोरी लज्जासे गड़ गई। सास जब तक जीवित रहीं, पौत्रका मुख देखनेके लिए सदा ही लालायित रहीं। जिसने जो कहा, वही किया। गंडे और ताबीजोंका एक बोझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकट्ठा हो गया तथा साधु और फकीरोंकी धूनी रोज़ ही दरवाज़ेपर लगी रहती थी ; पर फल कुछ न हुआ, घर भरनेकी कौन कहे, एक पौत्रका भी वे मुख नहीं देख सकीं ; अरमानोंको लिये हुए ही चल बसीं।

किशोरीके पति रामलाल नये विचारोंके मनुष्य थे। शिक्षा तो अधिक नहीं मिली थी। हाईस्कूल पास करके कालेजके प्रथम वर्षमें ही असहयोग-आन्दोलनमें पढ़ना छोड़ दिया था ; किन्तु बुद्धिमान थे, अच्छा साथ था और दुनियाके नये विचारोंसे परिचित थे। नौकरी नहीं की, घरकी ही खेती-बारीको सम्हालने लगे और समय पाकर ग्राम-संगठनका भी कुछ कार्य किया करते। किशोरीकी शिक्षा तो मिडिल तक ही थी ; पर वह 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय शिष्या कला विधौ' की एक जीवित उदाहरण थी। इस दम्पतिका जोड़ा औरोंके लिए आदर्श था। उनका संसार आनन्द, सुख, शान्ति और प्रेमसे भरा हुआ था ; किन्तु उसमें एक फाँक थी, जो किशोरीको खटका करती थी। सब-कुछ होते हुए भी एक तुतलाते बच्चेकी मधुर हँसीके बिना सारा घर सूना-सा जान पड़ता था। किशोरीने पतिका प्रेम पाया था, आदर पाया था, सोहाग पाया था ; पर वह मातृत्वका पद, जिसमें किशोरीकी एक नारीकी पूर्णता है, नहीं पा सकी थी। जब सोचती, शोकका वेग रोके नहीं रुकता। उसने भी सन्तानके लिए बहुत चेष्टा की ; किन्तु कोई फल न देखकर हताश हो बैठी। सोच लिया, हमारे भाग्यमें ही नहीं है। भाग्यकी आड़में अपनी असफलतापर सन्तोष करना शायद मनुष्यने अपनी सृष्टिके साथ-ही-साथ सीखा है। लोलारक-स्नानका प्रस्ताव जब उसकी सखीने किया, तो वह हँसने लगी, बोली—'बहन, अब तो जीवनकी दुपहरिया ढल चुकी है। जब अवस्था थी, तभी जब कुछ नहीं हुआ, तो आज इस आशाको पालना व्यर्थ है। छोड़ो इन बातोंको। तुम लोगोंके बच्चे तो मेरे ही हैं न।' किन्तु अनेक उदाहरणोंको देखकर उसे उस स्नानकी दैवी शक्तिपर विश्वास करना पड़ा, और उसने आकर पतिसे चलनेके लिए प्रस्ताव किया।

[३]

सड़क भरी हुई जा रही थी। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी ही अधिक भीड़ थी। पटरियोंपर बैठकर खोमचेवाले अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। एक पैसेकी चीज़का दाम तीन पैसे हो गया था। आखिर करते भी क्या ? दूसरोंकी भलाईके लिए थोड़ा अन्याय कर लेनेकी आज्ञा तो शास्त्रने भी दी है। सस्ती चीज़ें होनेपर औरके और ले जाते, जिन्हें ज़रूरत है वे, न पा सकते। इसीलिए तो समाजके धनी-धोरी सद्भावनासे प्रेरित होकर दहेजकी लम्बी रकम माँगनेके लिए बाध्य हैं। माताएँ अपने बच्चोंके लिए खिलौने-मिठाइयाँ खरीदनेमें लगी हुई थीं। कुछ ऐसी थीं, जो ताल-सुरका कुछ ख़याल न करके गल-बहियाँ डाले गाती चली जा रही थीं। किशोरीने काशी कई बार देखा था। इस तरहके मेले-ठेले भी उसके लिए कोई विशेष आकर्षक न थे ; किन्तु आजके मेलोंमें कुछ और ही बात थी। आज प्रत्येकको वह ध्यानसे देखती और उसके आनेके कारणकी कल्पना करती। हम अपने हृदयके पैमानेसे ही दूसरोंकी मनोवृत्तियोंको नापा करते हैं।

स्नान समाप्त हो गया था। रामलाल और किशोरी मेला देखनेमें लगे हुए थे। एकाएक किशोरी खड़ी हो गई ; पास ही एक सुन्दर बालक इधर-उधर देखता हुआ मा-मा करके रो रहा था। बच्चेको गोदमें उठा लिया—'बेटा, रोओ नहीं, मैं तुम्हें माके पास पहुँचा दूँगी। तुम्हारी मा किधर गई है और कौन साथमें था ?' पर बच्चा कोई उत्तर नहीं दे सका। देता भी कैसे ? उसे तो केवल मा ही मालूम थी, और तो कुछ बोल नहीं सकता था। किशोरीकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। रामलालको पुकारा—"देखो न, कितना सुन्दर बालक है ! बेचारेकी मा खो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है। हाय, माकी क्या दशा होगी ? चलो न, ज़रा पता लगावें। दूर नहीं गई होगी, यहीं कहीं पागल-सी ढूँढ़ती होगी।"

दोनों तीन-चार घंटे तक मेलेमें घूमते रहे। जो मिलता, उसीसे पूछते—'किसका बच्चा है ? किसी रोती हुई स्त्रीको देखा है क्या ?' कोई तो उत्तर देनेकी ज़रूरत ही नहीं समझता और कोई सेवा-समितिवालोंको सौंप देनेकी सलाह देकर चलता बनता। रामलाल थक गये थे। किशोरी भी थक गई ; पर कहती—"ज़रा और न देख लो, शायद मिल ही जाय, बेचारी रो-रोकर मर जायगी।" शाम हो चली और जब कुछ पता नहीं चला, तो रामलालने कहा—"चलो, अब देरी करनेकी ज़रूरत नहीं। सेवा-समितिमें दे आवें। गाड़ी छूट जायगी, आठ बजे चलना भी तो है।"

पास ही सेवा-समितिका कैम्प था। वहाँ जाकर रामलालने कहा—"बच्चेको दे दो, दे आऊँ।"

किशोरीकी आँखें डबडबा आईं, बोली—"कैसे दूँ, बेचारा रहेगा कैसे ? अब तक मासे अलग तो रहा नहीं होगा।" बच्चा किशोरीसे हिल-मिल गया था, उसके गलेमें अपनी नन्हीं बाहोंको डालकर खेल रहा था।

"कब तक सँभालोगी, देना तो पड़ेगा ही। दूसरेका बच्चा है, हम ले तो जा नहीं सकेंगे।" कहता हुआ रामलाल बच्चेके पानेकी सूचना देनेके लिए कैम्पमें चला गया।

उसके लौटनेपर किशोरीने कहा—"न ले जा सकेंगे न सही ; पर इसको रोते कैसे छोड़ जायँगे। इसकी माको तो देकर ही जाना होगा।"

उस दिन वे नहीं जा सके। दूसरे दिन रामलाल गली-गली पता लगाता रहा, सेवा-समितिने भी कोशिश की ; किन्तु कोई फल न निकला। बच्चेको लेकर किशोरी घर लौट आई। पास-पड़ोसी सखी-सहेलियोंके पूछनेपर कहती—"किसीको स्नानका फल चाहे देरीसे मिले ; मगर मुझे तो गंगामाईने तुरत ही दे दिया।"

[४]

दिनके साथ-साथ किशोरीके दैनिक कार्यक्रमका एक बड़ा हिस्सा बच्चेकी देख-रेखमें बीतने लगा। वह उसकी मा थी, वह उसका मोहन था। रामलाल बाज़ार जाते, उसके लिए नये-नये सूट ले आते। किशोरी जहाँ कहीं नये कपड़ेका नमूना देखती, तुरत मँगा लेती। अपनी-अपनी पसन्दसे उसे सजानेकी पति-पत्नीने होड़-सी कर ली थी। गाँववाले देखकर दंग थे।

मोहन अब कुछ बोलने लग गया था। किशोरीके साथ खाता, गोदीमें सोता और नककट्टे सियारकी कहानी सुना करता था। कभी-कभी माकी कहानीमें अपनी रुचिके अनुसार संशोधन भी कर दिया करता था। रामलाल पुकारते—'आओ मेरे प्यारे मोहन, झूठोंके सरदार !' मोहन रूठ जाता, कहता—'अम्मा, अब मैं बाबूजीसे नहीं बोलूँगा।' किशोरी हँसती हुई कहती—'हाँ जी, बाबूजी अच्छे नहीं हैं, बेटा तो मेरा लल्लू है।' वह उसे छातीसे लगा लेती। माके इशारेसे वह रामलालको मुँह चिढ़ा देता। रामलाल पकड़कर उसका मुख चूम लेते। वह दोनोंका खिलौना था। उससे दोनों खेलते और हँसते थे।

[५]

दिन एक-से नहीं रहते। उँजेलेके साथ ही रात्रिका घोर अन्धकार भी लगा हुआ है। रामलालको हृदयकी बीमारी थी। जब दौरा होता, तो वे दो-दो सप्ताह चारपाईपर पड़े रहते। दवा होती, तो अच्छे हो जाते। इस बार घरमें सत्यनारायणकी कथा थी। किशोरी मोहनको गोदमें लेकर कथा सुननेवाली थी। बड़े-बड़े मनसूबे बाँधे गये। दो सौ तो ब्राह्मण खिलाना चाहिए। हाँ, दो सौसे क्या कम होंगे ; आख़िर लोग कहेंगे क्या ? उसपर जाति है, बिरादरी है, आये हैं, गये हैं, इनकी तो कोई बात ही नहीं। पासमें पाये जानेवाले अच्छे-से-अच्छे हलवाई बुलाये गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिठाइयोंकी सुगन्धिसे गाँव सुगन्धित हो उठा। गाँवमें इस कथाकी ही चर्चा थी। कोई रामलाल और किशोरीकी शाहदिलीकी प्रशंसा करता और कोई—जिनमें स्त्रियोंकी ही संख्या अधिक थी—कहती—'किशोरीको देखो न, इतरा गई है। न-जाने कहाँसे किस ज़ातका लड़का उठा लाई, आसमान सिरपर उठाये चलती है। अगर उसका लड़का होता, तो न-जाने क्या करती।' पर किशोरीको इन बातोंपर ध्यान देनेकी फुरसत न थी। दरवाज़ेपर रोशनचौकी बज रही थी। औरतें मंगल-गान गा रही थीं। रामलाल और किशोरी गाँठ जोड़े मोहनको गोदमें लेकर कथा सुन रहे थे। कथा समाप्त हुई, रामलालके आनन्दमें प्रशंसाका पुट देते हुए लोग मिठाई-पूड़ीके भंडारको ख़तम करके अपने-अपने घर गये।

इस कथाकी तैयारीमें महीनोंसे रामलाल व्यस्त थे। न दिनको दिन समझते थे और न रातको रात। किशोरी कहती—'शरीर कमज़ोर है, ज़रा स्वास्थ्यपर ध्यान देकर काम करो। लोग तो सब कर ही रहे हैं, इतनी हाय-हाय करनेकी क्या ज़रूरत है?' रामलाल पत्नीकी ओर देखते और मुसकरा देते—'भई, दूसरोंको उपदेश देना मनुष्यका सनातन स्वभाव है। अपनेको तो नहीं देखती, दिन-भर लगी रहती हो। पहले तो खुद एक ग्लास पानी भी लेकर पीना मुश्किल था। और किया भी क्या जाय, यह दिन क्या रोज़-रोज़ आता है। अनेक प्रार्थना और प्रतीक्षाके बाद तो यह नसीब हुआ है।' किशोरी कहती—'मेरी बात छोड़ दो। मैं हट्टी-कट्टी जो हूँ।'

"ओहो, आप? अब समझ पाया हूँ। ताराबाईने अपना सर्कस बन्द क्यों कर दिया। आख़िर करती भी क्या? बेचारीके लिए और कोई चारा जो नहीं था। और लोग भी तो हट्टे-कट्टे हो गये हैं।" रामलाल हँसने लगे।

"जाओ, तुम्हारी आदत नहीं छूटेगी।" कहती हुई किशोरीने भी उसमें योग दिया।

कथाके दूसरे दिन ही रामलालके हृदयकी पीड़ा प्रारम्भ हो गई। गाँवके वैद्यजीसे लेकर शहरके बड़े-बड़े कविराजों और डाक्टरों तकने अपनी-अपनी अव्यर्थ महौषधियोंका प्रयोग किया; किन्तु फल कुछ भी न हुआ। रोग बढ़ता ही गया। किशोरी सब-कुछ भूल गई। रामलालकी सेवामें अपना दिन-रात एक कर दिया। मोहन पास ही रोना-सा बैठा रहता था। पिताके कंकाल-शेष चेहरा और माताकी उदास तथा रोनी सूरतको देखकर कभी रो पड़ता था। उस समय किशोरीके लिए अपनेको सम्हालना कठिन हो जाता। शोकका वेग धैर्यके बाँधको तोड़कर फूट पड़ता; पर दूसरे ही क्षण अपनेको सम्हालकर किशोरी कहती—"बेटा, रोते क्यों हो? माधुरी मौसीके घर हम तमाशा देखने चलेंगे न!" मोहन एक बार स्वीकृतिका सिर हिला देता और उसकी छातीमें अपना मुख छिपा लेता। कई दिन इसी प्रकार भावनाओंसे युद्ध करते बीत गये। प्रातःकाल किशोरी उठती, देवी-देवताओंकी प्रार्थना करती और मानसिक आघातोंको सहनेके लिए तैयार हो जाती; पर इस तरह भी दिन अधिक दिनों तक नहीं टल सके। एक दिन रात काँप रही थी, तारे झिलमिला रहे थे और रामलालने क्षीण स्वरमें पुकारा—"किशोरी!"

किशोरी पास ही बैठी भाग्यकी गुत्थियाँ सुलझा रही थी, पूछा—"क्या पीड़ा हो रही है? पानी पीओगे?"

"नहीं। पीड़ा? अब तो पीड़ाके अन्त हो जानेका समय आ गया है। किशोरी, तुम्हारे प्रेमकी शीतल छायामें मैंने जीवनके सन्ताप और कठिनाइयोंका कभी अनुभव नहीं किया। आज मृत्युकी इस विभीषिकामें, चिर-वियोगकी इस भीषण ज्वालामें, उसकी मीठी स्मृति शान्ति दे रही है। हाय!....कैसे कहूँ, मैं तुम्हें सुखी नहीं कर सका.... ख़ैर, मोहन तुम्हारा साथ देगा। उसको देखकर शोकको पार कर सकोगी।" रामलालकी वाणी लड़खड़ाने लगी, आँसूसे बिस्तर भींगने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोरीने काँपते गलेसे कहा—"रहम करो, ऐसी बातें मुँहसे क्यों निकालते हो ? तुम्हें हुआ ही क्या है ? वैद्यजी तो कहते थे, दो-चार दिनोंमें अच्छे हो जाओगे।" पतिकी छातीपर सिर रखकर वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

रामलालने टूटते हुए स्वरमें कहा—"का····श, ऐसा····हो····स····क····ता !" उसने झुकी हुई किशोरीकी पीठपर अपना शिथिल हाथ रख दिया। रामलालके हृदयकी गति कब बन्द हो गई, मूर्छित किशोरी कुछ भी नहीं जान सकी। प्रातःकाल संसार सूना था। अदृष्टकी आँधीने वृक्षको नष्ट कर दिया था। एक क्षुद्र बीजको लेकर उसे उपजाकर उसकी छायामें आश्रय पानेकी आशा की जा रही थी। आशाके ही कूलमें बँधकर तो जीवनके प्रवाहमें गति आ सकी है।

[६]

चारों ओरसे बँधकर, एक धारामें, नदीका वेग प्रबल हो उठता है। रामलालकी मृत्युके बाद किशोरीके सम्पूर्ण प्रेमका एकमात्र आश्रय रह गया मोहन। मोहनको लेकर उठती, बैठती, सोती, खाती और खेलती थी। पड़ोसिनें कहतीं—'कैसा कुलक्षण लड़का है। इसके आते ही बेचारीका सोनेका घर मिट्टीमें मिल गया।' किशोरीके लिए यह बात सबसे अधिक असह्य थी। किसीको तो फटकार देती और किसीसे कहती—'बहन, जो-कुछ होनेवाला था, सो तो होता ही। भवितव्यता टली कब है ? पर यदि मोहनको भगवानने न भेज दिया होता, तो मैं आज इस शोक-सागरको पार कैसे करती ? यही तो मेरा पतवार है।' पतिकी बात याद हो आती—'उसको देखकर शोकको पार कर सकोगी।' स्मृति हृदयमें कौंध जाती, झर-झरकर आँसू बहने लगते थे।

मोहनको पढ़ानेके लिए घरपर ही एक मास्टर आने लगे। यद्यपि पाठशाला पास ही थी ; पर किशोरी भेजती कैसे ? गाँवके लड़के बड़े नटखट होते हैं। कौन जाने कब कुछ शैतानी कर बैठें, मार-पीट दें ! और उसे आँखोंसे ओझल करके किशोरी रहेगी भी कैसे ? मास्टर साहबको कह दिया गया था, लड़केसे कुछ कहें नहीं। मोहन पढ़ता था और किशोरी बैठी रहती थी।

एक दिन किसीने आकर पुकारा—क्या बाबू रामलालजीका मकान यही है। उनसे पूछनेसे मालूम हुआ कि वे कल्याणपुरके ताल्लुकेदार बाबू फतहनारायण सिंहजीके कारिन्दा हैं। यह पता पाकर कि बाबू साहबका भूला हुआ पुत्र रामलालके पास है, ले जानेके लिये आये हैं। सुनकर किशोरी वज्राहतकी तरह मूर्छित हो गई। चेतना आनेपर सोचने लगी 'मोहन क्या चला जायगा, मैं रहूँगी कैसे ?' आज पतिका शोक मूर्तिमान होकर उसके सामने खड़ा हो गया। सारा संसार सूना दीखने लगा, वह इस शोक-सागरको पार कैसे करेगी ? फूट-फूटकर रोने लगी। पर दूसरे ही क्षण उसे मोहनकी माकी याद आ गई। वह बेचारी तो मा है। मेरी ही तरह—मुझसे भी बढ़कर--तो उसका भी स्नेह है। मैं अपने लिए उसे क्यों तड़पाऊँ ? हाय, बेचारी इतने दिनों तक कैसे रही होगी ! आँखोंमें फिर बरसात लग गई। उसने कहवा दिया, मोहन जायगा, दासीसे कहा—'पूछो तो, उसकी मा तो खूब रोती रही होगी, बड़ा कष्ट हुआ होगा ? अब पता पाकर शान्त हुई होगी।'

कारिन्देने कहा—"यदि मा होती, तो यह भूलता ही कैसे ? उस दिन तो माके ही साथ था यह बच्चा। दासियाँ पास ही खड़ी होकर मेला देख रही थीं। हम लोग बाबू साहबके साथ मर्दाने घाटपर थे। शायद मा नहाने गई थी, चंचल स्वभाव होनेके कारण यह कहीं इधर-उधर टल गया। उन्हें जान पड़ा, यह भी उनकी देखा-देखी गंगामें उतर गया और डूब गया। वे—'हाय बच्चा' कहकर पानीमें इधर-उधर ढूँढ़ने लगीं। बरसाती गंगाकी एक भूखी भयावनी लहर आई और उन्हें निगल गई। दासियोंका शोरगुल सुनकर जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग वहाँ पहुँचे, तब तक तो सब खतम हो चुका था। करते ही क्या ? रो-धोकर सब लोग घर लौट गये। बहुत दिनोंके बाद यह पता पाकर कि आप लोगोंने दया करके इसे पाला है, बाबू साहब सुखी हुए हैं। यद्यपि आपके उपकारोंका मूल्य तो नहीं चुकाया जा सकता ; पर यह कुछ पत्र-पुष्प आपकी सेवामें भेजा है।" कहकर नोटोंका एक बड़ा पुलिन्दा दासीसे भिजवा दिया।

किशोरीने उसे बाहर फेंक दिया और कहा—"जाकर कह दो, मोहन नहीं जायगा। माके बिना वह नहीं रह सकता।"

कारिन्देने कहा—"यह कैसे हो सकता है, उसे तो भेजना ही होगा। आखिर सब बातोंकी एक हद भी होती है।"

किशोरी क्रोधसे तलमला उठी, बोली—"घरसे बाहर निकल जाओ। मैं नहीं भेजती, जो करना हो, कर लेना।" कहकर अन्दर चली गई और मोहनको छातीसे लगाकर फूट-फूटकर रोने लगी।

बाबू साहब आये, आसपासके मातबर लोगोंको इकट्ठा किया, मोहनको भेज देनेके लिए किशोरीसे प्रार्थना की। लोगोंने कहा—"एक चिड़ियाको पालकर उसको भी छोड़नेमें कष्ट होता है, फिर यह तो बच्चा है, हिलमिल गया है। यद्यपि इसे भेजनेमें आपको बहुत कष्ट हो रहा होगा ; पर किया भी क्या जाय ? दूसरेका बच्चा है, कब तक साथ रख सकेंगी ! एक दिन तो भेजना ही होगा। चार भले आदमियोंकी बात माननी होती है। जब चाहेंगी, आप उसे बुलाकर देख सकेंगी।"

किशोरी कुछ भी नहीं बोल सकी। अधिक बोलनेकी उसकी आदत भी नहीं थी और पंचोंकी बातको बिना किसी तर्कके स्वीकार कर लेनेकी उसे लड़कपनसे ही शिक्षा मिली थी। "अच्छा, मोहन जायगा। मैं इसे अस्वीकार भी कैसे कर सकती हूँ, ओसको चाटकर अब तक किसकी प्यास बुझी है ?" कहती हुई किशोरी उठी, घरमें आकर फूट-फूटकर रोने लगी। मोहन पढ़ रहा था। आजके पाठको सुनानेकी खुशीमें आकर माके गलेसे लिपट गया ; मगर माकी आँखोंमें आँसू देखकर उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। भर्राये हुए गलेसे पुकारा—माँ !"

"बेटा,....मोहन, तुम्हारे बाबूजी आये हैं, कल तुम उनके साथ जाओगे न ?"

"कहाँ ?....ना....हाँ, हाँ, जरूर जाऊँगा। अच्छा अम्मा, मेरे लिए घोड़ा लाये हैं न ? ओ हो, अब खूब चढ़ूँगा ; किन्तु मुन्नीकी तरह नहीं होनेसे नहीं लूँगा।"—मोहनने स्वाभाविक सरलतासे कहा।

"बेटा, वहाँ बड़े-बड़े सुन्दर घोड़े मिलेंगे। इस ग़रीबीमें मैं तुम्हें दे नहीं सकी।" कहती हुई किशोरी फिर आँसू बहाने लगी। मोहन कुछ देर तक तो देखता रहा, बादमें उसने भी माका साथ दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर किशोरीने अनेकों तरहके पकवान बनाये। अपने हाथसे मोहनको खिलाया और उसे सबसे अच्छा कपड़ा पहनाकर घूमने जानेका भुलावा देकर बाबू साहबके साथ भेज दिया। जब तक दिखलाई पड़ता रहा, दरवाज़ेपर खड़ी होकर देखती रही। आँखोंसे ओझल होते ही किवाड़ बन्द कर दिया और घरमें आकर मूर्छित होकर गिर पड़ी।

[७]

मोहन चला गया, किशोरी अकेली हो गई। आजसे चार वर्ष पहले भी तो अकेली थी ; मगर आजकी किशोरी वह किशोरी न रही। उस समय उसके चारों ओर पतिका प्रेम था और भविष्यकी सुनहली आशा। मोहन न था ; पर मोहनकी सैकड़ों मीठी कल्पनाएँ थीं। उस समय हँसता मोहन मिलनेवाला था, आज मचलता मोहन खो गया था। किशोरी सोचती और रो-रोकर आँचल भिगोती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहनकी एक-एक बात उसके आँखोंमें नाच रही थीं। संयोगकी अपेक्षा वियोगमें हम अपने प्रियको अपने अधिक सन्निकट पाते हैं। कई दिनों तक उसके घरका दरवाज़ा नहीं खुला। पड़ोसिनें आतीं, सखियाँ आतीं, पुकारतीं, दुःख प्रकट करतीं। अपनी समवेदना को नारी-सुलभ आँसूमें भिगोकर चली जातीं। हमारी समवेदनाएँ अधिकतर उन मनोविकारोंकी सन्तान हैं, जिनमें सचमुच दुखी होनेकी अपेक्षा दूसरोंके दुखको जगाकर उनकी विकलताको देखनेकी लालसा छिपी रहती है।

कुछ ही दिनोंमें किशोरीका कार्य पहलेकी तरह चलने लगा। उसकी सखियाँ उसे स्वस्थ्य देखकर कुछ निश्चिन्त हुईं। किशोरी सुबह उठती, गाँवके या गाँवके बाहरके मोहनकी अवस्थाके लड़कोंको बुला मँगाती। बड़े उत्साहसे भोजन बनाती, खिलाती, मोहनके कपड़ोंको उन्हें पहनाकर दिन-भर उनसे खेला करती और संध्याको पहना-ओढ़ाकर उन्हें विदाकर देती। अपनी भूख और प्यासको बिलकुल भूल गई थी। मोहनकी लिखी हुई कई कापियाँ घरमें पड़ी थीं। दीपक जलाकर जब तक वह सो न जाती, उन्हें ही पढ़ा करती थी। वही उसकी गीता या उससे भी कोई महत्वकी चीज़ थी।

दिन आते और चले जाते। किशोरी देखती और देखकर भी अनदेखी कर देती। उसका दैनिक कार्यक्रम था मोहनके कपड़ोंको बच्चोंको पहनाकर देखना, खिलाना, खेलना और रातमें उसकी कापियोंका पाठ करना; किन्तु यह क्रम भी बहुत दिनों तक न चल सका। मोहनके कपड़े खतम हो गये, किशोरीको फिर धक्का लगा। अब वह कैसे अपनेको भुलायेगी?

दूसरे दिन रोज़की तरह नौकर आया, पूछा—"मा, आज किसे बुलाना होगा?" मगर किशोरीकी दशा देखकर वह घबड़ा उठा। किशोरी ज़मीनपर पड़ी थी। उसके वस्त्र फटे-चिथे थे। केश बिखरे पड़े थे। शरीरमें जगह-जगहसे रक्त निकल रहा था। कभी रोती थी, कभी हँसती थी और कभी गाने लगती थी। नौकरका चीत्कार सुनकर पास-पड़ोसकी औरतें जमा हो गईं, किशोरीकी दशा देखकर रोने लगीं। वह बड़बड़ाने लगती—'ऊँह····मोहन, तुम्हारा साथ देगा····हाः हाः हाः हाः उसको देखकर शोकको पार कर सकोगी!' वह रोने लगती, बीच-बीचमें हँस भी देती, फिर गाने लगती—'सैंयाँ भये कोतवाल अब डर काहेका····घोड़ा लाओ, घोड़ा लाओ, घोड़ा है अलवेला, मेरा चार छदामका घोड़ा! हा-हा-हा-हा!' उसे अपने तन-वदनकी सुधि नहीं रही। औरतें उसके वस्त्रको ठीक कर देतीं, वह फिर नोंचकर फेंक देती। सब लोग घबड़ा गये।

मोहनको लानेके लिए लोगोंने बाबू साहबके यहाँ आदमी दौड़ाया। यह समाचार सुनकर बाबू साहबकी आँखें गीली हो गईं और मोहनको लेकर वे खुद आये। किशोरी वैसी ही बेखबर थी। बहुत दिनों तक मासे बिछुड़े हुए बछड़ेकी तरह द्वारपर से ही मोहनने पुकारा—"मा!" किशोरीने सिर ऊँचा किया। दूसरी बार फिर सुना—"मा!"

किशोरी दौड़ पड़ी, दरवाज़ेपर मोहन खड़ा था, गलेसे लगा लिया—"मेरे भैया, मेरे लल्लू, तू कहाँ था?"

किशोरीने देखा, उसके वस्त्र अस्तव्यस्त हैं। वह लज्जासे गड़ गई। मोहनको लेकर घरमें भग गई। कपड़े बदलकर वह हँसती हुई उससे खेल रही थी और वहाँका समाचार पूछ रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या गोवध रोका जा सकता है ?

श्रीराम शर्मा

कई वर्षोंसे हिन्दी-समाचारपत्रोंमें गोपालन और गायकी महत्तापर सरस और सुबोध लेख निकल रहे हैं। गोपालन और गायपर हिन्दीमें दो-चार कामचलाऊ पुस्तकें भी निकली हैं और गोवधको भारतवर्षसे उठानेका थोड़ा-बहुत प्रयत्न भी हुआ है ; पर विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान परिस्थितिमें गोवध रोका जा सकता है ? इस छोटेसे लेखमें हमें गायकी महत्ता और उपयोगितापर कुछ नहीं लिखना। गायकी महत्ता और उपयोगिताके तो सब क़ायल ही हैं, और जब गायको गोमाता कह दिया, तब श्रद्धा और भक्तिकी पराकाष्ठा ही समझनी चाहिए। हमारा कहना तो यह है कि बच्चोंको भैंसका दूध पिलाकर लोग अपने बच्चोंके प्रति अत्याचार करते हैं। और उन बच्चोंके विषयमें हम क्या कहें, जो गोदुग्ध बिना ही नहीं, वरन् साधारण भोजन बिना तरसते हैं। हाँ, तो तनिक विचार कीजिए कि क्या हम भारतवर्षमें गोवध रोक सकते हैं। इसी बातको कौंसिलकी भाषामें यों भी कहा जा सकता है कि क्या गोवधका रोकना सम्भव भी है ? इसका उत्तर हम ज़ोरदार शब्दोंमें देते हैं कि कदापि नहीं। क्यों ? क्या इसलिए कि हम निराशावादी हैं, अथवा इसलिए कि गायके प्रति हम लापरवाह हैं। नहीं, हर्गिज़ नहीं। हमारा वश चले तो सरकारी बजटके सैनिक-विभागसे पाँच करोड़ रुपया सालाना काटकर गोपालन-योजनामें प्रत्येक प्रान्तमें दूध-बोर्ड क़ायम करें, प्रत्येक गाँवमें चारागाह स्थापित करा दें और गायके दूध और मक्खनको देशकी आशा -- बच्चोंको सस्ते दामोंपर पिलायें और खिलायें।

जब हमारी निजी भावना गायके प्रति ऐसी है, तब फिर यह क्यों कहा जाता है कि गोवधका रोकना सम्भव नहीं, वह इसलिए कि वर्तमान परिस्थितिमें गोवध रुक नहीं सकता। इस विषयमें एक पग और आगे बढ़िये। गोवधका ज़िम्मेदार कौन है ? क्या वे कठमुल्ले मुसलमान, जो गायको सजाकर धर्मभीरु हिन्दुओंका दिल दुखाते हैं ? अथवा वे कसाई, जो बूचड़खानोंमें हज़ारों गायोंपर छुरी चलाते हैं ? हमारे मतसे गायकी कुर्बानी करनेवालोंपर गोवधकी ज़िम्मेवारी उतनी नहीं, जितनी और लोगोंपर। गोवधके उत्तरदायित्वके लिए हमारी कसौटी मनु महाराजकी नहीं है। हम तो बस गोवधपर साधारण दृष्टिसे विहंगावलोकन करना चाहते हैं। गायकी कुर्बानीपर हिन्दू लोग इसलिए बिगड़ पड़ते हैं कि उनके दिलोंको दुखाया जाता है, नहीं तो कसाईखानोंमें प्रतिदिन हज़ारों गायें कटती हैं और कोई हिन्दू वहाँ लड़ने-झगड़ने नहीं जाता। रही दिल दुखानेकी बात, सो अनुचित, अशिष्ट और अप्रिय बातसे दिल दुखता ही है। हाँ, तो गोवध होता है गोरे लोगोंके लिए। गोरोंका वह भोजन है ! मुसलमानोंको उससे कुछ आपत्ति नहीं ; पर गो-मांस खानेवाले मुसलमान नाममात्रको ही मिलेंगे।

पहला मुख्य कारण गोवधका है गोरोंकी ख़ूराक और दूसरा है देशकी ग़रीबी। ग़रीबी और गोवधका क्या सम्बन्ध ? शहर छोड़कर तनिक देहातकी ओर आइये और किसानोंकी अधोगतिपर आँसू न बहाकर उनकी दुर्दशाका ख़याल कीजिए। आँसू बहानेसे काम न चलेगा। आँसू बहाकर ग़रीबी नहीं बहाई जा सकती। किसान दो पाटोंके बीचमें पिस रहे हैं, लगान और कर्ज़ेका कर्ज़ तो देना ही पड़ता है। फ़सल इतनी होती नहीं कि वे लगान और कर्ज़ दे सकें। खलियानसे अन्न कर्ज़दार या ज़मींदारकी अदायगीमें चला जाता है। किसानोंके बच्चे तड़पते रह जाते हैं। लगान और कर्ज़ेकी रक़म इतनी अधिक होती है कि सारी फ़सलकी पैदावार भी कर्ज़ और लगान-रूपी अन्धकूपको नहीं भर सकती। लगान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कर्ज़की किश्त होती है। बेदख़ली और कुर्की निकलती है। किसानोंको अपने पशु बेचने पड़ते हैं। उन सड़े-बुसे जीवित कंकालोंको कौन ख़रीदे ? और ख़रीदकर क्या करे ? बूढ़े और कमज़ोर बैलों, गायों और भैंसोंको क़साईके अतिरिक्त और कौन ख़रीद सकता है ? पहले तो बढ़िया बैल किसान ख़रीद ही नहीं सकते और दूसरे कुर्की तथा बेदख़लीके भूतका सामना करनेके लिए गाय-बैलका आधा दाम ही मिलता है। इस प्रकार भारतवर्षमें हज़ारों गाय-बैल किसानों द्वारा बेचे जाते हैं और बेचनेवाले होते हैं सभी प्रकारके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और गायकी क़सम खानेवाले अन्य हिन्दू। वे जानते हैं कि वे कसाइयोंको अपने गाय-बैल बेच रहे हैं ; पर मजबूरी है। उनके लिए यह बात सोलहो आना सत्य है कि 'जहाँ रोज़ी नहीं चलती, वहाँ मज़हब नहीं चलता।'

एक दूसरे दृश्यका अनुमान कीजिए। रब्बीके सींचनेका समय है। कुएँ तैयार हो रहे हैं। कुआँ चलानेके लिए चरसोंकी आवश्यकता है। बाज़ार गरम है। रुक्का करके दस-बारह रुपये लेकर किसान बाज़ार जाते हैं, चमारोंके यहाँ किसान चरस (पुर)का मोल-भाव करते हैं और चमारसे आग्रह करते हैं, 'हलालीका चउँए'। बूचड़खानेमें कटे गाय-बैलका चरस ही अच्छा होता है। प्राकृतिक मौतसे मरे जानवरकी खाल किसी कामकी नहीं होती—बहरहाल उसका चरस नहीं बन सकता। भैंस और भैंसेकी खालका चरस अच्छा नहीं होता। इन पंक्तियोंके लेखकको भी चरस ख़रीदने पड़ते हैं, और गोवधकी ज़िम्मेदारी उसपर भी है। कैनवस (किरमिच) के चरस या मशीनसे ट्यूबवेलसे सिचाई हो सकती है ; पर उसके लिए किसानके पास रुपया कहाँ है ?

रही मजबूरी और ज़रूरतकी बात, सो चमड़ेका अधिक प्रयोग करनेवाले लोग चाहे वे कोई हों, गोवधके लिए ज़िम्मेदार हैं। हमने एक अमीरको, जो गायके बच्चेकी खालका बढ़िया जूता पहने थे, हाथमें बछड़ेकी खालका घड़ीका तस्मा डाँटे थे और जिनके पास बढ़िया गोचर्म (Best cow hide) का हैंड बेग था, गायको प्रेमवश जलेबियाँ खिलाते देखा है। बहुत बढ़ियाँ जूतोंके लिए गायके बच्चे मारे जाते हैं और उनसे अमीरोंके पैरोंकी शोभा बढ़ाई जाती है। यदि चमड़ेका व्यवहार कम किया जाय, तो 'माँग और उत्पादन' (Demand और Supply) के नियमके अनुसार गोवध कम हो। और फिर इस उद्योग-धन्धोंके युगमें मिलों और मशीनोंमें कितना गोचर्म लगता है।

इसलिए जब तक देशमें ग़रीबी है और गाय-बैलके चमड़ेकी माँग है—वह माँग चाहे चरसों, जूतों और मिलोंके लिए ही हो—तब तक गोवध बन्द नहीं हो सकता। हाँ, उसको कम करनेके अनेक उपाय हैं। दूध देनेवालों जानवरोंके कटनेको क़ानूनन जुर्म करार देने, प्रत्येक गाँवमें चरागाह क़ायम करने और गोवंशकी नसल अच्छी करने, कम दामपर बढ़िया बैल और गायको किसानोंको बेचने और ग़रीबीकी वैतरणीको सुखानेसे गोवध बहुत कम हो सकता है।

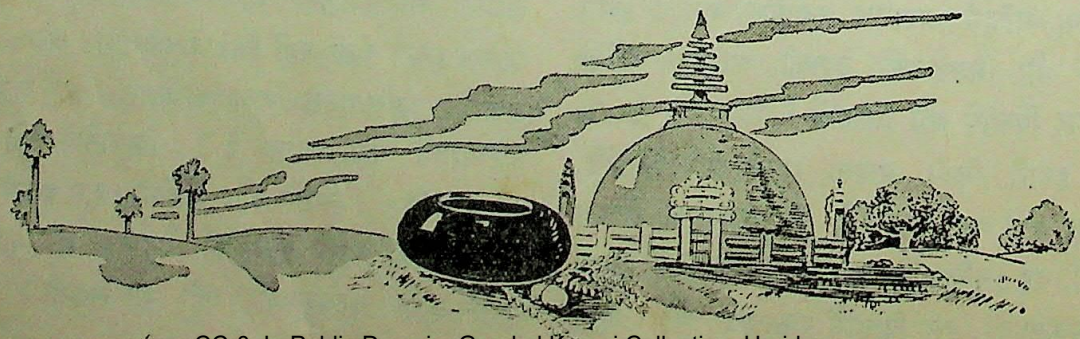

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंशज

श्रीमती सुभद्रा काटजू (हाकसर)

बात भटनागर-परिवारकी है। प्रातः सात बजे लेडी डाक्टरने कमरेसे बाहर आकर हँसते हुए गृहिणीसे कहा—"माताजी, बधाई है, बालगोपाल पधारे हैं।"

गृहिणीका चिन्ताकुल मुख एक बार ही श्वेत हो गया, मानो प्राण नहीं रहे देहमें। कोनेमें बैठी नौकरानी क्षेमाकी आँखोंसे चुपचाप आँसू बरसने लगे। लेडी डाक्टरने मन-ही-मन चकित होकर सोचा, 'भगवान यह क्या काण्ड है? बालिका होनेपर परिवारको रोते देखा है; पर बालकके शुभागमनपर गंगा-जमना बहती तो सुनी नहीं!' लेकिन इस गंगा-जमना बहानेका जो कारण है, वह किसीको क्या मालूम? वर्तमानको समझनेके लिए पुराने इतिहासके पन्ने उलटने पड़ेंगे।

और यह पहलेकी बात—मेरठमें कृष्णबिहारी बाबूका परिवार बहुत पुराना है। बहुत पुरानेके अर्थ हैं औरंगज़ेबके समयका। कृष्णबिहारी बात करते, तो किसी-न-किसी प्रकार वह पहुँच जाती उनके २०० वर्ष पहलेके पूर्वज कृष्णचन्द्र तक। उनके जीवनकी कौतुकमयी, आश्चर्ययुक्त, ऐश्वर्यपूर्ण घटनाओंका वर्णन करते-करते उनका स्वभावसे शान्त चेहरा एक बार ही सुर्ख हो जाता, नेत्र चमकने लगते। और नेत्र चमकनेकी बात भी है। पूरे २०० वर्षोंसे इस परिवारने अपना मस्तक ऊँचा रखा है। उनके वंशज अधिक नहीं हैं। पेड़का तना बिलकुल सीधा खड़ा है। इधर-उधरसे शाख नहीं निकली; लेकिन है तो एक और सीधा। फिर कृष्णबिहारीके नेत्र वंशके वैभवको सोचकर क्यों न गर्वसे चमकें। कृष्णबिहारीके लड़के हैं आनन्दबिहारी। बस, एक हैं। इस परिवारमें कभी दो लड़के नहीं हुए। यह भी परिवारके ऐश्वर्य और वैभवका शुभ-सूचक है।

जिस दिन आनन्दबिहारीकी बहूके चौथी कन्याका जन्म हुआ, पड़ोसिन हेमनलिनीने दबे हुए स्वरसे गृहिणीको बधाई देकर कहा—"लड़की जिये, घरके लिए शुभ हो और भाईको लावे।"

गृहिणी लक्ष्मीने तुरन्त ही कहा—"हेमनलिनी बहन, तुम लड़केके लिए सोच न करो। हमें लड़केके लिए कभी हाथ पसारना नहीं पड़ा। हमारा वंशज अपने समयपर आ जायगा।"

पास खड़ी हुई अन्नपूर्णा, जो दूरकी बुआ लगती हैं, जल्दीसे बोलीं—"हाँजी हेमनलिनी, हमारे लिए लड़कियाँ भी लड़केके समान हैं। हँसती क्यों नहीं हो जी? क्या मन ठीक नहीं है!"

समयसे लक्ष्मीकी बात पूरी हुई। बालक श्यामबिहारीने शुभ समयमें जन्म लिया। दादा और दादीकी प्रसन्नताका आवेग मानो थमता ही नहीं। कृष्णबिहारी बाबूका आधा समय बीतता है ज्योतिषियोंके साथ। सब एक स्वरसे कहते हैं, बच्चा बड़ा भाग्यवान है। बड़ी चमत्कारी कुण्डली है महाराज! जो भी हो, सारे परिवारमें सुखकी हँसी बिखर पड़ी। गृहिणी लक्ष्मी नौकरसे भी बात करतीं तो हसकर। नौकर-चाकर भी मानो प्रसन्नतामें रँगे हैं। क्षेमा नौकरानी तो आधी पागल हो रही है। बहूजी, बहूजी, भैया साहब! बस, बात यहीं रह गई। हँसीका फुहारा बरस पड़ा।

गृहिणी कहतीं—"अरी, तू क्या पागल हो जायगी? क्या घरमें कोई बात निराली हुई है?"

जो-कुछ भी हो; पर धूमधाम तो निराली ही है। दिन-भर बाहर शहनाई बजती है। सदाव्रत खुला है। घरमें कोकिल-कंठसे पारवारिक स्त्रियाँ राग अलापती हैं। दिन-भर लोगोंके आने-जानेकी चहल-पहल है। सारे शहरमें मशहूर हो गया, भटनागर-परिवारका वंशज आ गया।

इसी सुखकी गंगामें नहा-नहाकर बालक चन्द्रकी नाईं बढ़ने लगा। पहले दादाकी गोदमें लेटे-लेटे उनकी दाढ़ीके बाल नोचे, फिर कुछ दिन बाद छोटे-छोटे हाथोंसे हाथ पकड़कर कहना सीखा—बा-बा-आ। कृष्णबिहारी बच्चेको गोदमें लेकर गृहिणीसे कहते—'देखती हो पेशानी। बच्चा बड़ा नामवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलेगा।' और प्यारसे बच्चेके हाथको अपने मुँहपर फेरते। फिर जब बच्चा और बड़ा हुआ, तब वह उनके साथ-साथ खाता और उन्हींके पास सोता। इस तरहसे बालक श्यामबिहारीके पाँच वर्ष बीत गये।

एक दिन संध्याको दादाके साथ घूमकर लौटा, तब माँको गोदमें छुपकर कहा—"मा, मैं पढ़ूँगा।"

बाबाने कहा—"हाँ, हाँ, भैया बड़ा हुआ, ज़रूर पढ़ेगा।" गृहिणीकी तरफ़ देखकर कहा—"सुनती हो जी, भैयाका विद्यारम्भ करवाना होगा। जल्दी ही, समझीं! पंडितोंको कल बुलवाना।"

पर हाय रे भगवान! कलकी बातको किसने जाना है? इस रंगीन आवरणके पीछेका भेद किसने पाया है?

सुबह हुई। नित्यकी तरह दादाने बच्चेके माथेपर हाथ फेरा और हाथ मानो वहीं माथेपर ठिठुर गया। यह क्या है ठण्डा? ठण्डा क्या है? कृष्णबिहारी चीत्कार करके गिर पड़े। पल-भर ही में घरमें हाहाकार मच गया। बालक सबका दिल लूटकर चला गया!

पड़ोसिनें आ-आकर सान्त्वना दे-देकर चली गईं। चलते-चलते हेमनलिनीने तारा ठकुरानीसे धीरेसे कहा—"दुनियामें दुनियाके लोगोंकी तरह चलना चाहिए, भई! गर्व करनेसे देखो तो क्या होता है।" पड़ोसी रो-पीटकर चले गये; पर घरमें तो मानो रात आ गई। एक ही बार। और इस रातमें नक्षत्र भी तो नहीं है।

इस तरह बीत गये १८ वर्ष। और अब १८ वर्षके बाद आज सुबह-सुबह यह लेडी डाक्टर खड़ी-खड़ी कह रही है—'बहूजी, बालगोपाल पधारे हैं।' तो यह गृहिणी क्या कहें, क्या करें?

अन्दर कमरेमें ४५ वर्षकी बहू बच्चेको गोदमें लेकर घुमा-फिराकर देखती है, यह स्वप्न है या सत्य? बाहर कमरेमें कृष्णबिहारी और आनन्दबिहारी बैठे हैं, कह रहे हैं, बाल-गोपाल आये हैं! कौनसे बालगोपाल?

लेकिन घरमें सन्नाटा है पूरा। अरे किधर है २३ वर्ष पहलेकी शहनाई और रागके सुर? न आँसू हैं, न हँसी! केवल क्षेमा चुपचाप बैठी आँसू बहाये जा रही है!

प्रथम मिलन

मिले लोचनसे लोचन लोल,
उठे उर आपसमें कुछ बोल,
गये हो व्यक्त अचानक, हाय!
छिपे दो हृदयोंके उद्गार;
गया हट मनपर से कुछ भार।

ज्वलित उर ले अधरोंमें प्यास
छानते पृथ्वी-तल-आकाश,
मूक भाषामें आकुल प्राण,
शून्यमें करते प्रणय-पुकार—
साधना ही जीवनका सार।

युगल मानसमें उठ अनुराग
जगाता सुप्त निशाका भाग,
सदा अस्पष्ट रही जो साध,
आज सहसा होती साकार;
आज दो मिलकर एकाकार।

स्नेह-सरिताकी विकल तरंग
रही मिल प्रेमांबुधिके संग,
पुलक नभ गाता मंगल गान,
अमर हो प्रथम-मिलनका प्यार;
असीमित-सीमितका अभिसार!

—गंगाप्रसाद पांडेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

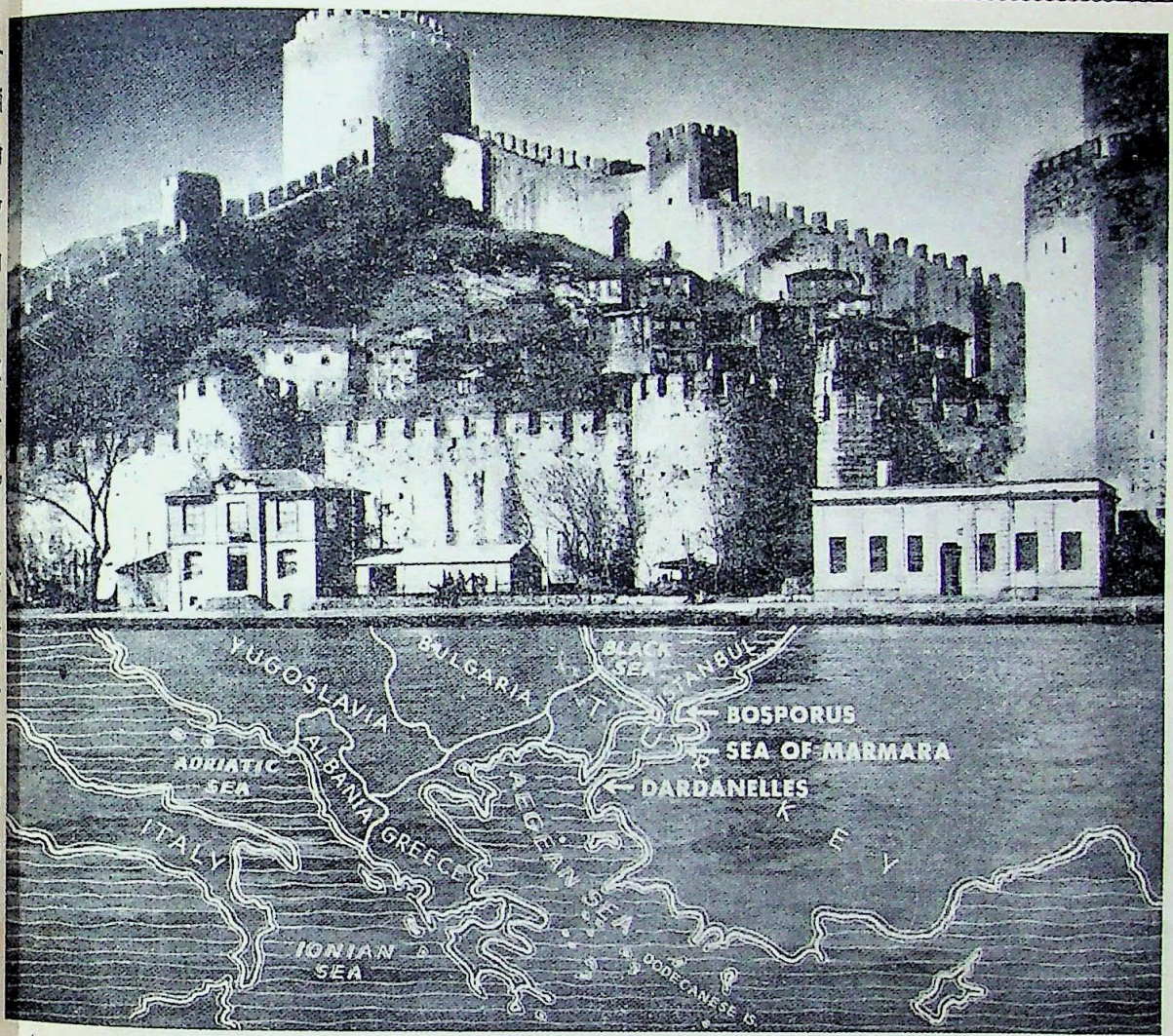

दर्रा दानियालकी पुरानी क़िलेबन्दी और नक्शा

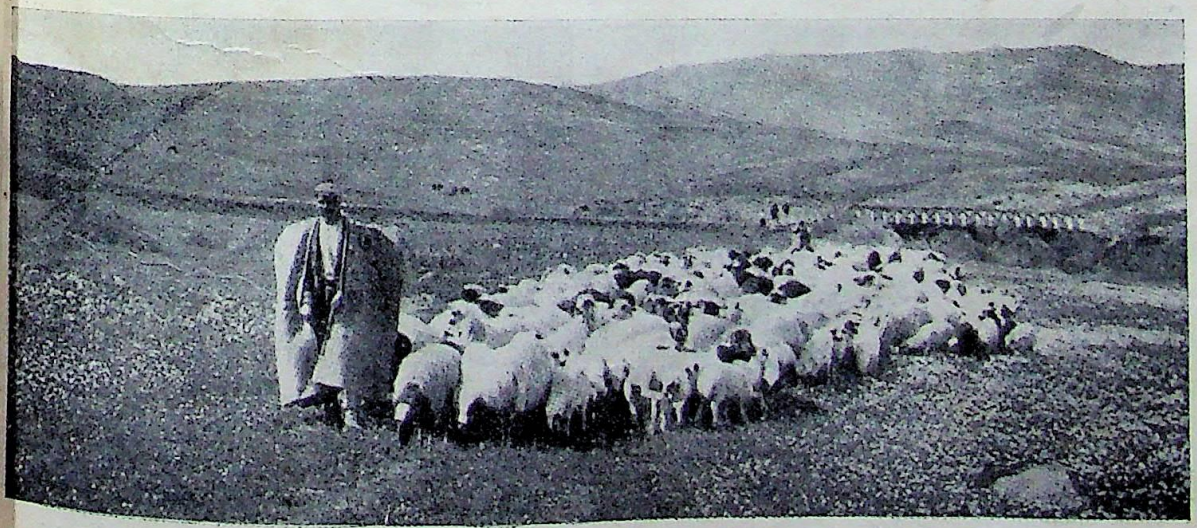

दर्रा दानियालके इस ओरका एक तुर्की चरवाहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

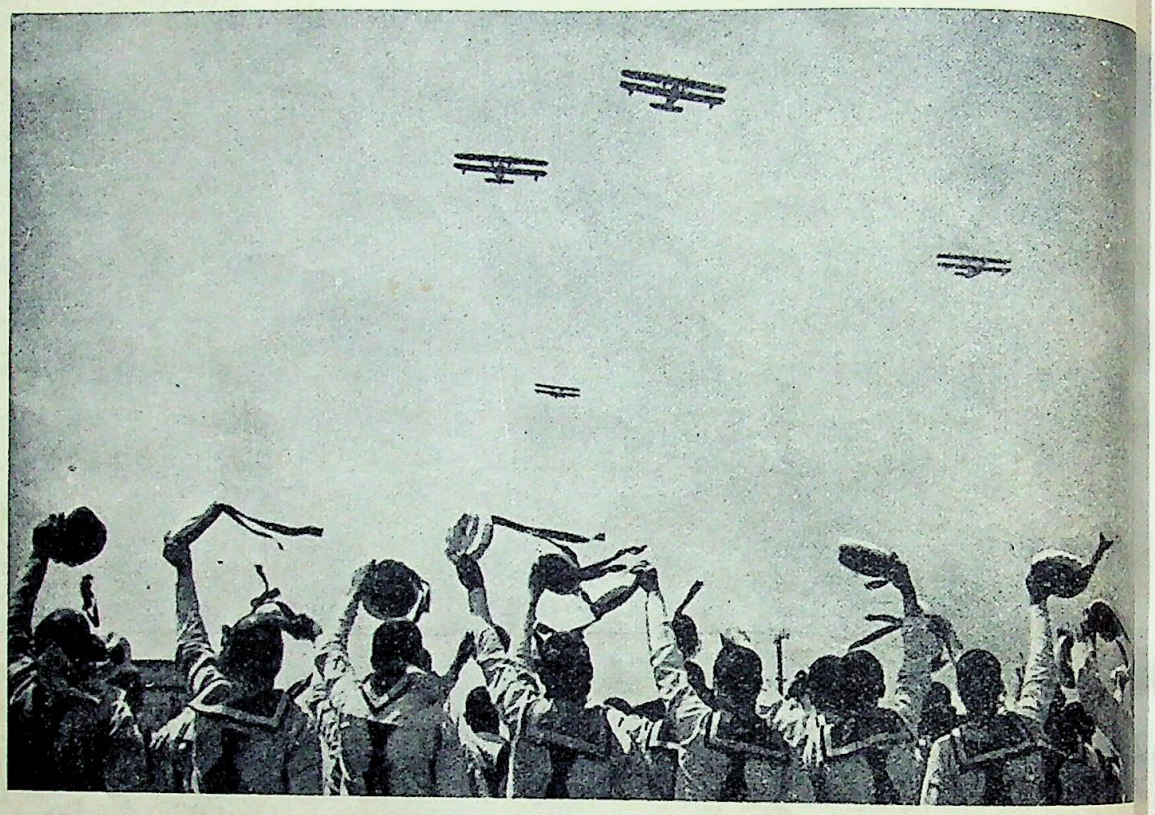

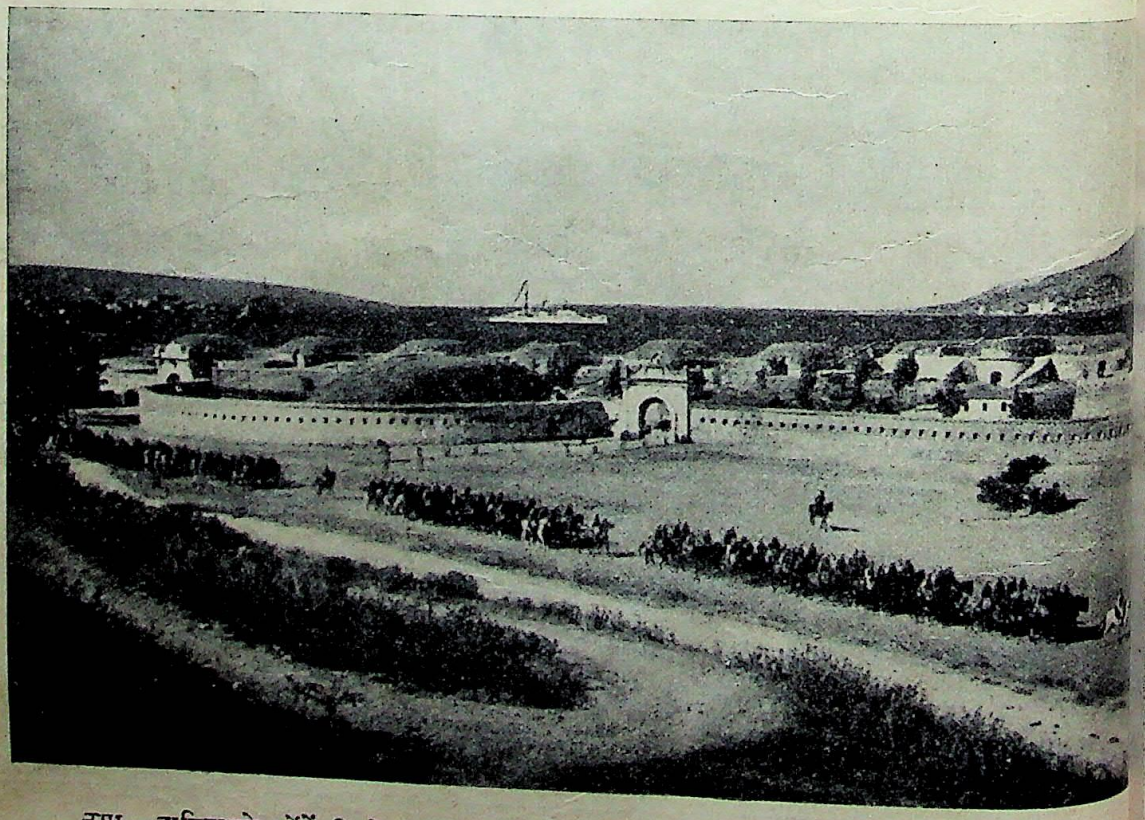

ऊपर—दानियालके दर्रेमें फिरसे क़िलाबन्दी करनेका अधिकार पानेपर टर्कीमें उत्साहकी एक लहर दौड़ गई है

नीचे—तेरह वर्षके बाद पहले-पहल तुर्की घुड़सवार चानाकेलमें प्रवेश कर रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोलिश आज़ादीके सैनिक

कुमारी इवा रुज़का, पोलैण्ड

पोलैण्डकी स्वाधीनता नष्ट हो जानेके बाद उसके हिस्से-बखरे हो गये। उसके कुछ भागको जर्मनोंने दबाया, कुछपर आस्ट्रियनोंने कब्ज़ा जमाया और देशके अधिकांश भागको रूसके ज़ार हड़प कर गये। पोलैण्डवालोंने बहुत-कुछ हाथ-पैर मारे; परन्तु देशको स्वतन्त्रता दिलाना तभी सम्भव था, जब जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस इन तीनों शक्तिशाली राष्ट्रोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ा जाता। किसी परतन्त्र देशके लिए ऐसी बड़ी तीन-तीन शक्तियोंके विरुद्ध लड़ सकना बहुत दुस्तर है; किन्तु पोलैण्डवाले इससे हताश नहीं हुए, वरन भरसक कोशिश करते रहे। पोलैण्डके एक कविने भविष्यवाणी भी की थी कि भविष्यमें एक ऐसा युद्ध होगा, जो विश्व-युद्ध बन जायगा और जिसमें पोलैण्डके ये तीनों शत्रु जूझ मरेंगे। पोलैण्डके विदेशी शासकोंकी यह नीति रही कि पोलैण्डवालोंमें राष्ट्रीयताके विचारोंको एकदम नष्ट कर दिया जाय और उन्हें जर्मन, आस्ट्रियन या रूसी बना दिया जाय। पोलैण्डके निवासी शासकोंकी इस नीतिका बराबर सक्रिय विरोध करते रहे और उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावनाओंको नष्ट नहीं होने दिया।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें यूरोपका राजनैतिक वातावरण काफ़ी काला हो रहा था। विभिन्न राष्ट्रोंके समझौतों और गुटबन्दियोंने यूरोपमें युद्ध अवश्यम्भावी-सा कर दिया था।

इसी परिस्थितिमें जोसेफ पिल्सुड्स्कीके मनमें पोलैण्डके लिए एक राष्ट्रीय सेना बनानेका विचार आया। सन् १९०५ में रूसी ज़ारोंके विरुद्ध जो विद्रोह हुआ था, पिल्सुड्स्की उसमें पोलिश साम्यवादी विद्रोहियोंका नेता था। सन् १९०८ में उसने पोलिश आज़ादीके लिए एक नियमित सेना बनानेका निश्चय किया। पहले इस सेनाका नाम रखा गया 'सक्रिय विरोध संघ' (Union of Active Combat); पर बादमें यह 'पोलिश लीजियन्स' के नामसे प्रसिद्ध हुई। इस सेनामें अधिक-से-अधिक स्वयंसेवक आ सकें, इसलिए पिल्सुड्स्कीने यह घोषणा कर दी कि इसका सम्बन्ध न तो साम्यवादी दलसे होगा और न पुराने रूढ़िवादी दलसे। सेनाका उद्देश था पोलैण्डके छिन्न-भिन्न भागोंको एकत्रित करके एक जनतन्त्रवादी स्वतन्त्र पोलैण्डकी सृष्टि करना। इस सेनामें दो विभाग रखे गये थे। सन् १९१४ में इस सेनामें ४,००० सदस्य प्रथम श्रेणीके और ६,४५० द्वितीय श्रेणीके थे। उस समय पिल्सुड्स्कीके साथियोंमें संसकोवस्की, जो आजकल फौजमें जनरल हैं; स्मिग्ली रिज़ (Smigly Rydz), जो आजकल प्रधान सेनापति और मार्शल हैं; भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री प्रस्टर तथा कुछ अन्य लोग थे।

सन् १९२० में पिल्सुड्स्की जनरल रिज स्मिगलीके साथ वार्साके युद्ध-क्षेत्रका नक़्शा देख रहे हैं

इस सेनाके संगठनका उद्देश्य यह था कि कमीशन-प्राप्त और नान-कमीशन-प्राप्त अफसरों और सैनिकोंका एक ऐसा जत्था तैयार किया जाय, जो देशके लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करे, साथ ही जिसपर स्वतन्त्र पोलैण्डकी भावी सेनाकी बुनियाद खड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जा सके। पिल्सुड्स्कीने इस सेनाकी शिक्षाके नियम-उपनियम बनाये और उन्हें एक छोटी किताबके रूपमें प्रकाशित किया। उसने सैनिकोंकी शिक्षा और क़वायद आदिका क्रम और कोर्स निर्धारित किया, जिसे पूरा करनेपर लोग अफसरके पदपर पहुँचते थे। पोलैण्डके जनसाधारणने चन्दा करके इस कामके लिए एक फण्ड इकट्ठा किया। पिल्सुड्स्कीका काम

ग्रैण्ड मार्शल जोजेफ पिल्सुड्स्की

बढ़ता गया, साथ ही जनसाधारणका उत्साह और उनकी सहायता भी बढ़ती गई।

सन् १९१४ में पिल्सुड्स्की जानता था कि यूरोपमें युद्ध छिड़ने ही वाला है। सन् १९१४ में ही उसने कहा था—"जातियोंके भाग्यका निर्णय केवल तलवारसे ही हुआ करता है। जो राष्ट्र इस सत्यकी ओरसे आँख फेर लेगा, वह अपने भविष्यको ऐसी हानि पहुँचायेगा, जिसका सुधार न हो सकेगा। हमें सचेत रहना चाहिए कि हम इस प्रकारके राष्ट्रोंमें न हों।"

इस प्रकार जब १९१४का युद्ध छिड़ा, उस समय पिल्सुड्स्की अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए पहलेसे ही लड़नेको तैयार था। पिल्सुड्स्कीने यह निश्चय किया कि पहले जर्मन-आस्ट्रियनोंका साथ देकर रूसके हाथोंसे पोलैण्डके अधिकांश भागको मुक्त कर लिया जाय, बादमें जर्मनोंको धता बताई जाय। उसका कथन था—"पोलैण्डकी समस्या तभी अनुकूल ढंगसे तै होगी, जब जर्मनी रूसको पीटकर स्वयं भी फ्रांससे पिट जायगा।" इस दूरदर्शी नेताने अपनी प्रतिभासे युद्धका परिणाम पहलेसे ही समझ लिया था, और आगे चलकर सचमुच हुआ भी ऐसा ही।

३ अगस्त १९१४ को यूरोपमें युद्ध छिड़ा। उसी दिन पिल्सुड्स्कीने अपनी आज़ादीकी फ़ौजको क्राकाउमें एकत्रित किया, जो पोलैण्डकी प्राचीन राजधानी था। उसने सेनासे ९८ नान-कमीशण्ड अफसरोंको चुनकर उनके सामने जो ऐतिहासिक वक्तृता दी थी, उसमें उसने कहा था—"सिपाहियो, पोलिश सेनाका हरौल बनकर रूसी पोलैण्ड और आस्ट्रियन पोलैण्डको विभाजित करनेवाले सीमान्तको सबसे पहले पार करनेके लिए चुने जानेका सम्मान तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम जो बलिदान करने जा रहे हो, तुम सब उसके लिए समर्थ हो। तुम सब सिपाही हो। तुम लोग युद्ध-क्षेत्रमें अफसरीका पद प्राप्त करोगे। मैं तुम लोगोंको उस नींवके रूपमें देखता हूँ, जिसपर पोलैण्डकी भावी फौजका ढाँचा खड़ा किया जायगा।"

६ अगस्तको इस हरौलने क्राकाउसे लेफ्टिनेण्ट कैस्प्र-ज़िचकीकी मातहतीमें, जो आजकल एक डिवीज़नके जनरल और युद्ध-मन्त्री हैं, कूच किया। उसके पीछे दूसरी कम्पनी स्वयं पिल्सुड्स्कीकी मातहतीमें रवाना हुई। ७ अगस्तको यह सेना रूसी पौलैण्डके किल्चे नामक स्थानमें दाखिल हुई। वहाँ उसने ज़ारकी रूसी सेनासे पहला मोर्चा लिया। किल्चेके युद्धने ही एक लम्बी युद्धमालाका श्रीगणेश किया, जिसमें एक ओर आज़ादीके दीवाने नवयुवक पोल थे और दूसरी ओर रूसके सर्वशक्तिमान ज़ारकी विशाल सेना। उसी समय आस्ट्रियन पोलैण्डके गैलीशिया-प्रान्तमें 'सुपीरियर नेशनल कौंसिल' नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१४ में पोलिश लीजियन्सकी अस्थायी खाइयोंमें जनरल पिल्सुड्स्की

एक समिति बनी। इस समितिका उद्देश था आज़ादीके लिए लड़नेवाली पोलिश सेनाके लिए धन और साज-सरंजाम एकत्रित करना तथा नये स्वयंसेवक भरती करना। चूँकि यह सेना आस्ट्रियनोंके शत्रु रूसियोंसे लड़ रही थी, इसलिए आस्ट्रियनोंको इससे प्रसन्न होना और इसे सहायता देना चाहिए था; किन्तु आस्ट्रियनोंने इसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने मदद की; किन्तु उन्होंने इन पोलोंको जो हथियार वग़ैरा दिये, वे सब पुराने और बेकार-से थे। शुरूमें आस्ट्रियाके फ़ौजी अधिकारियोंने पिल्सुड्स्कीकी इस ग़ैर-सरकारी सेनाका सैनिक और नैतिक महत्त्व नहीं समझा; किन्तु जब इस नौसिखिया फौजने जानकी रत्ती-भर परवा न करते हुए अद्भुत पराक्रम दिखाकर कई युद्ध जीत लिये, तब तो आस्ट्रियनोंकी आँखें खुल गईं। अब उन्होंने पोलिश सेनाको उन स्थानोंपर भेजना शुरू किया, जिनपर सबसे अधिक खतरा होता था, क्योंकि वे जान गये कि जहाँ आस्ट्रियन सैनिक पीठ दिखाकर भाग खड़े होते हैं, वहाँ पोल लोग ही रक्षा कर सकते हैं।

इस प्रकार पिल्सुड्स्कीकी महान आकांक्षा—अर्थात् एक स्वतन्त्र पोलिश सेनाका संगठन—पूरी हुई और साकार बन गई। उसके नये सिपाही वास्तविक सिपाही बन गये। अपनेसे दस-दस गुने रूसियोंका सामना करके और बड़ीसे बड़ी कठिनाइयोंको झेलकर वे अनुभवी और पक्के हो गये। वे सब अपने सरदार पिल्सुड्स्कीके प्रेमसूत्रमें बँधे थे, जो उन्हें विजयकी ओर ले जाता था। इस नौसिखिया सेनाने वीरताके जो अद्भुत कारनामे दिखलाये थे, उनमें लौचोवेक (Lowczowek) का युद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युद्धको विजयने पाँसा पलट दिया था। यह युद्ध २२ दिसम्बर १९१४ को शुरू हुआ था और लगातार तीन दिन और तीन रात तक चलता रहा। पोलोंने रूसियोंके एकके बाद एक सोलह हमले व्यर्थ किये; ४,००० रूसियोंको मारा और घायल किया और ६०० रूसी सैनिकों और १८ अफसरोंको बन्दी बनाया था। पोलोंके पास कोई 'रिज़र्व' फौज नहीं थी, जो वक्तपर मदद पहुँचाती। युद्ध इतनी सरगर्मीसे हो रहा था कि पोलोंको उन तीन दिनों तक खाने-पीने तकका मौका भी नहीं मिला। उसपरसे युद्धके दौरानमें ही उनके कारतूस समाप्त हो गये;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

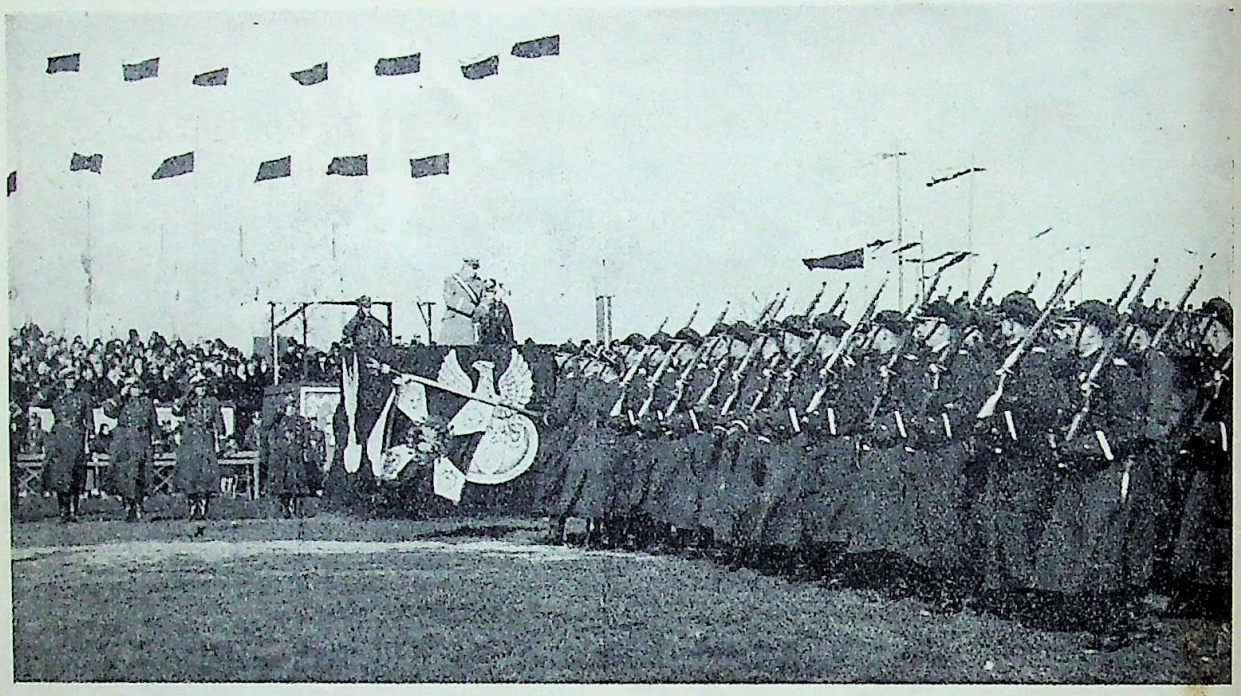

१९३३ में मार्शल पिल्सुड्स्की पोलिश सेनाका कूच देख रहे हैं। बाईं ओर × चिह्नसे चिह्नित सेनापति रिज स्मिगली खड़े हैं

लेकिन इतनेपर भी पोल डटे रहे। वे दुश्मनोंसे छीन-छीनकर उन्हींके कारतूसोंको काममें लाकर 'जिसकी लाठी उसीका सिर' वाली कहावत चरितार्थ करते रहे। अन्तमें उन्हींकी विजय हुई। इस महत्त्वपूर्ण विजयके बाद सिपाहियोंके सामने जो घोषणा पढ़ी गई थी, उसके महत्त्वपूर्ण वाक्य ये थे:—

"सिपाहियो, इस युद्धमें तुमने अपनी दृढ़ता, सहिष्णुता और साहससे यह सिद्ध कर दिया है कि जब दुश्मन तुम्हें नष्ट करना चाहते हों और जब तुम विजय प्राप्त करनेपर तुल गये हो, तब कोई भी प्रयत्न, कोई भी बलिदान ऐसा नहीं, जो तुम न कर सको। तुम्हारे साहस और तुम्हारे सैनिक गुणोंने पोलिश सेनाकी पुरानी साख और पोलिश सिपाहियोंके अमर वीर कृत्योंको पुनः जीवित किया है।"

जिस पोलिश सेनाने यह युद्ध जीता था, उसे आस्ट्रियन सैनिक अधिकारियोंने १४४ पदक (Decorations) पारितोषिकमें दिये थे। किसी एक फौजको एक साथ इतने पदक मिलना असाधारण बात है।

जिस समय पोलिश लीजियन्सका एक भाग स्वयं पिल्सुड्स्कीकी मातहतीमें मैदानमें युद्ध लड़ रहा था, उसी समय उसका दूसरा भाग कार्पेथियन पहाड़की ओर भेजा गया। सैनिक स्थिति ऐसी थी कि इस सेनाको मजबूर होकर पहाड़को पार करना आवश्यक हो गया। पोलैण्डके भयंकर जाड़ेमें, जब टेम्परेचर बर्फसे भी ३०° डिग्री नीचे था, इस फौजने पहाड़को पार किया। अनुभवहीन नवयुवक सिपाहियोंने सिर्फ पाँच दिनमें पहाड़की चोटियों और बर्फीली ढलवानोंपर ७ किलोमीटर लम्बी एक ऐसी सड़क बनाकर तैयार कर दी, जिसपर होकर आस्ट्रियाकी नियमित सेना मै अपने तोपखानेके सही-सलामत पहाड़को पार कर सकी। उनका यह कार्य युद्धके महान कार्योंमें था। उसपर तुर्रा यह कि इस सड़ककी तामीरमें इन्हीं पाँच दिनोंके भीतर ही उन्हें पहाड़के गारों और पहाड़ी चश्मोंके ऊपर २८ पुल बनाने पड़े थे! कार्पेथियन पहाड़ पार करके पोलिश लीजियन्सने कई लड़ाइयाँ लड़ीं, जिनमें मोलाटकोव और रफाइलोवाके युद्ध-विशेष प्रसिद्ध हैं।

१२ जून १९१५ को पोलिश घुड़सवारोंने रोकिटनाकी लड़ाई लड़ी। इस युद्धमें सिर्फ ११५ पोलिश सवारोंने रूसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाइयोंपर हमला किया। रूसी बन्दूकोंने मौत उगलना शुरू कर दिया; किन्तु पोलोंने प्राणोंकी परवा न करके रूसी खाइयोंकी तीन क़तारें छीन लीं। यद्यपि इस प्रयत्नमें प्रायः सबके सब पोल काम आये या घायल हुए, तो भी इस विजयका नैतिक प्रभाव उतना ही गम्भीर साबित हुआ, जितना सोमोसीयराके वीरतापूर्ण आक्रमणका था। रूसियोंपर इतनी दहशत छा गई कि अब वे पोलोंका नाम सुनते ही मोर्चेसे भाग खड़े होते।

पोलिश लीजियन्सके इन वीर कृत्योंके बाद जर्मनोंने भी उनमें दिलचस्पी लेनी शुरू की। जर्मन सैनिक अधिकारियोंको यह निश्चय हो गया कि बिना इन पोलोंकी सहायताके रूसियोंको हराना सम्भव नहीं। ५ नवम्बर १९१६ को जर्मनीने यह घोषणा की कि उसने पोलिश राज्यको पुनः स्थापित कर दिया। किन्तु जर्मनों द्वारा स्थापित इस कल्पित राज्यकी सीमाएँ क्या होंगी, उसकी सरकार किस प्रकारकी होगी अथवा उसका शासक कौन होगा, इसका कोई भी ब्यौरा या निर्णय नहीं बताया गया। बात यह थी कि उस वक्त जर्मनीको फौजके लिए आदमियोंकी सख्त ज़रूरत थी। जर्मनीकी इस चालका उद्देश यह था कि पोलैण्डमें १५ लाख आदमी फौजी उम्रके थे, उन्हें जर्मन फौजोंमें भर्ती किया जा सके। किन्तु पिल्सुड्स्कीने जर्मनीकी यह चाल समझ ली। उसने अपने सैनिकों और समर्थकोंको मनाही कर दी कि वे जर्मनोंके हुक्मको न मानें। पोलैण्डका एक भाग जर्मनोंके अधिकारमें पहलेसे ही था, अतः पिल्सुड्स्की जानता था कि समूचे पोलैण्डको एक करने और स्वतन्त्र बनानेके लिए शीघ्र ही उसे रूसियोंके साथ-साथ जर्मनोंसे भी लड़ना पड़ेगा और पोलिश इलाक़ेसे जर्मनोंको मारकर निकालना पड़ेगा। अब उसने जर्मनी और आस्ट्रियाका साथ छोड़ दिया। उसने तथा उसके अधिकांश सैनिकोंने जर्मन और आस्ट्रियन फौजोंके साथ राजभक्तिकी शपथ लेनेसे इनकार कर दिया। इसपर सन् १९१७ की गर्मीमें जर्मनोंने पिल्सुड्स्कीको गिरफ्तार करके मैग्डेबुर्गके क़िलेमें क़ैद कर दिया। उसके अधिकांश सिपाहियोंको भी पकड़-पकड़कर जर्मन और आस्ट्रियन युद्ध-बन्दियोंके कैम्पोंमें बन्द कर रखा गया।

अब न तो पोलिश लीजियन ही रह गया और न कोई पोलिश सिपाही ही बचा। कुछ मारे गये, कुछ घायल होकर बेकार हो गये और बाक़ी रूसियों, जर्मनों और आस्ट्रियनोंके हाथों क़ैद हो गये। किन्तु पोलैण्डके शत्रुओंकी यह विजय क्षणिक ही थी। एक साल बाद, १९१८ के नवम्बरमें जर्मन, आस्ट्रियन और रूसी साम्राज्य ही न रहे। तीनों देशोंमें बग़ावतें हुईं, तीनोंकी सरकारें उलट गईं। इस बीचमें पोलिश जनताने अपने इलाक़ेसे जर्मनोंको मार भगाया। प्रतिभाशाली पिल्सुड्स्की विजय-माल लेकर पोलैण्ड वापस आया। उसकी सारी भविष्यवाणियाँ पूरी उतरीं। ११ नवम्बर १९१८ से पोलैण्ड स्वतन्त्र देश समझा जाने लगा। कृतज्ञ राष्ट्रने पिल्सुड्स्कीको अपना राष्ट्रपति और पोलिश सेनाका, जिसका वह जन्मदाता था, प्रधान बनाया। पिल्सुड्स्कीकी इस वीर सेनाने १९२० में नये आक्रमणकारियोंपर विजय प्राप्त की थी। ये नये आक्रमणकारी थे रूसी बोल्शेविक। पोलोंने वारसाके समीप बोल्शेविकोंको जिस युद्धमें परास्त किया, उसे हम संसारका उन्नीसवाँ निर्णयात्मक युद्ध कह सकते हैं।

१२ मई १९३५ को पोलैण्डके मुक्तिदाता और महान सेनानी मार्शल पिल्सुड्स्कीने इस लोकसे प्रयाण किया। उस समय समूचा पोलिश राष्ट्र अपनी प्यारी मुक्तिदात्री फौजके चारों ओर एकत्रित हुआ था। वह इस सेनाके जन्मदाताके इन शब्दोंको कभी नहीं भूलता—"जातियोंके भाग्योंका निर्णय केवल तलवारसे ही हुआ करता है। जो राष्ट्र इस सत्यकी ओरसे आँखें फेर लेगा, वह अपने भविष्यको ऐसी हानि पहुँचायेगा, जिसका सुधार न हो सकेगा। हमें सचेत रहना चाहिए कि पोलिश राष्ट्र ऐसे राष्ट्रोंमें नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध-प्रयाण

श्रीयुत रामेश्वर

[हल्दीघाटीके युद्धको जानेवाले एक वीर राजपूत सैनिकका अपनी धर्मपत्नीसे]

आज विदा दो रानी !
मेरा नश्वर जीवन आज बनेगा अमर कहानी ।
आज विदा दो रानी !

यह मत पूछो, मेरी जीवन-
नौका कहाँ बहेगी ?
सागरके उस पार जायगी
अथवा यहीं रहेगी,
विकट आँधियोंसे भिड़कर है मुझको राह बनानी ।
आज विदा दो रानी !

जिस माँकी सुन्दर गोदीमें
हमने जीवन पाया,
परम स्नेहकी उसी मूर्तिपर
है दारुण दुःख आया,
उसकी मर्यादा - रक्षाको मर - मिटनेकी ठानी ।
आज विदा दो रानी !

जिसके अभय क्रोड़में क्रीड़ा-
मय मम शैशव बीता,
जिसका स्नेह-सुधा-घट मुझको
कभी न दीखा रीता,
उस माँकी विपदा लख आता है आँखोंमें पानी ।
आज विदा दो रानी !

मुझे जन्म देनेवाली माँ
ममता छोड़ सिधारी,
इस माँके दानोंसे तो है
यह जीवन आभारी,
चिर-ममता तो इस माँकी है - कहते हैं सब ज्ञानी ।
आज विदा दो रानी !

उस माँने केवल शैशव
भर तक ही दूध पिलाया,
बालकपन तक ही गोदीमें
उसने मुझे खिलाया,
जीवन, जन्म, मरणमें देती शरण यही कल्याणी ।
आज विदा दो रानी !

और आज इस प्यारी माँ पर
आई विपदा भारी,
आये शत्रु, आज मेरे
मिटनेकी आई बारी,
इस स्नेहमयी माँकी ममताके ऋणसे मुक्ति मुझे है पानी ।
आज विदा दो रानी !

मैंने फूलोंसे हे प्रेयसि !
तुमको कभी सजाया,
मुझे सजानेका तुमको भी
यह अवसर है आया,
राजपूत बालाओंकी है यह सौभाग्य-निशानी ।
आज विदा दो रानी !

इस नश्वर मानव-जीवनका
कोई नहीं ठिकाना,
मौत कहाँसे कब आयेगी—
किसने है यह जाना ?
तो माँकी सेवासे वंचित रहना है नादानी ।
आज विदा दो रानी !

राजपूत होंगे मुट्ठी-भर,
अगणित रिपुकी सेना,
हमें आज अपने पौरुषका
है कुछ परिचय देना,
सिर देकर सिर ऊँचा रखना—रानाकी है वाणी ।
आज विदा दो रानी !

हम स्वतंत्र हैं, चलते हैं हम
सदा तानकर सीना,
पराधीन होकर जीना भी
क्या कोई है जीना ?
या स्वतंत्रता या कि मृत्यु—ये दो राहें पहचानी ।
आज विदा दो रानी !

जब तक प्राण रहेंगे तनमें
प्रण न कभी टूटेगा,
जन्मभूमिका मान हृदयसे
कभी नहीं छूटेगा,
विजयी हो जीवित लौटूँ तो कर लेना अगवानी ।
आज विदा दो रानी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुद

श्रीमती शन्नोदेवी चतुर्वेदी, हिन्दीरत्न

"सुशीला, कैसी अनमनी हो ?"

"नमस्ते, सोमाकी भाभी ! नहीं तो, मैं तो अनमनी नहीं हूँ। तुमने यह कैसे अनुमान कर लिया कि मैं अनमनी हूँ ? अरे, तुम तो खड़ी ही हो, बैठो।"

"हाँ-हाँ, बैठती हूँ ; परन्तु तुम्हारी यह दशा क्या हो रही है ? तुम दिन-दिन सूखती जाती हो, तुम्हें दुःख कौन-सा है ? तुम्हारे माता-पिता तुम्हें इतने प्यारसे रखते हैं। तुम्हारे भाई-भाभी तुम्हें अपनी सिर-आँखोंपर रखते हैं ; परन्तु देखती हूँ कि तुम्हारी दशा दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। तुम्हारा मुँह उदास ही देखती हूँ। तुम्हारा हँसनेका स्वभाव न-जाने क्यों विदा हो गया !"

"नहीं भाभी, तुम भूलती हो। मेरी दशामें तो कुछ भी अन्तर नहीं हुआ है। यों ही आजकल तुम्हारी आँखोंमें कुछ फेर हो गया हो, तो कह नहीं सकती। और तो कोई नहीं कहता कि मैं उदास दिखाई पड़ती हूँ, या मैं कमज़ोर हूँ। तुम्हें न-जाने क्या हो गया है कि आते ही पहला प्रश्न यही करती हो !"

"मेरी आँखोंमें कुछ दोष है, या मनका विकार है, यह मैं भी जानती हूँ और तुम भी। बस, यदि नहीं जानता, तो कदाचित कुमुद। सुशीला, तुम समझती हो कि मुझे कुछ मालूम ही नहीं कि कुमुदका और तुम्हारा जो सम्बन्ध है। क्या वह मुझसे छिपा है ? सच क्यों नहीं कहती कि उसके वियोगमें भूख भी नहीं लगती। है न यही बात ? छिपाओ मत सुशीला, इस अस्वस्थताका कारण।"

"क्या छिपाती हूँ, भाभी, तुमसे, कुछ भी तो नहीं।"

"कुछ भी तो नहीं ? हाँ, कुछ भी नहीं, केवल यह कुमुदसे प्रणयवाली ही ऐसी बात थी, जो छिपाना चाहती थी ; परन्तु जो न छिप सकी। हैं, रोती हो ! रो नहीं, सुशीला ! क्षमा करना, मैंने तुम्हारी स्मृतिको हरा करके तुम्हें रुलाया। इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"

"नहीं भाभी, तुम बड़ी होकर क्षमा माँगती हो ? जब तुम्हें मालूम ही है, तो फिर तुमसे छिपाना कैसा ? हाँ भाभी, क्या करूँ ? यह भी जीवनमें एक कष्ट लिखा था, जो होकर ही रहा। मैं बहुत कोशिश करती हूँ कि कुमुदको भूल जाऊँ ; परन्तु नहीं भूल पाती। रह-रहकर उन्हींकी याद आती है। किसी काममें जी नहीं लगता। रातको सोतेसे जाग पड़ती हूँ। देखती हूँ कि उन्हें भूल जाना असम्भव है। उन्हें इस जीवन-भर न भूल सकूँगी...."

"तुमने उसे पत्र नहीं लिखा ?"

"पत्र कैसे लिखूँ, भाभी ! कभी उनसे मुँह खोलकर बातें भी तो न कर सकी। कभी उनसे यह प्रकट ही न कर सकी कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। दूसरी बात यह है कि उनका कर्तव्य था कि वहाँ पहुँचकर मुझे पत्र लिखते, न कि मेरा। मुझे मालूम भी नहीं कि उनका पता क्या है। किससे पूछूँ, तुम्हीं बताओ, भाभी !"

"रो मत सुशीला, मैं चेष्टा करूँगी। मैं आज ही कुमुदकी मातासे मिलने जाऊँगी और उनसे पता पूछूँगी। तुम उसे पत्र लिखकर रख लेना। मैं कल ही उसे हवाई-डाकसे भिजवा दूँगी। पाँचवें दिन तो उसे पत्र मिल ही जायगा। यदि उसने लौटती ही डाकसे जवाब दिया, तब तो तुम्हें आजसे ग्यारहवें दिन ही अपने प्रीतमका कुशल-पत्र मिल जायगा। आगे तुम्हारा भाग्य। अच्छा, इसकी मज़दूरी मुझे क्या मिलेगी ?"

"पाव-भर मिठाई, भाभी !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा, इतनी बड़ी तकलीफ़ मैं करूँ और वह भी तुम्हारे स्वार्थके लिए और उसका इनाम मिले पाव-भर मिठाई। यह तो नहीं हुआ कि कहतीं—'भाभी, बात क्या है, एक 'शो' सिनेमाका ही सही।' इतना बढ़िया फिल्म 'नगर ज्योति' हो रहा है और आपको अपने कुमुदकी यादमें कुछ परवा ही नहीं?"

"अरे भई, तो फिल्म ही देख लेना। पहले काम तो करो।"

"एक बात और मानोगी?"

"हाँ-हाँ, कहो।"

"यों नहीं, पहले सीधी तरह वादा करो कि मेरी बात स्वीकार करोगी।"

"अच्छा भई लो, अपनी सौगन्ध खाकर कहती हूँ...."

"अपनीसे क्या तात्पर्य, कुमुद और तुम दोनों?"

"हँसी रहने दो भाभी, बात कहो।"

"अच्छा तो सुनो, तुम्हें अपना और कुमुदका पत्र-व्यवहार मुझे अवश्य दिखाना पड़ेगा।"

"भाभी, तुम बड़ी ख़राब हो। हमें यह बात पसन्द नहीं।"

"फिर वही हमें। अरे, तुम्हें पसन्द नहीं, तो क्या कुमुदको भी पसन्द नहीं?"

"भाभी, तुम बड़ी बुरी हो। बेकारमें मुझे तंग करती हो। मैं तुमसे नहीं बोलूँगी।"

"परन्तु यह तो कल कहना, जब तुम्हें पता मालूम हो जाय।"

"वाह भाभी, क्या तुम मुझे ऐसा समझती हो? मैंने क्या तुमसे कभी भी कोई बात छिपाई है? क्या तुम समझती हो कि मैं तुमसे पता पूछनेके बाद तुम्हें बिसार दूँगी?"

"नहीं सुशीला, मैं तुम्हें भलीभाँति जानती हूँ। तो फिर चलूँ, देर हो रही है। नमस्ते।"

"नमस्ते।"

[२]

"हैल्लो मिस्टर कुमुद, केम्ब्रिज कैसा लगा? पढ़ तो ख़ूब रहे हो?"

"ओहो, कैलाश! आओ बैठो। अरे भई, मुझे सब अच्छा लगता है।"

"इसके क्या माने? न देखा, न भाला और बस कह दिया कि सब एक-से ही हैं। ज़रा कमरेसे बाहर निकला करो। ख़ाली किताबी कीड़े बननेसे ही काम नहीं चलेगा। बाहर चलो, प्रकृतिकी छटा देखो, कुछ जी बहले। कुछ सोचो तो, तुम डेढ़ बरस बाद ही अपना कोर्स समाप्तकर भारतवर्ष वापस चले जाओगे, तो कोई पूछेगा कि क्या देखा, तो कहना—कालेज और अपने 'लाज' का नक्शा, प्रोफेसरों और लड़कोंकी सूरतें, केम्ब्रिज और लन्दनके बीचकी रेल और जहाज़, बस।"

"नहीं भाई, यह बात नहीं है। बात यह है कि बिना साथीके कहीं जानेको जी नहीं चाहता। अब तुम आ गये हो। चलो, सैर करने चलें।"

इसके बाद कैलाश और कुमुद सैर करने चल दिये। रास्ते-भर बातों-ही-बातोंमें कैलाश इस बातको ताड़ता रहा कि कुमुदकी मानसिक दशा कुछ उत्तेजित है। कैलाश यह देखकर बोला—"कुमुद! भई देखो, प्रकृतिका इतना अच्छा सुहावना दृश्य देखकर भी तुम प्रसन्न नहीं होते! तुम्हारे चेहरेपर विषादकी घटा साफ दिखाई दे रही है। बात क्या है? मेरे प्रश्नोंका उत्तर भी देते हो; परन्तु जैसे घबड़ाये हुए-से हो। क्या किसी सुन्दरीने इतनी जल्दी तुम्हारे ऊपर अपना जादू पढ़ दिया? अभी तो छै महीने भी पूरे नहीं हुए।"

"नहीं कैलाश, यहाँ नहीं। यह अपने देशकी बात है। मैंने बहुत चेष्टा की कि उसे भूल जाऊँ; परन्तु न भूल सका। जब उसकी याद आती है, तो मनमें आता है कि पढ़ना-लिखना छोड़कर अपने देशको लौट जाऊँ। ओह! वह मधुर मूर्ति! रुको कैलाश!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं आगे नहीं जा सकूँगा, मेरा चित्त व्याकुल है।"

"अरे कुमुद, सोचो तो तुम कितनी बड़ी ग़लती कर रहे हो। अगर तुम्हारे पिताको मालूम हो गया, तो वे कितने गुस्सा होंगे। यह बड़ी बुरी बात है। तुम किस प्रकार अपनी पढ़ाई समाप्त कर सकोगे, यदि ऐसी ही दशा रही?"

"नहीं कैलाश, अब मैं नहीं चल सकता। लौट चलो, मेरी तबीयत ख़राब हो रही है।"

कुमुदने कैलाशका हाथ पकड़ा। उसका हाथ गरम हो रहा था। "तुम्हें ज्वर चढ़ आया है, कुमुद!"—कैलाश बोला, और दोनों कुमुदके 'लाज' को लौट आये।

[३]

कुमुदको पाँच दिनसे ज्वरके कारण बड़ा कष्ट है। केवल कैलाश ही हरदम उसकी सेवा-सुश्रूषा करता रहता है; परन्तु कुमुदकी दशामें कुछ भी अन्तर नहीं—न तो ज्वर घटता है, न बढ़ता ही है। बिना अन्न खाये आज छठा दिन है। कमज़ोरीकी अधिकता इतनी है कि उठते नहीं बनता। इतनेमें ही नौकर दो लिफ़ाफ़े मेज़पर रख गया। कैलाशने कुमुदसे कहा—"कुमुद, दो लिफ़ाफ़े हैं; एक तो 'एयर मेल' से आया है और दूसरा साधारण है।"

"देखूँ!" कहकर कुमुदने हाथ बढ़ा दिया। उसे 'एयर मेल' वाले लिफ़ाफ़ेपर कुछ आश्चर्य-सा हो रहा था कि किसका है, क्योंकि उसपरका पता किसी अपरिचितका लिखा जान पड़ता था। उसने झट लिफ़ाफ़ा खोल डाला और पढ़ना आरम्भ किया। कैलाश यह देखकर कि कुमुद पत्र पढ़ रहा है, कमरेसे बाहर निकल गया। पत्र छोटा ही था, शीघ्रतासे पढ़ डालनेपर कुमुदने उसे हृदयसे लगाया, प्यार किया और फिर पढ़ा:—

"प्रिय कुमुद,

तुम इतना शीघ्र यहाँसे चले गये और वह भी मिलकर नहीं। मुझे तुम्हारी बहुत याद आती है, कदाचित तुम्हें भी कभी-कभी तो अपनी सहेलीकी बातें याद आती ही होंगी। हाँ, तो तुमने मेरे पास अपनी कुशलताका पत्र भी नहीं डाला, क्या पढ़नेमें बहुत मेहनत करते हो? यहाँ तो बहुत कम पढ़ते थे। याद है, हम लोग कितनी बार कम पढ़नेपर ही डाँटे जाते थे। सोमाकी भाभीके द्वारा मुझे तुम्हारा पता मालूम हुआ, नहीं तो मुझे तो यह भी न मालूम होता कि तुम कहाँ हो? तुम्हारा जी लग जाता है? कभी हम लोगोंकी भी याद आती है? बहुत दिनोंसे आशा कर रही थी कि तुम पत्र डालोगे; परन्तु आशा यों ही निष्फल हुई। मैंने डाकियासे कह दिया है, वह मेरे पत्र मुझको देगा। तुम शीघ्र पत्र भेजना। क्या मैं आशा करूँ कि तुम पत्र डालोगे, इतनी कृपा करोगे? अच्छा, तो अब पत्र शीघ्र ही भेजना। ज़रा तसल्ली हो जायगी कि तुम अच्छी तरहसे हो। नमस्ते।

तुम्हारी—सुशीला।"

दूसरा पत्र उसके पिताका था। वह साधारण कुशल-पत्र था। उसी समय कैलाश आ गया। कुमुदने कहा—"भई, ज़रा मेरा फाउन्टेनपेन तो देना और वह लेटरपैड भी। पत्र लिखूँगा।"

"किसे?"

"सुशीलाको—अपनी उसी प्रेमिकाको।"

"ऐसे ज्वरमें?"

"हाँ भई, हर्ज क्या है?"

कैलाश जानता था कि कुमुद अपनी हठका पक्का है। उसने फाउन्टेनपेन और पैड दे दिया। कुमुदने बहुत संक्षेपमें लिखा:—

"प्रिय सुशील,

मुझे खेद है कि प्रथम पत्र भेजनेका सौभाग्य तुमने मुझे न दिया। कोई बात नहीं। मेरा वास्तवमें यहाँ ज़रा भी मन नहीं लगता—विशेषकर तुम्हारी स्मृति तो मुझे कुछ करने ही नहीं देती। मैं चाहनेपर भी तुम्हें नहीं भूल पाता। मेरी तबीयत कुछ ख़राब हो गई है, कुछ ज्वर है; परन्तु वह केवल तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विग्रहका फल है। अब आशा है, शीघ्र ही अच्छा हो जाऊँगा, क्योंकि तुम्हारा पत्र पा चुका हूँ। चलते समय न मिल सकनेकी क्षमा चाहता हूँ। सोमाकी भाभीसे मेरा नमस्ते कहना तथा धन्यवाद भी।

तुम्हारा— कुमुद।"

पत्र लिखकर कुमुदने कैलाश द्वारा हवाई-डाकमें भिजवा दिया। दूसरे दिनसे ही कुमुदकी दशा सुधरने लगी। कैलाश देखकर चकित होता था।

[४]

"भाभी, आज चलो, 'नगर ज्योति' देख आवें।"

"लेकिन यह तो बताओ, क्या लिखा है ?"

"लो, तुमसे छिपा ही क्या है, पढ़ ही न लो।"

सुशीलाने पत्र सोमाकी भाभीके हाथमें दे दिया। वह पढ़कर बोली—"कहो रानी, कैसी तरकीब बताई ! पढ़ते तो हैं विलायतमें ; परन्तु इतनी अक्कल न आई कि एक बार पत्र तो डालकर देख लेते कि स्वास्थ्यपर कैसा असर पड़ता है। व्यर्थ ही इतना कष्ट उठाया और सच मानो, बुखार अब रुकेगा नहीं। आज छठवाँ दिन है, आज तो भगवानकी कृपासे भोजन भी भरपेट कर लिया होगा।"

फिर दोनों सिनेमा देखने चली गईं।

पत्र-व्यवहार इसी प्रकार चलता रहा।

[५]

"सुशीलाकी मा, सुनना ज़रा !"

"क्या कह रहे हो ?"

"यही कि मैंने बहुत सोचने-समझनेके बाद यह तय किया है कि सुशीलाके विवाहको दो वर्ष और रुक जाओ। विवाह हो जानेपर लड़की कहाँ घर रह पाती है ? फिर तो सुसरालमें ही जीवन बीत जाता है। अभी जितना रह ले, उतना ही अच्छा है, समझी न !"

"हाँ, हाँ, तुमने समझा दिया और मैं समझ गई ? सयानी लड़की है, समझ-बूझकर ज़रा काम किया करो। लोग क्या कहते होंगे ?"

"कहनेवाले लोग जायँ भाड़में। हमें उनसे क्या मतलब ? हम अपनी भलाई-बुराई उन लोगोंसे अधिक समझते हैं।"

"तो भई, तुम जानो, तुम्हारा काम और रही-सही तुम्हारी बेटी, जिसने विवाहको नरक समझ रखा है।"

बात यहीं समाप्त हो गई। सुशीला इसपर बहुत प्रसन्न थी। दो वर्षमें कुमुद भी तो लौट आयेगा।

[६]

दो वर्ष बाद।

"आ गये बेटा ! अरे, बड़ दुबला गये ! क्या खानेका प्रबन्ध ठीक नहीं था ?" कुमुदके पिताने आशीर्वाद देते हुए कहा, जब कुमुदने पैर छुये। मा बोली—"अरे मेरे लाल, मैं तो तेरे पीछे अधमरी हो गई। बेटा बड़ी पढ़ाई की। भगवानने सफलकी तुम्हारी सारी मेहनत। मैं रोज़ उठकर दुआ मनाती थी कि मेरा कुमुद अव्वल पास हो, सो बेटा अव्वल ही आया। अब बेटा, मेरी इच्छा यही है कि मैं अपने ही जीते-जी अपनी बहूका मुख देख लेता। तेरी सगाइयाँ भी बहुत जगहोंसे आ चुकी हैं। एक हैं सुरेशचन्द्रजी, जो हेमनगरके ज़मींदार हैं। उनकी एकलौती लड़की श्यामा बड़ी होशियार है। दान-दहेज तो इतना मिलेगा कि घर भर जायगा। पूरे पन्द्रह हज़ार। कहते थे, खड़े-खड़े गिनवा लो। यह सम्बन्ध मुझे बहुत पसन्द है। एक बातपर बहुत हँसी आती है। वह जो किसान सीतलासहाय है न देवपुरमें, वह अपनी लड़की सुशीलाको बहुत योग्य समझता है। ज़रा लड़का वकील हो गया है न, सो समझता है कि वह बहुत-कुछ है। वह भी सम्बन्ध जोड़ने आया था ! मैंने साफ़ मना कर दिया।"

"मा, अभी क्या जल्दी है ?"

"वाह बेटा, मेरा क्या सहारा ? आज मरी, कल दूसरा दिन होगा। अरे अभी जल्दी नहीं, तो और कब होगी ? अब तो पूरे पचीस वर्षका हो गया। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या जन्मभर क्वारा ही बैठा रहेगा ? ना भइया, ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालते।"

कुमुदने बात टाल दी, हाथ-मुँह धोने चला गया, फिर जब कलेवा करने बैठा, तो माने फिर वही बात छेड़ दी। कुमुद बोला—"मा, यदि विवाह ही करना है तो सुशीलासे होगा, नहीं तो नहीं; दहेज भी एक पैसा नहीं लिया जायगा। बस, अगर यह स्वीकार है, तो विवाह कर लो, नहीं तो नहीं।"

"फिर तो बेटा, मुश्किल है और पूरी मुश्किल है। दहेज़ न लूँ ? यह नहीं होगा। बिरादरीवाले क्या कहेंगे ? और फिर सुशीलाका कुल भी तो नीचा है। यह विवाह कैसे हो सकता है ?"

मा बहुत-कुछ बकती चली गई; परन्तु कुमुद चुप रहा। वह सब-कुछ सोच चुका था। वह जानता था कि बात बढ़ानेका फल अच्छा न होगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल कुमुद सुशीलासे मिला। उसने शिष्टाचारके कुछ शब्दोंके बाद ही कहा—"सुशीला, हम दोनों एक दूसरेसे प्रेम करते हैं, यह बात कहना ही व्यर्थ है; परन्तु सब लोग नहीं जानते हैं। मेरी माता विवाहके लिए बहुत उत्सुक हैं; परन्तु वह कुछ सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों द्वारा इतनी जकड़ी हुई हैं कि तुम्हारे साथ सम्बन्ध होना असम्भव समझती हैं। तुम्हारी अवस्था १९ वर्षकी है और मैं तो छब्बीसवें वर्षमें हूँ ही। हम लोग बड़ी आसानीसे 'सिविल मैरेज' कर सकते हैं—चाहो तो एक सप्ताहके अन्दर ही। मुझे आशा है, तुम्हारे पिता-माता इस सम्बन्धसे प्रसन्न ही होंगे।"

वह कुछ और कहता; परन्तु सुशीला बीचमें ही बोल उठी—"परन्तु अब बात कुछ और है। आपके माता-पिताने जो उत्तर मेरे पिताको दिया है, उससे वे अब इस सम्बन्धको कदापि पसन्द नहीं कर सकते।"

—"सुशीला, इसकी चिन्ता न करो। मैं उनसे स्वयं सब तय कर लूँगा। अभी जाकर उनसे मैं प्रार्थना करूँगा, क्षमा माँगूँगा, दान माँगूँगा, भिक्षा माँगूँगा; परन्तु तुमको किसी भाँति अपने हाथसे न जाने दूँगा। तुम बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम मुझे स्वीकार करोगी ?

—"क्या इसके भी पूछनेकी आवश्यकता है ? अंधेसे यह पूछना कि वह आँख चाहता है या नहीं, कहाँ तक उचित है, कुमुद !"

"बस, फिर सब ठीक हो जायगा। लो, यह अंगूठी।" इतना कहते-कहते कुमुदने अपनी अंगूठी सुशीलाको पहना दी और फिर सब बातें तय करनेको उसके पिताके पास चला गया।

[७]

एक मास पश्चात्।

आज सारे गाँवमें यह समाचार फैल रहा था कि कुमुदने अपने माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध सुशीलासे 'सिविल मैरेज' द्वारा विवाह कर लिया। सामाजिक समाचारपत्रोंमें यह समाचार बड़े उत्साहपूर्वक छापा गया। सम्पादकीय लेखोंमें यही विषय अग्रलेख बनाकर छपा; परन्तु कुमुदके माता-पिता उस राक्षसी विलायती शिक्षापर पछता रहे थे, जिसने कुमुदको उनकी दृष्टिमें भ्रष्ट कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी संस्कृति और साहित्यका सम्बन्ध

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्याचार्य

हिन्दीमें सभ्यता और संस्कृति शब्द नये हैं। इनका असली अर्थ समझनेके लिए अंगरेज़ के Civilization और Culture शब्दकी जानकारी आवश्यक है। वस्तुतः सभ्यता और संस्कृतिके धातुगत अर्थ इन शब्दोंके व्यावहारिक अर्थके स्पष्ट करनेमें विशेष सहायक नहीं होंगे। अंगरेज़ीमें Civilization शब्द एक सामाजिक परिस्थितिका बोधक है। सिविलिज़ेशनसे सामाजिक व्यवस्थाके चार उपादानोंका ज्ञान होता है—(१) आर्थिक व्यवस्था, (२) राजनीतिक संगठन, (३) नैतिक परम्परा और (४) ज्ञान एवं कलाका अनुशीलन। अस्तव्यस्तता, सशंकता और अरक्षणीयताका जहाँ अन्त होता है, सिविलिज़ेशन या सभ्यता वहींसे शुरू होती है। क्योंकि जब भयका भाव दब जाता है और मनुष्यकी कुतूहलवृत्ति और रचनात्मक प्रवृति बंधनहीन होती है, तभी मनुष्य पशु सुलभ प्राकृतिकतासे ऊपर उठकर समझौते और सहानुभूतिके जीवनकी ओर अग्रसर होता है। किसी जाति या समाजकी सभ्यताकी पूर्णता इस बातसे जानी जा सकती है कि उक्त समाज या जातिके व्यक्ति कहाँ तक अस्तव्यस्तता और सशंकतासे मुक्त हो सके हैं।

सभ्यताका आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाजकी वाह्य व्यवस्थाओंका नाम है, संस्कृति व्यक्तिके अन्तरके विकासका। सभ्यताकी दृष्टि वर्तमानकी सुविधा-असुविधाओंपर रहती है, संस्कृतिकी भविष्य या अतीतके आदर्शपर। सभ्यता नज़दीककी ओर दृष्टि रखती है, संस्कृति दूरकी ओर; सभ्यताका ध्यान व्यवस्थापर रहता है, संस्कृतिका व्यवस्थासे अतीतपर; सभ्यताके निकट क़ानून मनुष्यसे बड़ी चीज़ है, लेकिन संस्कृतिकी दृष्टिमें मनुष्य क़ानूनके परे है; सभ्यता वाह्य होनेके कारण चंचल है, संस्कृति आन्तरिक होनेके कारण स्थायी। सभ्यता समाजको सुरक्षित रखकर उसके व्यक्तियोंको इस बातकी सुविधा देती है कि वे अपना आन्तरिक विकास करें, इसीलिए देशकी सभ्यता जितनी ही पूर्ण होगी, अर्थात् उसकी व्यवस्था जितनी ही सहज होगी, राजनीतिक संगठन जितना ही पूर्ण होगा, नैतिक परम्परा जितनी ही विशुद्ध होगी और ज्ञानानुशीलनकी भावना जितनी ही प्रबल होगी, उस देशके वासी उसी परिमाणमें सुसंस्कृत होंगे। इसीलिए सभ्यता और संस्कृतिमें बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

परन्तु ऊपर जो-कुछ कहा गया है, उसका यह अर्थ नहीं है कि सभ्यता और संस्कृति दो परस्पर-विरोधी चीज़ें हैं। जिस प्रकार पुस्तकके पन्नेके दो पृष्ठ आपाततः एक दूसरेके विरुद्ध दिखते हुए भी वस्तुतः एक दूसरेके पूरक हैं, उसी प्रकार सभ्यता और संस्कृति भी एक दूसरेके पूरक हैं। इन दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि कभी-कभी एकके अर्थमें दूसरेका प्रयोग पंडितजन तक कर दिया करते हैं। कभी-कभी अपने देशकी संस्कृतिके नामपर असत्य और अर्धसत्य सिद्धान्तोंका समर्थन किया जाता है। और, और तो और, अपने देशकी संस्कृतिके नामपर किसी अन्य देशकी सभ्यता, धर्म, दर्शन और संस्कृतिपर भद्दे आक्षेप भी किये जाते हैं; पर ये बातें संस्कृतिके विरुद्ध हैं। कोई भी सुसंस्कृत आदमी,—अगर वह सचमुच सुसंस्कृत है,—किसी असत्य या अर्द्धसत्य सिद्धान्तका इसीलिए समर्थन नहीं कर सकता कि उसे उसके पूर्वजोंने मान लिया था। औरोंकी कुत्सा तो वह कर ही नहीं सकता। विजित जातिके व्यक्तियोंमें जब जातीय चेतना प्रबल होती है, तो प्रायः अपने देशकी संस्कृतिके नामपर वे विजेताकी संस्कृतिका मज़ाक उड़ाया करते हैं। इटलीमें ऐसा ही हुआ था, भारतवर्षमें ऐसा ही हो रहा है। यह स्वाभाविक है।

आधुनिक भारतीय साहित्यमें ऐसी अनेक बातोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन भारतीय संस्कृतिके नामपर किया जा रहा है, जिसके लिए पर्याप्त चिन्तनकी आवश्यकता होती है। भारतवर्षका शीर्ष स्थानीय समालोचक बड़े-बड़े यूरोपियन दार्शनिकोंकी युक्तिका अवतरण करते हुए इतना कहकर सारा तर्क समेट लेता है कि 'भारतीय संस्कृति इस बातको पसन्द नहीं करती।' हिन्दीके दो विद्वानोंमें महीनों तक एक मनोरंजक विवाद चलता रहा, जिसका केन्द्रीय विषय भारतीय संस्कृतिका समर्थन पाना था। दोनों ही पंडित दो विरोधी सिद्धान्तोंको भारतीय संस्कृतिके अनुकूल सिद्ध करना चाहते थे, और इस चाहनेका अर्थ यह था कि जो-कुछ वे कह रहे हैं, वही ठीक है। यदि इस बातका पक्का सबूत दिया जा सके कि कोई सिद्धान्त भारतीय संस्कृतिके अनुकूल है, तो उसका श्रेष्ठ होना निर्विवाद मान लिया जाता है; पर यह क्या अच्छी बात है? क्या भारतीय होनेसे ही कोई चीज़ ऊँची और अभारतीय होनेसे ही नीची हो जाती है? क्या यह भारतीय श्रोताके राष्ट्रीय भावावेशको उत्तेजित करके ज्ञानकी ओरसे उसे उदासीन कर देना नहीं है? देखा जाय।

२

भारतीय संस्कृतिका अर्थ क्या है? जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, सभ्यता शब्दकी भाँति संस्कृति शब्द भी अंगरेज़ीके 'कल्चर' शब्दके तौलपर नया गढ़ लिया गया है। स्वयं 'कल्चर' शब्द भी बहुत पुराना नहीं है। कहते हैं, अंगरेज़ीके प्रसिद्ध प्रबन्ध-लेखक बेकनने इस शब्दको 'मानसिक खेती' के अर्थमें प्रथम बार प्रयोग किया था। जो हो, भारतीय संस्कृति शब्द हिन्दुस्तानमें नया है और अन्य अनेक बातोंकी तरह इसका इस अर्थमें प्रयोग करना भी हमने विदेशियोंसे सीखा है। पुराना 'संस्कृति' शब्द इस नये अर्थमें पहले प्रयुक्त नहीं होता था।

हमारे वर्तमान शासकोंके ज्ञात-भाई जब पहले-पहले इस महादेशमें आये, तो उन्हें यह देश असभ्य-सा लगा। सभी चीज़ें अस्तव्यस्त-सी नज़र आईं। जब धीरे-धीरे इनका परिचय अधिक घनिष्ठ हुआ, तो उन्होंने देखा कि यहाँ अदालत और फ़ौज तो हैं, पर भीतरी और बाहरी आशंकाओंसे प्रजाकी रक्षा नहीं हो रही है; विद्वान और धार्मिक तो हैं, पर विद्या और धर्म साधारण जनता तक नहीं पहुँचे हैं। अत्यन्त निम्न-समाजमें विद्या या ज्ञान बहुत-कुछ पशुओंके instinctive ज्ञानकी तरह हैं और धर्म अन्ध-विश्वासके रूपमें। आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त विषम है। धनी और राजे-महाराजे तो हैं, पर बड़े-बड़े पैमानेपर उद्योग-धन्धोंका एकदम अभाव है। गान-वाद्य-नृत्य आदिसे ये एकदम अनभिज्ञ तो नहीं हैं, पर इस चीज़की पहुँच बहुत थोड़े लोगोंमें ही है। इन बातोंसे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह देश असभ्य तो नहीं है; पर सभ्य भी नहीं है। असलमें यह अर्द्धसभ्य है। जिन लोगोंने इस बातको ज़रा सहानुभूतिपूर्ण भाषामें लिखा, उन्होंने लिखा कि भारतवर्ष रहस्यमय है—Mystic है!

संयोगवश इन विदेशियोंने हमारी दुर्बलताका लाभ उठा लिया। वे राजा हुए। दोष और गुण सबमें होते हैं। उनमें भी हैं; पर एक बातमें वे अतुलनीय निकले। उनकी ज्ञानपिपासा बड़ी उत्कट साबित हुई। उन्होंने राज्य-भार हाथमें लेते ही इस देशको समझनेकी कोशिश की। भारतीय इतिवृत्तके विद्यार्थीसे यह तथ्य छिपा नहीं है कि उन्हें इस विषयमें विषम बाधाओंका सामना करना पड़ा। कितनी बार उन्हें धोखा खाना पड़ा; पर वे निराश न हुए। वेदके नामपर एक भलेमानसने एक जाली पुस्तक दे दी! अशोककी लिपिको एक काशीवासीने पाण्डवोंके गुप्त-वनवासका विवरण-पत्र बनाकर पढ़ दिया! यह ध्यान देनेकी बात है कि आजसे डेढ़ सौ वर्ष पहले ब्राह्मी या खरोष्ठी लिपिको पढ़नेवाला एक भी पंडित नहीं मिला था। सब-कुछ विदेशियोंने ही आरम्भ किया था। ईंट-पत्थरोंकी स्तूपीभूत जीर्णतामें से अध्यवसायियोंने भारतीय सभ्यताका उद्घाटन शुरू किया।

अथक परिश्रमके फल-स्वरूप जो-कुछ ईंट-पत्थर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कृत हुए, उनके बलपर देखा गया भारतीय सभ्यताका उज्ज्वल रूप। चकित भावसे विदेशियोंने कहा—यह है भारतवर्ष! वेदोंको—आर्य-भाषाओंके सर्वप्रथम लिखित ग्रन्थोंको—जिसने देखा, उसीने एक बार आश्चर्य-मुद्रासे पूर्वकी ओर ताका, और अन्तमें मोक्षमूलर भट्टने संसारको एक नई बातसे चौंका दिया। उन्होंने देखा कि सम्पूर्ण यूरोप, ईरान और भारतवर्षमें एक ही भाषा बोली जाती है! इसके बोलनेवालोंके पूर्वज निश्चय ही एक ही स्थानसे सर्वत्र फैले होंगे! जातिका—मेरा मतलब Race से है—नाम संस्कृत भाषाके एक शब्दको लेकर दिया गया। वह शब्द है 'आर्य'। आर्य—संसारकी विजयी जाति, संसारकी मेधावी जाति, संसारकी सर्वश्रेष्ठ जाति!

भारतवर्षमें आत्म-चेतना जाग रही थी। मोक्षमूलर भट्टने जिस शब्दका इतना जगद्व्यापी विज्ञापन किया था, वह हमारा था, उसके वाचक हम भी थे। हमारी आत्म-चेतनाने इसे और भी साफ़ अर्थमें लिया—आर्य शब्दके वाच्य केवल हमीं हैं। बादमें आर्यसमाजके सुसंगठित प्रचारने इस शब्दको और भी व्यापक बना दिया। वेदोंको माननेवाला आदमी आर्यसमाजकी परिभाषामें आर्य हुआ। मोक्षमूलरकी व्याख्या जाति-मूलक थी, आर्यसमाजकी व्याख्या धर्ममूलक हुई। हमने अत्यन्त गर्वके साथ अनुभव किया कि हम आर्य हैं, हमारी सभ्यता आर्य-सभ्यता है, हमारी संस्कृति आर्य-संस्कृति है, हमारी नस-नसमें आर्य-रक्त प्रवाहित हो रहा है। इस गर्वानुभूतिके साथ-ही-साथ ज्ञात या अज्ञात भावसे हम सदा सोचते रहे—हम वही आर्य हैं, जो संसारकी सर्वश्रेष्ठ जाति है। हमारी चिन्ता सर्वश्रेष्ठ चिन्ता है। हमारी संस्कृति सर्वोत्तम संस्कृति है। जो कुछ इसके भीतर नहीं, वह ठीक नहीं, वह ग्राह्य नहीं!

३

ज्यों-ज्यों ज्ञानपिपासुओंका उद्योग अग्रसर होता गया, त्यों-त्यों पूर्वतर मतोंका संशोधन भी होता गया। मोक्षमूलर भट्टकी परमविज्ञापित 'आर्य-जाति' अब उतनी आकर्षक नहीं रही। नृतत्त्व-विशारदोंने शीघ्र ही पता लगाया कि आर्य-भाषा बोलनेवाली सभी जातियाँ आर्य नहीं हैं। इधर भारतवर्षकी सभ्यता भी सम्पूर्णतः आर्य-सभ्यता नहीं है। आर्य इस देशमें उसी प्रकार नवागन्तुक थे, जिस प्रकार शक, हूण आदि अन्यान्य विदेशी जातियाँ समय-समयपर आईं और अपने सारे आचार-विचार और विश्वासोंके साथ यहींकी हो रहीं। भारतीय संस्कृति डेल्टापर जमे हुए अनेक बालुका-स्तरोंकी भाँति नाना साधनाओं और संस्कृतियोंके योगसे बनी है। आर्योंके आनेके पहले इस देशमें सभ्यतर द्रविड़-जाति बस रही थी। राजनीतिक रूपमें विजित होनेपर भी उनकी संस्कृति विजयी हुई। उपनिषदोंका बहुधा-विज्ञापित अध्यात्मवाद आर्यकी अपेक्षा आर्येतर अधिक है। वर्तमान भारतवर्षका धर्म-मत अधिकांशमें आर्येतर है। सरलता और ओजस्विताके कारण आर्य-भाषाकी जीत हुई; पर उसके सौन्दर्य और सरसता-व्यंजक रूपके लिए आर्येतर जातियोंका ऋणी होना ही पड़ेगा। भारतीय दर्शन अनेकांशमें आर्येतर सिद्धान्तोंसे प्रभावित हुआ है।

परन्तु सबसे अधिक आर्येतर-संश्रव साहित्य और ललित-कलाओंके क्षेत्रमें हुआ है। अजन्तामें चित्रित, साँची, भरहुत आदिमें उत्कीर्ण चित्र और मूर्तियाँ आर्येतर सभ्यताकी समृद्धिके परिचायक हैं। महाभारत और कालिदासके काव्योंकी तुलना करनेसे जान पड़ेगा कि दोनों दो चीज़ें हैं। एकमें तेज है, दृढ़ता है और अभिव्यक्तिका वेग है, तो दूसरेमें लालित्य है, माधुर्य है और व्यंजनाकी छटा है। महाभारतमें आर्य-उपादान अधिक हैं, कालिदासके काव्योंमें आर्येतर। जिन लोगोंने भारतीय शिल्प-शास्त्रका अनुशीलन किया है, वे जानते हैं कि भारतीय शिल्पमें कितने आर्येतर उपादान हैं और काव्यों तथा नाटकोंमें उनका कैसा अद्भुत प्रभाव पड़ा है। पता चला है कि साँची, भरहुत आदिके चित्रकार यक्षों और नागोंकी पूजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाली एक सौन्दर्य-प्रिय जाति थी, जो सम्भवतः उत्तर-भारतसे लेकर आसाम तक फैली हुई थी। बहुत-सी ऐसी बातें कालिदास आदि कवियोंने इन सौन्दर्य-प्रेमी जातियोंसे ग्रहण कीं, जिनका पता आर्योंको न था। कामदेव और अप्सराएँ उनकी देव-देवियाँ हैं, सुन्दरियोंके पदाघातसे अशोकका पुष्पित होना उनकी कल्पना है, तरुणियोंकी मुख-मदिरासे बकुलका पुष्पित होना उनके घरकी चीज़ है, अलकापुरी उनका स्वर्ग है—इस प्रकारकी अन्य अनेक बातें उनसे और उन्हींकी तरह अन्यान्य आर्येतर जातियोंसे महाकविने ली हैं।

भारतीय नाट्यशास्त्र, कहते हैं, आर्योंकी विद्या नहीं है। शुरूमें ही एक कथामें बताया गया है कि ब्रह्माने नाट्यवेद नामक पाँचवें वेदकी सृष्टि की थी। अगर आर्योंके वेदोंसे इसका कुछ भी सम्बन्ध होता तो, पंडितोंका अनुमान है, इस कथाकी ज़रूरत न हुई होती। वास्तवमें भारतीय नाटक पहले केवल अभिनय-रूपमें ही दिखाये जाते थे। उनमें भाषाका प्रयोग करना आर्य संशोधन या परिवर्द्धन है।

इस प्रकार मूलमें भारतीय संस्कृति कई बलवती सभ्यताओंके योगसे बनी। आर्य-द्राविड़ और यक्ष-नाग सभ्यताकी त्रिवेणीसे इस महाधाराका आरम्भ हुआ। बादमें अन्य अनेक सभ्य, अर्धसभ्य और असभ्य जातियोंकी संस्कृतियाँ, धर्म-मत, आचार-परम्परा और विश्वास इसमें घुलते गये। भारतीय ज्योतिष, जो हमारी संस्कृतिके निर्माणका एक ज़बरदस्त अंग है, बहुत-कुछ यवनों (ग्रीकों), बर्बरों (बैबिलोनियनों), असुरो (असीरियनों) के विश्वाससे प्रभावित है। बाल-गोपालकी पूजा, विश्वास किया जाने लगा है कि, जाटों, गूजरों और अहीरोंकी पूर्वज किसी विदेशी घुमक्कड़ जातिकी देन है। मध्ययुगकी भारतीय संस्कृति एक हद तक फारसके सूफियों तथा अन्यान्य मुसलमानी पीरोंके धर्म-मतसे प्रभावित हुई थी। इस युगकी चित्रकला, संगीत-विद्या और नृत्यकला तो निश्चित रूपसे विदेशी उपादानोंसे समृद्ध हुई थी।

पर ये सारी बातें भारतवर्षकी प्रकृतिको देखते हुए एक भयंकर विरोधाभास-सी नज़र आयेंगी। जिस सभ्यताके मूलमें ही वर्जनशीलता है, उसने विदेशी बातोंको इतना अधिक आत्मसात् किया है, यह बात विश्वासके योग्य नहीं जान पड़ती। सहस्र-सहस्र उप-जातियों, सम्प्रदायों और टोलियोंमें बहुधा विभक्त इस देशमें एक ही बात सत्य दीखती है—परम्परासे चिपटे रहना। जहाँ हज़ारों वर्षसे एक साथ वास करनेवाली जातिके हाथका छुआ पानी भी ग्रहणीय न समझा जाता हो, वहाँ विदेशी संस्कृतिकी अदला-बदली एक असम्भव-सी घटना है। यह कैसे मान लिया जाय कि गर्वीली आर्य-जातिके वंशधरोंने उन लोगोंके धर्म-विश्वास और आचार-परम्पराको भी अपनाया है, जिसे वे अपनी भाषा सुननेके योग्य भी नहीं समझते थे।

वस्तुतः यह ऊपरका दृश्यमान विरोध ही सारी भारतीय संस्कृतिके निर्माणमें सहायक हुआ है। जैसा कि बताया गया है, सभ्यता और संस्कृति एक ही वस्तु नहीं है। जहाँ हज़ारों छोटी-मोटी जातियोंकी सामाजिक व्यवस्था, नैतिक परम्परा, विचित्र आचार-विचारको प्रश्रय देनेवाली, किसीके स्वतन्त्र धर्म-विश्वासमें दख़ल न देनेवाली, सभ्यता सम्भव है, वहीं अनेकमें एकता देखनेवाली योगदृष्टि या समन्वयात्मिका संस्कृति भी सम्भव है। भारतीय संस्कृतिने भेदकी समस्याको उस ढंगसे नहीं सुलझाया है, जिस ढंगसे अमेरिकामें सुलझाया गया है। अमेरिका-प्रवासी यूरोपियनोंने वहाँके आदिम अधिवासियोंको बेदर्दीके साथ कुचल दिया। उनका अस्तित्व ही नहीं रहने दिया। जो सभ्यता सबको पीसकर एक कर देना चाहती है, उसके प्राणमें बहुत्व है, उसके रक्तमें भेद-भाव और घृणा है। भारतीय संस्कृतिके प्राणमें एकत्व है, उसके रक्तमें सहानुभूति है। यही कारण है कि आज इस देशमें सहस्राधिक समाज एक दूसरेको बाधा पहुँचाते हुए भी अपनी विशेषताओंके साथ जीवित हैं। भारतीय संस्कृतिने सदा-सर्वदा समन्वयके रूपमें समस्याका समाधान किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक युगसे लेकर ईसाकी उन्नीसवीं शताब्दी तक निरन्तर समन्वयकी चेष्टा ही भारतीय संस्कृतिका इतिहास है। कर्ममय वैदिक धर्मके साथ जब वैराग्य-प्रधान अध्यात्मवादी आर्येतरोंका संघर्ष हुआ, तो इस संस्कृतिने बड़ी शीघ्रताके साथ मानव-जीवनको चार आश्रमोंमें बाँटकर समन्वय कर लिया। आर्योंका स्वर्ग और आर्येतरोंका मोक्ष तथा पुनर्जन्म-सिद्धान्त इस संस्कृतिमें दूध-चीनीकी तरह घुल गये। भयंकर विद्रोही बुद्धदेव एक दिन अवतारवादियोंके मन्दिरमें आ जमे। कबीर, नानक, दादू, अकबर, राममोहन आदिका प्रयत्न समन्वयका प्रयत्न था। हठात उन्नीसवीं सदीमें एक नई समस्या आ उपस्थित हुई। यह बात भारतीयोंके निकट अपरिचित थी। इस समस्याको उन्होंने कभी देखा-सुना न था। इस समस्याका नाम है 'नेशनलिटी'। इसको हिन्दीमें नाम दिया गया है 'राष्ट्रीयता'।

४

पश्चिमकी यान्त्रिक राष्ट्रीयता जब पहले-पहल इस राष्ट्रीयता-रहित देशमें आई, तब यहाँवालोंने उसे ठीक नहीं समझा। एक आदमी राजा हो सकता है, वह किसी वर्ग-विशेषके आदमियोंके ऊपर कृपा, क्रोध आदि भी कर सकता है, नहीं भी कर सकता है, यह बात तो ये समझ सकते थे; किन्तु समूचा देश-का-देश राजा हो सकता है, यह बात कुछ अजीब-सी लगी। पहले कुछ कौतूहल और भय, फिर संभ्रम और सन्देहकी दृष्टिसे उसे देखते गये; जब अच्छी तरहसे देखा, तो उसका रहस्य मालूम हुआ। व्यक्तिने संघातके सामने अपनेको पराजित अनुभव किया। भारतवर्षने पहली बार सम्मिलित भावसे एक ही मंचपर खड़े होनेका प्रयत्न शुरू किया। इस राष्ट्रीयता-रहित देशको राष्ट्र-वेशमें सज्जित होना पड़ा। लेकिन समस्याका यह ऊपरी रूप था। ऐसा मालूम हुआ था कि अपने प्राचीन आचार-विचारोंका अर्थहीन गट्ठर कन्धेपर ढोते हुए भी हम राष्ट्र-निर्माण कर सकते हैं। इससे हमारी परम्परा-समागत रूढ़ियोंके आहत होनेका भय एकदम नहीं है; पर वास्तवमें वैसा हुआ नहीं। समस्या केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं थी।

पिछली शताब्दीमें कई ऐसे युगान्तरकारी आविष्कार पश्चिमी देशोंमें हुए, जिनसे राष्ट्र-नीतिमें आमूल परिवर्तन अनिवार्य हो गया। प्रेसने ज्ञानको सुलभ कर दिया, वाष्प-यन्त्रोंने दूरी कम कर दी और चिकित्सा-सम्बन्धी आविष्कारोंने जीवनको ज्यादा सुरक्षित बना दिया। इनमें परस्पर एक-दूसरेका बड़ा गहरा सम्बन्ध है। समाचारपत्र, जो बादमें प्रेसके साथ एकार्थक हो गये, जहाँ ज्ञान-संकलन करने लगे, वहीं मुस्तैदीके साथ राज-शक्तिका भी विरोध करते रहे। फलतः राज-शक्ति अपनी धाँधली लोगोंकी आँखोंसे बचा नहीं सकती थी। वह धाँधलीके साथ भी अपना शानदार कारवाँ हाँक सकती थी; पर वाष्पयानोंने शत्रुके आक्रमणकी इतनी सम्भावना पैदा कर दी कि जनताकी उपेक्षा उसके लिए घातक सिद्ध होती, इसीलिए अनिच्छापूर्वक राज-शक्तिने जन-शक्तिको आत्म-समर्पण कर दिया। इसका अवश्यम्भावी परिणाम वही था, जिसे राष्ट्रीयता कहा जाता है। इस राष्ट्रीयताने जनताकी सुरक्षाका प्रबन्ध करना शुरू किया। सुरक्षितताका अर्थ है सभ्यताकी समृद्धि। यह सुरक्षा नाना रूपोंमें लोगोंको मिलने लगी—चिकित्साशास्त्रके द्वारा, पुलिस और कोर्टके द्वारा, म्यूनिसिपल व्यवस्थाओंके द्वारा, ज्ञान-प्रसारके वाहक प्रेसोंके द्वारा और इसी प्रकार अन्यान्य विभागोंके द्वारा। सुरक्षाके साथ ही व्यवसाय-वाणिज्यने ज़ोर पकड़ा, और फलतः अर्थका असम विकीरण शुरू हो गया। आर्थिक व्यवस्था जटिल होती गई और जीवन-संग्राम कठिन-से-कठिनतर होता गया। राष्ट्रीयताहीन देशोंमें उपनिवेश बसे, धनी देशोंमें संगठित लूट-पाट ज़ारी हुई।

उधर वैज्ञानिक आविष्कार सूद-दर-सूदकी तरह बढ़ते गये। ग्रामोफोन, सिनेमा आदिने बड़ी आसानीसे एक देशकी रीति-नीति, आचार-व्यवहारको अन्यत्र वहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना शुरू किया। कुछ पेटकी लड़ाईसे, कुछ केन्द्रच्युत मस्तिष्कोंकी उमंगसे सम्मिलित परिवार-प्रथा शिथिलतर होती गई। विवाह करना एक भार समझा जाने लगा और बहुत दिनोंकी सांसारिक रूढ़ि एकाएक ज़ोरसे हिल गई। स्त्री-स्वतन्त्रताका आन्दोलन विकट रूपसे पुरुष-स्वतन्त्रताका प्रतिद्वन्द्वी हो उठा। इन और इन्हींकी तरहकी अनेक विचारगत उथल-पुथलोंके बीचसे वर्तमान सभ्यताका रथ-घर्घर भारतवर्षके रूढ़ि-प्रिय कानोंको सुनाई दिया। जिसने सुना, उसीने कहा—यह भारतीय संस्कृतिके विरुद्ध है, यह अग्राह्य है।

लेकिन यह रंग-ढंग भारतीय संस्कृतिके ही विरुद्ध नहीं था, ग्रीक, रोमन या अन्य कोई प्राचीन संस्कृति भी इससे उसी प्रकार चौकन्नी हो सकती थी और कई जगह हो भी चुकी थी; लेकिन जिस प्रकार तत्तत् संस्कृतिके सुसंस्कृत उसे ग्रहण करनेको वाध्य हुए थे, यहाँवालोंको भी उसी प्रकार वाध्य हुए बिना कोई उपाय नहीं है। अन्तर इतना ही है कि जो बात उन्हें दो सौ वर्षमें धीरे-धीरे ग्रहण करनी पड़ी थी, वही बात हमें बीस वर्षोंमें करनी पड़ रही है—तेजीसे, हड़बड़ीमें। स्वभावतः ही हमें कष्ट ज्यादा हो रहा है। यहाँ भी वही प्रेस, वही वाष्प और बिजलीके यन्त्र, वही सिनेमा और थियेटर, वही सब-कुछ—बल्कि उनसे कई अंशोंमें सुधरे हुए और समृद्ध हैं, फिर वही बातें, जो उन देशोंमें घट चुकी हैं, यहाँ घटनेसे क्यों बाज़ आयेंगी?

वैज्ञानिक युगके पहले भी भारतवासी यही चीज़ थे, जो आज हैं; पर परिस्थितियोंमें परिवर्तन होनेके कारण उनका मानसिक संस्कार भी बदलता जा रहा है। पुराने ज़मानेमें परम्परा-प्राप्त रहन-सहनसे अभ्यस्त होनेके कारण परम्परा-समागत विश्वास और आचारके वहनमें जो सुविधा प्राप्त थी, अब वह शिथिलसे शिथिलतर होती जा रही है। कामके उद्देश्यसे अलग-अलग स्थानोंमें वास करनेके कारण पारिवारिक आचार-परम्परा विशेष भावसे आहत हुई है। नई शिक्षाके परिचयसे विश्वास भी ढीला होता जा रहा है। कम-से-कम शहरोंमें बसी जनता उतने अर्थहीन आचार-विचारके जंजालोंसे नहीं दबी है, जितने उनके ग्रामीण पूर्वज थे। ग्राम भी अब पहले-जैसे नहीं रहे, क्योंकि गाँवके बहुतसे आदमियोंका शहरोंमें आकर काम पाना उन्हें ग्रामीण परम्परासे विच्छिन्न कर देता है।

५

अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक जल्पनाओंमें आजकल हम लोग पूर्व और पश्चिम शब्दका व्यवहार करने लगे हैं। यह एक मनोरंजक बात है कि भारतके प्राचीन मनीषी इन शब्दोंका व्यवहार नहीं करते थे। पूर्व रहस्यमय है, आध्यात्मिक है, धर्मप्राण है; पश्चिम व्यवसायी है, मैटर-आफ-फैक्ट है, आधिभौतिक है—इत्यादि बातें हम सुना करते हैं, प्रयोग भी किया करते हैं; लेकिन पूर्व और पश्चिमकी विभाजक रेखा कहाँ है? फ्रांस पश्चिममें है, जर्मनी पूर्वमें; जर्मनी पश्चिममें है, रूस पूर्वमें। अमेरिका पश्चिममें है या जापान? कौन बतायेगा? असलमें पश्चिमका अर्थ कुछ-कुछ आधुनिक और व्यवसायी रूपमें होने लगा है और पूर्वका प्राचीन और अस्त-व्यस्त अर्थमें। विशेष आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियोंके कारण यूरोपमें एक प्रकारकी विचारगत क्रान्ति हुई है। यह बात यूरोपके पूर्वस्थ प्राचीन देशोंमें नहीं हो सकी; पर सदाके लिए उसे उन देशोंमें आनेसे कौन रोक सकता है? जापान—सुदूर पूर्व—से बढ़कर व्यवसायी, मैटर-आफ-फैक्ट और आधिभौतिक देश कौन है?

असल बात यह है कि मनुष्यका मन सर्वत्र एक है। राजनीतिक, आर्थिक आदि कारणोंसे उस एक मनके प्रकाशनका वाह्य आवरण चाहे जितना ही भिन्न क्यों न हो, भीतरमें वह एक है। नृतत्त्व-विशारदोंके आधुनिक शोध इसके पक्के सबूत है। एक ही प्रकारके मनोभाव पारिपार्श्विक अवस्थाओंके योगसे नाना प्रकारके सामाजिक और धार्मिक आवरणोंमें बदल गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मनोरंजक सत्य है कि मानव-जातिकी बहुधा विभक्त धार्मिक भावनाओं, सामाजिक रूढ़ियों, सौन्दर्य और शीलकी धारणाओंका मूल कारण सर्वत्र एक ही मनोभाव रहे हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य अपनी विशेष-विशेष टोलियोंमें आबद्ध होकर आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों नई-नई और भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंके योगसे उसके वाह्य आचार बदलते गये। इन्हीं प्राचीनता - प्राप्त आचारोंने धार्मिकता, राष्ट्रीयता, जातीयता आदिका आकार ग्रहण किया। इन्हीं प्राचीनता-प्राप्त आचारोंने—इन्हें रूढ़ि कह सकते हैं—हमारे दैनिक आचार, पूजा-पाठ, धर्म-कर्म, विचार-व्यवहारपर अपनी छाप लगा दी है। इन वाह्य विशेषताओंको ही हम गर्वपूर्वक ढोते आ रहे है। इन वाह्य विशेषताओंने असेंसे मनुष्य और मनुष्यके भीतर एक दीवार खड़ी रखी है। हम लड़े हैं, झगड़े हैं, मरते-मारते रहे हैं, एक-दूसरेको लूटते-खसोटते रहे हैं और अभिमानके साथ अपने विशेष वर्ग और विशेष टोलीका जय-निर्घोष करते रहे हैं।

समयने पलटा खाया है। वैज्ञानिकोंने मानवीय प्रकृति और विश्व-प्रकृतिका निर्लिप्त भावसे विश्लेषण किया है। देखा गया है कि जगतमें एक ही शाश्वत मानव-मस्तिष्क काम कर रहा है। आज तक संसार ग़लतफ़हमीका शिकार बना रहा है। आज उसके पास इतना अधिक साधन है कि पुरानी ग़लतफ़हमी अगर उसी वेगसे चलती रही, तो उसका परिणाम भयंकर होगा। शायद संसारमें एक जातिको दूसरी जातियोंके समझनेकी इतनी सख्त ज़रूरत कभी नहीं पैदा हुई थी! समझनेका रास्ता अब भी बहुत साफ़ नहीं हुआ है। दो सेहियाँ अगर अपने शरीरके काँटोंको खड़ा करके परस्परको आलिंगन करना चाहें, तो आलिंगन हो चुका! अगर दूसरी जातियोंके समझनेके लिए हमने अपनेको अपने सारे वाह्याचारोंके जंजालमें बन्द करके रखा, तो समझना असम्भव है।

अगर हमने गाल्सवर्दी या बर्नर्ड शाको समझनेके लिए पूर्व और पश्चिमके कृत्रिम विभाजनको अपने मनसे निकाल न दिया, तो हम केवल दो साहित्यिकोंको ही समझनेमें ग़लती नहीं करेंगे, समूची जातिको ग़लत समझेंगे। कृत्रिम विभाजन कहनेसे मेरा मतलब यह है कि हम व्यर्थके इस पचड़ेमें न पड़ जायँ कि कोई चीज़ उसमें कहाँ तक भारतीय या अभारतीय, आध्यात्मिक या अनाध्यात्मिक है। चीज़ अगर अच्छी है, तो वह भारतीय हो या न हो, स्वीकार है; आध्यात्मिक हो या नहीं, ग्राह्य है; लेकिन अंगरेज़ी समाज और भारतीय समाजमें कुछ अन्तर ज़रूर है। इन अन्तरोंको—वाह्याचरण - सम्बन्धी अन्तरोंको—हमें भूलना नहीं चाहिए, क्योंकि इनके भूल जानेसे ही चीज़को समझनेमें भूल हो सकती है। गाल्सवर्दी एक विशेष प्रकारके वाह्याचारमें पले आदमीको लक्ष्य करके लिख रहे हैं, इसलिए उनको समझनेके लिए उनका लक्ष्यीभूत आचरण याद रखना चाहिए।

पूछा जा सकता है कि अगर भारतीयता, आध्यात्मिकता या ऐसी ही कुछ चीज़ अच्छी चीज़के निर्वाचनकी कसौटी नहीं है, तो फिर वह कौन-सी चीज़ है, जो अच्छी चीज़के निर्वाचनकी सहायक है। यह एक दूसरा विषय है। इसे छेड़नेसे एक समूची समस्याको छेड़ना होगा। साधारणतः मनुष्यका मन ही अच्छी चीज़के निर्णयकी कसौटी है; लेकिन यह उत्तर भी अस्पष्ट है, क्योंकि मनुष्यका मन कहना बातको साफ-साफ कहना नहीं हुआ। किसीका मन 'बिहारी-सतसई'को पसन्द करता है, किसीका 'दुलारे-दोहावली'को। कौन-सा प्रमाण है और कौन-सा अप्रमाण? वास्तवमें मन कहनेसे हम किसी एक आदमीके मनको नहीं समझना चाहते। संसारकी प्रवृद्ध मनीषाने औसत संस्कृत सहृदयोंकी आनन्दानुभूतिको एक विशेष सीमा तक पहुँचाया है। मनसे मतलब उसी स्टैण्डर्ड मनसे है।

लेकिन फिलहाल हम उधर नहीं विचार करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते। हमारा मूल वक्तव्य यही है कि हमें पूर्व या पश्चिम, या भारतीय-अभारतीय आदि कृत्रिम विभाजनोंके अर्थहीन परिवेष्टनोंसे अपनेको घेर नहीं रखना चाहिए। अगर ज़रूरत हो, तो तथाकथित आध्यात्मिक आदि विशेषणोंसे विशिष्यमाण आचारों और मनोविकारोंको अतिक्रमण करके भी विश्वजनीन सत्यको जाननेकी कोशिश करना चाहिए। जिन महापुरुषोंने नाना क्षुद्र-वृहत परिवेष्टनोंको तोड़कर भारतीय साहित्य और संस्कृतिको समझनेकी कोशिश की है, उनसे अगर ग़लती भी हुई हो, तो उनका मज़ाक नहीं उड़ाना चाहिए। भारतीय संस्कृति—और कोई भी अन्य संस्कृति (अगर संस्कृति शब्दको विशेषण बिना कहा ही न जा सके !)—विश्वजनीन सत्यकी विरोधिनी नहीं है।

विदा

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

चल दोगी कुटिया सूनीकर, इसी पलक, इस याम
युग-युग तक जलते रहनेका, मुझे सौंपकर काम
इतना क्या कम था तुम आईं
उड़ते - से पक्षीकी नाईं
चार घड़ीको जीवन लाईं
जड़ता गति होकर बह निकली, उत्फुल्लित उद्दाम
चल दोगी कुटिया सूनीकर, इसी पलक, इस याम

मैंने कब चाहा चिर-मिलना, कब चाहा चिर-प्यार
कब चाहा हो कुटिया मेरी तेरा कारागार
और प्रेमका लघु सुन्दर क्षण
कब चाहा पाये चिर-यौवन
मेरा प्रेम बने नव बन्धन
कब चाहा मैंने उल्फ़तका ऐसा जड़ अंजाम
चल दोगी कुटिया सूनीकर, इसी पलक, इस याम

जाओ, जाओ, देवि, बसाओ एक नया संसार
एक नया उल्लास, नया सुख, पाओ नूतन प्यार
याद कहीं आये जो मेरी
मेरे दुख-सी, उत्पीड़न-सी
इस मेरी सूनी कुटियाकी
उसे भुला देना उस सुखमें क्या इस दुखका काम
चल दोगी कुटिया सूनीकर, इसी पलक, इस याम

सुख सीमाको जा पहुँचा था, था आनन्द महान
नस-नसमें जीवन जागा था, रोम-रोममें प्राण
उन घड़ियोंकी याद सुखद है
उनकी स्मृतिमें भी तो मद है
सुखकी भी लेकिन कुछ हद है
भरा लबालब इसीलिए तो छलक उठा है जाम
चल दोगी कुटिया सूनीकर, इसी पलक, इस याम

मेरे जीनेको काफ़ी है, एक तुम्हारी याद
मीठे - मीठे सपनोंका - सा पीड़ामय आह्लाद
सच कहता हूँ, जी सकता हूँ
दुखका प्याला पी सकता हूँ
घाव हृदयके सी सकता हूँ
जब तक है स्मृति-पटपर तव छवि, सुन्दर, सुखद, ललाम
चल दोगी कुटिया सूनीकर, इसी पलक, इस याम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिच्छाया

श्री जुगुलकिशोर शुक्ल

जीनेके नीचेवाले घरौंदेमें दीना बैठा था। पैर लम्बे, फैले हुए एक-पर-एक चढ़े थे। दृष्टि एक ओरको गड़ी हुई थी। जिस तरह चोट लग जानेपर कुत्ते किसी नाली या गड्ढेके अँधेरे कोनेमें घुसकर चुटीले स्थानको चाटते हैं, उसी तरह दीनाके लिए अस्पतालके ज़ीनेके नीचेका यह घरौंदा आपत्ति और दुखके बाद बैठनेका काम देता था। उसकी दशा उस समय उस मछुएकी-सी हो रही थी, जो भयंकर तूफ़ानसे भाग्यवश बचकर आ गया हो—जालमें चमकती हुई मछलियाँ भरी सामने रखी हों; पर डरके कारण आँखोंके सामने वही मुँह बाये ऊँची लहरें और जीवन-नौकाका करवटें बदलना नाच रहा हो।

दीनाके हाथ-पैर आवेशके कारण काँप रहे थे। रक्त धमनियोंमें दूनी तेजीसे चल रहा था और मुँहका स्वाद कड़ुवा हो गया था। चोटके चारों ओरके स्थानको फूँकते हुए उसने बीचकी उँगलीसे सहलाया। सहसा उसे पाँच मिनट पहले पाये हुए रुपयेकी याद आई। उसने झट उसे कानसे निकाला, ग़ौरसे एक तरफ, फिर दूसरी ओर देखा, ज़मीनपर धीरेसे पटका और खरा देखकर धोतीके कोनेमें बाँध लिया। मस्तिष्कमें विचारोंकी भीड़ लग रही थी—"भगवान! भगवान भी कैसा दयालु है! बच्चा, रुपया ले लेना आसान था। कहीं युवक बेचारा झूठ न बोल देता, तो आज पूरा श्राद्ध ही हो गया था। सुपरिन्टेण्डेन्ट कभी न छोड़ता। अपस्तालकी नौकरी भी जीका बवाल है। अगर मैंने किसीकी खिदमत की और किसीने खुश होकर पैसे इनाम दे दिये, तो इस बदमाश सुपरिन्टेण्डेन्टके बच्चेका क्या जाता है? अजी, हैरानी तो इस बातकी है कि वह देख कैसे लेता है? आधा मिनट भी तो मुझे युवकसे रुपया लेते न लगा होगा, ससुरेने आकर एक ठोकर जमा दी! अफसरीकी शानमें है! कहीं जवाबमें मैं भी एक रसीद कर देता, तो अक्ल ठिकाने आ जाती। नौकरोंको रोगियोंसे इनामके पैसे लेनेकी सख्त मुमानियत है! अपने कोई नहीं कहता; सब हमीं लोगोंके लिए कायदे-क़ानून हैं—बस, गरीब ही को सब पीटते हैं!"

प्रेयसी मदिराके साथ दीनाने युवावस्थामें तो खूब प्रेम निबाहा था; पर अब बुढ़ापे और पैसेके अभावने उसे मजबूर कर रखा था। वैसे तो वह मदिरा देवीकी गोदमें अक्सर जा बैठता ही था; पर जी-भरकर, अपनेको भूलकर, नशेमें बहका नहीं। लेकिन आज? उसे भला कौन रोक सकता है? धोतीके कोनेमें रुपया बँधा रहते हुए वह आजके दिनको कैसे मिट्टीमें मिला सकता है? वह अवश्य ही उसे दुर्भाग्यसे बचा लेगा। बस, २४ घंटोंमें केवल उस हिस्सेकी देर थी, जिसमें उजाला नदारद और अराजकताके हरएक स्वतन्त्र पुजारीकी आज़ादीमें कम-से-कम हस्तक्षेप हो। फिर उसे दोस्तके मदिरा द्वारा किये गये एहसानको भी तो चुकाना है। इसके लिए आजके सुनहले दिनसे अच्छा और कौन दिन हो सकता है! और उसे चिन्ता ही अब किस बातकी थी? न बीवी, न बच्चे! जब चमेली जीवित थी? हाँ, तब तो चिन्ता हुआ करती थी। ओह! रही होगी चिन्ता, अब तो वह वायुके समान स्वतन्त्र है। क्या रंगीन शीशेके ग्लासमें कभी मदिरा देखी है? बस, अब तो उन्हीं नाचते-चमकते रंगीन मस्ताने मदिरा कणोंकी तरह उसका अस्तित्व है।

"अभी—अभी—" कहनेके लिए जैसे ही दीनाने मुँह खोला कि नीचेके दो टूटे दाँतोंमें से लारकी एक पतली लकीर निकली और छोटी डाढ़ीपर होती हुई दो बूँदों—एक छोटी और एक बड़ी—के रूपमें, बच्चोंकी तरह, पैरपर आ टपकी। कहते हैं कि डाढ़ीकी सृष्टि ईश्वरने मनुष्यके मुँहपर इसलिए की है कि रोगके कीटाणु मुँहके भीतर जानेसे रुक जायँ और गलेमें किसी तरहकी चोट न लग सके। इतना उच्च आदर्श रखनेवाली उस डाढ़ीसे इतना भी न हो सका कि बच्चोंके समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरती हुई लारकी उस बेहूदी लकीरको उदरस्थ कर ले, जिसने बेचारे बूढ़ेके जीवनमें से, बिना सोचे-समझे, एकदमसे तीस-चालीस वर्ष घटा देनेकी कोशिश की, मानो मुँहसे गिरकर वह दीनाको एक बच्चा ही तो साबित कर देगी। दीनाने बिना ध्यान दिये, उसे पोछ डाला; पर उस पतली लकीरने दीनाकी विचार-शृंखलाको एक अजीब तरहसे विभाजित कर दिया। जिन पत्नी-सम्बन्धी विचारोंको वह अपने दिमागसे बाहर ढकेलनेकी कोशिश कर रहा था, वे ही उसके मस्तिष्कमें अपना स्थान बनाते जा रहे थे। कुछ देरके बाद उन्हींका साम्राज्य भी स्थापित हो गया। उसे बीते हुए जीवनके उन दिनोंकी याद आने लगी, जिसमें मनुष्य आन्तरिक स्वार्थपरायण पशुसे विभिन्न हो जाता है; जीवनके जिस पहलूमें पशु-शरीरके लिए नोचा-खसोटी भूलकर वह अपनेपनकी आहुति देनेमें सुख पाता है। जब मातृ-ममता, पति-पुत्र-स्नेह-सी उच्च भावनाएँ सुगन्धिके समान उसके अहंमय जीवनको सुवासित करती हैं।

"पर···दीना? न, न, उसने तो उस आन्तरिक प्रेरणाको ठुकराकर भीतरकी आवाज़को कुचला था।"

जल्दी-जल्दी साँसका चलना—शरीरपर पसीनेका बहना और हृदयमें विचारोंका उत्ताल प्रवाह कोठरीकी वायुको कम्पित करने लगा। दीना उसी तरह बैठा सोचता रहा। उसके विचार मस्तिष्ककी परिधि लाँघकर मुँहके बाहर निकलने लगे—"वाह रे ठोकर! भला, चोट न लगती और दर्द न होता, तो उसकी याद ही क्यों आती? कितने अजीब हाथ थे! कैसे कोमल—कितने मधुर! इस चोटपर तो वह जादू कर सकती थी—जादू!" बूढ़ेकी मुद्रा गम्भीर होती चली गई। वह दीवारके उसी स्थानपर एक टक देखता रहा।

"चमेली मेरी देवी···ऊँSSS, नहीं-नहीं, जीवनकी स्वास, मेरे दिलकी मूर्ति, पत्नी—प्यारी—बहन—माता, नहीं-नहीं, ऊँSSS कुछ समझमें नहीं आता, मैं तुम्हें क्या कहूँ? आज मुझे क्या हो गया है? चमेलीकी इतनी याद क्यों आ रही है?"

दीनाकी नाक कुछ लाल हुई—फूली, होठ कुछ विकृत हुए और तीन-चार आँसुओंकी लड़ी आँखसे निकली, फिर वर्णहीन लकीरदार कपोलोंपर होकर दाढ़ीमें घुसी और गायब हो गई। दीनाने खखारकर गला साफ किया और नाकसे निकले हुए पानीको ज़मीनपर फेंकने जा रहा था कि उसकी नज़र ज़मीनपर जा पड़ी दीवारके छेदोंसे आते हुए धूपके दो प्रकाश-पूर्ण चकत्तोंपर। वह उन प्रकाशके चकत्तोंकी ओर देख ही रहा था कि एकके बाद दूसरी आकाशमें उड़ती हुई दो चीलोंकी छाया चित्रके समान उन धूपके चकत्तोंपर धीरे-धीरे रेंगती हुई चली गई। मानो उसने दीनाके हृदयके किसी ऐसे आन्तरिक तारको छू दिया, जिससे उसके यौवनकालकी यादका सम्बन्ध था। उसकी नाकमें सिनेमा-हॉलके अन्दरकी भारी इत्र और सिगरेटसे सुवासित वायु, कानमें मनुष्यों और बिजलीके पंखोंकी भनभनाहट और मुँहसे मदिराकी दबी हुई गन्ध—एक-एक करके दिमागमें रेंग गई। वह भी कैसे दिन थे! वह बैठा न रह सका। उठा और उठकर उसने दीवारके उन्हीं छिद्रोंसे बाहर देखा। सूरज डूब रहा था। दिन-भर तप चुका था। पेड़ों, पत्तियों, मनुष्यों और जानवरोंको झुलसाया था; ठीक उसीकी तरह, जैसे उसने चमेलीको भूना था। अब अस्त हो रहा था; तेजी, चुभनेवाली किरणें, अत्याचार, सब मर रहे थे। ग्लानिसे दीनाका दिल उबल पड़ा—"बिलकुल ठीक! अत्याचारियोंका योंही अन्त होना चाहिए।"

घरौंदेमें दीना टहल रहा था। उसे एक बातकी और याद आई—हाँ, हाँ···उस दिन सिनेमासे लौटकर उसने चमेलीको शराबकी बुराई करनेपर पीटा भी तो था,···वह अधिक टहल न सका और शक्तिहीन-सा होकर बैठ गया—"यह औरतें सब इसी तरहकी होती हैं, क्या? देखो तो दुलारी भी ठीक चमेलीकी ही तरह सब काम करती है। आखिर है तो उसकी बहन ही न। पर वह मेरा इतना खयाल क्यों करती है—उसे क्या पड़ी है? छिः और मैं? साथ रहनेको आई थी; विधवा है, मेरे साथ रह लेगी—आधा किराया घरका वह देगी और आधा मैं। परSSS, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन साल हो गये ; आधेकी कौन कहे, किरायेमें एक टका देना हराम है ! ऊपरसे प्रबन्ध-खर्च। और मेरी मार अलगसे। एक बच्ची भी तो है, उसे देखना और दिन भरकी नौकरी !"

स्त्रियोंकी ओरसे एक अजीब तरहके विचार दीनाके मस्तिष्कमें फिरने लगे। वे अत्यन्त पवित्र थे। उसका हृदय कुछ स्नेह, कुछ भक्ति और कुछ लज्जासे भर आया। बूढ़ेके लज्जा-भरे मुखपर पश्चात्तापके कारण एक बच्चेकी—करीब-करीब एक अबोध बालिकाकी—आत्मा झलक उठी, उसका सर नीचेकी ओर झुक गया, मानो उसपर एकदमसे कहींका बोझ आ पड़ा हो। वह सोचने लगा—"यही बातें और पहले क्यों नहीं समझमें आईं ? कहते हैं कि मर्द बड़े-बड़े काम करते हैं ; पर उन्हें यह भी मालूम है कि नारी-हृदयमें कौन-सा सुगन्धमय पुष्प—सेवा, प्रेम और सुश्रूषाका रखा हुआ है और उससे हम-जैसे पतितोंका कितना उद्धार होता है ? मनुष्य-जातिका क्या होता, यदि औरतोंमें यह गुण न होता ?"

दीनाकी आँखोंके सामने एक जलती हुई मूर्ति खड़ी हो गई, जिसमें लाल ज्वालाएँ जीभ निकालकर घूम-घूमकर काले धुएँके रूपमें भँभाती हुई ऊपर उठ जाती थीं। उसने देखा कि मूर्तिका सारा मल अग्निमें भस्म होता चला जा रहा है—यहाँ तक कि उसकी आँखोंके सामने एक अत्यन्त धवल कान्तिमय नारीकी प्रकाश-रश्मि खड़ी हो गई। दीनाके रोंगटे खड़े हो गये। उसने अपनी सादी आलोचनारहित भक्तिपूर्ण मनोवृत्तिसे नतमस्तक हो विश्वधात्री नारी-मूर्तिके चरणोंमें सर रख दिया।

वायुसे भी ज़्यादा तेजीसे उठनेवाली कल्पनाने उस प्रकाश-रश्मिमें दुलारीकी शकल स्थापित कर दी। दीनाने देखा, अँधेरी तूफ़ानी रात है। कोठरीके एक कोनेमें टिमटिमाता दीपक अपनी आभा छिटकाये खड़ा है। दुलारी अपनी लड़कीकी खाटके पास खड़ी है। तसवीरके समान दुलारीका दीपककी ओरका आधा मुखड़ा दीप-शिखाके पीत आवरणसे रँग गया है, दूसरी ओरका अप्रकाशित अँधेरेमें है। छोटी खाटपर छोटा-सा मुखड़ा दीख पड़ता है—कितना अधिक माके समान है वह। उस छोटे मुखड़ेपर एक मुसकराहट खेल रही है, जो एक छोटे गड्ढेमें पड़ती हुई चाँदकी छायाके अनुरूप है। दुलारी एकटक उस छोटे मुखड़े—छोटे शरीर—नन्हीं आकर्षणयुक्त आँखों और लाल-लाल छोटे-छोटे नाखूनोंको देखकर हैरान है। सोचती है कि वह कौन-सी शक्ति है, जिसने ऐसी बेकार और दुखदायी छोटी वस्तुके प्रति भी उसके हृदयमें अगाध प्रेम भर दिया। इन बातोंको दीना सोच ही रहा था कि उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके पैरमें कुछ जीवित चीज़ लगी। वह एकदम उछल पड़ा। उसे खयाल आया कि कहीं साँप तो नहीं है। छोटी बेडौल कोठरीके दो छेद भीतरका अन्धकार दूर करनेमें असमर्थ थे। फिर भी दीनाने दरवाज़ेपर देखा कि एक कुत्ता निकला चला जा रहा है। शायद पश्चिमी सभ्यताके लाड़ले 'कुत्तेराम' को कोठरीमें एक अपरिचितकी उपस्थित अरुचिकर मालूम हुई और वह अजनबीको सूँघ-साँघकर शाइस्तगीसे बाहर चले आये।

सभ्य संसारको असभ्य मनुष्योंसे अधिक प्रिय लगनेवाले कुत्तेकी निःश्वासने दीनाको स्वप्नकी लहरोंसे प्रत्यक्ष जीवनकी कठोर चट्टानपर ला पटका। उस समय रात हो चुकी थी। दीना कोठरीसे निकलकर घरकी ओर चला। आज उसने मन-ही-मन दृढ़प्रतिज्ञा की थी कि वह मदिरा हाथसे छूयेगा भी नहीं।

शराबखाना घरके रास्तेमें पड़ता था। दीनाने निश्चय कर लिया था कि वह वहाँपर ठहरेगा भी नहीं, मदिराकी कौन कहे। महाजन ? महाजन कुछ रँगाके थोड़े ही आये हैं—कोई भी बुलाये ; पर प्रतिज्ञाके बीच हृदयकी दृढ़ भावनाने धीरेसे सर निकालकर कहा—पीछे, दूर तक फैले लम्बे भूतकालमें अनगिनती प्रतिज्ञाएँ देखी हैं, आज कोई नई बात नहीं ! पर दीना अटल रहा और उस मूक आवाज़पर अनुशासन गाँठकर घरकी ओर क़दम बढ़ाता गया। पैर बढ़ रहे थे, वह सोच रहा था। वह घरके दरवाज़ेपर पहुँचेगा। रोज़की तरह दरवाज़ेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास पड़े हुए कूड़ेकी सुपरिचित 'सुगन्धि' स्वागत करेगी। दरवाज़ेके ऊपरके हिस्सेमें कई जगह लगे हुए जाले मन्द हवासे लगातार हिलते होंगे। ऊपरकी ओर सुतलीसे लटकी हुई प्याज, नागफनी उसके सरमें लगकर हिल जायगी, मानो वह भूत-प्रेतसे रक्षा करनेवाला दरवान घरमें किसीके आनेसे सोतेसे जाग उठा हो। दबे पैर दीना अन्दर जायगा आँचल गलेमें लपेटे, दुलारी अपनी धुनमें काम करती हुई गुनगुनाती होगी, जैसे अपने अस्तित्वके भारको गाना गाकर हलका कर रही हो। दबे पैर दीना बढ़ता हुआ दुलारीके पास तक पहुँचेगा और वही पाया हुआ रुपया एकदम उसके हाथपर रख देगा। तब कैसे वह उचक पड़ेगी और ताज्जुबसे उसकी ओर देखेगी। दीना चुपचाप उच्च दृष्टिसे मुसकराता हुआ देखेगा और कुछ वैसा ही खयाल करेगा, जैसा कम हैसियतवाले बाबू किसी गरीबके हाथमें पैसा देनेपर जीमें अपनेको धन्य मानते हैं और उसकी ओर ताकते हुए उम्मीद करते हैं, बल्कि कोशिश करते हैं, कि पानेवाला एहसानके बोझसे दब जाय।

उपर्युक्त बातोंको दीना सोच ही रहा था कि महाजनकी—"जय रामजोकी, दीना भाई! अस्पतालसे इतनी रातको? बहुत काम रहता है क्या?" इस बातने दीनाकी कल्पनापर हथौड़ेका काम किया और वह मोतियोंकी तरह चूर होकर बिखर गई।

दीना बिना कुछ उत्तर दिये, वहीं ठिठक गया। उसका संकल्प इतना उच्च था कि वह एकाएक हमेशाके दोस्त—मदिरापानकी सारी सुविधाओंको जुटा देनेवाले महाजनसे कुछ कह न सका और भीतरके भावोंको छिपाकर हमेशाका-सा नम्र बर्ताव करने लगा—"जय रामजीको, भइया महाजन! तुमसे नाराज-ओराज होकर कहाँ रहेंगे? इस बखत माफी देव, फिर मिलेंगे।" कहकर दीनाने घरकी ओर पैर बढ़ाया।

अभागे मनुष्योंकी विकृति परिस्थितियोंसे क्रय-विक्रय करनेवाले महाजनको दीनाके बदले हुए रुखको ताड़नेमें देर न लगी। मदिरासे ज़्यादा गहरे रंगमें रँगनेवाली मीठी बातोंको उसने शुरू किया—"आओ भइया, देर हो गई है? हम तो इस जाँघके फोड़ेसे ऐसे परेशान हैं कि क्या कहें—आज चार दिन हो गये, न दिन चैन पड़ती है, न रात।"

अभागा दीना लाख कोशिश करनेपर भी अस्तित्वहीन मुरौव्वतको न ठुकरा सका। उसका हृदय घरकी ओर चीत्कार करता हुआ दौड़ा और पैर काँपते हुए दूकानकी सीढ़ियाँ चढ़नेको बढ़े; पर नहीं बढ़ सके। चमेलीकी आत्मा उनमें लिपटकर बूढ़ेके साथ एक स्वरमें चीख उठी। वह लड़खड़ा गया और ऊपर जानेके बजाय एकाएक दोनों पैरोंपर धपसे नीचे आ गया।

"भइया महाजन, आज मेरा जी बहुत खराब हो रहा है, कल ज़रूर आयेंगे। आज माफी दो।"—दीनाने कहा।

पर महाजनके दूर तक फैले होठोंकी बत्तीसीसे निकलती हुई बिजली और उसके चुम्बककी कौन अवहेलना कर सकता है? उसे अन्तमें अपने रोते-विलखते हृदयको नोंच फेंकना पड़ा। वह ऊपर चढ़ा, जैसे पिछले दोनों पैर मोटरसे कुचल जानेपर कुत्ता सीढ़ियाँ फिसलकर चढ़ता है।

महाजनकी स्वार्थपरायणता और दूकानदारी ममताका झूठा आवरण पहनकर बरस पड़ी, जैसे रुक्का लिखाते समय सूदखोरकी आत्मीयता उमड़ती है। दूकानकी दीवारें, जो दीनाके क़हक़हेसे आज तक कम्पित होती चली आई थीं, आज उसे संज्ञाहीन देखकर क़ब्रगाहकी दीवारोंकी तरह चुप खड़ी रहीं। क्या सचमुच वे जीवित मनुष्योंकी कब्रकी दीवारें नहीं थीं? और दीना? वह व्याकुल होता जा रहा था। उसके हथ-पैर पसीनेसे भींगे जा रहे थे। आँखोंके सामने चिनगारियाँ फिर जाती थीं। उसकी ज़बानके कोने तक आया कि कह दे—जी कड़ा करके कह दे—"महाजन, तेरी यह मदिरा-वदिरा कुछ नहीं चाहिए। मैं जाता हूँ। मैंने प्रण कर लिया है कि आजसे इसे हाथसे न छुऊँगा!" पर दीनाने सर ऊपर उठाकर देखा, वही सुपरिचित ग्लास—मदिरासे भरा हुआ; सतहपर मोतियोंकी तरह छोटे बुलबुले आँख मार-मारकर उन्मत्त यौवनाकी तरह उसे बुला रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनाके होठ नीले हुए, काँपे और खिंचकर वैसे ही ग्लाससे जा लगे, जैसे पारेकी दो बूँदें एक दूसरेसे खिंचकर मिल जाती हैं। और हुआ क्या? एक छोटेसे पौधेने ज़मीन चीरकर नन्हा-सा सर निकाला—सामने जीवनकी एक मनोहर लालसा लहलहा उठी। इतनेमें हवाने पानीमें एक ज़ोरका थपेड़ा दिया और पौधा बीजसहित पानीके साथ बह गया—रह गई केवल साफ पृथिवी।

पार्ककी बेंचपर दीना सारी रात सोता रहा और वैसे ही सोता रहा, जैसे क़ब्रके बाशिन्दे। निद्राके नामपर बेहोशी थी और आनन्दके नामपर नशा। जब वह सुबह उठा, तो एक भयंकर स्वप्नकी धुँधली रेखा उसके दिलपर अजीब तरहका भयपूर्ण असर डाल रही थी। उसे हटानेके लिए वह झटकेसे उठकर बैठ गया। एकाएक उसे सड़कपर किशोरी दिखलाई पड़ा। दीनाको देखकर उसने दूर ही से चिल्लाकर कहा—"वाह! वाह! कहो भइया, कहाँ थे कलसे?"

दीना इस तरहके स्वागतके लिए बिलकुल तैयार न था। फिर बिना किसी खास सबबके किशोरी, जिसकी बहुत कम बोलनेकी आदत थी, इस तरह व्यंगात्मक मुँह कभी न बनाता। दीना कुछ बोल न सका, किशोरीके पास आनेपर बोला—"कहो भाई, बात क्या है?" किशोरीके मुँहके भावों और रंगोंका आना-जाना देखता रहा।

"बात! बात क्या है, कुछ भी नहीं; तुम रात-भर बागकी सैर करते रहे और वहाँ दुलारी दूसरी दुनियाकी सैर करने चली गई! कालरा···"

आगे दीना कुछ न सुन सका। उसके सामनेकी सारी चीज़ें नाचने लगीं—ज़मीन, पेड़, आसमान, किशोरी, सब-कुछ। पिटे कुत्तेकी तरह असहनीय खबरकी चोटसे उसने खिजलाहटके दाँत निकाल दिये। न रो ही सका, न हँस ही। फौरन घरकी ओर दौड़ पड़ा। उसकी हालत पागलकी-सी हो गई। उसके पैर तेजीसे बढ़ने लगे; पर मन पहले ही घर पहुँच गया।

"कालरा? और बच्ची?—किशोरी हँसी कर रहा होगा, इतनी जल्द मर नहीं सकती।···एँSSSSS हुश पागल, कहीं किशोरी हँसी भी कर सकता है?" उसने रातकी बातें याद कीं—कोठरी—कपड़ेपर बीमार दुलारी—छायाके समान—छातीपर बच्ची—बिछावनपर कै-दस्त—क्लान्त मुख—मौतकी छाया! इसके आगे वह और कुछ न सोच सका। घबराहटमें सामनेसे आते हुए बूढ़े जमादारसे टकराकर कई गालियाँ सुनीं तथा अन्धेकी उपाधि पाई।

दीना घर पहुँचा और भीतर गया। रात-भर और दूसरे दिन दोपहर तक उसकी खबर न पानेके कारण पड़ोसियोंने मिलकर दुलारीके शवको अतीतके हवाले कर दिया था। बच्ची खाटपर अकेली पड़ी थी और उसके पास जमीनपर एक बूढ़ी पड़ोसिन बैठी थी। कुछ लोग चार-चारके गिरोहमें अत्यन्त गम्भीर मुँह बनाये, दरवाज़ेसे कुछ दूरपर, कानाफूँसी कर रहे थे। भीतरका दृश्य देखकर दीनाकी जबान भावोंसे पिछड़ गई। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके भीतर झाँकते ही घर रो पड़ा—चूल्हा-चक्की सभी। कपड़े-लत्ते सब एक साथ सिहर उठे। उसका दिल बिजलीकी तरह कौंधा और बुझ गया—हमेशाके लिए। उसे एकदमसे ज्ञान हुआ कि उसके हाथसे कोई चीज़ निकल गई और वह शायद अब कभी न मिले। मुँहसे एकाएक एँSSSS निकल पड़ा और निकल पड़ी ग्लानिकी एक ज्वाला, जिसने उसकी तमाम कलुषताको भस्म कर दिया। वह अपने आँसुओंको न रोक सका; दौड़कर बच्चीको एकदमसे उठा लिया। बच्चे सम्हालनेमें अनअभ्यस्त दो हड़ीले हाथोंसे दो फीटको ऊँचाईसे पाँच फीटकी ऊँचाईपर पहुँच जाना बच्चीको अच्छा न मालूम हुआ। वह चिल्लाकर रोने लगी। दीनाने झट उसे अपने गालोंसे चिपका लिया और दो अबोध हृदयोंके आँसू मिल-मिलकर बहने लगे।

पड़ोसिनका ध्यान इन बातोंको देखकर दीनाकी पिछली बुराइयोंपर गया। वह अजीब तरहका मुँह बनाकर ऐंठती हुई चली गई। दीनाने घरकी कुण्डी भीतरसे बन्द की, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सालकी सीताको खाटपर लेटा दिया और खुद खाटके पास ज़मीनपर घुटनोंके बल बैठ गया। उसके दिलमें अजीब तरहके विचार आ रहे थे। वह बच्चीकी ओर देखता जाता था और रोता जाता था। यहां तक कि उसकी हिचकी बँध गई। बहुत देर तक एकटक देखते रहनेके बाद उसने उसके नन्हें गुलाबी पैरोंपर अपना सर रख दिया। उसके विचार चारों ओर दौड़ रहे थे। उसे चमेलीकी याद आई, दुलारीकी याद आई और याद आई उस मातृ-स्नेहकी, जिससे प्रेरित होकर दुलारी सीताके लिए आँखें बिछा देनेको गिरी पड़ती थी—जिसके कारण वह बच्चीके नन्हें-से हृदयमें हृदय और आँखमें आँख उड़ेल देनेके लिए व्याकुल रहती थी। वह झटकेसे खड़ा हो गया और जाकर बच्चीसे लिपट गया। उसे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे उस बच्चीके छोटे शरीरके स्पर्शने उसके दिलमें मातृ-स्नेहका संचार कर दिया—जैसे उसके शरीरके अन्दर कोई चीज़ समा गई हो।

"तुझे कौन अब दूध देगा? कौन हर वक्त तेरे छोटे शरीरकी रक्षा करेगा? तू भूखी होगी, मेरी लाड़ली, मेरी बच्ची!"—कहता हुआ दीना उठा और सारी कोठरीको जल्दबाज लड़केकी तरह उलट डाला; पर एक बूँद दूधसे भेंट न हुई। अन्तमें उसे कुछ न सूझा और वह बच्चीको गोदमें लेकर घरसे निकल पड़ा।

"अरे! अनाथ बच्चेको दो बूँद दूध!
गरीब बच्चेको थोड़ा-सा दूध!"

—कहता हुआ बूढ़ा फिरने लगा। लाल आँखके बूढ़ेको अजीब तरहसे एक छोटी लड़की गोदमें लिये, काँपती आवाज़से भीख माँगते देखकर लोग उसकी ओर चकित हो देखते। अजीब तरहकी हिलती हुई काँपती भारी आवाज़ सुनकर उत्सुक सर दरवाज़ों और खिड़कियोंसे झाँक पड़ते। बूढ़ेकी गलेकी नसें फूल उठती थीं और उत्तरमें केवल रास्तेकी धूल पैरोंसे उड़कर ऐंठती हुई फैल जाती थी, मानो वह व्यंग करती हो—दूध तेरे बच्चोंके लिए नहीं, वह जानवरोंकी सबसे अच्छी उपज मनुष्योंकी सबसे अच्छी उपजके लिए ही है।

कई दिनोंके कटु अनुभवने दीनाके सामने धूलकी सीखको साफ कर दिया। अब रोज़ सुबह जब सूरजकी महीन कोमल किरणें जाल बुनती रहती हैं, तब वह सीता, उसके दूधके बर्तन और खिलौनोंको लिये हुए अस्पतालके रास्तेमें हुआ करता है। वह बिलकुल चुप रहा करता है। जहाँ भी जाता है, सीताको अपने साथ रखता है। उसका जीवन सीताके जीवनका एक हिस्सा हो गया है और सीताकी स्वाँस उसके जीवनकी स्वाँस है।

आदेश

कहा मेरे प्रियतमने आज, एक मुझसे गानेको गीत।
भ्रमण भूलेंगे तारक-वृन्द
गगनमें विधु होगा स्थितिमान
प्राण-प्रियके अनुरंजन हेतु
करूँगा जब मैं अपना गान
रहेगी सौ कल्पों तक रात, युगोंका होगा रम्य निशीथ।
सुरीली हो जायेगी आज
कंठकी ध्वनि कितनी सोल्लास
हृदयका कितना मधु-संभार
करेगा इन ओठोंपर लास
प्रमद लहरोंसे नीरव मौन निशाका होगा कितना भीत!
रजनिका हो जानेपर अन्त
उदित हो प्राची-नभमें लाल
प्रभासितकर मेरा स्वर-व्यूह
मधुर मुसकायेगा रवि बाल
मुखर होंगे सब वन्य विहंग, चंचु-चित्रोंमें भर संगीत!

—'चित्रभास', बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आदर्श पत्रकार

एच० डब्ल्यू० नेविनसन

बनारसीदास चतुर्वेदी

भगवान वेदव्यासने महाभारतमें जिन चरित्रोंका चित्रण किया है, उनमें हमें बलरामका चरित्र बहुत पसन्द है। बलराममें एक उत्साहप्रद फक्कड़पन है, एक निराला व्यक्तित्व है और है वह अजीबोगरीब गुण, जो महाभारतके अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोंमें नहीं पाया जाता—यानी जिसे वे अपनी अन्तरात्माके अनुसार न्याययुक्त अथवा सत्य समझते हैं, उसपर डटे रहनेकी उनमें असाधारण क्षमता है। इस विषयमें वे भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यको मीलों पीछे छोड़ जाते हैं। उद्योगपर्वके दूसरे अध्यायमें जब पाण्डवोंकी मंत्रणा-सभा बैठी थी, उसमें उन्होंने स्पष्टरूपसे कह दिया था कि युधिष्ठिरने अपने दोषसे राज्य खोया है। वे जुआ खेलने गये ही क्यों? इसलिए लड़ाई करके दुर्योधनसे राज्य माँगना अन्याय है। शान्तिसे, नम्रतापूर्वक ही, उससे व्यवहार करना चाहिए—

'अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणां साम्नैव दुर्योधन माह्वयध्वम्।'

इसके बाद जब दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण और बलरामको अपने-अपने पक्षमें लेनेके लिए द्वारिका गये, उस समय श्रीकृष्ण भगवानने तो समझौता कर लिया कि एक ओर मैं निःशस्त्र रहूँगा और दूसरी ओर मेरी दस हज़ार नारायणी सेना रहेगी; पर बलराम अपनी बातपर डटे रहे। उन्होंने साफ कह दिया कि मैं दोनों पक्षोंमें किसीकी ओर नहीं जा सकता। उन्होंने अपने छोटे भाई कृष्णको भी बहुत समझाया कि तुम भी किसी ओर मत हो; पर कृष्णने उनकी बात नहीं मानी। अन्तमें बलरामने यही तय किया कि इन लोगोंको छोड़कर सरस्वती-तीर्थपर जाकर रहूँगा। उनके वचन यह थे—"नष्ट होते हुए कौरवोंकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता।"—

'न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितम्।'

और बलरामके चरित्रका सबसे अधिक उज्ज्वल पहलू तब दीख पड़ता है, जब वे महाभारतके अन्तमें भीम और दुर्योधन दोनोंके गदा-युद्धको देखनेके लिए गये हैं। दोनों ही बलरामके शिष्य थे। भीषण युद्ध हुआ। उस समय भीमने बेईमानी की। उन्होंने दुर्योधनकी जाँघपर गदा मारी, और यह बात गदा-युद्धके नियमोंके सर्वथा विरुद्ध थी, क्योंकि इस युद्धमें नाभिके ऊपर ही आघात करनेका नियम है। दुर्योधनके ज़बरदस्त चोट लगी, और वे कातर आवाज़के साथ ज़मीनपर लेट गये। अन्य लोग, जिनमें श्रीकृष्ण भगवान भी थे, इस अन्यायको देखते रहे; पर बलरामसे यह न देखा गया। वे क्रोधसे जल उठे और हल उठाकर भीमपर पिल पड़े। बड़ी मुश्किलसे श्रीकृष्णने उन्हें शान्त किया। उस समय बलरामने जो शब्द कहे थे, वे चिरस्मरणीय हैं। उन्होंने कहा था—"हे कृष्ण, केवल दुर्योधन ही नहीं गिरा है, जो विषम होते हुए भी मेरे समान योद्धा था; पर मेरा भी पतन हुआ है, क्योंकि दुर्योधन यहाँ अकेला था और मेरा आश्रित था। आश्रितकी दुर्बलतासे आश्रयकी भी निन्दा होती है।"—

"ना चैव पतितः कृष्ण केवल मत्समोऽसमः
आश्रितस्य तु दौर्बल्यात् आश्रयः परिभत्स्यते।" (शल्यपर्व)

अभी उस दिन हमें हेनरी डब्ल्यू नेविनसनका आत्म-चरित (Fire of Life by Hernry W. Nevinson) पढ़ते हुए कई बार बलरामका ख़याल आ गया। अन्यायका विरोध करनेके लिए अपनी जान लड़ा देनेवाला अगर कोई पत्रकार इंग्लैण्डमें है तो वह नेविनसन है। कमज़ोरों और अन्याय-पीड़ितोंका पक्ष लेनेमें उसे मज़ा आता है। हथेलीपर जान लिये घूमना किसे कहते हैं, यह बात अगर कोई पत्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखना चाहे, तो नेविनसनसे सीख सकता है। जब कवीन्द्र रवीन्द्र सन् १९२१ में नेविनसनसे मिले थे, तो उन्होंने अपने १० अप्रैलके पत्रमें मि० ऐण्ड्रूज़को लिखा था—

"One of the first men whom I happened to meet here in England was H. W. Nevinson; I felt that man's soul was alive in this country, which had produced such a man as that! A land should be judged by its best products, and I have no hesitation in saying that the best Englishmen are the best specimens of humanity."

—'इंग्लैण्ड आनेपर पहले-पहल जिनसे मेरी मुलाक़ात हुई, उनमें नेविनसनका नाम उल्लेखनीय है। उनसे मिलकर मेरा यह विश्वास हो गया कि जिस भूमिने इस पुरुष-पुंगवको जन्म दिया है, उस देशमें मानव-आत्मा अवश्य जीती-जागती विद्यमान है। किसी देशके विषयमें यदि हम फैसला करना चाहें, तो हमें उसके सर्वश्रेष्ठ निवासियोंको मद्देनज़र रखना चाहिए, और मैं यह बात बिना किसी संकोचके कह सकता हूँ कि अंगरेज़ोंमें जो सर्वोत्तम हैं, वे मानव-समाजके सबसे बढ़िया नमूने हैं।'

मि० नेविनसन इस समय ८० वर्षके हैं; पर उनके आत्म-चरितमें केवल ७० वर्ष तकका हाल है। आइये, इस वीर पत्रकारके विचित्र संस्मरणोंका कुछ परिचय हम लोग भी पा लें। सन् १८९६ की बात है। नेविनसन उस वक्त ३९ वर्षके युवक थे। उस समय ग्रीक लोगोंने टर्कीके अत्याचारोंके विरुद्ध बग़ावतका झंडा खड़ा किया था। चूँकि नेविनसन एक बार ग्रीसकी यात्रा कर चुके थे और उसकी प्राचीन सभ्यताके कारण ग्रीसके प्रति आपके हृदयमें अत्यन्त सम्मान था, आपने यह निश्चय किया कि अंगरेज़ स्वयंसेवकोंकी एक टुकड़ी बनाई जानी चाहिए, जो ग्रीस पहुँचकर उनकी मदद करे। आप बाइरन-सोसाइटीके अधिकारियोंके पास गये; पर वहाँ पता लगा कि किसीने पहले ऐसा प्रस्ताव नहीं किया था। फिर आप ग्रीक राजदूतके पास गये; पर उन महाशयने भी उन्हें धन्यवाद देकर नम्रतापूर्वक टरका दिया! इसके बाद ५ मार्चको क्वीन्स-हॉलमें एक मीटिंग हुई, उसमें कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बोलनेवाले थे। जब टर्कीकी निन्दाका प्रस्ताव, जैसा कि हुआ करता है, सर्वसम्मतिसे पास हो चुका, तो आप अपनी कुर्सीपर उठ खड़े हुए और लगे लेक्चर देने—"यह मौखिक सहानुभूति तो बहुत हो चुकी, अब हमें कुछ क्रियात्मक सहानुभूति दिखलानी चाहिए। हमें स्वयंसेवकोंकी एक फौज बनाकर ग्रीसको भेजनी चाहिए। कोरमकोर प्रस्तावोंसे कुछ नहीं होना जाना।"

इतना कहना था कि तमाम श्रोतागण बड़ी नाराज़ीके साथ नेविनसनका विरोध करने लगे और उन्हें बोलनेसे रोकने लगे; पर नेविनसन रुकनेवाले आदमी नहीं थे, दनादन बोलते ही गये! चारों ओर शोरगुल होने लगा। अन्तमें प्रबन्धकोंने आपको कुर्सीपर से पकड़कर नीचे घसीट लिया! मीटिंगके एक प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञने नेविसनसे कहा कि जो बात तुम्हें कहनी है, उसे लिखकर दो। आपने यही किया, नोट लिखकर उनके पास भेज दिया। उन्होंने दूसरे सज्जनको दे दिया; पर उसपर कार्रवाई किसीने कुछ भी न की! आपने सोचा कि और कोई ग्रीस जाय या नहीं, मैं तो ज़रूर जाऊँगा, और इस घटनाके दस दिन बाद आप ग्रीसके लिए रवाना हो गये।

चलनेके एक दिन पहले एक सज्जन आपको नेशनल लिबरल क्लबमें ले गये और वहाँ आपका परिचय 'डेली क्रानिकल' के सम्पादक मि० एच० डब्ल्यू० मैसिंगहमसे कराया गया। आधा मिनट भी न होने पाया था कि मि० मैसिंगहमने कहा—"क्या आप ग्रीससे हमारे पत्रके लिए संवाद भेज सकेंगे?" नेविनसनने कहा—"अवश्य।" बस, उस एक मिनटमें नेविनसनके जीवनका कार्यक्रम निश्चित हो गया। सन् १८९७ से लेकर पिछले महायुद्ध तक जब-जब मौक़ा मिला, आपने अनेक युद्ध-क्षेत्रोंमें जाकर संवाददाताका काम किया है। इस बार आपने ग्रीस-यात्रामें जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाइयोंका सामना किया, उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई जगह आपको गोलियोंकी बौछारके बीचसे निकलना पड़ा। कानके पाससे सनसनाती गोलियाँ निकल जाती थीं और आप भयके भूतको दबानेकी बहुत कोशिश करते थे ; पर भय मस्तिष्कसे निकलता ही न था। यह लड़ाई तीस दिनमें खतम हो गई। इस बीचमें नेविनसनने कितने ही बार अपने प्राण संकटमें डाले। लड़ाई खतम होनेके बाद आपने अपने परिचित ग्रीक अफसरोंको एक भोज दिया था।

फिर जान खतरेमें

जून सन् १८९७में 'डेली क्रानिकल'के सम्पादकने नेविनसनको तार भेजा—'क्रीट जाकर वहाँके ईसाइयोंसे मिलो और उनसे पूछकर लिखो कि उनकी आकांक्षाएँ क्या-क्या हैं?' एक दुभाषियेको लेकर आप चल पड़े। हर वक्त जान जोखोंमें थी। तुर्क लोगोंकी गोलीका शिकार होनेका भय बराबर लगा रहता था ; पर नेविनसन एक अप्रसिद्ध पहाड़ी रास्तेसे निकल गये और ठीक-ठिकाने जा पहुँचे। वहाँ लोगोंसे मिलकर उन्होंने क्रीटके विद्रोहियोंसे, जो टर्कीके खिलाफ़ लड़ रहे थे, उनकी शर्तें पूछीं। दूसरे दिन जब वे चलने लगे, तो एक इटालियन सेनापतिने उनसे कहा—"आप जा तो रहे हैं ; पर आपकी ज़िन्दगीका भरोसा नहीं है। क्रीट-निवासी आपका खात्मा कर देंगे और तुर्क लोग फाँसीपर लटका देंगे।" इसपर टिप्पणी करते हुए नेविनसन लिखते हैं—"मैंने मनमें सोचा कि एक ही साथ मैं दो मौतोंका शिकार होनेसे तो रहा, इसलिए यही बेहतर है कि खतरेमें पड़ा जाय। और घोड़ेपर होकर चल पड़ा।" जब नेविनसन और उनका साथी दुभाषिया 'न्यूट्रल ज़ोन'से निकल रहे थे, तो दोनों ओरकी निष्पक्ष (!) गोलियाँ उनके आसपाससे निकल जाती थीं।

'डेली क्रानिकल' के स्टाफमें

लौटनेपर मैसिंगहमने आपको अपने पत्रके स्टाफमें बुला लिया और अग्रलेख लिखनेके लिए कहा। उन दिनोंका बड़ा मनोरंजक वर्णन आपने किया है। आत्म-विश्वासकी आपमें कमी थी और यह सोचते थे कि दूसरोंके कहनेपर लीडिंग आर्टिकल कैसे लिखा जायगा! पर जब आप लिखने बैठे, तो मज़ेमें लिख डाला। कुछ दिनों बाद आप इस पत्रके साहित्य-विभागके सम्पादक बना दिये गये। उन दिनों बर्नर्ड शा आपके पत्रके लिए आलोचनाएँ लिखा करते थे। एक दिन आपने बर्नर्ड शाको गायनाचार्य वेगनरके विषयमें चार-पाँच किताबें और गान-विद्या-विषयक कुछ ग्रन्थ भेजे और डेढ़ कालममें सबकी संयुक्त आलोचनाके लिए लिखा। बर्नर्ड शाने जवाब दिया—"मैं यह काम हर्गिज़ नहीं करूँगा और करूँगा तो अपनी शर्तोंपर, और गोकि मेरे दिलमें आपके एडीटरकी काफ़ी इज्ज़त है, फिर भी जनाब, किसीके भरोसे न रहियेगा। आपकी इस हिमाक़तकी रिपोर्ट लेखक-संघसे की जायगी और जो नतीजा होगा, सो देख लेना।"

नेविनसनने इस पत्रका उत्तर दिया—

"Dear Sir,

I am directed by the Editor to inform you that he will see you damned before he gives you more than five pounds for the article in question. Your etc....."

"प्रिय महाशय,

ऐडीटर साहबने मुझसे कहा है कि मैं आपको यह लिख दूँ कि वे उस लेखके लिए पाँच पौण्डसे एक कौड़ी भी ज्यादा नहीं देनेके। आप ज्यादा माँगेंगे, तो आपको धता बता दी जायगी। आपका....."

बर्नर्ड शाने इसका उत्तर दिया—

"Dear Sir,

Please inform the Editor that I will see him and you and the whole of the Chronicle staff boiled in Hell before I will do it for that money. Your etc....."

"प्रिय महाशय,

आप अपने ऐडीटर साहबको इत्तला दे दीजिए कि इतने रुपयेपर लेख लिखनेके बजाय मैं यह कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसन्द करूँगा कि आप, वे और 'क्रानिकल' के सम्पादकीय विभागके सब आदमी जहन्नुम रसीद हों और वहाँ नरकाग्निसे उबाले जायँ।

आपका……"

इसके उत्तरमें नेविनसनने लिख भेजा—"तब आप हमारी किताबें वापस भेज दीजिए, जिससे हम किसी अन्य आलोचकसे लेख लिखा सकें, जो आर्थिक दृष्टिसे आपकी अपेक्षा कम भारी-भरकम हो।" पर बर्नर्ड शाने, जैसी कि आशा थी, लेख लिख भेजा।

नेविनसनको अपने पत्रके संवाददाताकी हैसियतसे स्पेन और आयरलैण्ड भी जाना पड़ा था। आप आइरिश लोगोंकी एक मीटिंगमें गये। ब्रिटिश पुलिस वहाँ मीटिंगके निकट ही तैनात थी—बन्दूक़ और डंडे लिये हुए। व्याख्याता महोदयने खड़े होकर कहा ही था—"यदि आज ख़ून-ख़राबी हुई, तो उसकी सारी ज़िम्मेवारी पुलिसपर होगी," कि पुलिस टूट पड़ी और जो सामने आया, डंडेसे उसका सिर तोड़ डाला। नेविनसन लिखते हैं—"उस वक्त मैं सड़कके ठीक बीचोंबीच बिलकुल शान्त भावसे खड़ा रहा और मेरा सिर साफ बच गया। तबसे जब कभी मुझे पुलिस और जनताकी मुठभेड़ोंका सामना करना पड़ा है, मैंने इसी चालाकीसे काम लिया है और बराबर सफल हुआ हूँ।"

बोअर-युद्धमें

८ सितम्बर सन् १८९९ को नेविनसन बोअर-युद्धमें संवाददाताका काम करनेके लिए रवाना हो गये और केपटाउन पहुँचे। लड़ाई उस वक्त तक शुरू नहीं हुई थी। किनारेपर जहाज़ पहुँचते ही आपने यह तय किया कि जल्दी-से-जल्दी ब्लोमफानटीन और प्रिटोरिया पहुँचना चाहिए, इसलिए आप दूसरे ही दिन प्रातःकालके समय छिपकर जहाज़से चल दिये और कारू तथा आरेंज नदीको पार करते हुए दूसरे दिन रातके वक्त ब्लोमफानटीन पहुँचे। वहाँ आप ख़ास-ख़ास आदमियोंसे मिले। प्रिटोरियामें आप प्रेसिडेन्ट क्रूगरके भवनपर भी मिलनेके लिए गये; लेकिन वहाँ जवाब मिला कि प्रेसिडेन्ट नहीं मिल सकते, क्योंकि प्रार्थना कर रहे हैं। इसके बाद स्टेट-सेक्रेटरी रीज़ तथा जनरल स्मट्ससे भी मिले। तत्पश्चात् आप ५ अक्टूबरको लेडीस्मिथ वापस चले गये। जब बोअर लोगोंने लेडीस्मिथके चारों ओर घेरा डाल लिया, तो उसमें आप भी घिर गये। उन दिनोंका वर्णन आपने अपनी पुस्तक 'Ladysmith' में किया है। इस बीचमें आप बीमार पड़ गये, और डाक्टरोंने कह दिया कि तुम्हारे बचनेकी आशा नहीं है। बीमारी थी मलेरिया और पीलियाकी; पर आप चेत गये। कभी-कभी आपको अत्यन्त भयंकर परिस्थितिमें और एक अपरिचित देशमें नदी-नाले और पहाड़ी रास्ते तय करने पड़े; पर आपने हिम्मत कभी नहीं हारी। घोड़े मर गये, खाना कम पड़ गया, रास्ता जंगली, जगह-जगह लाशें पड़ी हुईं और तीन सौ मीलका सफर! पर सख़्तजान महाप्राण नेविनसनके लिए यह सब मानो बच्चोंका खेल था।

दुर्गति

बोअर-युद्धसे लौटनेके बाद आपको तीन वर्ष तक 'डेली क्रानिकल' के स्टाफमें काम करना पड़ा। आपके पुराने परिचित सम्पादक मि० मैसिंगहम तब तक इस पत्रको छोड़ चुके थे और नये सम्पादक उतने उदार विचारोंके नहीं थे। उन तीन वर्षोंका जो संक्षिप्त वर्णन आपने आत्म-चरितमें किया है, उससे पता लगता है कि एक स्वाभिमानी और स्वतन्त्र विचारोंके पत्रकारको एक ऐसे पत्रके स्टाफपर, जिससे उसके विचार नहीं मिलते, काम करनेमें कितनी मानसिक वेदना होती है। जिन पत्रकारोंकी आत्मा रबरकी तरह लचीली होती है और जो अपने मनको समझा लेते हैं—'भई, हमें तो अपनी रोटी-दालसे काम, पत्रकी नीति कुछ भी क्यों न हो,' उनका मार्ग तो सरल होता है; पर जो पत्रकार अपना निजी व्यक्तित्व रखते हैं, उनकी जान आफ़तमें रहती है। नेविनसन लिखते हैं—"चुप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना मेरे लिए मुश्किल था। मेरे लिए अपनी ज़बानको रोकनेके मानी थे मृत्यु। अगर मैं चुप रहता, तो मेरी सारी सजीवता ही नष्ट हो जाती। आलसी बनकर मुर्दा बन जानेके मानी थे डबल मौत।"

इस शुष्क संकट कालमें १९ जून सन् १९०१ को एक घटना ऐसी हुई, जिसमें नेविनसनको अपनी ज़िन्दादिली दिखानेका एक मौक़ा हाथ आ गया। उस दिन क्वीन्स-हॉलमें शान्तिके पक्षमें एक मीटिंग होनेवाली थी। इस मीटिंगका उद्देश्य था कि बोअर लोगोंसे सुलह कर ली जाय। लायड जार्ज इस मीटिंगमें बोलनेवाले थे। साधारण जनता इस मीटिंगके सख्त ख़िलाफ़ थी। बड़ी मुश्किलसे नेविनसन धक्कमधक्कोंके बीचमें से गुज़रकर क्वीन्स-हॉलमें पहुँच पाये। लायड जार्जका अत्यन्त प्रभावशाली भाषण हुआ। भाषणके समाप्त होते ही नेविनसनने सोचा कि चलो जल्दीसे निकल चलें और अपने पत्र 'क्रानिकल' के आफिसमें पहुँचकर इस मीटिंगकी रिपोर्ट लिखें; लेकिन हालसे बाहर निकलना आसान काम न था। हालके चारों ओर क्रुद्ध जनता विद्यमान थी। हालके पीछेके रास्तेपर पहुँचते ही पुलिसवालोंने नेविनसनसे कहा—"क्या ज़िन्दगी भारी पड़ी है? जनता तुम्हें जानसे मार डालेगी।"

नेविनसनसे कहा—"कुछ भी क्यों न हो, मुझे तो अपने पत्रके आफिसपर पहुँचना ही है।"

एक पुलिसवालेने कहा—"अच्छा, एक तरकीब हम करेंगे। हम यह बहाना करेंगे कि तुम इस मीटिंगमें ऊधम मचाते थे, इसलिए बाहर निकाल दिये गये हो और हम झूठमूठको तुम्हें पीटेंगे, जिससे जनता इस धोखेमें आ जाय कि यह भी हमारे ही मतका है और बोअर लोगोंका विरोधी है।"

नेविनसन लिखते हैं—"मैं इस बातपर राज़ी हो गया और मीटिंगसे बाहर निकाले जानेका बहाना करने लगा। पुलिसवाले मुझे दिखावटी तौरपर पीटने लगे—थोड़ा नहीं बहुत—और मेरा सिर इधरसे उधर टकराने लगा। कान्स्टेबल लोगोंने डंडे भी जमाये और मुझे ऐसा भ्रम होने लगा कि इस नाटकके बहाने वे अपने राजनैतिक विश्वासोंका प्रदर्शन भी मेरे सिरपर कर रहे हैं! उनकी चोटोंसे बचकर जो मैं निकला, तो अत्यन्त क्रुद्ध जनताके समुद्रमें आ गिरा। भला, वे क्यों इस झूठमूठके नाटकसे धोखेमें आने लगे! कविवर ब्राउनिंगने ठीक ही लिखा है कि ब्रिटिश लोगोंको चकमा नहीं दिया जा सकता। जिस तरह शिकारी कुत्ते लोमड़ीपर टूट पड़ते हैं, उसी तरह वे सब मुझपर टूट पड़े। नतीजा यह हुआ कि मेरा कालर खुल गया, कोट टुकड़े-टुकड़े हो गया और कमीज फट गई। चिल्ला-चिल्लाकर वे लोग मुझसे कह रहे थे—'तुम दुश्मन बोअर लोगोंके पक्षपाती हो।' गोया कोई नई ख़बर मुझे सुना रहे हों, जिसका मुझे पता न हो! एक ख़ैरियत थी, वह यह कि जनता इतनी ठसाठस खड़ी थी कि मुझपर दो-तीन आदमी ही एक साथ चोट कर सकते थे। थोड़ी दूरपर एक मोटरबस खड़ी थी। उन चोटोंके बीचमें वह फासला मुझे अनन्त-सा प्रतीत हुआ। ज्यों-त्यों करके मैं बस तक पहुँचा। उसकी लोहेकी छड़ियोंको मैंने हाथसे पकड़ा ही था कि ऊपर बैठी हुई औरतें चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगीं—'लो, यह आया एक बोअरोंका समर्थक', 'देखो वह दूसरा आया!' मानो उनकी निगाह किसी गन्दे खटमलपर पड़ गई हो। फिर क्या था। उन्होंने अपने छातोंकी मूठोंसे मेरे सिरपर चोट करना शुरू किया। इन दिनों छातोंके नीचे लोहेकी ठोस गोली-सी रहती थी, इसलिए सिर भिन्ना गया। इन औरतोंने मेरे मुँहपर थूका भी और बसका डंडा मेरे पंजेसे छुड़ाकर गिरानेकी कोशिश भी की। उस दिनसे मुझे इस बातमें कोई शक नहीं रहा कि स्त्रियोंमें राजनैतिक उत्साह कितना अधिक है और उस उत्साहके प्रकट करनेके अधिकारको वे कितने वैधानिक तरीकेपर काममें ला सकती हैं! खूनमें लथपथ और फटे कपड़े पहने मैं अपने आफिसमें पहुँचा। एडीटर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहबने क्रोध और घृणाके साथ पूछा—'जनाब, उस मीटिंगमें बोअर लोगोंके समर्थककी हैसियतसे गये होंगे!' मैंने जवाब दिया—'बेशक! और मैंने एक सबक भी सीख लिया है। इबसनने अपने नाटकमें एक जगह लिखा है कि सत्य और न्यायका पक्ष लेकर कहीं जाना हो, तो अपनी सर्वोत्तम पतलून पहनके मत जाना। यह बात आज मेरी समझमें आ गई है।'

एडीटर साहबकी मनोवृत्ति और नेविनसनके दृढ़ विश्वासोंमें ज़मीन-आस्मानका अन्तर था और अधिक दिन तक गंगा मदारका यह साथ रह नहीं सकता था। सन् १९०२ में नेविनसनने पत्रके संचालकसे कहा—"मुझे एक बार अफ्रिका फिर जाने दीजिए, क्योंकि संधि होनेवाली है, और मैं आपके पत्रके संवाददाताकी हैसियतसे वहाँ जाऊँगा।" संचालक महोदय राज़ी हो गये और नेविनसन फिर अफ्रिकाके लिए रवाना हुए। इस बारकी यात्रामें उनकी भेंट प्रधान-सेनापति किचनरसे भी हुई।

नेविनसनने जिन-जिन युद्धोंमें संवाददाताका काम किया और जिन-जिन ख़तरोंमें वे पड़े, उन सबका वृत्तान्त संक्षेपमें देनेके लिए भी यहाँ स्थान नहीं है। सन् १९०३ में आप सैलोनिका गये थे। तुर्क लोगोंने बल्गेरियाके निवासियोंपर जो ज़ुल्म किये थे, उनकी जाँच की थी। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश पत्रकार ब्रेल्सफोर्ड उस समय आपके साथ थे। जिन दिनों रूसमें ज़ारशाहीके ज़ुल्मोंका दौरदौरा था, उस समय दो-बार आप रूस गये थे। चीन-जापान-युद्धमें जानेकी आपने बहुत कोशिश की; पर आपको अवसर ही नहीं मिला। पिछले महायुद्धमें भी आपने संवाददाताका काम किया था। हथेलीपर जान लिये घूमनेमें नेविनसनको मज़ा आता है। न्यूयार्कके हार्पर्स कम्पनीने जब आपसे कहा—'हम एक हज़ार पौण्ड आपको देंगे, अगर आप हमारे लिए कोई विचित्र यात्रा करें,' तो आप फौरन राज़ी हो गये, और आपने पोर्चुगीज़ वेस्ट सेण्ट्रल अफ्रिकाकी, जहाँ गुलामीका व्यापार होता था, यात्रा करनेकी ठानी। आप अफ्रिका पहुँचे। कितने ही आदमियोंने आपको दोस्ताना तरीकेपर सलाह दी कि आप जानसे मार डाले जायँगे; पर आप भला क्यों डरने लगे। जाँच करके इस गुलामी-प्रथाकी वह पोल खोली कि प्रथा आख़िर बन्द ही कर दी गई! इस सिलसिलेमें एक बड़ी मनोरंजक घटना नेविनसनने लिखी है।

जब अफ्रिकासे लौटनेपर आपने गुलामी-प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन किया, तो एक बार आपको वैदेशिक विभागके एक उच्च अफसरसे मिलनेके लिए जाना पड़ा। अफसरने मिलते ही कहा—"अख़बारोंमें पोर्चुगीज़ अफ्रिकाकी गुलामीके बारेमें जो कष्टप्रद लेख निकल रहे हैं, वे क्या जनाबके ही लिखे हुए हैं? और जो कड़ी रिपोर्ट निकली है, क्या उसके रचयिता आप ही हैं?" नेविनसनने जवाब दिया—"जी हाँ, मुझे इस बातसे प्रसन्नता है कि वे लेख आपको कष्टप्रद प्रतीत हुए, और रही रिपोर्टकी बात, सो वह तो काफ़ी कड़ी नहीं है।" हाकिमाना शानमें बड़ी घृणाके साथ उस अफसरने कहा—"क्या आप यह चाहते हैं कि धनधान्यसमृद्ध वे टापू वीरान बना दिये जायँ?" नेविनसनने कहा—"जो अत्याचार मैंने अपनी आँखोंसे वहाँ देखे हैं, उनके मुक़ाबलेमें यही बेहतर होगा कि ये टापू वीरान हो जायँ।" इसपर अफसरके दिमाग़का पारा और भी चढ़ गया और उसने कहा—'Would you have England police the world wherever you may find slavery?' —'क्या आप यह चाहते हैं कि दुनियामें जहाँ कहीं भी गुलामी हो, वहाँ इंग्लैण्ड पुलिसका काम करे?' नेविनसनने भी बिलकुल अफसराना ढंगपर जवाब दिया—'The answer is in the affirmative.' —'इस प्रश्नका उत्तर स्वीकारात्मक है।'

रूसी ज़ारशाहीके ज़ुल्मोंके विषयमें रिपोर्ट करनेके लिए दो बार आप रूस गये। पहली बारकी यात्रामें आपको टालसटायके दर्शन करनेका सौभाग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हुआ था। नेविनसन लिखते हैं, टाल्सटायने उस समय मुझसे कहा था—"तुम एक नवयुवक हो (यह बात सन १९०५ की है और मैं उस वक्त पचास वर्षका था) और मैं बुड्ढा हो चुका; लेकिन ज्यों-ज्यों तुम्हारी उम्र बढ़ती जायगी और दिन-पर-दिन बीतते जायँगे, तुम्हें अपनेमें कोई फर्क न मालूम पड़ेगा; पर किसी दिन अकस्मात् तुम्हें यह सुनाई पड़ेगा कि लोग तुम्हें 'बूढ़ा आदमी' बतला रहे हैं! इतिहासमें युगकी बात भी ऐसी ही है। दिनपर दिन बीतते जाते हैं और कोई बड़ा फर्क नहीं मालूम होता; पर एक दिन अकस्मात् ऐसा प्रतीत होता है कि युग बीत चुका, खतम हो चुका। रूसमें जो आन्दोलन तुम देख रहे हो, वह कोई विद्रोह नहीं है और न कोई क्रान्ति है, वह तो एक युगका खातमा है, और जो युग खतम हो रहा है, वह साम्राज्योंका युग है। भला, रूसमें और फिनलैण्ड, पोलैण्ड तथा काकेशसमें क्या हार्दिक सम्बन्ध है? आस्ट्रियाका हंग्री, बोहीमिया, स्टीरिया या टाइलोरसे क्या हार्दिक प्रेम है? और इंग्लैण्डका आयर्लैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया अथवा भारतसे क्या हार्दिक सम्बन्ध है? साधारण जनता इस राजनैतिक सम्बन्ध या साम्राज्यवादके खोखलेपनको समझती जाती है, और अन्तमें साधारण जनताकी बात ही अधिक तर्कयुक्त सिद्ध होती है। इसलिए मैं समझता हूँ कि साम्राज्योंके युगका अब अन्त हो रहा है। लोग मुझसे कहते हैं कि यदि रूसी साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, तो जापानी हमारे मुल्कपर चढ़ बैठेंगे और हम लोगोंका नाश कर देंगे; लेकिन जापानी जनता भी समझदार है, और जब वे यहाँ आकर देखेंगे कि रूसी साम्राज्यके टूट जानेपर हम लोग कितने प्रसन्न हैं, तो वे भी अपने घर लौटकर हमारे आदर्शका अनुकरण करेंगे।" टाल्सटायकी ३२ वर्ष पहले की हुई यह भविष्यवाणी विचारणीय है।

दूसरी बार जब नेविनसन रूसको जाने लगे, तो उनके मित्रोंने और विरोधियोंने भी आपको अनेक बार सावधान किया कि वहाँ मत जाओ, क्योंकि वहाँ पहुँचते ही तुम्हारी बोटी-बोटी उड़ा दी जायगी। बात यह थी कि रूसमें उन दिनों ज़ारशाहीका ज़माना था। डूमा (पार्लामेंट) बर्ख़ास्त कर दी गई थी। उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए इंग्लैण्डके उदार दलवालोंने घोषणा-पत्र निकाला था और यह तय पाया गया था कि एक डेपूटेशनके हाथ सहानुभूतियुक्त पत्र रूसको भेजा जाय। मि० ब्रेल्सफोर्डको पासपोर्ट नहीं मिला, इसलिए वे तो जा नहीं सके, आख़िर यह काम नेविनसनने अपने ऊपर ही लिया। रूससे ख़बरें आ रही थीं कि जहाँ नेविनसनने रूसी भूमिपर पैर रखा कि राजभक्त रूसी सैनिक उनके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

नेविनसन लिखते हैं—"उस वक्त अपने शरीरको टुकड़े-टुकड़े होनेसे बचानेके लिए मैंने दो तरकीबें कीं। अगर भोले-भाले रूसी लोगोंमें थोड़ी भी अकल होती, तो वे इन तरकीबोंको फौरन ताड़ जाते। पहली तरकीब तो यह थी कि मैं उस रूसी सीमापर गया ही नहीं, जहाँ ज़ारके भक्त सिपाही बर्छी और भाले लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं हैमबर्ग, कोपनहैगन, स्टाकहोम और हैलिंगफोर्स होकर चुपचाप सेन्ट-पीटर्सबर्ग पहुँच गया। दूसरी तरकीब मैंने यह की कि घोषणा-पत्रको मैंने अपनी कमीजके साथ सिलवा लिया था, और मज़ेकी बात यह थी कि इसके बाद भी कोई अधेड़ उम्रका बुर्जुआ नागरिक जितना मोटा लगता है, उससे ज्यादा मोटा भी मैं नहीं जँचता था!"

'नेशन' पत्रके स्टाफमें

सन १९०७ में आप एक नवीन पत्र 'नेशन'में काम करने लगे। आपके पुराने मित्र मि० मैसिंगहम इस पत्रके सम्पादक नियुक्त हुए थे। ब्रेल्सफोर्ड भी इसी पत्रमें काम करते थे। १९०७ के अक्टूबरमें आप भारतवर्ष पधारे और यहाँके ख़ास-ख़ास नेताओंसे मिले। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा श्री अरविन्द घोषसे भी आप मिले थे। कालेज-स्क्वायरकी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीटिंगमें, जिसमें श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका भाषण हुआ था, आप शामिल हुए थे और उसमें आप बोले भी थे। इस कारण आपको ऐंग्लो-इंडियन पत्रोंके कटाक्ष सहने पड़े। आपने उसका ज़िक्र करते हुए लिखा है—"ऐसा प्रतीत होता है कि ऐंग्लो-इंडियन-पत्र गालियाँ कम्पोज़ कराके रख छोड़ते हैं और मौक़ा लगते ही झट उसका प्रयोग अपने विरोधियोंपर करने लगते हैं।" दूसरे दिन प्रातःकालके समय आप गवर्नरके यहाँ चाय पीनेके लिए गये। ख़ैरियत यह थी कि तब तक 'स्टेट्समैन' और 'इंगलिश मैन' तथा भारतीय पत्रोंके अंक गवर्नर साहबके पास पहुँचे नहीं थे। ज्यों ही ये अंक पहुँचे, त्यों ही गवर्नर साहबका रुख़ बदल गया। शायद इस बातसे वे और भी नाराज़ हो गये कि नेविनसन उसी रातको श्री अरविन्द घोषसे भी मिले थे, और इसकी ख़बर खुफिया पुलिसने उनके कानों तक पहुँचा दी थी। विलायत लौटकर आपने एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था 'The New Spirit in India' (भारतवर्षमें नवीन भावना)।

स्त्रियोंके मताधिकारका आन्दोलन

स्त्रियोंके मताधिकारके आन्दोलनमें जितना ज़बरदस्त हाथ नेविनसनका रहा, उतना शायद ही किसी दूसरे पत्रकारका रहा होगा। इसके लिए आपको तेरह वर्ष तक निरन्तर उद्योग करना पड़ा। देश-भरमें इसके लिए आपको व्याख्यान देने पड़े। जो जुलूस औरतोंके मताधिकार प्राप्त करनेके लिए निकलते थे, उनमें आप बराबर शामिल होते थे। एक मीटिंगमें तो आपकी ख़ासी मरम्मत हुई। यह मीटिंग औरतोंकी थी और इसमें लायड जार्ज बोलनेवाले थे। कुछ ऐसी औरतें भी इस मीटिंगमें शामिल हुई थीं, जो जेलख़ानेकी हवा खा आई थीं। जब लायड जार्ज व्याख्यान दे रहे थे, इन महिलाओंने अपने ऊपरके कपड़े उतार फेंके और जेलके कपड़ोंमें, जो नीचे थे, खड़ी हो गईं! लायड जार्ज शान्तिपूर्वक भाषण देते रहे। इतनेमें एक जगहसे आवाज़ आई—'Deeds not words—हमें ठोस काम चाहिए, शुष्क शब्द नहीं।' बस, फिर ऐसा होहल्ला मचा कि कुछ पूछिये न। मीटिंगके प्रबन्धकोंने औरतोंको पकड़-पकड़कर निकाल बाहर फेंकना शुरू किया। भला, नेविनसन क्यों चुप रह सकते थे। आप उठ खड़े हुए और बोले—"मि० लायड जार्ज, क्या इस बार फिर 'बेरहमीसे' कार्रवाई की जायगी?"

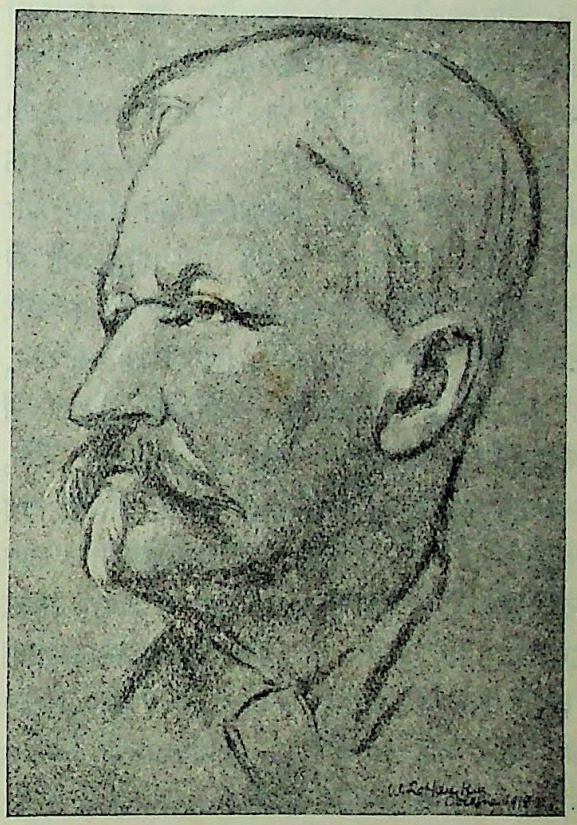

मि० एच० डब्ल्यू० नेविनसन

बात यह हुई थी कि अपनी एक पहली मीटिंगमें लायड जार्ज प्रबन्धकोंको आज्ञा दे चुके थे—"Fling them out ruthlessly.—इन औरतोंको बेरहमीसे निकाल बाहर करो।" नेविनसन अपनी जगहपर खड़े-खड़े बार-बार यही सवाल दुहराते रहे। आख़िर लायड जार्जका ध्यान इधर आकर्षित हुआ, और वे बोले—"Oh Mr. Nevinson, I wonder at a man of your education behaving like this.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—ओह मि० नैविनसन, आपकी तरहका शिक्षाप्राप्त आदमी भी ऐसी हरकत कर सकता है !"

इस घटनाका ज़िक्र करते हुए नेविनसन लिखते हैं—"शिक्षा हो या अशिक्षा, मैं तब तक चिल्लाता ही रहा, जब तक मीटिंगके प्रबन्धकोंने मुझे घेर नहीं लिया और पकड़कर हॉलके बाहर घसीटने न लगे। 'टेलीग्राफ' के रिपोर्टरने इस झगड़ेकी रिपोर्टमें लिखा था—'नेविनसनने कन्धेसे धक्का देकर एक प्रबन्धकको धराशायी कर दिया।' मुझे याद नहीं कि मैंने यह वीरतापूर्ण कार्य किया था या नहीं ; पर मैं आशा करता हूँ कि यह बात सत्य थी। जब प्रबन्धक मुझे पकड़ रहे थे, मैं छुड़ाकर प्लैटफार्मकी ओर भागा और वे लोग मेरे पीछे-पीछे ! इससे गुल-गपाड़ा और भी बढ़ गया। आखिर उन्होंने मुझे पकड़ लिया और गर्दनपर ऐसे ज़ोरसे घूँसा जमाया कि मैं सुन्न पड़ गया, फिर बेहोशीमें मुझे घसीटकर बाहर फेंक दिया। मैं बिलकुल हाँफ उठा था। ज्यों ही सम्हलकर बैठा, तो देखता क्या हूँ कि कितनी ही औरतें, जो मेरी तरह निकाल बाहर फेंकी गई थीं, वहाँ पड़ी हुई हैं। एक बात देखकर मुझे बड़ी हँसी आई कि ये औरतें उठकर पहला काम यह करती थीं कि सिरपर अपनी टोपी (अगर टोपी सही-सलामत बच रही तो) ठीक तौरपर रखती थीं, चाहे उनके कितने ही भयंकर चोट क्यों न लगी हो और चाहे उनके कपड़े कितने ही क्यों न फट गये हों !

"घर पहुँचते ही मुझे अपने सम्पादक ए० जी० गार्डनरका एक रुक्का मिला—'आप अपनी नौकरीसे मुअत्तिल किये जाते हैं।' मैं साइविलपर सम्पादक महोदयके पास पहुँचा और कहा—'मैंने वही किया, जो वहाँ उपस्थित किसी भी भले आदमीको करना चाहिए था।' अपने पक्षके समर्थनमें मैंने जो यह तर्क किया, वह ज़रा ग़ैरमौज़ूँ था, क्योंकि हमारे सम्पादक महोदय उस मीटिंगमें लायड जार्जके पीछे ही विराजमान थे ! सम्पादकने कहा—'यह मामला डाइरेक्टर लोगोंके सामने पेश किया जायगा, तब तक आप कुछ खेलिये।' जब ब्रेल्सफोर्ड प्रभृति हमारे साथी-संगियोंने यह बात सुनी, तो उन्होंने धमकी दी कि अगर नेविनसनके खिलाफ़ कोई कार्रवाई की गई, तो हम भी इस्तीफा दे देंगे।' आखिर मामला यों ही रफा-दफा कर दिया गया।"

पीछे जब जेलमें औरतोंको ज़बरदस्ती ठूँस-ठूँसकर खाना खिलाया गया, तो आपने 'मैनचेस्टर गार्जियन' में इस अत्याचारका घोर विरोध किया। जब आपके फर्म 'डेली न्यूज़' में ही सम्पादकने एक अग्रलेख इस प्रथाके पक्षमें लिखा, तो आपने अपनी नौकरीसे त्याग-पत्र दे दिया और आपके साथ ब्रेलसफोर्डने भी नौकरी छोड़ दी। नौकरीसे इस्तीफा दे देनेसे नेविनसनको घोर आर्थिक संकटका सामना करना पड़ा ; पर अपने सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए नेविनसनने क्या-क्या नहीं किया ? वे ग़रीब पत्रकार ही, जिन्होंने कभी इस पथका अनुसरण किया है, नेविनसनकी कठिनाइयोंकी कल्पना कर सकते हैं। फरवरी सन् १९१८ में जब स्त्रियोंको मताधिकार मिल गया, तब स्त्रियोंकी एक मीटिंग हुई (२८ अप्रैल, १९१८), जिसमें नेविनसनको धन्यवाद दिया गया और २८० पौंडकी एक थैली भेंट की गई। उस दिनको नेविनसन अपने जीवनके स्मरणीय दिवसोंमें गिनते हैं। आपने लिखा है—"No doubt I ought to have died when the charming ceremony ended. But few select the right moment for death."—'क्या ही अच्छा होता, यदि उस मनोहर उत्सवके समाप्त होनेके बाद ही मेरे जीवनकी भी समाप्ति हो जाती ; पर मृत्युके लिए उपयुक्त अवसर थोड़े ही आदमी चुन सकते हैं।'

नेविनसनने आयरलैण्डके निवासियोंकी स्वतंत्रताके लिए भी भरपूर उद्योग किया था और कई वर्ष इसमें लगा दिये थे। सर रोज़र केसमेण्टको, जिन्होंने युद्धके दिनोंमें ब्रिटेनके विरुद्ध बग़ावत की थी, फाँसीसे बचानेके लिए नेविनसनने बहुत प्रयत्न किया ; पर इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे सफल नहीं हुए। सुप्रसिद्ध देशभक्त मेकस्विनीकी लाश जब इंग्लैण्डसे आयरलैण्ड ले जाई गई थी, तब आप भी उसके साथ थे।

विशेष व्यक्तियोंसे परिचय

नेविनसनके चरित्रमें यह ख़ूबी है कि आप अच्छेसे अच्छे आदमियोंसे मित्रता स्थापित करनेमें सफल हुए हैं। सुप्रसिद्ध अराजकतावादी प्रिंस क्रोपाटकिनसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके कार्यमें आपने सहायता दी थी। एडवर्ड कारपेण्टरसे तो आपकी ख़ासी अच्छी दोस्ती थी। टालसटाय, रस्किन, कार्लाइल, सी० पी० स्काट, ए० ई० (जार्ज रसेल), माननीय मि० गोखले तथा अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोंके आपने दर्शन किये थे और उनसे परिचय प्राप्त किया था। स्थानाभावसे हम उन महापुरुषोंके संस्मरणोंका यहाँ ज़िक्र नहीं कर सकते, जिनका वर्णन नेविनसनने अपने ग्रन्थमें किया है।

ख़ास-ख़ास ऐतिहासिक मौक़ोंपर उपस्थित होना तो मानो नेविनसनके भाग्यमें ही बदा था। जिस दिन जर्मनीके गत महायुद्धकी घोषणा हुई थी, उस दिन आप बर्लिनमें मौजूद हुए थे और ब्रिटिश राजदूतके साथ ही वहाँसे रवाना हुए थे। युद्धमें संवाददाता बनकर आप गये भी थे और अनेक स्थलोंपर आपने अपने जीवनको भी ख़तरेमें डाला था। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि आपने मानव-समाज-सेवाके भावको देशभक्तिसे कहीं ऊँचा समझा है। नेविनसन इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि जब हमारा अपना देश ग़लत मार्गपर जा रहा हो, उस समय सबसे बड़ी देश-सेवा यही है कि स्वदेशकी उस भूलके विरुद्ध विद्रोह किया जाय।

नेविनसनका जीवन-चरित पढ़ते हुए एक बातका ख़याल हमें बार-बार आया है, वह यह कि नेविनसन सरीखे निर्भीक पत्रकार किसी स्वाधीन देशमें ही जन्म ले सकते हैं। इस अभागे देशमें, जहाँ पत्रकारोंको हृदयहीन पूँजीपति मालिक, सदा सशंक विरोधी सरकार और गुणग्राहकताविहीन जनताके बीचमें काम करना पड़ता हो, नेविनसनके गुणोंका विकसित होना सम्भव नहीं। नेविनसनका वीरतापूर्ण अक्खड़पन जितना चित्ताकर्षक है, उतनी ही उनकी सहज विनम्रता हृदयहारिणी है। नेविनसन महोदय अच्छे कवि भी हैं; पर आप लिखते हैं—"जब कभी मेरी कविताओंके विषयमें कोई आलोचना—प्रशंसा या निन्दा—करता है, तो मेरे मनमें वही भाव उत्पन्न होते हैं, जो किसी परदेमें रहनेवाली स्त्रीके परदा उठा देनेपर।"

सबसे बड़ी प्रशंसा आप किस चीज़को समझते हैं, सो भी सुन लीजिए। सन् १९२६ में आप पैलेस्टाइन गये हुए थे। उस समय वहीं आपकी इकहत्तरवीं वर्षगाँठ हुई। जेरूसलमकी तीर्थ-यात्रा करके मोटरके रास्ते बग़दादको रवाना हुए। पाँच मोटरें थीं, जिनमें दो मेल कम्पनीकी थीं। बीचमें पानी आ गया। दिन-रात आपको भीगते हुए सफ़र करना पड़ा। डाकसे लदी मोटरोंके पहिये कीचड़में घुस जाते थे। उतरकर उन्हें निकालनेमें नेविनसन सत्तर वर्षके होते हुए भी ख़ूब मदद देते थे। जब आप बग़दाद पहुँचे, तो सारा शरीर कीचड़से लथपथ था, और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आप कीचड़की मूर्ति बन गये हों। मोटरोंके पाँच नवयुवक ड्राइवरोंने, जो अंगरेज़ थे और युद्धके बाद यहीं बस गये थे, अपनी मेल कम्पनीके हेडक्वार्टरपर जाकर कहा—"Look here! Whatever happens, we must keep Old Bill as a digger on the Staff."—'देखिये साहब, चाहे कुछ हो, हमें हर हालतमें इस बुड्ढेको अपने यहाँ खुदाईके कामपर नौकर रख ही लेना चाहिए।' इसपर टिप्पणी करते हुए नेविनसनने लिखा है—"That was the finest compliment ever paid me in the course of a long and variegated life."—'अपने लम्बे और विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभवपूर्ण जीवनमें मुझे जो तारीफें मिली हैं, उन सबमें इस प्रशंसाको मैं सर्वोत्कृष्ट मानता हूँ।'

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरका यह कथन सर्वथा सत्य है कि जब तक इंग्लैण्डमें नेविनसन सरीखे व्यक्ति विद्यमान हैं, तब तक उसकी आत्मा सजीव है। एक क्षुद्र पत्रकारकी हैसियतसे हम भी नेविनसनको अपने एक कवि-बन्धुके इन शब्दोंके साथ प्रणाम करते हैं—

"न होने देते हरण कदापि स्वत्व दीनोंके पूज्य महान,
सहन होता है तनिक न तुम्हें देवियोंका रंचक अपमान;
कहीं यदि होता है अन्याय, त्रसित होते मानव-सन्तान,
अड़ा देते हो अपनी देह, लड़ा देते हो अपनी जान।"

सजल गान

(मानव)

श्री परमानन्द शुक्ल, बी० ए०

मानव, इतना तू क्यों उदास—
रहता प्रतिपल, प्रतिक्षण उदास ?

हँसता ही आता प्राचीमें
हँसता—दिनकर मधुवात लिये !
हँसती-सी आती है संध्या
वह जुगनूवाली रात लिये !
हँसता ही खग-कुल-कलरवमें—
सोता स्वर्णिम दिनका विलास !
रे मानव, तू ही क्यों उदास ?

जब सघन-सघन तम-घन ढँकते
निशिमें आ, वसुधा बालाको,
जब तिमिर-तिमिरसे दिशि भरते
देखा है तारक-मालाको !
झिलमिल उडु और निखर पड़ते
स्वर्गङ्गा भर लाती प्रकाश !
पर, मानव, तू रहता उदास !

तमकी काली ज़ंजीरोंमें
बँध हँसती आती उजियाली,
पुलकित हो मधुसे भर देती
वह जगकी सूनी-सी प्याली !
तू शयित, श्रान्त—वह दे जाती
फूलोंको मोती, हास, लास !
रे भाग्यहीन, चिंतित, उदास !

सूनी-सूनी-सी डाली में
तब अगणित पुष्प विहँस पड़ते,
हँस देती लाज-भरी अरुणा,
मद-रसके मेंह बरस पड़ते !
हँसती-सी रजनी छिप जाती,
हँसता-सा छा जाता विकास !
तब भी तू रहता अति उदास !

फिर आ तू भी रे तृषित-हृदय !
भर ले जीवन मधु-रस-कनसे,
क्या सुख, क्या दुख—सब एक तरह
बन जा मद-मस्त, मगन मनसे !
फिर तेरा मरु भी, सरस बने—
हँस दे तुझमें भी कुसुम-मास !
मानव, न रहे फिर तू उदास !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आर्य-धर्म संगठन !

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इधर पिछले दो-ढाई वर्षसे सारनाथ (बनारस) में एक धर्मशाला बन रही थी, जिसे बनवा रहे थे सेठ युगुलकिशोर बिड़ला। गत १० जनवरी, रविवारको चीनके कलकत्ता-स्थित कौंसल श्री चैन-ल्यों लॉकके हाथों उसका उद्घाटन हुआ। पं० मदनमोहन मालवीयके सभापतित्वमें एक बड़ी सभा हुई। शहरके अनेक ऐसे लोग, जो किसी दूसरे समय एक बौद्ध-स्थानपर आनेका नाम न लेते, काफ़ी संख्यामें उपस्थित थे। प्रातःकाल हवन हुआ। मध्याह्नमें ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया और दक्षिणा दी गई। हाँ, उस दिन श्रमणों (बौद्धभिक्षुओं) ने जो भोजन किया, वह भी सेठजीका ही दान था।

सभाकी कार्रवाई आरम्भ होनेको थी। श्री देवप्रियजी (मन्त्री महाबोधी सोसाइटी) ने मुझे बुलवा भेजा और बोले—"देखिये, सेठजी कह रहे हैं कि आजकी सभामें कोई ऐसी बात न कही जाय, जिससे गड़बड़ी हो, जिससे किसीका दिल दुखे।" बात अंगरेज़ीमें कही गई थी, इससे शब्दानुवाद कुछ दूसरा भी हो सकता है; लेकिन शब्दानुवाद कुछ भी हो—मैं समझ गया कि सेठजी वास्तवमें क्या चाहते हैं। अभी उस दिन मूलगन्धकुटी-विहारके पाँचवें वार्षिकोत्सवपर सेठजीने अपने व्याख्यानमें कहा था, जिसे वह हमेशा कहते हैं और छपवाकर बँटवाते भी हैं—"(१) वास्तवमें हिन्दू-धर्म और बौद्धधर्म एक ही हैं, (२) भगवान् बुद्धके उपदेशोंमें यों तो वही बातें हैं, जो अन्य उच्चकोटिके गीता आदि आर्य सद्ग्रन्थोंमें हैं।" सेठजीके व्याख्यानके बाद मुझे दो शब्द कहनेकी आज्ञा थी। मैंने कहा—"यह कहना कि बौद्धधर्ममें वही है, जो गीतामें है और कुछ नहीं है, बौद्धधर्मके दर्जेको कम करना है। मैंने गीताको भी पढ़ा है और बौद्धधर्मको भी। गीताकी अपनी शिक्षा है, बौद्धधर्मकी अपनी—गीता शास्वतवाद सिखाती है, बौद्धधर्म अनात्मवाद।" आज भी मेरे यही विचार हैं, इसलिए यदि मैंने ठीक इन्हीं शब्दोंमें अपने विचार उस समय न भी प्रकट किये हों, तो प्रार्थना है कि इस विषयमें मेरे विचार इससे अधिक नम्र न समझे जायँ।

ठीक समयपर, मीटिंगके ऐन पहले, मुझे बुलवाकर जो सेठजीने अपनी इच्छा कहलवाई, उसका ठीक मतलब क्या है, मैं समझ गया। मीटिंग आरम्भ हो गई थी। मैं सोचमें पड़ गया। क्या न बोलूँ? क्यों न बोलूँ? कैसे न बोलूँ? बहुत सोच-विचारके बाद मैंने देवप्रियजीसे कह दिया—"मैं व्याख्यान न दूँगा।"

पिछले तीन चार वर्षोंसे भारतमें एक नया आन्दोलन चल रहा है। एक पृथक् आन्दोलनके रूपमें उसका नामकरण-संस्कार शायद अभी तक किसीने नहीं किया। हम उसे आर्य-धर्म-आन्दोलन कहेंगे। अनेक आन्दोलनोंके प्रवर्तकोंके पास केवल विचार रहे हैं; लेकिन इस आन्दोलनके प्रवर्तक अथवा ज़ोरदार समर्थकके पास विचार और धन दोनों हैं। वे लोग जो कभी सेठ युगुलकिशोरसे मिले नहीं और समाचारपत्रोंमें उनके नित्यप्रतिके दानका वर्णन पढ़ते हैं, अनुमान करते होंगे कि सेठजी एक बैठेठाले धनी हैं, जो समय-समयपर जिस किसीको यों ही हज़ारोंका दान दिया करते हैं। ऐसी बात नहीं है—सेठजीका एक दृष्टिकोण है। उस दृष्टिकोणके अनुसार उनकी स्कीमें हैं, और उन स्कीमोंको पूरा करनेके लिए उनकी थैलियाँ खुली हैं। सेठजीकी विचार-धारा इतनी तेज़ है कि जब वे बात करते हैं, तो सुननेवालेको यही मालूम देता है कि सेठजी अपनी-अपनी कहते जा रहे हैं, किसी दूसरेकी सुनते ही नहीं। पंजाबके प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल, बैरिस्टर सावरकर और सेठ युगुलकिशोर—सुना है, ये तीन महानुभाव बातचीत करनेमें गंगाकी धाराकी तरह बहते चले जानेमें बेजोड़ हैं। इधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओंकी ओरसे बौद्धोंके प्रति सौजन्य दिखानेके जितने भी कार्य हुए हैं, उनमें शायद ही कोई ऐसा हो, जिसमें बिड़लाजीका हाथ न हो। कलकत्तेमें जापानके बौद्धोंके लिए आपने मन्दिर बनवाया। कानपुरकी हिन्दू-महासभामें भिक्षु उत्तमका सभापति बनना मुख्यतया आप ही के प्रयत्नका फल था। कुशीनगरमें, जहाँ भगवान् बुद्धने परिनिर्वाण प्राप्त किया था, आप एक धर्मशाला बनवा रहे हैं। राजगृहमें, जहाँ भगवान् बुद्ध बहुत दिन रहे, जापानी भिक्षुओंके लिए आप एक विहार बनवा रहे हैं। दिल्लीमें जो उस दिन बुद्ध-मन्दिरका शिलान्यास इतने शानदार तरीकेसे हुआ, वह बिड़लाजीकी ही तन-देही और धन-देहीका परिणाम था। आज सारनाथमें जो धर्मशाला बनी है, उसका क्या कहना? बिल्डिंगके लिहाजसे वह सारनाथकी बिल्डिंगोंमें सबसे अच्छी है। उसके बनवानेमें सेठजीने पैसा तो दिल खोलकर खर्च किया ही है, उससे ज्यादा उन्होंने अपना ध्यान देकर उसे खूब ठोक-बजाकर बनवाया है। ओह! हम बौद्ध बिड़लाजीसे कितने उपकृत हुए हैं!

बिड़लाजीने बौद्ध-स्थानोंकी ही सेवा की हो, सो बात नहीं। उन्होंने बौद्ध-साहित्यके प्रकाशनमें भी बड़ा सहारा दिया है। एक प्रकारसे उन्हींकी प्रेरणासे हिन्दू-महासभाने भी समय-समयपर बौद्ध व्यक्तियोंको सम्मानितकर बौद्ध-पक्षका अच्छा समर्थन तथा प्रचार किया है।

लोग—बौद्ध लोग—पूछते हैं, बिड़लाजी बौद्ध-धर्मके लिए यह सब क्यों करते हैं? सीधा सरल उत्तर दे दिया जाता है कि उन्हें बौद्धधर्मसे प्रेम है। तब कोई-कोई पूछ बैठता है, वे बौद्ध क्यों नहीं हो जाते? अब बताइये, इसका कोई क्या उत्तर दे? आदमी देखकर उत्तर देना होता है।

इधर सारनाथमें जो यह धर्मशाला बनी है, उसका नाम जितना अर्थपूर्ण है, उतना ही लम्बा—'आर्य-धर्म-संघ-धर्मशाला।' मैंने अपने एक मित्रसे इसका अर्थ पूछा। उन्होंने कहा—'आर्यका अर्थ बुद्ध, धर्मका अर्थ धर्म, संघका अर्थ संघ—इस प्रकार यह त्रिरत्नकी धर्मशाला है।' यह अर्थ बौद्धोंके लिए प्रिय हो सकता है; लेकिन वास्तविक अर्थ यह नहीं। वास्तविक अर्थ है—आर्य-धर्मोंका जो संघ है, उस संघकी धर्मशाला। आर्य-धर्मोंसे मतलब लिया गया है सनातनी, आर्यसमाजी, ब्राह्मसमाजी आदि हिन्दू-धर्मके अन्तर्गत आनेवाले धर्म और बौद्धधर्म। प्रश्न होता है कि इन हिन्दू-धर्मों और बौद्ध-धर्ममें कौन-सी ऐसी बात है कि इन्हींको संगठित करनेका प्रयत्न किया जाता है और शेष भारत-स्थित धर्मोंका बायकाट? उत्तर मिलता है कि यह सब भारतमें पैदा हुए हैं, इसलिए इनमें सांस्कृतिक एकता है, और जिन-जिन धर्मोंमें सांस्कृतिक एकता है, उनका संगठन होना चाहिए। यही है आर्य-आन्दोलनकी नींव, जिसको वह समझता है कि वज्रकी बनी है और जिसपर वह खड़ा है।

हमने पिछले कुछ वर्षोंसे इस आन्दोलनको बड़े समीपसे देखा है, और हमारी सम्मति है कि इस आन्दोलनकी तहमें किसी सांस्कृतिक प्रेरणासे अधिक है जाति-विशेषके स्वार्थोंका हाथ। कुछ हिन्दुओंकी ओरसे अछूतोद्धारके जो प्रयत्न हुए हैं और हिन्दु तथा बौद्धोंको एक गांठमें गाँठनेकी जो कोशिशें हैं, उन सबकी जननी एक ही मनोवृत्ति है। नहीं तो क्या कारण है कि वह ब्राह्मण-संस्कृति, जिसने महाराज अशोकके उपनाम देवानांप्रियका अर्थ मूर्ख किया, जिसने 'यथा ही बौद्धः तथा ही चौरः' लिखा, जिसने मगध—बौद्धधर्मके केन्द्र—में मरनेसे अगले जन्ममें गदहा होनेकी बात फैलाई, वह आज एकदम इतनी बदली हुई बनती है?

जहाँ तक बौद्धोंकी बात है, उनकी संख्या इस देशमें बिलकुल कम है—कुल पाँच लाख, और वह भी पड़े सो रहे हैं। जिसका फल यह है कि गुलाम देशकी राजनीतिमें जो झूठमूठके लिए किसीको कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार होता है, उस अधिकारमें भी उनका कोई हिस्सा नहीं। बौद्धोंकी संख्या बाहर है और बड़ी है—संसारकी आबादीका तीसरा हिस्सा—इतनी बड़ी कि हिन्दू उनको अपना समझकर, हिन्दू 'आर्य' शब्दके अन्तर्गत उनकी गिनती करके, संख्याओंके संसारमें अपना प्रभाव जमानेके लोभको संवरण नहीं कर सकते। 'पचीस करोड़ हिन्दू और पैंतालीस करोड़ बौद्ध मिलकर हम हैं सत्तर करोड़।' क्या ही उत्साहप्रद कल्पना है!

इसलिए यदि हमें इस हिन्दू-बौद्ध-गठजोड़ेपर विचार करना है, तो हमें उन बौद्धोंकी दृष्टिसे विचार करना है, जो भारतके बाहर हैं। हिन्दू लोग बौद्धोंको अपना कहते हैं; लेकिन कभी यह नहीं जाननेका कष्ट उठाते कि बौद्ध लोग—भारतके बाहरके बौद्ध लोग—हिन्दुओंको क्या कहते हैं? उस दिन गयामें भिक्षु उत्तमके साथ बर्माके एक तरुण थे। किसीने उनसे कह दिया कि आप हिन्दू हैं। जानते हैं, उन्होंने क्या जवाब दिया? उन्होंने कहा—"You are insulting me."—'आप मुझे हिन्दू कहकर मेरा अपमान कर रहे हैं।' बाबू जगतनारायण लालने मुझसे कहा—"देखिये, यह अपनेको हिन्दू कहे जानेपर ऐसा कहते हैं!" मैंने कहा—"जब आप अपने देशमें ही हिन्दू न समझे जाकर गैर-मुस्लिम (Non-Muslim) समझे जाते हैं, तब आप विदेशी बौद्धोंसे ऐसी दुराशा ही क्यों करते हैं? एक जापानी बौद्धको क्या ज़रूरत पड़ी है कि वह अपने-आपको बौद्ध भी कहे, जापानी भी कहे और कहे साथ-साथ हिन्दू भी?"

यह तो रही एक विदेशी बौद्धकी बात। हम भारतमें जो ढाई टोटरू हैं, यदि मुझे उनका प्रतिनिधित्व करनेका हक़ दिया जाय, तो मैं कहूँगा कि जब तक हमें अपने-आपको हिन्दू कहनेसे एक साधारण आदमी—(१) वेद-शास्त्रको माननेवाला, (२) ईश्वरको माननेवाला, (३) वर्णाश्रम-धर्मको माननेवाला, (४) ईसाई, मुसलमानके हाथका न खानेवाला, (५) छूआछूतको माननेवाला आदि समझता है, तब तक हम अपने-आपको हिन्दू कहनेको तैयार नहीं। आजसे आठ सौ वर्ष पहले हमारे पूज्यपाद आचार्य धर्मकीर्ति कह गये हैं—

"वेदप्रामाण्यं कस्यचिद् कर्तृवादः
स्नानेधर्मेच्छा जाति वादावलेपः
सन्तापारम्भः पापहानाय चेति
ध्वस्तप्रज्ञानां पञ्चलिङ्गानि जाड्ये।"

—'वेदको प्रमाण मानना, किसीको सृष्टिका कर्ता मानना, (गंगा-यमुना आदिमें) नहानेसे पाप-शुद्धि मानना, जात-पाँतको मानना तथा शरीरको कष्ट देनेसे पापसे निवृत्ति मानना—प्रज्ञारहित मनुष्योंकी जड़ताके ये पाँच लक्षण हैं।'

जो लोग हम बौद्धोंको हिन्दू कहनेके लिए अथवा हमारे धर्मको हिन्दू-धर्मका ही एक स्वरूप कहनेके लिए अत्यन्त आतुर हैं, मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या वे उक्त श्लोकपर हस्ताक्षर करनेको तैयार है? अथवा वे इन्हें सम्प्रदाय-विशेषकी छोटी-छोटी मान्यताएँ कहकर टाल ही देना चाहते हैं?

यदि हम बौद्धधर्मको सार्वभौमिक कहते और समझते हैं, यदि हमें भगवान बुद्धकी शिक्षाओंका सर्वत्र प्रचार करना है, तो मैं इस एक बातको विशेष रूपसे कहना चाहता हूँ कि हमें न तो किसी धर्म-विशेषसे इसलिए मोह करना है कि वह भारतमें पैदा हुआ है और न किसीसे केवल इसलिए द्वेष कि वह भारतमें पैदा नहीं हुआ है।

बनारसके प्रसिद्ध विश्वनाथजीके मन्दिरकी तरह सारनाथकी इस धर्मशालाके दरवाज़ेपर भी लिख दिया गया है—'आर्यमात्रके ठहरनेके लिए'। फ़र्क़ इतना ही है कि विश्वनाथजीके 'आर्येतराणां प्रवेशः निषिद्धः' (आर्योंके अतिरिक्त औरोंका प्रवेश निषिद्ध है) में अछूत और बौद्ध लोग आर्य नहीं समझे जाते और इस धर्मशालामें अछूत और बौद्ध लोग भी आर्य समझे जायँगे। लेकिन मात्र शब्द फिर भी विशेष है। एक ओर उसका अर्थ है सब आर्य; दूसरी ओर उसका अर्थ है आर्योंके अतिरिक्त कोई नहीं। इसका मापदण्ड क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही देशमें उत्पन्न धर्मको माननेवाला ? एक जापानी बौद्ध अपने निजी देशमें उत्पन्न धर्मको नहीं मानता—वह एक विदेशी धर्मको मानता है। यदि उसके लिए विदेशी बौद्धधर्म मानना पाप नहीं, तो एक मुसलमानके लिए विदेशी इस्लाम-धर्म मानना क्यों पाप है ? पं० रामनारायण यदि मुसलमान हो जायँ, तो क्या वे मुसलमान हो जानेमात्रसे अनार्य हो जायँगे ? और एक जापानी, चीनी या तिब्बती बौद्ध होते ही आर्य हो जायगा ? फिर जापानमें जो शिन्टो आदि उनके अपने धर्म हैं, उनके माननेवालेको आप आर्य कहेंगे या अनार्य ? उदाहरणके लिए, एक जापानी बौद्ध और एक जापानी शिन्टो धर्मशालामें आते हैं—एकको आप ठहरने देते हैं, दूसरेको नहीं। तो वे दोनों आपको आर्य कहेंगे या अनार्य ? यदि आप एक शिन्टोको ठहरने देते हैं, तो क्या मि० सी० एफ० ऐण्ड्रूज सरीखे उदारमना भारतभक्तको आप न ठहरने देंगे ? वे बड़े आदमी हैं, मशहूर आदमी हैं—शायद आप न बोलें। मैं पूछता हूँ, मियाँ रज्ज़ाकने क्या पाप किया है कि आप उनको न ठहरने देगें ? फ़र्ज़ किया कि वह बौद्ध बननेके लिए आते हैं, तब आप उन्हें ठहरने देंगे ? यदि हाँ, तो क्यों ? और यदि नहीं, तो क्यों ?

मैं एक बौद्धकी हैसियतसे आर्य शब्दकी इस भौगोलिक व्याख्यासे अपना असहयोग करता हूँ, विरोध करता हूँ। आर्यका अर्थ है श्रेष्ठ। पृथिवीके किसी कोनेमें जो भी श्रेष्ठ है, जो भी योग्य है, जो भी सभ्य है—वह आर्य है। भगवान बुद्ध जब अपनेको आर्य कहते हैं, अपने धर्मको अरियो-धम्मो कहते हैं, तो वह इन्हीं अर्थोंमें कहते हैं। लेकिन अफसोस ! हम क्या अर्थका अनर्थ कर रहे हैं। श्री रामनारायण और मियाँ रज्ज़ाक दोनों ही भारतमें पैदा हुए हैं, भारतमें ही पले हैं—लेकिन एक आर्य हैं और दूसरे अनार्य। इसलिए नहीं कि एक भारतमें पैदा हुए हैं और एक विदेशमें, बल्कि इसलिए कि एकका धर्म भारतमें पैदा हुआ है और एकका विदेशमें।

जिस दिन मुझे यह विश्वास हो जायगा कि किसी धर्मको मानना केवल इसलिए पाप है, क्योंकि वह विदेशी है, उस दिन मैं अपना नैतिक कर्तव्य समझूँगा कि भारतसे बाहर किसी भारतीय धर्मका—चाहे फिर वह बौद्धधर्म ही क्यों न हो—प्रचार न करूँ।

ऋषिपत्तन (सारनाथ) की पवित्र भूमिमें जो मूलगन्धकुटी-विहार है, उसमें किसी भी देश, किसी भी जाति, किसी भी धर्मके अनुयायीका प्रवेश निषिद्ध नहीं। वहीं इंग्लैण्डके एक बौद्ध सज्जन मि० ब्राउटनकी बनवाई हुई भोजनशाला है, जिसमें सभी देशों, सभी जातियों, सभी धर्मोंके अनुयायी बैठकर एक साथ भोजन करते रहे हैं और करते रहेंगे ; लेकिन वहीं बन गई है यह आर्यधर्म-संघ धर्मशाला, जो आर्य-अनार्यके थोथे निस्सार भेद खड़े कर बौद्धधर्मकी सार्वभौमिक संस्कृतिकी जड़पर कुल्हाड़ा चलायेगी।

ऐसी सुन्दर धर्मशालाके मुखद्वारपर यह जो दो शब्द लिख दिये गये हैं और उनके पीछे जो भाव है, उससे मुझे ऐसा लगता है कि धर्मशालाके उज्ज्वल मुखपर कालिख पुत गई है।

इन पंक्तियोंके लिखनेमें मुझे जो हार्दिक कष्ट हुआ है, जो वेदना हुई है, यदि उसे बिड़लाजी समझ सकें, तो वे या तो उन शब्दोंको मिटवा दें, या उनके पीछे जो भाव है, उसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

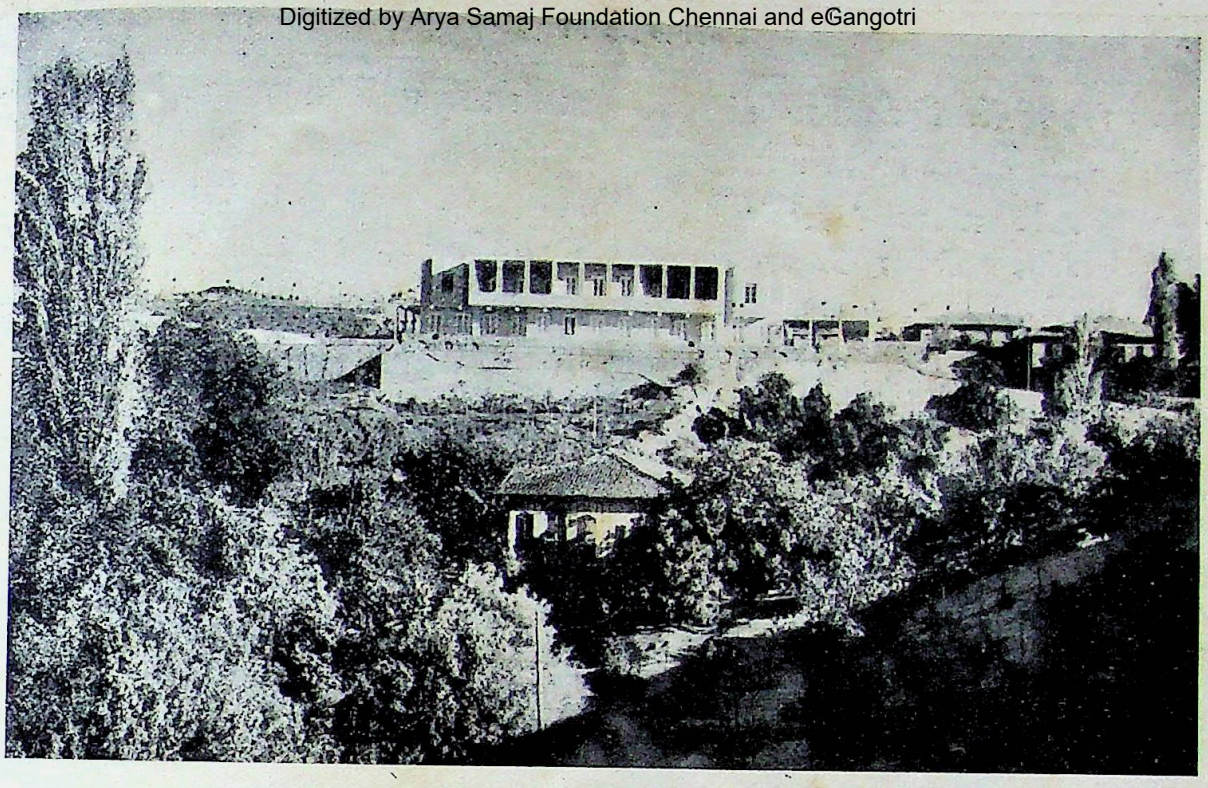

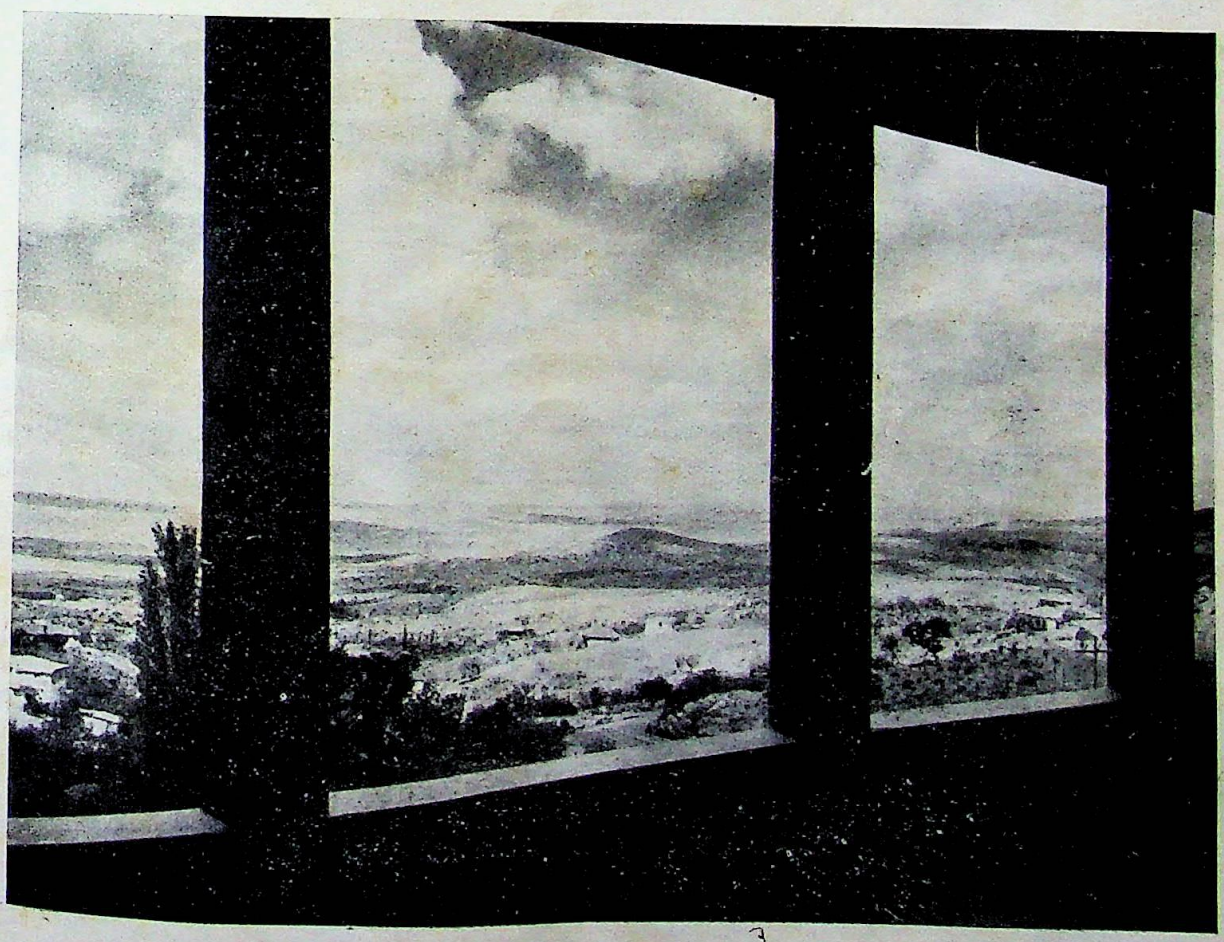

ऊपर—टर्की के राष्ट्रपति आतातुर्क कमालपाशाका नया भवन, अंकरा

नीचे—अंकराका एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

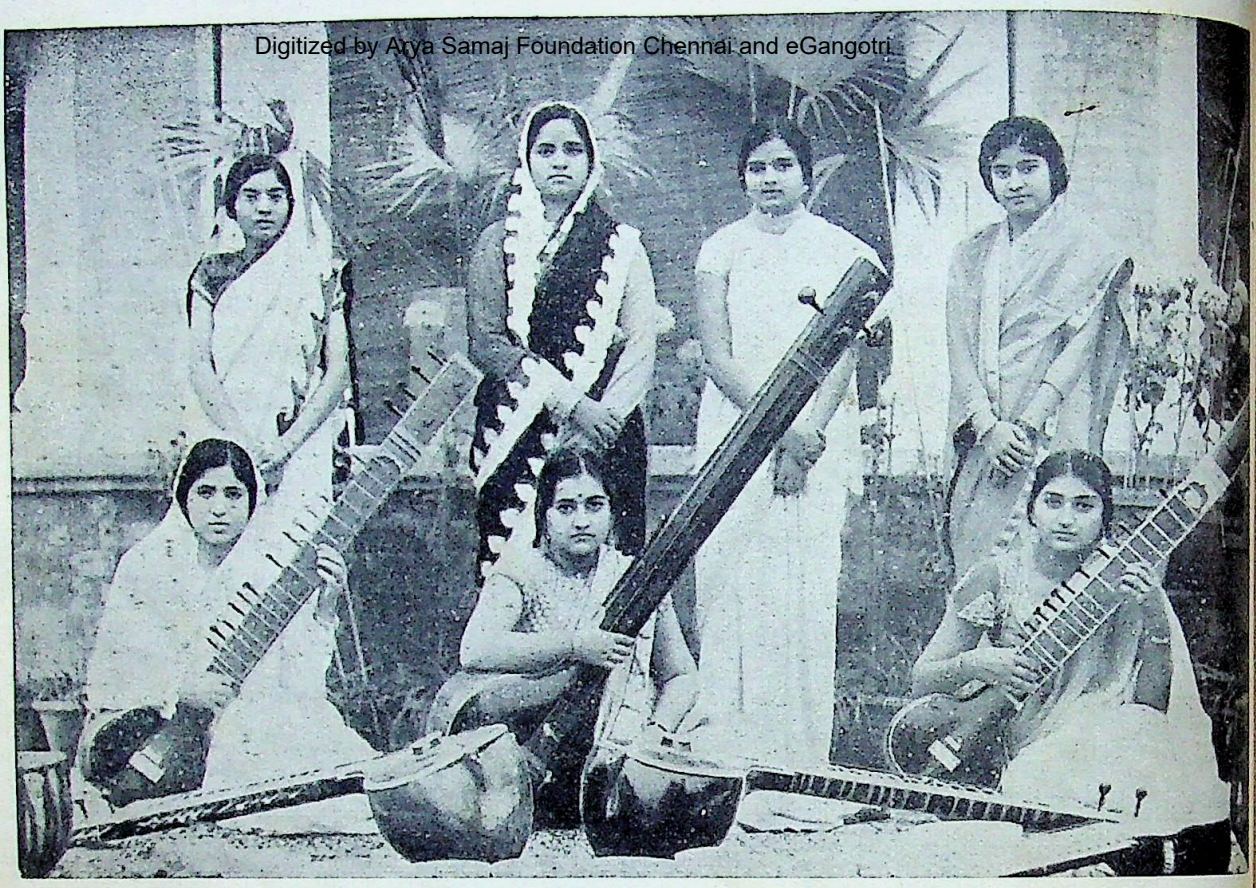

लाहौरकी कुछ संगीत-प्रेमी छात्रियोंका एक दल :—बाईं ओरसे बैठी हुई—कुमारी लीला भण्डारी, कुमारी प्रीतम धवन और कुमारी लज्जावती धवन। खड़ी हुई—कुमारी यमुना, कुमारी मोहन, कुमारी कौमुदी और कुमारी एस० सी० चटर्जी

श्रीमती माणिकलाल प्रेमचन्द, जो गत अक्टूबर मासमें यूगोस्लेवियाके ड्रूब्रोवनिक नामक स्थानमें होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कानफरेंसकी उप-सभापति चुनी गई थीं

श्रीमती इम्तियाज़ अली पहली मुस्लिम महिला हैं, जिन्होंने हवाई-जहाज़ चलानेका 'ए' लाइसेन्स प्राप्त किया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार अध्याय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तीसरा अध्याय

चारों ओर एक-दूसरेसे सटे हुए फीके-हरे गहरे-गहरे पीले-हरे खाकी-हरे रंगोंके पेड़-पौधों और झुरमुटोंकी निविड़ता छाई हुई है। इधर-उधर कुछ तलैयाँ हैं, जिनमें पानीके बजाय बाँसकी सड़ी पत्तियाँ और कीचड़ भरा हुआ है। इस निविड़ताके बीचसे टेढ़ी-मेढ़ी बल खाती हुई एक कच्ची सड़क गई है, जिसे बैलगाड़ीके पहियोंने बुरी तरह रौंद डाला है। कहीं आलू और अरुई है तो कहीं घंटाकरण, नागफनी और सेंहुड़ आदि जंगली पौधे। मेंड़से घिरे हुए धानके खेतोंमें पानी भरा दीखता है। सड़क गंगाके घाट तक जाकर खतम हो गई है। पुराने जमानेका लखौरी ईंटोंसे बना हुआ टूटा-फूटा घाट तिरछा हो गया है, और गंगा कुछ उतर जानेसे सामने कछार पड़ गया है। घाटसे कुछ दूर आगे चलकर गंगा-किनारे एक जंगल-सा पड़ता है। उसमें एक खंडहर मकान है, जिसके बारेमें यह कहा जाता कि उसकी अभिशप्त छायामें डेढ़ सौ वर्ष पहलेके किसी मातृ-हत्याकारी पातकीके भूतने डेरा डाल रखा है। बहुत दिनोंसे किसी सजीव सत्त्वाधिकारीने उस अशरीरीके विरुद्ध अपना कोई दावा उपस्थित करनेकी कोशिश तक नहीं की।

यहाँका दृश्य है—परित्यक्त टूटा-फूटा पूजाका दालान और उसके सामने ऊबड़-खाबड़ लम्बा-चौड़ा आँगन, जिसमें जगह-जगह काई जमी हुई है। कुछ दूरीपर नदीके किनारे गिरता-हुआ खंडहर मन्दिर, टूटा-फूटा रासमंच, पुरानी दीवारोंका भग्नावशेष और कछारपर वटवृक्षकी जटाओंमें छिपी हुई एक टूटी-फूटी नावका ढाँचा पड़ा हुआ है।

फिलहाल यहींपर अतीनका वासस्थान है। लगभग शामको अतीनके उस छायाच्छन्न दालानमें कन्हाई गुप्त आ पहुँचे। अतीन चौंक पड़ा, क्योंकि यहाँका पता कन्हाईको मालूम न होना चाहिए था।

"आप यहाँ!"

कन्हाईने कहा—"जासूसी करने निकला हूँ।"

"मजाकको जरा समझा दीजिए।"

"मजाक नहीं। मैं तो तुम लोगोंको रसद पहुँचानेवालोंमें एक मामूली-सा आदमी हूँ। चायकी दूकानमें शनिने प्रवेश किया, तो निकल पड़ा वहाँसे। अन्तमें उन्हींके जासूसी रजिस्टरमें नाम लिखवा आया। मरघटका रास्ता छोड़कर जिनके सामने दूसरा कोई रास्ता ही नहीं, उनके लिए यह ग्रैण्ड ट्रंक रोड है,—देशकी छातीपर पूरबसे लेकर पश्चिम तक सीधा चला गया है।"

"चाय बनानेका काम छोड़कर अब खबरें बना रहे हैं?"

"बनानेसे यह रोजगार नहीं चलता। विशुद्ध खालिस खबरें ही देनी पड़ती हैं। जो शिकार जालमें फँस चुका है, मैं उसकी फाँस खींच देता हूँ। तुम्हारे हरेनकी साढ़े पन्द्रह आने खबरें उनके पास पहुँच चुकी हैं, आखिरी ज्यादतीकी खबर मैंने दे दी है। वह अभी जलपाईगुड़ीकी सरकारी धर्मशालामें होगा।"

"अब शायद मेरी पारी है?"

"ढंग तो ऐसे ही दिखाई देते हैं। बटूने बहुत-कुछ रास्ता तैयार कर दिया है। मेरे हिस्सेमें जितना आया है, उसमें तुम्हें कुछ समय मिलेगा। पिछले मकानमें रहते हुए अचानक तुम्हारी डायरी खो गई थी। याद है?"

"हाँ, खूब याद है।"

"वह जरूर पुलिसके हाथ पड़ जाती, इसलिए मुझे ही चुरानी पड़ी।"

"आपने!"

"हाँ, जिसका साधु-संकल्प होता है, उसके भगवान सहाय होते हैं। एक दिन तुम उसे लिख रहे थे, मेरे ही कौशलसे पाँच मिनटके लिए तुम चले गये बाहर,—उसी समय उड़ा दी।"

अतीनने माथेपर हाथ रखकर कहा—"सब पढ़ी है आपने?"

"जरूर पढ़ी है। पढ़ते-पढ़ते रातके डेढ़ बज गये। बंगला भाषामें इतना तेज, इतना रस है, मैं यह पहले नहीं जानता था। उसमें बहुत-सी गुप्त बातें थीं; पर वे ब्रिटिश साम्राज्यके बारेमें नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपने यह अच्छा काम किया ?"

"कितना अच्छा किया, सो मैं नहीं कह सकता। तुम साहित्यिक हो, डायरी-भरमें तुमने कहीं छोटी-मोटी या ऊहापोहकी बातें नहीं लिखीं, किसीका नाम तक नहीं लिया। सिर्फ भावोंकी दृष्टिसे देखा जाय, तो उसमें इतनी घृणा, इतनी अश्रद्धाकी बू आती है कि अगर किसी पेन्शनयाफ्ता मन्त्री-पदप्रार्थीकी कलमसे निकलती, तो राज-दरबारमें वह मोक्ष तक प्राप्त कर सकता था। बट्ट अगर तुम्हारे पीछे न भी पड़ता, तो वह डायरी ही तुम्हारे ग्रह-स्वस्त्ययनका काम करती।"

"कहते क्या हैं ! सब पढ़ ली आपने ?"

"हाँ, पढ़ी तो पूरी ही है। क्या कहूँ, बेटाजी, मेरे अगर लड़की होती और ऐसा साहित्य अगर वह तुम्हारी कलमसे निकलवा सकती, तो अपने पितृपदको मैं सार्थक मानता। सच कहता हूँ, तुम्हें गुटमें मिलाकर भाई साहब इन्द्रनाथने देशकी हानि ही की है।"

"आपके इस रोजगारकी खबर दलवालोंको सबको मालूम है ?"

"किसीको नहीं।"

"मास्टर साहबको ?"

"बुद्धिमान ठहरे, अन्दाज लगा सकते हैं ; पर मुझसे पूछा नहीं और न मैंने कहा अभी तक।"

"यही आश्चर्यकी बात है। मुझ-जैसा सन्देह-जीवी मनुष्य अगर किसीपर विश्वास न कर सके, तो दम घुटने लगता है। मैं भावुक नहीं, बेवकूफ भी नहीं, इसीसे डायरी नहीं रखता ; अगर रखता, तो तुम्हारे हाथ सौंपकर मनका धुआँ निकाल देता।"

"मास्टर साहब—"

"मास्टर साहबको खबरें दी जा सकती हैं, पर मन नहीं खोला जा सकता। इन्द्रनाथका मैं प्रधान मन्त्री हूँ, पर उनकी सब बातें मुझे मालूम हों, इसकी कल्पना भी न करना। ऐसी बातें भी हैं, जिनकी कल्पना करनेकी भी हिम्मत नहीं पड़ती। मेरा विश्वास है, हमारे दलसे जो अपने-आप ही झड़ने लगते हैं, इन्द्रनाथ मेरी तरह ही उन्हें झाड़-पोंछकर फेंक देते हैं पुलिसके कूड़ेखानेमें। काम है तो गर्हित, पर निष्पाप है। पहलेसे कहे देता हूँ, किसी दिन उनकी या मेरी ही सहायतासे तुम्हारे हाथोंमें अन्तिम हथकड़ी पड़ेगी, तब कुछ खयाल मत करना, अच्छा। तुम्हारे यहाँ आनेकी खबर पहले-पहल कुत्ते ही ने थानेके कानों तक पहुँचाई है। लिहाजा मुझे भी बाजी मारनी पड़ी। मैंने फोटोग्राफके साथ प्रामाणिक खबर पहुँचाई। अब कामकी बात कहता हूँ, सुनो। तुम्हें चौबीस घंटेका समय देता हूँ। उसके बाद भी अगर तुम यहीं बने रहे, तो मैं ही तुम्हें थानेके रास्ते तक पहुँचा दूँगा। यहाँसे कहाँ जाना होगा, विस्तारके साथ उसका नक्शा दिया जाता है—इसके हरूफ तो तुम जानते ही हो, फिर भी कंठस्थ करके इसे फाड़ फेंको। यह लो मैप। रास्तेके इस तरफ तुम्हारा ठिकाना है, स्कूलके कोनेके घरमें। उसके ठीक सामने ही थाना है। वहाँ एक राइटर-कान्स्टेबिल मिलेगा तुम्हें। दूरके रिश्तेमें वह मेरा नाती लगता है, नाम है राघव बयाल। पछाँह रहते उसे तीन पुश्तें गुजर चुकीं। तुम्हें मास्टरीका काम मिला है। वहाँ पहुँचते ही राघव तुम्हारे ट्रंक-वंक देखेगा, कपड़ोंकी तलाशी लेगा, एक-आध रौंदे-औंदे भी जमायेगा। उसे तुम भगवानकी दया समझकर झेल लेना। रघुवीरकी हिन्दी भाषामें हर वक्त यह तत्त्व प्रकट होता रहता है कि बंगाली मात्र उसकी सुसरालके रहनेवाले हैं। तुम प्रतिवाद करनेकी कोशिश मत करना और जीते-जी कभी इधर मत आना। साइकिल बाहर पड़ी है, इशारा पाते ही सवार होकर चल देना। अब आओ, बेटाजी, अन्तिम बार गले लग लें।"

गले लगकर कन्हाई चल दिया वहाँसे।

अर्तीन चुपचाप बैठा रहा। अपने भीतरकी ओर दृष्टि दौड़ाकर देखने लगा। असमयमें आ पहुँचा उसके जीवन-नाटकका अन्तिम अंक, यवनिका अब गिरने ही वाली है, प्रकाश अब बुझने-ही-वाला है। यात्रा शुरू हुई थी निर्मल प्रभातके प्रकाशमें, वहाँसे आज बहुत दूर आ पहुँचा है। चलते समय हाथमें जो तोशा था, वह भी कुछ नहीं बचा। मार्गके अन्तिम भागमें तो उसने अपनेको सिर्फ ठग-ठगकर ही पेट भरा है। एक दिन सहसा रास्तेके मोड़पर सौन्दर्यका अपूर्व दान लेकर जो भाग्यलक्ष्मी उसके सामने आ खड़ी हुई थी, मानो वह अलौकिक था ! ऐसा अपरिसीम ऐश्वर्य उसके इस जीवनमें कभी प्रत्यक्ष हो सकता है, इस बातकी कल्पना भी उसके दिमागमें न आई थी, सिर्फ काव्य और इतिहासमें उसका कल्परूप देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार उसके मनमें आया है कि दान्ते और बियात्रिचे नया जन्म ले रहे हैं हम-दोनोंमें। उस ऐतिहासिक प्रेरणाने ही उसके मनके भीतर बातें की हैं, दान्तेकी तरह ही वह राष्ट्रीय क्रान्तिके भँवरमें कूद पड़ा था ; मगर उसमें सत्य कहाँ, वीर्य कहाँ, गौरव कहाँ ; देखते-देखते अनिवार्य वेगसे जिस कीचड़की ओर वह खिंचता चला गया, उस नकाबपोश चोरी-डकैती खून-खराबीके अन्धकारमें इतिहासका आलोक-स्तम्भ कभी न खड़ा होगा। आत्माका सर्वनाश करके अन्तमें आज वह देख रहा है कि कोई भी वास्तविक फल नहीं है उसमें, निःसन्देह पराभव है सामने। पराभवका भी मूल्य है, पर आत्माके पराभवका नहीं, जो उसे गुप्तचारिणी वीभत्स विभीषिकामें खींच लाया है, जिसका न अर्थ है और न अन्त।

दिनका प्रकाश क्रमशः म्लान हो गया। आँगनमें झींगुर बोलने लगे। पासकी कच्ची सड़कसे बैलगाड़ी जा रही थी, उसका आर्तस्वर सुनाई देने लगा।

इतनेमें सहसा आँधीकी तरह बड़ी तेजीसे एला वहाँ आ पहुँची। ऐसी अव्यवस्थित रूपमें घबराई हुई आई कि जैसे आत्महत्याके लिए झोंकमें आकर पानीमें कूदने जा रही हो। अतीनके उछलकर खड़ा होते ही वह उसकी छातीपर जा पड़ी। भर्राए हुए स्वरमें बोली—"अतीन, अतीन, नहीं रहा गया।"

अतीनने धीरेसे उसे छुड़ाकर अपने सामने खड़ा कर लिया और उसके अश्रु-सिक्त मुखड़ेकी ओर देखता रहा। बोला—"एली, क्या काण्ड कर डाला तुमने ?"

उसने कहा—"मुझे नहीं मालूम, क्या किया ?"

"यहाँका पता कैसे मालूम हुआ ?"

एलाने गहरे अभिमानके साथ उलाहने-भरे स्वरमें कहा—"तुमने तो नहीं बताया अपना ठिकाना ?"

"जिसने तुम्हें बताया है, वह तुम्हारा हितैषी नहीं है।"

"यह भी मैं निश्चित जानती हूँ, पर तुम्हारी कुछ राहका पता न मिलनेसे मेरा मन शून्यमें उड़ता रहता है, असह्य हो उठा वह मेरे लिए। हितैषी-अहितैषीका विचार करने-लायक अवस्था नहीं रही मेरी। कितनी मुद्दतसे तुम्हें नहीं देखा, बताओ तो !"

"धन्य हो तुम !"

"तुम धन्य हो, अन्तू ! ज्यों ही मेरे घर आनेकी मनाही हुई, त्यों ही तुमने उसे मान लिया ! कैसे हुआ तुमसे ?"

"यह तो मेरी स्वाभाविक स्पर्द्धा है। प्रचण्ड इच्छाने मुझे अजगरकी तरह दिन-रात घुम-घुमाकर पीस-पीस मारा है, फिर भी उसे मैं मान नहीं सका। वे मुझे बताते हैं सेन्टिमेन्टल—भावुक, उन लोगोंने मनमें विचार लिया था कि संकटके समय प्रमाणित हो जायगा कि मैं गीली मिट्टीका ही बना हूँ। वे सोच ही नहीं सकते कि भावुकता ही मेरी अमोघ शक्ति है।"

"मास्टर साहब भी इस बातको जानते हैं।"

"एली, ब्रिटिश-साम्राज्यमें इस भुतही मुहल्लेकी सृष्टि होनेके बादसे आज तक किसी बंगाली भद्र-महिलाने इस स्थानका स्वरूप निर्धारण नहीं किया।"

"उसका कारण यह है कि बंगालकी किसी भद्र-महिलाके भाग्यमें इतनी बड़ी गरज ऐसे दुःसह रूपमें किसी दिन प्रकट नहीं हुई।"

"परन्तु एली, आज तुमने जो काम किया है, वह अवैध है।"

"जानती हूँ इस बातको, अपनी कमजोरीको मानती हूँ मैं, फिर भी तोड़ूँगी नियम ; सिर्फ अपनी ही तरफसे नहीं, बल्कि तुम्हारी तरफसे भी। रोज मेरा मन कहा करता है, तुम बुला रहे हो मुझे। उसका जवाब बिना दिये मेरे प्राण जो हाँफने लगते हैं। बताओ, मेरे आनेसे तुम खुश हुए हो ?"

"इतना खुश हुआ हूँ कि उसे साबित करनेके लिए खतरेमें पड़नेको भी राजी हूँ।"

"नहीं, नहीं, तुम खतरेमें क्यों पड़ोगे ? जो-कुछ आफत आये, मुझपर आये। तो अब मैं जाती हूं, अन्तू।"

"हरगिज नहीं। तुम नियम तोड़के चली आई हो, मैं नियम तोड़के तुम्हें जकड़े रहूंगा। दोनों मिलकर अपराधको समान कर लें। नये आश्चर्यके रूपमें एक दिन तुम्हारे मुखड़ेको देखा था बसन्ती-रंगमें, वह आज युगान्तर तक पिछड़ गया है। आज उस दिनका आह्वान किया जाय इस खंडहरमें। आओ, और भी पास आ जाओ।"

"ठहरो, जरा घर सम्हाल लेनेकी कोशिश कर लूं।"

"हाय-हाय, गंजी चाँदपर कंघी फेरनेकी कोशिश !"

एलाने एक बार चारों तरफ देख लिया। जमीनपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्बल बिछा था और उसपर चटाई। तकियेकी जगह किताबोंसे भरा कैन्वसका एक पुराना थैला पड़ा था। लिखने-पढ़नेके लिए एक चीड़का बकस था और एक कोनेमें सिकोरेसे ढकी हुई गागर रखी थी। टूटी टोकरीमें कुछ केले पड़े थे और उसीमें एक एनामेलकी दचकी हुई कटोरी, जो मौके बेमौके चाय पीनेके काम आती है। दूसरे कोनेमें एक बड़ा चौड़ा सन्दूक है, उसपर मिट्टीकी बनी गणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। उससे प्रमाणित होता है कि यहाँ अतीनका कोई और मित्र भी रहता है। एक खम्भेसे लेकर दूसरे खम्भे तक रस्सी बंधी हुई है, जिसपर तरह-तरहके रंगोंके दाग लगे हुए कई मैले अंगोछे पड़े हैं। घर-भरमें नमीकी दम घुटानेवाली गन्ध है।

ठीक ऐसा न सही, पर इसी ढंगके दृश्य और भी देखे हैं एलाने। उससे विशेष दुःख नहीं हुआ उसे, बल्कि त्याग-वीर युवकोंको उसने मन-ही-मन शाबशी दी है। एक बार उसने किसी जंगलके किनारे अनिपुण हाथोंसे बने चूल्हेका भग्नावशेष देखा था, जिसके चारों ओर जले हुए चावल बिखर रहे थे। वह उसे राष्ट्रीय क्रान्तिके रोमान्सके अंगारोंसे बनी हुई तसवीर मालूम हुई है; पर आज दुःख और वेदनासे उसका गला रुंध आया। आरामके आलिंगनमें पड़े हुए धनी युवकोंकी अवज्ञा करना ही एलाका स्वभाव था। परन्तु अतीनको इस अपरिच्छिन्न मलिन अभावजन्य दरिद्रतामें देखकर उससे अपना मन मिला न सकी।

एलाके उद्विग्न मुँहकी ओर देखकर अतीनने हँसकर कहा—"मेरा ऐश्वर्य स्तम्भित होकर देख रही हो। उसका विराट अंश नहीं दिखाई देता, इसीसे तुम विस्मित हो। हम लोगोंको पैर हलके रखने पड़ते हैं—जिससे भागते समय कोई टोक न सके, न कोई चीज ही रोक सके। कुछ दूरीपर जूट-मिलके मजदूरोंकी बस्ती है, वे मुझे मास्टर-बाबू कहते हैं। मुझसे चिट्ठी पढ़वा लेते हैं, पत्र लिखवा लेते हैं और समझ लेते हैं कि लेन-देनकी रसीद ठीक हुई या नहीं। उनमें किसी-किसीको सन्तान-वात्सल्यका भी शौक है, चाहते हैं लड़केको मजदूर-श्रेणीसे उठाकर हजूर-श्रेणीमें दाखिल करें। मेरी सहायता चाहते हैं;—कोई भेंटमें फल-फलारी लाता है तो कोई घरकी गायका दूध।"

"अन्तू, कोनेमें जो सन्दूक पड़ा है, वह किसकी सम्पत्ति है?"

"कुठौरपर और अकेला रहनेसे ही वह बड़े रूपमें दिखाई देता है। अलक्ष्मीकी झाड़ूमें लगकर रास्तेसे वह यहाँ आ पहुँचा है,—एक मारवाड़ीका है, तीसरी बार दिवालिया हुआ है बेचारा। मुझे शक हो रहा है, शायद दिवालिया होना ही उसका मुख्य व्यवसाय है। यह खंडहर उसके दो भतीजोंकी ट्रेनिंग एकाडेमी है। दोनों लड़के तड़के ही सत्तू खाकर काम करने आते हैं, बस्तीकी मजदूरिनोंके लिए सस्ते दामोंके कपड़े रंगते हैं, बेचकर मूलधनकी ब्याज देते हैं, मूल भी कुछ कुछ चुकाते जाते हैं। ये जो मिट्टीकी नादें देख रही हो, इन्हें मैं अपने यज्ञके नैवेद्यके काममें नहीं लाता,—इनमें रंग घोला जाता है। कपड़े उठाकर उस बकसमें रख जाते हैं। इसके सिवा उसमें बस्तीकी स्त्रियोंके कामकी तरह-तरहकी शृंगारकी सामग्रियाँ भी हैं;—बिल्लौरी चूड़ियाँ, कंघे, छोटे आईने, बाजूबन्द वगैरह-वगैरह। रक्षा करनेका भार है मेरे ऊपर और भूतोंपर। दोपहरके बाद तीन बजे सौदा बेचने चला जाता है, फिर यहाँ नहीं आता। कलकत्तेका मारवाड़ी है, न मालूम किस चीजकी दलाली करता है। मुझे अंग्रेजीदाँ जानकर इसी लोभसे मुझे अपना साझीदार बनाना चाहता था, जीवनकी दया करके मैं राजी नहीं हुआ। मेरी आर्थिक अवस्थाकी भी खोज लगानेकी कोशिश की थी; मैंने समझा दिया कि पुरखोंके पास जो कुछ था, उसका चौदह-आना हिस्सा उन्हींके पुरखोंके घर पहुँच गया है।"

"यहाँ तुम्हारी कितने दिनकी मियाद है?"

"अन्दाजन चौबीस घंटेकी और समझो। इस आँगनकी रसमें विगलित नाना रंगोंकी लीला बराबर ज्यों-की-त्यों चलती रहेगी, पर अतीन्द्र विलीन हो जायगा पाण्डुवर्ण दूर-दिगन्तमें। मैं मना रहा हूँ कि जिस मारवाड़ीको मेरी छूत लग चुकी है, उसे हथकड़ी-महामारी न आ दबाये। अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि बिना मूलधनके यहाँ उसे मेरे भाग्यका भागी बनना पड़ेगा या नहीं।"

"तुम्हारा भावी पता क्या होगा?"

"बतानेका हुक्म नहीं है।"

"तो क्या मैं कल्पना भी न कर सकूँगी कि तुम कहाँ हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कल्पना करनेमें क्या दोष है। मानस-सरोवरका तट अच्छा स्थान है।"

इसी बीचमें थैलेमें से किताबें निकालकर एला उन्हें उलट-पुलटकर देख रही थी। काव्य हैं, कुछ अंगरेजीके और दो-चार बंगलाके।

अतीनने कहा—"अब तक इन्हें ढोता फिरा हूँ, इस डरसे कि कहीं अपनी जात न भूल जाऊँ। इन्हींके वाणीलोकमें मेरा आदि-निवास था। पन्ने उलटते ही पेन्सिलसे चिह्नित उसकी गली-कूचियोंका पता लग जायगा। और आज! यह देखो, आँखें खोलकर!"

सहसा एला अतीनके पाँव पकड़कर जमीनपर लोट गई। बोली—"माफ करो अन्तू, मुझे माफ करो।"

"तुम्हें माफ करनेकी इसमें कौनसी बात है, एली? भगवान अगर हैं और उनकी असीम दया अगर है, तो वे मुझे माफ करेंगे।"

"जब तुम्हें जानती न थी, तब तुम्हें इस रास्तेमें लाकर खड़ा किया है मैंने।"

अतीन हँसकर कहने लगा—"अपने ही पागलपनकी फुल-स्टीमसे इस कुजगह आ पहुँचा हूँ, इतनी ख्याति भी न दोगी मुझे? मुझे नाबालिगोंकी श्रेणीमें रखकर अभिभावक-पना दिखलाओगी, यह मुझसे न सहा जायगा, पहलेसे कहे देता हूँ। इससे तो अच्छा है मंचसे उतर आओ, मेरे मुँहकी ओर देखकर कहो—आओ आओ पिया, आधे आँचलपर आ बैठो।"

"सम्भव है कि ऐसा ही कहती, पर आज तुम इस तरह पागल कैसे हो उठे?"

"पागल न होऊँ? कहा न तुमने, अपने भुज-मृणालके जोरसे तुमने मुझे रास्तेपर निकाला है!"

"सच बात कहती हूँ तो गुस्सा क्यों होते हो?"

"सच बात हुई? मैं तो छिटककर आ पड़ा हूँ रास्तेपर अपने हृदयावेगसे, तुम तो निमित्त मात्र हो। और-किसी श्रेणीकी महिलाका निमित्त पाता, तो अब तक गोरा-काला-सम्मिलन क्लबमें ब्रिज खेलता दिखाई देता, घुड़दौड़के मैदानमें गवर्नरके बक्सकी ओर स्वर्गारोहण-पर्वकी साधना करता। अगर साबित हो जाय कि मैं मूढ़ हूं, तो शानके साथ कहूँगा कि मूढ़ता स्वयं मेरी ही है, जिसको कि भगवद्दत्त प्रतिभा कहते हैं।"

"अन्तू, दुहाई है तुम्हारी, अब तुम फालतू बातें मत बको। तुम्हारी जीविकाको मैंने ही बहा दिया है, इस दुःखको मैं कभी भूल नहीं सकती। मैं देख रही हूँ, तुम्हारे जीवनकी जड़ उखड़ गई है।"

"इतनी देरमें अब हुआ है उस नारीका प्रकाश, जो वास्तविक है। इतने ही में पकड़ाई दे जाती हो, देशोद्धारके रंगमंचपर तुम रोमान्टिक हो। जिस गृहस्थीमें फूलकी थालीमें दूध-भात-साग-तरकारी परोसी जाती है, उसीके केन्द्रमें बैठी हो तुम बीजना हाथमें लिये। जहाँ राजनैतिक लट्ठका बोलबाला है, वहाँ तुम बिखरे हुए बाल और लाल-लाल आँखोंसे आ पड़ती हो अप्रकृतिस्थ अवस्थाकी झोंकमें, सहजबुद्धिसे नहीं।"

"इतनी बातें भी तुम्हें कहनी आती हैं, अन्तू, तुमसे औरतें भी हार मान जायँगी।"

"औरतोंको बातें करना भी आता है क्या! वे तो सिर्फ बका करती हैं। बातोंके भयंकर तूफानसे सनातन मूढ़ताकी भीत तोड़नेके लिए किसी दिन मनमें आँधीके बादल जम उठे थे। उस मूढ़तापर ही तुम अपनी जातिकी तरफसे जयस्तम्भ चुनने चली हो शारीरिक बलपर।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे समझा दो, मेरी भूलसे तुमने भूल क्यों की? क्यों तुमने जीविका-वर्जनका दुःख अंगीकार किया?"

"वह तो मेरी व्यंजना थी, एक रुख था, अंगरेजीमें जिसे जेस्चर कहते हैं। वह मेरी अन्तिम समयकी भाषा थी। अगर दुःखको न अंगीकार करता, तो मुँह मोड़कर चली जातीं; किसी भी तरह समझतीं ही नहीं कि मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ। उस बातको मजाकमें उड़ाकर यह मत कहो कि वह देशका प्रेम था!"

"देश क्या इसमें नहीं है, अन्तू?"

"देशकी साधना और तुम्हारी साधना एक हो गई है, इसीसे देश इसमें है। किसी दिन बल-वीर्यके जोरसे योग्यता दिखाकर नारीको प्राप्त करना पड़ता था। आज उसी मरण-प्रणका मौका मिला है मुझे। उस बातको भूलकर तुच्छ जीविकाके अभावसे तुम्हें चोट पहुँची है, अन्नपूर्णा!"

"हम औरतें सांसारिक हैं। गृहस्थीकी कमियोंको नहीं सह सकतीं। मेरी एक बात तुम्हें रखनी ही होगी। मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पैतृक मकान है, और कुछ रुपये भी जमा हैं। दुहाई है तुम्हारी, बार-बार दुहाई देती हूँ, मेरी बात रखो, मुझसे रुपये लेनेमें संकोच मत करो। जानती हूँ मैं, तुम्हें उसकी सख्त जरूरत है।"

"सख्त जरूरत पड़नेपर मैट्रिकुलेशनकी नोट-बुक लिखनेसे लेकर मजदूरी तक खुली पड़ी है।"

"मैं मानती हूँ, अन्तू, मुझे अपने जोड़े हुए रुपये सब तक देशके काममें खर्च कर देने चाहिए थे। मगर रोजगार करनेकी शक्ति हम लोगोंमें कम होनेके कारण ही संचयमें हमारी अन्ध-आसक्ति होती है। डरपोक हैं हम।"

"यह तुम लोगोंकी सहजबुद्धिका उपदेश है। अभावमें स्त्रियोंका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।"

"हमारे घोंसले छोटे हैं, वहाँ छोटी-मोटी चीजें हम जमा करती रहती हैं। परन्तु वह सिर्फ जीनेके लिए ही नहीं, बल्कि प्रेमकी आवश्यकताएँ मिटानेके लिए भी। मेरा जो कुछ है, सब तुम्हारे ही लिए है—इस बातको अगर समझ सकी, तो जी जाऊँगी मैं।"

"हरगिज नहीं समझूँगा उस बातको। आज तक स्त्रियोंने सेवा ही दी है और पुरुषोंने जुगाई है जीविका। इसके विपरीत होनेसे हमारा सिर नीचा होता है। जिस चाहनाके लिए बिना संकोचके तुम्हारे सामने हाथ पसार सकता हूं, उसकी उपेक्षा करके तुमने प्रणका बाँध खड़ा किया है। उस दिन नारायणी-स्कूलका खाता लेकर तुम हिसाब मिला रही थीं। मैं पास जाकर बैठ गया, जैसे तूफानकी चोट खाकर चील जमीनपर आ पड़ती है। चोट खाया हुआ घायल मन लेकर आया था। कर्तव्यकी फालतू छाप लगी हुई चीजोंपर औरतोंकी वैसी ही अटल भक्ति होती है जैसी पंडोंके पैरोंपर यात्रीकी, उससे छुड़ा लेना असम्भव है। मुँह उठाकर देखा तक नहीं। बैठे-बैठे एकटक देखता रहा, जी चाहने लगा तुम्हारी उन सुकुमार उँगलियोंसे मेरे तन-मनपर स्पर्श-सुधा झर पड़े। तुम्हें जरा भी दरद न आया; कंजूस, इतना भी निकालकर न दे सकी। मन-ही-मन कहा, शायद और भी ज्यादा कीमत देनी पड़ेगी। किसी दिन जब फूटा सिर और खूनसे लथपथ देह लेकर जमीनपर गिर पड़ूँगा, तब उस घायल हृदयको जतनसे गोदमें उठाकर रखोगी।"

एलाकी आँखें भर आईं, बोली—"उफ्, तुमसे जीत नहीं सकती, अन्तू! इतना भी बिना दिये न ले सके? छीन क्यों नहीं लिया मेरा रजिस्टर? तुम समझ नहीं पाते, तुम्हारा ही संकोच मुझे संकुचित कर देता है। अन्तू, तुम्हारा स्वभाव एक जगह औरतोंसे मिलता है। प्रबल इच्छा रहते हुए भी, उद्दाम भावसे उसकी माँग पेश करनेमें तुम्हारी रुचि तुम्हें रोकती है।"

"वंशगत धारणा है यह, बचपनसे रक्त-मांसमें समा चुकी है। बराबर सोचता आया हूँ, स्त्रियोंके तन-मनमें एक शुचिताकी मर्यादा मौजूद है, उनके शरीरके सम्मानकी सशंकित-चित्तसे रक्षा करना हमारा वंश-परम्परागत अभ्यास है। मेरे कुंठित मनको जरा भी प्रश्रय देनेके लिए तुम्हारा मन अगर कभी भी पसीजे, तो मेरी तरफसे भिक्षा माँगनेकी राह न देखा करो। मैंने सीखा नहीं जो उस तरह माँगना। भूखकी सीमा नहीं, पर इससे पेटू नहीं बन सकता; मेरी प्रकृतिमें यह बात है ही नहीं।"

एला अतीनके पास और-भी सटकर बैठ गई, अतीनका सिर अपनी छातीसे लगाकर उसने अपना सिर भी झुका लिया। बीच-बीचमें आहिस्तेसे उसके बालोंमें उँगलियां फेरने लगी। कुछ देर बाद अतीनने सिर उठाया, और एलाके हाथ अपनी मुट्ठीमें दबा लिये। कहने लगा—"जिस दिन मुकामामें जहाजपर सवार हुआ था, उस दिन भाग्यदेवी पितामहीने अपने अदृश्य हाथोंसे जो मेरे कान मल दिये थे, उसे मैं समझ नहीं सका। उसके बादसे ही मेरा मन अपनी स्मृतिके आकाशमें केवल आकाश-कुसुम ही चयन करता फिरता है। उस दिनकी बात तुम्हारे लिए पुरानी हो गई क्या?"

"जरा भी नहीं।"

"तो सुनो। नौकर मेरा भारी असबाब नीचेके डेकसे लुढ़काकर ले गया था। मेरे पास रह गया था सिर्फ एक चमड़ेका सूट-केस। मैं कुलीके लिए इधर-उधर ताक रहा था। इतनेमें निहायत भले-मानसकी तरह सहसा तुमने पास आकर पूछा, 'कुली चाहते हैं, क्या जरूरत है, मैं लिये चलती हूँ।'—'हें-हें, करती क्या हैं' कहते-कहते ही तुमने उठा लिया उसे। मेरी विपत्ति देखकर फिर तुम बोलीं, 'संकोच मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता हो तो एक काम कीजिये, मेरा बक्स वह पड़ा है, आप उठा लीजिये, दोनों ऋणसे उऋण हो जायँगे।'—उठाना पड़ा मुझे। मेरे सूट-केससे सात-गुना भारी होगा तुम्हारा बक्स। हैंडिल पकड़कर दाहने-बायें हाथ बदलते हुए किसी कदर डगमगाता हुआ थर्ड-क्लास डब्बे तक पहुँचा और बक्स भीतर रखा। मेरा रेशमी कुरता पसीनेसे तर हो गया और तेजीसे साँस चलने लगी, तुम्हारे चेहरेपर था निस्तब्ध अट्टहास्य। हो सकता है कि करुणा कहीं किसी जगह छुपी थी और उसे प्रकट करना तुमने अकर्तव्य समझा हो। उस दिन मुझे आदमी बनानेकी महान जिम्मेवारी शायद तुम्हारे ही हाथमें थी।"

"छि-छि, मत कहो, मत कहो, सोचते हुए भी शरम आती है। क्या थी तब, कैसी बेवकूफ, कैसी विचित्र! तब तुम अपनी हँसी दबाये रखते थे, इसीसे मैं इतनी सिर चढ़ गई थी। तुमसे सहा कैसे जाता था? स्त्रियोंके बुद्धि होनेकी क्या कोई जरूरत ही नहीं?"

"हो चाहे न हो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। उस दिन जिस परिवेष्टनमें तुम मुझे दिखाई दी थीं, वह तो हायर मैथमैटिक्स न था, न लॉजिक था। वह था मोह। शंकराचार्य जैसे महामल्ल भी उसपर मुद्गर मारकर कहींसे उसे दचका न सके। तब शाम हो रही थी, आकाशमें क्षणिक मेघ अपनी नश्वर विभूति दिखानेमें तन्मय थे। गंगाका पानी लाल आभा लिये लहरें ले रहा था। उस दिनकी वह छरहरी चंचल शीघ्रगामी देह उस रंगीन प्रकाशकी भूमिकामें हमेशाके लिए मेरे हृदयमें अंकित होकर बस गई। क्या हुआ फिर? तुम्हारी बुलाहट गूँज उठी कानोंमें। मगर अब आ पहुँचा हूँ कहाँ? तुमसे कितनी दूर? तुम भी क्या जानती हो उसका सारा हाल?"

"मुझे जानने क्यों नहीं देते, अन्तू?"

"मनाही सुननी चाहिए। सिर्फ यही क्या? क्या होगा सब बातें कहकर?—उजेला घट गया है—आओ, और भी पास आ-जाओ। मेरी आँखें आज तुम्हारे छुट्टीके दरबारमें आई हैं। सिर्फ एक तुम्हारे पास ही मेरी छुट्टी है। बहुत ही छोटा है उसका घेरा, सोनेके पानीसे रंगे हुए फ्रेमके समान। उसीमें तसवीरको मढ़वा क्यों न लूँ? ये जो तुम्हारे दो-चार अशिष्ट बाल बिखरकर आँखोंके ऊपर आ पड़े हैं, फुरतीले हाथोंसे जिन्हें उठा-उठा देती हो; काली किनारीकी टसरकी साड़ी, कंधेपर ब्रोच नदारत, चारों ओरका दिनका प्रकाश डूब रहा है अन्तिम अस्पष्टतामें,—यह जो देखा, यही आश्चर्यजनक सत्य है। इसके मानी क्या, किसीको समझाकर कह नहीं सकता—किसी एक अद्वितीय कविके हाथ लगनेके कारण ही इसके अव्यक्त माधुर्यमें इतना गहरा विषाद भरा है। इस छोटी-सी अपूर्व सुन्दर परिपूर्णताको बड़े नाम और बड़ी छायावाली विकृति चारों ओरसे भृकुटि ताने घेरे हुए है।"

"क्या कह रहे हो, अन्तू!"

"बहुत-सा झूठ। याद है, मजूरोंकी बस्तीमें मुझे घर लेनेके लिए कहा था। तुम्हारे मनमें तो था मेरे वंशके अभिमानको धूलमें मिला देना; पर तुम्हारे उस सुमहत् अध्यवसायमें मुझे मजा आने लगा। डेमोक्रैटिक पिकनिक शुरू कर दी। गाड़ीवानोंके मुहल्लेमें घर लेकर रहने लगा। उनसे भाई-चाचाका नाता जोड़कर चल पड़ा उनके बैल-भैंसोंके साथ-साथ। मगर उनसे भी छिपा न रहा, और न मुझसे ही, कि भट्टी चढ़नेपर इन रिश्तोंकी छापका टिकना मुश्किल है। अवश्य ही ऐसे महान पुरुष मौजूद होंगे, जिनका स्वर सभी बाजोंके साथ एक-सा बजा करता है, यहाँ तक कि धुनकीपर भी। हम उनकी नकल करते हैं तो सुर नहीं मिलता। देखा नहीं तुमने, अपने मुहल्लेके ईसाके शिष्योंको, ब्रादर कहके चाहे जिसको छातीसे लगा लेना उनके अनुष्ठानका एक अंग है। यह तो महात्मा ईसाका मजाक उड़ाना है।"

"क्या हुआ है तुम्हें, अन्तू! किस क्षोभमें आकर तुम ये सब बातें कह रहे हो? तुम क्या यह कहना चाहते हो कि भीतरसे अरुचिको निकाल देनेपर भी कर्तव्यको कर्तव्य नहीं माना जा सकता?"

"रुचिकी बात नहीं, ऐली, स्वभावकी बात है। अत्यन्त अरुचि होनेपर भी, श्रीकृष्णने अर्जुनसे वीरका कर्तव्य करनेके लिए ही कहा था; कुरुक्षेत्रमें खेती करनेके लिए एग्रिकलचरल इकॉनॉमिक्सकी चर्चा करनेको नहीं कहा था।"

"तुम होते तो श्रीकृष्ण क्या कहते, अन्तू?"

"बहुत दिन पहले ही उन्होंने मेरे कानमें कह रखा है। मेरे कानमें कही हुई उनकी बातको मुँहसे कहनेका भार था तुमपर। गुरुजीने सिर्फ इस बातको कहनेके लिए कि बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी पक्षपातके सभीका एक ही कर्तव्य है, कान पकड़कर इतनी कृत्रिमता पैदा की है। मैं तुम्हारे मुँहपर ही कहता हूँ, उनके जिस मुहल्लेमें अहंकारके साथ नम्रता दिखाने जाती हो, वहाँ तुम्हारे लिए भी जगह नहीं। देवी! सभी देवी हो तुम लोग! नकली देवीकी कृत्रिम पोशाक है, स्त्रियोंकी और-और पोशाकोंकी तरह, पुरुष दरजीकी दूकानपर बनी हुई।"

"देखो अन्तू, आज तक मैं यह नहीं समझ सकी कि जो मार्ग तुम्हारा नहीं है, उस मार्गसे क्यों तुम जोर लगाकर लौट नहीं आते?"

"तो कह दूँ। इस मार्गपर कदम रखनेसे पहले बहुत-सी बातें मैं जानता न था, बहुत-सी बातें मैंने सोची तक नहीं। एक-एक करके बहुतसे लड़कोंको मैंने अपने आस-पास पाया, जो उमरमें छोटे न होते तो उनके पैरोंकी धूल मैं अपने माथेसे लगाता। मेरी आँखोंके सामने उन लोगोंने कितना देखा है, कितना सहा है, कितना अपमान हुआ है उनका, ये सब असह्य भयंकर बातें कहीं भी प्रगट न होंगी। इसीकी असह्य व्यथाने मुझे पागल बना दिया था। बार-बार मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि भयसे हार न मानूँगा, कष्टोंसे हार न मानूँगा, पत्थरकी दीवारसे सर टकरा-टकराकर मर जाऊँगा, तो भी चुटकी बजा-बजाकर उपेक्षा करूँगा उस हृदयहीन दीवारकी।"

"उसके बाद फिर क्या तुम्हारी राय बदल गई?"

"सुनो मेरी बात। शक्तिशालीके विरुद्ध जो लड़ता है, वह उपाय-विहीन होनेपर भी उसी शक्तिशालीके सामने खड़ा होता है; उससे उसके सम्मानकी रक्षा होती है। उस सम्मानके अधिकारकी मैंने कल्पना की थी। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, आँखोंके सामने देखा गया—असाधारण उच्च विचारके लड़के धीरे-धीरे मनुष्यत्व खो रहे हैं। इतना बड़ा नुकसान और कुछ नहीं हो सकता। मैं निश्चित जानता था कि मेरी बात हँसीमें उड़ा देंगे, व्यंग्य करेंगे, फिर भी उन लोगोंसे कहा मैंने, अन्यायमें अन्यायकारीके समान हो जाना भी हमारे लिए हार ही है—पराजयके पहले, मरनेके पहले हमें साबित कर जाना होगा कि हम उनसे मानव-धर्ममें बड़े हैं, नहीं तो इतने बड़े जबरदस्त बलिष्ठके साथ हारका खेल खेलना ही क्यों? निर्बुद्धिताके आत्मघातके लिए?—मेरी बातको उनमें से किसीने समझा ही नहीं, सो बात नहीं। मगर कितनोंने?"

"तभी उन लोगोंको तुमने छोड़ क्यों नहीं दिया?"

"कैसे छोड़ता? तब चारों तरफसे दण्डके निष्ठुर जालमें जकड़ गये थे जो। उनका इतिहास मैंने देखा, समझ गया उनकी मर्मान्तिक वेदनाको,—इसीलिए चाहे क्रोध करूँ या घृणा, फिर भी विपत्तिमें फँसे-हुओंको छोड़ न सका। परन्तु एक बात इस अनुभवसे पूरी तरह समझमें आ गई कि शारीरिक बलमें हम जिनके कतई बराबरीके नहीं हैं, उनके साथ देहके बूतेपर मल्लयुद्ध करनेकी कोशिश करनेसे हमारी दुर्गति शोचनीय हो उठेगी। रोग सभी शरीरके लिए दुखदायक होता है; पर क्षीण शरीरके लिए तो वह घातक है। मनुष्यत्वका अपमान करके भी कुछ दिनके लिए जय-डंका बजाते हुए वे ही चल सकते हैं, जिनके बाहुबल हो; मगर हम नहीं चल सकते। इससे तो हम नीचेसे ऊपर तक कलंकसे काले होकर पराभवकी अन्तिम सीमामें बदनामीके अँधेरेमें समा जायँगे।"

"कुछ दिनोंसे इस भयंकर दुःखान्तका चेहरा मेरे सामने भी स्पष्ट होता जाता है, अन्तू! गौरवका आह्वान पाकर मैदानमें उतरे थे, मगर अब तो दिनों-दिन लज्जा ही बढ़ती जाती है। अब हम क्या कर सकते हैं, बताओ मुझे।"

"सभी आदमियोंके सामने ही धर्मक्षेत्रमें धर्म-युद्ध है, और वहाँ है मृतो-वापि-तेन-लोकत्रयं-जितम्। परन्तु हम कुछ आदमियोंके लिए इस यात्रामें उस क्षेत्रका मार्ग बन्द है। यहाँके कर्मफल हमें यहीं बेबाक चुका जाना पड़ेगा।"

"सब समझ रही हूँ, फिर भी अन्तू, अपने देशके कामके बारेमें कुछ दिनोंसे तुम ऐसे धिक्कारके साथ बात करते हो कि मुझे चोट पहुँचती है।"

"उसका कारण क्या है, इस बातको अभी न भी कहें तो कोई हर्ज नहीं, उसका समय बीत चुका।"

"फिर भी कहो।"

"मैं आज स्वीकार करूँगा तुम्हारे सामने, तुम लोग जिसे पेट्रियट या देशभक्त कहते हो, मैं वह देशभक्त नहीं हूँ। मैं पेट्रियटिज्मसे भी बड़ा है, उसे जो लोग सर्वोच्च नहीं मानते, उनका पेट्रियटिज्म मगरकी पीठपर चढ़कर पार होनेकी नाव है। मूर्ख आचरण, नीचता, आपसमें अविश्वास, क्षमता पानेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए षड्यन्त्र, जासूसी मनोवृत्ति, ये-सब आचरण उन्हें किसी दिन कीचड़के नीचे तक घसीट ले जायँगे। यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। इस गढ़ेके भीतरकी भद्दी दुनियामें दिन-रात झूठकी जहरीली हवा चल रही है, उसमें रहकर अपने स्वभावसे उस पौरुषकी रक्षा हरगिज नहीं कर सकता, जिससे संसारमें कोई बड़ा काम किया जा सकता है।"

"अच्छा अन्तू, तुम जिसे आत्मघात कहते हो, वह क्या सिर्फ हमारे ही देशमें है?"

"यह नहीं कहता। देशकी आत्माको मारकर देशके प्राण बचाये जा सकते हैं, इस भयंकर असत्यको आजकल संसार-भरके राष्ट्रवादी पाशव गर्जनके साथ घोषित करना चाहते हैं, उसका प्रतिवाद मेरे हृदयमें असह्य आवेगसे घुमड़-घुमड़ उठता है—इस बातको शायद सच्ची भाषामें कह सकता था, सुरंगके भीतर दुबका-चोरी करके देशोद्धारकी कोशिश करनेकी अपेक्षा वह चिरकालसे चली आई बड़ी बात होती। परन्तु इस जन्ममें कहनेका समय ही नहीं मिला। मेरी वेदना इसीसे आज इतनी निष्ठुर हो उठी है।"

एलाने एक गहरी साँस ली, और बोली—"लौट आओ अन्तू!"

"अब कोई लौटनेका रास्ता ही नहीं है।"

"क्यों नहीं है?"

"कुछ और अगर जा पड़ूँ, तो वहाँ भी जिम्मेवारी है अन्त तक।"

एलाने अतीनके गलेसे लिपटकर कहा—"लौट आओ, अन्तू! इतने वर्षोंसे जिस विश्वासमें मैंने अपना घर बनाया था, उसकी भीत तुमने तोड़ दी है। आज मैं बहती हुई फूटी नावको जकड़े हुए हूँ। मुझे भी उद्धार करके लेते चलो।—इस तरह चुपकी साधे बैठे मत रहो, बोलो अन्तू, बोलो। अभी तुम हुक्म दो, मैं तोड़ दूँगी प्रण। गलती की है मैंने। मुझे माफ करो।"

"कोई चारा नहीं।"

"क्यों नहीं चारा? जरूर है।"

"तीर लक्ष्यभ्रष्ट हो सकता है, पर तूणमें वापस नहीं आ सकता।"

"मैं स्वयंवरा हूँ, मुझसे ब्याह करो अन्तू! अब और समय नष्ट मत करो—गान्धर्व-विवाह होने दो, मुझे सहधर्मिणी बनाकर ले जाओ अपने मार्गपर।"

विपत्तिका मार्ग होता तो ले जाता साथ। मगर जहाँ धर्म भ्रष्ट हुआ है, वहाँ तुम्हें सहधर्मिणी नहीं बनाना चाहता। जाने दो, जाने दो इन सब बातोंको। इस जीवनकी नाव डूबनेके बाद कुछ सत्य अब भी बाकी है। उसीकी बात सुनूँगा तुम्हारे मुँहसे।"

"तो क्या कहूँ?"

"कहो, तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

"हाँ, करती हूँ।"

"कहो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, यह बात मैं जब नहीं रहूँगा तब भी तुम्हें याद रहेगी।"

एला निरुत्तर हो चुपचाप बैठी रही, आँसू गिरने लगे उसकी आँखोंसे। बहुत देर बाद उसने रुँधे हुए गलेसे कहा—"फिर कहती हूँ, अन्तू, कुछ लो मेरे हाथसे—लो मेरे गलेके इस हारको।"

कहते हुए उसने हार उतारकर अतीनके पैरोंपर रख दिया।

"हरगिज नहीं।"

"क्यों, इतने रूठते हो?"

"हाँ, रूठता हूँ। ऐसे दिन भी थे, तब अगर देतीं तो पहन लेता गलेमें—आज दे रही हो जेबमें, गरीबीके गड्ढेमें। भीख न लूँगा तुम्हारे हाथसे।"

एला अतीनके पैरोंपर लोट गई, बोली—"बना लो, मुझे अपनी संगिनी बना लो।"

"लोभ न दिखाओ, एला! बहुत बार कह चुका हूँ, मेरा रास्ता तुम्हारा नहीं है।"

"तो वह रास्ता तुम्हारा भी नहीं है। लौटो, लौटो जल्दी।"

"रास्ता मेरा नहीं, मैं ही रास्ताका हूँ। गलेकी फाँसको गलेका गहना कोई नहीं कहता।"

"अन्तू, तुम निश्चिन्त जानते हो, तुम्हारे चले जानेके बाद मैं एक क्षण भी न जीऊँगी। तुम्हारे सिवा और कोई मेरा नहीं है, इस बातपर अगर आज सन्देह भी करो, तो एकाग्र मनसे मैं आशा करती हूँ कि मरनेके बाद उस सन्देहको निर्मूल करनेका कोई रास्ता भी कहीं होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहसा अतीन उछलकर खड़ा हो गया। तीरके समान तीक्ष्ण सीटीका शब्द सुनाई दिया दूरसे। चौंककर बोला—"चल दिया।"

एला लिपट गई उससे बोली—"और जरा ठहरो।"

"नहीं।"

"कहाँ जा रहे हो?"

"कुछ नहीं जानता।"

एला अतीनके पैरोंसे लिपट गई, बोली—"मैं तुम्हारी सेविका हूँ, तुम्हारे चरणोंकी सेविका,—मुझे छोड़े मत जाओ, छोड़े मत जाओ।"

अतीन क्षण-भर ठिठक कर खड़ा रहा। दूसरी बार सीटीकी आवाज सुनाई दी। अतीन गरजकर बोला—"छोड़ दो।"

और अपनेको छुड़ाकर चल दिया।

शामका अंधेरा बढ़ता जाता है। एला जमीनपर औंधी पड़ी है। उसका हृदय सूख गया, आँखोंमें आँसू तक नहीं। इतनेमें गम्भीर गलेकी आवाज़ सुनाई दी—"एला!"

एला चौंककर उठ बैठी। देखा, इलेक्ट्रिक टॉर्च हाथमें लिये इन्द्रनाथ सामने खड़े हैं। चटसे उठके खड़ी हो गई, बोली—"लौटा लाइये अन्तूको।"

"जाने दो उस बातको! यहाँ क्यों आईं?"

"विपत्ति सिरपर है, जानकर ही आई हूँ।"

तीव्र भर्त्सनाके स्वरमें इन्द्रनाथने कहा—"तुम्हारी विपत्तिकी बात कौन सोच रहा है? यहाँकी खबर तुमको किसने दी?"

"बटूने।"

"फिर भी समझमें न आया उसका इरादा!"

"समझनेकी बुद्धि मुझमें नहीं थी। जी हाँफने लगा था।"

"तुम्हें मार सकता, तो अभी खतम कर देता। जाओ, घर लौट जाओ। टैक्सी खड़ी है बाहर।"

—धन्यकुमार जैन

पंथी

श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'

अविराम बढ़ा चल पंथी,
मंजिल वह पड़ी दिखाई;
प्रियतमके सौख्य सदनकी
वह ध्वजा दृष्टि-पथ आई।

बाकी पथकी दुर्गमता—
लख क्यों निराश है होता?
कर नदी पार सारी तू,
खायेगा तटपर गोता?

अब अगम गम्य करना है,
बस तू हो जा प्रियतममय;
कर सके न पथ लय तेरा,
तुझमें ही हो पथका लय।

यह काल? इसे पीछे कर
मनकी अदम्य द्रुत गतिसे;
पवनोंको अनुगामी कर
बढ़ रविकी सुस्थिर मतिसे

प्रिय जोह रहा है तुझको,
वह भी तेरा दीवाना;
जा, बिलम न मगमें प्रेमी!
मिल-भेंट पुनः आ जाना।

हाँ, पुनः लौटकर आना,
फिर वही अगम पथ नाना,
है नितका आना-जाना,
प्रियपर अनुराग बढ़ाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरितमानस

(समालोचना)

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

मैंने भादोंके 'विशाल भारत' में पं० रामनरेशजी त्रिपाठीके रामचरितमानसके संस्करणकी आलोचनामें उनके पाठ और अर्थोंको अशुद्ध ठहराया था। इसपर वे जामेसे बाहर हो गये और अपनी बहुज्ञता तथा मेरी अल्पज्ञ वा अज्ञता दिखानेके अभिप्रायसे प्रयागी 'भारत' के दस कालम काले कर मुझे ही नहीं, 'विशाल भारत' के सम्पादक और पाठकोंको भी सख्त सुस्त कहा। मैंने इसकी परवा न कर उनकी उक्तियोंका खण्डन 'भारत' में ही छपा दिया। इसपर वे चुप्पी साध गये और जब 'विशाल भारत' के कार्तिक अंकमें मेरा दूसरा लेख निकला, जिसमें उनकी शंकाओंके समाधानके साथ ही और भी अशुद्धियाँ दिखाई गई थीं, तब उन्हें अपना पक्ष पुष्ट करनेकी सुध आई और फिर 'भारत' में उन्होंने अपना पुराना राग अलापा और अपने पक्षमें उन्हीं टीकाकारोंके प्रमाण देनेका दुस्साहस किया, जिनकी भूलें दिखानेके लिए उन्होंने अपनी भूमिका लिखी थी। मैंने ये प्रमाण नहीं स्वीकार किये, क्योंकि एक तो वे इन्हें अप्रामाणिक बता चुके थे और दूसरे अशुद्ध अर्थ अशुद्ध ही है, चाहे वह कोई करे।

मेरा पहला लेख निकलनेके बाद, उसे बिना देखे ही, स्वतन्त्र रूपसे बाबू भगवानदासजी हालनाने काशीके 'आज' में त्रिपाठीजीके मानसके संस्करणके पाठकी और कहीं-कहीं अर्थकी भूलें भी समालोचना रूपसे दिखाई थीं। इसपर त्रिपाठीजी हालनाजीपर ही नाराज नहीं हुए, बल्कि बाबू रामदासजी गौड़के मानसके संस्करणकी भूलें बताने लगे। इसपर एक ओर त्रिपाठीजी और दूसरी ओर हालनाजी तथा गौड़जीमें उत्तर-प्रत्युत्तर हुए। हालनाजीने अपनी पहली लेखमाला उन महानुभावोंके पास इस प्रार्थना-सहित भेज दी थी, जिन्होंने त्रिपाठीजीको सर्टिफिकेट दिये थे कि इसपर सम्मति दें और यदि समालोचककी भूलें हों, तो बतायें। गौड़जीने सर्टिफिकेट दिया था और महात्मा गांधीने भी। इसलिए गौड़जीको जब अपनी भूल मालूम हुई, तब उन्होंने गांधीजीको लिखा कि मुझसे भूल हो गई है, उस संस्करणमें त्रुटियाँ हैं। गांधीजीकी ओरसे उन्हें लिखा गया कि 'बापू तो हिन्दीके पंडित नहीं हैं, पर आपने बिना पढ़े क्यों प्रशंसा कर दी?' हालनाजीके पास पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी, रा०ब० लाला सीतारामजी (अब स्वर्गस्थ), पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० रामचन्द्र शुक्ल आदि दस सज्जनोंके उत्तर आये और सबने हालनाजीकी सम्मतिका समर्थन किया, इसलिए आवश्यक है कि इस समालोचनाका उपसंहार कर दिया जाय।

मैंने त्रिपाठीजीके संस्करणमें दो दोष बतलाये थे, और दोनों दोषोंका अस्तित्व सम्मतिदाताओंने स्वीकार किया है। मेरा कहना था—"त्रिपाठीजीकी टीकासे कविताके गुणोंका कोई परिचय नहीं मिलता, क्योंकि स्कूली लड़कोंके लिए लिखे 'लफ्ज़ी माने' की तरह अर्थ देनेके सिवा उन्होंने बहुत-कुछ नहीं किया और कहीं-कहीं तो महत्त्वपूर्ण शब्दोंके अर्थ ही नहीं दिये और दिये भी तो अशुद्ध।" इसके समर्थनमें मैंने उनके अशुद्ध अर्थोंके कई प्रमाण भी दिये थे। यद्यपि मुझसे किसी प्रकारका सहयोग अथवा परामर्श किये बिना ही हालनाजीने इतना परिश्रम किया, पर उससे उन्होंने मेरा कार्य बहुत ही हल्का कर दिया। इसके साथ ही पं० रामचन्द्र शुक्लने जो सम्मति दी है, उससे त्रिपाठीजीकी विद्वत्ताकी अट्टालिका ऐसी गिर गई, जैसे अन्धड़से कोई अरण्ड वृक्ष गिरता है। इसलिए मैं हालनाजीके साथ ही शुक्लजीको भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने निःसंकोच अपनी सम्मति इन शब्दोंमें दी है—"पंडित रामनरेश त्रिपाठीजीने 'रामचरित-मानस' का जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण निकाला है, उसे देखकर मैं भी अत्यन्त खिन्न हुआ। मुझे तो उसका उद्देश्य ही समझमें नहीं आया। कुछ दिन हुए, लाला सीताराम बी० ए० ने राजपुरवाली प्रतिका एक संस्करण छापा था, जिसकी भूमिकामें उन्होंने गोस्वामीजीके सनाढ्य होनेका अनुमान प्रगट किया था। बस, इसी बातको अनेक प्रकारकी क्लिष्ट कल्पनाओंमें लपेटकर वे अपनी एक नई तहकीकातके रूपमें लाये हैं। यह तो उनकी भूमिकाका रहस्य हुआ। और टीकाओंकी सदोषताको भी उन्होंने अपने इस सटीक संस्करणके निकालनेका एक कारण बताया है। पर मैंने जब उनकी की हुई टीका इधर-उधर कुछ देखी, तो जगह-जगह अशुद्ध, अपूर्ण और असंगत अर्थ मिलने लगे। मैंने खिन्न होकर पुस्तक रख दी।"

त्रिपाठीजीने अपनी विद्वत्ताकी धाक जमानेके लिए अंट-संट अर्थ ही नहीं किये थे, बल्कि बाप, नीक, नायक, रिस, खाले, पाले, ढोल, रजायसु जैसे सर्वथा हिन्दी शब्दोंको अरबी-फारसी बताकर अपने भाषा-ज्ञानका भी परिचय दे डाला था। मैंने इन और ऐसे ही अन्य शब्दोंकी निरुक्ति दिल्लीके 'हिन्दुस्तान' पत्रके गत ११ और १८ नवम्बरके अंकोंमें कर दी थी। अब सब प्रकारसे त्रिपाठीजीकी विद्वत्ताकी बानगी देख ली गई।

अन्तमें सम्मतिदाताओंसे यह निवेदन करना है कि कृपाकर पुस्तककी परीक्षा किये बिना सम्मति देनेका कष्ट न किया करें, क्योंकि इससे लोग धोखेमें पड़ते हैं, जैसे इस मामलेमें पड़ गये हैं। इससे पुस्तक-लेखक और प्रकाशक, जो केवल प्रशंसा ही चाहते हैं, गुण-दोष-विवेचन नहीं, असन्तुष्ट हो जाते हैं सही; पर उनके असन्तोषकी परवा विद्वानोंको न करनी चाहिए। स्व० अर्जुनदास केड़ियाकी अलंकार-सम्बन्धी पुस्तकपर प्रकाशनके पहले ही मेरी सम्मति और सम्मति ही क्यों, मेरे द्वारा प्रशंसा-प्राप्तिका प्रयत्न किया गया था। मैंने इससे इनकार किया, इसलिए प्रकाशनके बाद भी समालोचनार्थ मेरे पास वह नहीं भेजी गई। इससे मेरी कोई हानि नहीं हुई, और जो लोग मेरी सम्मतिका कुछ मूल्य समझते हैं, वे धोखेसे बच गये। आशा है, विद्वज्जन इस आवश्यक निवेदनपर ध्यान देंगे। त्रिपाठीजीसे मेरा कहना है कि बहुत गहरे पानीमें जानेसे डूबनेका ऐसा ही डर रहता है। सावधान!

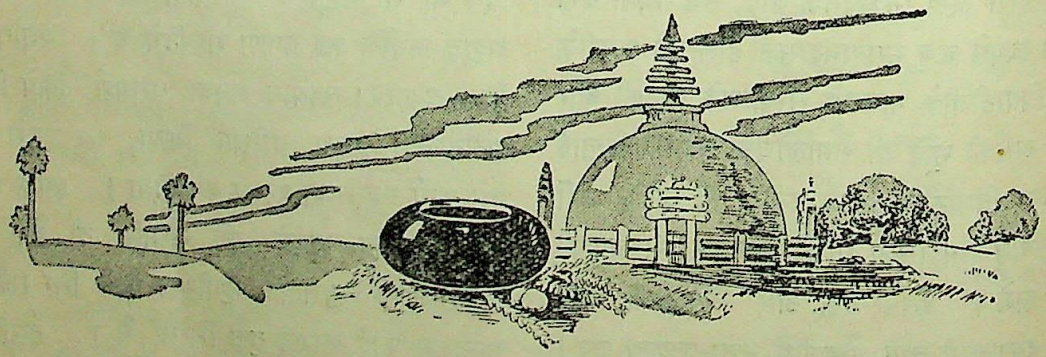

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे तीर्थ

बनारसीदास चतुर्वेदी

एक युग बीत गया। हम लोग—'सर्वेण्ट आफ इण्डिया' के सम्पादक श्री सदाशिव गोविन्द वझे और मैं—टांगानिक्याकी यात्रा कर रहे थे। मोशी नामक स्थानमें ठहरे हुए थे। प्रातःकाल होते ही उठा। कमरेसे बाहर निकलते ही वह दृश्य देखा, जिसे ज़िन्दगी-भर नहीं भूल सकता। सामने ही १९ हज़ार फीट ऊँचे हिममंडित किलीमंजारोके दर्शन हुए। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उक्त पर्वतकी चोटीपर चाँदीका मुकुट चढ़ा दिया गया हो। तुरन्त ही मैंने मि० वझेको जगाया। मुझे डर था कि कहीं बादल आकर उस सुन्दर दृश्यको ढक न लें। मि० वझे आये, और उन्होंने भी उस मनोहर दृश्यको देखा और सराहा। कई मिनट तक हम लोग टकटकी लगाकर देखते रहे। वह पर्वतश्रेणी मोशीसे ४० मील दूर थी; पर अत्यन्त निकट ही प्रतीत होती थी। मैंने मि० वझेसे कहा—"चाहे कुछ भी हो, अगर और किसी कामके लिए नहीं, तो किलीमंजारोके दर्शन करनेके लिए ही एक बार अफ्रिकाकी यात्रा फिर ज़रूर करूँगा।" बारह वर्ष ख़तम हो गये; पर अफ्रिका-यात्राका अवसर अभी तक नहीं आया। पर आँख बन्दकर आज भी उस दृश्यका आनन्द ले सकता हूँ। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकारकी यात्राएँ पूर्व संचित पुण्योंका परिणाम हुआ करती हैं। साधना करनेपर ही उनका सौभाग्यपूर्ण अवसर आता है।

"वृन्दावनमें मेरा मन नहीं लगता। अकसर मलेरिया ज्वरसे बीमार रहता हूँ। मुश्किल तो यह है कि यहाँ बातचीत करनेके लिए अपने मनके आदमी भी नहीं मिलते; पर इन कष्टोंकी क्षतिपूर्ति एक चीज़से हो जाती है। क्या आप उसका अनुमान कर सकते हैं?" चाय पीते हुए आचार्य गिडवानीजीने पूछा। मैंने उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो अन्दाज़ नहीं लगा सकता।" गिडवानीजीने कहा—"अच्छा तो कल प्रातःकालमें तुम्हें वह चीज़ दिखलाऊँगा।" दूसरे दिन सवेरे ही प्रेम-महाविद्यालयके निकट ही हम लोग जमुनाकी रेतीमें टहलनेके लिए गये। ज्यों ही सूर्योदय हुआ, गिडवानीजीने कहा—"बस, वृन्दावनके सूर्योदयका दृश्य ही मेरी तमाम तक़लीफ़ोंको दूर कर देता है।" उस समय मैंने समझा कि प्राकृतिक सौन्दर्य निराश अथवा आहत हृदयको किस प्रकार सान्त्वना दे सकता है।

एक दिन गिडवानीजीने कहा—"नाभा-जेलकी कालकोठरीमें जब मैंने महाभारतका वह सर्ग पढ़ा, जिसमें पाण्डवोंकी आर्यावर्त-यात्राका वर्णन था, तो मेरे मनमें यह आकांक्षा उत्पन्न हुई कि मैं भी एक क्षुद्र विद्यार्थीकी हैसियतसे (सुधारक या आन्दोलककी हैसियतसे नहीं) भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी यात्रा करूँ और नवजीवन-संचारक संस्थाओंमें मातृ-भूमिके सन्देशको सुनूँ। एक-एक महीना देशकी मुख्य-मुख्य विभूतियोंकी सेवामें रहूँ—एक महीना डाक्टर सर ब्रजेन्द्रनाथ शीलके चरणोंमें मैसूरमें, एक महीना माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके साथ भारत-सेवक-समिति पूनामें, एक महीना साधु टी० एल० वास्वानीके साथ।"

दुःखकी बात है कि हृद्गति बन्द हो जानेसे आचार्य गिडवानीका देहान्त हो गया और उनकी यह आकांक्षा उन्हींके साथ चली गई! काशी-विद्यापीठके पदवी-दान-समारोहके अवसरपर उन्होंने कहा था कि हमारे नवयुवकोंकी अपनी शिक्षा पूर्ण करनेके लिए भारत-भरकी यात्रा करनी चाहिए और उन विद्यार्थियोंको तो, जो जीवन-संग्राममें महत्त्वपूर्ण भाग लेना चाहते हैं, विशाल भारतकी भी यात्रा करनी चाहिए। विद्यार्थियोंका एक दल लेकर वे पैदल यात्रा भी करना चाहते थे; पर उनके मनकी उमंगें उन्हींके साथ चली गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य प्रगतिशील है। यात्राके लिए उसके हृदयमें स्वाभाविक आकर्षण होता है। यात्रा-सम्बन्धी लेख तथा ग्रन्थ इसीलिए मनोरंजक होते हैं। अभी उस दिन हम काउण्ट कैसरलिंगकी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'The travel diary of a philosopher' (एक दार्शनिककी यात्राकी डायरी) पढ़ रहे थे। इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कि यह संसार-यात्रा उन्होंने क्यों की, उन्होंने लिखा है—"मेरी इस लम्बी यात्राका उद्देश्य वही था, जिसकी प्रेरणासे लोग मठोंमें जाकर एकान्तवास किया करते हैं, यानी अपने-आपको पहचाननेके लिए, आत्म-ज्ञानके लिए।" हम दार्शनिक नहीं, इसलिए इस महान उद्देश्यको लेकर यात्रा करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। हम तो अपनी शिक्षाके लिए ही यात्रा करना चाहते हैं।

प्रत्येक आदमीके आराध्य-देवता और तीर्थ-स्थान भिन्न-भिन्न होते हैं, और वे उसकी श्रद्धापर निर्भर करते हैं, और सबसे बड़ा दुर्भाग्य है अश्रद्धालु आदमियोंके साथ यात्रा करना। जिस दिन बुद्धगयाकी यात्रा हमें एक श्रद्धाविहीन वकील साहबकी मोटरमें करनी पड़ी, उस दिन हमें यह अनुभव हुआ कि तीर्थ-यात्राका सारा वायुमंडल एक छोटी-सी ग़लतीसे ख़राब हो जाता है। वकील साहबकी उदारताके लिए हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं; पर उनमें भगवान गौतम बुद्धके प्रति वह अनन्य श्रद्धा नहीं थी, जिसे लेकर हम वहाँ गये थे। वे वहाँके महन्तके वकील थे, और उन्होंने एक पुस्तिका भी महन्त साहबके पक्षमें तथा बौद्ध दृष्टिकोणके विरोधमें लिखी थी।

हम जिन-जिन तीर्थ-स्थानोंकी यात्रा करना चाहते हैं, उन्हें यहाँ लिख देना अप्रासंगिक न होगा। यदि १०८ महीने (नौ वर्ष) बीत जानेपर भी हम दिल खोलकर 'विशाल भारत'-परिवारसे बात न कर सकें, तो हमारे समान अभागा और कौन होगा? और जो लोग इस परिवारके नहीं हैं, उनके लिए यह लेख लिखा भी नहीं गया!

प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शनके लिए

(१) कैलाश-यात्रा।
(२) गंगोत्री तथा गंगा-तटके मुख्य-मुख्य स्थानोंकी यात्रा।
(३) नर्मदा-तटके सुन्दर दृश्य।
(४) अफ्रिकाके जंगलों तथा किलीमंजारोकी यात्रा।
(५) नील नदीके दो-चार मुख्य-मुख्य स्थानोंकी यात्रा।
(६) दार्जिलिंगमें सूर्योदयका दृश्य।
(७) फार्बिसगंजसे गौरीशंकर तथा कंचनजंघाके दृश्य।
(८) मसूरीसे शिमलाकी यात्रा।
(९) बेतवा-तटके दृश्य।
(१०) लुम्बिनी (भगवान गौतम बुद्धका जन्मस्थान) और पावापुरी (भगवान महावीरका निर्वाण-स्थल) की यात्रा।

इनके सिवा और भी कितने ही स्थान हैं; पर दरिद्रके मनोरथोंकी तरह उन्हें छिपाये रखना ही ठीक होगा।

सत्संगके लिए

(१) एक महीना सेगाँवमें गांधीजीकी सेवामें।
(२) एक महीना पूज्य द्विवेदीजीके चरणोंके निकट दौलतपुरमें।*

---

* पूज्य द्विवेदीजीकी सेवामें कुछ दिनों तक रहनेका मेरा विचार बहुत पुराना है। जब मैं घरपर बेकार बैठा हुआ था, उन दिनों संकोचवश मैं श्रद्धेय गणेशजीसे इस विषयमें किसी प्रकारकी सहायता न माँग सका, और जब काम मिल गया तो अवकाश मिलना अत्यन्त कठिन हो गया। मैंने जब 'विशाल भारत' में दौलतपुर-यात्राका वृत्तान्त लिखा, तो उसे गणेशजीने बहुत पसन्द किया और 'प्रताप'में उसकी दिल खोलकर दाद दी। इसी सिलसिलेमें मैंने गणेशजीको अपने उपर्युक्त संकोचका हाल लिख भेजा। उन्होंने अपने ४-२०-३० के पत्रमें मुझे लिखा था—"आपने द्विवेदीजीके पत्रकी नक़ल भेजकर मेरी धारणाको और भी दृढ़ कर दिया। मैं उन्हें बहुत पहलेसे बहुत कोमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) एक महीना बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके ग्रामपर।
(४) एक महीना चिरगाँवमें गुप्तजीके सत्संगमें।
(५) एक महीना माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके निकट।
(६) एक महीना सम्पादकाचार्य चिन्तामणिजीके अनुभव सुनते हुए।
(७) एक महीना भारत-सेवक-समितिके प्रधान-कार्यालयपर पूनामें।
(८) एक महीना 'सर्वेण्ट आफ पीपुल सोसाइटी'के कार्यालयपर लाहौरमें।
(९) एक महीना गुरुकुल काँगड़ी।
(१०) एक महीना शान्ति-निकेतन।
(११) एक महीना अड्यार।
(१२) एक महीना 'अंजुमनतरक्क़ी' उर्दूके संचालक मौलवी अब्दुल हक़के निकट।
(१३) एक महीना 'जामिया मिलिया' में।
(१४) एक महीना दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभाके साथ।
(१५) एक महीना भारतके कुष्ठाश्रमोंका निरीक्षण करते हुए।
(१६) एक महीना सारनाथमें।

कल्पनामें तो कितने ही स्थानोंकी यात्रा किया करता हूँ। भला, उन स्थानोंको तीर्थ क्यों न समझूँ, जहाँ अराजकवादके महान आचार्य प्रिंस क्रोपाटकिनका जन्म हुआ था और जहाँ उनकी मृत्यु हुई थी? एमर्सनकी, जिनके विचार पिछले दस वर्षोंसे मुझे निरन्तर प्रभावित करते रहे हैं, समाधि भी ज़ियारतकी जगह है। और उस बाल्डेन तालाबको भी मानसिक दृष्टिसे देखा करता हूँ, जहाँ फक्कड़-शिरोमणि थोरो ढाई वर्ष रहे थे। जहाँ अंगरेज़ ऋषि कार्पेण्टरका आश्रम था, वह स्थान मिलथार्प भी आँखोंमें बसा हुआ है। महात्मा गांधीके दक्षिण-अफ्रिकाके फीनिक्स-आश्रमकी यात्रा कल्पनाके वायुयान द्वारा अनेक बार कर चुका हूँ।

एमर्सनने एक स्थानपर लिखा था—"यदि मुझे किसी ऐसे कुतुबनुमेका पता लग जाय, जिसकी सुई ऐसे देशों तथा मकानोंकी ओर इशारा कर सके, जहाँ शक्तिशाली महान व्यक्तियोंका निवास-स्थान है, तो मैं तुरन्त अपना सब माल-असबाब, ज़मीन-जायदाद बेचकर उस कुतुबनुमेको ख़रीद लूँ और आज ही उन देशोंकी यात्रा प्रारम्भ कर दूँ।" पर महान व्यक्तियोंके देशों तथा स्थानोंका पता लग जानेपर भी क्या वहाँके लिए चल पड़ना आसान है? एमर्सनके लिए भले ही यह सरल रहा हो; पर साधनहीन भारग्रस्त आदमियोंके लिए तो ये यात्राएँ मनके लड्डुओंसे अधिक महत्त्व नहीं रखतीं।

अभी उस दिन सुप्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ डा० कज़िन्ससे इस प्रकारकी तीर्थ-यात्राओंकी बातचीत हो रही थी। मैंने कहा—"मैं उस स्थानको, जहाँ आयरिश कवि

भावनाओंका व्यक्ति मानता हूँ। वे छोटी-सी-छोटी अनुकम्पाको नहीं भूलते और अपने निकटके आदमियोंको इतना चाहते हैं कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। ऊपरसे उनमें इतनी शुष्कता दिखाई देती है कि दूरका आदमी उनसे सदा घबड़ाया करता है। आपने वह अवसर बुरा छोड़ा। दो-चार सौ रुपयेकी तो कोई बात नहीं है। अब भी मैं तैयार हूँ। आप ऐसा पारखी ही उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है। किसी समय भी आप समय निकालिये। आप जानते हैं कि जानसन बड़ा होते हुए भी इतना बड़ा न समझा जाता, यदि उसकी जीवनीका लेखक बोसवेल न बनता। आप पूज्य द्विवेदीजीके पास कुछ दिन अवश्य रह जाइये। सम्भव है, वे अभी जियें, किन्तु किसीके जीनेके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उनमें कितने ही ऐसे गुण हैं कि आनेवाली सन्तति उन गुणोंकी कथा सुनकर ही बहुत-कुछ सीख सकेगी। आप उनके बोसवेल बन जाइये; जो खर्च पड़े, उसका ज़िम्मेदार मैं। आपके पास भी कामोंकी कमी नहीं है; किन्तु दो-तीन बारमें आप कुछ सप्ताहोंका समय निकाल सकते हैं। आशा है, आप मेरी इस प्रार्थनापर पूरी तरह ध्यान देंगे।"

गणेशजीके इस अनुरोधको, इस पवित्र आज्ञाको, अब सात वर्ष होने आ रहे हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लेखक ए० ई० (जार्ज रसेल) रहते थे, तीर्थ-यात्रा करना चाहता हूँ।"

डाक्टर कज़िन्स स्वयं आयरलैण्ड-निवासी हैं और ए० ई०के मित्र रह चुके हैं। उन्होंने कहा—"ए० ई०के स्थानपर किस प्रकार जाना है और आयरलैण्डमें कहाँ-कहाँकी यात्रा करनी है, यह मैं आपको बतला सकता हूँ।"

मैंने उत्तर दिया—"अभी तो यह मेरा स्वप्न ही है। न-जाने कितने वर्ष बाद आयरलैण्ड जानेका अवसर मिलेगा और शायद न भी मिले।"

डा० कज़िन्सने कहा—"मैंने और श्रीमती कज़िन्सने दस वर्ष तक भारतवर्ष आनेके स्वप्न देखे थे, तब कहीं १९१५ में हम लोग यहाँ आ सके।"

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक कल्पना द्वारा श्रद्धापूर्वक अनेक बार आराध्य स्थानोंकी यात्रा न की गई हो, तब तक असली तीर्थ-यात्रा होती भी नहीं। यहाँ एक निजी संस्मरण लिखना अप्रासंगिक न होगा। हमारी पूज्य माताजीने सात वर्षकी उम्रसे तुलसीकृत रामायण पढ़ना प्रारम्भ किया था, रामायणके पचासों स्थल उन्हें कण्ठस्थ थे, कितनी ही बार वे उसका पारायण कर चुकी थीं, और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि रामायणकी शिक्षाओंको उन्होंने अपने जीवनमें चरितार्थ करनेका प्रयत्न भी किया था। परिस्थिति तथा साधनाभावके कारण उन्हें साठ वर्षकी उम्र तक तीर्थ-यात्रा करनेका अवसर नहीं मिला। पर उस समय जब उन्होंने मेरे साथ काशी, अयोध्या, प्रयाग और चित्रकूटकी यात्रा की, उनका धार्मिक उत्साह आश्चर्यजनक था। चित्रकूटमें वे ७ मीलकी पहाड़ी यात्रा कर सकीं, जब कि घरपर आधमील चलना भी उनके लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत होता था! हनुमानगढ़ीपर पचासों सीढ़ियाँ चढ़कर पहुँच गईं, जब कि हमें भी वह चढ़ाई अखरी। उनके हृदयकी यह अभिलाषा थी कि भगवान रामचन्द्रजी जगन्माता सीताजी और भाई लक्ष्मणके साथ जिन-जिन स्थानोंपर रहे, उन सबकी यात्रा की जाय; पर अपनी इस आकांक्षाको वे अपने साथ ही लेती गईं!

कविवर तुलसीदासजीने जंगमतीर्थराज सन्त-समाजका वर्णन करते हुए लिखा है—

"मुदमंगलमय संत समाजू। जौं जग जंगम तीरथराजू।
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।
सुनि समुझहिं जन मुदितमन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु-समाज प्रयाग।
मंजनफल देखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकहु मराला।
सुनि आश्चर्य करहिं जनि कोई। सतसंगति महिमा नहीं गोई।
बालमीक नारद घट योनी। निज-निज मुखनि कही निज होनी।
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव महाना।
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जाने सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ।"

कविवर तुलसीदासजीका उपर्युक्त कथन सोलह आने ठीक है। केवल एक बातमें हमें आशंका है, वह यह कि शायद कलिकालके प्रभावसे ये जंगमतीर्थ अब सुलभ नहीं रहे।

१४-११-३३ को हम जापानके गांधी कागावाका जीवन-चरित खरीदकर लाये और १५ ता० को प्रातःकाल चार बजे उसे पढ़ना आरम्भ किया और उषाकालमें ५ बजके ४८ मिनटपर उक्त पुस्तकके प्रारम्भिक पृष्ठपर हमने यह लिख दिया—I will some day go to Japan to see Kagawa or his sons."—'मैं कभी-न-कभी जापानकी यात्रा करूँगा और कागावा अथवा उनके लड़कोंके दर्शन करूँगा।' कागावाका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता, इसलिए इस जंगमतीर्थके दर्शन करनेका सौभाग्य शायद ही हमें मिल सके।

पिछले दिनों हमें फ्रांसके सुप्रसिद्ध लेखक रोमाँ रोलाँके अद्भुत ग्रन्थ 'जोन क्रिस्टोफर', 'फोर रनर' और 'I will not rest' (मैं विश्राम नहीं लूँगा) पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और साथ ही उनका जीवन-चरित भी पढ़ा। इसमें सन्देह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि रोमाँ रोलाँ भी तीर्थतुल्य पूज्य हैं। पर वे ७२ वर्षके निकट हैं, और स्विटज़रलैण्ड बहुत दूर है।

अभी उस दिन आर० एल० स्टीवनसनके जीवन-चरित्रको पढ़ते हुए उस कुटीका चित्र देखा, जिसमें वह प्रसिद्ध लेखक, जिसे समोआ-द्वीपके निवासी 'तुसीतला' (कहानी कहनेवाला) के प्रिय नामसे पुकारते थे, रहता था। उस समय मनमें अनेक भाव उत्पन्न हुए। सन १९२१ में एक मौक़ा हाथ आया था। भारत-सरकारने आगरेके श्रीयुत गोविन्दसहाय शर्माको फिजीके डेपूटेशनमें सदस्य बनाकर भेजा था। शर्माजीने मेरे पास आकर बहुत आग्रह किया—"हमारे साथ फिजी चले चलिये, मैं अपने पाससे आपका किराया दे दूँगा।" पर मैं नहीं जा सका। समोआ फिजी-द्वीपके निकट ही है, और वहाँसे स्टीवनसनकी समाधिके दर्शन करना कठिन न होता। इसके सिवा आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्डकी यात्रा हो जाती, सो रूँकमें; पर वह मौक़ा हाथसे जाता रहा। आधुनिक कालमें भारतमें बौद्धधर्मको पुनर्जीवन करनेवाले धर्मपालजीके जीवनमें उनकी जन्मभूमि सिंहलद्वीपको जानेका अवसर अत्यन्त सुलभ था; पर वह अवसर भी चूक गया!

अनेक यात्राओंके निमन्त्रण मौजूद हैं; पर उनके लिए अवकाश ही नहीं मिला। कई वर्षसे बन्धुवर श्रीराम शर्मा कह रहे हैं—"चौबेजी, हमारे साथ एक बार हिमालयके प्रदेशोंकी यात्रा कर लीजिए। नहीं तो मनकी मनमें रह जायगी—काऊ दिन यौंई टैंई हौ जाँइगे।"* और नर्मदा-प्रदेशके मधुर गायक 'एक

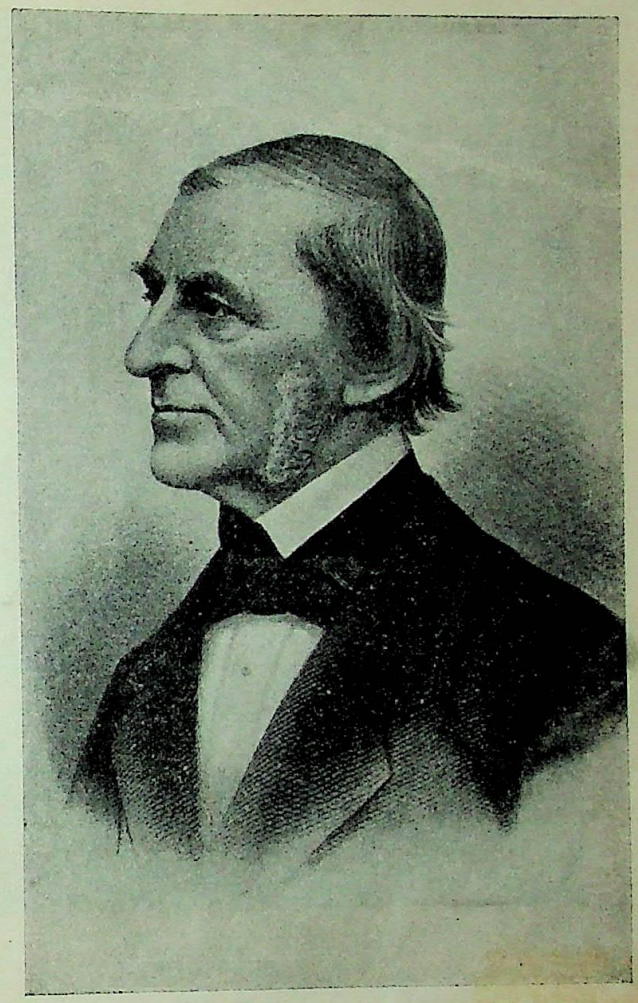

ऋषिवर एमर्सन

भारतीय आत्मा'का न्यौता वहाँकी गिरि-उपत्यकाओंमें भ्रमणके लिए इतना पुराना हो गया है कि उन्होंने उसको दुहराना ही छोड़ दिया है। और कविवर हरिशंकरजी कई वर्षसे कह रहे हैं—"चौबेजी, चान्दपुर चलनौ है।" कविवर गुरुभक्त सिंह बलियाके उस विस्तृत झीलकी, जहाँ कमलोंका साम्राज्य रहता है,

* प्राकृतिक दृश्योंके देखनेके लिए भाई श्रीरामजी-जैसा साथी मिलना अत्यन्त कठिन है। उनके साथ मसूरी तथा दौलतपुर और चाँदपुरकी यात्रा कर चुका हूँ; पर उनके संग सफर करते समय अपनी कुशिक्षापर बड़ा पश्चात्ताप होता है। दौलतपुरकी यात्रामें न-जाने कितनी चिड़ियोंके विषयमें अपनी अज्ञानताका परिचय हमें देना पड़ा। ग्रामीण तथा कृषि-जीवन-सम्बन्धी जो प्रश्न पूज्य द्विवेदीजीने श्रीरामजीसे किये, उनका श्रीरामजीने तो सन्तोषजनक उत्तर दिया; पर मुझे परीक्षामें १०० में शून्य (या विद्यार्थियोंकी भाषामें अण्डा) मिलता। शायद द्विवेदीजी इस बातको जानते थे कि यह शहरी आदमी इन बातोंको क्या जाने। इसलिए उन्होंने मुझसे वे सवाल पूछे ही नहीं और इस प्रकार लज्जित होनेसे बच गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

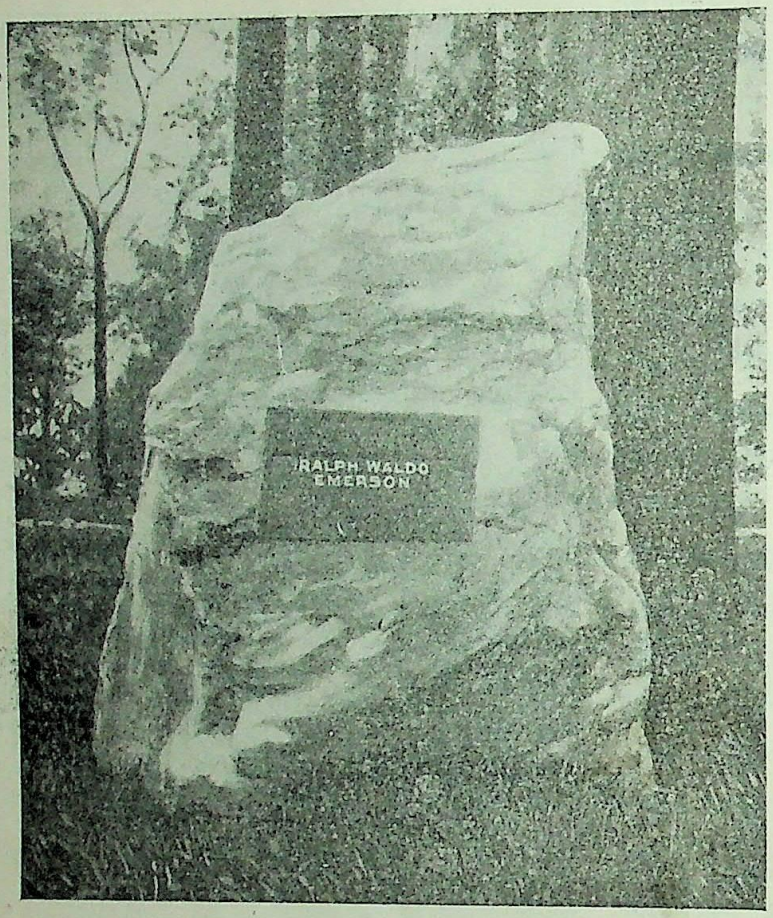

एमर्सनकी समाधि

यात्राके लिए अनेक बार कह चुके हैं। और कटकके हिन्दी-प्रचारक श्री अनुसूयाप्रसाद पाठकका उड़ीसाकी चिल्का-झीलकी यात्राका आग्रह भी नवीन नहीं है। दार्जिलिंगके जजमान श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल अनेक बार निमन्त्रण देकर आशा ही छोड़ बैठे हैं। फार्बेसगंजके श्री बद्रीप्रसादजीका आग्रह है कि हमारे यहाँसे दार्जिलिंगकी यात्रा कीजिए, श्रीराम शर्माको साथ ले लीजिए, क्योंकि मार्गमें वन्य-पशुओंका खतरा है। श्रीमती सत्यवती मल्लिक तथा श्री चन्द्रगुप्तजीका काश्मीर-यात्राका न्यौता भी बासी हो चुका है। इन सबका उत्तर एक ही है—"गृह-कारज नाना जंजाला।"

अनेक तीर्थ-यात्राओंके अवसर हाथसे निकल गये और उनके लिए ज़िन्दगी-भर पछतावा रहेगा। दस वर्ष तक (१९१४ से १९२४) तक प्रवासी भारतीयोंकी सेवा करनेके बाद पूर्व-अफ्रिका-यात्रा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। भारतवर्षमें श्री जवाहरलाल नेहरूने, जो उन दिनों कांग्रेसके सेक्रेटरी थे, दो हज़ार रुपये तार द्वारा मेरे नाम भेजकर यह आदेश दिया था कि श्रीमती सरोजिनी देवीके साथ दक्षिण-अफ्रिकाकी यात्रा करो। दक्षिण-अफ्रिका पहुँचकर उन स्थानोंको देखनेकी उत्कट अभिलाषा थी, जिन्हें महात्मा गांधीने अपने निवाससे पवित्र किया था—खास तौरसे उस जेलके देखनेकी इच्छा थी, जहाँ वे रहे थे। मित्रवर भवानीदयालजी प्रेमपूर्ण प्रतीक्षा भी कर रहे थे; पर यह यात्रा नहीं हो सकी! जिंजा (युगाण्डा) का वह अभागा प्रातःकाल मुझे अब भी याद है, जब श्रीमती सरोजिनी देवीने कहा था—"You know South Africa is so different from East Africa and you are not well equipped for this trip."—'आप जानते ही हैं कि दक्षिण-अफ्रिका पूर्व-अफ्रिकासे बहुत भिन्न है और उसकी यात्राके लिए आप सुसज्जित नहीं है।' क्षुब्ध होकर इसका उत्तर मैंने भी अंगरेज़ीमें ही दिया था—"Well, I can spend Rupees five hundred on my dress and other things if I want, but I will not accompany you to South Africa."—'यदि मैं चाहूँ, तो पोशाक तथा अन्य वस्तुओंपर पाँच सौ रुपये व्यय कर सकता हूँ; लेकिन मैं आपके साथ दक्षिण-अफ्रिका नहीं जाऊँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

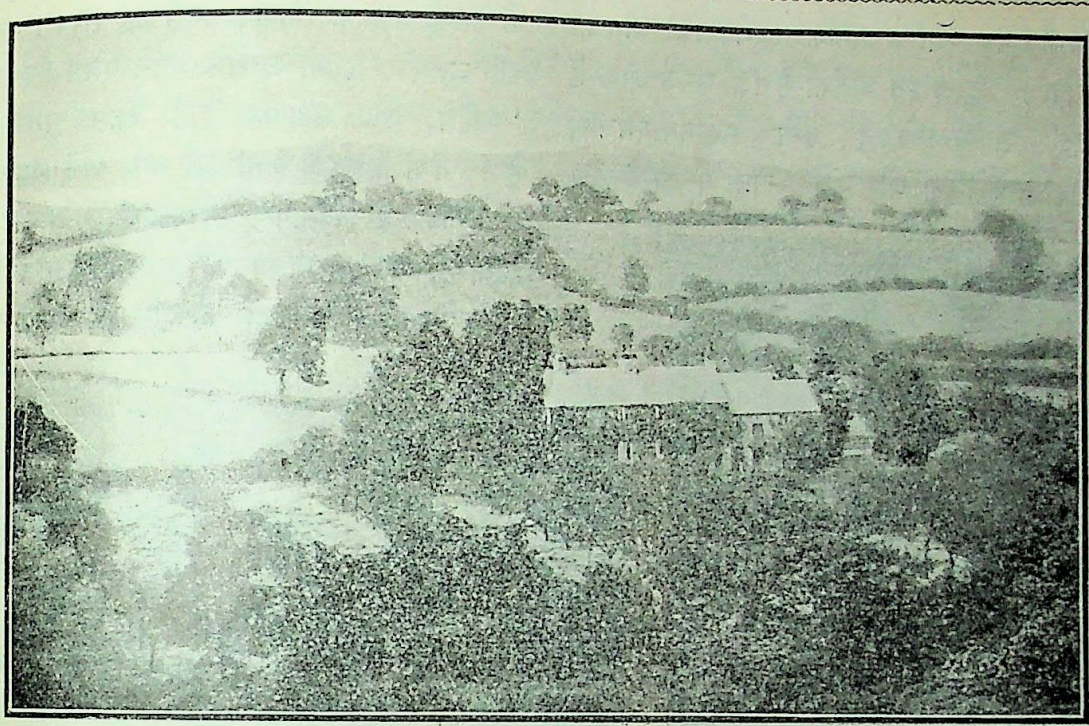

एडवर्ड कार्पेण्टरका आश्रम मिलथार्प

पूर्व-अफ्रिकासे लौटनेपर महात्माजीने कहा था—"अच्छा किया, आप अभी दक्षिण-अफ्रिका नहीं गये। फिर कभी मौक़ा आवेगा।" वह मौक़ा अभी तक नहीं आया!

स्वर्गीय पूरणचन्द नाहरने राजगिरि जाते समय अनेक बार कहा था—"राजगिरिकी तीर्थ यात्रा हमारे साथ कीजिए।" मैं हर बार उनसे कह देता था—"इस समय तो बहुत काम है, अगली बार ज़रूर चलूँगा।" यों ही टालमटूल करता रहा। नाहरजीने एक दफा निराश होकर कहा—"चौबेजी, हम तो बूढ़े हो चुके, किसी दिन चल देंगे। हमारी इच्छा थी कि आपको अपने साथ राजगिरि दिखला देते।" नाहरजी चले गये और हम आज तक राजगिरिकी यात्रा कर ही रहे हैं!

क्या ही अच्छा होता, यदि ब्रज-कोकिल सत्यनारायण कविरत्नके साथ ब्रजकी यात्रा की जाती; पर वह मौक़ा भी, जो उन दिनों अत्यन्त सुलभ था, हाथसे जाता रहा।* साहित्यिक यात्राओंका आनन्द

---

* क्या ही अच्छा होता, यदि सत्यनारायणजीकी ब्रजभाषाकी मधुर कविता सुनते हुए ब्रजमंडलकी यात्रा की जाती। उनकी उस 'ब्रजभाषा' नामक कविताकी ध्वनि अब भी हमारे कानोंमें गूंज रही है।

भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन।
पै रसपूर्न कमंडल ब्रजमंडल मनभावन॥

परम पुण्यमय प्रकृति छटा यहँ विधि बिथुराई।
जग सुर मुनिनर मजु जासु जानत सुघराई॥

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगनके रासी।
भरे भारे बसत नेह विकसत ब्रजवासी॥

जिनके उच्च उदार भाव-गिरिसों जग आसा।
जनमी तारनि-तरनि कलन्दिनि यह ब्रजभासा॥

जासु सरस निरमल जगजीवन जीवन माहीं।
लखियत उज्जल सूर चन्दकी नित परछाहीं॥

जिन प्रकास सों औरु प्रकासित सुन्दर लहरी।
नित्य नवल रसभरी मनहरी बिलसत गहरी॥

जिह आश्रय लहि कलिमलहर तुलसी सौरभ यस।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबस॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माके स्वर्गवासके साथ ही चला गया। दुःख इस बातका है कि उनके जीवनमें कवीन्द्रके शान्ति-निकेतन तथा सत्यनारायणजीके धाँधूपुर-यात्राके सिवा और कोई यात्रा न कर सका।

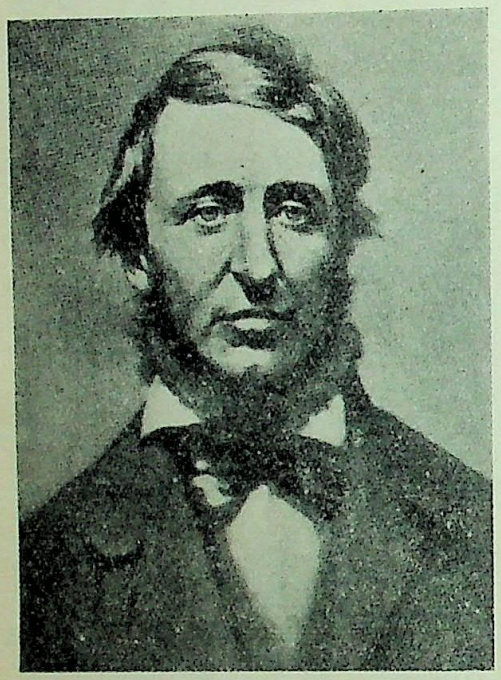

फक्कड़-शिरोमणि थोरो

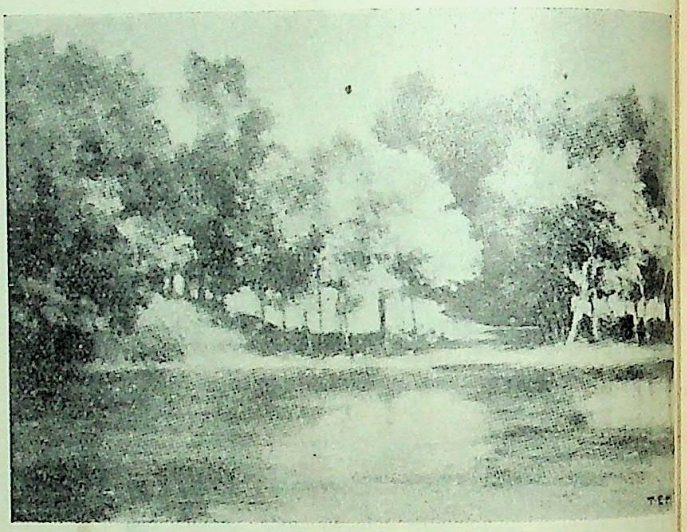

थोरोका निकुंज

शर्माजीने कई बार साहित्यिक यात्राओंके प्रोग्राम बनानेके लिए लिखा था; पर उस समय आलस्यवश मैं उनकी आज्ञाका पालन नहीं कर सका। फाल्गुन वदी ८, १८९२ को उन्होंने अपने पत्रमें लिखा था—"कहिये, क्या समाचार है? किस धुनमें मस्त हैं? क्या बिलकुल प्रवासियों और परदेशियोंके ही हो रहे! फिर भी मैं सापेक्ष परदेशी ही हूँ, प्रायः प्रवासमें रहता हूँ, इस कारण आपकी कृपाका किसी अंशमें भी अधिकारी—पात्र—हूँ। इस बीचमें मैंने दो-एक पत्र भी भेजे; पर उत्तर न मिला, न आपका कुशल समाचार मालूम हुआ। आजकल क्या कर रहे हैं? अगला प्रोग्राम क्या है? शंकरजीके यहाँ कब जानेका विचार है? मैं तो अभी १०-१२ दिन हुए, दो दिनके लिए हरदुआगंज हो आया हूँ। आप भी हो आइये या फिर चलनेका प्रोग्राम बनाइये। शान्ति-निकेतनके 'बड़े दादा' चल बसे! आपसे ही उनकी गुण-गरिमा सुनी थी। भले लोग थे। कालका चक्र बड़े तेज़ीसे चल रहा है। जीवन क्षणभंगुर है, दुनियाँ झगड़ोंका अन्त नहीं। तूफ़ानी अनन्त सागरमें तिनकेके सदृश मनुष्य बह रहा है, किनारेका पता नहीं—'मैं जाता हूँ बेमक़सूद बहरे ज़िन्दगानीमें'।"

आज इतने वर्ष बाद इस पत्रको देखकर अक्षम्य प्रमादपर पछतावा आ रहा है कि मैं

केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम॥
अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-ओक-निकन्दन।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगबन्दन॥
तुरत सकल भयहरनि आर्य जागृति जयसानी।
जन मन निज बस करनि लसति पिक भूषण बानी॥
बिबिध रंग रंजित मनरंजन सुखमा आकर।
सुचि सुगंधिके सदम खिले अगनित पदमाकर॥
जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे।
रहसि-रहसि रसखान रसिक अलिगुंजि घनेरे॥
बरन-बरनमें मोहनकी प्रतिमूर्ति विराजत।
अक्षर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत॥
बरनन को करि सकत भला तिह भाषा-कोटी।
मचलि-मचलि जामें माँगी हरि माखन-रोटी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब काम छोड़कर स्वर्गीय पद्मसिंहजीके साथ साहित्य-यात्राका प्रोग्राम न बनाया। अब, जब कि वे भव-सागरके उस पार चले गये, सिवा चार आँसू बहानेके और क्या कर सकता हूँ ?

यद्यपि मैं मानता हूँ कि बीते हुए अवसरोंके लिए पछताना व्यर्थ है, फिर भी मनमें कलक उठता है कि हा ! यह मौक़ा हाथसे क्यों जाने दिया—वह अवसर क्यों खो दिया ! पर किसीकी सभी आकांक्षाएँ पूरी नहीं होतीं। हम कुछ सोचते हैं और हो कुछ जाता है। जिसे संसार-यात्राके लिए चिरसंगिनी बनाया था, जब उसीने २९ सितम्बर १९३० को महाप्रयाण कर दिया, तब औरोंके लिए क्या कहा जाय ? और जिसके बल-बूतेपर देश-विदेशोंकी यात्राके मनसूबे बाँध रखे थे और जिसने कहा था—"दादा, जब तक हम कालेजमें नौकर हैं, तब तक तुम अफ्रिका वगैरह घूमि आओ।" जब वह अनुज भी केवल २७ वर्षकी उम्रमें गत ५ अक्टूबरको अपनी अन्तिम यात्रापर चल दिया ! दुर्भाग्य-दावाग्नि द्वारा मनोकामनाओंका वह मनोहर उपवन ही भस्म हो गया—'वह चमन ही जल गया, जिसमें लगाये थे शजर', तब उपर्युक्त यात्राओंके स्वप्नोंके पूर्ण होनेकी आशा ही क्या की जाय ? फिर भी निराश नहीं। पुनर्जन्ममें विश्वास है। इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें सही।

याद

श्रीयुत राजेश्वर

अरुण अधरोंपर धर मुसकान
नवल कलियोंमें भरता हास,
प्रतिदिवस आता स्वर्ण-विहान
जगाता विहगोंकी लघु श्वास ;
चूम अलसित पातोंके प्रान
डोलती जब सौरभि-वातास,
किसीकी याद सुखद सुकुमार
बिखर पड़ती बनकर उच्छ्वास।

पश्चिमी क्षितिके रंजित-द्वार
विहँसता जब दिनका अवसान,
छिपा रविको, ज्योतित शृंगार
झरा पड़ता जब होकर म्लान ;
वायुमें उड़ते पंख पसार
श्रमित खग-बालाओंके गान
किसीकी मधुर याद बन हूक
विकल उरमें उठती अनजान।

रात्रिकी आँखोंसे बन ओस
बहा करता प्रतिक्षण अवसाद,
स्वप्नकी गोदीमें सुधि भूल
विश्वका सोता जब उन्माद ;
पुतलियाँ खींचा करतीं मौन
तारिकाओंका छबि-प्रतिबिम्ब,
पिघल पड़ती है तब चुपचाप
नयनसे अमर किसीकी याद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

तानाशाही और सुख-समृद्धि

कलकत्तेमें स्काचोंके उत्सव 'सेंट एण्ड्रूज़ डे' पर भाषण देते हुए बंगालके गवर्नर साहबने कहा था—

"लोग अक्सर इस तरहकी बातें करते हैं, मानो राजनैतिक आत्म-प्रकाशकी प्रेरणा और जनताकी आर्थिक उन्नतिकी प्रेरणा एक ही और अभिन्न चीज़ हो—मानो एकके होनेसे दूसरी ज़रूर ही उसके साथ आती है। लोग यह भूल जाते हैं कि तानाशाही (Autocracy) सुख-समृद्धि दे सकती है, और अक्सर राजनैतिक स्वतन्त्रता खरीदनेमें कठिनाइयाँ और राष्ट्रीय दरिद्रता झेलनी पड़ती है। अमेरिकन विधानके निर्माताओंने संयुक्त-राष्ट्रको केवल एकता और स्वतन्त्र संस्थाएँ ही प्रदान की थीं। सुख-समृद्धि प्राप्त करना लोगोंकी प्रारम्भिक चेष्टा और देशकी प्राकृतिक सम्पदाकी प्रचुरताका काम था। आधुनिक रूसके निर्माताओंने एक कठोर तानाशाहीकी मातहतीमें आर्थिक समृद्धि पानेकी कोशिश की है, और यह देखना अब भी बाक़ी है कि इस समृद्धिके पीछे-पीछे राजनैतिक स्वाधीनता आती है या नहीं।"

'राजनैतिक आत्म-प्रकाशकी प्रेरणा और जनताकी आर्थिक उन्नतिकी प्रेरणा एक ही चीज़ हैं' या नहीं, इसपर कोरा विवाद करना एकदम फिज़ूल है, और न इस बहसकी ही ज़रूरत है कि 'एकके होनेसे दूसरी ज़रूर ही आती है' या नहीं। भारतवर्ष राजनैतिक आत्म-प्रकाश और जनताकी आर्थिक उन्नति—दोनों ही चाहता है।

अमेरिकाका उदाहरण

निस्सन्देह यह बिलकुल सही है कि संयुक्त-राज्य अमेरिकाके विधान बनानेवालोंने अमेरिकाको केवल राजनैतिक एकता और स्वतन्त्र संस्थाएँ ही प्रदान की थीं। यह भी सच है कि अमेरिकाकी सुख-समृद्धि अमेरिकनोंकी चेष्टाओं और देशके प्राकृतिक साधनोंकी प्रचुरताकी बदौलत ही है। लेकिन अमेरिकन विधानके निर्माता उसी देशकी जनताके ही नेता थे, अमेरिकासे ६००० मील दूर रहनेवाले विदेशी नहीं थे। और जो विधान बनाया गया था, वह लोगोंकी प्रारम्भिक चेष्टाओंको निरुत्साहित करने या मारनेके लिए नहीं, वरन उन चेष्टाओंको उत्पन्न करने, प्रोत्साहन देने और मार्ग-प्रदर्शन करनेके लिए बनाया गया था। अमेरिकन विधानमें इस बातकी व्यवस्था भी नहीं रखी गई थी कि विदेशी लोग आ-आकर संयुक्त-राज्यके प्राकृतिक साधनोंका दोहन करें। इसके विरुद्ध उस विधानने अमेरिका-निवासियोंको देशके प्राकृतिक साधनोंको अपने ही फायदेके लिए इस्तेमाल करनेमें मदद दी है। संयुक्त-राज्यके निवासियोंके स्वार्थोंमें एकता है। इसीलिए संयुक्त-राज्य अमेरिकाके विधानने फूट पैदा करनेवाले मसालोंको सरकारी संरक्षण और स्वीकृति देनेके बजाय, लोगोंको राजनैतिक एकता प्रदान की है। संयुक्त-राज्य अमेरिकाकी आबादीमें अनेक देशोंके, अनेक भाषाएँ बोलनेवाले और अनेक विभिन्न धर्मोंको माननेवाले लोग हैं। इन विषयोंमें उनकी विभिन्नता शायद भारतसे भी बढ़ी-चढ़ी है। अगर अमेरिकन विधानके निर्मातागण लोगोंकी इस विभिन्नता (फूट) को अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए उपयोग करनेवाले विदेशी होते, तो देशमें कभी राजनैतिक एकता स्थापित न होती।

रूसका उदाहरण

आधुनिक रूसके निर्माताओंकी कठोर तानाशाहीने सोविएट संघकी आर्थिक सुख-समृद्धि ही के लिए ही चेष्टा नहीं की है, वरन उन्होंने हाल ही में अपने विशाल देशको संसारका नवीनतम और सबसे अधिक जनतन्त्र-वादी शासन-विधान और 'राजनैतिक स्वतन्त्रता' भी दी है। रूसके कठोर तानाशाहोंकी नीति, उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून और उनके तरीके कितने ही वेच्छाचारी, क्रूर और ग़लत क्यों न हों,—हम समझते हैं कि वे बहुत-कुछ ऐसे थे भी,—फिर भी वे तानाशाह रूसी जनताके ही लोग थे और रूसी जनताकी भलाई चाहनेवाले ही थे; वे किसी दूरदराज़ ग़ैर-मुल्कके फायदेके लिए लोगोंपर फौलादी पंजेसे शासन करनेवाले विदेशी नहीं थे।

एक कोरमकोर सिद्धान्तके रूपमें हम मानते हैं कि 'तानाशाह सुख-समृद्धि दे सकते हैं।' मगर हम यह नहीं मानते कि किसी विदेशी साम्राज्यवादी तानाशाह या नौकरशाहने किसी ऐसे मुल्कको सुख-समृद्धि दी हो, जिसे उनके देशने गुलाम बना रखा हो। हिज़ एक्सलेंसीको हमें यक़ीन दिलानेके लिए प्राचीन या आधुनिक इतिहाससे उदाहरण देने पड़ेंगे कि किसी विदेशी तानाशाहीने किसी मुल्कको सुख-समृद्धि दी हो, या दे सकती हो।

यह इतिहासकी एक साधारण बात है कि अकसर लोगोंको राजनैतिक स्वतन्त्रता ख़रीदनेके लिए कठिनाइयाँ और राष्ट्रीय दरिद्रता भोगनी पड़ी है। भारतवासी राजनैतिक स्वतन्त्रता चाहते हैं। वे उसके लिए कठिनाइयों और राष्ट्रीय दरिद्रताको झेलनेके लिए भी तैयार हैं। वास्तवमें आज भी भारतमें जो लोग राजनैतिक स्वतन्त्रताके लिए काम कर रहे हैं, वे सब—नेता और साधारण कार्यकर्ता दोनों ही—कठिनाइयाँ और दरिद्रता उठा रहे हैं।

—

अंगरेज़ी तानाशाहीने भारतकी एकता और समृद्धिके लिए क्या किया?

हमारे अंगरेज़ शासक यह अस्वीकार न करेंगे कि उन्होंने भारतको राजनैतिक एकता और स्वतन्त्र संस्थाएँ देनेके जो प्रयत्न किये हैं, भारतीयोंने उनका विरोध जान लड़ाकर नहीं किया। शायद यह बात भी स्वीकार कर ली जायगी कि राजनैतिक विचार रखनेवाले भारतीयोंके बहुत बड़े अंशने राजनैतिक एकता और स्वतन्त्र संस्थाएँ प्राप्त करनेकी उत्कट आकांक्षा भी दिखलाई है।

नतीजा क्या हुआ? नतीजा यह है कि ग्रेट-ब्रिटेनने भारतियोंको ऐसा शासन-विधान दिया है, जो 'साम्प्रदायिक निर्णय' पर अवलम्बित है—जो भारतको एकताबद्ध राष्ट्रके रूपमें स्वीकार नहीं करता, बल्कि विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, नस्लों, स्त्रियों, पुरुषों और पेशों अथवा आर्थिक दलोंके फुटफैल टुकड़ोंके रूपमें ही स्वीकार करता है। यही राजनैतिक एकता है, जो अंगरेज़ी तानाशाही (Autocracy) ने लगभग दो शताब्दीके शासनके बाद हमें बख़शी है! रहा स्वतन्त्र संस्थाओंका सवाल, सो नया शासन-विधान गवर्नर-जनरल और गवर्नरोंको पहलेसे कहीं अधिक स्वेच्छाचारी बना देता है।

ब्रिटिश तानाशाहोंने भारतमें जो सुख-समृद्धि पैदा की है, उसका वर्णन अभारतीयोंके मुखसे ही अधिक ठीक होगा। राह चलते यहाँ यह कह देना उचित होगा कि भारत प्राकृतिक साधनोंमें भरापूरा है और भारतके लोग उन साधनोंको अपने फायदेके लिए इस्तेमाल करनेके अनिच्छुक नहीं हैं और न उनमें आगे बढ़कर चेष्टा करनेकी ही कमी है। और शायद वे सुख-समृद्धि चाहते हैं। सर विलियम जानसन हिक्सने, जो बाल्डविन साहबके एक पिछले मन्त्रि-मंडलमें इंग्लैण्डके गृह-सचिव थे, सन् १९२७ में कहा था—

"हमने भारतीयोंकी भलाईके लिए हिन्दोस्तान फतह नहीं किया है। मैं जानता हूँ कि पादरियोंकी सभाओंमें यह कहा जाता है कि भारतीयोंकी उन्नतिके लिए ही हमने हिन्दोस्तान फतह किया है। यह झूठमूठ कहने-भरकी बात है। हमने ग्रेट-ब्रिटेनके मालको खपानेके लिए भारतको फतह किया है। अंगरेज़ी मालके आमतौरसे और लंकाशायरके मालके ख़ास तौरसे खपानेके लिए हिन्दोस्तान सबसे अच्छी जगह है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगरेज़ी तानाशाहोंकी भारतको समृद्धिशाली बनानेकी चेष्टाएँ इसी उपर्युक्त विश्वासके अनुसार ही चलती रही है।

लगभग बीस वर्ष पहले मांटेगु-चेम्सफोर्ड-रिपोर्टके लेखकोंने उस रिपोर्टमें लिखा था—"(भारतकी) विशाल जनता दरिद्र है, अज्ञान है और असहाय है—यूरोपके स्टैंडर्डसे कहीं ज्यादा गई-बीती है।" (धारा १३२)। तीन वर्ष पहले शासन-विधानपर नियुक्त ज्वायंट पार्लामेन्टरी कमेटीने अपनी रिपोर्टमें लिखा था—"भारतमें जीवन-निर्वाहका औसत स्टैंडर्ड इतना नीचा है कि यूरोपके अधिक पिछड़े हुए देशोंसे भी उसकी तुलना नहीं हो सकती।"

जो विदेशी यात्री दस-पाँच दिनके लिए ही यहाँ आते हैं, भारतकी मौजूदा दरिद्रता उनकी नज़रोंमें भी पड़े बिना नहीं रहती। उदाहरणके लिए, दक्षिण-अफ्रिकाके स्वतन्त्र राष्ट्रीय-दलके नेता डा० एन० आई० वान डर मर्वने भारतसे लौटकर जो वक्तव्य निकाला था, उसमें लिखा है—

"भारतमें मैंने जो-कुछ देखा, उसने मुझे ब्रिटिश साम्राज्यवादका पहलेसे कहीं ज्यादा शत्रु बना दिया····वे (ब्रिटिश साम्राज्यवादी) मुग़लोंकी नक़ल करके नई दिल्ली बनानेमें करोड़ों रुपये खर्च कर रहे हैं, जब कि ७० फी-सदी जनता भूखों मरती है और ३० करोड़से अधिक आदमी निरक्षर हैं।

"इसमें कोई शक नहीं कि भारतकी ९० फी-सदी जनताकी ,बनिस्बत दक्षिण - अफ्रिकाके हब्शी कहीं ज्यादा अच्छी हालतमें हैं। बम्बई और कलकत्तेमें हज़ारों आदमी रातमें सड़कोंपर सोते हैं, क्योंकि उनके पास कोई जगह ही नहीं है।····९० फी-सदी आबादी देहातोंमें बसती है, उसकी दरिद्रता बड़ी भयंकर है।···· भारतीय कांग्रेसके तख़मीनेके अनुसार प्रत्येक हिन्दोस्तानी की आमदनीका औसत दो आना रोज़ है।····इस दरिद्रताके साथ-साथ हमने विलासिता भी देखी। हमने निज़ामके जवाहरात देखे और उनके महलोंमें दावतें खाईं। शिमलामें हम वायसरायके मेहमान थे।

"भारत आज भी दुखी देश है, और उसके विशाल जनसमूहके सिरपर दरिद्रता, दुख और अज्ञानकी भयंकर घटाएँ छाई हैं।"

—

कांग्रेस-सभापतिका भाषण

लखनऊकी कांग्रेसकी भाँति ही फैजपुरमें सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरूने अपने भाषणमें समूचे जगतमें दो विरोधी शक्तियोंके संघर्षके साथ भारतवर्षमें भी इन्हीं दोनों शक्तियोंके संघर्षका सादृश्य और सम्बन्ध प्रदर्शित किया है। इन दो विरोधी शक्तियोंमें एक है साम्राज्यवाद और पूँजीवाद तथा दूसरी है जनतन्त्रवाद और समाजवाद। उनका नाम चाहे कुछ भी हो, पर यह बात सच है कि पृथिवीमें सभी कहीं कुछ जातियाँ और लोग कुछ अन्य जातियों और लोगोंको अपने प्रभुत्वके अधीन रखकर उनके परिश्रमसे धनी बनकर मौज उड़ाना चाहते हैं। इस अवस्थाका उन्मूलन करना ज़रूरी है।

समाजवाद (या साम्यवाद) शब्द अनेकोंको बहुत अप्रिय है। वे उसका प्रयोग करनेसे भी डरते हैं। लेकिन यह बात सभीको माननी पड़ेगी कि देशके अधिकांश लोग दरिद्र, निरक्षर, ज्ञानालोकसे वंचित, भूखे, प्रायः नंगे और गृहहीन हैं अथवा बहुत ही छोटे अस्वास्थ्यकर घरोंमें रहते हैं। बीमारीमें उन्हें चिकित्सा और औषधि भी नसीब नहीं होती। इस अवस्थाका प्रतिकार होना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि प्रतिकार होना ज़रूरी नहीं है, अथवा प्रतिकार हो ही नहीं सकता, तो मैं उनके मतकी आलोचना करना नहीं चाहता। जो यह कहते हैं कि प्रतिकार ज़रूरी है और हो सकता है, उन्हींका मत आलोचनाके योग्य है। समाजवादी कहते हैं कि समाजवादसे सभी मनुष्योंकी अवस्था सुधर सकती है। जो उसमें विश्वास नहीं करते, उन्हें इसके लिए कौन-सा उपाय अवलम्बनीय है, यह कहने और अवलम्बन करनेके पूरा अधिकार है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

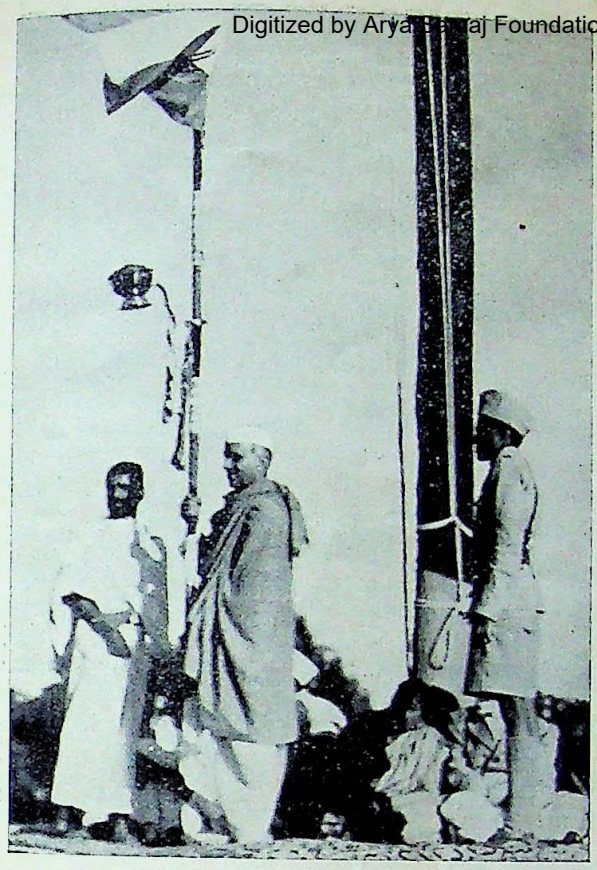

फैज़पुर-कांग्रेस-मंचसे पंडित जवाहरलाल नेहरू अपना सभापतिका भाषण पढ़ रहे हैं

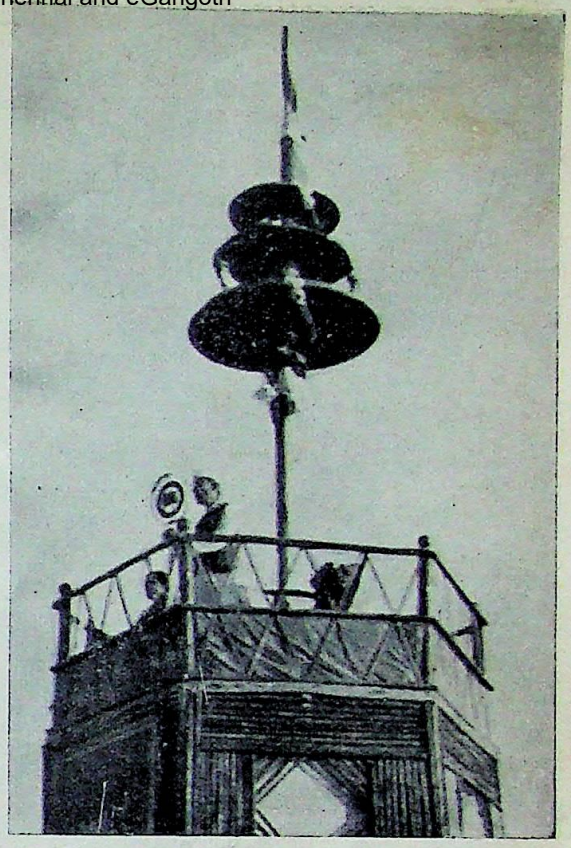

बम्बईसे कांग्रेसकी जो प्रज्वलित मशाल फैज़पुर गई थी, नेहरूजी उसे लेकर कांग्रेसका झंडा फहरा रहे हैं

अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग प्रदर्शिनीके उद्घाटनमें महात्मा गांधी माइक्रोफोनके सामने वक्तृता दे रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान और जर्मनीके बीच नई सन्धिपर हस्ताक्षर हो रहे हैं

जापानका एक सामन्तवादी जुलूस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित जवाहरलाल नेहरू और अन्य भारतीय समाजवादी कहते हैं कि अभी फौरन ही भारतवर्ष समाजवादमें प्रवर्तित नहीं हो सकता ; पहले देशको स्वाधीन करके फिर उसे समाजवादमें प्रवर्तित किया जायगा, क्योंकि जब तक राष्ट्र-शक्ति हाथमें नहीं आती, तब तक समाजवादमें प्रवर्तन नहीं किया जा सकता।

—

फैज़पुर कांग्रेसका अधिवेशन

फैज़पुर-कांग्रेसका अधिवेशन हो गया। बड़े-बड़े शहरोंमें भी कांग्रेस-जैसी वृहत संस्थाका अधिवेशन होनेसे कई हज़ार आदमियोंके रहनेकी जगह, रातमें रोशनी, स्नान पान, आहारादि, स्वास्थ्य, आमदरफ्तके लिए सवारियाँ इत्यादि बातोंका इन्तज़ाम करना सहज नहीं होता। गाँवमें तो यह और भी ज्यादा मुश्किल है। फिर फैज़पुर-कांग्रेसमें कई हज़ारके बदले एक लाखसे अधिक लोगोंका सामागम हुआ था। वहाँ पानी, रोशनी, निवास-स्थान, खाद्यद्रव्य-संग्रह आदि बातोंका प्रबन्ध पहलेसे ही एकदम नये सिरेसे करना पड़ा था। किन्तु स्वागतकारिणी समितिके कार्यकर्ताओंके उद्योगसे सभी बाधाएँ दूर हो गई थीं। यह महाराष्ट्रके लिए विशेष प्रशंसाका विषय है। चूँकि महाराष्ट्र भारतवर्षके अन्तर्गत ही है, अतः यह भारतके लिए भी प्रशंसाका विषय है।

इस ग्रामीण कांग्रेसके सभापति यदि मोटरपर जाते, तो वह अच्छा न मालूम होता, इसीलिए पंडित जवाहरलाल नेहरूको पुराने जमानेके रथोंकी तरहकी एक बैलगाड़ीपर रेलवे स्टेशनसे फैज़पुरकी कांग्रेसपुरी तिलकनगर तक ले जाया गया था। रथका डिज़ाइन और उसकी सजावट प्रसिद्ध कलाकार नन्दलाल बोसकी कृति थी। उसे छै जोड़ी बैलोंने खींचा था।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

'विशाल भारत' का दसवाँ वर्ष

देखते-देखते 'विशाल भारत' के नौ वर्ष बीत गये और अब दसवाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। जिन उद्देश्योंको लेकर 'विशाल भारत' निकला था, उसकी पूर्ति वह कहाँ तक कर रहा है, इसका उत्तर उसके पाठक ही दे सकते हैं। अपनी ओरसे हम इतना ही कहना चाहते हैं कि हमने प्रयत्न यही किया है कि हमारे पाठकोंको स्वास्थ्यप्रद मानसिक भोजन मिले। 'विशाल भारत' राजनैतिक तथा साहित्यिक दल-बन्दियोंसे सदा ही दूर रहा है, और भविष्यमें भी वह इसी नीतिका अवलम्बन करेगा। 'विशाल भारत'का, चाहे वह कितना ही क्षुद्र क्यों न हो, अपना एक अलग व्यक्तित्व रहा है।

प्रथम अंकमें अपने उद्देश्योंकी चर्चा करते हुए हमने लिखा था कि हम प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता और जातीय विद्वेषका निरन्तर विरोध करते रहेंगे, और आज भी हम अपने उस दृढ़ निश्चयको दुहरा रहे हैं। अनेक प्रान्तोंका अन्न-जल खानेके बाद और साबरमती आश्रम और शान्तिनिकेतन-जैसे तीर्थोंमें रहनेके बाद प्रान्तीयताका किसी भी अंशमें समर्थन करना हमारे लिए असम्भव था। प्रान्तीयता, चाहे वह किसीकी भी क्यों न हो, मारवाड़ियोंकी या बंगालियोंकी अथवा बिहारियोंकी, वह अत्यन्त निन्दनीय है और उसका जितना विरोध किया जाय, थोड़ा होगा। नवीन शासन-सुधारोंके साथ ही इस बीमारीके भी बढ़नेकी आशंका है, इसलिए हम लोगोंको अभीसे सावधान हो जाना चाहिए।

रही साम्प्रदायिकताकी बात, सो वह और भी भयंकर रोग है। यदि प्रान्तीयता मलेरिया है, तो साम्प्रदायिकता क्षय या तपेदिक़। साम्प्रदायिक मताधिकारसे ही इसकी इतनी अधिक वृद्धि हुई है और जब तक यह मूल कारण बना हुआ है, तब तक यह बीमारी बनी रहेगी। जिस प्रकार लोग प्लेगसे व्याप्त घरों, मुहल्लों तथा नगरोंको छोड़ जाते हैं, उसी प्रकार हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी साम्प्रदायिक संस्थाओं, विद्यालयों और कार्योंसे अलग रहना चाहिए। हर्षकी बात है कि हमारे देशकी स्वाधीनता-संग्रामकी बागडोर जिस महापुरुषके हाथमें है, यानी श्री जवाहरलालजी, वे इस साम्प्रदायिकताके कट्टर दुश्मन हैं, और वह दिन दूर नहीं, जब यह विषैली वस्तु दफना दी जायगी। दरअसल हमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी इस संकीर्ण शब्दावलीके दायरेसे निकलकर अलग खड़े हो जाना चाहिए, गोकि यह आसान काम नहीं है, क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम शब्द पानी तकमें प्रवेश कर चुके हैं और स्टेशनोंपर अपनी भद्दी व्यापकताका प्रदर्शन करते हुए दीख पड़ते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकताकी नींव राजनैतिक तथा आर्थिक स्वार्थोंके आधारपर ही रखी जा सकती है—कुरान, पुराणके नये-नये वैज्ञानिक अर्थ करने, साथ बैठकर प्रार्थना करने या सर्वधर्म समन्वयसे नहीं।

जातीय विद्वेष (Racial feeling) भी उतनी ही खराब चीज़ है, और विदेशी शासन ही इसकी उत्पत्तिका मुख्य कारण है। जब हम दिन-रात गोरे लोगोंके अन्यायों तथा अत्याचारोंकी कथा सुनते और अपनी आँखों उन्हें देखते भी हैं, तो फिर यह सर्वथा स्वाभाविक है कि हमारे हृदयमें गोरे लोगोंके प्रति घृणा अथवा विद्वेषके भाव उत्पन्न हो जायँ; पर हमें इस विद्वेषसे ऊपर उठना होगा। आयरलैण्डके सुप्रसिद्ध कवि और कलाकार स्वर्गीय जार्ज रसेल (ए० ई०) ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'National Being' में एक जगह लिखा था—

"Race hatred is the cheapest and basest of all national passions, and it is the nature of hatred, as it is the nature of love, to change us into the likeness of that which we contemplate. We grow nobly like what we adore, and ignobly like what we hate."

—'राष्ट्रीय दुर्गुणोंमें यदि कोई सबसे अधिक सस्ता तथा सबसे अधिक नीचतापूर्ण दुर्गुण है, तो वह जातीय विद्वेष ही है। जिसका हम निरन्तर चिन्तन किया करते हैं, हम तद्रूप ही हो जाते हैं, और यही बात विद्वेष तथा प्रेमके विषयमें भी कही जा सकती है। जिनकी हम पूजा करते हैं, उच्च रूपसे हम वैसे ही बन जाते हैं, और जिनसे हम घृणा करते हैं, पतित ढंगसे हम उन-जैसे ही बन जाते हैं।'

भागवतके एकादश स्कन्धमें इसी भावको बड़े सुन्दर ढंगसे लिखा गया है :—

"यत्र-यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया
स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति ततत्सरूपताम्।"

अर्थात्—'देहधारी जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे जिस किसीमें भी सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है, अन्तमें वह तद्रूप हो जाता है।'

हमें सबसे अधिक खतरा यह है कि कहीं हम अंगरेज़ जातिसे घृणा करते-करते, उसके दोषोंकी नक़ल न कर लें।

'विशाल भारत' ने प्रारम्भसे ही भिन्न-भिन्न जातियों और देशोंके महापुरुषोंके गुणोंका गान करके अपने पाठकोंका दृष्टिकोण विस्तृत करनेका प्रयत्न किया है, और वह निरन्तर इस निर्दिष्ट पथपर चलता रहेगा। क्षुद्र राष्ट्रीयतासे गठजोड़ा करके वाहवाही लूटना आसान है और यह घोषणा करके कि 'हमारा देश चाहे गलत रास्तेपर हो या ठीक रास्तेपर, हम तो उसीका समर्थन करेंगे,' लोकप्रियता प्राप्त कर लेना कोई मुश्किल बात नहीं; पर गौरव इसीमें है कि जब हमारा देश भ्रमपूर्ण मार्गपर जा रहा हो, तब उसका निर्भयतापूर्वक विरोध किया जाय।

संख्याके मोहसे हमें कभी प्रभावित न होना चाहिए। थोरोका यह कथन बिलकुल ठीक है कि जो मनुष्य ठीक रास्तेपर है, उसकी एक वोट लाखों गलत रास्तेपर जानेवाले आदमियोंकी सम्मिलित वोटोंसे ज्यादा है। बहुमत दरअसल उसीका है।

महाकवि जे० आर० लोवेलके निम्न-लिखित शब्द हमारे लिए आदर्श होने चाहिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

They are slaves who fear to speak
For the fallen and the weak ;
They are slaves who will not choose
Hatred, scoffing and abuse,
Rather than in silence shrink
From the truth they needs must think
They are slaves who dare not be
In the right with two or three."

—

मालवीयजीकी हीरक-जयन्ती

पूज्य पं० मदनमोहन मालवीयकी ७६वीं वर्ष-गाँठपर 'विशाल भारत' कविवर श्री सोहनलाल द्विवेदीके शब्दोंमें यही प्रार्थना करता है :—

मिले तुम्हारी भक्ति देशको, यह जननी जयगान करे ;
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, वह नित नव उत्थान करे ।
मिले तुम्हारी आग देशको, आज़ादी आह्वान करे ;
मिले तुम्हारा त्याग देशको, तन-मन-धन बलिदान करे ।
जियो, देशके दलित अभागोंके ही नाते तुम सौ वर्ष ;
जियो, वृद्ध माताके मनको धैर्य बँधाते तुम सौ वर्ष ।
जियो, पिता-पुत्रोंको अपना प्यार लुटाते तुम सौ वर्ष ;
जियो, राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके आते-आते तुम सौ वर्ष ।

शिक्षा, राजनीति, राष्ट्रभाषा-प्रचार आदि अनेक क्षेत्रोंमें श्रद्धेय मालवीयजीने जो कार्य पिछले पचास वर्षोंमें किये हैं, वे जग-जाहिर हैं और उनका त्याग, धुन और लगन भारतीयोंके लिए अनुकरणणीय हैं । हम बड़ी उत्कंठाके साथ उनके विस्तृत जीवन-चरितकी, जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है, प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

—

कौंसिल-प्रवेशपर श्रद्धेय गणेशजी

श्रद्धेय गणेशजीके निम्न-लिखित शब्द, जो उन्होंने अपने एक पत्रमें इन पंक्तियोंके लेखकको लिखे थे, ध्यान देने-योग्य हैं :—

"मैं कौन्सिलमें जाना लाभदायक नहीं समझता । वहाँका वायुमंडल बहुत विषैला है और कौन्सिलसे देश या साधारण आदमियोंको कोई लाभ नहीं पहुँचता । इसके अतिरिक्त मैं यह भी देख रहा हूँ कि हममें से जो लोग कौन्सिलमें जायँगे, उनकी और भी अधिक ख्वारी होगी और वे और भी नीचे जायँगे ।....मैं यह भी कहता हूँ कि मैं हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ेका मूल कारण इलेक्शन आदिको समझता हूँ, और कौन्सिलमें जानेके बाद आदमी देश और जनताके कामका नहीं रहता ।"

इस बातको लिबरल लोग तक मानते हैं कि नवीन शासन-विधान पुरानेसे कहीं अधिक ख़राब है, और चूँकि उसमें देशके राजनैतिक शरीरका और भी अधिक विभाजन किया गया है, इसलिए कौन्सिलोंका वायु-मंडल पहलेकी अपेक्षा अधिक विषैला ही होगा । यद्यपि श्रद्धेय गणेशजीको कौन्सिलके लिए खड़ा होना पड़ा ; पर उन्होंने इसे 'बकरेके बलिदान' से अधिक कभी महत्त्व नहीं दिया और 'प्रताप'को कांग्रेस-गज़ट होनेसे सुरक्षित ही रखा । श्रद्धेय गणेशजीके उपर्युक्त शब्दोंको हम 'प्रताप'के वर्तमान सम्पादक-मंडलकी भेंट करते हैं ।

—

श्रीमान नेहरूजीकी तत्परता

सहयोगी 'अर्जुन' के निम्न-लिखित कथनसे हम सर्वथा सहमत हैं—

"पं० जवाहरलाल नेहरूकी असाधारण कार्य-शक्ति और लगनका तो उन सबको परिचय है ही, जो उनके सम्पर्कमें आये हैं ; परन्तु इस शनि, रवि और सोमवारको पंजाबके अनेक नगरोंमें एक साथ कई-कई भाषण देने, भ्रमण करने और लोगोंसे बातचीत करनेमें उन्होंने जो सामर्थ्य दिखलाई है, वह आश्चर्यकारक है । ७२ घंटोंमें उन्होंने सोने, खाने-पीने और आराम करनेमें सब मिलाकर बीस या चौबीस घंटेसे अधिक समय नहीं लगाया । शेष सब समय निरन्तर यात्रा और भाषणोंमें बीता है । अत्यन्त असाधारण शारीरिक और मानसिक शक्तियोंवाला व्यक्ति ही इतने थोड़े समयमें इतना अधिक काम कर सकता है ।"

निस्सन्देह श्रीमान् जवाहरलालजीकी यह लगन तथा परिश्रमशीलता देशके नवयुवकोंके लिए अनुकरणीय है ।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराशाजनक और खेदप्रद

सहयोगी 'आज' और उसके सुयोग्य सम्पादक श्रीयुत बाबूराव विष्णु पराड़करके प्रति हमारे हृदयमें बड़ी श्रद्धा है। अनेक अवसरोंपर 'आज' ने अपने स्वातन्त्र्य-प्रेमका परिचय देकर हमारा पथ-प्रदर्शन किया है। 'आज' का सबसे अधिक प्रशंसनीय गुण हमें यही जँचा है कि उसने अपने संचालकके मतका भी समय-समयपर विरोध किया है और इस प्रकार पत्रकारोंकी मानसिक स्वाधीनताका झंडा ऊँचा रखा है; इसलिए जब हमने ७ जनवरीके 'आज'के अग्रलेखमें निम्न-लिखित शब्द पढ़े, तो हमें बड़ी निराशा हुई—

" 'आज' कौन्सिल-प्रवेशका बराबर विरोधी रहा है, और आज भी उसे विश्वास नहीं है कि कौंसिलोंके द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें कुछ भी सहायता मिलेगी; पर महात्मा गांधी, राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू, भूतपूर्व राष्ट्रपति बिहाररत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद-जैसी वर्तमान विभूतियोंने भी कांग्रेसके कौन्सिलोंमें अपने प्रतिनिधि भेजनेके पक्षका समर्थन किया, तब हमने भी उनकी आज्ञाको शिरोधार्य समझा और कांग्रेसके उम्मेदवारोंका समर्थन करना अपना कर्तव्य घोषित किया।"

हमारी समझमें यह वाक्य 'आज' की चिरपरिचित स्वाधीन-नीतिके प्रति अन्याय करता है, क्योंकि जिस पालिसीका समर्थन उपर्युक्त वाक्यमें किया गया है, वह मानसिक स्वाधीनताकी जड़पर कुठाराघात करती है। जब 'आज' का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि कौन्सिलों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती, तो फिर कौंसिल-प्रवेशका समर्थन करना सरासर आत्माकी आवाज़की हत्या करना है। इस नीतिका अनुसरण करनेसे प्रत्येक पत्रको अपने दृढ़ विश्वासोंके विरुद्ध भी कांग्रेस-गज़ट बनना पड़ेगा, जिसे कोई भी आत्म-सम्मानयुक्त पत्रकार हर्गिज़ पसन्द न करेगा।

अपनी सदसद-विवेक-बुद्धिको किसी भी 'विभूति' के हवाले कर देना, चाहे वह विभूति गांधीजी अथवा लेनिनके समान बड़ी क्यों न हो, उस मानवका अपमान करना है, जो हम सबमें विद्यमान है।

—

सरकार और होमियोपैथी

भारतमें सरकारकी ओरसे जनसाधारणकी चिकित्सा का जो प्रबन्ध है, वह अत्यधिक अपर्याप्त है। समूचे ब्रिटिश भारतमें कुल ६,५९७ अस्पताल हैं। औसतमें ४१८०० आदमियों पीछे एक अस्पताल पड़ता है। यह औसत समूचे ब्रिटिश भारतका है। अगर देहाती हल्कोंको ही लिया जाय, तो हालत और भी खराब नज़र आयेगी। देहातोंमें ५८,५०० आदमियों पीछे एक अस्पताल पड़ता है, और भारतके ९० फी-सदी लोग देहातोंमें ही रहते हैं। देशकी विशाल आबादी और उसमें फैली हुई अगणित बीमारियोंको देखते हुए अस्पतालोंकी यह संख्या 'ऊँटके मुँहको ज़ीरा' के बराबर है। जब सरकार सारी जनताके रोग और पीड़ा दूर करनेमें असमर्थ है, तब उसे चाहिए कि जो कोई भी मानव-पीड़ाको दूर करनेका प्रयत्न करे, उसके साथ वह पूरा सहयोग करे और उसे पूरी-पूरी सहायता दे। परन्तु सरकार अब तक केवल एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीको ही स्वीकार करती और आश्रय देती रही है।

एलोपैथिक चिकित्सा अत्यन्त महँगी चिकित्सा है। भारतकी आबादीके एक काफी बड़े भागको दोनों वक्त भरपेट भोजन भी नसीब नहीं हो सकता, तब वह इस महँगी चिकित्सा-प्रणालीका उपयोग कैसे कर सकता है? फायदेके ख़यालसे होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली यदि अधिक नहीं, तो कम-से-कम उतनी ही कारगर है, जितनी कोई अन्य चिकित्सा-प्रणाली, और दामोंके ख़यालसे तो वह अत्यन्त सस्ती है। भारतकी वर्तमान अवस्थाको देखते हुए होमियोपैथिक प्रणाली बहुत सुविधाजनक और उपयुक्त है, यही कारण है कि भारतमें होमियोपैथीका प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। हालमें बंगाल - सरकारने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणालीको स्वीकार करके उसकी शिक्षाके लिए एक फैकल्टी बनानेका निर्णय किया है। बंगाल-सरकारका यह क़दम ठीक दिशामें है, और दूसरे प्रान्तोंकी सरकारोंको इसका अनुकरण करना चाहिए। किन्तु खेद है कि होमियोपैथी प्रणालीको स्वीकार करनेके लिए अभी तक सरकारने कुछ नहीं किया। जहाँ तक शरीर-संस्थान, शरीर-विज्ञान, सर्जरी, कृषि-विज्ञान आदि विषयोंका सम्बन्ध है, एलोपैथी और होमियोपैथीमें कोई फर्क नहीं, अन्तर है केवल चिकित्सा-प्रणालीका। तब सरकारको होमियोपैथी प्रणालीको स्वीकार करनेमें कोई पशोपेश न होना चाहिए।

—

अपने पाँव बिवाई

भारतमें ब्रिटिश सरकारके जो सीनियर ट्रेड कमिश्नर रहते हैं, उन्होंने अपनी सन् १९३५-३६ की सालाना रिपोर्टमें लिखा है—

"अगर हिन्दोस्तानके अधिकारी और राजनैतिक नेता इंग्लैण्ड आकर लंकाशायरके कपड़ेके मिलोंके इलाकेको (जिनमें से बहुतेरे भारतीय व्यापारके लगभग बन्द हो जानेके कारण उजाड़ हो रहे हैं), रेलके इंजन और गाड़ियाँ बनानेवाले कारखानोंको तथा इंग्लैण्डके अन्य उद्योग-धन्धोंको, जो भारतीय बाजारसे अलग कर दिये जानेके कारण बुरी तरह पीड़ित हैं, देखें, तो उन्हें मालूम होगा कि उनके सबसे बड़े गाहक (इंग्लैण्ड) पर उनकी चुंगीकी और सुरक्षाकी नीतिका कैसा प्रभाव पड़ा है। इस प्रकारकी यात्रा ओटावाके समझौतेके सम्बन्धमें भारत और इंग्लैण्डके बीच होनेवाली बातचीतके पहले होनेसे बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।"

क्या सरकार इंगलिशियाके इन ट्रेड-कमिश्नर साहबको यह पता है कि आजसे दो सौ वर्ष पहले भी भारतवर्ष कपड़ा पहनता था, और उसे अपना तन ढकनेके लिए किसी दूसरे देशके सामने हाथ पसारनेकी ज़रूरत नहीं होती थी? इतना ही नहीं, बल्कि दूसरे कई मुल्कोंकी तनपोशी भी इसी भारतके कपड़ेसे हुआ करती थी। भारतका यह महान रोज़गार किस तरह नष्ट हुआ या नष्ट किया गया और किस तरह लंकाशायरको भारतका तन ढकनेका ठीकेदार बनाया गया, किन-किन उपायोंसे लंकाशायरका पंजा भारतपर जमाया गया, उसके लिए कैसे-कैसे राजनैतिक और आर्थिक हथकंडे किये गये—क्या ट्रेड-कमिश्नर साहबने कभी इन बातोंपर भी ध्यान दिया है? कपड़ेका रोज़गार नष्ट हो जानेसे भारतके लाखों जुलाहे दाने-दानेको मोहताज हो गये और देहातोंमें जो भयंकर दरिद्रता और बेकारी फैली उसे देखनेके लिए लंकाशायर या इंग्लैण्डके कितने राजनीतिज्ञ भारत आये? ब्रिटिश पार्लामेंटने, जो अपनेको भारतकी भलाईका ठीकेदार कहा करती है, भारतकी इस दुर्दशाको देखनेके लिए कितने लोग भेजे और क्या-क्या उपाय किये?

अब जब कि ब्रिटिश शासकोंके महत्त्वपूर्ण उद्योगोंके होते हुए भी लंकाशायरका फौलादी पंजा कुछ ढीला होने लगा और अनेकों दिक्कतोंके होते हुए भी भारतका रोज़गार कुछ बढ़ने लगा, तब भारतीय अधिकारियों और राजनीतिज्ञोंको लंकाशायरके उजड़े इलाके देखनेका निमन्त्रण दिया जाता है। जब तक अपने पैरमें बिवाई नहीं फटती, तब तक लोग यह नहीं जानते कि बिवाई क्या होती है।

—

प्रिंस क्रोपाटकिनके अन्तिम दिन

'विशाल भारत' के पाठक इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने देश रूसके लिए ही नहीं, वरन संसारके पीड़ित मानव-समाजके लिए कितना परिश्रम किया था। चालीस वर्षके देश-निकालेके बाद जब वे स्वदेशको लौटे, उस समय बोल्शेविक लोगोंने उनके साथ कैसा बर्ताव किया, इसका विवरण उनकी लिखी 'Ethics' नामक पुस्तककी भूमिकामें मिलता है। मि० एन० लेबेदेव नामक सज्जनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है—"पैसेकी कमीसे क्रोपाटकिन वे किताबें भी नहीं ख़रीद सकते थे, जिनकी उन्हें ज़रूरत होती थी। हाँ, कभी-कभी मित्रों और परिचितोंकी मेहरबानीसे कोई-कोई आवश्यक पुस्तक मिल जाती थी, सो भी काफ़ी दिक्कतसे। इसी अभावके कारण वे कोई सेक्रेटरी या टाइपिस्ट भी नौकर नहीं रख सकते थे, इसलिए उन्हें मजबूर होकर दिमाग़ी कामके साथ-साथ यह चक्की पीसनेका काम भी करना पड़ता था, कभी-कभी अपनी पांडुलिपिके अंशोंको खुद ही बार-बार नक़ल करना पड़ता था। निस्सन्देह इसका दूषित प्रभाव उनके कार्यपर भी पड़ता था। इसके साथ यह बात भी कहना पड़ेगी कि मिट्रोव (Dmitrov) आनेके बाद वे शरीरसे भी कुछ अस्वस्थ रहने लगे थे—शायद पुष्टिकर भोजनके अभावसे। २१ जनवरी १९१९ के पत्रमें उन्होंने मुझे लिखा था—'मैं (अपनी पुस्तक) 'ईथिक्स'का काम परिश्रमसे कर रहा हूँ; लेकिन अब मुझमें बहुत थोड़ी शक्ति बची है, और कभी-कभी मजबूर होकर काम बन्द भी कर देना पड़ता है।' इसके साथ ही और भी बहुत-सी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती थीं, मसलन् बहुत दिनों तक उन्हें रातमें बहुत थोड़ी रोशनीमें ही काम करना पड़ा था।"

जिस महानुभावने अपने देशके लिए सर्वस्व अर्पित कर दिया, वह जब स्वदेशको चालीस वर्ष बाद लौटता है, तो उस वृद्ध तपस्वीके साथ यह बर्ताव किया जाता है! इसे पढ़कर किस सहृदय व्यक्तिको रोना न आवेगा। प्रिंस क्रोपाटकिनने किसीसे शिकायत न की, क्योंकि वे तो किसी प्रकारके राज्य या शासनमें विश्वास ही न रखते थे; पर उनके मित्रोंने बोल्शेविक अधिकारियोंसे प्रार्थना की कि प्रिंस क्रोपाटकिनकी वृद्धावस्था तथा अस्वस्थताका खयाल किया जाना चाहिए; पर उन्हें कुछ भी सफलता न मिली! आख़िर लेनिनका दरवाज़ा खटखटाया गया। सौभाग्यवश लेनिनमें सहृदयता बाक़ी थी। वे प्रिंस क्रोपाटकिनके बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने स्थानीय सोविएटको तुरन्त आज्ञा दी कि प्रिंस क्रोपाटकिनको गाय रखने दो और उनको दिये जानेवाले भोजनकी मात्रा भी बढ़ा दो।

डिसिप्लिन तथा शासनके प्रेमियोंसे हमारा अनुरोध है कि ज़रा ध्यान देकर देखें कि नियन्त्रणका यह मोह हमें किस हृदयहीनताके समुद्रमें जाकर डुबो देगा। जब प्रिंस क्रोपाटकिन-जैसे संसारके महापुरुषोंके प्रति शासन-प्रेमी इस प्रकारका कृतघ्नतापूर्ण बर्ताव कर सकते हैं, तो साधारण कार्यकर्ताओंको पूछता ही कौन है?

—

'लूटि जाइ सो लूटि'

अछूत जातियोंको हिन्दूधर्मसे अलग करके अपनेमें हज़म करनेके लिये ईसाइयों, मुसलमानों सिखों, और बौद्धोंकी लार किस तरह टपकी पड़ती है इसका वृत्तान्त समाचारपत्रोंके पाठकोंको समय-समयपर मिलता रहता हैं। ईसाइयोंके बड़े-बड़े नेता Mass conversion एक साथ समूहोंके समूहको ईसाई बनानेकी तरकीब सोचनेमें दिन-रात परेशान हैं, और मुसलमान लोगोंने चुपके-चुपके उन्हें अपने दीनके झंडेके नीचे लानेके उद्योगमें नींद हराम कर रखी है। इसके लिए उन्होंने मिस्रसे भी एक तबलीगी डेपूटेशन बुलाया है। अभी उस दिन दिल्लीमें सिखोंने ५०० अछूतोंको सिख बना लिया और मलाबारमें बौद्ध मिशन इसी उद्देश्यसे काम कर रहा है। बाबा तुलसीदाससे क्षमा प्रार्थना करते हुए हम यही कहते हैं—

"हिन्दु जातिकी लूटि है लूटी जाइ सो लूटि;
अन्त काल पछिताइगौ, प्राण जाँइगे छूटि।"

हाँ, ऐसा मौक़ा फिर हाथ थोड़े ही आवेगा। बाइबिलमें क्या-क्या उच्च उपदेश लिखे हैं अथवा कुरान किस धार्मिक सहिष्णुताका उपदेश देता है, इन बातोंको सुनते-सुनते कान पक गये। हम तो ईसाई पादरियों या मुसलमान मुल्लाओंकी इस लूट-नीतिको बाइबिल या कुरानकी तौरेतों और आयतोंकी सबसे अधिक उज्ज्वल (या कालिमापूर्ण?) टीका समझते हैं। इससे हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विश्वास और भी दृढ़ होता जाता है कि इस नाममात्रकी धार्मिक मनोवृत्तिको जड़मूलसे नष्ट किये बिना संसारका कल्याण नहीं हो सकता। कम्यूनिस्ट लोग धर्मको जो अफीम कहते हैं, सो क्या बुरा कहते हैं। धर्म अफीम ही नहीं, वह संखिया भी है और कभी-कभी तो पोटेशियम साइनाइड भी सिद्ध होता है।

—

डिक्टेटरशिप ?

कांग्रेसके अधिकारियोंके रंग-ढंग और चाल-ढाल देखकर यह प्रतीत होता है कि उनकी मनोवृत्तिका रुख़ डिक्टेटरशिपकी ओर है और देशकी राजनैतिक हवा उसी दिशामें बह रही है। हम लोग सरकारको बराबर इस बातके लिए दोषी ठहराते हैं कि वह स्थानीय अधिकारीका (Man on the spot) हर हालतमें समर्थन करती है। सरकारकी इस नीतिके मूलमें प्रेस्टिजका ख़याल काम करता रहा है। व्यवस्थापक सभाके सदस्योंके चुनावमें प्रान्तीय पार्लामेण्टरी बोर्डने जो ग़लतियाँ की हैं, उनकी शिकायत जब कांग्रेसके प्रधान कार्यालयसे की गई, तो वहाँसे रूखा जवाब मिला। यह सरकारी नीतिकी नक़ल नहीं, तो क्या है? कांग्रेस द्वारा मनोनीत आदमियोंके चुनावका जो लोग विरोध कर रहे हैं, उन्हें कांग्रेसकी मेम्बरीसे अलग कर देना इस बातका सूचक है कि कांग्रेस डिक्टेटरशिपकी ओर क़दम बढ़ा रही है।

श्री जवाहरलालजीने अपने लाहौरके भाषणमें कहा है—"I am not ashamed of saying that I think I am fit for every job. I think I am fit to rule India, nay the whole world. (cheers)" —'मुझे यह कहनेमें कुछ भी शर्म नहीं है कि मैं प्रत्येक कामके लिए योग्य तथा समर्थ हूँ। मैं समझता हूँ कि मैं भारतवर्षपर—भारतपर ही नहीं, समस्त संसारपर शासन करनेमें समर्थ हूँ (तालियाँ)।"

हमारा यह अनुमान है कि उत्साहकी लहरमें बहकर ही श्री जवाहरलालजीने उपर्युक्त बात कह डाली है, नहीं तो संसारके दो अरब आदमियोंपर शासन करनेकी योग्यता अपनेमें मानना महज़ ख़ामख़याली है। शायद नेपोलियन और चंगेज़ ख़ां भी इसी मनोवृत्तिके शिकार थे। प्रिंस क्रोपाटकिनने एक जगह लिखा है—"We affirm that the best of men is made essentially bad by the exercise of authority." —'हमारा यह दृढ़ निश्चय है कि यदि सर्वश्रेष्ठ आदमियोंके हाथमें भी शासन दे दिया जाय, तो वे भी अवश्यमेव ख़राब बन जायँगे।'

हम यह मानते हैं कि भारतवर्षमें ऐसे मनुष्योंका ही बाहुल्य है, जो बिलकुल लबड़-धोंधों तरीक़ेपर काम करते हैं और उनके लिए डिसिप्लिन या 'नियन्त्रण' का ज़बरदस्त मूल्य है; पर जिस समय डिसीप्लिन अपनी सीमाको पार कर जाती है, उस समय वह खुद एक अवांछनीय चीज़ बन जाती है। जिनपर देशकी सारी आशाएँ निर्भर हैं, यदि वे ही ग़लती करने लगें, तो इससे अधिक खेदकी बात और क्या हो सकती है?

यदि सहृदयता और न्यायका बलिदान करके डिसिप्लिनकी रक्षा की गई, तो फिर वह स्वयं एक दुर्गुण बन जायगी। उदाहरणके लिए, एक घटनाको लीजिए। कलकत्तेसे सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री श्रीमती ज्योतिर्मयी गंगोलीके विरुद्ध जिन महिलाको खड़ा किया गया था, उन्होंने राजनैतिक कार्यक्षेत्रमें क्या-क्या कार्य किये हैं, इसका पता बहुतोंको नहीं। श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय 'प्रवासी' में लिखते हैं—"कांग्रेसने श्रीमती ज्योतिर्मयी गंगोपाध्यायको मनोनीत न करके जिन महिलाको चुना है, उन्होंने राजनैतिक अथवा सार्वजनिक अवैतनिक कार्यक्षेत्रमें क्या सेवा की है, उसके बारेमें हमने कभी कुछ नहीं पढ़ा और न कुछ सुना ही।" बंगाल और कलकत्तेमें नौ वर्ष रहनेपर हमने उन महिला महोदयाका नाम भी नहीं सुना। यहाँ कांग्रेस द्वारा सचमुच अन्याय हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डिसिप्लिनके नामपर इस प्रकारके अन्यायका समर्थन करना डिक्टेटरशिप नहीं, तो क्या है ? फिर हम किस मुखसे सरकारी ब्यूरोक्रेसीकी निन्दा कर सकते हैं, जब बड़े लाट साहब छोटे लाट साहबकी बातका, या कलेक्टर साहब दरोगाजीकी बातका हर हालतमें समर्थन करें ?

—

यह आर्य-धर्म संगठन !

अन्यत्र हम भिक्षु आनन्द कौसल्यायनका उक्त शीर्षकका लेख प्रकाशित कर रहे हैं। पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे उस लेखको ध्यानपूर्वक पढ़ें और उसमें उठाये हुए प्रश्नपर विचार करें। सवाल यह है कि क्या श्रीमान बिड़लाजी द्वारा बनवाई हुई धर्मशालामें बौद्ध, हिन्दू, सिख और जैनोंके अतिरिक्त और कोई भी ठहरने पावेगा या नहीं ? भिक्षु आनन्दके लेखसे तो यही प्रकट होता है कि ईसाइयों और मुसलमानोंके लिए इस धर्मशालाके द्वार बन्द रहेंगे। उदाहरणार्थ यदि खुद ईसामसीह फिर अवतार लेकर सारनाथ आवें तो नियमानुसार उन्हें इस धर्मशालामें स्थान नहीं मिल सकता ! और भगवान गौतमबुद्ध तो स्वयं इस धर्मशालाको त्याज्य समझेंगे, क्योंकि यह धर्मशाला उनके विश्व-धर्मको संकुचित करती है, उनकी सार्वभौमिक संस्कृतिकी जड़पर कुठाराघात करती है।

इस आर्य-अनार्यके थोथे और निस्सार झगड़ेके पीछे कौन-सी मनोवृत्ति छिपी हुई है ? भारतके मुसलमान अपनी ८ करोड़की संख्याको २६ करोड़ बनानेके लिए जिस दलीलसे काम लेते हैं, वही दलील श्रीमान बिड़लाजीके उर्वर मस्तिष्कमें काम कर रही है। सचमुच बिड़लाजी किसी मनोवैज्ञानिक डाक्टरके लिए उपयुक्त मरीज़ बनते जा रहे हैं। यदि किसी कमीशनके सामने उनको कटघरेमें खड़ेकर उनसे जिरह की जाय तो पता लगेगा कि भारतमें साम्प्रदायिकताके विषको फैलानेमें बिड़लाजीका हिस्सा हिज़ हाइनेस आगा खांसे किसी प्रकार कम नहीं है। शुद्धि आन्दोलनके लिए उन्होंने कितना व्यय किया, इसकी भी जाँच होनी चाहिए। हिन्दुओंकी संख्या वृद्धिके पीछे वे दीवाने हैं। क्या डच-गायनामें और क्या मलाबारमें, जहाँ कहीं भी कोई आदमी 'शुद्धि'के लिए प्रयत्न करता हो वहाँ बिड़लाजीका हाथ दीख पड़ेगा। इस बातकी भी जाँच होनी चाहिए कि जो रुपया श्रीमान बिड़लाजी कमाते हैं, वह क्या कोरमकोर 'आर्य' लोगोंके परिश्रमका परिणाम होता है ?

मालूम नहीं कि श्रीमान महात्मा गांधी अथवा श्री जवाहरलालजीको बिड़लाजीकी इस भयंकर मनोवृत्तिका पता है या नहीं। यदि पता नहीं, तो सचमुच बड़े आश्चर्यकी बात है, और यदि पता है, तो वे सार्वजनिक रूपसे इसका विरोध क्यों नहीं करते ? हमें हर्ष है कि कम-से-कम एक बौद्ध भिक्षु तो ऐसे विद्यमान हैं जिनमें बिड़लाजीकी इस पथभ्रष्ट दानवीरताका विरोध करनेका साहस है, और एतदर्थ भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी हमारी बधाईके पात्र हैं।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमवासिनी

'विशाल भारत'] [श्री चिन्तामणि कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १९, अंक २] फागुन १९९३ :: फरवरी १९३७ [पूर्ण-अंक ११०.

पहेली

श्री विनयकुमार

जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?
जाने क्यों निशि-निशि जाग प्रिये ! इन आँखोंमें भुंसार किया ?

"भूठे जगके व्यापार सभी,
छोड़ो, किस धुनमें कहाँ चले ?
बुझ गये उषामें लो देखो,
प्रियतम ! संध्याके दीप जले ?"
तुम मुझसे कहती रहीं प्रिये ! पर मैंने कब स्वीकार किया ?
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

इस जगतीमें आकर मैंने,
अपनेको सुख-दुखमें न भुला ;
बच पाप - पुण्यकी उलझनसे,
परलोक अचिंतनमें न घुला !
अज्ञात - प्रणयकी पूजा की, पागलपनका सत्कार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

पतझड़में झाड़ खड़े चुप थे,
अनिमेष उदास सभी मनमें !
जब भर लाये रसके दोने,
ऋतुराज अचानक ही वनमें !
पल्लव, डालोंपर थिरक उठे, कोकिलने स्वरित सितार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

सर सूख रहे थे गरमीसे,
ज्वाला सुलगी थी भूतलमें ;
जब गरज उठे घनश्याम सजल,
सूनी दिशि-दिशिके अंचलमें !
सुर-चाप लिये सौदामिनिने, पल-पल आलोक-प्रसार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

सुखकी मृदु-शय्या छोड़ प्रिये !
निर्जनमें टीलोंपर सोया ;
जब आँख खुली, सुधि-सी आई,
तृण-तरुसे लिपट-लिपट रोया !
फिर आँसू पोंछ हँसा क्यों मैं ? जीमें कुछ नहीं विचार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

वे दुर्दिन थे जिनमें मेरी,
तुमसे कोई पहिचान न थी ;
मैं गायक था माना, इतनी पर—
सरस-सुरीली तान न थी ?
यश गूँज उठा त्रिभुवन भरमें, जब तुमने स्वर-शृंगार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीर साहब

(संस्मरण)

बनारसीदास चतुर्वेदी

मुसलमानोंको हिन्दी अवश्य पढ़नी चाहिए, और हमें ? हमें उर्दू पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है ! दक्षिण-भारतके निवासियोंका यह कर्तव्य है, यह धर्म है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दीका अध्ययन करें, और हमारा कर्तव्य क्या है ? तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ी भाषा पढ़ना हमारे लिए बिलकुल व्यर्थ है ! बंगालियोंमें प्रान्तीयताका प्राबल्य है ; वे हिन्दीकी ओर ध्यान नहीं देते। और हम लोगोंमें किस चीज़का प्राबल्य है ? अवश्य ही हम लोगोंमें मिशनरी स्पिरिटका प्राबल्य है, जब कि लाखों ही हिन्दी-भाषा-भाषी करोड़ों रुपये इस भूमिसे कमाकर अपने-अपने प्रान्तोंको भेजते हैं और इस भूमिमें राष्ट्र-भाषाके प्रचारार्थ एक कानी कौड़ी खर्च करना भी हराम समझते हैं ! जब काका साहब कालेलकरने एक हिन्दी - प्रोफेसरसे कहा कि हमें दक्षिण-भारतमें हिन्दी - प्रचार करते समय अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, तो उक्त अध्यापक महोदयने उत्तर दिया कि इसमें क्या है, ये कठिनाइयाँ तो चुटकी बजाते दूर हो जायँगी। काका साहबने पूछा—कैसे ? उत्तर मिला—'हम दक्षिण-भारतवालोंसे कहेंगे कि भारतमें शासनका केन्द्र सदा उत्तरमें ही रहा है, इसलिए आप उत्तर-भारतकी भाषा हिन्दीको पढ़िये।' इस तर्कको सुनकर हमारे दक्षिण-भारतके एक मित्र श्रीयुत नारायण स्वामी अय्यरने उत्तर दिया—'उत्तर-भारतमें जो मानसून पहुँचते हैं, वे दक्षिणसे ही आते हैं, इसलिए आप लोगोंको दक्षिण-भारतकी भाषाएँ पढ़नी चाहिए।'

हाँ, तो मुसलमानोंको हिन्दी अवश्य पढ़नी चाहिए। मीर साहब (सैयद अमीर अली 'मीर') ने हिन्दी ही पढ़ी थी। साहित्य-सेवा और साहित्य-सेवियोंके विषयमें उनके विचार कितने उदार और व्यापक थे, इसका अनुमान पाठक निम्न-लिखित पंक्तियोंसे, जो मीर साहबने २०-१०-२६को अपने एक पत्रमें राजा लक्ष्मण सिंहकी शताब्दीके अवसरपर गणेश महेश स्टोर धमतरी (सी० पी०) से लिख भेजी थीं, कर सकते हैं—

"सद्य कालीन भारतीय कवि और लेखक यदि ऐसा साहित्य-निर्माण कर सकें, जो लोगोंको प्रेमरज्जुसे बाँध दे, संगठन करना सिखा दे हमारी धर्म-भावनाओंको स्पर्द्धा-रहित कर दे, आत्म-गौरवके साथ हमें यह कहनेका साहस दिला दे कि घरमें हम १०० और ५ (कौरव पाण्डव) भले ही हों, पर बाहरके लिए १०५ हैं, और इतना ही क्यों, काम पड़नेपर शान्तिके साथ देशकी वेदीपर हँसते-हँसते बलि हो जानेका आत्मबल उनमें आ जाय। घर, समाज और उपासना-मन्दिरोंमें वे, उन धर्मोंका पालन करते हुए देखे जायँ, जिन्हें उनकी आत्माने स्वीकृत किया हो ; किन्तु जब वे देशके प्रांगणमें एकत्र हों, तब जननी जन्मभूमिके नाते, सहोदर भाईके समान, कंधे-से-कंधे भिड़ाकर खड़े हों, भाईके मानापमानको अपना मानापमान जानें, एकके सुखके सब सुखी और दुःखसे सब दुःखी हो जायँ। यदि हम समयके अनुकूल ऐसा साहित्य उत्पन्न न करके पुरानी लकीरको ही पीटनेका अभ्यास जारी रखेंगे, तो हम लोग अवनतिके गहरे गढ़ेसे कभी बाहर न निकल सकेंगे।

"ऊपर जिस विशुद्ध साहित्यके निर्माण करनेके सम्बन्धमें निवेदन किया गया है, वैसे साहित्य-निर्माणके लिए सुयोग्य साहित्यज्ञोंकी आवश्यता है। स्वभावतः धनी-मानी तो साहित्यज्ञ होते नहीं हैं ; जो होते हैं, वे प्रायः निर्धन कुलमें जन्म लेनेवाले। वे होश सम्हालते ही नमक तेल लकड़ीकी चिन्तामें पड़ जाते हैं। समृद्धिशाली भारतके पूत अपने ही देश, अपने ही घरमें अपने ही भाइयों द्वारा न तो सम्मान पानेके अधिकारी हैं, न पेटभर रोटियाँ पानेके।.....आज भारतमें अनेक अभागे कौड़ियोंके मोलपर अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या-बुद्धि बेचना चाहते हैं ; पर कोई लेनेवाला नहीं ! मुझे स्मरण है, अभी हालमें एक साहित्य-सभाके नामी-गरामी सभापतिने एक मेरे सम्भ्रान्त मित्रसे अपना भाषण पीठ ठोक-ठोककर लिखवाया। बदलेमें सभापति महोदयने साहित्य-प्रेमियोंसे तालियोंकी गड़गड़ाहटमें वाहवाही लूटी ; परन्तु लेखकने पाई केवल पच्चीस रुपट्टी ! बेचारा मन मारकर रह गया। वर्तमान क़ानून भी ऐसे मानकी रक्षा करनेमें सहायक है। किसकी मजाल है कि नाम लिखकर सुबूत कर दे ? स्वयं इन पंक्तियोंके लेखकको एक पदाधिकारी साहित्याचार्यने एक काव्य-ग्रन्थके सम्पादन-कार्यमें प्रलोभन देकर कसकर जोता ; पर काम हो जानेपर रास्ता दिखला दिया ! एक और मेरे जाने-माने आशुकवि हैं। मुझे मालूम है कि उनकी जीविका सुखमय नहीं है। इतने कथनका तात्पर्य यह है कि ज़रूरत इस बातकी आ पड़ी है कि साहित्य-सेवियोंकी जीविकाका उचित प्रबन्ध किया जाय। अधिकार तथा धन प्राप्त प्रभुओंके हृदयमें यह बात जँचा देनेकी ज़रूरत है कि विलायती कुत्ते ख़रीदने, सिनेमा कम्पनीके शेयर लेने, गौहरजान बन्दीजानकी प्रसन्नता प्राप्त करने आदिसे न आपका भला होगा, न जिनके पैसेके बलपर आप ऐश्वर्य-भोगी बने हुए हैं, उनका होगा।"

स्वयं इन आर्थिक कठिनाइयोंके कारण श्रीमान मीर साहबको एक रियासतकी नौकरी करनी पड़ी थी। उनकी अन्तरात्माको इससे कितना कष्ट हुआ था और साहित्य-क्षेत्रमें आनेके लिए उनकी आत्मा कैसे छटपटाती थी, इसका वृत्तान्त पाठकोंको निम्न-लिखित पत्रसे मिल सकता है—

"पण्डितजी, एक पेंशनर आदमीकी तरह मैं हिन्दी-साहित्य-सेवाकी ओरसे उदासीन-सा हो गया हूँ, इसका मुझे दुःख है। जिस साहित्य-सेवासे सेवक अपने नामको अजर-अमर कर जाता है, उसीकी ओरसे मेरा परांगमुख हो जाना खेदकी बात है। इसे मैं अपना पतन समझता हूँ, और पतनका प्रारम्भ उस दिनसे मानता हूँ, जिस दिनसे मैंने एक देशी राजस्थानमें क़दम रखा और राज-सेवाके लिए आगे बढ़ा। सोचा कुछ और था, हुआ कुछ और। राज-सेवा तो एक ओर रह गई, राजा-सेवाके लिए शरीर बिक-सा गया। आज़ादीका नाम-निशान मिट गया। आँखें एक तो ऊपर उठती ही न थीं, यदि उठती थीं, तो राजा साहबका रुख़ देखनेके लिए। कान बाहरी चर्चा सुननेके लिए बहरे थे ; लेकिन राजा साहबके श्रीमुखसे शब्द निकलनेके पूर्व ही (ओष्ठ स्पन्दन होते ही) सतर्क हो जाते थे। जिह्वा हाँमें हाँ मिलानेकी आदी हो गई। सबसे बड़ी सज़ा इसे ही मिली। चौबीसो घंटे, तीसो दिन, बारहो महीने उसे बत्तीस दाँतोंके भीतर एक एकान्तवासी क़ैदीकी तरह रहना पड़ता था। उसे अपनी ओरसे बोलनेका कोई हक़ ही न रह गया था। हाथ दीन-दुखियोंकी सहायताके लिए शायद ही कभी आगे बढ़े हों, रेलवे सिगनलकी तरह वह राजा साहबकी मर्ज़ीपर उठते और गिरते थे। राजा साहबको देखते ही पैर धरतीमें धँस-से जाते थे ; लेकिन उनके शासनपर हवाकी तरह वेगवान हो जाते थे। इन वाह्य इन्द्रियोंके व्यापारमें पड़कर मन भी मर गया। उसमें भी अपना कुछ न रह गया। निदान मैं जिन साहित्य-सेवियोंके साथ साहित्य-क्षेत्रमें चल रहा था, उनका साथ छूट गया। अब मैं एक पंख कटे पक्षीकी तरह तड़फता तो हूँ, लेकिन उड़ नहीं सकता।"

मीर साहबको एक अन्य ज़मींदार साहबके यहाँ काम करना पड़ा। परिस्थितिका अन्दाज़ निम्न-लिखित पंक्तियोंसे हो सकता है—

"आपके दो कृपापत्र मिले। उत्तर बहुत विलम्बसे दे रहा हूँ। इस तथा गत अगस्त मासमें जमींदारीके काममें कई बार बाहर जाना आना पड़ा। इसके अलावा आफिस क्लार्क बीमार होकर गत अगस्त मासकी ५ ता० को चला गया है। दूसरे क्लार्कके देनेकी कृपा ज़मींदार साहबने नहीं की। उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम है कि मैनेजर ऐसा नर है, जो पीर बबर्ची भिश्ती खरकी उक्तिको चरितार्थ कर सकता है। महाजनी साल दीवालीको समाप्त होता है, इसलिए साल-तमामका हिसाब और रिपोर्ट भी इन्हीं दिनों तैयार करनी पड़ती है। दीवानी झगड़े सदा दीवाना बनाते ही रहते हैं, इसपर उम्रका तक़ाज़ा भी है (घरकी झंझटोंको छोड़ देता हूँ), इस कारण अवकाश नहीं मिल रहा है। .....जिन श्रीमानके यहाँ मैं हूँ, वह वर्तमान सरकारके अनन्य भक्त हैं। तुलसीदासजीने नव प्रकारकी भक्तियाँ गिनाई हैं, अतः ईश्वरकी भक्ति करनेवाले भक्त भी नव प्रकारके होते हैं। ये राजभक्तिके ख़िताबी (रायबहादुर) भक्त हैं। मालूम नहीं, किस संख्यामें इनकी गणना की जाय। ये साहित्यके सम्बन्धमें इतना ही जानते हैं कि उसमें राजको उलट देनेकी शरारत (!) के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए वे अपने किसी नौकरको किसी साधारण सभामें भी जानेकी इजाज़त नहीं देते। खुद भी कुछ नहीं करते और दूसरोंको भी नहीं करने देते। वे अपने विभवकी रक्षा वर्तमान राज्य-रक्षामें ही समझते हैं।"

मीर साहबसे कबसे पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ, यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। आजसे १८-१९ वर्ष पहले जब स्वर्गीय सत्यनारायणजी कविरत्नका 'मालती-माधव'का अनुवाद प्रकाशित हुआ था, उस समय मैंने उसकी एक प्रति मीर साहबकी सेवामें भेजी थी। मीर साहबने उसकी स्वीकृतिमें एक बड़ा सुन्दर पत्र भेजा था। वह पत्र तो दुर्भाग्यवश मुझसे खो गया; पर उसमें लिखी गई कविता अब भी मुझे कण्ठस्थ है :—

भारत-मानसजा ब्रजभाषाकी माधुरी जामें रही सरसाई
भावते भाव भरे भवभूतिके भारत-नीतिकी नीकी निकाई
ओज प्रसाद-मई कविताकी बही सरिता-सी सदा सुखदाई
भाइहै 'मीर' मनै मनमोहिनी मालती-माधव मंजुलताई

मीर साहबका लिखा हुआ 'बूढ़ेका ब्याह' मुझे बहुत पसन्द आया था, और उसे मैंने कई बार पढ़ा और दूसरोंको सुनाया भी था। जिन लोगोंने 'मर्यादा'में प्रकाशित मीर साहबके खोजपूर्ण लेख 'मुहर मीमांसा'को पढ़ा था, वे उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। क्या ही अच्छा होता, यदि यह विद्वत्ता साहित्य-क्षेत्रकी सेवामें लगाई जा सकती; पर दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। 'समालोचक' नामक पत्रमें अवश्य पचीस रुपये महीनेकी नौकरी उन्हें मिली थी। एक बार जब 'प्रेमा' में श्रीयुत ज़हूरबख़्शजीका एक लेख निकला था, तो उसमें कुछ भ्रमात्मक बातें छप गई थीं, यद्यपि लेख सदुद्देश्यसे लिखा गया प्रतीत होता था। उस लेखकी भ्रमपूर्ण बातोंके विषयमें मैंने मीर साहबसे पूछा था। उन्होंने अपने १७-४-३१ के पत्रमें लिखा था—" 'समालोचक'-सम्पादकने ३०) मासिकपर नहीं, २५) पर रखा था। 'समालोचक'को त्यागकर मैं नहीं भाग निकला, बल्कि अर्थाभावके कारण 'समालोचक' मेरा भार न सम्हाल सका। इसके सिवा मैं भाई अब्दुलग़नीके सामने आज़ाद न था। और भाई ग़नी २३-२४ वर्षीय नवजवान आदमी थे और मैं ५४ सालका बूढ़ा पेंशनपर बैठाल देने योग्य आदमी था, इसलिए विचारोंमें सामंजस्य स्वभावतः सम्भव न था, तो भी ग़नी भाईने अन्त तक मेरा मान रखा। इसलिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।"

मीर साहबका हिन्दी-प्रेम

मीर साहबके विषयमें श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'कविता-कौमुदी' द्वितीय भागमें एक सुन्दर परिचयात्मक लेख है। उसमें से हम निम्न-लिखित अंश उद्धृत करते हैं:—

"सन् १८९५में देवरीमें 'मीर-मण्डल कवि-समाज'की स्थापना हुई। मीर साहबकी अध्यक्षतामें इस कवि-समाजने लगातार सात-आठ वर्षों तक खूब काम किया। इतने समय तक देवरीमें साहित्य-विषयक चर्चा ज़ोरोंके साथ चलती रही। इसके फल-स्वरूप यहाँके कुछ नवयुवकों तथा विद्यार्थियोंकी रुचि साहित्यकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर आकर्षित हुई। इनके शिष्य-समुदायमें से अनेक आज सुकवि, लेखक, ग्रन्थ-प्रकाशक तथा सुचित्रकारके नामसे ख्यात हो रहे हैं। इनके दिये उत्साह और श्री लक्ष्मीनारायण वकील औरंगाबादकी आर्थिक सहायतासे श्रीयुत मंजु सुशीलने 'लक्ष्मी' मासिक पत्रिकाका सम्पादन उसकी प्रारम्भिक दशामें योग्यता-पूर्वक किया। उसमें मीर साहबका विशेष हाथ रहा करता था। इसी समय श्री नाथूराम प्रेमीसे 'जैनमित्र' में लेख लिखाना प्रारम्भ कराया। परिणाम यह हुआ कि वे आगे चलकर उसी पत्रके सम्पादक हो गये। मीर साहबका विचार था कि इस क़स्बेमें ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जाय, जिससे कुछ सुयोग्य सम्पादक, लेखक, कवि, व्याख्याता और वैद्य होकर जनताकी सेवा करने लगें; परन्तु इस विचारमें ये सफलता प्राप्त न कर सके, जिसका इन्हें आज भी खेद है।

देवरीमें सन् १९०७ में, जिस समय पहली बार प्लेगका आक्रमण हुआ, उस समय वहाँके मालगुज़ार स्वर्गीय लाला भवानीप्रसादके अर्थ-साहाय्यसे मीर साहबने जनताकी प्रशंसनीय सेवा की थी। इनके हाथसे लगभग ४७५ आदमियोंकी चिकित्सा हुई थी, जिसमें से सैकड़े पीछे ८३ रोगियोंको आरोग्य प्राप्त हुआ था।

इनके शान्त प्रयत्नसे देवरीमें स्वदेशी कपड़े तथा शक्करका खूब प्रचार हुआ था। मीर महोदय गो-रक्षाके भी बहुत पक्षपाती हैं। इनके मतसे भारतमें कृषि-कार्यके लिए गो-वंशकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है। ये कहा करते हैं कि यदि गो-वंशका विनाश जारी रहा तो निकट-भविष्यमें यहाँके किसानोंको विलायती बाज़ारोंका मुँहताज होना पड़ेगा। बहुत दिन पहले कलकत्तेके हासानन्द वर्माने गो-रक्षाके लिए चन्देकी अपील की थी। उस समय इन्होंने देवरीमें बड़े परिश्रमसे चन्दा करके भिजवाया था। इनकी प्रतिभा हिन्दू शास्त्र और पुराणोंके कथा-प्रसंग जाननेमें बहुत बढ़ी-चढ़ी है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायणपर इनको अतुल अनुराग है। ये उसे गृह-क़ानूनका आदर्श ग्रन्थ बतलाते हैं। इनकी भाषा खूब परिमार्जित हिन्दी है। इनसे बातचीत करते समय कोई यह अनुभव नहीं कर सकता है कि मैं एक मुसलमान सज्जनसे बातचीत कर रहा हूँ।"

हम लोगोंकी अदूरदर्शिता

उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह बात स्पष्ट है कि मीर साहब हिन्दू-संस्कृतिसे कितने प्रभावित थे और हिन्दीके लिए उन्होंने क्या-क्या उद्योग किये। अन्यत्र हम उनकी कई कविताएँ 'कविता-कौमुदी' से उद्धृत कर रहे हैं, उनसे मीर साहबकी सहृदयता तथा सद्भावनाका पता लग सकता है। क्या हम लोगोंका यह कर्तव्य नहीं था कि हम ऐसे सहृदय सज्जनकी धार्मिक भावनाओंका सम्मान करते? 'शिवाबावनी' जैसी पुस्तकको पाठ्यक्रममें नियत करते समय क्या हम लोगोंका फर्ज़ नहीं था कि इस बातको जाननेकी कोशिश करते कि इसका प्रभाव ईमानदार हिन्दी-प्रेमी मुसलमानोंपर क्या पड़ेगा?

जिन दिनों 'शिवाबावनी'-विषयक आन्दोलन पत्रोंमें चल रहा था, हमने मीर साहबसे प्रार्थना की थी कि वे उसके विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करें। उसका उत्तर देते हुए मीर साहबने लिखा था—"यह स्थान साहित्य-प्रेमियोंसे रहित है। अनाजकी मंडी है। मारवाड़ी (हिन्दू) और मैमन (मुसलमान) व्यापारियोंकी भरमार है। कोई पुस्तकालय भी नहीं, इतनेपर मेरी विद्या-बुद्धि अति सीमित है। इसलिए सहसा किसी उत्तरदायी काममें हाथ डालते डरता हूँ। आपने 'शिवाबावनी' के सम्बन्धमें मेरे मनके भाव जानना चाहे हैं। उसके सम्बन्धमें इस समय इतना लिखना बस होगा कि मेरे पास 'शिवाबावनी' पुस्तक थी। उसपर दृष्टि पड़ते ही हृदयमें बुरी भावनाएँ उत्पन्न होती थीं, जो मेरे विचारोंको कुत्सित कर देती थीं। इसलिए ऐसी अहितकर पुस्तकको मैंने लगभग १५-१६ वर्ष पूर्व अपने पाससे पृथक कर दिया। 'शिवाबावनी' के पक्षकारोंकी संख्या भी कम नहीं है। माननीय पं० जगन्नाथप्रसाद जैसे सज्जन विद्वान (भूतपूर्व सभापति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन) उनके प्रशंसक व पक्षकार देखे जाते हैं। किन्तु इस विषयमें आपकी दूरदर्शी सद्भावनाके लिए अनेक धन्यवाद।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने २१-९-३४ के पत्रमें मीर साहबने लिखा था—"हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कर्णधार मेरे एक अवांछित, किन्तु विवश होकर किये हुए कामसे शायद नाराज़ हो गये हैं। मुझसे अपराध यह बना था कि श्री धीरेन्द्र वर्माके एक सम्पादकीय लेखसे, जो उन्होंने ३-४ वर्ष पूर्व सम्मेलन-पत्रिकामें प्रकाशित किया था, मुझे दुःख हुआ था। वर्माजीने ज़ोर दिया था कि हिन्दीमें से उर्दूको निकाल बाहर करो। जो सम्मेलन एक बार नहीं, दो बार यह बात स्वीकार कर चुका हो और हिन्दी विद्वानों द्वारा उसका प्रतिपादन करा चुका हो कि हिन्दी-उर्दूमें लिपि-भेदके सिवा और कुछ भेद नहीं है, उसी सम्मेलनकी प्रमुख पत्रिका द्वारा उर्दूके बहिष्कारका आयोजन किया जाय, यह कैसा आश्चर्य है। मैं प्रारम्भसे स्थायी समितिका नाममात्रका सभ्य था। मैंने उस सभासदीसे इस्तीफा दे दिया। कारण साफ लिख दिया कि मैं नहीं चाहता कि जब कभी हिन्दी-विकासका सच्चा इतिहास लिखा जाय—जो अवश्य ही लिखा जायगा—उसमें यह भी लिखे जानेका अवसर मिले कि उर्दूके बहिष्कारके समय एक मीर जाफ़र भी था। सम्मेलनने एक बार त्यागपत्रपर विचार करनेका अवसर तो दिया था; लेकिन मेरे समाधानका कोई यत्न न किया था, जिसका यही अर्थ हो सकता है कि सम्मेलन वर्माजीकी रायका समर्थक है। किसी पत्र या पत्रिकाने इसका विरोध किया था या नहीं, सो मुझे मालूम नहीं।"

यह पत्र पानेपर मैंने मीर साहबकी सेवामें स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी शर्मा द्वारा लिखित और हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी-उर्दू और हिन्दुस्थानी' नामक निबन्ध भेज दिया था, जिसे पढ़कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए, और उन्होंने अपने ९-१०-३४ के पत्रमें मुझे लिखा था—"आपने कृपाकर मेरे अज्ञान-अन्धकारको दूर करने तथा जिज्ञासाकी पूर्ति करनेके लिए जो 'हिन्दी-उर्दू और हिन्दुस्थानी' शीर्षक निबन्ध पुस्तकाकारमें भेज दिया है, तदर्थ अनेक धन्यवाद। दुःखकी बात है कि आज पं० पद्मसिंह शर्मा हम लोगोंमें नहीं हैं। ऐसी चमत्कृत और परिष्कृत बुद्धिवाला निरपेक्ष विद्वान यदि कुछ दिन और जीवित रहता, तो अपना पक्ष प्रबल करके हिन्दीका भला कर जाता। हिन्दीका भला हिन्दू-मुसलमानोंका भला ही नहीं, प्रत्युत देशका भला कहलाता। निबन्धपर आपने विस्तृत समालोचना लिखनेका आदेश दिया है। भला मैं और आलोचना! जिस विद्वानकी लेखनीने 'बिहारी-विहार'की समुचित समालोचना करके विद्यावारिधि जैसे उपाधिधारियोंके छक्के छुड़ा दिये थे, उसकी कृतिकी आलोचना यदि मेरे समान व्यक्ति करे, तो कहना होगा कि बौना (वामन) एड़ी उठाकर आकाश छूना चाहता है। मैं इस निबन्धको अब तक हिन्दी-उर्दूके पक्ष-विपक्षमें लिखे गये लेखों, निबन्धों और पुस्तकोंकी समुचित विवेचनाके पश्चात एक ऐसा फैसला मानता हूँ, जो मानो हर पहलुओंपर नज़र करके किया गया हो। मेरा ख़याल है कि प्रिवी कौंसिलके फैसलेके समान यह फैसला बहुत समय तक अटल रहेगा, भावी इतिहासकार स्वर्गीय शर्माजीको हिन्दी-उर्दू-विप्लवको दूर कराके समता स्थापन करनेवाला 'लेनिन' कहेंगे।

"हिन्दुस्तानी भाषाके सम्बन्धमें लखनऊ-स्थित 'नदवा' (अरबी-फारसी तालीमकी संस्था) के स्थापक तथा संचालक मौलाना सुलेमान साहबने गत सन ३३ के आख़िरमें अलीगढ़ कालेजके विद्यार्थियोंके सामने जो भाषण दिया था, उसे भी प्राप्त कर लिया है। हालमें कलकत्तेसे उर्दू 'हिन्द जदीद' दैनिक कार्यालयसे 'विश्वमित्र'के समान एक साप्ताहिक तथा दूसरा मासिक पत्र निकलने लगा है। मासिकका नाम 'माहे तमाम' (पूर्णचन्द्र) रखा है। उसकी अक्टूबरकी संख्यामें 'उर्दू हिन्दी तथा हिन्दोस्तानी' शीर्षक एक विशद लेख प्रकाशित होनेवाला है। उस संख्याके आ जानेपर मैं समझता हूँ कि मुझे काफ़ी मसाला 'हिन्दी'के समझनेका आ जायगा।....'माहे तमाम' आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। सप्रू महोदयका लिखा एक छोटा-सा लेख है। उससे मेरी प्यास नहीं बुझी।"

जब 'इस्लामका विषवृक्ष' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, उस समय श्री मीर साहबको बड़ा दुःख हुआ था। इस विषयपर उनके कई पत्र भी आये थे। २२-७-३३ के पत्रमें उन्होंने लिखा था—"किसी धर्म, जाति या व्यक्ति-विशेषपर किये जानेवाले बेजा आक्षेपोंको मैं बिलकुल पसन्द नहीं करता। इस प्रकारकी मनोवृत्तिको राज-प्रभावसे उत्तेजन मिलता है, ऐसा भी कहा जा सकता है।"

८-८-३३ के पत्रमें मीर साहबने फिर लिखा था—"गत रात्रिको 'विषवृक्ष' के ६९ पन्ने पढ़ डाले। पढ़नेसे पहले मैंने अपने मनको पक्काकर लिया था, इसलिए उसे निरपेक्ष दृष्टिसे ही पढ़ा। मैं मानता हूँ कि पुस्तकको ऐतिहासिक ढंगसे लिखनेका प्रयास लेखकने किया है; पर उसके लिखनेमें उन्होंने जिन लेखकों और पुस्तकोंकी दुहाई दी है, प्रायः वे सब मुस्लिम विरोधियोंमें से हैं, जो विपक्षीको हानि पहुँचानेकी दृष्टिसे लिखी गई हैं। आज भी भारतके सम्बन्धका इतिहास यदि हम यूरोपकी पुस्तकोंके आधारपर लिखें, तो सिवा इसके कि 'भारतीय' अयोग्य, अशिक्षित और अदूरदर्शी हैं और क्या लिखेंगे? लेखकने 'पिये रुधिर पय ना पिये लगी पयोधर जोंक' वाली उक्तिको चरितार्थ किया है।"

हम चाहते तो यह हैं कि मुसलमान लोग हिन्दीकी अधिकाधिक सेवा करें; पर उनकी धार्मिक भावनाओंकी रक्षा करनेके बजाय उन्हें उल्टी चोट पहुँचाते हैं!

मीर साहब साम्प्रदायिकतासे घृणा करते थे और उसके असली कारणोंको भी पहचानते थे। अपने ९-१०-३४ के पत्रमें उन्होंने लिखा था—"आपके विशुद्ध राष्ट्रीय हृदयका मुझे पता है। आपका हृदय साम्प्रदायिक झगड़ोंको देखकर दुःखी होता है; लेकिन मेरा अनुमान है कि साम्प्रदायिकताके विषवृक्ष उस समय तक हरेभरे बने रहेंगे, जब तक उन्हें वर्तमान शासनकी उर्वरा भूमि आश्रय देती रहेगी और धर्म नामकी नदियोंसे (नालियोंसे कहना अधिक उपयुक्त होगा) पानी मिलता रहेगा। निकट-भविष्यमें इनके सूखनेके लक्षण दिखाई नहीं देते। भारतको सन् १९१९ में या शायद २० में जो रिफार्म मिला, उसके परिणाम-स्वरूप साम्प्रदियकतामें बाढ़-सी आ गई। चुनाव-सम्बन्धी (पृथक-निर्वाचन) प्रथा भारतके लिए अत्यन्त भयंकर सिद्ध हुई है। इतनेपर सफेद काग़ज़, जिसे कोरा काग़ज़ भी कह सकते हैं, इस कुप्रथाकी रजिस्ट्री करने आ रहा है! एक तो यों ही धनवादने चुनावके सम्बन्धमें गुणका द्वार बन्द कर रखा है। वोटरोंका चुनाव धनके पैमानेसे किया जाता है। इसपर दी तो जाती है राष्ट्रकी दुहाई; परन्तु अमलमें लाया जाता है पंथ-पक्ष, धर्म-पक्ष नहीं। मेरी ईश्वरभक्ति और आशावादिता मुझे विश्वास दिलाती है कि अभी समय नहीं आया। ईश्वरकी कृपाकोर दूसरी ओर ही है। कविवर रहीमने ठीक ही कहा है—

अब रहीम चुप ह्वै रहौ, समुझि दिननको फेर;
जब दिन नीके आइहैं, बनत न लगिहै देर।"

फिर लिखा था—"१४ अक्टूबरके बाद आप कुछ दिन आगरेमें रहेंगे, यह सूचना मिल चुकी है। आवश्यकता होगी, तो आगरेके पतेपर पत्र भेजूँगा। सुना जा रहा है कि 'आरती' और 'नमाज़' का झगड़ा वहाँ अब तक जारी है। आश्चर्यकी बात है कि मन्दिर भी पुराना है और मसजिद भी पुरानी है, आज तक न तो आरती ही बन्द हुई होगी, न नमाज़। फिर यह नया झगड़ा कैसा? पृथक निर्वाचनका बुरा हो, यह सब उसीकी करामात है। धर्म (मानव) के मर्मको न समझ सकनेका यह परिणाम है।"

जब महात्मा गांधीके सभापतित्वमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका इन्दौरमें दूसरी बार अधिवेशन होनेवाला था, उस समय हमने साहित्य-परिषदके लिए मीर साहबका नाम उपस्थित किया था। सितम्बर सन् १९३४ के अंकमें हमने लिखा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साहित्य-सम्मेलनके साथ जो अन्य परिषदें हुआ करती हैं, उनके विषयमें हमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं। हाँ, केवल साहित्य-परिषदके विषयमें एक बात कहनी है, वह यह कि उक्त परिषदका सभापतित्त्व इस बार सय्यद अमीर अली मीरको समर्पित किया जाना चाहिए। मीर साहबके पक्षमें कई बातें कही जा सकती हैं। सर्वप्रथम बात तो यह है कि वे इस पदके सर्वथा योग्य हैं। पचीस-तीस वर्षसे वे निस्स्वार्थ भावसे साहित्य-सेवा कर रहे हैं, और उनका जीवन एक निर्धन साहित्यिकका जीवन है, जिसमें कष्टोंकी भरमार होती है और गुणग्राहकताका अभाव, जो उस रेगिस्तानकी तरह है, जिसमें कोई नखलिस्तान नहीं, कोई हरी-भरी भूमि नहीं।

दूसरा कारण, जिसे हम कम महत्त्व नहीं देते, यह है कि अभी तक हमने हिन्दी - साहित्य - सेवी मुसलमानोंका समुचित सम्मान नहीं किया। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अकेले हिन्दुओंकी चीज़ तो है नहीं, और सच पूछा जाय, तो प्राचीन हिन्दी-साहित्यका एक-तिहाई भाग या तो मुसलमान लेखकोंका लिखा हुआ है, अथवा उसका निर्माण मुसलमान शासकोंकी संरक्षकतामें हुआ था। क्या हम उस महान सेवाको कभी भूल सकते हैं, जो रहीम, रसखान, सम्राट अकबर इत्यादिने हिन्दी-भाषाकी की थी? अकेले रहीमने ही लाखों रुपये दान देकर अनेक हिन्दी-कवियोंको प्रोत्साहित किया था, और स्वयं तो वे ऊँचे दरजेके कवि थे ही। उनके दोहे आज प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीके ज़बानपर हैं, और लोकप्रियताकी दृष्टिसे रहीमके दोहोंको जो स्थान मिला है, वह कविवर बिहारीके दोहोंको भी नहीं मिल सका।

कृतज्ञताका तो तकाज़ा है ही, साथ ही यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन केवल हिन्दुओंकी ही संस्था न बनी रहे और उसका दायरा अधिक विस्तृत हो, तो हमें किसी सुयोग्य मुसलमान भाईको उसका सभापति बनाना चाहिए। इस प्रकार मीर साहबका हक़ अन्य किसी सभापतिके हक़से दूना हो जाता है।"

मेरे इस नोटको पढ़कर मीर साहबने लिखा था—"रामने अत्रि आदि ऋषियोंको जो आनन्द दिया, क्या निषाद, शबरी और जटायुको उससे कम दिया। संसारके साधारण नियमके अनुसार अत्रि आदि तो आदरके पात्र थे ही, किन्तु न थे तो निषादादि। इसलिए उन्हें जो आदर रामकी ओरसे मिला, वह सर्वथा सराहनीय है। आज आप लोग भी मुझे—निषादादिके समान व्यक्तिको—ऊपर उठाकर आदर देनेको लालायित हो रहे हैं। इस सम्बन्धमें मैं हिन्दी-प्रेमी तथा विज्ञजनोंको दोषी नहीं ठहरा सकता। जैन-सम्प्रदायमें एक षाण्मासिक कवि हुआ है, जो वर्षमें केवल दो पद्य रच सकता था। उनकी ख्याति यदि हेमचन्द्रादिके समान नहीं हुई, तो कौन-सा आश्चर्य है। मैंने हिन्दी-सेवाका आज तक कोई ठोस काम नहीं किया, कोई अजर-अमर ग्रन्थ भी नहीं रचा। साधारण हिन्दीके सिवा कोई दूसरी भाषा भी नहीं पढ़ी। घरकी चौखट छोड़कर बाहर क़दम नहीं रखा। ऐसे अल्पज्ञ व्यक्तिको केवल बुढ़ापेका मान देकर आप हिन्दी-साहित्यको कौन-सा लाभ पहुँचा सकेंगे? ये पंक्तियाँ मैं आपके हृदयके दुखानेको नहीं, विशुद्ध भावनासे लिख रहा हूँ। जिस समय मुमताज़ अली आपके पाससे लौटकर आया था, उस समय भी आपने इसी प्रकारकी इच्छा प्रकट की थी। उस समय आप मुझे कलकत्तेकी किसी सभामें हिन्दी व्याख्यान देते हुए देखना चाहते थे और अब इन्दौरमें, वह भी महात्मा गांधी जैसे असाधारण व्यक्तिके सामने! 'रवि सम्मुख खद्योत अँजोरी'की उक्ति चरितार्थ होगी।"

दूसरे पत्रमें मीर साहबने लिखा था—"अब रही 'साहित्य-परिषद' के सभापतिके पदकी बात। इस सम्बन्धमें 'हाँ' कहना तो दीक्षा लेनेके समान सरल, किन्तु 'निवाह' सीधा देनेके समान दुरूह होगा। सभापतिका उत्तरदायित्त्व बहुत बड़ा है। मैं स्वयंको उस पदके सर्वथा अयोग्य पाता हूँ। इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-रथके रथी संस्कृतके सिवा पाश्चात्य विद्याके धुरन्धर विद्वान हैं। उनका सन्तोष एक साधारण हिन्दी जाननेवाला केवल आयु (बूढ़े) और जाति (मुस्लिम होने) के नाते कैसे करा सकेगा ? सहज सुहृदवर ! नाम और मान पानेकी इच्छा मनुष्यमें नेचरल है। मैं भी मनुष्य ही हूँ। लेकिन 'साहस' करना जैसे और बात है, किन्तु 'दुस्साहस' और। कहीं ऐसा न हो कि मेरी स्वीकृति समयपर दुस्साहस समझी जाय, मैं अयोग्य साबित होऊँ और उस समय आप सहित मेरे समस्त शुभैषी मित्रोंको लज्जित होना पड़े। यदि आप यह चाहते हैं कि भावी इतिहासकार यह न कह सकें कि जिस मुस्लिम जातिने 'हिन्दी'का केवल नामकरण-संस्कार ही नहीं किया, प्रत्युत उसे शाही दरबार तक पहुँचाकर 'उर्दू-ए-मुअल्ला'का पद दिला दिया, उस मुस्लिम जातिका बीसवीं सदीके हिन्दी-साहित्यज्ञोंने आदर सम्मान नहीं किया, तो मैं कहूँगा कि इस कामके लिए श्री अबुलकलाम आज़ाद या अल्लामा सुलेमान नदवीको चुनिये, आपको पछताना न पड़ेगा, हिन्दी-साहित्यको अभूतपूर्व प्रगति मिलेगी। यदि हिन्दी-साहित्य-सेवी मुसलमानोंमें से ही किसीको चुनना है, तो श्री पीरमुहम्मद मूनिस (बेतिया) को चुनिये या श्री अख़्तरहुसेन रायपुरीको। ये लोग अप-टू-डेट हैं, आप भी इनसे परिचित हैं। हाँ, यदि आपकी इच्छा मुझे ही ठोक-पीटकर वैद्यराज बनानेकी है, तो वायदा कीजिये कि 'भाषण' लिखनेकी सामग्री केवल जुटा ही न देंगे, वरन् काम पड़नेपर लिख भी देंगे और मैदान-जंगमें पुश्तपनाह रहेंगे। इस अभयदानको देकर भाषणकी रूपरेखा (संक्षिप्त नोट्स) लिख भेजिये, जिससे मैं तत्सम्बन्धी मसाला जुटाने लगूँ। बूढ़ी लेखनी है, बहुत धीरे-धीरे चलेगी।"

दुःखकी बात है कि सम्मेलनके कर्णधारोंने मेरे इस प्रस्तावपर कि मीर साहबको साहित्य-परिषदका सभापति बनाया जाय, कोई ध्यान नहीं दिया। 'कर्मवीर' को छोड़कर अन्य किसी पत्रने उसका समर्थन भी नहीं किया !

एक चिट्ठीमें मैंने मीर साहबकी सेवामें निवेदन किया था कि हम लोग अपने साहित्य-सेवियोंका उचित सम्मान नहीं करते, हिन्दी-संसारका यह बड़ा भारी दोष है। उसका उत्तर देते हुए मीर साहबने लिखा था—"हिन्दी-संसार दोषी नहीं है, मैं दोषी हूँ। मैं न-जाने कितने वर्षोंसे हिन्दी-क्षेत्रसे ग़ैर-हाज़िर हूँ। अब जिनके हाथमें हिन्दीका मैदान है, वे मशीन-युगके ज्ञाता हैं, मेरा पुराने ढर्रेका छकड़ा उनके साथ कैसे चल सकता है ? मेरा ख़याल है कि आजकलके हिन्दी साहित्यिक लेखादि पाश्चात्य साहित्यके ऋणी रहते हैं। जिन बैंकोंसे आधुनिक लेखक लेन-देन करते हैं, उनमें मेरा खाता नहीं खुल सकता, लाचार हूँ।"

मीर साहबकी उपेक्षा

'कर्मवीर'-सम्पादक श्री माखनलालजी चतुर्वेदीने गत ३० जनवरीके अंकमें लिखा है—"हमें तो यही दुःख है कि हमने मीर साहबको उपेक्षित अवस्थामें मर जाने दिया।" पर उपेक्षाकी कोई हद भी होती है। अपने २१-९-३४ के पत्रमें मीर साहबने लिखा था—"जिस 'हिन्दू-साहित्य और मुसलमान' शीर्षक लेखको कुछ संशोधनके साथ ही सही, आपने 'विशाल भारत'के 'साहित्यांक'में स्थान देकर उत्साह बढ़ाया था, वह मुज़फ्फरपुरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके लिए लिखा और भेजा गया था। मालूम नहीं, वह वहाँ पेश भी किया गया था या नहीं, क्योंकि कई पत्र भेजनेपर भी न तो मुज़फ्फरपुरसे कोई उत्तर मिला, न प्रयागसे ! वह कार्य-विवरण-पुस्तकमें छपा या नहीं, इसका भी पता नहीं मिला। अभी जो लेख 'मातृभाषाकी महत्ता' सम्बन्धी द्विवेदी-मेला-समिति द्वारा चुना जाकर प्रकाशनार्थ सम्मेलनको दिया गया है, उस सम्बन्धमें भी उक्त समितिके मन्त्रीजीके पास मैं दो-तीन पत्र भेज चुका हूँ 'कि उक्त लेखको सम्मेलन एक बार ही छपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेगा। और उसकी छपी प्रथमावृत्ति दो-अढ़ाई सालके अन्दर चाहे बिक जावे या नहीं, द्वितीयावृत्तिके छपाने या छपवानेका अधिकार मेरा रहेगा,' कोई उत्तर नहीं मिला! इसका मुख्य कारण सम्मेलनका मौन ही होगा, मन्त्री बेचारे क्या करें?"

९-१०-३४ के पत्रमें मीर साहबने मुझसे फिर पूछा था—"श्री द्विवेदीजीको जो 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' भेंटमें दिया गया है, उसमें 'राजचर्या' शीर्षक कोई कविता छपी है क्या? वह मैंने भेजी थी। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनोंके काव्य-विवरण भी आपके यहाँ संग्रहीत होंगे। मैं जानना चाहता हूँ कि भागलपुर तथा मुज़फ्फरपुरमें होनेवाले सम्मेलनोंके कार्य-विवरण-पुस्तकोंमें मेरे भेजे निबन्धोंको स्थान मिला है या नहीं?"

वह बूढ़ा साहित्य-सेवी कम-से-कम इतनी उपेक्षाके तो योग्य न था। जब हम ख़याल करते हैं कि यह उपेक्षा एक ऐसे मुसलिम सज्जनके प्रति की गई, जो ज़िन्दगी-भर निर्धनताके साथ युद्ध करते हुए भी हिन्दी-साहित्यकी सेवा करता रहा, तो और भी खेद होता है।

आज मीर साहबके एक लेखके निम्न-लिखित शब्द हमें याद आ रहे हैं—"उपर्युक्त सूचियोंसे यह बात स्पष्ट है कि आजसे कई सौ वर्ष पूर्वसे मुसलमान जाति हिन्दू-साहित्यकी अनुरागिनी रही है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि दसवीं सदीमें भारतसे बाहर सुलतान महमूद ग़ज़नवीके दरबारमें मसऊद सुलेमान नामका एक हिन्दी जाननेवाला मौजूद था, जिसने हिन्दीमें एक किताब भी लिखी थी। सम्भव है कि यही हिन्दीका पहला पुस्तक-लेखक हो। यदि इतिहास इसके पूर्वका कोई हिन्दी लेखक पेश न कर सके, तो मुसलमान जातिको इस बातका आनन्द और अभिमान होगा कि हिन्दीको अपनानेमें मुसलमान ही अग्रसर हुए। यह तो स्पष्ट ही कहा जा सकता है कि भारतमें आबाद होनेके पूर्वसे ही हिन्दीकी ओर मुसलमानोंका ध्यान आकर्षित हो चुका था। परम प्रबन्धक विद्याव्यसनी ख़लीफा हारूँरशीदने भारतके कई संस्कृतज्ञ विद्वानोंको बुलाकर आदरपूर्वक अपने दरबारमें रखा था, और उनके द्वारा आदान-प्रदानके नियमानुसार वैद्यक, ज्योतिष और भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी गहन विषयोंका अरबी अनुवाद करवाया था तथा अरबी-ग्रन्थोंका संस्कृतमें। उक्त बग़दादी दरबारमें 'कनक' और 'मनस्क' (?) नामक विद्वान थे।

भारतीय मुसलमानोंने हिन्दू-साहित्यसे काव्य, ज्योतिष, सामुद्रिक, संगीत, नीति, नाटक, कथा, गणित, इतिहास, पिंगल, रस-निरूपण, वैद्यक, भक्ति और वेदान्त आदि ललित-कलाओंका ज्ञान इतना उच्च श्रेणीका प्राप्त किया था कि हिन्दुओंको भी आश्चर्य होता होगा। क्या यह कम अभिमानकी बात है कि रसलीन-जैसे भाषा-काव्यके प्रकाण्ड पंडित आचार्य कहलावें, मलिक मुहम्मद महाकवि गिने जावें, अकरमकैज़ संस्कृतमें 'वृत्तमाल'-जैसा पिंगल ग्रन्थ निर्माण करें, अकबर ख़ां अजयगढ़ी 'योगदर्पणसार'-जैसा वैद्यक ग्रन्थ लिखें, ताहिर छन्दबद्ध 'कोकशास्त्र' लिखकर नाम पावें, बीजापुरका इब्राहीम आदिलशाह बादशाह होकर नवों रसों और रागोंपर ग्रन्थ लिखे और हिन्दीको (फारसी हटाकर) राज्य-भाषाके पदपर बिठावे? क्या यह कम उदारताकी बात है? अमीर खुशरोसे पूर्व हिन्दीमें 'पहेली' और 'मुकरियाँ' किस हिन्दी-कविने लिखी थीं? 'नूरक और चन्दा'-प्रणेता मुलतान दाऊदसे पहले हिन्दीमें प्रेम-कथा लिखनेका मार्ग किसने प्रशस्त किया था?

ख़ूबीकी बात तो यह है कि साधारण श्रेणीके मुसलमानोंसे लेकर बड़े-बड़े उच्च कर्मचारी—सेनापति और प्रधान-मन्त्री तक—तथा मनसबदारोंसे लेकर बादशाह तक हिन्दीके रंगमें रँग जाते थे। ये कविता पढ़ते, रचना करते, अनुवाद करते और उदारतापूर्वक कवियोंको आश्रय दे ग्रन्थ-रचना कराते थे।

मुग़ल-दरबारोंमें हिन्दी-कवियोंकी भीड़ लगी रहती थी, उनमें से कितने कवि तो इतने मालदार हो गये थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे दूसरे कवियोंको अयाचक बना देते थे। शाहजहाँनी दरबारके कवि हरिनाथने एक कविको एक दोहेपर एक लाख रुपया दे डाला था। उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखकर यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हिन्दीको जीवित रखने और उसे राष्ट्र-भाषाके योग्य बनानेमें मुसलमानोंका ज़बरदस्त हाथ रहा है।

अन्तमें मैं केवल एक बात कह देना चाहता हूँ कि मैंने यह लेख मुसलमान जातिकी शेखी बघारनेके लिए नहीं लिखा है। इसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि भारतीय नवयुवकोंको, जो मुसलमानों द्वारा की गई राष्ट्र-भाषाकी सेवासे अपरिचित हों, इस विषयका कुछ ज्ञान हो जाय। हिन्दू और मुसलमान दोनोंको हिन्दुस्तानमें ही रहना है। यदि वे एक-दूसरेके गुणोंकी क़द्र करना सीख लें, एक-दूसरेकी संस्कृतियोंकी अच्छी बातोंको पहचान लें, तो उनमें स्थायी मेल हो सकता है, जो हमारे देशकी स्वाधीनताके लिए नितान्त आवश्यक है।"

और कुछ नहीं तो मुसलमानोंकी हिन्दी-साहित्य-सेवाका ख़याल करके ही हमें मीर साहबकी उपेक्षा न करनी चाहिए थी।

'शतपति' मीर साहब

द्विवेदी-मेलेके अवसरपर पूज्य प० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने अपने पाससे सौ रुपयेका एक पुरस्कार इसलिए दिया था कि वह 'मातृभाषाकी महत्ता' पर लिखे गये सर्वोत्तम निबन्धके लेखकको दिया जाय।

इस प्रतियोगितामें मीर साहबने भी भाग लिया था। यह समाचार जानकर मुझे आश्चर्य हुआ। मीर साहबकी आर्थिक परिस्थितिके विषयमें मुझे उस वक्त कुछ भी पता न था। मैंने इस बातपर अपने एक पत्रमें धृष्टतापूर्वक बतौर इशारेके कुछ ऐतराज़ किया। इसपर मीर साहबने अपने २९-८-३४ के पत्रमें लिखा था—"पिछले पत्रमें आपने पुरस्कार-प्रतियोगितामें भाग लेनेके कारण मेरे सम्बन्धमें पश्चात्ताप प्रकट किया है। इसका अहसास मुझे था। मैं लेख (मातृभाषाकी महत्ता) लिखते तो लिख गया और साहस करके भेज भी दिया; लेकिन अन्त तक यह भय सताता रहा कि निर्णायक कमेटीके सदस्योंमें से यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो मुझे स्नेहकी दृष्टिसे देखता हो, कहीं ऐसा न हो कि मेरा लेख मुझे उसकी नज़रोंसे गिराये। और यह भी सही है कि लोभने ही मुझसे वह लेख लिखाया था। आप विश्वास कीजिए कि स्टेट सर्विस वह भी पुलिसकी रहनेपर भी मेरे पास कभी १००) सौ रुपये जमा नहीं हुए। वर्तमान द्विवेदी-पुरस्कारने इतना तो किया कि मुझे 'शतपति' बना दिया। वे रुपये मकान बनानेके लिए ज़मीन लेनेकी इच्छासे बैंकमें पानेके दिन ही जमा करा दिये हैं। इस समय मैं ख़ानाबदोश हूँ।"

इस पत्रको पढ़कर बड़ा खेद हुआ और अपनी धृष्टतापर बड़ी लज्जा आई। मीर साहबको मेरी बात याद रही और उन्होंने फिर मुझे लिखा था—"प्रतियोगिता-सम्बन्धी लेखमें भाग लेकर सचमुच मैंने अच्छा न किया था, परन्तु वास्तविक बात प्रलोभनके सिवा और कुछ न थी। आपको आश्चर्य होगा कि मेरे पास कभी १००) जमा नहीं हुए। इसीलिए मैंने उन्हें उसी दिन बैंकमें जमा करा दिया है। अब आप मुझे लखपति, करोड़पति आदिके समान (कुछ दिनके लिए) शतपति कह सकेंगे।"

इस प्रकार बूढ़े हिन्दू तपस्वी महावीरप्रसादजी द्विवेदीकी कठिन कमाईके सौ रुपयेसे दूसरा बूढ़ा मुसलमान तपस्वी 'शतपति' बना! हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें यह घटना चिरकाल तक जीवित रहकर निर्धन साहित्य-सेवियोंको गर्वोन्नत और पूँजीपति हिन्दी-भाषा-भाषियोंको लज्जित करती रहेगी।

मेरा पछतावा

फरवरी १९३५ में मीर साहबका पत्र मिला—"आप वर्धा तशरीफ ले जाना चाहते हैं, इसलिए आपने जानना चाहा है कि 'क्या मार्ग उधर ही होकर है?' श्रीमान! हाँ, इधर ही होकर है! बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर ही होकर !! शीघ्र सूचना देनेकी कृपा करें कि आप किस तारीखकी मेलसे रवाना होंगे।"

उस समय मैं वर्धा नहीं जा सका ; पर मेरा पत्र समयपर न मिलनेके कारण मीर साहब स्टेशन तक हैरान भी हुए ! और जब अक्टूबर १९३५ में वर्धा गया भी, तो भाटापारे उतर नहीं सका ! सोचा था कि लौटते समय उतरूँगा और मीर साहबसे हाथ जोड़कर कहूँगा—"क्षमा कीजिए, मुझे आपकी हालतका पता नहीं था, नहीं तो आपके सौ रुपयेके पुरस्कारके लिए प्रतियोगिता करनेपर कदापि आक्षेप न करता।" पर यह क्षमाप्राप्ति मेरे भाग्यमें बदी न थी। गत २१ ता०को शामकी डाक खोली, तो विलासपुरके श्रीयुत प्यारेलालजी गुप्तका पत्र मिला—"आपको यह जानकर शोक होगा कि श्रद्धेय मीर साहबकी मृत्यु रेलवे दुर्घटना द्वारा हो गई है।" इस ज़िन्दगीमें एक-आध करोड़पति तथा अनेकों लखपतियोंसे मिला हूँ, और इस अभागे जीवनमें अभी न-जाने कितनोंसे मिलना पड़ेगा ; पर 'ख़ानाबदोश' 'शतपति' मीर साहबके दर्शन न कर सका—न कर सका।

—

मीर साहबकी कुछ कविताएँ

उलाहना-पंचक

हिम-गिरि

गर नहीं जीनेके काबिल हम रहे,
तो ढहाकर शृङ्ग हिमगिरि दे दबा।
शत्रु अथवा जो हमारे हों यहाँ,
पेटमें अपने उन्हें तू ले दबा।

गंगा

तारीफ़ सुनते हैं तुम्हारी हम बहुत
सार्थक करती नहीं क्यों नामको।
मात गंगे ! पाप-अरिको दो बहा,
शुद्ध कर दो हिन्दके हृदामको।

हिन्द-सागर

हिन्द-सागर तुम हमारे गार्ड थे,
हाय ! की तुमने मगर कैसी दगा ?
जब घुसा था शत्रु छाती चीरकर,
टाँग धर पातालको देते भगा।

भारत-भूमि

वीर-प्रसवा तू भरतकी भूमि है,
नामको कैसा दबा तूने दिया !
सुत दुखी, पर हैं विरोधी सब सुखी,
देखकर खुद खोल आँखें, क्या किया !

विश्व-रक्षक

विश्व-रक्षक ! क्या नहीं हम विश्वमें,
क्यों नहीं देते हमें हो तुम स्वराज ?
ग़ैर हैं आज़ाद, घरमें हम ग़ुलाम,
क्या यही इन्साफ़ है बंदहनवाज़ ?

भारतीय छात्रोंसे नम्र निवेदन

जिसके पंच-तत्त्वमें मिलकर पूर्व-पुरुष हैं हुए विलीन ;
उन्हीं पंच-भूतोंका मिश्रण हम सबमें है करो यकीन।
लेकिन ज़रा विचारो तो तुम पूर्व-पुरुष थे क्या बलहीन !
यश-गौरव-विद्या-प्रभुतासे क्या वे थे हम-से ही दीन !
नहीं-नहीं वे कभी नहीं थे जैसे हम हैं अधम अगण्य ;
'लोहा उनका विश्व मानता' अब तक वे ऐसे थे धन्य।
बड़ा अचम्भासा दिखता है 'हुए सिंहके सदन सियार' ;
जहाँ-जहाँ जाते पाते हैं लज्जाजनक हाय ! धिक्कार !
आत्म-शक्ति थी उनमें अविचल नहीं सताता था भय-भूत ;
मन पवित्र था सदाचारसे अनाचारकी लगी न छूत।
उन सुगुणोंको यदि हम सीखें बता रहा है जो इतिहास ;
कहो 'दाँत किसके मुँहमें हैं ?' करे हमारा जो उपहास !
हिन्दू - मुसलमान हों किंवा भारत - जन्मे ईसाई ;
जननी जन्मभूमिके नाते सब ही हैं भाई - भाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर ऐसे करो काम हो जिससे उन्नत देश-समाज ;
भूल जाव कलकी वे बातें जिनसे कलह न होवे आज।
कहा करें ऐसा हम सब ही नहीं करें पर सद्वर्ताव ;
तब कैसे रह सकें परस्पर शान्ति-सौख्यदायक सद्भाव।
यदि अभीष्टका निश्चय कर हम करें काम उसके अनुरूप ;
तो अवश्य ही फलीभूत हों पा जावें जातीय स्वरूप।
सीखा करें सदा हम पढ़कर देश-विदेशोंके इतिहास ;
कौन कारणोंसे होता है देश-व्यापी कलह - प्रकाश।
उन्हीं कारणोंको यदि हम सब नहीं फटकने देवें पास ;
तो न भूलकर कभी करें हम अपने हाथों अपना नाश।
करो प्रेम छोटोंपर भाई और बड़ोंका आदर - मान ;
उतना काम करो जितनेसे बना रहे अपना अभिमान।
दैव दया पुरुषार्थ आदिसे जैसी जितनी तुमको शक्ति ;
होवे मिली, उसीसे करते रहो यथोचित सबकी भक्ति।
ब्रह्मचर्य जाने नहिं पावे इसका रखना भाई ध्यान ;
दम्पति पद पा जानेपर भी करना इस व्रतका सन्मान।
बन जाना आदर्श आप ही जिससे गुणयुत हो सन्तान ;
नारी-जाति दुःख नहिं पावे रखना तुम ऐसा अवधान।
कभी भूलसे भी करना नहिं मादक-द्रव्योंका व्यवहार ;
अपनी भाषा नहीं भूलना जिसने खोला शिक्षा-द्वार।
वेष बदलना कभी न अपना होती रहे जाति-पहिचान ;
भोजनमें भी भारतीयता रक्खो तब पाओगे मान।

दशहरा

आ गया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह-बल ;
मातृ-पूजा, शक्ति-पूजा, वीर-पूजा है विमल।
हिन्दमें यह हिन्दुओंका विजय-उत्सव है ललाम ;
शरदकी इस सुऋतुमें है खड्ग-पूजा धाम-धाम।
दिखने लगे खंजन यहाँ, रहने लगे चकवा अशोक ;
चल पड़े योगी-यती मगकी मिटी सब रोक-टोक।
भरने लगे बाज़ार हैं, खुलने लगे व्यापार-द्वार ;
सजने लगे सेना नृपति बजने लगे बाजे अपार।
यह दशहरा क्षत्रियोंका प्राण-जीवन पर्व है ;
हिन्दके इतिहासमें इस पर्वका अति गर्व है।
वीर पुरुषोंको यही संजीवनीका काम दे ;
जीत दे फिर कीर्ति दे फिर मान दे धन-धाम दे।
थी विजय-दशमी यही जब रामने दल साजकर ;
गिरि-प्रवर्षणसे चढ़ाई की थी लंका राजपर।
मार रावणको वहाँ उद्धार सीताका किया ;
और लंकाका विभीषणको तिलक था दे दिया।
उस समयसे इस दशहरेका बड़ा सम्मान है ;
मान-गुणका यह प्रवर्तक क्षत्रियोंका प्राण है।
आज करते हैं विजयकी कामना सब वीरवर ;
जाँचते हैं दृष्टि कर गज-अश्व-दल-हथियारपर।
श्रेय विजयासे भरे इतिहासके बहुपत्र हैं ;
आज भी प्रतिबिम्ब उसका देखते हम अत्र हैं।
जो सबक लेना हमें उससे उचित लेते नहीं ;
स्वार्थ पशु-बलि त्यागकी तलवारसे देते नहीं।
इन्द्रियोंकी वासना ही है असुर, शंका नहीं ;
ज्ञान-शरसे जीतते हैं लोभकी लंका नहीं।
हन्त जो कुविचार रावण है उसे तजते नहीं ;
क्या कहें सुविचार श्रीवर रामको भजते नहीं।
नाशकर कुविचारका सद्बुद्धि सीता लाइये ;
नृप विभीषणकी तरह सन्तोषको अपनाइये।
शान्त हो प्यारी अवध, फिर राज्य उसका कीजिये ;
'मीर' विजयाकी विजयका इस तरह यश लीजिये।

अन्योक्ति-सप्तक

मैना तू बनवासिनी, परी पींजरे आन ;
जान दैवगति ताहिमें, रहे शान्त सुख मान।
रहे शान्त सुख मान, बान कोमल तें अपनी ;
सब पक्षिन सरदार, तोहि कवि-कोविद बरनी।
कहे 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे बैना ;
तौ भी तुझको धन्य, बनी तू अजहूँ मैं ना।१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोता तू पकड़ा गया, जब था निपट नदान ;
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया, तौ भी रहा अजान ।
तौ भी रहा अजान, ज्ञानका मर्म न पाया ;
जीवन परके हाथ सौंप, निज घर बिसराया ।
कहें 'मीर' समुदाय, हाय ! तू अबलौं सोता ;
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ़के तोता ।२

बिल्ली निज पतिघातिनी, तुझको प्यारा गेह ;
खाती है जिसका नमक, उससे नेक न नेह ।
उससे नेक न नेह, देहपर करती हमला ;
खा-खाकर घी-दूध, कमाई घरकी कमला ।
कहें 'मीर' समुझाय, पढ़े तू चाहे दिल्ली ;
नमकहरामी चाल, न छूटे तुझसे बिल्ली ।३

बगला बैठा ध्यानमें, प्रातः जलके तीर ;
मानौं तपसी तप करै, मलकर भस्म शरीर ।
मलकर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली ;
कहैं 'मीर' ग्रसि चोंच, समूची फौरन निगली ।
फिर भी आवें शरण, बैर जो तजके अगला ;
उनके भी तू प्राण, हरे रे ! छी ! छी ! बगला ।४

क़ैदी होनेके प्रथम, था अलि 'मीर' स्वतन्त्र ;
उसे पवनने छल लिया, कहके मोहन मंत्र ।
कहके मोहन मंत्र, तंत्र-सा फिर कुछ करके ;
उसे गई ले खींच, पासमें गहरे सरके ।
पड़ा प्रेममें अचल, वहाँ लकड़ीका भेदी ;
था जो कोमल कमल, बनाया उसने क़ैदी ।५

जाने कीन्हों शमन है, मत्त मतंगन मान ;
हाय दैववश सिंह सो, पर्‌यो पींजरे आन ।
पर्‌यो पींजरे आन, श्वानके गन ढिग भूकैं ;
बिहँसै ससा, सियार, कान पै आके कूकैं ।
'मीर' बात है सत्य, लोकमें कहिगे स्याने ;
का पै कैसो समय, कबै परिहै को जाने ?६

कोयल तू मन मोहके, गई कौनसे देस ;
तो अभावमें काग मुख, लखनो परो भदेस ।
लखनो परो भदेस, बेस तोही सो कारो ;
पै बोलत हैं बोल, महा कर्कस कटु न्यारो ।
कहें 'मीर' हे देव, कागको दूर करो दल ;
लावो फेर बसन्त, मनोहर बोले कोयल ।७

सवैया

क्यों यह सोच करै मन मूढ़ अरे दिन ये दुखके टरिहैं कब ;
त्यों दुखदायक दीननके यह पापी कबै अघसों मरिहैं दब ।
मान ले तू सिगरे जग मीत है एकहु ना हमरे अरि हैं अब ;
जा दिन दैव दया करि हैं तब ता दिन 'मीर' मया करिहैं सब ।

कवित्त

चतुर गवैया होय, वेदको पढ़ैया चाहे
समर लड़ैया होय रणभूमि चौड़ीमें ;
जानत समैया होय 'मीर' कवि त्यों ही चाहे
बातको जनैया होय नैनकी कनौड़ीमें ।
नीति पै चलैया होय पर-उपकार आदि
कुशल करैया काज हाथकी हथौड़ीमें ;
गुननको शीला होय तौऊ ना वसीला बिन
कोऊ है पुछैया भैया तोहिं तीन कौड़ीमें ।

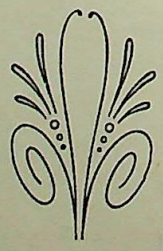

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिका

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

[कुछ महिलाओंने यह कहा था कि कविवर रवीन्द्रनाथको आधुनिक स्त्रियोंकी ठीक-ठीक जानकारी नहीं है, जिससे उन्होंने यदाकदा आधुनिकाओंके साथ न्याय नहीं किया है। इस सम्बन्धमें श्रीमती अपराजिता देवीके एक पत्रके उत्तरमें कविने 'आधुनिका' नामक कविता लिखी है, जिसका हिन्दी भाषान्तर नीचे दिया जाता है। बंगालमें दादा-पोतीका सम्बन्ध मज़ाकका सम्बन्ध माना जाता है—जैसा उत्तर-भारतमें देवर-भौजाईका। अपराजिता देवी कविसे दादाका रिश्ता मानती हैं।]

तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी, मुझे कुछ कहना नहीं है, उसमें थोड़ा-सा ताप ज़रूर है; पर उसके लिए मुझे सन्ताप नहीं है। कविगीरी दिखानेके उत्साहकी बाढ़में मैंने आधुनिकाओंपर अन्याय किया है—यदि तुम इतने बड़े अविनयका सन्देह करती हो, तो (यह भी जान रखो कि) चुपचाप जो सह लेता है, वह कभी कवि नहीं है! दो-चार बातें कह रहा हूँ, जी लगाकर सुनो, यदि प्रकट करनेमें कुछ कमी रह जाय, फिर उसे पूरा कर लेना।

पत्रेमें ग्रह-नक्षत्रोंका जो अंक खींचा हुआ है, तदनुसार तो मैं सत्तर पार कर गया हूँ। जन्म-कुण्डलीके हिसाबसे मेरी आयुका हिसाब थोड़े ही दिनोंमें शून्य हो जायगा। राह चलते-चलते आजकल हरदम यमराजके रथचक्रका कर्दम (कीचड़) वक्षःस्थलपर लगा करता है। फिर भी तुम मेरा नाम, आज भी, पुरातत्त्वके शोधके खानेमें न चढ़ा सकोगी। इस जीर्ण जीवनमें आज न रंग है और न मधु, तो भी याद रखो कि मैं इसी कालमें जन्मा हूँ। साढ़े अठारह सौ A.D., B.C. नहीं। मेरी बहनें और लड़कियाँ कुछ नारदकी बुआ नहीं हैं! जिन्हें तुम आधुनिका कहती हो, उन्हें मैं पहचानता हूँ और (सच पूछो तो) कवि-यशके लिए उन्हींके निकट बारह आनेका ऋणी हूँ। आधुनिकाके ही हाथ मैंने 'यत्परोनास्ति' (जिससे अधिक हो नहीं सकता, उतना) पुरस्कार भी पाया है, दण्ड भी पाया है। सबूत भी रख गया हूँ। इस कालकी रमणीके रमणीय तालोंमें ही इस धमनीके रक्तका छन्द बँधा हुआ है। नज़दीक पाऊँ या खो दूँ, तथापि उसीकी स्मृतिसे आज भी मेरे गानोंमें सुर-सौरभ जगा करता है। जो लोग मनोलोकमें माधुरी-निकुंजकी दूती हैं, मैंने तो उन्हींके गुणका गुंजार किया है। उन दिनों भी कालिदास और वररुचि आदि, जो पुरसुन्दरियोंके प्रशस्तिवादी थे, जिनकी महिमाका गान करके उन्होंने अपनी वीणाको जगाया था, वे सभी आधुनिकाके किनारे ही थीं। ऐसा कोई काल नहीं था, जब कि आधुनिकाएँ न रही हों, उन्हींके कल्याणसे काव्यकी अनुशीलना होती रही है। पुरुष कविके भाग्यमें कोई शुभग्रह है, इसीलिए उसके प्रति यह महान अनुग्रह सदा होता आया है। पैरोंमें जूता हो, या खाली पाँव, स्लीपर पहनके हो या नूपुर धारण करके, नवीनाएं सदा दिन-दोपहरीको आती रही हैं। जहाँ स्वप्नोंका मुहल्ला है, वहीं अग्रसर होकर, प्राणोंको आन्दोलित करके, गान जगा जाती हैं। तो भी यदि तुममें से कोई ललना कहीं अकृतज्ञता देखे, तो समझो कि यह धोखा है। मीठा हो या कड़ुआ, सच हो या झूठ, ठोंक-ठाक करनेसे ही रसकी उत्पत्ति होती है। मीठे और कड़ुएमें कौन-सा सही है, सो बात कविके साहित्यमें ही ढकी रहने दो! यह देखो, शायद यह व्यंग्य हो गया। ऐसी टेढ़ी बातोंको ढक ही रखना। परिहासपटुता प्रलोभनके रूपमें ही आती है, अकारण कटुता सम्हाली नहीं जा सकती। बार-बार मैं ऐसी ही अत्युक्ति कर जाता हूँ, क्षमा करो और इस अपराधसे मुक्त कर दो।

और चाहे जो कहूँ, यह बात मैं कहूँगा ही कि हम लोग तुम लोगोंके दरवाज़े भिक्षाकी थैली ले जाते हैं। तुम लोग उसमें अन्न भर देती हो और उसमें कुछ अमृत भी छिपाकर (रख देती हो), मैं उसीका कुछ मूल्य चुकाता रहता हूँ। इन मुग्ध प्राणोंसे मैंने बहुत गान गाये हैं, तुम लोगोंने तो सुना ही है,—कम-से-कम कानसे ही। पुरुष परुष भाषणपूर्वक जब समालोचना करते हैं, तो इस अकालमें तुम्हारी ही वाणी रोचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ करती है। तुम लोग करुणासे कहा करती हो—"अहा, बुरा क्या है!" बीन-बीन करके कोई छन्द-दोष नहीं देखा करतीं। मुझे जो इतना मिल सका है, वही कितने आदमी पाते हैं, भारतीका भजन तो और लोग भी कर गये हैं! इसके बाद जब मैं अपनी बंशी धूलमें पेंककर चल दूँगा, तो अगर भूल सको तो भूल जाना। उस दिन नया कवि दक्खिनी पवनका झोंका खाकर वसन्तऋतुको तुम लोगोंके स्तव-गानसे मुखरित कर देगा। उस दिन अगर किसी कीड़ेके खाये हुए पन्नेपर छपी हुई मेरी कविताकी एक भी लाइन तुम लोगोंके मनको मस्त कर सके, तो उस समय, जब कि मैं वैतरणीका खेवा पार कर रहा होऊँगा, हठात् मेरा वक्षःस्थल काँप उठेगा। यह कैसी मुसीबत है! इस कल्पनाके विहारसे क्या लाभ? इसीको सेन्टिमेन्टेलिटी कहते हैं! मरनेपर भी बच रहनेका आग्रह, यह लड़कपन! इससे बढ़कर घोर बेवकूफ़ी संसारमें नहीं है। यह तो आधुनिका किसी प्रकार न बरदाश्त कर सकेगी, उसके ऐस्टीमेशनमें यह अत्यन्त नीचा पड़ जायगा। अतएव, ऐ मेरे मन, ले आ अपना घड़ा और रस्सी और अतलमें एक डुबकी लगाकर Mid-Victorian (डूब मर)! अश्रु-सिंचनसे तो कोई फल होनेका नहीं, तो फिर सूखी हँसी ही छोड़े जाता हूँ। विदाईके पाठका सुर गद्गद क्यों हो? क्यों न अन्तिम समय हँसी-ठट्ठामें काट दिया जाय? तुम लोगोंके मुँहपर हँसीकी रोशनी रोशन रहे; कुछ सीरियस बात कहूँ, तो भी दोष नहीं।

कभी-कभी ऐसी प्रभाशालिनी भी दीख गई हैं, जो 'इस-कालिनी' ही नहीं, चिर-कालिनी थीं। अपने कनफेशनसे ही यह बात कह जाऊँगा कि उनके मिलनमें कोई क्षणिक नशा नहीं होता। जीवनकी संध्यामें उन्हींके वरणमें इस सुवर्ण-खचित स्मृतिपर अन्तिम रवि-रेखा अंकित रह जायगी। स्वर्गंगाके किनारे जो अमृत उफनाया करता है, उसका कुछ अंश कभी-कभी भूतलपर भी झर पड़ता है, इस जन्ममें उसे जनानेकी सम्भावना कैसे हो सकेगी, यदि उसे देख न पाऊँ। सो हमारे सोने-बैठनेमें न जाने कितनी त्रुटियाँ थीं, किन्तु उनकी आँखोंमें सदा क्षमा रहती थी। पुण्यके आलोकसे उन्होंने प्रेमका दीपक जलाया था और जो-कुछ अच्छा था, उसे मधुर कर दिया था। उन्होंने नाना रूपमें जिस भोग-सुधाकी वर्षा की थी, उसे उन्हींके सुकुमार स्पर्शने पवित्र कर दिया था। जीवनके इस किनारे जो कुछ मूल्यवान मिला था, उसे मृत्युके किनारे कौन ले जा सकता है? तो भी ऐसी आशा होती है कि मृत्युकी रातको भी उन्हींका प्रेम पाथेयके रूपमें ले जा सकूँगा। और तो कुछ काम नहीं है, तीन काल [पन] तो बीत गये हैं। अब जो काल बच रहा है, वह Cynical है। कुछ ऐसी चीज़ है, जिसके लिए गहरा निःश्वास जाग पड़ता है, ढका रहने दो उसके प्रति मेरा विश्वास!

ज़रा सब्र करो। और भी कुछ कहकर बातकी चरम सीमापर पहुँच जाऊँगा। जो चला गया है, उसके लिए चेतनाको न उसकाना। छायाको अतिथि बनाकर आसन न बिछाना। प्रतिवर्ष शोक करनेकी जो रीति चल पड़ी है, उसकी झुठाईके धक्केसे स्मृतिकी दीवार टूट जाती है। भीड़ करके समारोह करना और रटे-रटाये विलापसे कहीं ऐसा न हो कि प्रथाके खिलाफ़ कोई अपराध हो जाय। भारतवर्षमें इन बातोंका कोई लेश नहीं था, अपने मेमोरियलके लिए कविपर ही भार रहता था। 'नहीं भूलूँगा, नहीं भूलूँगा' यह चिल्लाहट तो विधाता सुनता नहीं, फिर तुम्हीं बताओ कि इससे किसका क्या भला होगा? जो भूलना सहज भूलना है, जो अपनेको भी अलक्ष्य है, हृदयके स्वास्थ्यके लिए वही भूलना अच्छा है। शुष्क उत्सकी खोजमें मरुस्थलकी मिट्टीका खोदना, तेलहीन दीपकके लिए दियासलाईका जलना, जो भैंस नहीं, उस भैंसको खदेड़ना, जो किसी काम नहीं आयेगा, ऐसे कामका बढ़ाना—अजी, ये सभी शक्तिके अपव्यय हैं, ये उत्साह दिखानेके सत् उपाय नहीं हैं। मनमें यह समझ रखो कि यह जीवन तो मरणका ही यज्ञ है। जो स्थायी है और जो रहने-योग्य नहीं [अस्थायी] है, सभी आहुति-रूपमें उसीकी शिखापर पड़ती है। जो चीज़ नहीं टिकनेकी, उसे बातोंके ज़ोरसे कौन टिका सकता है? फिर भी भस्म हो जानेके बाद भी जो-कुछ रह जायगा, वह तो अपनी बात खुद-बखुद कहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय सय्यद अमीर अली 'मीर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशभक्त अबीसीनियन सरदार रास इमरू
जो अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़नेके अपराधपर इटेलियनोंके हाथ बन्दी हुआ है

इंग्लैण्डमें जहरीली गैसोंको रोकनेवाली नकाबें बनानेवाला एक [illegible] कारखाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्मी बर्माकी राजधानी मांडले

ब्रजमोहन वर्मा

मांडले जानेके लिए रंगून स्टेशनपर पहुँचनेपर मालूम हुआ कि बर्माके बदक़िस्मत बाशिन्दोंको रेलकी दुनियामें भी तीन चीज़ोंके दर्शन मयस्सर नहीं—एक तो कम्पनीकी रेलवे, क्योंकि समूचे बर्माकी रेलवे लाइन सरकारी है ; दूसरे बड़ी लाइन (ब्राड गेज) की गाड़ियाँ, क्योंकि सारे बर्मामें सिर्फ़ मीटरगेजकी बचकानी लाइन है ; तीसरे इन्टर क्लास, क्योंकि बर्माकी रेलोंमें थर्ड और सेकेण्डके बीच यह खच्चर दर्जा नहीं होता।

बर्मी थर्ड क्लासका एक विचित्र दस्तूर पहले ही सुन रखा था, वह यह कि आप पहलेसे पहुँचकर जिस सीटपर बिस्तर बिछा लें, उसपर आपका पुश्तैनी कब्ज़ा हो जायगा—ठीक वैसे, जैसे हिन्दोस्तानपर अंगरेज़ोंका। फिर जब तक आप उसका पिण्ड न छोड़ें, तब तक सीट आपकी। पीछे आनेवाले मुसाफिर न तो आपसे बिस्तर समेटनेको कहेंगे, न बैठनेको जगह माँगेंगे। वास्तवमें यह कोई क़ानूनी नियम नहीं है ; लेकिन कभी-कभी यार लोगोंके चलाये दस्तूर भी तो क़ानूनसे कम क़ूवत नहीं रखते। गोकि इस दस्तूरसे पहले पहुँचनेवाले मुसाफिरको काफी आराम मिलता है ; लेकिन इससे थर्ड क्लासकी यात्राकी सारी चहल-पहल ही ग़ायब हो जाती है। इस दस्तूरने बर्मी थर्ड क्लासको एक मनहूस चीज़ बना दिया है। हमारे हिन्दोस्तानमें थर्ड क्लासमें जगह पानेके लिए जो तू तू मैं-मैं, खींचा-तानी, गाली-गुफ्ता, धक्का-मुक्की और तरह-तरहकी राग-रागनियाँ दीख और सुन पड़ती हैं, बर्माकी रेलोंमें वे सब दिलचस्पियाँ नदारद रहती हैं। नतीजा यह होता है कि 'रश' होनेपर भी बर्मी थर्ड क्लासमें मुहर्रमी सन्नाटा ही रहता है।

रंगूनसे मांडले एक्सप्रेस दो बजे दिनको चलता है। जगह पानेके लिए कुछ पहले ही मैं स्टेशनपर पहुँच गया। श्री धर्मचन्द्र खेमका, श्री पटेश्वरीप्रसाद तथा श्री रामसिंहासन पाण्डे आदि बन्धु स्टेशन तक पहुँचाने आये थे। उन्होंने थर्ड क्लासके एक डब्बेपर बाक़ायदा हमला करके एक सीटपर दख़ल जमाया और बिस्तरा बिछाकर उसपर बाज़ाब्ता मेरा कब्ज़ा घोषित कर दिया।

थर्ड क्लासकी गाड़ियाँ बाहरसे ख़ूब साथ-सुथरी नज़र आती हैं ; लेकिन भीतर जाकर जो देखा, तो दीवारें, बेंचें और टाँडें सभी 'काली-कलूटी बैंगन लूटी' सी बदसूरत, बिसूरती नज़र आईं। जान पड़ता था कि राजा थीबाके ज़मानेसे कभी उनपर रंग-रोग़न ही नहीं किया गया। पहले तो समझमें न आया कि इन गाड़ियोंको बाहरसे ऐसी लक़दक़ चमाचम और भीतरसे ऐसी काली-कलूटी—'तनकी उजली मनकी मैली'—रखनेमें क्या मसलहत है ; लेकिन मांडलेमें एक जानकारने बताया कि ये गाड़ियाँ सागौन लकड़ीकी बनी हैं और भीतर उनपर रंगके बजाय मिट्टीका कच्चा तेल (Earth Oil), जो काले-काले कीचड़की शक्लका होता है, चुपड़ा जाता है, क्योंकि इससे सागौनकी उम्र बढ़ती है।

२। बजे गाड़ी चली। धीरे-धीरे रंगून शहर और उसके दूर तक फैले हुए उपकूल छूटने लगे। अब मैंने डब्बेके मुसाफिरोंपर नज़र दौड़ाकर उनकी जन्मपत्री जो मिलाई, तो देखा कि यहाँ भी बारह मसाले इकट्ठे हैं। मेरे ही डब्बेमें बर्मी, चीनी, पंजाबी, तमिल, तैलुगू, हिन्दोस्तानी, नेपाली, गुजराती, कचीन और शान—दस विभिन्न जातियों और भाषाओंके प्रतिनिधि मौजूद हैं। साथ ही यह बात भी दीख पड़ी कि छोटे-से-छोटे और ग़रीब-से-ग़रीब बर्मीके कपड़े-लत्ते और बदन उसी हैसियतके हिन्दोस्तानियोंकी बनिस्बत कम-से-कम दस गुना ज़्यादा साफ़-सुथरे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

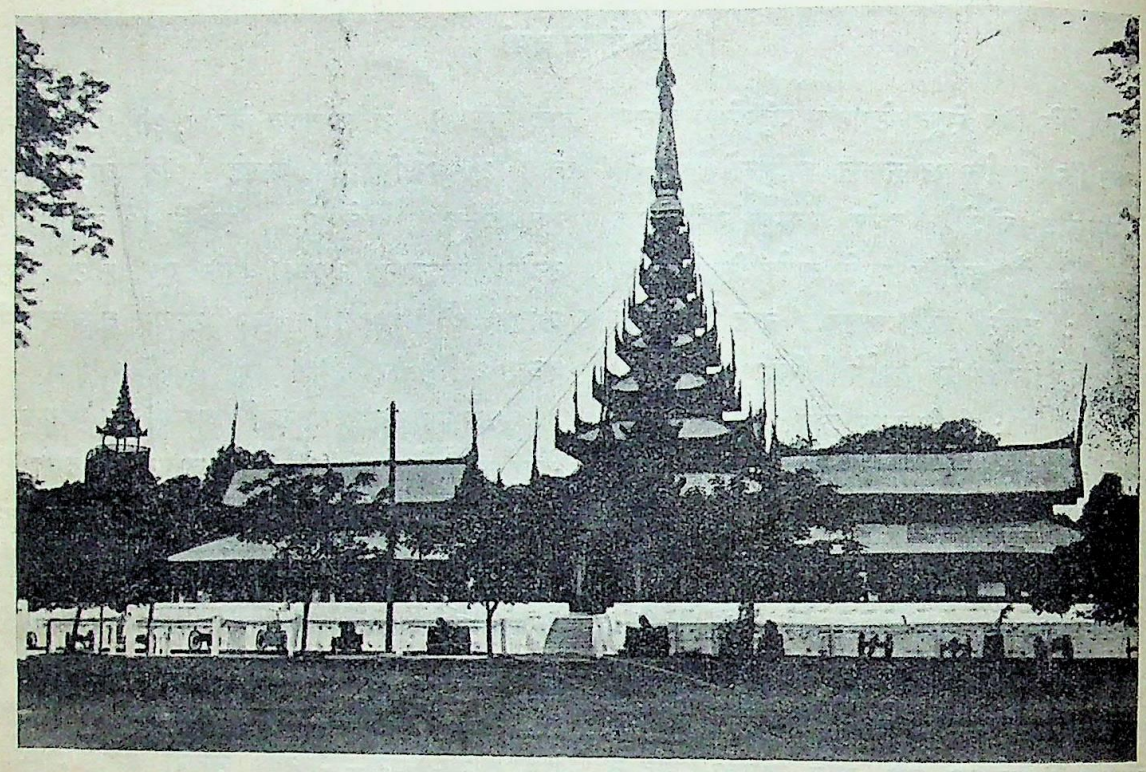

मांडलेके किलेमें बर्माके भूतपूर्व राजाका महल

छोटी लाइन होनेपर भी गाड़ी काफ़ी तेज़ चलती है और रंगूनसे मांडले तकका ३८६ मीलका फासला १५। घंटेमें तै कर लेती है। दोनों तरफ धानके खेत फैले हैं। पेड़ तो शायद ही कहीं दीख पड़े। जहाँ तक नज़र जाती है, डहडहा धानी फर्श बिछा दीखता है। बीच-बीचमें जो दो-चार गाँव दीख पड़ते हैं, उनके पैगोडोंकी सुनहरी चोटियाँ धूपमें चमचमा रही थीं। पेगू स्टेशनसे आगे बढ़ते ही सुदूर क्षितिजपर काले बादलोंकी शक्लमें पहाड़ी सिलसिला दिखाई देने लगा। यह पर्वत-श्रेणी लगातार मांडले तक चली गई है। रेल पहाड़की घाटीमें होकर ही दौड़ती है। चिराग़ जले धानके खेत खत्म हो गये और खूब घना जंगल मिला। बादमें अँधेरा हो जानेसे कुछ दीख न पड़ा।

मैंने यह जाननेकी कोशिश की कि रास्तेके स्टेशनोंपर खाने-पीनेका भी कुछ सामान मिलता है या नहीं। देखा, हर स्टेशनपर बर्मी भोजन बिक रहा है। बाँसकी बँहगीपर दोनों ओर चावल, गोश्त, मछली, 'नप्पी' आदिचीज़ें लादे बर्मी पुरुष और उनके आगे उन्हें बेचनेवाली बर्मी स्त्रियाँ—साफ-सुथरी, बनी-ठनी—प्लैटफार्मपर दौड़ रही हैं। बाँसके खूब हरे पत्तोंमें बँधे बर्मी भोजनके पैकट बहुत बिकते दीख पड़े। एक बर्मी औरतसे मैंने इशारेसे पूछा कि इन पैकटोंमें क्या है। उसने मुँह बनाकर अपनी ज़बानमें कुछ कहा—जिसका मतलब मैंने यही समझा कि यह तुम्हारे खानेकी चीज़ नहीं है। हाँ, हर स्टेशनपर तमिल मुसलमान 'काफी-काफी'की आवाज़ लगाते दीख पड़े। हिन्दुस्तानी भोजनकी अगर कोई चीज़ नज़र आई, तो वह थी 'प्याज़'। अधिकांश स्टेशनोंपर मुसलमान खोमचेवाले तेलमें तली हुई बेसन और और प्याज़की पकौड़ियोंको 'प्याज़-प्याज़'के चीत्कारके साथ बेचते थे। सिर्फ एक स्टेशनपर एक हिन्दोस्तानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

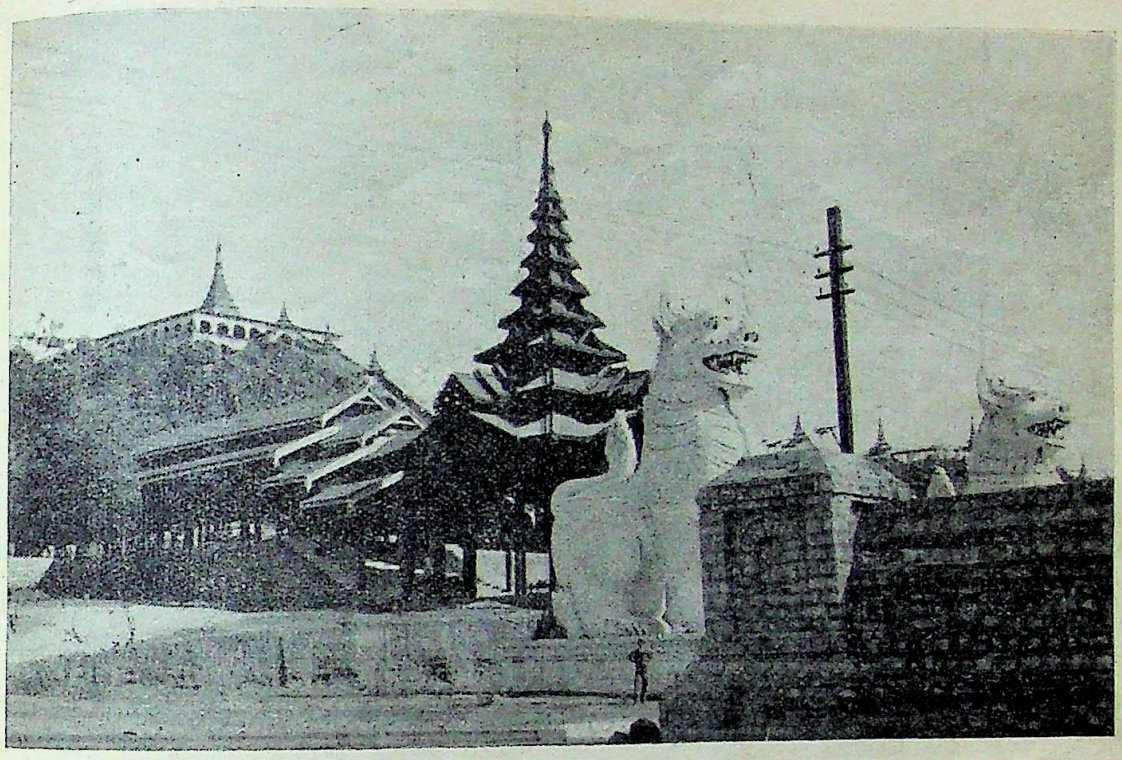

मांडलेकी पहाड़ीके प्रवेश-द्वारपर विशालकाय सिंह मूर्तियाँ। मूर्तियोंके आकारका अनुमान नीचे खड़े मनुष्यसे कीजिए

हिन्दू अपनी लड़कीके साथ कुछ पूड़ियाँ और तेलकी बनी हुई जलेबियाँ बेचता नज़र आया। हाँ, बिस्कुट, पावरोटी और सोडा-लेमोनेड कई स्टेशनोंपर दीख पड़ा। मैं अपने साथ भोजन लाया था। उसे एक गिलास काफीके सहारे गलेके नीचे उतारकर सोनेकी ठानी। डब्बोंमें पटरियाँ लम्बाईमें न होकर बेड़ी हैं और उनके एक ओर रास्ता है। फलतः वे सिर्फ इतनी ही लम्बी हैं कि उनपर सवा चार फीट क़दका आदमी मज़ेमें लेट सकता है; अगर बदक़िस्मतीसे आप इससे लम्बे हुए तो या तो सिर निकला रहेगा या पैर।

नींद तो आई नहीं। सोते-जागते रात काटी। रास्तेके अनेक क़स्बोंमें बिजलीकी रोशनी दिखाई दी। भारतके अन्य सब प्रान्तोंकी बनिस्बत बर्माके मुफस्सिलमें बिजलीका प्रचार कहीं ज्यादा दीख पड़ा। कस्बों और छोटी बस्तियोंमें पब्लिककी बिजली न भी हो, तो उनमें जो बड़े-बड़े पैगोडे हैं, वे अपने निजी डायनमों रखकर बिजली पैदा करते और जलाते हैं। पैगोडोंकी चोटीसे लेकर नीचे जड़ तक बिजलीकी बत्तियोंकी मालाएँ दौड़ी रहती हैं। अमावस्याकी रात और बरसातके बादलोंके घटाटोप अन्धकारमें मीलों दूरसे प्रकाशके ये स्तम्भ बड़े सुहावने नज़र आते हैं। पौ फटनेके पहले ही मांडले जा पहुँचा। स्टेशनपर 'ब्रह्मदेश'के प्रकाशक और सम्पादक श्री रामचन्द्र भारतीय, श्री रामचन्द्र विशारद और श्री रामेश्वर त्रिवेदी मौजूद थे। उनके साथ आर्यसमाजको रवाना हुआ।

पहली ही मोड़पर हमारी घोड़ागाड़ी मांडलेके क़िलेके नीचे जा पहुँची। सड़क क़िलेकी खाईकी बग़लसे होकर दौड़ती है। कुछ ही दूर आगे बढ़े थे कि अचानक सामनेसे कोई तीन-चार सौ बर्मियोंकी एक भीड़ आती दीख पड़ी। पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे, सभी थे। स्त्रियोंकी तादाद पुरुषोंसे कम नहीं थी। सभीके कपड़े साफ़-सुथरे थे। अधिकांश रेशमी लुंगियाँ पहने थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

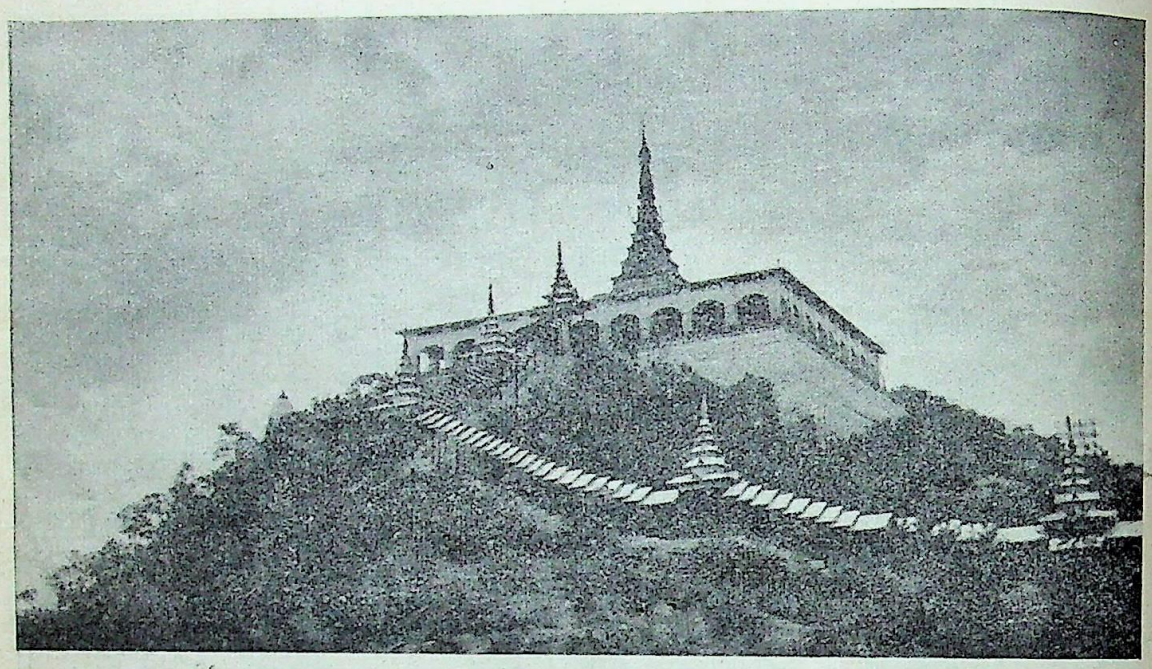

मांडलेकी पहाड़ीपर बना हुआ एक नया मंदिर। दाहनी ओर ऊपर जानेवाली पटी हुई सीढ़ियाँ हैं

कोई आँखें मिचमिचाता आ रहा था, कोई जम्हाई लेता। बहुतोंकी बग़लमें दरी या छोटे मख़मली क़ालीन दबे थे। किसी-किसीके हाथमें तकिया लटक रहा था। स्त्रियाँ भी बड़े बेतकल्लुफ़ाना ढंगसे चली आ रही थीं, कोई लुंगी सम्हालती, तो कोई जूड़ा लपेटती; किसीके हाथमें पंखा था, किसीके मुँहमें हाथ-भर लम्बा मोटा-सा 'चुट्टा' (चुरुट) था और कोई अपनी सखी या सखाके साथ चुहल करती, चट्टी सटसटाती हुई आ रही थी। अभी सूरज भी नहीं निकला था। इतने गजरदम इस भीड़को देखकर हैरत हुई। मैंने कौतूहलसे पूछा—"इतने तड़के यह भीड़ कहाँसे छूट पड़ी?" श्री भारतीयजीने बतलाया कि रातमें कहीं नाच था। ये लोग रात-भर नाच देखकर वापस लौट रहे हैं।

बर्मियोंकी रंगीन मिजाज़ी और ऐशपसन्दीकी यह एक झलक थी। बादमें पूछ-ताछसे मालूम हुआ कि जब नाच होता है, तो नाचके शौक़ीन अपनी-अपनी हैसियतके मुताबिक़ मख़मली कालीन, सूती दरी, बाँसकी चटाई या फटा बोरिया बग़लमें दबाकर, ज़न-बच्चों समेत, आ मौजूद होते हैं। महफ़िलमें बाक़ायदा अपना-अपना बिछावन बिछाकर, उसपर बीवी-बच्चों या यार-दोस्तोंके साथ बैठते-लेटते और आरामसे नाच देखते हैं। 'चरीदन-खुरदन' (खानपान) का इन्तज़ाम भी रहता है। नाचके बीच-बीचमें दोस्त-अहबाब मिलकर खाते-पीते हैं, कभी-कभी 'बोतलकी परी' के साथ भी गर्मजोशी हो जाती है और 'लपची' (नमकीन बर्मी चाय) के दौर तो मुतवातिर चलते रहते हैं। चूँकि बर्मामें स्त्रियोंको हर बातमें पुरुषोंकी समानता प्राप्त है, बल्कि अकसर स्त्रियोंकी ही प्रधानता है, इसलिए इन महफ़िलोंमें औरतें भी उतनी ही आज़ादी और बराबरीसे भाग लेती हैं। रात-भर इसी तरह आमोद-प्रमोद और नाच-रंगमें मसरूफ़ रहकर, सवेरे महफ़िल बरख़ास्त होनेपर ये भलेमानस और भलीमानसिन जम्हाई लेती, आँखें मिल-मिलाती, घरोंको वापस आती हैं।

मांडले मार्गमें मकानोंकी अधपक्की, अधलकड़ीकी इमारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

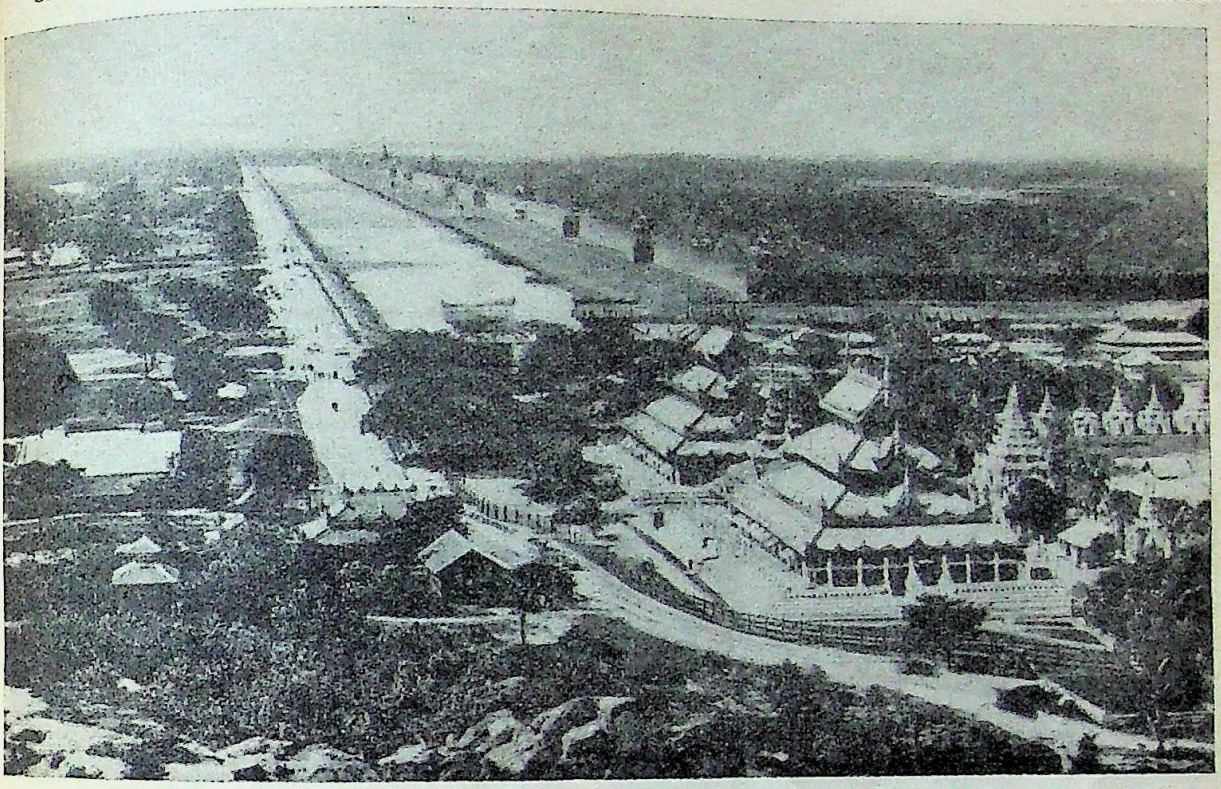

मांडलेकी पहाड़ीके ऊपरसे नगर और क़िलेका दृश्य

क़िले और बड़ा बाज़ारके नज़दीक है। ऊपरके तल्लेमें पाँच-छै कोठरियाँ हैं, जो मुसाफिरोंके लिए धर्मशालाका काम देती हैं। उन्हींमें से एक कोठरीमें मैंने भी अड्डा जमाया।

अब मांडले घूमने निकला। शहर ख़ूब साफ-सुथरा और फैलारा हैं। और हो क्यों नहीं? कोई पुराना शहर तो है नहीं। सन् १८५७ में—गदरके साल—बर्मी राजा मिण्डनने इसे बसाकर पुरानी राजधानी अमरापुराको यहाँ स्थानान्तरित किया था। इस प्रकार यह शहर बनकर बसा है, न कि बसकर बना है। इरावदी नदी और मेमयोकी पहाड़ियोंके बीच एक मैदानमें मांडले आबाद है। कुछ सरकारी इमारतों और नये मकानोंको छोड़कर ज्यादातर मकान लकड़ीके है। उन्हें देखकर मालूम हो जाता है कि बर्मा सचमुच सागौन (टीक) का मुल्क है। इसी सागौनकी बदौलत ही बर्माको अपनी आज़ादी खोनी पड़ी थी।

रंगून बर्माकी राजधानी है, और आजकल शिक्षा तथा व्यापारका केन्द्र भी है। किन्तु रंगूनको बर्मी शहर कहना ग़लत होगा, क्योंकि उसकी आबादीमें बाहरवाले इतनी काफी तादादमें हैं कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तरप्रान्तीय शहर बन गया है। हाँ, मांडले अलबत्ता बर्मी शहर है। यद्यपि भारतकी भाँति ठेठ बर्मा भी देहातोंमें ही बसता है, फिर भी बर्माकी शहराती संस्कृति, सभ्यता, शिष्टाचार और रहन-सहन मांडलेमें देखा जा सकता है। सन १८६० से लेकर १८८६ तक इसे स्वतन्त्र बर्माकी अन्तिम राजधानी होनेका गौरव प्राप्त रहा था।

मांडलेका क़िला शहरकी एक ख़ास चीज़ है। आर्यसमाजके बिलकुल नज़दीक होनेके कारण मैं उसे देखनेके लिए पैदल ही चल निकला; पर भीतर पहुँचनेपर देखा कि वह १॥ मील लम्बा और इतना ही चौड़ा है! क़िलेके चारों तरफ़ २०० फीटसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

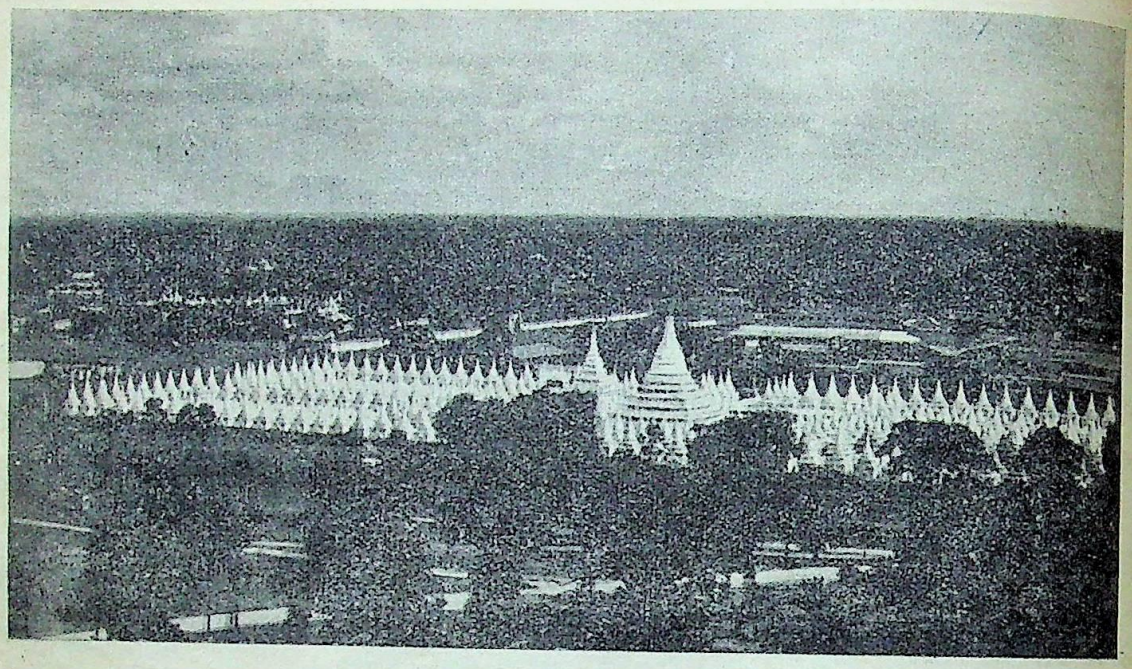

मांडलेकी पहाड़ीके ऊपरसे 'सहस्र पैगोडों' का दृश्य

अधिक चौड़ी खाई है, जिसमें कमल फूल रहे थे। कभी-कभी इसमें नावोंकी दौड़ भी होती है। क़िलेके भीतर पचासों इमारतें हैं, जिनमें किसी ज़मानेमें बर्मी बादशाहोंके अनुचर और अहलकार रहते थे; मगर अब उनमें सरकार इंग्लिशियाके विभिन्न मोहकमोंके दफ्तर आबाद हैं। इसी क़िलेमें वह जेल है, जिसमें बैठकर लोकमान्य तिलकने 'गीता-रहस्य' लिखा था, और इसीमें वह बँगला है, जिसमें लाला लाजपतराय निर्वासित करके रखे गये थे। बीचमें बर्मी राजाओंका महल है। महल दस-पन्द्रह फीट ऊँची कुर्सीपर बना है। फाटकपर दोनों ओर तोपें रखी हैं, जिनमें कभी गोला-बारूद पड़ती होगी; पर आजकल तो उनमें चिड़ियोंके घोंसले और कीड़े-मकोड़ोंके उपनिवेश आबाद हैं। कुर्सीकी सीढ़ियाँ चढ़कर चौड़ा सहन मिलता है, जिसके बाद महल है। महल एकतल्ला होनेपर भी काफी ऊँचा है और नीचेसे ऊपर तक लकड़ीका बना है। लकड़ीपर बढ़िया नक्काशी है और दीवारों, खम्भों, दरवाज़ों, छतों और कड़ियों तकपर सोना चढ़ा हुआ है। वर्षोंकी उपेक्षा और धूप-पानीसे सोना जगह-जगह मैला पड़ गया है; लेकिन जिस वक्त यह नया होगा, उस वक्त तो उसपर आँख न ठहरती होगी—उस वक्त तो वह अलादीनके तिलिस्मी चिराग़वाले महलोंको मात करता होगा। कहते हैं कि इस महलको राजा मिनडने सन् १८४५ में पुरानी राजधानी अमरापुरामें बनवाया था, जहाँसे यह ज्यों-का-त्यों उठाकर यहाँ लाकर रखा गया था। महलमें एक छोटा संग्रहालय भी है, जिसमें बर्माके अन्तिम राजा, रानियों, मन्त्रियों और ओहदेदारोंकी दरबारी पोशाकें तथा राजाके व्यवहारकी कुछ अन्य चीज़ें रखी हैं, जो समयके प्रभावसे जर्जर हो रही हैं।

मांडलेकी सबसे मनोरम जगह है मांडलेकी पहाड़ी। यद्यपि मांडले मैदानमें बसा है और पहाड़ी सिलसिला उससे दस-पन्द्रह मील दूर है; किन्तु एक एकाकी पहाड़ी भटककर शहरके ठीक उत्तरी भागमें आ निकली है। दूर तक फैले हुए शहरके सिरेपर ९५४ फीट ऊँची यह पहाड़ी ऐसी जान पड़ती है, मानो इरावदी-तटपर सोये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरके सिरहाने कोई दैत्य सन्तरी पहरा दे रहा हो। पहाड़ीके ऊपर कई मन्दिर—पैगोडे—हैं। बर्माके अन्य सभी पैगोडोंकी भाँति यहाँ भी ऊपर जानेके लिए पहाड़ीकी चारों दिशाओंमें टीनसे ढकी हुई चार सीढ़ियाँ हैं। मुख्य द्वारके दोनों ओर दो अत्यन्त विशालकाय सिंह-मूर्तियाँ हैं। पहाड़ीके शिखर तक पहुँचनेके लिए क़रीब एक हज़ार सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। श्री रामेश्वर त्रिवेदीके साथ मैंने भी चढ़ाई शुरू की। जैसे-जैसे ऊपर चढ़ने लगा, वैसे-वैसे मांडलेका सारा शहर नज़र आने लगा।

कोई ढाई सौ सीढ़ियाँ चढ़ चुकनेपर एक मन्दिर-मिला। यह बिलकुल नया बना है। यद्यपि यह पहाड़ी और उसका पैगोडा प्राचीन कालसे पवित्र स्थान माना जाता है; किन्तु पिछले कुछ वर्षसे ऊ खाँटी नामक एक बौद्धभिक्षु इसके जीर्णोद्धारके लिए हाथ धोकर पीछे पड़ा है। उसने धीरे-धीरे आठ-दस लाख रुपये एकत्रित करके पहाड़ीके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार किया और चार नये मन्दिर बनवाये हैं। इमारतें बनानेका काम अब तक जारी है। हज़ार-आठ सौ सीढ़ियोंके ऊपर ईंट, चूना, पत्थर वग़ैरह पहुँचाकर इमारत बनाना कोई मज़ाक नहीं है। पानीके लिए ऊ खाँटीने ऊपर तक नल लगाकर अपना पम्पिंग इंजन बैठा रखा है। रोशनीके लिए भी उसका निजी डायनेमो है। ऊ खाँटी एक विचित्र रचनात्मक प्रतिभावाला व्यक्ति है। अकेले दम इतना बड़ा काम कर डालनेके कारण बर्मी जनतामें उसके बारेमें अनेक करामाती क़िस्से फैल गये हैं।

हम जिस नये मन्दिरमें पहुँचे, वह भी ऊ खाँटीका बनवाया हुआ है। इसमें चारों ओर खम्भोंवाला बहुत चौड़ा दालान है और बीचमें एक कोठरी। कोठरीके भीतर एक ऊँचे सिंहासनपर काँचके डोमके भीतर सोनेके प्यालेमें भगवान बुद्धकी धातु (अस्थि-खण्ड) रखी है। कोठरीके दरवाज़ोंमें मोटे-मोटे सींखचोंके एकके बाद एक तीन दरवाज़े हैं, ताकि कोई अस्थि-खण्डको चुरा न ले जाय। यह अस्थि-खण्ड वही है, जो पुरातत्त्व-विभागके डा० स्पूनरको पेशावरकी खुदाईमें मिला था और जिसे सन् १९१० में भारत-सरकारने बर्मा-निवासियोंको भेंट कर दिया था। दालानके

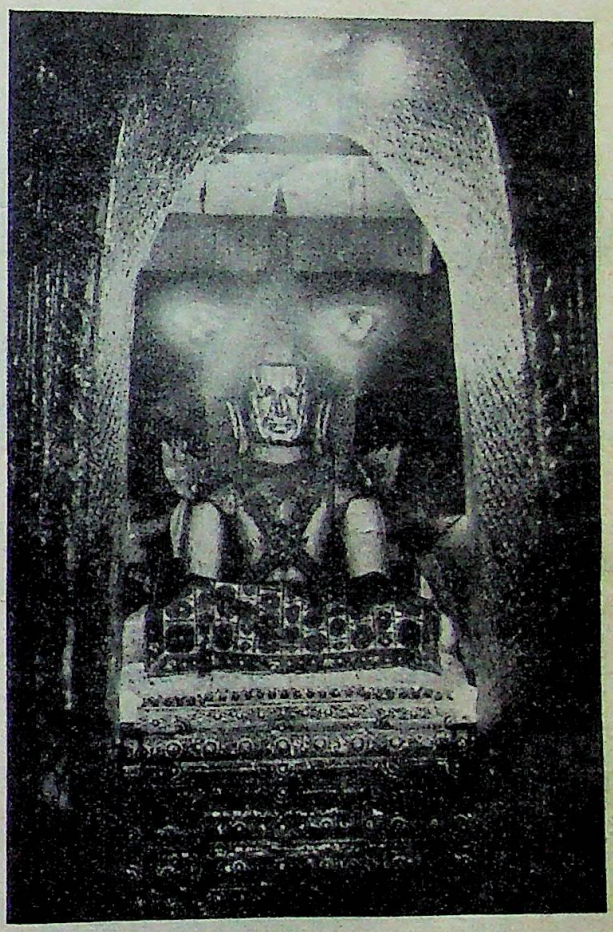

अराकान पैगोडामें महामुनि प्रतिमा

मोटे-मोटे खम्भे चौकोर हैं, और उनके हरएक पक्खेपर भीतचित्र (फ्रेस्को) बनाये गये हैं। ये चित्र भी नये हैं और यूरोपियन शैलीमें बने हैं। हाँ, उनके विषय ज़रूर धार्मिक या स्थानीय हैं। कुछमें जातक-कथाएँ चित्रित की गई हैं और कुछमें प्राचीन बर्मी राजा-रानियों, मन्त्रियों-सेनापतियों आदिके क़िस्से दिखलाये गये हैं। सब मिलाकर ढाई-तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौके लगभग चित्र होंगे। कोठरीके आगे दान-पात्र, पुष्प पात्र, मोमबत्ती-पात्र, धूपबत्ती-पात्र आदि रखे हैं। दान-पात्रमें पैसा डालनेपर पास बैठा हुआ बुड्ढा बर्मी जल्दी-जल्दी रटा हुआ मन्त्र बड़बड़ाकर आशीर्वाद देता है।

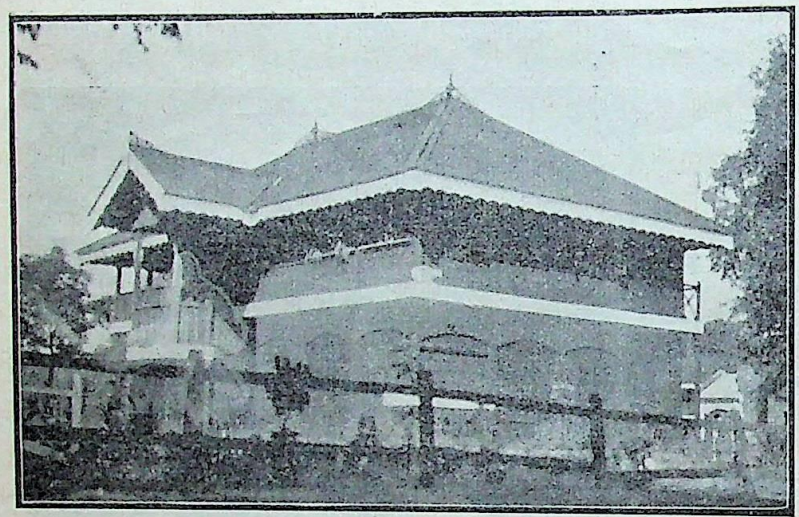

मांडलेके किलेमें वह बँगला, जिसमें लालाजी निर्वासित करके रखे गये थे

इस मन्दिरसे थोड़ा ऊपर चढ़नेपर बुद्धकी एक खड़ी प्रतिमा मिली। बर्मियोंको हाहाहूती विशालकाय प्रतिमाएँ बनानेका खब्त है। मूर्तियोंमें कला तो कम दीख पड़ती है; पर उनका विशाल आकार बहुत प्रभावोत्पादक है। यह मूर्ति भी लम्बाईमें कम-से-कम ३५ फीट होगी। सोना चढ़ा होनेके कारण यह न जान सका कि मूर्ति बनी किस चीज़की है। वहाँ बैठे हुए बर्मी रक्षकने कहा कि वह लकड़ीके एक ही कुन्देकी है। यदि ऐसा है, तो जिस पेड़से वह तराशी गई होगी, उसका व्यास १२ फीट और तना ४० फीटसे कम न रहा होगा।

थोड़ा और ऊपर चढ़नेपर एक और भव्य मन्दिर मिला। यह स्थान सबसे बड़ा और अच्छा है। यहींपर चारों दिशाओंसे आनेवाली सीढ़ियाँ मिलती हैं। सामने ही देखा कि भिक्षु ऊ खाँटी बैठे भोजन कर रहे हैं। शक्ल-सूरतसे बड़े गम्भीर और इन्तज़ामकार दीख पड़े। एक मेज़पर कुछ सम्मति-बहियाँ पड़ी थीं। उन्होंने मुझसे इशारेसे उनपर कुछ लिखनेको कहा। मैंने उसके पन्ने जो उल्टे, तो सामने हिन्दी अक्षरोंमें 'भूगोल'के सम्पादक श्री रामनारायण मिश्रके हस्ताक्षर नज़र आये।

वहाँसे और ऊपर चढ़कर हम लोग पहाड़ीकी चोटीपर जा पहुँचे। चोटीपर बीचोबीच एक स्तूप है। स्तूपमें चारों ओर चार आले (ताक) बने हैं, जिनमें बुद्धकी एक-एक बैठी हुई प्रतिमा है। बैठी हुई अवस्थामें भी इन प्रतिमाओंकी ऊँचाई आदमीके क़दसे दुगुनी होगी! इधर-उधर लोहेकी कुछ खर्बाकार मूर्तियाँ रखी हैं, जो बौद्धधर्मके आगमनके पहलेके बर्मी देवताओंकी हैं।

मन्दिर और मूर्तियोंको छोड़ देनेपर भी यह पहाड़ी एक बड़ा रमणीक स्थान है। जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते जाइये, वैसे-वैसे समूचा मांडले नगर दीखता जाता है। चोटीपर पहुँचनेपर अजीब दृश्य दिखाई देता है। इतनी ऊँचाईपर मकान पेड़ोंमें छिप जाते हैं, और समूचा शहर पेड़ोंका एक झुरमुट-सा नज़र आता है। एक ओर शहर है, दूसरी ओर दस-बारह मील तक फैले हुए धानके हरे खेत हैं, तीसरी ओर मेमयोकी पर्वतमाला चली गई है, जिसकी चोटियोंपर बीच-बीचमें पैगोडोंके सुनहरे शिखर धूपमें चमक रहे थे और चौथी ओर पहाड़ीकी तलेटीमें आबाद ओबोकी बस्ती और उसके बाद ही इरावदी नदीका विशाल वक्ष दीख पड़ता है। उन दिनों इरावदीमें बड़ी भारी बाढ़ आई थी, जिससे मीलों तक सफेद चाँदीकी चादर फैली दीख पड़ती थी। बाढ़के बीचमें ऊपर उठे हुए वृक्ष या टीले टापुओं-जैसे नज़र आते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ीकी तलेटीमें पास ही मांडलेके सुप्रसिद्ध 'सहस्त्र पैगोडा' हैं। यहाँ एक ही स्थानपर ७२९ स्तूपोंमें संगमरमरकी शिलाओंपर समूचा त्रिपिटक खुदा हुआ है। चोटीसे 'सहस्त्र पैगोडा' भी बड़े सुन्दर दीख पड़ते थे।

एक ओरकी सीढ़ीसे चढ़े थे, दूसरी ओरकी सीढ़ीसे उतरना शुरू किया। इस ओर भी बुद्धकी एक विशाल—३०-३५ फीट ऊँची—प्रतिमा मिली। मूर्तिके चारों ओर छतकी कार्निसपर फ्रेस्को चित्रोंकी कई क़तारें हैं। एक पंक्तिमें केवल फूल-पत्ते ही अंकित किये गये हैं, जो बड़े सुन्दर हैं। एक ठिकानेपर लकड़ीकी बनी हुई अजगरोंकी दो विशाल आकृतियाँ रखी हैं।

प्रत्येक पैगोडाके शिखरपर चारों ओर घंटियाँ लटकती रहती हैं। इन घंटियोंके भीतरके लटकन पीपलके पत्तेके आकारके हैं और घंटीके बाहर लटकते रहते हैं। हवाके हल्के झोंके भी इन पत्तोंको हिला देते हैं, जिनसे घंटियाँ अपने-आप बजती रहती हैं। ऊ खांटीके स्थानपर लौटकर देखा कि कुछ यात्री इकट्ठे हैं और दस-बारह वर्षका एक बालक श्रमनेर अपना रटा हुआ पाठ सुना रहा है। नगरके कोलाहलसे दूर इस पहाड़ीपर वैसे ही निस्तब्धता छाई रहती है, फिर इतनी ऊँचाईपर चिड़ियाँ भी नहीं आतीं, जो उनका कलरव ही सुन पड़े। इस गम्भीर सन्नाटेमें बालक श्रमनेरकी कनकनाती हुई आवाज़ मन्दिरकी ढलवाँ छतसे टकराकर एक अजीब समा पैदा कर रही थी। दीपावलीकी रात्रिमें मांडलेकी पहाड़ी बड़ी सुन्दर दीखती होगी। कोई चार घंटेमें पहाड़ीपर चढ़ना उतरना समाप्त हुआ।

पहाड़ीके नीचे प्रधान प्रवेश-द्वारके सामने एक नया मन्दिर बना है, जिसमें बुद्धकी एक लेटी हुई विशाल प्रतिमा है। इस मन्दिरमें बड़ी-बड़ी मेहराबें हैं, जिनकी बनावट अजन्ताके पुराने चैत्योंके आकारकी है। दिनके वक्त भी भीतर कुछ अँधेरा था। लेकिन समूचे अभ्यन्तरमें बिजलीके तार दौड़े हुए थे और ज़रा-ज़रासी दूरपर बल्ब लटक रहे थे। रातमें जब सारे बल्ब जलते होंगे, तब बड़ा अच्छा दीखता होगा। यही एक मन्दिर ऐसा दीख पड़ा, जिसमें दरवाज़े हैं, बाकी तो बर्माके अधिकांश मन्दिर चारों ओरसे खुले होते हैं, उनमें फाटक या दरवाज़े नहीं होते।

बर्माके निम्न (दक्षिणी) भागपर मेघराजकी मेहरबानी रहती है, और वह खूब तर है; लेकिन ऊपरी भागमें बारिश कम होती है, इसीलिए वह खुश्क है। मांडले इसी ऊपरी भाग—अपर बर्मा—में है। शहरमें ट्राम, बिजली, टेलिफोन, रेल और स्टीमरके स्टेशन आदि सुविधाएँ हैं। पानीकी किल्लत है। नल हैं, मगर हर मकानमें नहीं। आर्यसमाजमें कुआँ है, जिसमें पास-पड़ोसके बहुत लोग पानी भरने आते हैं।

एक दिन श्री निरंजन गलियाराके साथ मेमियोकी सैर की। मांडलेमें श्री निरंजनजीका घर भी एक तीर्थस्थान-सा है, क्योंकि उसमें महात्मा गांधी और लाला लाजपतराय अतिथि रह चुके हैं। जब लोकमान्य तिलक मांडले जेलमें थे, तब निरंजनजीके पिता अकसर भारतीय भोजन बनवाकर उन्हें जेलमें भेजा करते थे। निरंजनजी स्वयं बहुत संस्कृत और उच्च विचारोंके नवयुवक हैं। उनकी माताजीने बारदोलीके सत्याग्रहमें बहुत काम किया था। मेमियो बर्माकी पहाड़ी राजधानी है। गर्मीमें बर्माके गवर्नर वहीं रहते हैं। मांडलेसे मेमियोका फासला ४० मील है। रेल भी जाती है। हम लोग मोटरसे गये थे। शहरसे बारह-चौदह मील निकल जानेपर जंगल और पहाड़ियाँ शुरू हो जाती हैं। आगेका रास्ता साँपकी तरह बलखाता हुआ जाता है। एक तरफ पहाड़, दूसरी तरफ खड्ड, बीचमें 'ज़िगज़ैग' सड़क। कोई बीस-बाईस मीलपर निरंजनजीने सहसा मोटर रोककर नीचे उतरनेको कहा। शायद मोटर ख़राब हो गई है, यह समझकर मैंने पूछा, क्या हुआ। निरंजनजीने हाथ थामकर मुझे घुमा दिया और कहा—"इस तरफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखिये।" देखा, अजीब नज़्ज़ारा था। बीस मीलकी दूरीपर मांडलेका समूचा शहर, इरावदीका पाट, उसके उस पार मिंगूनका प्रसिद्ध घंटा और सगाईंकी पहाड़ियोंपर बने हुए पैगोडे—सभी चीज़ें चित्रमें अंकित-से दीख पड़ते थे। मेमियोकी चढ़ाईमें यह स्थान सबसे ऊँचा है और यहाँसे बीस-पचीस मील दूर तकका दृश्य दीख पड़ता है, इसीलिए इसका नाम 'व्यूप्वाइंट' है। 'व्यूप्वाइंट' नामका एक साइनबोर्ड भी यहाँ लगा हुआ था।

मेमियो बहुत ख़ूबसूरत जगह है। वह समुद्रतलसे ४,००० फीटकी ऊँचाईपर है। वहाँ फूल ख़ूब उगते हैं। सड़कके दोनों ओरके मकानों—बँगलोंके—अहाते रंग-बिरंगे फूलोंसे लहलहा रहे थे। बर्मी लोग फूलोंके बहुत शौक़ीन होते हैं। घरोंको सजाने और देवताओंपर चढ़ानेके अतिरिक्त बर्मी स्त्रियाँ अपने बालोंमें फूलोंके गुच्छे खोंसती हैं, इसलिए बर्मामें फूलोंका रोज़गार भी काफी है। मेमियोके फूल बिकनेके लिए रोज़ाना ४०० मील दूर रंगून भेजे जाते हैं। मेमियोमें एक ख़ूबसूरत कृत्रिम झील भी देखी। बतलाया गया कि गत महायुद्धमें गिरफ्तार किये हुए तुर्क सैनिक मेमियो लाकर रखे गये थे, और उन्हींसे यह झील खुदवाई गई थी। दिन-भर मेमियो घूमकर शामको मांडले वापस आया।

मांडलेका अराकान पैगोडा बहुत मशहूर है। इस पैगोडा तक ट्राम जाती है और रेलका शाँज़ू स्टेशन भी इसके नज़दीक है। इस पैगोडेके भीतर अच्छा ख़ासा मीना बाज़ार आबाद है। पटी हुई सीढ़ियोंपर दोनों तरफ फूल और मोमबत्तियोंकी दूकानोंके अलावा, खिलौने, छाते, बर्मी कपड़े, मनिहारी, बाँस और लुकका सामान, गहना, मिठाई, चाय आदि—दुनिया, भरकी दूकानें हैं। इन दूकानोंपर सजी-बजी बर्मी स्त्रियाँ सौदा बेंचती हैं। मोल-भाव करने और गाहक पटानेमें वे मर्दोंके कान काटती हैं। यहाँ बाँसकी बनी हुई तश्तरियाँ, प्याले, डिब्बे, पानदान, तश्त वग़ैरह देखकर बर्मियोंकी कारीगरी और कलादक्षताकी सराहना करनी पड़ती है।

इस मन्दिरकी प्रधान प्रतिमा, जो 'महामुनि प्रतिमा' कहलाती है, किसी धातुकी बनी हुई है। चेहरा साफ सोनेका दीख पड़ता है। कहते हैं कि इस प्रतिमाको सन १४६ में अराकानके राजा चण्डसूर्यने उस समय ढलवाया था, जब बौद्धधर्म नया-नया अराकान पहुँचा था। यह मूर्ति अराकानके एक मन्दिरमें थी। सन १७८४ में जब बर्मियोंने अराकानपर हमला करके उसे फतह किया, तो वे इस पवित्र मूर्तिको म्रोहाँगसे यहाँ उठा लाये। इसलिए इस मूर्तिका बड़ा माहात्म्य है। भक्त लोग इसपर सोना चढ़ाया करते हैं। अपनी-अपनी हैसियतके अनुसार भक्तगण सोनेका वरक़ ख़रीदकर मूर्तिके शरीरपर चिपका देते हैं। मूर्तिके शरीरपर गोंदकी तरह कोई चिपकनेवाला तरल पदार्थ लगा रहता है। मुख छोड़कर आप जहाँ चाहें सोना चिपका दें। नतीजा यह है कि मूर्तिके शरीरपर कई इंच मोटी सोनेकी तह जम गई है, जो कहीं ऊँची-कहीं नीची है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—कोई भी मूर्तिके सिंहासनपर चढ़कर सोना लगा सकता है। सिंहासनमें अनेक नग जड़े हैं। बैठी हुई मूर्तिकी ऊँचाई १२॥ फीट, कमरका घेरा ९॥ फीट और भुजाओंका घेरा ५ फीट है।

इस मन्दिरमें काँसेकी बनी हुई आदमियोंकी छोटी प्रतिमाएँ, सिंहकी तीन मूर्तियाँ और तीन सिरवाले हाथीकी एक प्रतिमा है। ये सब प्रतिमाएँ खण्डित हैं, परन्तु कलाकी दृष्टिसे ये अत्यन्त उत्कृष्ट हैं, ये अराकानकी लूटमें प्राप्त हुई थीं।

एक सप्ताह मांडलेकी ख़ूब सैर करके एक दिन बड़े सवेरे इरावदी नदीमें स्टीमरसे पगानके लिए रवाना हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री और प्रेम

श्रीमती होमवती

मैं स्त्री हूँ, इसलिए मुझे तो यह शोभा नहीं देता कि मैं स्त्री-प्रेमका विज्ञापन करूँ। परन्तु सभी तो ऐसा कहते हैं कि स्त्री प्रेमकी प्रतिमूर्ति है, उसका हृदय कोमल होता है और न-जाने ऐसी किस वस्तुसे बना हुआ होता है, जो हवाके एक हल्के झोंकेसे ही पानी-पानी हो जाता है। वास्तवमें कदाचित् यह ठीक ही है; परन्तु सोचना यह है कि यह निरा प्रेमका ही प्रभाव है, या इसमें कुछ अज्ञानताका भी सम्मिश्रण है। यह तो ठीक है कि स्त्री जिससे प्रेम करती है, जिसे स्नेह और सहानुभूति प्रदान करती है, उसपर मर-मिट जाती है। अपने प्रेमपात्रके दोषोंपर या तो उसकी दृष्टि ही नहीं जाती, या वह उन दोषोंको क्षमा करती हुई अपने प्रेमपात्रको निर्दोष बनानेकी चेष्टा कर देखती है; परन्तु सर्वथा उसका त्याग नहीं कर देती। यदि वास्तवमें वह किसीसे प्रेम करती है तो? अन्यथाकी तो बात ही दूसरी हो जाती है। भारतीय ललनाके गम्भीर हृदयतलकी बात निकाल लेना उतना सरल नहीं।

भारतकी रमणियाँ पुत्र-प्रेम और पति-प्रेम या पति-भक्तिमें सब देशोंके नारी-समाजसे बढ़ी-चढ़ी हैं। वे उनसे कुछ भी न पाकर अपना सब-कुछ दे डालती हैं। यहाँपर यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या सभी स्त्रियाँ एक-सी ही होती हैं? बहुत-सी तो परिस्थितियोंके कारण ही ऐसा करनेके लिए वाध्य होती हैं। इसमें किंचित भी सन्देह नहीं कि बहुत-सी ऐसी भी हैं; परन्तु कुछ ऐसी भी तो हैं, जो स्वार्थ या परिस्थितिको पार करके भी प्रेम करती हैं। यद्यपि देशमें पुनर्विवाह या बाल-विधवा-विवाहको अब कोई उतना हीन नहीं समझता (पक्के सनातनियोंको छोड़कर) कि एकदम जाति-बहिष्कार ही कर डाले; किन्तु ऐसी दशामें भी बहुत-सी स्त्रियाँ भारतमें अब भी ऐसी प्रस्तुत हैं, जिन्होंने एक बार पतिके सहयोगमें रहकर या प्रथम दृष्टिमें ही अपना सर्वस्व उसे अर्पण कर दिया है, और फिर वे वैधव्यकी कठिन यातना जीवन-पर्यन्त सरपर लादनेको तैयार हैं; पर पुनर्विवाहके नामसे चिढ़ जाती हैं और उससे घृणा भी करती हैं। पुत्र चाहे कैसा भी कलंकी और कुपात्र हो; पर माता कभी उसके अनिष्टकी बात नहीं सोचेगी। सम्भव है कि पुत्र-प्रेम अन्य देशोंमें भी ऐसा ही हो; पर भारतमें तो कम-से-कम ऐसा ही है।

यहाँ तक तो भारतीय नारीके उस प्रेमका उदाहरण है, जो सर्वसाधारणकी दृष्टिसे बचा हुआ नहीं है, अथवा विख्यात है। अब आगे सोचना यह है कि क्या केवल इतने ही में प्रेमकी परिभाषा समाप्त हो जाती है। सम्भव है कि बहुत-सी बहनें ऐसा ही समझती हों। उनके प्रेमका क्षेत्र विस्तृत न होकर बहुत संक्षेपमें ही अपने विस्तारकी परिधि समाप्त कर देता हो; परन्तु मैं तो ऐसा नहीं सोचती, और सम्भव है कि कुछ बहनें मेरे विचारसे भी सहमत हों। यदि वास्तवमें किसीका हृदय प्रेमसे ओतप्रोत है, यदि स्त्री-जातिका हृदय प्रेमका स्रोत है, तो कोई व्यक्ति-विशेष ही उसका अधिकारी क्यों है? वह सभीके लिए एक-सा न सही; परन्तु थोड़ा-बहुत प्रेम तो दे ही सकता है। वहाँ ऐसा क्यों होता है कि कोई तो तृप्त होकर लौटता है और कोई केवल प्यासा ही नहीं, वरन ईर्ष्या-द्वेष और कलहकी अग्निसे झुलस कर आता है। आज भारतके प्रत्येक गृहस्थके घरमें कलह, ईर्ष्या-द्वेष और दुर्वचनोंकी ध्वनि क्यों सुनाई देती है? स्त्री गृहिणी है, गृह-स्वामिनी है, अपने घरकी अधीश्वरी है, फिर ऐसा क्यों होता है? चाहे माता, भगिनी, पत्नी, भावज, दादी, ताई या चाची किसी भी रूपमें क्यों न हो? आखिर किसी-न-किसी स्त्रीके हाथमें तो घरका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरदायित्व रहता ही है। होना तो यह चाहिए था कि स्त्री अपने अधिकारका दुरुपयोग न करके विशेष सम्बन्धियोंके अतिरिक्त अपने गृहके अन्य सदस्य तथा आश्रितोंपर भी दो-चार स्नेहके छींटे डालती रहकर उन्हें सन्तुष्ट करती रहती; किन्तु होता है ठीक इससे उलटा व्यवहार। सम्भव है कि पुरुषोंसे भी अधिक वह स्त्री ही कठोर हो जाये, जिसके हाथमें घरकी बागडोर है, जिसके ऊपर गृह-नियन्त्रणका उत्तरदायित्व है। मैं यह जानती हूँ कि पुरुषोंके ऊपर भी दीनोंके साथ नित्य होनेवाली कलह और दुर्बलोंके साथ होनेवाले अत्याचारका उत्तरदायित्व कुछ कम नहीं है; परन्तु मैं यह भी माननेको तैयार नहीं हूँ कि उस कलह और अत्याचारमें केवल पुरुषोंका ही सारा दोष है, स्त्री बिलकुल निर्दोष ही है। पुरुषोंको चाहे अपनी बुद्धिमानीपर अभिमान हो, चाहे वे अपनेको कितना ही दूरन्देशी, चतुर और उदार समझते हों; परन्तु मैं तो कहूँगी कि स्त्रियाँ उनसे अधिक चतुर और बुद्धिमती हैं, जो सहज ही झूठी-सच्ची युक्तियाँ मिलाकर पुरुषोंकी बुद्धिपर पर्दा डाल देती हैं, अपनी उचित-अनुचित बातोंसे उनके कान भर देती हैं और अन्तमें अपनी मनमानी करनेके लिए पुरुषको भी सहायक बना लेती हैं। किसी भी ससुर, जेठ, देवर अथवा पिता और भाईको घरके बाहरी भागमें बैठकर यह जान लेना कठिन नहीं, वरन असम्भव है कि उसके घरकी अनाथ बहन या बेटी, विधवा बहू या भावज, चाची या मा कैसे चरित्र और कैसे स्वभावकी हैं? और न वह उक्त स्त्रियोंके गुणावगुणोंकी ठीक-ठीक विवेचना ही कर सकता है। वह जो-कुछ सुन लेता है, उसीके अनुसार अपनी धारणा बनानेकी चेष्टा करता है, और अन्तमें समाजके सामने अत्याचारी तथा कुकर्मीके रूपमें आ जाता है। परन्तु इसकी जड़में—इस कांडके मूलमें किसका हाथ होता है, यह बहुत कम लोग समझते हैं। यह सब करतूत उन्हीं प्रेमशीला श्रीमतीजीकी होती है, जो गृह-स्वामिनीके उच्चतम सिंहासनपर आरूढ़ तथा गृह-स्वामीके निकटतम सम्पर्कमें होती हैं। जब किसी स्त्रीके हाथमें गृह-संचालनका अधिकार आ जाता है, तब अन्य स्त्रियोंको वह अपनी बराबरमें खड़ी होनेके योग्य नहीं समझती। वह तब यह भी भूल जाती है कि दैव गतिसे किसी दिन स्वयं भी इस स्थितिको पहुँच सकती है। हृदयकी विशालता, प्रेम और कोमलता तब सभी कुछ नष्ट हो जाती है, केवल कपट, ईर्ष्या, द्वेष और दम्भ ही का काला रंग उसके हृदयको खूब गहरे रंगमें रँगकर मृतप्राय बना देता है। सास बहूपर, बहू सासपर, ननद भावजपर, भावज ननदपर अथवा परस्पर देवरानी-जेठानी में एक दूसरीके खूनकी प्यासी बनती देखी गई है तब अत्याचार करनेपर तुल जाती है। स्त्रीके प्रेम की कोमलताके साथ-साथ उनकी कलह-प्रियता भी विख्यात है। पुरुषकी बुद्धिमत्ता और पुरुषार्थके साथ-साथ उनके कानोंका कच्चा होना भी प्रसिद्ध है। इसके परिणाम-स्वरूप यदि घरकी कोई अनाथ बहू किसी गृह-सदस्यकी कृपाभाजन बन गई, तब तो कलहका कुछ ठिकाना ही नहीं। वह कलंकिनी, डायन और कुलघातिनी न-जाने कितनी उपाधियोंसे शोभित की जाती है। वास्तवमें ऐसा हो भी जाता है, परिस्थितियोंके कारण अभागी नारीके फूटे भाग्यपर कलंकका टीका लगानेमें बहुतसे पुरुष ऐसी ही सफल हो जाते हैं। फिर कैसे यह कहा जाय कि स्त्रीका हृदय प्रेमकी मन्दाकिनीका तट है? यहाँ तक देखा गया है कि अधिकतर स्त्रियाँ अपने निकट सम्बन्धियोंसे ही अधिक सहानुभूति दिखलाती हैं—विशेषकर पीहरवालोंसे। क्या बहन और ननदमें कुछ अन्तर है? भावज और दौरानी-जिठानीमें, भाई और देवरमें, पिता और ससुरमें या भतीजी-भतीजे और भानजी-भानजोंमें भेद समझना चाहिए? पर समझा जाता है। कर्तव्य और व्यवहारसे भी भेद प्रकट किया जाता है। बहू क्या वास्तवमें सासकी उतनी ही कृपापात्र होती है, जितनी बेटी? सास क्या बहूके लिए भी उतनी ही क्षमाशील होगी, जितनी पुत्रीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए ! सम्भव है कि बहुत गृहस्थ इस भेद-भावसे दूर हों ; पर ऐसे बहुत कम हैं, जिनकी तुलना स्वर्गसे की जा सकती है । स्वार्थ या विलासिताके कुचक्रमें फँसकर किसीके प्रति प्रेम दर्शन करना वास्तविक प्रेमसे बहुत दूरकी बात है । और वास्तवमें प्रेम करना एक दूसरा ही पहलू है, जिसे सभी नहीं निभा पाते ।

स्त्रियोंको चाहिए कि वह वास्तवमें प्रेम और परस्पर सहानुभूति करना सीखें । जब तक वे वास्तविक प्रेम तथा सहानुभूति दिखलानेसे दूर रहेंगी, जब तक हमारे गृह कलह और ईर्षा-द्वेषकी ही रंगभूमि बने रहेंगे । स्त्रियाँ अपने हृदयोंमें प्रेम और सहानुभूतिका बीज बोकर उससे पुरुषोंको भी प्रभावित कर सकती हैं । प्रेम वह पवित्र वस्तु है, जिससे मरुस्थल भी हरा-भरा हो उठे । प्रत्येक गृहस्थ और समाजमें जब तक स्त्री-पुरुष सत्य प्रेम और परस्परकी सहानुभूतिका व्यवहार करना न सीखेंगे, तब तक चाहे कितने ही क़ानून और क़ायदे बन जायँ, कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती । कहीं और भी बर्बादी न हो जाय, इसीका भी डर है । बहुतसे लोग इसी आशाके भरोसे हैं कि प्राचीन स्त्रियाँ चाहे उपयुक्त गृहिणी सिद्ध न हुई हों ; परन्तु नवीन शिक्षाके प्रभावसे प्रेरित रमणियाँ अवश्य चतुर गृहिणीके रूपमें सामने आयँगी । आगेकी तो ईश्वर जाने ; किन्तु आजकल तो शिक्षित कही जानेवाली महिलाएँ परस्पर जैसा व्यवहार करती हैं, उसे तो वे ही भलीभाँति समझ सकती हैं, जो इस परिस्थितिमें से गुज़रती रहती हैं । वे तो शायद उन स्त्रियोंसे अपने आँचलका छोर भी स्पर्श कराना नहीं चाहतीं, जिन्हें वे अशिक्षित समझती हैं । अभी तक तो हमारी कन्याओंको इस विषयकी कोई शिक्षा नहीं दी जाती । स्त्रियोंको चाहिए कि वे परस्पर प्रेम तथा सहयोग करना सीखें, तभी वे पुरुषोंकी दृष्टिमें आदर और प्रेम पाने योग्य हो सकेंगी । अन्यथा वे रात-दिन चुग़ली करके जिनके कान भरती रहती हैं, एक दिन भंडा फूटनेपर वही उन्हें कलिहारीके नामसे भूषित करेंगे ।

मेरे इस लेखको वे बहनें तनिक हृदयपर हाथ रखकर पढ़ें, जिन्होंने कभी अपनी दौरानी, जिठानी, या ननदके अनाथ बच्चेको दुतकारकर किसी विधवाको कष्ट पहुँचाया हो, या जो अपने घरकी रानी हैं, जो हास-विलासमें रहकर तथा नये-नये वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर, भृकुटि तानकर, अपने दुर्वचनोंसे किसी आश्रित और दीन अबलाके हृदयपर कटारी चलाती रहती हैं । किसी - किसी गृहस्थीमें दो-चार अनाथ और विधवा बहनें ऐसी भी अवश्य होंगी, जिन्होंने अपने बने हुए समयमें कुटुम्बियोंके प्रति सहानुभूति और प्रेमका व्यवहार किया होगा ; परन्तु आज उनके कुटुम्बियोंने अथवा उस गृहकी सदस्याओंने उनके बिगड़े समयमें उनके दिलके टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं । संसारमें सभी प्रकारके मनुष्य हैं । केवल स्त्रियाँ ही प्रेमकी देवी नहीं कही जा सकतीं ।

पुरुषोंका भी कर्तव्य है कि वे गृह-संचालनमें भाग लेकर नित्य बढ़ती हुई कलहको शमन करें । केवल कानोंपर ही विश्वास न करके कुछ बुद्धिको भी काममें लावें । अन्यथा वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, जब कि नये-नये क़ानूनोंका अनुचित लाभ उठाकर स्त्रियाँ घरकी बर्बादीमें एक ज़बरदस्त कारण बन सकती हैं । रोग बढ़नेसे पहले ही उसका निदान और औषधि-उपचार करना आनेवाले भयंकर समयसे रक्षा भी कर सकता है । मेरे इस लेखसे वे बहनें रुष्ट न हों और वे भाई भी क्षमा करें, जिनका गृह-जीवन वास्तवमें सुखी, स्वर्ग-समान और परस्परके सहयोग तथा प्रेमका क्रीड़ास्थल है । स्त्रियाँ स्नेहमयी हैं, दयामयी हैं, उदार और प्रेमशीला—न-जाने क्या-क्या हैं । कलह ईर्ष्या-द्वेषमें पड़कर उन्हीं स्त्रियोंका क्या मूल्य रह जाता है ? इसे स्वयं उन्हें सोचना चाहिए । केवल एक इसी विषयको लेकर बहुत-कुछ लिखा जा सकता है ; पर यहाँपर न तो इतना समय ही है, न स्थान ही । स्त्री होते हुए मैंने स्त्री-हृदय और उसमें विराजमान प्रेम एवं कोमलताकी केवल थोड़ी-सी झाँकी कराई है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी मरे हुए साँपको देखकर डर जाना, या किसीकी अर्थीको निकलते हुए देखकर आँखोंमें आँसू आ जाना ही कोमलताकी इति नहीं है। अपितु भूखेको अन्न और दुखीको वस्त्र न दे सकनेपर उससे दो मीठे शब्द बोल लेना भी बहुत है। अपने बच्चेको या पतिको स्वादिष्ट भोजन करा देना ही स्नेहकी समाप्ति नहीं कर देता, वरन् अनाथ दौरानी या जिठानीके बच्चेको भी पुचकारकर हृदयसे लगा लेनेमें भी गौरव है। वह भी उसी रक्तका बना है, उसी गृहका एक सदस्य है, जिस घरकी तुम स्वामिनी बनी हो। उसके भी दिल है, उसके माँके शरीरमें भी हृदय-जैसी कोई वस्तु है और हृदयमें कुछ अरमान भी हैं। प्रेमकी पवित्र धारा बहाकर सभीके मन-प्राणको शीतल करके देखो, उसमें कितना सुख, कितनी शक्ति छिपी पड़ी है—

"ऐसी वाणी बोलिये, मनका आपा खोय;
औरोंको शीतल करे, आपो शीतल होय।"

प्रेम वह अनोखी वस्तु है, जिसमें त्याग भी है, उदारता भी है, कोमलता भी है और मधुरता भी है। अपने सुखको सार्थक बनाना है, तो दूसरोंके दुःख-दर्दको न भूलो। यदि प्रेम पानेकी चाह है, तो प्रेम देना भी तो सीखो। स्त्री वह शक्ति है, जिसके इशारेपर नर्क और स्वर्गकी सृष्टि हो सकती है। इसे न भूल जाना चाहिए कि प्रेममें स्वर्ग है, तो कलहमें नर्ककी यातनाएँ भुगतनी पड़ सकती हैं। परस्परके उत्पन्न हुए प्रेमसे मन-प्राण शीतल हो जायँगे और आसपासका वायुमंडल सुखद एवं पवित्र हो जायगा।

'मातृ-प्रेम'

[फ्रेन्चसे अनुवादित]

युवकको उस लड़कीसे बड़ा प्रेम था। लड़कीने परीक्षा लेनी चाही। कहने लगी—"यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो और उसका प्रमाण देना चाहते हो, तो जो पदार्थ मैं माँगूँ, ला दोगे।"

युवकने भुजाएँ ऊपर उठाकर कहा—"संसारके किसी कोनेमें हो, अथाह समुद्रमें हो, अथवा आकाशमें, तुम्हारे चरणोंमें उसे अवश्य ही लाकर अर्पण करूँगा।"

बालिका बोली—"परीक्षा बड़ी कठिन है। साधारण हृदयवाला उसे नहीं ला सकता।"

युवकने कहा—"संसारका कोई मनुष्य यदि उसे ला सकता है, तो मैं अवश्य लाऊँगा।"

बालिकाने पूरी गम्भीरतासे कहा—"तो अपनी माताकी छाती चीरकर उसका हृदय निकाल लाओ।"

दो-तीन क्षण टकटकी लगाये युवक उसे देखता रहा। प्रेमने बड़े बड़े चमत्कार किये हैं, आज एक और होने जा रहा है। 'अच्छा,' कहकर छुरी हाथमें लेकर युवक घरकी ओर चल पड़ा। मातृ-प्रेम रोक रहा था, प्रेम आगे ढकेलता जा रहा था।

- २ -

दौड़ता चला आ रहा था। अत्यन्त प्रसन्न था। पैर ज़मीनपर न पड़ते थे। हाथ रक्त-रंजित थे। देखता जा रहा था, कहीं ठोकर न लग जाये। कभी सीधे हाथमें धरे मांसके लोथड़ेको निहारता। सोचता, इसे देख वह कितनी प्रसन्न होगी, मुझसे लिपट जायगी। उसके लिए मैंने अपनी प्यारी अम्माको खत्म कर दिया—सबसे बड़ा पाप किया—उस माँको, जिसने इतने लाड़से पाला था। हा! पर कुछ नहीं।

एकाएक पत्थरसे पैर टकराया। ठोकर लगी और गिर पड़ा। माताका हृदय हाथसे छूटकर गज़-भर दूर जा गिरा। झट उसमें से आवाज़ आई—"कहीं चोट तो नहीं लग गई, बेटा! उठो, धूल झाड़ डालो।"

मातृ-प्रेमकी सीमा बोल रही थी।

गुरुकुल-कांगड़ी]

—रवीन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रधारा

आचार्य काका कालेलकर

पुरानी देन शायद टल सकती है ; लेकिन पुराने संकल्प टलना बड़ा मुश्किल है। पचीस बरस पहले जब मैं हृषिकेशसे देहरादून गया था, तब मैंने सहस्रधारा जानेका संकल्प किया था। बड़ी उत्सुकता होते हुए भी उन दिनों वहाँ न जा सका। कई दिनों तक मनमें यह बेचैनी रही कि सहस्रधारा-जैसा स्थान देख न सका ; लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वह बेचैनी शान्त होती गई और आगे जाकर यह स्मृति भी विलीन हो गई कि दुनियामें सहस्रधारा नामक कोई स्थान है भी, लेकिन किया हुआ संकल्प अधूरा थोड़े ही रह सकता है !

आचार्य रामदेवजीने बड़े आग्रहके साथ कहा कि हमारे कन्या-गुरुकुलमें एक बार हो आइये। मैं भी उनकी वह बढ़ती हुई संस्था देखना ही चाहता था। पिछले साल किसी कारण जा नहीं पाया, इसलिए अबकी बार वचनबद्ध होकर मैं दिल्लीसे देहरादून गया। मैंने निश्चय किया था कि अब प्राकृतिक दृश्योंके पीछे पागल नहीं बनूँगा। अब तो भिन्न-भिन्न समाज-सेवकोंसे मिलूँगा, संस्थाएँ देखूँगा और राष्ट्रीय प्रश्नोंको हल करूँगा। कोई होनहार सेवक मिले, तो उन्हें काम बताऊँगा, पुराने समाज-सेवकोंके साथ विचार और अनुभवोंका विनिमय करूँगा। जब इस प्रकारकी नई संकल्प-धारा बहती थी, तब सहस्रधाराका स्मरण कहाँसे हो सकता था ?

मैं हिन्दी-हिन्दुस्तानीकी चर्चामें लगा हुआ था, इतनेमें नौजवान रणधीर मुझसे मिलने आये। किसीने उनका परिचय करा दिया। निजी उत्साहसे रणधीरने मुझसे कहा कि यहाँ देखने लायक स्थानोंमें फारेस्ट-कालेज तथा जंगी मदरसा और प्राकृतिक दृश्योंमें 'गुंचू पानी' और 'सहस्रधारा' मशहूर हैं। बस, आखिरी नाम कानों तक पहुँचते ही पचीस बरसकी विस्मृतिके पत्थरकी क़ब्रें तोड़कर पुरानी स्मृति और पुराना संकल्प भूतके समान नज़रके सामने खड़े हो गये। अब इस पुराने संकल्पको गति देनेके सिवा कोई चारा न था।

तैलवाहन (Motorcar) का प्रबन्ध हुआ, और हम पाँच-सात मीलका उत्तरी मार्ग पार करके राजपुर जा पहुँचे। यहाँसे आगे मसूरीको रास्ता जाता है। हम राजपुरसे दो-ढाई मील पूर्वकी ओर जंगलमें चले और बराबर पैंसठ मिनट चलकर 'सहस्रधारा' पहुँच गये। संध्याका समय था। हमारे पीछे सूर्यनारायण अस्त हो रहे थे और उनकी लम्बायमान किरणें हमारे मार्गको अधिकाधिक लम्बा बनाती थीं। राजपुरका रास्ता छोड़कर हम दस-बारह मिनट ही चले होंगे कि हमने मानव-संस्कृति छोड़कर जंगलमें प्रवेश किया। वर्षाके दिनोंमें पानीके अनेक प्रवाहोंके कारण जो गहरे मार्ग बन गये थे, उन्हींमें से होकर हमें आगे बढ़ना था। हम बातें भी करते थे, आसपासके सौन्दर्यका पान भी करते थे और समयका हिसाब भी रखते थे। जिसने अमरनाथ, तुगनाथ, बदरी विशाल आदि भव्य स्थान देखे हैं, उसके आगे मसूरीकी पहाड़ियाँ क्या चीज़ हैं ; लेकिन वर्षों तक इधर-उधर घूम और रहकर फिरसे इस प्राचीन नगरकी तलहटीके पास आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इसलिए यह दृश्य भी बड़ा भव्य-सा मालूम हुआ।

मसूरीके पहाड़ोंमें कई दफ़ा छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और चट्टानें टूट पड़ती हैं, अंगरेज़ीमें इसे landslip या landslide कहते हैं। जैसे किसी बहादुर योद्धाको भारी ज़ख्म हो जावे, वैसा ही यह दृश्य दीखता है। छोटे-बड़े वृक्षोंकी घटासे बड़े-बड़े पर्वत ढके हुए हैं, और बीचमें ही किसी पहाड़का एक भाग टूट पड़नेसे वह खुला हो गया है। ऐसा दृश्य देखकर चित्त अस्वस्थ हो जाता है। मनुष्यका ज़ख्म देखकर जुगुप्सा-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम होती है ; लेकिन उसी ढंगके प्राकृतिक दृश्य इतने प्रमाणातीत प्रचण्ड होते हैं, और ऐसी आकस्मिक घटनाके सामने कोई वश न चलनेसे इतनी विवशता दीख पड़ती है कि पहाड़का ज़ख्म शोभाहीन नहीं मालूम होता, वरन् यह आदरणीय वैभव ही आँखोंमें भर जाता है।

हम नीचे उतरे, चढ़े, फिर उतरे। बहुत चलनेपर आँखोंके सामने चक्कर आ जावे, ऐसी कड़ी ढलवान आ गई—

"So steep the path the foot was fain
Assistance from the hand to gain."

हम चतुष्पाद बनकर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। इन प्रदेशमें हरएक ढलवानके अन्तमें छोटे-छोटे पत्थरोंकी सूखी नदी मिल ही जाती है। बारिशके दिनोंमें ये नदियाँ इतना कोलाहल करती हैं कि सारीकी सारी घाटी अपने सहस्र निनादसे गरजने लगती है ; लेकिन अब तो जहाँ देखें, वहाँ डरावनी शान्ति ही थी। अगर छोटे-छोटे पक्षी दूर-दूरसे एक-दूसरेसे इशारे नहीं करते, तो यहाँ किसीको एक क्षण रहनेकी भी हिम्मत न होती, छातीमें धड़कन भर जाती !

आखिरकार अन्तिम ढलान आ गया। जहाँ देखें, वहीं स्लेटका पत्थर नज़र आता था ! जान बचानेके लिए यदि कहीं इस पत्थरकी तख्तीको हाथसे पकड़ लिया, तो उसका चूरा ही हाथमें आता था। किसी तरह हम नीचे पहुँच गये। क़रीब एक घंटा होनेको आया। जो सज्जन हमें अपनी मोटरमें ले आये थे, वे यहाँ कहने लगे—"मैं यहीं बैठ जाता हूँ। मैंने सहस्रधारा बहुत दफ़ा देखी है। आप लोग आगे बढ़ सकते हैं।"

मैंने कहा—"हमने आपसे एक घंटेके अन्दर लौटनेका वादा किया था ; लेकिन यहाँ तो उधर तक पहुँचते ही एक घंटा बीत चुका और अब भी आगे पंथ काटना बाक़ी है, इसलिए आप लौटकर मोटरको ले जा सकते हैं। आपका समयपर पहुँचना ज़रूरी है। हम किरायेकी मोटरमें चले आयेंगे। अथवा आप चाहें, तो हम यहींसे लौट सकते हैं।"

रणधीर बीचमें बोले—"अब तो हम दस मिनटके अन्दर ही सहस्रधारा पहुँच जायँगे। वह सामने एक सफेद-सी झोंपड़ी दीख पड़ती है, उसकी बग़लमें ही सहस्रधारा है।"

हमने सोचा कि इतनी दूर आ गये हैं तो पाँच-दस मिनट और। ऐसा सोचकर हम आगे बढ़े। समय कितना हुआ है, इसका अन्दाज़ा लगानेके लिए मैंने मुड़कर देखा, तो सूरज आकाशमें लटकता था और नीचेकी दो पहाड़ियाँ मानो दोनों हाथ ऊँचा करके गेंदकी तरह उसको झेलनेके लिए तैयार थीं। पहाड़ोंकी तरफसे सूरजका यह स्वागत देखकर मुझे उस माताका स्मरण हुआ, जो अपने बच्चेको हवामें ऊँचा उछालकर फिर आनन्दसे झेल लेती है। जब बच्चा माताके हाथमें आकर पड़ता है, तब दोनोंको ख़ूब आनन्द होता है। हँसता हुआ सूरज, हँसती हुई प्रकृति ! माताके आनन्दके साथ हम समनस्क होवें, अथवा माताके हाथमें अपनेको सुरक्षित माननेवाले बालकके विश्वासपूर्ण हास्यके साथ हम तदाकार हो जावें ; किसका अनुकरण करें ? किसके साथ तादात्म्य अनुभव करें, इस दुविधाका निर्णय मनके साथ न होनेसे मन कुछ झिझकता है। केवल यह एक दृश्य देखनेके लिए ही यहाँ तक आते, तो भी कोई अनुचित बात न होती ; लेकिन हम तो सहस्रधाराका संकल्प लेकर आये थे, इसलिए सूरजकी बढ़ती हुई और नीचे उतरती हुई किरणोंकी तरफ पीठ करके हम आगे बढ़ने लगे।

थोड़े ही समयमें सहस्रधाराका प्रपात धब····धब····धब····धब····नीचे गिरता दिखाई दिया। स्फटिक सरीखा साफ पानी सख्त मिट्टीकी ऊँची दीवारपर होता हुआ नीचे गिरता था। ऐसे समय पानीकी मस्ती कुछ और ही होती है। पास कौन खड़े हैं, कौन देखते हैं, इसका ख़याल उसे थोड़े ही रहता है। धब····धब····धब····धब और धब····उसका प्रवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड रूपसे चलता ही रहता है। पत्थरकी चट्टानपर से पानी गिरता है, उसका ऐसा आश्चर्य नहीं होता; लेकिन इस हठीली सफेद मिट्टीपर से जब पानी गिरता है और मिट्टी अपना स्थान नहीं छोड़ती, तब बड़ा ही आश्चर्य होता है! मैं तो अवाक् होकर देखता ही रहा। केवल पानीमें इतना नशा होता है, इस बातको अगर शराबी जान ले, तो वह भी दारू पीना छोड़कर दिन-रात यहीं आकर बैठ जाय। एक क्षणके लिए मैं भूल ही गया कि मुझे यहाँसे लौटना है। जब हम कुदरतके साथ एकरूप हो जाते हैं, फिर वह एक क्षणके ही लिए क्यों न हो, तब सचमुच हम अद्वैतानन्दका अनुभव करते हैं। आपेको भूल जानेके बाद आनन्दके सिवा और क्या बाक़ी रह सकता है? तब क्या जिसे हम जड़-सृष्टि कहते हैं, वह सचमुच जड़ नहीं है, बल्कि अद्वैतानन्दकी समाधिमें मग्न हो गई है, ऐसा ही हम समझें? इस सवालका जवाब कौन दे सकता है?

"अब थोड़ा ही रहा है। हम थोड़ा आगे बढ़ेंगे।"—रणधीरने कहा। आगे बढ़नेकी मेरी बिलकुल नीयत नहीं थी; लेकिन क्या करें। मनमें रह जायगा कि सहस्रधाराकी यात्रा पूरी न हो पाई, इसलिए मैं आगे बढ़नेको तैयार हुआ। नीचे पानी बहता था। हम धीमे-धीमे पानी तक उतरे। पानीमें से शोरेकी बू आती थी। पानी तक जाकर हमने थोड़ा पानी पी लिया। कहते हैं कि यह पानी तमाम चमड़ेके रोगोंके लिए मुफ़ीद है। मैं इस पानी और उसके अजीब गुणोंके विषयमें सोचने लगा। लेकिन हृदय तो उस बड़े प्रपातके साथ तालबद्ध हो गया था, मानो वही प्रपात हृदयमें घुसकर नाच रहा हो। इतनेमें दाहनी ओर हवामें लटकती हुई एक चट्टानपर से पानीकी हज़ारों बूँदें टपकती हुई दीख पड़ीं, मानो अत्यन्त सौम्य और मूक जलतरंग अथवा वृन्दगायन हो रहा है।

यही असली 'सहस्रधारा' थी। असंख्य बूँदें उस गुफाके ऊपरसे और छतके अन्दरसे भी टपटप गिर रही हैं। इतनी बूँदें गिरती हैं; मगर उनकी आवाज़ एकत्रित होकर कोलाहल नहीं मचाती; चुपचाप गिरती रहती हैं। एक बग़लसे हम ऊपर चढ़े। वह गुफा बहुत गहरी थी। बीचमें प्राकृतिक स्तम्भ सरीखा पत्थरका भाग था। हम उसकी प्रदक्षिणा करके आगे बढ़े। जहाँ देखें सहस्रधाराएँ बह रही थीं। ऐसा ख़याल होता था कि पहाड़का दिल पिघलकर पानी हो रहा है। हमारे शरीरकी चमड़ी तक भींग गई। एक घंटे तक तेज़ चल आनेके कारण शरीरमें काफ़ी गर्मी पैदा हो गई थी, इसलिए भींग जानेका आनन्द कुछ और ही प्रतीत हुआ।

कितना ठंडा-ठंडा दृश्य था वह! अगर यहाँ रहना है, तो मनुष्यका जीवनक्रम नहीं चलेगा। वेदमन्त्रों-जैसा घोष करनेवाले मेण्डकावतार धारण करके यहाँ रहना चाहिए। कुछ समय पहले जो हृदय शक्ति-सम्पन्न प्रपातके साथ तन्मय हुआ था, वही एक क्षणार्धके अन्दर मन्द-मन्द बहनेवाली सहस्रधाराओंके बाल-नृत्यके साथ एकजीव हो गया। मैंने रणधीरको हार्दिक धन्यवाद देकर कहा—"सचमुच अगर हम इतना मनोहर दृश्य देखे बिना चले जाते, तो वह एक दुर्भाग्य हो जाता।"

बारिशके दिनोंमें भी सूखी रहनेवाली और मनुष्यका रक्षण करनेवाली गुफाएँ तो मैंने असंख्य देखी हैं; लेकिन गर्मीके दिनोंमें भी अपने पेटमें बारिशके दिन रखनेवाली गुफा तो यह पहली ही देखी। लंकाद्वीपके मध्यमें बेशक एक ऐसी गुफा देखी है, जिसके अन्दर छतसे एक छोटा-सा झरना बहता है; लेकिन ऐसी अखण्ड वर्षा तो हमने यहीं देखी। हमें पीछे लौटनेकी जितनी उतावली थी, उतनी इस वर्षाको न थी। उसे अपना जीवन-कार्य मिल चुका था। नीचे पत्थरपर काई (शैवाल) होनेसे हमारे पाँव फिसल जाते थे; लेकिन वहाँकी सुन्दरता, पवित्रता और शान्तिके कारण पाँव वहीं चिपक जाते थे। ऐसी हालतमें जितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षण वहाँ ठहरनेको मिले, उतना ही अहोभाग्य, ऐसा विचार प्रतिक्षण मनमें जाग्रत रहता था।

लेकिन अन्तमें हमें वह स्थान छोड़ना ही पड़ा। हम दुगने वेगसे चलने लगे। रास्तेमें मज़दूर और ग्वाले बड़ी तेज़ीसे जाते हुए दीख पड़े। ग़रीब बेचारे ऐसे विषम स्थानपर सब प्रकारके कष्ट सहन करके अपना गुज़ारा करते हैं; किन्तु सहस्रधाराके अमृत मधुर नज़रके बीच वे रहते हैं, इसीपर मेरे मनमें उनके प्रति ईर्ष्या भी हुई।

बड़े पहाड़से उतरते तो सही, लेकिन अब घिरते हुए अँधेरेमें चढ़ें कैसे? अगर हाथमें कोई अच्छी लकड़ी हो तो अच्छा हो। यह सोचकर रास्तेमें पड़नेवाली एक दुकानपर जाकर मैंने पुकारा—"भैया, एक अच्छी-सी लकड़ी दे सकोगे?" मैं एक कानसे नहीं सुन सकता हूँ, और मेरे भाई दुकानदार दोनों कानसे बहरे थे। वे मेरी बात समझ न सके, और मैं ठहर नहीं सकता था। अन्तमें हमारे साथीने इशारेसे उसे समझा दिया। फिर तो एक क्षणके अन्दर दुकानदार एक अच्छी बाँसकी लकड़ी ले आया। मैं पैसे देने लगा; लेकिन उसने पैसे लेनेसे इनकार कर दिया। मानो उसकी लकड़ी लेकर मैंने ही उसपर अहसान किया हो, ऐसा भाव आवाज़में लाकर उसने कहा—"ले जाइये, आप इसे ले जाइये।" इसपर रणधीरने ज़ोरसे कहा—"यह मेहमान तो महात्मा गांधीके आश्रमसे आते हैं।" फिर तो उसके सौभाग्य और मेरी लज्जाकी सीमा ही न रही। लकड़ी लेकर मैं जैसे-तैसे वहाँसे भागा। अब हमारी बातें बन्द हो गई थीं। पाँव दौड़ते थे और मैं मन-ही-मन अपनी सायं-प्रार्थना करता था। आकाशमें गुरु और शुक्र चन्द्रके बारेमें कुछ टिप्पणी कर रहे थे।

हमारे मोटरवाले मेज़बान पहाड़ीकी चोटीपर बैठकर बहुत देर तक हमारे लौटनेकी राह देखते रहे और अँधेरा होनेपर वापस लौटे। हम भी उनके पीछे-पीछे मोटरके अड्डे तक पहुँच गये। मिलते ही उन्होंने पूछा—"आप दौड़ते गये और भागते आये; लेकिन मैं तो इतना समय इस घाटीके भव्य विस्तार, अस्त होते हुए प्रकाश और क्षण-क्षण बदलती हुई उसकी छटाओंका आनन्द लूटता रहा। अब कहिये, हममें से अधिक आनन्द किसने हासिल किया?"

उसी प्रश्नकी प्रतिध्वनि मेरे मनमें उठी—"सचमुच किसने हासिल किया?"

अनुवादक—**रामकृष्ण भारतीय**

आश्वासन

उषाकी उस मनोहर बेलामें जब कि मैं स्वप्नोंके संसारमें एक अपरिचित निरीह-सा अन्तर्वेदनाकी टोकरी लिये जन-समूहके बीच यह कहते हुए घूम रहा था—'मेरा बोझ कोई हल्का कर दे', तब लोग मेरी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखने लगते और 'पागल' कहकर मुसकरा देते थे।

अन्तमें थककर, एक एकान्त सरिताके तटपर, एक विशाल वट-वृक्षकी शीतल छायामें बैठ गया और अपने अदृष्टके लेखको पढ़ना चाहा; किन्तु अन्धकारके कारण पढ़ न सका। असीम वेदनाके कारण सरितामें ही विलीन हो जाना उचित समझा और तैयार भी हुआ; किन्तु इतनेमें अनन्तसे एक ध्वनि हुई—'चंचल चित्त ठहरो; मैं सागर, तुम सरिता। मुझसे ही तुम्हारी उत्पत्ति और अन्तमें मुझमें ही···समीप बहती हुई सरिताकी तरह तुम भी अपने कर्तव्य-पथपर चलो, आकांक्षा पूरी होगी।'

अचेतावस्थामें मेरे मुखसे निकल पड़ा—'तू धन्य है!' साथ-ही-साथ निद्रा भी भंग हो गई। अभी भी वे सरस शब्द स्मरण हैं।

—**रामप्रसाद सिंह 'आनन्द'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोयलेकी खानोंमें आग

श्री गंगासागर मिश्र

हमारे कोयलेकी खानोंमें इधर दुर्घटनाओंका बड़ा ज़ोर है। इतनी जल्दी-जल्दी दुर्घटनाएँ होते देखकर सबके मनमें आशंका होती है। १८ दिसम्बर, १९३६ की 'पोइडीह' खानकी दुर्घटनाने एक भीषण आतंक पैदा कर दिया है। एक ही साथ कम-से-कम २०८ व्यक्तियोंकी कारुणिक मृत्युका विवरण सुनकर सभीको रोमांच हो आता है। पिछले एक-डेढ़ वर्षमें चार-चार ऐसी ही भयंकर दुर्घटनाओंको देखकर साधारण जनता भी, जो प्रायः खानोंकी दशासे अनभिज्ञ-सी है, समझने लगी है कि खानोंका काम अत्यन्त भयानक है।

उल्लिखित दुर्घटनाओंमें से पहली २९ जून, १९३५ को झरिया-क्षेत्रकी 'बागडीगी' खानमें हुई। उसमें १९ खनिकोंकी जानें गईं तथा ७ बुरी तरह घायल हुए। उसके ठीक २५ दिन बाद गिरीडीहकी सरकारी खान 'करहरबारी'में उससे भी बड़ी दुर्घटना हुई, जिसमें ६२ व्यक्तियोंकी जानें गईं। इस भयानक कांडमें ७६ व्यक्ति खानके भीतर ही जल-भुन गये थे, जिनमें से केवल १४ किसी प्रकार जी सके। उपर्युक्त दोनों घटनाएँ खानमें आग लगने ही के कारण हुई थीं। प्रायः पाँच-छै मासके बाद एक और भयानक आग झरिया-क्षेत्रकी 'लोयाबाद' खानमें लगी, जिसमें ३५ व्यक्तियोंके प्राण गये। जुलाई, १९३६ में रानीगंज-क्षेत्रकी 'अड्जाई' नामक खानमें आग लगनेसे ७ व्यक्तियोंकी मृत्यु हुई, जिनमें खानोंके एक सरकारी इन्सपेक्टर, उक्त खानके मैनेजर, उनके सहकारी तथा झरियाके एक धनी व्यापारी भी थे। अभी तक इन घटनाओंका रोमांचकारी प्रभाव मिटा भी न था कि 'पोइडीह' की दुर्घटनाने २०८ व्यक्तियोंको ज़िन्दा गाड़कर खनिक-जीवनकी भयंकरताको और भी प्रकट कर दिया।

इस प्रकारकी भीषण दुर्घटनाओंको बार-बार होते देखकर लोग यह जाननेके लिए उत्सुक हो रहे हैं कि आखिर इन दुर्घटनाओंका कारण क्या है और ये किस प्रकार होती हैं? जो लोग कोयलेकी खानोंसे कोई सम्बन्ध रखते हैं, उनको छोड़कर प्रायः साधारण जनता कोयलेकी खानोंकी वस्तुस्थितिसे अनभिज्ञ है। वास्तवमें कोयलेकी खानोंका काम मनुष्यके अन्य सभी व्यवसायोंसे कठोर है, और यह काम ऐसा है, जिसमें ख़तरोंकी हद नहीं। कोयलेका काटना ऐसा दुस्सह कार्य है और इसमें इतनी शक्ति एवं सहनशीलताकी आवश्यकता है कि खनिक जब खानमें से काम करके निकलता है, तो वह अत्यन्त शिथिल और निस्तेज दिखाई देता है।

खानोंका काम शरीर और प्राणके ख़तरेपर होता है। खनिक जब अपने धौरे (खनिकोंके रहनेके बाड़े) से चलने लगता है, उस समय उसकी स्त्रीकी मुखाकृतिपर उसकी आशंकाओंका करुणाजनक चित्र अंकित हो जाता है। प्रतिदिन स्त्री अपने पतिके खानमें जाते समय मंगल-कामनाएँ करती है, क्योंकि वह जानती है कि खानसे लौटनेपर यह असम्भव नहीं कि उसका पति स्ट्रेचरपर लदा हुआ दीख पड़े, जिसका प्राण निकल गया हो, या जो घायल होकर सदाके लिए निकम्मा हो गया हो। चानकपर प्रवेश करते ही खनिकको अपने आशंकापूर्ण जीवनकी याद आ जाती है, जब सहजदाह्य गैससे भरी हुई खानमें जानेके पहले उसकी तलाशी ली जाती है कि उसके पास दियासलाई तो नहीं है, या उसकी संरक्षित बत्ती (Safety Lamp) ख़राब तो नहीं हो गई है। यह इसलिए देखा जाता है कि दियासलाई जलानेसे या बत्तीकी ख़राबीसे खानमें आग लगनेका डर रहता है। खनिक खानमें नीचे उतरनेके लिए जब डोलीमें पैर रख देता है, तब वह अपने प्राणका मालिक नहीं रह जाता। डोलीको ऊपर-नीचे करनेवाले इंजनमें किसी प्रकारकी ख़राबी उसे मौतके मुँहमें फेंक सकती है।

चानकके नीचे उतरकर जब वह अपने काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेके स्थानपर पहुँचता है, तब उसे इस बातका भय बराबर बना रहता है कि कहीं ऊपरसे पत्थर या कोयला गिरकर उसका अन्त न कर दे। खानके भीतर दीवारों या छतोंके पत्थरोंका ढीला होना अत्यन्त अवांछनीय है; किन्तु इन सबसे खानके भीतर आग लग जाना अत्यन्त भयंकर है। आग लगनेपर यमदूत बीसों और सैकड़ों व्यक्तियोंको एक क्षणमें बर्बरतापूर्वक ग्रस लेता है। चारों ओर कोयलेकी काली दीवारोंके बीच दूरपर आगकी चिनगारियाँ चमकती हुई दिखलाई देती हैं, और खनिक उसे साक्षात यमराज समझकर अपनी सारी शक्तिसे चिल्ला उठता है—'आग!' परन्तु इसके पहले कि वह दौड़कर अपनी रक्षा कर सके, हू-हू करती हुई आगकी लपटें खानको डगमगा देती हैं। यदि किसी प्रकार वह आगकी लपटोंसे बच गया, तो आग लगनेसे उत्पन्न हुई गैसोंसे दम घुटकर या किसी बड़ी दीवारके नीचे दबकर वह पंचतत्त्वको प्राप्त हो जाता है। वह अपनी जान बचानेके लिए मृत्युके सम्मुख अपनी सारी उद्दंडता कर दिखाता है; पर सब व्यर्थ! कुछ क्षणमें इस जीवन-मृत्युके युद्धमें पराजित होकर हाथ-पैर फैलाये, अपनी असमर्थताका चिह्न मुखपर धारण किये, वह सदाके लिए सूर्य-किरणोंसे दूर, पृथ्वी-तलसे सैकड़ों फीट नीचे, सो जाता है। वह एक ऐसा हत्या-स्थल है, जहाँ कितने ही असहाय व्यक्ति अग्निमें आहुति हो जाते हैं। एक क्षण पहले जहाँ कोलाहल था, रोटीका सवाल था, शरीरके रोम-रोमसे बहता हुआ परिश्रमका पसीना था, गैंतीकी नोककी चोटसे पत्थरका कलेजा खट-खट करके फटता था, पेटके नामपर मनुष्यकी कोमलता पत्थरकी कठोरतापर आघात करके उसे छिन्न-भिन्नकर अपनी सामर्थ्यपर पैसा कमानेका दावा भर रही थी, वहाँ विनाशकी एक लपट, दुर्दैवके प्रकोपकी एक प्रतिहिंसात्मक दृष्टि, शायद निर्जीव पत्थरोंके आहोंकी एक समष्टि, एक क्षणमें सब-कुछ भस्मसात कर देती है। शव निश्चेष्ट बिखरे पड़े रह जाते हैं कि शायद जीवित मनुष्य नामधारी मित्र उन मुर्दा शरीरोंको ढूँढ़कर कुछ समवेदना प्रकट करें।

जिस प्रचंड वेगसे धुआँ और आगकी लपटें चानकसे बाहर निकलती हैं, उसके सामने बीसवीं शताब्दीके वैज्ञानिक क्षमतावाले मनुष्यकी सारी तेजस्विता कपूरकी भाँति उड़ जाती है। बहुधा वह मार्ग या चानक, जिसके द्वारा शुद्ध वायुको खानके भीतर प्रवेश कराया जाता है, धुएँ और गैसोंके बाहर निकलनेका मार्ग बन जाता है। यह धुआँ और गैसें इतने भयंकर वेगसे बाहर निकलती हैं कि उनकी राहमें पड़नेवाली सभी वस्तुएँ—धूलसे लेकर कभी-कभी लोहेके भारी-भारी गाडर तक—इतने वेगसे उड़ती हैं कि कभी-कभी वे हज़ार-हज़ार फीट नीचेसे उड़कर पृथिवीके ऊपर बिखर जाती हैं। चानकके ऊपर स्टीलका वृहदाकार 'हेड गियर' छिन्न-भिन्न हो जाता है। चानकके सिरेपर खड़े हुए व्यक्ति उछालकर सैकड़ों फीटकी दूरीपर फेंक दिये जाते हैं। डोली, रस्सी तथा अन्यान्य मेशीनरी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है, कितनों ही के प्राण जाते हैं और लाखों-करोड़ोंकी सम्पत्ति विनष्ट हो जाती है। बहुधा खानोंमें इस प्रकार लगी हुई आग आसानीसे नहीं बुझती। इससे खनिकोंके प्राणनाशके साथ-साथ लाखोंकी सम्पत्ति भी स्वाहा हो जाती है।

प्रलयके उस तूफानसे भूगर्भमें दबे हुए व्यक्तियोंका पता लगानेके लिए भी उद्योग किया जाता है। चानकके द्वारा चूहों और मुर्गीके बच्चोंको नीचे उतारते हैं। यदि खानके भीतर अब भी गैस भरी हुई है, तो वे अभागे जीव ऊपर उठानेपर मरे हुए पाये जाते हैं। अगर ये जीव जीते हुए लौट आये, तो वे इस बातकी सूचना देते हैं कि खानके भीतर प्रवेश करना शायद निरापद है। फिर स्वयंसेवकोंकी टोलियाँ, ऐसे यन्त्रोंसे सुसज्जित कि भीतर विषाक्त गैस होनेपर भी कृत्रिम उपायों द्वारा जान बच सके, धीरे-धीरे नीचे उतरती हैं और उस अन्धकारमें, जहाँ कुछ समय पूर्व प्रलयकी एक विनाशकारी लहर प्रज्वलित थी, ढूँढ़ती-फिरती हैं मरे या मरते हुए व्यक्तियोंकी लाशोंको। एक-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके स्ट्रेचरोंपर लादकर वे मरे या अधमरे शव बाहर निकाले जाते हैं। जब वे बाहर एकत्रित जन-समूहके बीचसे होकर हटाये जाते हैं, तो उन्हें देखकर सबका हृदय फट जाता है। कोई अपने सम्बन्धीको देखकर पहचान लेता है, जो स्ट्रेचरपर ठंडा, शान्त और कठोर होकर पड़ा हुआ है। बस, विलाप-ही-विलाप सर्वत्र सुनाई पड़ने लगता है। कोई अपने प्रिय जनको भीतरसे लदे हुए, हाँफते, अचेत देखकर छाती पीटकर रोने लगता है। किसी स्त्रीकी हृदयद्रावी 'आह' सुनकर जान पड़ता है कि उसने अपने पतिको पहचान लिया है। कोई मा अपने प्यारे पुत्रको देखकर बिलखती है—'अभी पहले ही सप्ताहमें देशसे लौटकर उसने खादमें काम शुरू किया था।' किसी स्ट्रेचरपर लदे हुए अधमरे व्यक्तिके निराश और दुःखमय स्वरसे सुनाई देता है—'शोक मत करो, भैया! मैं बिलकुल ठीक हूँ।' वह उन लोगोंमें से था, जिनकी गणना अस्पतालमें जाकर मरनेवालोंमें की गई।

कोयलेकी खानोंमें आग लगनेके दो प्रधान कारण हैं। कोयलेकी बहुत-सी ऐसी तहें हैं, जिनमें से कभी-कभी ऐसी गैस स्वयं निकलती रहती है, जो बहुत शीघ्र जल उठनेवाली होती है। ऐसी गैसको सहजदाह्य गैस कहते हैं। जिस खानमें ऐसी गैस पाई जाती है, उस खानमें आग लगनेका बड़ा डर रहता है। यह भय उस दशामें सबसे अधिक रहता है, जब खानके भीतरकी हवामें इस प्रकारकी गैसका अंश ५ से १४ प्रतिशत हो। इस गैसको वैज्ञानिक (Mathane) और खनिक (Fire Damp) कहते हैं। खानमें गैस एकत्रित न होने पावे, इसलिए शुद्ध हवाको भीतर इस प्रकार वितरित करते हैं कि नीचेके सब स्थानोंमें प्रायः शुद्ध हवा मिले और गैसवाली दूषित वायु बाहर निकल जाय। इसके अतिरिक्त अन्दर जानेवाला कोई व्यक्ति अपने साथ दियासलाई या ख़राब बत्ती लेकर नहीं जाने दिया जाता। वह बत्ती एक विशेष प्रकारकी होती है, जिसे 'सुरक्षित बत्ती' (Safety Lamp) कहते हैं। उसकी बनावट ऐसी होती है कि बत्तीकी जलती हुई शिखासे गैसमें आग न लग सके। प्रतिदिन खानका एक जिम्मेदार अधिकारी कार्य आरम्भ होनेके पहले खानके उन सभी भागोंका निरीक्षण कर आता है, जहाँपर काम होनेवाला होता है। अपनी परीक्षाके द्वारा यदि कहींपर भी वह सहजदाह्य गैसका पता पाता है, तो उस स्थानमें तब तक किसीको काम करनेकी आज्ञा नहीं देता, जब तक कि एकत्रित गैस बाहर न निकल जाय।

यदि किसी खानमें ऐसी गैस हुई, या जहाँपर ऐसी गैस अकस्मात पैदा हो गई, तो वह किसी जलती हुई वस्तुसे छू-भर जानेसे भभक उठती है। आगके इस प्रकार भभक उठनेको विस्फोट कहते हैं। भारतवर्षमें सहजदाह्य गैसके विस्फोटकोंकी अनेक दुर्घटनाएँ हो चुकी हैं, और इनका क्रम इधर कुछ वर्षोंसे अधिक दृष्टिगोचर हो रहा है। सर्वप्रथम भयंकर विस्फोट सन १८९९ में बलूचिस्तानकी 'खोस्त' नामक कोयलेकी खानमें हुआ था, जिसमें ४७ आदमी मरे थे। भारतीय खनिजके इतिहासमें इसके पहले एक ही भयंकर दुर्घटना हुई थी, जब सन १८९७ में मैसूरकी सोनेकी खानमें ५२ व्यक्तियोंका होम हुआ था। पिछली जुलाईमें अड्जाईकी खानमें जो विस्फोट हुआ था, वह इसी प्रकारके सहजदाह्य गैसके कारण। वह खान बहुत दिनोंसे बन्द थी। दुर्घटनाके पहले किसीको इस बातकी आशंका भी न थी कि खानके भीतर गैस होगी। दुर्भाग्यवश खानमें प्रवेश करनेवालोंने, जिनमें प्रायः सभी खनिज-शास्त्रका अच्छा ज्ञान रखते थे, खुली बत्ती नीचे ले जानेमें कोई आपत्ति नहीं समझी। परिणाम बड़ा भयंकर हुआ। नीचे पहुँचते ही सहजदाह्य गैस खुली बत्तीकी शिखासे जल उठी, जिसमें सबके सब बुरी तरह जल गये।

जुलाई सन १९३५ में 'बागडीगी' की खानमें जो आग लगी थी, वह सम्भवतः सहजदाह्य गैसके ही विस्फोटसे लगी थी। 'इस दुर्घटनाके पहले उस खानमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजदाह्य गैस कभी नहीं पाई गई थी। सभी खनिक खुली हुई बत्तीका ही व्यवहार करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्घटनाके कुछ घंटे पहले वर्षा होती रही। इस बातका प्रमाण पाया गया कि वे तहें, जो खानको एक बड़े तालाब और नालेसे पृथक् करती थीं, दुर्घटनाके थोड़े ही समय पहले टूट गईं। ऐसा जान पड़ता है कि बहुत-सा पानी ऊपरकी कोयलेकी तहोंमें, जिनमें पहलेसे आग लगी हुई थी, घुस गया। इस पानीके आगमें पड़नेसे गैसें उत्पन्न हुईं, जिससे खानके भीतर हवाका प्रबन्ध बिगड़ गया और वह गैसोंसे भर गई। या तो गैस ऊपरकी तहोंकी आगसे ही जल उठी होगी, या उन पाँच व्यक्तियोंकी बत्तियोंसे, जिनका खानके भीतर कोई पता नहीं चला।' दुर्घटनाके पहले खानमें नीचे उस दिन १०८ आदमी थे, जिनमें से १०३ दुर्घटनाकी आशंका होते ही निकाल दिये गये। इन लोगोंके खादसे बाहर निकलते ही आग लग गई। भीतरके पाँचों आदमियोंका कोई पता नहीं चला। खादके बाहर बैठे हुए २१ आदमी भी भीतरसे निकलती हुई आगमें जल गये, जिनमें से केवल सात ही बच सके।

दूसरा और सम्भवतः सबसे भयानक कारण खानमें आग लगनेका है कोयलेकी धूलका विस्फोट। जब कोयला काटा जाता है, तो बड़े-बड़े ढोकोंसे लेकर छोटे-छोटे कण तक टूटते हैं। बहुत बारीक कोयलेकी धूलके कण उड़कर इधर-उधर फर्श, छत और दीवारोंपर जम जाते हैं। यदि खानकी गरमीके कारण यह धूल भी गरम होती गई और साथ-ही-साथ सूखती गई, तो इसमें बहुधा अकस्मात आग लग जाती है। अथवा यदि सूखी धूल किसी कारणसे हवामें उड़कर बादलों-जैसी छा जाय, तो किसी प्रकारकी चिनगारी इसको जला देनेके लिए पर्याप्त है। कोयलेकी धूलका इस प्रकार जल उठना खानोंकी रक्षाका प्रधान शत्रु है। चाहे उसमें अकस्मात स्वयं आग लग जाय, या किसी प्रकारकी चिनगारीसे लगे; ऐसी आग कोयलेकी खानके लिए अत्यन्त भयंकर प्रमाणित होती है। इस बातकी सदैव चेष्टा की जाती है कि धूल कहीं इकट्ठी न होने पाये तथा वह इतनी सूखी और गर्म न होने पाये कि उसमें आग लग जाय। बहुधा जब कभी कोयला या पत्थर तोड़नेके लिए बारूद इत्यादिका प्रयोग किया जाता है, तो कभी-कभी इन विस्फोटकोंके भड़कनेसे जमी हुई धूल, यदि पहलेसे पानीसे तर न की गई हो तो, उड़ पड़ती है और खादके भीतरकी जगहोंमें बादलों-जैसी छा जाती है। विस्फोटकके उड़नेसे जब कभी ज्वाला उत्पन्न होती है, तो यह धूल भभक उठती है, जिससे भयंकर आग लग जाती है।

हमारी कोयलेकी खानोंमें सर्वप्रथम आग जो कोयलेकी धूलसे लगी थी, वह सन् १९२३ में रानीगंज-क्षेत्रकी 'पारबेलिया' खानमें लगी थी। इस दुर्घटनामें ७४ व्यक्तियोंकी मृत्यु हुई थी। यह आग कोयलेकी 'डिशरगढ़' नामक प्रसिद्ध तहमें लगी थी, जो भारतवर्षमें कोयलेकी तहोंमें सबसे उत्तम मानी जाती है। इस तहसे विषाक्त गैस निकला करती है, और उस खानमें भी समय-समयपर सहजदाह्य गैस पाई गई थी। घटनाके अवसरपर यदि खानमें गैस रही भी हो, तो वह अत्यन्त न्यून परिमाणमें रही होगी। चाहे जो हो; परन्तु उस विस्फोटमें गैसका विशेष भाग नहीं था। तहके ऊपरी भागमें एक तंग गली काटी गई थी, जिसमें कोयलेकी बारीक धूल एकत्रित हो गई थी। ग़लतीसे कोयलेमें एक ऐसी जगहपर छेद किया गया था, जिसमें विस्फोटक पदार्थ डालकर उड़ानेसे छेद ही पीछेसे फटकर उड़ गया और विस्फोटक जलता हुआ जाकर उस तंग गलीमें पहुँचा, जहाँ धूल जमी हुई थी। 'पारबेलिया' खान भारतवर्षके कोयलेकी खानोंमें प्रायः सबसे नीची है, उसमें कोयला पृथिवीसे प्रायः १५०० फ़ीट नीचेसे निकाला जाता था। अतएव कोयलेके भीतरका तापमान बहुत अधिक था और खान अपेक्षाकृत गरम थी। कोयलेकी धूल, जो पहलेसे सूखी और गरम थी, विस्फोटकके धक्केसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ पड़ी और जलते हुए विस्फोटकके संसर्गसे उसमें आग लग गई। आगकी लपटें खानके भीतर सबको जलाती-भुनाती हुई चानकके पास ही नहीं पहुँच गईं—जो प्राय: आग लगनेके स्थानसे ६०० फ़ीट दूर थी—बल्कि उसकी दूसरी ओर भी करीब २०० फ़ीट तक बढ़ गईं। खानमें उस समय काम करनेवालोंमें से केवल ६ व्यक्ति ही बच सके, क्योंकि वे दूसरी ओर थे। बाक़ी ७४ आदमी भीतर ही जल गये। एक कोयला काटनेकी मेशीन चलानेवालेने, जो चानकके पास नीचे खड़ा था, आगकी लपटको अपनी ओर आती देखकर चानकके नीचे, जहाँ तीन-चार फीट गहरा पानी था, कूदकर डुबकी लगाकर अपनी जान बचाई थी।

कोयलेकी धूलसे एक बड़ा हृदयद्रावक संहार सरकारी 'करहरबारी' खानके 'जोक्तियाबाद' भागमें हुआ था। यह दुर्घटना २४ जुलाई सन् १९३५ को हुई थी। इस खानमें कोयला तोड़नेके लिए तरल आक्सिजन विस्फोटक (Liquid Oxygen Explosive) का प्रयोग किया जाता था। खानके भीतर कोयला काटे जानेवाले स्थानोंके निकट फर्श, छत, दीवारों, लकड़ीके खम्भों और भीतरकी ट्राम लाइनोंके ऊपर लगे हुए डब्बोंपर कोयलेकी सूखी और बहुत बारीक धूल जम गई थी। करहरबारीका कोयला बहुत उत्तम श्रेणीका है। इसमें उस प्रकारके कोयलेका अंश बहुत होता है, जो आसानीसे भड़क उठनेवाली धूलमें परिवर्तित हो जाता है। काम करनेके स्थान बहुत ही तंग थे। कोयलेसे लदे हुए डब्बोंकी गाड़ी वहींपर खड़ी थी। उसके पास ही छतको रोकनेवाले लकड़ीके खम्भों और पटरियोंकी बहुतायत थी। विस्फोटकके चार छेद भरे गये थे, जिनमें से तीन प्रचण्ड रूपसे उड़ गये। फलत: कोयलेकी धूल बादलोंकी तरह चारों ओर छा गई। चौथे छेदमें विस्फोटकके उड़नेके स्थानमें छेद ही फट गया, जिससे जलता हुआ विस्फोटक कोयलेकी धूलको भड़का देनेमें सफल हुआ। आगकी प्रलयंकरी लहर ९०० फ़ीट तक बढ़ती चली गई, और उसने अपने इस विनाश मार्गमें पड़े हुए ६६ आदमियोंको जला डाला, जिनमें से केवल चार ही बच सके।

कोयलेकी खानोंमें हुई उपर्युक्त दुर्घटनाएँ कुछ थोड़ी-सी ही हैं, जिनमें आग लगनेसे विशाल रूपमें नाश हुआ था। कितनी ही अन्य ऐसी घटनाएँ भी हो चुकी हैं, जिनसे धन-जन दोनोंकी ही हानियाँ हुई हैं। आगका लगना खानोंका प्रधान रोग है, और इसके कारण नित्यप्रति अत्यधिक हानि भी होती जा रही है। केवल झरिया-क्षेत्रकी १५० खानोंमें से प्राय: ५० में किसी-न-किसी प्रकारकी छोटी-बड़ी आग लगी ही हुई है। यदि आगके विस्तारका यही क्रम रहा, तो नहीं कहा जा सकता कि कितनी शीघ्रतासे भारतवर्षसे कोयलेकी उत्पत्तिका अन्त हो जायगा। सन् १९२८ में अनुमान किया गया था कि कोयलेके प्रधान क्षेत्रोंमें—झरिया, रानीगंज और गिरिडीहमें—केवल आग लगनेसे ३ करोड़ २२ लाख ५ हज़ार ८ सौ टन कोयलेकी हानि हुई थी, जिसमें से रानीगंजमें १६४,३३,८०० टन, झरियामें १,५०,०२,००० टन तथा गिरिडीहमें ७,७०,००० टनका नाश हुआ था। इसके अतिरिक्त खानोंके धँस जानेके कारण ४२,९२,७९२ टन कोयला नष्ट हुआ। पिछले दस-बारह वर्षोंमें दुर्घटनाओंका इतना प्रकोप रहा है कि अवश्य ही आजकल ये आँकड़े बहुत अधिक बढ़ गये होंगे।

खानोंमें काम करनेवालोंका जीवन ख़तरेसे भरा हुआ है। खानोंमें किसी प्रकारका कार्य करनेवाले किसी खनिकके प्राणका भय पग-पगपर बना रहता है। पिछले दस वर्षोंमें कोयलेकी खानोंमें विभिन्न कारणोंसे हुई मृत्यु-संख्या दूसरे पृष्ठपर तालिकामें देखिये।

पिछले वर्ष (सन् १९३६) की रिपोर्ट अभी नहीं निकली है; किन्तु मुख्य-मुख्य पिछली दुर्घटनाओंके द्वारा, अनुमान लगाया जा सकता है कि, चार सौसे कहीं अधिक ही मृत्यु हुई होंगी। सन् १९३३ में मृत्यु-संख्या सबसे कम रही है; परन्तु तबसे इसकी वृद्धि बड़े ख़तरनाक ढंगसे हो रही है। निस्सन्देह इन सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्	१९२६	१९२७	१९२८	१९२९	१९३०	१९३१	१९३२	१९३३	१९३४	१९३५
खानके भीतर या बाहर प्रतिदिन काम करनेवालोंकी संख्या	१७०६२८	१६५२१३	१६४१३९	१६५६५८	१६९००१	१५८२६७	१४८४८९	१४४७०७	१५१३७५	१५९२४[illegible]
खानके भीतर या बाहर हुई मृत्यु-संख्या	१७१	१८१	२१८	१९४	२११	१८५	१५१	१२४	१५७	२६४
प्रति एक हजार काम करनेवालों की मृत्यु-संख्या	१·००	१·००	१·३३	१·१७	१·२५	१·१७	१·०२	०·८६	१·०४	१·६६

दुर्घटनाओंमें आगका लगना सबसे अधिक हानिकारक है। सन् १९३२ में आगके कारण केवल तीन दुर्घटनाएँ हुई थीं, जिनमें से एकमें ७ आदमी घायल हुए, उनमें ५ मरे। शेष दोमें से प्रत्येकमें एक-एक मृत्यु हुई थी। इस प्रकार उस वर्ष आग लगनेसे ७ जानें गई थीं। दूसरे वर्ष केवल दो दुर्घटनाएँ ऐसी हुई थीं, जिनमें से प्रत्येकमें तीन-तीन आदमी मरे थे। दूसरी दुर्घटनामें ९ जले थे; परन्तु उनमें से ६ बच गये। सन् १९३४ में आग लगनेसे कोई दुर्घटना नहीं हुई थी। सन् १९३५ में इस प्रकारकी तीन दुर्घटनाएँ हुई थीं, जिनमें से एकमें २, दूसरेमें १९ और तीसरेमें ६२—कुल मिलाकर ८३ व्यक्ति मरे थे। पिछले वर्ष तीन प्रधान दुर्घटनाएँ घटी हैं। छोटी-छोटी दुर्घटनाओंकी अभी तक रिपोर्ट नहीं निकली है। इन तीनोंमें क्रमशः ३५ ७ और २०८ व्यक्तियोंके प्राण गये। सम्भवतः सन् १९३६ में इस प्रकार लगभग ३०० व्यक्ति मरे होंगे।

यद्यपि अन्य खतरेवाले व्यवसायोंकी अपेक्षा खनिकका व्यवसाय अधिक आशंकामय नहीं कहा जा सकता, तथापि कोयलेकी खानोंमें दुर्घटनाओंके कारण अब लोग सशंकित हो गये हैं। राष्ट्रीय महासभासे लेकर असंख्य ट्रेड और लेबर यूनियनों तकने इन विपत्तियोंपर समवेदना प्रकट की है। खनिज इंजीनियरों, मैनेजरों और खान-मालिकोंके संघोंने भी अपनी गम्भीर चिन्ता और भय प्रकट किया है। सरकारी 'डिपार्टमेन्ट आफ माइन्स' और उसके प्रधान डा० डेविड पेनमैन, 'चीफ इन्स्पेक्टर आफ माइन्स इन इंडिया' भरसक इस बातका प्रयत्न करते आये हैं कि भारतमें इस प्रकारकी दुर्घटनाएँ कम हो जायँ। इस उद्देश्यसे उन्होंने कोयलेकी खानोंमें—विशेषकर झरिया-क्षेत्रकी खानोंमें—कुछ कालके लिए नये कड़े नियम चालू किये हैं। अभी तक ये नियम भारतवर्षकी सभी कोयलेकी खानोंके लिए लागू नहीं हो सके हैं। दिसम्बर सन् १९३६ से सरकारकी ओरसे निश्चित 'कोयला संरक्षण कमेटी' अपनी बैठकें कर रही है। यह कमेटी झरिया, रानीगंज, गिरिडीह आदि विभिन्न क्षेत्रोंका निरीक्षण करके, विशेषज्ञोंकी राय लेकर परिस्थितिका अध्ययन कर रही है। आशा की जाती है कि इस कमेटीकी सिफारिशपर सरकार ऐसे नियम बना सकेगी, जिनसे खानोंमें दुर्घटनाओंकी बहुत कमी हो जायगी। साथ ही यह भी नियम बनाया जायगा कि खानोंके भीतरसे सभी कोयला निकाला जाय, क्योंकि कोयलेकी सभी कम्पनियाँ अभी तक कोयलेका एक बहुत बड़ा अंश, जिसे काटनेमें कठिनाई होती है, यों ही नष्ट होनेके लिए छोड़ देती हैं। राष्ट्रीय सम्पत्तिका एक बड़ा अंश यों ही नष्ट हो जाता है, जिसका कोई उपयोग नहीं हो सकता तथा जिसके कारण और भी बहुत-सी हानियाँ होती हैं।

इधर कुछ महीनोंसे कोयलेका भाव तेज होते देख निराश व्यवसायियोंको उन्नतिकी आशा दिखाई दे रही है; परन्तु दूसरी दिशामें होनेवाली दुर्घटनाओंका प्रभाव अभी तक निराशाजनक ही है। क्या कोयलेके व्यवसायकी वृद्धिके साथ-साथ खनिकोंके संरक्षणके उपायोंमें भी वृद्धि होनेकी आशा है? समय ही इसका उत्तर देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

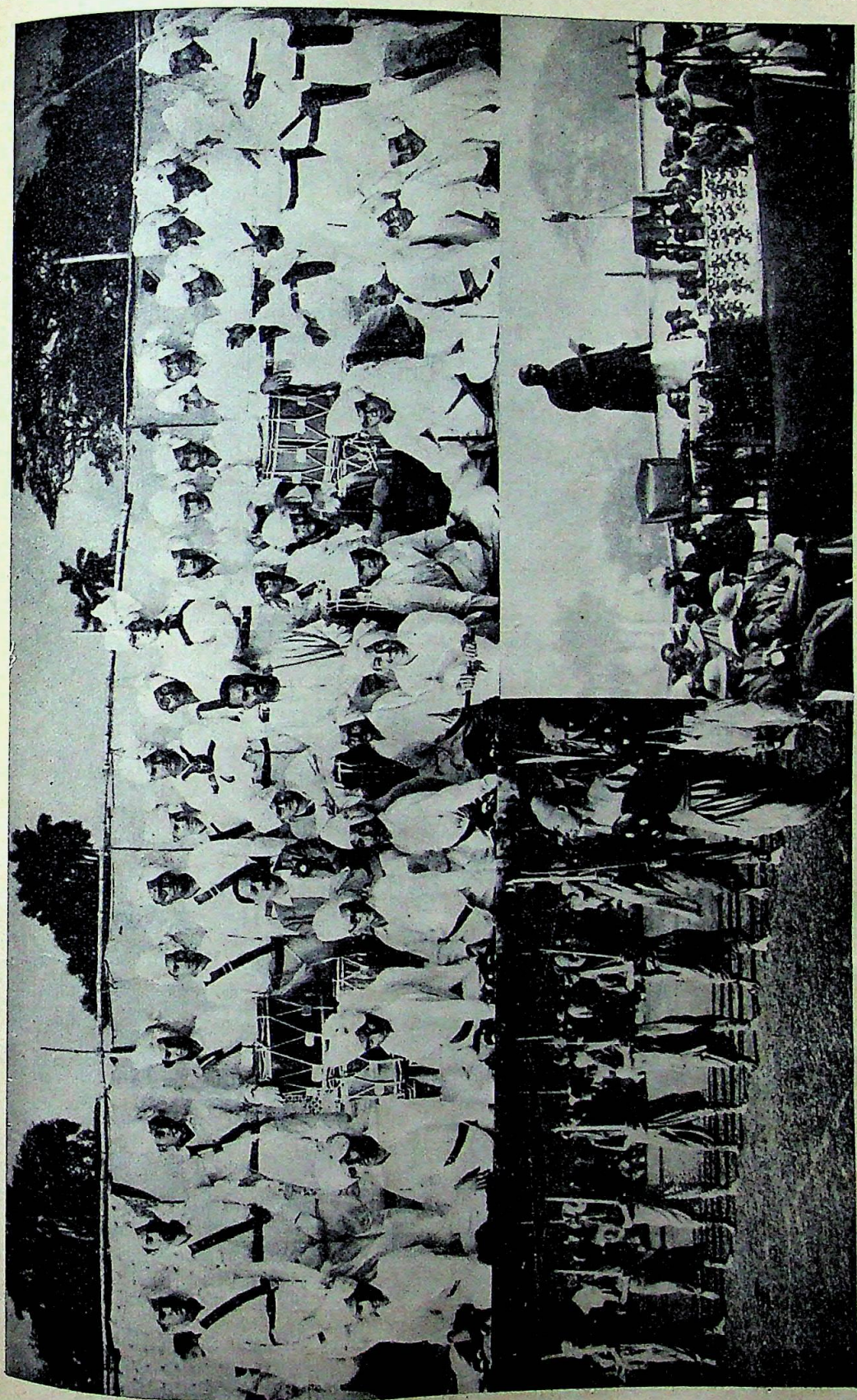

ऊपर—कलकत्ता-विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठा दिवसके उत्सवपर विश्वविद्यालयका बैण्ड। बीचमें वायस-चांसलर बैठे हैं

नीचे—दाहिं ओर : विश्वविद्यालय प्रतिष्ठा दिवसपर वायस-चांसलर भाषण दे रहे हैं। बाईं ओर : इसी उत्सवपर छात्रोंका पाइक नृत्य (खड्ग नृत्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता-विश्वविद्यालयके प्रतिष्ठा दिवसपर छात्रियोंका जुलूस

जर्मनीके ओलिम्पिक खेलोंकी प्रतियोगितामें एक खिलाड़ी 'स्की' या 'शी'के अनोखे करतब दिखा रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती-साहित्य-परिषद्-सम्मेलन

(बारहवाँ अधिवेशन)

श्री ललिताचरण गोस्वामी

"The hungry millions ask for one poem—invigorating food." —Mahatma Gandhi.

—'देशके लाखों क्षुधापीड़ित व्यक्ति एक ही 'कविता' माँगते हैं, और वह है पौष्टिक भोजन।'—महात्मा गांधी

"एक समय ऐसा था, जब गुजराती भाषा और साहित्यका मूल्य प्रजा-जीवनकी दृष्टिसे कोई आँकता ही न था। सभी पढ़े-लिखे लोग अंगरेज़ी भाषाके अभ्यास और उपयोगमें ही मग्न थे। इस प्रचंड प्रवाहको रोकना शक्तिके बाहरका काम माना जाता था। ऐसे गम्भीर और कसौटीके विषयके इस प्रवाहको जिस व्यक्तिने स्वाभाविक मार्गकी ओर बदल दिया, इतना ही नहीं, परन्तु मातृभाषाका ही उपयोग करनेका स्वयं निश्चय किया, सो भी इतनी सरलता और शुद्धताके साथ, कि गुजराती भाषा साहित्यको नया यौवन प्राप्त हो गया, वही प्रतापी महापुरुष महात्मा गांधी बारहवें साहित्य-सम्मेलनके प्रमुख पदपर विराजनेवाले हैं।"

['गुजरात' मासिक, नवम्बर, १९३६]

एक ही व्यक्तिके सम्बन्धमें इन दो उद्धरणोंको एक साथ देनेमें हमारा हेतु है। इन उद्धरणोंसे किसी हद तक यह स्पष्ट हो जायगा कि महात्माजीका साहित्यके साथ किस प्रकारका और कितना सम्बन्ध है तथा गुजरातके साहित्यिकोंने उनको अपनी सर्वोपरि साहित्यिक संस्थाका आगामी वर्षके लिए केवल चुनकर उनके किस कार्यके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

इस बातको भला कौन नहीं मानेगा और एक बार महात्माजीके चिर-सहवासी काका कालेलकरने कहा भी था कि 'गांधीजी साहित्याचार्य नहीं, वरन् जीवनाचार्य हैं।' परन्तु 'जीवन और साहित्यमें जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, वैसा ही गांधीजी और साहित्यमें है,' इस बातको भी स्वीकार करनेमें अधिक लोगोंको आपत्ति न होगी। महात्माजी साहित्यका मूल्यांकन 'मानवताको उन्नत, सुखी और समृद्ध बनानेकी उसमें कितनी शक्ति है,' इस दृष्टिसे करते हैं, और उनके व्यक्तित्वके लिए यही स्वाभाविक भी है। वे संसारमें 'धार्मिक पुरुष'के नामसे विख्यात हैं; परन्तु धर्मको भी तो वे 'जीवनके प्रयोगोंमें' (Experiments on life) ही मानते हैं।

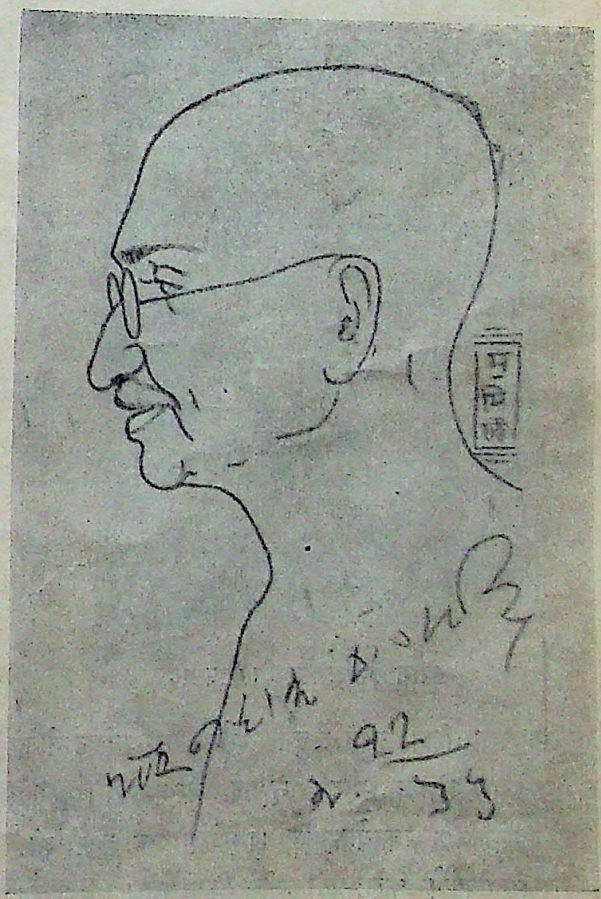

परिषदके प्रधान महात्मा गांधी

हाँ, साहित्य और कलाको वे केवल 'वर्ग-शस्त्र' नहीं मानते, और इसका कारण कदाचित् यह हो कि वे किसी वर्ग-विशेषमें सम्पूर्ण मानव-जीवनकी झाँकी अभी तक नहीं देख सके हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- २ -

गुर्जर-भाषा-साहित्य-परिषद्का यह बारहवाँ सम्मेलन, जो गुजरातियोंकी गर्वभूमि अहमदाबादमें गत ३१ अक्टूबरसे ३ नवम्बर तक हुआ था, कई दृष्टियोंसे सफल कहा जा सकता है। उसकी सबसे बड़ी सफलता तो इसीमें है कि मंगलमूर्ति महात्माजी उसके सभापति थे। सम्मेलनके उपसभापति-पदपर भारत-प्रसिद्ध विद्वान तथा तत्त्वचिन्तक श्री आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव आसीन थे। स्वागताध्यक्ष अहमदाबादके

स्वागताध्यक्ष सर गिरजाप्रसाद

अग्रगण्य नागरिक तथा लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंके कृपापात्र सर गिरजाप्रसाद चीनूभाई बैरोनेट थे।

सम्मेलनके कार्यक्रमका श्रीगणेश एक छोटी सी, परन्तु सुरुचिपूर्ण कला-प्रदर्शिनीसे किया गया। इसका आयोजन गुजरातके श्रेष्ठ कलामर्मज्ञ श्री रविशंकर रावलने किया था तथा प्रदर्शित कृतियोंमें भी उनकी कला-रसिक शिष्यमंडली (जिनमें प्रसिद्ध कनुदेसाई भी हैं) की ही कृतियोंकी प्रधानता थी। महात्माजी भी इस प्रदर्शनको देखकर प्रभावित हुए थे। उन्होंने अपने विशेष ढंगसे कलाकी मार्मिक आलोचना करते हुए अपने भाषणमें कहा था—"कला-प्रदर्शनमें रविशंकर रावल मुझे चित्रोंका भाव समझाते जाते थे; परन्तु सच्ची कला तो वह है, जिसे मैं उनके संकेत बगैर भी समझ सकूँ। मैं स्वयं विद्वान होऊँ। रस्किनका मैंने अध्ययन किया है और फिर मैं उसकी कलाको समझूँ अथवा स्वयं रस्किन ही मुझे अपनी कला समझावे तब मैं समझूँ, तो इसमें रस्किनकी कलाकी कोई श्रेष्ठता नहीं है। मुझे तो भाई, देहाती आँखोंसे देखना पड़ता है; फिर भी रविशंकरके चित्रोंको देखकर मेरी छाती फूल उठी। साथ

परिषदके उप-प्रधान श्री आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव

ही मुझे यह भी विचार आया कि चित्र ऐसा होना चाहिए, जो मेरे साथ बातचीत करे, मेरे सामने बोल करे। ऐसे चित्र सारे संसारमें भी थोड़े ही हैं। रोममें पोपके संग्रहमें मैंने एक मूर्ति देखी थी, जिसको देखते ही मैं मूर्च्छित हो गया था। यह मूर्ति है सलीबपर लटके हुए ईसा (Christ on the Cross) की। इस मूर्तिको देखकर मनुष्य दीवाना बन जाता है। इस मूर्तिका रहस्य समझानेके लिए रविशंकर रावल मेरे पास नहीं थे, फिर भी उसको देखकर मैं स्तब्ध हो गया। यह तो परदेशकी बात है। थोड़े दिन पूर्व मैं मैसूर राज्यमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैलूर शहरमें गया था। वहाँके प्राचीन मन्दिरमें नग्नावस्थामें खड़ी हुई एक रमणीकी प्रतिमा देखी। इस प्रतिमाको देखनेके लिए किसीने मुझसे कहा भी नहीं था; परन्तु मेरा ध्यान स्वयं ही एकदम उसकी तरफ गया और मैंने उसको ग़ौरसे देखना प्रारम्भ किया। मैं यहाँ नग्नावस्थामें स्थित उस स्त्री-मूर्तिका वर्णन नहीं करना चाहता; परन्तु उस चित्रका भाव जो मैंने समझा, वह बतलाता हूँ। इस चित्रके पैरोंके पास एक बिच्छू पड़ा हुआ है। इस चित्रका कवि वीभत्स

साहित्य-विभागके प्रधान श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

नहीं था, इसीसे उसने इस स्त्रीको कपड़ोंसे कुछ-कुछ ढँक दिया है। यह काले संगमूसाकी मूर्ति है। इसको देखते ही ऐसा मालूम होता है कि कोई रम्भा खड़ी हुई व्याकुल हो रही है। मैं तो इस मूर्तिको देखता ही रह गया। यह स्त्री अपने वस्त्रोंको ज़ोरसे खींच रही है। कलाको जिह्वाकी आवश्यकता नहीं होती। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि साक्षात् कामदेवता यहाँ बिच्छू बनकर डटे हैं। इस स्त्रीके शरीरमें कामाग्नि व्याप्त हो गई है। कविने तो कामको विजय प्राप्त कर लेने दी है; परन्तु इस स्त्रीने उसको अपने वस्त्रोंसे झाड़ निकाला है और उसको विजय प्राप्त नहीं करने दी है। स्त्रीके अंग-प्रत्यंगपर उसकी वेदना चिह्नित है। रविशंकर इस चित्रका जो अर्थ करें; परन्तु उनका शहरी अर्थ झूठा और मेरा देहाती अर्थ सच्चा!"

- ३ -

उसी दिन (३१ अक्टूबर १९३६) परिषद्की बैठक तीसरे पहर तीन बजेसे प्रेमाभाई-हॉलमें गांधीजीके सभापतित्वमें प्रारम्भ हुई। साहित्यिकोंके दुर्भाग्य या सौभाग्यसे उन्हीं दिनों अहमदाबादमें मिल ओनर्स

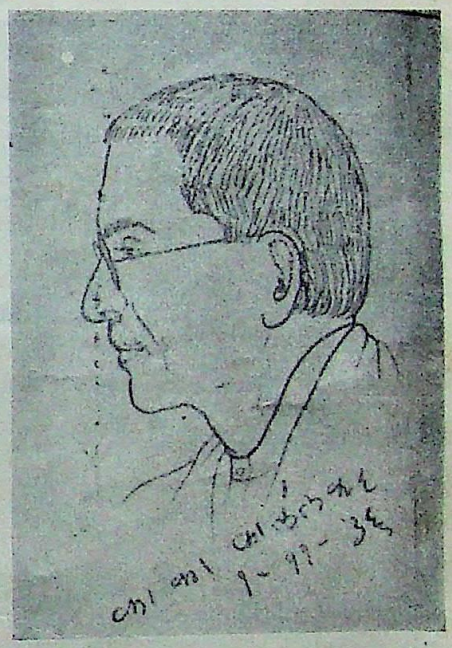

ललित-कला-विभागके प्रमुख श्री दत्तात्रेय कालेलकर

ऐसोसियेशन (मिल-मालिक-संघ) और मजूरोंका झगड़ा उग्र रूप धारण किये हुए था; दोनों पक्ष अपनी ज़िदपर डटे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि यदि ऊँट सीधी करवट न बैठा, तो शहरका सम्पन्न व्यवसाय धूलमें मिल जायगा। ऐसे समयमें महात्माजीका अहमदाबाद आना दोनों पक्षोंके लिए ईश्वरके आशीर्वादके समान हो गया। महात्माजीकी तो अक्षरशः वही दशा हुई—'आये थे हरि-भजनको, ओटन लगे कपास।' वाक़ई कपास ही ओटने लगे! लोगोंने वह खींचा-तानी शुरू की कि वे साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद्के लिए व्याख्यान लिखना तो दूर रहा, तैयार भी न कर सके ; फिर भी उनकी असाधारण शक्तियोंसे परिचित गुजरातीके साहित्यिक उनको प्रेमाभाई-हॉलमें ले ही तो गये।

उन्होंने मौखिक भाषण दिया और दिल खोलकर दिया। उनके भाषणके प्रत्येक शब्दपर उनकी सचाई (Sincerety) की छाप लगी है। महात्माजी किस आशय और आशाको लेकर साहित्य-सम्बन्धी संस्थाओंके कार्यमें भाग लेते हैं, इसका सूक्ष्म परिचय

पत्रकार-विभागके प्रधान श्री महादेव देसाई

तो हम लेखके प्रारम्भमें ही करा चुके हैं। उन्होंने अपने भाषणमें भी बार-बार इसी बातपर ज़ोर दिया था कि साहित्यिक लोग यदि वास्तवमें साहित्यकी कुछ सेवा करना चाहते हैं, तो वे भारतकी ग्रामीण जनताके निकटतम संसर्गमें जानेकी चेष्टा करें। कलमके ज़ोरसे बड़े-बड़े शहरोंमें रहनेवाले इने-गिने धनिकोंसे वाहवाही लूट लेनेमें साहित्यिकता कृतार्थ नहीं हो जाती। साहित्यिकता तो वही है, जिससे देशके प्राण पुष्ट हों। उन्होंने गुर्जर वाणीके नवयुवक प्रेमियोंको सलाह दी थी—"यदि कोई भाई या बहन साहित्य-क्षेत्रमें कूदना चाहते हों, तो वे ऐसे साहित्यकी सृष्टि करें, जो गाँवोंके मूक प्रजाको उपयोगी हो सके।"

महात्माजीने दूसरी बात साहित्य-क्षेत्रके परिष्कारके सम्बन्धमें कही। गुजराती - साहित्यमें भी अन्य भाषाओंके साहित्यकी तरह 'घासलेटी साहित्य' का बोलबाला है, जिसमें स्त्रीके शारीरिक सौन्दर्यके चुने जानेवाले वर्णनोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। महात्माजीने बतलाया कि इस प्रकारके लेखनसे स्त्रियोंकी

कवि-सम्मेलनके प्रधान रामनारायण पाठक

क्षुद्र भावनाएँ भले ही गुदगुदाई जा सकें ; परन्तु इससे स्त्री-जातिकी वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती और न इससे स्त्रीत्वके सबसे उज्ज्वल भाव मातृत्वका ही पोषण हो सकता है। उन्होंने स्त्रियोंको यह सलाह दी कि वे ऐसी पुस्तकोंके लेखकोंसे यह पूछें—"तुमने स्त्री-सौन्दर्य कहाँ देखा था ? स्त्रीके शारीरिक सौन्दर्यके साथ तुम्हारा लेना-देना ही क्या ? तुमने स्त्रीका देह-सौन्दर्य ही देखा है या हृदय-सौन्दर्य भी ? माका—स्त्रीका सौन्दर्य देखनेकी तुम कब चेष्टा करते हो ? अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम मर जायँगी, तब तुम हमारे सुन्दर शरीरको अचारके घड़ेमें डालकर घरमें रखोगे क्या ?" महात्माजीने महिलाओंको विश्वास दिलाया कि कोई भी घासलेटी लेखक उनके इस सीधे प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकेगा ; उसको खिसियाकर सर खुजाते ही बनेगा। इसके बाद उन्होंने कहा कि ऐसा लेखक समाजकी दृष्टिमें महान अपराधी है, क्योंकि वह समाजमें ऐसे विकारोंकी सृष्टि करता है, जिनका किसी भी स्वस्थ समाजमें होना दूषण है। वे अकुलाकर ऐसे लेखकोंसे पूछते हैं—"तुम स्त्रीको सातवें आसमानपर क्यों चढ़ाये देते हो ? स्त्रीने जिन विकारोंका अनुभव कभी न किया हो, उन विकारोंको उसके हृदयमें किसलिये उत्पन्न किये देते हो ? साहित्यके वर्णनके अनुसार उसके नाक अथवा कान है या नहीं, इस बातको जाननेके लिए तुम उसे दर्पणमें अपना मुँह देखनेकी प्रेरणा करते हो ; उसके हृदयमें जब ऐसे ही विचार घूमने लगते हैं, तो वह सदैव जेबमें ही दर्पण रखना सीख जाती है ! अरे, उसके मनमें यह विचार ही क्यों आने देते हो कि जैसा मेरा वर्णन किया जाता है, वैसी ही मैं हूँ या नहीं ?"

गांधीजी 'महात्मा' ठहरे ; वे साहित्यिकोंके हथकंडोंको क्या समझें ! इन बातोंको तो कोई घिसा हुआ साहित्यिक ही समझ सकता है। वर्तमान साहित्यमें स्त्रियोंके क्षुद्र गर्वको क्यों भड़काया जाता है, इस प्रश्नका उत्तर इसी सम्मेलनके साहित्य-विभागके प्रमुख श्री कन्हैयालाल मुंशीने इन करुण शब्दोंमें दिया है—"आजकी कहानियोंमें यदि स्त्रियोंके गर्वका पोषण न हो, तो सुशिक्षिता बेकार स्त्रियाँ कहानियाँ क्यों बाँचें ? और यदि वे कहानियाँ न बाँचें, तो फिर कहानी-लेखकका हो क्या ?" हम जानते हैं कि गांधीजीका जीवनध्येय ही भारतवर्षसे दरिद्रता और बेकारी हटानेका है ; परन्तु लेखकोंकी बेकारी दूर करनेके उपर्युक्त नुस्खेपर वे कभी भी रज़ामन्द हों, इसका हमें सन्देह है।

विज्ञान-विभागके प्रधान श्री पोपटलाल शाह

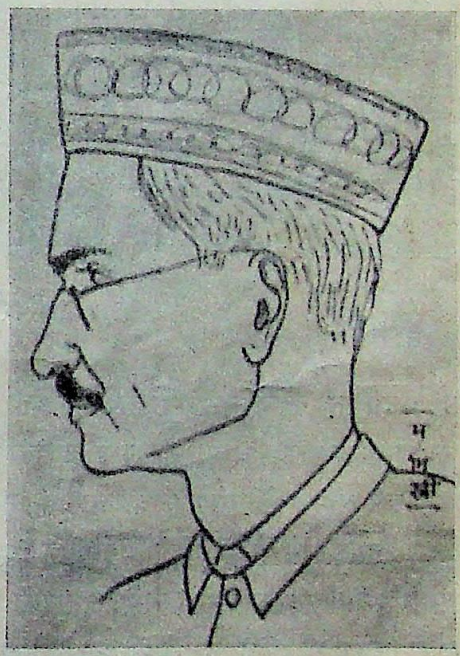

धर्म और तत्त्व ज्ञान-विभागके प्रमुख श्री अतिसुखशंकर त्रिवेदी

- ४ -

पहले दिनके कार्यक्रमकी समाप्ति 'रंजन-समिति'की मधुर योजनासे की गई। 'रंजन-समिति'की यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

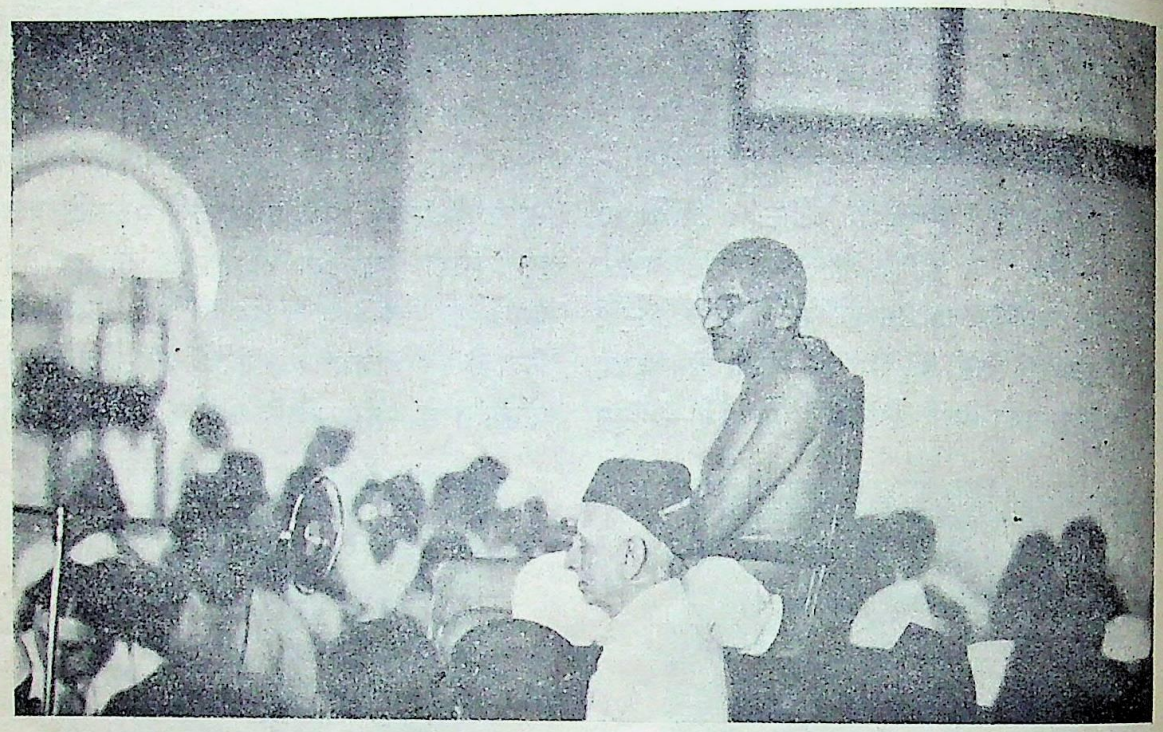

परिषदमें महात्माजीका भाषण

योजना कदाचित् हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए नवीन वस्तु हो, इसलिए इसपर थोड़ा प्रकाश डाल देना उचित होगा। इस समितिकी सम्पूर्ण योजना दो सुसंस्कृत महिलाओं द्वारा की गई थी। इनमें से एक तो सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष सर गिरिजाप्रसादकी भगिनी श्री मनोरमा बहन थीं तथा दूसरी श्री इन्दुमती दीवानजी थीं। 'रंजन-समिति'के कार्यक्रममें गरबा (स्त्रियोंका सामुदायिक नृत्य), ऋतु-नृत्य तथा नृत्यके विविध प्रकार, दानलीला, महाकाली-नृत्य, नेपथ्य-विधान और अभिनय-विधान मुख्य थे। सम्मेलनमें आये हुए कलाविज्ञ तथा रसिक साहित्यिकोंको सन्तुष्ट कर देना कोई सामान्य काम नहीं था ; फिर भी सभी लोगोंने 'रंजन-समिति'के इस कार्यक्रमको साहित्य-परिषद्के एक प्रधान अंगकी पूर्ति माना।

वास्तवमें साहित्य, संगीत और कलाका निकटका सम्बन्ध है। मनुष्यत्व जिनके अभावमें पशुत्वकी सीमासे जा भिड़ता है, उन तीनों विभूतियोंको—साहित्य, संगीत और कलाको—बूढ़े भर्तृहरि एक ही साँसमें गिना गये हैं ; कोई भी साहित्य-सम्बन्धी आयोजन इस त्रिपुटीकी अखंडता भंग करके प्राणवान नहीं बन सकता ; और कोई भी मानव-समुदाय, जिसको अपने इतिहास और संस्कृतिका गर्व है, यह नहीं कह सकता कि उसको अपने अतीतसे इन तीनोंकी—साहित्य, संगीत और कलाकी—थाती नहीं मिली। हम लोगोंका अपने भूतकालीन वैभवकी महज़ इसी वजहसे उपेक्षा कर देना कि वह विचित्र धार्मिक भावनाओंसे संश्लिष्ट है, समझदारीका काम नहीं कहला सकता। भारतवर्षकी तो सारीकी सारी संस्कृति ही धार्मिक है ; साहित्य, संगीत और कला ही क्या, यहाँ तो राजनीति, समाज-नीति और वाणिज्यपर भी धर्मकी गहरी छाप लगी हुई है ; परन्तु इस प्रकारकी धार्मिकतासे मर्मज्ञोंको चौंकना नहीं चाहिए। यह तो जीवनके मूल्य (value) सम्बन्धी विचारोंके साथ-साथ परिवर्तित होती रहती है। परिवर्तन-चक्रमें पड़ी हुई धार्मिकताके गर्भमें से अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य, संगीत और कला-सम्बन्धी सुन्दर तत्त्वोंको निकालकर उनकी रक्षा करनेमें ही दूरदर्शिता है। गुजरातके कलाविज्ञ इस बातको जानते हैं और इसीसे आज वहाँ दानलीला (श्रीकृष्ण और गोपियोंकी स्नेहलीला), महाकाली आदि कलामय नृत्य देखनेको मिल जाते हैं। 'गरबा' तो गुजरातकी विशेषता है, और वह सम्भव भी वहीं हो सकता है, जहाँ स्त्रियाँ परदेमें नहीं रहतीं; परन्तु इसको छोड़कर और सब बातें, जिनमें पुरुष ही विशेषरूपसे भाग लें, अपने यहाँ भी सम्भव हैं। हमारा 'सम्मेलन' भी साहित्यके साथ संगीत और कलाका स्वाभाविक योग साधकर पूर्ण बने, इसी आशासे उपर्युक्त विवेचन किया गया है।

- ५ -

गुजराती-साहित्य-सम्मेलनमें भी साहित्यके भिन्न-भिन्न अंगोंपर समुचित प्रकाश डालनेके लिए सात विभाग किये गये थे, और इन विभागोंके सभापति-पदपर उन-उन विषयोंके विशेषज्ञ विद्वान प्रतिष्ठित किये गये थे। सम्मेलनके द्वितीय तथा तृतीय दिवस इन्हीं विभागीय सभापतियोंके व्याख्यान हुए। विभागीय प्रमुखोंमें से कई तो भारत-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। पत्रकार-विभागके प्रमुख श्री महादेव देसाई, ललित-कला-विभागके प्रमुख श्री दत्तात्रेय कालेलकर तथा साहित्य-विभागके प्रमुख श्री कन्हैयालाल मुंशीको कौन नहीं जानता? इन लोगोंके विचार-प्रेरक व्याख्यानोंके संक्षिप्त उद्धरणोंके लिए भी इस लेखमें अब अवकाश नहीं है। फिर भी 'साहित्य - विभाग'के प्रमुख श्री कन्हैयालाल मुंशीने साहित्यके चल और अचल तत्त्वोंपर जो नया प्रकाश डाला है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

व्याख्यानके प्रारम्भमें ही श्रीयुत मुंशीने साहित्यके स्टैण्डर्डके पतनके प्रति गम्भीर चिन्ता प्रकट की है। इस पतनका मूल कारण, उनकी रायमें, वर्तमान युगमें प्रचलित वे प्रेरणाएँ हैं, जो 'हाथ-पैरसे बनी हुई' जीवन-सामग्रीको ही उत्कृष्ट और मूल्यवान समझनेके लिए

आधुनिक चित्र-कलापर श्री हरिप्रसाद देसाई भाषण दे रहे हैं

मानव-समुदायको प्रेरित कर रही हैं; इन प्रेरणाओंने फलस्वरूप ही "ईंट मटोड़ा बनानेवाला इंजीनियर समाजका स्तम्भ और भावना आशाकी सृष्टि करनेवाला कवि निरुपयोगी दिखलाई देने लगा है।" परिणाम यह हुआ है कि "साहित्य या तो प्रचारका साधन अथवा फुरसतके वक्तका खिलौनामात्र रह गया है।" साहित्य अपनी गम्भीरता और स्थिरताकी बलि देकर विस्तीर्ण और व्यापक बना है। ऐसे समयमें साहित्यके चल और अचल तत्त्वोंका विवेक लाभकारी हो सकता है।

श्रीयुत मुंशीने मूल विषयका आरम्भ करते हुए बतलाया कि किसी भी साहित्यको उसके चलतत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला-प्रदर्शिनीके संयोजक तथा अन्य कलाकार
बाईं ओरसे—सर्वश्री रसिकलाल परीख, छगनलाल जादव, रविशंकर रावल, सोमालाल शाह और कनु देसाई

उस स्थलकालके अंगोंमें से प्राप्त होते हैं, जिसमें उस साहित्य-विशेषकी सृष्टि होती है। स्थलकालके इन अंगोंमें "स्थलकाल-विशेषकी सामाजिक परिस्थिति, साहित्यका मूल्यांकन करनेकी उसकी रीति, उसमें प्रचलित साहित्यका प्रेरक बल, कथनके वाहन और उस स्थलकाल-विशेषको प्राप्त साहित्य-भण्डारकी थातीका समावेश होता है।" स्थलकालकी सामाजिक परिस्थितिके अन्तर्गत उसकी धार्मिक, नैतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी आ जाती हैं और ये सब संयुक्त रूपसे अथवा एकाकी रूपसे प्रचलित साहित्यपर असर डाला करती हैं।

कोई स्थलकाल-विशेष किस प्रकारके साहित्यकी क़दर करता है, इस बातसे भी साहित्य प्रभावित होता है; साहित्यकी रचनामें लोकरुचि सदैवसे महत्वका भाग लेती रही है। श्रीयुत मुंशीके शब्दोंमें "मजूरकी जहाँ पुस्तकें बाँचता हो, वहाँ भूखों मरता साहित्यिक तो पूँजीवादके विध्वंसके ही काव्य लिखेगा। आजका साहित्यकार ठोंक-पीटकर गांधी, टोपी, केसरिया साड़ी, पिकैटिंग और ग्रामोद्धार अपनी कृतियोंमें ले ही आता है।"

इसी प्रकार स्थलकालके प्रेरक बल भी साहित्यका निर्माण और पोषण करते हैं। "भक्ति-युग आया, और प्रान्त-प्रान्तमें कविगण भक्तिरसलीन हो गये।..... युयुत्सु जर्मनीमें फैली हुई हवापर नीट्शेने अपना Superman का सिद्धान्त रच डाला....वर्तमान रूसमें सोविएट पक्षने R. A. P. P. (रशियन ऐसोसिएशन आफ प्रोलेटेरियन राइटर्स) का साम्राज्य जमानेका प्रयत्न किया। पंचवर्षीय योजनाका वर्णन और वर्गविग्रह, बस यही दो सोविएट साहित्यके विषय हैं, यह निश्चय हो गया। लेखकोंकी 'शाक ब्रिगेड' हुई। एकने सीमेंटके ऊपर कहानी लिखी, दूसरेने बोल्गा—कैस्पियन नहरपर। साहित्य-परिषद्ने प्रस्ताव पास किया कि 'कला वर्गशस्त्र है, कलात्मक सर्जनको व्यवस्थित सुसम्बद्ध Collectivised (सामुदायिक) बनाना चाहिए, और फौजी कार्यकी भाँति मध्यवर्ती सत्ताधीशोंकी योजनाके अनुसार काम होना चाहिए; और यह सब कम्यूनिष्ट पार्टीकी दृढ़ प्रेरणाके नीचे ही।"

अचल और शुद्ध साहित्यकी व्याख्यापर आते हुए विद्वान व्याख्याताने बतलाया कि जो कथन स्वयंभोग्य हो, वही शुद्ध साहित्य कहला सकता है। "मात्र कहनेके आनन्दके लिए ही जो कथन रचा जाय तथा कथनकी सरसता साधनेके लिए ही जो कथन लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय, वही शुद्ध साहित्य है। जो ज्ञान उपदेश अथवा प्रचारके लिए लिखा जाय, वह शुद्ध साहित्य तभी कहा जा सकता है, जब हम इन (उपदेश, प्रचार आदि) बातोंको उस कथनसे अलग करके भी उसका आनन्द ले सकें।" 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति' लिखकर अपने 'रामचरित-मानस' को प्रारम्भ करनेवाले तुलसीदासजी साहित्यकी इस परिभाषासे सहमत हैं, इसमें सन्देह नहीं।

चल और अचल तत्त्वोंका तात्त्विक भेद दिखलाते हुए श्रीयुत मुंशी कहते हैं—"चंचल तत्त्व बुद्धि-प्रधान हैं, और जगतके इतिहासमें बुद्धि जैसी बाँझ और दूसरी वस्तु नहीं है। जो कृति बुद्धिपर आश्रित सामग्रीसे बनाई गई हो, जिसमें लेखककी मानवताके रंग न चमकते हों, वह कभी चिर-जीविनी नहीं हो सकती। स्वभावकी रंग-समृद्धि बिना यदि साहित्यिक कृतियाँ बनती होतीं, तो प्रत्येक अर्ज़ीनवीस साहित्यकार बन जाता!" साहित्यिक कृतिको अमरत्व प्रदान करनेवाली यह 'स्वभावकी रंग-समृद्धि' कविको किस प्रकार और कब प्राप्त होती है, यह हमारे अकबर इलाहाबादीसे सुन लीजिए—

"हुआ है ख़ून आरज़ूका अक्सर यही है रंगे-कलाम अकबर ;
सख़ुनको रंगीन कर दिया है जिगरने मेरे तड़प-तड़पकर।"

अपने व्याख्यानके अन्तिम भागमें श्रीयुत मुंशीने शुद्ध साहित्यकी रचनाके लिए आवश्यक केवल दो मोटी-मोटी बातोंपर ज़ोर दिया है, उनमें से पहली तो है स्वानुभव और दूसरी उस स्वानुभवको सरस रीतिसे व्यक्त करनेकी शक्ति। जिस भाषा और साहित्यके कर्णधारोंमें ऐसे विशाल वाचनशील सहृदय व्यक्ति हैं, उसकी सर्वांगीण उन्नति क्यों न हो?

एक चीनी दार्शनिक और अराजकवाद

[अराजकवाद कोई नया सिद्धान्त नहीं है। ईसासे ३०० वर्ष पहले चुआंग ज़ू नामक एक चीनी दार्शनिकने बड़ी सुन्दरतासे इसका प्रतिपादन किया था।]

बर्फ़ और पालेपर चलनेके लिए घोड़ोंके सुम होते हैं, हवा और सर्दीसे बचानेके लिए उनके बाल होते हैं। वे घास खाते हैं और पानी पीते हैं। बढ़िया-से-बढ़िया शराब अगर उन्हें दी जाय, तो वे उसपर दुलत्ती झाड़ देंगे। घोड़ोंका स्वभाव ही ऐसा है। महलनुमा (शानदार मकान) उनके कोई कामके नहीं।

एक दिन पो लो कहींसे आ मौजूद हुआ और कहने लगा—"घोड़ोंका इन्तज़ाम मैं समझता हूँ।"

उसने उन्हें लोहेसे दागा, उनके बाल काटे, उनके सुम छीले, उनके गलेमें बागडोर डाली और अगाड़ी-पिछाड़ी लगाकर उन्हें अस्तबलोंमें बन्द कर दिया। नतीजा यह हुआ कि हरएक दस घोड़ोंमें दो-तीन मर गये। उसके बाद उसने भूखे-प्यासे रखकर उन्हें दुलकी और सरपट चलाना शुरू किया, उनकी मलाई-दलाई करने लगा। सामनेसे फुंदनेदार लगाम और पीछेसे कँटीले चाबुकका खतरा हर वक्त उन्हें रहने लगा ; यहाँ तक कि उनमें से आधेसे अधिक मर गये।

कुम्हार कहता है—"मैं मिट्टीका जो चाहता हूँ, बनाता हूँ। अगर मैं उसे गोल बनाना चाहता हूँ, तो परकार इस्तेमाल करता हूँ, और अगर आयताकार बनाना चाहता हूँ, तो कुनिया काममें लाता हूँ।" बढ़ई कहता है—"मैं लकड़ीका जो चाहता हूँ, बनाता हूँ। अगर मैं उसे टेढ़ी बनाना चाहता हूँ, तो चाप काममें लाता हूँ और यदि सीधा रखना चाहता हूँ, तो रेखा इस्तेमाल करता हूँ।"

लेकिन किस बिनापर हम यह कह सकते हैं कि मिट्टी या लकड़ी स्वयं भी इन कुनिया-परकार और चाप या रेखाका प्रयोग चाहती है? फिर भी प्रत्येक युग घोड़ोंकी खबरदारीके लिए अपने पो लोकी बुद्धिमत्ताकी और मिट्टी तथा लकड़ीके लिए अपने कुम्हार और बढ़इयोंकी कारीगरीकी तारीफ़ करता है। जो लोग साम्राज्यका शासन करते हैं, वे भी ऐसी ही ग़लती करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव

श्री बी० एन० कौल

उसका नाम था बंसी। गर्ल्स होस्टलमें वह फल-मिठाई इत्यादि बेचने ले जाया करता था। उसकी कमर झुक गई थी। ऊँची धोती, लम्बा कुरता, उसके ऊपर चाँदपर टिकी हुई टोपी लगाये और छात्राओंके पुराने लेडी-शू पैरोंमें घसीटते हुए उस बूढ़ेकी निराली आकृतिकी ओर बरबस ही ध्यान खिंच जाता था। झुर्रीदार, लटके हुए चेहरेपर उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें एक विचित्र करुणा खेला करती थी।

अपना बड़ा-सा टोकरा लेकर वह दोपहरसे ही होस्टलके फाटकपर आ बैठता। उसका यह टोकरा भी निराला था। न-जाने क्या-क्या चीज़ें उसमें भरी रहती थीं। दैनिक व्यवहारकी साधारण चीज़ें लानेके अतिरिक्त बंसी होस्टलका 'आर्डर सप्लायर' भी था। किसी छात्राको कोई पुस्तक मँगानी हुई, नाम लिखकर दे दिया। दूसरे दिन पुस्तकका बंसीके टोकरेमें आना अनिवार्य था। इसी प्रकार वह किसी भी तरहकी चीज़ ला सकता था। बड़ी-बड़ी कम्पनियोंसे लेकर कुंजड़िनकी छोटी दूकान तककी चीज़ें उसके टोकरेसे बरामद होती थीं। ऐसा था उसका टोकरा!

होस्टल-जीवनमें ही बंसी घुल मिल गया था। दोपहरसे लेकर शाम तक होस्टलमें बैठे रहना और बाक़ी समयमें अपना टोकरा भरना—यही उसका दैनिक जीवन था। होस्टलकी सभी छात्राएँ उसकी आत्मीय-सी हो गई थीं। "देखो बंसी, यह चीज़ बहुत ज़रूरी है। कल ज़रूर आ जाय।"—कोई छात्रा कहती। "अच्छा बिटिया, कल ज़रूर ले लेना।"—बंसी तत्परतासे उत्तर देता, स्नेह-सने शब्दोंमें। उसकी सरल स्नेह-सेवासे सभी प्रभावित थे।

जिस समय होस्टलकी छात्राएँ छीना-झपटी करके उसके टोकरेसे चीज़ें निकालतीं, वह मुग्ध आँखें फैलाये देखा करता। उनकी यह चंचल क्रीड़ा उसे तन्मय कर देती। वह न-जाने किस ध्यानमें मग्न हो जाता। छोटी लड़कियोंसे वह घंटों बातें किया करता। उनको फल काटकर खिलाया करता। शायद इन्हीं सारे व्यापारोंमें अब उसकी आत्माको सन्तोष मिलता था।

× × × ×

कोई तीस बरस पहलेकी बात है।

बंसी उस समय पचीसके क़रीब रहा होगा। उसकी बिसातखानेकी एक छोटी दूकान थी। परिवार भी अधिक न था। वह था और उसकी प्यारी टुनियाँ। दूकानसे जो थोड़ी-बहुत आय हो जाती, उसीमें टुनियाँ सारा प्रबन्ध मज़ेमें कर लेती। और टुनियाँकी प्रेमपूर्ण बातोंसे तो वह सूखी रोटियाँ खाकर भी अपनेको प्रसन्न समझता। टुनियाँका सरल प्रेम ही बंसीके लिए सब-कुछ था।

किन्तु स्नेह और सुखके इस भरे-पूरे जीवनमें भी एक अभाव उनको बहुत खटका करता था। टुनियाँकी गोद सूनी थी। उनका विवाह हुए सात-आठ साल हो चुके थे; किन्तु यह अभिलाषा अभी पूर्ण न हुई थी। उनका जीवन-तरु-स्नेहका जल पाकर हरा-भरा लहलहा उठा था; किन्तु अभी उसमें फलकी कमी थी।

"क्यों टुनियाँ, क्या हमारा जीवन ऐसा ही सूना रहेगा?"—बंसी कभी-कभी पूछ बैठता, कुछ विचलितसे स्वरमें।

"क्यों—मैं तो हूँ।" छोटा-सा उत्तर देकर टुनियाँ मुसकरा देती; किन्तु उसी क्षण उसके चेहरेपर विषादकी रेखा खिंच जाती। बंसी एक दीर्घ निःश्वास लेकर मुँह फेर लेता।

आख़िर वह दिन भी आ ही गया। बंसी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टुनियाँके अभावको पूर्ण करनेका साधन आ रहा था। शरदका एक सुहावना प्रभात था। बंसी आज अजीब-सा हो रहा था। किसी काममें उसका मन लगता न था। दूकानका समय भी हो गया; किन्तु उधर जानेकी सुध बंसीको न थी। बात यह थी कि टुनियाँ आज प्रसव-वेदनासे व्याकुल थी।

संध्याके आगमनके साथ शिशुका रुदन सुनकर बंसी नाच उठा। सहसा दाईने आकर कहा—'बेटी मुबारक। पर जच्चाकी हालत ख़राब है। भगवान मालिक है।"

बंसीके हृदयपर आघात लगा। टुनियाँके विषयमें एक अस्पष्ट आशंकाने उसका हृदय कँपा दिया। हृदयमें एक हलचल लिये वह भविष्यकी प्रतीक्षा करने लगा। उसकी आशंका सच ही निकली। आधी रातको दाईने आकर कहा—"चलिये बाबू, आप भी देख लीजिए। मुझे तो अब...."

वाक्य पूरा होनेके पूर्व ही बंसी सब समझ गया। वह दौड़ा हुआ भीतर पहुँचा। टुनियाँके नेत्र शायद उसकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। बंसी उसके सिरहाने बैठ गया। उसका हृदय रो रहा था।

टुनियाँने बंसीका हाथ अपने कम्पित पाशमें लेते हुए कहा—"मैं तो अब चली। तुम्हें यह दिये जा रही हूँ, यही सन्तोष है।" टुनियाँने पासमें पड़े हुए शिशुकी ओर एक प्रेम-भरी दृष्टि डाली—"देखना, इसका ध्यान रखना। अभागी कहकर इसकी उपेक्षा न करना।" टुनियाँने बालिकाका मुँह चूम लिया। बंसीके आँसू टपाटप गिर रहे थे।

दूसरे दिन सूर्यकी जीवनदायिनी किरणोंके प्रकाशमें टुनियाँका जीवन-प्रदीप बुझ गया।

× × × ×

टुनियाँको खोकर अकेले बंसीका जीवन भार हो जाता। किन्तु चलते-चलते टुनियाँ उसे एक ऐसी वस्तु दे गई थी, जिसने उसे फिर संसारमें लगा रखा। बंसीका जीवन अब उस बच्चीपर ही केन्द्रित था। बंसी उसे मानो कहता। यही मानो अब उसका जीवन थी। मुश्किलसे एक दिनकी बच्ची टुनियाँ उसे सौंप गई थी। उसे बड़ा करना था, सुखी रखना था। टुनियाँके अन्तिम शब्द उसे भूलते न थे।

धीरे-धीरे मानो बड़ी हुई। चलकर दूकान तक आने लगी। बंसीके पास बैठी वह बाज़ारकी सैर किया करती। वह न-जाने कितने खिलौने रोज़ मानोको दिया करता था। जो-कुछ वह माँगती, बंसी फौरन हाज़िर करता। मानोको वह किंचितमात्र भी दुःखी न देख सकता था। हृदयका सारा प्यार-दुलार उसने मानोपर बिखेर दिया था। नटखट मानोकी चंचल क्रीड़ाओंमें वह अपनेको खो बैठता था।

× × × ×

न-जाने कितने दिन आये और चले गये। बालिका मानो अब युवती हो चली थी। घरका बहुत-कुछ काम-काज अब वह स्वयं देखती थी; किन्तु बंसी अब भी उसको वही भोली बालिका समझता था और मानो भी बच्चोंकी तरह मचलना-रूठना ख़ूब जानती थी।

गरमीकी रात थी। बंसी दूकान बन्द करके घर आया। मानो खाना बना रही थी। पिताको आया देख वह पानी लेकर आ गई।

"क्यों बेटी, इस गरमीमें यह सब क्या पकवान बनाने बैठी है। आजकल तो कुछ रूखा-सूखा बना लिया कर।"—बंसीने प्रेम-भरे उलाहनेसे कहा।

"पकवान क्या दादा, ज़रा भरमा करेले बना रही थी। तुम कई दिनोंसे कह रहे थे।"—मानोने उत्तर दिया।

"मेरी क्यों इतनी चिन्ता करती है री! अपने घर चली जायगी, तब किससे कहूँगा?"—बंसी कुछ सस्मित-सा बोला।

"मैं तो तुम्हारे पास ही रहूँगी, दादा!"—मानोने पृथिवीकी ओर ताकते हुए कहा।

"तो क्या जीवन-भर तुझे ऐसे ही बिठाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखूँगा ? नादानीकी बातें करती है।"—मानो वाक्य पूरा होनेके पहले ही दूसरी ओर चली गई थी।

वास्तवमें बंसी अब मानोके विवाहके लिए चिन्तित हो रहा था। मानोका यह चौदहवाँ साल था। अब अधिक विलम्ब करना वह उचित नहीं समझता था।

दूसरे दिन वह इसी चिन्तामें बैठा था। पड़ोसके दूकानदारने पूछा—"क्यों बंसी, आज उदास-से नज़र क्यों आ रहे हो ?"

"कुछ नहीं। इस जीवनमें सौ झगड़े हैं जी मोहन !"—बंसीने उत्तर दिया।

"कुछ बताओ भी तो।"

"अरे, यही बिटियाके विवाहके विषयमें सोच रहा था।"

"हाँ, अब तो वह बड़ी हो गई होगी।"—मोहनने स्मरण करनेकी-सी मुद्रासे कहा—"कौन-सा साल है ?"

"चौदहवाँ जा रहा है।"

"फिर तो कर डालना चाहिए, बंसी ! कहीं ढूँढ़ते नहीं ?"—मोहनने प्रश्न किया।

"दो-चार लोगोंसे पूछा तो था ; फिर सोचता हूँ, मुझसे अकेले रहा कैसे जायगा ?"—बंसी कुछ खिन्न-सा बोला।

"अरे यह दुनियाका कायदा है। तुम कोई अलग थोड़े ही हो।"

"भाई, क्या करूँ। मेरा मन तो नहीं मानता।"

"देखो, मैं एक बड़े अच्छे घरमें तै करा दूँगा। तुम्हारी लड़कीको बहुत सुख रहेगा।" मोहनने बंसीके अन्तिम वाक्यको शायद सुना ही नहीं। वह बड़ी देर तक बंसीसे इस सम्बन्धकी बातें करता रहा। रातको घर लौटते समय बंसी कुछ प्रसन्न-सा था।

घर पहुँचकर उसने देखा, मानो चारपाईपर लेटी थी। पड़ोसकी एक बुढ़िया उसकी पीठमें तेल मल रही थी। बंसी आकुल हो उठा।

"क्यों बेटी, क्या बात है ?"—उसने चिन्तातुर स्वरमें पूछा।

"कुछ नहीं, दादा ! ज़रा पीठमें दर्द हो रहा है। कुछ बदन भी गर्म है।"—मानोने व्यथित स्वरमें उत्तर दिया।

बंसी आकर मानोके सिरपर हाथ फेरने लगा। "दर्द क्या बहुत हो रहा है, मानो ? डाक्टरसे कोई दवा ले आऊँ ?"—उसने पूछा।

"अरे नहीं दादा ! तुम घबड़ाते क्यों हो ? सब ठीक हो जायगा।"—मानोने उत्तर दिया।

किन्तु रात्रिके साथ ही मानोकी पीड़ा भी बढ़ती गई। ग्यारह बजते-बजते कष्ट असह्य हो गया। पड़ोसमें एक डाक्टर साहब रहते थे। बंसी भागा हुआ जाकर उन्हें बुला लाया। मानोकी परीक्षा करनेपर उनका मुँह सूख गया। "देखो, ज़रा तुम बड़े डाक्टर साहबको तो बुला लाओ। मैं परचा लिखे देता हूँ। जल्दी जाओ।"

डाक्टरकी भाव-भंगी देखकर बंसीका हृदय आशंकासे भर गया। दौड़ता हुआ वह डाक्टरके यहाँ गया। बड़े डाक्टरको लेकर जब वह लौटा, तो मानो अचेत पड़ी थी। डाक्टर उसकी नाड़ी देख रहे थे। बंसी पागल हो उठा।

"डाक्टर साहब ! मेरी बेटीको न-जाने क्या हो गया ! इसे बचा लीजिए, डाक्टर साहब ! ज़िन्दगी-भर आपका गुलाम रहूँगा।" बंसी रो पड़ा।

किन्तु अच्छी तरह परामर्श करनेके बाद डाक्टरने निराशा-भरी आँखें ही फिराईं। "मैं तुमसे अब और कुछ छिपाना नहीं चाहता, बंसी !"—डाक्टरने व्यथा-भरे स्वरमें कहा—"मानोको 'गरदनतोड़' हो गया है। वह कुछ घंटोंकी मेहमान और है।"

बंसी निश्चल मूर्ति-सा स्तम्भित खड़ा रह गया। न-जाने कहाँकी शून्यता उसकी दृष्टिमें समा रही थी।

दूसरे दिन सरिताके निर्जन तटपर मानोकी चिता धधककर जल उठी ! बंसीके सुख और प्रेमकी सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाएँ भी शायद उसीमें जलकर ख़ाक हो रही थीं !

× × × ×

मानोको खोकर बंसीकी विचित्र दशा हो गई। टुनियाँ जब उससे विदा हुई थी, तो अपने स्थानपर मानोको दे गई थी। बंसीने अपने जीवनकी सारी रिक्तताको मानोसे ही भर लिया था ; किन्तु अब वही मानो उसे छोड़कर चल दी ! फिर उसके जीवनमें रह ही क्या गया ?

बंसी पागलों-सा अस्त-व्यस्त रहता। खाने-पीनेकी कोई सुध ही न रहती। दूकानपर उस दिनसे झाँका तक नहीं। जो मिलता, उसीसे मानोकी बातें करके रोया करता। बहकी-बहकी बातें करता—'मेरी बेटी कहती थी, तुमको छोड़कर कहीं न जाऊँगी। बड़ी झूठी निकली।' जो कोई देखता, उसकी दशापर आँसू बहाता।

मोहन ही बंसीको बहुत-कुछ ढाढ़स दिया करता था। घंटों उसके पास बैठा रहता। समझा-बुझाकर उसे अपनी दूकान तक ले आता, उससे बातें करता। किसी तरह उसका जी तो बहले।

धीरे-धीरे मानोकी मृत्युको साल-भर हो गया। मोहनके प्रयत्नसे किसी प्रकार उसका जीवन चलता जाता था ; परन्तु उसमें कोई आकर्षण नहीं रह गया था। इतने दिनोंमें ही वह बिलकुल बुड्ढा हो गया था। सदा चुपचाप बैठा कुछ सोचा करता।

× × × ×

"क्यों बंसी, सुमिरनको तो जानते हो न ? वही जो पिछवाड़े रहता है ?"— हठात् एक दिन मोहनने पूछा।

"वही तो, जो लड़कियोंके बोर्डिंगमें सौदा ले जाता है ?" —बंसीने उत्तर दिया।

"हाँ, वह तो बेचारा बीमार पड़ा है। न हो, तुम्हीं कुछ सामान ले जाया करो। कुछ तबीयत ही बहलेगी, बैठे-बैठे और जी घबड़ाता है।"—मोहनने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें कहा।

"लड़कियोंके बोर्डिंगमें—अच्छी बात है।" बंसीने जैसे स्वप्नमें कहा था।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

गीत

श्री बालकृष्ण राव

नयनोंमें अक्षय अश्रुराशि,
मुखपर क्षणभंगुर हास लिये,
बन आई नियति शिशिर-वसना,
अंचलमें मृदु मधुमास लिये।

कलरवमें परिणत हुआ सुभग
स्वर-लय पा विहगोंका विलाप,
सुमनोंमें वितरितकर विकास,
वह उठा पवन उर नाश लिये।

चेतना - सदनके सभी भाग
आशाकी छबिसे ज्योतितकर,
सन्देश मुक्तिका ले कविता
आई करुणाका पाश लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावाकी एक झलक

श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०

भारतवर्षसे जावा जानेके तीन प्रधान रास्ते हैं—एक कलकत्ता होकर, दूसरा बम्बई होकर और तीसरा मदरास होकर। मदरासवाला रास्ता सबसे सुगम है और बम्बईवाला सबसे लम्बा। मदरासे जावा पहुँचनेमें आठ दिन लगते हैं, कलकत्तेसे दस-ग्यारह दिन और बम्बईसे कम-से-कम पन्द्रह दिन। अधिकांश स्टीमर सिंगापुर होकर जाते हैं। माल ढोनेवाले स्टीमर सिंगापुर न जाकर सीधे जावा जाते हैं, और उनमें मुसाफिर भी जा सकते हैं; परन्तु मेल और पैसेंजर स्टीमर सभी सिंगापुर होकर जाते हैं। मदरासे जानेमें स्टीमर सीधा सिंगापुर जाकर वहाँसे बटेविया जाता है। कलकत्तेसे जानेमें रंगून, पेनांग और सिंगापुर होकर जाना पड़ता है। बम्बईसे जानेवाले कोलम्बो और सिंगापुर जाते हैं। हम लोगोंने बम्बईसे जाना तय किया। मेरे पिताके मित्र सेठ जगजीवन मूलजी बम्बईमें शक्करके मुख्य व्यापारी गिने जाते हैं। उन दिनों उनके स्टीमर जावा और बम्बईके बीच शक्करके आयात-निर्यातके लिए आया-जाया करते थे। वे मुख्यतया जापानी स्टीमर चार्टर (Charter) करते थे। उनके सुपुत्र जयन्तीलाल व्यापारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए जावा जा रहे थे। श्री मूलजीने मुझे भी साथ भेजनेके लिए मेरे पिताको लिखा। पिताजीने उनका यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और मुझे चीनीके कारखानोंका काम सीखने और निरीक्षण करनेके लिए भेजा। इसके सिवा बम्बईके प्रसिद्ध सालिसीटर श्री देवीदास देसाईके पुत्र—श्री मूलजीकी सुराबाया-शाखाके मैनेजर मि० कामतके सम्बन्धी—मि० एकनाथ नायक, उनकी पत्नी श्रीमती कामत और उनके श्वसुर भी जावा जा रहे थे। जापानी स्टीमर कम्पनी यामासिता किसन कैसाने हम लोगोंको जावा तक फर्स्ट और सेकेंड क्लास पास फ्री दिये। २२ दिसम्बरको हम लोगोंने प्रस्थान करना निश्चित किया।

- २ -

जाड़ेके दिन थे। प्रातःकाल जहाज़ खुलनेवाला था। हम सब छै बजे डॉकयार्ड (Dockyard) में पहुँच गये। सपत्नीक श्री जगजीवन मूलजी और उनके ज्येष्ठ भ्राता मानिकलाल मूलजी विदाई देने आये थे। सपत्नीक देवीदास देसाई, मेरे एक सम्बन्धी और एक मित्र भी आये थे। विदाईका दृश्य बड़ा करुण था। सात बजे स्टीमर खुला और 'पायलॉट' कुछ दूर पहुँचाने आया। कुछ देर बाद किनारेके लोग आँखसे ओझल हो गये। बम्बईकी विशाल अट्टालिकाएँ कुछ देर तक साथ देती रहीं, फिर वे भी विदा हुईं। आध घंटेके बाद चारों ओर जल-ही-जल दिखाई पड़ने लगा। स्टीमर सागरका वक्षःस्थल चीरता हुआ उत्तर दिशाकी ओर चलने लगा। स्टीमर भावनगर बन्दरगाहमें कार्य-विशेषके लिए जा रहा था। हवा बड़ी सर्द और तेज़ थी।

दूसरे दिन सुबह भावनगर पहुँचे। यहाँका बन्दरगाह बड़ा असुविधाजनक है। जहाज़ोंको तटसे दो मील दूर ठहरना पड़ता है। छोटी-छोटी नौकाओंमें किनारे तक जाना पड़ता है। श्री जगजीवन मूलजी राज्यके प्रतिष्ठित व्यापारियोंमें हैं, इसलिए राज्यकी ओरसे एक मोटर उनके पुत्रके लिए भेजी गई थी। उसमें बैठकर हम सबोंने दो दिन तक भावनगरकी खूब सैर की। भावनगर सुन्दर शहर है। राजाका क्रीड़ा-उपवन और 'बोरतालाब' नामक कृत्रिम झील देखने-योग्य हैं। दूसरे दिन शामको स्टीमर फिर चला। अब यात्रा दक्षिण दिशामें थी। यहाँसे जावा पहुँचने तक भूमिदेवीके दर्शन एक ही बार हुए। तीसरे दिन गोआ बन्दरगाह पार करनेपर जाड़ा एकदम कम हो गया। चौथे दिन कुमारी अन्तरीपके दर्शन हुए। नारियल, इलायची और सुपारीके वृक्षोंसे लदा हुआ वह भू-भाग ऐसा सुन्दर प्रतीत होता था, मानो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमाता अपना कर-कमल फैलाकर सबोंको आशीर्वाद दे रही है। उस दृश्यको देखकर सहज ही आँखें सजल हो गईं। कुछ देर बाद भारतमाताका वह अन्तिम चिह्न भी लुप्त हो गया। मँडराते हुए सामुद्रिक पक्षियोंसे मालूम हो गया कि स्टीमर सिंहलके निकटसे गुज़र रहा है। यहाँसे दस दिन सीधा रास्ता था। विषुवत् रेखा पार करते समय काफ़ी गर्मी मालूम हुई। कभी-कभी आस्ट्रेलियासे आनेवाले स्टीमर दिखाई पड़ते थे, अन्यथा सिवा नीलाम्बर और नील महासागरके साथी कोई नहीं था। दिनमें सूर्यदेव और रात्रिमें सोमदेव पारी-पारीसे स्टीमरकी रक्षा कर रहे थे। जापानी सहयात्री तथा स्टीमरके कर्मचारी सभी बहुत सज्जन थे, इसलिए यात्रा चैनसे कटी। जापानियोंमें यदि कोई दोष है, तो वह उनका अहंभाव। वे इसी बातकी चेष्टामें रहते हैं कि उनकी सर्वोच्चता विश्वविदित हो। कप्तानने अनेक समय यूरोपियनोंसे जापानियोंको सभ्यतर सिद्ध किया। ऐसा करनेमें उनका ज़्यादा कसूर नहीं। उनकी आकस्मिक समृद्धिने उन्हें गर्वोन्मत्त कर दिया है। वे यहूदियोंकी भाँति यही समझते हैं कि वे ही ईश्वरकी प्रिय सन्तान हैं, दूसरा कोई नहीं। जापान-सम्राटके जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें कप्तानने एक दावत दी और सबको निमन्त्रित किया। कर्मचारियोंकी बातचीतसे मालूम हुआ कि वे भारतको यदि आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, तो सिर्फ़ इसीलिए कि यह शाक्यमुनिकी जन्मभूमि है। आधुनिक भारतवासियोंके प्रति उनमें सम्मानकी अपेक्षा तिरस्कार ही अधिक है। निर्बलोंके लिए किसे प्रेम हो सकता है?

- ३ -

चौहदवें दिन सुबह जब नींद खुली, तो सम्मुख बड़ा ही अद्भुत दृश्य था। स्टीमर सुमात्रा और जावाको अलग करनेवाली छोटी खाड़ीके पास पहुँच चुका था। इसी खाड़ीमें पूर्वी द्वीप-समूहका उग्रतम ज्वालामुखी क्रेकेटुआ एक टापूपर विराजमान है। मालूम पड़ता है कि काकातुआ पक्षीका उद्भव-स्थान यही टापू है। सन् १८६४ में इसका ऐसा प्रचण्ड विस्फोट हुआ था कि टापूका बड़ा हिस्सा उड़ गया था। बार-बार विस्फोट होनेपर भी प्रकृतिने इस उग्र मुनिको हरिताम्बरसे ढँक दिया है। धूम्र-विसर्जन बड़ी तेज़ीसे हो रहा था। सुमात्रा और जावा दोनोंके वनाच्छादित कूल दिखाई पड़ते थे। जलपक्षी कलरव करते हुए जलविहार कर रहे थे। छोटी, परन्तु तेज़ नौकाएँ इधर-उधर दौड़ रही थीं। छोटे द्वीप-समूह समुद्रके वक्षःस्थलमें नगीनोंकी तरह जड़े थे। दृश्य बड़ा ही मनोरम था। अधिकांश स्टीमर बेटेवियामें ठहरते हैं। हम लोग सीधे सुराबाया गये। रातमें भीषण वृष्टिने इस बातकी सूचना दी कि जावामें इस समय वर्षाऋतु है। सोलहवें दिन सुबह ठीक पाँच बजे स्टीमर सुराबायाके बन्दरगाहमें आ गया। इस बन्दरगाहको वहाँवाले 'तानजोन पेरा' कहते हैं। इसकी रक्षा सामने खड़ा हुआ 'मदूरा-द्वीप' करता है। मदूरा छोटा टापू है। शायद कच्छके बराबर हो; परन्तु भारतवर्षके कच्छकी लम्बाई-चौड़ाईकी अपेक्षा अधिक है। मदूरामें इसका उल्टा है। शासनके लिए यह जावाका एक भाग माना जाता है। सुराबायाका बन्दर छोटा, पर अत्यन्त सुविधाजनक है। बड़े-बड़े स्टीमर यहाँ ठहर सकते हैं। मदूरा-द्वीप समुद्रकी उच्छृंखलतासे बन्दरकी रक्षा करता है। बन्दरके कर्मचारी स्टीमरपर आये और अपना कार्यक्रम पूरा किया। यहाँके सरकारी कर्मचारी बड़े विनयी, मधुरभाषी और सज्जन होते हैं। यात्रियोंको व्यर्थ कष्ट नहीं देते। यहाँ बाहरसे आनेवालोंको डेढ़ सौ रुपये जमानतके देने पड़ते हैं। यदि छै महीनेमें वापस लौट गये, तो रुपये मिल जायँगे, नहीं तो ज़ब्त समझिये। बाहरवालोंके आक्रमणसे जावाकी रक्षा करनेके लिए यह नियम बनाया गया है। स्टीमरसे उतरते ही मुझे यहाँके डच लोगोंकी पोशाकने आकर्षित किया। बन्द कालरके सफेद कोट और सफेद पतलून—यही यहाँकी काम करनेके समयकी पोशाक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- ४ -

किनारे पहुँचनेपर जिस चीज़ने मुझे ख़ास तौरपर प्रभावित किया, वह है यहाँके लोगोंकी शान्ति और नियमप्रियता। कहीं मैंने हो-हल्ला नहीं सुना। दूकानोंपर खरीद-बिक्री भी शान्तिपूर्वक हो रही थी। सर्वत्र शान्तिका राज्य था। इसकी तुलना भारतके नगरोंसे कीजिए, जहाँ कोलाहलके बिना कोई काम नहीं हो सकता। जावामें मैं लगभग आठ महीने रहा; पर किसी दिन वहाँवालोंको लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। गाली-गलौजका तो नामोनिशान भी नहीं। यदि बहुत नाराज़ हुए, तो यही कहेंगे कि 'कपाला बातु' (तुम्हारा दिमाग़ पत्थरका है)। ज़रा इसकी तुलना भारतीय गालियोंसे कीजिए!

इसका यह अर्थ नहीं है कि जावावाले अपमानको चुपचाप सहन कर लेते हैं। उनको छेड़ना मामूली बात नहीं। जिसे जल्दी गुस्सा नहीं आता, उसे जब आता है, तब सम्हाल नहीं सकता। जब जावावाले बहुत अपमानित होते हैं, तब उनका क्रोध ज्वालामुखीकी भाँति भभक उठता है। वे तलवार लेकर शत्रुकी खोजमें निकल पड़ते हैं और रास्तेमें जो पड़ता है, उसीका सफाया कर देते हैं, और ऐसा करते-करते स्वयं भी प्राण खो बैठते हैं। यह सब होनेपर भी जावा-निवासी छोटे-बड़े सभी शान्त और विनयी होते हैं। मधुरता उनकी रसनासे सदा टपकती रहती है। दास-दासियाँ तक बड़े विनम्र हैं। वे गाली कभी सहन नहीं करेंगे। यदि गाली दीजिए, तो काम छोड़कर, तनख़्वाहकी परवा न करके, चले जायँगे। वे चाहते हैं कि उनसे विनयपूर्वक काम लिया जाय, फिर तो वे मालिकके लिए जान देंगे। इतना कहना पड़ेगा कि अकसर उनकी शान्ति-प्रियता भीरुतामें बदल जाती है। हरएक विदेशी और पुलिसको वे 'रवान बुसार' (श्रीमान् हुज़ूर) कहकर सम्बोधन करेंगे।

दूसरी वस्तु जो आकर्षित करती है, वह है डच शासकोंका व्यवहार। डच लोग यह समझते हैं कि जावा तथा पूर्वी द्वीप-समूहके डच द्वीपोंकी बदौलत हॉलैण्डकी समृद्धि है। हॉलैण्ड यूरोपमें बहुत छोटा देश है। मुश्किलसे साठ लाखकी आबादी होगी। उसकी समृद्धि उसके उपनिवेशोंसे है। इसीलिए सभी डच लोगोंको यह सिखाया जाता है कि उनका प्रथम कर्तव्य उपनिवेशोंसे प्रेम करना है। जावामें डच लोग यह समझते हैं कि इसकी श्रीवृद्धि करना उनका परम कर्तव्य है। बहुतसे डच जावामें बस गये हैं। ये जावा-प्रवासी डच मलाया भाषासे परिचित हैं। यह सरकारी क़ायदा है कि जावासे आनेवाले डच मलाया भाषा सीखनेको बाध्य किये जाते हैं। न यह भी नहीं कि टूटी-फूटी मलाया, वरन् शुद्ध भाषाकी ओर ज़ोर दिया जाता है। यह सब इसलिए कि जावा-निवासियोंसे उनका सम्पर्क बना रहे। किसी किसी देशकी भाषा जाने वहाँवालोंके भाव और हृदय पहचानना कठिन है—कठिन ही क्यों, एकदम असम्भव ही समझना चाहिए। पर कितने अंगरेज़ भारत आने-हिन्दी सीखते हैं?

जावामें यूरोपियनोंके लिए अलग स्कूल नहीं हैं। डच बालक और जावानी बालक साथ ही पढ़ते हैं। सड़कोंपर जावानी बालक डच बालकोंके गलेमें हाथ डाले प्रसन्नतासे घूमते नज़र आयँगे। भारतमें ऐसे दृश्य शायद ही देखनेको मिले। जावामें यूरोपियन होटल, केबेरेट (नाच-घर), स्नानगृह किसी भी आमोद-प्रमोदके स्थानपर चले जाइये, रोक-टोक नहीं। बस, यूरोपियन ड्रेस पहनकर भी जा सकते हैं। डच सरकार जावावासियोंकी आवश्यकताओंका बहुत ख़याल रखती है। ट्रेनों और थियेटरोंमें जावा-निवासी 'भूमिपुत्रों'के लिए रियायती भाड़ा है, जिसका लाभ और कोई जातिवाले नहीं ले सकते। इन जगहोंपर लिखा रहेगा—'बुमि भूमिपुत्रा' (भूमिपुत्रोंके लिए)। चावल यहाँका प्रधान खाद्य-वस्तु है। उसके आयातपर कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

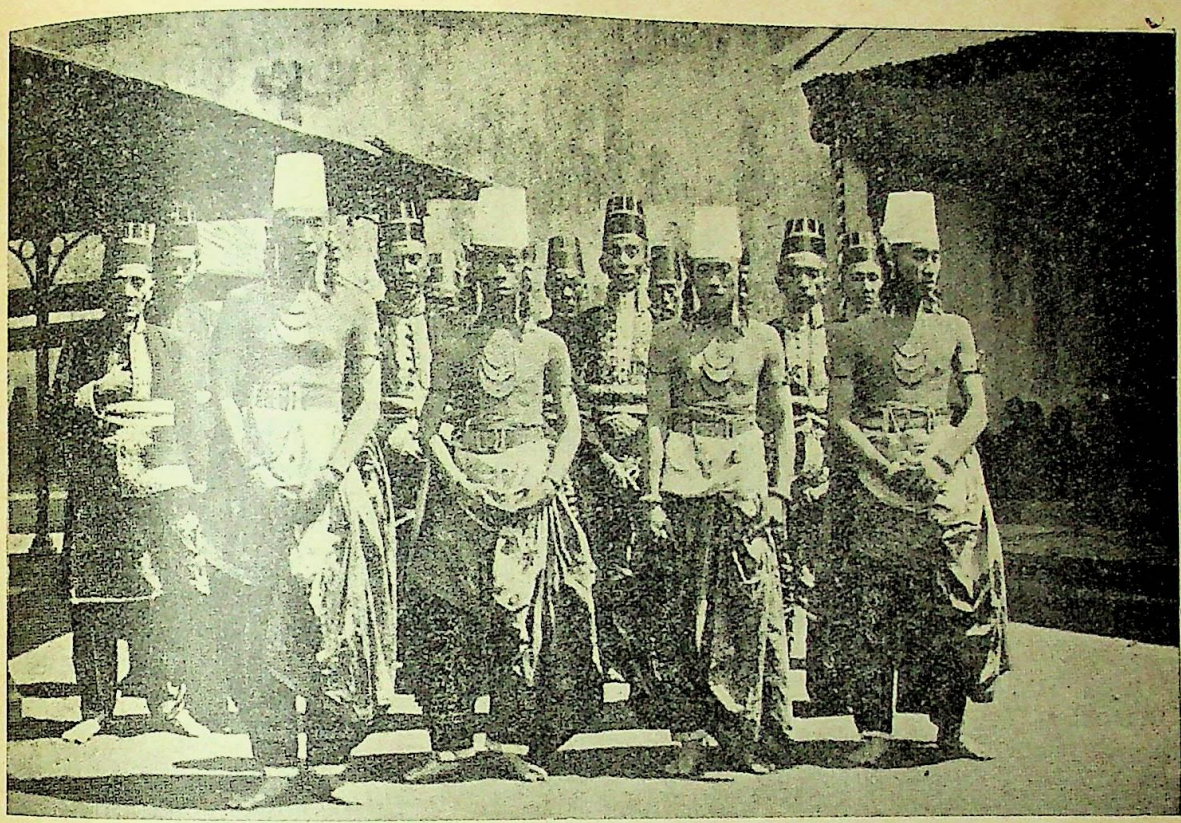

ऊपर—जावामें विवाहोत्सवके समय सुसज्जित वरगण
नीचे—डच-कर्मचारियोंके विवाहोत्सवपर जावाकी राजकुमारियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

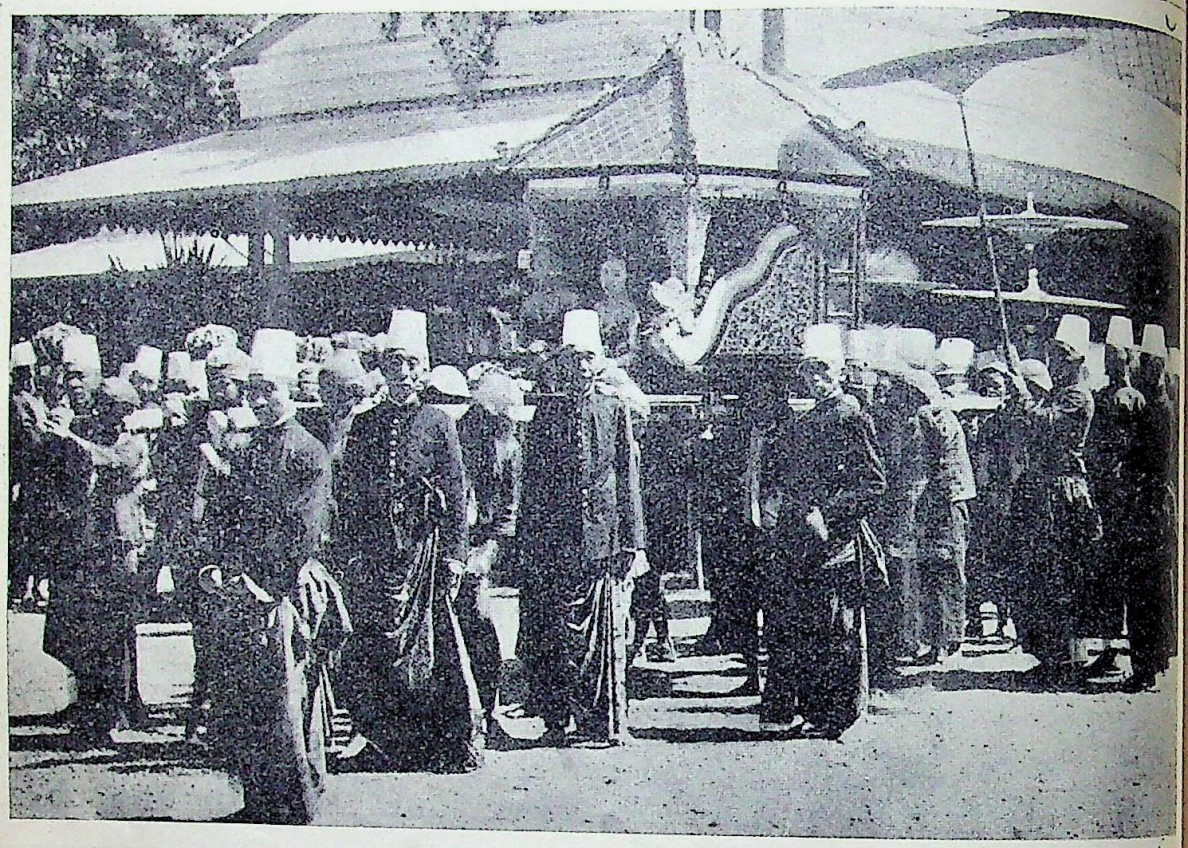

ऊपर—डच-राजकर्मचारियोंसे मुलाकात करनेके लिए जावाकी एक राजकुमारी तामजानपर जा रही है
नीचे—उत्सवपर जावाके सुल्तान और डच-अफसरके सामने राजकुमारियोंका नृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

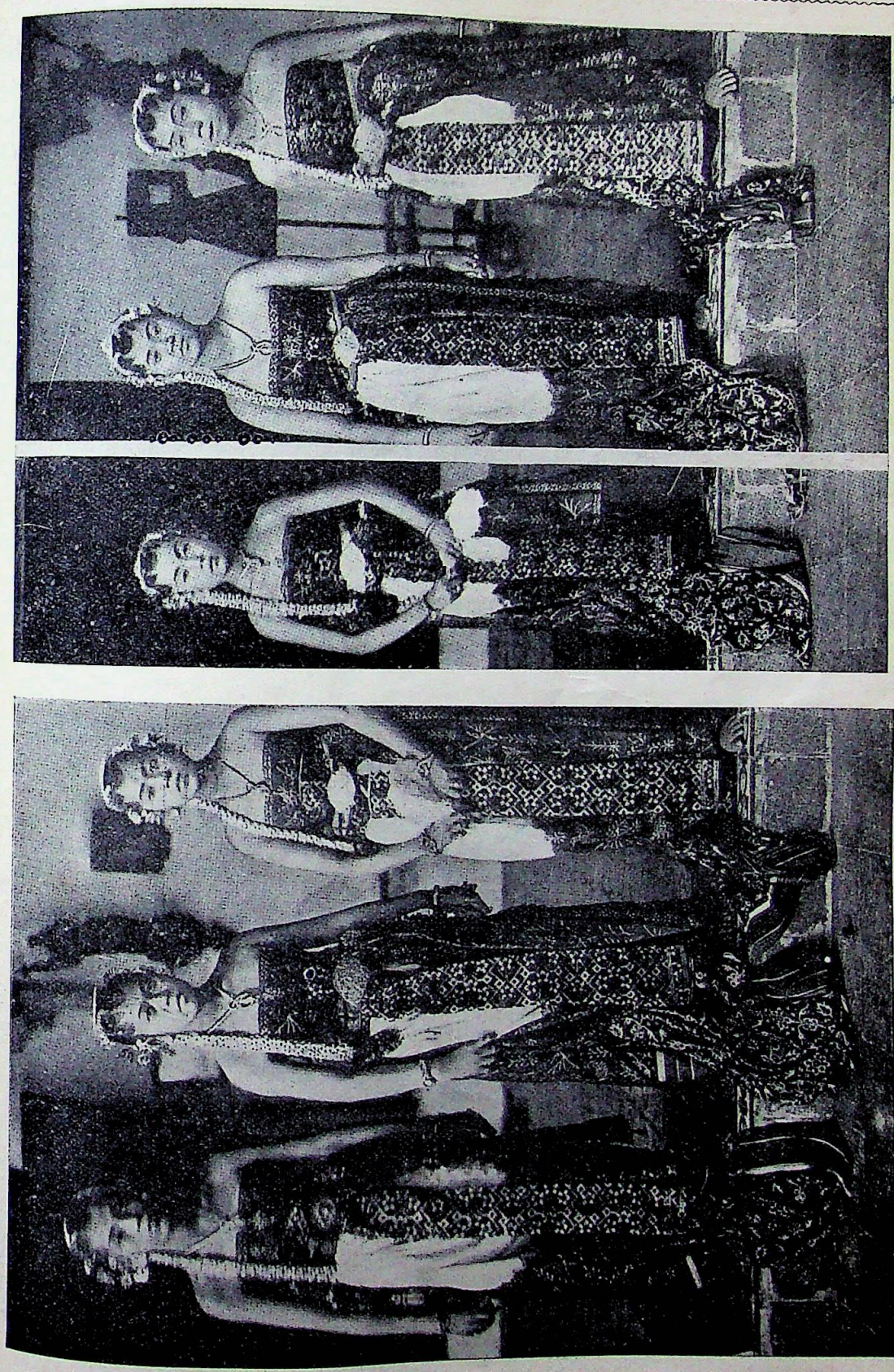

जावाके सुरकर्ता के राजा सुसुहुनानकी युवती कन्याएँ अपने देशकी चित्र-विचित्र पोशाकमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावाके प्राचीन हिन्दुओंकी मौजूदा सन्तान, जो अपना धर्म बचानेके लिए बालिद्वीप जा बसे थे।
ऊपर—बालिद्वीपकी नर्तकी नीचे—बालिद्वीपकी स्त्रियां धान कूट रही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

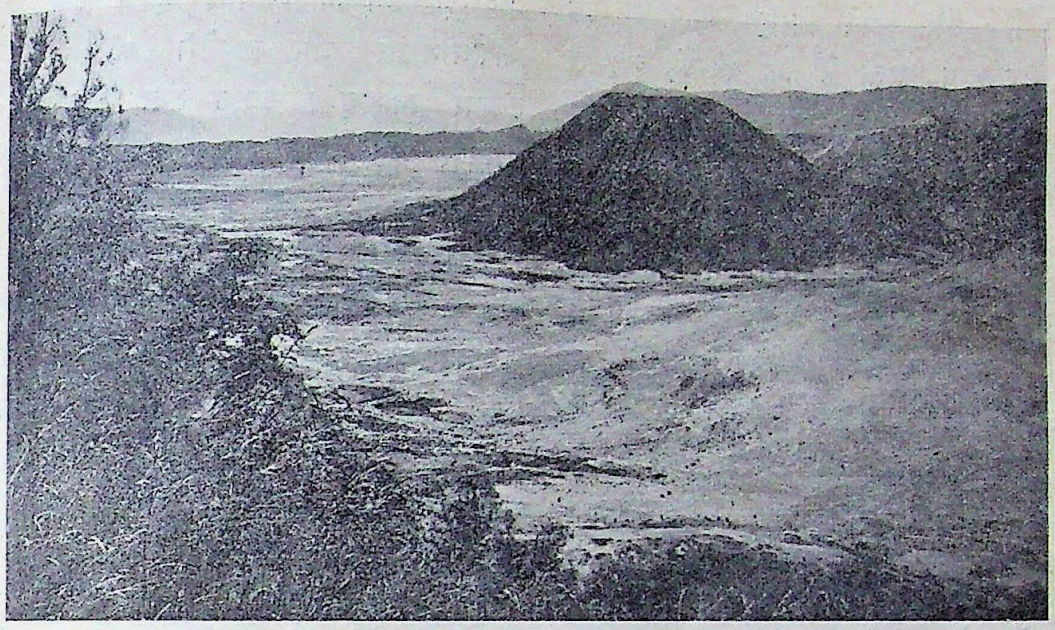

जावाका एक आश्चर्य—बालुकासागर
['मुंगल पास' से संसारके विशालतम शान्त अग्नि-पर्वतका बालुकामय मुख]

नहीं, क्योंकि जावामें काफी चावल नहीं होता। आबादी घनी है और ज़मीन कम ; पर बाहरी रुकावट न होनेसे चावल बहुत सस्ता है। पेट्रोलके सस्तेपनसे मोटरकी सवारी भी बहुत सस्ती है।

यह सब होनेपर भी यह कहना पड़ेगा कि जावा-निवासियोंको कोई भी राजकीय हक़ प्राप्त नहीं। साधारण सभाके लिए भी आज्ञा लेनी पड़ती है, चाहे वह धार्मिक और सामाजिक ही क्यों न हो। कहीं-कहीं सम्भ्रान्त जावा-निवासियोंको ज़िलोंका अधिकारी नियुक्त किया गया है, जो 'भूपति' कहे जाते हैं। ऐसा इसीलिए किया गया है कि पुराने राजवंशियोंमें असन्तोष न फैले। किसी विद्वानने कहा है कि डच लोग जावा-निवासियोंके पेटका बड़ा ख़याल रखते हैं ; मगर उनके मस्तिष्कका नहीं। इस कथनमें गूढ़ तथ्य है।

- ५ -

जावाकी राजधानी तथा मुख्य नगर बटेविया है ; परन्तु व्यापारके केन्द्र सुराबाया और समारांग हैं। बटेविया और सुराबायाकी जनसंख्या दोसे तीन लाख तक होगी। समारांग, बांडूंग, सुखभूमि, जोकजा और सोलोमें एक लाखसे अधिककी आबादी होगी। समस्त जावाकी आबादी तीन करोड़ तेरह लाखसे कुछ ज़्यादा होगी। यूरोपियनोंकी आबादी दस लाखके लगभग है। बटेविया और सुराबायामें बीस-बीस हज़ार यूरोपियन होंगे। चीनी लोगोंकी आबादी तीस लाख है। भारतीयोंकी संख्या दस हज़ारके क़रीब है, जिनमें मुख्यतया सिन्धी तथा गुजराती व्यापारी हैं। कहीं-कहीं बंगाली मुसलमान दर्ज़ीका काम करते हुए देखे जाते हैं। मदरासी चूलिया मुसलमान व्यापारी थोड़ी संख्यामें सर्वत्र मिलेंगे। यहाँ डेढ़ सौ वर्षसे कुछ सूरती मुसलमान भी बसे हुए हैं। यहाँका आन्तरिक व्यापार चीनियोंके हाथमें है। वे बड़े समृद्धिशाली हैं। उनके जैसी परिश्रमी जाति शायद ही कहीं मिले। जूते सीनेवालेसे लेकर करोड़पति तक चीनी मिलेंगे। उनकी अट्टालिकाएँ छोटे-छोटे क़स्बोंमें भी मिलेंगी। यह उनकी संघ-शक्तिका प्रताप है। सुराबायाकी एक चीनी महिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोड़पति हैं और अपने विस्तृत व्यापारका इस चतुरतासे इन्तज़ाम करती हैं कि बड़े-बड़े व्यापारी चकित हो जाते हैं। चीनी महिलाएँ पाश्चात्य ढंगका अनुकरण करना अपना कर्तव्य समझती हैं। जावा-निवासी और चीनी आपसमें प्रेम-भाव नहीं रखते। इसका कारण सुनकर आश्चर्य होता है; वह यह कि चीनी सुअरका मांस खाते हैं! चीनियोंको जावामें रहते क़रीब दो सौ वर्ष हुए, परन्तु उन्होंने राजकीय सत्ता कभी प्राप्त नहीं की। जापानी व्यापारी भी जावामें हैं, पर वे चीनियोंका मुक़ाबला नहीं कर सकते।

बटेविया जावाका प्रधान नगर और राजधानी है। गवर्नर-जेनरल 'बुइटेनजोर्ग' में रहते हैं, जो बटेवियासे कुछ दूर है। बटेवियाके दो भाग हैं—एक तो पुराना बटेविया, जो केवल वाणिज्य-कार्यके लिए है और दूसरा वेल्टरफेडन। पुराने बटेवियाकी गलियाँ तंग और मकान प्राचीन पद्धतिके हैं। वेल्टर-फेडन नवीनतम पद्धतिके अनुसार बसाया गया है। चौड़े रास्ते, सुन्दर मकान और वृक्षराजिमंडित वीथिका मनको मोहती हैं। यहाँ यूरोपियनोंका निवास है और बड़े-बड़े होटल हैं। इस भागका मुख्य नाम नुरडविक है। पासारबासमें चीनी लोग आबाद हैं। गवर्नर-जेनरलका निवास-स्थान बुइटेनजोर्गमें है, जिसका अर्थ है जंजाल-रहित। गर्मीमें गवर्नर प्रियांगर पहाड़ीमें बसे हुए चिपानस (Chipanas) नामक स्थानमें रहते हैं। बुइटेनजोर्गमें भी बड़े-बड़े होटल हैं, जिनमें ख़ास होटेल बेलीव्यू (Hotel Bellevue) है। इस शब्दका अर्थ है सुन्दर दृश्य। यहाँसे जावाके नील पर्वत-समूहोंका मनोरम दृश्य दीख पड़ता है। गवर्नरका प्रासाद एक विशाल उद्यानके, जिसका नाम बोटेनिकल गार्डन है, एक भागमें बना है, जो एक कमनीय इन्दीवरमंडित सरोवरके निकट है। यह बोटेनिकल गार्डन जगत्प्रसिद्ध है। सुनते हैं कि इतना बड़ा और विविध वृक्ष-लता-गुल्मशोभित गार्डन अन्यत्र कहीं नहीं है। इस बागको सन् १८१७ में प्रो० रेइनवार्डने बनाया था। इसमें एक म्यूजियम, औषधि-भांडार और लायब्रेरी भी है। मेडेन ढालूपर बना हुआ उद्यान तथा चिकूमिऊ नामक स्थानपर बना हुआ उपवन इसके अन्तर्गत ही माने जाते हैं। बोटेनिकल गार्डनको देखकर जावाकी वनश्रीका ख़याल हो आता है। केनारी नामक वृक्ष तथा उससे लिपटी हुई वन-ज्योत्स्ना नामक लता सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करती है। तालवृक्षकी जितनी जातियाँ यहाँ दिखाई दीं, उतनी अन्यत्र शायद ही मिलें। सैकड़ों प्रकारके वृक्ष, लताएँ तथा पौधे यहाँ मौजूद हैं। उनमें से दो वृक्षोंका उल्लेख असंगत न होगा। एक Traveller's tree है, जिसे संस्कृतमें शायद पथिकप्राण कहते हैं। उसमें छुरी लगाते ही मधुर पेयपदार्थ निकलता है। दूसरा Upas tree (विषवृक्ष) है। उसके विषयमें कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। जान पड़ता है कि वे अधिकांशमें मिथ्या हैं। सुनते हैं, विषवृक्षके नीचे सोनेसे आदमी मर जाता है; लेकिन अभी तक किसीको मरते हुए नहीं देखा गया।

- ६ -

जावाको यदि प्रकृतिकी लीलाभूमि कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। देश-भरमें चारों ओर हरियाली और नदियाँ दिखाई पड़ती हैं; और रमणीयतामें तो जावाके प्रियांगर भू-भागकी तुलना शायद ही कोई करे। इस भू-भागको देखकर एक इटैलियन विद्वानने कहा है कि मानो यहाँ स्वर्गका टुकड़ा गिर पड़ा है। इस भागमें 'तेलाग वर्ण' (विविध वर्ण) नामक मनोहर सरोवर है। जावामें यह कहावत है कि ज्योत्स्नाका उद्भव-स्थान यही है और अब भी वह यहाँ सोती है। सुखभूमि नामक जावाका उटकमंड इसी भागमें है। यहाँसे पलाबुहान रातु (राजनौकाश्रय-स्थान) दिखाई देता है, जहाँ समुद्रकी शोभा अपनी निराली छटा लिये दीख पड़ती है। कोटबातु नामक पायायारन-साम्राज्यकी भग्न राजधानी सन्निकट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांडुंग भी मनोहर नगर है। यहाँ निर्झरोंका बाहुल्य है। राजमंडलके निकट चुरुक हालीमून (Churooq Halimoon) नामक जावाका सबसे बड़ा जलप्रपात है। एक लेखकके कथनानुसार, जलधारा बादलसे गिरती हुई निम्न-स्थित कुंडमें विलीन हो जाती है। चुकांग रावण (Chukang Raon) नामक एक दूसरा प्रपात गर्जनाका गृह समझा जाता है। गारुत और चियालंका भी दर्शनीय हैं। ये छोटे-छोटे शहर बड़े ही आकर्षक हैं। लेलेज़ (Lele's) नामक सरोवरके द्वीप-समूहोंमें स्थित स्थान दर्शनीय है। सुनते हैं, यहाँ पुण्यात्माओंकी समाधियाँ हैं। ये पुण्यात्माएँ कौन हैं, इसका उत्तर इतिहास या दन्तकथा द्वारा भी नहीं मिलता। इसे जावाकी तपोभूमि भी कहते हैं। गारुतके निकट सितू बागंदित (Situ Bagandit) नामक दूसरा नयनाभिराम झील है। इस झीलके विषयमें एक बड़ी करुण कहानी है। यह कहानी कवि-कल्पनाओंको सजीव बनाये रखती है। वीरसुत नामक एक राजाने एक नया प्रासाद बनवाना चाहा, इसलिए वास्तुविधि-प्रारम्भके दिन बड़ा उत्सव किया गया। उत्सवमें गायकों और सुन्दर नर्तकियोंको निमन्त्रण दिया गया। उस समय वास्तुस्तम्भरोपणके लिए एक गड्ढा खोदा गया। उन दिनों बन्दी या अपराधीकी बलि वास्तुदेवको दी जाती थी। लोगोंने समझा, वीरसुत भी यही करने जा रहा है। जब 'इंदिता' नामक चेरीबनकी प्रसिद्ध लावण्यवती ललना राजाका अभिवादन करने आगे बढ़ी, तो वीरसुतने सैनिकोंसे उसे पकड़वाकर उसी गड्ढेमें डलवा दिया। एक पत्थर उस चीत्कार करती हुई असहाय ललनाके कोमल कलेवरपर रखा गया। सभी भयभीत और चकित होकर देखते रहे। इतनेमें एक भयंकर आवाज़ हुई और वह पत्थर उड़कर वीरसुतकी देहपर जा गिरा। राजा वहीं मर गया। ज़मीनसे पानीकी धारा बह चली। राजाके सैनिक, सभासद तथा दर्शक सब उसीमें डूब गये। उस स्थानपर सुन्दर सरोवर बन गया। जिस स्थानपर इंदिताकी मृत्यु हुई, वहाँ इन्दीवर प्रकट हुआ। एक दूसरा सुन्दर झील 'बांयु बीरु' है, जो पूर्वी जावामें है। पूर्वी जावाके मनोरम स्थानोंमें सर्वप्रथम स्थान जावाके दार्जिलिंग तुषारीका है। उसके निकट पुष्पो नामक स्थान है, जिसकी तुलना हम कुरसियांगसे कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेगन और ट्रेटस हैं, जहाँ एक सुन्दर प्रपात शान्त वातावरणको भंग करता हुआ अर्जुन पर्वतको चिरकालसे अपना संगीत सुना रहा है। इनके सिवा और भी कितने ही सुरम्य स्थान और मनोहर सरोवर हैं, जिनका उल्लेख स्थानाभावसे नहीं किया जा सकता।

'सुमेरु' पर्वतके शिखरका दृश्य

- ७ -

जावा ज्वालामुखियोंका देश है। ये यहाँकी बढ़ती हुई जनसंख्याको काबूमें रखते हैं और ज़मीनको उर्वरा बनाते हैं। कुल २०९ अग्नि-पर्वत हैं। इस समय तेरह जागृतावस्थामें हैं। उनमें मेरापी प्रसिद्ध है; पर ब्रोमो सबसे अधिक भयंकर है। यह जावाका पवित्र पर्वत माना जाता है। कहते हैं कि यह जावाका रक्षक भी है। सर्वोत्तुंग सुमेरु है। सुमेरु और अर्जुन दोनों ही पहाड़ ज्वालामुखी हैं। देशमें बराबर भूकम्प होता रहता है, जिससे बड़ा नुकसान होता है। सैकड़ों आदमी मर जाते हैं और अनेक शहर भूगर्भमें विलीन हो जाते हैं। यहाँ कहावत है कि जावा एक कच्छपकी पीठपर है, और वह कच्छप बराबर समुद्रमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डूबना चाहता है; लेकिन फिर उसे दया आ जाती है। एक साथ करोड़ों मनुष्य व्यर्थमें मर जायँगे, यह सोचकर वह रुक जाता है। इसी कारण भूकम्प होता है। जावामें जिस दिन मनुष्य रहना छोड़ देंगे, वह समुद्रमें डूब जायगा।

इन अग्नि-पर्वतोंसे यह अनुमान होता है कि जावाकी उत्पत्ति इन्हीं पहाड़ों द्वारा हुई है। जावाके चारों ओर समुद्र बहुत गहरा है—किनारेपर भी छिछला नहीं है। दक्षिणी किनारेपर तो अत्यधिक गहरा है। बेटेविया, सुराबाया, समारांग, प्रमोलिंगो इत्यादि सभी मुख्य बन्दर उत्तरी किनारेपर हैं। केवल चिलाचाप नामक एक छोटा बन्दर दक्षिणमें स्थित है, और 'नुसा कांबंगान' नामक एक छोटा टापू उसके रक्षकका काम करता है। जनश्रुति है कि जावा-साहित्यमें सुप्रसिद्ध सुन्दर पुष्प 'विजयकुसुम' इसी टापूमें मिलता है।

जावा कृषि-प्रधान देश है। उर्बरतामें इसकी भूमि अपना सानी नहीं रखती। प्राचीन समयसे जावाके मसाले प्रसिद्ध हैं। आधुनिक समयमें भी शक्कर-व्यवसायमें जावाका स्थान विश्वमें दूसरा था। सिर्फ कहनेके लिए ही इसका स्थान ब्रेज़िलके बाद दूसरा है। कुनैनके लिए तो यह सर्वोत्तम स्थान है। चायके लिए जावाका स्थान दुनियामें तीसरा है। रबरके लिए भी यह भूमि अपना एक खासा स्थान रखती है। जावाने मलाया प्रायद्वीपके रबर-उद्योगको नष्ट कर दिया है। डच शासकोंकी नीति उदार है। चावल यहाँका मुख्य खाद्य है, इसलिए सरकारने यह नियम बना रखा है कि जिसके पास जितनी ज़मीन है, उसे उसके एकतिहाई भागमें धान ज़रूर बोना पड़ेगा। दोतिहाई भागमें वह चाहे जो चीज़ भी बो सकता है—गन्ना, कहवा, चाय इत्यादि। यह क़ानून इसलिए है कि कहीं लोग और चीज़ोंका अच्छा भाव देखकर धान बोना न छोड़ दें। दूसरे देशवाले यहाँ आकर ज़मीन मोल न ले लें और देशवासियोंको निर्धन न कर दें, इसलिए एक क़ानून यह भी है कि कोई अन्यदेशीय ज़मीन ख़रीद नहीं सकता और कोई ऐसा काम नहीं कर सकता, जिससे जावा-निवासी ज़मीन बेचनेके लिए वाध्य हो। पट्टेपर ज़मीन मिल सकती है; पर वह भी पचीस वर्षके लिए। उसके बाद यदि रखना चाहे, तो फिर उसे दूसरा पट्टा लिखवाना पड़ेगा। डच लोगोंने जावामें वैज्ञानिक कृषि-पद्धति द्वारा जितना फायदा पहुँचाया है, उतना शायद ही किसी और यूरोपियन जातिने अपने उपनिवेशोंको पहुँचाया हो। इसके लिए डच लोगोंकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। यह हो सकता है कि उन्होंने यह सब-कुछ अपनी स्वार्थ-भावनाओंसे ही किया हो; पर उनका परिश्रम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार प्रशंसनीय है।

- ८ -

जावा-निवासी लम्बे नहीं होते। उनका बदन गठीला और चाल मनोहर होती है। उनका साधारण वर्ण श्याम है; परन्तु उच्च जातियोंमें साँवला और गोरा रंग भी देखनेको मिलता है। चम्पक वर्णको यहाँके कविगण 'लंसत' नामक नारंगीकी उपमा देते हैं। उनकी मुखाकृति कोमल और बुद्धि-प्रदर्शक होती है। मुख्य पहनावा लुंगी है, जिसको यहाँ सारोंग कहते हैं। स्त्री-पुरुष सभी लुंगी पहनते हैं। रेशमी कपड़ोंसे उनको बड़ा शौक़ है। पुरुषोंकी लुंगी सादी और स्त्रियोंकी बेल-बूटे कढ़ी हुई मिलती है। ललनाएँ लुंगी और चोली पहनती हैं। पुरुष लुंगी और कोट-कमीज पहनते हैं। स्त्रियाँ सिर खुला रखती हैं और वेणीमें भाँति-भाँतिके फूल बाँधती हैं। पुरुष क्रिस (Kris) नामक कटार बराबर धारण किये रहते हैं। सिरपर वे एक प्रकारका रूमाल, जो चित्र-विचित्र होता है, बाँधते हैं।

प्राचीन समयमें यहाँका धर्म हिन्दू था। शिवकी उपासना प्रचलित थी। बौद्धधर्म भी यहाँ आया; पर उसका क्षेत्र राज-दरबार तक रहा। जनसाधारणमें उसका प्रचार नहीं हुआ। शिव और शक्ति ही मुख्य देव और देवी थे। रामायण और महाभारत यहाँ बहुत प्रचलित थे और हैं, पर सीताराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और राधाकृष्णके मन्दिर यहाँ नहीं मिलते। रामसे कृष्ण अधिक प्रिय हैं। मुसलमान होनेपर भी जावावाले पूरी रामायण कह देंगे। महाभारतके सभी पात्रोंसे वे परिचित हैं। यहाँके हिन्दू-इतिहाससे वे पूर्णतया परिचित हैं। एक समय मैं मोजोकर्तो जा रहा था। कामा नामक मेरी पाचिकाने पूछा—"आप कहाँ जा रहे हैं?" मैंने कहा—"मोजोकर्तो।" उसने यह उत्तर दिया—"हाँ, आप हिन्दुओंको मोजोकर्तो अवश्य देखना चाहिए। प्राचीन समयमें वह हिन्दू-जावाकी राजधानी थी।" मैं उसका इतिहास-ज्ञान देखकर चकित हो गया।

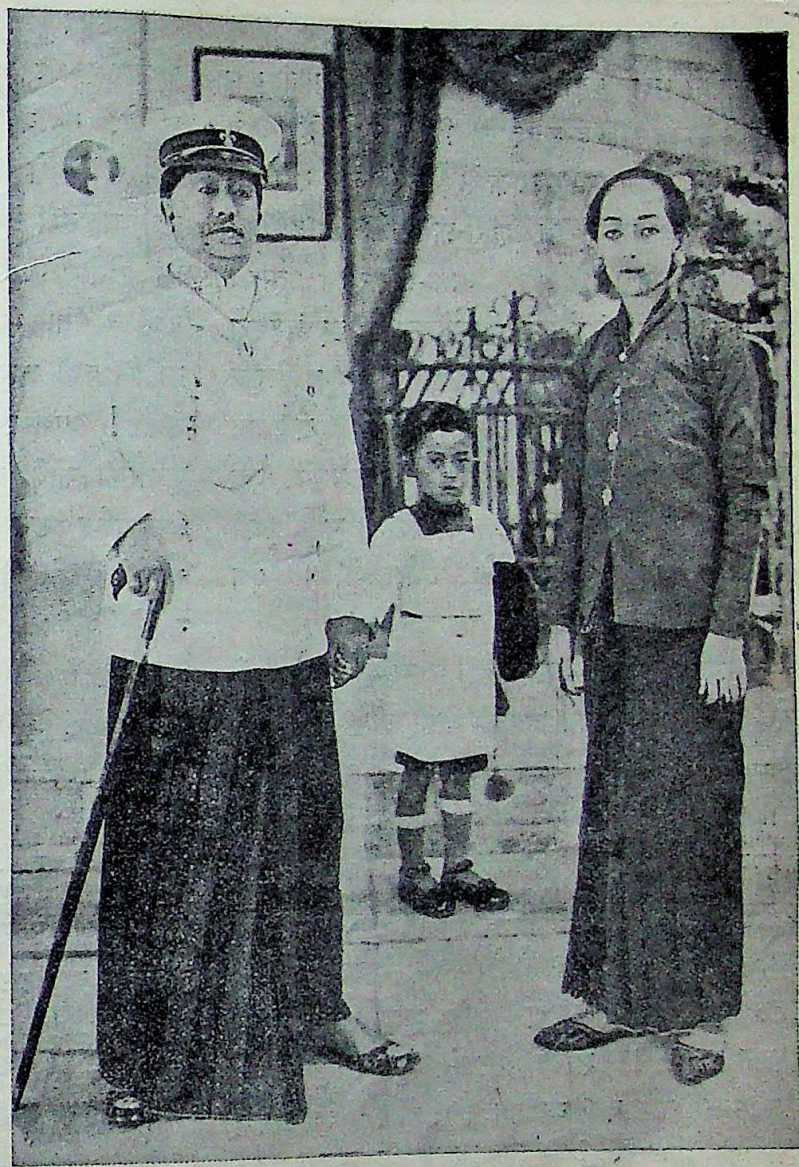

जावा-शूरकर्ताके राजा सुसुहूनान और उनकी पटरानी

सत्रहवीं शताब्दीमें जावाने इस्लाम-धर्मकी दीक्षा ली। जावाके अन्तिम हिन्दू-सम्राटने अपनी एक रानीको निकाल दिया था। उसके पुत्रने वैर लेनेके लिए इस्लाम स्वीकार किया। उस समय अरब व्यापारी जावामें आते-जाते थे। उन्होंने रादन पथ (त्यक्ता रानीके पुत्र) को नवीन धर्मकी दीक्षा दी। उसने मोजोकर्तो छलसे जीत लिया और मध्योपहित-साम्राज्य नष्ट कर डाला। धर्मप्राण हिन्दू बालीद्वीप चले गये। अब भी तुषारी और प्रियांगरके पहाड़ोंमें हिन्दुओंकी आबादी है; पर जनसाधारणमें इस्लाम प्रचलित है। मुसलमान होनेपर भी जावा-निवासी कट्टर नहीं होते और न वे अन्य धर्मोंसे द्वेष ही करते हैं। उन्होंने न तो प्राचीन हिन्दू-मन्दिर तोड़े और न मूर्तियाँ ही खंडित कीं। अनेक बार देखा गया है कि वे विधर्मी हिन्दू-मूर्तियोंके समक्ष धूप-दीप जलाते हैं और उनकी रखवाली भी करते हैं।

जावावाले मुसलमान हैं, पर उनकी संस्कृति हिन्दू है और रहेगी। उनकी बाहरी चाल-ढाल इस्लामी है, पर आत्मा हिन्दू है। यदि सुन्नत कराने और शव गाड़नेसे कोई मुसलमान कहा जाय, तो वे इतने ही कामोंके लिए मुसलमान हैं। सभी जावा-निवासी हिन्दू-सभ्यता और इतिहासको अपने गौरवकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु समझते हैं। अब भी उनका साहित्य पौराणिक कहानियोंसे भरा पड़ा है। साहित्यकी सामग्री और नाटकके पात्र हिन्दू-शास्त्रोंसे लिये जाते हैं। वे फ़ारसकी बुलबुल और साक़ीके लिए जान नहीं देते और न लैला-मजनूँ या शीरीं-फ़रहादके विरह और यादमें रोते हैं। सभी जावा-निवासी आत्माकी अमरताको मानते हैं और पुनर्जन्ममें उनका दृढ़ विश्वास है। उनके नाम अब तक हिन्दू हैं और शुद्ध संस्कृत भाषाके—जैसे, सुधन, सुतीक्ष्ण, पद्मसम्भव, पद्मविजय, सुशील, अश्वत्थामा इत्यादि। पेसुरुआनमें एक होटलका नाम मैंने देखा 'होटल वीरप्रवर'। सुराबायाकी एक प्रधान सड़कका नाम है 'धर्मराजपुत्र'। एक उद्यान-स्थित मूर्तिका नाम है 'जगदालोक'।

जावाकी भाषा अलग है। उसकी दो शाखाएँ पूर्व जावा और पश्चिम जावामें बोली जाती हैं। जो स्थान भारतमें हिन्दीको प्राप्त है, वह पूर्वी द्वीप-समूहोंमें मलाया भाषाको मिलता है। इन भाषाओंमें संस्कृतका बाहुल्य है। यदि कोई संस्कृत पूरी तरह जानता हो, तो वह जावाकी भाषा समझ सकेगा। जावामें हाथीको गज, हाथको हस्त, स्वर्गको स्वर्ग, नरकको नरक, गुरुको गुरु, अभीको सद्य आदि शुद्ध संस्कृत शब्द व्यवहृत होते हैं। शायद ही इतने शुद्ध संस्कृत शब्द किसी भारतीय भाषामें व्यवहृत होते हों। एक प्रसिद्ध पत्रिकाका नाम 'वार्ता' है।

जावा-निवासी सम्भ्रान्त कुलवाले दो भागोंमें विभक्त हैं—रादन और मास। प्राचीन राजकुलके वंशजों और हाजियोंकी बड़ी कदर है। जावा-निवासियोंका सबसे बड़ा दोष उनकी लकीरके फकीरकी रीति है। वे वंश-परम्पराके रीति-रिवाज़ोंके ख़िलाफ़ काम नहीं करेंगे। सभी कामोंके लिए मुहूर्त देखा जायगा, फिर वह नाख़ून काटनेके लिए हो, या विवाहके लिए। सभी कामोंके आयोजन विधानपूर्वक किये जायँगे। कोई नई वस्तु होगी, तो उसे शंकाकी दृष्टिसे देखा जायगा, इसीलिए नवीन अन्वेषण और खोजोंका लाभ उन्होंने नहीं उठाया है। कहते हैं कि यह पुरातन-प्रेम और चाटुकारिता जावाने भारतसे सीखी है। किसीसे कुछ पूछिये, वह यही कहेगा—'हुज़ूरकी मर्ज़ी।' किसी नौकरसे पूछिये कि पानी बरस रहा है या धूप है, तो वह उत्तर नहीं देगा। पहले वह यह जानना चाहेगा कि दोनोंमें से आप क्या जानना चाहते हैं? यदि पानी बरसता भी होगा, तो वह कुछ नहीं कहेगा, क्योंकि कहीं आपकी इच्छा धूपके विषयमें जाननेकी न हो! एक डच अफसरने एक राजासे पूछा—"नये सुधारकी कोई आवश्यकता है या नहीं?" उसने विनयपूर्वक उत्तर दिया—"यदि आप आवश्यकता समझते हैं तो है!" अफसरने कहा—"जब आप जानते हैं कि आवश्यकता है, तो पहले कहा क्यों नहीं?" राजाने उत्तर दिया—"यदि आप समझें कि आवश्यकता है, तो ज़रूर होगी। मेरे-जैसे तुच्छ व्यक्तिकी पसन्दगी और नापसन्दगी ही क्या?" ऐसे वातावरणमें दिल खोलकर बातें नहीं हो सकतीं। इस हालतमें स्पष्टवक्ता मिलना कठिन है।

जावा-निवासी बड़े आरामतलब होते हैं। भाँति-भाँतिके आमोद-प्रमोदमें लीन रहना और वेश-भूषा धारण करना ही उनका काम है। फलतः आन्तरिक व्यापार चीनियों और यूरोपियनोंके हाथमें है। बर्माकी हालत यहाँ भी है। ख़र्चीले स्वभावके कारण वे शीघ्र ही ऋणग्रस्त हो जाते हैं। इसका लाभ पहले अरब व्यापारी और चीनी लोग ख़ूब उठाते थे। सूद द्वारा ये लाखों रुपये कमाते थे। अब सरकारने लेन-देनका काम अपने हाथमें ले लिया है। हरएक क़स्बेमें एक लेन-देनशाला बनी है, जहाँ अपनी चीज़ गिरो रखकर रुपये लिये जा सकते हैं। ब्याजका दर बहुत ही कम है।

जावावासी ज़्यादातर नम्रताको भीरुतामें और विनयको चाटुकारितामें परिणत कर देते हैं। बाहरवालोंसे वे बहुत डरते हैं। इस विषयमें बालीवासी बड़े वीर और हट्टे-कट्टे होते हैं। वे किसीसे डरते नहीं। जावा जीतनेमें डच लोगोंको कोई कष्ट नहीं हुआ; पर छोटे-से बालीद्वीपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन लोगोंके दाँत खट्टे कर दिये। जावा-वासियोंका प्रधान गुण है स्वच्छता। हमारी तरह वे भी ग़रीब हैं। जो समझते हैं कि भारतकी अस्वच्छता ग़रीबीको लेकर है, उन्हें जावा आकर देखना चाहिए, फिर उनकी आँखें खुल जायँगी। प्रतिदिन स्थान साफ करना, कपड़े धोना तथा बालोंमें कंघी करना यहाँका दैनिक कार्यक्रम है। नौकर पहले नहा लेंगे और धुले कपड़े पहनेंगे, तब कहीं काम करने जायँगे। किसी भी जावावासीका मकान देखिये, स्वच्छता आपको खुश कर देगी। यहाँके नगर भी सुन्दरता और स्वच्छतामें यूरोपका मुक़ाबला कर सकते हैं।

आमोद-प्रमोदके मुख्य साधन हैं नाटक, स्वांग-रचना, मुर्ग़ेकी लड़ाई, भैंसेकी लड़ाई और बाघोंका मल्ल-युद्ध। नाटक इन लोगोंकी प्रिय वस्तु है। नाटकके कथानक रामायण और महाभारतसे लिये जाते हैं। अर्जुन और श्रीकृष्ण उनके आदर्श हैं। किसी जावावासी बालक या युवकसे पूछिये कि तुम्हारा आदर्श वीर कौन है, तो वह फौरन उत्तर देगा—'अर्जुन' और 'श्रीकृष्ण', न कि सुहराब और रुस्तम। गीताका प्रचार भी अच्छा है और बढ़ रहा है। सुराबायामें एक त्यौहार होता है 'पासार मालम', जहाँ प्राचीन जावाकी झलक नाटकों और रातमें सजाये हुए मेलोंमें मिलती है। उनमें एक ख़ास गुण सत्यप्रियता भी है। इसका परिचय पग-पगपर मिलता है। होटल या दूकानमें जाइये। ख़रीदने या खानेके बाद होटल या दूकानका मालिक स्वयं पूछेगा कि आपने कितनी चीज़ें खाईं या ख़रीदीं। वे दूसरोंकी सत्यप्रियतापर पूरा विश्वास करते हैं। खेद है कि यह गुण अब धीरे-धीरे लोप हो रहा है।

- ९ -

जावावासियोंका मुख्य भोजन चावल है। गेहूँको वे जानते तक नहीं। सभी खाद्य-पदार्थ चावलके बनेंगे। मिठाई भी चावलकी होगी। घी किस चिड़ियाका नाम है, वे नहीं जानते। घीके बदले नारियलके तेलका प्रयोग करते हैं। दूधका व्यवहार अल्पमात्रामें होता है। दही और मट्ठा बनानेकी विधि वे नहीं जानते। तरकारी प्रचुर मात्रामें पैदा होती है। आलू, गोभी, टुमैटो इत्यादिका बाहुल्य है। नारियलका प्रयोग बहुत अधिक प्रमाणमें होता है। सभी लोग मांसाहारी हैं। सुअरको छोड़कर सभी जानवरोंके मांस लोग खाते हैं। कुत्तोंसे उन्हें सख़्त नफ़रत है। जावाके गाँवोंमें आपको कुत्ते नहीं मिलेंगे।

यहाँके मुख्य फल केले और अनन्नास हैं। केलोंमें सर्वोत्तम 'पिसांगराजा' और 'पिसांगमास' (सुनहले केले) कहे जाते हैं। यहाँकी माताएँ अपने बच्चोंको इतनी अधिक मात्रामें केले खिलाती हैं कि कभी-कभी अजीर्ण हो जाता है। उँगलीके बराबर दुग्धोपम स्वादिष्ट केलेसे लेकर हाथकी लम्बाई तकके केले होते हैं। आम भी होता है, पर भारतके आलफोंसो, लँगड़ा, सफेदा आदिके समान नहीं। यहाँ आम बारहो मास मिलता है। एक फल-विशेषका नाम है 'साबू मनिला'। भाँति-भाँतिके बीजपूरक मिलते हैं। 'जांबू बीजी' नामक नारंगी सदृश फल बड़ा मधुर होता है। एक फलका नाम है 'दुरियेन'। इसको काटनेका तरीका बड़ा कौशलपूर्ण होता है। यदि फलमें छिलकेका कोई भाग रह गया, तो उससे बड़ी बदबू आती है। फल अत्यन्त मधुर होता है। इन फलोंसे बीसियों प्रकारके शरबत बनते हैं, जिनका यहाँ अत्यधिक प्रचार है।

- १० -

यदि कोई बेटेविया, सुराबाया और समारांग देखकर वास्तविक जावाकी कल्पना करना चाहे, तो वह सरासर ग़लती करेगा। वास्तविक जावा सोलो और जोकजामें है। उन्हें जावाका राजपूताना समझिये। वहाँ अब भी देशी राजा राज्य करते हैं। जोकजाके शासनकर्ता सुलतान कहे जाते हैं। उनकी उपाधि 'हलाकू-भुवनो' है, जिसका अर्थ है 'भुवनका आधार'। सोलोके 'सुसुहूनान' कहे जाते हैं। उनकी उपाधि 'पाकू भुवनो' है, जिसका अर्थ है 'भुवनकी खूँटी'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके अलावा सोलो और जोकजामें दो और छोटे राजा हैं, जिनके नाम 'मंगुनगर' और 'पाकू आलम' हैं। पहले ये शासक निरंकुश थे, अब डच राज्यमें इनकी शक्ति और अधिकार नाममात्रको है। ये रेज़िडेण्टके हाथकी कठपुतलियाँ हैं। अब ये शासक मनमानी नहीं कर सकते। सुनते हैं, एक शासक इतना निर्दय था कि जब उसकी प्रिया मर गई, तब ग़म ग़लत करनेके लिए वह प्रतिदिन एक उच्चकुलसम्भूत रमणी मरवा डालता था, जिससे उसके पतिको भी प्रिया-वियोग सहन करना पड़े। ऐसा करते-करते वह इतना पागल हुआ कि दिन-रात बकरोंके साथ पड़ा रहता था। वह यह समझता था कि ये बकरे ही मेरे मन्त्रीगण हैं! खेद है, आधुनिक सुलतान डच शासकोंके इच्छानुसार ही चल-फिर सकते हैं। दिन-प्रति-दिन उनकी हालत बुरी होती जा रही है, और उनके अधिकारोंकी काटछाँट निरन्तर हो रही है।

सुलतान और सुसुहूनानके निवास-स्थानोंको क्रेटोन कहते हैं। ये क्रेटोन प्राचीरवेष्टित नगर-से मालूम होते हैं, जहाँ शासक, उनकी सैकड़ों पत्नियाँ और उपपत्नियाँ, दास-दासियाँ, नर्तकियाँ, पुरोहित और अन्य सैकड़ों आदमी रहते हैं। सोलोके क्रेटोनमें कम-से-कम दस हज़ार आदमी रहते होंगे। एक मसजिद भी है, जिसका शिखर दूरसे दिखाई पड़ता है। इसके अलावा सुनार, लोहार, बढ़ई, राजमिस्त्री, गायक, वादक, पाचक इत्यादि भी सपुत्रकलत्र रहते हैं। सुलतानके निवास-स्थान क्रेटोनके अन्तर्गत सुरक्षित स्थानमें होते हैं, जहाँ सुसज्जित आयुधधारी रमणियाँ पहरा देती हैं। साधारण मनुष्यकी कौन कहे, बड़े आदमी भी मुश्किलसे वहाँ पहुँच सकते हैं। सुसुहूनानके शरीररक्षक वामन होते हैं, जो सब जगहसे चुनकर लाये जाते हैं। जोकजाका क्रेटोन सन् १७६० में बना था।

सोलोके शासक जोकजाके सुलतानकी अपेक्षा अधिक आधुनिक विचारवाले हैं। सुसुहूनानकी इच्छा है कि सभी काम यूरोपियन पद्धतिपर हों; पर रेज़िडेण्ट स्वीकार करेंगे या नहीं, इसकी शंका है। शासकोंके व्यक्तिगत या सार्वजनिक सभी कामोंपर रेज़िडेण्टकी कड़ी नज़र रहती है। मुसलमानी त्यौहारोंपर ये शासकगण बड़े समारोहसे दावतें देते हैं। रेज़िडेण्ट, उनके कर्मचारी और अन्यान्य डच अफसर निमन्त्रित किये जाते हैं। रमज़ानके उत्सवपर ख़ास समारोह होता है। नियत समयपर शासकोंके अमीर-उमराव सुसज्जित होकर क्रेटोनमें जाते हैं। सभी यथास्थान बैठाये जाते हैं। तब दो आदमी (जो अकसर युवराज या कुमार-विशेष होते हैं) दूत बनकर रेज़िडेण्टके पास जाते हैं और सम्मानपूर्वक उन्हें राजवाहनोंपर बैठाकर क्रेटोनमें लाते हैं। रेज़िडेण्टके साथ अन्य अफसर भी सपत्नीक रहते हैं। क्रेटोनमें सुलतान और सुसुहूनान उनका स्वागत करते हैं और सभी यथास्थान बैठाये जाते हैं। वैतालिक मंगलगान करते हैं और अभिवादन-क्रिया की जाती है। शिष्टाचारका बड़ा ख़याल रखा जाता है। प्राचीन रीति-रिवाजोंका अक्षरशः पालन किया जाता है। इसके बाद सुलतान या सुसुहूनान स्वयं रेज़िडेण्टको सुलताना और बेगमोंसे मिलाने ले जाते हैं। तत्पश्चात् नृत्यक्रिया प्रारम्भ होती है। 'सिंपी' और 'विदोयो' नामक नर्तक-नर्तकियाँ अपनी चातुरी प्रदर्शित करती हैं। इन नृत्योंमें अंग-मरोड़ और भाव-भंगीकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। राज-रंगभूमिमें नाटक होता है। ये नाटक मुख्यतया छाया-नाटक होते हैं। भिन्न-भिन्न नट और नटियाँ सभी भाव और कार्य देह कम्पन द्वारा व्यक्त करते हैं। यह दृश्य बड़ा ही हृदयग्राही होता है। इस अवसरपर बेगमें तथा राजपरिवारकी अन्य महिलाएँ और कुमारियाँ विविध श्रृंगार किये हाज़िर रहती हैं।

सोलो और जोकजाके पासारों (बाज़ारों) में घूमनेमें बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। प्राचीन जावा कैसा होगा, इसका ख़याल यहीं होता है। देशी कपड़े, तरह-तरहके तावीज़ और औषधियोंकी ख़ास बिक्री होती है। विविध प्रकारके विषोंकी ख़ासी माँग रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये औषधि-विक्रेता अपनेको धन्वन्तरिका अवतार समझते हैं। कौन-सा रोग है, जिसे ये आराम न कर सकें? कुनैनको छोड़कर जावा-निवासी किसी पाश्चात्य औषधिपर विश्वास नहीं करते। बहुत-सी देशी दवाएँ फायदा करती हैं। जिसे यूरोपीय वैद्यने असाध्य कह दिया है, वह व्याधि कभी-कभी देशी दवा द्वारा अच्छी होती देखी गई है। यूरोपियन डाक्टरोंका ध्यान देशी दवाओंकी ओर आकर्षित हुआ है। विष-प्रयोग करनेमें जावा-निवासी बड़े पटु होते हैं। खेतोंमें कीड़े मारनेके लिए, शत्रुओंका नाश करनेके लिए और विश्वासघातिनी प्रेमिकाओंको सज़ा देनेके लिए विषका प्रयोग किया जाता है। विष-प्रयोग करते समय मन्त्र भी पढ़े जाते हैं, और शुभाशुभ दिनका बड़ा ध्यान रखा जाता है!

साधारण जन-समाज नीले रंगकी लुंगियाँ पहनता है। भड़कीली पोशाक कुलीनोंकी समझी जाती है। बिना अधिकार प्राप्त किये हुए कोई छत्र धारण नहीं कर सकता। छत्र-चामर-धारण राजपरिवार और उच्चकुलका द्योतक है। सुलतान और सुसुहूनान 'सुंगसुन' (छत्र-विशेष) धारण करते हैं। राजकुमारगण 'सुंगसुनतीगा' (अन्य प्रकारका छत्र) धारण करते हैं। अनधिकार चेष्टा करनेपर दंड दिया जाता है।

- ११ -

कवि और लेखकोंने जावाकी बड़ी प्रशंसा की है। कोई इसे सागरकी मेखलाका अमूल्य मणि बतलाता है, तो कोई प्रकृतिदेवीका आमोद-सदन कहता है। कोई इसे वसुन्धरादेवीका कुन्तलाभरण समझता है, तो कोई अपार जलधिदेवकी प्राणाधिक प्रियतमा मानता है। जावाके साहित्यमें इसकी कीर्तिगाथा बड़े हृदयग्राही शब्दोंमें लिखी है। कहते हैं, यह अपने प्रियतमकी सुकोमल गोदमें आराम ले रही है; जागृत होनेपर पुनः जलधिकी निम्नतम कन्दराओंमें बिछी हुई प्रवालोंकी शय्यापर सो जायगी। वह अपने सागरपतिके साथ दक्षिण दिशास्थित प्रभातकिरण धौत पर्वतसमूहोंकी गुहाओंमें, चाँदनीकी शीतल छायामें, मृदुल समीर विकम्पित कानन-कुंजोंमें विहार करती है। जहाँ सांसारिक जंजाल नहीं पहुँच सकते, जहाँ भय, शोक और प्रेम-वियोग नहीं, जहाँ कल्याणेच्छु आत्माएँ निर्वाण प्राप्त करती हैं, वहीं दूर, सुदूर, अनन्तकी गोदमें ये प्रियतम और प्रियतमा पुरुरवा और उर्वशीकी भाँति, दुष्यन्त और शकुन्तलाकी तरह, शापविमुक्त यक्ष और यक्षिणीके समान विहार कर रहे हैं।

'प्रभु मुंडिंग' वानगी नामक 'पायायारन' के अधिपतिकी सुन्दरी पुत्री 'लोराविदु' भुवनमोहिनी समझी जाती थी। उसका विवाह एक राजकुमारसे हुआ था; परन्तु शादीके पहले उसे एक असाध्य रोग हो गया। जीवनसे निराश कुमारी समुद्र-तटपर जाकर एक गुहामें रहने लगी। वह सदैव ईश्वराधनामें रत रहती कि उसकी बीमारी छूट जाय। उसने इतनी सिद्धि प्राप्त की कि उसकी प्रशंसा चारों ओर फैल गई; पर उसकी बीमारी नहीं छूटी। एक दिन सागर-कूलपर घूमते समय उसके हताश प्रेमीने उसे देखा। वह दौड़कर उसके पास आया और व्यग्र होकर बोला—'देवि! तुम रोगी हो या नीरोग, मैं तुम्हारा ही पाणिग्रहण करूँगा।' कुमारी बोली—'मैं स्नानकर अभी आती हूँ।' यह कहकर अपनी लाइलाज बीमारीसे लज्जित हो वह समुद्रमें कूद पड़ी। समुद्र-लहरोंको दया आई। उन्होंने मार्जनकर उसकी व्याधि छुड़ा दी। फिर वे उसे सागरके निम्न-भागमें मुक्ता और सीपियोंके प्रासादमें ले गईं, जहाँ स्वयं जलधिदेव उसके पाणिप्रार्थी हुए। यही जावाकी अधिष्ठात्री देवी हैं।

परन्तु मेरी यह धारणा है कि जावाके ललित काननोंके किरीट पहने हुए नीलाद्रि समूह, कलकल निनाद करती हुई तरंगिणियाँ, प्रातःकालीन नीहारबिन्दुस्निग्ध तृण और दूर्वाकुंरोंका हरिताम्बर तथा मृदुल पुष्पोंके कुंडल धारण किये हुई वनलक्ष्मीका साहचर्य, इक्षुक्षेत्रोंका झूला तथा शालिक्षेत्रोंकी शय्याका मोह छोड़कर अधिष्ठात्री देवी सागरगर्भमें निवास करना पसन्द नहीं करेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार अध्याय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

चौथा अध्याय

"अखिल, तू फिर आ गया—भाग आया बोर्डिंगसे! तुझसे किसी तरह पार पाना मुश्किल है। बार-बार कह दिया,—इस मकानमें हरगिज मत आया कर। किसी दिन जानपर आ बीतेगी!"

अखिलने इसका कुछ जवाब न देकर स्वरको कुछ धीमा करके कहा—"एक कोई दाढ़ीवाला पीछेसे दीवार लाँघकर बगीचेमें घुस आया है। इसीसे मैंने तुम्हारे इस कमरेका दरवाजा भीतरसे बन्द कर दिया है।—देखो, पैरोंकी आहट सुनाई दे रही है।"

अखिल अपने चाकूका सबसे बड़ा और मोटा फल खोलकर खड़ा हो गया।

एलाने कहा—"छुरी ताननेकी जरूरत नहीं रे, वीरपुरुष! ला, दे मुझे।"

एलाने उसके हाथसे चाकू छीन लिया।

जीनेसे आवाज आई—"कोई डर नहीं, मैं अन्तू हूँ।"

सुनते ही एलाका चेहरा फक पड़ गया। बोली—"दरवाजा खोल दे।"

दरवाजा खोलकर अखिलने पूछा—"वह दाढ़ीवाला कहाँ गया?"

"दाढ़ी तो बगीचेमें मिल जायगी, बाकीका आदमी यहीं मौजूद है। जाओ, दाढ़ी ढूँढ़ लाओ जाकर।"

अखिल चला गया।

एला पत्थरकी मूर्तिकी तरह क्षण-भर एकटक खड़ी देखती रही। फिर बोली—"अन्तू, यह कैसी तुम्हारी शकल?"

अतीनने कहा—"मनोहर नहीं है।"

"तो क्या सचमुच?"

"क्या सचमुच?"

"सत्यानाशी रोगने तुम्हें जकड़ लिया?"

"नाना डाक्टरोंका नाना मत है, विश्वास न करनेसे भी काम चल सकता है।"

"जरूर तुमने कुछ खाया-पीया नहीं है।"

"जाने दो उस बातको। समय नष्ट न करो।"

"क्यों आये, अन्तू, क्यों आये? ये लोग जो तुम्हें पकड़नेकी राह देख रहे हैं।"

"उन्हें निराश नहीं करना चाहता।"

अतीनका हाथ पकड़कर एलाने कहा—"क्यों आये तुम इस निश्चित विपत्तिमें? अब उपाय क्या?"

"क्यों आया, इस बातको ठीक जानेके पहले कहकर चला जाऊँगा। इस बीचमें, जितनी देर तक हो सके, उस बातको भूले रहना चाहता हूँ। नीचेके दरवाजे सब बन्द किये आता हूँ।"

कुछ देर बाद फिर ऊपर आकर कहने लगा—"चलो छतपर। नीचेके बल्ब सब खोल लाया हूँ। डरो मत।"

दोनों छतपर पहुँचे और जीनेका दरवाजा बन्द कर लिया। अतीन बन्द दरवाजेसे पीठ लगाकर बैठ गया और एला उसके सामने बैठ गई।

"एला, मनको स्वाभाविक अवस्थामें लाओ। कुछ हुआ ही नहीं, समझ लो कि हम दोनों लंकाकाण्ड आरम्भ होनेके पहले सुन्दरकाण्डमें हैं। तुम्हारे हाथ बरफ-से ठंडे क्यों हो रहे हैं? काँप रहे हैं जो! लाओ गरम कर दूँ।"

एलाके दोनों हाथ लेकर अतीनने अपने कुरतेके नीचे छातीसे लगा लिये। उस समय दूरके किसी मुहल्लेमें ब्याहकी नौबत बज रही थी।

"डर लगता है, एली?"

"डर किस बातका?"

"सब-कुछका। क्षण-क्षणका।"

"डर तुम्हारे लिए है, अन्तू, और किसी बातका नहीं।"

अतीनने कहा—"एली, कल्पना करनेकी कोशिश करो कि हम पचास या सौ वर्ष आगेकी ऐसी ही किसी निस्तब्ध रात्रिमें हैं। वर्तमान समयकी चहारदीवारी बहुत ही संकीर्ण है, उसमें भय-चिन्ता दुःख-कष्ट सभी-कुछ अत्यन्त विशालताका रूप धारण करके दिखाई देते हैं। 'वर्तमान' इतने नीचे दरजेकी चीज है कि उसमें 'छोटे-मुँह बड़ी बातें'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिवा और कुछ नहीं। वह नकाब पहनकर डराता है हमें,—जैसे हम क्षण-भरकी गोदमें खेलते हुए बच्चे हों। मृत्यु उस नकाबको झटककर फेंक देती है। मृत्यु कभी अत्युक्ति नहीं करती। जिस चीजको बहुत ज्यादा चाहा था, उसपर इसी वर्तमानकी धोखेबाज कलमसे कीमतकी मोटी रकम लिख रखी थी; और जिस चीजको बहुत जबरदस्त रूपमें खो दिया है, उसपर क्षणिक स्याहीने लेबिल चुपकाकर लिख दिया है असीम दुःख। झूठी बात है यह! जीवन ही जालसाज है, वह अनन्तकालके हस्ताक्षरोंको जाल करके चलाना चाहता है। मौत आकर हँसती है, और जाली कागजातोंको लुप्त कर देती है। उसकी वह हँसी निष्ठुर हँसी नहीं, व्यंग्यकी हँसी नहीं, बल्कि शिवकी हँसीकी तरह मोहरात्रिके अवसानमें शान्त और सुन्दर हँसी है। एली, रातको अकेले बैठकर कभी तुमने मृत्युकी स्निग्ध और सुगम्भीर मुक्तिका अनुभव किया है, जिसमें चिरकालकी क्षमा रहती है?"

"तुम्हारी तरह बड़े रूपमें देखनेकी शक्ति नहीं है मुझमें, अन्तु,—फिर भी तुम लोगोंकी बात याद करके मन जब उद्वेगसे भर जाता है, तब इस बातका बहुत ही निश्चितरूपमें अनुभव करनेकी कोशिश करती हूँ कि मरना सहज है।"

"डरपोक हो, मौतको भागनेका रास्ता क्यों समझ रही हो? सबसे बढ़कर अगर कोई निश्चित चीज है तो वह मृत्यु ही है—जीवन समस्त गति-स्रोतोंका चरम समुद्र है, सम्पूर्ण सत्य-असत्य और बुरे-भलेकी अन्तिम बूँद तकका समन्वय हुआ है उसमें। आजकी इस रातमें, अभी हम दोनों ही उस विराटके प्रसारित बाहु-वेष्टनमें हैं—याद है तुम्हें इब्सनकी वे लाइनें:—

Upwards
Towards the peaks,
Towards the stars,
Towards the vast silence."*

एला अतीनका हाथ अपनी गोदमें लिये चुपचाप स्तब्ध होकर बैठी रही। सहसा अतीन हँस उठा। बोला—"पीछे मौतका काला परदा स्थिर टँगा हुआ है असीममें, उसीपर जीवनका कौतुक-नाट्य नाचता चला जा रहा है अन्तिम अंककी ओर। उसीका एक दृश्य देख लो आज गौरसे। आजसे तीन वर्ष पहले इसी छतपर तुमने मेरे जन्म-दिनका उत्सव मनाया था, याद है?"

"खूब याद है।"

"तुम्हारे भक्त लड़कोंका पूरा जमघट था। भोजके आयोजनमें कोई खास धूमधाम नहीं थी। चिउड़ा भूने थे और साथमें थी उबाली हुई कच्ची मटर, ऊपरसे नमक-मिर्च भुरक दी गई थी; अंडेके बड़े भी थे,—याद है—सबने मिलकर खाया था छीन-झपटकर। सहसा मोतीलालने हाथ-पैर फटकारते हुए शुरू कर दिया—'आज नवयुगमें अतीन बाबूके नवजन्मका दिन है'—मैंने तड़ाकसे उठकर उसका मुँह बन्द कर दिया; कहा, अगर लेक्चर शुरू करोगे तो अभी तुम्हारे पुराने जन्मका दिन यहीं खतम कर दूँगा। बटूने कहा, 'छि छि अतीन बाबू, भाषणकी भ्रूणहत्या'—नवयुग, नवजन्म, मृत्युका तोरण आदि उनके बँधे बोल सुनकर मुझे शरम आती है। उन लोगोंने मेरे मनपर अपने गुटका रंग चढ़ानेके लिए जी-जानसे कोशिश की है,—आखिर रंग चढ़ा ही न सके।"

"अन्तू, निर्बोध हूँ मैं; मैंने ही यह सोचा था कि वर्दी पहनाकर तुम्हें अपने दलके पियादोंमें मिला लूँगी।"

"इसीसे मुझे दिखा-दिखाकर तुम उनके साथ घुल-मिलकर बहनापा निभाया करती थीं। सोचा होगा कि मेरे सुधारके लिए कुछ ईर्ष्याकी भी जरूरत है! स्नेह-जतन कुशल-सम्भाषण, विशेष मन्त्रणा, अनावश्यक उद्वेग आदिको तुमने बिसाँतीकी रंग-बिरंगी चीजोंकी तरह उनके सामने सजा रखा था। आज भी तुम्हारे उस करुण प्रश्नकी भनक मेरे कानोंमें गूँज रही है—'नन्दकुमार तुम्हारे चेहरेपर सुर्खी क्यों झलक रही है'। बेचारा भलामानस था, सत्यके खातिर सिर-दर्दको इन्कार करनेसे पहले ही माथेपर भींगे लत्तेकी पट्टी आ पहुँची। मैं मुग्ध हो जाता, मगर फिर भी समझ जाता कि तुम्हारा यह अतिका बहनजी-पन अति पवित्र भारतवर्षकी खास फरमाइशी चीज है। चरम आदर्श स्वदेशी बहनजी-वृत्तिको मैं ताड़ लेता।"

"ओह, चुप रहो, चुप रहो अन्तू!"

"बहुत-सी फालतू चीजोंकी भरमार थी उन दिनों तुममें, बहुत-सा हास्यजनक ढोंग था—यह बात माननी ही पड़ेगी।"

* हिन्दीमें—"ऊपरकी ओर
शिखरोंकी दिशामें,
नक्षत्रोंकी तरफ,
विराट निस्तब्धताकी ओर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मानती हूँ, मानती हूँ, हजार बार मानती हूँ। तुम्हींने उन सबको एकदम रफा कर दिया है। तो फिर आज क्यों इस तरह निष्ठुर होकर कड़ुई-कड़ुई सुना रहे हो ?"

"किस मनस्तापसे कह रहा हूँ, सो तो सुन लो। जीविकासे भ्रष्ट किया है, इसलिए उस दिन तुम मुझसे माफी माँग रही थीं। यथार्थ जीवनके पथसे भ्रष्ट हुआ और उसी सर्वनाशके बदले जो-कुछ तुमसे दावा कर सकता था, वह भी पूरा नहीं हुआ। मैंने तोड़ डाला अपने स्वभावको, और कुसंस्कारोंसे अन्धी तुम, अपने प्रणको भी न तोड़ सकीं, जिसमें सत्य न था,—उसके लिए माफी माँगना कौन-सी विशेषता रखता है ? मैं जानता हूँ, तुम क्या सोच रही हो, कैसे इतना सम्भव हुआ ?"

"हाँ अन्तू, मेरा अचम्भा किसी भी तरह दूर नहीं होता—मैं नहीं जानती, मुझमें ऐसी कौनसी शक्ति थी ?"

"तुम कैसे जानोगी ? तुम लोगोंकी शक्ति तुम्हारी निजी शक्ति नहीं है, वह महामायाकी है। कैसा आश्चर्यजनक स्वर है तुम्हारे कण्ठमें, मेरे मनके असीम आकाशमें वह ध्वनिकी नीहारिका छा देता है। और तुम्हारे ये हाथ, ये उँगलियाँ, सत्य-असत्य सब-कुछपर परशमणि छुआ सकती हैं। मालूम नहीं, किस मोहके वेगसे, धिक्कार देते-देते ही स्खलित जीवनके असम्मानको अपना लिया ! ऐसी विपत्तिकी बातें इतिहासमें पढ़ी हैं, मगर यह तो सोच ही नहीं सकता था कि मुझ-जैसे बुद्धि-अभिमानीमें भी कभी ऐसी दुर्घटना हो सकती है। अब जाल तोड़नेका समय आ गया, इसलिए आज तुम्हें सच्ची बातें सुनाऊँगा, फिर चाहे वे कितनी ही कठोर क्यों न हों।"

"कहो, कहो, जो कहना है कह डालो। दया मत करना मुझपर। मैं निर्मम हूँ, निर्जीव हूँ, मूढ़ हूँ मैं—तुम्हें पहचाननेकी शक्ति मुझमें कभी-भी किसी समय न थी। जो अतुलनीय था, वही आया था हाथ बढ़ाकर मेरे सामने, अयोग्य हूँ मैं, मूल्य न दे सकी। बड़े भाग्यका धन जीवन-भरके लिए चला गया हाथसे। इससे भी बढ़कर कड़ी सजा अगर हो, तो दो, वही सजा दो मुझे।"

"रहने दो, रहने दो, सजाकी बात मत करो। क्षमा ही करूँगा मैं। मृत्यु जैसी क्षमा करती है, वैसी ही असीम क्षमा। इसीलिए तो आज आया हूँ।"

"इसीलिए ?"

"हाँ, सिर्फ इसीलिए।"

"क्षमा न करते तो न सही; पर क्यों आये तुम इस आगमें कूदने ? जानती हूँ, जानती हूँ मैं, जीनेकी इच्छा नहीं है तुम्हें। अगर यही बात है, तो अपने ये बचे हुए कुछ दिन मुझे दो, दो मुझे अपनी सेवा करनेका अधिकार। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

"क्या होगा सेवाका ! फूटे जीवनके घड़ेमें उँड़ेलोगे सुधा ! तुम नहीं जानतीं, कैसा असह्य क्षोभ है मेरा सेवा-शुश्रूषासे उसका क्या कर सकती हो, जिस आदमीने अपना सत्य खो दिया हो !"

"सत्य नहीं खोया, अन्तू ! सत्य तुम्हारे हृदयमें अक्षुण्ण बना हुआ है।"

"खो चुका, खो चुका।"

"न कहो, न कहो ऐसी बात।"

"मैं क्या हूँ, अगर इस बातको जान सकतीं तो तुम सिरसे लेकर पैर तक सिहर उठतीं।"

"अन्तू, आत्म-निन्दाको बढ़ा रहे हो तुम अपनी कल्पनासे। निष्काम भावसे जो-कुछ किया है, उसका कलंक हरगिज तुम्हारे स्वभावपर नहीं लग सकता।"

"स्वभावकी ही हत्या कर डाली है मैंने, सब हत्याओंसे बढ़कर पाप है यह। किसी भी अहितको समूल नष्ट नहीं कर सका, जड़-मूलसे सिर्फ अपनेको ही मारा है। उसी पापसे आज तुमको हाथमें पाकर भी तुम्हारे साथ अपनेको मिला नहीं सकता। पाणिग्रहण ! इन्हीं हाथोंको लेकर ! मगर क्यों ये-सब बातें ! इन सारे काले दागोंको मिला देगा यमकन्याका काला पानी, उसीके किनारे आकर बैठा हूँ आज। आओ हँसते हुए कह देना चाहिए जितनी भी हलकी बातें हैं। उस जन्मदिनके इतिहासको पहले खतम कर लूँ। क्यों एली !"

"अन्तू, मन बहुत चंचल है, ध्यान नहीं दे पाती।"

"हम दोनोंके जीवनमें ध्यान देने-लायक जो-कुछ भी बाकी बचा है, वह सिर्फ इन्हीं थोड़ेसे इने-गिने हलके दिनोंमें है। भूलने-लायक भारी-भारी दिन ही तो बहुत ज्यादा हैं।"

"अच्छा, सुनाओ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जन्मदिनका खाना-पीना हो गया। अचानक नीरदको शौक चर्राया, 'पलासीका युद्ध' पढ़ेगा। उठके खड़ा हो गया, हाथ फैला-फैलाकर गिरीश घोषकी शैलीमें कहने लगा—

कहाँ चली, देखो इधर सहस्र किरण,
एक बार देखो भला, ओ दिनकर।—

नीरद आदमी अच्छा है, बहुत ही सीधा-सादा, परन्तु निर्दय है उसकी स्मरणशक्ति। सभा भंग करनेके लिए जब मेरा मन व्याकुल हो रहा था, तब उन लोगोंने भवेशसे गानेके लिए अनुरोध किया। भवेशने कहा, बिना हारमोनियमके असम्भव है। तुम्हारे घरपर वह पाप था नहीं। बला टली। बड़ी आशासे सोच रहा था कि अब उपसंहारकी पारी आई, इतनेमें सतूने खामख्वाह बहस छेड़ दी—आदमी जन्मदिनमें पैदा होता है या जन्मतिथिमें? बहुत रोका, पर वह रुका ही नहीं। बहसमें देशाभिमानकी गन्ध आने लगी, गलेकी आवाजमें तेजी आ गई,—बन्धु-विच्छेद तककी नौबत आ पहुँची। बड़ा गुस्सा आया तुमपर। मेरे जन्मदिनका महज एक बहाना था, महान लक्ष्य था सहकर्मी भाइयोंको इकट्ठा करना।"

"कौनसा बहाना था और कौनसा लक्ष्य, बाहरसे इसका विचार मत करो अन्तू। दण्डके योग्य मैं जरूर हूं, पर अनुचित दण्ड मत दो। याद नहीं तुम्हें, उसी जन्मदिनमें ही तो अतीन्द्र बाबूने मेरे मुँहसे अन्तू नाम पाया था? यह कोई मामूली-सी बात नहीं है। अपने अन्तू नामका इतिहास तो बताओ, सुनूँ।"

"हाँ सखि, श्रवण कीजिये। तब मेरी उमर चार-पाँच सालकी होगी, देहका ठिगना था, मुँहमें जबान न थी, सुना है कि आँखोंकी चितवनमें बेवकूफी साफ झलका करती थी। ताऊजी पछाँहसे आये तो पहले-पहल उन्होंने देखा मुझे। गोदमें उठा लिया, बोले, इस बालखिल्यका नाम अतीन्द्र किसने रखा है? अकिंशयोक्ति अलंकार है, इसका नाम रखो अनतीन्द्र। वह अनति शब्द स्नेहके कंठमें पड़कर अन्तू हो गया। तुम्हारे सामने भी एक दिन अति बन गया था अनति, अपना सम्मान मैंने अपनी तबीयतसे खोया है।"

सहसा अतीन चौंककर ठिठक गया। बोला—"पैरोंकी आहट-सी मालूम होती है।"

एलाने कहा—"अखिल है।"

आवाज आई—"जीजी-रानी!"

जीनेका दरवाजा खोलकर एलाने पूछा—"क्या है?"

अखिलने कहा—"खानेको।"

घरमें रसोईका कोई इन्तजाम नहीं। पासके देशी रेस्तोराँसे खाना आया करता है।

एलाने कहा—"अन्तू, चलो खाने।"

"खाने-पीनेकी बात न करो। भूखे मरनेमें आदमीको बहुत दिन लगते हैं। नहीं तो भारतवर्ष अब तक न टिकता। भाई अखिल, अब नाराजी न रखना मनमें। मेरा हिस्सा तुम्हीं खा लो। उसके बाद पलायनेन समापयेत्— भागना, जहाँ तक बने।"

अखिल चला गया।

दोनों फिर अपनी-अपनी जगहपर बैठ गये। अतीनने फिर कहना शुरू किया।

"उस दिनका जन्मदिन चलने लगा तेज रफ्तारसे, किसीने उठनेका नाम तक नहीं लिया। मैं बार-बार घड़ी देख रहा था, मगर रतौंधीके मारे इशारा क्यों समझने लगे। अन्तमें तुम्हींसे मैंने कहा—जल्दी सो जाना चाहिए तुम्हें, हाल ही में इन्फ्लुएंजासे उठी हो।—प्रश्न उठा, 'कितने बजे हैं?' उत्तर दिया गया, साढ़े-दस। सभा भंग होनेके कुछ लक्षण दिखाई दिये। बटूने कहा, 'आप तो बैठे ही रह गये अतीन बाबू? चलिये साथ-ही-साथ चलें।'—कहाँ? तो भंगियोंके मुहल्लेमें; अचानक पहुँचकर उनका शराब पीना बन्द करना होगा।—नीचेसे लेकर ऊपर तक मेरे आग लग गई। कहा, शराब तो बन्द कर दोगे, पर उसके बदलेमें दोगे क्या?—विषय कोई ऐसा न था, जिसपर आपेसे बाहर होनेकी जरूरत हो।—नतीजा यह हुआ कि जो उठके जा रहे थे, वे खड़े हो गये। शुरू हुआ—'क्या आप यह कहना चाहते हैं—' मैंने तुरन्त ही तीखे स्वरमें कहा—कुछ नहीं कहना चाहता। इतना तीखापन भी ठीक न जँचा। आवाज भारी करके तुम्हारी तरफ आधी आँखोंसे देखकर कहा—तो अब चला।—दुमँजलेपर तुम्हारे कमरेके सामने आते ही पैरोंने आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया। सूझकी तारीफ करूँगा, बुक-पाकेटपर हाथ मारकर बोला, फाउन्टेनपेन शायद छूट गई! बटूने कहा, 'मैं ढूँढ़े लाता हूँ'—कहकर तुरंत ही चला गया छतपर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे-पीछे मैं भी दौड़ा। कुछ देर तक ढूँढ़नेका बहाना करके बटूने मुसकराकर कहा, 'देखिये तो, शायद आपकी जेबमें ही होगी।' मैं तो जानता ही था कि फाउन्टेन-पेनकी खोजके लिए भौगोलिक अनुसन्धान करनेकी जरूरत है अपने ही घरपर। साफ कहना पड़ा, एला बहनजीसे एक खास बात कहनी है। बटूने कहा, 'अच्छी बात है, मैं बैठता हूँ नीचे जाकर।' मैंने कहा, बैठनेकी जरूरत नहीं, जाओ तुम।—बटूने मुसकराते हुए कहा, 'नाराज क्यों होते हैं अतीन बाबू, मैं जाता हूं'।"

फिर पैरोंकी आहट सुनकर अतीन चौंक उठा। अखिल छतपर आया। बोला—"एक आदमीने यह रुक्का दिया है अतीन बाबूके लिए। उसे सड़कपर खड़ा कर आया हूं।"

एलाकी छाती धक-से हो उठी, बोली—"कौन आया?"

अतीनने कहा—"बाबूको भीतर ले आओ।"

अखिलने जोरके साथ कहा—"नहीं, हरगिज नहीं।"

अतीनने कहा—"डरकी कोई बात नहीं, उन्हें तुम पहचाते हो; बहुत मरतबा देखा है।"

"नहीं, मैं नहीं पहचानता।"

"खूब पहचानते हो। मैं कहता हूं न, डरो मत, मैं हूँ।"

एलाने कहा—"अखिल, जा तू, झूठमूठको डरे मत।"

अखिल चला गया।

एलाने पूछा—"बटू आया है क्या?"

"नहीं, बटू नहीं।"

"बताओ न, कौन है। मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"जाने दो इस बातको, जो कह रहा था, उसे कहने दो।"

"अन्तू, किसी भी तरह चित्त ठिकाने नहीं रह रहा।"

"एला, खतम कर लेने दो मुझे अपनी कहानी। ज्यादा देर नहीं लगेगी।—तुम चली आईं छतपर। रजनीगन्धाकी मृदु गन्धसे मन विह्वल हो उठा। फूलोंका गुच्छा तुमने सबसे छिपाकर रख लिया था, अकेलेमें मेरे हाथमें देनेके लिए। हम दोनोंके सम्बन्धके क्षेत्रमें अन्तूकी जीवन-लीला इन्हीं लज्जालु फूलोंकी गुप्त अभ्यर्थनामें शुरू हुई। उसके बादसे अतीन्द्रनाथकी विद्याबुद्धि और गम्भीरता धीरे-धीरे अतलस्पर्श आत्मविस्मृतिमें जाकर बिला गई। उसी दिन पहले-पहल तुमने मेरे गलेमें बाँह डालकर कहा था, 'यह लो अपने जन्म-दिनका उपहार'—वही मिला था प्रथम चुम्बन। आज दावा करने आया हूं अन्तिम चुम्बनका।"

अखिलने आकर कहा—"उसने तो दरवाजेपर धक्के मारना शुरू कर दिया है। तोड़ेगा मालूम होता है। कहता है, जरूरी काम है।"

"डरो मत अखिल, दरवाजा तोड़नेसे पहले ही उसे ठंडा कर दूंगा। बाबू साहबको उसी जगह अनाथ छोड़कर तुम भाग जाओ और कहीं। मैं हूं यहाँ तुम्हारी जीजी-रानीकी रखवाली करनेको।"

एलाने अखिलको छातीसे लगाकर उसकी ठोड़ी चूमकर कहा—"राजा-भइया मेरा, राजा-बेटा है न तू, भइया है न, जा चला जा। तेरे लिए कुछ नोट मेरे आँचलमें बंधे हैं, इन्हें ले, जीजीकी असीस है यह। मेरे पाँव छूकर बोल, अभी तू चला जायगा, देरी न करेगा।"

अतीनने कहा—"अखिल, मेरी एक सलाह तुम्हें सुननी ही होगी। अगर तुमसे कभी कोई पूछे, तो तुम सच्ची-सच्ची बात बता देना। कहना, रातके ग्यारह बजे मैंने ही तुम्हें जबरदस्ती घरसे निकाल दिया है। चलो, अपनी बातको मैं सच्ची कर आऊं।"

एलाने फिर एक बार अखिलको अपने पास खींच लिया, बोली—'मेरी फिकर मत करना भइया! तेरे अन्तू-भइया हैं ही, डरकी कोई बात नहीं।"

अखिलका हाथ पकड़कर अतीन जब ले जाने लगा, तो एलाने कहा—"मैं भी चलती हूं तुम्हारे साथ, अन्तू।"

आदेशके स्वरमें अतीनने कहा—"नहीं, हरगिज नहीं।"

छतकी मुँड़ेरपर छाती दबाये एला चुपचाप खड़ी रही—भीतरसे रुलाई आकर कंठमें घुमड़ने लगी, समझ गई कि आज रातको हमेशाके लिए अखिल उसके पाससे चला गया।

अतीन लौट आया। एलाने पूछा—"क्या हुआ, अन्तू?"

अतीनने कहा—"अखिल चला गया। भीतरसे दरवाजा बन्द कर दिया है।"

"और वह आदमी?"

"उसे भी छोड़ दिया। वह बैठा-बैठा सोच रहा था, कामसे जी चुराकर मैं फ़ायद बातें ही करता रहूंगा। जैसे कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नया 'अलिफ-लैला' शुरू हुआ हो। और असलमें है भी वही, सब-का-सब उपन्यास तो है ही, बिलकुल ऊटपटाँग किस्से हैं सब। डर लग रहा है एला? मुझसे डरती नहीं तुम?"

"तुमसे डर, क्या कह रहे हो!"

"क्या नहीं कर सकता मैं! पतनकी सीमा तक आ पहुंचा हूँ मैं। उस दिन हमारा दल एक अनाथ विधवाका सर्वस्व लूट लाया है। मन्मथ था बुढ़ियाका जान-पहचानका गाँवका आदमी,—खबर देकर रास्ता दिखाके वही ले गया था सबको। छद्मवेशमें भी विधवाने उसे पहचान लिया, बोली—मन्नू, बेटा तू ऐसा काम कैसे कर सका? उसके बाद बुढ़ियाको जीने भी न दिया। जिसे हम देशकी आवश्यकता कहते हैं, उसी आत्म-धर्म नाशकी आवश्यकताके लिए इन्हीं हाथोंसे वे रुपये यथास्थान पहुंचे हैं। अपना उपवास तोड़ा है उन्हीं रुपयोंमें से। इतने दिनों बाद असली दागी बना हूँ चोरीके कलंकसे,—चोरीका माल छुआ है, उसका भोग किया है। चोर अतीन्द्रके नामका बटूने भंडाफोड़ कर दिया है। कहीं प्रमाणोंकी कमीसे सजा न हो या कम सजा हो, इस खयालसे उसने पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टकी मार्फत कमिशनरसे यह हुक्म मंगानेका मस्विदा बाँध रखा है कि मुकदमा अंगरेज मजिस्ट्रेटकी इजलासमें न दायर होकर देशी मजिस्ट्रेटकी इजलासमें खड़ा हो। वह निश्चित जानता है कि मैं कल पकड़ा जाऊंगा ही। इस बीचमें डरो मत मुझसे, मैं खुद डरता हूँ अपनी मृत आत्माके काले भूतसे। आज तुम्हारे घरमें और-कोई नहीं है।"

"क्यों, तुम हो तो।"

"मेरे हाथसे तुम्हें बचायेगा कौन?"

"न बचाये तो क्या।"

"तुम्हारी ही अपनी मण्डलीमें किसी दिन एला-जीजीके जो देश-भाई थे—भइया-दूजको जिनके माथेपर हर साल तिलक लगाया है तुमने—उन्हींमें चर्चा हो रही है कि तुम्हारा जीता रहना ठीक नहीं।"

"उनसे बढ़कर ज्यादा अपराध मैंने क्या किया है?"

"बहुत-सी बातें जानती हो तुम, बहुतोंके नाम-धाम मालूम हैं तुम्हें। बहुत सताई जानेपर उगल जो दोगी सब।"

"हरगिज नहीं।"

"कैसे कहूँ कि जो आदमी अभी आया था, वह यही हुक्म लेकर नहीं आया? हुक्मका जोर कितना है, यह तो जानती हो तुम?"

एला चौंक उठी, बोली—"सच कह रहे हो अन्तू, सच है यह?"

"एक खबर मिली है हमें।"

"क्या खबर?"

"आज पौ फटनेके पहले ही पुलिस आयेगी तुम्हें पकड़ने।"

"मैं निश्चित जानती थी कि एक दिन पुलिस मुझे पकड़ने आयेगी।"

"कैसे जाना तुमने?"

"कल बटूकी चिट्ठी मिली थी, उसने खबर दी थी पुलिस मुझे पकड़ेगी, लिखा था—वह अब भी मुझे बचा सकता है।"

"कैसे?"

"कहता है, अगर मैं उससे ब्याह कर लूँ तो वह मेरी जमानत देकर मेरी जुम्मेदारी अपने सर ले लेगा।"

अतीनका चेहरा काला पड़ गया, पूछा—"क्या जवाब दिया तुमने?"

एलाने कहा—"मैंने उस चिट्ठीपर ही सिर्फ लिख दिया था, नीच पिशाच। और कुछ नहीं।"

"मालूम हुआ है, वह बटू ही आयेगा कल पुलिसके साथ। तुम्हारी सम्मति मिलते ही वह शेरसे निपटकर तुम्हें मगरके गड्ढेमें शरण देनेके हितव्रतमें कमर बाँधकर जुट पड़ेगा। उसका हृदय कोमल है।"

एलाने अतीनके पाँव पकड़कर कहा—"मार डालो मुझे अन्तू, अपने हाथोंसे मारो। इससे बढ़कर सौभाग्य और कुछ नहीं हो सकता।" कहते-कहते उठ खड़ी हुई और अतीनका बार-बार चुम्बन लेती हुई बोली—"लो, अब मारो।" कुड़ती फाड़कर, छाती खोलके तैयार हो गई मरनेके लिए।

अतीन पत्थरकी मूर्तिकी तरह कठोर होकर खड़ा रहा।

एलाने कहा—"जरा भी सोचो मत, अन्तू। मैं जो तुम्हारी हूँ, बिलकुल ही तुम्हारी हूँ—मरनेपर भी तुम्हारी हूँ। लो मुझे, अंगीकार करो। गन्दे हाथ न लगने देना इस देहपर, मेरी यह देह तुम्हारी ही है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतीनने कठोर स्वरमें कहा—"जाओ, अभी सोने जाओ, आज्ञा देता हूँ, सोने जाओ।"

अतीनको छातीसे चिपटाकर एला करने लगी—"अन्तू, अन्तू मेरे, मेरे राजा, मेरे देवता, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ—आज तक पूरी तरह जता न सकी। उसी प्यारकी दुहाई है, मारो, मार दो मुझे।"

अतीन एलाका हाथ पकड़कर जबरदस्ती उसे सोनेके कमरेमें खींच ले गया, बोला—"सोओ, अभी इसी वक्त सोओ! सोओ।"

"नींद नहीं आयेगी।"

"नींदकी दवा है मेरे हाथमें।"

"कोई जरूरत नहीं, अन्तू। मेरे चैतन्यका अन्तिम क्षण तक तुम ही लो। क्लोरोफार्म लाये हो? फेंक दो उसे। डरपोक नहीं हूँ मैं; जागती हुई होशमें ही तुम्हारी गोदमें मर सकूँ, यही करो। अन्तिम चुम्बन आज अनन्त हुआ! अन्तू! अन्तू!"

दूरसे सीटीकी आवाज आई।

—धन्यकुमार जैन

चकोर

श्री राजेश्वर

मधुर प्राण-चकोर मेरे!
कहाँ है विधु!
अरे यह तो एक जलता अग्नि-कन है,
मूर्ख! फिर क्यों पा इसे तू
हर्षसे पागल बना है,
चूमता है प्यारसे प्रिय समझकर अपना जिसे तू
अरे, वह तुझको लुभानेके लिए ही छल बना है!

ज्योति यह बस, एक क्षण है
और फिर अस्तित्व खो यह तनिक-सा रजकन बनेगा!
इस अचिरपर खो रहा क्यों सुखोंकी यह मधुर वेला
हास अपना बेचकर तू ले रहा है धूलिके कन
बहुत महँगा हुआ क्रय-विक्रय इसे क्या समझ पाया

शान्त हो, यह सघन तम कुछ दूरकर, कुछ दूर होगा
विधु मिलेगा
रश्मि पीकर बुझा लेना कुछ घड़ी उर-दाह अपनी
पूर्ण करना चाह अपनी
दूर हो, रे दूर हो इस अग्नि-कनसे
कहीं यह झुलसा न दे सुकुमार तनको।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वतीय प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति

श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला

दिसम्बर, १९३५ के 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'पार्वत्य प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति' शीर्षक मेरे लेखको लेकर विगत एक वर्ष (१९३६) के अन्तर्गत 'विशाल भारत' एवं कुछ पर्वतीय पत्रोंमें अनेक लेख निकले हैं। यही नहीं, इस बीच पर्वतीय युवक-मंडलीमें कभी-कभी इस सम्बन्धमें मौखिक चर्चा भी हुई है। स्वभावतः ही इसने एक छोटे-मोटे आन्दोलनका रूप-सा धारण कर लिया। कई तरहकी बातें इस सिलसिलेमें लिखी गईं और कही गईं। इन सबकी जवाबदेही किसी एक व्यक्तिपर नहीं। किसी भी लोक-चर्चामें विभिन्न बातें सामने आती ही हैं। बहुत-कुछ ऐसी भी, जिनको आगे चलाना 'तू-तू' 'मैं-मैं' के मार्गका—जो कहीं भी नहीं पहुँचाता—अवलम्बन करना है। ऐसी दशामें कुछ खास-खास पहलुओंका ही विवेचन वांछनीय है। इसी दृष्टिबिन्दुसे उक्त चर्चाके सम्बन्धमें मुझे कुछ थोड़ी-सी बातें पेश करनी हैं।* किन्तु पूर्व इसके कि मूल वार्ताके विषयमें कहा जाय, इससे दिलचस्पी रखनेवाले महानुभावोंको यह बतला देना आवश्यक होगा कि उक्त चर्चा किस उद्देश्य और दृष्टिकोणको सामने रखकर आरम्भ हुई थी।

एक साल पहलेकी बात है। सन १९३५ के दिसम्बरमें मैं कुछ दिनोंके लिए कलकत्ता गया हुआ था। उसी सिलसिलेमें दो-तीन दिन 'विशाल भारत'-सम्पादकके पास भी ठहरनेका मौका मिला। एक दिन सुबहकी चाय लेते समय अनेक तरहकी साहित्यिक चर्चाके अन्तर्गत चतुर्वेदीजी बोले—"साहित्यिक क्षेत्रमें काम करते हुए जैसे-जैसे मेरा अनुभव बढ़ रहा है, वैसे-वैसे मुझे यह बात स्पष्ट मालूम होती जा रही है कि हमें अभी बहुत काम करनेको पड़ा है। हमारे ही प्रान्तमें कई हिस्से अभी ऐसे हैं, जिनकी साहित्यिक गति-विधिका हमें कुछ भी ज्ञान नहीं। अच्छा हो, अगर उनकी साहित्यिक प्रगतिका परिचय 'विशाल भारत' के द्वारा हिन्दी-संसारके सामने लाया जा सके।.... पहाड़ी प्रदेशोंकी साहित्यिक जाग्रतिका एक छोटा-सा परिचय आप हमें लिखकर दें।"

इसी दिशामें मैंने भी कई बार विचार किया था, इसलिए उक्त प्रस्तावसे सहमत होते मुझे देर न लगी, और बाहरके लोगोंकी प्रमुख आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर, व्यापक दृष्टिकोणसे, मैंने पर्वतीय प्रदेशोंकी साहित्यिक जाग्रतिपर एक संक्षिप्त परिचयात्मक नोट लिखकर उन्हें प्रकाशनार्थ दे दिया।

हमारी वर्तमान चर्चाकी यही जन्म-कथा है। इसी सदुद्देश्य और व्यापक दृष्टिकोणको सामने रखकर ही मूल-लेख लिखा गया था। उसे पढ़कर जहाँ अनेक पर्वतीयोंको प्रसन्नता हुई, वहाँ कुछ ऐसे भी बन्धु थे, जिन्होंने उसपर आपत्ति करना आवश्यक समझा। इन बन्धुओंके 'विशाल भारत' में छपे प्रतिवादोंको जिन्होंने ध्यानसे पढ़ा होगा, उन्हें यह खुलासा मालूम हो गया होगा कि मेरे लेखके प्रति उनकी प्रमुख शिकायत यह थी कि वह अधूरा था और उसमें बहुतसे महानुभावोंके नाम नहीं लिखे गये थे। मेरी इस कथित भूलके प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्होंने नामोंकी लम्बी-लम्बी फेहरिस्तें 'विशाल भारत' द्वारा पेश कीं। यदि उनके उद्योगोंसे मेरे मूल उद्देश्यमें कुछ सहायता मिली होती, तो मैं अवश्य ही उनका कृतज्ञ होता। किन्तु मूल-लेख, जैसा बादमें शर्माजीने निर्दशित किया, पर्वतीय प्रदेशोंकी साहित्यिक जाग्रतिका एक चलता-सा छोटा चित्र था।

* कई बातोंका समाधान तो पं० श्रीराम शर्मा और श्री भक्तदर्शनके इस विषयपर 'विशाल भारत' में छपे लेखोंसे हो गया है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें युक्तप्रान्तके पहाड़ी हिस्सोंकी अर्वाचीन जाग्रतिकी (जो इसी बीसवीं शताब्दीके पिछले दो-तीन दशाब्दोंसे आरम्भ हुई) रूप-रेखा और प्रमुख साहित्यिक प्रगतियोंका आभासमात्र ही प्रस्तुत किया गया था। अतएव जो थोड़ेसे नाम प्रसंगवश अनिवार्य रूपसे सामने आये, वे ही अंकित किये गये। क्या ही अच्छा होता, यदि प्रतिवादी बन्धुओंका उत्साह नामों और व्यक्तियोंको लेकर झगड़नेके बजाय इसी तरहकी प्रगतियों और विचार-धाराओंके विवेचनमें खर्च होता। निस्सन्देह गढ़वालकी वर्तमान साहित्यिक जाग्रतिका ज़िक्र करते हुए मैंने वहाँके किसी भी उठते हुए नवयुवक साहित्य-प्रेमीका नाम नहीं लिखा था। कारण कि प्रायः उन सभीसे मेरा इतना सामीप्य और अपनाव है कि ऐसा करना एक तरहका वाह्य-प्रदर्शन ही समझा जाता। अतः इस चर्चाके गाम्भीर्यकी रक्षाके लिए नामोंके फेरमें न पड़कर मैंने केवल उनकी सामूहिक जाग्रतिकी ओर सिर्फ इशारा किया था। परन्तु हवन करते हुए भी कभी-कभी हाथ जल जाया करता है और सद्भावके साथ किये गये कामोंसे भी ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो जाती हैं, इसलिए जिन्होंने भ्रमवश अन्यथा समझा हो, वे क्षमा करें।

बाहरके लोग पर्वतीय जीवनके सम्बन्धमें प्रायः बहुत कम बातें जानते हैं। इस प्रसंगका एक मज़ेदार चुटकुला है। एक मैदान-निवासीने, जो कभी पहाड़पर नहीं गया था, एक पहाड़ीसे पूछा—"पहाड़ तो ढलवाँ होते होंगे, फिर वहाँ चारपाई किस तरह लगाई जाती है?" इतनी गम्भीर (!) नहीं, तो कुछ ऐसी ही जिज्ञासाओंके ख़यालसे मैंने अपने लेखमें पहाड़ी जीवनके भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओंको छू-भर दिया था। सम्भवतः इन्हींको एक भाईने 'बेकार बातें' बतलाया है ('गढ़वाली'की भी कुछ ऐसी ही राय है)। पर मैं निवेदन करूँ कि किसी भी स्थानके सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवनका वास्तविक ज्ञान वहाँके सम्पूर्ण जीवनसे विच्छिन्न करके नहीं ग्रहण किया जा सकता। साहित्यिक जीवन हमारे सम्पूर्ण जीवनका एक अंगमात्र है। उसे समझनेके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम सम्पूर्ण जीवनके दृष्टिकोणसे उसे देखना सीखें। जिस दिन हम इस प्रकार देख सकेंगे, उस दिन हमें मालूम हो जायगा कि 'रोटीका सवाल' पहाड़ी जनताकी साहित्यिक प्रगतिमें (ख़ासकर वर्तमान समयमें) कितना बाधक बना हुआ है।

प्राचीन समयमें पहाड़ी जीवनकी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाके आजकलकी अपेक्षा बहुत-कुछ भिन्न होनेके कारण, कला, साहित्य और अन्य प्रकारकी बौद्धिक क्रियाशीलताके लिए तब भले ही बहुत-कुछ गुंजायश रही हो; किन्तु वर्तमान समयमें तो पूर्वकालीन स्थितिके कई अंशोंमें बदल जानेसे, देशके अन्य भागोंकी ही भाँति, यहाँके जीवन-संगठनका ढाँचा हिलने लगा है। पुरातन भारतीय जीवनका आधारभूत आदर्श, चातुर्वर्ण्य-संगठनका बेड़ा आधुनिक युगकी नई-नई शक्तियों (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक) के प्लावनमें ग़र्क़ होता नज़र आ रहा है। परिणाम स्वरूप पुरानी दुनियाके एकमात्र सुधीवर्ग ब्राह्मण-समुदायके लिए पुरानी सामाजिक व्यवस्था और उसके द्वारा निर्दिष्ट द्विजोचित कर्तव्योंमें अब कोई विशेष आकर्षण नहीं रहा। स्वभावतः ही पुरातन प्रणालीके साहित्यिक और अन्यान्य बौद्धिक कर्मोंके प्रति उन लोगोंका उत्साह आहिस्ते-आहिस्ते शिथिल पड़ता जा रहा है।

दूसरी ओर प्राकृतिक कारणोंसे खेती-बारीके पूर्ववत् कष्टसाध्य बने रहने और उद्योग-धन्धोंके अभावसे पहाड़ी स्थानोंमें बेकारीका रोग चढ़ावपर है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि नौजवान पहाड़ी प्रतिवर्ष हज़ारों-लाखोंकी संख्यामें मैदानोंकी ओर दूर-दूर नगरोंमें चले आते हैं; जहाँ वे कुलियों, दरवानों और घरेलू चाकरोंके रूपमें दो-दो चार-चार (कभी-कभी तो इससे भी कम) रुपये महीनेपर दिन-रात खटते देखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं।* नैनीताल और अल्मोड़ाकी अपेक्षा गढ़वालपर उपर्युक्त बात विशेष रूपसे लागू है। जिस अभागे प्रदेशकी मानवताका सर्वोत्तम भाग बाहरकी ओर इस प्रकार बहा चला जा रहा हो, वहाँ फिर रह ही क्या जाता है, जो वहाँकी कोई बड़ी उत्पादक (Productive) अथवा निर्माणकारी (Creative) क्रियाके महायन्त्रको परिचालित कर सके? जो भाग यहाँ रह जाता है, उसे चट्टानोंसे दो-दो रोटियाँ खोद निकालनेसे ही छुट्टी नहीं मिलती, और दिन-भरके कठोर परिश्रमसे 'एक जून' खाना मिल जाना मात्र ही साहित्यिक प्रगति और सांस्कृतिक अभ्युत्थानके लिए काफ़ी नहीं। और भी बहुत-कुछ चाहिए, जो कुछ ही भाग्यशालियोंको उपलब्ध होता है। परन्तु इन अभागोंके सामने साहित्य तो क्या—जैसा एक बार महात्मा गांधीने कहा था—"यदि स्वयं ईश्वर भी आये, तो वह केवल 'रोटी' के ही रूपमें प्रकट हो सकता है।"

'रोटीका सवाल' केवल पहाड़ोंमें ही ऐसा प्रबल हो, सो बात नहीं। कहावत प्रचलित है कि हिन्दुस्तान एक ऐसा धनवान देश है, जहाँ कंगाल लोग बसते हैं। यह सच होनेपर भी देशके मैदानी हिस्सोंमें—प्रधानतया बड़े-बड़े नगरोंमें—एक ऐसा (काफी बड़ा) सम्पन्न वर्ग भी विद्यमान है, जिसके पास बौद्धिक एवं सांस्कृतिक कार्योंको प्रोत्साहन देनेके लिए पर्याप्त साधन और अवकास रहता है। किन्तु पहाड़ी प्रदेशोंमें, जहाँ मैदानोंके से बड़े-बड़े औद्योगिक तथा व्यापारिक नगरोंका अभाव है, ऐसे लोगोंकी संख्या कितनी है, जो पूर्वकथित वर्गकी परिधिके भीतर आ सकें? यहाँके बहुसंख्यक लोगोंमें से कुछ ग़रीब हैं, कुछ अधिक ग़रीब और कुछ अत्यधिक ग़रीब। और जो सिन्धुमें बिन्दुकी तरह कुछ सम्पन्न लोग हैं भी—जैसे वकील, अध्यापक, सरकारी नौकर आदि—वे लोग सजगताके लक्षण कम ही मात्रामें प्रदर्शित करते देखे गये हैं। फलतः यहाँ एक वास्तविक सुधीवर्गके बननेमें बड़ी अड़चनें हो रही हैं।

इस रोती हुई तसवीरमें केवल एक ही स्थान ऐसा है, जिसे देखकर कुछ खुशी हो सकती है—वह है विद्यार्थीवर्ग। यद्यपि यह संख्याकी दृष्टिसे पर्याप्त नहीं, तथापि अगर इस वर्गकी शक्तियोंको ठीक दिशामें परिचालित किया जाय, तो भविष्य बहुत-कुछ आशामय बनाया जा सकता है।

पहाड़ोंकी साहित्यिक प्रगतिके मार्गमें खड़ी बाधाओंका ज़िक्र करते हुए मैंने कहा था कि यहाँ ऐसी पत्र-पत्रिकाओंका अभाव है, जो उठते हुए कवियों और लेखकोंको प्रोत्साहन दें और साथ ही पहाड़ी जीवनके भीतर छिपी हुई घरेलू संस्कृतिको अभिव्यक्ति दे सकें; मेरे इस कथनका 'शक्ति' और 'गढ़वाली'ने एक स्वरसे विरोध किया है। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों पत्र यहाँके सबसे पुराने पत्र हैं और इनमें साहित्यिक रचनाओंको भी यदाकदा स्थान मिलता रहा है। इतना ही नहीं, 'गढ़वाली' पत्रने तो गढ़वाली-कविताको सजग करनेमें, एक ज़मानेमें, काफ़ी प्रयत्न किया था, जिसका उल्लेख मैं अपने पिछले लेखमें कर चुका हूँ; परन्तु खेद है कि ये पत्र समयके साथ आगे कदम न बढ़ा सके और वे वर्तमान नवयुवक-समुदायसे तथा नवयुवक-समुदाय उनसे उदासीन हैं। साथ ही इस बातसे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रधानतया संवाद-पत्र होनेके कारण ललित-साहित्यका प्रकाशन एवं प्रोत्साहन इनके लिए गौण विषय ही रहा है। इसी यथार्थ बातको लक्ष्य करते हुए मैंने वैसा लिखा था। मेरा संकेत विशेषकर ऐसे पत्रोंकी ओर था, जो शुद्ध साहित्यिक ध्येयको लेकर चलाये जाते। गढ़वाल और कुमाऊँमें अब तक एक दर्जनसे अधिक पत्र निकल चुके हैं, जिनमें से छै-सात अभी तक चल रहे हैं; किन्तु इनमें से किसी एकमें भी उपर्युक्त विशेषता नहीं। इतना ही नहीं, इनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जिनका काम अदालती सम्मन छापने,

* पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य और खेद होगा कि गत वर्ष केवेटा-भूकम्पके मौक़ेपर वहाँ दो हजारसे ऊपर गढ़वाली मौतके शिकार हुए थे। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिगत द्वेष फैलाने और सभी प्रकारके प्रगतिशील आन्दोलनों तथा विचार-धाराओंका विरोध करनेके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। ऐसी हालतमें साहित्य-चर्चा और घरेलू संस्कृतिको अभिव्यक्ति देनेके लिए सानुकूल वातावरण ही उत्पन्न नहीं हो पाता।

फिर भी 'शक्ति' और 'गढ़वाली' का दावा है कि वे पहाड़ोंकी घरेलू संस्कृतिको अभिव्यक्ति दे रहे हैं। इसपर मुझे कुछ विस्मय-सा हो रहा है, और साथ ही यह सन्देह भी कि 'घरेलू संस्कृति'का वास्तविक आशय समझनेमें ग़लती की गई है। कुछ और बन्धुओंसे भी यह भूल हुई। और सम्भवतः इसी कारण प्रायः उन सभीने ठेठ पहाड़ी जीवनकी रूप-रेखाको अधिक स्पष्ट करने तथा उसे नियन्त्रण एवं स्थिर करनेवाले तत्त्वोंका निरूपण करनेकी अपेक्षा अतीतके सुनहलेपनको ही विशेष महत्त्व दिया। उनके प्रयासोंमें रिसर्चकी इतिवृत्यात्मक व्यग्रता अधिक थी और अभिव्यक्ति (Exposition) की भावना कम। शोधवृत्तिका ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे अपना निजी महत्त्व अवश्य है; परन्तु प्राणमय साहित्यके लिए तो शोधवृत्तिकी अपेक्षा ठेठ जातीय जीवनका संगठन एवं परिचालन करनेवाले व्यापक तत्त्वोंका प्रकटीकरण तथा व्याख्या ही विशेष महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। 'जनताके लेखक'—इस नामसे सम्मानित किये जानेवाले स्व० प्रेमचन्दजीकी कलाकी सफलताका प्रधान कारण यह था कि उन्होंने अपने आसपासके बिखरे हुए जीवनके भीतर छिपे तत्त्वोंको समझा और उन्हींको अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्ति दी। मेरा निवेदन है कि ऐसे आदर्शको सामने रखकर किये गये प्रयास ही हमारी घरेलू संस्कृतिको वास्तविक अभिव्यक्ति दे सकते हैं। आशा है कि हमारे साहित्य-सेवी बन्धु कोरमकोर अनुकरणके शिकार न होकर अपने लोगोंके सुख-दुख, हास-अश्रुकी अनुभूतिकी सहायतासे ठेठ पहाड़ी जीवनके सच्चे चित्रोंको अंकित करनेमें अपनी प्रतिभाका सदुपयोग करेंगे। इस सम्बन्धमें कविवर पंतजीकी एक कविताको उदाहरण रूपमें प्रस्तुत कर देनेसे मेरा आशय और भी स्पष्ट हो जायगा—

"उस सीधे जीवनका श्रम
हेम-हाससे शोभित है नव
पके धानकी डालीमें—
कटनीके घूँघुर रुन-झुन
(बज-बजकर मृदु गाते गुन)
केवल श्रान्ताके साथी हैं,
इस ऊषाकी लालीमें।
माँ! अपने जनका पूजन
स्वीकारो 'पत्रं पुष्पम्';
सरल नाल-सा सीधा जीवन
किन्तु मंजरीसे भूषित;
बालीसे श्रृंगार तुम्हारा
करता है वय-बालीमें।
सास-ननद भय, भूख अजय,
श्रान्ति, अलस औ' श्रम अतिशय,
तथा काँसके नव-गहनोंसे
अर्चन करता है सादर—
आश्विन सुषमाशालीमें।"

('वीणा', पृ० २४)

पहाड़ी जीवनकी ऐसी अभिव्यक्तिसे हम लोग अपनी लेखनीका श्रम सफल तो करेंगे ही, साथ ही हमारी यह भेंट हिन्दी-साहित्यके लिए भी गौरवकी चीज़ होगी।

मैंने उसी सिलसिलेमें अपने यहाँ एक सजीव साहित्य-संस्थाके अभावका भी उल्लेख किया था। हर्ष है कि इस बातपर प्रायः सभीने सहमति प्रकट की है और एक साहित्य-सम्मेलनकी आयोजनापर भी जोर दिया है; किन्तु साथ ही मुझे यह भी भय है कि हम लोग किसी बड़े साहित्यिक समारोहके लिए अभी तैयार नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम पड़ते। अतएव फिलहाल जहाँ कहीं सम्भव हो, साहित्यिक गोष्ठियों द्वारा काम चालू किया जाय।

इन सब बातोंके अलावा मैं दो-एक और आवश्यक बातोंकी ओर भी पर्वतीय नवयुवकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। प्रथम यह कि वे राष्ट्र-भाषा हिन्दीके आधुनिक नवचेतनसे अधिकाधिक लाभ उठावें और उसकी पृष्ठभूमिपर अपने यहाँकी साहित्यिक प्रगतिको देखना सीखें। अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग बनानेसे कोई लाभ नहीं। आलोचनाओंके प्रति अत्यधिक संवेदनशील होना भी ठीक नहीं। यदि हम उक्त व्यापक जाग्रतिसे अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहें, तो हमें सदैव बाहरसे आनेवाली आलोचनाओंके लिए अपने द्वार खुले रखने चाहिए। इससे हानिकी अपेक्षा लाभ ही होगा। इसी दृष्टिकोणसे मैंने, शर्माजीसे यह मालूम कर कि वे हमारी वर्तमान चर्चाके सम्बन्धमें कुछ खरी बातें लिखना चाहते हैं, उन्हें एक पत्रमें लिखा था कि वे निःसंकोच ऐसा करें। क्योंकि मेरा विश्वास है कि खरी समालोचनाकी आँचमें तपनेसे ही हम लोग अपनी बुराइयों और कमज़ोरियोंसे मुक्त हो सकते हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि बाहरकी सुविस्तृत दुनियासे आनेवाली आलोचनाओंपर हम ठंडे दिमाग़से विचार करना सीखें। मेरे उक्त पत्रका उल्लेख शर्माजीने अपने 'विशाल भारत' वाले लेखमें किया भी था। सुना है कि कुछ महानुभावोंको यह अच्छा नहीं लगा। इसका कारण कमज़ोरियोंको छिपाकर रखनेकी मनोवृत्तिके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? आत्मशोध और आत्मोद्धारके आकांक्षियोंको सद्भावसे की गई आलोचनासे तिलमिला उठना और इस प्रकार मानसिक तौल खो बैठना उचित नहीं।

दूसरे यह भी आवश्यक है कि पारस्परिक वाद-विवादका स्थान अब सहयोगितापूर्ण विचार-विनिमयको दिया जाय। पहाड़ी प्रदेशोंको देशकी वर्तमान जाग्रतिके साथ समधरातलपर खड़ा करनेके लिए पारस्परिक सहयोग अनिवार्य रूपसे अपेक्षित है। इस प्रकार किये गये कार्य निःसन्देह हमारी उत्तरोत्तर उन्नतिमें सहायक होंगे। और तब वह समय भी दूर नहीं रह जायगा, जब हमारी कठिनाइयाँ मिट जायँगी और उठते हुए पहाड़ी साहित्यिकोंकी अभिनव टोली राष्ट्र-भाषा हिन्दीके सुविस्तृत प्रांगणमें अपने गौरवोन्नत भू-खण्डकी समस्त शोभा-सुषुमाकी धवल पताकाको चिरकालके लिए फहरा देगी। एक तरुण हिन्दी-कविके कंठमें मानो मैदानोंसे आज यह आवाज़ उठ रही है—

"जाग रे जाग पहाड़ी देश!
लिये नवयुगका नव-सन्देश।"

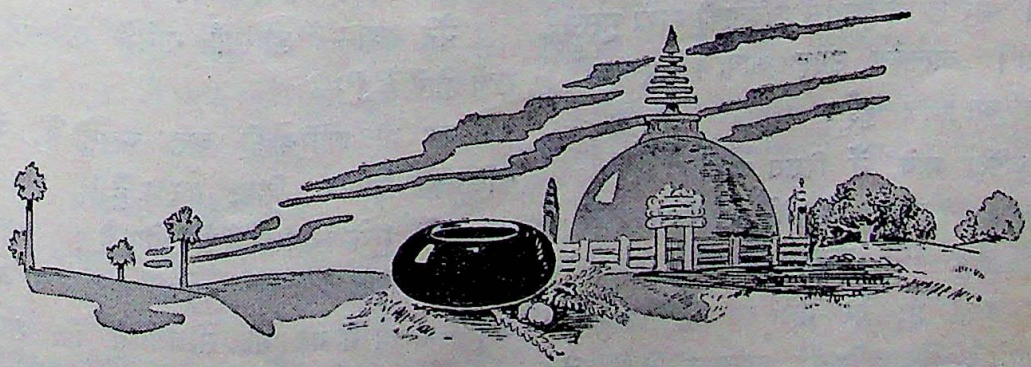

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ ! मुझे लोरी सुना

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी

'कविता' मेरी नन्हीं कन्या है। लोरियाँ सुननेका उसे बेहद शौक़ है। अब तो वह इन्हें समझने भी लगी है। लोरियोंके एक-एक शब्दमें वह मातृ-प्रेमकी हिलोर पाती है। कितना आकर्षण रहता है इन लोरियोंमें—मातृ-प्रेमकी इन भोली कविताओंमें। साथ ही कितना रस और एक मीठा-सा नशा भी इन लोरियोंमें, यह कोई कवितासे ही पूछे। शायद अभी वह इन सब बातोंका उत्तर न दे सके; पर उसका नन्हा-सा दिल लोरियाँ सुनकर अजब अन्दाज़से मुसकरा देता है। सोचता हूँ, कविता ज़रूर लोरियोंकी गहराई तक पहुँचती है। मुसकराहटपर तो हर माके शिशुका अधिकार होना चाहिए और लोरियोंपर भी।

अभी उस दिन कविता ज़िद करने लगी, तो उसकी मा बोल उठी—"कोई कैसे मनाये इस ज़रा-ज़रा-सी बातपर रूठनेवाली लड़कीको ?"

मैंने पाससे झट कह दिया—"कोई लोरी गा दो। कविताको खुश करना कौन-सी बड़ी बात है ?"

माका दिल भी अजब चीज़ है; पर यह दुनियामें कैसे आ गया ? अवश्य ही इसकी रचना स्वर्गमें हुई होगी। फिर भगवानने सोचा होगा—चलो, इसे भूमिपर भेज दें, ताकि इसके स्पर्शसे वहाँ भी एक स्वर्ग बस जाय। मेरे ज़रासे इशारेसे कविताकी माका गुस्सा दूर हो गया। वात्सल्य उमड़ आया। एक नहीं, चार लोरियाँ आ हाज़िर हुईं :—

कविता आये, मैं किक्कण जाणाँ ?
कविता दे पैरीं कड़ीयाँ,
मैं बाज पछाणाँ।

—'कविता आती है, पर मैंने यह कैसे जाना ? कविताने अपने पैरोंमें 'कड़ियाँ' पहन रखी हैं। मैं इन कड़ियोंकी झनकार पहचानती हूँ।'

कविता आई खेडके,
पैंदी आई धुम्म।
रोटी दियाँ चोपड़के,
चुन्नी लैंदी चुम्म।

—'कविता खेलकर आई है। ख़ूब धूमधामसे आई है वह। मैं उसे घीसे चुपड़ी हुई रोटी दूँगी और उसकी चुनरीको मैं चूम लूँगी।'

सुन, नी कविता, लोरी;
तैनूँ दियाँ गन्ने दी पोरी।

—'सुन री कविता, लोरी सुन। मैं तुझे गन्नेकी पोरी दिये देती हूँ।'

कविता दी मासी आई ए,
दुद्ध-मलाई लियाई ए।

—'कविताकी मौसी आई है। वह कविताके लिए दूध और मलाई लेती आई है।'

कविता मिठाईके लिए ज़िद कर रही थी। लोरियोंमें उलझकर वह मिठाई भूल बैठी। अब उसने लोरियोंके लिए ज़िद शुरू कर दी, पर ज़िद करनेमें उसकी मा भी तो कम नहीं है। वह बोली—"कहाँसे सुनाये जाऊँ मैं इसे नित्य नई लोरियाँ ? भला, मैं लोरियोंकी मशीन कैसे बन जाऊँ ?"

मैंने कहा—"लोरियाँ गानेमें कौन-सी ताक़त ख़र्च होती है ?"

जब भी लोरियोंकी बात चलती है, मैं हमेशा कविताकी हिमायत किया करता हूँ। बात असलमें यह है कि मुझे स्वयं लोरियोंसे प्रेम है। उनके सरस स्वर मुझे बचपनके बीते सपनोंकी याद दिला जाते हैं। कभी-कभी तो मैं यह भी सोचता हूँ कि शायद मेरा अपना बचपन ही पुत्री कविताके रूपमें लोरिया सुननेके लिए आ हाज़िर हुआ है। लोरियाँ बचपनकी चीज़ें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपनकी भोली देवी अपनी पूजामें लोरियाँ क़बूल करती है। उस समय मुझे बालज़ककी एक सूक्ति याद आई—'दुनियाका सबसे मीठा गीत वह लोरी है, जिसे हम बचपनके प्रभात कालमें अपनी माँके मुखसे सुनते हैं।'

उधर कविता अपनी ज़िदमें सफल हो गई। उसकी माका मुसकराता हुआ मुखड़ा कविताकी जीतका साक्षी दे रहा था। मैंने कहा—"यदि सुनानी ही है, तो कोई अच्छी-सी लोरी सुना दो।"

"लोरियाँ सभी अच्छी होती हैं, कभी बुरी नहीं होतीं। मेरी मा अच्छी लोरियाँ जानती है।"—कविता बोल उठी।

अबके उसकी माने यह लोरी गाई—

उड्ड नी चिड़ीए ; उड्ड वे कावाँ !
कविता खेडे नाल भरावाँ।

—'उड़ जा री चिड़िया ! उड़ जा रे काग ! कविता खेले भाइयोंके साथ।'

"मेरे भाई कहाँ हैं, मा ?"—कविताने झट पूछ लिया।

माँके होठोंपर शर्मीली मुसकराहट आ गई ! पर कविताको भी कुछ उत्तर दिये ही बनता था—"गली-मुहल्लेके नन्हें लड़के, जो तेरे साथ खेलने आते हैं, वे सब तेरे भाई हैं, कविता !"

"और सब लड़कियाँ मेरी बहनें हैं ?"

"हाँ, वे सब तेरी बहनें हैं। कितनी सयानी होती जा रही है तू ! ले, एक लोरी और सुन—

कविता बीबी राणी,
सौहरियाँ दे घर जाणी।

—'कविता सयानी रानी है। उसे ससुराल जाना होगा।'

मैंने कहा—"यह लोरी मत गाया करो। अभी हमारी बेटी ससुराल नहीं जायगी।"

बेटीकी शादीमें सुबुकदोस होकर मा-बापको सदा खुशी होती है ; पर मुझे उस समय ससुरालकी ओर प्रस्थान करनेवाली कन्याके करुण उद्गारोंका ध्यान आ गया था। एक गीतमें तो कन्याका दर्द पूरी शक्तिसे बोल उठा है :—

मुंडे आपणे थाईं रैंहदे,
नी धीयाँ क्यों बनरियाँ रब्बने ?

—'लड़के सदा माता - पिताके साथ रहते हैं। (लड़कियाँ तो ऐसा नहीं कर सकतीं) हे सखि ! हम लड़कियोंको भगवानने आख़िर क्यों जन्म दिया ?'

मैं ज़रा बाहर चला गया था। वापस लौटा, तो देखा कि कविता बदस्तूर गीत सुननेमें मग्न है। अब वह यह लोरी सुन रही थी :—

कविता दे बाल गुड़ बंड रखाये,
मक्खणाँ दे पाले भुल्ला मथ्थे नूँ आये।

—'कविताके केश बढ़ाना शुरू करते समय हमने गुड़ बाँटा था। मक्खनसे पाले हुए उसके केश अब झूल-झूलकर उसके मस्तकपर आ गये हैं।'

उस समय मुझे कविताके केश कितने सुन्दर लगने लगे—मक्खनसे पाले हुए केश ! पर मुझे एक मज़ाक़ सूझा। मैंने कहा—"देखो जी, अब गुड़का ज़माना नहीं रहा। इस लोरीसे गुड़का शब्द निकाल दो अब। इसकी जगह खाँड़ शब्दका प्रयोग करो।"

पर कविता बोल उठी—"गुड़ कोई बुरा नहीं होता। मैंने बहुत बार खाया है। खाँड़ भी अच्छी होती है। गुड़ भी बुरा नहीं होता।"

माने कविताकी पीठपर थपकी दी और कहा—"देखो, हमारी कविता कितनी सयानी हो चली है अब।"

गुड़का ज़िक्र लोरियोंमें आम तौरपर आता है। अबके कविताकी माने जान-बूझकर—मुझे खिजानेके लिए ही शायद—यह लोरी गाई—

कविता आवे हट्टीयों,
गुड़ कड्डीये कोरी मट्टीयों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—'कविता दुकानसे आ रही है। (उसे भेंट करनेके लिए) हम कोरी 'मट्टी' (मिट्टीका एक बड़ा बर्तन) में से गुड़ निकाल रहे हैं।'

कविताने तो लोरियोंकी माँग ख़तम कर दी ; पर मैंने सोचा कि उसे एक लोरी और सुनवा दूँ—या यों कहिये कि इस बहानेसे एक और लोरी मैं स्वयं सुन सकूँ ; पर उसकी माने आँखों-ही-आँखोंमें मेरे दिलकी बात भाँप ली और झुँझलाकर बोल उठी—"हाँ-हाँ, सिखला दीजिए अपनी कविताको बराबर ज़िद किये जाना! अब मैं उसे और एक भी लोरी नहीं सुनानेकी।'

"पर उसे 'कोको'वाली लोरी अवश्य सुना दो।" —मैंने और भी नरम होकर कहा।

"वह लोरी कविता अपने पिताजीसे सुनेगी।"

मुझे उजर भी क्या हो सकता था ? मैंने कहा—"अच्छा कविता, सुन!"—

चीची चीची कोको खाये,
दुद्ध - मलाई कविता खाये।

—'कविताकी 'चीची' (आँखोंकी गीड) कोको खायेगी। कविता स्वयं दूध-मलाई खायेगी।'

वह कोको क्या बला है, मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं। बच्चोंको रोनेसे चुप करानेके लिए पंजाबमें अकसर कहा जाता है—"चुप्प, कोको औंदी ए (चुप, कोको आती है)।" यह सुनकर बच्चा स्वयं ही चुप हो जाता है और कोकोको बच्चोंके सामने आनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ता। कविता भी अनेक बार कोकोका नाम सुनकर चुप हुई होगी।

माका दिल एक ही है और ममता भी एक ही। ज़रा भाषाकी कठिनाई दूर कर दीजिए, आप संसार-भरमें माके दिलको एक-से गीत गाते पायेंगे। यह ठीक है कि जगह-जगहके गीतोंमें अपना स्थानीय रंग रहता है ; पर इससे इन गीतोंकी दुनिया और भी रसीली बन जाती है। पंजाबी लोरियोंका एक ख़ास रंग यह है कि इन्हें गाते समय मा अपनी सन्तानके नाम जोड़ती जाती है।

पंजाबी लोरियोंकी भाव-धारामें न-जाने इतना रस कहाँसे आ जाता है। जब भी कविता इन्हें सुनती है, उसका दिल मातृ-प्रेमसे शराबोर हो उठता है। लोरियोंकी लय उसकी नन्हीं-सी जीवन-सरितामें नई मस्ती ला देती है। न-जाने वे लोरियाँ कितनी पुरानी हैं ; पर इनके साथ कविताका नाम जुड़ जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इनकी रचना कविताके लिए ही हुई है, और कविता सदा लोरियाँ सुननेके लिए तैयार रहती है। उसकी ख़ास माँग एक ही है—उसे वह कभी नहीं भूलती—'माँ, मुझे लोरी सुना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहज़ादोंका ड्रिंक

श्री बलराज साहनी, एम० ए०

ओवरकोटकी बाँहको कंधेपर फेंकते हुए जगदीश दरवाज़ेकी ओर बढ़ा। दरवाज़ेके नज़दीक पहुँचकर उसने फिर कहा—"देखो, वक्तपर पहुँच जाना। गाड़ियाँ अकसर समयपर ही आती-जाती हैं। प्लैटफ़ार्म नम्बर दो।"

केवलने कुछ हँसकर धीमेसे कहा—"अच्छा।" उसको अपने मित्रका ऊँचा बोलना पसन्द नहीं था। आजकल यह सब इतना ऊँचा क्यों बोलते हैं? ऊँचा और खोखला!

"चीरियो," कहकर जगदीश बाहर चला गया। उसके पैरोंकी चाँप होस्टलके बरामदेमें देर तक सुनाई देती रही।

केवलने साथके कमरेमें जाकर बिस्तरेमें से एक गरम चादर खींच ली और वापस आकर टहलने लगा। इतनी सवेरे उठा दिया जाना कम्बख़्ती नहीं, तो और क्या है! ख़ासकर जब कोई रातको इतनी देरसे सोया हो। अभी अख़बार बेचनेवालोंका गिरोह होस्टलपर धावा बोल देगा और थके हुए दिमाग़पर और अत्याचार करेगा। उसे जल्दी सोने और जल्दी जागनेवालोंसे दिली नफ़रत थी। लेकिन अब लेटनेसे कुछ लाभ नहीं था, क्योंकि दिन चढ़ा ही चाहता था। कालेजके रोमन स्टाइलके नोकीले शिखरकी चोटी सूर्यकी प्रथम किरणोंकी प्रतीक्षा कर रही थी। केवलने कमरेकी खिड़की बन्द कर दी, ताकि रात वहाँ कुछ देर और टिकी रहे, और तब वह आरामकुर्सीपर बैठकर ऊँघने लगा।

प्रभातके हल्के प्रकाशसे कमरेमें क्रमशः उजयाला होने लगा। कमरा करीनेसे सजा था। बेंतकी चार-पाँच कुर्सियाँ, बीचमें लाल कालीन। केवलने ठीक ऊपर बौटीसेलीकी कलमका 'फरिश्तोंके सिर'का चित्र लटक रहा था। साथवाले कमरेमें केवलका साथी अभी तक सोया हुआ था। इन दोनोंने मिलकर यह स्पेशल सेट ले रखा था।

नाश्तेके समय केवलके दोस्तने पूछा—"इतनी सुबह तुम्हारा सिर खाने कौन आया था?"

"जगदीश, और कौन। अपने निमन्त्रणकी याद दिलाने। आज ही बरात दिल्लीके लिए रवाना होगी।"

"अपनी सूरतको दाद दो मियाँ!"

"इसका मेरी सूरतसे क्या ताल्लुक है?" केवलने खिजकर कहा।

"दुनिया चलती ही हुस्नके बलपर है। जगदीश मेरा भी उतना ही वाकिफ़ है, फिर भी उसने मुझे नहीं बुलाया। और देखो—यहाँ भी मेरे रातवाले दृष्टिबिन्दुका समर्थन होता है। संसारमें यदि कुछ है, तो बस हुस्न ही। हुस्नके बिना दुनिया रीती है। यह भीतरी सत्य और आन्तरिक वास्तविकताकी फिलासफ़ी सब बकवास है। सत्य या तो सादा होता है या कड़वा। सौन्दर्य मीठा होता है, इसीलिए हम सब उसकी ओर दौड़ते हैं।"

"क्यों फिज़ूल बहक रहे हो?"

"....तुम्हें याद है वह दूरसे आती हुई चाँदनीमें चमकती हुई नाव? कितना लुभाती थी। मानो संसार-भरका रोमान्स उसीमें भरा हो। निकट आनेपर उसका क्या हुलिया निकला? अब...."

केवलने हँसते हुए तिपाईपर हाथ मारा।

"शाबाश, माई डियर सौक्रेटीज़! लेकिन यह न होगा। मुबाहिसेके लिए अभी बहुत सवेरा है। तुम इतने दार्शनिक कबसे बन गये? पता नहीं, उन बेचारोंका क्या हाल हुआ होगा, जिनका तुम तीन घंटे सिर खाते रहे थे। मियाँ, हम कल पिकनिकपर गये थे, मिशनपर नहीं। बातको कहीं छोड़ा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो। आज मुझे दिल्ली जाना है। इस समस्याका तो तुम्हें ख़याल ही नहीं।"

"दिल्ली जाना भी क्या कोई समस्या है? वह शहर जो एकदम सबसे बूढ़ा और सबसे जवान। देखो, मैंने अपने दूधके दाँत वहाँ गाड़े थे, इस ख़यालसे कि उनसे सिपाही निकलेंगे। काश्मीरी दरवाज़ेके साथवाले बाग़में। ज़रा उन्हें देखते आना।"

"दिल्लगी छोड़ो मियाँ! इम्तहानमें सिर्फ़ बीस दिन रह गये हैं। मैं ज़रूर इनकार कर देता; पर जगदीश इतना ऊँचा चिल्लाता है कि उसने मुझे बोलने तक नहीं दिया।"

"सच बात तो यह है कि तुम बड़े मुलायम हो और सारी उम्र तुम मुलायम ही रहोगे, और मैं तुम्हारा गुलाम रहूँगा। अब तुम्हें छुट्टी लेनेकी समस्या होगी? अच्छा, यह भी मैं ठीक कर लूँगा।"

"थैंक यू।"—केवलने कहा।

- २ -

पश्चिमने हमारे विवाहोंपर यों तो कोई प्रभाव नहीं डाला। सम्बन्ध मा-बाप ही ठीक करते हैं। लड़के-लड़कीका बीचमें बोलना गुनाह समझा जाता है। रस्में भी वही अदा होती हैं, जो कभी बाबा आदमके ज़मानेमें शुरू हुई होंगी। विवाहके दिन दूल्हे और ईदके बकरेमें कुछ विशेष अन्तर नहीं रहता। इन पुरानी प्रथाओंपर दूल्हा-दुलहिनको चाहे कितनी खीज आये, उन्हें मन मारकर रह जाना पड़ता है।

लेकिन सतहके ऊपर पश्चिमका सिक्का ख़ूब जम चुका है। घरोंकी बिजलीसे नुमायश की जाती है। बरातका स्वागत करनेके लिए मण्डप बनाये जाते हैं, जिनमें सोफ़ों और ताड़के गमलोंकी कमी नहीं होती। बराती सूट-बूट पहनकर मोटरोंमें आते हैं, और उन्हें पान-सिगरेट मुस्तैदीके साथ पहुँचाये जाते हैं। खाना मेजोंपर दिया जाता है, हो सके तो चीनीकी तश्तरियोंमें। वे बुजर्ग जो अब भी चाय नहीं पीते, केसरी दुपट्टेके शौक़ीन हैं, पिछली कतारमें जगह पाते हैं, जहाँ बैठकर वे पुराने और नये ज़मानेकी गुत्थियाँ सुलझाते रहते हैं। मौसियों और चाचियोंके झुंड घरके भीतर पकवान बाँटते और आपसमें लड़ते-झगड़ते रहते हैं। विवाह-समारोहके इस चित्रका अगला भाग रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहननेवाली ललनाओंसे भरा रहता है, जो चतुर दूल्हेके लिए गुलाबके हार लिये इन्तज़ारमें होती हैं।

आज स्टेशनपर यह सब स्त्रियाँ भी काफी संख्यामें आई थीं। दूल्हाके पिता लाहौरके प्रमुख व्यक्तियोंमें से थे, इसलिए बरातियोंकी कमी न थी। सारा प्लैटफ़ार्म जगमगा रहा था। हर तरफ़ हँसी-मज़ाककी बहार थी।

गाड़ी चलनेसे दस-पन्द्रह मिनट पहले केवल भी वहाँ आ पहुँचा। भीड़-भाड़को देखकर पहले तो वह झिझका; लेकिन जल्द ही उसका मन बारीक-सी ख़ुशीसे भर गया। आज उसकी पोशाकमें कोई त्रुटि न थी। बाल उसने बड़ी कोशिशसे सँवारे थे। रेशमकी मुलायम कमीज़ पहनी थी और उसपर गहरे नीले रंगका इस्त्री किया हुआ सूट। पैरोंमें चमकीले चमड़ेके काले जूते। अब सिर्फ़ अपने-आपको अपनी सुन्दरतामें बन्द कर लेना ही बाकी था। यही उसने किया। बग़ैर किसीको मिले वह एक कोनेमें जाकर खड़ा हो गया; मगर ऐसे कोनेमें नहीं, जहाँ प्लैटफ़ार्मके किसी तेज़ बल्बकी रोशनी बिलकुल उसके मुँहपर न पड़े। जगदीश केवलकी इन्तज़ारमें था और उसे देखते ही उसके पास आ पहुँचा। आज वह इतना उल्लसित था कि दूर ही से उसने केवलको अपने मित्रोंसे परिचित कराना शुरू कर दिया—"यह प्रकाशचन्द्र हैं, दो साल हुए हमारे ही कालेजसे एम० ए० किया था, अब ई० ए० सी० हैं। रौनकी आदमी हैं। इन्हें हम पीपी कहते हैं। जिसके साथ बातें कर रहा है, क्रिशन खन्ना हैं। ये भी ओल्ड जी० सी० हैं, अब इन्श्योरेन्सका काम करते हैं। यह दोनों हमारे डिब्बे ही में सफ़र करेंगे। शानदार आदमी हैं। और वह...."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल जगदीशकी बात तो सुन रहा था ; पर उसका ध्यान उधर न था। प्लैटफार्मकी चहल-पहल उसे आकर्षित कर रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उन बिजलियोंके नीचे एक नई दुनिया आ बसी हो, जिसकी छतपर न सितारे हैं और न दिलमें हेजान पैदा करनेवाले क्षितिज। इस छोटी-सी दुनियामें केवल उल्लास और सौन्दर्य था। जनसमूहमें लाल और नीली साड़ियाँ पहने हुए ललनाओंका चंचल चक्रव्यूह खिले हुए फूलकी तरह शोभायमान हो रहा था। केवल निस्तब्ध होकर देखता रहा। उसे गार्डकी सीटियों और झंडियों तकका ध्यान न रहा। जब गाड़ी चली और प्लैटफार्म फिसलना शुरू हुआ, फूलकी पत्तियाँ भी बिखरती नज़र आने लगीं, तब उसे ध्यान आया कि सौन्दर्यका यह संसार तो फ़ानी था। जगदीशने उसे ज़ोरसे पुकारा और वह दौड़कर गाड़ीमें सवार हो गया। गाड़ी उफ़-उफ़ करती हुई कुछ ही क्षणोंमें रातकी असीमतामें विलीन हो गई।

- ३ -

केवल अब भी डिब्बेके दरवाजेपर खड़ा था। जगदीशने उसके पास आकर कहा—"अब वहाँ कुछ नहीं है। अन्दर आ जाओ, वर्ना सर्दी खा जाओगे।"

केवलने जैसे अपनी मूर्खतापर हँसते हुए किवाड़ बन्द कर दिया और जगदीशके पास जा बैठा।

"तुम्हें औरतोंपर घूरनेका शौक कबसे सवार हुआ है ? मेरा ख़याल था, तुम अभी बच्चे हो।"

"इसमें बुराई क्या है ? किसी ख़ास स्त्रीको तो मैं ताक नहीं रहा था। यह सारा-का-सारा दृश्य ही इतना मोहक था। मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि हम वहाँसे कभी हिलेंगे ही नहीं।"

"अगर मैं तुम्हें आवाज़ न देता, तो तुम तो कम-से-कम न हिलते।" फिर 'हाँजी,' कहकर उसने ताली दी—"यह मेरे परम मित्र मिस्टर केवल, फ़ोर्थइयर, गवर्नमेन्ट कालेज, यह मेरे भाई मिस्टर रतनचन्द, आप शादी कर रहे हैं।"

"हौ डू यू डू ?"—"हौ डू यू डू !"

"मिस्टर प्रकाशचन्द, केवल ; क्रिशनलाल।"

"हौ डू यूडू ? हौ डू यू डू ! हौ डू यू डू !"

यह अच्छा हुआ कि सब यार-दोस्त ही थे। सबने अपने-अपने बिस्तर निचली सीटोंपर खोल दिये और सूट-बूट उतारकर रातकी पोशाकमें हो गये। केवलने मन-ही-मन ईश्वरको धन्यवाद दिया कि वह अपने रूममेटका ड्रेसिंग गौन ले आया था, वरना अवश्य उसकी फजीहत होती।

गाड़ी खटाखट तेज़ीसे भागी जा रही थी। बाहर कृष्णपक्षकी दूजका चाँद वृक्षोंकी कतारोंके परदेमें से उठता हुआ दीख रहा था।

ज्यादा देर चुप रहना क्रिशनकी आदतके खिलाफ़ था। उसका सिद्धान्त था कि चुप रहना मानवी स्वभावके विरुद्ध है—ख़ासकर इन्श्योरेन्स एजेन्ट इन्सानके लिए। चाँदीका सिगरेट-केस निकालकर उसने सबको पेश किया। केवल पहले तो हिचकिचाया,—उसे आदत न थी,—फिर ले लिया। क्रिशनने बारी-बारी सबके सिगरेट सुलगाये, फिर उन्हें पास बुलाकर आपने ट्रंकके ऊपर बैठ गया और बोला—"तुम्हें कुछ दिखायें ?"

सबने यही सोचा, दूल्हाके लिए यह कोई उपहार लाया होगा। ऊपरकी तहें कपड़ोंकी थीं। उन्हें उठाते हुए क्रिशनने कहा—"भई बूझो, जादूके इस पिटारेमें क्या है ?"

"बिज्जू !"

"बिज्जू तो पिटारेके बाहर है।"—पीपीने कहा। इसपर सब खिलखिलाकर हँस पड़े। सिगरेटके धुएँसे आँखोंको बचानेके लिए क्रिशनलाल ओंट बाहर किये और मुँहके मसल सिकोड़े हुए था। इससे उसकी शकलमें थोड़ा-सा बिज्जूपन आ गया था। अगर क्रिशनलाल आई० ए० के स्थानपर वहाँ सम्पूर्ण बिज्जू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठा होता, तो भी शायद उन्हें उतनी हँसी न आती। इस हँसीमें क्रिशनने तौलियेमें लिपटी हुई एक शेम्पेनकी बोतल निकाली और गालके साथ लगाकर खड़ा हो गया।

"Angels & ministers of grace defend us!" रतनचन्दने सेहरा सिरपर रखकर नाचना शुरू कर दिया। जगदीश और पीपी भी 'जीन्दा रवें जीन्दा रवें!'* का शोर करते हुए उसके साथ शामिल हो गये। केवलको ऐसा जान पड़ा, जैसे वह एकाएक किसी बिलकुल अपरिचित स्थानपर आ गया हो। छोटी उमरमें जब कभी वह अपने गाँव जाता था, तब उसका यही हाल होता था। वहाँका पानी उसे कच्चा लगता और हरदम यही जी चाहता कि वापस लौट जाऊँ; लेकिन उसी गाँवसे एक मासके अन्दर उसे इतना स्नेह हो जाता कि बादमें लौटनेको जी ही न करता।

"खुदाके वास्ते शोर न करो, पिछले डिब्बोंमें बुजुर्ग लोग बैठे हैं।"—क्रिशनलालने चेतावनी दी।

"अरे जाने भी दो, भला कभी उन्होंने भी शराब पी है! इधर लाओ।"

"पहले देख लो कि गाड़ी ठहरनेको तो नहीं।"

"ठहरेगी तो बत्ती बुझा देंगे।"

"यह जाती है फिर,"—कहते हुए उसने फकसे बोतलका डाट खोल डाला और छोटे-छोटे गिलास भर दिये।

"यह लो पहला जाम, दुलहिनके सुहागका!"

केवलने इनकार किया—"मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं नहीं पिया करता—मैं सिगरेटोंमें जो आपके साथ शरीक हूँ—कोई जरूरी है?"

लेकिन कौन मानता था। "तुम्हें मार तो नहीं डालेगी मियाँ! क्या तुम बच्चे हो? शेम्पेन तो 'शाहज़ादोंका ड्रिंक' है, इससे नशा बिलकुल नहीं होता।" जगदीशने भी दो लफ्ज़ कह दिये—

"अपने दोस्तकी शादीपर तो हज़ार खुशियाँ मनानी चाहिए, कभी कोई जाम-सेहतसे भी इनकार करता है!"

केवलने थोड़ी-सी ले ली। बहस करना उसके स्वभावमें न था। आखिर हो क्या गया। एक घूँट-भर लेनेसे बन्दा शराबी थोड़े ही हो जाता है। हमें इन सामाजिक बन्दिशोंको तोड़ना ही पड़ेगा, फिर भी मन मुँह लगानेसे भागता था। दिल कड़ा करके वह उसे पी तो गया; मगर उसी वक्त उसे यह सोचकर सख्त हैरानी हुई कि मजबूत-से-मजबूत दीवारें कितनी आसानीसे टूट सकती हैं।

जब स्टेशन आया, तो सब बत्तियाँ बुझा दी गईं। सब अपने-अपने बिस्तरोंपर चले गये। ईश्वरकी कृपासे वहाँ गाड़ी कुछ ही मिनट ठहरती थी। टोलीका अधिक वक्त जाया न हुआ। अब असली मज़ाक शुरू हुआ। कुछ देर तो दूल्हाकी खबर ली गई। फिर ब्रिज शुरू हुई। शेम्पेनके सहारे एक दूसरेको चित्त करनेका जो मज़ा उन्हें आ रहा था, उसका अन्दाज़ा उनके चमकते हुए चेहरोंसे ही हो सकता था।

पहला गिलास पीते वक्त केवलने कोशिश की थी कि दो-एक घूँट भरकर वह इस खट्टी बलाको बाहर फेंक दे; किन्तु वह ऐसा न कर सका। इसके बजाय यह अच्छा रहेगा कि वह दूसरा गिलास हरगिज़ न ले; लेकिन जब वक्त आया, तब उसकी चू-चराँकी तरफ किसीने ध्यान न दिया। अब तीसरा दौर चल रहा था। पता नहीं, कम्बख्त क्रिशन कहाँसे इतनी बोतलें उठा लाया था।

इस वक्त तक बाहर सभी ओर चाँदनी छिटक गई थी। और वही असीम दुनिया, जो दिनमें धूलिधूसरित और दरिद्र-सी नज़र आती थी, चाँदनीके नीलिम प्रकाशमें शान्त और आनन्दमयी प्रतीत हो रही थी। गाड़ी धुआँधार चीखती-चिंघाड़ती जवानीके क्षणोंको निगलती जा रही थी।

लगभग दो घंटेके बाद।

* जीते रहो! जीते रहो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टेशनपर बिजलीका बटन गिराना और उठाना जगदीशकी ड्यूटी थी। अब वह उसे इतनी चुस्तीसे नहीं कर सकता था। इस बार जब वह रोशनी करने उठा, तो अँधेरेमें किसीकी टाँगोंसे उलझकर फर्शपर जा गिरा। क्रिशन भागकर उसकी मददको गया। केवलने रोशनी की। तब उन्होंने देखा कि अन्धकार ही में दो व्यक्ति छिपकर इस डब्बेमें घुस आये हैं। एक तो अधेड़ उम्रका पुरुष था और दूसरी बुर्का पहने एक स्त्री। पोशाकसे दोनों ही मामूली हैसियतके जान पड़ते थे।

"कौन हो तुम? क्या करने आये हो यहाँ?" क्रिशनने डाँटकर पूछा।

"माफ़ कीजिएगा। हमें पता न था कि यह डब्बा आप लोगोंका है। अगले स्टेशनपर उतर जायँगे।" उसके लहज़ेमें थकावट थी—"अब गाड़ी छूट रही है और मेरे साथ ज़नाना सवारी है।"

केवल इस व्यक्तिको ग़ौरसे देख रहा था। उसके गोरे और सुघड़ चेहरेपर चेचकके दाग़ थे। होठोंपर छँटी हुई काली-काली मूँछें। आँखें काली और अशान्त।

जगदीश गुस्सेमें बड़बड़ा रहा था—"निकाल दो इसको, यह चोर है।"

केवलको अनुभव हुआ कि बहुत बातें कर सकनेकी ताक़त अब उसमें भी नहीं रही; किन्तु उसने देखा कि बुर्केकी जालीमें से दो सुन्दर आँखें उसे देख रही हैं। उसने क्रिशनसे कहा—"अब गाड़ी चल चुकी है, इन्हें बैठने दो, मामूली बात है।"

क्रिशन अभी तक बिलकुल होशमें था। केवलकी बचकानी आतुरतापर वह हँस पड़ा। आगन्तुक और स्त्री एक कोनेमें सिमटकर बैठ गये। ताश और बोतलके दौरमें उनकी हस्तीका किसीको ख़याल तक न रहा—सिवा केवलके। इस रबरमें वह पाँचवाँ था। अलग बैठकर वह ख़यालके दौरे डालने लगा।

रात कितनी सुन्दर थी। तारे जुगनुओंकी भाँति टिमटिमा रहे थे। टेलिग्राफके काले-काले तार नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे तरंगें मारते थे। कभी-कभी बड़े-बड़े वृक्ष आकर उन्हें मानो पोंछ डालते। कभी कोई नहर चमकीले रिबनकी तरह क्षण-भरके लिए झलक दिखाकर निकल जाती और गाड़ीकी निरन्तर झंकारमें एक क्षणके लिए परिवर्तन आ जाता।

यकायक स्त्रीने मुँहपर से पर्दा हटा दिया। केवलका ध्यान उसकी तरफ़ खिंच गया। वह सचमुच सुन्दर थी—रंग साँवला, आँखें बड़ी-बड़ी और चंचल। जबसे वह आई थी, केवलको अनुभव हो रहा था कि वह विशेषकर उसीके प्रति दिलचस्पी ले रही है; पर शायद यह उसकी भूल थी।

उसे फ़िकर हुई। कहीं मैं नशेसे तो नहीं हूँ? कहीं मुझे किसीने पहचान तो नहीं लिया। अगर लालाजीको पता लग गया तो फिर? मनने दूसरी चुटकी ली। कौन कहता है, मैं नशेमें हूँ? वह चाँद है, वह ध्रुव-तारा है, वह जगदीश है। मैं नशेमें कैसे हो सकता हूँ? हो क्या गया, यदि मैंने आज थोड़ी-सी शेम्पेन पी ही ली तो! पश्चिममें सब छात्र शराब पीते हैं, नाचते हैं, गाते हैं। एक हम हैं! हर समय यही सोचते रहते हैं कि यह करेंगे, तो वह क्या कहेगा; वह करेंगे, तो यह सब क्या कहेंगे? उँह! कितनी कमालकी चाँदनी है! क्या यह चाँदनी रात सिर्फ़ सोनेके लिए बनी है? वह देखो, फिर मेरी तरफ देख रही है। आवारा कहींकी! ऊपरके बर्थके सायेके और भी अन्दर छिपकर केवल लेट गया और उन दोनोंकी तरफ़ देखने लगा।

पुरुष सामनेकी दीवारपर टकटकी बाँधे था, जैसे वह किसी विस्तीर्ण मरुभूमिपर नज़र फेर रहा हो। वह किसी गहरे सोचमें होगा। केवलके जीमें आया कि उसे भी लापरवाहीका एक गिलास भरकर पिला दे।

यकायक उसे ऐसा जान पड़ा कि वह चेहरा उसने पहले भी कहीं देखा है। चेहरेसे ज़्यादा आगन्तुककी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूँछें और पगड़ी उसे परिचित जान पड़ीं। निश्चय ही यह चेहरा उसने पहले भी कहीं देखा है; पर कब और कहाँ?

"केवल यह लो!"—क्रिशनने पुकारा। केवल अपना गिलास थामकर उठा। उसे यह अनुभव करके आश्चर्य हुआ कि उसकी टाँगें उसका कहना माननेसे इनकार करने लगी हैं। इस विचित्र अनुभूतिपर उसे बेअख़्तियार हँसी आ गई। केवलको हँसता देखकर उसके साथियोंने भी हँसना शुरू कर दिया। कुछ देरके लिए वे सब ख़ूब खिलखिलाकर हँसते रहे। केवल हँसता भी गया; पर साथ ही उसे हैरानी थी कि और सब इतना क्यों हँस रहे हैं। नाराज़-सा होकर वह वापस लौटा। उसने मुड़कर देखा, तो वह युवती भी उसपर मुसकरा रही थी। केवलको इस क्षण वह बहुत अच्छी लगी।

पुरुषके चेहरेने फिरसे उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसने अवश्य ही वह चेहरा कहीं देखा है! उसे स्मृतिको कुरेदनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। स्मृति भी एक सागर है, जिसकी लहरोंपर हाथ मारता हुआ इन्सान कहाँसे कहाँ जा पहुँचता है। ओह, यह तो भाई कांशीराम था। अवश्य ही। अब उसने नई दिलचस्पीसे आगन्तुककी ओर देखा। निश्चय ही यह तो वही है। जी हुआ कि बग़ैर सोच-विचार किये उन्हें बुला ले। फिर भी रुक गया। सोचा, शायद वह कांशीराम न हो। शायद मैं नशेमें हूँ। भला यह कांशीराम कैसे हो सकता है? इसके साथ तो मुसलमान औरत है?

काश कि वह कांशीराम होता। केवलके दिलमें भावोंकी लहर-सी उठ खड़ी हुई और उसका गला भर आया। उसे अपना बचपन याद हो आया था। कांशीराम उन दिनों स्कूलमें अध्यापक था, और वह केवलको कितना प्यार करता था। केवलके जेब हमेशा चाकू और सलेटी पेन्सिलोंसे भरे रहते थे। स्कूलकी पिकनिकोंपर कांशीराम उसे अपनी साइकिलके आगे बैठाकर ले जाया करता और रास्तेमें नई-नई बातें सुनाकर उसे हैरान किया करता। सूरज खड़ा है, पृथिवी चल रही है! जिस दिन उसने केवलको यह दिखाया कि साइकिलके पैडल उल्टे घुमानेसे भी वह आगे ही जाती है, उस दिन नन्हें केवलकी हैरानीकी सीमा न रही थी। जब केवलको पान खिलाया जाता, तो उसकी लाली केवलकी ठोड़ी तक आ आती। हज़ार कोशिश करनेपर भी वह इसे रोक न सकता था और सबके सामने उसे शर्मिन्दा होना पड़ता था।

मन-ही-मन केवलने अपने-आपको कोसा। कांशीका ख़याल भी किये उसे दस साल हो चले थे। तब केवलने सुना था कि कांशी बदचलन है। वह शराब पीता था और जुआ खेलता था। किसी अपराधमें वह जेल भी गया था। उस उम्रमें केवलकी नज़रोंमें इनसे बढ़कर पाप कांशी और न कर सकता था। उसका कांशीके प्रति सारा प्यार गुस्सेमें परिणत हो गया था। अब यदि..... काश यही कांशीराम होता।

नज़र आने लगा था कि स्टेशन आने ही वाला है। केवल अपने आनन्दमें मग्न बैठा था। उसे लोगोंकी बेवकूफ़ी और क्रूरतापर अफ़सोस हो रहा था। एक आदमीको निकाल बाहर करना, केवल इसलिए कि वह शराब पीता है! मगर वह युवती तो फिर उसे ही ताक रही है। आवारा कहींकी!

ट्रेनके पहियोंमें से एक गानका-सा स्वर निकल रहा था। केवलने उस स्वरकी नकल करना शुरू किया। बाक़ी साथियोंने देखा, केवल गानेकी कोशिश कर रहा है। पीपीने इशारेसे क्रिशनको जताया—"इसे और मत देना।"

गाड़ीने रफ्तार तोड़ दी थी। मजलिस धीरे-धीरे गिलास और बोतलें छिपाने लगी। केवलने चिल्लाकर कहा—"मत छिपाओ, मत पड़वाह करो किशीकी, मत डरो किशीशे!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे प्रतीत हो रहा था कि अब वह सारी दुनियाका मुक़ाबला कर सकता है। आगन्तुकने अपनी साथिनका हाथ पकड़ लिया था और वह एकटक सामनेकी ओर देख रहा था। सब दोस्त ताश छोड़कर अपने-अपने बिस्तरोंमें जानेके लिए उठ खड़े हुए; परन्तु केवल वहीं-का-वहीं बीचके बर्थपर हाथ टिकाकर खड़ा था। अब वह चुप था। बड़ी देरसे वह निरन्तर टकटकी लगाये आगन्तुककी ओर देख रहा था।

गाड़ी खड़ी हो गई। वचनके मुताबिक दोनों आगन्तुक बाहर निकलनेको उठे; परन्तु यह उनकी क़िस्मतमें नहीं बदा था। दरवाज़ा खुला और एक अंगरेज़ पुलिस-अफ़सर दो-तीन सिपाहियोंके साथ अन्दर आ धमका। आते ही उसने गरजकर कहा—"तुम कांशीराम है?"

"इन्शा अल्ला! यही हैं जनाब!"—साथके सिपाहीने खुशीसे चमकते हुए कहा।

कांशीरामका सिर झुक गया। उसने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिये। सिपाही हथकड़ी डालने लगा। इतनेमें पीछेसे केवलने चीखकर कहा—"कौन पकड़ता है इनको? छोड़ दो इनको। यह मेरा भाई है—छोड़ दो।"

अफ़सरने विस्मयमें मुड़कर देखा। केवल लड़खड़ाता हुआ उसी तरफ आनेका यत्न कर रहा था। साथ ही वह अंगरेज़ीमें चिल्लाता भी जा रहा था। क्रमशः निकट आकर वह क़ैदीके गले लग गया। पता नहीं, उसके मुँहसे क्या कुछ निकल रहा था, हालाँकि वह यह कहनेकी कोशिशमें था—"मास्टर कांशीराम! क्या तुम्हें याद नहीं? तुम्हीं तो थे, जो मुझे अपने कन्धेपर बैठाकर नहरमें नहलाया करते थे?"

बाकी चारों मित्र आश्चर्यके पुतले बन रहे थे। सिपाहियोंने बड़ी कठिनतासे केवलको हटाया, फिर क़ैदीसे पूछा—"क्या तुम इस छोकरेको जानते हो?"

कांशीरामने डपटकर कहा—"क्या तुम देख नहीं रहे हो कि इसने शराब पी रखी है? मैं क्या जानूँ कि यह कौन है?"

उधर केवल अंगरेज़ीमें सार्जन्टको अपनी तरफ़से बड़ी संजीदगीके साथ समझा रहा था—"मेरा नाम केवल है। मैं इसका भाई हूँ—सगा भाई हूँ।"

सार्जन्टने देखा कि सब लड़के किसी शरीफ घरानेके हैं और इस वक्त नशेमें हैं। अपने क़ैदियोंको बाहर ले जाकर उसने पास ही खड़े हुए गार्डसे उनका ध्यान रखनेकी ताक़ीद कर दी। क्रिशनने बत्तियाँ बुझा दीं। गाड़ी भी सीटी देकर चल दी।

केवल अपने बर्थपर औंधे-मुँह जा गिरा। वृक्षोंमें उलझी हुई चाँदनीसे पृथिवीपर विचित्र-विचित्र प्रतिबिम्ब बन रहे थे। कांशी····क्या उसने मुझे नहीं पहचाना? ····थके हुए दिमाग़में सुबहके शब्द झंकृत हो उठे—वास्तविकता, सौन्दर्य····उसने सोचनेकी कोशिश की; पर शराब सोचने नहीं देती।

गाड़ी खटाखट-खटाखट दौड़ी चली जा रही थी।

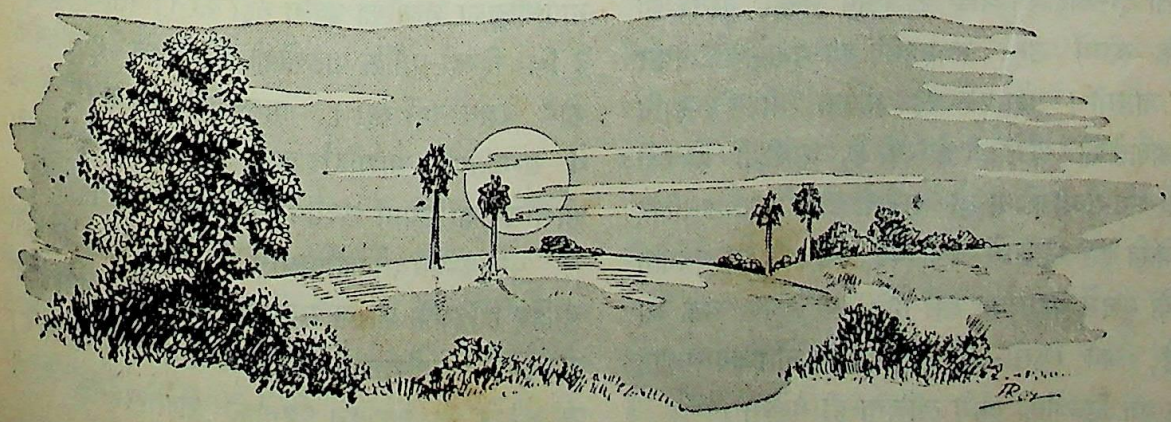

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें कैसे बिकें ?

हिन्दी-पुस्तकोंकी बिक्रीके सम्बन्धमें 'विशाल भारत'ने जिस आन्दोलनका सूत्रपात किया था, उसमें यथेष्ट सफलता तो नहीं मिली, क्योंकि इस प्रकारके आन्दोलन किसी एक मासिक पत्रके बलबूतेपर चलाये ही नहीं जा सकते—फिर भी अनेक पत्र-पत्रिकाओंका ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ है। 'हंस', 'अर्जुन', 'सैनिक', 'भारत', 'लेखक' इत्यादि पत्रोंमें इस विषयपर नोट अथवा लेख निकले हैं, और कई प्रकाशकोंने भी इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग परिस्थितिकी गम्भीरताको भलीभाँति समझ गये हैं, और यदि अभी नहीं, तो थोड़े दिनों बाद वे संगठित होकर कुछ-न-कुछ प्रयत्न अवश्य करेंगे। अब तक उन्होंने इस ओर पूरी तौरपर ध्यान नहीं दिया, इसका कारण उनकी अदूरदर्शिता ही समझी जानी चाहिए। पुस्तकोंकी बिक्रीका काम एक व्यापारिक कार्रवाई है, और लेखकोंकी आदर्शवादिता उसमें एक अंश तक ही काम कर सकती है। यदि प्रकाशक लोग क्षमा करें, तो हम कहेंगे कि उनमें से कितने ही अभी इस आन्दोलनके महत्त्वको समझते ही नहीं। वे आज दस रुपये खर्च करके कल ही उसके परिणामको भी देखना चाहते हैं, या यों कहिये कि वे हथेलीपर आम उगाना चाहते हैं! वे इस बातको नहीं समझते कि यदि इस आन्दोलनपर वे आज सौ दो सौ रुपये खर्च कर देंगे, तो दो-चार वर्ष बाद यह रक़म उनकी पुस्तकोंकी बिक्रीके रूपमें उन्हें अवश्यमेव मय मुनाफेके वापस मिल जायगी। शायद यह भावना भी कि हानि हमारे अकेलेकी थोड़े ही हो रही है, सभीकी हो रही है और लाभ भी होगा तो सबको ही होगा, इसलिए हम अकेले इस झंझटमें क्यों पड़ें, उनकी इस वर्तमान उपेक्षाके मूलमें काम कर रही है; पर अब वक्त आ गया है, जब किसी-न-किसी प्रकाशकको इंजन बनकर गाड़ीके इन डिब्बोंको आगे खींचना ही पड़ेगा।

सबसे प्रथम कार्य प्रकाशक-संघकी स्थापनाका है। यदि सस्ता-साहित्य-मंडल अथवा श्री नाथूराम प्रेमी या अन्य कोई प्रकाशक अभीसे पत्र-व्यवहार करके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके मदरासवाले अधिवेशन तक कुछ काम कर ले, तो उस महत्त्वपूर्ण अवसरपर इस संघकी स्थापना हो सकती है। दूसरा विचार एक त्रैमासिक पत्रिकाका है। यदि यह अभी कार्यरूपमें परिणत न किया जा सके, तो अभी किसी साप्ताहिक पत्रके अतिरिक्त अंकके रूपमें प्रतिमास आठ पृष्ठ 'प्रताप' के साइज़के निकाले जा सकते हैं। इससे प्रचार भी दूर-दूर तक होगा। मान लीजिए, यदि 'प्रताप'का अतिरिक्त अंक निकालनेका निश्चय हो, तो प्रकाशकोंका कर्तव्य है कि वे 'प्रताप'में अपनी पुस्तकोंका विज्ञापन दें, जिससे 'प्रताप' इस अंकका व्यय सम्हाल सके। कोई भी पत्र घाटा देकर इस प्रकारके अतिरिक्त अंक नहीं निकाल सकता। आलोचनाका कार्य स्वतन्त्र आलोचकोंके ज़िम्मे छोड़ देना चाहिए; उसमें किसी प्रकारका दख़ल देना स्वयं प्रकाशकोंके लिए विघातक होगा।

आलोचकोंको अपनी ज़िम्मेवारी स्वयं समझनी चाहिए। आजकल तो स्थिति इतनी ख़राब हो गई है कि मेल-मुलाहिज़ेमें आप किसी रद्दी-से-रद्दी पुस्तकके विषयमें अच्छी-से-अच्छी सम्मति हिन्दीके धुरन्धर विद्वानोंसे लिखा सकते हैं! वे इस बातको नहीं समझते कि हमारे शब्दोंका कुछ मूल्य भी है, और इसलिए नाप-तोलकर शब्दोंका प्रयोग नहीं करते। नतीजा यह हुआ है कि हिन्दी-पत्रोंके पाठकोंकी दृष्टिमें इन सम्मतियोंका कोई वज़न नहीं रहा। पाठकगण समझ गये हैं कि ये सम्मतियाँ आशीर्वादात्मक हैं, और ये गम्भीर आलोचनाका स्थान कदापि नहीं ले सकतीं।

पुस्तक-परिवर्तनकी प्रथामें भी उचित संशोधन होना चाहिए। इसके कारण सद्ग्रन्थोंकी बिक्रीमें बड़ी बाधा पड़ गई है। कमीशनका सवाल भी अत्यन्त आवश्यक है; पर अकेले प्रकाशक इन प्रश्नोंको सन्तोषजनक रीतिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल नहीं कर सकते। उन्हें जनता तथा लेखकों, आलोचकों और पत्रकारोंका भरपूर सहयोग मिलना चाहिए। यदि प्रकाशकोंमें कुछ भी सहजबुद्धि हो, तो उनके लिए यह सहयोग प्राप्त करना कठिन न होगा। इस वक्त प्रकाशक लोग एक रुपयेकी किताब भेजकर यह आशा करते हैं कि उसकी आलोचना एक कालममें की जाय। यदि वे एक कालममें उसी पुस्तकका उसी स्थानपर विज्ञापन छपावें, तो उन्हें दस-बारह रुपयेसे कम न देने पड़ेंगे। एक पैसेमें जो लोग तीन धेले भुनाना चाहते हैं, उनके सयानेपनके विषयमें क्या कहा जाय!

लेखकोंसे हमें इतना ही कहना है कि यदि आपकी पुस्तकोंका यथोचित प्रचार नहीं हुआ, तो आपकी आत्माको सन्तोष कदापि नहीं मिल सकता। थोड़ा-सा पारिश्रमिक मिल जानेसे ही लेखक सन्तुष्ट नहीं हो सकता। असली चीज़ उसके विचारोंका प्रचार है, उसके उद्देश्योंकी सिद्धि है। हम उन लेखकोंकी नहीं कहते, जो एक महीनेमें एक ग्रन्थ लिख डालते हैं। इस समय सत्साहित्यके प्रकाशकों, ज़िम्मेवार आलोचकों तथा गम्भीर लेखकोंका सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। 'प्रताप', 'सैनिक', 'कर्मवीर', 'स्वराज्य' इत्यादि साप्ताहिक पत्रोंके और 'आज', 'भारत', 'अर्जुन', 'हिन्दुस्तान' इत्यादि दैनिक पत्रोंके सम्पादकोंसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे इस आन्दोलनको अपने हाथमें ले लें। मासिक पत्रोंको भी उनका साथ देना चाहिए।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

—

[२]

जैसा कि 'विशाल भारत' के एक सुयोग्य पाठकने लिखा है कि पुस्तकोंके प्रचारके लिए जनतामें सत्साहित्यकी भूख जाग्रत करना अत्यन्त आवश्यक है। साधारण जनतामें तो क्या, हम पढ़े-लिखे और शिक्षित कहे जानेवाले व्यक्तियोंमें भी 'पढ़नेका शौक़' है ही नहीं, पठन-पाठन-मनोवृत्तिका ज़बरदस्त अभाव है। यह ठीक है कि ग़रीबीके कारण लोगोंको पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ ख़रीदनेमें दिक्क़त पड़ती है; परन्तु ग़रीबीसे भी बढ़कर जो कारण है, वह है पढ़नेके शौक़की कमी। इनमें से बहुतसे तो स्कूल और कालेज-जीवनसे छुट्टी मिलते ही पुस्तकोंकी अन्त्येष्टि-क्रिया कर डालते हैं और फिर ज़िन्दगी-भर पढ़नेका नाम भी नहीं लेते। फिर हिन्दी-पुस्तकें पढ़ना और वह भी ख़रीदकर बड़े दूरकी बात है। इसी पढ़नेके शौक़की वजहसे विदेशोंकी मामूली-से-मामूली पत्र-पत्रिकाओंकी ग्राहक-संख्या लाखों तक पहुँच जाती है। पुस्तकोंके प्रकाशक ही नहीं, वरन लेखक तक केवल पुस्तकोंकी आमदनीसे ही लखपती बन जाते हैं, और यह उस हालतमें, जब वहाँ भारतकी अपेक्षा आबादी कम है और जहाँ हमारे देशकी अपेक्षा कई गुनी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं! कहा जा सकता है कि पाश्चात्य देशोंमें अधिकांश जनता साक्षर और शिक्षित होती है, अतएव वहाँ लाखोंकी तादादमें पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंका बिकना स्वाभाविक है। यह ज़रूर है कि भारतवर्षमें यहाँकी जनसंख्याके हिसाबसे पढ़े-लिखे लोगोंकी संख्या बहुत कम है; परन्तु फिर भी यहाँपर सब मिलाकर जितने पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं, उनकी संख्या छोटे-मोटे उन्नत देशकी पूर्ण जनसंख्यासे कहीं अधिक है। इस विषयमें बहुत दूर जानेकी ज़रूरत भी नहीं है। अपने ही देशमें बँगला और मराठी प्रभृति प्रान्तीय भाषाएँ हिन्दीकी अपेक्षा विशेष सौभाग्यशालिनी हैं।

इस पढ़ने-लिखनेके शौक़को पैदा करनेके लिए हमें बच्चोंमें शुरू ही से पढ़ने-लिखनेकी प्रवृत्ति पैदा कर देनी चाहिए। विद्यार्थी-जीवनमें बच्चोंकी भली-बुरी जैसी भी आदत पड़ जाती है, वह तमाम उम्र बनी रहती है। ऐसी दशामें बच्चोंमें शुरू ही से पढ़नेका शौक़ पैदा करा देना अनिवार्य है। इस उम्रमें पढ़नेका जो शौक़ पैदा हो जायगा, वह ज़िन्दगी-भर क़ायम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा और उनके स्वभावका एक अंग बन जायगा। इस बातका ध्यान रखा जाय कि बच्चोंमें यह शौक़ केवल पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित नहीं रहता। वे 'बाहरी' पुस्तकोंको भी चावके साथ पढ़ते हैं। यहाँ एक बात और भी ध्यान देने-योग्य है। अधिकांश साक्षर जनताकी शिक्षा प्राइमरी तथा मिडिल स्कूलोंमें ही समाप्त हो जाती है। और यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अधिकांश मिडिल और प्राइमरी स्कूलोंमें पुस्तकालय नामकी कोई चीज़ होती ही नहीं। पुस्तकालयोंके अभावमें विद्यार्थी बाहरी पुस्तकें पढ़ें, तो कैसे? गाँवों और क़स्बोंके स्कूलोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी तो कौन कहे, उनके शिक्षकों तकको इन पुस्तकोंके दर्शन नहीं होते। विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों ही में पढ़नेका शौक़ पैदा करनेके लिए इन स्कूलोंमें पुस्तकालयोंकी स्थापना अनिवार्य है। अकेले युक्तप्रान्त ही में इस प्रकारके सैकड़ों पुस्तकालय स्थापित किये जा सकते हैं। इन पुस्तकालयोंसे अच्छी पुस्तकोंके प्रचारमें बहुत सहायता मिलेगी। यदि प्रत्येक ऐसे पुस्तकालयके द्वारा दो-चार विद्यार्थियोंमें पढ़नेका शौक़ पैदा हो गया, तो हिन्दी-पुस्तकोंके हज़ारों पाठक तैयार हो जायँगे। अच्छी पुस्तकोंके प्रचारके अन्य साधनोंमें यह भी कम उपयोगी साधन सिद्ध न होगा।

इन पुस्तकालयोंकी स्थापना ही से कर्तव्यकी इतिश्री न हो जायगी। पुस्तकालयोंकी स्थापनासे भी अधिक कठिन काम उन तक सत्साहित्यका पहुँचाना है। अभी तो हममें से अधिकांश व्यक्ति यह भी अच्छी तरहसे नहीं समझ पाते कि हमें क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं? पुस्तकालयोंमें भी अच्छी पुस्तकोंका चुनाव बहुत कठिनतासे हो पाता है। इस कार्यके लिए सामयिक महत्त्वपूर्ण विषयोंको समझने और उनकी साधारण जानकारी प्राप्त करनेके लिए पढ़ने-योग्य पुस्तकोंकी सूचियाँ प्रकाशित करना बहुत ज़रूरी है। हिन्दीमें ऐसी सूचियोंके प्रकाशनका अभी तक कोई चलन नहीं है। अच्छी पुस्तकोंकी ठीक-ठीक जानकारी न होनेके कारण केवल उनकी बिक्रीपर ही प्रभाव नहीं पड़ता, वरन् जनसाधारणकी ज्ञान-वृद्धि, शिक्षा, जानकारी, बुद्धि और मस्तिष्कके विकासमें भी बाधा पड़ती है। दूषित साहित्यके, जिसकी पहुँच जनसाधारण तक आसानीसे हो जाती है, प्रभावको देखकर बहुतसे लोगोंको पुस्तक-मात्रसे चिढ़ हो जाती है।

एक तो हिन्दी-पुस्तकोंके ख़रीदार ही बहुत कम हैं; जो हैं भी, उन तक नवीन प्रकाशित पुस्तकोंकी सूचना पहुँचानेका कोई विशेष साधन नहीं। दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंमें पुस्तकोंके बारेमें आम तौरपर कुछ भी प्रकाशित नहीं होता। मासिक पत्रोंमें भी 'हंस'-सम्पादकके शब्दोंमें—"पुस्तकोंकी आलोचना या तो होती ही नहीं, या साल-छै महीने बाद होती भी है, तो वह निष्पक्ष नहीं।" जब ख़रीदारों तक माल तैयार होनेकी ख़बर ही नहीं पहुँचती, तो ख़रीदें तो क्या? फिर अच्छे-बुरे मालकी तमीज़ करना भी तो बड़ी बात है। आजकल आम तौरपर सस्ती और दूसरे-तीसरे दर्जेकी पुस्तकोंके एजेंट छोटे-छोटे गाँवों तक पहुँच जाते हैं और कम-से-कम मूल्यपर अपनी पुस्तकें बेच आते हैं। डाक-महसूलके बहुत ज़्यादा बढ़ जानेके कारण लोग डाक-पार्सल बहुत ही कम मँगाते हैं। उनके पास जैसा कुछ भी साहित्य घर-बैठे पहुँच गया, उसीमें से अपनी ज़रूरतें पूरी करनी होती है। फिर पुस्तकें कोई दैनिक आवश्यकताकी वस्तु तो हैं नहीं, जिनके बिना नित्यप्रतिके सांसारिक कार्य बिलकुल चल ही न सकें और जिसके लिए ख़रीदार ख़ास तौरसे छानबीन करें। हिन्दीमें ऐसे युगके आगमनके लिए अभी वर्षों तक प्रतीक्षा करनी होगी। इस परिस्थितिमें यह परमावश्यक है कि नवीन प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी सूचना पाठकों तक पहुँचानेकी शीघ्र ही कोई उचित व्यवस्था की जाय। पत्र-पत्रिकाओंमें पुस्तकोंकी आलोचना निकलनेके अतिरिक्त इस बातके लिए और भी साधन जुटाये जाने चाहिए। यदि प्रकाशक-संघ संगठित ही किया जाय, तो उसकी ओरसे 'साहित्य'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा किसी अन्य नामकी एक पत्रिकाके प्रकाशनका प्रबन्ध होना चाहिए। इस पत्रिकामें प्रकाशक-संघके समस्त प्रकाशकोंकी ओरसे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी विस्तृत सूचनाएँ, उनके परिचय और आलोचनाएँ प्रकाशित की जानी चाहिए। विभिन्न रुचिके पाठकोंके लायक पुस्तक-सूचियाँ भी प्रकाशित की जानी चाहिए। जिस तरह प्रकाशक लोग अपनी पुस्तकोंके विज्ञापनमें रुपया खर्च करते हैं, उसी तरह उन्हें इस पत्रिकाके प्रकाशनमें भी कुछ खर्च करना चाहिए और उसे केवल नाममात्रके मूल्यमें अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुँचानेका प्रबन्ध करना चाहिए। इस पत्रिकाके द्वारा शीघ्र-से-शीघ्र पुस्तकोंकी सूचनाएँ पाठकों तक बराबर पहुँचती रहेंगी।

इस पत्रिकाके अतिरिक्त विभिन्न विषयोंकी अच्छी पुस्तकोंकी सूचियोंका भी संकलन होना चाहिए। इन सूचियोंकी तैयारीमें विभिन्न विषयोंमें रुचि रखनेवाले पाठकोंको भाग लेना चाहिए। अपने पढ़े हुए ग्रन्थोंका परिचय जनसाधारणको देकर वे अच्छे साहित्यके प्रचारमें सहायक होंगे। महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक जयन्तियों तथा उत्सवोंके अवसरपर उन जयन्तियों और उत्सवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक-सूचियों और पुस्तक-परिचय-पत्रिकाओंसे भी पुस्तकोंके प्रचारमें सहायता मिल सकती है।

इन सूचियोंके अतिरिक्त इस समय और भी कई प्रकारकी प्रामाणिक पुस्तक-सूचियोंकी बड़ी ज़रूरत है। शिशुओं, बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों और प्रौढ़ोंके योग्य साहित्यकी प्रामाणिक सूचियाँ प्रकाशित की जानी चाहिए। इन सूचियोंकी तैयारीमें हिन्दीके समस्त साहित्यिकों और विद्वानोंके सहयोगकी ज़रूरत है। इन सूचियोंका निर्माण बहुत ही सावधानीसे किया जाना चाहिए और अधिकारी विद्वानों द्वारा इनकी स्वीकृति होनी चाहिए। इनके अतिरिक्त व्यवसायियों, व्यापारियों, मजूरों, किसानों आदिके लायक पुस्तक-सूचियाँ भी संकलित की जायँ।

आजकल हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंमें पुस्तकालय-आन्दोलनमें भी दिलचस्पी ली जा रही है; परन्तु केवल पुस्तकालयोंकी स्थापनासे ही काम न चलेगा, पुस्तकालयोंकी पुस्तक-सूचियोंका निर्माण बहुत ही ज़रूरी है। छोटे-छोटे पुस्तकालयोंके लिए २५०, ५०० और १००० पुस्तकोंकी प्रामाणिक सूचियोंसे अच्छे साहित्यके प्रचारमें काफी सहायता मिलेगी। इन सूचियोंके अभावमें छोटे पुस्तकालयोंके कार्यकर्ताओंको अच्छी पुस्तकोंके ख़रीदनेमें बहुत दिक्कत होती है।

इसी तरह अच्छे साहित्यके प्रचारमें साहित्यिक प्रदर्शिनियोंसे भी बहुत सहायता मिल सकती है। इन प्रदर्शिनियोंके अवसरपर पुस्तकोंके महत्व और उपयोगिता बतलानेवाले आकर्षक बुलेटिन भी प्रकाशित किये जाने चाहिए। ऐसे ही और भी कार्य, जिनसे जनताका ध्यान सद्ग्रन्थोंकी ओर आकर्षित हो, समय-समयपर बराबर होते रहने चाहिए। जनताकी मौजूदा रुचिको परिष्कृत करनेके भी प्रयत्न किये जायँ।

आम तौरपर अच्छे ग्रन्थोंका मूल्य तो बहुत ज्यादा रख दिया जाता है; परन्तु उसकी निकासी और प्रसारके लिए विशेष प्रयत्न बहुत ही कम किया जाता है। घटिया पुस्तकोंकी लिए उच्चकोटिके ग्रन्थोंकी निकासीके अपेक्षा अधिक प्रयत्न किये जाते दृष्टिगोचर होते हैं। अच्छे ग्रन्थोंको जितना सस्ता बेचा जायगा, उतनी ही अधिक उनकी बिक्री भी होगी।

पुस्तकोंपर डाक-व्यय कम किये जानेपर तो वास्तवमें बहुत तीव्र आन्दोलन करनेकी ज़रूरत है। 'विशाल भारत' के एक सुयोग्य पाठकने 'सत्साहित्य-प्रचार-मंडल' या ऐसी ही किसी दूसरी संस्थाकी स्थापनाका जो प्रस्ताव किया है, उससे भी सद्ग्रन्थोंकी बिक्रीमें मदद मिल सकती है। जो-कुछ भी किया जाय, संगठित होकर और लगनके साथ। वास्तवमें इस आन्दोलनको तो कुछ समय तक लगातार विधिवत् रूपसे चलानेकी बहुत ज़रूरत है। केवल दो-एक लेख या चिट्ठी-पत्री प्रकाशित करना पर्याप्त न होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विशाल भारत' के नोट और मार्तण्डजीके लेखके बाद हिन्दी-पत्रोंमें इस विषयकी चर्चा तो ज़रूर हुई है ; परन्तु बहुत कम। विद्वानों और साहित्य-सेवियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित ज़रूर किया गया है ; परन्तु कोई उपयोगी एवं व्यावहारिक योजना नहीं बनाई गई। अच्छा तो यह हो कि कुछ अनुभवी प्रकाशक इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करें और व्यावहारिक योजना बनाकर प्रकाशित करें। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसके अनुकूल कार्य करनेका प्रयत्न करें।

—श्यामनारायण कपूर, बी-एस० सी०

—

[३]

श्री मार्तण्ड उपाध्याय तथा श्री नाथूराम प्रेमीने 'विशाल भारत' में हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसायकी शोचनीय अवस्थाकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके समयोचित कार्य किया है। कुछ समय हुआ कि हमारे पत्रकार तथा प्रकाशक इस बातका रोना रोते थे कि अंगरेज़ी पढ़े-लिखे विद्वान हिन्दीमें न लिखकर अंगरेज़ीमें लिखते हैं ; किन्तु आज वह समय नहीं है। अनेक उपयोगी विषयोंपर हिन्दीमें लिखनेवाले अधिकारी लेखक मौजूद हैं। यदि प्रोत्साहन मिले, तो प्रसिद्ध विद्वान भी हिन्दीमें लिखनेको तैयार हो सकते हैं। परन्तु हिन्दीमें प्रकाशन-व्यवसायकी दशा इतनी गिरी हुई है कि जिस किसी भी लेखकने एक पुस्तक लिख ली, वह साधारणतः हिन्दीमें दूसरी पुस्तक लिखनेका साहस नहीं करेगा। यदि कोई विद्वान गल्प, उपन्यास, धार्मिक अथवा कामशास्त्रकी पुस्तकोंके अतिरिक्त अन्य किसी उपयोगी विषयपर कोई पुस्तक लिखता है, तब तो उसकी पुस्तकके लिए प्रकाशक मिलना ही कठिन होगा। लेखक ऐसे अनेक विद्वानोंसे परिचित है कि जिनके पास आवश्यक विषयोंपर प्रमाणिक ग्रन्थ लिखे हुए रखे हैं ; परन्तु उन्हें कोई प्रकाशित करनेको तैयार नहीं होता ! विवश होकर लेखकको ही प्रकाशक बनना पड़ता है। फल यह होता है कि उसकी पुस्तक रखी-रखी सड़ा करती है और मित्रोंकी भेंट करनेके काममें आती है। एक बार अपना रुपया और समय नष्ट कर चुकनेके उपरान्त एक व्यक्तिसे हम यह आशा कैसे कर सकते हैं कि वह दूसरी बार भी हिन्दीमें कोई पुस्तक लिखनेकी मूर्खता करेगा। हो सकता है कि थोड़ेसे साहित्यिक तपस्वी भूखे रहकर भी हिन्दीमें उपयोगी साहित्य उत्पन्न करते रहें ; परन्तु इस प्रकार कितने व्यक्ति हिन्दीकी सेवा कर सकते हैं ?

कविता, गल्प, उपन्यास, धार्मिक तथा कामशास्त्रपर लिखनेवालोंके नाम भी बैंकोंमें बड़े-बड़े एकाउन्ट हों, यह बात नहीं। उन्हें भी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है ; परन्तु उनकी पुस्तकोंको प्रकाशित करनेके लिए प्रकाशक तैयार हो जाते हैं और कुछ नाममात्रको ले-देकर अथवा कभी कुछ भी न देकर पुस्तक छाप देते हैं। हिन्दी-प्रकाशकोंकी सम्भवतः धारणा यह है कि लेखकको यही क्या कम पुरस्कार मिलता है कि उसकी पुस्तक छप जाती है। जब हिन्दीके महान कलाकार स्वर्गीय प्रेमचन्दजीको जीवनमें भयंकर आर्थिक संकटका सामना करना पड़ा, तो औरोंका तो कहना ही क्या है। फिर भी जो-कुछ पैसा हिन्दीमें लिखनेवालोंको मिलता है, वह अधिकतर कविता, गल्प और उपन्यास लिखनेवालोंको ही प्राप्त होता है। दूसरा लाभ उन्हें यह भी है कि उनका नाम साहित्यिकोंकी श्रेणीमें आ जाता है। विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र इत्यादि विषयोंके लेखकोंको तो हिन्दीमें साहित्यिक ही नहीं माना जाता !

हिन्दीके प्रकाशकोंके पास इन सब बातोंका एक ही प्रामाणिक उत्तर है, और वह यह है कि हिन्दीमें पाठकोंकी कमी है, और जो भी पाठक हैं, उनकी रुचि सरल साहित्यकी ओर है। जब पुस्तकें बिकतीं नहीं, तब प्रकाशक लेखकोंको पुरस्कार कैसे दे सकता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जिन विषयोंकी बाज़ारमें तनिक भी माँग होनेकी सम्भावना नहीं है, उन पुस्तकोंको वह प्रकाशित करनेका साहस भी किस प्रकार कर सकता है ? इस उत्तरमें बहुत-कुछ तथ्य है। आखिर प्रकाशक है तो व्यवसायी ; उसे तो हानि-लाभका विचार करना ही होगा। इसका फल यह हो रहा है कि प्रकाशक पुस्तकोंका मूल्य अधिक रखते हैं, लेखकको या तो कुछ नहीं देते अथवा नाममात्रको थोड़ा-सा दे देते हैं और पुस्तक-विक्रेताओंको अधिक-से-अधिक कमीशन देकर अपने स्टाकको निकालनेका प्रयत्न करते हैं। वातावरण ऐसा दूषित बन गया है कि जो भी प्रकाशक अधिक कमीशन नहीं देना चाहता, उसकी पुस्तकें पुस्तक-विक्रेता रखते ही नहीं, अतएव उसे भी झक मारकर अधिक कमीशन देना ही पड़ता है। तभी तो यह सम्भव है कि हिन्दीके प्रकाशक पचास और साठ प्रतिशत तक कमीशन दे सकते हैं। लेखकको भूखा रखकर, निर्धन हिन्दी-पाठकोंके लिए पुस्तकोंका मूल्य उनकी सामर्थके बाहर रखकर, अधिक-से-अधिक कमीशन देकर अपने मालको बाज़ारमें खपानेका जो प्रयत्न किया जा रहा है, इसका अन्त किस प्रकार हो, यह एक समस्या है, जिसपर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीको गम्भीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है।

आज संगठित व्यवसायका युग है। प्रत्येक धन्धेमें लगे हुए व्यवसायियोंको अपने हितोंकी रक्षा करनेके लिए संगठित होनेकी आवश्यकता पड़ती है। वह समय चला गया, जब प्रत्येक व्यवसायी अकेले ही अपना काम करता था। जूट-मिल-मालिकोंको यदि यह आवश्यकता प्रतीत होती है कि 'वे जूट-मिल-ओनर्स ऐसोसियेशन' स्थापित करें, तब क्या कारण है कि हिन्दीके प्रकाशक अपने हितोंकी रक्षाके लिए अपनेको संगठित न करें ? आगे चलकर आवश्यकता तो इस बातकी होगी कि भारतवर्षकी प्रत्येक भाषाके प्रकाशक-संघ अपना एक संगठन करें, जिससे वे कर-नीति, पोस्टल रेट्स, सेंसर तथा अन्य प्रश्नोंपर अपनी सम्मिलित माँग सरकारके सामने रख सकें और उसके लिए आन्दोलन कर सकें। आजकल व्यावसायिक जगतमें एक परिवर्तन और हुआ है, वह है अपने मालकी बाज़ारमें माँग उत्पन्न करना। अब केवल यही आवश्यक नहीं है कि व्यवसायी उत्तम वस्तु उत्पन्न करे, वरन् उससे अधिक आवश्यक यह है कि बाज़ारमें उसके लिए माँग उत्पन्न करे। टी-सेस-कमेटी, साफ्त कोक ऐसोसियेशन, कंकरीट ऐसोसियेशन, खादके विक्रेताओं तथा अन्य व्यवसायियोंके संघोंको देखिये, अपने मालके लिए माँग उत्पन्न करनेमें कैसे प्रयत्नशील हैं। चायकी बिक्री हिन्दुस्तानमें कम है, उसकी माँग देशमें बढ़ानेके लिए टी-सेस-कमेटी कैसा भगीरथ प्रयत्न कर रही है ? लाखों घरोंमें अब लकड़ीके स्थानपर कोयला क्यों जलता है ? इमारतोंके बनानेमें सीमेंट और कंकरीटका उपयोग क्यों बढ़ गया है ? कारण यह है कि व्यवसायियोंने उनकी माँग पैदा की है। केवल यह कह देनेसे कि इस वस्तुकी बाज़ारमें माँग नहीं है, काम नहीं चल सकता। आर्थिक संगठन अब ऐसा बन गया है कि माँग उत्पन्न करनी पड़ती है। अर्थशास्त्रका विद्यार्थी होनेके कारण जब इन पंक्तियोंका लेखक हिन्दी-प्रकाशकोंका उपर्युक्त उत्तर सुनता है, तो वह उनकी व्यावसायिक बुद्धिकी प्रशंसा नहीं कर सकता। क्या मैं नम्रतापूर्वक हिन्दी-प्रकाशकोंसे पूछ सकता हूँ कि उन्होंने हिन्दी-पुस्तकोंकी माँग बढ़ानेका कोई उपाय अभी तक किया है ? यदि नहीं, तो दोष किसका है ?

सबसे ज़रूरी बात यह है कि हिन्दी-पाठकोंकी रुचि, हिन्दी-पुस्तकोंकी बिक्री तथा पुस्तकें बेचनेवालोंकी वर्तमान अवस्थाका पूर्ण अध्ययन किया जाय। यह अध्ययन केवल शहरी हिन्दी-जनताके विषयमें ही न हो, वरन् ग्रामीण जनताकी माँगके विषयमें भी होना चाहिए। हमारे उच्च श्रेणीके प्रकाशकों तथा लेखकोंने एक बड़ी भारी भूल यह की है कि उन्होंने ग्रामीण पाठकोंके लिए कोई सरल, मनोरंजक तथा उपयोगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य प्रकाशित करनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इसका फल यह हुआ है कि अश्लील और गन्दे गानों तथा कहानियोंकी पुस्तकोंने गाँवोंमें अपना सिक्का जमा रखा है। आप किसी पैंठ, मेले तथा स्टेशनपर जाइये, आपको नत्थामलकी नौटंकी, तोता-मैनाके क़िस्से तथा अन्य ऐसी ही अश्लील पुस्तकोंका एक-न-एक बेचनेवाला अवश्य मिल जायगा, जब कि बड़े-बड़े स्टेशनों और साधारणतः साधारण नगरोंमें भी हिन्दीकी अच्छी पुस्तकोंके बेचनेवालोंके दर्शन भी नहीं होते। क्या कभी किसी हिन्दीके कुशाग्रबुद्धि प्रकाशकने यह भी सोचा कि यह जो हज़ारोंकी संख्यामें गन्दी पुस्तकें बेचनेवाले गाँवों और कस्बोंमें पुस्तकें बेचकर अपनी रोटी कमाते हैं, इसका भेद क्या है? इसका भेद केवल यही है कि गाँवोंमें भी पुस्तकोंकी माँग है। जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ती जायगी और प्रयत्न करनेसे यह माँग कई गुना हो सकती है; परन्तु हिन्दीके लेखक तथा प्रकाशक अभी तक इस ओरसे अत्यन्त उदासीन रहे हैं। ग्रामीण जनताके लिए सस्ता, सरल, उपयोगी तथा मनोरंजक साहित्य उत्पन्न करनेसे केवल यही लाभ नहीं होगा कि हिन्दी-साहित्यकी अभिवृद्धि होगी, वरन् हम राष्ट्रोत्थानमें बहुत-कुछ सहायक हो सकेंगे तथा वर्तमान गन्दी पुस्तकोंसे जो विषैला प्रभाव ग्रामीणों तथा कम पढ़े शहरके निम्न-श्रेणीके लोगोंपर पड़ता है, उसको रोक भी सकेंगे। अतएव सर्वप्रथम प्रकाशक-संघका पुस्तक-बाज़ारका निरीक्षण करना होगा, तदुपरान्त बाज़ारमें पुस्तकोंकी माँग कैसे उत्पन्न की जाय, इस समस्यापर विचार किया जायगा।

इस लेखके द्वारा लेखक हिन्दी-संसारके सामने कोई विस्तृत योजना रखना नहीं चाहता, वह केवल संकेतमात्र कर देना चाहता है। यदि संगठित रूपसे प्रचार किया जाय, तो हम अपने सामाजिक संगठन तथा सामाजिक रीतियोंका उत्तम पुस्तकोंकी खपतके लिए सरलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं। हिन्दुओंकी प्रत्येक जातिमें विवाहके द्वार-पूजन (दरवाज़े) के अवसरपर कन्याका पिता वर-पक्षके लोगोंको साधारणतः एक रुपया तथा थोड़ा-सा कपड़ा भेंट देता है। इसी मिलनीपर कन्या-पक्षके लोग वर-पक्षके लोगोंको रुपये भेंट करते हैं। अधिकतर बरातकी विदाके समय भी किन्हीं-किन्हीं जातियोंमें रुपये देनेकी रीति है। इसके अतिरिक्त कन्याके घरपर वरको तथा वरके घर कन्याको उनके सम्बन्धी तथा मित्र आभूषण, वस्त्र तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ बहुतायतसे भेंट करते हैं। यदि संगठित रूपसे प्रचार किया जाय और शिक्षित-समुदायके मस्तिष्कमें यह बात बिठा दी जाय कि किसीको एक या दो-चार रुपये देनेसे यह कहीं सुन्दर, शिष्ट तथा लाभदायक है कि उसको उतने मूल्यकी उत्तम पुस्तकें दी जायँ, जिससे देनेवालेकी स्मृति अधिक स्थायी रहेगी, तो विवाह-उत्सवोंपर पुस्तकोंको भेंट देनेकी प्रथा चल सकती है। वर और वधूके लिए तो उपयोगी पुस्तकोंसे उत्तम उपहार हो ही क्या सकता है? मध्यम श्रेणीके लोगोंमें भी सैकड़ों रुपयेके मूल्यकी वस्तुएँ वर और वधूको उपहार-स्वरूपमें दी जाती हैं। यदि उसके कुछ अंशके मूल्यकी भी पुस्तकें नव-दम्पतिको भेंटमें मिल जाय, तो उनके पास अनायास ही एक छोटा-सा पुस्तकालय बन जायगा। यदि व्यवसायी प्रकाशक संगठित रूपसे प्रचार करें, तो कुछ समयके उपरान्त विवाहके मौसममें हज़ारों रुपयोंकी हिन्दी पुस्तकें बिक जाना कठिन न होगा।

विवाहके अतिरिक्त मुंडन, यज्ञोपवीत तथा अन्य सामाजिक कृत्योंपर भी भेंट देने अथवा अपने मित्रों और जातिवालोंमें कुछ बाँटनेकी प्रथा है, वहाँ भी रुपयोंके स्थानपर पुस्तकोंका प्रचलन हो सकता है। भारतवर्षमें बँगला-भाषियोंने एक सीमा तक भेंट देनेमें पुस्तकोंका उपयोग किया है। क्या हम हिन्दी-भाषा-भाषी, जो संख्यामें बहुत अधिक हैं, शिक्षामें अपेक्षाकृत कुछ कम होते हुए भी इस प्रकार पुस्तकोंकी माँग उत्पन्न नहीं कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त एक क्षेत्र और है, जहाँ हिन्दी-पुस्तकोंकी खपत प्रयत्न करनेपर सरलतापूर्वक हो सकती है। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंमें हज़ारों संस्थाओंमें प्रतिवर्ष लाखों रुपयोंके पारितोषिक वितरित किये जाते हैं। अधिकांशमें यह पारितोषिक सस्ते चाँदी तथा सोनेके पदकों और पात्रोंके रूपमें दिये जाते हैं। इन पदकोंका न तो कोई उपयोग ही होता है और न वास्तवमें इनका कोई मूल्य ही। प्रतिवर्ष लाखों रुपये पदकों तथा पात्रोंपर व्यर्थमें ही फेंक दिये जाते हैं। यदि प्रयत्न किया जाय, तो पदकोंके स्थानपर पुस्तकें देनेकी प्रथा प्रचलित करना कठिन न होगा।

इन उपायोंके अतिरिक्त पढ़नेकी रुचि सर्वसाधारणमें उत्पन्न करनेके लिए व्यावसायिक उपाय भी काममें लाने होंगे, जिससे हिन्दी-भाषा-भाषी जनता भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुओंपर व्यय करनेके साथ-साथ पुस्तकोंपर भी अपनी आयका कुछ अंश व्यय करना सीखें। जब तक कि हिन्दीके प्रकाशक पुस्तकोंकी माँग उत्पन्न करनेका प्रयत्न नहीं करेंगे, तब तक पुस्तकोंकी खपत होना कठिन ही है।

पर केवल पुस्तकोंकी माँग बढ़ानेसे ही काम नहीं चलेगा। प्रकाशक-संघको कमीशन, पुस्तक-परिवर्तन तथा पुस्तकोंके मूल्य निश्चित करनेके सम्बन्धमें भी एक निश्चित नीति बनानी होगी, जो सब प्रकाशकोंको अनिवार्य रूपसे मान्य हो, तभी यह धन्धा पनप सकेगा। अन्तमें एक निवेदन करना आवश्यक है, वह यह कि प्रकाशकोंने लेखकोंका जो शोषण किया है, वह भी उनकी हीन दशाका कारण है। अपने धन्धेका संगठन करनेके साथ-साथ उन्हें लेखकोंके प्रति भी अपनी नीति उदार बनानी होगी, जिससे हिन्दीमें सुन्दर तथा उपयोगी साहित्यका निर्माण हो सके। यदि प्रकाशकोंकी लेखकोंके प्रति आज-जैसी ही नीति रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब लेखक स्वयं ही अपना सहकारी संगठन (Co-operative Organisation) बनाकर पूँजीपति प्रकाशकोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ कर दें।

—शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०

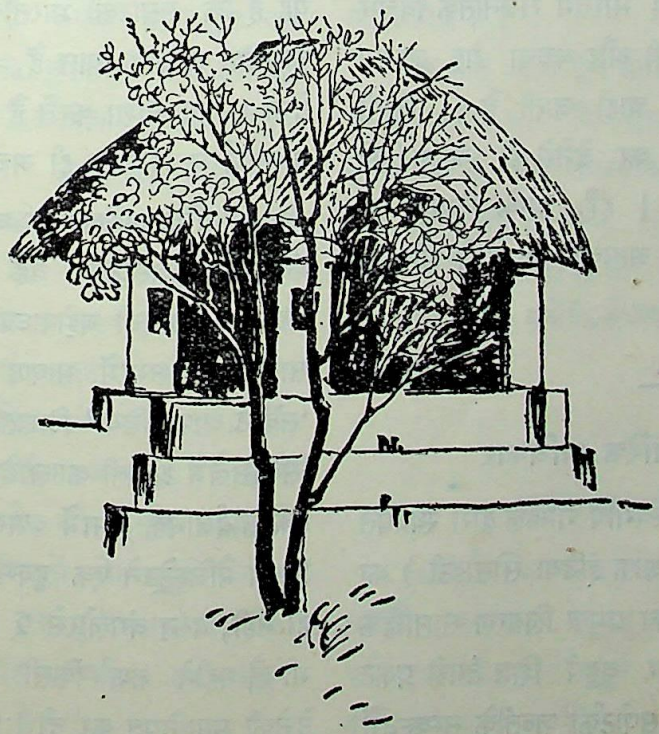

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

आज़ादीकी प्रतिज्ञापर मुमानियत

कांग्रेस द्वारा प्रकाशित की हुई आज़ादीकी प्रतिज्ञा पिछले कई वर्षसे बराबर छपती और पढ़ी जाती रही है—यहाँ तक कि उन दिनोंमें भी, जब कांग्रेसने सत्याग्रहको बन्द नहीं किया था। इससे प्रकट होता है कि सरकारकी रायमें उसमें कोई भी बात ग़ैर-क़ानूनी या आपत्तिजनक नहीं थी। इस साल कांग्रेसके मन्त्रियोंने उसे संशोधित रूपमें प्रकाशित किया। जब वह प्रकाशित हुई थी, तब हमने उसे पढ़ा था। हमने देखा कि अब वह अधिक तर्कपूर्ण थी। उसमें ब्रिटिश शासनकी आलोचना की गई थी। उसकी आलोचनामें हज़ारों बार दुहराई हुई बातें थीं, जिन्हें अनेकों व्यक्तियों और पार्टियोंने सैकड़ों बार कहा है। भाषाका हेर-फेर भले हो, किन्तु सार एक ही था। ऐसे समयमें जब कांग्रेसने सत्याग्रह बन्द कर रखा है और वह चुनाव लड़नेकी पार्लामेन्टरी धुनमें है, आज़ादीकी प्रतिज्ञापर मुमानियत लगानेके लिए सरकारकी बुद्धिमानीकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। भारतमें राजनैतिक विचार रखनेवाला प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चा यह जानता है कि आज़ादी किसलिए चाही जाती है। किसी घोषणा या प्रतिज्ञाको वर्जित कर देनेसे ही आज़ादीकी इच्छा नहीं बुझा करती। हाँ, इसके विपरीत यह मुमकिन है कि यह वर्जन आगकी लपटोंको और भी सुलगा दे।

—

भारतीयोंके नागरिक अधिकार

'सर्वेन्ट आफ इंडिया' स्वर्गीय गोखले द्वारा स्थापित भारत-सेवक-संघ (सर्वेन्ट आफ इंडिया सोसाइटी) का मुखपत्र है। वह भारतका प्रमुख लिबरल साप्ताहिक पत्र है और अपने विचार बहुत शिष्ट ढंगसे प्रकट करता है। मि० मसानीके पासपोर्टकी ज़ब्तीके सम्बन्धमें वह लिखता है—"सरकार द्वारा मि० एम० आर० मसानीके पासपोर्टकी ज़ब्ती इस बातका एक साधारण उदाहरण है कि सरकार आम तौरपर राजनैतिक कार्यकर्ताओंको किस सन्देहकी दृष्टिसे देखती है। राजनैतिक कार्यकर्ताके प्रत्येक काममें प्रत्यक्षतः उन्हें ख़तरेकी बू आती है।.....

"हम मि० मसानीके घनिष्ठ परिचित नहीं हैं और निकट-भविष्यमें वे क्या करेंगे, इसका हमें रत्ती-भर पता नहीं है। फिर भी यदि वे हिन्दुस्तानके बाहर जाना चाहते हैं, तो हमारी समझमें नहीं आता कि सरकारको उनकी राह रोकनी ही क्यों चाहिए? क्या उन्हें स्वयं यह निश्चय करनेकी स्वतन्त्रता न मिलनी चाहिए कि वे कहाँ रहें—भारतमें या भारतके बाहर—और कितने दिन रहें? जब तक वे अपने कार्योंसे उल्टा न साबित करें, तब तक उनके इरादोंको निर्दोष क्यों न समझा जाय? स्वेच्छाचारी ढंगसे उनका पासपोर्ट ज़ब्त करके उनके आवागमनकी स्वतन्त्रतापर बन्धन लगानेके मानी यह हैं कि सम्राटकी भारतीय प्रजाको जो बहुत थोड़ेसे नागरिक अधिकार प्राप्त हैं, उन्हें भी घटाकर शून्य कर देना। हम आशा करते हैं कि सरकार मि० मसानीका पासपोर्ट न छीनकर ही अच्छा करेगी।"

नागरिक अधिकारोंके अपहरणका दूसरा उदाहरण बंगलोरके मैजिस्ट्रेटका वह हुक्म है, जिससे उसने श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्यायको बंगलोरमें किसी भी सार्वजनिक सभामें भाषण देनेकी मनाही की है। 'सर्वेन्ट आफ इंडिया' लिखता है—"चुनाव प्रोपेगैण्डाके सिलसिलेमें श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय बंगलोरकी एक सार्वजनिक सभामें व्याख्यान देनेवाली थीं; किन्तु ज़िला मैजिस्ट्रेटने एक हुक्म निकालकर उन्हें बंगलोरमें ही नहीं, वरन् बंगलोरसे ५ मीलके घेरेके भीतर कहीं भी छै महीने तक किसी सार्वजनिक सभामें भाषण देनेकी मुमानियत कर दी।....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जहाँ तक इस मनाहीका सवाल है, सभी लोग यह कहेंगे कि वह अनुचित है और कुपरामर्शका फल है। श्रीमती चट्टोपाध्यायके मैसूर आगमनका उद्देश एकदम वैध और शान्तिपूर्ण था। उनके व्याख्यानसे रियासतपर कोई मुसीबत आती, इस प्रकारकी आशंकाका कोई कारण न था। बंगलोर पहुँचनेके पहले वे जहाँ-जहाँ गई थीं, वहाँ कोई भी अप्रत्याशित बात भी नहीं हुई, जिससे रियासतके अधिकारियोंको खतरेकी आशंका होती। फिर भी ज़िला मैजिस्ट्रेटको इस बातका डर हुआ कि कमलादेवीके व्याख्यानोंसे रियासतके विभिन्न दलोंमें शत्रुता पैदा होगी। प्रत्यक्ष है कि उनकी यह राय पुलिसकी पक्षपातपूर्ण, इकतरफा और सुनी-सुनाई रिपोर्टपर अवलम्बित होगी। इस प्रकारके अविश्वसनीय प्रमाणोंपर अधिकारियोंकी यह स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्रवाई मैसूर सरीखी उन्नतिशील रियासतके लिए बहुत खेदप्रद है।"

इसके बाद 'सर्वेन्ट आफ इंडिया' नागरिक स्वाधीनता-संघके कार्यपर टिप्पणी करते हुए कहता है—

"हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि बम्बईके नागरिक अधिकार संघने पूरी तत्परतासे अपना काम शुरू कर दिया है। हालमें उसने एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसमें उसने जेलोंमें राजनैतिक क़ैदियोंके साथ होनेवाले दुर्व्यवहारोंके ठोस उदाहरण दिये हैं। बंगालकी कुछ जेलोंमें जो लोग नज़रबन्द हैं, वे इन राजनैतिक बन्दियोंसे पृथक हैं। इस पुस्तिकामें दी हुई बातोंका संकलन मि० एस० एन० टैगोरने किया है। ये बातें या तो स्वयं भुक्तभोगियोंने कही हैं, या मि० टैगोरको उन राजनैतिक बन्दियोंने बतलाई हैं, जिन्हें बंगालकी जेलोंका ज़ाती तजरुबा है। इसमें बंगालकी पाँच जेलोंका हाल है, और इसके संकलनमें संकलनकर्ताको बहुत ज्यादा दिक्कतों और असुविधाओंका सामना करना पड़ा होगा। इस पुस्तिकाको प्रकाशित करके मि० टैगोरने निस्सन्देह नागरिक स्वतन्त्रताके आन्दोलनकी विशेष सेवा की है।"

आगे सर्वेन्ट आफ इण्डिया लिखता है—"इस पुस्तिकाके प्रकाशनका स्वागत इसलिए करना चाहिए कि यह जनताके सामने कुछ ऐसे तथ्य उपस्थित करती है, जिन्हें इसके लेखक सत्य समझते हैं। यदि इन तथ्योंका एक अंश भी सच्चा है, तो इससे बंगाल-सरकार की एक न्यायप्रिय और सभ्य सरकार होनेकी ख्यातिको निश्चय ही बड़ा धक्का पहुँचता है। पुस्तिकामें कोई अस्पष्ट इल्ज़ाम नहीं है, बल्कि यह जेल अधिकारियोंके दुर्व्यवहारोंके कुछ उदाहरणोंपर प्रकाश डालती है—सो भी इतने काफी ब्यौरेके साथ कि उनकी जाँच कराना भी सम्भव है; सम्भव ही नहीं, वरन् यदि सरकारका इरादा जाँच करानेका हो, तो उसमें सुविधा भी मिल सकती है। ऐसे हानिकर और सुनिर्दिष्ट आरोपों और भंडाफोड़ोंपर बंगाल-सरकार चुप नहीं बैठी रह सकती। उसे चाहिए कि वह पुस्तिकामें वर्णित समस्त घटनाओंपर स्वतन्त्र जाँच कराये और जाँचका फल प्रकाशित करे। यदि वह इन भण्डाफोड़ोंपर आँख बन्द कर लेना चाहती है, तो वह अपनी झोंकीपर ऐसा कर सकती है। उसके मौनसे जनताको उसके विरुद्ध अनुमान लगानेका मौक़ा मिलेगा।"

यह बात ध्यान देने योग्य है मि० मसानी, श्रीमती चट्टोपाध्याय और मि० एस० एन० टैगोर तीनों ही साम्यवादी हैं और सर्वेन्ट आफ इण्डियाके शत्रु भी—यदि उसके शत्रु हों—यह सन्देह नहीं कर सकते कि उसने ये टिप्पणियाँ किसी पक्षपातपूर्ण भावनासे प्रेरित होकर लिखी हैं, क्योंकि सर्वेन्ट आफ इण्डिया साम्यवादी पत्र नहीं है।

—

अनुशासन और न्याय

ख़बर है कि कानपुरमें २४ जनवरीको एक बड़ी सभामें व्याख्यान देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरूने कांग्रेसवालोंमें बढ़ती हुई अवज्ञाकी कड़ी आलोचना करते हुए कहा—"मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्वका ख़याल किये बिना हर हालमें इस अवज्ञाका मूलोच्छेदन करूँगा। अगर महात्मा गांधी भी कांग्रेसकी आज्ञाकी अवज्ञा करें, तो उनके ख़िलाफ भी कार्रवाई की जायगी। ज़ाती तौरपर कांग्रेसके फैसलेपर अमल करना किसी व्यक्तिके लिए कितना ही अरुचिकर या मुश्किल क्यों न हो, फिर भी हर कांग्रेसीको कांग्रेसकी कार्यकारिणीके निश्चयकी तामील करनी चाहिए। अब तक कांग्रेसकी यह कमज़ोरी रही है कि कांग्रेसकी आज्ञाओंका उल्लंघन करने और अनुशासन पालन न करनेपर कोई कार्रवाई नहीं की गई।"

महात्मा गांधीने यह खुल्लमखुल्ला कह दिया है कि वे अब कांग्रेसवाले नहीं हैं—कांग्रेसके चवन्नीवाले सदस्य भी नहीं है, इसलिए नेहरूजीके इन धमकीके शब्दोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। महात्माजीके नामका उल्लेख इन शब्दोंको सिर्फ वीरताका जामा पहनाने ही का काम दे सकता है। किन्तु यदि कांग्रेसका भूतपूर्व सभापति होनेसे ही कांग्रेसका सदस्य समझा जाना ज़रूरी हो, तो नेहरूजीके इन शब्दोंसे महात्माजीके चेहरेपर उनकी ख़ास मुसकराहट दौड़ जायगी। यद्यपि कांग्रेसके व्यावहारिक डिक्टेटरका नाम कांग्रेसकी अवज्ञाके सम्बन्धमें कहा जाना एक बेतुकी कल्पना ही कही जायगी; किन्तु यह हम नहीं कहते कि महात्माजीके लिए कांग्रेसकी आज्ञाका उल्लंघन करना नामुमकिन है, क्योंकि जो व्यक्ति शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यकी हुक्म-उदूलीका साहस रखता है, वह ज़रूरत पड़नेपर किसी दूसरे प्रतिद्वन्द्वीके विरुद्ध भी अवज्ञाकी आवाज़ उठानेमें नहीं डरेगा।

यदि कांग्रेसके भूतपूर्व सभापतिके लिए कांग्रेसका मेम्बर माना जाना ज़रूरी हो, तो यह भी कहा जायगा कि यही उनका अविच्छेद अधिकार है। यह बात हम किसी काल्पनिक समस्याके प्रतिपादनके लिए नहीं कह रहे हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय कांग्रेसके एकसे अधिक बार सभापति हो चुकनेके अधिकारसे कांग्रेसके सदस्य हैं। उन्होंने भी वही काम किया है, जिसके लिए कांग्रेसके कुछ सदस्योंकी सदस्यता छीनी गई है—यानी उन्होंने चुनावमें प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा मनोनीत उम्मीदवारके ख़िलाफ कम-से-कम एक ग़ैर-कांग्रेसी उम्मीदवारका समर्थन किया है। जब नेहरूजी अवज्ञाकारी गांधीजीको सज़ा देनेके लिए तैयार हैं, तो वे अवज्ञाकारी मालवीयजीको भी सज़ा देनेमें न हिचकेंगे। इसीलिए यह सवाल पैदा होता है कि जो व्यक्ति भूतपूर्व सभापति होनेकी हैसियतसे कांग्रेसका सदस्य होनेका अधिकार रखता है, क्या वह सदस्यतासे वंचित किया जा सकता है।

और हाँ, इस सवालसे पहले एक और भी सवाल है। वह यह कि क्या व्यवस्थापिका संस्थाओंके चुनावमें कांग्रेस पर्लामेंटरी बोर्ड या प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी नामज़दगीके खिलाफ़ जानेमें कोई भी साधारण सदस्य कांग्रेसकी सदस्यतासे वंचित किया जा सकता है? क्या कांग्रेसके विधानकी किसी भी धाराके अनुसार ऐसा किया जा सकता है? यदि हाँ, तो हम पूछना चाहते हैं कि वह कौन-सी धारा है? फिर क्या कांग्रेसका प्रत्येक निर्णय सदस्योंके लिए अकाट्य है?

अनुशासन अच्छी चीज़ है। लेकिन यदि वह कांग्रेसके प्रत्येक सदस्यके लिए, ज़ाती हैसियतसे, अच्छी चीज़ है, तो वह कांग्रेस कमेटियोंके लिए भी अच्छी चीज़ है। यदि कांग्रेस कमेटियोंने चुनावके लिए सदस्य चुननेमें अपराध किया हो—उनके इस प्रकारके कमसे कम एक अपराधका पता हमें भी हैं—तो क्या इस अपराधी कमेटी या कमेटियोंके विरुद्ध कार्रवाई न की जानी चाहिए? अनुशासनका आधार इन्साफपर होना चाहिए। जिन लोगोंके साथ बेइन्साफी हुई है, उन्हींके खिलाफ़ अनुशासनकी कार्रवाई करना बेतुकी बात है। जिस 'अवज्ञा' की बात पंडित नेहरू कहते हैं, वह किसी एक ही प्रान्तमें परिमित हो, सो बात नहीं। अनुशासन-सम्बन्धी कार्रवाई अधिकांश प्रान्तोंमें की गई है। 'अवज्ञा' की इस महामारीका कारण क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या दोष 'बागियों' का ही है ? क्या सिर्फ वे ही दोषी हैं ? या कांग्रेस कमेटियोंका भी दोष है ?

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

राजनीति और साहित्य

हिन्दी-पत्रोंमें कभी-कभी इस बातकी शिकायत पढ़नेमें आती है कि राजनैतिक नेता हमारे साहित्य-क्षेत्रपर भी आधिपत्य करने लगे हैं। और तो और, कितने ही मनचले लेखक महात्मा गांधी-जैसे निष्कलंक आदमीपर भी यह इलज़ाम लगानेसे बाज़ नहीं आते कि वे किसी भीतरी उद्देश्यसे—उदाहरणार्थ, संस्थाओंका संचालन अपने ही अनुयायियोंके हाथमें सौंपनेके लिए—साहित्य-क्षेत्रमें राजनैतिक दाव-पेंचसे काम लेते हैं ! इन्दौर-सम्मेलनके पहले और पीछे भी महात्माजीपर जो क्षुद्रतापूर्ण लेख हिन्दीके लगभग सभी मुख्य-मुख्य पत्रोंने छापे थे, वे इसी मनोवृत्तिके सूचक थे। दो-एक पत्रोंको छोड़कर किसीने इस बेहूदा कार्रवाईका विरोध भी नहीं किया। अधिकांश पत्रोंका यह मौन इस बातका सूचक था कि हमारे साहित्य-क्षेत्रमें मनुष्यता किस निम्न अवस्थाको पहुँच गई है। जिन्होंने हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनानेके लिए सबसे अधिक परिश्रम किया है, उन महात्माजीपर ही जब लोग इस प्रकार आक्षेप कर सकते हैं और जब हिन्दीके बड़े-बड़े महारथी टुकुर-टुकुर इस अन्यायको देखते रहते हैं, तब अन्य साधारण कार्यकर्ताओंपर किये गये आक्षेपोंके विषयमें क्या कहा जाय ? हमारी समझमें साहित्य-क्षेत्रको राजनैतिक आदमियोंसे उतना ख़तरा नहीं है, जितना उन साहित्यिकोंसे है, जो इस पवित्र क्षेत्रमें राजनैतिक चालोंसे काम लेते हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि साधारण जनताके हृदयमें भी शंकाके भाव उत्पन्न हो चले हैं। चाहे कोई कितने ही निर्मल उद्देश्यसे साहित्य-क्षेत्रके लिए काम करे ; पर उसपर आशंका करनेवाले आदमियोंकी कमी नहीं। जिन लोगोंमें क्षमाशीलता है, वे भगवान गौतम बुद्धके इस उपदेशको ध्यानमें रखकर कि 'दुनियामें ऐसा कोई नहीं है, जिसकी कोई निन्दा न करता हो। बिलकुल ही निन्दित या बिलकुल ही प्रशंसित पुरुष न था, न होगा और न आजकल है।'* काम करते चले जाते हैं, पर सब आदमियोंमें भगवान गौतम बुद्ध या महात्मा गांधी-जैसी क्षमाशीलता नहीं हो सकती। ऐसे आदमियोंके लिए कौन-सा मार्ग उचित है ? किस पथपर चलकर वे अपने स्वाभिमानकी रक्षा कर सकते हैं ? हमारी समझमें ऐसे व्यक्तियोंके लिए केवल एक ही मार्ग है, वह यह कि वे किसी संख्या-विशेषसे अपनेको सम्बद्ध न करें और संस्थाओंके संचालकोंसे साफ-साफ कह दें—"न हमें आपकी संस्थामें कोई पद ग्रहण करना है और न हम कोई पुस्तक किसी परीक्षामें नियत कराना चाहते हैं। हमें किसी पुरस्कारके लिए प्रतियोगितामें अपनी किताब नहीं भेजनी है और न हम आपके द्वारा अपना कोई विज्ञापन ही चाहते हैं। प्रबन्धकारिणी समिति या मंत्रिमंडलका सदस्य होनेकी हमारी आकांक्षा नहीं। एक सर्वथा स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे हम आपसे सहयोग कर सकते हैं। यदि आपको हमारे सहयोगकी आवश्यकता है, तो हम नम्रतापूर्वक सहयोग करेंगे ; नहीं तो आप अपने रास्ते जाइये, हम अपने मार्गपर चल ही रहे हैं।"

दुःखकी बात है कि हम लोगोंमें से अधिकांश इस गौरवपूर्ण पथपर चलनेका साहस नहीं रखते। नतीजा यह होता है कि हम समझौते-पर-समझौता करते चले जाते हैं और अन्तमें अपना व्यक्तित्व भी खो बैठते हैं ! हमारे साहित्य-क्षेत्रको स्वतन्त्र व्यक्तित्वकी जितनी आवश्यकता है, उतनी किसी अन्य चीज़की नहीं।

—

* नाऽस्ति लोके ऽनिन्दितः
ना चाऽभूत् न च भविष्यति न चैतर्हि विद्यते
एकान्तं निन्दितः पुरुष एकान्तं वा प्रशंसितः। —धम्मपद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सम्मेलनका सभापतित्व

सम्मेलनके सभापतित्वके लिए जिन लोगोंके नाम जनताके सम्मुख उपस्थित किये गये हैं, उनमें मुख्य निम्न-लिखित हैं :—

(१) डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल।

(२) महापंडित राहुल सांकृत्यायन।

(३) श्री जमनालाल बजाज।

श्रीयुत जायसवालजीका नाम आगरेके 'प्रभाकर' द्वारा उपस्थित किया गया था, और इसमें सन्देह नहीं कि जायसवालजी-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके व्यक्तिका सम्मान करके सम्मेलन अपनेको गौरवान्वित कर सकता है। श्रीमान् राहुलजीके विषयमें यही बात कही जा सकती है, और यदि हम उनपर जायसवालजीको तरजीह देते हैं, तो उसका मुख्य कारण यही है कि जायसवालजी आचार्य हैं और राहुलजी उनके शिष्य। श्री जमनालाल बजाजका नाम भी इस प्रसंगमें लिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ तक दक्षिणमें हिन्दी-प्रचारका प्रश्न है, श्री जमनालालजीका हक़ दूसरे लोगोंकी अपेक्षा कहीं ज्यादा है। यदि महात्माजी दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचार-आन्दोलनके पिता हैं, तो उस आन्दोलनको मातृ-स्नेह श्री जमनालालजीसे ही प्राप्त हुआ है। इसके सिवा स्थानीय कार्यकर्ताओंकी सम्मतिका भी ऐसे अवसरोंपर ख़याल किया जाता है, और वे श्री जमनालालजीके पक्षमें हैं। हमारी समझमें सर्वोत्तम तो यह होता कि साहित्य-सम्मेलनके सभापति डाक्टर जायसवालजी बनाये जाते और राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सम्मेलनके श्री जमनालालजी; पर ये सब बातें आपसमें बातचीत करके तय हो सकती हैं। पत्रोंमें इसके लिए लिखा-पढ़ीकी ज़रूरत न होनी चाहिए। यदि श्रीमान काका साहब और श्री हरिहर शर्मा प्रयाग पहुँचकर सम्मेलन-कार्यालयके अधिकारियोंसे इस विषयमें बातचीत कर लें, तो कहीं अच्छा हो।

—

साहित्य और जनसत्ता

दिनोंदिन हमारा यह विश्वास दृढ़तर होता जाता है कि साहित्य-क्षेत्रमें जनसत्ता (Democracy) के सिद्धान्तोंका प्रवेश अवांछनीय है। राजनैतिक क्षेत्रमें आप वोट द्वारा यह निश्चय कर सकते हैं कि बनारस शहर जनरल क्षेत्रके प्रतिनिधि श्री सम्पूर्णानन्दजी हों, या श्री झींगन साहु; साहित्य-क्षेत्रमें इस प्रकार वोट द्वारा निश्चय नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, हम पूज्य द्विवेदीजीके वोटको उन हज़ारों आदमियोंके वोटोंसे, जो केवल बारह रुपये प्रतिवर्ष देकर किसी साहित्यिक संस्थाके सदस्य बन गये हैं, कहीं अधिक मूल्यवान समझते हैं। साहित्य जनताके लिए हो, इस बातमें और हमारे साहित्य-क्षेत्रपर जनताके वोट द्वारा चुने हुए आदमियोंका आधिपत्य हो, ज़मीन-आस्मानका फर्क है। पहली चीज़के हम भी पक्षमें हैं और दूसरीके विरोधी। संसारके महान ग्रन्थ महाभारतके रचयिता भगवान वेदव्यास यदि आज जीवित होते, तो किसी साहित्य-सम्मेलनके सभापति-पदके लिए उन्हें काफी वोट मिलना मुश्किल हो जाता। भला उनमें इतना साहस कहाँसे आ सकता कि वे अपना प्रोपेगेंडा किसीसे कराते या खुद ही स्वागतकारिणी समितिके मंत्रीको लिख भेजते कि इस वर्ष मुझसे अधिक योग्य तथा चरित्रवान दूसरा कोई सभापति मिल ही नहीं सकता!

वर्णाश्रम-धर्म अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें अवश्य ही सदुद्देश्ययुक्त था; पर जन्मानुसार जाति निश्चित करनेकी प्रथामें परिणत होकर उसने हमारा सर्वनाश कर दिया, इसलिए हम वर्णाश्रम-धर्मके सख्त विरोधी हैं और राजनीतिमें तो उन लोगोंका पागलपन और भी अक्षम्य है; पर साहित्य-क्षेत्रमें तो हम intellectual aristocracy या ब्राह्मणत्वके (वामनत्वके नहीं) प्रभुत्वके क़ायल हैं। जिस श्रेणीमें कवीन्द्र रवीन्द्र, मैक्सिम गोर्की या प्रेमचन्द बिठलाये जा सकते हैं, क्या उसमें ऐरे-ग़ैरोंको स्थान मिलना चाहिए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अथवा किसी भी साहित्यिक संस्थाके प्रचार-कार्यको आप भले ही जनसत्तात्मक ढंगपर चलावें, पर जहाँ कलापूर्ण रचनात्मक कार्यका सवाल आवेगा, वहाँ आपको चुने हुए साहित्यिकोंकी ही सम्मतिपर ध्यान देना चाहिए।

—

देव-पुरस्कार और चुनाव-प्रथा

साहित्य-क्षेत्रमें वोटकी प्रथाका क्या दुष्परिणाम हो सकता है, इसका उदाहरण देव-पुरस्कार है। इस विषयमें हम अपना अपराध स्वीकार करते हैं कि उपर्युक्त पुरस्कारके विषयमें हमने उक्त प्रथापर ज़ोर दिया था। अपनी अनुभवहीनताजन्य भूलको मानते हुए हम अब कह सकते हैं कि यदि इस पुरस्कारके विषयमें वोट देनेकी प्रथासे काम न लिया जाता, तो अत्युत्तम होता।

अभी 'विश्वमित्र' में जब हमने निम्न-लिखित समाचार पढ़ा, तो हमें विशेष आश्चर्य नहीं हुआ :—

"२०००) का देव-पुरस्कार

पं० रामनाथ ज्योतिषीको मिला

वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद टीकमगढ़के प्रधान-मन्त्री श्री रामशंकर शुक्ल सूचित करते हैं :—

ओरछा-नरेश सवाई महेन्द्र महाराजा सर वीरसिंह देवकी ओरसे २०००) का जो देव-पुरस्कार प्रतिवर्ष हिन्दीके सर्वोत्तम काव्य-ग्रन्थके रचयिताको दिया जाता है, वह इस वर्ष अयोध्याके पं० रामनाथ ज्योतिषीको उनकी 'श्रीराम चन्द्रोदय काव्य' नामक पुस्तकपर मिला है। उक्त काव्य-ग्रन्थ ब्रज-भाषामें लिखा गया है। पं० उमाशंकर बाजपेयीकी 'ब्रज-भारती' को द्वितीय स्थान मिला है। निर्णायकों द्वारा जो नम्बर उन्हें प्राप्त हुए हैं, उन्हें सार्वजनिक जानकारीके लिए शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा।"

श्रीमान् पं० रामचन्द्र ज्योतिषी अथवा उनके ग्रन्थके विषयमें हमें अभी कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि दोनोंका नाम हमने पहली बार ही सुना है। सम्भवतः दोनों ही पुरस्कारके योग्य हों; पर हमें आशंका इस बातकी अवश्य है कि कहीं वोट और नम्बरकी प्रथाके कारण योग्यतर व्यक्तियों अथवा ग्रन्थोंकी उपेक्षा तो नहीं हुई। हम पहले भी इस विषयमें लिख चुके हैं और फिर भी यह कहते हैं कि इन पुरस्कारोंके नियमोंमें जड़-मूलसे संशोधन होने चाहिए।

हमारे यहाँ लोगोंको हर आदमीके उद्देशमें आशंका करनेकी आदत पड़ गई है, इसलिए यह कहना आवश्यक है कि न हम किसी पुरस्कारके निर्णायक बनना चाहते हैं और न हमें कोई अपनी पुस्तक किसी प्रतियोगितामें भेजनी है। पुरस्कारोंकी वर्तमान पद्धतिमें तो हम किसीको यह सलाह भी नहीं देंगे कि वह अपनी पुस्तक प्रतियोगिताके लिए भेजे। अकेले देव-पुरस्कार ही नहीं, अन्य पुरस्कारोंके नियमोंके विषयमें भी हमारा यही कथन है। मतभेद सिद्धान्तका है।

—

अलीगढ़के विद्यार्थियोंकी प्रशंसनीय सलाह

कलकत्ता - विश्वविद्यालयके प्रतिष्ठा - दिवसके उत्सवमें सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत बन्देमातरम् गाया गया था। कुछ धार्मिक मतान्धोंके बहकानेपर बंगालके मुसलमान विद्यार्थियोंने इस उत्सवका बहिष्कार कर दिया था, यह कहकर कि इस गायनसे इस्लाम धर्म और मुस्लिम संस्कृतिको क्षति पहुँचती है! अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयके मुसलमान छात्रोंने बंगालके मुसलमान विद्यार्थियोंके नाम निम्न-लिखित अपील निकाली है :—

"हम कलकत्ता - विश्वविद्यालयके मुस्लिम विद्यार्थियोंसे अपील करते हैं कि वे अपने दक़ियानूसी बुज़ुर्गोंके हाथकी कठपुतली न बनें। हमारा मुल्क साम्प्रदायिकतासे काफी पीड़ित है और मुस्लिम संस्कृति और इस्लाम धर्मके नामपर जनताका काफी शोषण किया गया है। हमें यह देखना चाहिए कि मुस्लिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी, जिन्हें दूसरे सम्प्रदायोंके नवयुवकोंके साथ बेकारी और दरिद्रताकी जीवन-मरणकी समस्याओंका सामना करना है, इस तरहके नारोंको सुनकर गुमराह न हों।

"प्रतिष्ठा-दिवसमें भाग लेनेसे इनकार करनेमें बंगालके मुस्लिम विद्यार्थियोंकी ईमानदारीपर हम शक नहीं करते। किन्तु एक मुस्लिम 'सांध्य' दैनिक पत्रके रुखको देखकर—जो ज़मींदारोंके पैसेसे चलता है और एक अंगरेज़ द्वारा सम्पादित होता है—यह सन्देह होता है कि कुछ लोग अपने स्वार्थ-साधनके लिए विद्यार्थियोंकी इस कार्रवाईका दुरुपयोग न करें। यह बात उन लोगोंसे बईद नहीं है। बंगालके मुस्लिम छात्रोंको याद रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति अपनी संस्कृति और धर्मको तब तक नहीं बचा सकता, जब तक उसका मुल्क ग़ैरोंके राजनैतिक आधिपत्य और आर्थिक दोहनका शिकार बना हुआ है। छात्रोंकी तत्कालीन समस्या यह है कि वे देशकी सच्ची उन्नतिशील शक्तियोंके साथ सहयोग करके जनताको सुखी और मुल्कको आज़ाद बनायें। गुलामोंका न कोई मज़हब होता है और न कोई संस्कृति। उन्हें हमेशाके लिए गुलामीमें रखनेके लिए विशेष स्वार्थोंवाले लोग धर्म और संस्कृतिके ख़तरेमें होनेका हौआ उठाया करते हैं।.....

"बंगालके मुस्लिम छात्रोंको याद रखना चाहिए कि जो लोग सदासे बंगालके मुस्लिम किसानोंके साथ विश्वासघात करते रहे हैं, वे उनके (छात्रोंके) प्रति भी सच्चे नहीं हो सकते। हम उनसे अपील करते हैं कि वे साम्प्रदायिकताका हर पहलूसे सामना करें। हमें विश्वास और आशा है कि वे कुछ नवाबों और विशेष स्वार्थ रखनेवाले लोगोंके साम्प्रदायिकता फैलानेके प्रयत्नको निष्फल कर देंगे।.....यदि 'बन्देमातरम' की जगह इंग्लैण्डका राष्ट्रीय गीत गाया जाय, तो उससे बंगालके मुस्लिम छात्रोंका क्या भला होगा?....

"बंगालके मुस्लिम छात्रोंको कलकत्ता-विश्वविद्यालयके ख़िलाफ जितनी सच्ची शिकायतें हों, उन्हें चाहिए कि उन सबको वे अखिल बंगाल विद्यार्थी-संघके सामने, जो अखिल भारत विद्यार्थी-संघकी शाखा है, उपस्थित करें। उनकी सारी शिकायतें तभी दूर होंगी, जब वे अखिल भारत विद्यार्थी-संघमें अधिक संख्यामें शामिल होकर उसे शक्तिशाली बनायँगे।"

अलीगढ़के मुस्लिम विद्यार्थियोंकी यह नेक सलाह क़ाबिले-तारीफ़ है। आशा है कि बंगालके मुस्लिम विद्यार्थी इसपर ग़ौरके साथ विचार करेंगे।

—

ब्रिटिश साम्राज्यकी दो तसवीरें

आस्ट्रेलिया और भारतवर्ष दोनों ही ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत हैं। कहनेको दोनोंको ही आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त है; किन्तु इस आर्थिक स्वतन्त्रताके दो चित्र देखिये।

लेजिस्लेटिव एसेम्बलीने एक प्रस्ताव पास किया था कि शर्तोंके अनुसार इंग्लैण्डको छै महीनेका नोटिस देकर ओटावाका समझौता रद कर दिया जाय और इंग्लैण्डके साथ नई व्यापारिक सन्धि की जाय। सरकार अपनी पुरानी प्रतिज्ञाके अनुसार एसेम्बलीके निश्चयको माननेके लिए बाध्य थी। लिहाज़ा उसे ओटावाका समझौता रद करनेका नोटिस ग्रेट-ब्रिटेनको देना पड़ा। व्यापारिक सन्धिकी चर्चा भी शुरू हुई। छै मासकी अवधिकी समाप्तिपर सरकारने एसेम्बलीके पीठपीछे ओटावाके समझौतेको अनिश्चित कालके लिए—जब तक नई व्यापारिक सन्धि न हो जाय—फिर चालू कर दिया है। इसके सिवा कुछ दिन पहले टेरिफ बोर्डकी सिफारिशपर एसेम्बलीसे बिना पूछे सरकारने लंकाशायरके मालपर चुंगी भी घटा दी थी। यह हुआ भारतीय चित्र। अब आस्ट्रेलियन चित्र देखिये।

पिछले मईमें आस्ट्रेलियाको इंग्लैण्डके हाथों मांस बेचनेकी सुविधा प्राप्त करनी थी। आस्ट्रेलियाने जापानी कपड़ेपर ९ पेंस प्रति वर्गगज़की चुंगी लगा दी, जिससे लंकाशायरके कपड़ेके रोज़गारको काफी सहारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला साथ ही आस्ट्रेलियाने अपने मांसके व्यापारके लिए इंग्लैण्डसे सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। हालमें आस्ट्रेलियाने एकाएक जापानी कपड़ेकी चुंगी ९ पेंससे घटाकर ४ पेंस कर दी है। इसपर लंकाशायरके एक सज्जनने 'मैनचेस्टर गार्जियन' में लिखा है, आस्ट्रेलियाने छै महीनेका नोटिस भी नहीं दिया, जिससे लंकाशायरने जो माल खास तौरसे आस्ट्रेलियाके लिए ही बनाया था, उसे भी वह नहीं निकाल सका। 'उसपर लंकाशायरसे कहा जाता है कि आस्ट्रेलियाकी इस कार्रवाईपर गुलगपाड़ा मत करो, खामोश रहो।'

आस्ट्रेलियाको औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त है। वहाँ उत्तरदायित्वपूर्ण शासन है। वहाँके मन्त्री आस्ट्रेलियन हैं और उन्हें चिन्ता है अपने देशकी और अपने देशवासियोंकी। इसके विपरीत भारतवर्षका शासन जिन आदमियोंके हाथमें है, वे भारतीय जनताके प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। भारतकी शासनशक्ति अंगरेज़ोंके हाथमें है।

परिणाम ऊपर प्रत्यक्ष है।

—

इंग्लैण्डकी जनसत्तात्मकताका नमूना

अंगरेज़-जाति इस बातपर गर्व करती है कि उसका मुल्क संसारका प्रधान जनसत्तात्मक देश (Democratic Country) है। इंग्लैण्डकी जनसत्तात्मकता किस ढंगकी है, यह संसारको उस दिन मालूम हुआ, जब कि इंग्लैण्डके बादशाहको अपनी मनचाही स्त्रीसे विवाह करनेके निश्चयपर तख्त और ताजसे हाथ धोना पड़ा। अंगरेज़ोंकी जनसत्तात्मकता और स्वाधीनप्रियताका दूसरा नमूना देखिये। सहयोगी 'अमृतबाज़ार पत्रिका' का लन्दन-स्थित संवाददाता लिखता है—

" 'स्टार' पत्रको विश्वसनीय खबर मिली है कि (ब्रिटिश) मंत्रिमंडलने ड्यूक आफ केण्टसे कहा है कि ड्यूकका अपने भाई, भूतपूर्व सम्राट एडवर्डसे मिलनेके लिए जाना मंत्रिमंडल वांछनीय नहीं समझता।

"राज-परिवार यह दिखलानेके लिए चिन्तित है कि परिवारके विभिन्न सदस्योंमें जो घनिष्ठ सम्बन्ध था, वह पिछले दिसम्बरकी घटनाओंसे टूटा नहीं है, और ड्यूक आफ केण्टका अपने भाईसे मिलनेके लिए जाना यह प्रकट करनेका सबसे अच्छा तरीक़ा था।

"पहले यह निश्चय हुआ था कि ड्यूक आफ केण्ट जब डच राजकुमारीके विवाहमें शामिल होनेके लिए हेग जायँ, तो वहाँसे सीधे ऐंसफेल्ड (आस्ट्रिया में, जहाँ भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड आजकल हैं) चले जायँ। किन्तु अन्तिम क्षण मि० बाल्डविनने बताया कि मंत्रिमंडल इस यात्राकी अनुमति देनेको तैयार नहीं है, यद्यपि ड्यूक आफ़ केंटकी यह यात्रा प्राइवेट यात्रा ही थी।

"इस घटनाके बाद सम्राटके दूसरे भाई ड्यूक आफ ग्लौसेस्टरको भी यह सलाह दी गई है कि उनका भूतपूर्व सम्राटसे मिलने जाना अक्लमन्दीका काम न होगा।

"अब यह मालूम हुआ है कि सम्राटकी बहनने अपने भाईसे मिलने जानेके लिए अनुमति चाही है। 'स्टार' समझता है कि इसपर मंत्रिमंडलको आपत्ति न होगी।"

भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड कोई मुजरिम नहीं हैं। उन्होंने कोई राजनैतिक अपराध भी नहीं किया। इतना ही नहीं, वरन उन्होंने देशके हितका ख़याल करके स्वयं सिंहासन छोड़ दिया और इस प्रकार इंग्लैण्डको एक बड़े गृह-कलहसे बचा दिया। यदि 'स्टार' की ख़बर सच है, तो ब्रिटिश मंत्रिमंडलकी इस ओछी हरकतको क्या कहा जाय? जिस मुल्कमें भाईको भाईसे मिलनेकी स्वाधीनता भी न हो, उसकी स्वाधीनप्रियता और जनसत्तात्मकताकी डींग कितनी सच है, यह कहना व्यर्थ है!

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हम कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे ?

कांग्रेसके कुछ कार्यकर्ताओंने—राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरूसे लेकर राष्ट्रीय महासभाके छोटे-से-छोटे स्वयंसेवक तकने—जिस धुन और लगनसे चुनावके युद्धमें भाग लिया है, वह साहित्यिक संस्थाओं तथा साहित्यिक आदमियोंके लिये अत्यन्त उत्साहप्रद और अनुकरणीय है। क्या कभी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके किसी प्रेसीडेण्टने इस प्रकार भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी यात्रा की है ? स्वयं बाबू राजेन्द्रप्रसादजीने जिस असाधारण परिश्रमसे कांग्रेसकी प्रेसीडेण्टशिपका कार्य किया उसका दशांश भी वे क्या सम्मेलनके सभापतित्वकी हैसियतसे कर सके ? राजनैतिक परिस्थितियोंके कारण बाबू राजेन्द्रप्रसादजीका अपराध क्षन्तव्य माना जा सकता है, पर अन्य सभापति अपने जुर्मसे कैसे बरी हो सकते हैं, यह हम नहीं जानते। अब वक्त आ गया है कि जब सम्मेलनके सभापतियोंसे पहले ही यह निवेदन कर दिया जाय कि आपको यह पद केवल पुरानी सेवाओंके पुरस्कार-स्वरूप नहीं दिया जा रहा है, बल्कि आपसे यह आशा भी की जाती है कि आप साल-भर तक कुछ काम करेंगे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका प्रधान कार्यालय संयुक्त-प्रान्तमें ही है और संयुक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मृत अवस्थामें ही पड़ा हुआ है ! हमारे कार्यकर्ताओंकी मौलिक कार्यशीलतापर यह कैसी कलंकपूर्ण टीका है।

देशके सब लोग राजनैतिक कार्यक्षेत्रमें काम नहीं कर सकते। लाखों ही आदमी ऐसे हैं, जो अपनी परिस्थिति-विशेषके कारण उस कण्टकाकीर्ण पथके पथिक नहीं बन सकते। यदि वे सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्रोंमें डटकर काम करें, तो स्वदेशका बड़ा हित कर सकते हैं और अपने जीवनको भी सार्थक बना सकते हैं। हम जानते हैं कि राजनैतिक गुलामी हमारे देशकी सबसे भयंकर बीमारी है और उसको दूर करना देशका प्रथम कर्तव्य है, पर साथ-ही-साथ हम यह भी अनुभव करते हैं कि सामाजिक तथा साहित्यिक कार्य राजनैतिक कार्योंके विरोधी नहीं हैं, बल्कि उनके पूरक हैं। हम लोगोंको यह बात न भूलनी चाहिए कि स्वराज्य मिलते ही कांग्रेसकी तो समाप्ति हो जायगी, क्योंकि उसका काम ख़तम हो चुका होगा, पर साहित्यिक संस्थाएँ तो चिरकाल तक जीवित रहेंगी। साहित्यिक कार्यकर्ताओंको यह बतलानेकी ज़रूरत है कि मामूली एम० एल० ए० के कार्यसे किसी सच्चे साहित्य-सेवीका कार्य कहीं अधिक स्थायी और महत्त्वपूर्ण है। पचीस वर्ष बाद अधिकांश एम०एल०ए० लोगोंके नाम विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जायँगे—अन्वेषक उनका पता केवल कौंसिल रिपोर्टोंमें ही पा सकेंगे—पर कवियों और ग्रन्थकारोंके नाम बहुत दिनों तक जनताकी जबानपर रहेंगे।

राष्ट्र-भाषा हिन्दीके साहित्य-क्षेत्रमें जितना कार्य करनेके लिए पड़ा हुआ है, उसमें सैकड़ों हजारों आदमियोंके जीवन खप सकते हैं। सुना है कि बोलनेवालोंकी संख्याकी दृष्टिसे दुनियामें हमारी ज़बानका नम्बर तीसरा या चौथा होगा ; पर आधुनिक साहित्यकी दृष्टिसे हम लोग बिलकुल फिसड्डी हैं ! क्या हमारे साहित्य - क्षेत्रके कार्यकर्ता कांग्रेसकी कार्यतत्परतासे कुछ सबक सीखेंगे ?

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विशाल भारत'] कांचन और कुणाल [श्री चिन्तामणि कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १९, अंक ३] चैत्र १९९३ :: मार्च १९३७ [पूर्ण-अंक १११.

विभेद

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

श्री आरसीप्रसाद सिंह

हम दोनोंमें कितना अन्तर ;
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(१)

जब तूने था मदिरालयमें
मधु-बालाका आह्वान किया ;
उन्मत्त तृषासे व्याकुल हो
अंगूरी मदका पान किया !
तब मेरे अधरोंपर छलकी
अति-तिक्त हलाहलकी प्याली ;
मैंने हल्दीकी घाटीमें
अपना जीवन बलिदान किया !
जब पीकर तू बेहोश पड़ा
था कहीं, किसी मधुशालामें ;
मैंने प्रलयांगनमें ली थी
अभिनव यौवनकी अँगड़ाई ;
है बहुत बड़ा अन्तर हममें—
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(२)

जब होता तेरी मधुशालामें
साक़ीका छम - छम नर्तन ;
कातर हो क्रन्दन कर उठते
मधु-लोलुप मदिरा-प्रेमीगण !
तब मेरे आँगनमें करती
गर्जन भीषणतम रण-चण्डी ;
बजते मतवाले वीरोंके
रक्ताक्त कर्णोंमें रण - कंकण !
जब मधुने तुझको जीवित ही
रख दिया मृतककी श्रेणीमें ;
तब मेरे निश्चल प्राणोंमें
विषसे फिर झूमी तरुणाई ;
कैसे मैं तेरे साथ चलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(३)

जिस दिन अधीर मदिरालयमें
तेरी मद-होश पुकार हुई ;
जिस दिन दीवानोंकी टोली
मद पीनेको तैयार हुई !
उस दिन छिन गया मुकुट मेरा
गृह-हीन राज्य-श्री रूठ चली ;
उस दिन स्वतंत्रताके रणमें
मेरे स्वदेशकी हार हुई !
जिस दिन मधु-बालाने दी थी
मधु-सुरा पिला चिर-मृत्यु तुझे ;
कर गरल-पान उस दिन मैंने
दुर्लभ्य अमरता थी पाई ;
मैं मिलूँ, कहो, तुझसे कैसे ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

जब मदिरालस तेरे नयनोंकी
हो जातीं पलकें भारी ;
जब मादकतामें खो देता
तू मनकी चेतनता सारी !
तब मैं करता हूँ सिंहनाद,
अग-जगमें बजती रण-भेरी ;
मैं आग लगाता पानीमें,
उपजाता हिमसे चिनगारी !
जब तू सँभाल सकता अपना
दुर्बल-सा भी अस्तित्व नहीं ;
मैं निखिल राष्ट्रका बनता हूँ
तब एकमात्र उत्तरदायी ;
सम्भव हो मिलन हमारा क्यों ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(५)

देखा था जिस दिन तेरे इन
हाथोंमें फेनिल मधु-प्याला ;
रस - भीगे होठोंपर तेरे
शरमाकर झुकती मधु-बाला !
पश्चिम - उत्तरकी सीमापर
उस दिन ललकार उठा कोई ;
तोड़ा था किसी विदेशीने
मेरे सुवर्ण - गृहका ताला !
जिस दिन बेखबरी आई थी,
तूने तन-मनकी सुध भूली ;
उस दिन दक्षिणमें थोड़ेसे
कुछ बनियोंने आफ़त ढाई ;
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(६)

थे आमन्त्रित हम दोनों ही
वारिधिका हुआ हृदय-मंथन ;
तुमने पहले ही पहुँच, किया
बढ़ मधु-बालाका आलिंगन !
तुझको मधु-कलश मिला, तूने
पी लिया एक क्षणमें सारा ;
मैं नीलकंठ—था लिखा
भाग्यमें मेरे विषका आस्वादन !
जिस मस्तीने पौरुष - नाशक
विस्मृति-सन्देश दिया तुझको ;
वह मस्ती मेरे जीवनमें
अद्भुत नव-जाग्रति ले आई ;
है एक यही अन्तर हममें—
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(७)

तूने की प्रमदाकी सेवा,
मदिरालयको आबाद किया ;
जब प्यास लगी, तूने तत्क्षण
साक़ी-बालाको याद किया !
तू स्वार्थ-विकल, अपने सुख-हित
मद पीकर जगको भूल गया !
मैंने विष पीकर दुनियाको
सुख-शान्ति-सुधाका स्वाद दिया !
जब मन तेरा डगमग होता,
जब पग तेरे करते डगमग ;
तब मैं तूफ़ान - बवण्डरमें
सिर खोल चला करता, भाई !
किस तरह एक हों हम दोनों ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

जिस क्षण तेरी मधुशालामें
जुड़ते मधु-प्रेमीगण अगणित ;
साक़ीके एक इशारेपर
उठते सब झूम सुरा-परिचित !
उस क्षण पृथिवीकी मानवता
करती होती चीत्कार विकल ;
रोते जननीके अंचलमें
मेरे सुकुमार क्षुधा-पीड़ित !
तूने अपनाया मद पीकर
कायरता - आलसका जीवन ;
मैं मुसकाता हूँ शूलोंमें,
मैं वनचारी, कंटक-शायी !
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(९)

तेरा पथ जाता उधर, जहाँ
बहती निशि-वासर मद-धारा ;
मेरे हित शूली, दमन, दण्ड,
मेरा विश्राम - भवन कारा !
करबद्ध सदैव मनाता तू—
'मेरी मधुशाला रहे अचल !'
मैं कहता—'मानवकी जय हो !
निर्भय हो जगतीतल सारा !'
तेरे सिरपर मधु-कलश भरा,
मैं फूँक रहा विषकी वंशी !
तुझमें वसन्त-तन्द्रा, मुझपर
नवयुगकी प्रलय-शिखा छाई ;
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(१०)

जिस वक्त किया करता मधु पी
पथमें तू नित्य उपद्रव नव ;
मैं कालकूट पीकर उस क्षण
भैरव बन करता रण-ताण्डव !
मैंने तो तेरा मधु देखा,
मधु-प्रिया और मधुशाला भी ;
तू एक बार भी देख, सखे !
यह अनल-हलाहलका उत्सव !
इस विष-घटमें वह उत्तेजन,
वह शक्ति, करे जो कल्पान्तर ;
तू विष लखकर थरथर कम्पित,
मुझको मदिरासे उबकाई ;
कैसे हम दोनों साथ चलें ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

(११)

तू मद पीकर मद-मत्त बना,
महिमा मधुशालाकी गाता ;
पर मैं तो अपने गीतोंमें
इस विषको ही चित्रित पाता !
जिन छन्दोंमें धारण करते
आकार स्वप्न तेरे सुन्दर ;
मैं उन छन्दोंमें बाँध व्योमसे
अग्नि - कुमारोंको लाता !
तेरे प्रलाप ये मद्यपके,
मैं शंख-घोष करता रणमें ;
हम दोनों ही के बीच खुदी
यह एक विषमताकी खाई !
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा-उपवन

बनारसीदास चतुर्वेदी

बात सन् १८७४ की है। आयरलैण्डके डबलिन नगरमें तीन आयरिश कन्याएँ रहती थीं। ये मिस्टर पिमकी सुपुत्री थीं। एक दिन उन्हें ख़बर लगी कि मिस्टर बेली नामक कोई पादरी हिन्दुस्तानसे लौटे हैं। उन बहनोंने पादरी साहबको अपने घरपर न्यौता दिया और उनके अनुभव पूछे। मि० बेलीने, जो अम्बालेमें रहते थे और छुट्टीपर घर गये हुए थे, अपने कार्यके विषयमें निवेदन किया। उन्होंने बतलाया कि

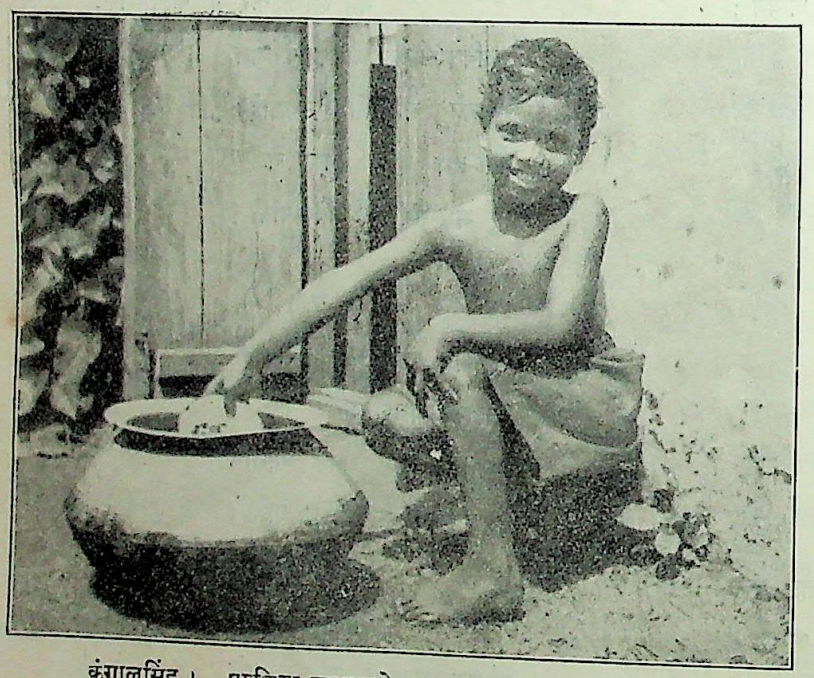

कंगालसिंह। पुरुलिया-कुष्ठाश्रमके ८६० तन्दुरुस्त बच्चोंमें से एक

अम्बालेमें उनके बँगलेसे पचास-साठ गज़की दूरीपर कुछ झोंपड़ियाँ हैं, जहाँ कुष्ठी लोग रहते हैं, जिनकी दशा अत्यन्त दयनीय है। उन आइरिश बहनोंका हृदय भारतीय कुष्ठियोंकी दुर्दशासे द्रवित हो गया, और एक बहन मिस शारलोट पिमने कहा—"ज्यादा तो नहीं, पर हम बहनें साल-भरमें तीस पौण्ड (चार सौ रुपये) इकट्ठे करके आपको भेज दिया करेंगी।" मिस पिम बड़े संकोचशील स्वभावकी थीं, और उन्हें तीस पौण्ड इकट्ठा करना भी कठिन प्रतीत होता था, फिर भी उन्होंने तन-मनसे प्रयत्न किया और साल-भरके अन्तमें उन्होंने भेजे ५०० पौण्ड (६६६६ रुपये)।

आजसे तिरसठ वर्ष पूर्व जो सेवा-रूपी बीज इन बहनोंने बोया था, वह आज एक हरे-भरे उपवनके रूपमें विद्यमान है। यही लेपर-मिशनकी जन्मकी कथा है। अकेले भारतवर्षमें लेपर-मिशनके अधीन ४३ कुष्ठाश्रम हैं, जिनके निवासियोंकी संख्या ७२५९ है, और इनके अलावा ८६० बालक-बालिकाएँ हैं, जिन्हें इस भयंकर रोगसे बचा लिया गया है। सन् १९३५ में इन आश्रमोंपर ७,९६,९१२ रुपये व्यय किया गया था।

न तो भारतके किसी इतिहासमें कहीं कुमारी पिम बहनोंका ज़िक्र है और न इंग्लैण्डकी तवारीख़में उनका हाल कहीं मिल सकता है; पर दरअसल सन् १८७४ की एक महत्त्वपूर्ण घटना इन बहनोंकी उपर्युक्त उदारता थी। जब पाशविक बलपर स्थित हृदयहीन राज्यों अथवा साम्राज्योंका नामोनिशान भी इस संसारमें न रहेगा और जब शुष्क इतिहासोंको लोग बिलकुल भूल जायँगे, उस समय भी दो भिन्न-भिन्न जातियोंके बीचमें सेवा और सौहार्दका सम्बन्ध स्थापित करनेवाली इन बहनोंका नाम आदरके साथ लिया जायगा। आइये, उनके द्वारा स्थापित सेवा-उपवनकी आज सैर करें।*

---

* The Mission to Lepers—A Report of the sixty-second year's work in India. पता—A. D. Miller, Purulia (Bihar).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दग

पहले चलिये अल्मोड़ा ज़िलेके चन्दग नामक स्थानपर। 'विशाल भारत' के पाठकोंकी सुपरिचित मिस मेरी रीड यहीं रहती हैं। इनका वृत्तान्त 'महिला-अंक' (सितम्बर १९३६) में दिया जा चुका है, और उसे यहाँ दुहरानेकी ज़रूरत नहीं। ये बूढ़ी दादी अब ८१ वर्षकी हैं, और ४५ वर्षकी अनवरत सेवाओंके बाद भी उनका उत्साह ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। बिना असाधारण लगन और उच्चकोटिकी आदर्शवादिताके यह कार्य सम्भव नहीं। मिस मेरी रीडसे थोड़ी देर बातचीत भी कर लीजिए। इनसे उस बूढ़े कुष्ठी गंगारामका हाल तो पूछिये, जो ४० वर्षसे यहाँ रहता है और कई अंगोंके गल जानेपर भी जिसका जीवन आनन्दमय है। इस बूढ़ेके जीवनसे कितनोंको स्फूर्ति मिली है। मिस रीड अमेरिकन महिला हैं और अब भारतको ही अपनी मातृभूमि मानती हैं। घंटे-भर उनके Sunny Crest Cottage में विश्राम कीजिए और मनोहर प्राकृतिक सौन्दर्यका दिग्दर्शन।

स्वावलम्बनका पाठ। धानकी खेतीके लिए ज़मीन बराबर की जा रही है

पुरुलिया

चन्दगसे पुरुलिया (बिहार) चलें। 'विशाल भारत' के पाठक इस स्थानसे भी परिचित हैं। यहीं अपने मित्र श्रीयुत ए० डी० मिलर रहते हैं। यदि वे अपना व्यापार-क्षेत्र छोड़कर यहाँ न आते, तो आज लखपती होते; पर लक्षाधीश बननेकी अपेक्षा आपने पीड़ित भारतीयोंका एक विनम्र सेवक बनना कहीं अच्छा समझा। मि० मिलर बँगला मज़ेमें बोल लेते हैं और पढ़ भी लेते हैं। हमारा कर्तव्य है कि इन्हें राष्ट्र-भाषा हिन्दी पढ़ावें। आश्रमके प्रबन्धक रेवरेण्ड ई० बी० शार्प साहबसे भी मुलाक़ात कर लीजिए। देखिये, वे क्या कहते हैं—"तीन वर्षोंसे हमारे यहाँ स्थानकी बड़ी कमी रही है और नित्यप्रति हमें किसी-न-किसी कुष्ठी रोगीकी प्रार्थनाको अस्वीकृत करना पड़ता है। मनमें

मेहनतका फल।
नैनी-कुष्ठाश्रममें तैयार फस्लकी कटाई

कुष्ठसे स्वयं आराम होकर ये आठ रोगी अब दूसरे कुष्ठियोंको इंजेकशन लगानेका काम करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यह समझते हैं कि साधन मिलनेपर हम अपने इस पीड़ित भाईकी सहायता कर सकते हैं ; पर करें तो क्या करें ? भारतवर्षका यह सबसे बड़ा कुष्ठाश्रम है। यहाँ ८०० रोगी रहते हैं और ८१ स्वस्थ बच्चोंका प्रबन्ध

रोगी लड़कियाँ बेडमिन्टन खेलती हैं

अलग है। २१२ रोगी तो गत वर्ष ही भर्ती किये गये थे। बाहरसे कई सौ रोगी प्रति मास इलाजके लिए आया करते हैं। स्थानकी कमीके कारण जब हमें किसी रोगीको निराश वापस भेजना पड़ता है, तो हमारी अन्तरात्माको बड़ा दुःख होता है।"

ईंटें पाथकर घर बनायेंगे

वह देखिये, धानके खेतोंमें क़रीब २०० स्त्री-पुरुष काम कर रहे हैं। किसीकी ज़ोर-ज़बरदस्तीसे नहीं, बल्कि स्वेच्छापूर्वक इन्होंने यह काम अपने हाथमें लिया है। पाखानोंका इन्तज़ाम भी इन लोगोंने अपने लिए स्वयं ही किया है।

उस छोटी-सी कुटीको, जो बच्चोंके लिए बन रही है, देख लीजिए। रेवरेण्ड शार्प साहबसे पूछिये—"इसे कौन बनवा रहा है ?" उत्तर—"An anonymous donor in England." (विलायतका कोई अज्ञात दानी !) इस प्रान्तके गवर्नर साहबमें इतनी सहृदयता है कि उन्होंने अपने ख़र्चसे लड़कियोंके लिए एक भोजनशाला बनवा दी है। इस आश्रमके प्रबन्धक शार्प साहब इस जगह पन्द्रह वर्षसे काम कर रहे हैं। वे कहते हैं—"आश्रमके रोगी निवासियोंने जिस श्रद्धा और लगनके साथ इस संस्थाकी उन्नतिमें सहयोग दिया है, उसे देखकर बड़ी स्फूर्ति मिलती है। साथ ही इन लोगोंकी यह सहायता हमारे लिए एक ख़ासी फटकार भी है। ये रोगी तो अपनी वर्तमान भयंकर परिस्थितिमें अपना कर्तव्य पालन करते हैं ; पर क्या हम स्वस्थ लोग, जिन्हें सब प्रकारके साधन प्राप्त हैं, ऐसा करते हैं ?"

देखिये, वह बच्चा डेगचीमें हाथ डाले हुए है।

कुष्ठियोंका क्लास

शायद उसने चावल धोके तैयार किये हैं। इसका नाम कंगाल सिंह है। जब यह दो वर्षका था, तभी इसके चेहरेपर कुष्ठके चिह्न प्रतीत होते थे। ४६ इंजेक्शन देने, स्वास्थ्यप्रद भोजन खिलाने और उचित सावधानी रखनेसे इसके कुष्ठ-चिह्न जाते रहे और अब यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

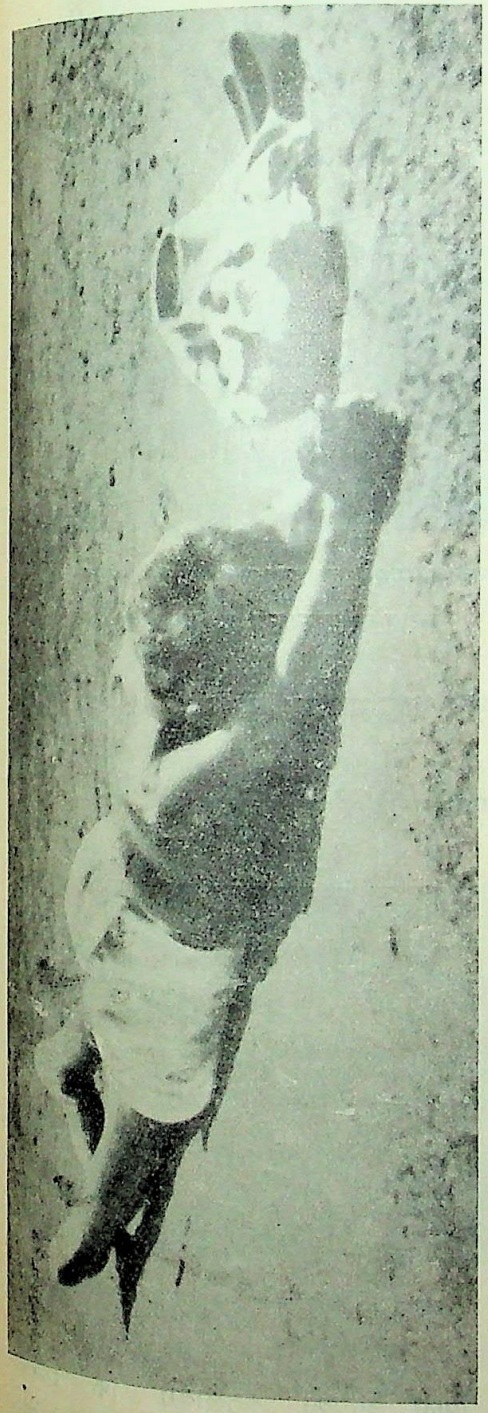

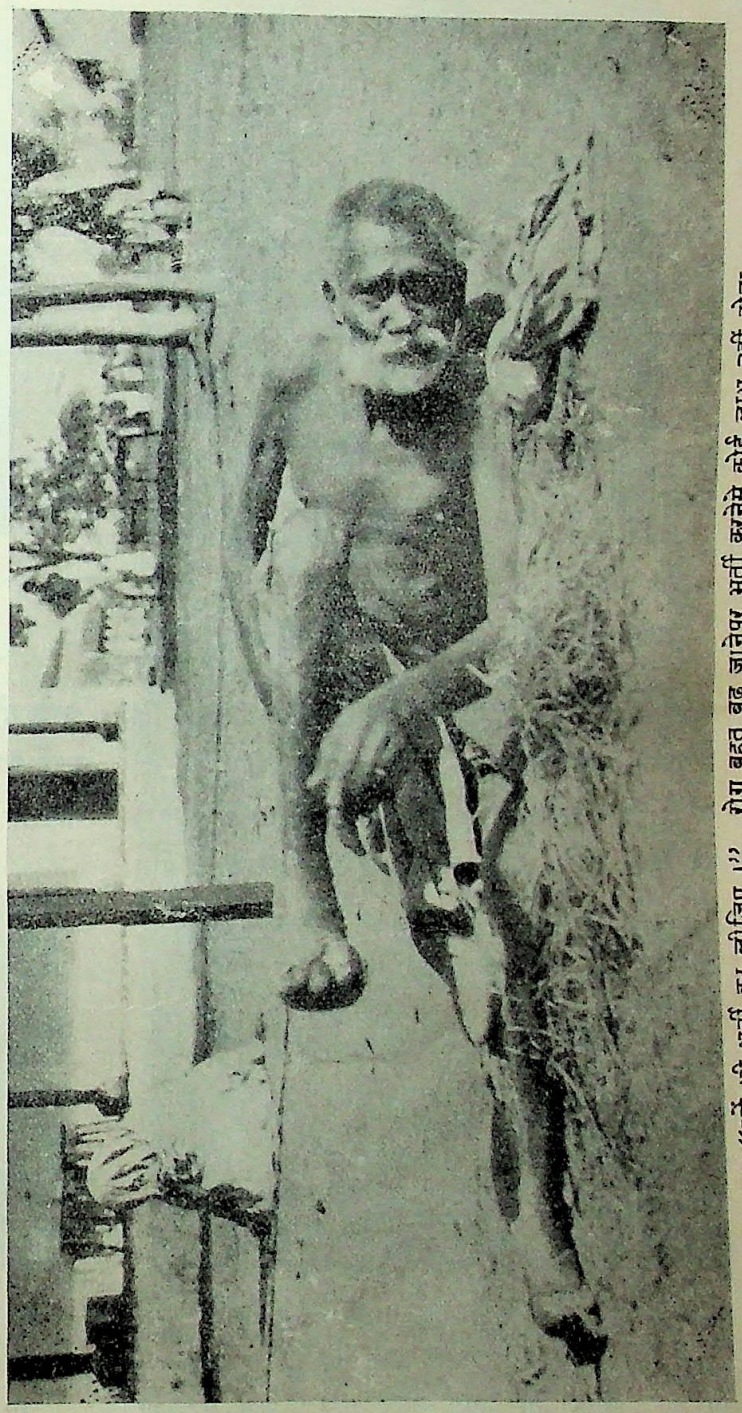

"हमें भी भर्ती कर लीजिए।" रोग बहुत बढ़ जानेपर भर्ती करनेसे कोई लाभ नहीं होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग प्रकट होते ही आनेवाले बच्चे। जगह न होनेपर भी इन्हें भरती करनेसे इनकार नहीं किया जा सकता था

रोगके आरम्भमें ही इलाज हो जानेसे ये बच्चे करीब-करीब स्वस्थ हो गये हैं

स्वस्थ-भवनमें रख दिया गया है। खैरियत यह हुई कि बीमारीके लक्षणोंके शुरू होते ही कंगाल सिंह यहाँ आ गया; पर इसकी बड़ी बहन (चित्र २४२ वें पृष्ठपर) देर करके आई, यानी जब वह १७ वर्षकी थी। रोग

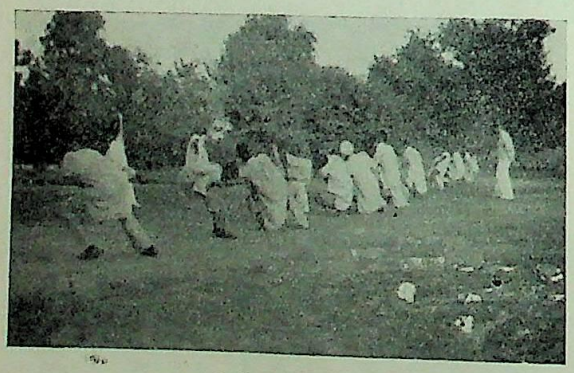

कुष्ठियोंकी रस्साकशी

तब तक अपना डेरा जमा चुका था। अब बहनका गला इस बीमारीने धर दबाया है और उसके नेत्रोंकी ज्योति भी मन्द हो चली है। अब क्या हो सकता है! अगर यह ८-१० वर्ष पहले आ गई होती, तो बच जाती। इसके दो और भाई भी इसी बीमारीसे पीड़ित होकर यहाँ आ गये हैं। उन चारों भाई-बहनोंको यह बीमारी अपने नानाके संसर्गसे हो गई!

पुरुलियामें बच्चोंका नया वार्ड

मि० मिलर आपको बतलावेंगे कि मिशन इस समय १३६० बच्चोंकी रक्षा कर रहा है, जिनमें ८०० तो स्वस्थ हैं और क़रीब ५०० को यह बीमारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

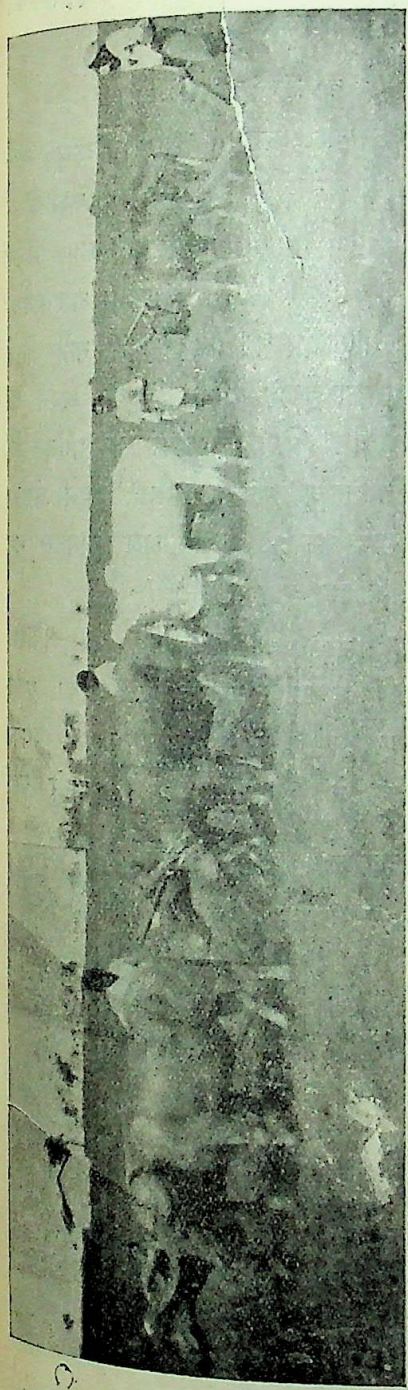

स्वावलम्बन। चन्दकुरी-आश्रममें आश्रमवासी खेती करके अपने भोजनके लिए अन्न पैदा करते हैं

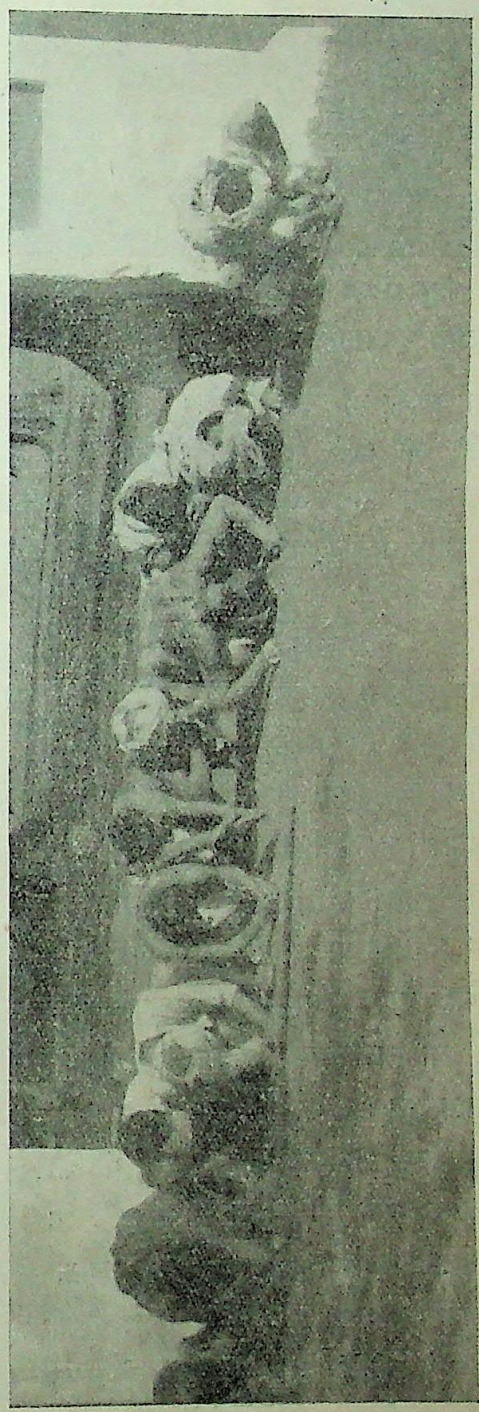

अनेकों रोगी आ-आकर भर्ती होनेके लिए अनुनय कर रहे हैं। किन्तु अक्सर रोग बहुत बढ़ा हुआ होनेके कारण या जगहकी कमीके कारण भर्ती करनेसे इनकार कर देना पड़ता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पाके कुष्ठियोंका एक दल। इनमें बहुतोंका रोग प्रकट हो चुका था और बहुतोंको छूत लगनेसे बचाया गया। अबसे सब तन्दुरुस्त हैं

ज़रा बच्चोंको भी देख लीजिए। कहीं वे स्नान कर रहे हैं, तो कहीं कलेवाका इन्तज़ार और कहीं बैठे-बैठे मज़ेके साथ भोजन कर रहे हैं। इन्होंने परिश्रम करके मिट्टीका अपना प्रार्थना-गृह भी बना लिया है!

सल्दोहा (बिहार)

अब पुरुलिया छोड़कर सल्दोहा पधारिये। सामने जो मकान दीख पड़ता है, उसे रोगियोंने, जिनमें कुछ मिस्त्री हैं, स्वयं ही बनाया है। यहाँ एक दर्शनीय व्यक्ति है, जिसका नाम है मंसा। यह आश्रमके प्रारम्भसे ही यहाँपर रहता है। जब यह १०-११ वर्षका था, तब इसकी बीमारी इतनी बढ़ी हुई नहीं थी। उस समय यह अपने अन्य भाइयोंको, जो उम्रमें इससे कहीं ज्यादा बड़े थे, पढ़ाया करता था। मंसाका इलाज होता रहा; पर जहाँ अन्य रोगियोंको लाभ हुआ, मंसाकी बीमारी बराबर बढ़ती ही गई। स्कूलका काम उसे छोड़ देना पड़ा। अब वह सिर्फ संध्याकी प्रार्थना कराया करता था; लेकिन अब बेचारेकी आँखें भी जाती रही हैं और गला भी बीमारीके कारण बैठ गया है, इसलिए गानेमें भी शामिल नहीं हो सकता। पर इससे क्या? अबकी उसके चेहरेपर मुसकराहट है। मंसासे पूछिये—

"कहो भई! तबीयत कैसी है?" जवाब देगा—"अच्छी तरह हूँ!" रेवरेण्ड वी० बैगर साहब इस आश्रमके अधिष्ठाता हैं। उन्हें नमस्कार करके आगे चलिये।

बेलगाँव (बम्बई-प्रान्त)

यह देखिये, सामने श्रीयुत डब्ल्यू० सी० इरविन साहब आ रहे हैं। सुनिये, क्या कहते हैं—"हर सप्ताह एक-न-एक आदमी हमें वापस भेजना पड़ता है। पिछले वर्ष हमें पचास आदमियोंकी प्रार्थना अस्वीकृत करनी पड़ी थी। ख़ास तौरसे दुःख हमें इस बातका है कि एक विधवा अपने चार बच्चोंके साथ आई थी (ये पाँचों कुष्ठरोगसे पीड़ित थे) और स्थानाभावके कारण हमें उसे 'ना' कहनी पड़ी। बड़ा हृदयवेधक दृश्य था; पर आश्रम ठसाठस भरा हुआ था, करते तो हम क्या करते?"

बड़े भाईका आत्म-बलिदान

"यहाँपर इस आश्रममें एक १८ वर्षका युवक रहता था, जो कुष्ठ रोगसे पीड़ित था, उसका १५ वर्षका छोटा भाई भर्ती होनेके लिए आया। हमारे यहाँ

दो रोगिणी। बाईं ओर—रोग प्रकट होनेपर फौरन इलाज हो जानेसे यह बालिका अच्छी हो गई। दाहनी ओर—कंगाल सिंहकी बड़ी बहन, जो आश्रममें तब पहुँची, जब रोग काफी बढ़ चुका था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

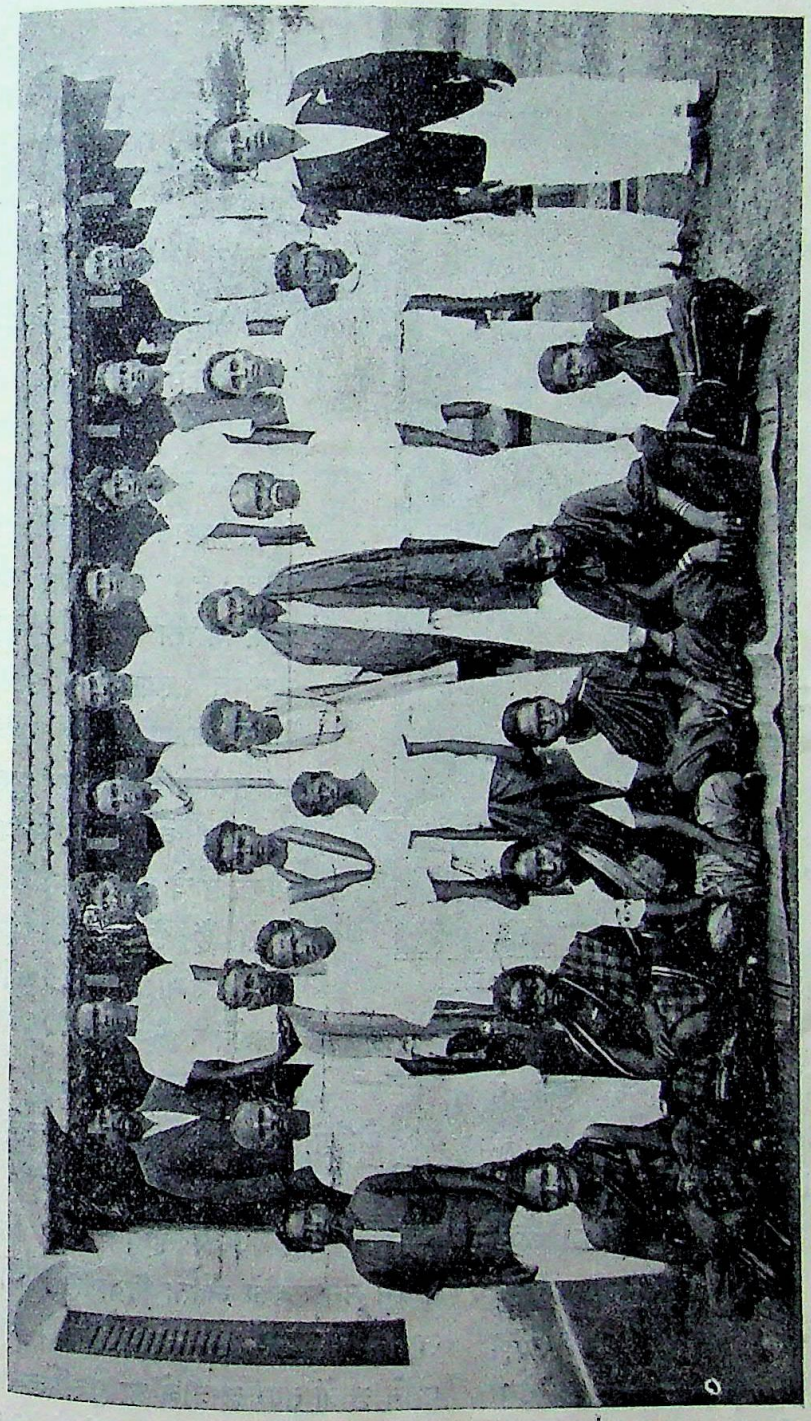

इन रोगियोंका रोग काबूमें आ गया है। ये समय-समयपर अपने परिवारके साथ परीक्षा कराने आते हैं। चाँदकुरी लेपर होम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

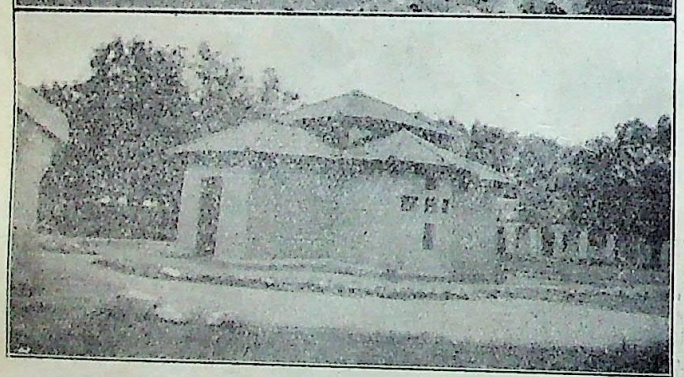

स्वस्थ बच्चोंके विभागका नया गिरजा, निर्माण, प्रार्थना, इमारत

अन्य रोगियोंके प्रार्थनापत्र पहले स्वीकृत हो चुके थे और हम वचन दे चुके थे कि स्थान खाली होते ही हम उन्हें भर्ती कर लेंगे। ऐसी हालतमें इस छोटे भाईको हम तभी भर्ती कर सकते थे, जब हम अपने वचनको तोड़ देते और एक आदमीके प्रति अन्याय करते। यह हमने अनुचित समझा। नतीजा यह हुआ कि हमें छोटे भाईकी अर्ज़ी नामंजूर कर देनी पड़ी। बेचारा बड़ा भाई दिन-भर रोता रहा। अन्तमें उसने निश्चय किया कि मैं खुद अपनी जगह छोटे भाईके लिए खाली कर दूँगा। यही उसने किया। छोटे भाईको अपने स्थानपर रखकर उसने आश्रमसे विदाई ली! हम सबको इस करुणोत्पादक विदाईपर घोर दुःख था; पर लाचारी थी।"

बम्बई-प्रान्तमें सैकड़ों-हज़ारों ही लखपती हैं। क्या उनमें इतनी सहृदयता है कि वे कल्पना द्वारा अपनेको उस बड़े भाईकी स्थितिमें रख सकें?

मध्य-प्रदेश

आइये, अब मध्य-प्रदेशकी यात्रा कीजिए। यहाँ भी स्थानकी कमी है। चम्पाके डा० पैनरकी बात सुन लीजिए—"इस आश्रममें मैं दिनमें दो बार आया करता हूँ। हर बार एक-न-एक रोगी मुझे मिलता है, जो भर्ती होनेके लिए अत्यन्त करुणाजनक स्वरसे प्रार्थना करता है। आसपासके गाँववालोंने एक चालाकीसे काम लेना शुरू किया है, वह यह कि वे रातके समय किसी कुष्ठीको पेड़के नीचे छोड़ जाते हैं और यह आशा रखते हैं कि आश्रम इन्हें भूखों नहीं मरने देगा! इन लोगोंकी दुर्दशा अवर्णनीय है।"

चिरस्मरणीय भोज

हम लोग चम्पामें बहुत ही अच्छे मौक़ेपर आये हैं। आज लेपर मिशनके सेक्रेटरी मि० ऐण्डरसन सपत्नीक यहाँ पधारे हैं। इस अवसरपर डाक्टर पैनरने उन सबको न्यौता दिया है, जो इस आश्रमसे स्वस्थ होकर निकलकर गये हैं। आज इस आश्रमके पुराने छात्रों तथा छात्राओंका पुनर्मिलन होगा! कोई-कोई तो चार सौ मीलसे आये हैं! देखिये, बड़ी-बड़ी डेगचियोंमें चावल बन रहे हैं और लम्बे-चौड़े कड़ाहोंमें कढ़ी तैयार हो रही है। छोटे-छोटे बच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

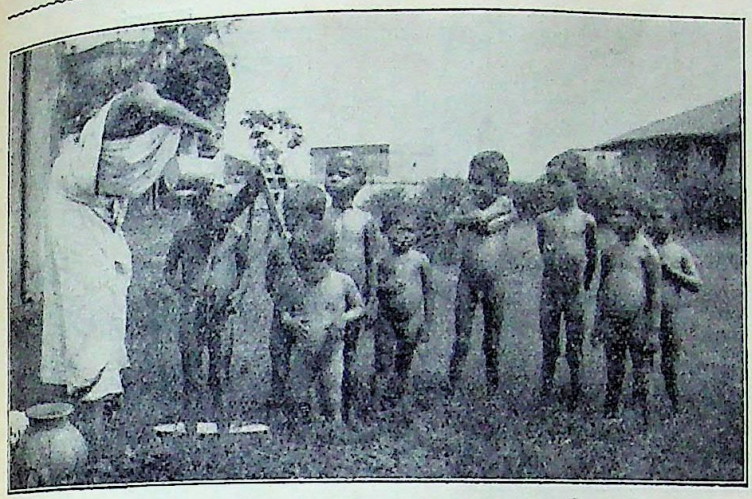

नहानेका मज़ा। कुष्ठाश्रमके बच्चोंका स्नान

इधर-उधर कूदते-फिरते हैं। वह नवदम्पति वहाँ खड़े-खड़े मुसकरा रहे हैं। स्त्रियाँ अपनी रंग-बिरंगी सर्वोत्तम साड़ियाँ पहने हुए हैं। वर्षोंके बिछुड़े हुए भाई-बहन मिल रहे हैं। अपने छोटे-छोटे बच्चोंको एक-दूसरेको दिखला रहे हैं। श्रीमती पैनर और डा० पैनर उनके बीचमें माता-पिताकी तरह घूम रहे हैं। उनके हृदयकी प्रसन्नता मुखपर झलक रही है। एक सौ चालीस अतिथि हैं।

आजसे कितने ही वर्ष पहलेकी बात है, जब डाक्टर पैनरने केवल दो कुष्ठी रोगियोंके साथ इस आश्रमकी स्थापना की थी। जिस दम्पतिकी सेवा तथा त्यागसे हमारे सैकड़ों भाई-बहनोंके जीवनमें आशाका संचार हुआ है, उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके हम आगे बढ़ें, क्योंकि अभी हमें बहुत दूर जाना है।

चान्दकुरी

यहाँ कई बातें हमें बड़ी आशाजनक प्रतीत हुईं। पहली तो यह कि एक ब्राह्मण सज्जनने अपनी भूमिका एक टुकड़ा कुआ खोदनेके लिए आश्रमको दे दिया है, जिससे यहाँका जल-कष्ट दूर हो गया है। इस सच्चे ब्राह्मणत्वके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। दूसरी चीज़ यहाँकी गोशाला है। यहाँके पशु स्वस्थ हैं और दूध बहुत अच्छा होता है; पर इन सबसे अधिक दर्शनीय है मरियम नामकी स्त्री, जो स्वयं इस रोगसे कुछ पीड़ित है, पर उसके सेवा-भावको देखकर आश्चर्य होता है। पचास व्यक्तियोंके लिए यह नित्यप्रति भोजन बनाती है। प्रेमके साथ भोजन तैयार करना और स्नेहके साथ परोसना किसे कहते हैं, यह कोई मरियमसे सीख जाय। मरियमको इस बातका पूरा-पूरा पता रहता है कि किस रोगीको, रोगकी परिस्थितिके कारण, क्या भोजन मिलना चाहिए, और वह बिना चूके वही भोजन उसे तैयार करके देती है; क्या मजाल कि उससे कोई भूल हो जाय।

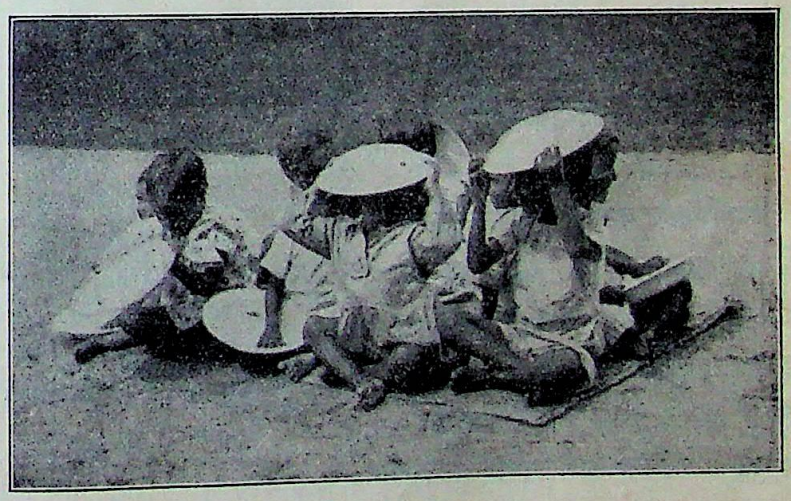

कलेवेका इन्तज़ार

दस मिनटके लिए मिस ए० एम० वैगनरसे भी बातचीत कर लीजिए। आप १२७ बच्चोंकी निरीक्षक—या यों कहिये कि पालक-पोषक हैं। ये आपको बतलावेंगी कि बच्चे कितने प्रसन्न रहते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा मुझे भी

सवेरे जब वे दूध-दलिया खाते हैं, उस समय उनके प्रफुल्लित चेहरोंको देखिये।

धमतरी (शान्तिपुर)

यहाँवालोंने एक बड़ी उपयोगी स्कीम बनाई है, जिससे उन रोगियोंको, जिनकी बीमारी रुक गई है, और स्वस्थ बालक-बालिकाओंको भी, कृषि-कार्यके लिए थोड़ी-सी ज़मीन देकर बसाया जा सकेगा। मध्य-प्रदेशकी सरकारने १९०० एकड़ भूमि देनेका वचन दिया है।

चम्बा (पंजाब)

यहाँपर डाक्टर हचीसनने साठ वर्ष तक काम किया था। सन् १८७६ में मि० बेली साहबने आपको यह कार्य सौंपा था, तबसे आप उसे निरन्तर करते रहे। अठासी वर्षके इस बूढ़ेका उत्साह प्रशंसनीय था। जब डा० हचीसनका मृत्यु-समय निकट था, तो उन्होंने अपने साथी-संगियोंको बुलाकर कहा—"अपनी स्मृति क़ायम रखनेके लिए बस एक ही मेरी इच्छा है, वह यह कि कुष्ठी लोगोंकी सेवाका यह कार्य जारी रहे।" साठ वर्षकी सेवा! भला, इस ऋणसे हम कैसे उऋण हो सकते हैं?

बाग़वानी

स्थान तो बहुतसे देखनेको हैं; पर अभी इतना समय नहीं है। यदि समय होता, तो हम आपको रावलपिंडीके आश्रममें कताईका काम दिखलाते, नैनीके आश्रमकी गोशालाके दर्शन कराते और मि० पितलेसे आपका परिचय कराते, जिन्होंने स्वयं इस रोगसे पीड़ित होनेपर भी रोगियोंके लिए महान कार्य किया है।

एक बात ध्यान देने योग्य है। इन आश्रमके निवासियोंको बाग़वानीका शौक़ है, और कहीं उन्होंने सुन्दर पुष्पोंके पौधे उगा रखे हैं और कहीं तरकारियाँ लगा रखी हैं।

बाँकुड़ेके आश्रममें आपको सुन्दर पुष्पों तथा

पहले प्रार्थना कर लो, तब खाना शुरू करो

तरकारियोंका बग़ीचा दीख पड़ेगा, और रानीगंजका आश्रम तो मानो एक उपवन ही है। भागलपुरमें मिस क्रौघ फूल उगा रही हैं, और मुज़फ़्फ़रपुरके आश्रमवासियोंको कृषि और बाग़वानीका शौक़ है। पुई (बम्बई-प्रान्त) में आपको सुन्दर बग़ीचा दीख पड़ेगा और पूनाके निकट खौडवामें, जहाँ आज सूखी ज़मीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

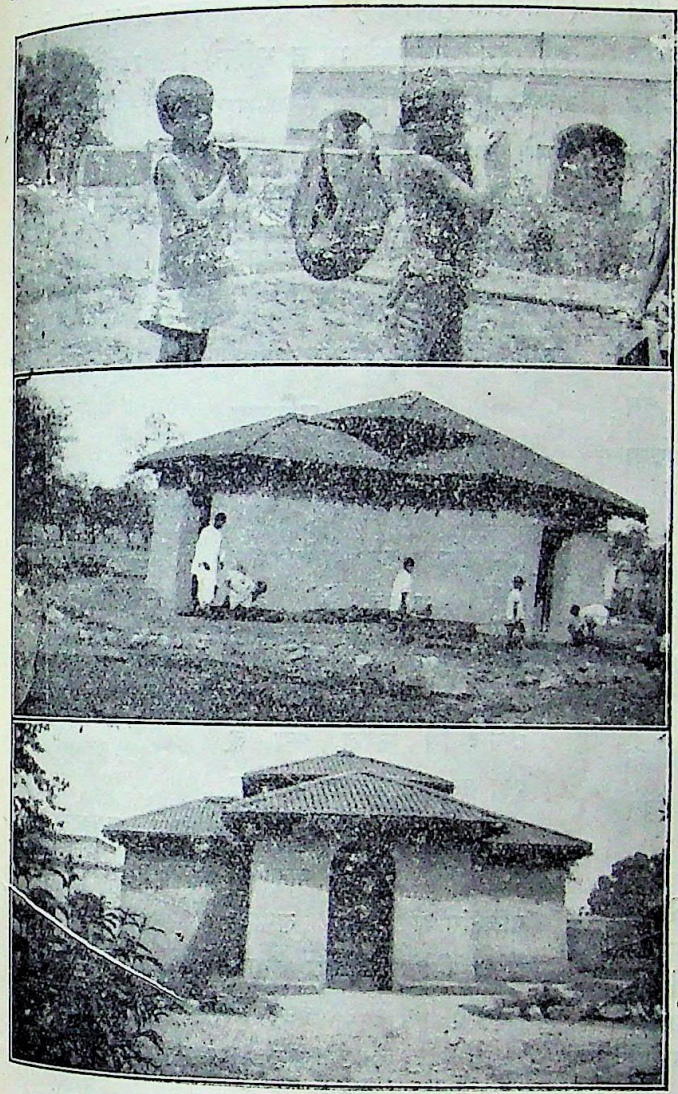

स्वस्थ बच्चोंके विभागमें नया गिरजा बन रहा है। बच्चे स्वयं गिरजेकी तामीरमें मदद दे रहे हैं

दीख पड़ती है, कल फूल-ही-फूल नज़र आवेंगे। नैनी (इलाहाबाद) का तो कहना ही क्या है! जहाँ कृषि-विद्या-विशेषज्ञ Dr. S. Higginbottom रहते हों, वहाँ तो आश्चर्यजनक उन्नति होनी ही चाहिए। इस आश्रममें दूध भी खूब बढ़िया होता है और तरकारियों तथा फलोंकी भी भरमार है।

जो महत्त्वपूर्ण कार्य लेपर-मिशन द्वारा हो रहा है, उसका एक अंश हमने अपनी चर्म-चक्षुओंसे देख लिया, पर इस कार्यके पीछे जो सेवापूर्ण भावना है, उसका अनुभव हम ज्ञान-चक्षुओं द्वारा ही कर सकते हैं।

महात्मा गांधीने लिखा था—

"The bloom of the rose does not need to proclaim itself loudly to the world. Its very perfume is the witness of its own sweetness. So a Christian life that grows silently like the rose is the truest witness to Christ."

अर्थात्—'जब गुलाब खिलता है, तो दुनियामें अपने खिलनेका ढिंढोरा थोड़े ही पीटता है। उसकी सुगन्ध ही उसके माधुर्यका पर्याप्त प्रमाण है। इसी प्रकार एक सच्चे ईसाईका जीवन भी गुलाबकी तरह चुपचाप विकसित होता है, और ऐसा जीवन ही ईसाके सत्प्रभावका सबसे अधिक सच्चा प्रमाण है।'

प्रिय पाठकगण!

मुझे मालूम नहीं कि बीसियों सच्चे कार्यकर्ताओंकी सेवासे बने हुए इस सुगन्धमय उपवनकी सैर करनेवाले आप कौन हैं?

क्या आप कोई सम्भ्रान्त महिला हैं?

तब मैं आपसे कहूँगा कि इस महान उपवनकी स्थापनामें महिलाओंका ज़बरदस्त हाथ रहा है। आइरिश पिम कुमारियोंका वृत्तान्त आप पढ़ चुकी हैं और अमेरिकन मिस मेरी रीडसे भी आप परिचित हैं। नासिककी अंगरेज़ महिला मिस हारवेका जीवन-चरित भी कभी आपको सुनाऊँगा। उन्होंने अपने जीवनके ३५ वर्ष (१८९७ से १९३२ तक) इन्हीं भाई-बहनोंकी सेवामें बिताये थे। सत्तर वर्षकी उम्रमें इनका देहान्त हुआ। इन्हें सब आश्रमवासी आई (माता) कहते थे, और यही इनका सबसे बड़ा पुरस्कार था। स्कटलैंडकी डाक्टरनी ईसाबेल करने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनके सर्वोत्तम वर्ष दीचपाली (दक्षिण-हैदराबाद) में बिताये थे। रामचन्द्रपुरम (पूर्व गोदावरी) में आज भी एक अस्सी वर्षकी बुढ़ियाको आप इन दीन-हीन पीड़ित भाई-बहनोंकी सेवा करते हुए देख सकते हैं। ये कनाडाकी निवासिनी हैं। इस प्रकार आइरिश, अमेरिकन, अंगरेज़ और कनेडियन महिलाओंके त्याग और बलिदानसे आज हमारे समाजके अत्यन्त दीन-हीन भागकी सेवा हुई है। भारतवर्षमें हज़ारों ही बहनें कुष्ठ रोगसे पीड़ित हैं। २६०० स्त्रियाँ तो इन आश्रमोंमें ही रहती हैं। क्या उनके प्रति आप अपना कर्तव्य पालन करेंगी ?

अथवा क्या आप कोई लेखक हैं ?

तब मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप कभी इन तेतालीस आश्रमोंमें से किसी एककी तीर्थ-यात्रा कीजिए और अपनी आँखोंसे उस महत्त्वपूर्ण कार्यको देखिये और अपनी लेखनीका प्रयोग इन निस्सहाय देशभाइयोंके लिए भी कीजिए। एक रूसी लेखकके निम्न-लिखित वाक्यको न भूलिये—

"Do you wish to be a writer ? Read the history of the accumulated woes of your race, and if your heart does not bleed as you read, throw down your pen, let it only serve to betray the gloomy coldness of your heart."

अर्थात—'क्या तुम लेखक बनना चाहते हो ? यदि हाँ, तो अपनी जातिके पुराने ज़मानेसे संचित दुःख-समूहका इतिहास पढ़ो। अगर उसे पढ़ते हुए तुम्हारा हृदय विदीर्ण न हो, तो अपनी लेखनी फेंक दो। बस, फिर सब कोई तुम्हारे पाषाण-हृदयकी खेदजनक शुष्कताको पहचान लेंगे।'

यदि लिखनेवालेके पास एक कोमल हृदय हो, तो प्रत्येक कुष्ठीका जीवन उसे एक अमर कहानी अथवा हृदयवेधक निबन्धका मसाला दे सकता है।

यदि आप कोई राजनैतिक कार्यकर्ता हैं, तो मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि जहाँ आप राजनैतिक कोढ़ (भारतकी गुलामी) को दूर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, वहाँ इन लोगोंको भी न भूलिये। राजनैतिक कार्य और समाज-सेवा दोनों साथ-साथ चल सकते हैं और चलने चाहिए।

और यदि आप कवि हैं, कविता-मर्मज्ञ हैं अथवा कवि-हृदय हैं, तब सेवा-उपवनमें भ्रमण करनेका जो कष्ट आपने उठाया है, तदर्थ कविवर मैथिलीशरणजीका यह पद्य-पुष्प आपकी सेवामें अर्पित किया जाता है :—

परिचय

बार - बार तू आया
पर मैंने पहचान न पाया।

हिम-कम्पित कृश पाणि पसारे
पहुँच बुभुक्षित, मेरे द्वारे
तूने मेरा धक्का खाया!
बार - बार तू आया।

दीन-दृगोंसे निकल पड़ा तू
बड़ा सरस था, विकल बड़ा तू
पर मैं कौतुकसे मुसकाया!
बार - बार तू आया।

गलितांगोंका गन्ध लगाये
आया फिर तू अलख जगाये
हटकर मैंने तुझे हटाया!
बार - बार तू आया।

आर्त्त-गिरा कानोंमें आई,
वह थी तेरी आहट लाई,
पर मैं उसपर ध्यान न लाया!
बार - बार तू आया।

पीड़ितके निःश्वास,—अरे रे!
मैं क्या जानूँ कर थे तेरे!
मुझपर माया-मद था छाया!
बार - बार तू आया!

अब जो मैं पहँचानूँ तुझको
तो तू भूल गया है मुझको
मैं हूँ—जिसने तुझे भुलाया!
बार - बार तू आया
पर मैंने पहचान न पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता

श्री शिवदान सिंह चौहान

[लेखककी अनेक बातोंसे हम सहमत नहीं हैं, विचार-स्वातन्त्र्यके नाते और इस आशासे कि अन्य महानुभाव भी इस विषयपर अपने विचार प्रकट कर सकें, हम उनका लेख ज्यों-का-त्यों प्रकाशित करते हैं। —सम्पादक]

"Without a clear understanding that only an exact knowledge of the culture created by the entire evolution of man, that only by an analysis of it a proletarian culture be created—without such an understanding we shall never solve this problem. Proletarian culture is not something which springs from nowhere, is not an invention of people who call themselves specialists in proletarian culture. This is complete nonsense. Proletarian culture must be the logical development of those fruits of knowledge which humanity has worked out under the yoke of Capitalist Society."

—Lenin, 1920.

इस समय संसारकी प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी शक्तियोंमें अनवरत युद्ध चल रहा है। मार्गके झंखाड़ काटते-छाँटते इतिहास अब उस स्थितिपर आ गया है, जब कि ये दोनों शक्तियाँ संगठित और सामूहिक रूपमें एक दूसरेके आमने-सामने खड़ी हो गई हैं। लेकिन प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी समाजपर आज संकट छाया हुआ है, उसकी असंगतियाँ (Contradictions) दीमककी तरह उसे भीतरसे ही खोखला बना रही है। यही नहीं कि यह संकट (Crisis) सिर्फ आर्थिक क्षेत्रमें ही व्याप्त हो, बल्कि उसके कारण सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रोंमें भी पतनके लक्षण स्पष्ट हो रहे हैं। यहाँ तक कि पूँजीवादी दृष्टिकोण, साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान आदि तकमें 'पतझड़'के आसार दिखाई दे रहे हैं। साहित्यमें विशेषकर निराशावाद, प्रतिक्रियावादी रूढ़िवादी स्वभावकी बाढ़; तरह-तरहके आदर्शवादी मतोंका प्रचार और नित नूतन आविष्कार; रहस्यवादके गड़े मुर्देमें पुनः जान डालनेकी कोशिश; और वर्तमानकालीन वैज्ञानिक मतों और साधनोंकी उपेक्षा कर 'मध्यकालीन विद्याभिमानी' (Medieval Scholasticism) अवस्थाको लौट चलनेका यूरोपमें और वैदिक कालकी ओर लौट चलनेका भारतमें प्रयत्न यह सब वर्तमान पूँजीवादी समाज और साहित्यकी पतनोन्मुख दशाका सूचक है। मगर इसके साथ ही पूँजीवादी समाजके विरुद्ध प्रगतिशील शक्तियाँ उठ खड़ी हुई हैं, जिनके सामने दो कार्य हैं; एक ध्वंसात्मक, दूसरा रचनात्मक। एक ओर उन्हें अगर सड़ी हुई आर्थिक प्रणालीसे लेकर ज़हरीले, घातक और भ्रमात्मक, धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक मतोंका जड़ोन्मूलन करना है, तो दूसरी ओर उन्हें एक नई आर्थिक प्रणालीकी स्थापना, एक नये समाज, नये विचार, नवीन कला, नवीन विज्ञान, नई संस्कृति और नई सभ्यताकी रचना भी करनी है। "प्रगतिशील शक्तियोंका यह दल वह 'सामूहिक' दार्शनिक है, जो न केवल संसारको 'स्पष्ट' करता है, बल्कि उसे 'परिवर्तित' करनेमें भी अविरत लगा रहता है।" उसे एक सूखे-फूलसे बाग़की रक्षा नहीं करनी है, बल्कि उसे उखाड़ फेंकनेके बाद उसमें नई पौध लगाना है। अतः वह अधिक क्रियाशील है। उसमें नया जोश है, नई स्फूर्ति है, नई ताक़त है।

मनुष्यकी तरह साहित्य भी एक सामाजिक वस्तु है। समाजसे साहित्यको न तो अलग ही किया जा सकता है और न उसे समाजसे अधिक प्रतिष्ठा ही दी जा सकती है। अतः हम समाजकी विकास-धाराका अनुसरण करके साहित्यके विकासकी रूप-रेखा भी निश्चित कर सकते हैं। साधारण रूपमें समाजके विकासका इतिहास पदार्थोंके उत्पादन और वितरणके साधनोंके विकासका इतिहास है। मनुष्यने—'सामूहिक या सामाजिक पुरुष' ने—तरह-तरहके सम्बन्धोंमें पड़कर, प्रकृतिके साथ सम्बन्ध स्थापितकर उसके साधनोंका उपयोग किया। उसने प्रकृतिपर अपनी दक्षता क़ायम

CC-0. Vedic Research Institute. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए उसपर अपना स्वत्त्व या अधिकार जमाया, उसके साधनोंको नित्य उन्नत करनेकी कोशिश की और हर बार पुराने उत्पादनके साधनोंको नष्टकर नये साधनोंको उपयोगमें लानेके लिए युद्ध किया और क्रान्ति की, इस रीतिकी बुनियादपर राजनैतिक, नैतिक धार्मिक और दार्शनिक विचार-धाराओंका ढाँचा उठ खड़ा हुआ। प्रारम्भिक अवस्थामें ही समाजमें श्रेणियाँ बन जाती हैं। ये श्रेणियाँ या वर्ग उत्पादन या वितरणके भिन्न-भिन्न कार्योंका सम्पादन करनेके लिए बनते हैं। किन्तु कुछ समय बाद जो वर्ग अधिक शक्तिशाली होता है, या जिसके हाथमें उत्पादनके साधनोंकी बागडोर रहती है, वह सोचने लगता है कि उसकी सत्ता स्थायी है, अतएव धर्म, सदाचार, क़ानून, विज्ञान, दर्शन और कलाके एक स्वतन्त्र इतिहासका भ्रम उसमें पैदा होने लगता है। और अब तक यह बाहरी ढाँचा, जो उन्नति, प्रगति या विकासका सूचक था, उन्नति, प्रगति और विकासपर एक बन्धन हो जाता है। इस प्रकार साहित्यका समाजके साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध रहता है।

मगर साहित्य—विशेषकर हिन्दी-साहित्य, या उर्दू-साहित्य—एक ऐसी परिस्थितिमें उत्पन्न हुए, जब समाजकी प्राचीन श्रृंखलाएँ स्वयं ही कमज़ोर हो चली थीं। इस प्रकार ये साहित्य (यद्यपि असन्तुष्ट और परतन्त्र जनताकी भावनाओंको ग्रहणकर तथा उनकी आहोंको अपने स्वरमें भरकर प्रगतिशील हो सकते थे) उन्नति, प्रगति या विकासके सूचक न होकर समाजपर बन्धन ही बने रहे। इसका इतिहास जितना रोचक है, उतना ही शिक्षाप्रद भी।

हिन्दीके साहित्यकारोंने विदेशोंके साहित्यकारों या कलाकारोंकी तरह न किसी स्वतन्त्र विचार-धाराको अपनाया और न उसका साथ दिया, यह हमारे एक सम्पादककी राय है। भक्तिकालमें भी केवल आत्म-समर्पण, भक्तिमें तल्लीनता आदि भाव ही हमारे तुलसी, सूर आदिके साहित्यमें भर पाये थे। उसके बाद रीतिकालमें विचार-धारा तो दूर, हमारे कवि 'कवितायुक्त कोकशास्त्र' लिखने लगे। उनसे इस अधोगतिके अलावा और उम्मीद भी क्या की जा सकती थी? और वर्तमान कालमें भी किसी स्वस्थ विचार-धाराका नाम नहीं। एक अयोध्या सिंह यहाँ, तो दूसरे दुलारेलाल वहाँ, आज भी अपने 'रसकलश' और 'दोहावली' में कोकशास्त्रका पूरा निचोड़, कुछ और नये रसोंको मिलाकर, भर रहे हैं, और हिन्दीके समालोचक इन नये रसोंकी खोजपर उनके सामने बधाई-स्वरूप लम्बे लेट जाते हैं।

लेकिन यह सब है क्यों? इस बातपर विचार करनेके लिए हमें ज़रा विस्तारमें जाना पड़ेगा।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि समाजके विकासका इतिहास पदार्थोंके उत्पादन और वितरणके साधनोंके विकासका इतिहास है, क्योंकि मनुष्य प्रथम एक विचारशील प्राणी न होकर उत्पन्न या पैदा करनेवाला जन्तु या जानवर है। अर्थात् मनुष्य अपने जीवन-निर्वाहकी आवश्यक वस्तुएँ, सौन्दर्य, आराम और उपभोगकी चीज़ें पैदा कर सकता है। इस उत्पादन-प्रणालीके साथ-साथ किस प्रकार समाजका स्वरूप, उसके व्यावहारिक सम्बन्ध, उसकी व्यवस्था, राजनीति, कला, विज्ञान, दर्शन, साहित्य और धर्मकी रूप-रेखा; समाजका वाह्य रूप और उसकी आन्तरिक संस्कृति, मनुष्यकी प्रकृति और उसका श्रेणी-ज्ञान बढ़ता और क्रमशः परिवर्तित होता जाता है तथा उसकी प्रत्येक तात्कालिक उत्पादन-प्रणालीके अन्दर उसके प्रति विरुद्ध प्रकार प्रत्यावर्तनके बीज स्वयं स्वभावतः अंकुरित हो उठते हैं और समाजकी असंगतियोंको प्रबल करते जाते हैं, यह एक ऐतिहासिक सत्य है और एक दार्शनिक विचार-धारा है।

प्रत्यावर्तनके ये बीज जब समाजमें प्रबल हो जाते हैं, असंगतियाँ बढ़कर विकासमें बाधा डालने लगती हैं तथा समाजमें संकट उपस्थित होने लगते हैं तो उस समय क्रान्ति होती है। यदि क्रान्ति सफल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है, तो पहली उत्पादन-प्रणाली नष्ट कर दी जाती है। उस समय शक्तिमें आकर यही प्रत्यावर्तन या क्रान्तिकी शक्तियाँ स्थायित्वका स्वप्न देखने लगती हैं। और क्रमशः उनके प्रति भी प्रत्यावर्तनके बीज अंकुरित हो उठते हैं तथा तत्कालीन शक्तिमान श्रेणी विकासकी धारा नियन्त्रण रखनेकी कोशिश करने लगती है। फिर उसकी भी जड़ खोदकर फेंक दी जाती है। यही ऐतिहासिक विकास-धारा है। साहित्यमें भी इसी प्रकारके विकासक्रम रहते हैं।

जिस श्रेणीके अधिकारमें समाजका समस्त उत्पादन, सामग्रीके उपयोग, वितरण और रक्षाके अधिकार, आयात-निर्यात और गमनागमनके साधनोंपर नियन्त्रण रहता है, उस श्रेणीका साहित्य, जो कुछ काल पूर्व—क्रान्तिके अवसरपर—विचार-स्वातन्त्र्य, उन्नति, विकास और क्रान्तिका सूचक तथा उद्भावक होता है, अब उस श्रेणीकी सत्ताकी न्यायप्रियता, औचित्य और अलौकिकता प्रमाणितकर उसके स्थायित्वका सिक्का जमानेकी कोशिश करता है। कुछ काल तक उसका बोलबाला रहता है, जब तक कि प्रत्यावर्तनकी शक्तियाँ प्रबल नहीं हो जातीं। सौन्दर्यप्रियता तथा अभिव्यंजनकी भावनाएँ—जिनको हमारे साहित्यिक साहित्यकी मूल मनोवृत्तियाँ बताकर यह सिद्ध करते हैं कि साहित्य समाजकी इन सब कार्रवाइयोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, वह स्वतन्त्र है, निष्पक्ष है (आदि-आदि झूठी बातें)—वास्तवमें समाजके अन्तर्गत और गौण रूपसे साहित्यके निर्माणमें सहायता देती हैं, क्योंकि शक्तिमान वर्ग अपनी सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहनके तरीक़ोंको कलाके भिन्न-भिन्न रूपोंमें व्यक्त करके समाज (दलित-समाज) में उनका विस्तृत विज्ञापन और प्रचार करनेकी कोशिश करता है, ताकि वह दलित-समाज उस शक्तिमान श्रेणीकी भावनाओं और दृष्टिकोणोंको ग्रहणकर उसकी विशेष स्थितिकी नित्यताको स्वीकार कर ले। एक नया वातावरण खड़ा हो जाता है, जिसके ऊपर उठने या जिसके विरुद्ध आवाज़ उठानेमें ख़तरा रहता है और तत्कालीन श्रेणी-साहित्य इस ख़तरेको और भी बढ़ानेमें सहायक होता है।

यद्यपि इन श्रेणियों और वर्गोंकी उत्पत्तिके ऐतिहासिक कारण होते हैं और उत्पादनकी प्रणालीके साथ-साथ उनकी सत्तामें भी परिवर्तन होते रहते हैं, तथापि एक बार शक्तिमें आते ही प्रबल श्रेणी भ्रममें पड़कर अपनी सत्ताको ऐतिहासिक नहीं, बल्कि ईश्वर-प्रदत्त या अलौकिक समझने लगती है। यहाँपर ही साहित्यमें आदर्शवादका जन्म होता है। उस श्रेणीके साहित्यकार जगतके स्थूल ज्ञानका परित्याग कर तरह-तरहकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म असत्य-अलौकिक कल्पनाओं और अनेक छिद्रान्वेषी सौन्दर्य-भावनाओं तथा रहस्यमयी अनुभूतियोंका पुट देकर अपनी समस्त कलाको अस्पष्ट एवं आदर्शवादी बना देते हैं और परिवर्तनका कारण किसी परोक्ष सत्ताकी इच्छा, किसी महान व्यक्तिके व्यक्तित्व, अध्यवसाय और नेतृत्वका फल बताने लगते हैं। इस भ्रमजाल या हथियारका, जिसके द्वारा दलित श्रेणियोंको चिरकालसे दासताकी बेड़ियोंमें रखा गया है, अब तक क़रीब-क़रीब सभी श्रेणियोंने शक्तिमान होनेपर उपयोग किया है; लेकिन यह सब होते हुए भी, प्रगतिशील शक्तियोंपर निरन्तर कुठाराघात होते हुए भी, इतिहास और समाज-विकासकी मंज़िलपर मंज़िल पूरी करता बढ़ता आया है। आज वह उस स्थितिपर आ गया है, जब कि उत्पादन और वितरणके साधन सामूहिक और सामाजिक हो गये हैं; मगर उनका नफा, उनकी मेहनतका एक बड़ा हिस्सा एक छोटी-सी मुट्ठी-भर श्रेणीकी तिजोरियोंमें ही पहुँचता है, अर्थात् पूँजीवादी समाज जम चुका है और अब स्खलित हो रहा है तथा श्रेणी-संघर्ष इतना आगे बढ़ गया है, जितना कि इतिहासमें पहले कभी नहीं बढ़ा था।

साथ ही एक बात और ध्यान देने योग्य है। हमारे कलाकारों और आलोचकोंका मत है कि साहित्यके दो पक्ष होते हैं; एक कलापक्ष, दूसरा भावपक्ष। उनका यह भी कहना है कि मानव-स्वभाव अनेकरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विचित्र है, इसलिए साहित्यके कलापक्षमें भी तदनुसार अनेकरूपता होती है। कहानी, आख्यायिका, गल्प उपन्यास, गीत, नाटक, प्रहसन, काव्य, निबन्ध इत्यादि इसके भिन्न-भिन्न रूप हैं। साथ-ही-साथ वह यह भी सिद्ध करते हैं कि मानव-स्वभावकी अनेकरूपता और उसके तदनुसार कलापक्षकी अनेकरूपताके होते हुए भी साहित्यमें एक भावसाम्यकी धारा प्रवाहित होती रही है, जो देशकालके होते हुए भी अविच्छिन्न है। इन सब अनेकरूपताओंके अन्तरमें एकरूपता है। यह क्यों है? इसका उत्तर वे नहीं दे पाते। किसी परोक्ष सत्ताका हाथ या मानव-जीवनका रहस्य यही दो-एक उनके टकसाली उत्तर होते हैं। हमें इस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोणका विश्लेषण करना चाहिए। सच तो यह है कि मानव-स्वभावकी अनेकरूपता और कलापक्षकी अनेकरूपतामें तादात्म्य स्थापित करना ही पहले मूढ़ता है। दूसरे इस अनेकरूपतामें जिन भावनाओंकी एकता मिलती है, उनमें ऐक्य है, इसलिए वह गर्वकी वस्तु है, ऐसा सोचना और भी मूढ़ताकी निशानी है; लेकिन होता ऐसा ही है। और भी स्पष्ट करके यों कहना ठीक होगा कि साहित्यके भिन्न-भिन्न अंग भावोंकी अनेक-रूपताके कारण नहीं होते, क्योंकि वाह्यजगतके चित्र प्रतिविम्बमात्र हमारे मस्तिष्कमें उठते हैं। उन चित्रोंसे, जिन्हें हम भाव कह सकते हैं, हमारी अभिव्यंजनके 'प्रकार'से कोई सम्बन्ध नहीं। एक ही भाव काव्य, गीत, नाटक, आख्यायिका आदि सभीमें सफलतापूर्वक व्यक्त किया जा सकता है, और ऐसा होता है। यह ठीक है कि वैचित्रप्रियता तथा सामाजिक आवश्यकता इन भिन्न-भिन्न 'प्रकारों'के मूलमें हो; लेकिन भाव कदापि नहीं है। इसी प्रकार दूसरी बात भी स्पष्ट है कि जो श्रेणी जिस समय शक्ति-सम्पन्न होती है, वह साहित्यके इन भिन्न रूपोंके उपकरण या साधन बनाकर अपनी स्थिति समाजपर आरोपित करती है और इस प्रकार प्रत्यावर्तनके खिलाफ़ पहलेसे ही मानसिक आन्दोलन चलाने लगती है। समाजकी उत्पन्न की हुई सामग्रीको अपने ऐश-आरामके उपयोगमें लानेके लिए हड़पकर, साथ ही साधारण जनवर्गपर उन वस्तुओंको भौतिक, असार, अनित्य, त्याज्य एवं क्षणिक उत्तेजनात्मक तथा अधःपतनकी ओर खींचनेवाली वस्तुएँ बताकर, अपनी बर्बर, अत्याचार और अन्यायपूर्ण सत्ता क़ायम रखती है। अनेकों सामाजिक सम्बन्धों, रूढ़ियों और परम्पराओंको धार्मिक एवं आलौकिक रूप देकर अपना उल्लू सीधा करनेकी प्रवृत्ति शक्तिमान श्रेणीमें अवश्य रहती है, क्योंकि इन्हीं दक्रियानूसी सामाजिक सम्बन्धोंको क़ायम रखकर वह अपनी सत्ता भी क़ायम रख सकती है। लेकिन जिस प्रकार पैदावार, लेन-देन, आयात-निर्यातमें फ़र्क पड़ता गया, ये सामाजिक रूढ़ियाँ और सम्बन्ध भी उसके अनुरूप परिवर्तित होते गये, और इस प्रकार साहित्यमें मानव-सम्बन्धोंकी अनेकरूपता भी प्रदर्शित हो गई। लेकिन इन सब अनेकरूपताओंके होते हुए भी हरएक देश, काल और समाजमें यह बात सामान्यरूपसे अब तक प्रचलित रही कि अब तक एक छोटी श्रेणी एक बड़ी श्रेणीपर अपनी सत्ता क़ायम किये रही है, और यह सत्ता छोटी श्रेणीके ही स्वार्थमें हमेशा रही है। अतएव 'यह सत्ता उचित है' के साबित करनेवाले विचारोंमें तो साम्य मिलेगा ही, चाहे होमर लिखे या कालिदास, शेक्सपियर या तुलसीदास। विश्व-साहित्यमें इसी कारण विचारसाम्य या भावसाम्य मिलता है, क्योंकि सब जगह जनताका इतिहास उसकी परतन्त्रता और उसकी मज़दूरीके शोषणका इतिहास है। फिर भी इतिहास प्रगतिशील रहा है और उस अवस्थाकी ओर अग्रसर होता रहा है, जब कि शोषण नष्ट हो जायगा और मज़दूर अपना मानसिक एवं शारीरिक विकास कर पायेगा; जब कि सच्चे इतिहासका समारम्भ होगा। अतएव हमारे समालोचक Unity in diversity—'अनेकत्वमें एकत्व' साबितकर केवल इस श्रेणी-साहित्यके मूलतत्त्वको ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझना चाहते, बल्कि स्वयं अपनेको भी भ्रममें डाल रखते हैं। हम इसे अधःपतित प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण कहते हैं।

इतना स्पष्ट हो जानेके बाद अब मैं पुनः इस प्रश्नको उठाऊँगा कि हिन्दी-साहित्य या अन्य किसी भारतीय साहित्यने कभी किसी तत्कालीन प्रचलित सामाजिक यथार्थवादी विचार-धाराका दामन क्यों नहीं पकड़ा? इसके दो कारण हैं, और दोनों ऐतिहासिक हैं, जिनके बारेमें मैं साधारण रूपमें ऊपर विचार कर चुका हूँ। जैसा कि मैंने पहले कहा है कि साहित्यका विकास समाजके विकाससे सम्बन्धित है और निरन्तर उससे प्रभावित है। भारतवर्ष भी इसका अपवाद नहीं हो सकता था। अगर हम भारतके पिछले दो या ढाई हज़ार वर्षोंका इतिहास उठाकर देखें—अंगरेज़ोंके आनेसे पहले तकका—तो हमें ज्ञात होगा कि इस लम्बे कालमें भारतीय समाजके मूलमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इसका यह अर्थ नहीं है कि यहाँके समाजमें स्थायित्व या समतुल्यता आ गई थी। यह कहना मूर्खतापूर्ण होगा। समाजमें, उसके किसी अंगमें या जगतमें समतुल्यताकी परिस्थिति कभी नहीं रहती, वह निरन्तर गतिमान और प्रगतिशील है। कहनेका तात्पर्य यह है कि कुछ ऐतिहासिक कारणोंसे यहाँके समाजकी आर्थिक प्रणालीमें कोई ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ, जिसे हम एक क़दम आगे बढ़ना कह सकें। एक उन्नत शक्तिमान श्रेणी कुछ कालमें ही पतनोन्मुख होकर समाजके विकासपर एक बन्धन हो जाती है, तथा अपनी सत्ता क़ायम रखनेके लिए समस्त उन्नायक शक्तियोंसे युद्ध करने लगती है। यदि प्रत्यावर्तनकी शक्तिको दुष्प्रभावोंके चक्करमें डालकर प्रबल होनेसे रोक लिया गया, तो वह समाज पतनोन्मुख होते हुए भी प्रतिक्रियावादी शक्तिके अन्तर्गत रहेगा; समाजकी प्रणाली जल्दी न बदलेगी; लेकिन इससे परिवर्तन या प्रगति नहीं रुक जाती। सब जगह एक-सी ही परिस्थितियाँ नहीं होतीं, और न यह ज़रूरी है कि हर जगह समाज अपने विकासकी सभी मंज़िलोंमें होकर गुज़रे। उसपर बाहरी प्रभाव बहुत पड़ते हैं तथा देशकालकी अपनी परिस्थितियाँ विश्वके समाजसे प्रभावित होती रहती हैं। मैं कह रहा था कि दो हज़ार वर्षसे हमारी आर्थिक प्रणालीके मूलमें कोई परिवर्तन (उल्लेखनीय) नहीं हुआ। दो-तीन हज़ार वर्ष तक हम सामन्ती समाजमें रहे। इस बीचमें हमारी उन्नति क्यों न हुई, जब कि यूरोपके देशोंमें मनुष्य अर्द्ध-सभ्य दशासे उन्नति करता-करता सामन्तीय जमानेमें आया, फिर उसकी शृंखलाओंको तोड़कर व्यावसायिक हो गया और फिर पूँजीवादी और अब एक स्थानपर यानी रूसमें साम्यवादी? आख़िर यहाँका समाज क्यों इतनी अर्द्ध-सभ्य दशामें ही पड़ा दम तोड़ता रहा, हज़ारों वर्षोंमें राम और रावण यही दो नाम सीख पाया और आगेकी एक मंज़िल भी पूरी न की? इसका उत्तर देना आवश्यक है—विशेषकर जब कि हम प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी शक्तियोंका भेद समझना चाहते हैं। इसके ऐतिहासिक कारण हैं। भारतवर्षके विषयमें कार्ल मार्क्सने 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' में सन् १८५३ में एक लेखमें लिखा था—"भारतीय समाजका कोई इतिहास—कम-से-कम ज्ञात इतिहास—ही नहीं है। जिसे हम इतिहास कहते हैं, वह सिर्फ़ एकके बाद एक करके आनेवाले आक्रमणकारियोंकी गाथा है, जिन्होंने प्रतिरोधहीन, अपरिवर्तनशील समाजकी निष्क्रियताके आधारपर अपने साम्राज्य स्थापित किये थे।"

इतिहासके न होनेका अर्थ यह हुआ कि हमारी सामाजिक या आर्थिक प्रणालीमें लगभग दो-ढाई हज़ार वर्षसे कोई क्रान्ति नहीं हुई। द्रविड़ और तात्कालिक समाजमें अभी प्रत्यावर्तनके बीज प्रबल न हो पाये थे कि उनसे उन्नत आर्थिक प्रणालीके जाननेवाले आर्योंने आकर उनपर क़ब्ज़ा कर लिया। उसके बाद जब धीरे-धीरे सामन्ती समाज क़ायम हो गया, तो फिर हूण आये हों या कुशन, अरब, तातार, पठान, तुर्क सबने भारतको जीता और इसपर राज्य किया। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

1. Dealing with outward things and not with thoughts or feelings, embracing all facts uncoloured by prejudices, feelings or opinions, real.
2. Depending on personal or individual point of view, unreal, काल्पनिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतके गाँवोंमें चरखा चलता रहा, हल वही पुराने ढंगके रहे, बैलगाड़ियाँ कम न हुईं और घरोंपर वही पुराने तरीक़ेके छप्पर पड़ते रहे। यहाँकी आर्थिक प्रणालीके बदलनेका प्रयत्न यहाँकी जनताने किसी नवीन विचार-धारा या श्रेणीके अन्तर्गत कभी नहीं कर पाया। जब-जब यहाँका सामन्ती समाज पतित हुआ, किसी न किसी बाहरी आक्रमणने—ऐसे लोगोंके आक्रमणने, जो सभ्यतामें पिछड़े हुए थे—यहाँ किसी क्रान्तिके बीजको पनपने न दिया। नई परिस्थितियाँ उठ खड़ी हुईं, नई समस्याएँ सामने आ गईं और धर्म तथा स्थानीय जातीयताकी आड़में प्रत्यावर्तनकी मुर्गी हलाल की गई। हमारे यहाँ कोई क्रान्ति नहीं हुई, क्या यह कोई गौरवकी बात है? क्या भारतके धर्मके ठेकेदार कभी इसपर शर्मसे मुँह छिपानेका साहस न करेंगे? मैंने यह प्रश्न इतनी स्पष्टताके साथ इसलिए रखा है कि आप इस बातको समझ लें कि प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण सामने रखकर हमारी भावनाओं, हमारे जज़्बातको जागृतकर प्रतिक्रियावादी अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। सच तो यह है कि भारतीय नेता, साहित्यकार, कलाकार और दार्शनिक सभी इस बातपर गर्व करते हैं कि भारतीय जीवन, भारतीय आर्थिक प्रणाली, यहाँकी सामाजिक व्यवस्था अर्थात् आश्रम-चतुष्टयके द्वारा उत्पन्न किया हुआ भारतीय समन्वयवाद इतना पूर्ण है कि उसे बाहरके आक्रमणोंसे कभी भय नहीं रहा। ये लोग ऐतिहासिक तथ्यकी उपेक्षा तो करते ही हैं, साथ ही वर्तमान कालकी ओर देखना या वास्तविकताको समझना भी नहीं चाहते। वर्तमान कालमें अगर कोई हलचल या परिवर्तन है, तो यह 'असाधारण परिस्थितियों'की वजहसे; अन्यथा स्वराज्य होते ही फिर वही पुराने रागकी अलाप शुरू हो जायगी। उनका ऐसा ख़याल है। कौन जानता है, वे यह भी सोचते हों कि स्वराज्य होनेपर विहारी, देव, पद्माकर श्मशानसे उठ आवेंगे और वाजिदअली शाह फिरसे लखनऊके नवाब बनाये जायँगे! शायद कोट-पतलून बनानेवाले दर्ज़ियों और बूट बनानेवाले मोचियोंके अंगूठे कटवा लिये जायँगे और अहमदाबाद, बम्बईकी मिलें गोलेसे उड़ा दी जायँगी! उन्हें अपना अंगरखा, मिर्ज़ई और चमरौधा जूता मुबारक। मगर प्रगतिशील साहित्यिक होनेके लिए प्रगतिशील दृष्टिकोणकी ज़रूरत पड़ती है। हम किसी प्रकार ऐतिहासिक तथ्यको छोड़कर किसी चीज़को समस्त समाजसे अलग रखकर नहीं देख सकते। दो-तीन हज़ार वर्ष पहलेसे हमारे देशमें सामन्ती युगका प्रारम्भ होता है। हूण, कुशन या मुसलमान जब इस देशमें आये, तो विजयके उपरान्त उन्होंने देखा कि यहाँकी आर्थिक प्रणाली तथा उत्पादनके साधन उनके साधनोंसे अधिक उन्नत थे। अतः विजेताके लिए अपने अनुन्नत साधनोंको विजित समाजपर आरोपित करना असम्भव-सा हो गया। उन्नत वस्तु अनुन्नतके संघर्ष या सम्पर्कमें आकर उसे भी बदल डालती है यह ऐतिहासिक नियम है। अतः परिवर्तन भारतीय समाजमें न होकर आक्रमणकारियोंके समाजमें होता रहा। यहाँके गिरते हुए सामन्ती समाजमें वह नये सिरेसे जान डालते गये। यह पहला Objecive[1] कारण था, जिसकी वजहसे हमारे साहित्यमें कभी प्रगतिशील या स्वास्थ्यकर विचार-धाराएँ प्रवाहित न हुईं।

इसके अतिरिक्त एक और कारण है Subjective[2]. यह है भारतीय समन्वयवाद या आदर्शवाद। हम इसे अकसर उल्टा समझा करते हैं। भारतके साहित्य, कला, दर्शन सभीमें इसका प्रभाव स्पष्ट है। भारतीय साहित्यमें—विशेषकर हिन्दीमें—सुख-दुख आदि विपरीत भावोंका समीकरणकर उनको एक अलौकिक आनन्दमें विलीन कर देनेकी एक प्रवृत्ति रही है; इसी प्रवृत्तिको समन्वयकी भावना कहते हैं। भारतमें सामन्ती समाजके हिमायतियोंने, जो आश्रम-चतुष्टय कायम करके अपनेको भारतीय कहते और समस्त ईश्वरीय ब्रह्म-ज्ञानका अपनेको उत्तराधिकारी समझते थे, भारतकी दलित श्रेणीके हृदयमें निराशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न करनेका भरसक प्रयत्न किया। "दलितोंकी ग़रीबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके भाग्य और कर्मोंका फल है ; उन्हें ईश्वरसे डरना चाहिए ; राजाकी सेवा और ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिए। उन्हें ज्ञान पानेका अधिकार नहीं है, क्योंकि ईश्वरकी ऐसी ही इच्छा है। वे अपात्र हैं, कर्महीन हैं। सुपात्र बननेके सत्कर्म करें, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दें, दान करें, तीर्थ-यात्रा करें और फलके लिए दूसरे जन्मका आसरा देखें। सुख-दुःख वास्तवमें काल्पनिक हैं, और जो जितना ही दुःख भोगता है, ईश्वर उसपर उतना ही दयालु होता है। कोई कार्य ऐसा नहीं, जिसमें ईश्वरका हाथ न हो, या जिसे ईश्वर न देखता हो। यह संसार असार है, मिथ्या है, मृग-मरीचिका है, माया है ; सुख-आराम या विलासकी खोज करनेकी अपेक्षा परलोक बनाना अच्छा है, क्योंकि इस जगहके सम्बन्ध क्षणिक हैं, परलोकमें यह क्षणभंगुरता नहीं। फिर परलोक या बैकुण्ठ सुखी नीरस साधुओंकी ही जगह नहीं है। वहाँ इन्द्रका वैभव है, विशाल अट्टालिकाएँ हैं, कामधेनु गाय है, अक्षय वट है, गन्धर्व हैं और अक्षय सौन्दर्यवाली अनन्तयौवना उर्वशी या मेनका-जैसी हज़ारों परियाँ या हूरें हैं। वहाँ भी सामन्ती समाज है ; लेकिन यहाँकी तरह अस्थायी या अनित्य नहीं। कहनेका तात्पर्य यह कि वहाँ मनोरंजनकी सामग्री ख़ूब है और विष्णु-लक्ष्मीके गहरे व्यंग भी प्रेमियोंके हृदयमें गुदगुदी मचाया करते हैं ; किन्तु इसके अतिरिक्त जो यहाँ राजा, गुरु, पिता या ब्राह्मणका अपमान करता है, उसे नरक मिलता है, जिसकी यातना असह्य है।" आदि अनेकों बेहूदी बातें गढ़-गढ़कर वर्ण-व्यवस्था क़ायम की और रखी गई। तबसे अब तक द्वैतवादको लीजिए या अद्वैतवादको या विशिष्टाद्वैतवादको या भारतीय दर्शनके अन्य पहलुओंपर नज़र डालिये ; गौतम, मनु, वेदव्यास या शंकराचार्य, चाहे किसीको ले लीजिए ; या इस भारतीय आदर्शवादके नये संस्करणोंपर दृष्टि डालिये—इन सब वेदान्त या कर्मकी फिलासफ़ियोंमें कुछ ऐसी बुनियादी बातें हैं, जो एक दूसरेसे अलग नहीं की जा सकतीं। सभी सामन्ती समाजके (Feudal Society) औचित्यको स्वीकार करते हैं। अतः किसी प्रकार शोषितवर्ग कभी अपनी आन्तरिक ऐकताका अनुभव न कर सके, इसके लिए आदर्शवाद या समन्वयवादपर ख़ूब पालिश हुई और होती जा रही है। यह ऐसी पालिश है, जिसमें असली चेहरा दिखाई ही नहीं पड़ सकता। आदर्शवादकी यह प्रतिक्रियावादी भूमिका हमारे साहित्यिकों और विचारकोंके लिए अब भी एक गौरवकी वस्तु है, कण्ठहार है। वे आज भी साबित करना चाहते हैं कि इस सड़ी हुई शृंखलाकी वे अन्तिम कड़ी हैं, उससे अलग नहीं हो सकते। इन अक्लके दुश्मनोंको यह देखकर शर्म भी नहीं आती कि वे एक मुर्देकी पूँछसे बँधे हैं ; लेकिन छुड़ानेका प्रयत्न नहीं करते ! यही दो कारण हैं, जिनकी वजहसे हमारे समाज या साहित्यमें कोई जीवित विचार-धारा अब तक न बह सकी। यहाँ तक कि इसके विपरीत कोई अगर वस्तुस्थितिपर प्रकाश डालता या समाजकी तत्कालीन परिस्थितिपर तनिक भी ध्यान देता, तो वह साहित्य या समाजकी परिपाटीके विरुद्ध एक नैतिक अपराधी माना जाता। साहित्यमें दर्शनकी तरह अनन्तकी ही समस्याओंपर विचार होना चाहिए, यह एक नियम-सा हो गया। नाटक इत्यादिमें राजकुमारको छोड़कर किसी साधारण व्यक्तिको नायक बनाना एक पाप था, कदाचित अक्षम्य !

वस्तुस्थितिपर ध्यान देनेसे इनकार करके इन आदर्शवादी कलाकारों या साहित्यकारोंने 'कोउ नृप होइ हमहि का हानी, चेरि छाँड़ि न होउब रानी' वाला सिद्धान्त बिना चीं-चपड़ किये स्वीकार कर लिया ; लेकिन आज भारतमें अंगरेज़ी साम्राज्यके आनेसे कदाचित सभी प्राचीन निशान छिन्न-भिन्न या विकृत हो गये हैं। न अब पूर्ण रूपमें सामन्ती समाज रहा और न वह युग ही। पूँजीवादने यहाँके उत्पादन, व्यवसाय, वितरण और आयात-निर्यातपर अपना कब्ज़ा कर लिया है। यद्यपि यत्रतत्र सामन्ती ज़मानेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशान दिखाई पड़ते हैं, और अब भी ज़हर फैला रहे हैं ; लेकिन वह साम्राज्यशाहीकी इच्छाके ऊपर क़ायम हैं। अतः 'भारतीय समाजका कोई इतिहास कमसे कम ज्ञात इतिहास नहीं है' (No known history) वाला वाक्य अब भारतीय समाजपर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवादके सम्पर्कमें आनेसे भारत विश्वका एक अंग हो गया है। उसका अब एक अपना क्रान्तिकारी शोषित वर्ग है, उसकी अपनी समस्याएँ हैं—बेकारीकी, पराधीनताकी, अशिक्षाकी और आर्थिक तथा सामाजिक असमानताकी। आज अनेकों नियन्त्रण, काले क़ानून और कठोर शासनके अन्दर रहकर भी यह शोषित वर्ग, गाँवमें हो या कारखानेमें, संगठित होनेकी क्षमता रखता है और संगठित हो रहा है। पूँजीवादी समाजकी असंगतियोंके कारण शोषित मज़दूर और किसानवर्ग अपनी आन्तरिक एकताका अनुभव करता जा रहा है। जाग्रत शक्तियाँ उनको सब जगह सचेत और सजग कर रही हैं। शोषित जनता अपने ऐतिहासिक लक्षको स्पष्टतर देखती जा रही है। उसकी धमनियोंमें ख़ून बहने लगा है ; लेकिन यहाँके साहित्यिकोंको आँख मींचकर बैठनेमें ही मज़ा आता है। नालन्दाके विश्वविद्यालय, अजन्ताकी चित्रकारी, ताजमहल, राजपूत रमणियोंके जौहर, हिन्दू स्त्रियोंकी दर्दनाक सती-प्रथा, चरकके वैद्यक और चाणक्यकी राजनीति, गौतम और याज्ञवल्क्यके दर्शन, शंकराचार्यके वेदान्त और अशोककी राज-व्यवस्था तथा अकबरकी निष्पक्ष न्यायप्रियताका स्मरणकर वे निश्वास खींचा करते हैं। उन्हें विज्ञानसे घृणा है, और पदार्थमें अब चाहे अस्सीसे भी ज्यादा तत्त्व हों ; लेकिन उनके लिए पंचतत्त्व ही ब्रह्मवाक्य है। शेषनाग फणपर पृथ्वीको धारण किये हैं और विष्णु क्षीर-सागरमें शयन करते हैं ! रूसवालोंको तो आज तक विष्णुका क्षीर-सागर (White Sea) में पता न चला ; लेकिन ये यहाँसे बैठे-ही-बैठे उन्हें लक्ष्मीके साथ केलि करते देख लिया करते हैं ! भारतके पुराने समाजको ये छिन्न-भिन्न और नष्ट होते देख रहे हैं। पूँजीवाद और साम्राज्यवादके सम्पर्कमें आनेसे यहाँकी पुरानी संस्कृति, पुरानी सभ्यतापर कुठाराघात हुआ है और उससे हमारी अवस्था और भी विषम हो गई है ; लेकिन साथ ही हम पाश्चात्यके सम्पर्कमें आ गये हैं, इससे कभी सामाजिक या सांस्कृतिक उन्नति होगी, इसकी भी आशा भर गई है। अब कूएँके मेंढ़क बनकर हम नहीं रह सकेंगे, ऐसी उम्मीद बढ़ रही है ; लेकिन यह दक़ियानूसी वर्ग इन सब बातोंको एक तराज़ूसे ही तौलता है। उसे पूँजीवादके अनाचार बुरे नहीं लगते। इसके विपरीत जो नवीन विचार-धाराएँ, विस्तृत भावनाएँ हमारे यहाँ फैलती जाती हैं, वे उन्हें कुत्तेकी तरह काटे खाती हैं। पूँजीवादी साम्राज्यशाहीके आगमनसे जो एक क्रान्तिकारी शोषित मज़दूरवर्ग उठ खड़ा हुआ है, जिसका उठना ऐतिहासिक और आर्थिक है, जिसकी अपनी एक अलग संस्कृति है, जिसका अपना अलग वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जो अपनी महान शक्ति, महान प्रवृत्तिके कारण समाजमें एक नई व्यवस्था क़ायम करनेकी क्षमता रखता है, जो हमारी स्वतन्त्रताकी लड़ाईका नेतृत्व ग्रहण करेगा, उस क्रान्तिकारी वर्गकी यहाँके साहित्यिक मुँह बिचकाकर उपेक्षा कर देते हैं ; लेकिन उन्हें याद रखना चाहिए कि यह चिर-सजग मज़दूर-किसानवर्ग आपको तिरस्कृत करके छोड़ नहीं देगा। वह जानता है कि कौन उसका साथ दे रहा है और कौन धोका। इसी तरह पहलेकी रचनाओंको अमरत्व देने और कायर विश्वासघातियोंकी रचनाओंको इतिहासमें से निकालकर फेंक देनेकी भी क्षमता रखता है। अब ज़माना बदल गया है। हमारे साहित्यकारोंको इस बदले ज़मानेकी ओर आँख उठाकर देखनेका साहस करना चाहिए।

वर्तमान परिस्थितियाँ पहली सभी परिस्थितियोंसे बहुत भिन्न हैं, यह हमारे साहित्यिकोंको साहित्यमें भी स्वीकार करना चाहिए। आदर्शवाद मूलतः प्रतिक्रियावादी है, अतएव यथार्थवाद या आदर्शवाद साहित्यके सामने दो ही मार्ग हैं। या तो अब भी कलाकार आदर्शवादका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डंका पीटकर भूलोंको भटकायें और अस्पष्ट भावनाओंको जाग्रतकर और कुछ समय तक शोषक वर्गके लिए किरायेके टट्टूका काम दें, या इसके विपरीत शोषित वर्गकी भावनाओंको अपनाकर, उसीके सांस्कृतिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणके आधारपर, उसीकी सौन्दर्यप्रियताकी भावनाओंको प्रेरित करें तथा उसके लिए युद्ध करें। आज भारतीय समाज और साहित्यके सम्मुख यही प्रश्न है। यदि उसे प्रगतिशील बनना है, तो उसे शोषित श्रेणीका साहित्य बनाना पड़ेगा, जिसके हाथमें विश्वका भविष्य है, जिसमें इतिहासको ठीक रास्तेपर ले जानेकी क्षमता है। उस साहित्यमें विरोधी दलों, भावनाओं या श्रेणियोंके सहयोगकी, आदर्शवाद, सुधारवाद और समन्वयवाद (जिसे 'थेगरीवाद' कहना चाहिए) की ज़रूरत नहीं है। उसमें केवल एक ही दृष्टिकोण हो सकता है, और वह है क्रान्तिकारी।

अब यह बात संक्षेपमें स्पष्ट कर दूँ कि श्रेणी-साहित्य किस प्रकार बनता है, और चूँकि समन्वयवाद, आदर्शवाद और अन्य धार्मिक अन्ध-विश्वासोंमें पड़े रहनेके कारण समाजके शोषितवर्गमें आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जागृति नहीं हुई थी, इस कारण उनका साहित्य भी नहीं रचा गया। ग्राम-गीतोंमें अक्सर क्रान्तिकारी भावनाओंसे भरे गीत मिलते हैं, साहूकार, राजा, ज़मींदार, सिपाही, पंडे इत्यादिका मज़ाक उड़ाते हुए या उनकी निन्दा करते हुए; लेकिन उनको कभी प्रोत्साहन नहीं दिया गया। ग्राम-गीतोंके जितने संग्रह हमारे सामने हैं, उन्हें देखनेसे पता चलता है कि संग्रहकारका उद्देश्य प्राचीन धार्मिक रूढ़िवादी परम्पराको दाद देनेवाले गीतोंके संग्रहका ही था। क्रान्तिकारी गीत संग्रहोंमें नहीं रखे गये। इस पहलूपर कोई खोज भी नहीं की गई। यह धाँधलबाज़ी अब तक ख़ूब चलती रही है; लेकिन अब वह समय आ गया है, जब कि दोनों श्रेणियाँ एक दूसरेके गलेकी ओर हाथ लपका रही हैं। एक अपना हँसिया, हथौड़ा लेकर, तो दूसरी अपने बम, टैंक और हवाई-जहाज़ लेकर। प्रतिक्रियावादी हार रहे हैं; संसारके छठे हिस्सेपर मज़दूरोंने एक नये समाज और एक नई सभ्यताकी स्थापना भी कर ली है। शोषित वर्ग आज धर्मके उपदेश सुनकर 'निष्काम अवस्था'के पीछे पागल नहीं हो उठता, क्योंकि उसे बहुत-कुछ नष्ट करना है और सभी कुछ पुनः निर्मित करना है। वह अपने कार्यमें सचेष्ट है, सजग है। अतः आज साहित्यिकको भी ऐसी स्वतन्त्रता मिल गई है, जो इतिहास कालमें उसे कभी नहीं मिली थी। आज वह शोषित वर्गके साथ खड़ा हो सकता है। स्वयं शोषित वर्ग अपना साहित्य उत्पन्न करनेमें समर्थ है। उसके पास न विचारोंकी कमी है, न संस्कृति, न सभ्यताकी और न सौन्दर्यप्रियताकी भावनाओंकी। उसके पास सब-कुछ नवीन है, मौलिक है, उन्नति-सूचक है। अतः आज साहित्यकार स्वतन्त्र है कि वह प्रगतिशील श्रेणीकी भावनाओंको साहित्यमें स्थान दे और स्वयं उन भावनाओंको ग्रहण करे। इसी कारण साहित्यकारोंमें दो श्रेणियाँ हो गई हैं—प्रगतिशील साहित्यकारों और प्रतिक्रियावादी साहित्यकारोंकी। रोम्याँ रोलाँ, अप्टन सिन्क्लेयर, हेनरी बारबूज, एन्ड्री जीड, बर्नर्ड शा, मेलराक्स, मुलकराज आनन्द, रेल्फ फाक्स इत्यादि और रूसी साहित्यकार, जिनमें गोर्की, मेयकुवस्की, शोलोखोव, लूनाचार्स्की, केवरिन, पिलनायक, लियोनोव, फेडिन, ग्लेडकोव, रोमेनोव, केटेव इत्यादि दर्जनों लेखक शामिल हैं, प्रगतिशील साहित्यके निर्माणमें लगे हुए हैं। प्रतिक्रियावादी साहित्यकारोंमें रुडियार्ड किप्लिंग, मैंस्फील्ड आदि बीसियों लेखक हैं; लेकिन कुछ ऐसे भी हैं, जो इन दोनोंके बीचमें हैं, जो मध्यवर्गकी तरह इधर-उधर पैंतरे बदलते रहते हैं। इनमें एच० जी० वेल्स, जुलियन हक्सले, इडगर इलिस, नार्मन ऐंजिल्स, डब्ल्यू० बी० ईट्स इत्यादिका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। मगर भारतीय साहित्यमें इस प्रकारका श्रेणी-विभाजन अभी तक नहीं हो पाया है, क्योंकि प्रगतिशील शक्तियोंने साहित्यके अखाड़ेमें अभी आकर ताल नहीं ठोंका है। अतएव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँपर प्रगतिशील साहित्यकारके सम्मुख पहला कार्य यह है कि वह इस श्रेणी-संघर्षको साहित्यमें भी जाग्रत करे और प्रतिक्रियावादी तथा आदर्शवादी लेखकों और साहित्यकारोंके साहित्यके छिछलेपन और आन्तरिक कलुषका पर्दाफाश कर दे।

अधिक तूल-तबील दिये बिना संक्षेपमें यह कह देना काफ़ी होगा कि साम्राज्यवादके इस कालमें अगर कोई भी प्रगतिशील साहित्य खड़ा होना चाहता है, तो उसे मूलतः साम्राज्यवाद-विरोधी होना ही पड़ेगा; लेकिन साथ ही उसे साम्राज्यशाहीके सहायक भारतके महन्तवाद, सामन्तवाद तथा चमगादड़ रूपी पूँजीवादका भी दुश्मन होना पड़ेगा। श्रेणी-संघर्षको ग़रीब और अमीर, पूँजीवादी और मज़दूर, किसान और ज़मींदार, स्त्री और पुरुष, अछूत और सवर्ण, धर्म और नास्तिकवाद, आदर्शवाद और यथार्थ-वाद तथा नवीन और पुरातनमें भेद करना पड़ेगा। साथ-ही-साथ समस्त प्रगतिशील वर्गों और शक्तियोंके संयुक्त मोरचेके सूत्रोंको मज़बूत करना पड़ेगा। प्रगतिशील साहित्य शोषणका साथ नहीं दे सकता, चाहे वह लंकाशायर और टोकियोके पूँजीपति द्वारा हो या बम्बई या अहमदाबादके पूँजीपति या दक्खिनके महन्तों और देशी नरेशों द्वारा हो; और न वह प्रतिक्रियावादी थेगरी लगानेवालों (Patch work) के साथ समझौता ही कर सकता है।

- २ -

मैंने पहले एक स्थानपर कहा है कि आदर्शवाद या यथार्थवाद साहित्यके सामने दो ही मार्ग हैं। यथार्थवादकी धारा साहित्यमें व्यावसायिक क्रान्तिके युगसे प्रवाहित हुई है। सच तो यह है कि यथार्थवादका जन्म सामाजिक आवश्यकताकी पूर्ति और आदर्शवाद तथा वास्तविक पतितावस्थाके विरुद्ध विद्रोहकी भावनाओंको लेकर हुआ था। अतः स्वभावतः यथार्थवाद क्रान्तिकारी और प्रगतिशील है; लेकिन आज अवस्था यह है कि आपको यथार्थवादकी दो धाराएँ मिलती हैं। एक वह जो गिरते पूँजीवादके हाथका, क्रान्तिकारी मज़दूरों और किसानोंको बहकाकर शान्त करनेका औज़ार है, क्योंकि मज़दूर या शोषित वर्ग आदर्शवादकी चिकनी-चुपड़ी बातें एक कान भी नहीं सुनता। वह घोर यथार्थवादी है। वह विषम वस्तु-स्थितिको देखता है। दूसरी धारा वह है, जो पूँजीवादी या अन्य प्राचीन सड़ी हुई व्यवस्थाओं और समाज-शृंखलाओंको नष्ट करने और प्रगतिशील दृष्टिकोणके क़ायम रखनेके लिए लड़ रही है। साहित्यमें यथार्थवादकी इन दोनों धाराओंको 'पूँजीवादी यथार्थवाद' या 'साम्यवादी यथार्थवाद' कहते हैं। निष्पक्ष यथार्थवादका चोग़ा पहनकर प्रतिक्रियावादी 'पूँजीवादी यथार्थवाद' दलित श्रेणीमें अपनी धाक और विश्वास जमाता फिरता है; लेकिन आज जो कोई आँख खोलकर चलता है, वह जानता है कि प्रजातन्त्रकी तरह यथार्थवाद भी इस समय शुद्ध नहीं हो सकता।

'पूँजीवादी यथार्थवाद' प्रतिक्रियावादी है, क्योंकि वास्तविकताकी ओर इसका निषेधात्मक या अभावसूचक दृष्टिकोण रहता है। भारतमें और ख़ासकर हिन्दीमें इसी प्रकारके यथार्थवादकी धारा बही। प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंमें अधिकतर यही 'पूँजीवादी यथार्थवाद' मिलता है। मुंशीजी वास्तविक दशाका वर्णन तो सही-सही करते हैं; लेकिन वह वास्तविक दशा किन कारणोंसे उत्पन्न हुई, यह वे ठीक नहीं बता पाते तथा वे श्रेणी-संघर्षको अस्वीकारकर उच्च श्रेणियोंके 'विशेष हक़' मानकर अन्तमें आपसमें समझौता करा देते हैं। यह समझौता सुधारवादी होता है, जिसमें गांधीजीके राम-राज्यकी तरह एक राजकुमार और नरकंकालके हक़ सुरक्षित किये जाते हैं। राजकुमारका राजकुमारपन और नरकंकालका भूखसे तड़पता जीर्ण-शीर्ण नरकंकाल! हज़ारों वर्षोंसे अधिकारच्युत, पददलित, अत्याचार-पीड़ित स्त्रियोंके लिए 'सेवा-सदन' और क़र्ज़ और नौकरशाहीके आतंकमें रहनेवाले किसानोंके लिए 'प्रेमाश्रम' खोलकर वे सन्तुष्ट हैं। समाजकी तहमें उनका यथार्थवाद नहीं उतरता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे उदाराशय, परोपकारी और सुधारवादी हैं। अपनी कायाकी श्रेष्ठताके कारण उन्होंने तात्कलीन वास्तविकताका चित्र अत्यन्त प्रगतिशील किया है; लेकिन जो 'हल' वे अपने सामने रखते हैं, उसे हम प्रगतिशील नहीं कह सकते। तो भी उनकी कला ऐसी है, जिसने हमारे यहाँ प्रगतिशील साहित्यकी नींव डाली है। अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियोंमें यह कलाकार एक ज़बरदस्त साम्राज्य-विरोधी यथार्थवादी शक्ति हो गया था। क्रान्तिकारी प्रेमचन्दका जीवन अभी शैशवमें ही था कि उनका निधन हो गया। दिलकी हसरतें साथ ही चली गईं; लेकिन जिस प्रगतिशील यथार्थवादकी नींव वे डाल गये हैं, उसपर ज़बरदस्त क़िले खड़े किये जायँगे। जैनेन्द्रकुमार प्रारम्भमें कुछ प्रगतिशील दृष्टिकोण लेकर उठे थे; लेकिन आज यह हालत है कि वे बुद्धिवादके विरुद्ध अबुद्धिवादका कुठार लेकर खड़े हैं। 'ममत्व' की रत्नाकर 'आदर्शवादी समाधान' का नुस्खा ढूँढ़ निकालनेकी समस्या उनके सामने भी रहती है। इस जीवित संसार या 'बुद्धिवादी' जगतसे उनसे न-जाने कब किस समय दुश्मनी हो गई कि वे चाणक्यकी तरह शिखा खोलकर उसके पीछे पड़ गये हैं। जैनेन्द्र प्रगतिशील लेखक-संघके सदस्य भी हैं, और इसी कारण मैंने किंचित कठोर होकर उनकी आलोचना भी की है, क्योंकि जब तक हम सचेत रहकर स्वयं अपने गुणावगुणोंका परिवेक्षण न करेंगे, खुद भी किसी दिन प्रतिक्रियावादी बनकर प्रगतिमें बाधा डालेंगे। 'उग्र' और ऋषभचरण यथार्थवादके नामपर 'चाकलेट', 'दिल्लीका दलाल', 'दुराचारके अड्डे', 'दिल्लीका कलंक', 'दिल्लीका व्यभिचार' आदिमें अपनी कुचली हुई काम-भावनाओंका अभिव्यंजन करते रहे हैं। भगवतीचरण वर्मा, जो प्रगतिशील लेखक-संघके एक दूसरे साहित्यकार-सदस्य हैं, अब कहानी-साहित्यके निर्माणमें लगे हैं। आपके अजीब मिले-जुले ख़याल हैं, सबसे अलग रहनेकी एक प्रवृत्ति है और व्यक्तिवादी कलाकार होनेका गर्व है। नियन्त्रण या स्वतंत्रता, समाज या व्यक्ति इस प्रकारके कुछ विरोधी लगनेवाले शब्दोंके फेरमें पड़कर वे अन्तमें अपनेको पूर्णरूपसे प्रतिक्रियाकी बाहोंमें छोड़ देते हैं। सुदर्शनजी या कौशिककी कहानियोंमें यथार्थवादका लचर रूप दिखाई पड़ता है, क्योंकि आप लोगोंका दृष्टिकोण प्रेमचन्दजीसे भी ज्यादा सुधारवादी है और नित्य सुधारवादसे सुधारतमकी ओर बढ़ता जा रहा है, जहाँ प्रेमचन्दजी सुधारवाद बादलोंको फाड़कर यथार्थवादके मैदानकी ओर अग्रसर हो रहे थे। यह हिन्दीका यथार्थवाद है या प्रतिक्रिया-वादी यथार्थवाद और आदर्शवादकी खिचड़ी, यह कहने या समझनेवाले कम हैं।

कवियोंमें हमारे यहाँ, हिन्दीमें, मैथिलीशरण गुप्त सुभद्राकुमारी चौहानका नाम विशेष उल्लेखनीय है। सुभद्राजीकी कवितामें कुछ राष्ट्रीयताकी भावनाएँ तथा तथा देश-प्रेमके उद्गार अवश्य मिलते हैं; लेकिन उनमें कुछ गहराई या विशदता नहीं होती। मैथिलीशरण गुप्तकी 'भारत-भारती' को आचार्यने 'युगान्तरकारिणी' कविता कहकर उनपर अपना 'वरद पाणि' रखा। आज वे हिन्दीके प्रतिनिधि और आदर्श राष्ट्रीय कविके मंचपर आसीन हैं। आख़िर उनमें क्या विशेषता है, जिसकी वजहसे 'सामन्ती समाज' में आस्था रखनेवाले गुप्तजीको बीसवीं सदीमें यह आदर प्रदान किया गया, और वह भी एक क्रान्तिकी आगसे धधकते देशमें? यह समझानेके लिए मुझे पुनः ऐतिहासिक परिस्थितिके ऊपर ग़ौर करना पड़ेगा। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि इस बार भारतपर जिन्होंने कब्ज़ा किया, उनकी संस्कृति या सभ्यता यहाँके निवासियोंसे अधिक उन्नत थी, क्योंकि उनके उत्पादन या वितरणके साधन और प्रणाली हमारे यहाँसे अपेक्षाकृत अत्यन्त उन्नत थे। वे व्यवसायी या पूँजीवादी समाजके प्रतिनिधि थे, अतः उनके सम्पर्कमें आनेके कारण यहाँकी सांस्कृतिक छिन्नता होने लगी। इस कारण देशमें और ख़ासकर पढ़े-लिखे लोगोंमें बड़ी हलचल मचने लगी। लोगोंको, और उनमें पुराने विचारके लोगोंको, यह लगने लगा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी संस्कृति और सभ्यताकी ज़मीन उनके पैरोंके नीचेसे तेज़ीके साथ निकली जा रही है। इससे एक छुटपन (Inferiority complex) या विद्वेषकी भावना पैदा हुई, और वह अब तक यहाँके लोगोंमें भरी हुई है। इसी भावनासे प्रेरित होकर स्वभावतः लेखकोंका एक समुदाय उठ खड़ा हुआ, जो अतीतके गौरवके गीत गाने लगा। जनसाधारणकी उमड़ती भावनाओंपर तान तोड़कर उन्होंने अपने लिए नाम पैदा कर लिया और हमेशाके लिए वे लोगोंकी आँखोंपर चढ़ गये; लेकिन हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकारके साहित्यसे वर्तमानकालीन अयोग्यता, पतितावस्था और कायरतापर सिर्फ पर्दा पड़ता था और उनके कलेजे ठंडे होते थे। चारों ओरसे पुनः 'वैदिक कालकी ओर' की आवाज़ आने लगी। बंगालमें जिस प्रकार बंकिम बाबू और रवीन्द्र बाबूने इस आवाज़को ऊँचा किया, हिन्दीमें गुप्तजीने यही आवाज़ बुलन्द की। मगर स्पष्ट बात यह है कि 'भारत-भारती' न साम्राज्य-विरोधी है और न दलित श्रेणीकी भावनाओंकी रक्षक। वह अगर कुछ है, तो साम्राज्यवादकी पृष्ठपोषक और ब्रिटिश साम्राज्यशाहीकी चाटुकार। हाथ कंगनको आरसी क्या ?—

"अन्यायियोंका राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी ?
आखिर हुए अंगरेज़ शासक, राज्य है जिनका अभी।
सम्प्रति समुन्नति की सभी हैं प्राप्त सुविधाएँ यहाँ,
सब पथ खुले हैं भय नहीं, विचरो जहाँ चाहो वहाँ।
अन्याय यवनोंका हमें निज दोषसे सहना पड़ा,
है किन्तु नारायण अहा! न्यायी तथा सकरुण बड़ा!
देते हुए भी कर्मफल, हमपर हुई उसकी दया,
'भेजा प्रसिद्ध उदार जिसने ब्रिटिश राज्य यहाँ नया।'
शासन किसीपर जातिका चाहे विवेक विशिष्ट हो,
सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वांशमें वह इष्ट हो।
'यह सत्य है तो भी ब्रिटिश शासन हमें सम्मान्य है',
वह सुव्यवस्थित है तथा आशा प्रपूर्ण वदान्य है।
सम्प्रति सभी साधन हमें हैं, सुलभ आत्म-विकासके,
पथ रेल तार मिटा रहे हैं, सब प्रयास प्रवासके।
प्रायः चिकित्सालय, मदरसे, डाकघर हैं सब कहीं,
'बस पास पैसा चाहिए फिर कुछ असुविधा है नहीं।'
[कहाँसे लावें ?] शिवप्रसादसिंह चौहान
सचमुच ब्रिटिश साम्राज्यने हमको बहुत कुछ है दिया,
विज्ञानका वैभव दिखाया, समयसे परिचित किया।
उससे हमारी कीर्तिका भी हो रहा उपकार है,
बहु पूर्व चिन्होंका हुआ, वा हो रहा उद्धार है।"

यह हैं हमारे आदर्श राष्ट्रीय प्रतिनिधि कवि! जिस ऐतिहासिक जीवन-युद्धके बीचसे हम गुज़र रहे हैं, उस युद्धकी यह प्रतिनिधि-कविता है, यह सोचकर भी हमें शर्म लगती है। भारतकी प्रगति और सभ्यताके दुश्मन फैसिस्ट नेता डा० मुंजे और भाई परमानन्दके लिए पुस्तक हिटलरकी तरह मुसलमानोंको देशसे निकाल बाहर करनेमें शायद बाइबिल बन पाती; लेकिन अब तो उसकी भी उम्मीद न रही। 'भारत-भारती' के अब तक लगभग एक दर्जनसे ऊपर संस्करण निकल चुके हैं। इस बीचमें हिन्दू-मुस्लिम समस्याने अनेकों रूप बदले, साम्राज्यशाहीसे हमने दो बार मोर्चे लिये और भारतका एक-एक बच्चा साम्राज्यशाहीका विरोधी हो गया; लेकिन हमारा 'प्रतिनिधि' कवि निश्चय करके एक कदम आगे न बढ़ा। 'भारत-भारती'में ये पंक्तियाँ आज भी गर्वके साथ चमक रही हैं और हमारे अन्धे समालोचक आज भी इन पंक्तियोंको आदरमें प्रदान करते हैं। गुप्तजीके यथार्थवादी कवि न होनेका एक सबूत यह भी है कि 'भारत-भारती' के लिखनेके बाद उनकी विचार-धारा पतनोन्मुख होकर रामायण या महाभारतके ही कुछ प्राचीन युगों तक सीमित रह गई। 'जयद्रथ-बध', 'पंचवटी', 'साकेत', 'यशोधरा' और 'द्वापर' उनकी सीमित विचार-धाराके द्योतक हैं। आज न वे यथार्थवादी हैं, न प्रगतिशील और न वास्तविकताकी ओर देखनेकी उनमें क्षमता।

इन यथार्थवादी लेखकोंमें कुछ ऐसे भी हैं, जो यथार्थ भावके नामपर जातीयताकी दुहाई दे रहे हैं। जातीयताकी भावनाओंको उत्तेजित करनेके लिए वे न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल पूर्व और पश्चिमकी संस्कृतिका भेद खड़ा करते हैं, बल्कि 'स्वस्तिका'की वजहसे हिटलरके प्रति अपनी भक्तिका ढोल पीटने लगते हैं ! लघु चन्द्रशेखर शास्त्री महान् हिटलरके विरुद गाये बग़ैर भला चूक सकते थे ? आर्य-संस्कृतिका उद्धार जब भारत न कर पाया, तो हिटलरने किया। भारतसे वेदोंकी जो प्रतियाँ जर्मनीमें बहकर पहुँच गई थीं, शायद हिटलरने उनको पढ़ा है। तभी तो स्वस्तिका ! कृतज्ञ हो गये, भगवन् कृतकृत्य ! छिः, रूस! राम-राम स्त्रियोंको स्वतन्त्रता ! यह तो भगवान रामने सीताजी तकको नहीं दी थी ! और ईश्वरके प्रतिनिधि बादशाह, उसके मुसाहिब ! ओह ! सब नष्ट कर दिये गये, सिर्फ़ इसीलिए कि इन मज़दूरोंको स्कूलमें पढ़ाया जाय और रातको ओढ़नेके लिए कपड़े दिये जायँ ? यह हालत है हमारे साहित्यिकोंकी। वे अभी इतने नादान हैं कि प्रगतिशील और प्रगति-विरोधी शक्तियोंमें भेद नहीं कर सकते, हालाँकि विश्व-साहित्यके कर्णधार बननेका ताव वे मूँछोंपर रोज़ दिया करते हैं। एक छोटा-सा ज़रा रोचक उपन्यास लिख लिया, तो उसे वे टालसटायकी कब्रपर और रोमाँ-रोलाँके सरपर पटक देते हैं, और कहते हैं, लो, देख लो, तुमसे अच्छा है! इसमें उनका अत्यन्त परिमित अध्ययन या अध्ययनकी असुविधा या अध्ययनसे अरुचि तो कारण-स्वरूप हैं ही, उनके टुँटपुँजिया संस्कार भी कम ज़िम्मेदार नहीं है। यह सब बातें यहाँके यथार्थवादी या अर्द्ध-यथार्थवादी लेखकोंकी गिरती मनोदशाकी परिचायक हैं। बुनियादी बातोंपर उनका ध्यान कभी नहीं जाता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन यथार्थवादी लेखकों या कवियोंकी जातीयता या राष्ट्रीयताकी भावनाएँ न साम्राज्यशाही-विरोधी हैं, न दलित गुलाम देशकी क्रान्तिकारी भावनाओंका प्रदर्शनमात्र हैं। न वे श्रेणी-संघर्षको प्रोत्साहन देती हैं, और न उनकी कल्पनामें नवीन समाज या नवीन संस्कृतिका सन्देश है, बल्कि उनमें वर्तमान हीनावस्थापर परदा डालकर और प्राचीन भारतके गौरवकी मिठास लेकर सन्तुष्टि अनुभव करनेकी एक निष्क्रिय प्रवृत्ति है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रगतिशील साहित्यमें इस प्रकारके दूषित पूँजीवादी यथार्थवादका कोई स्थान नहीं हो सकता।

इसके पूर्व कि मैं आपके सामने 'साम्यवादी यथार्थवाद'पर अपने विचार प्रकट करूँ, यहाँके साहित्यमें प्रचलित दो विचार-धाराओंपर और भी स्थिति साफ़ कर देना चाहता हूँ। उनमें से एक है रहस्यवाद या छायावाद और दूसरा है 'कला कलाके लिए' वाला सिद्धान्त। प्रारम्भमें ही मैं कह चुका हूँ कि फिरसे रहस्यवादका साहित्यमें जन्म पूँजीवादी समाजकी गिरती पतितावस्थाका द्योतक है। भारतमें साम्राज्यवादके कारण टुँटपुँजियों और मध्यवर्ग तकके लोगोंमें एक हताश अनिश्चित शंकाकी भावना भर गई। चारों ओर नैराश्य व्याप्त हो गया। अतः जो वास्तविकताको नहीं देख सके, या उससे दूर भागना चाहते थे, अथवा जिनकी कल्पनाशक्ति ही मुर्झा गई थी और जो नई शक्तियोंका उठना देख-समझ न पाये, वे रहस्यवादका दामन पकड़कर अपने निराशावादी आँसू बहाने लगे। इन लोगोंमें प्रगति नहीं होती, बल्कि ये प्रतिगामी शक्तियोंके रक्षक और अग्रगामी नेता बन जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बाद यह धारा हिन्दीमें सर्वश्री जयशंकर प्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीमती महादेवी वर्मा और अनेकों छोटे-मोटे कवियोंके मुखसे निसृत हो उठी। और आज इसका कोई ठिकाना नहीं। इनमें से कुछ स्वभावतः प्रगतिशील भी हैं ; लेकिन उनकी कविताएँ प्रगतिशील न होकर प्रतिक्रियावादी होती हैं। इस छायावादकी धाराने हिन्दीके साहित्यको जितना धक्का पहुँचाया, उतना शायद ही हिन्दू-महासभा या मुस्लिम लीगने भारतको पहुँचाया हो। यहाँ तक कि अगर आज कोई कविता लिखने बैठता है, तो उसका प्रियतम खो जाता है, उसका सोनेका संसार नष्ट और उसकी हृत्तन्त्रीके तार झंकृत होकर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। 'उस पार'से मौन सन्देश आने लगते हैं, अभिसार होता है और न जाने क्या-क्या होता है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-हत्या नहीं है, तो और क्या है ? यह साहित्यिक आत्म-हत्या है, जिसके लिए भावी पुरुष कभी इन्हें क्षमा न करेगा। रहस्यवादकी यह धारा प्रतिक्रियावादकी सबसे नीची सीढ़ी है, इसलिए काफ़ी ख़तरनाक भी है। नौजवान लेखकोंके झुंड-के-झुंड छायावादका दामन पकड़ रहे हैं, क्योंकि अन्य कोई विचार-धारा उनके सामने नहीं है, जो उनकी कल्पनाको, उनके भावोंको किसी अच्छे मार्गपर ले जा सके। प्रगतिशील साहित्यिकोंका यह पहला कर्तव्य होगा कि वे नौजवान लेखकोंके सामने समस्त प्रगतिशील क्षेत्रोंको रखता जाय और रहस्यवाद या छायावादकी नई भर्तीको हमेशाके लिए बन्द कर दे।

इसके अतिरिक्त 'कला कलाके लिए' वाला सिद्धान्त भी सर्वत्र प्रचलित है। कुछ इसका विरोध करते हैं, तो कुछ इसका समर्थन भी करते हैं। और कुछ ऊपरसे विरोधी और लिखनेमें इसके स्तम्भ बने हुए हैं। मज़ा तो यह है कि कुछ आलोचक खासकर इस सिद्धान्तको यथार्थवादियोंका सिद्धान्त कहकर लोगोंमें भ्रम फैलाते हैं और इसकी आड़ लेकर यथार्थवादपर कीचड़ उछालते हैं। लेकिन मैं यह बात विशेष अधिकारके साथ ज़ाहिर कर देना चाहता हूँ कि यथार्थवाद और 'कला कलाके लिए' वाले सिद्धान्तके बीचमें न कोई साम्य है और न सम्बन्ध। 'कला कलाके लिए' वाला सिद्धान्त प्रसिद्ध दार्शनिक कान्ट (Kant) के 'अपनेमें पूर्णता' (Thing in itself) का-सा सिद्धान्त है, जो कलाको अन्य सामाजिक सम्बन्धोंसे अलगकर एकान्तमें देखनेकी कोशिश करता है। इस बातको और स्पष्ट करनेके लिए रूसके एक प्रसिद्ध आलोचकका मत विशेष लाभप्रद हो सकता है। Studio के Art in U. S. S. R. नामक विशेषांकके अग्रलेखमें कलामें 'साम्यवादी यथार्थवाद'का मत प्रतिपादन करते हुए उसने बिलकुल ठीक लिखा है--"हमारी कलाकी भावना मार्क्स और लेनिनकी फिलासफीके सिद्धान्तोंपर अवलम्बित है। मार्क्स, लेनिन और स्टैलिनका मकूला काफी स्पष्टताके साथ यह बताता है कि मानव-समाजमें कलाका क्या भाग है। पारस्परिक सम्बन्धोंकी किसी विशेष प्रणालीकी नींवके ऊपर एक आदर्शवादी इमारतके रूपमें खड़ी होकर कला वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करनेवाला एक औजार बन जाती है। कला किसी निष्क्रिय प्रतिबिम्बकी आवेगरहित चिन्तनाका हथियार नहीं है। वर्ग-संघर्षसे उत्पन्न होनेवाले सामाजिक विकासके विशुद्ध तर्कसे, कला या तो मौजूदा सामाजिक व्यवस्थामें क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेमें अग्रसर होती है, अथवा उसे कायम रखने और ठोस बनानेका काम करती है। 'कला कलाके लिए' जैसी कोई चीज़ नहीं। मानव-समाजकी प्रत्येक अवस्थामें कलाने सदा सामाजिक कार्य ही किया है, फलतः वह राजनीति और सामाजिक वर्गोंके भौतिक स्वार्थोंसे अलग नहीं समझी जा सकती।"

यह देखनेके बाद कि 'पूँजीवादी यथार्थवाद' साहित्यमें एक प्रतिक्रियागामी भूमिका ले रहा है, और पुराने समाजके हिमायती क्रान्ति रोकनेके लिए तरह-तरहके हथकण्डोंका प्रयोग साहित्यमें भी करके शोषित वर्गको अपनी आन्तरिक एकताका अनुभव करनेसे रोक रहे हैं और साहित्यको दिनोंदिन कुछ थोड़े व्यक्तियोंकी जायदाद बनाते जा रहे हैं, अब मुझे 'साम्यवादी यथार्थवाद'की ओर भी आना चाहिए। मैक्सिम गोर्कीने प्रगतिशील साहित्यको, जिसे 'मज़दूर साहित्य' या Proletarian Literature कहते थे, 'साम्यवादी यथार्थवाद' का नाम दिया, क्योंकि मज़दूर-साहित्य कुछ संकुचित-सा नाम लगता था। जीवनके प्रति 'पूँजीवादी यथार्थवाद' की तरह यह एक निराशाजनक और निषेधात्मक दृष्टिकोण नहीं रखता। यही दोनोंका मूल भेद है। एक रूसी समालोचकके अनुसार—" 'साम्यवादी यथार्थवाद' सामूहिक प्रणाली-वाले समाजकी नई यथार्थताओंकी ओर स्वीकारात्मक दृष्टिकोणपर अवलम्बित है। यह मूलतः आशावादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और जीवनको स्वीकार करता है। इसके विरुद्ध क्रान्तिके पहलेका मध्यश्रेणीका यथार्थवाद मूलतः निराशावादी था और अक्सर संसारके प्रति अस्वस्थकर और सन्तप्त दृष्टिकोणकी ओर ले जाता था।"

इस आशावादी दृष्टिकोणके अलावा कुछ और ऐसे खास गुण 'साम्यवादी यथार्थवाद' में हैं, जो साहित्यकी अन्य किसी धारामें नहीं मिलते। वह साम्राज्यवाद - विरोधी, साम्राज्यशाहीके हितेच्छुक महन्तवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद सभीका कट्टर विरोधी होता है। वह किसी भी प्रकार इन प्रतिक्रियावादी शक्तियोंकी ताक़त मज़बूत करनेके लिए उनके प्रति उदासीनता या समझौतेका भाव नहीं ग्रहण कर सकता। वह निरन्तर कर्मणाः उनका विरोधी है, दुश्मन है। वह वर्तमानकालीन मज़दूर किसान और निम्न-श्रेणीके टुटपुँजियोंका साहित्य होता है, जिसमें ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक शोध द्वारा उनकी आन्तरिक एकताके दृढ़ करनेकी कोशिश की जाती है। उसमें सदियोंसे अपहरण और शोषणके शिकार होनेवाले इन क्रान्तिकारी जनवर्गोंके लिए एक साम्यवादी सन्देश होता है। यह साम्यवादी सन्देश, जो अन्य किसी प्रकारके यथार्थवादमें नहीं मिल सकता, 'साम्यवादी यथार्थवाद' की ख़ूबी है। इसको समझना आवश्यक है। इतिहास और उसकी प्रगतिको न समझनेवाले निर्बोध 'यूटोपियनिस्ट' की तरह 'साम्यवादी यथार्थवाद' कल्पनाहीन व नीरस नहीं है, और न वह समाजके शोषक और शोषित वर्गमें समझौता कराके अपनी अलग खिचड़ी ही पकाता है। 'साम्यवादी यथार्थवाद' चूँकि इतिहासकी प्रगतिपर सदैव अपना हाथ रखता है, चूँकि वह जीवनका प्रदर्शन उसके ऐतिहासिक विकासके रूपमें करता है, इसलिए वह समझता है कि इस पूँजीवाद या साम्राज्यवादको क्रान्तिकारी मज़दूर मटियामेट कर देगा। उस समय इस विध्वंसके बाद रचनात्मक कार्यक्रमका विशाल बोझ उसके सरपर आकर गिरेगा। यह नया समाज होगा, जिसमें शोषण न होगा, ग़रीबी न होगी, अशिक्षा न होगी, बेकारी न होगी और अपने आत्मिक, मानसिक और शारीरिक विकासके पूरे साधन और सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। यह कोई स्वप्नकी बात नहीं है। हाँ, यह एकदम नया समाज होगा, जिसके निर्माणका भार उसके ऊपर अवश्य पड़ेगा। उस समय नई रचनात्मक शक्तियोंका भण्डार खुल जायगा और मानव-जीवनमें एक नया उत्साह और जोश रहेगा। इस निर्माण-कार्यसे सबकी ममता होगी, यही 'साम्यवादी यथार्थवाद' का साम्यवादी सन्देश होता है। अतः साम्यवादी यथार्थवाद साहित्यकी अन्य सभी धाराओंसे वस्तु, रूप, प्रकाशन और सिद्धान्तमें भिन्न है। यह सबका व्यतिरेक कर स्वयं अपने पैरोंपर खड़ा होनेका दावा करता है। यह एक युद्धात्मक, असहनशील, क्रान्तिकारी धारा है। यद्यपि यह पुरानी संस्कृतिके समस्त रचनात्मक और प्रगतिशील तत्त्वोंको ग्रहणकर उन्हें नये सिरेसे, नये ढाँचेमें ढालकर उनकी रक्षा करता है; लेकिन वह श्रेणी-संघर्षको प्रोत्साहन देकर, जहाँपर अभी साम्यवादी समाज नहीं क़ायम हुआ, वहाँ समस्त अवसरवादी शक्तियोंको (Opportunist groups) को काटता-छाँटता हुआ, समस्त साम्राज्यशाही-विरोधी शक्तियोंका संयुक्त मोरचा क़ायम करनेकी प्रेरणा करता हुआ, एक साम्यवादी प्रवृत्ति, साम्यवादी वातावरण, साम्यवादी दृष्टिकोण, साम्यवादी पारस्परिक सम्बन्ध, साम्यवादी समाज और साम्यवादी जीवन क्या है का भी प्रचार करता है। वह शोषित वर्गके लिए नये सांस्कृतिक मूल्य निर्धारित करता है और उसकी सौन्दर्य-भावनाको उसके ही दृष्टिकोणसे अभिव्यंजितकर साहित्यिक धोकेबाज़ीके प्रति युद्ध करता है। वह मनुष्यको उसकी सामाजिक अवस्थामें स्वीकार करता है, क्रान्तिकी उगती पौधेको देखता है और उसे सिंचित करता है। अगर साहित्य यह करता है, तो वह 'साम्यवादी यथार्थवादी' है, प्रगतिशील है।

भारतके मज़दूर और किसान-श्रेणीके युद्धको क्रान्तिकारी और साम्राज्यशाही-विरोधी बनानेका प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमें एक जबर्दस्त प्रगतिशील साहित्यके निर्माणका प्रश्न है। इस समय हमारे ऊपर बड़ी-बड़ी समस्याएँ, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अपना अतंक जमाये हैं। प्रगतिशील साहित्यकारकी ज़िम्मेदारी किसीसे कम नहीं है। उसे आज निश्चित करना है कि जीवनकी इन विषम परिस्थितियोंमें बढ़कर वह संस्कृति सभ्यता व शान्तिकी रक्षा और दलित श्रेणियोंपर होनेवाले अत्याचार और अपहरणको रोकनेके लिए साम्राज्यशाही और पूँजीवादके विरुद्ध युद्धको आगे बढ़ानेमें अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करेगा, या इन प्रतिक्रियावादी शक्तियोंकी दुमसे बँधकर जनसमुदायके सबसे बड़े अंगके साथ विश्वासघात करेगा? उदासीनतासे हाथपर हाथ रखकर बैठे रहनेका वक्त गया। संसारकी शक्तियोंका विभाजन कुछ इस प्रकार हो गया है कि कोई भी व्यक्ति उदासीन या निष्क्रिय नहीं रह सकता। व्यक्त या अव्यक्त, वह किस-न-किसी दलका साथ अवश्य देता है। इसलिए साहसके साथ अब यह कहनेका अवसर आ गया है कि वह किसके लिए पसीनेकी जगहपर अपना रक्त गिरानेके लिए तैयार है—प्रगति या प्रतिक्रियाके लिए।

मैंने एक नौजवान लेखककी हैसियतसे हिन्दीके प्रमुख साहित्यकारोंके प्रति सिद्धान्तकी बुनियादपर काफ़ी तीक्ष्ण व्यंग या कटाक्ष किये हैं। और भविष्यमें भी मौक़ा पाकर मैं कानेको काना कहनेसे चूक नहीं सकता। हाँ, इसमें व्यक्तिगत द्वेष-भावना न होनी चाहिए। मैं तो सद्भावनाको लेकर साहित्यकारोंसे उम्मीद करता हूँ कि वे साहसके साथ वाल्ट ह्विटमेन (Walt Whitman) के शब्दोंमें यह कहें और जीवनके प्रत्येक क्षणमें इसे चरितार्थ करके दिखा दें कि 'मेरे गायन क्रान्ति और विद्रोहके हैं, "For I am the sworn poet of every rebel, the world over."—हमारा साहित्यिक नारा 'कला कलाके लिए' नहीं, बल्कि 'कला संसारके बदलनेके लिए' है। इस नारेको बुलन्द करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यिकका फ़र्ज है।

सन्देश

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

आज उसका ही मुझे
सन्देश आया!

व्योमकी जब नीलिमामें
लख पड़ी सिन्दूर-रेखा,
कानमें जानें न क्या कह
सुप्त कलियोंको जगाया;
आदि पावसके बड़े ज्यों
भूमि-तलपर बूँद टपके,
शुष्क ऊर्वीको तुरत ही
शुभ्र पौधोंसे सजाया—
आज उसका ही मुझे
सन्देश आया!

दो दिनोंमें ही भुलाकर
बालपनकी बात सारी,
नव्य भावोंको जगाया
हृदय गुड़ियोंसे हटाया;
कसमसाते ही कलीके
सुखद ज्यों मधुमास आया,
शीघ्र ही संवाद जिसने
जा मधुप-दलको सुनाया—
आज उसका ही मुझे
सन्देश आया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

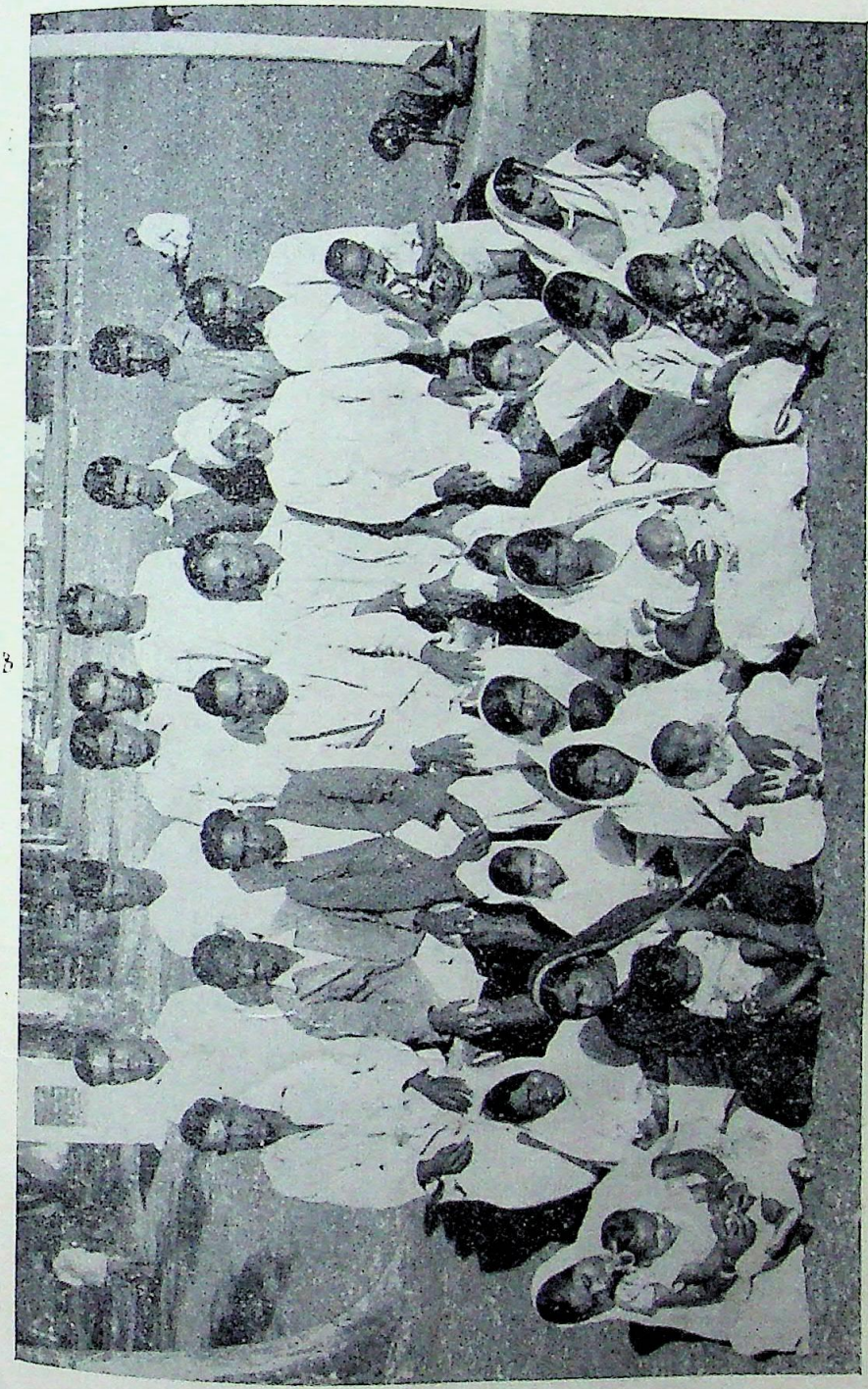

मानमदुराके कुष्ठाश्रमके रोगी। ये २७ रोगी नीरोग होकर आश्रमसे विदा हो रहे हैं (देखिये 'सेवा-उद्यान')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

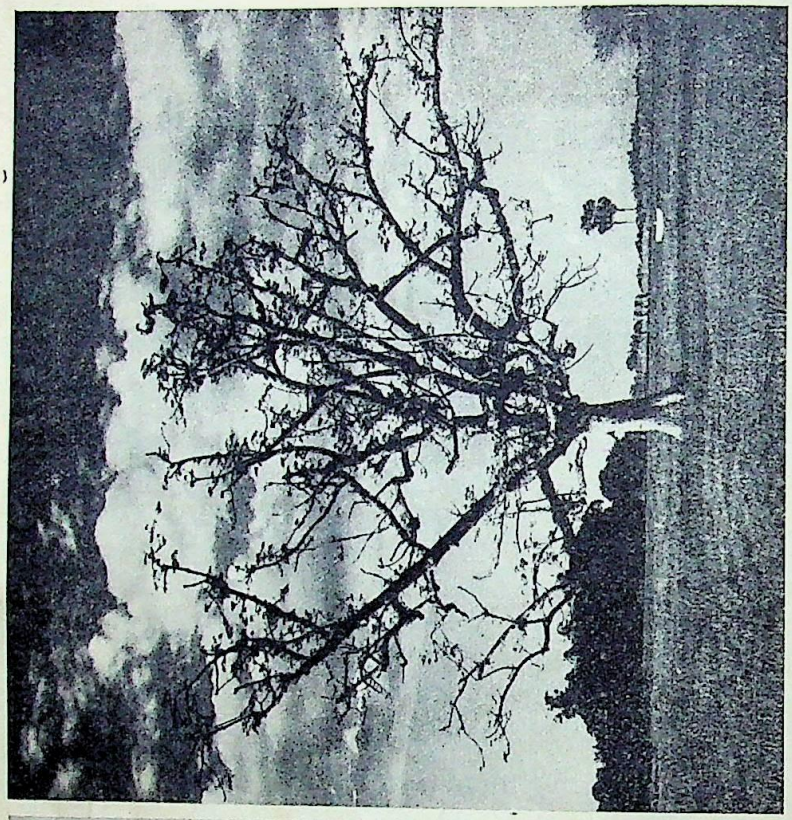

निर्जनता

फोटो—श्री परिमल गोस्वामी

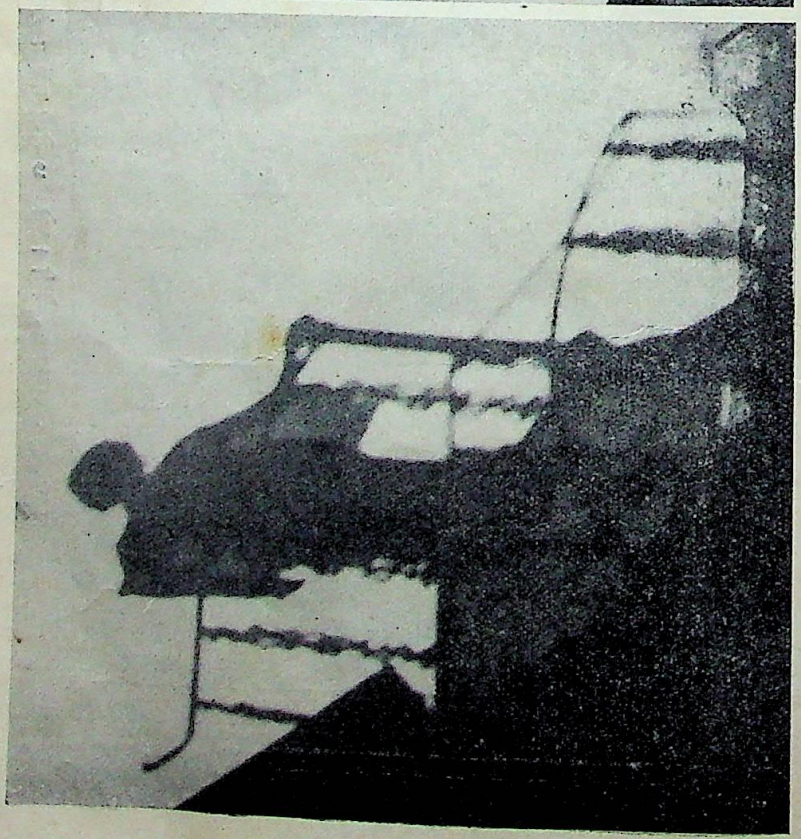

छायाकी माया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामकाज

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

बाजार-भरमें तहलका-सा मच गया। अधेड़ उम्रके एक सज्जन अपने एक नौजवान रिश्तेदारके सहारे अनारकली बाज़ारके बीचोबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाँह बँधी हुई थी, कपड़े मैले हो गये थे और मालूम होता था कि बहुत दिनोंसे वे हजामत नहीं बना पाये। इन सज्जनकी आँखोंमें इतनी गहरी निराशा और असीम व्यथाका भाव स्पष्ट अंकित था कि देखनेवाले सहमकर रह जाते थे। उनके पीछे-पीछे चालीस-पचास व्यक्ति चुपचाप चले जा रहे थे। क्वेटाके भूकम्पसे बचे हुए या आहत व्यक्तियोंका पहला बैच आज लाहौर पहुँचा था, और उनमें से सम्भवतः यही एक ऐसे सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दूकानमें खड़े होकर नये आनेवाले कपड़ोंके नमूनोंकी जाँच-पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूरसे आते हुए उस मातमी-से मजमेपर पड़ी; मगर उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दो-एक मिनटमें वह सज्जन लाला कस्तूरीमलकी दूकानके सामने आ पहुँचे और उन्होंने अपने साथके नौजवानसे कहा—"बेटा, मुझे दो-एक कपड़े न ख़रीद दोगे?"

"मैं भी आपसे यही प्रार्थना करनेवाला था।"—कहकर वह नवयुवक उन्हें लाला कस्तूरीमलकी दूकानके भीतर ले गया। साथका सारा मजमा दूकानके बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमलकी दूकानपर सेल्समैनकी कमी नहीं है; मगर इन सज्जनकी मैली-कुचैली हो रही आकृतिमें भी कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहबने आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए पूछा—"कहिये, क्या हुक्म है?"

उन सज्जनने धीरेसे कहा—"कुछ धोतियाँ दिखाइयेगा?"

उसी वक्त एक आदमीको धोतियाँ लानेका हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमलको भी जैसे इलहाम-सा हो गया कि यह सज्जन कहाँसे आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ पूछा—"आप क्वेटासे आ रहे हैं?"

"जी हाँ।"

लाला कस्तूरीमलकी उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। वे पिछले तीन दिनोंमें कम-से-कम बारह तार क्वेटाको दे चुके थे, और उनमें से एकका भी जवाब उन्हें नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार-सहित क्वेटामें ही रहते थे और उनके सम्बन्धमें उन्हें अब तक कोई ख़बर नहीं मिली थी। धोतियोंके एक नये आये हुए बण्डलका तागा कैंचीसे काटते हुए उन्होंने ज़रा व्यग्र भावसे पूछा—"पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्टके मि० मधुसूदनको आप जानते हैं?"

उन वृद्ध सज्जनने बड़ी गम्भीरताके साथ कहा—"जी हाँ।"

"उनके घरवालोंको भी।"

"जी हाँ। ख़ूब अच्छी तरह।"

लाला कस्तूरीमलने लाल किनारीकी एक धोती उन सज्जनके सामने खोलकर दिखाते हुए पूछा—"यह नागपुरकी धोती है।....मि० मधुसूदन तो शायद उन दिनों दौरेपर थे?"

"जी नहीं। २९ मईकी रातको उन्हें दौरेके लिए रवाना होना था; मगर वे गये नहीं। दौरा उन्होंने अगले दिनके लिए मुल्तबी कर दिया था।"

एक और जोड़ा उन सज्जनके सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमलने कहा—"यह धोती धुलनेके बाद बहुत हलकी हो जाती है—ठीक गरमियोंके लायक। यह भी नागपुरकी है। अच्छा, तो वे दौरेपर नहीं गये?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी, नहीं जा सके।"

"मेरा कोई तार उन्हें मिला था ?"

"मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन अब इस दुनियामें नहीं रहे।"

लाला कस्तूरीमलको उन वृद्ध सज्जनकी बातपर जैसे रत्ती-भर भी विश्वास नहीं आया। धोतियोंके ढेरमें से एक और जोड़ा निकालते हुए उन्होंने कहा—"आप किन मधुसूदनकी बात कर रहे हैं ?"

"उन्हीं मधुसूदनकी, जिनकी पत्नीका नाम उर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंटमें इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्लेके दक्षिणी किनारेपर सरकारी हाई स्कूलके खेलनेके मैदानके नज़दीक थी।"

लाला मधुसूदनके चेहरेपर गहरे विषादकी रेखा साफ़-साफ़ दीख पड़ी। डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनकेके आसरेको भी नहीं छोड़ना चाहता, उसी तरह लाला कस्तूरीमलने अपने अविश्वासको ज़बरदस्ती जमाये रखनेकी चेष्टा करते हुए कहा—"भूकम्पके बाद आप उनके यहाँ गये थे ?"

"नहीं जी।"

"फिर आपको कैसे मालूम कि वे नहीं बच पाये ?"

"उनके छोटे भाई साहबकी ज़बानी मालूम हुआ ! आप बिना किनारेकी भी कुछ धोतियाँ दिखाइयेगा ?"

"मदरासी धोतियाँ। कर्नाटक मिल। पाँच सात प्लेन डिज़ाइन फेंको !" लालाजीने अपने आदमीको आवाज़ दी और उसके बाद कहा—"उनके भाई साहबसे ? क्या उन्होंने मि० मधुसूदनका अन्तिम संस्कार किया था ?"

"जी नहीं। उनकी देह मिली ही नहीं। शायद कोठीकी खुदाई करनेपर कहीं कुछ पता चले।"

दक्षिणके छज्जेपर से पाँच-सात धोतियोंका एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमलके ठीक सामने आकर गिरा। इस उद्विग्नतामें भी लाला साहबके हाथ अपनी सहज आदतसे गाहकके सामने जोड़ा खोलकर दिखाने लगे—"यह कर्नाटकका माल है। कर्नाटकने नागपुरको बड़ा धक्का पहुँचाया है।" लाला साहबने उन वृद्ध सज्जनके अत्यन्त गम्भीर बने हुए चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—"तो फिर क्या यह मुमकिन नहीं कि घरमें किसीको इत्तला दिये बिना ही वे दौरेपर चले गये हों ?"

"नहीं जी। ऐसा नहीं हुआ। वे लोग रातको बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे।"

"ये धोतियाँ आप अवश्य पसन्द करेंगे। हाँ, ऊर्मिलाका क्या हाल है ?"

"वे अस्पतालमें हैं ?"

"अस्पतालमें !" लाला कस्तूरीमलकी सम्पूर्ण देह एक बारगी काँप उठी और क्षण-भरके लिए उनके दोनों हाथ धोतियोंके ढेरपर से उठ गये—"उनकी हालत कैसी है ?"

"चोट तो उन्हें उतनी अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चेके देहान्तका सदमा पहुँचा है। आपको अवश्य ही स्वयं क्वेटा जाकर उन्हें लानेका प्रबन्ध करना चाहिए। इस जोड़ेकी कीमत क्या है ?"

"चार रुपया छः आना इसकी खरीद है। मैं आपसे ज़्यादा चार्ज नहीं करूँगा। कुछ और भी नमूने दिखाऊँ क्या ?"

"आपकी मेहरबानी। बनी-बनाई कमीजें भी तो आपके यहाँ होंगी ?"

"आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न ?"

"जी नहीं ? मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिए।"

"हम खुद जहाँ तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते हैं। आपने खुद ऊर्मिलाको अस्पतालमें देखा था ?"

"जी नहीं। यह भी मि० मधुसूदनके भाई साहबने ही बताया था। मैं खुद चोट खा गया था, कहीं आ-जा नहीं सका।"

"आप रेशमी कमीज़ें चाहते हैं या सूती ! दोनों ही देख लीजिए। रामलाल ३८ नम्बरकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमीज़ें लाना !" और उस एक ही साँसके उत्तर-भागको अत्यधिक करुण और एकदम ठण्डा बनाते हुए लाला कस्तूरीमलने कहा—"तो क्या काशो भी इस दुनियामें नहीं रहा !"

"मुझे इस बातका हार्दिक दुख है कि ये दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूँ।"

इस समय तक काउण्टरपर कमीजोंका एक ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल उस ढेरकी कमीज़ें दिखाते हुए बोले—"यह मुर्शिदाबादी रेशमकी कमीज़ है, यह ढाकेके रेशमकी और यह काशीके रेशमकी। मज़बूतीके लिहाजसे यह काश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इत्सूका सूती कपड़ा सबको मात कर गया है। मिलने हाल ही में कीमतें भी बहुत गिरा दी हैं ?" और तब अपने हृदयके कुचले हुए अविश्वासको ज़बरदस्ती जगाकर लाला कस्तूरीमलने कहा—"मि० मधुसूदनके भाई साहब तो चमन गये हुए थे।"

"दो-एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुँचे थे। उस रात वे बरामदेमें सोये थे, इसीसे बच गये। इस कमीज़की कीमत क्या है ?"

"तीन रुपया छः आना। आपसे मैं तीन ही लूँगा।"

"धन्यवाद। इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

इसी समय एक सम्भ्रान्त महिला उस दूकानमें आई। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारीको उन सज्जनके पास छोड़कर स्वयं उस महिलाकी ओर बढ़ गये। उनके चेहरेपर इस समय हद दर्जेकी उदासी छाई हुई थी ; परन्तु उनकी तत्परतापर इस उदासीका कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया था !

[२]

रावलपिंडी जेलका सबसे अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ़ मज़े-मज़ेमें ग्यारहका घंटा बजा रहा था। सरदियोंका मौसम था और सूर्यकी हल्की-हल्की धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेलके बड़े फाटकके बाहरसे आवाज़ आई—"तार ले लो।"

ड्योढ़ीमें कोई चौकीदार नहीं था। भीतरके सहनसे यूसुफ़ने तारवालेकी आवाज़ सुनी ; मगर उसने कोई परवा नहीं की। मज़े-मज़ेमें उसने मुगरी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे फाटककी ओर बढ़ा। तारवाला बहुत अधीर हो रहा था ; परन्तु यूसुफ़का डील-डौल देखकर उसे हिम्मत न हुई कि वह उसपर अपना रोब डालनेका प्रयत्न करे।

नज़दीक आकर यूसुफ़ने पूछा—"किसका तार है ?"

"यूसुफ़ जमादारका।"

अट्टहास करके यूसुफ़ हँस पड़ा। जेल-भरमें और तो कोई यूसुफ़ है नहीं। बाक़ी रहा वह ; सो उसका तार आ ही नहीं सकता ! पिछले कई बरसोंसे जिस आदमीके पास एक चिट्ठी तक नहीं आई, उसका तार कहाँसे आ सकता है ? फिर उसे तार देगा ही कौन ? सरहदके जिस अफ़्रीदी प्रान्तमें उसका मकान है, उसके पचास मीलकी परिधिमें एक भी डाकखाना या तारघर नहीं। जी-भरकर हँस लेनेके बाद यूसुफ़ने कहा—"कहीं ग़लतीसे कचहरीके यूसुफ़का तार जेलके यूसुफ़के पास तो नहीं ले आये।"

मगर तार सचमुच उसीका था और बहुत शीघ्र उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौतके बाद कोई और व्यक्ति ठीक तौरसे उन्हें दफ़ना सकेगा, इस बारेमें उन्हें शक था, इसीसे उन्होंने यूसुफ़को बुलानेके लिए तार भिजवाया है।"

इस जेलमें चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ़को पन्द्रह बरस बीत चुके हैं। इन पन्द्रह बरसोंमें वह एक बार भी अपने देशको नहीं गया। कभी किसी बातके लिए एक दिनकी भी छुट्टी नहीं ली। युवावस्थाके प्रारम्भिक दिनोंमें उस अशासित प्रान्तमें अपने अनेक साथियोंके साथ यूसुफ़ने बीसों साहसिक काम किये

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—डाके डाले हैं, चोरियाँ की हैं और छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ़का विवाह हो गया, तो उसके श्वसुर-पक्षका यह सबसे बड़ा उलहना बन गया कि यूसुफ़ निठल्ला है—न वह खेती बारी करता है, न वह किसी गिरोहका सरदार है और न सरकार ही से कुछ पाता है। उन उलाहनोंसे तंग आकर वह अपने देशसे भाग खड़ा हुआ और रावलपिण्डी पहुँचकर जेलमें पहरेदारके पदपर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह बरसोंमें प्रतिमास वह कम-से-कम दस रुपये अपने श्वसुर साहबके पास भेजता रहा है; मगर न तो वह खुद कभी उनसे मिलनेके लिए गया और न उसने अपनी पत्नीको ही अपने पास बुलवाया।

अपने श्वसुरका तार पाकर सहसा यूसुफ़को अपनी मातृभूमिकी स्मृति हो आई। वज़ीरिस्तानके वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ोंपर चरती हुई भेंड़ें और उन भेड़ोंके साथ-साथ स्वस्थ, हृष्टपुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ! उन्हीं सूखी-सी पहाड़ियोंपर अंगूर पैदा होते हैं। उसी भूमिकी मटियाली-सी सतहपर सरदे बिछे रहते हैं और वहीं किशमिश, न्योज़े और बादामकी बहार आती है। वहाँ आज़ादी है, वहाँ वीरता है और सबसे बढ़कर वहाँ पुरुषत्व है। हाँ, यूसुफ़का बहिश्त वही तो है।

और इसके साथ-ही-साथ उसे अपने श्वसुरकी बीमारीका स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भेकी बात है, न चिन्ताकी और न शोककी। मगर फिर भी उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौरसे दफ़ना सकेगा? यूसुफ़को जाना ही चाहिए। वह जायेगा ही।

मातृभूमिकी यादसे एक विशेष तरहकी स्निग्धताका भाव यूसुफ़के चेहरेपर झलक उठा और पश्तोंका एक गीत गुनगुनाता हुआ जेलर साहबके दफ्तरकी ओर बढ़ गया। यूसुफ़के आनेसे पहले ही उसके तारकी बात जेलर साहबको मालूम हो चुकी थी। एक मुसकराहटके साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने कहा—"क्यों यूसुफ़, पन्द्रह सालका रेकार्ड तोड़कर छुट्टी लेना चाहते हो?"

यूसुफ़ने कोई जवाब न दिया।

जेलर साहबने पूछा—"तुम्हारे ससुरकी उम्र कितनी है?"

"छियत्तर साल।"

"अब भी तुम चाहते हो कि वहाँ पहुँचकर उसे बचानेकी कोशिश करो?"

यूसुफ़ चुप रहा।

जेलरने अबके बहुत ही गम्भीर बनकर कहा—"क़ानूनके मुताबिक यहाँ छै जमादारोंका हर वक़्त मौजूद रहन लाजमी है। आठ जमादारोंमें से दो पहले ही छुट्टीपर हैं। इस हालतमें मैं तुम्हें छुट्टी किस तरह दे सकता हूँ?"

यूसुफ़ने कहा—"अलादीनकी छुट्टी कलसे मंज़ूर हो चुकी है; मगर वह गया नहीं। मेरे कहनेसे वह अपनी छुट्टी मेरे हक़में बादके लिए मन्सूख़ करवा लेगा। उसे कोई ख़ास काम तो है नहीं।"

जेलर साहबने कुछ चिढ़कर कहा—"तुम्हें कौन-सा ख़ास काम है? ससुरका दफ़नाना! यह भी कोई काम है!"

कठोर हृदय यूसुफ़ने सिर झुका दिया—जैसे वह पराजित हो गया हो; मगर जेलके क्लार्कने उसकी मदद की। वह बोला—"शायद कोई जायदाद-वायदादका सवाल हो।"

यूसुफ़ खिज उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—"मैं किसी जायदादके लालचसे नहीं, अपने ससुरकी खिदमतके ख़यालसे ही वहाँ जाना चाहता हूँ।

जेलरने ज़रा ऊँची आवाज़में कहा—"ससुरका भी कोई नाता होता है! एक आदमीकी लड़की ले ली, इससे वह उम्र-भरके लिए रिश्तेदार हो गया!—यह भी कोई रिश्ता है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेलका क्लार्क मुँह मोड़कर अपनी हँसी छिपानेकी कोशिश करने लगा। जेलरका लेक्चर अभी तक जारी था—"देखो यूसुफ़, हिन्दुस्तान-भरमें तुम्हारा ही यह रेकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह सालकी सरकारी नौकरीमें एक भी दिनकी छुट्टी कभी नहीं ली। एक ज़रा-सी बातके पीछे तुम अपना वह शानदार रेकार्ड तोड़ डालना चाहते हो।"

दानवकाय यूसुफ़से जब और कुछ न बन पड़ा, तो उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

क्लार्कको अब उसपर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा—"तो तुम ज़रूर छुट्टी लेना चाहते हो?"

यूसुफ़ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

क्लार्कने जेलरसे कहा—"वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाक़ी है। क़ानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेनेके लिए मजबूर नहीं कर सकते।"

जेलरने एक बार अपने क्लार्ककी ओर अग्निमय दृष्टिसे देखा; परन्तु सहसा उन्हें उसी समय एक भूली बातका स्मरण हो आया। क़रीब दो महीने बाद पेशावरके जेल-इन्सपेक्टर महोदय रावलपिण्डीमें नियुक्त होकर आनेवाले थे। जेलरने उन्हें भेंटमें भेजनेके लिए सेबोंकी एक पेटीका आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीरसे आनेवाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ़के हाथ ही पेशावर भेज दी जाय।

जेलर साहबने जैसे एक मिनट तक सोचते रहनेके उपरान्त कहा—"तुम पेशावरके रास्ते ही अपने गाँव जाओगे न?"

"जी हाँ।"

"तो तुम्हें दस दिनोंकी छुट्टी मैं दे सकता हूँ। मगर आजसे नहीं। दो दिन बादसे।"

यूसुफ़ने नम्रतासे कहा—"उनका तो मालूम नहीं, वे कब चल बसें। आज रातको रवाना होकर भी जल्दी-से-जल्दी तीन दिन बाद ही वहाँ पहुँच सकता हूँ।"

जेलरने कहा—"तुम्हारी छुट्टी मंजूर होनेमें दो दिन अवश्य लग जायँगे।"

यूसुफ़ और क्लार्क दोनोंने हैरानीके साथ जेलर साहबकी ओर देखा। उन दोनोंके लिए यह बात अश्रुतपूर्व थी। क्लार्कने कहा—"दरख़ास्तपर आप ही के दस्तख़त काफी नहीं हैं क्या?"

अपनी कमीनगीपर मुसकराहटका परदा डालते हुए जेलरने कहा—"यार, तुम्हें मेरी सेबोंकी एक पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी। वह पेटी परसोंसे पहले यहाँ नहीं पहुँच सकती।"

जेलर साहबका यह काम इतना अधिक महत्त्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ़ आज ही रवाना हो जानेके लिए और अधिक आग्रह न कर सका!

[३]

साइकिलके पैडेलोंपर तेज़ीके साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंककी ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं, और आज शनिवार है। एक बजेके बाद बैंकसे लेन-देन न हो सकेगा। देसराजकी जेबमें पाँच सौ रुपयोंके नोट पड़े हैं। बैंकमें जाकर उसे अपने मालिककी एक रेलवे रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग़से होकर जहाँ माल रोडकी ओर घूमती है, वहाँ देसराजके मार्गमें सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़कके किनारे बीस-पचीस आदमी जमा थे। देसराजकी साइकिल जब वहाँ पहुँची, तो दो-तीन आदमियोंने हाथ बढ़ाकर उससे कहा—"बाबूजी, ज़रा ठहरिये।"

देसराजको रुकना पड़ा। पूछनेपर मालूम हुआ कि राह चलते एक आदमीको गश आ गया है। उसे क्या बीमारी है, यह किसीको नहीं मालूम; मगर बेहोशीकी दशामें भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण-से स्वरमें वह बार-बार पुकार उठता है—'पानी! पानी!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर आसपास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेलेवालेने देसराजसे कहा—"बाबूजी, वह यहाँसे थोड़ी ही दूरीपर यूनिवर्सिटीके लड़कोंका क्लब है। आप यदि साइकिलपर वहाँ जाकर एक लोटा पानी ला दे सकें, तो इस बेचारेकी जान बच जाय।

देसराजने पूछा—"यह यहाँ कबसे पड़ा है?"

किसीने बताया—"करीब पन्द्रह मिनटसे।"

देसराजने दूसरा सवाल किया—"इसे क्या बीमारी है?"

एक मुसाफ़िरने ज़रा झुँझलाकर कहा—"हम लोगोंमें से कोई डाक्टर तो है नहीं। जो-कुछ है, वह आपके सामने है।"

देसराज शायद इस बातपर खिज उठता; परन्तु उसी समय उसी ठेलेवालेने बड़ी नम्रताके साथ कहा—"बाबू साहब, यहाँ इस आदमीका अपना सगा कोई भी नहीं। यदि दो-चार मिनटोंमें आप साइकिलपर जाकर कहींसे इसे पानी ला दे सकते, तो उसके बाद मैं अपने ठेलेपर लिटाकर इसे अस्पताल तक छोड़ आता। आप साहब हैं, आपको माँगनेपर पानी मिल भी जायगा; मगर हम ग़रीबोंको इन बड़ी-बड़ी इमारतोंमें कोई घुसने भी न देगा।"

देसराजके जीमें सचमुच दयाका संचार हो आया। वह खुद भी एक ग़रीब बाबू है—ऐसा ग़रीब बाबू, जिसे अपने जीवन-निर्वाहमें इन ठेलेवाले और झल्ली-वाले मज़दूरोंसे भी बढ़कर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उससे दिनमें बारह घंटे और चार सप्ताहोंमें सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दूकान महीनेमें एक ही दिन बन्द होती है) कसकर काम लेता है, तब जाकर उसे तीस रुपया मासिक वेतन मिलता है। वह भी यदि ग़रीबोंके दुख-दर्द और उनकी असहाय अवस्थाको नहीं समझेगा, तो और कौन समझेगा? वह देख ही रहा था कि कालेजके विद्यार्थियोंकी साइकल और अमीरोंकी कारें काफी संख्यामें उसी सड़कपरसे होकर इधर-उधर निकल जाती हैं, किसीको इस ओर ध्यान देनेकी फ़ुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ीपर पड़ी। बारह बजकर पैंतालीस मिनट हो चुके हैं। पन्द्रह मिनटोंके बाद बैंकमें न तो रुपये ही जमा कराये जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलनेमें दो दिनकी देर हो जायगी, और वह स्वतन्त्र नहीं है।

हृदयकी सम्पूर्ण भावुकताको कुचलकर देसराज साइकिलपर सवार हो गया और कुछ गज़ आगे बढ़कर वह कहता गया—"बीस-पचीस मिनटमें मैं वापस आता हूँ।"

बैंकसे अपना काम समाप्त करके देसराज जब गोलबागके नज़दीक पहुँचा, तो उसने देखा कि वहाँ तमाशबीनोंकी भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई है कि सड़कपर राह मिलनी भी कठिन है।

देसराज साइकिलसे उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमीसे उसने पूछा—"क्या बात है?"

उसने बताया—"कुछ नहीं, कोई मुसाफ़िर राह चलते सड़कपर गिरकर मर गया है और पुलीस उसकी लाश लेने आई है।"

देसराजने एक ठण्डी साँस ली और धीरे-धीरे उस भीड़को पार करके पुनः साइकिलपर सवार हो गया। पाँच सौ रुपयोंकी पोमेड वेसलीनके पार्सलकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रेलवे रसीद अब उसकी जेबमें पड़ी थी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्षमें ग्रामीण दरिद्रता और उसके उन्मूलनके साधन

श्री बैजनाथ तिवारी, बी० ए०

उपजाऊ भूमि, कार्य करनेवालोंकी अधिकता तथा परम्परागत कृषि-कार्यमें निपुणताके कारण भारत प्रकृति द्वारा एक कृषि-प्रधान देश बनाया गया है। इतना होते हुए भी यह कहा जायगा कि 'भारत एक मालदार देश है, जहाँ निर्धन लोग बसते हैं।' भारतीय कृषि अभी तक अत्यन्त पिछड़ी हुई है। किसानोंकी इस पिछड़ी हुई अवस्थाके कारणोंमें किसानोंका अत्यधिक ऋणग्रस्त होना मुख्य माना जाता है। मिस्टर उलफका कथन है कि 'देश महाजनोंके पंजेमें है। यह ऋणका बन्धन ही है, जो कृषिको नष्ट कर रहा है।'

दरिद्रताकी सीमा

सन् १८७५ में डेकन रैयत कमीशन (Deccan Ryot Commission) ने पता लगाया कि अहमदनगरके बारह ग्रामोंमें सरकारी भूमि जोतनेवालोंका तृतीयांश ऋणके भारसे दबा हुआ है, और यह ऋण सरकारी लगानका अठारह गुना है। दोतिहाई ऋण रेहनपर है। औसतमें प्रति कृषकपर ३७१) रु० ऋण है। सन् १८८० में फेमीन कमीशन (Famine Commission) ने पता लगाया कि भूमिपर जीवन-निर्वाह करनेवालोंका तृतीयांश ऋणसे ऐसा दबा है, जिसका उभरना नामुमकिन है, और इतना ही और भाग भी ऋणग्रस्त है; पर मुक्त होनेका साधन कर सकता है, यानी वे ऋणसे घिरे हैं, फिर भी ऋणका बन्धन प्रथम भागकी भाँति जटिल नहीं है।

सन् १९३० की जाँचके अनुसार सिन्ध-सहित बम्बईका ग्रामीण ऋण ८१ करोड़ रुपया है। यह ऋण कृषिसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंके मूल्यका ५३ फी-सदी है। इस हिसाबसे प्रति कुटुम्बका ऋण ३२९) रु० पड़ता है। सिन्धमें केवल तेरह प्रति सैकड़ा कुटुम्ब ऋणसे मुक्त हैं।

मदरासका ऋण लगभग १५० करोड़ रुपया है। इसमें से जो ऋण प्रतिवर्ष बढ़ता ही जानेवाला है, वह ७० करोड़ है इसी प्रकार बंगालका ऋण १०० करोड़ और यू० पी० का १२४ करोड़ रु० है। और अन्य प्रान्तोंका ऋण ज्ञात करनेसे पता चलता है कि ब्रिटिश भारतके सब प्रान्तोंका ऋण लगभग ९०० करोड़ रुपया है।

हमें ऋणके परिमाण तथा उसकी वृद्धिकी गतिपर उतनी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, जितनी इस विषयपर कि ऋणका अधिक भाग ऐसे कार्योंके लिए लिया गया है, जिनसे ऋण चुकानेकी कोई आशा ही नहीं हो सकती—जैसे विवाह, श्राद्ध आदि। भूमिकी उन्नतिके लिए केवल पाँच प्रति सैकड़ा ऋण लिया जाता है। भारतमें प्रति मनुष्यकी औसत आमदनी २३ रु० साल है।

दरिद्रताके मुख्य कारण

हमारी दरिद्रताका पहला कारण यह है कि देशमें जीविकाके लिए जनताका अत्यधिक भार भूमिपर निर्भर करता है। यहाँके लगभग ८० प्रति सैकड़ा लोग कृषिपर जीवन व्यतीत करनेवाले हैं। देशकी जनसंख्या प्रतिवर्ष ज़ोरोंसे बढ़ रही है; किन्तु ज़मीनकी उत्पादन-शक्ति न तो उस मात्रामें बढ़ रही है, न बढ़नेकी कोई आशा ही है।

दरिद्रताका दूसरा कारण है भूमि यानी खेतोंकी चिर्गी-बोटी। मान लीजिये, किसी किसानके पास २० बीघा खेत है, तो अकसर यह दीख पड़ता है कि यह २० बीघा लगभग चालीस या पचास भागोंमें दूर-दूर होता है। परिणाम यह होता है कि किसान सब खेतोंमें खाद-पात डालकर ज़मीनको बराबर उपजाऊ नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मेड़ोंपर अकसर सर फूटते हैं। फिर फसल तैयार होनेके समय खेतोंके दूर-दूर होनेसे उनकी उचित रखवाली नहीं हो पाती, जिससे पशुओं और चोरोंसे किसानोंका नुकसान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा कारण है ग्रामीण दस्तकारीमें अवनति तथा खाली वक्तमें किसी अन्य व्यवसायका अभाव। प्रायः देखा जाता है कि खाली वक्तमें किसान दस-पाँचकी संख्यामें एक जगह बैठकर चिलम फूँकते और फिजूलकी बातोंमें दिन काटते हैं।

चौथा कारण है प्रजाका निर्बल स्वास्थ्य। यह दरिद्रताका एक फल भी है और साथ ही उसका उत्पादक भी। अधिकांश लोग निर्बल और स्वास्थ्य-हीन हैं। पता नहीं चलता, कब वे जवान हुए और कब बुढ़ापा आया। बहुतसे तो जवानीमें ही बुढ़ापेका मज़ा लूटते हैं। खेतीके ख़ास महीनोंमें अधिक कार्य करनेसे वे अकसर बीमार पड़ जाते हैं, जिससे उनकी फसल नष्ट हो जाती है। फिर बीमारीमें ठीक ढंगसे चिकित्सा न होनेसे वे कभी-कभी सदैवके लिए रोगी और क्षीण हो जाते हैं।

पाँचवाँ कारण है फसलका अनिश्चित होना। भारतीय कृषि-व्यवसाय मानसूनोंके जुएका खेल है। इन्द्र देवता असन्तुष्ट हुए, तो कृषकोंके भाग्यपर वर्षाके बजाय पत्थर पड़ जाता है। यू० पी०, बंगाल आदि प्रान्तोंमें वर्षा न होनेसे जड़हनकी फसलको बड़ा नुकसान हुआ है। जिस वर्ष फसल अच्छी हो गई, कृषक केवल उसी वर्ष ऋणमुक्त रह सकता है, या मुक्त होनेका साधन कर सकता है।

छठा कारण है अकाल तथा बीमारीके कारण चौपायोंकी हानि। गाँवोंमें चौपायोंके अस्पताल न होनेसे बीमार होनेपर उनमें अधिकांश मृत्युके शिकार बनते हैं। नये मवेशी खरीदनेमें काफी धन लगता है, ऐसी हालतमें किसानके लिए ऋण लेना आवश्यक हो जाता है।

दरिद्रताका सातवाँ कारण है ग्रामीण जनताका झगड़ोंसे प्रेम। मामूली-से-मामूली बातोंपर देहाती लोग एक दूसरेका सर फोड़कर अदालतको दौड़ते हैं। वे वकीलोंकी जेब भरने तथा मुक़दमेकी पैरवी करनेके लिए ऋण लेते हैं और अपने ऊपर तबाही लाते हैं। उत्तम शिक्षा द्वारा इसका उन्मूलन किया जा सकता है।

आठवाँ कारण है कृषकोंकी फिज़ूलख़र्ची। वित्तसे बाहर व्यय करना उनके ऋणका कारण होता है। कुछ बुद्धिहीन लोग तो वृद्धावस्थामें भी ज़मीन तक बेंचकर अपने लिए स्त्री मोल लेते हैं। विवाहमें गहने और तिलककी अनुचित प्रथाने किसानोंकी दशाको शोचनीय बना दिया है। हरएक ग्रामीण यह चाहता है कि उसके पुत्रके विवाहमें अधिक-से-अधिक गहना जाय और अधिक-से-अधिक धूमधाम हो। इसके लिए ऋण लेना उन्हें चिन्ताजनक नहीं जान पड़ता; किन्तु इसका परिणाम दुखदायी होता है।

नवाँ कारण है कृषकोंकी आधुनिक आर्थिक अवस्थामें परिवर्तन। अंगरेज़ी राज्यके स्थापित होनेसे लगान नियत हो गया, क़स्बे बढ़ गये, भूमिकी क़ीमत बढ़ गई। अतः रेहनकी प्रथा भी चल निकली। कभी-कभी धन-सम्पन्न होना भी कर्ज़दारीका कारण है। खुशहालीमें ऋण लेनेकी आवश्यकता नहीं रहती है; परन्तु मौक़ा अधिक रहता है। पैसा पास होनेसे आदमीकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। जीवन-निर्वाहका स्टैण्डर्ड ऊँचा हो जाता है; परन्तु एकाएक आमदनीमें कमी हो जानेसे व्यय तो कम नहीं होता, अतः ऋण लेना आवश्यक हो जाता है। कहा भी है:—

बढ़त-बढ़त सम्पति-सलिल, मन-सरोज बढ़ि जाय;
घटत-घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हलाय।

दसवाँ कारण है महाजन और ब्याज-प्रणाली। आजकलके नये धनी आकाशसे बातें करते हैं। वे रुपयेपर ५०, ६० और ८० प्रति सैकड़ा तक चक्रवृद्धि ब्याज और अनाजपर लगभग १५० प्रति सैकड़ा तक ब्याज (डेढ़ियाकी प्रथा, जिसमें बहुतेरे तो छूट भी नहीं रखते) ग़रीब किसानोंका गला दबाकर लेते हैं।

ग्यारहवाँ कारण है भूमि-कर-प्रणाली और ग्रामीण ऋणत्व। श्रीयुत आर०सी० दत्तका कथन है कि भूमि-कर अधिक होनेके साथ-साथ उसके वसूल करनेकी प्रथा और नियम बहुत निरंकुश हैं। कुछ दूसरे लोगोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना है कि कितने ही ऐसे किसान देखे जाते हैं, जिन्हें बहुत थोड़ा लगान देना है, फिर भी वे सारी आमदनी अपने ऊपर ख़र्च कर डालते हैं और लगानके लिए कर्ज़ लेते फिरते हैं।

गहनोंके अनुचित प्रेमके कारण अनेक ग्रामीण स्त्रियाँ अपने पतियोंको गहनोंके लिए कर्ज़ लेनेको बाध्य करती हैं। किसी अंशमें किसानोंकी कर्ज़दारीका यह भी एक कारण होता है। दरिद्रताका एक कारण हमारी सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा भी है। कुछ कुटुम्बोंमें बेकार बैठकर खानेवालों (Parasites) की संख्या अधिक होती है। ख़र्च-वर्चका सारा भार एक ही मनुष्यपर छोड़ दिया जाता है। नतीजा यह होता है कि वह कितना ही अधिक धनोपार्यन क्यों न करे, घरके ख़र्चोंके लिए ऋण लेना आवश्यक हो जाता है।

इसके सिवा देशमें लाखों साधु, संन्यासी, फकीर और भिखमंगे हैं। इनमें से अधिकांशके पेट भरनेका भार अन्तमें किसानोंपर ही पड़ता है।

दरिद्रता-उन्मूलनके साधन

इस विषयमें हमें सरकारसे अधिक सहायता मिलनेकी आवश्यकता है। जनताको शिक्षित बनाकर उसके भ्रमको दूर करना सबसे ज़रूरी बात है। देवी, भवानी, भूत, चुड़ैल इत्यादिके पूजनेमें जो ख़र्च और परिश्रम होता है, उसका निर्मूलन उत्तम शिक्षा द्वारा किया जा सकता है। लड़कों और लड़कियोंको ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे वे देशकी कारीगरी और तिजारतको उन्नति कर सकें और स्वावलम्बी बन सकें। जनतामें उचित शिक्षाका प्रचार होनेसे विवाहमें तिलक और अन्य अनावश्यकीय बातें शीघ्र ही दूर हो जायँगी।

सर ऐडवर्ड मैकलेगनने ग्रामीण दरिद्रता दूर करनेमें सरकारी सहायताको निम्नांकित चार विभागोंमें बाँटा है :—

(१) अनावश्यक ऋण लेनेसे रोकनेके नियम।

(२) दीवानीके कानून (Civil Law) को अधिक परिमार्जित और विस्तृत रूप देनेके नियम।

(३) भूमिका साहूकारों या अन्य लोगोंके हाथोंमें जानेसे रोकना।

(४) ग्रामीणोंको सरकारी ऋण देनेका प्रबन्ध और ऋणके काटने तथा अदा करनेके नियम।

अब हमें यह देखनेकी आवश्यकता है कि इन नियमोंका सुचारु रूपसे संचालन किन बातोंपर निर्भर है। अनावश्यक ऋणोंसे बचनेके लिए, जैसा ऊपर कहा गया है, प्रारम्भिक शिक्षाका होना नितान्त आवश्यक है।

क़ानून दीवानीके उत्तम होनेकी कसौटी केवल यही है कि उसके नियमोंसे साहूकारको अपना रुपया मिल जाय तथा प्रजा महजनोंके अत्याचारोंसे सुरक्षित रहे। आजकल सरकारने प्रजाकी रक्षाके लिए कुछ नियम बनाये भी हैं—उदाहरणार्थ, अब किसी कृषकका हल-बैल डिक्रीकी वसूलयाबीमें नीलाम नहीं हो सकते, इत्यादि।

बहुधा भूमि ऐसोंके हाथ पड़ जाती है, जो केवल शहरोंमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं। वे न तो भूमिका उपयोग स्वयं करते हैं और न दूसरेको भलीभाँति करने देते हैं। इस प्रकारकी प्रथाको अवश्य रोकना चाहिए। साथ ही शहरोंके धन (Capital) और बुद्धिका, जहाँ तक सम्भव हो, उपयोग किया जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब धनी और बुद्धिमान जन ग्रामोंमें बसना अच्छा समझें। अतः धनियों, विशेषकर ज़मीदारोंमें ग्राम-निवासकी रुचि पैदा करनी चाहिए।

ग्रामीण जनताको थोड़े ब्याजपर ऋण देनेके लिए अनेक संस्थाएँ स्थापित की गई हैं, तथापि उन्हें विस्तृत करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रचलित प्रथाओंमें से कुछ निम्नांकित हैं—सरकारी बैंकोंसे ऋण दिया जाना, रेहन लेनेवाले बैंकोंका स्थापित होना, अकालके समय तकाबी बाँटना, ग्रामीण सहायक समितियाँ (Co-Operative Societies) स्थापित करना।

ग्रामीण जनताको महाजनोंके चंगुलसे बचाने तथा उन्हें धनकी समयोचित सहायता प्रदान करनेके लिए सहायक समितियोंसे उत्तम कोई संस्था नहीं हो सकती। इन समितियोंका प्रचार हरएक ग्राममें होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकलके बेकार ग्रेजुएटोंको थोड़ा-सा वेतन देकर इस कार्यमें लगाया जा सकता। इनके स्थापित होनेसे मनुष्यमें स्वावलम्बनकी मात्रा अधिक बढ़ती है। जब मनुष्य अपने पैरोंपर खड़ा होना सीख जाता है, तो फिर उसकी उन्नतिमें कोई बाधा नहीं डाल सकता है।

ऋणको कटाने तथा चुकानेका प्रबन्ध उचित रूपसे होना चाहिए। सेन्ट्रल इनक्वायरी कमेटीका आदेश है कि प्रत्येक क्षेत्रमें विज्ञ विद्वानोंकी कमेटी स्थापित की जायँ, जो ऋण लेने और देनेवालोंको एकत्र कर उनमें समझौता करें, जिससे थोड़ा-थोड़ा करके कई वर्षमें ऋण चुकानेका प्रबन्ध हो जाय। यद्यपि यह नियम इंकबर्ड ऐक्टके रूपमें प्रचलित भी हो रहा है, फिर भी अभी समूची जनता उसे भलीभाँति नहीं जानती। इसके प्रचारके लिए सरकारी सहायताकी विशेष आवश्यकता है। सी० पी० प्रान्तमें कर्ज चुकानेके बोर्ड (Board of Debt Conciliation) से प्रजाको बड़ा फायदा हो रहा है। ऐसी ही प्रथा यू०पी० और अन्य प्रान्तोंमें भी शीघ्र ही होनी चाहिए।

भारतके आधुनिक किसानोंकी दीन दशा देखकर आँखोंमें आँसू डबडबा आते हैं। दिन-रातके कठिन परिश्रमपर भी उन अभागोंको चौबीस घंटेमें एक बार रूखा-सूखा भोजन मुश्किलसे मिलता है। भारतके बहुतसे किसान तो ऐसे मरते हैं, जिन्हें अपने जीवन-भर (अपने घरमें) कभी भी भरपेट भोजन नहीं नसीब हुआ। किसानोंकी दशा दिन-प्रति-दिन गिर रही है, इसलिए देशके प्रत्येक शुभचिन्तकका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह किसानोंके उद्धारक प्रयत्न करे।

एकला

१—नभमां ऊगे छे नवलख तारला
अगणित सिंधु-तरंग
डाले-डाले वनमां फूलड़ा
माले-माले छे छंद
शाने रे लागे तोये एकला!

२—स्मृति रे अंतर मारे लाख छे
आशा केरो न पार
पड़े रे हैयुं ज्यारे एकलुं
त्यारे संग देनार
तोये रे लागे आजे एकला!

३—ऊभी रे धरणी मारी पासमां
ऊपर आभ अपार
वायु रे नित्ये वींटी रे' मने
आखुं विश्व विराट
नाना रे हैया ने लागे एकला!

४—कोई रे आवी कोई वही गयुं
मारे अंतरने द्वार
कोई रे गाई मंगु रही गयुं
छायो ऊरमा सुनकार
एवुं रे लागे आजे एकला!

अकेलापन

१—आकाशमें नौ लाख तारे उग आये हैं और सिन्धुमें अगणित तरंगें। वनकी डाली-डालीमें फूल फूट रहे हैं और नीड़-नीड़में छन्द।

अरे, तो भी मुझे अकेलापन क्यों मालूम हो रहा है!

२—मेरे अन्तरमें लाख-लाख स्मृतियाँ जग रही हैं और आशाका तो कोई पार ही नहीं। हृदय जब अकेला पड़ता है, तो ये सब मेरा साथ देनेको मौजूद हैं।

अरे, तो भी आज अकेलापन लग रहा है!

३—मेरे पास सुविस्तृत पृथ्वी खड़ी है और ऊपर अपार आकाश फैला है। वायु मुझसे नित्य ही लिपटी रहती है और सामने विराट विश्व पड़ा है।

अरे, तो भी मेरे नन्हें-से हृदयको अकेलापन लग रहा है!

४—मेरे अन्तरके द्वारपर कोई आया और लौट गया; कोई गाकर मूक हो गया और मेरे हृदयमें शून्यता छा गई।

अरे, मुझे आज ऐसा अकेलापन लग रहा है!

—प्रह्लाद पारीख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरा या खोटा ?

श्री हरदयाल 'मौजी'

सुदर्शनका पिता गुज़र गया, केवल वह और उसकी मा रह गई। सुदर्शनकी अवस्था इस समय सोलह सालकी थी; किन्तु वह किसी काम-काजमें नहीं पड़ा था। उसके पिताने, जिसे फ़ौजसे पेंशन मिलती थी, इस बातकी परवा ही नहीं की कि वह कुछ सीखे। वास्तवमें उसका इरादा बेटेको भी फ़ौजमें दाखिल करानेका था। लिहाजा उसने दो बातोंका ही ध्यान रखा था—एक यह कि सुदर्शन बुरी आदतों या कुसंगतमें न पड़ने पाये; दूसरी यह कि वह फ़ौजके लायक़ अच्छा तन्दुरुस्त जवान बने। दोनों बातें सुदर्शनमें पूरी हुईं। पिताकी मृत्युके समय वह एक सुशील, सुडौल और हृष्ट-पुष्ट नवयुवक था।

सुदर्शन और उसकी माके सामने अब गुज़र-बसरका सवाल उपस्थित हुआ। कुछ दिन तो संचित धनसे ही निर्वाह करते रहे, फिर वह वक्त भी आ गया, जब कि गुज़र-बसरके लिए सुदर्शनको कुछ करना ज़रूरी हो गया। इस बारेमें उसे कुछ सोचना न था, क्योंकि पिताका जो इरादा था, वही उसका था। उसने मासे परामर्श किया कि कौन दिन फ़ौजमें भर्तीके लिए जाना शुभ होगा; किन्तु उसकी मा, जो शायद पतिके जीवित रहनेपर इस प्रस्तावका विरोध न करती, अब फ़ौजका नाम सुनते ही सहम गई। उसने नीचेसे ऊपर तक सुदर्शनको एक बार देखा और कहा—"बेटा, दुनियामें मेरे लिए तुम्हें छोड़कर और है क्या? तुम्हींको देखकर मैं दिन काटती हूँ। तुम्हीं इन आँखोंसे अलग होनेको कहते हो? बोलो, मैं ज़िन्दा रहूँगी?"

सुदर्शनकी कल्पनामें भी यह बात न थी कि उसकी मा उसे रोकेगी। उसके फ़ौजमें जानेकी बात बहुत दिनों पहलेसे होती रही थी, कभी उसकी माने विरोध नहीं किया था। अतः बचपनसे ही सुदर्शनके जीमें फ़ौजी बननेका चाव भर गया था। इसी आशामें उसने बड़े शौक़से अपने शरीरको तरह-तरहके व्यायामोंसे बढ़ाया था; किन्तु जिस बातके लिए वह इतना उत्सुक था, उसका आज इस प्रकार विरोध होते देखकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ रह गया। माके शब्दोंपर उसे करुणा आई और अफ़सोस भी हुआ। कुछ देर सोचनेके बाद नीची निगाह किये वह बोला—"तब क्या करूँ?"

"बेटा, यहीं कहीं दो रोटीका हीला लगा लो; पर अपनी इस माको आखिरी दिनोंमें तरसनेको मत छोड़ो।" बुढ़ियाने उत्तर दिया।

सुदर्शनने उत्तरपर ध्यान भी न दिया और एकाएक कह दिया—"बहुत अच्छा।" उसे स्मरण हो आया कि एक बार उसके पिताने उससे कहा था—"बेटा, माको दुःखी मत करना।" उसी बातका खयाल करके उसने माका तनिक भी विरोध करना अच्छा न समझा।

× × ×

एक सुन्दर और सुघड़ नौजवान होनेके कारण सुदर्शनको फौरन ही रमेश बाबूके दफ्तरमें चपरासीकी नौकरी मिल गई। उसने बड़ी मुस्तैदीसे काम किया। व्यवहारमें भी वह बहुत सीधा और सच्चा था। दूध पीने और डंड करनेके सिवा अब तक उसने और कुछ सीखा ही न था। उसके काममें मालिकको कम शिकायतका मौका मिलता था। यदि कभी कोई गलती होती भी थी, तो उसे वह स्वयं स्वीकार कर लेता था। रमेश बाबू भी उससे खुश रहने लगे, और सुदर्शन भी अपनी इस नौकरीपर सन्तोष करके आनन्दसे दिन बिताने लगा। आशा थी कि उसका जीवन यों ही पार हो जायगा।

किन्तु मनुष्यसे भूल हो जाना स्वाभाविक ही है, और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अन्य लोग एक बातको भूल समझते हैं; किन्तु जिसपर भूलका आरोप किया जाता है, वह उसे भूल नहीं समझता। ऐसे समय या तो दोनों पक्ष उस भूलकी उपेक्षा कर जाते हैं, या किसी एकसे बलपूर्वक भूल स्वीकार कराई जाती है, अन्यथा दोनोंमें तीव्र मतभेद खड़ा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। सुदर्शनसे एक ऐसी ही भूल हो गई। उसकी मा कई दिनसे अस्वस्थ थी। एक दिन तबीयत बहुत ही खराब हो गई, जिसके कारण उसे रुक जाना पड़ा। जब अगले दिन वह दफ्तर गया, तो उससे ग़ैरहाज़िरीकी सफ़ाई माँगी गई। सुदर्शनने जो बात थी, बतला दी। बाबूने आपत्ति की कि उसने न आनेकी सूचना फौरन ही क्यों नहीं दी और कहा कि इससे काममें बहुत हर्ज हुआ। सुदर्शनने बतलाया कि उसकी मा अकेली थी और वह उसे तनिक देरको भी नहीं छोड़ सकता था। किन्तु रमेशने कहा—"अच्छा, आइन्दा कुछ भी हो, तुम्हें अपने न आनेकी खबर उसी वक्त देनी होगी।"

"लेकिन कल जैसे मौकोंपर मैं हरगिज़ खबर न दे सकूँगा।"—सुदर्शनने दृढ़तापूर्वक कहा।

"नहीं, तुम्हें देनी होगी।"—रमेशने आतंकपूर्ण ढंगसे कहा।

"नहीं, मैं नहीं दे सकूँगा।"—सुदर्शनने निडर होकर उत्तर दिया।

सुदर्शनकी यह हिम्मत देखकर रमेश बाबू गुस्सेसे लालोलाल हो गये और त्यौरी चढ़ाकर बोले—"अच्छा, बक-बक मत कर, पाजी कहींका!"

सुदर्शनने कभी अपने प्रति ऐसे शब्द न सुने थे। वह अपनेको निरपराध भी समझता था। बमुश्किल क्रोधको रोककर बोला—"बाबूजी, ज़बान सम्हालकर···"

"हूँ, हमें ज़बान सम्हालनेका उपदेश!" सुदर्शनकी ओर सिर हिलाते हुए रमेश बाबूने कहा—"अच्छा, ऐसे उपदेशकोंकी हमें ज़रूरत नहीं।"

"तो मुझे भी ऐसी नौकरीकी ज़रूरत नहीं।"—सुदर्शनने बाबूको सलाम करते हुए कहा और घर चला आया।

सुदर्शन आज दफ्तर पहुँचा था, उसे आशा थी कि उसकी माकी बीमारीपर रमेश बाबू उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करेंगे; किन्तु हुआ बिलकुल विपरीत। जाते ही उसके सिर एक ऐसा क़सूर मढ़ा गया, जिसे स्वीकार करना उस सरल, सहृदय नवयुवककी समझके बाहर था। उसे यह सोचकर आश्चर्य होता था, क्रोध आता था और फिर दुःख होता था कि किस प्रकार ऐसी नाजुक हालतमें अपनी बूढ़ी माको ज़रा देरके लिए भी अकेली छोड़ना उचित था। इसपर भी ऐसे अपशब्द सुननेको मिले, जिनका उसे अनुमान भी न था। सुदर्शन जैसे 'सीधे-सच्चे' नौकरके लिए अपने मालिकको खुश करना जितना आसान था, उतना ही उसके इस व्यवहारको सहन करना कठिन भी था। वह आकर अपनी माके चारपाईके पैताने बैठ गया और सोचने लगा, उसका क्या अपराध था, क्यों उसके साथ ऐसा व्यवहार किया गया! सोचते-सोचते उसका क्षोभ प्रबल हो उठा, गात काँपने लगा और हुड़कियाँ बँध गईं। उसकी मा, जो सो-सी रही थी, घबड़ाकर उठी और सुदर्शनसे पूछने लगी—"बेटा! बेटा! क्या बात है?"

सुदर्शनने सब हाल कह सुनाया और अन्तमें वह इस अपमानका बोझ माके सिर डालना ही चाहता था, क्योंकि उसीने तो उसे फौजमें जानेसे रोका था, कि बुढ़िया कह उठी: "बेटा, बहुत अच्छा किया, दो रोटीके पीछे कहीं इज्ज़त देना थोड़े ही क़बूल किया है।"

माकी यह सहानुभूति देखकर सुदर्शनका सारा क्षोभ शान्त हो गया और उसकी नब्ज़ पकड़कर बोला—"अब तुम्हारी तबीयत कैसी है, मा!"

× × ×

सुदर्शनने कई जगह नौकरी की; किन्तु कहीं न ठहर सका। किसी-न-किसी बातपर मालिकसे उसकी झड़प हो जाती और वह अलग कर दिया जाता, अथवा उसे अलग होना पड़ता। किन्तु मालिकोंका उसके साथ यह व्यवहार कोई असाधारण न था। वह अनेक व्यक्तियोंको उन्हीं स्थानोंपर नौकरी करते देखता और आश्चर्य करता अपनी अयोग्यता एवं उनकी योग्यतापर। कभी वह अपनेको उद्दण्ड कहकर अफ़सोस करने लगता और कभी उन्हें कायर समझकर क्षुब्ध हो उठता। दूसरे लोग उससे कहते—"भई, ज़माना ही ऐसा है, सब सहन करना पड़ता है। आखिर गुज़र तो करनी ही है,"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वह खिन्न होकर उत्तर देता—"क्यों सहते हो ? किसीके बापका खाते हो ? काम करते हो, पाते हो। 'गुज़र करनी हैं', गुज़र क्या ? यह भी कोई ज़िन्दगी है ? कल मरते, आज मर जाओ....." फलतः नौकर-मालिककी दुनियामें सुदर्शन बग़ावतके लिए मशहूर हो गया। मालिक लोग उसके नामसे घबड़ाने लगे। एक दिन वह भी आया कि उसे नौकरी मिलना असम्भव ही हो गया।

बेकार बैठे-बैठे सुदर्शनको कई माह बीत गये। कोई रोज़गार भी न कर सकता था, क्योंकि पैसा पास न था। निदान कभी उधार लेकर, कभी फ़ाके करके दिन गुजरने लगे। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, वापसीकी आशा न देखकर उधार देनेवाले भी हाथ खींचते गये। आपत्ति बढ़ती गई। आपन्न होनेपर मनुष्यकी मनोवृत्ति बदलने लगती है; सहिष्णुता, उदारता एवं प्रेम-भावके स्थानमें चिड़चिड़ापन, अविश्वास और ग्लानिका प्राबल्य होने लगता है। फलस्वरूप अनेक व्यक्तियोंसे उसका झगड़ा होने लगता है, अनेकोंसे वह तटस्थ होने लगता है और अनेकोंसे विना ज़रूरत आशंका और घृणा करने लगता है। इसके अतिरिक्त यदि ईमानदारीमें बहुत दृढ़ निष्ठा न हुई, तो मनुष्य बेईमानी और झूठकी ओर भी उत्तरोत्तर झुकता जाता है। इस प्रकार नैतिक पतन आपत्तिका सगा छोटा भाई है। सुदर्शन भी आखिर मनुष्य ही था—बेईमानी और झूठको छोड़कर, क्योंकि इनका वह शत्रु था—शेष दोषोंसे वह भी न बच सका। शहरमें अकसर लोगोंसे उसका झगड़ा होने लगा। अपने अतिरिक्त प्रायः सभी लोगोंमें उसे कायरता, बेईमानी और झूठकी कुछ-न-कुछ बू आने लगी। जो उसके मेली-जोली थे, उन तकसे वह किनारा कसने लगा। बातचीतमें लगभग सभी व्यक्तियोंकी निन्दा उसके मुँहपर आने लगी। परिणाम यह हुआ कि वह नगरमें अप्रिय ही नहीं होता गया, वरन् लोगोंकी नज़रोंमें ग़ैरज़िम्मेदार और अवारा-जैसा चुभने लगा। सरकश, बेकार, नादेहन्द झगड़ालू आदि नामोंसे लोग उसे बदनाम करने लगे।

×

सुदर्शन घुटनोंमें सिर दिये दीवारके सहारे बैठा था। पासमें उसकी मा एक गठरीकी तरह सिमिटी हुई ज़मीनपर लेटी थी। दोनोंको कई फ़ाक़े हो चुके थे। दोनों एक दूसरेकी ओर देखते थे और मुँह छिपाकर आँसू पोंछ लेते थे। वे अपनी-अपनी भूखसे व्याकुल न थे, उन्हें रोना आता था एक दूसरेको देखकर। सुदर्शन सोचता था—'मा भूखी मर रही है और मैं कुछ नहीं कर सकता ! वाह ! मेरी जवानी !' उधर उसकी मा मन-ही-मन कहती—'एक समय था, जब एक दिनको भी दूधका नागा न हुआ और आज एक टुकड़ा भी नसीब नहीं ! हाय री तक़दीर !" दोनों खामोश थे बहुत देरसे। आखिर बुढ़िया बाएँ हाथका सहारा लेकर बैठ गई और काँखते-काँखते दाहना हाथ सुदर्शनके सिरपर रखकर बोली—"बेटा, फिर अब क्या करोगे ? या... यों ही.....घुलना है।"—उसका गला भर आया। उसने दोनों हाथ फैलाये और सुदर्शनसे चिपट गई। खामोश सुदर्शन भी खामोश था—किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा ! उसकी आँखोंमें अब आँसू भी न थे ! शायद उन्हें भी निठुर चिन्ता चाट गई थी। किन्तु इसी बीचमें बुढ़ियाके दुःखकी बाढ़ गलेसे बढ़कर आँखोंसे फूट निकली और वह आँसुओंके घूँट भर-भरकर चिल्लाने लगी—"मेरे बेटा ! सुदर्शन बेटा ! कुछ करो; पर भूखे मत मरो।"

सुदर्शन जो अब तक स्तम्भित-सा हुआ था, कुछ सोचने-समझनेमें लगा था, बुढ़ियाका चिल्लाना सुनकर मानो नींदसे जगा और उसके गलेमें दोनों हाथ डालकर एक अपूर्व उत्साहके साथ कड़ककर बोला—"मा ! मा ! मैं सच कहता हूँ, अब भूखा नहीं मरूँगा, मेरी मा ! अच्छी मा ! रो मत, मैं कहता हूँ, अब भूखा नहीं मरूँगा।" वह बार-बार इन शब्दोंको यथाशक्ति आश्वासनके साथ बुढ़ियाके कानोंमें डाल-डालकर उसे तसल्ली देने लगा। उसका फीका चेहरा तेजसे चमक उठा और आँखोंमें सुर्खी छा गई। वह किसी दृढ़संकल्पकी साक्षात मूर्ति-सा मालूम होता था।

× × × × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन बीता, रात बीती, पौ फटनेको थीं ; किन्तु सुदर्शन घर न लौटा। सारा समय उसकी माको रोते हो गया, विभिन्न आशंकाओंने उसे त्रस्त कर दिया। उसकी आँखें दरवाज़ेकी ओर देखते-देखते थक गईं। हारकर वह कमरेके एक कोनेमें मुँह लपेटकर पड़ रही और 'सुदर्शन ! सुदर्शन !' पुकारकर अपने दुर्भाग्यपर आँसू बहाने लगी। इतनेमें सहसा 'मा'के शब्दसे चौंक पड़ी, सिर उठाकर देखा, सामने सुदर्शन खड़ा है—"ऐं, सुदर्शन ! बेटा, अब तक कहाँ रहे ? दिन-रात रोते हो गया।" एकाएक बुढ़ियाने बैठकर कहा—जैसे वह मरकर जी उठी हो।

सुदर्शनने कोई उत्तर न दिया। उसने एक पोटली बग़लसे निकाली और बुढ़ियाके आगे रख दी, और खुद सामने बैठ गया।

"यह क्या है, बेटा !"—हाथोंसे टटोलते हुए विस्मयके स्वरसे बुढ़िया बोली।

"खोलकर देखो।"—सुदर्शनने धीरेसे कहा।

"बताओ तो।"—बुढ़ियाने पोटलीकी गाँठपर हाथ रखते हुए कहा और उसे खोलने लगी। जब उसका हाथ कई तहोंके नीचे पहुँचा, तो चौंककर बोली—"रुपये ! बेटा !'

"हाँ, और नोट भी हैं।"—सुदर्शन बोला।

"यह कैसे ?" बुढ़ियाने पूछा।

सुदर्शन चुप था। कुछ देर बुढ़िया उत्तरकी प्रतीक्षामें उसकी ओर देखती रही ; किन्तु फिर बोली—"कैसे मिले, बेटा ?"

"अपने बलसे।"—सुदर्शनने प्रश्नकी उपेक्षा करते हुए धीरेसे कहा।

"अपने बलसे !—मेरी समझमें तुम्हारी बात नहीं आती। बताओ, कैसे मिले ?"

"हाँ, अपने बलसे, मा ! इन हाथोंके बलसे। सच कहता हूँ।"—कुछ उत्तेजित-सा होकर सुदर्शन बोला ; किन्तु बुढ़िया—कुछ खुश और कुछ परेशान—उसके मुँहकी ओर देख रही थी। आखिर उसकी बेचैनी दूर करनेके लिए सुदर्शनने कहा—"एक महाजनसे छीनकर लाया हूँ, समझी, मा !" और प्यारसे उसकी ठोढ़ी सहलाने लगा।

किन्तु बुढ़िया और भी सहम गई। कुछ खामोशीके बाद वह बोली—"छीनकर ! यह तो अच्छा नहीं किया, बेटा !"

"क्यों ? जानपर खेलकर लाया हूँ, यों ही नहीं।"—सुदर्शनने कुछ रोषपूर्वक कहा।

बुढ़िया शान्त हो गई ; किन्तु कुछ देर बाद फिर बेचैन-सी होकर धीरेसे बोली—"तो किसीको मारा भी ?"

"कह नहीं सकता। ताँगेपर साहूके साथ तीन आदमी थे और एक बन्दूक भी। मैंने हमला किया और उनपर हावी हुआ। दो आदमी बेहोश हो गये थे। नहीं मालूम, मरे या जिये।"

"बेटा, चुप हो।"—बुढ़ियाने रोककर कहा और लपककर उसे गलेसे लगा लिया—एक ओर बेटेकी वीरतासे गद्गद, दूसरी ओर उसके परिणामको सोचकर भयभीत। कुछ देर दोनों खामोश रहे ; किन्तु बुढ़ियाने फिर कुछ सुदर्शनके कानमें कहा।

सुदर्शन तब तिरस्कारसे कुछ हँसता-सा बोला—"पुलिस ! ओह ! अधिक-से-अधिक फाँसी होगी। मरना तो एक दिन है ही ; पर जब तक जीयें, तब तक तो अच्छी तरह जीयें।"

बुढ़ियाने उसके सिरपर हाथ फेरकर कहा—"उठ, एक रोटी रखी है, खा ले।"

× × ×

आर्थिक संकटसे सुदर्शन मुक्त हो चुका था। कुछ ज़रूरी न था कि वह कोई काम करे। फिर भी लोक-दिखावेके लिए उसने पान-तम्बाकूकी एक दूकान खोल ली और साधारण खर्चके साथ वह शान्तिपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगा। अब उसका न किसीसे झगड़ा था, न द्वेष। उसका स्वभाव, जो सूखकर कुछ कर्कश हो गया था, फिर रसीला बन गया। दिन-पर-दिन अधिक लोगोंसे उसका प्रेम-व्यवहार स्थापित होता गया। लोगोंकी भी उसके प्रति राय बदलती गई। चूँकि सुदर्शन स्वयं संकट झेल चुका था, अतः संकटस्थ लोगोंके प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सदा उदार रहता था। ऐसे लोगोंकी वह हमेशा यथाशक्ति सहायता करता और करनेको तैयार रहता। अवकाश काफी होनेसे उसे आम जनताकी भलाईके कामोंमें भी भाग लेनेका खूब मौक़ा मिलता था। इससे कुछ ही दिनोंमें लोग उसका मान करने लगे और उसका प्रभाव मानने लगे। धीरे-धीरे जनतापर उसका प्रभाव इतना बढ़ा कि बड़े-बड़े लोग भी, जो उसे निरादृत करके अपने दरवाज़ेसे बाहर निकाल चुके थे, उसे अपने यहाँ आनेको निमन्त्रित करने लगे। गरज उन्हीं लोगोंमें जो उसे गुण्डा और बदमाश कहकर बदनाम करते थे, उसकी प्रशंसाके पुल बँधने लगे।

किन्तु सुदर्शनका जो आचार-व्यवहार अब था, उसे उसमें कोई नई बात न मालूम होती थी। वह समझता था कि न मेरी तबीयतमें कोई तबदीली हुई है और न मेरे विचारोंमें। किन्तु उसे आश्चर्य होता था अपने प्रति उन्हीं लोगोंकी अपूर्व श्रद्धा देखकर, जो उसे पहले घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। यही नहीं, जब वह अपने कानोंसे उन लोगों द्वारा अपनी प्रशंसा सुनता था,—'सुदर्शन एक बदमाश था और अब कैसा भला आदमी बन गया है',—तो उसके हृदयमें सुई-सी चुभ जाती थी। उसे यह प्रशंसा नहीं, निरा अपमान मालूम होता था। भले ही लोग उसे भला न कहते, उसे सह्य होता; किन्तु वह यह सुनना नहीं चाहता कि कभी वह दुराचारी था। उसे क्रोध आता था और अफ़सोस भी होता था—लोगोंकी नासमझीपर। 'क्या किसी भी तरह इस भ्रमको दूर कर सकता है?'—बेचैन होकर वह सोचने लगा। 'अवश्य किसी-न-किसी दिन इस ताजको मैं उतारकर फेंकूँगा, जिसमें मैला भरा हुआ है।'—उसका संकल्प होने लगा।

सुदर्शनकी मा मर चुकी थी। विवाह उसने किया ही नहीं था। वह अकेला था। उनका सब समय तथा तन, मन और धन सार्वजनिक कार्यों ही में खर्च होने लगा। क्योंकि अब ले-देकर सिर्फ यही उसका जीवन रह गया था। किन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गये और लोगोंमें उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती गई, वैसे-ही-वैसे लोगोंके मुँहसे उसे अपने जीवनके आदि और अन्तका विरोधाभास कटुतर जान पड़ने लगा और उतना ही अधिक वह इस विरोधाभासको दूर करनेके लिए आतुर रहने लगा।

एक दिन कोई सार्वजनिक उत्सव था, जिसमें नगरके छोटे-बड़े सभी लोग जमा थे। भाषण हो रहे थे। सुदर्शन भी वहाँ मौजूद था। उसके भी बोलनेका समय आया। लोग बड़ी उत्सुकतासे उसकी ओर दत्तचित्त हुए। सुदर्शन खड़ा हुआ और जनताकी ओर देखने लगा—कुछ दया और कुछ क्रोधसे, कुछ प्रेम और कुछ ग्लानिसे। फिर उसने बोलना आरम्भ किया, किन्तु नियत विषयको छोड़कर अपनी जीवन-कथापर। लोग कुछ आश्चर्यान्वित-से ध्यानपूर्वक सुनने लगे। सुदर्शनने सब कहानी कह डाली; किन्तु अन्तमें जनताने देखा कि उसके हाथोंमें हथकड़ियाँ थीं, जिन्हें हर्षसे ऊपर उठा-उठाकर वह कह रहा था—"भाइयो, जैसा गुण्डा मैं पहले था, सो अब हूँ; जैसा बदमाश मैं पहले था, सो अब हूँ; जैसा डाकू पहले था, सो अब हूँ—"

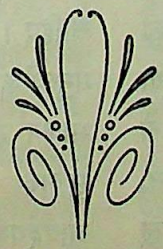

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध देनेवाली गायोंको खिलाना

श्री कुँवर सुरेन्द्रसिंह 'इन्द्र', आई० डी० डी०

हमने जैसा अपना जीवन अनियमित बना रखा है, उससे भी कहीं अधिक अपने पशु-समाजका। हमारे भोजन या स्नानका, व्यायाम या आरामका, सोने या जागनेका किसीका भी न तो नियमित समय ही है और न निश्चित परिमाण ही। जब जीमें आया, खा लिया। इससे कोई मतलब नहीं कि कितना भोजन करना है। जब तबीयत हुई, क़सरत कर ली, और मन न हुआ तो कोई हरज़ नहीं। हमने ठीक इसी ढाँचेमें अपने पशुओंको भी ढाल दिया है। अमेरिका आदि पाश्चात्य देशोंमें सब काम संयम-नियमसे होते हैं। यहाँ ठीक उसके खिलाफ हर बात बेतुकी है, हर बातमें लबड़धोंधों है। जैसे हम यूरोपियनोंकी बुराईयों एवं फ़ैशनोंकी नकलमें तुरन्त ही आगे बढ़ जाते हैं, वैसे ही यदि उनकी अन्य उपयोगी बातोंकी नक़ल करते, तो आज हमारा देश भी हर बातमें बढ़ा हुआ होता।

देशीय पशुपालक यदि पशुओंको खिलायेंगे तो अनापशनाप, और यदि न खिलायेंगे तो एकदम अनशन! खोज की जाय, तो कठिनतासे ५ प्रतिशत ऐसे लोग होंगे, जिन्हें उचित-अनुचित पशु-भोजनका ठीक ज्ञान हो। यदि जानवरोंको खाना ज्यादा दिया जाय, तो वह उन्हें मोटा कर देगा, और यदि ज़रूरतसे कम मिला, तो बेचारोंको अपना जीवन क़ायम रखना कठिन-सा हो जाता है। अतः इन दोनों दशाओंमें हम उनसे कोई लाभ न उठाकर हानि ही उठाते हैं। यदि यथार्थमें हम अपने पशुओंसे अन्य देशोंके लोगोंकी तरह लाभ उठानेका विचार रखते हैं, तो हमें भी अवश्य ही कुछ कष्ट तथा परिश्रम करना पड़ेगा। वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी, वह अब छोड़नी पड़ेगी; पशुओंके प्रबन्ध, भोजन, बीमारियों और उनके हरएक प्रकारके सुखका ख़याल रखना अनिवार्य होगा।

हम संक्षेपमें पशुओंके भोजनपर कुछ वैज्ञानिक रीतियाँ लिखेंगे। उनके अनुकूल पहलेसे पशुओं तथा पशुपालकों दोनोंका ही उपकार हो सकता है। जगह-जगह इस बातके तजुर्बे किये गये हैं कि किन पशुओंको कितना और कैसा भोजन दिया जाय, ताकि उनसे हम लाभ उठा सकें। चाहे मनुष्य हो या पशु भोजनसे केवल दो ही लाभ होते हैं; इसीलिए भोजनको विशेषज्ञोंने दो भागोंमें विभाजित कर दिया है:—

(१) वह भोजन, जिससे शरीरकी वर्तमान स्वस्थ दशा बिना किसी प्रकारका अन्तर आये हुए (बग़ैर वज़न आदि घटे हुए) बराबर एक-सी क़ायम रहे। इसे मेन्टीनेन्स राशन (Maintenance ration) कहते हैं।

(२) वह भोजन, जो शक्तिकी छीज पूरी करे। यानी यदि पशुसे कोई शारीरिक काम लेना है (जैसे दूध, मांस या जुताई वग़ैरह), तो उस कामके करनेमें जो शारीरिक शक्ति व्यय होगी, उसकी पुनः पूर्ति करनेवाला भोजन।

अब, यदि हम अपने पशुसे कोई भी परिश्रमका कार्य—जैसे दूध या वनज खिंचवाना आदि—लेना चाहते हैं, तो हमें यह लाज़िमी होगा कि पशुको पहली क़िस्मके भोजनके साथ-साथ दूसरी क़िस्मका भोजन भी दें, ताकि उस विशेष कार्यमें व्यय हुई शक्तिको वह पुनः प्राप्त कर सके।

पशुओंके भोजनमें कई वस्तुएँ अवश्य होनी चाहिए। वे केवल पशुओंके लिए ही नहीं, अपितु मनुष्योंके लिए भी परमावश्यक हैं। बिना उनके भोजन ठीक हो ही नहीं सकता। शरीर-यन्त्रको सुचारु रूपसे संचालित रखनेके लिए वे बड़ी ही आवश्यक हैं। वे निम्न-लिखित वस्तुएँ हैं:—

(१) पोषकतत्त्व (Protien)—यह शरीरपोषक वस्तु है। इससे मांस, ख़ून आदि बनता है। शरीरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटी-फूटी हड्डियोंके जोड़नेमें यह विशेष सहायक है। इनके अतिरिक्त इससे शरीरमें भी चर्बी (Fat) और शक्ति (Energy) भी पैदा होती है। यही कारण है कि यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिकामें वे पदार्थ जिनमें यह तत्त्व अधिक होता है, अधिक मूल्यमें बिकते हैं।

(२) कारबोहाइड्रेड—यह मुख्यतया स्टार्च (Starch) शक्कर और मोटे रेशोंमें (Crude fibre) होता है। इनसे शारीरिक उष्णता, चर्बी और शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है।

(३) चर्बी—इसका भी भोजनमें वही काम है, जो कारबोहाइड्रेट्सका है। मगर इतना अवश्य है कि इसका थोड़ा-सा भाग ही कारबोहाइड्रेटके कई भागोंका काम करता है। यानी इसका एक पाव कारबोहाइ-ड्रेटके सवा दो सेरके बराबर होगा।

(४) खार (Minerals)—यह कई प्रकारके होते हैं। खानेके पदार्थोंमें इनका होना आवश्यक है। इनसे पाचनक्रियामें, हड्डियोंके बननेमें, शरीर-संगठन तथा अन्य शारीरिक कार्योंमें सहायता मिलती है। अतः जानवरोंके भोजनमें इनका होना ज़रूरी है। इनके अभावमें शरीरका संचित खार व्यय होने लगेगा और नतीजा यह होगा कि पशुकी दशा गिरने लगेगी। और भी अनेकों उपद्रव इनके अभावमें पैदा हो जाते हैं।

(५) जल—शरीरमें इसके बग़ैर तो कुछ हो ही नहीं सकता। समस्त शरीरमें भोजन पहुँचानेवाला पानी ही है। यह खूनको तरल (Fluid) बनाकर इस क़ाबिल बना देता है कि वह समस्त शरीरमें चक्कर लगा सके। कुछ वस्तुएँ भोजनमें ऐसी होती हैं जिनका शरीरमें मिलनेके पहले पानीमें घोला जाना ज़रूरी होता है। शरीरकी गन्दी चीज़ें पानीमें घुल-मिलकर पेशाब, पसीना वग़ैरहके रूपमें बाहर निकलती हैं। भोजनके बगैर जीवन कुछ दिन चल सकता है, किन्तु बिना पानीके नहीं।

उपर्युक्त वस्तुओंके अतिरिक्त एक वस्तुका होना और भी आवश्यक है। उनका अभी थोड़े ही वर्ष हुए पता चला है। ये विटामिन्स (Vitamins) के नामसे प्रसिद्ध हैं। जीवन और स्वास्थ्य बहुत अंशोंमें इन्हींपर ही निर्भर है। अमेरिकामें विटामिन्सकी खोज की गई। रिसर्च (चूहों, मुर्गियों आदिपर की हुई) की गई और कुछ नतीजे भी प्राप्त हुए। मगर उनका व्यवहार अन्य पशुओंपर नहीं किया जा सकता जब तक कि उन ख़ास पशुओंपर रिसर्च न हो। इसलिए डेरी-पशुओंके ऐसे भोजनके विषयमें, जिसमें विटामिनका विशेष ख़याल रखा जाता हो, कम-से-कम किसी क़िस्मकी सलाह नहीं ली जा सकती। इसपर तभी मुक़म्मिल राय दी जायगी, जब रिसर्च पूरी तौरसे हो लेगी।

भोजनको डेरी-विशेषज्ञोंने दो भागोंमें विभाजित कर दिया है। ऐसा कर देनेसे पशुओंके खिलानेकी असुविधाएँ जाती रही हैं। वे दोनों भाग हैं—(१) प्रोटिन (Protein) और (२) स्टार्च ईक्विवलेन्ट (Starch Equivalent)।

प्रत्येक भोजनमें इन दोनोंका किसी-न-किसी अंशोंमें होना आवश्यक है। पशु-दशाको एक-सी बनाये रखनेके लिए इनकी किन्हीं अंशोंमें ज़रूरत होती ही है। यदि जानवरोंसे कुछ विशेष कार्य लेना है (जैसे दूध, मांस वग़ैरह), तो इनकी विशेष अंशोंमें आवश्यकता होती है। रहा यह प्रश्न कि प्रोटीन (पोषकतत्त्व) तथा स्टार्च ईक्विवलेन्ट किस मिक़दारमें हों, यह जानवरके कामपर निर्भर करता है। यदि काम हल्का है, तो कम मिक़दारमें और भारी है तो बड़ीमें। पंजाब-सरकारके मवेशी-विशेषज्ञ मिस्टर ब्रानफोर्डने प्रयोग करके पता लगाया है कि हिन्दुस्तानी प्रचलित भोजनोंमें, जो यहाँके जानवरोंको दिया जाता है, किन-किन अंशोंमें पोषकतत्त्व और स्टार्च ईक्विवलेन्ट मौजूद रहते हैं। उन्होंने एक सेरपर यह हिसाब लगाया है। ब्रानफोर्ड साहबके प्रयोगोंका फल यह है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	पोषकतत्त्व (Protein) एक सेरमें— पौंड	स्टार्च ईक्विवलेन्ट (Starch equivalent) एक सेरमें— पौंड
सूखा चारा :—		
ज्वारकी कर्बी	.०३	.६४
ओट (Oat)	.०६	.७४
घास	.०४	.६७
गेहूंका भूसा	.००३	.९२
ओटका भूसा	.०२	.६९
जौका भूसा	.०१२	.७
चावलका भूसा	.०१	.४६
हरा चारा :—		
हरी ज्वार	.०१	.३०७
हरे गेहूं	.०४	.३७५
हरे ओट	.०२	.१८
हरा चारा	.०४	.३५
हरी Cowpea	.३४	.२
हरी लूसर्न	.०४	.२
हरी शलजम	.००८	.१२
दाने :—		
जौ	.१६	१.८
ओट	.१७	१.३
मटर	.३०	१.२८
तिलकी खली	.५	१.४
बिनौलेकी खली	.३	.८
गेहूं	.१६	१.८
गेहूंका चोकर	.२	१.२५
बिनौला (अमेरिकन)	.२५	१.२१
बिनौला (देशी)	.१७	१.००
चावल	.०९	१.५४

विभिन्न वजनोंकी गायोंको जितने भोजनकी आवश्यकता होगी, वह इस प्रकार है :—

गायोंका वजन	पोषकतत्त्व Protein १ सेरमें पौंड	स्टार्च ईक्विवलेन्ट १ सेरमें पौंड
औसत दर्जेकी साहीवाल गाय वजन ८०० पौंड	.४८	४.८
,, ,, हरयाना ,, ,, १००० पौंड	.६	६.०
बड़ी ,, ,, ,, १२०० पौंड	.७२	७.२

ऊपर बतलाये गये भोजनोंके अतिरिक्त प्रत्येक सेर दूध देनेके लिए पोषकतत्त्व (Protein) .१३ पौंड और स्टार्च ईक्विवलेन्ट (Starch Equivalent) .६ पौंड और देना चाहिए। अब ठीक-ठीक भोजन (Ration) का पता लगानेके लिए पाठक ऊपर दिये हुए चार्टोंसे हिसाब लगा सकते हैं। वह यह कि केवल दाना ही दाना न देना चाहिए। हालाँ कि ऐसा करनेसे भी पोषकतत्त्व और स्टार्च ईक्विवलेन्ट ठीक-ठीक तादादमें पशुको मिलेंगे, ताहम कुछ ऐसे खाने भी ज़रूरी है, जोकि तादाद (Bulky) बढ़ानेवाले हों (जैसे चारा, भूसा वगैरह)। इसलिए उचित है कि भलीभाँति दाना (Concentrats) और चारा (Roughages) का उचित मिश्रण करके पशुओंको दें। उदाहरणके लिए, मान लीजिए कि एक साहीवाल गायका औसत वज़न ८०० पौंड है, तो उसके लिए जो मेन्टेनेन्स राशन देना चाहिए, उसमें .४८ पौंड पोषकतत्त्व, ४.८ पौंड स्टार्च ईक्विवलेन्ट होना चाहिए। यदि वह गाय ८ सेर दूध देती है, तो उसको .४८ पौंड पोषकतत्त्व, ४.८ पौंड स्टार्च ईक्विवलेन्टके अलावा १.०४ पौंड पोषकतत्त्व और ४.८ पौंड स्टार्च ईक्विवलेन्ट और देना चाहिए, यानी कुल १.५२ पौंड पोषकतत्त्व और ९.६ पौंड स्टार्च ईक्विवलेन्ट देना चाहिए।

नीचे दिये गये राशनमेंसे हम जो चाहें पसन्द कर सकते हैं :—

	पोषकतत्त्व Protein पौंड	स्टार्च ईक्विवलेन्ट पौंड
कर्बी ज्वार ५ सेर	.१५	३.२०
हरे ओट १० सेर	.४	३.०
चने ३ सेर	१.०८	४.५
कुल	१.६३	१०.७

१००० पौंडवाली हरयाना गायके लिए मेन्टेनेन्स राशन पोषकतत्त्व .६ पौंड और स्टार्च ईक्विवलेन्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६·० पौंड होगा। यदि वह गाय ९ सेर दूध प्रतिदिन देती हो, तो इसके अलावा पोषकतत्व १·१७ पौंड और स्टार्च ईक्विवलेन्ट ५·४ पौंड और देना चाहिए। इस तरहसे कुल मिलाकर पोषकतत्त्व १·७७ पौंड और स्टार्च ईक्विवलेन्ट ११·४ पौंड चाहिए। अतः हम नीचेका खाना दे सकते हैं :—

		पोषकतत्त्व	स्टार्च ईक्विवलेन्ट
		पौंड	पौंड
गेहूंका भूसा	५ सेर	.०३	.७०
हरी लूसर्न	१० ,,	.४	२.०
घास	५ ,,	.३	४.०
ग्रोट	१ ,,	.१७	१.३
बिनौला	१ ,,	.२६	१.५६
चना	२ ,,	.७२	३.०
	कुल	१.८८	१२.५६

यदि एक हरयाना गाय जिसका वज़न १००० पौंड है और प्रतिदिन ४ सेर दूध देती है, तो उसके लिए मेन्टेनेन्स राशनमें पोषकतत्त्व ·६० पौंड और स्टार्च ईक्विवलेन्ट ६·० पौंड देना होगा। इसके अलावा पोषकतत्त्व ·५२ पौंड और स्टार्च ईक्विवलेन्ट ८·४ पौंड देना चाहिए। उसके लिए नीचेका राशन ठीक होगा।

		पोषकतत्त्व	स्टार्च ईक्विवलेन्ट
		पौंड	पौंड
जई सूखी (Oat hay)	१० सेर	.८	६.४
लूसर्न हरी	५ सेर	.२	१.०
चोकर	१ सेर	.२	१.०
	कुल	१·२	८·४

दुःख है कि पशुओंके बहुतसे प्रचलित खानोंका विश्लेषण नहीं किया गया है, अतः उनका उचित पोषकतत्त्व तथा स्टार्च ईक्विवलेन्ट नहीं दिया जा सकता। ऊपरके खानोंमें चनेको मटरकी जगह और संजी, मैथी, शफतालू लूसर्नकी जगहपर लिये गये हैं।

इन ऊपरके चार्टोंसे ज्ञात होगा कि गायोंकी शरीरिक स्थिति बनाये रखनेके लिए भूसा वगैरह पर्याप्त न होंगे। इसी हेतु केवल भूसा ही पानेवाले पशु दुबले होते हैं।

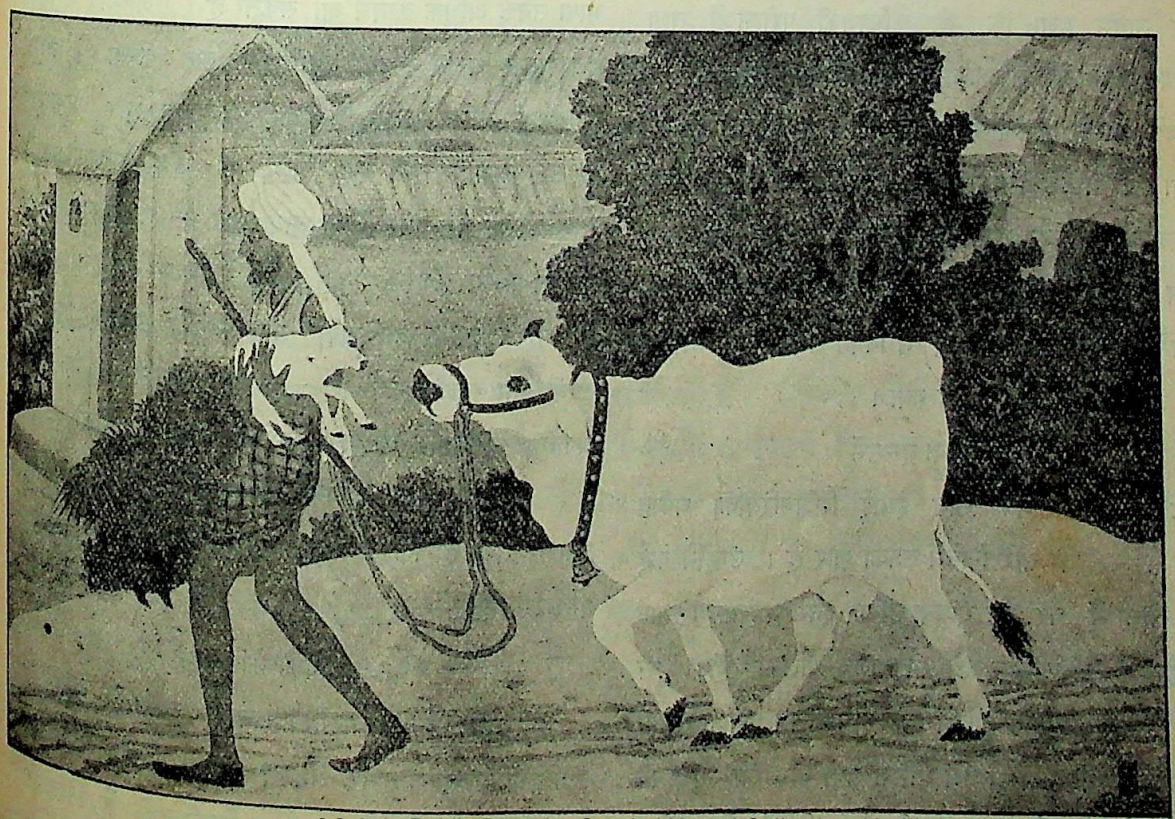

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-प्रचारके लिए एक नया क्षेत्र

श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ

दिल्लीसे कलिंगपोंगका फ़ासला लगभग बारह-तेरह सौ मीलका होगा। दिल्ली-कालेजमें अध्यापकका कार्य करते हुए मैंने इस छोटे सुदूर स्थानका नाम भी नहीं सुना था। मैं ही नहीं, मेरे कालेजके बंगाली प्रोफेसर और प्रिन्सिपल भी मुझे इससे अधिक कुछ न बता सके कि यह दार्जिलिंगके निकट एक स्वास्थ्यप्रद पहाड़ी जगह है। मैं इतनी दूर कैसे आया, इस लम्बी कथाको न कहकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि एक यूरोपियन स्कूलमें हिन्दी-शिक्षकका लोभ मुझे यहाँ खींच लाया। इस नौकरीकी स्वीकृति देनेके बाद भी मेरे मनमें नाना प्रकारके विचार उठ रहे थे। आखिर अंगरेज़ोंके स्कूलमें कैसी हिन्दी पढ़ानी होगी? मुझे यह भी ज्ञान न था कि वहाँ क्या और कैसे पढ़ाना होगा। मैंने शीघ्र ही स्कूलके हेड मास्टरको टाइम-टेबुल और पुस्तकोंकी सूची भेजनेको लिखा। उत्तर आनेपर मालूम हुआ कि मुझे कैम्ब्रिजकी परीक्षाओं तथा कलकत्ता-यूनिवर्सिटीके मैट्रिकके विद्यार्थियोंको भी पढ़ाना होगा। कैम्ब्रिजके कोर्समें बच्चोंवाली पुस्तकोंका नाम देखकर तो जी घबराया; पर मैट्रिककी पुस्तकोंमें 'जयद्रथ-वध' आदि पुस्तकोंका नाम देखकर मन ज़रा शान्त हुआ। कहाँ एफ० ए०, बी० ए० के क्लास और कहाँ कैम्ब्रिज-परीक्षाके 'पाठमाला' पढ़नेवाले छात्र! पर बचनेका रास्ता ही क्या था? मैं नियत समयपर गत मार्चके मध्यमें अपने नये स्थानमें आ ही गया।

सेंट ऐण्ड्रूज़ होम्समें

कलिंगपोंगके नामके साथ ईसाई मिशनरियोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है—यों तो सारे ज़िलेमें उनका ज़ोर है। उन्होंने कई संस्थाएँ खोली हैं; पर 'सेंट ऐण्ड्रूज़ होम्स' इनमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ लगभग छै सौ बालक-बालिकाएँ हैं। नौ श्रेणियाँ हैं, जिनमें पहले आठमें स्कूलकी अन्तिम परीक्षा समाप्त हो जाती है, और नवीं श्रेणीमें मैट्रिक तथा बी० ओ० ए० की परीक्षा दिलाई जाती है। यहाँ हिन्दी अनिवार्य विषय है। मेरे आनेसे पहले हिन्दी पाँचवीं श्रेणीसे पढ़ाई जाती थी; पर इस वर्षसे दूसरी श्रेणीसे ही पढ़ाई जाने लगी है। यहाँ आनेपर मुझे मालूम हुआ कि सचमुच मेरे लिए यह एक नया क्षेत्र है। बादको तो मेरा यह विश्वास हो गया कि जो लोग हिन्दी-प्रचारका दम भरते हैं, उन्हें इस नये क्षेत्रमें कार्य करनेका काफ़ी अवसर है। कहते हैं कि बंगालमें साठ-सत्तर यूरोपियन स्कूल हैं, और उनमें से बहुतसे स्कूल हिन्दी पढ़ाते हैं; परन्तु हमने उनके लिए क्या किया? यह सब तो वे स्वयं कर रहे हैं। यूरोपियन शिक्षा-समितिने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक यूरोपियन स्कूलमें कोई-न-कोई भारतीय भाषा अवश्य पढ़ाई जाय। यूरोपियन या ऐंग्लो-इण्डियन लोगोंका भारतके किसी प्रान्त-विशेषसे प्रेम नहीं है, न उनमें किसी प्रान्तीय भाषाके प्रति या विरुद्ध पक्षपात है। वे तो सिर्फ़ यह देखते हैं कि कौन-सी भाषा उनके अधिक काममें आ सकती है। जब-जब मैं अपने हेड मास्टर मिस्टर लायडसे इस प्रश्नपर बात करता हूँ, तो वे मुझसे भी अधिक ज़ोरसे हिन्दीका पक्ष लेते हैं। एक दिन तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि यदि भारतकी राष्ट्रीय भाषाके लिए मत-संग्रह किया जाय, तो मैं तो हिन्दीके पक्षमें ही अपना मत दूँगा! यही नहीं, वे स्वयं भी हिन्दी जानते हैं और क्लासमें या बाहर सदा अपने छात्रोंको हिन्दीकी उपयोगिता बतलाते रहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि हिन्दी अपनी उपयोगिताके कारण दिन-दिन लोकप्रिय होती जा रही है। यह हर्षकी बात है कि अंगरेज़ भी इसे अपना रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम इस अवसरसे लाभ उठायें—कुछ हाथ-पैर हिलायें।

अंगरेज़ोंकी कठिनाई

जो लोग हिन्दी-प्रचारमें दिलचस्पी रखते हैं, उनको यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दी पढ़नेमें अंगरेज़ोंको या अन्य दूसरे लोगोंको, जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है, किन-किन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। अपनी नई नौकरीपर आनेपर मैंने देखा कि मेरे सहकारी, जो मेरी अनुपस्थितिमें मेरा कार्य कर रहे थे, 'ने' का प्रयोग पढ़ा रहे हैं। यहाँ आनेसे पहले मैंने कभी सोचा भी न था कि अन्य भाषा-भाषियोंको 'ने' या 'को' का प्रयोग करनेके लिए व्याकरणके नियमोंका सहारा लेना पड़ता है। इधर नौ-दस महीनेमें तो मुझे 'ने' और 'को' के प्रयोगके नियम इतने याद हो गये हैं कि जन्मभर नहीं भूलेंगे।

दूसरी बड़ी कठिनाई लिंग-सम्बन्धी है। अंगरेज़ीमें तीन लिंग हैं; पर हिन्दीमें निर्जीव वस्तुओंके लिंगमें बड़ी गड़बड़ी है। हम लोग तो प्रयोगके द्वारा—शब्दोंकी भनकसे—लिंग-निर्णय कर लेते हैं; पर अन्य भाषा-भाषियोंके लिए यह बड़ी जटिल समस्या है! बेचारा शिक्षक इसके लिए क्या सफ़ाई दे कि आँख स्त्रीलिंग क्यों है और नेत्र पुंलिंग क्यों? जब दोनोंका अर्थ eye है।

तीसरी बड़ी कठिनाई उन अक्षरोंमें पड़ती है, जो अंगरेज़ी वर्णमालामें नहीं पाये जाते। उदाहरणके लिए 'ख' अंगरेज़ी वर्णमालामें नहीं होता। यह दो अक्षरों—kh—से मिलकर बनता है। ये लोग 'खाना' को 'काना' बोलते हैं। लिखनेमें भी ऐसी ही भूलें करते हैं।

इसी प्रकारकी अनेक कठिनाइयाँ हैं, जो प्रत्येक शिक्षक समझ सकता है। मैं इन कठिनाइयोंका उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि अंगरेज़ोंके लिए या अंगरेज़ी द्वारा हिन्दी पढ़नेवालोंके लिए ऐसी पुस्तकें नहीं हैं, जो उनकी कठिनाइयोंको हल कर सकें। इधर यूरोपियन स्कूलोंमें पढ़ानेवाले कुछ शिक्षकोंने पुस्तकें लिखी हैं; परन्तु सब अधूरी हैं। हिन्दीमें आकर्षक बाल-साहित्य नहीं है, जो उनको निस्संकोच दिया जा सके। हमारे लेखक प्रारम्भिक पुस्तकोंमें ही संयुक्ताक्षरोंकी ऐसी भरमार कर देते हैं कि उन कठिन शब्दोंका उच्चारण ही कठिन हो जाता है, अर्थ समझना तो दूरकी बात है।

इसलिए मेरा कहना लेखकोंसे है कि वे हिन्दीमें सरल बाल-साहित्यकी रचना करें। स्कूली किताबें तो स्कूली शिक्षक ही लिख सकते हैं। वे सरल व्याकरण और पाठ्य-पुस्तकें लिखें, जो वास्तवमें इन छात्रोंके लिए उपयोगी हों।

कैम्ब्रिज और मैट्रिककी परीक्षाएँ

अब मैं उन स्कूलोंकी कठिनाइयोंपर आता हूँ, जो ऊँची श्रेणियोंमें भी हिन्दी पढ़ाते हैं। अब तक यूरोपियन स्कूलोंमें यह प्रथा चली आ रही थी—जो अभी तक ७५ फी-सदी स्कूलोंमें है कि वे विलायतकी जूनियर और सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षाएँ दिलाते थे। परन्तु अब समय बदल रहा है। जिन लोगोंको भारतमें रहना है, और जो यहीं रहकर अपनी जीविका उपार्जन करना चाहते हैं, वे भारतीय यूनिवर्सिटियोंकी मैट्रिककी क़ीमत समझने लगे हैं। यही कारण है कि कुछ स्कूलोंने इसको तजुर्बेके रूपमें शुरू भी कर दिया है। हमारा स्कूल भी ऐसे ही स्कूलोंमें है। ऐसे स्कूलोंको कोई देशी भाषा भी लेनी पड़ती है, और ये लोग हिन्दी ही लेते हैं; पर आजकल कलकत्ता-यूनिवर्सिटीका कोर्स कैसा है, उसपर भी ज़रा ध्यान दीजिए। उसे देखकर यही मालूम होता है कि यूनिवर्सिटीके हिन्दी-प्रेमी नहीं चाहते कि अंगरेज़ बच्चे हिन्दी पढ़ें। पाठकोंकी जानकारीके लिए मैं संक्षेपसे उनकी कठिनाईका उल्लेख भी कर दूँ।

१९३८ में परीक्षा देनेवालोंके लिए निम्न-लिखित पुस्तकें हैं—(१) पंचप्रसून, (२) प्रताप-प्रतिज्ञा, (३) सुमनांजलि। 'पंचप्रसून' स्वर्गीय प्रेमचन्दजीकी पाँच कहानियोंका संग्रह है। सारी पुस्तकमें १०१ पृष्ठ हैं, जिनमें पहले ६० पृष्ठमें तो दो ही कहानियाँ हैं। 'बैंकका दिवाला' नामक कहानीमें जब प्रेमचन्दजी साम्यवादके सिद्धान्तका प्रतिपादन करने लगते हैं, या जब वे कुँवर जगदीश सिंहके मानसिक घात-प्रतिघातका वर्णन करने लगते हैं, तब वे पृष्ठके पृष्ठ लिख जाते हैं। पर बेचारा बालक, जिसकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और जो राजनीतिकी इन गूढ़ बातोंको नहीं समझता, आश्चर्यसे अध्यापकके मुँहकी ओर ताकता रह जाता है। क्या हम प्रेमचन्दजीकी छोटी कहानियोंको नहीं चुन सकते?

'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक सुन्दर है। विषय भी कैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर है ! पर भाषा संस्कृतमयी है। आश्चर्य तो यह कि यह नाटक पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीके 'तुलसीदास'के स्थानपर रखा गया है। दोनोंकी भाषामें ज़मीन-आस्मानका अन्तर है।

अब तीसरी पुस्तकको लीजिए। 'सुमनांजलि'—यह २१५ पृष्ठकी कविताओंकी पुस्तक है। इसमें १२५ पृष्ठोंमें व्रजभाषा है। न-जाने किस जन्ममें अंगरेज़ोंको व्रजभाषाका उपयोग करना पड़ेगा। जो व्यवहारमें लानेके लिए हिन्दी पढ़ते हैं, उनको यह पुरानी भाषा और उसका व्याकरण किस काम आयेगा ? यह पुस्तक तो भारतवर्षकी किसी भी यूनिवर्सिटीमें मुख्य हिन्दीके कोर्समें रखी जा सकती है।

इस सम्बन्धमें एक और बात भी मनोरंजक है। कलकत्ता-विश्वविद्यालय पुस्तकोंके बदलनेमें भी बड़ा तेज़ है। १९३६ की दोनों पुस्तकें बदलकर तीन नई रख दी गईं। जो बेचारे फेल हुए, उनको जूनसे फरवरी तकका ८ मासका समय मिला। तीन मास दीर्घावकाश और पूजाकी छुट्टियोंमें निकल गये। रहे पाँच मास, उसमें कीजिए सारे कोर्सको समाप्त !

हिन्दी-बोर्डका कर्तव्य

इन सब बातोंकी ओर मैं कलकत्ता-यूनिवर्सिटीके हिन्दी-बोर्डका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि उसके सदस्य अपने उत्तरदायित्वको समझेंगे। यदि पाठ्य-पुस्तकोंका निर्णय करते समय वे अहिन्दी-भाषा-भाषियोंकी इन कठिनाइयोंपर ध्यान रखेंगे, तो मुझे विश्वास है कि सभी यूरोपियन स्कूल धीरे-धीरे मैट्रिकमें अपने छात्रोंको भेजना शुरू कर देंगे। हमें हिन्दीके लिए यह नया क्षेत्र मिला है। हिन्दी किसी सम्प्रदाय या जातिकी सम्पत्ति नहीं है। हम इसे राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं। पर कैसे ? हिन्दीके मार्गमें रोड़े अटकाकर नहीं, बल्कि उसका रास्ता साफकर। आजकल जो परीक्षाके प्रश्न आते हैं, वे तो काफी सरल हैं, फिर इतनी कठिन पुस्तकें क्यों ? कोर्स और प्रश्नोंमें कुछ तो सामंजस्य होना चाहिए। मेरा तो निवेदन है कि ५० पृष्ठसे अधिक कविता कम-से-कम उन छात्रोंके लिए नहीं होनी चाहिए, जो हिन्दी संस्कृतके बदलेमें लेते हैं। या तो लड़कियाँ ऐसा करती हैं, या अन्य अहिन्दी-भाषी। हमें उनकी आवश्यकताका ध्यान रखना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे, तो मैट्रिकका प्रचार बढ़ेगा और साथ ही हिन्दीका भी।

हिन्दी-प्रेमी ध्यान दें

अन्तमें मैं पुनः हिन्दी-प्रेमियोंका ध्यान हिन्दीके इस नये क्षेत्रकी ओर दिलाना चाहता हूँ। हिन्दीके शैशवकालमें भी ईसाई मिशनरियोंने इसे अपनाया था। बहुतसे अंगरेज़ोंने हिन्दीका महान् उपकार किया है। इस समय राष्ट्र-भाषाका महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने है। सौभाग्यसे इस समय अंगरेज़ोंका रुख हिन्दीके प्रति अच्छा है। वे उर्दूसे अधिक महत्त्व हिन्दीको देते हैं। यदि इन यूरोपियन स्कूलोंमें हिन्दीका प्रचार हो गया, तो इनकी भावी सन्तानें हिन्दीका सदा साथ देंगी। हम सबका कर्तव्य है कि इस सम्बन्धमें जिससे जो बने, करें। मैंने सब कठिनाइयाँ संक्षेपसे पाठकोंके आगे रख दी हैं। सबसे ज़रूरी बात तो इस समय यह है कि मैट्रिकको इस योग्य बनाया जाय कि हरएक चावसे उसका कोर्स पढ़े। इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्टैण्डर्ड गिराया जाय। वह तो ठीक ही है ; पर पुस्तकोंका चुनाव करते समय इस नई आवश्यकतापर भी ध्यान रखा जाय। मुझे आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस विषयमें दिलचस्पी लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह आर्य-धर्म-संगठन !'

(दूसरा दृष्टिकोण)

प्रिय सम्पादकजी,

'विशाल भारत' के पिछले अंक (जनवरी १९३७) में श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनका 'यह आर्य-धर्म-संगठन' शीर्षक जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसकी अनेक बातें मेरी रायमें साम्प्रदायिकताजन्य संकीर्ण दृष्टिकोणकी परिचायक हैं। इस लेखके दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं :—

१—श्री जुगलकिशोर बिड़लाके बौद्धों और हिन्दुओंमें अधिकतम सहयोग और एकता स्थापित करनेके प्रयत्नोंकी आलोचना करना और उन्हें अवांछनीय सिद्ध करना।

२—हिन्दुओं और बौद्धोंको एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न सिद्ध करना।

इनमें से पहले उद्देश्यके सम्बन्धमें मुझे कुछ अधिक कहना नहीं है। श्री जुगलकिशोर बिड़ला यदि हिन्दुओं और बौद्धोंमें सांस्कृतिक एकता स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, तो इसमें बुराई कुछ भी नहीं। यदि किसी विशेष अवसरपर बिड़लाजीने भदन्त आनन्दजीसे यह अनुरोध कर दिया कि उस जगह वे हिन्दू-धर्म और बौद्धधर्ममें भेद सिद्ध करनेवाली बातें न कहें, तो इसमें मेरी रायमें कुछ अनौचित्यकी बात नहीं थी। बिड़लाजीके इस अनुरोधमें ऐसी कोई बात नहीं थी, जिसके लिए 'बहुत सोच-विचारके बाद' श्री आनन्दजीको कहना पड़ा कि—"मैं व्याख्यान न दूँगा।"

भदन्त आनन्दजीने बिड़लाजीके हिन्दुओं और बौद्धोंमें सहयोग और मित्रता बढ़ानेके प्रयत्नको 'विशाल भारत' के पाठकोंके सन्मुख इस तरह पेश किया है, जैसे वे किसी भयंकर षड्यन्त्रका रहस्योद्घाटन कर रहे हों। यह देखकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा कि आप (सम्पादक 'विशाल भारत') ने भी अपनी एक टिप्पणीमें यहाँ तक लिख दिया है कि भारतवर्षमें साम्प्रदायिकताका विष फैलानेमें बिड़लाजीका हिस्सा सर आगा खांसे कम नहीं है। मेरी समझमें नहीं आया कि किसी धर्मशालाका नाम 'आर्य-धर्म-संघ-धर्मशाला' रखनेका यह मतलब कहाँसे हुआ कि उसमें दूसरे (आर्येतर) लोगोंका प्रवेश निषिद्ध है।

श्री जुगलकिशोर बिड़लासे मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं है। परन्तु उनके प्रयत्नोंके सम्बन्धमें कोई प्रामाणिक आधार मिले बिना ही उन्हें 'भयंकर साम्प्रदायिकतावादी' कहना मुझे मुनासिब प्रतीत नहीं होता। भदन्त आनन्दजीने अपने लेखमें अनावश्यक रूपसे बिड़लाजीके अधिक बोलने आदिके सम्बन्धमें जो बातें लिखी हैं, उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि बिड़लाजी हिन्दू-साम्प्रदायिकताको बढ़ाने और उकसानेका प्रयत्न कर रहे हैं। भारतवर्षमें बौद्धोंकी संख्या इतनी नगण्य है कि साम्प्रदायिक मनोवृत्तिका कोई हिन्दू उनका हृदय जीतनेके लिए उन्हें हज़ारों-लाखोंका दान देना कभी पसन्द नहीं करेगा। अन्य देशोंके बौद्ध साम्प्रदायिक दृष्टिसे भारतीय हिन्दुओंका क्या भला कर सकते हैं, यह बात भदन्तजीके लिए विचारणीय है।

बिड़लाजीकी बात जाने दीजिए। कम-से-कम भदन्तजी उनके विरुद्ध अपना केस प्रमाणित नहीं कर सके। मुझे तो भदन्त आनन्दजीके लेखका जो भाग विशेष आपत्तिजनक प्रतीत हुआ है, वह है उनका हिन्दुत्व और बौद्धधर्ममें अधिकतम भेद सिद्ध करनेका प्रयत्न करना।

भदन्त आनन्दजी अपने व्याख्यानोंसे प्रायः यही सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं कि बौद्ध-धर्म हिन्दूधर्मकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है और निश्रेयस प्राप्तिके लिए हिन्दुओंको बौद्ध-धर्मका आश्रय लेना चाहिए। मुझे नहीं मालूम कि आर्य-अनार्यके झगड़ेको 'निस्सार और थोथा' समझते हुए भी आप किस तरह भदन्त आनन्दजीकी इस मनोवृत्तिको सहन कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने स्वयं बौद्धधर्मका गम्भीर अध्ययन किया है। महात्मा बुद्धके प्रायः सभी उपदेश-ग्रन्थोंको मैंने पढ़ा है। मेरा यह मत है कि आदर्शकी दृष्टिसे धार्मिक (religious) और जातीय (national) संगठन मानव - जातिकी उन्नतिके मार्गमें सबसे बड़ी रुकावटें हैं। धर्म और राष्ट्रीयताकी भावनाओंने मानव-जातिका जो कल्याण किया है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता। परन्तु धार्मिक और राष्ट्रीय संगठनोंने मनुष्य-समाजको जिस तरह एक दूसरेसे शत्रुता रखनेवाले विभिन्न टुकड़ोंमें बाँट दिया है, वह आजके मनुष्यकी उन्नतिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा सिद्ध हो रहा है। मानवताके विकासके मार्गमें धर्म और जातीयता ये दोनों दो मंज़िलोंके समान थीं। सभ्यताके मार्गपर जब मनुष्य बहुत आगे बढ़ जायगा, तब ये दोनों मंज़िलें, ये दोनों सीढ़ियाँ, बहुत पीछे रह जायँगी। फिर भी मैं यह स्वीकार करता हूँ कि महात्मा बुद्ध न केवल भारतवर्षके अपितु संसार-भरके सबसे अधिक महान पुरुष हुए हैं। बौद्धधर्मकी नैतिक और आचार-सम्बन्धी शिक्षाओंका मैं कायल हूँ, और मेरी यह निश्चित धारणा है कि इस दृष्टिसे संसारका और कोई मज़हब बौद्धधर्मका मुकाबला नहीं कर सकता।

नैतिक दृष्टिसे मानव-जाति आज जिन परिस्थितियोंमें होकर गुज़र रही है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिने जिस तरह मानव-जातिको बीसियों परस्पर-विरोधी भागोंमें संगठित कर रखा है, उन्हें देखते हुए मेरी रायमें आजके मनुष्यको बौद्धधर्म और हिन्दू-धर्मकी आधारभूत शिलाओंकी आवश्यकता है। हिन्दू-धर्मकी आध्यात्मिकता और बौद्धधर्मकी नैतिक (ethical) शिक्षाएँ आजके मनुष्यको विनाशसे बचा सकती हैं, और इसी दृष्टिसे हिन्दू-धर्म और बौद्धधर्मको एक दूसरेके निकट लानेवाले प्रयत्नोंको मैं बड़ी आशाके साथ देख रहा हूँ।

भदन्त आनन्दजीने पुरानी 'ब्राह्मण-संस्कृति' का मज़ाक उड़ाया है। भारतवर्षके पुराने इतिहासमें बौद्धों और हिन्दुओंके पारस्परिक विरोधके जो काले धब्बे मौजूद हैं, उन्हें पेश करके भदन्त आनन्दजी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हिन्दू-धर्म और बौद्धधर्ममें कभी सहयोग या सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता।

मैं यहाँ ऐतिहासिक दृष्टान्त देकर अपने इस पत्रको अधिक लम्बा करना नहीं चाहता। मगर भदन्त आनन्दजीसे, जो भारतवर्षमें बौद्धधर्मके प्रचारको अपना ध्येय समझते हैं, मैं यह पूछना चाहता हूँ कि वे क्या सचमुच इस बातपर विश्वास रखते हैं कि इस देशके बौद्धकालीन अथवा हिन्दू-कालीन इतिहासमें इन दोनों भारतीय सम्प्रदायोंमें परस्पर सहयोग और मैत्रीकी भावनाएँ नहीं थीं? मुझे विश्वास है कि भदन्त आनन्दजी-जैसा शिक्षित पुरुष ऐसी स्थापना नहीं कर सकता।

हिन्दू-धर्ममें विचार-स्वाधीनताका पूरा अवसर है। चार्वाक-जैसे नास्तिकको जिस धर्ममें ऋषि माना जाता है, उसके अनुयायियोंसे यह पूछना कि तुम आचार्य धर्मकीर्तिके 'वेद-प्रामाण्यं' वाले श्लोकके रहते हुए बौद्धोंको किस तरह अपने संगठनका आन्तरिक भाग बना सकते हो, मेरी रायमें कोरी हिमाकतसे कम नहीं।

इस कथनमें ज़रा भी असत्य नहीं कि जिस तरह उपनिषदोंकी फिलासफी भारतीय आर्य-विचारोंके क्रमिक विकाससे उत्पन्न हुई, और वह पूरे तौरपर भारतीय है, उसी तरह बौद्धधर्म और बौद्ध-विचार भी भारतीय आर्य-विचारोंके क्रमिक विकाससे उत्पन्न हुए, और वे पूरे तौरसे भारतीय हैं। हमारे कुछ पुरखोंने यह गम्भीर अपराध किया था कि उन्होंने इन दोनों विचारों और आन्दोलनोंमें एकता और सामंजस्य स्थापित करनेका प्रयत्न नहीं किया। यह प्रयत्न यदि आज जारी हुआ है, तो यह हर्षकी ही बात है। इसे सन्देहकी दृष्टिसे देखनेकी आवश्यकता नहीं।

मैं यह मानता हूँ कि साम्प्रदायिकताका काला रंग इस आन्दोलनपर भी चढ़ाया जा सकता है। जहाँ कहीं ऐसी बात दिखाई दे, प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य है कि वह उसे ठीक राहपर लानेका प्रयत्न करे; परन्तु भदन्त आनन्दजी तो बौद्ध-धर्मको हिन्दू-धर्मसे इसलिए पृथक् रखना चाहते हैं, क्योंकि वे बौद्धधर्मको हिन्दू-धर्मसे अधिक श्रेष्ठ मानते हैं, और उन्हें भय प्रतीत होता है कि हिन्दू-धर्मके संसर्गमें आकर कहीं उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उजला धर्म मैला न पड़ जाय। उनकी यह मनोवृत्ति क्या भयंकर रूपसे साम्प्रदायिक नहीं है ?

धर्म और सम्प्रदायोंके झगड़े हमारे देशकी जीवन-शक्तिको खाये जा रहे हैं। वर्तमान दशामें इस बीमारीसे बचनेका यही उपाय प्रतीत होता है कि विभिन्न धर्मोंमें सामंजस्य, मित्रता और सहयोग स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाय। धर्मका आधार सदाचारको माना जाता है, और यह (सदाचार) एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ सभी धर्मोंको करीब-करीब एक ही समता (level) पर लाया जा सकता है। इसलिए राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे भी मैं इस बातको लाभकर समझता हूँ कि विभिन्न धर्मोंमें सौहार्द तथा सहयोग स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाय।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

—

शंका-समाधान

मुझे श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारका कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने मेरे 'यह आर्य-धर्म-संगठन' की आलोचना की और मुझे इस बातका अवसर दिया कि दो-एक बातोंको मैं और स्पष्ट कर दूँ ; लेकिन पहले मैं एक व्यक्तिगत बात कह लेनेकी आज्ञा चाहता हूँ। मेरा लेख छपनेके बाद सेठ युगलकिशोर बिड़लाने भाई जगदीश काश्यपको मेरे लिए कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, जिनसे मालूम होता है कि उन्होंने उस लेखको उसी सद्भावसे ग्रहण किया है, जिस भावसे मैंने लिखा था। अब मैं चन्द्रगुप्तजीको, जिनका बिड़लाजीसे व्यक्तिगत परिचय नहीं, क्या बताऊँ कि उस दिन मैंने क्यों 'बड़े सोच-विचार' के बाद व्याख्यान न देनेका निश्चय किया था। ऐसे आपद्धर्मको वही समझ सकता है, जिसका किसीसे वैसा ही सम्बन्ध हो, जैसा मेरा बिड़लाजीसे ; जो अपनेको किसीका वैसा ही ऋणी समझता हो, जैसा मैं अपनेको बिड़लाजीका।

अब चन्द्रगुप्तजीकी शंकाओंके बारेमें। आपको मेरे लेखके दो उद्देश्य प्रतीत हुए हैं। मैं दोनोंको एक-एक करके लेता हूँ। आपके शब्दोंमें मेरा पहला उद्देश्य है :—

१—"श्री युगलकिशोर बिड़लाके बौद्धों और हिन्दुओंमें अधिकतम सहयोग स्थापित करनेके प्रयत्नोंकी आलोचना करना और उन्हें अवांछनीय सिद्ध करना।"

(क) मैं इस उद्देश्यको स्वीकार करता हूँ, कर सकता हूँ, यदि आप उसमें एक शब्द और जोड़नेकी कृपा करें, वह शब्द है 'केवल'। मैं श्री युगलकिशोर बिड़लाके 'केवल' हिन्दुओं और बौद्धोंमें अधिकतम सहयोग स्थापित करनेके प्रयत्नोंका आलोचक हूँ, क्योंकि मेरा वही मत है, जो चन्द्रगुप्तजीका कि "धर्म और सम्प्रदायोंके झगड़े हमारे देशकी जीवन-शक्तिको खाये जा रहे हैं। वर्तमान दशामें इस बीमारीसे बचनेका यही उपाय प्रतीत होता है कि विभिन्न धर्म (के अनुयायियों) में सामंजस्य, मित्रता और सहयोग स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाय।" मेरा सारा ज़ोर इसी बातपर है कि सामंजस्य, मित्रता यदि स्थापित करनी है, तो 'सभी विभिन्न धर्मोंके अनुयायियों' में की जाय। आर्य-अनार्यके थोथे भेद खड़ेकर मित्रता स्थापित करनेके प्रयत्नोंको मैं 'मित्रता स्थापित करना' नहीं समझता ; मैं उनको समझता हूँ शुद्ध गुटबन्दी।

(ख) श्री चन्द्रगुप्तजीकी समझमें यह बात नहीं आई कि 'धर्मशालाका नाम आर्य-धर्म-संघ धर्मशाला रखनेका यह मतलब कहाँसे हुआ कि उसमें दूसरे (आर्येतर) लोगोंका प्रवेश निषिद्ध है ?' धर्मशालाके मुखद्वारपर अंगरेज़ी और हिन्दी दोनों भाषाओंमें 'आर्यमात्रके लिए' ठहरनेके लिए लिखा है। इससे अधिक और क्या सबूत चाहिए ? और यदि मात्र शब्द केवल सभी 'आर्यों' को अन्दर लेनेका आग्रह करता है और किसीका भी बहिष्कार नहीं करता, तो बिड़लाजी मेरे लेखके प्रकाशित होनेके बाद (जिसे उन्होंने पढ़ा है) इस आशयकी एक विज्ञप्ति निकालकर मेरी तथा अन्य पाठकोंकी शंका मिटा सकते थे। अभी भी मिटा सकते हैं। यदि सेठजी केवल इतना घोषित कर दें कि धर्मशाला 'सारनाथके सभी यात्रियोंके लिए' अथवा 'मनुष्यमात्रके लिए' है, तो इस सम्बन्धमें मेरी लेखनीसे जितने शब्द लिखे गये हैं, मैं उन सबको वापस लेता हूँ।

नई दिल्लीमें बुद्ध-मन्दिरके शिलान्यासके अवसरपर मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा था—"यह मन्दिर मनुष्यमात्रका मन्दिर होगा।" मेरे एक मित्रने—हिन्दू-सभाके एक प्रधान कार्यकर्ताने—कहा—"आपके मुँहसे यह ग़लतीसे निकल गया होगा, आपकी ज़बान फिसल गई होगी (This must have been a slip of the tongue)।" मेरा उत्तर था—"नहीं, मैंने सोच-समझकर, जान-बूझकर कहा है।"

(ग) श्रीचन्द्रगुप्तजी कहते हैं—"भारतवर्षमें बौद्धोंकी संख्या इतनी नगण्य है कि साम्प्रदायिक मनोवृत्तिका कोई हिन्दू उनका हृदय जीतनेके लिए हज़ारों-लाखोंका दान देना कभी स्वीकार न करेगा। अन्य देशोंके बौद्ध साम्प्रदायिक दृष्टिसे भारतीय हिन्दुओंका क्या भला कर सकते हैं, यह बात भदन्तजीके लिए विचारणीय है।" जो लोग संसार-भरके मुसलमानों अथवा संसार-भरके 'आर्यों' को एक करनेके आन्दोलन चलाते हैं, या वैसा कर सकनेके स्वप्न देखते हैं, वे भारतवर्षको दृष्टिमें रखकर नहीं, संसारको दृष्टिमें रखकर वैसा करते हैं। अभागे भारतको तो भूल ही जाते हैं। भारतवर्षका यदि किसीको खयाल रहे, तो भारतमें ऐसे आन्दोलन हों ही नहीं। मैं तो इस बातको मानता हूँ कि न तो बाहरके मुसलमान यहाँके मुसलमानोंके लिए ही कुछ कर सकते हैं और न बाहरके बौद्ध यहाँके हिन्दुओंके लिए। दोनों सम्प्रदायोंके जो महानुभाव इसके विपरीत आशाएँ लगाये बैठे हैं, 'उन दोउन राह न पाई।'

चन्द्रगुप्तजीको मेरे लेखका दूसरा उद्देश्य यह समझमें आया है—

२—"हिन्दुओं और बौद्धोंको एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न सिद्ध करना।"

(क) मैं इस दूसरे उद्देश्यको भी स्वीकार कर सकता हूँ, बशर्ते कि मेरे 'उद्देश्य' के उद्देश्यको समझ लिया जाय। मुझे अफ़सोस है कि चन्द्रगुप्तजीको उनकी अपनी ग़लतीसे मेरे लेखमें 'भयंकर साम्प्रदायिकता' की बू आई। 'यह आर्य-धर्म-संगठन!' के लेखकमें और चाहे जो दुर्गुण हों, उसकी मनोवृत्ति हर्गिज़ साम्प्रदायिक नहीं। वह तो चन्द्रगुप्तजीकी ही बातका कायल है—"धार्मिक और जातीय संगठन मानव-जातिकी उन्नतिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा सिद्ध हो रहा है। सभ्यताके मार्गपर जब मनुष्य आगे बढ़ जायगा, तब ये दोनों मंज़िलें बहुत पीछे रह जायँगी।" मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जिस दिन मनुष्य अपनेको धर्म-मज़हबके बन्धनोंसे मुक्त कर सकेगा, वह दिन मानव-जातिके इतिहासका सबसे अधिक सुनहला दिन होगा। यदि इन पंक्तियोंके लेखकके ये विचार न हों, तो वह काहेको 'आर्य' शब्दकी भौगोलिक व्याख्याके खिलाफ़ लोगोंसे बैर मोल लेता फिरे। उसे क्या कुत्तेने काटा है कि वह इस बातको हर मौक़े-बेमौक़े कहे कि 'पृथिवीके किसी भी कोनेमें जो भी श्रेष्ठ है, जो भी योग्य है, जो भी सभ्य है, वह आर्य है' (देखिये मेरा मूल लेख)। आश्चर्य है कि चन्द्रगुप्तजी उस लेखमें यह मामूली बात नहीं देख सके कि उसमें जो 'हिन्दुओं और बौद्धोंको पृथक् करना प्रतीत हुआ है, वह तो केवल लोहेको लोहेसे काटना है।

(ख) चन्द्रगुप्तजी अपने पूर्वजोंपर इल्ज़ाम लगाते हैं कि "उन्होंने गम्भीर अपराध किया था कि दोनों विचारों (हिन्दुओं और बौद्धों) में एकता, सामंजस्य स्थापित करनेका प्रयत्न नहीं किया।" जिसे चन्द्रगुप्तजी अपने पुरखोंका गम्भीर अपराध समझते हैं, मैं उसे ही उनका बड़प्पन मानता हूँ। हमारे पूर्वज किसीके साथ सौहार्दका बरताव करनेके लिए यह आवश्यक नहीं समझते थे कि पहले जोर-जबर्दस्ती करके उसके और अपने विचारोंकी एकता सिद्ध करें। वे न जाति पूछकर किसीको पानी पिलाते थे, न धर्म पूछकर धर्मशालामें ठहराते थे। वे सबके स्वतन्त्र विचारोंकी क़द्र करते थे और क़द्र करते थे अपने-अपने स्वतन्त्र विचारोंकी क़द्र करनेवालोंकी। उनको गुमराह समझनेवाले हम लोग आज क्या करने लगे हैं! एकताके नामपर भेड़ियाधसान!

(ग) "तो क्या मुझे हिन्दुओं और बौद्धोंको एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न सिद्ध करनेकी ज़िद है?" जो ऐसा समझते हों, उनसे मेरा एक प्रश्न है। जो आदमी खान-पानके सामाजिक व्यवहारमें हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों तथा बौद्धों—किसीमें कोई भेद न मानता हो, जो आदमी किसी-न-किसी स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनेको संसारके सभी सम्प्रदायों और उनके अनुयायियोंका ऋणी समझकर उन सबकी सेवा करना चाहता हो, उसे हिन्दुओं और बौद्धों अथवा किसीको भी एक दूसरेसे पृथक् सिद्ध करनेकी ज़रूरत ? इससे उसका फायदा ?

(घ) तो मैंने अपने 'यह आर्य-धर्म-संगठन' में क्यों लिखा है कि "जब तक हमें अपने-आपको 'हिन्दू' कहनेसे (१) वेद-शास्त्रको माननेवाला, (२) ईश्वरको माननेवाला, (३) वर्णाश्रमधर्मको माननेवाला, (४) ईसाई-मुसलमानके हाथका न खानेवाला, (५) छूआछूतको माननेवाला आदि समझा जायगा, तब तक हम अपनेको 'हिन्दू' कहनेको तैयार नहीं ?" यह सब केवल विचारोंकी स्पष्टताके लिए। जिस प्रकार आमको आम और कटहलको कटहल कहना उचित है, उसी प्रकार हिन्दूको हिन्दू कहना और बौद्धको बौद्ध कहना न्यायसंगत है। मैं अपने उन मित्रसे असहमत हूँ, जो कहते हैं कि भूरा रंग ज़रा गहरा हो गया, इसलिए वह काला कहलाया और वही भूरा रंग ज़रा हलका रह गया, तो सफेद कहलाया ; नहीं तो काला रंग सफेद है और सफेद रंग काला।

(ङ) एक जगह चन्द्रगुप्तजीने 'हिमाक़त' शब्दका भी प्रयोग किया है। आप लिखते हैं—"हिन्दू-धर्ममें विचार-स्वाधीनताका पूरा अवसर है। चार्वाक-जैसे नास्तिकको जिस धर्ममें ऋषि माना जाता है, उसके अनुयायियोंसे यह पूछना कि तुम आचार्य धर्मकीर्तिके 'वेद-प्रामाण्यं' वाले श्लोकके रहते हुए बौद्धोंको किस तरह अपने संगठनका आन्तरिक भाग बना सकते हो, मेरी रायमें कोरी हिमाक़तसे कम नहीं।" प्रश्न यहाँ विचार-स्वधीनता और विचार-स्वतन्त्रताका नहीं, प्रश्न है विचारोंकी भिन्नताका। जिसके हिन्दू-विचार हैं, वह हिन्दू; जिसके बौद्ध-विचार हैं, वह बौद्ध। अथवा हिन्दूके कोई अपने विचार हैं ही नहीं ? मैं ऐसा नहीं समझता। मैंने ऊपर जो चार या पाँच बातें लिखी हैं, उनमें से कुछ या सब ही आपको प्रायः प्रत्येक हिन्दूमें मिलेंगी।

रही विचार-स्वतन्त्रताकी बात। इस बीसवीं सदीके १९३६ में ही पंडित विश्वबन्धुजी शास्त्री एम०ए०एम०ओ०एल० (भूतपूर्व आचार्य ब्रह्म-महाविद्यालय, लाहौर) जैसे सात्विक, एकनिष्ठ विद्वानको आर्यसमाजसे इसलिए निकाला गया है कि आप वेदोंका अर्थ ठीक उसी तरह नहीं करते, जिस तरह स्वामी दयानन्दजीने किये थे ! उस दिन कलकत्तेकी प्रसिद्ध नगरीमें इसी आर्य-विद्वानको आर्यसमाजकी वेदीसे उनके इसी अपराधके दण्डस्वरूप उपदेश देनेसे रोक दिया गया था। यह घटना भी देरकी नहीं। १९३५ की है—उस समयकी, जब कि शास्त्रीजी जापानसे लौट रहे थे। विचार-स्वातन्त्र्य है कहाँ ? जिसकी लाठी उसकी भैंस तो हर जगह हो रही है। लेकिन शायद हम भूलते हैं, यह आर्यसमाज है, हिन्दू-समाज नहीं।

(च) चन्द्रगुप्तजीने लिखा है कि "महात्मा बुद्ध न केवल भारतवर्षके अपितु संसार भरके सबसे अधिक महान पुरुष हुए हैं। बौद्धधर्मकी नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी शिक्षाओंका मैं कायल हूँ, और मेरी यह निश्चित धारणा है कि इस दृष्टिसे संसारका और कोई मज़हब बौद्धधर्मका मुकाबला नहीं कर सकता।" मेरे साथ भी इससे भिन्न बात नहीं है। मुझे भगवान् बुद्धकी शिक्षाओंमें न केवल हृदयकी शान्ति मिली है, बल्कि अपने दिमाग़का सन्तोष भी। ऐसी हालतमें मैं कौन बड़ा अपराध करता हूँ कि समय-समयपर अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा, जिसे मैं अपने पास सबसे अच्छी चीज़ समझता हूँ, उसे दूसरोंको भी बाँटना चाहता हूँ।

क्या मेरा यह अपराध अक्षम्य है ?

— भदन्त आनन्द कौसल्यायन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्राममें इंजीनियरिंग

श्री रामदीन पांडेय, एम० ए०

इंजनियरिंग एक उच्च कला है। इससे मानव-समाजको बहुत लाभ हुआ है। लाभके साथ-साथ इस कलाने मानव-समाजको क्षति भी पहुँचाई है। जगत्की बड़ी-बड़ी इमारतें, राज-प्रासाद, प्रस्तरमय पर्वतस्थित दुर्ग, देव-मन्दिर, पूजा-गृह, खाई, पुल, स्तम्भ प्रभृति सहस्रों विस्मयकारी वस्तुएँ इसी कलाकी करामात हैं। सामरिक अस्त्र-शस्त्र, गोले, हवाई-जहाज़, विविध प्रकारके जलपोत आदि इंजनियरिंग कारखानेकी उपज हैं। सभ्यताके विकास और विनाशमें इंजीनियरिंगने जितनी सहायता पहुँचाई है, अन्य दूसरी कलाओंने सम्भवतः उतनी नहीं।

इस कलाके दो रूप हैं। एक शान्तिकालिक (Civil) इंजीनियरिंग और दूसरी सामरिक (Military)। मानव जातिके कल्याण, आराम और सुविधाके लिए प्रकृतिकी संचित और प्रभूत शक्तियोंका उपयोग करना ही सिविल इंजीनियरिंगका लक्ष्य है। सामरिक इंजिनियरिंगका उद्देश्य इससे विभिन्न है। मनुष्यकी राहमें रोड़े बिछाना, उनको क्षति पहुँचाना, उनके सामने नाना प्रकारकी असुविधाएँ उपस्थित करना, उनका संहार करना ही सामरिक इंजीनियरिंगका अभीष्ट है। सिविल इंजीनियर शान्तिकालका शिल्पज्ञ और कलाकार है, और सामरिक इंजीनियर युद्धकालमें घातक और रक्षक शिल्पोंका पारखी, नियामक और उत्पादक है।

गत यूरोपीय महायुद्धमें अनेक विनाशकारी इंजन (Engines of destruction), उच्च वेगपूर्ण आधुनिक राइफल (Modern velocity rifle), मेशीन-गन, फील्ड-गन, साठ पाउण्डकी तोप, होविट्सर आदि अनेक आयुध प्रयुक्त हुए थे। इनके निर्माण और प्रयोगमें इंजीनियरिंग एकमात्र कारण थी। सामरिक जहाज़ों (Battle Ships) में भी इस कलाने महान् परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। प्राचीन कालमें युद्धका जो कार्य हाथों द्वारा होता था, आज उसका स्थान स्टीम, बिजली और हवा ग्रहण कर रही है, और इन सभी कार्योंमें यन्त्रों और कलाविद् इंजीनियरोंकी सहायता आपेक्ष्य है। आज दिन जहाज़ भी शक्तिशाली इंजनोंके सहारे चलते हैं। यन्त्र-युगके पूर्व नाविकोंको अपने हाथोंसे जहाज़ों और नावोंको खेना पड़ता था।

जलपोत-विभाग (Navy) में इंजीनियरोंका ख़ास स्थान है। सभी उनकी उपयोगिताके क़ायल हैं। संहारकारी जहाज़ (Destroyers) और पनडुब्बी जहाज़ (Sub-Marines) के संचालनमें मल्लाहोंका अब बहुत कम हाथ रहता है। उनके स्थानमें इन दिनों इंजीनियर और शिल्पी कार्य करते हैं। आकाशमें, पृथ्वीपर, सागरके वक्षःस्थलपर तथा उसके भीतर, सभी जगहोंमें इंजीनियरिंगने अपना कमाल दिखलाया है—युद्ध-कलामें नवीनताका सूत्रपात किया है।

हवाई-जहाज़ आज युद्धका सर्वश्रेष्ठ साधन समझा जाता है। युद्धकी सफलता और राष्ट्रका अस्तित्व वर्तमान कालमें इसपर जितना निर्भर है, उतना अन्य साधनोंपर नहीं। गत वर्ष इटली-अबीसीनिया-युद्धमें इटलीकी जीतका प्रधान कारण उसके हवाई-जहाज़ और विषैली गैसोंका प्रयोग था। दोनों कार्योंमें इंजीनियरिंग कलाका प्राधान्य है। आज भी स्पेन देशका विद्रोही दल, सेनाध्यक्ष फ्रांको (Franco) की छत्रछायामें, हवाई-जहाज़ोंकी उत्कृष्टताके कारण स्पेनकी गवर्मेन्टके छक्के छुड़ा रहा है।

युद्धमें सफलता अधिकतर संगठन और संचालन (Mobility) पर निर्भर करती है। संग्राममें सम्मिलित राष्ट्रों (Belligerent) में से वही राष्ट्र विजयश्री प्राप्त कर सकता है, जो अपनी फौजोंको शीघ्रता और सुगमतासे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भेजनेमें समर्थ है। इस दिशामें रेलवे, लॉरी, मोटर, ट्रक आदि, जो इंजीनियरिंग कलाके ज्वलन्त परिणाम हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े उपयोगी और सबल प्रमाणित हुए हैं। संसारमें जहाँ-जहाँ रेलवेका निर्माण किया गया है, वहाँ उसका एक प्रधान उद्देश्य युद्ध-सम्बन्धी सुभीता ही रहा है। व्यापारिक और यात्रा-सम्बन्धी सुविधाएँ गौण समझी गई हैं। सड़कें, जो देशके कोने-कोनेसे होकर जाती हैं, युद्धके लिए अति आवश्यक हैं। सड़कोंके द्वारा बड़ी आसानीसे सेना एक जगहसे दूसरी जगह धावा बोल देती है। युद्ध-सामग्री, भोज्य-पदार्थ, बारूद, गोले, तोप, बन्दूक, इंजन सभीका आवागमन सड़कोंके द्वारा ही सहज और सुगम है।

टेलिफोन, तार, वायरलेस आदि युद्धकी आवश्यकताओंके अनुकूल बनाये गये हैं। कल्पना कीजिए कि रणक्षेत्रमें घोर युद्ध हो रहा है। दोनों ओरसे गोले सनासन चल रहे हैं। ट्रेंच खन-खनकर सिपाही अपनी रक्षा करते हुए दुश्मनका मुक़ाबला कर रहे हैं। अब स्टाफ हेड-क्वार्टर्सका सेनापति फायरिंग लाइनकी स्थितिकी जानकारी प्राप्त करना चाहता है। वायरलेसके द्वारा सारी बातें जान लेता है और अपनी सेनाकी सहायता आवश्यकतानुसार करता रहता है। इंजीनियरिंग कलाने ऐसी सुविधा प्रदान कर दी है कि गोले चलाते हुए सिपाहियों और ट्रेंचोंमें काम करते हुए सर्जेन्टोंकी अवस्थाका समाचार प्रधान सेनाध्यक्षको समय-समयपर मिलता रहता है।

बैटरी-कमांडर अपनी बैटरीको शत्रु-दलसे चार मील आगे या पीछे छिपाये रखता है। और स्वयं भी दो-चार मीलकी दूरीपर छिपा रहता है। यदि शत्रु-दल आगे बढ़ने लगता है, तो वह दूरसे ही बैटरीका प्रयोगकर दुश्मनका संहार करता है। दूर ही से वह तोप और गोले बरसाता है, मानो बैटरीके समीप ही बैठा हो। अन्य उपकार जो इंजीनियरिंग कलाने किया है, वह रणांगणको रातमें भी प्रकाशित रखना है। जहाँ घोर युद्ध होता रहता है, वहाँ बिजलीके सर्चलाइट रखे रहते हैं। इन रोशनियोंके कारण रात दिन हो जाती है। ये प्रकाश आकस्मिक आक्रमणसे सेनाकी रक्षा करते हैं। शत्रुओंकी चालका उन्हें तुरत पता लग जाता है। बिजलीके तार लगे रहते हैं, उन तारोंको यदि कोई सिपाही छुये, तो उसीमें लटक जाता है। हरएक कार्यके सम्पादनके लिए निपुण इंजीनियर रहते हैं।

इंजीनियरिंग कलाका प्रयोग ट्रेंचोंमें भी देखा जाता है। ये ट्रेंचें शत्रुओंको बढ़नेसे रोकने और उनके गोलोंको व्यर्थ प्रमाणित करनेमें बड़ी सहायक होती हैं। संग्राम-भूमिमें जब एक पक्षकी गति थोड़े समयके लिए भी रुक जाती है, तब प्रत्येक विपक्षी सैनिक ज़मीनमें गढ़ा खनकर उसमें खड़ा हो जाता है। इस प्रकारके गढ़े सभी सिपाही खनते हैं। यदि इन सिपाहियोंके विरुद्ध पुनः शत्रु-दल आगे बढ़ने लगता है और गोले बरसाने लगता है, तब विपक्षी सैनिक उस गढ़ेसे निकलकर दूसरा गढ़ा खनते हैं। इनकी सहायताके लिए निपुण इंजीनियरोंका दल भी मौजूद रहता है। वे तुरत पहले गढ़ेको दूसरे गढ़ेसे मिला देते हैं। इन गढ़ोंको मेशीनके द्वारा गहरा कर देते हैं। एक गर्तसे दूसरा गर्त मिलकर एक भयावह और गहरा ट्रेंच बन जाती है, जिसके चारों ओर मिट्टीकी दीवार खड़ी हो जाती है। ये ट्रेंचें किलेका काम करती हैं और शत्रु-सैनिकके प्रधावनमें प्रत्यूह उपस्थित करती हैं। शत्रु भले ही तोपों या गोलोंका प्रयोग करें; पर इन ट्रेंचोंमें खड़े सिपाहियोंको कुछ भी क्षति नहीं पहुँचती। पुनः ये सावधान होकर शत्रुपर अपना शस्त्र चलाते हैं और उन्हें पीछे हटाते हैं।

प्रारम्भमें ट्रेंचका श्रीगणेश प्रत्येक सिपाही करता है; पर इसका प्लैन और विस्तार सैनिक इंजीनियर करता है। आधुनिक सेनामें एक इंजीनियरिंग कलामें प्रवीण दल भी सम्मिलित रहता है। इस दलके सभी आदमी साधारण सैनिककी भाँति ड्रिल, अस्त्र-शस्त्र-संचालन और युद्धके रहस्योंसे अवगत रहते हैं। इस इंजीनियरिंग कलामें प्रवीण दलके कार्य अस्थायी सड़कें तैयार करना, रेलवे-लाइन बनाना, ट्रेंचका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लैन ठीक करना, ट्रेंच खोदना, दुर्गका निर्माण करना, पुल बनाना आदि हैं। कभी-कभी स्थायी सड़कों, रेलवे लाइनों, पुलोंको तोड़ देना भी इनका काम होता है। ये कार्य उस समय होते हैं, जब महाबलाधिकृत यह देखता है कि स्थायी पुलों या रेलवे लाइनोंसे शत्रु नफा उठाकर उन्हें हराना चाहता है।

ये इंजीनियर अपने साथ सब प्रकारके विस्फोटक रखते हैं। सभी प्रकारके यन्त्र, कुल्हाड़ी, आरा, रुखानी और अन्य औजार वृक्षोंको काटने, घरोंको गिराने और झाड़ियोंको साफ करनेके लिए रखते हैं। इनके साथ कुशल अमीन नकशे बनानेके लिए भी रहते हैं। व्यापारपटु वणिक, ईंटे बनानेवाले, बढ़ई, फिटर, राजमिस्त्री प्रभृति सभी प्रकारके शिल्पज्ञ रहते हैं। इनके बिना सेना ठहर नहीं सकती। यह इंजीनियरिंग दल सेनाका प्राण है।

यह इंजीनियरिंग सैनिक दल अपने साथ विविध भाँतिके यन्त्र रखता है। ट्रेंच खोदनेमें ऐसे-ऐसे यन्त्रोंका व्यवहार किया जाता है, जिनसे बातकी बातमें ज़मीन खनी चली जाती है और वहाँसे मिट्टी शीघ्रतासे हटा ली जाती है। इस प्रकार समय बहुत कम लगता है और काम अधिक होता है। ये ट्रेंचें उन सैनिकोंके लिए अति लाभकारी हैं, जो हारपर हार खाकर पीछे मुँड़े चले जा रहे हैं। गत यूरोपीय महासमरमें इन ट्रेंचोंका ख़ूब उपयोग हुआ था।

यथार्थतः वर्तमानकालिक संग्राम इंजीनियरोंका संग्राम है। यह धातुओं और मेशीनोंका युद्ध है। इस युद्धमें वही पक्ष विजय-वैजयन्ती उड़ा सकता है, जिसके पास अति उत्तम मेशीनें और दृढ़तम हथियार हैं। वही दल सफलता प्राप्त करेगा, जिसकी सेनामें उच्चकोटिके इंजीनियर, शिल्पी, शिल्पज्ञ और इसी कलामें दक्ष मज़दूर हों।

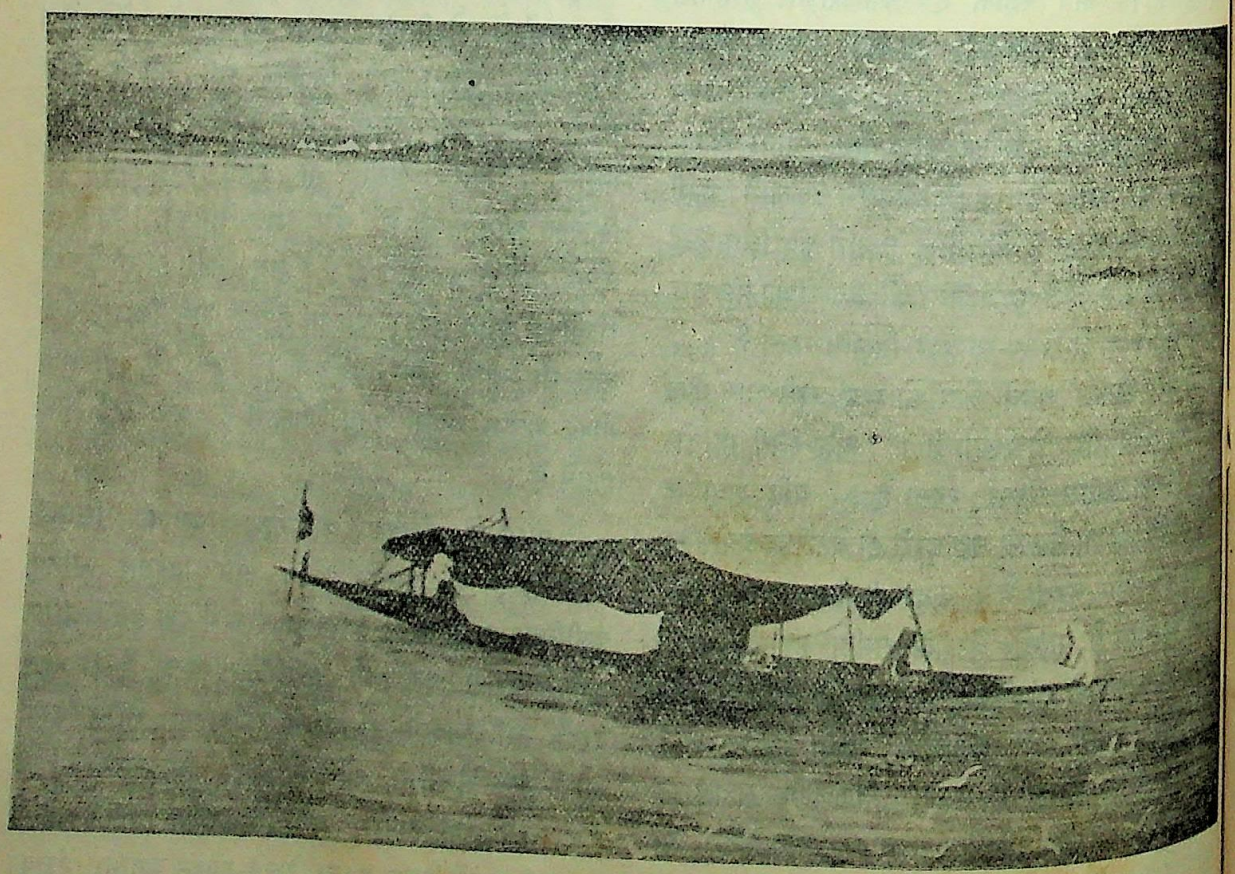

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूल

श्री श्रीकृष्ण पारख, बी० ए०, एल-एल० बी०

शरदऋतुकी एक संध्याको रोजर नामका एक मल्लाह, वेसेक्सके दक्षिणी तटपर स्थित, अपने जन्म-स्थान हैवेनपूलमें उतरा। वह व्यापारके लिए न्यू-फाउण्डलैण्ड गया था और अब अपनी यात्रा समाप्त करके लौटा था। उसकी ग़ैरहाज़िरीमें दो गर्मियाँ और एक जाड़ा बीत चुका था। इस बीचमें उस छोटेसे बन्दरगाहमें भी कई ऐसे परिवर्तन हो चुके थे, जिनका उसे गुमान भी न था। इन परिवर्तनोंमें से कुछका सम्बन्ध ख़ास तौरपर रोजरसे भी था।

प्रस्थान करते समय उसकी एकमात्र बहन एडिथ एक प्रतिष्ठित नागरिक स्टोकरकी पत्नी बन चुकी थी। रोजरके ले-देकर बस यही एक रिश्तेदार थे। जहाज़से उतरकर वह सीधे उनके ही मकानकी ओर चल पड़ा। क्वे स्ट्रीटमें मकानका दरवाज़ा खटखटानेपर रोजरने देखा कि उसमें ताला पड़ा था। पास खड़े हुए एक आदमीसे उसने पूछा, तो मालूम हुआ कि उसके बहनोईकी मृत्यु हुए लगभग अठारह महीने बीत चुके हैं!

"और मेरी बहन एडिथ?"—रोजरने पूछा।

"उसने दूसरी शादी कर ली है—कम-से-कम लोग ऐसा ही कहते हैं। क़रीब बारह महीनेसे वह विवाहित है। मैं इस बातकी सचाईका सबूत तो नहीं दे सकता; पर अगर अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ है, तो अब तक हो जाना चाहिए।"

रोजरके मुखपर घटा-सी छा गई। वह स्वभावसे ही उग्र था और अपने उत्तरदातासे इस बातका अभिप्राय पूछने लगा।

उस मनुष्यने बताया कि नवयुवतीके पतिकी मृत्युके कुछ ही दिन बाद यहाँ एक अपरिचित व्यक्ति आया था। उसने एडिथको चिन्तित देखा और उसके यौवन तथा एकाकीपनसे आकर्षित होकर बहुत थोड़े समयमें ही उससे घुल-मिलकर उसे अपने साथ ले गया और अब ख़बर है कि उसने उसके साथ विवाह कर लिया। यद्यपि वह समुद्रकी राहसे आया था; पर स्थल-मार्गसे वह यहाँसे बहुत दूरका रहनेवाला नहीं जान पड़ता। नवदम्पतिका अन्तिम समाचार ऊज़वुड गाँवसे मिला था। वे वहाँ वौल नामके एक इमारती लकड़ीके व्यापारीके मकानमें रहते थे। उस मनुष्यने रोजरको यह भी बताया कि एडिथ अब भी वहीं रहती है; पर उसका पति, यदि वास्तवमें क़ानूनके मुताबिक़ वह उसका पति ही है, उस स्थानपर कभी-कभी ही आया करता है।

"अपरिचित व्यक्ति?" रोजरने पूछा—"क्या तुमने उसे देखा है? वह कैसा आदमी था?"

"मुझे वह अच्छा नहीं लगा,"—उसने उत्तर दिया—"वह कुछ लुका-चोरी करता हुआ-सा मालूम पड़ता था। एडिथके साथ जाते हुए वह बार-बार सिर घुमाकर पीछेकी ओर ग़ौरसे देखता जाता था, मानो उसे किसी पीछा करनेवालेकी आशंका हो; पर शायद यह उसकी व्यर्थकी ही चिन्ता हो। लेकिन मैं उसे अच्छा आदमी नहीं समझता।"

"क्या मेरी बहनसे वह आयुमें बड़ा था?"

"हाँ, बहुत बड़ा। दोनोंकी आयुमें बारहसे बीस वर्षका अन्तर होगा। मुमकिन है, वह किसी ऊँचे खान्दानका आदमी हो और सिर्फ़ आनन्दके लिए ही प्रेम-लीला कर रहा हो। कौन जानता है कि उसका पहले ही विवाह हो चुका हो और पहली पत्नी भी मौजूद हो! आजकल बहुतसे धनी लोग ऐसा ही करते हैं।"

समाधि-स्थानमें जाकर पहले तो रोजरने अपने रिश्तेदारोंकी समाधियोंके दर्शन किये, और फिर दूसरे दिन वह ऊज़वुडकी ओर चल पड़ा। ऊज़वुडमें पहुँचकर इमारती लकड़ीके व्यापारी वौलका मकान तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे शीघ्र ही मिल गया ; पर अपनी बहनके घर तक पहुँचनेमें उसे कुछ समय लगा। बात यह थी कि मकानवालोंको स्पष्ट आदेश था कि किसी अपरिचित व्यक्तिको उनका पता न दें।

ऊपरकी मंज़िलमें एक काठकी कुरसीपर एडिथ बैठी थी। उसकी गोदमें एक बच्चा था, जिसे वह दूध पिला रही थी। पर इस समय बच्चा सोया हुआ था। एकदम अकेले होनेके कारण युवती माताको भी आलस्य आ गया था और उसकी आँख लग गई थी। ज़ीनेपर पैरोंकी आहट सुनकर वह जाग पड़ी और सहसा उसके मुँहसे हर्षकी एक चीख़ निकल पड़ी। उसने दौड़कर दरवाज़ा खोला। ऊपरवाली बड़ी सीढ़ीपर उसे अपना भाई दिखाई पड़ा।

"अरे तुम! मुझे तुम्हारी ज़रा भी आशा न थी।" उसने कहा—"आह! रोजर, मैं समझती थी कि जोन आये हैं।" उसके स्वरमें निराशा भरी हुई थी।

रोजरने अपनी बहनका एक चुम्बन लिया, और कुछ क्षण तक उसकी ओर कठोरतासे देखता रहा। फिर शिशुकी ओर संकेत करता हुआ बोला—"तुम्हारा अभिप्राय इसके पितासे है?"

"हाँ, वे मेरे पति हैं।"—एडिथने कहा।

"शायद ऐसा ही हो।"—उसने उत्तर दिया।

"क्यों रोजर, मेरा विवाह हो गया है—वास्तवमें विवाह हुआ है।"—उसने क्रन्दन करते हुए कहा।

"अगर यह बात सच है, तो तुम्हें धिक्कार है ; अगर झूठ है, तो सौ बार धिक्कार! मि० स्टोकर ईमानदार आदमी थे, और उनकी स्मृतिका सम्मान तुम्हें कुछ ज्यादा दिन तक रखना चाहिए था। तुम्हारा पति कहाँ है?"

"वे यहाँ समय-समयपर आया करते हैं। मेरा ख़याल था कि इस समय जोन ही आये होंगे। कुछ दिनों तक हमारा विवाह गुप्त रखा जायगा। कुछ विशेष कारणोंसे शादी छिपाकर की गई थी ; परन्तु हमारा विवाह ईमानदार लोगोंकी तरह गिरजाघरमें हुआ था—बेचारे स्टोकरकी मृत्युके छै महीने बाद।"

"पुनर्विवाह बहुत जल्दी कर लिया।"—रोजरने कहा।

"मैं अकेली मकानमें रहती थी,—न कहीं आना, न जाना। तुम सुदूर समुद्र पार न्यू-फाउन्डलैण्डमें थे। जोन मेरे पास आये और मुझे यहाँ ले आये।"

"कब-कब वे यहाँ आते हैं?"—रोजरने पूछा।

"सप्ताहमें एक या दो बार।"—उसने उत्तर दिया।

"अच्छा होता, अगर तुम मेरे आने तक ठहर जातीं।"—उसने कहा—"सम्भव है, तुम पत्नी ही हो। मुझे ऐसा ही समझना चाहिए ; पर अगर यह ठीक है, तो यह लुका-चोरी क्यों, यह रहस्य क्यों? इस छोटेसे निर्जन जंगली गाँवके तंग और टूटे-फूटे मकानमें तुम रहती कैसे हो? तुम्हारा पति क्या करता है और कहाँका निवासी है?"

"वे एक कुलीन वंशके हैं—उनका नाम जोन है। उनका पूरा नाम मैं नहीं बता सकती। वे लन्दनके रहनेवाले कहे जाते हैं ; पर आजकल यहाँ पास ही दूसरे ज़िलेमें रहते हैं।"

"पासवाले ज़िलेमें किस जगह?"

"मैं नहीं जानती। ज़बरदस्ती कोई मुझसे यह भेद जान न ले, इसीलिए उन्होंने मुझे बताना ठीक नहीं समझा। उनके मित्रों और रिश्तेदारोंमें विवाहकी बात प्रकट हो जानेसे उनका और मेरा नुक़सान हो सकता है।"

एडिथके भाईका चेहरा तमतमा उठा—"हमारे वंशके लोग सदा ईमानदार होते आये हैं और उनकी प्रतिष्ठा बहुत पुराने समयसे है। जिस आदमीके बारेमें तुम कुछ भी नहीं जानतीं, उसके हाथों इतनी ज़लील बननेको तुम तैयार कैसे हो गईं?"

एक दूसरेसे खिंचे हुए वे इस तरह बातचीत कर ही रहे थे कि एडिथके तेज़ कानोंने कोई आवाज़ सुनी। "जोन" यह घोड़ेकी टापोंकी आवाज़ थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहे हैं।"—उसने कहा—"आज ही उनके आनेकी रात है, आज शनिवार है न ?"

"डरो मत।"—रोजरने जवाब दिया—"मैं जानेवाला ही हूँ। मैं यहाँ मौजूद नहीं रहना चाहता। अगर तुम्हें ठीक न जान पड़े, तो मेरे आनेके बारेमें उससे कुछ न कहना। यात्रापर जानेसे पहले मैं तुमसे फिर मिलूँगा।"

यह कहकर वह कमरेसे बाहर चला आया और ज़ीनेसे उतरकर सामनेके दरवाज़ेसे ही निकला, ताकि आगन्तुक सवारकी झलक दिखाई पड़ जाय। मगर इस बीचमें वह सवार चुपचाप पीछेकी ओर चला गया था। उस ओर रोजरने झाँककर देखा, तो उस आदमीको अपने ही हाथों अस्तबलमें घोड़ा बाँधते पाया।

पास ही एक सराय थी, वहाँ जाकर रोजर विचार-मग्न हो गया। उस आदमीको इस तरह गुपचुप आता देखकर उसने पक्का इरादा कर लिया कि वह अपनी बहनकी स्थितिका ठीक-ठीक पता लगाकर ही वहाँसे हटेगा। रोजर जानना चाहता था कि एडिथ बहकावेमें पड़कर उस अपरिचित व्यक्तिका शिकार बन गई है, या वास्तवमें उसकी पत्नी ही है। कुछ भोजन करनेके बाद वह सरायसे निकला। समय ग्यारह बजेका होगा। पहले उसने अस्तबलमें जाकर देखा, तो घोड़ा खड़ा था। कुछ देर तक तो वह अपनी बहनके मकानके दरवाज़ेके पास दुचित्ता-सा बाट जोहता रहा। आध घंटा बीत गया। अब वह पासवाली अटारीपर चढ़कर रात काटनेकी सोचने लगा। वह सोच ही रहा था कि बहनके कमरेसे उसे कुछ आहट-सी मालूम पड़ी। दरवाज़ेके पास लकड़ियोंके ढेरके पीछे वह छिप गया। जैसा कि रोजरका ख़याल था, आगन्तुक उसी राहसे बाहर निकला, जिससे वह अन्दर घुसा था। दरवाज़ा खुला और एडिथके हाथकी मोमबत्तीने एक पलके लिए सवारका आकार प्रकाशित कर दिया। वह दीर्घ देहवाला एक रूपवान पुरुष था। आयु लगभग चालीसके होगी और शक्लसे प्रतिष्ठित व्यक्ति-सा जान पड़ता था। लबादा पहननेमें एडिथ उसे सहायता दे रही थी। फिर एक चुम्बन लेकर आगन्तुकने विदा माँगी। दरवाज़ेके पास खड़े होकर एडिथ सवारको घोड़ा कसते और लगाम लगाते देखती रही। जब वह घोड़ेपर सवार हो गया, तो उसने प्रस्थानके लिए हाथ हिलाकर इशारा किया और आँगनमें से निकलकर बाहर सड़कपर घोड़ा हाँक दिया।

जिस घोड़ेपर वह जा रहा था, वह रोजरको लँगड़ा-सा जान पड़ा, इसलिए उसने सोचा कि सवारकी यात्रा ज्यादा लम्बी न होगी। रोजर काफ़ी तेज़ चल सकता था। वह सवारका पीछा करने लगा। ऐसी निस्तब्ध रात्रिमें कुछ मील तक घोड़ेकी टापोंकी आवाज़ सुनकर चले जानेमें उसे कुछ ज्यादा कठिनाई न हुई—विशेषकर जब कि सवार बार-बार रुकता जाता था। पीछा करते-करते उसे जान पड़ा कि आम सड़कसे जानेके बजाय वह आदमी तंग रास्तों और खुले मैदानोंमें से होकर जा रहा है। रोजरके ख़यालके विपरीत अब सफर लम्बा दिखाई पड़ने लगा। अब वह दौड़ते-दौड़ते बेदम हो गया। सवारका नाम-धाम जाननेमें भी कुछ निराशा-सी होने लगी। सहसा तारोंके प्रकाशमें उसने देखा कि एक ओर घासके एक बड़े ढेरके पास एक ख़च्चर खड़ा है, जो रह-रहकर घासमें मुँह मारता जाता है।

रोजरने लपककर ख़च्चर पकड़ लिया और उसपर चढ़कर उस बेख़बर सवारके पीछे-पीछे हो लिया। अन्तमें इतना कहना काफ़ी होगा कि अरुणोदयके समय अपनी बहनके प्रेमी या पतिको रोजरने एक बड़े और सुन्दर वृक्षोंवाले पार्कके अन्दर प्रवेश करते हुए देखा। अब रोजर भी ख़च्चरसे उतर पड़ा। कुछ ही दूरपर उसे एक छोटा-सा दरवाज़ा मिला और उसमें से होकर वह भी पार्कके अन्दर चला गया।

शीघ्र ही वृक्षोंके बीचमें से झलकता हुआ एक विशाल भवन दिखाई पड़ा। इससे पहले उसने कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह स्थान न देखा था। घासपर, वृक्षोंके नीचे, रविवारके प्रभातके मन्द प्रकाशमें रोजर इस मनोहर और रमणीय प्रासादके सामने खड़ा हो गया और एकटक निहारता रहा। उसे बड़ा अचम्भा हो रहा था कि उसकी बहनका प्रेमी और घोड़ा—दोनों भवनके आँगनमें पहुँचकर कहाँ ग़ायब हो गये।

अब रोजरको पक्का विश्वास हो गया कि उसकी बहनकी स्थितिमें कोई-न-कोई ख़राबी अवश्य है। हरी भूमिपर चलता हुआ वह एक कुंजके नीचे पहुँचा। ज्यादा पता लगानेके लिए वह एक पेड़पर चढ़नेवाला ही था कि उसे सूखी घासका एक ढेर दिखाई पड़ा। वह उसी ढेरमें घुसकर छिप गया, और रोटीका एक टुकड़ा, जिसे उसने सरायसे चलते वक्त अपने कोटकी जेबमें ठूँस लिया था, निकालकर पेट-पूजा की। रात-भरका जगा और थका हुआ तो था ही, नरम-नरम घासपर लेटकर थोड़ी ही देरमें खर्राटे भरने लगा।

बहुत देर तक वह गहरी नींदमें पड़ा रहा। घंटा बजनेकी आवाज़ सुनकर जब आँख खुली, तो घासके ढेरमें से उसने देखा कि दिन ख़ूब चढ़ आया है; सूरजकी तेज़ रोशनी चारों ओर फैली हुई है। घंटेकी आवाज़ पासके एक गिरजाघरसे आ रही थी और प्रभातकी प्रार्थनाके लिए लोगोंको बुला रही थी। चन्द मिनट बाद उसने देखा कि एक पादरी महोदय, हरी घासको पार करते हुए, एक छोटे-से दरवाज़ेसे गिरजाघरके पूर्वी भागमें घुसे। फिर उस भव्य-भवनके बड़े द्वारसे सपरिवार गृह-स्वामी भी निकले। गृह-स्वामी वही थे, जिन्हें रोजरने पिछली रातको अपनी बहनके साथ देखा था। उनकी बग़लमें एक मोटी-सी महिला थीं और उनके साथ दो लड़कियाँ और एक लड़का चल रहा था। वे सबके सब गिरजेमें चले गये। अब घंटा बजना बन्द हो गया। रास्ता साफ़ देखकर रोजर भी अपने छिपनेकी जगहसे निकल आया। धीरे-धीरे चलता हुआ जब वह गिरजाघरकी पौरीपर पहुँचा, तो रसोईघरकी ओरसे आता हुआ एक नौकर उसे दिखाई पड़ा। देर हो जानेपर भी वह प्रार्थनामें सम्मिलित होने जा रहा था। रोजरने बड़ी लापरवाहीसे उसे बुलाया और सैलानी-सा बनकर पूछने लगा—"क्यों जी, इस भवनसे निकलकर जो महाशय अभी गिरजेमें गये हैं, वे कौन हैं?"

"वाह! तुम तो बिलकुल अनजान ही लगते हो। जानते नहीं, वे सर जोन, उनकी पत्नी तथा उनके बच्चे—एलिज़बेथ, मेरी और जोन—हैं।"

"मैं विदेशी हूँ, मैं क्या जानूँ। अच्छा, सर जोनका पूरा नाम क्या है?"

"सर जोन हौर्सले। उन्हें जितना धन अपने पितासे मिला है, उतना ही अपनी मातासे और कुछ अपनी पत्नीसे भी मिला है। उनकी पत्नी मास्टर रिचर्ड फ़िलिप्सनकी पुत्री हैं, जिन्हें सभी लोग जानते हैं।"

"शायद ठीक हो, या न भी हो। ऐसे ईमानदार और कुलीनवंशके मालिकके लिए प्रार्थना करनेमें कहीं तुम्हें देर न हो जाय। इधर मुझे भी कई मील जाना है।"

इतना कहकर रोजर वहाँसे चल दिया। चलते-चलते वह सोचता जाता था—"अब उस बेचारी मूर्खा एडिथका क्या होगा? हाय री मूर्खा स्त्री! मुझे पहलेसे ही यह शक था। उसने बहुत जल्दबाज़ी की—वह सदा ही श्रृंगारप्रिय रही है। ईश्वर ही जाने, अब उसका क्या होगा। यह समाचार मैं उसे कैसे सुनाऊँगा? और यह भी कैसे हो सकता है कि उसे असली बात बताई न जाय। मेरे पिताके प्रतिष्ठित नामपर यह कलंकका टीका! धूर्त बदमाश कहींका!" सहसा घूमकर उसने गिरजे और उसमें उपस्थित सब आदमियोंपर घूँसा दिखाया और फिर अपनी राह पकड़ी।

शायद चित्तकी व्याकुलताके कारण, अपनी बहनके मकानकी ओर सीधी राहसे न जाकर, रोजर केस्टरब्रिज वाले लम्बे राजमार्गसे जाने लगा। केस्टरब्रिजमें उसने ख़ूब मदिरा पी और दो-तीन रातें वहीं बिताकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बा चक्कर काटता हुआ शुक्रवारकी रातको अपने गाँव हैवेनपूल पहुँचा। परिचित वस्तुओंके दृश्यसे उसे कुछ सान्त्वना मिली। दूसरे दिन प्रातःकाल वह फिर ऊज़वुडकी ओर जाता दिखाई पड़ा। वह अपने मनमें सोचता जाता था, आज शनिवार है, पहलेकी भाँति आज रातको भी सर जोन फिर उसे अपनी बहनके घरमें ही मिलेगा।

उसने रास्तेमें जान-बूझकर देर लगाई, और सूर्यास्तसे कुछ ही पहले ऊज़वुड पहुँचा। बाग़के किनारे हरी घासके मैदानमें उसकी बहन टहल रही थी। बच्चा दाईकी गोदमें था। पास आनेपर वह रोजरकी ओर व्यग्रतासे देखने लगी। एडिथके गुलाबी गालों और निर्मल नेत्रोंमें उसकी स्थितिकी चिन्ता स्पष्ट झलक रही थी; पर अपने भाईके दुःखित और सूखे चेहरेको देखकर पल-भरके लिए उसके हृदयसे अपनी तथा अपने बच्चेकी चिन्ता जाती रही।

"अरे, तुम क्या बीमार हो, रोजर? तुम बहुत थके हुए दीख पड़ते हो! इतने दिन कहाँ रहे? तुम कुछ दिनों तक मेरे साथ ही क्यों नहीं रहते? मेरे पति बहुधा बाहर रहते हैं। तुम्हारे न्यू-फ़ाउन्डलैण्डके सफ़रके बारेमें उस दिन तो कुछ बातें ही नहीं हुईं। तुम एकाएक चले क्यों गये? मेरे घरमें एक अलग कमरा है, उसीमें तुम रह सकते हो।"

"अन्दर चलो।"—उसने कहा—"हम अब बातचीत करेंगे; ख़ूब बातें करेंगे। इसे (बालककी ओर संकेत करते हुए) अच्छा हो, अगर नदीमें फेंक दो। इससे इसका और तुम्हारा दोनोंका ही हित होगा।"

एडिथ बलपूर्वक हँसी, मानो इस कथनमें उसे कोई अच्छा परिहास ही दीख पड़ा हो, और फिर दोनों चुपचाप अन्दर चले गये।"

"कैसा बुरा घर है!"—रोजरने कोठरीको देखते हुए कहा।

"वाह, देखो, कैसा सुन्दर है!"

"जो-कुछ मैं देख चुका हूँ, उसके मुक़ाबलेमें कुछ भी नहीं। क्या उसने तुम्हारे साथ गिरजाघरमें साधारण ढंगसे विवाह किया था?"

"हैवेनपूलके अपने गिरजेमें विवाह ज़रूर हुआ था।"

"किन्तु गुप्त रीतिसे?"

"हाँ, अपने मित्रोंके कारण विवाह रातके वक्त हुआ था।"

"अरी मूर्खा एडिथ, इतनेपर भी वह तुम्हारा पति नहीं है। तुम उसकी पत्नी नहीं हो और यह बालक जारज सन्तान है। उसकी पत्नी और बालक दूसरे ही हैं, और वे लोग ही उसका नाम धारण कर सकते हैं, उसकी सन्तान कहला सकते हैं। तुम समझती हो, उसका नाम सिर्फ जोन है; पर उसका असली नाम सर जोन हौर्सले है। धर्म और क़ानूनके अनुसार वह तुम्हारा पति नहीं है। ओह! विवाह-संस्कारसे भी आजकल स्त्रियोंकी कुछ रक्षा नहीं होती।"

एडिथका मुँह सफ़ेद पड़ गया।

"यह सब झूठ है, रोजर!"—उसने कहा। "तुम शराब पिये हुए हो, मेरे भाई! इसीलिए तुम्हें पता नहीं कि तुम कह क्या रहे हो। तुम्हारी समुद्र-यात्राने तुम्हें बुरी-बुरी बातें सिखा दी हैं।"

"एडिथ, मैं उन्हें देख चुका हूँ। मैं उसे, उसकी पत्नीको और लड़कोंको सबको देख चुका हूँ। तुम कैसे—"

बढ़ते हुए अन्धकारमें वे बैठे हुए बातें कर रहे थे कि इतनेमें बाहरसे पैरोंकी आहट आई। "इस राहसे चले जाओ।"—एडिथने कहा—"यह मेरे पति हैं। मैं नहीं चाहती कि वे तुम्हें इस दशामें देखें। अगर तुम्हें मेरी ज़रा भी परवा है, तो कल तकके लिए चले जाओ।"

एडिथने अपने भाईको एक दरवाज़ेसे धकेल दिया, जो पीछेके ज़ीनेकी ओर जाता था। रोजरके बाहर जाते ही नवागन्तुकने प्रवेश किया; किन्तु रोजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीढ़ियोंसे उतरकर बाहर नहीं गया। वह रुका रहा और दरवाज़ेके छेदसे देखने लगा। अगर आनेवाले सर जोन ही हुए, तो उनसे भिड़नेकी उसने ठान ली थी।

वह सर जोन ही थे। उनके आते ही एडिथने रोशनी कर दी। उन्होंने बच्चेको चूमा और अपनी पत्नीके मुखकी ओर देखते हुए कोमलतासे उसके कन्धे पकड़ लिये।

"मेरी प्रियतमाको कुछ दुःख अवश्य है।" उन्होंने कहा—"कहो क्या बात है? तुम्हें क्या चाहिए?"

"ओ, जोन!" उसने रुआँसी होकर कहा—"मैंने बड़ी भयानक बात सुनी है—उसका क्या मतलब है? जिसने मुझसे कहा, वह मेरा अन्तरंग मित्र है। उसे ज़रूर धोखा हुआ; पर किसने धोखा दिया और क्यों? जोन, मैंने अभी-अभी सुना कि मुझसे विवाह करते समय तुम्हारी एक पत्नी मौजूद थी। और अब भी वह तुम्हारे घरपर है।"

"पत्नी?—हुँः।"

"हाँ, और बच्चे भी। कहो, नहीं, ऐसा नहीं है।"

"ईश्वरकी शपथ! तुम्हारे सिवा मेरी और कोई धर्मानुसार भार्या नहीं है। और रहे बच्चे, इस बच्चेको छोड़कर बाक़ी सब जारज सन्तान हैं।"

"और तुम सर जोन हौर्सले हो?"

"हाँ, हूँगा। पर मैंने तुम्हें कभी नहीं बताया।"

"किन्तु सब लोग जानते हैं कि सर जोनके पत्नी और बालक भी हैं।"

सर जोन नीचेकी ओर देखने लगे। "तुम्हारे मनमें यह सब बातें किसने भरी हैं?"—उन्होंने पूछा।

"मेरा एक सम्बन्धी आया हुआ है।"

"बदमाश! हम दोनोंके जीवनको वह कमबख़्त क्यों नष्ट करता है? ओह! तुमने एक बार कहा था कि तुम्हारा कोई भाई समुद्र-यात्रा पर गया है। वह आजकल कहाँ है?"

"यहाँ!"—पास ही से आवाज़ आई। और दरवाज़ा खोलकर रोजर सर जोनके सामने आ खड़ा हुआ। "झूठा, बेईमान!" उसने कहा—"तू अपने-आपको इसका पति बताता है।"

उत्तेजित होकर सर जोनने रोजरपर आक्रमण किया। रोजरने उनका कालर पकड़ लिया। अब जो गुत्थम-गुत्था हुआ, उसमें दोनों ही गिर पड़े—रोजर नीचे था; पर कुछ ही पलमें रोजरने अपना दाहना हाथ किसी तरह बाहर निकाल लिया और अपने पटकेमें से चाकू निकाला, जो उसकी गर्दनमें लिपटी हुई एक डोरीसे बँधा था। दाँतोंसे चाकू खोलकर उसने अपने ऊपर पड़े हुए सर जोनकी छातीमें भोंक दिया। इन दोनोंको लड़ते देख अपने बच्चेकी हिफ़ाज़तके लिए एडिथ भागकर दूसरे कमरेमें चली गई थी। जब वह लौटी, तो उसने रोजरके गलेमें अपने पतिका पंजा ढीला होता हुआ पाया। ख़ूनसे लथपथ जोन लुढ़क पड़ा और कराहने लगा। अपने भाईको 'दुरात्मा' कहती हुई एडिथ अपने पतिके बहते हुए रक्तका प्रवाह रोकनेकी कोशिश करने लगी। उसने रोजरको तुरन्त निकल जानेको कहा। खिन्न-चित्त रोजर कुछ देरके लिए रुका और फिर खिड़कीसे कूदकर बाहर हो गया।

अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए सर जोनने जो बयान दिया, वह यों है—

"लेडी हौर्सले मेरी भार्या कही जाती हैं, और उनसे मेरे तीन बालक भी हुए हैं; पर सचमुच वे एक दूसरे व्यक्तिकी ही पत्नी हैं। कई वर्ष पहले मेरा उनसे विवाह हुआ था, तब वे डेसिमस स्ट्रांगकी विधवाके नामसे प्रसिद्ध थीं। वास्तवमें उनके पूर्व-पतिकी मृत्यु नहीं हुई थी। विवाहके कुछ समय बाद उनका पति ग़ायब हो गया था। तबसे उसका कोई पता नहीं चला। पर दो वर्ष हुए, मैंने उस व्यक्तिको फ्रांसमें जीवित देखा था। चूँकि लेडी हौर्सले अपने आपको मेरी ही भार्या समझती थीं, इसलिए मैं उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुभित और दुःखित नहीं करना चाहता था। पर औरस सन्तानकी इच्छासे मैंने सारा मामला बादशाह हेनरी अष्टमको कह सुनाया। बादशाह हेनरीने मुझे तुम्हारे साथ विवाह करनेको उत्साहित किया, इसलिए तुम और केवल तुम ही मेरी धर्मपत्नी हो। लोक अपवाद और प्रवादसे बचनेके लिए ही मैं ठीक अवसरके आने तक यह घटना गुप्त रखना चाहता था; पर अब मेरे ही सम्बन्धीने मुझपर सन्देह करके आक्रमण किया है, अतः इन संकल्पों तथा और सब बातोंमें मेरा उत्साह जाता रहा है। अब मैं अपनी आत्मा ईश्वरके भरोसेपर छोड़ता हूँ।"

उस अँधेरी रातमें जब चारों ओर घने जंगलमें उल्लू बोल रहे थे और एवोन नदी पुलके खम्भोंसे टकराकर घरघरा रही थी, सर रोजरने अपनी पत्नीकी गोदमें प्राण विसर्जन किये।

अपने पतिकी मृत्युके सम्बन्धमें, इस कलहकी बातको छोड़कर, एडिथने कोई बात नहीं छिपाई। जब तक अपनी स्थितिका पक्का सबूत न मिल जाय, तब तक इस बारेमें कुछ कहना उसे ठीक न मालूम पड़ा। पर एक मासके भीतर ही इस गुप्त विवाहसे उत्पन्न पुत्र बीमार पड़ा और एडिथको अकथनीय शोकसागरमें डुबाकर इस संसारसे सदाके लिए चल बसा। बस, तभीसे हौर्सले-परिवारकी समस्त कीर्ति और यशसे एडिथकी रुचि हट गई। उसने अपनी स्थिति प्रमाणित करनेके लिए कोई चेष्टा भी नहीं की। वह दाईके साथ अपने जन्मस्थान हैवेनपूलको चली गई और अपनी मृत्यु तक अज्ञात-सी ही बनी रही।

[टामस हार्डीकी एक कहानी

बन्दरोंकी समस्या

श्रीराम शर्मा

अबसे पाँच वर्ष पूर्व इटावा ज़िलेके एक महाशयने एक पत्रमें लिखा था :—

"प्रिय शर्माजी,

हमारे बग़ीचेके आसपास बहुत बन्दर हैं। बड़ी आफ़त कर रखी है। बन्दरोंसे बचनेके लिए क्या किया जाय?"

इन पंक्तियोंके लेखकने लौटती डाकसे उत्तर दे दिया :—

"प्रिय महोदय,

यदि आप बन्दरोंसे अपने बग़ीचेको बचाना चाहते हैं, अपनी बला दूसरोंपर नहीं टालना चाहते और बग़ीचेको आर्थिक दृष्टिसे लाभकारी बनाना चाहते हैं, तो बग़ीचेमें आनेवाले बन्दरोंको गोली मार दीजिये या मरवा डालिये।"

पाठकोंका यह ख़याल हो सकता है कि एक हृदयहीन, हिंसा-प्रेमी और कोमल भावनाओंसे शून्य व्यक्ति ही उपर्युक्त उत्तर लिख सकता है। अहिंसा जहाँ धर्मका मूलमंत्र हो, कीड़ों-मकोड़ों तककी जान लेना आत्मिक उन्नतिके लिए घातक समझा जाता हो, स्नेह और प्राणिमात्रसे सद्भाव जहाँके धार्मिक जीवनका प्राण हो, वहाँपर मनुष्यके निकटतम जीव—बन्दरकी हत्याके लिए फ़तवा देना कलुषित और बधिक हृदयकी भावना अथवा बिगड़े दिमाग़की उपजके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

पर बात ऐसी नहीं। इन पंक्तियोंके लेखकने अहिंसा और हिंसापर विचार भी किया है, पढ़ा भी है थोड़ा। और उसके वह चीज़ भी है, जिसे कहते हैं हृदय; पर हृदयकी कोमलता और भावुकताने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठमुल्ला नहीं बनाया है। न वह कीड़े-मकोड़ोंसे प्रेम करनेवालोंका विरोधी है और न उनकी भावनाका ही वह मखौल उड़ाता है। तब फिर बन्दरोंके मारनेके लिए वह क्यों फ़तवा देता है? नीचेके दृश्योंपर तनिक विचार कीजिए।

हरदोईसे साँडी तक चौदह मीलके फ़ासलेमें सड़कके दोनों ओर बन्दरोंके यूथके यूथ दिखाई पड़ते हैं—खेतोंको नष्ट-भ्रष्ट करते हुए। जिस खेतमें उनका हमला हो जाता है, उसमें फ़सलपर क़हर ही नाजिल हो जाता है। टूटे डंठल, उखड़े पौधे, अधखाये गन्ने, कुचली हुई बालें और सुते हुए पत्तों—एक शब्दमें किसानकी कमाईके नाश—का हृदयविदारक दृश्य नज़र आता है। जिस ओर बानर-सेना छूट जाती है, उसी ओर हाहाकार मच जाता है। बन्दरोंको यदि कोई मरवानेका प्रयत्न करे, तो पेट-भर खानेवाले, ब्याजकी कमाईसे मन्दिर बनानेवाले और पूजा-पाठका ढोंग रचनेवाले लोग ग़रीब किसानोंपर व्यंग-वाण छोड़ते हैं—"हैं-हैं, रामचन्द्रजीकी सेना, हनूमानजीके वंशजपर ज़ुल्म ढाते हो और नरकका द्वार अपने हाथों खोलते हो!"

एक दूसरे दृश्यकी कल्पना कीजिए। शिकोहाबाद स्टेशनसे सटी हुई उत्तरकी ओरको एक धर्मशाला है। उससे लगे कुछ खेत हैं। आपके यदि दिलो-दिमाग़ हैं, तो उधर बढ़कर देखिये। हाड़का कंकाल—ग़रीबीकी सजीव मूर्ति—एक बूढ़ा वहाँ बैठा रहता है। एक बुढ़िया भी वहाँ रहती है। किसलिए? बन्दरोंसे खेतोंकी रक्षा करनेके लिए। कई-कई आदमियोंकी शक्तियाँ दो-एक खेतको रखनेमें यों ही चली जाती हैं। यदि दस मिनटके लिए भी वे लोग वहाँसे हट जायँ, तो 'ज्ञानगुनसागर' के वंशज खेतोंको चौपट ही कर दें। उनके रहनेपर भी बन्दर कभी-न-कभी हाथ मार ही लेते हैं। यदि उस बूढ़ेको रखवालीसे अवकाश मिलता, तो अपने जानवरोंके लिए वह घास ही खोदता। उसकी तबीयत चाहती है कि बन्दरोंसे उसका पिंड छूटे; पर धर्मके ठेकेदार—क़रीबके रहनेवाले खाते-पीते लोग—धर्मके नामपर उसे चुप रहनेको मजबूर करते हैं।

एक तीसरा दृश्य उन शहरोंका है, जहाँपर बन्दरोंकी भरमार है। छतपर आप चीज़ें नहीं रख सकते। छोटे बच्चोंको अकेले छतपर नहीं छोड़ सकते। आँख बची कि पवनसुत-सेनाका कोई उचक्का सिपाही आपकी चीज़ ले गया। वे खानेकी चीज़ ही नहीं लेते, वरन् उपयोगी चीज़ें भी—जैसे जूते, लोटे और कपड़े भी—ले जाते हैं। लेकर उन्हें मुँडेरपर जा बैठते हैं हनूमानजी महाराज। यदि आपने उन्हें नहीं देख पाया, तो वे स्वयं विज्ञापन करते हैं—घासलेटी विज्ञापनबाज़ोंकी भाँति। मुँडेरसे लोटा और जूता रगड़ा जाता है। रिश्वत लेनेकी प्रतीक्षा होती है। रिश्वत दी जाती है और तब कहीं जाकर चीज़ मिलती है। यदि आपने रिश्वत—भेंट—देनेमें देर कर दी, तो नख और दाँतसे चीज़ोंपर प्रहार होने लगता है। और फिर बीसों समाचार इस विषयके सुननेमें आते हैं कि अमुकका बच्चा बन्दरने छतपर से गिराकर मार डाला।

अब मुख्य प्रश्न यह है कि बानर-आतंकसे कैसे बचा जाय। आप कह सकते हैं कि पकड़कर उन्हें जंगलमें छोड़ दिया जाय। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं, यदि ऐसा हो सके; पर कोरी बातोंसे काम नहीं चलेगा। ग़रीब किसान बन्दरोंको कैसे पकड़ें और उनको कहाँके जंगलमें छोड़ें? हम तो चाहते हैं कि लार्ड लिनलिथगो साँड़ छुड़वानेके साथ-साथ शहरों और देहातोंसे बन्दर पकड़वाकर किसी अगम्य स्थानमें छुड़वाएँ। कुछ म्यूनिसिपैलिटियोंने अपने इलाकेके बन्दर पकड़वाकर बाहर छुड़वानेका प्रयत्न भी किया है; पर सुना है कि पकड़वाई कदाचित फ़ी बन्दर दो रुपया बैठी! स्मरण रहे, भारतीय किसानकी ग़रीबी कल्पनातीत है। वह अपने बच्चों और सम्बन्धियोंके इलाजके लिए भी अकसर दो रुपये खर्च नहीं कर सकता। हाँ, कफ़न उधार मिल जाता है। ऐसी दशामें किसानको यह उपदेश देना कि वह बन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़वाकर कहीं दूर भिजवा दे मूर्खता है, उपदेशकपनकी मनोवृत्ति है। इन पंक्तियोंके लेखकने एक बार छै घंटेके परिश्रमसे दो बन्दर पकड़े और उनको दो मील दूर छुड़वा दिया। नतीजा यह हुआ कि अप्रत्यक्षरूपमें अन्य किसानोंकी सख्त-सुस्त सुननी पड़ी। वास्तवमें अपने यहाँसे बन्दर पकड़कर दूसरे गाँवमें छोड़नेके मानी हैं, अपने घरसे साँप निकालकर दूसरेके घरमें छोड़ देना।

आप कह सकते हैं कि बन्दरोंके कौन खेती होती है। वे तो जहाँ भोजन मिलेगा, वहाँ जायँगे ही। किसानोंका काम है कि अपनी रखवाली करें, उन्हें भगा दिया करें। ठीक। खेती तो बस किसानके ही होती है। देश-भरकी मुसीबत अल्ला तालाने उसके लिए ही रखी है। वह, वह निहाई है, जिसपर सबकी चोटें पड़ती हैं। सभी गानोंका ताल उसीपर टूटता है। कुर्सी-तोड़ लोगों और वोट माँगनेवालोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे तनिक अपने-आपको किसानकी परिस्थितिमें रखनेकी कल्पना करें और बानर-पीड़ित स्थानमें जीविकाकी खातिर खेती करके देखें, तो उनकी अक़्ल दुरुस्त हो जाय। या तो वे खेती करना छोड़ देंगे, या बन्दरोंके पीछे बन्दूक लेकर पड़ जायँगे।

रही हिंसा और अहिंसाकी बात, सो हमारा कहना है कि बन्दरोंको हर कहीं मारना—उनको मारनेकी प्रवृत्ति बनाना हिंसा है; पर कर्तव्य पालनमें—खेतकी रक्षा करनेमें—आततायीको दुरुस्त करनेमें कोई हिंसा नहीं। गायकी रक्षाके लिए हज़ारों कीड़ोंको मारा जाता है। खेतकी रक्षाके लिए दीमकें मारी जाती हैं। इसलिए उसी प्रकार बन्दरोंके मारनेमें—खेतकी रक्षाके लिए खेतोंपर आनेवाले बन्दरोंको मारनेमें—कोई पाप नहीं।

हम तो यहाँ तक कहते हैं कि श्रीमान महात्मा गांधीजी—जो विश्वकी विभूति हैं—भी कहें कि खेतीका सर्वनाश करनेवाले बन्दरोंको न मारा जाय, तो हम उनकी बात न मानेंगे, तावक्ते कि वे बन्दरोंसे बचनेका कोई दूसरा उचित उपाय न बतायें।

हमारी समझमें तो बन्दरोंको मरवानेके अतिरिक्त और कोई उपाय समझमें नहीं आता। रही जंगलोंमें उन्हें छोड़नेकी बात, सो यदि सरकार इतना ख़र्च करके किसानोंकी रक्षा कर सकती हो, तो हमें कोई आपत्ति नहीं। पर सबसे सरल उपाय यही है कि किसान डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटको लिखकर उनको बन्दूक़से मरवा डालें, या ज़हर दे दें और खेतोंमें उन्हें गाड़ दें, ताकि उनका बढ़िया खाद भी बन जाय।

हमने तो यही प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है। पिछले मासकी बात है। मैं बीमार था, चारपाईपर पड़ा था। एक दिन ख़बर लगी कि एक मोटरमल्ल बन्दर—बन्दरोंका अधिष्ठाता—बग़ीचेमें चुपटा है। दिखवाया तो काफ़ी नुक़सान कर गया था। आदमीके पहुँचते ही छलाँगे भरके क़रीबके बरगदकी चोटीपर जा बैठा। आदमीके हटते ही वह फिर आ गया। फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ! कँपते हाथोंसे बन्दूक उठाई और झाईं देखते ही फ़ायर कर दिया। धड़ामसे अधिष्ठाताजी नीचे आ गिरे। उठवाकर उसे खेतमें गड़वा दिया। पिछली २२ फरवरीको भी एक बन्दर इसी तरह मारा। हमारी समझमें बन्दरोंसे बचनेके लिए सिवा उन्हें मारनेके और कोई उपाय नहीं।

महात्माजीसे भी प्रार्थना है कि किसानोंकी बेबसीका ख़याल करके वे इस विषयमें अपना मत प्रकट करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावी सन्तति

श्री नरेन्द्र शर्मा

हम भविष्यके तिमिर-गर्भमें
बल-संचय-हित, बालारुणसे—
कुछ दिन अभी करेंगे शयन !

अनल-गर्भ है तिमिर-गर्भ यह
अनल-रूपमें आयेंगे हम,
सुनो, तुम्हारी परवशताके
शवकी चिता जलायेंगे हम !

धनुषाकार अर्ध-रवि बनकर,
बना क्षितिजकी प्रत्यंचा हम,
अरुण, अग्नि-शावक वाणोंसे
क्षणमें हर लेंगे भवका तम !

शर छू, जल-जल जीर्ण तूलि-सी
लपट बनेगी वारिद-माला,
चढ़ लपटोंके स्वर्ण-गरुड़पर
फैलेगी जागृतिकी ज्वाला !

शमी-वृक्षकी छिपी अनल यों
होगी किंशुक-रूप अंकुरित,
सदियोंकी अन्तर्हित ज्वाला
पूर्ण क्रान्तिमें त्वरित अवतरित !

यों प्रभात होगा भविष्यका
अभी देशमें कुछ दिन रैन !
हम भविष्यके०

ज्वालाका क्या वर्ण ? वर्ण है
बस सुवर्ण ही, साम्य गान है,
तप्त-स्वर्णसे बनी देह यह
कर्म, पूर्ण-तप-अनुष्ठान है !

वर्णहीन असमान पतितको
उठा शक्ति देंगे प्रलयंकर,
अनियन्त्रित शासनसे पोषित
वैभवको हर, भस्मभूत कर !

मेघाच्छादित विश्व-व्योमसे
विद्युत्-धारा-से अवनीपर
हम हरने आतंक वज्र बन
उमड़ पड़ेंगे घन-गर्जन कर !

पर्वतके प्रतिध्वनित नादसे
जय-जय कर जय-घोष भयंकर,
फूट पड़ेंगे तड़क तड़ित-से
कम्पित कर अवनी औ' अम्बर !

वह प्रकाश होगा भविष्यका
अभी जगतमें कुछ दिन रैन !
हम भविष्यके०

सिन्धु-शयनपर क्रुद्ध शम्भुके
वह्नि-नयनसे हम अवतीरण !
शिवके पुत्र, रुद्रके सेवक
शान्ति क्रान्तिके हम अनुचरगण !

दैत्योंका दुर्जेय शौर्य ले
देवोंकी ले अमृत-मधुरिमा,
मानवताके साँचेमें ढल
बनी हमारी कुन्दन-प्रतिमा !

अवनि-व्योमकी सन्धि-कोखको
कँपा, हिला दश भीत दिशाएँ
आवेंगे हम जागें जिससे—
जीवनकी मृतप्राय शिराएँ !

होंगे हम अवतरित विश्वमें—
सागरपर पर्वतके पवि-से,
परवशताके नैश-तिमिरको—
चीर अनलके लोहित रविसे !

वह प्रभात होगा भविष्यका
अभी देशमें कुछ दिन रैन !
हम भविष्यके०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नवीन भीति-चित्र

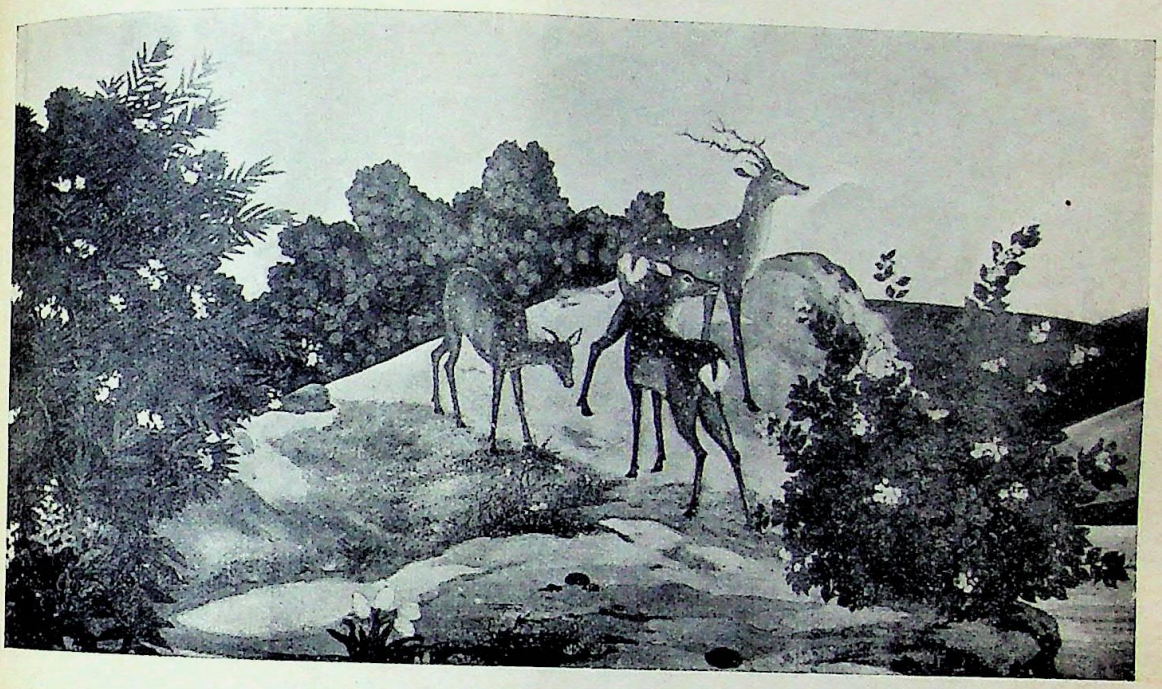

हरिण [चित्रकार—श्री सुधांशु चौधरी

सारस [चित्रकार—श्री सुधांशु चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता विश्वविद्यालयकी दीवारपर अंकित कुरुक्षेत्रमें अर्जुन [श्री धीरेन्द्रकृष्ण देव वर्मा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपालकी एक झलक

श्री अभयसिंह सिंहलीय

सन १९३५ के उत्तरार्द्धमें सारनाथ मूलगन्धकुटी-विहारका वार्षिक उत्सव था। मैं भी उत्सव देखने चला गया। वहाँ भदन्त राहुल सांकृत्यायनसे भेंट हुई। बातचीतमें मैंने कहा कि इधर कुछ दिनसे मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। मैं सिंहलका निवासी हूँ, मुझे काशीकी आबहवा पूरी तरह माफ़िक नहीं आती। राहुलजी बोले—"शिवरात्रिपर मैं नेपाल जा रहा हूँ। तुम भी अपनी न्यायकी अन्तिम परीक्षा देकर नेपाल आ जाओ। वहाँ कुछ मास रहनेसे स्वास्थ्य ठीक हो जायगा, फिर मेरे साथ तिब्बत चले चलना।"

उस समय मैं चुप हो गया। फरवरी १९३६ में राहुलजीसे पुनः भेंट होनेपर फिर उन्होंने नेपाल और तिब्बत चलनेको कहा। मैंने हिचकिचाते हुए कहा—"आप चलिये, मैं नेपाल आ जाऊँगा।"

मेरे अनेक मित्रोंने भी मुझे जानेके लिए प्रोत्साहित किया। राहुलजीने नेपाल पहुँचकर एक विस्तृत पत्र भेजा, जिसमें काठमांडू पहुँचनेकी खुलासा हिदायतें लिखी थीं।

आखिरकार जी कड़ा करके ११ मार्च १९३६ को मैं बनारस कैंटसे रवाना हो ही गया। मित्रोंने महाभारतका वाक्य 'त्रिविष्टपं स्वर्गं गत्वा' (आप तो स्वर्ग जा रहे हैं*) कहकर विदा दी। मुज़फ्फ़रपुर और सुगौलीमें गाड़ी बदलकर रक्सौल होता हुआ १२ तारीखको सवेरे आठ बजे वीरगंज पहुँचा। राहुलजीकी हिदायतके अनुसार वीरगंजमें साहु धर्मरत्नके यहाँ मुझे जाना था। साहुजी ही मेरे लिए नेपालके पासपोर्टकी व्यवस्था करनेवाले थे। कुछ दूर बढ़ा ही था कि नेपाल-पुलिसका एक सिपाही नोट-बुक लिये आ मौजूद हुआ और मुझसे सवाल करके लगा अपनी नोट-बुक भरने। कौन हो, कहाँसे आये हो, कहाँ जाओगे, क्यों जाओगो आदि सवाल पूछकर और अन्तमें यह कहकर—'तुम्हें नेपाल जानेकी इजाज़त नहीं मिल सकती,' चलता बना। खैर, मैं साहु धर्मरत्नके यहाँ पहुँचा। दूसरे दिन साहुजीने पासपोर्टके लिए प्रयत्न किया; पर सफल न हुए। इसपर मैंने काठमांडूको राहुलजीको टेलिफोन कराया। १४ मार्चको काठमांडूके उच्च अधिकारियोंने टेलिफोन द्वारा मेरे पासपोर्टकी स्वीकृति अपने वीरगंजके अधिकारीको

काठमांडूके मार्गमें

दी। अब मुझे कौन रोक सकता था; किन्तु उस दिन शनिवार था, और शनिवारको नेपाल-सरकारका रविवार हुआ करता है,—यानी उस दिन सरकारी दफ्तरोंकी छुट्टी रहती है, इसलिए एक दिन और रुकना पड़ा। दूसरे दिन सुबह अपने सामान-समेत स्टेशन जानेका हुक्म मिला। स्टेशनपर एक नेपाली अफसर पधारे।

* स्वामी दयानन्दके कथनानुसार त्रिविष्टप तिब्बतको ही कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

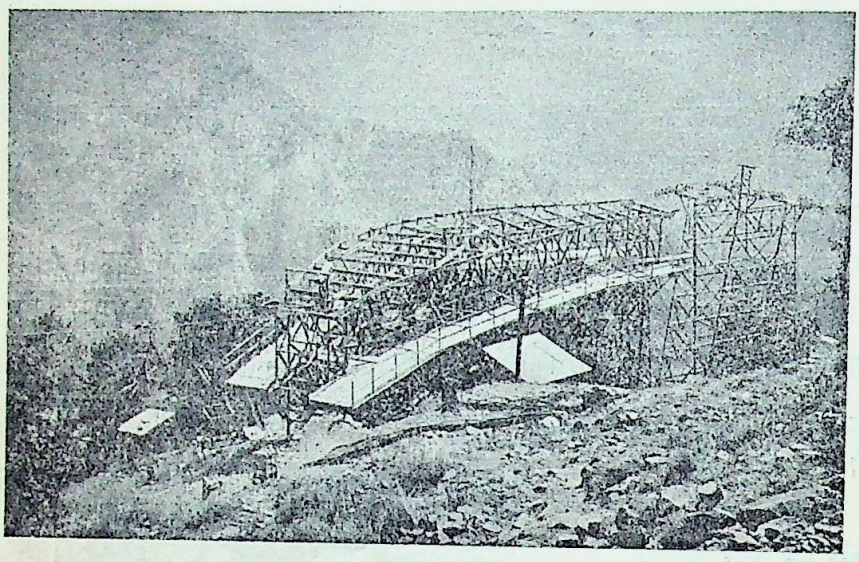

नेपालके मार्गमें रोप-वे स्टेशन

उन्होंने मुझसे दो-एक प्रश्न पूछे और चपरासीको एक अंगूठी निकालकर दी। चपरासीने इस अंगूठीसे मोहर लगाकर पासपोर्ट मेरे हवाले किया, और मैं नेपाल-सरकारकी बचकानी रेलपर सवार हो गया।

८॥ बजे गाड़ी वीरगंजसे रवाना हुई। रेलवे लाइन बैलगाड़ीकी पुरानी सड़कके साथ-साथ जा रही थी—मानो यूरोप एशियाको साथ लेकर आगे बढ़ रहा हो। कुछ मील बाद सड़कका साथ छूट गया और एक बड़ा जंगल मिला। खैर, २४ मीलका फासला तै करके १ बजेके लगभग आमलेखगंज जा पहुँचे। यहींसे रेल समाप्त हो गई।

अगली मंजिल भीमफेदी हैं, वहाँ तक लारियाँ जाती हैं; लेकिन ये लारियाँ मालढोऊ हैं। मुसाफिरोंको भी मालकी तरह लदना पड़ता है। एक रुपयेमें जगह मिली, और मैं भी नमकके बोरोंके साथ लारीपर लद लिया। अब चढ़ाई शुरू हुई। पुरानी लारी धीरे-धीरे चलती हुई और जगह-जगह रुकती हुई—कहीं पानीके लिए और कहीं पासपोर्टकी जाँच-पड़तालके लिए—शामको भीमफेदी पहुँच गई।

भीमफेदी एक छोटा गाँव है, जो दो हिस्सोंमें बँटा है। एक हिस्सा एकदम पहाड़की तलेटीमें है। दोनों हिस्सोंमें पचीससे ऊपर घर होंगे। बाशिन्दे अधिकतर नेवार हैं। यह आमलेखगंजसे २२ मील है। यहाँ तक मोटरकी पहुँच है। आगे अपने पैर या टट्टूकी पीठ ही यातायातके साधन हैं। यहाँसे काठमांडू तक—१४ मील लम्बी—रोप वे है, जिसके द्वारा माल काठमांडू पहुँचाया जाता है। लारीसे उतरते ही अनेकों कुलियोंने घेर लिया। कुछ देरके वाद-विवादके बाद सवा रुपयेपर एक कुली ठीक किया, जो मुझे काठमांडू तक ले जायगा। पेट-पूजा करके एक दूकानपर रात बिताई। सवेरे ४ बजेसे कुलीने आकर खटखटाया और हम दोनों पहाड़की चढ़ाईपर चल दिये। कुली तो अभ्यस्त था, खटाखट चलने लगा; पर मुझे अँधेरेमें रास्ता भी न साफ न दीखता था। किसी तरह आगे बढ़ने लगा। ७॥ बजे एक पहाड़की चोटीपर पहुँचा। यहाँ नेपाल-सरकारके कुछ सिपाही रहते हैं, मुसाफिरोंकी खानातलाशी ली जाती है और पासपोर्टका झगड़ा भी खत्म कर दिया जाता है।

नेपाल जानेके लिए विदेशियोंको ही नहीं, वरन नेपालियों तकको पासपोर्ट लेना पड़ता है। हाँ, सालमें एक बार आठ दिनके लिए पासपोर्टका बन्धन हटा लिया जाता है। शिवरात्रिके अवसरपर काठमांडूके पशुपतिनाथ महादेवके दर्शनको जानेवाले तीर्थ-यात्रियोंके लिए यह किया जाता है। भारतीयोंको छोड़कर अन्य विदेशियोंके लिए तो नेपालमें प्रवेश करना दुर्लभ-सा ही है। सन १८८१ से १९२५ तक—४४ वर्षके दीर्घकालमें—कुल जमा १५३ यूरोपियन काठमांडूमें प्रवेश कर पाये हैं। इनमें से भी अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

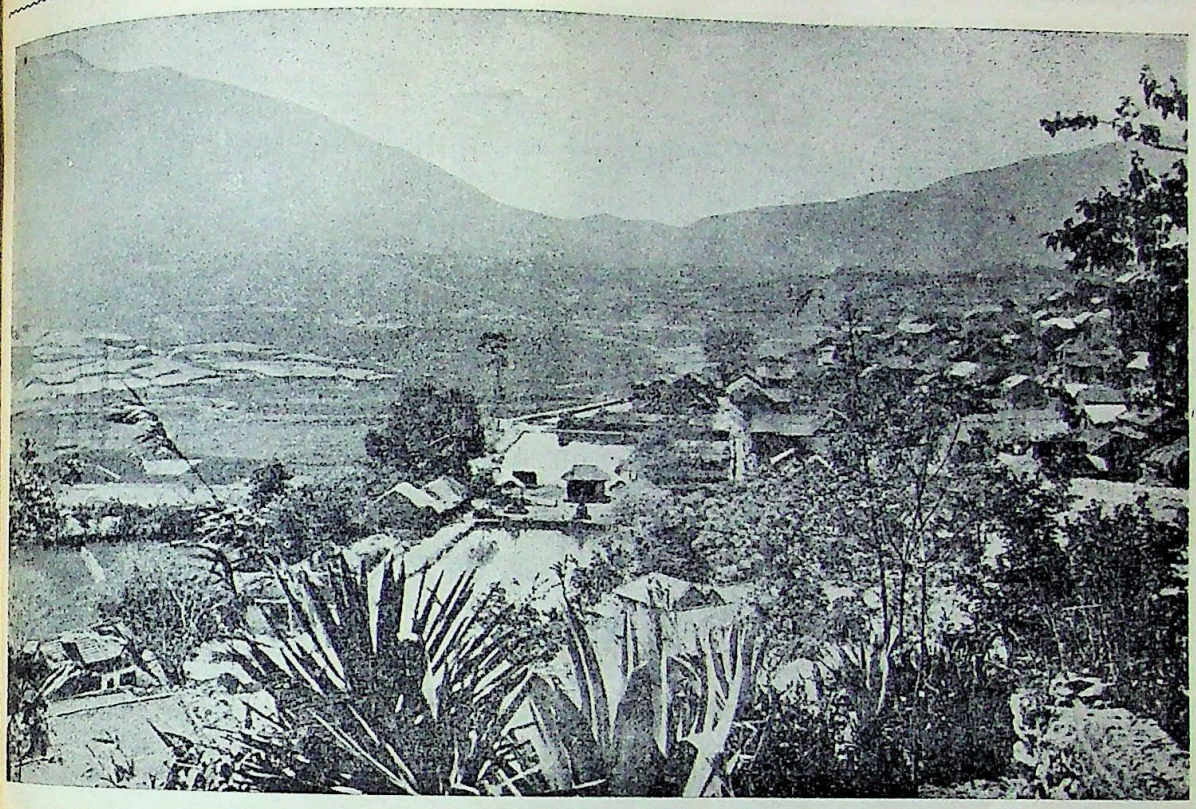

काठमांडूकी घाटी

साकारी कामपर गये थे। ५५ व्यक्ति नेपाल महाराजके अतिथि होकर गये थे।

अब उतराई शुरू हुई। ९॥ बजेके लगभग कुलीखाना पहुँचे और दोपहरका भोजन यहीं किया। आम तौरपर यहाँ मुसाफिर भोजन और आराम करते हैं। आठ-दस दूकानें भी हैं। कुलीखाना एक हरा-भरा रम्य स्थान है। यहाँके प्राकृतिक दृश्य बहुत सुन्दर हैं। झरझराहटके साथ एक स्वच्छ निर्झरणी भी बहती है। उसे देखकर सहसा मुझे अपनी मातृभूमि लंकाके 'मसकेलिय'की याद आ गई।

भोजन आदिसे फारिग़ होकर हम लोगोंने फिर रास्ता नापा। धूप तेज़ हो रही थी, साथ ही हम लोगोंकी रफ़्तार भी तेज़ हो गई। पहले पहाड़की उतराई ख़त्म हुई, तो एक दूसरा छोटा पहाड़ सामने आया। इसे भी चढ़-उतरकर पार किया। अब तीसरा बड़ा पहाड़ चढ़ना शुरू किया। इसकी चढ़ाई सबसे कठिन थी। मेरा साथी कुली पहाड़ी था; लेकिन बोझके कारण इस चढ़ाईमें वह भी पिछड़ने लगा। जगह-जगह उसके लिए रुकता, सुस्ताता, हाँपता हुआ शामके लगभग पहाड़की चोटीपर पहुँचा। अब उतराई शुरू हुई। चढ़ाव जैसा कठिन था, उतार भी वैसा ही कलेजा हिला देनेवाला था। आख़िर साढ़े छै बजे थानकोट पहुँचकर रात-भरके लिए अड्डा जमाया।

भीमफेरीसे थानकोट तक १८ मीलका मार्ग बहुत दुर्गम है। इसमें तीन पहाड़ हैं। बीचवाला तो ख़ैर छोटा है; मगर दोनों ओरके दोनों पहाड़ विकट हैं। वे एकदम सीधी दीवारकी तरह उठे हुए हैं। उनकी चढ़ाई इतनी विकट है कि उनपर गाड़ीके लिए सड़क नहीं बनाई जा सकती। इन दोनों पहाड़ोंको जिन दो दर्रों, शीशगिरि और चन्द्रगिरि, से होकर पार करना पड़ता है, वे भारतके मैदानोंसे लगभग ६,००० फीट ऊँचे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

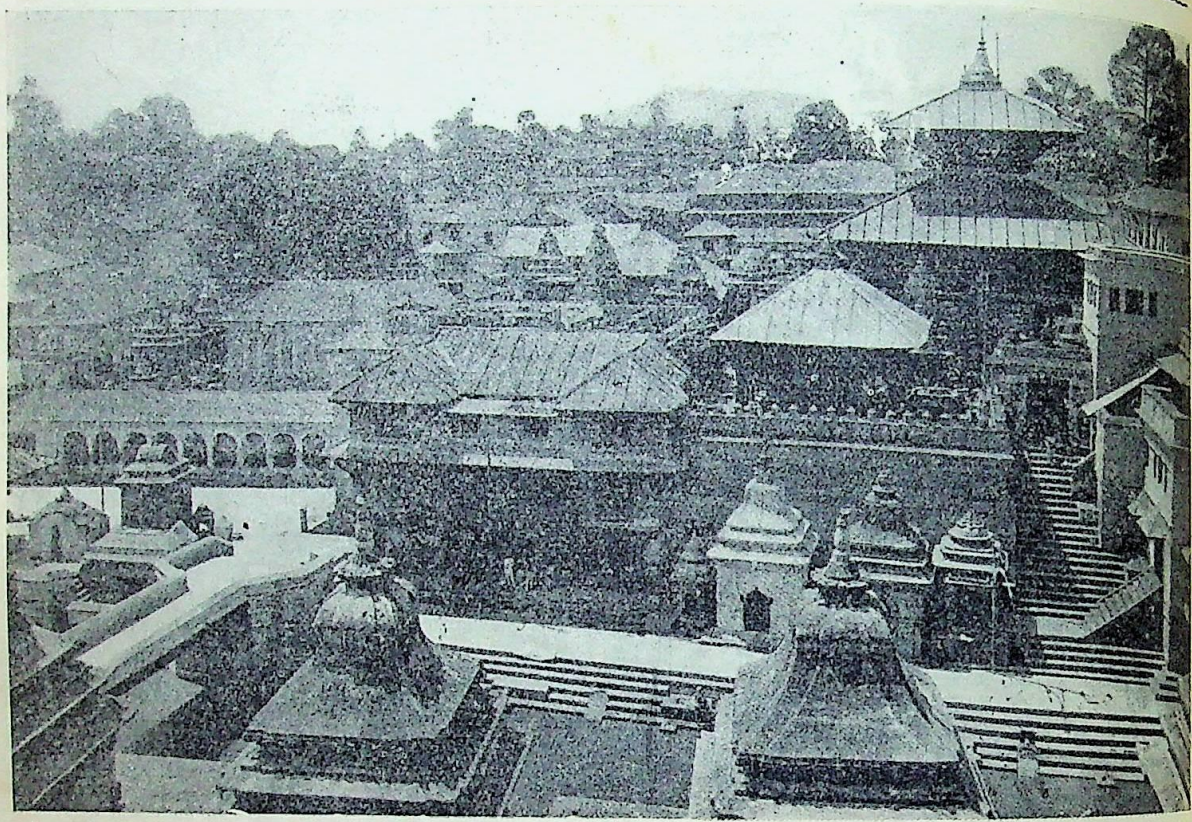

पशुपतिनाथका मन्दिर

थानकोटमें सात-आठ मकान या दूकानें हैं। नेपालके इस रास्तेमें प्रायः सभी घरोंमें मुसाफिरोंको विश्रामके लिए जगह मिल जाती है। भोजन बनानेके लिए बर्तन भी मिल जाते हैं। उनके लिए कोई भाड़ा नहीं देना पड़ता, सिर्फ दूकानदारसे भोजनका सामान ख़रीदना ही काफ़ी है। थानकोटमें मुझे एक नेपाली परिवार काठमांडूसे वापस आता हुआ मिला था। वे लोग किसी मुकदमेके सम्बन्धमें नेपाल गये थे। मुकदमा ख़त्म होनेपर वे लोग दो दिनसे अधिक काठमांडू नहीं रह पाये। पुलिसने उन्हें फौरन ही वापस लौट जानेका हुक्म दिया। बेचारे बिना भोजन किये ही काठमांडूसे थानकोटको चल पड़े। इससे प्रकट हो गया कि नेपाल-सरकार बाहरसे आनेवालोंपर, चाहे वे नेपाली ही क्यों न हों, कितनी कड़ाई रखती है।

भोजन करके लेटा; लेकिन नींद अच्छी नहीं आई। बड़े सवेरे उठकर मुँह-हाथ धोये और फिर रवाना हुए। एक फरलांग उतराव उतरनेके बाद गाड़ीका रास्ता मिला, जो काठमांडू तक चला गया है। दोनों ओर हरियाली और खेत हैं, कहीं-कहींपर मुसाफिरोंकी जाँचके लिए सरकारी चौकियाँ भी हैं। थानकोटसे काठमांडू सिर्फ सात मील है। अब चूँकि रास्ता आसान था, अतः हम लोग ९॥ बजे काठमांडू जा पहुँचे। राहुलजी मेरे लिए बहुत चिन्तित थे, कहने लगे—"यदि आज तुम न आते, तो कल मैं फिर वीरगंजको टेलिफोन करवाता।"

काठमांडू एक समतल घाटीमें बसा है। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ दीवारकी भाँति खड़े हैं। चारों ओर दृष्टि दौड़ानेसे जान पड़ता है कि प्रकृतिने पर्वतकी दीवारें घेरकर काठमांडूको एक नैसर्गिक क़िला बना दिया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

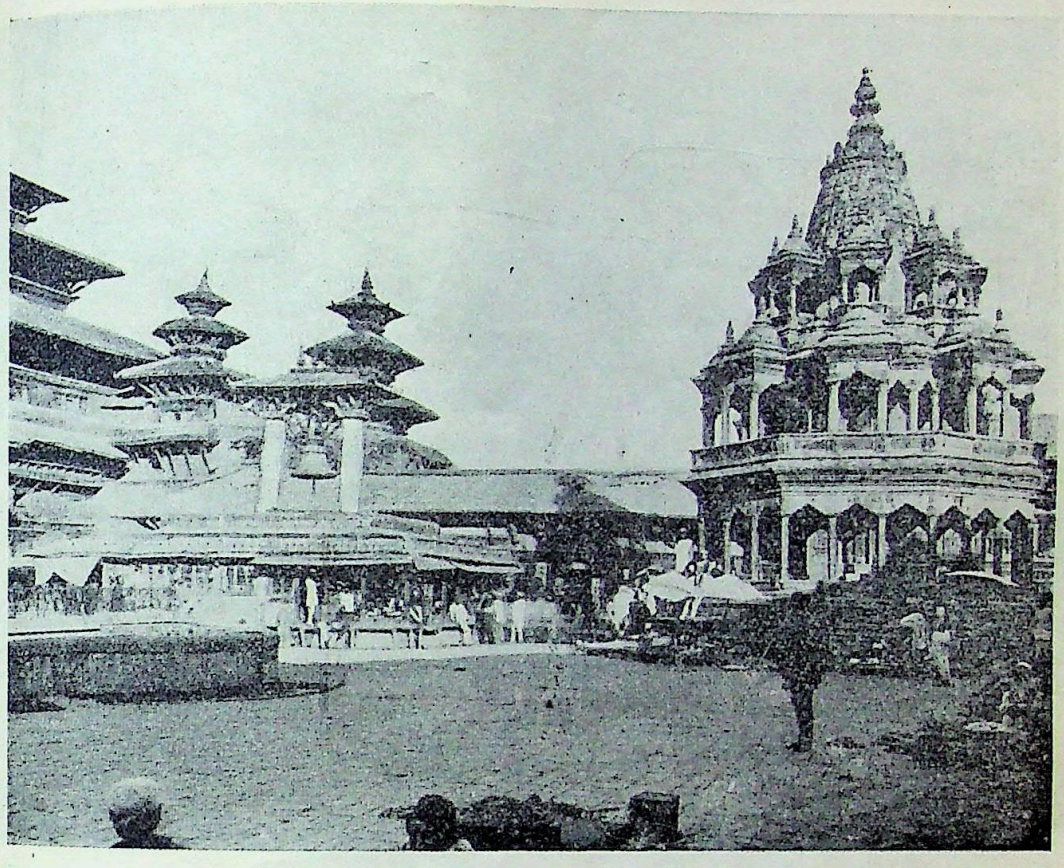

पाटनका राजदरबार-स्थल

राहुलजीको प्रूफ आदि देखकर समाप्त करना था। प्रोग्रामके अनुसार तिब्बत-यात्रा शुरू करनेमें अभी एक मासकी देर थी। इस बीचमें मुझे नेपालके ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थान देखने थे, तिब्बत प्रस्थानके पहले तिब्बती भाषाके कामचलाऊ शब्द सीखने थे और राहुलजीके काममें भी कुछ सहायता पहुँचानी थी। अतः मार्गकी थकावटका ख़याल किये बिना ही मैं इन कामोंमें लग गया।

दूसरे दिन राजगुरु श्री हेमराज शर्माके दर्शन किये। काफी देर तक बातचीत होती रही। राजगुरु महोदय प्रकाण्ड पंडित हैं। बात-बातसे उनकी विद्वत्ता टपकती थी। संस्कृत, हिन्दी, बँगला, प्राकृत, इतिहास और पुरातत्त्व आदिमें उनका ज्ञान बहुत विस्तृत है। सुप्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्तिके 'प्रमाणवार्तिक' ग्रन्थपर परिश्रम करनेका आदेश देते हुए उन्होंने मुझे कुटिला, मागधी, रञ्जना आदि प्राचीन ताड़पत्रोंकी लिपियाँ पढ़नेका अभ्यास करनेको कहा। यद्यपि श्री हेमराज शर्माने प्राचीन ढंगसे काशीमें संस्कृत व्याकरण

पाटनका अशोक-स्तूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

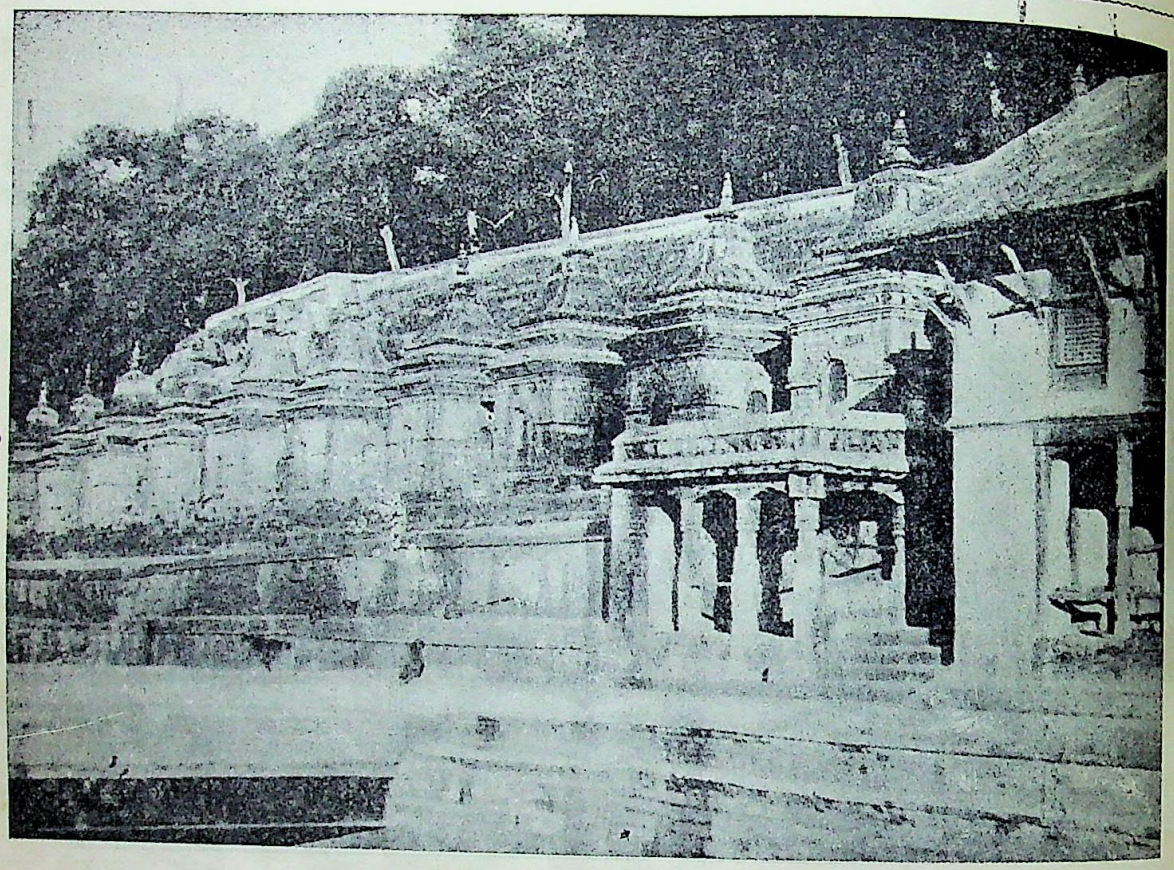

पशुपतिनाथकी मन्दिर-श्रेणी

और दर्शनका अध्ययन किया था और वे नेपाल-जैसे दुर्गम देशमें रहते हैं, जहाँ नवीन विचारोंका प्रवेश तक मुश्किल है, फिर भी मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि संसारके नवीन विचारोंसे भी वे पूर्णतया परिचित हैं। वे इस वृद्धावस्थामें भी बहुत परिश्रमसे पठन-पाठनमें निरत रहकर पल-पलमें पलटनेवाली नई दुनियाके विचारोंका अप-टू-डेट ज्ञान रखते हैं। उनके समान विद्वान, बहुश्रुत और कार्यक्षम लोग नेपालमें गिने-चुने ही होंगे।

३१ मार्च १९३६ को सवेरे साइकिलपर एक नेपाली सज्जन श्री मानदासके साथ यहाँके पुण्य-स्थानोंके दर्शनके लिए निकला। पहले 'बोधा'-स्तूपकी ओर गया। 'बोधा' नेपालके उन विशाल स्तूपोंमें एक है, जिसकी प्रसिद्धि तिब्बत और चीन तक है। नेवारी भाषामें उसका नाम खस्ती और तिब्बतीमें जरूखासर है। जब नेपाल और चीनका सरकारी सम्बन्ध था, उस समय चीनी दूतावासका स्थान भी सम्भवतः यहींपर था। आज भी बोधाकी व्यवस्था एक चीनी लामाके हाथमें है। चारों ओर मकानोंकी पंक्तियोंसे घिरा हुआ स्वर्णमय बोधा अब तक सुरक्षित दशामें है। काठमांडूसे यह स्थान तीन मीलकी दूरीपर है। राहमें सड़कके किनारे कई जीर्ण और टूटे-फूटे मन्दिर तथा स्तूप दीख पड़े। पिछले भूकम्पने इन इमारतोंको नष्ट कर दिया। जो बचा-खुचा है, उसे वर्षा और धूप नष्ट कर रही है। नेपालके सिद्धहस्त कलाकारोंकी बनाई हुई उत्कृष्ट मूर्तियाँ इन मकानोंके नष्ट हो जानेसे बाहर खुली दीख पड़ीं। मेरे साथीने बताया कि नगरसे एक मील दूर 'अमरसिंह' नामक एक विहार भी है। उनका विश्वास है कि प्रसिद्ध अमरकोषका रचयिता अमरसिंह वहीं रहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

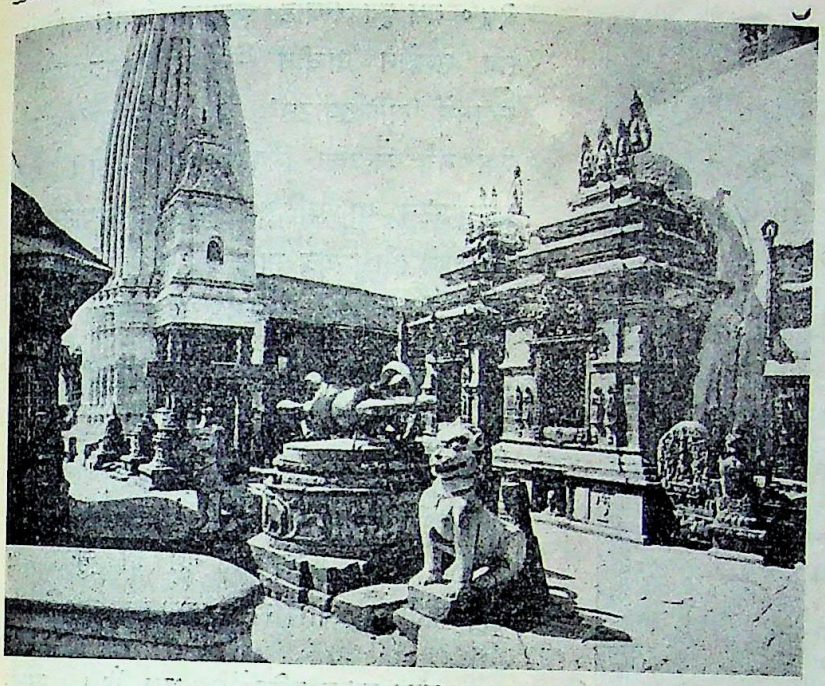

स्वयम्भूनाथ—वज्रप्रतीक

कि इसे बुद्ध कर्कशचन्द पासके पहाड़से भिक्षुओंके पानी पीनेके लिए लाये थे। इसी बागमतीके किनारे-किनारे कुछ दूर चलनेपर पशुपतिनाथका मन्दिर मिलता है। यह स्थान नेपालका प्रसिद्ध हिन्दू-तीर्थ है, जिसके दर्शनके लिए प्रतिवर्ष भारतसे भी हज़ारों तीर्थ-यात्री शिवरात्रिपर आते हैं। मन्दिरके भीतर एक स्तम्भ है, जिसके चारों ओर चार मुख हैं। उसे देखकर अननुभूत व्यक्तिके लिए ब्रह्माका भ्रम हो सकता है।

बोधाके ठीक सामने खेतके बीचसे होकर एक मील चलनेपर दाहनी ओर गुह्येश्वरीका मन्दिर मिला। यह बड़ा चित्ताकर्षक स्थान है। चारों ओर पुष्पित रजत तखतोंके बीच स्वर्ण शिखरोंका मुकुट धारण किये यह मन्दिर बड़ा मनोरम दीखता है। चारो कोनोंमें फन उठाये चार रजतमय नाग खड़े हैं, जो इसके सौन्दर्यको और भी बढ़ा देते हैं। मन्दिरके भीतर एक स्रोत है, जो चाँदीके ढक्कनसे ढका रहता है। चारों ओर कच्छपकी मूर्तियाँ हैं। नेपालके सभी देवस्थानोंमें हिन्दू और बौद्ध दोनों ही पूजा करते हैं। हाँ, देवताका नाममात्र भिन्न-भिन्न है। यहाँ भी प्रतिदिन सैकड़ों हिन्दू और बौद्ध उपासनाको आते हैं। यहाँ एक छोटी नदी, बागमती, है। कहते हैं

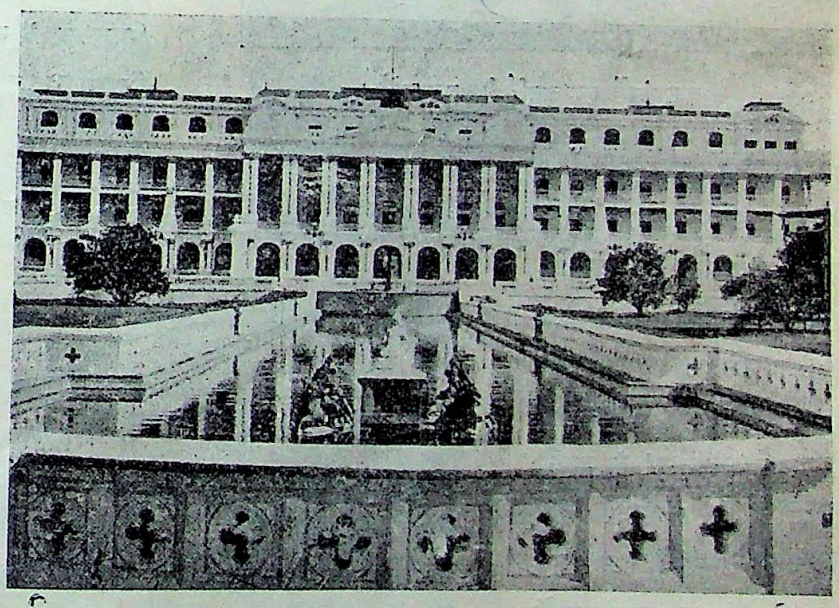

काठमांडूका सिंह दरबार—महाराजाका महल

फर्शपर रुपये जड़े हैं। प्रसिद्ध तीर्थ होनेके कारण यहाँ धन-सम्पदाकी प्रचुरता है।

पशुपतिनाथसे एक मामूली-सी सड़कपर दो मीलके लगभग चलनेपर पाटन मिलता है। बीचमें बागमती पार करनेके लिए एक खूबसूरत पुल बना है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

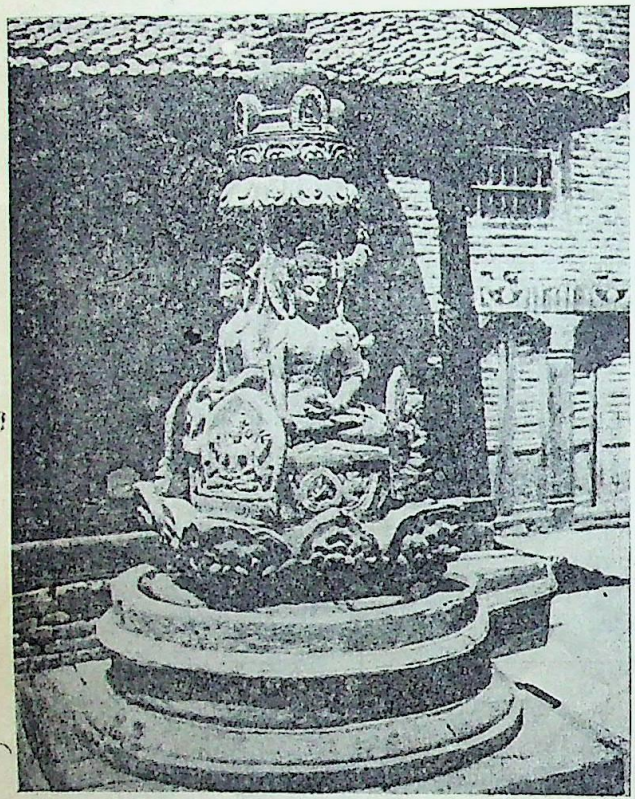

काठमांडूमें एक चतुर्दिकी बुद्ध-मूर्ति

इस स्थानका नाम सङ्ख सुगौल है और इसे शायद उत्तर-प्रयाग भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ दो नदियोंका संगम होता है। पाटनमें प्रवेश करते ही दाहनी ओर एक स्तूप है, जो 'चारुमती-चैत्य' के नामसे प्रसिद्ध है। पाटनके चारों ओर इस प्रकारके चार स्तूप हैं। इस प्रथम स्तूपके चारों ओर चार सुन्दर मूर्तियाँ और नेवारी भाषामें एक शिलालेख है, जिसमें श्री ५ राजराजेन्द्र महीपतीन्द्रका नाम है।

पाटन पुरानी जगह है। मौर्यकालमें नेपाल भी सम्राट अशोकके साम्राज्यके अन्तर्गत था। ईसासे २५० वर्ष पूर्व सम्राट अशोक नेपाल आये थे, तब उन्होंने प्राचीन राजधानी मञ्जुपाटनके स्थानमें 'ललितपाटन' या 'ललितपुर' नामसे एक नये शहरका निर्माण किया था। यही मञ्जुपाटन या ललितपाटन मौजूदा पाटन है। अशोकने इसे पवित्र मानकर इसके चारों कोनोंपर चार और नगरके बीचमें एक स्तूप बनवाया था। अशोकके साथ उसकी पुत्री चारुमती भी आई थी, जो बादमें भिक्षुणी बनकर धर्म-प्रचारके लिए यहीं रह गई थी। उसीके नामसे पाटनका प्रथम स्तूप 'चारुमती-स्तूप' कहलाता है। नगरके बीचवाला स्तूप तो नष्ट हो चुका है; हाँ, कोनोंवाले चारों स्तूप अभी तक बने हैं।

सारा पाटन मन्दिरोंसे भरा है। उसका महत्त्व और शोभा भी इन्हींके कारण है। 'नागवहल' नामक एक बौद्ध-विहार यहाँ है, जिसमें भगवान बुद्धकी एक मूर्ति है। मूर्तिके दोनों तरफ सारिपुत्र और मौद्गल्यायनकी मूर्तियाँ हैं। आजकल यहाँ एक प्राइवेट प्राइमरी स्कूल है।

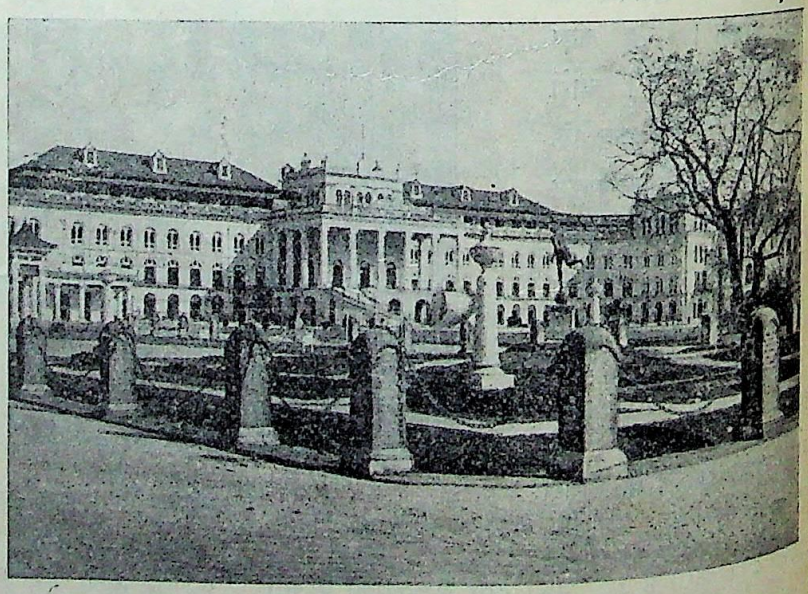

काठमांडूमें नेपाल-अधिराजका महल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागवहलके समीप पश्चिममें सरस्वती नदी (बोधोको) है। यह पाटनका प्रसिद्ध पवित्र स्थान है। यहाँ भी सोना, चाँदी और रत्नोंकी कमी नहीं। बुद्ध-मूर्तिको मुकुट और मालाएँ पहनानेका रवाज प्रायः

एक मध्य-श्रेणीकी नेपाली महिला

सभी महायान देशोंमें है। इसकी सुनहरी छत आकाशसे उतरती हुई चीलके फैले हुए पंखोंके आकारकी है और उससे भूमि तक लटकती हुई मालाएँ एक अजीब दृश्य पैदा कर देती हैं।

महाबोधा-विहारका आकार बुद्धगयाके मन्दिर-जैसा है। स्तम्भको छोड़कर समूचा मन्दिर ईंटोंका बना है। भूकम्पसे इसे भी क्षति पहुँची है; पर सरकार इसकी मरम्मत करा रही है। इस विहारकी बनावट बहुत सुन्दर है। नेपाल आनेवाले यूरोपियन इसे देखनेको लालायित रहते हैं।

एक दिन मैं स्वयम्भू-चैत्य देखने चला। यह स्थान शहरसे एक मीलकी दूरीपर एक पहाड़पर स्थित है। कुछ छोटे-छोटे स्तूप और पत्थरकी मूर्तियाँ पहाड़की तलेटीसे चैत्य तक रास्ता प्रदर्शित करती हैं। ऊपर पहुँचनेके लिए काफ़ी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। यह पहाड़ मुझे सिंहलके महिन्द पहाड़की याद दिलाता है।

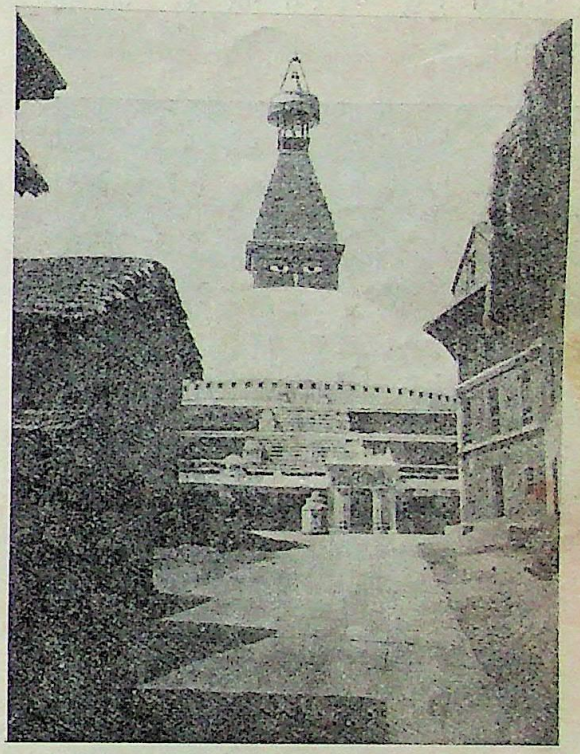

बोधा-स्तूप

प्रवेश करते ही दोनों ओर बुद्धगयाके मन्दिरके आकारके दो विहार हैं और सामने स्वयम्भू-चैत्य। चैत्यकी ओर पीठ करके अनेक सुन्दर मूर्तियाँ चारों ओर बैठाई गई हैं। स्तूप बड़े सुन्दर ढंगसे बनाया गया है। कुछ ऊपर उठकर चैत्यका कलेवर धातुमय हो जाता है। इस धातुमय कलेवरका परिमाण कोई ५० फीट होगा। सारे भागपर सोनेका पानी चढ़ा है। प्रधान चैत्यकी बगलमें भी कुछ छोटे स्तूप हैं। इसके चारों ओर, पहाड़के ऊपर ही, दो सौके लगभग लोग बसते हैं। यह एक ऐतिहासिक तीर्थ है। स्वयम्भूपुराणमें इसके विषयमें बहुत-कुछ लिखा है। प्रतिदिन इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासनाके लिए अनेक यात्री आते हैं। तिब्बत तकमें इसकी इतनी प्रसिद्धि है कि लोग वाराणसीका नाम नहीं जानते ; पर इसे ज़रूर जानते हैं। यहाँ प्रतिवर्ष तिब्बतसे भी काफ़ी यात्री आते हैं। पानीकी क़िल्लत होनेसे यहाँके यात्रियोंको अक्सर कष्ट होता है। सरकार यदि पानीकी कुछ व्यवस्था कर दे, तो बहुत अच्छा हो।

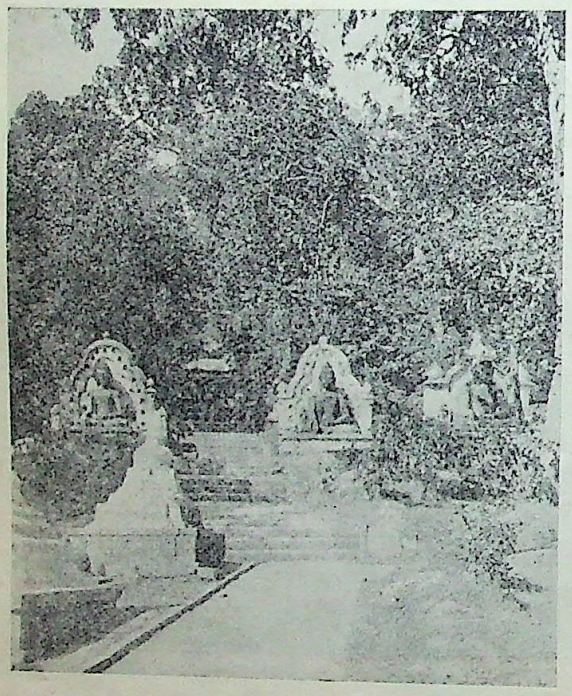

स्वयम्भूनाथमें बुद्धकी विराट मूर्ति

स्वयम्भूके पीछे उसीसे सम्बद्ध एक और पहाड़ है, जिसपर यात्रियोंके लिए धर्मशालाएँ बनी हैं। यह भी तीर्थ-स्थान है। बीच पहाड़पर लोहेकी छतके नीचे गणेश और मंजुश्रीकी मूर्तियाँ हैं। बौद्धोंमें मंजुश्री विद्याके देवता माने जाते हैं। वे हिन्दुओंकी सरस्वतीके समान हैं, फर्क सिर्फ इतना है कि सरस्वती देवी हैं और मंजुश्री देवता।

दो दिन बाद नेपालके अजायबघरको देखनेका अवसर मिला, जो स्वयम्भूके समीप एक मैदानमें है। यह अजायबघर सर्वसाधारणके लिए खुला नहीं रहता। श्री काशीप्रसाद जायसवालके लिए वह सरकारी आज्ञासे खोल दिया गया था, इसलिए मुझे भी देखनेका अवसर मिल गया। यहाँ हथियारोंके संग्रहके सिवा और कुछ नहीं है। हथियार भी सब पुराने हैं। हाँ, उन्हें रखने और सजानेमें काफी चतुरता दिखलाई गई है। हथियारोंके साथ ही यहाँ एक घटिका यन्त्र भी दीख पड़ा। मेशीनवाली घड़ीके आविष्कारके पहले यही

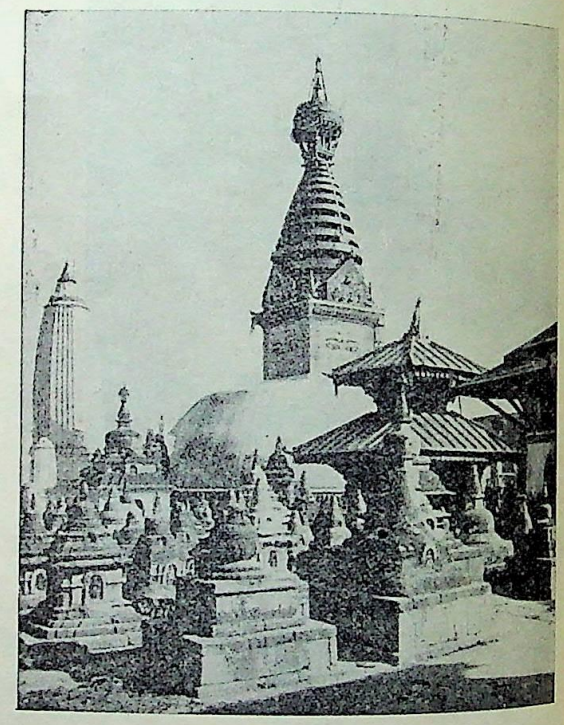

स्वयम्भूनाथके भीतरका दृश्य

घटिका यन्त्र घड़ीका काम देता था। एक बर्तनमें बालू भर दी जाती थी, जिसकी पेंदीमें एक महीन छेद होता था। उसी छेदसे बालू झर-झरकर नीचेके दूसरे बर्तनमें गिरती थी। जितनी देरमें वह समूची बालू झर जाती थी, वह एक 'होरा' (घंटा) माना जाता था। संग्रहमें कुछ पत्थरके गोले भी थे। एक रक्षकने बताया कि ये गोले तोपोंमें डाले जाते थे। मालूम नहीं कि वे तोपोंसे साबित निकलते थे, या चूरा हो जाते थे। एक छोटी तोप देखी, जो चमड़ेकी बनी थी। मुमकिन है कि यह तोप नेपालवालोंने किसी लड़ाईमें तिब्बती लोगोंसे छीनी हो, क्योंकि भोटमें चमड़ेका उपयोग बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक है। वहाँ नाव तक चमड़ेकी होती है।

६ अप्रेलको मैं अपने साथी श्री मानदासजीके साथ बालाजी देखने चला। आज हनुमज्जयन्तीका दिन था। बालाजी पहाड़की जड़में वृक्षोंसे घिरा हुआ एक सुन्दर स्थान है। यहाँ वृक्ष हैं, पहाड़ है, पानी है। कई छोटे-छोटे कुण्ड हैं। लोग उनमें कुछ फेंकते हैं, तो सैकड़ों मछलियाँ उसे पकड़नेके लिए किलोल करती हुई दौड़ती हैं। आज यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। बड़े सवेरेसे ही झुंड-के-झुंड लोग शहरसे आते हैं; शहर एक प्रकारसे खाली हो जाता है। यहाँ वे स्नान भी करते हैं। कुण्डोंकी बगलमें भूमिपर लेटी हुई एक विशाल मूर्ति है, शायद यह हनुमानकी मूर्ति है। यहाँ बाईस धाराएँ हैं। पानीकी एक ही धाराको बाईस धाराओंमें विभक्त कर दिया गया है। ये नैनीतालकी पंचधारा-जैसी हैं। हाँ, ये धाराएँ नैनीतालकी धाराओंसे चौड़ी और बड़ी हैं। बौद्ध लोग यहाँ स्नानके लिए नहीं आते, उनके आगमनका उद्देश बगलके पहाड़पर कन्दरा-दर्शन और पहाड़के मस्तकपर स्थित सिखी तथागत स्तूपकी बन्दना है। यह पर्वत सरकारी देखभालमें रहता है और आम तौरपर लोगोंको यहाँ आनेकी इजाज़त नहीं। वर्षमें एक दिन (आजके दिन) ही सर्वसाधारण यहाँ बिना रोक-टोक आ सकते हैं। यह पहाड़ चीतोंसे भरा है। जगह-जगह इन चीतोंको पकड़नेके लिए कटहरे बने हैं। इन कटहरोंमें बकरा या कोई और जानवर बाँध दिया जाता है, और कटहरेका द्वार खुला छोड़ दिया जाता है। चीतेराम भोजनकी फिक्रमें जैसे ही भीतर घुसकर जानवरपर हमला करते हैं, कटहरेका दरवाज़ा अपने-आप बन्द हो जाता है, और वे चूहेकी भाँति इस बड़ी चूहेदानीमें गिरफ्तार हो जाते हो जाते हैं।

हम लोग घूमते हुए कुछ दूर जंगलमें निकल गये। उधरसे कुछ नेपाली युवक हाथमें केमरा लटकाये वापस आते मिले। उन्होंने कहा—"आगे मत जाओ। आगे झाड़ीमें चीता है। उसकी गुर्राहट सुनकर ही हम लोग लौटे आ रहे हैं।"

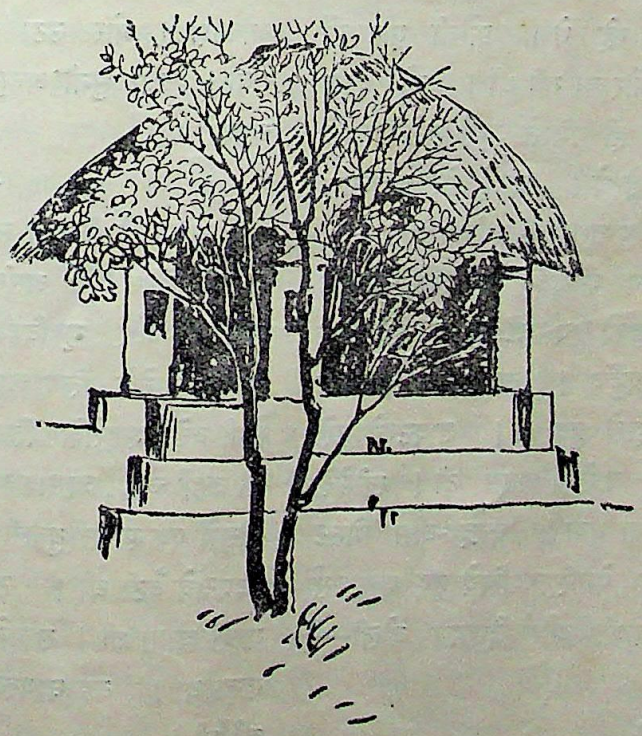

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणोंका प्रलय

श्री सुधाकर दीक्षित, एम० ए०

क्वेटा, बिलोचिस्तानका सुरम्य उद्यान क्वेटा, आज नगर-निवासियोंका क़बरस्तान था। रातके भयानक भूकम्पमें क्वेटामें प्रलय हो गया। हजारों सुदृढ़ मकान टूटकर खँडहर हो गये; लाखों स्त्री, पुरुष, बालक जीवित ही दब गये। दिन निकलनेपर बचे-खुचे लोगोंने देखा, चारों ओर विनाश था। आकाश धूलसे भरा हुआ था। सूर्यने भी बादलोंकी ओटमें अपना मुँह छिपा लिया था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद पृथिवी दहल उठती थी; एक साथ ही बहुत-सी तोपोंके दूरपर गरजने-जैसा शब्द होता था। वायुमण्डल काँप उठता था।

दोपहर तक रेसकोर्सके बड़े मैदानमें कई सौ खीमे लग गये और उनमें घायलोंकी सेवा-सुश्रूषाके लिए अस्पताल खुल गये और निराश्रितोंके लिए आश्रयका प्रबन्ध किया गया। हज़ारों फ़ौजी सिपाही गिरे हुए मकानोंके मलवेसे अधमरे और सिसकते हुए प्राणियोंको खोद-खोदकर निकाल रहे थे। फ़ौजी मोटरबसें घायलोंको रेसकोर्सकी ओर ला रही थीं। जो पैदल चलने योग्य थे, वे स्वयं ही गिरते-पड़ते रोते-कलपते खीमोंकी ओर चले आ रहे थे। चारों ओर हाहाकार, रोदन और त्राहि-त्राहिकी पुकार मची हुई थी।

तीसरे पहरके समय कैम्प हास्पिटलके सामने एकत्रित घायलोंकी भीड़को चीरता हुआ एक सिख नवयुवक डाक्टरके पास पहुँचा। वह अपने हाथोंपर एक बेहोश युवतीको सम्हाले हुए था। डाक्टरने उसे देखते ही अन्दर ले जानेकी आज्ञा दी। खीमेके दरवाजेपर पर्दा डाल दिया गया। पन्द्रह-बीस मिनट बाद हाथमें रजिस्टर और पेनसिल लिये हुए एक नर्स बाहर निकली और युवककी ओर देखकर बोली—'योर नेम प्लीज़ ?'

'मिस्त्री बोधासिंह।'

'लेडीका नाम ?

'सिरदारनी....'

'आपका सिरदारनी ?'—नर्सने युवककी ओर आँख उठाकर उसे आलोचनापूर्ण दृष्टिसे देखा। वह काँप रहा था। उसके सिरसे रक्तकी धार बह रही थी, जैसे कोई भारी वस्तु गिरनेसे सिर फट गया हो। उसके वस्त्र फटे हुए थे।

'ना जी,'—युवकने काँपते हुए कहा—'सिरदार बसन्त सिंह ठीकेदार दी सिरदारनी।'

'आलराइट',—नर्सने रजिस्टरमें नाम लिखते हुए कहा—'सिरदारनीको बच्चा हुआ है। सिरदारनी अच्छी है।' और वह खीमेमें चली गई।

फिर संध्या हो गई। कुछ समयमें क्वेटाका ध्वंसावशेष रात्रिके गहरे अन्धकारमें सो गया। रेसकोर्सके मैदानसे असंख्य अधढके, घायल, भूखे भग्नहृदय प्राणियोंका आर्तनाद एक विराट आह बनकर आकाशकी ओर उठा और महाशून्यमें विलीन हो गया। तारे सुनी अनसुनी-सी करके नित्यकी भाँति चमकते रहे !

- २ -

भूकम्पमें जिनका सर्वस्व लुट गया, उन्हें भी अपनी जान प्यारी थी। असंख्यों निराश्रिता स्त्रियाँ, अनाथ बालक और गृहविहीन पुरुष क्वेटाको छोड़कर अन्यत्र जानेके लिए आतुर थे। पंजाब और सिन्धके सभी बड़े शहरोंके लिए स्पेशल ट्रेनें छूट रही थीं। जो जहाँ चाहे, जा सकता था। इन अभागे मुसाफिरोंकी भीड़में एक रूपसी युवती पाँच-छै दिनके बच्चेको हृदयसे चिपटाये बैठी थी। उसके सुन्दर मुखपर विषादकी गहरी छाया थी। सामने एक सिख नवयुवक नम्रभावसे खड़ा था। वह घायल था, उसके सिरपर पट्टी बँधी हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सिरदारनी आपने किदर जाना है ?'—युवकने पूछा।

युवतीने कुछ उत्तर नहीं दिया। घुटनोंपर अपना सिर टेककर उसने मुँह ढक लिया। स्टेशनपर रेलवे इंजन गरज रहे थे, चारों ओर कोलाहल मचा हुआ था; किन्तु उसने कुछ नहीं सुना। वह अपने अतीतका चिन्तन कर रही थी। अभी एक वर्ष पहले बन्नूकी पहाड़ी बस्तीमें वह अपने वृद्ध पिताके पास रहती थी। फिर उसका विवाह हुआ। विवाहके एक महीने बाद वृद्ध पिता चल बसे। मायकेका चिराग़ बुझ गया। उसके पति सरदार बसन्त सिंह ही अब उसके सर्वस्व थे। तरुण, रसिक और प्रफुल्ल-वदन बसन्त सिंह उसके जीवनमें मूर्तिमान वसन्तकी तरह आये और वसन्तकी ही तरह ख़िज़ाँके एक झोंकेमें चले गये। आह, वे उसे कितना प्यार करते थे! उसके पूरे नाम फूलकौरको भूलकर वे उसे 'फूल! फूल!' कहकर पुकारते थे और मधुलोभी भ्रमरकी भाँति उसके चारों ओर मँड़राते हुए कुछ गाते थे। उस प्रलयकी रातको भी वे गा रहे थे। उस रातको उनके सिन्धी मित्र और पुराने सहपाठी डाक्टर अदवानी उनके घर मेहमान थे। उनके अनुरोधसे बसन्त सिंहने उन्हें बहुतसे गायन सुनाये। अर्द्धरात्रिके समीप जब फूल सोनेके कमरेमें अपने बसन्तकी प्रतीक्षा कर रही थी, तब वह ड्राइंग-रूममें गा रहे थे—

"रात अँधेरी कुम्भण घेरी दरिया ठाठाकारे,
अरे असादाँ हाल को जाणे जो बैठे दरियाव किनारे।"

मधुर स्वर-लहरी अन्धकार-भरे आकाशमें गूँज रही थी। प्रतीक्षासे विह्वल फूलने भी सोचा—'अरे असादाँ हाल को जाणे....' और इसी ध्यानमें सो गई। बसन्त सिंह अपने मित्रके साथ दूसरे कमरेमें सोये। फिर....फिर क्या हुआ, यह सोचकर फूलकौरका सिर चकराने लगा। स्टेशनपर से सीटीकी तीखी आवाज़ उठी और 'भक-भक' 'भक-भक' शब्द करती हुई एक ट्रेन चल दी। उसका ध्यान भंग हो गया। सामने खड़ा बोधा सिंह कह रहा था—'पंजाब दी गड्डी छूटी, किदर जाना सिरदारनी ?'

फूलकौरने उत्तरमें अपने सजल नेत्रोंसे बोधा सिंहकी ओर देखा। वह कुछ न बोल सकी; परन्तु उसका अश्रु-जल कह रहा था—'क्या बताऊँ, किधर जाना!' वह मानो पूछ रहा था—'क्या तुम्हारे साथ चलूँ? क्या तुम....क्या तुम....' आँखोंमें काँप-काँपकर कपोलोंपर ढलककर मोती-जैसे अगणित आँसू ज़मीनपर गिरकर धूलमें मिल गये।

बोधा सिंह मिस्त्री था। उसे लकड़ी और लोहेकी अच्छी पहचान थी; पर वह आँसुओंकी भाषा नहीं जानता था। वह अविवाहित था, स्त्री-हृदयकी भावनाओंको नहीं पहचानता था। वह ग़रीब था; एक समृद्ध घरानेकी कुल-वधू क्या चाहती होगी, यह वह नहीं समझ सकता था। सिरदारनीको टूटे मकानके मलवेमें से निकालकर उसने अपना कर्तव्य पालन किया था। अब उसे उसके सम्बन्धियोंके यहाँ पहुँचाकर दूसरा कर्तव्य पालन करना चाहता था। बस।

किन्तु थोड़ी देरमें उसे मालूम हो गया कि सिरदारनीका इस विस्तृत संसारमें गोदके बच्चेको छोड़कर कोई अपना नहीं है। वह भी अकेला ही था। केवल एक बुढ़िया मौसी अमृतसरमें रहती थी। उसने वहीं जानेका निश्चय किया। अगली स्पेशल ट्रेनसे बोधा सिंह अमृतसरके लिए रवाना हुआ। गाड़ीके एक कोनेमें सिरदारनी अपने बच्चेको छातीसे चिपटाये बैठी थी। खिड़कीमें से उसने देखा कि क्वेटा—उसके जीवनकी रंगभूमिका ध्वंसावशेष—प्रतिक्षण उससे दूर होता हुआ आँखोंसे ओझल हो गया! 'भक-भक' 'धड़-धड़' करती हुई स्पेशल ट्रेन उसे किसी दूसरे संसारमें ले जा रही थी।

- ३ -

अमृतसरमें रहते हुए फूलकौरको कई महीने बीत गये। वह दिन-भर घरके काम-काजमें लगी रहती। बोधा सिंह पी० डब्ल्यू० डी० के वर्कशापमें नौकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया था। जब वह थका हुआ शामको कारखानेसे लौटता, तब फूल दूधकी लस्सीसे उसका स्वागत करती। उसके मैले साफे और काले दाग़ लगी हुई कमीज़को खूटीपर टाँगती और शामका भोजन बनानेमें लग जाती। बोधा सिंह उसके छै मासके लड़के निहालको गोदीमें लेकर खिलाने लगता। जब बोधा सिंह झुनझुना बजाता हुआ कहता—'सिरदारा, सिरदारा,' तब वह अबोध शिशु अपना छोटा-सा गोल मुँह फाड़कर मुसकरा देता और अपने नन्हें-नन्हें हाथोंसे उसकी दाढ़ी खींचने लगता। बोधा सिंह खिलखिलाकर हँस पड़ता। रसोईघरमें से फूलकौर मातृ-स्नेहसे प्लावित-सी होती हुई शिशुको मीठी झिड़की देती। बुढ़िया मौसी हँसने लगती।

रातको सब कामसे निपटकर फूलकौर अपने निहालको हृदयसे चिपटाकर बुढ़िया मौसीके पास सो जाती। कभी-कभी बहुत रात बीते तक उसकी आँख नहीं लगती। अपने उजड़े हुए जीवन-वसन्तका ध्यान करके वह फूट-फूटकर रोने लगती। उसके निहालके पिता बसन्त सिंह कैसे थे—रूपवान, धनवान, बुद्धिमान। उन्होंने फूलको अपने हृदयसे लगाकर अन्धकारमयी नीरवतामें न-जाने कितनी बार प्रेम प्रकट किया था, न-जाने कितनी बार आजन्म सुखके स्वप्न देखे थे। अहा, वे दिन कैसे मधुर थे! और अब? अब फूलका जीवन कैसा था—सुखविहीन, प्रेमशून्य। उसे अपने निहालके अतिरिक्त संसारमें किसीसे प्रेम न था। हाँ, बोधा सिंहके लिए उसके हृदयमें स्थान था; परन्तु वह कृतज्ञताके कारण, प्रेमके कारण नहीं। बोधा सिंहने भूकम्पमें उसके प्राण बचाये; वही अब उसका और निहालका पालन-पोषण कर रहा था। वह इस उपकारके बदलेमें उसके लिए क्या न करती। बोधा सिंह उसके बहुत निकट था; किन्तु क्या वह बसन्त सिंह द्वारा रिक्त किये स्थानको भर सकता था? नहीं। बसन्त सिंह फूलके जीवनके कवित्व थे—उल्लास, उन्माद और संगीतसे पूर्ण। और बोधा सिंह सेवा-भावका जीवित आदर्श था—निरीह, निस्पृह, महान, परन्तु सम्मोहनविहीन। फूल बसन्त सिंहसे प्रेम करती थी उन्हें अपना इष्ट मानकर; और बोधा सिंहका आदर करती थी उसे अपना उपकारी जानकर। अपने सूने हृदयमें प्रेमके स्थानपर आदरका भाव भरकर उसने अपना दुख भुलानेका बहुत प्रयत्न किया; पर वह असफल रही। उसका प्रेमशून्य जीवन उपकारके भारसे जितना अधिक दबता गया, वह उतनी दुखी होती गई। और जब वह उऋण होनेकी कोई युक्ति सोचती, तब उसे कुछ न सूझ पाता।

इस प्रकार दो महीने और व्यतीत हो गये। गरमीका मौसम ढल गया, वर्षा शुरू हो गई। इस बीचमें एक दिन अचानक ही बोधा सिंहकी बुढ़िया मौसी चल बसी। अब घरमें बोधा सिंह और फूलके अतिरिक्त और कोई नहीं रहा; निहाल तो अबोध बालक था। मौसीके मरनेसे फूल और बोधा सिंहके बीचमें जो मानो एक झीना-सा परदा था, वह फट गया। अब वे दोनों घरमें किस अन्य व्यक्तिसे बात करते! मौसीके रहते हुए भी फूल सब-कुछ करती थी; पर उसके व्यवहारमें एक प्रकारकी तटस्थता-सी थी; वह अब न रह सकी। किसी चीज़की आवश्यकता होती, तो उसे बोधा सिंहसे कहना पड़ता। बोधा सिंह भी अनुरोधके साथ उसकी आवश्यकताओंके बारेमें उससे पूछता और उसके न बतानेपर अपनी इच्छासे उसके लिए नये कपड़े बनवाता, नई वस्तुएँ लाता। वह उन्हें स्वीकार कर लेती एक प्रकट मुसकानके साथ; पर उसके हृदयका विषाद और भी प्रगाढ़ हो जाता—उपकारका भार बढ़ता जा रहा था।

इस प्रकार दो महीने और कट गये। एक दिन शाम ही से बोधा सिंह खाटपर पड़ रहा। कुछ खाया भी नहीं। उसके सिरमें भयंकर पीड़ा थी। फूल चिन्तित हो गई। निहालको दूध पिलाकर उसने और दिनसे जल्दी ही सुला दिया। फिर बड़े संकोचसे बोधा सिंहके कमरेमें गई। वह कराह रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर प्रबल वायु घरके किवाड़ोंमें सिर मार-मारकर जैसे कराह रही थी। आकाशमें बादल गरज रहे थे। घटाटोप अँधियारी थी। हाथको हाथ नहीं सूझता था।

साहस करके फूल बोधा सिंहकी खाटके पास फर्शपर बैठ गई और उसका सिर दाबने लगी। बोधा सिंहने आँख खोलकर उसकी ओर देखा; वह रोने लगा। लोहे और लकड़ीसे सम्पर्क रखनेवाला मिस्त्री रूपवती युवतीके स्पर्शको नहीं सहन कर सका। उसका शरीर काँप रहा था; हृदय धक्-धक् कर रहा था। बोधा सिंह अपने वशमें न था। तभी वायुके एक प्रबल झोकेसे खिड़की खुलकर बन्द हो गई, दीपक बुझ गया। तभी आकाशसे मूसलधार वर्षा होने लगी....

- ४ -

जबसे फूलने बोधा सिंहको आत्मसमर्पण किया, तबसे वह प्रसन्न रहने लगी। वह सतीत्वके उच्च आदर्शसे पतित हो गई; किन्तु उसने एक दूसरे आदर्शका निर्वाह किया, अपने प्राणरक्षकके प्रति कृतज्ञता प्रकाशमें अपनेको दे दिया। अब उपकारके भारसे वह व्यथित नहीं होती। बोधा सिंह उसका सब-कुछ था—पिता, पति, भाई, मित्र, सब-कुछ। वह उसपर अपना अधिकार समझने लगी। उसने नवीन उल्लासके साथ अपना नवीन जीवन आरम्भ किया; परन्तु फिर भी कभी-कभी बसन्त सिंहकी स्मृति हृदयमें शूलकी भाँति खड़ी हो जाती थी। ऐसी अवस्थामें उसे जान पड़ता कि यद्यपि उसने अपना शरीर बोधा सिंहको दे दिया; किन्तु उसका हृदय अब भी बसन्त सिंहका था। उसके प्राण अपने खोये हुए प्राणधनको खोजनेके लिए विह्वल थे।

एक रातको फूलने स्वप्न देखा। भूकम्पके झकोरेसे छिन्न-भिन्न हुआ क्वेटा श्मशानके समान वीरान था। धड़ाधड़ वर्षा हो रही थी, कभी-कभी बिजलीकी चमकसे क्षणभरको अन्धकार मिट जाता था। एक टूटे हुए मकानके खँडहरसे मर्मभेदी गायनका स्वर उठा—

"रात अंधेरी कुम्भण घेरी दरिया ठाठाकारे
अरे असदाँ हाल को जाणे.....

बसन्त सिंहकी आवाज़ थी—वही मस्ती, वही माधुर्य, वही उड़ान। फूल विह्वल हो गई। उसी समय बिजलीकी कड़कड़ाहटसे उसकी आँख खुल गई। स्वप्न भंग हो गया। देखा कि बोधा सिंह पासमें लेटा हुआ सुखकी नींद सो रहा है, कमरेके एक कोनेमें लालटेन जल रही है और बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है। जागनेपर भी उसे कुछ समय तक यही जान पड़ा कि कहीं बहुत दूरपर बसन्त सिंह गा रहे थे—'अरे असादाँ हाल को जाणे....' और आकाश मर्माहत होकर अविरल अश्रुधारासे रो रहा था। वह भी रोने लगी।

इस प्रकार मुसकान और आँसू, सुख और दुखकी आँखमिचौनीमें फूलके जीवनका एक महीना और कट गया; किन्तु वह दिनपर दिन अधिक दुर्बल होने लगी। बोधा सिंह चिन्तित हो गया। एक दिन वह डाक्टरको बुला लाया। डाक्टरने परीक्षा करके कहा—'कोई चिन्ताकी बात नहीं। गर्भावस्थाके कारण इनका मन कभी-कभी व्यग्र हो जाता है। वैसे कोई ख़ास रोग नहीं है। हाँ, दिल कमज़ोर है, ताक़तकी दवा दे रहा हूँ....'

डाक्टरके जानेके बाद बोधा सिंहने फूलसे हँसते हुए कुछ कहा। उसकी आँखोंमें उल्लास था। फूल सुनकर चुप हो रही; उसकी आँखोंमें थी विषाद और विवशताकी गहरी छाया।

मातृत्व स्त्री-जीवनका श्रृंगार है; किन्तु फूल संहारके रूपमें उसकी कल्पना करने लगी। निहाल—बसन्त सिंहकी जीवित-जागृत स्मृति—उसके निधन जीवनको निहाल करनेके लिए था ही; फिर उसे माता बननेकी आवश्यकता क्या थी? किन्तु वह विवश थी। दुर्भाग्यवश प्रतिकूल परिस्थितिमें फँसकर उसके शरीरके विकारसे उसकी आत्माकी हार हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका आन्तरिक जीवन दुखी हो गया। वह अपने आपसे घृणा करने लगी और बोधा सिंहकी ओर रूखी पड़ गई। इस मानसिक अवस्थामें उसे कुछ नहीं सुहाता था। प्रायः कल्पनामें डूबी-सी चुपचाप बैठी रहती थी।

एक दिन दोपहरमें घरके काम-काजसे निपटकर फूल अपने विचारोंकी उधेड़बुनमें लगी हुई थी। उसका निहाल घुटनोंके बल सरकता हुआ घरके बाहर निकल गया और सड़कपर खेलने लगा। तभी कहींसे एक कार तीव्रगतिसे चली आ रही थी; निहाल मुश्किलसे पाँच गज़के फासलेपर था। यह देखकर एक सड़क चलते हुए सज्जनने उसे दौड़कर उठा लिया; किन्तु वह स्वयं मोटरकी झपेटमें आकर गिर पड़ा और उसकी टाँगें पहियोंके नीचे दबकर टूट गईं। बाज़ारमें कोलाहल मच गया। पचासों आदमी इकट्ठे हो गये। फूल भी शोरगुल सुनकर चौंक उठी और निहालको पुकारती हुई घरके दरवाज़ेपर निकल आई। उसने देखा कि उसका निहाल मृत्युके मुँहसे बाल-बाल बच गया है; परन्तु उसके रक्षकका शरीर कुचल गया है। उफ़! कैसा बलिदान हुआ उसके बच्चेके लिए। फूल धन्यवाद देनेके लिए आगे बढ़ना चाहती थी; किन्तु अपने उपकारीकी ओर देखते ही वह चीख़ उठी और बेहोश हो गई।

कुछ लोग बच्चेके रक्षकको मोटरमें लिटाकर हासपिटलकी ओर ले चले। रास्तेमें किसीने पूछा—'सिरदारजी, आपका किदर रहना है?'

'क्वेटा,'—उसने उत्तर दिया। फिर शारीरिक और मानसिक पीड़ासे व्यथित होता हुआ बोला—'पिछले भूकम्पमें मेरा सर्वनाश हो गया। स्त्री मर गई। सब-कुछ नष्ट हो गया। मैं भी अपने मकानके खँडहरमें दब गया था, फिर न-जाने कैसे बच गया, अभागा मैं...!' उसका कंठ रुँध गया, नेत्र सजल हो गये—'भाईजी', प्रश्न करनेवालेकी तरफ़ कातर दृष्टिसे देखकर कहने लगा—'वह देवी थी, प्रेमकी देवी, रूपकी देवी; उसके बिना दुनिया सूनी हो गई। मैं जगह-जगह भटककर थक गया। आज मोटरसे दबकर मर जाता, तो उसके पास पहुँच जाता।' वह फूट-फूटकर रोने लगा।

इतनेमें कार हासपिटल पहुँच गई। घायलको तुरन्त आपरेशन रूममें ले जाया गया। डाक्टरने रजिस्टरमें लिखा—"सरदार बसन्त सिंह—मोटर ऐक्सिडेन्ट—सीरियस—"

उधर फूलकी बुरी दशा थी। उसकी आत्मा बसन्त सिंहमें विलीन होनेके लिए गोली खाये हुए मृगकी भाँति तड़प रही थी। प्रेम तरसता हुआ, तड़पता हुआ आग्रह कर रहा था—'फूल चल, बसन्त आ गया!' किन्तु लोकाचार उसके भावी मातृत्वके रूपमें कह रहा था—'नहीं, तू पतित है, वह तुझे स्वीकार नहीं करेगा!' उसके अन्तस्तलमें एक द्वन्द्व मचा हुआ था—करुण, दारुण, विह्वल। जीवनमें एक भयंकर बवंडर उठ रहा था, प्राणोंमें जैसे प्रलय हो रहा हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनके राष्ट्रपति जनरल चांग काई शेकको चीनी विद्रोहियोंने क़ैद कर लिया था। चांग काई शेकके जन्म-दिनपर देशवासियोंने उपहारमें उन्हें ये हवाई-जहाज़ दिये थे, जिन्हें बागियोंने तीन हफ्ते अटकाये रखकर अन्तमें छोड़ दिया।

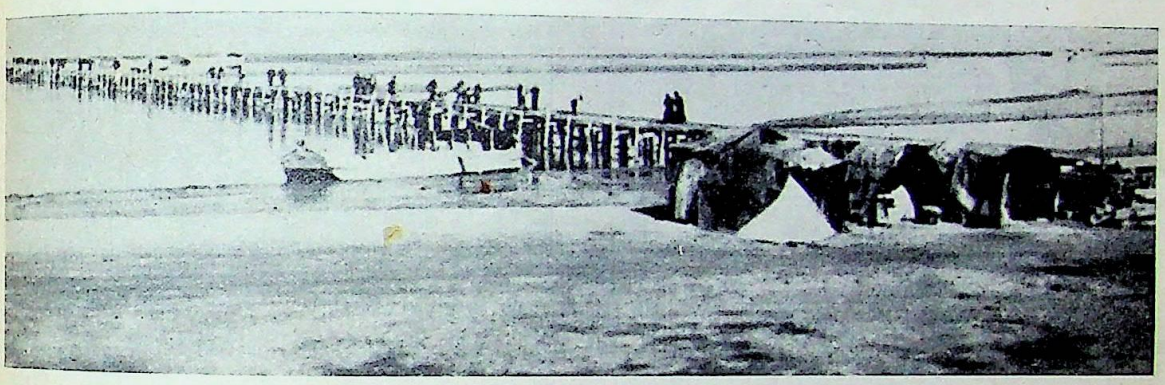

सियेन यांगका पुल—दक्षिणमें यहाँ तक चीनी विद्रोही अग्रसर हो आये हैं

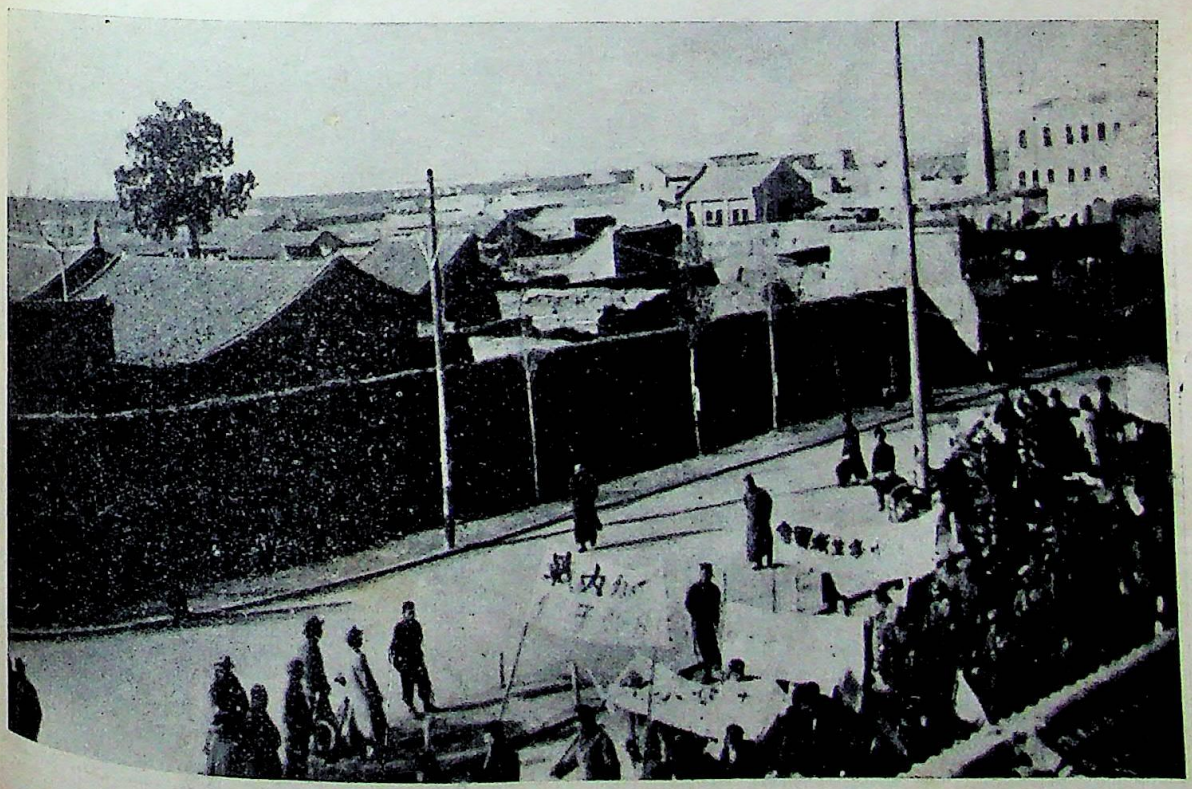

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सियेनके अधिवासी चीनकी केन्द्रीय सरकारके विरुद्ध लोगोंको उकसानेके लिए जुलूस निकाल रहे हैं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जेमी मोदी साइकिलपर संसार-भरका भ्रमण करके हालमें भारतवर्ष लौटे हैं

जापानमें युद्धकी तैयारी। स्कूल-कालेजोंकी लड़कियाँ तक राइफल चलाना सीख रही है

इटलीकी 'पहाड़ी सेना' अथवा बर्फपर पैरमें लकड़ी—'स्की' (शी)—बाँधकर दौड़नेवालोंका दल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविकी तरंग

श्रीयुत गिरीश

उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

उभरकर चलीं
कुछ ठहरकर चलीं फिर
लहरती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

उलझती-सुलझती चलीं दूर थोड़ी,
मिलो हंसिनी-हंसकी एक जोड़ी;
लिये चंचुमें मोतियोंके निवाले,
क़दम रख रहीं हर क़दमको सँभाले।
निरखती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

अचल चोटियाँ हिममें खोई खड़ी थीं,
वहीं पास डल झील सोई पड़ी थी;
लहर-पर-लहर करवटें थीं बदलती,
न केसरकी साड़ी सँभाले सँभलती।
थिरकती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

ज़रा दूरपर देव-बाला खड़ी थीं,
लिये हाथमें मंजु माला खड़ी थीं;
विनयसे मनोहर बरुनियाँ झुकाये,
मधुर प्रेम-संगीत स्वर्गीय गाये।
मचलती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

दिखाई पड़ा एक आवास सुन्दर,
जिसे देखकर मोह जायें पुरन्दर;
ज़रा खोलकर जो शयन-कक्ष देखा,
खुले गौर भुज-मूल औ' वक्ष देखा।
ठिठकती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

चलीं और आगे मिली एक कारा,
जहाँ बन्द था एक बन्दी बेचारा;
मलिन वस्त्र थे और बंधन कठिन थे,
लटें नोचता था जवानीके दिन थे।
कसकती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

बढ़ीं देखतीं क्षीण गायें खड़ी हैं,
हज़ारों तरहकी बलायें खड़ी हैं;
खड़ी नारियाँ हैं झुकी केश रूखे,
खड़े रो रहे बाल-गोपाल भूखे।
सिसकती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें;

कि सहसा किसीने तलेसे पुकारा,
सुना, कह रही थी धरित्री उदारा—
'अरी ओ दिवानी, कहाँ जा रही हो?
तुम्हें चैन हो, माँ मरी जा रही हो।'
झिझकती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

युवा औ' युवतियाँ मिलीं और आगे,
खुली छातियाँ थीं, वचन प्रेम-पागे;
चिरंजीवी हो क्रान्तिकी बोलियाँ थीं;
चली आ रही सामने टोलियाँ थीं।
उबलती चलीं रे हृदयकी तरंगें;
उमड़ती चली रे हृदयकी तरंगें।

कहींपर रुकी थीं
कहींपर झुकी वे
मुखर हो गईं पर यहाँ वे तरंगें;
उमड़ती चलीं रे हृदयकी तरंगें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम्य साहित्यकी माँग

श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

ग्राम्य साहित्यकी आवश्यकता

संसारकी सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। एक ज़माना था, जब भारतीय कवि-मण्डली अपने रसिक प्रभुओंको रिझानेके लिए नायिका-भेद तथा नायिकाओंके नख-शिख-वर्णन आदि नपुंसक साहित्यकी सृष्टि करना ही अपनी विद्वत्ताकी पराकाष्ठा समझती थी। उसके बाद वीर-गुण-गान-सम्बन्धी साहित्य-रचनाका समय आया। आजकल 'वादों' का दौरदौरा है; 'हालावाद', 'प्यालावाद', 'रहस्यवाद', 'छायावाद' आदि न-जाने कितने 'वादों' की उत्पत्ति हो चुकी है, और ऐसा लगता है कि यदि हिन्दी-साहित्यका यही दृष्टिकोण रहा, तो भविष्यमें न-जाने और कितने 'वादों'की उत्पत्ति होगी। प्रश्न यह है कि इन 'वादों'से भारतीय ग्रामीण जनताका, जिनकी संख्या भारतकी कुल आबादीकी तीन-चौथाई है, क्या उपकार हुआ है? भले ही दस-बीस समझदार साहित्य-मर्मज्ञोंका उनसे मनोरंजन हुआ हो; किन्तु हम तो उसी साहित्यको सर्वांगपूर्ण कहेंगे, जो थोड़ा-बहुत सबके हितके लिए हो। ज़मानेका तक़ाज़ा भी कोई चीज़ है। उसका भी कुछ मूल्य होता है। बेवक़्तकी शहनाईसे अरुचि ही पैदा होती है। आज जब भारतका प्रमुख अंग ग्रामीण समाज एक टुकड़ा रोटीके लिए तरस रहा हो, लज्जा-निवारणार्थ तन ढाँपनेके लिए लत्ते-लत्तेके लिए मुहताज हो तथा भूकम्प, अकाल और बाढ़-बहैयासे त्रस्त होकर अपने जीवनसे निराश हो चुका हो, उस समय इन वादोंकी क्या उपयोगिता हो सकती है? पेट भरेपर सब 'वाद' अच्छे लगते हैं। अस्तु, अब समय आ गया है कि साहित्य-सेवी देहातोंकी ओर लौटें और उन निरीह, निस्सहाय तथा मूक ग्रामवासियोंके सुधारके कुछ उपाय सोच निकालें, जिनसे उनकी दशा सुधर जाय, और वे अज्ञानरूपी निविड़तम खड्डसे निकलकर ज्ञान-मार्तण्डका दर्शन कर सकें।

गत लखनऊकी नुमाइशमें हिन्दुस्तानी एकेडेमीके पंचम वार्षिक साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्ष-पदसे श्री राय राजेश्वर बलीने अपने भाषणके सिलसिलेमें ग्राम्य साहित्यके मसलेपर भी कुछ प्रकाश डाला था, उसका आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है—

"एक और बातकी तरफ़ मैं एकेडेमीका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। हमारे देशमें ऐसा साहित्य तैयार करनेकी आवश्यकता बहुत अधिक है, जो गाँववालोंके लिए उपयोगी हो सके। गाँववालोंकी आवश्यकता केवल ऐसी पुस्तकोंकी ही नहीं है, जिनमें मानव-समाजकी आधुनिक उन्नतिका पता उन्हें लग सके, बल्कि वे ऐसी पुस्तकें भी चाहते हैं, जिनसे उनका यथार्थ मनोरंजन हो सके। मेरे ख़यालमें यह कार्य बहुत मुश्किल नहीं है; किन्तु इसके लिए बहुत योग्य व्यक्तियोंकी आवश्यकता पड़ेगी।....साहित्य अब केवल कुछ लोगों तक सीमित होकर नहीं रह सकता और न उसे रहना ही चाहिए। जिस आवश्यकताकी तरफ़ मैं आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ, उसकी पूर्तिसे हम अधिक दिनों तक विमुख नहीं रह सकते। सर विलियम मैरिसने अपने भाषणमें गश्ती और ग्राम-पुस्तकालयोंके प्रोत्साहन और उनमें रहने लायक साहित्यके तैयार किये जानेपर ज़ोर दिया था। मेरे ख़यालमें हिन्दुस्तानी एकेडेमीके लिए यह कार्य करनेकी आवश्यकता आज और भी अधिक है। यह कार्य वह दो तरहसे कर सकती है—एक तो यह कि इस तरहका जो साहित्य पहले ही से है, उसे हिन्दीमें लाया जाय, और दूसरा यह कि ग्रामीण जनताके उपयुक्त नवीन साहित्यकी रचना की जाय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण साहित्यकी रूप-रेखा तथा निर्माण-कार्य

इसके बाद स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि फिर ग्राम्य साहित्यकी रूप-रेखा क्या हो ? जहाँ तक इन पंक्तियोंके लेखकने समझा है, ग्राम्य साहित्य एक व्यावहारिक और सजीव साहित्य है, और एक सजीव साहित्यसे राजनैतिक आन्दोलनका चोली-दामनका रिश्ता है। क्या हम नहीं चाहते कि हमारे अन्नदाता किसानोंकी दशा सुधरे ? क्या हम नहीं चाहते कि हमारे किसान भाई यह जान जायँ कि संसारके अन्य किसानोंके मुक़ाबलेमें उनकी स्थिति क्या है ? यदि हम ये सब बातें चाहते हैं और हमको अपने किसान भाइयोंसे तनिक भी सहानुभूति है, तो हमें शीघ्रातिशीघ्र सबसे पहले ऐसे साहित्यका निर्माण करना होगा, जिसमें उक्त सभी विषयोंका समावेश हो, जिसके द्वारा ग्रामीणोंकी दशा सुधारी जा सके।

ग्राम्य साहित्यका निर्माण-कार्य तभी सफल समझा जायगा, जब वह आरम्भसे अन्त तक ग्रामीणोंके ध्येयको ही आँखोंके आगे रखकर किया जायगा। इसमें आर्थिक तथा वैयक्तिक त्यागकी भी आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि ग्राम्य साहित्य-पुस्तकावलिकी प्रत्येक पुस्तकका दाम सम्भवतः उसी किस्मकी अन्य पुस्तकोंकी अपेक्षा कम रखना पड़ेगा, तभी तो वह प्रत्येक दरिद्र-से-दरिद्र ग्रामीणके हाथों तक पहुँच सकेगी, जो इस प्रकारके साहित्य-प्रकाशनका एकमात्र उद्देश्य है, अन्यथा एक वक्त भोजनका जोगाड़ न कर सकनेवाले देहातियोंके यहाँ इतने पैसे कहाँ धरे हैं, जिनसे वे बहुमूल्य ग्रन्थ ख़रीदकर पढ़ें और अपनी ज्ञान-वृद्धि करें। अतः इस प्रकारके साहित्य-निर्माताओंको यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि वे इस कार्यको व्यवसायका रूप न दे सकेंगे।

ग्राम्य साहित्य-निर्माणके अधिकारी

सभीको सभी कार्य कर लेनेकी क्षमता होना असम्भव है। उदाहरण-स्वरूप, एक चित्रकारसे वैद्यक-साहित्यकी आशा करना तथा एक वैद्यसे चित्रकारी कराना उनके प्रति अन्याय करना होगा। इसी प्रकार ग्राम्य साहित्य-निर्माणके अधिकारी सभी लेखन-कला-प्रवीण व्यक्ति नहीं हो सकते। इस कार्यको कुछ वही अनुभवी और मँजे हुए साहित्यिक भलीभाँति निबाह सकते हैं, जो इस विषयसे स्वभावतः प्रेम करते हों तथा जिनके हृदयमें दरिद्र तथा दीन-हीन ग्रामीणोंके प्रति सच्ची सहानुभूति हो। हमारा कहना तो सिर्फ़ इतना ही है कि ग्राम्य साहित्य-निर्माण-कार्यके लिए जो साहित्यिक अपनेको योग्य और समर्थ समझें, उन्हें ही अपनी लेखनीको इस तरफ़ प्रेरित करनी चाहिए।

भाषा और उसकी शैली

ग्राम्य साहित्यकी भाषा तथा उसकी शैलीपर भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। यह तो प्रायः अब सिद्ध हो चुका है कि हिन्दी-भाषा भारतकी अन्य सभी भाषाओंसे सरल है। कदाचित यही कारण है कि भारतीयोंने इसे 'राष्ट्र-भाषा' कहकर स्वीकृत किया है। किसी अनुभवी साहित्यिकने ठीक ही कहा है—"कोई यह नहीं सोचता कि भाषाको सरल किस भाँति बनाया जाय। यह बात अभी उपेक्षाकी दृष्टिसे ही देखी जाती है कि यह समय न तो संस्कृत मिली हुई पंडिताऊ भाषाका है और न मौलवियोंकी अरबी-फ़ारसी लदी हुई उर्दूका, यह युग तो सुन्दर सरल हिन्दीका है। ठेठ हिन्दीमें कुछ पुस्तकें लिखी गईं सही ; मगर वहाँ भी बहिष्कारके आग्रहने कृत्रिमताको ही दाख़िल किया। शिष्ट लोग चाहे जो आग्रह रखें ; पर उन्हें लोक-भाषा—ग़रीब जनताकी भाषाकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साहित्यिक सौन्दर्य या पद-लालित्यके लोभसे अथवा विवेचनके गाम्भीर्यकी अभिलाषासे भाषा अधिकाधिक दुरूह की जा रही है, जिसका फल यह हो रहा है कि साहित्यिक संस्कारसे साधारण जनता वंचित ही रह जाती है। दरअसल यदि दुरूह भाषामें ग्राम्य साहित्यकी पुस्तकें लिखी जायँगी, तो अभीष्ट-सिद्धिकी आशा कम है। यदि सच पूछा जाय, तो इस कार्यके लिए वही भाषा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी, जो इतनी सरल और सुबोध हो, जिसे कम पढ़े आदमी भी आसानीसे समझ लें। युक्तप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलनके अवसरपर आचार्य नरेन्द्रदेवजीने भी उक्त प्रान्तके साहित्यिकोंसे जनताके लिए साहित्य प्रस्तुत करनेके लिए अनुरोध करते हुए कहा था कि इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए सरल भाषाका प्रयोग करना आवश्यक होगा।

विषय-निर्वाचन

इस स्तम्भको हम तीन खण्डोंमें विभाजित कर सकते हैं। पहला आरम्भिक साहित्य निरक्षरोंके लिए; दूसरा सरल साहित्य साक्षरोंके लिए; तीसरा स्त्रियोंके लिए गृहशास्त्र-सम्बन्धी सरल साहित्य।

(१) आरम्भिक साहित्य निरक्षरोंके लिए—गत १९३१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार ३५ करोड़की आबादीमें ३२ करोड़ २० लाखके लगभग भारतवासी निरक्षर हैं, और इन आँकड़ोंमें तीनचौथाईसे अधिक केवल ग्रामीण हैं। इसीलिए प्रथम इसके कि हम ग्राम्य साहित्यका बिरवा रोपें, उसके लिए उत्तम क्षेत्र तैयार कर लेना बुद्धिमानीका कार्य होगा, अन्यथा वह पनपेगा कहाँ? इसलिए हमें सबसे पहले निरक्षरोंको साक्षर बनानेकी स्कीम सोचनी होगी। इस समस्याको हल करनेके लिए श्री संगमलाल अग्रवालकी 'छै सप्ताहमें साक्षर बनानेकी योजना' विचारणीय है। अग्रवालजीने इस योजनाको कार्यरूपमें परिणत करके यह निष्कर्ष निकाला है कि बालकोंकी प्राथमिक शिक्षाके साथ-साथ निरक्षण प्रौढ़ोंको साक्षर बनानेका प्रयत्न किया जाय, तो छै सप्ताहमें एक प्रौढ़ दो घंटा प्रतिदिन पढ़नेसे इतना ज्ञान-लाभ कर सकता है कि वह तुलसीकृत रामायण तथा अन्य सरल पुस्तकें पढ़ सके और साधारण तौरपर लिख भी सके। ऐसी शिक्षा देनेमें प्रत्येक प्रौढ़पर १) से अधिक व्यय नहीं होगा। दरिद्र भारत इस सस्ते उपायसे अपनेको थोड़े ही समयमें साक्षर बना सकता है। इस समस्याको सुलझानेके लिए महाराष्ट्रके 'साक्षरता-प्रसारक मंडल' वाले भी सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

(२) सरल साहित्य साक्षरोंके लिए—निरक्षरता-निवारण-योजनाके कुछ चल निकलनेके पश्चात ग्रामीणोपयोगी साहित्यकी आवश्यकता पड़नी स्वाभाविक ही है, जिसके लिए निम्न-लिखित कुछ विषय उदाहरण रूपसे दिये जाते हैं :—

(क) कृषि।
(ख) व्यावहारिक तथा सरल चिकित्सा।
(ग) पशुपालन।
(घ) उद्योग-धन्धे।
(ङ) व्यावहारिक वैज्ञानिक ज्ञान।
(च) सामयिक संसार।
(छ) वाणिज्य-व्यापार।
(ज) सरकारी क़ानून।
(झ) स्वालम्बन, नैतिकता तथा विश्वप्रेम।

(३) स्त्रियोंके लिए गृहशास्त्र-सम्बन्धी सरल साहित्य—इस प्रकारके साहित्यमें स्त्रियोंके लिए गृह-विज्ञान, बाल-संगोपन, आरोग्य, सिलाई, धुलाई, संगीत आदि सभी स्त्री-उपयोगी विषयोंका समावेश होना चाहिए। स्त्रियोंकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें विशेष सतर्क रहनेकी आवश्यकता है, क्योंकि उनसे जनित सन्तानों—भारतकी नवीन आशाओंपर उनकी जननीका उत्तम-मध्यम प्रभाव विशेष और स्थायी रूपसे पड़ता है।

ग्राम्य साहित्यका प्रचार और उसके साधन

अन्तमें दो शब्द ग्राम्य साहित्यके प्रचार और उसके सम्बन्धमें अप्रासंगिक न होगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि यदि ग्राम्य साहित्यका प्रकाशन सस्ता हो, अर्थात् पुस्तकोंका मूल्य कम ही रखा जाय, तो उसके प्रचार और प्रसारके लिए अन्य साधनोंकी इतनी आवश्यकता न पड़ेगी। किन्तु जब तक इस पुण्य-कार्यके सम्पादनार्थ देशके कुछ उदार महानुभावोंकी सहानुभूति न प्राप्त हो, तब तक इस समस्याका उक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें हल होना कठिन ही है। निम्न-लिखित साधनोंसे ग्राम्य साहित्यका प्रचार हो सकता है :—

(१) ग्राम-वाचनालय द्वारा।
(२) गश्ती पुस्तकालय द्वारा।
(३) प्राथमिक पाठशाला खोलकर।
(४) मैजिक लैन्टर्न द्वारा।
(५) सिनेमा द्वारा।
(६) रेडियो द्वारा।

इन छै साधनोंमें से पाँचवें और छठवें साधन दरिद्र भारतके लिए अभी महँगे पड़ेंगे। अतः व्यावहारिक नहीं हो सकते, इसलिए अभी प्रथम चार साधनोंसे काम लेना चाहिए।

स्वप्नोंका जागरण

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग
किसने फूँक दिया कानोंमें भूला-बिसरा राग
किसने आग लगा दी तनमें
ज्वाला सुलगा दी जीवनमें
मूक वेदना भर दी मनमें
विस्मृतिमें जो दबी हुई थी धधका दी फिर आग ;
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग ?

पश्चिमसे जीवन आया है, उठी घटा घनघोर
हाथ गरेबाँको जाते हैं चरण विपिनकी ओर
मन कहता सब बन्धन तोड़ें
मस्तीमें बस्तीको छोड़ें
रिश्ता अलमस्तीसे जोड़ें
तोड़-ताड़ दें रीतें सारी, रस्मोंको दें त्याग ;
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग ?

वर्तमानके पटपर आँकें भूला हुआ अतीत
एक बार फिर गूँजे उरमें गत यौवनका गीत
आँखोंपर छा जाय खुमारी
दुनिया बदल जाय फिर सारी
भूल जायँ हम दुनियादारी
नई आग हो, नवयौवन हो, नव मद, नव अनुराग ;
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग ?

जी-भर आज लुटा दें इतने दिनका संचित प्यार
अरमानोंके विहग गा उठें युग-युगके उद्गार
एक बार फिर उन्मन-सा मन
धड़क उठे पा जीवन नूतन
दौड़ जाय नस-नसमें यौवन
लाज-शर्मकी बेड़ी काटें, खेलें जी-भर फाग ;
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग ?

जीर्ण-शीर्ण तनमें यौवनकी स्मृतिका क्षणिक उभार
जाने कैसे उठा रहा है पागलपनका ज्वार
रस आया फिर हृदय विरसमें
कोयल कूक उठी मानसमें
आज रहे जी कैसे बसमें
शिथिल हुआ तन बुझ न सकी है पर अन्तरकी आग !
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला-मंडल

नृत्य-यात्राके अनुभव

कुमारी अमला नन्दी

जिन दिनों मैं पेरिसमें थी, उन्हीं दिनों भारतके सुप्रसिद्ध नृत्य-कला-विशारद श्री उदयशंकरको यूरोपके अनेक थियेटरोंने अपनी भारतीय नृत्य-कला प्रदर्शित करनेके लिए निमन्त्रित किया। उदयशंकरने अपने साथ मुझे ले जानेका निश्चय किया। हम लोगोंके दलमें सोलह यात्री थे—बड़े दादा (उदयशंकर), उनकी माता, दो छोटे भाई, एक छोटी बहन, उनके चचा, मैं, दो फ्रेंच महिलाएँ, एक फ्रेंच मैनेजर, तिमिरवरण और उनके पाँच वाद्ययन्त्री साथी। रेलपर चढ़ने-उतरने और असबाब ढोनेके झंझटसे बचनेके लिए एक बड़ी मोटर-बस भाड़े की गई और उसीपर हमारी यात्रा शुरू हुई। २९ दिसम्बर १९३१ को सवेरे हम लोग पेरिससे बेल्जियमके लिए रवाना हुए। रेलकी यात्राकी अपेक्षा यह मोटर-यात्रा कहीं ज्यादा सुखदायक सिद्ध हुई। रेलपर तो सिर्फ स्टेशन और तारके खम्भे ही देखनेको मिलते हैं ; लेकिन मोटरपर शहर, गाँव, बाज़ार, गिर्जे, इमारतें—सभी कुछ देखनेमें आता है। एक तो हमारी बस बहुत बड़ी थी, दूसरे हम लोग भारतीय थे, इसलिए जिस गाँवसे होकर निकलते, वहींके लोग हम लोगोंको देखनेको जुड़ जाते थे।

दोपहरको राइम्स नगरमें पहुँचकर एक रेस्तराँमें भोजन किया और फिर चल दिये ; क्योंकि अगले ही दिन हम लोगोंको बेल्जियमके लीज नगरमें नृत्य दिखलाना था। तीसरे पहर खूब सर्दी बढ़ी। ओवरकोट पहननेपर भी दाँत किटकिटा रहे थे। शामको सेमलकी रुईके फाहोंकी तरह बर्फ गिरने लगी। देखते-देखते पेड़, पत्ते, मकान, दुकान, पहाड़, मैदान सभी सफेद नज़र आने लगे। रातमें जिवेट नामक कस्बेके एक होटलमें विश्राम किया।

दूसरे दिन चाय-पानी करके रवाना हुए और ज़रा-सी देरमें बेल्जियमकी सीमापर जा पहुँचे। वहाँ पासपोर्ट और सामान वग़ैरह देखा गया। बिक्रीके सामानपर चुंगी लगती है, निजी इस्तेमालके सामानपर नहीं लगती। हमारे अस्बाबमें तरह-तरहके बक्सों (केसों) में बन्द कोई पचास-साठ तरहके बाजे थे। कर -विभागवालोंने उनपर चुंगी माँगी। उनसे बतलाया गया कि वे इस्तेमालकी चीज़ हैं, इसलिए उनपर चुंगी न लगनी चाहिए। मगर वे न माने, कहने लगे कि इतने बाजे इस्तेमाली नहीं हो सकते, तुम लोग इन्हें निश्चय ही बिक्रीके लिए लिये जा रहे हो। उदयशंकरसे उन लोगोंसे इस बातपर बहसा-बहसी होने लगी। मामला तूल पकड़ता नज़र आया। तिमिरवणने धीरेसे अपना सरोद निकाला और चुंगी-घरके एक कोनेमें चुपचाप गम्भीरतासे खड़े होकर लगे उसे बजाने। चुंगीवाले बहस करना तो भूल गये और अवाक होकर मन्त्रमुग्ध-से बाजा सुनने लगे। फिर उन्होंने चुंगी नहीं माँगी।

तीन बजे हम लोग लीज पहुँचे। शामको ६ बजे हमारा नृत्य-प्रदर्शन होनेको था। हम लोगोंने एक होटलमें डेरा जमाया। होटलमें अच्छे-अच्छे कमरे ख़ाली थे, फिर भी मैनेजरने हमें साधारण कमरे ही दिये। ऐसा क्यों किया गया, जब इसकी पूँछ-ताँछ हुई, तो मालूम हुआ कि होटलवाला एक अंगरेज़ है और हम लोग ठहरे भारतीय—अंगरेज़ोंके गुलाम। इसीलिए होटलवालेने हमें अच्छे कमरे नहीं दिये। इसपर बड़े दादा (उदयशंकर) ने लीजके ब्रिटिश कौन्सुलको फोन किया। फौरन ही एक अफसर आया और उसने होटलवालेसे बताया कि ये लोग यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्य-प्रदर्शन करनेके लिए आये हैं। इनका नृत्य देखनेके लिए आज दूर-दूरसे दर्शक लोग आये हैं। आज हम सब इन भारतीय अतिथियोंका सम्मान करेंगे। इसपर होटलवालेने हमें अच्छे कमरे दिये।

रातमें हम लोगोंका अभिनय बहुत सफल रहा। दूसरे दिन समाचारपत्रोंमें उसका विस्तृत वर्णन हम सबकी तसवीरोंके साथ प्रकाशित हुआ।

दूसरे दिन फ्रांसकी सीमाके भीतर सार्लेविल नामक स्थानमें अभिनय दिखलाकर १ ली जनवरी १९३२ को हम लोग जर्मनीकी ओर रवाना हुए। पहले तो फ्रांसकी सीमामें हमारी बस चलती रही, फिर राइनलैण्डमें प्रवेश किया और स्ट्रासबुर्गका पुल पार करके हम लोग जर्मनीमें दाखिल हुए। फ्रेंच और बेल्जियमकी सीमाओंपर पासपोर्ट देखने और हमारे माल-अस्बाबकी तलाशी लेनेमें सीमान्तके अधिकारियोंसे काफ़ी झंझट करनी पड़ी थी; लेकिन यहाँ, जर्मनीकी सीमापर, अधिकारियोंसे सिर्फ पाँच मिनट ही में चटपट छुट्टी मिल गई। राइन अंचलमें अंगूरके खेत अधिक दीख पड़े थे। जर्मनीके इस अंचलमें गेहूँके खेत अधिक मिले। फ्रांसकी बनिस्बत जर्मनीके गाँवों और शहरोंमें छोटे लड़के-लड़कियाँ कहीं ज्यादा दीख पड़ीं।

तीसरे पहर उल्म नगरके विख्यात गिरजेकी चोटी दीख पड़ी। यह गिरजा संसारके सारे गिरजोंसे ऊँचा है। इसकी ऊँचाई ५२८ फीट है। रातमें चार सौ मील तै करके हम लोग डिलिंगन पहुँचे। दूसरे दिन हमारा अभिनय हुआ। उसके बाद स्थानीय आर्टिस्टोंकी ओरसे हम लोगोंके सम्मानमें दावत भी हुई। इसके बाद सारब्रुकेन, बाडेन-बाडेन, कार्ल्सरूहे, हीलब्रोर्न आदि नगरमें अभिनय दिखलाता हुआ हमारा दल म्यूनिक पहुँचा, जहाँ तीन दिन तक लगातार हम लोगोंका नृत्य प्रदर्शन हुआ।

× × × ×

स्टुटगार्टसे हम लोगोंको माइनिंगन जाना था। फासला पौने दो सौ मीलका होगा। बड़े सवेरे ही हमारी बस चल दी। राहमें किसी रेस्तराँमें भोजन करने जानेसे देर हो जायगी, यह सोचकर हम लोगोंने गाड़ीपर ही पेट-पूजा कर ली। करीब आधा रास्ता तै किया होगा कि अचानक दो किसानोंने हमारी गाड़ी रोककर बताया कि सामने पुल है, जिसपर इतनी भारी गाड़ी नहीं जा सकती। हम लोग उतर पड़े। पुलके पास गये, तो वहाँ लिखा था कि चार टनसे ज्यादा भारी गाड़ी पुलपरसे ले जानेकी मुमानियत है। माल-अस्बाबको छोड़कर हमारी खाली गाड़ी ही का वज़न नौ टन था। अब क्या करें? पीछे लौटना पड़ा। सड़क चौड़ी न थी, दोनों तरफ़ ढलवाँ ज़मीन थी, जिससे गाड़ी घुमाना भी नामुमकिन था। लिहाज़ा धीरे-धीरे गाड़ीको पीछे चलाना पड़ा। दो मील बैक करनेपर दूसरी सड़क मिली और हम फिर आगे बढ़े। इस झंझटमें पाँच घंटे समय ख़राब हुआ, इसलिए हम लोगोंको रातको ही गाड़ी चलाकर माइनिंगन पहुँचना था। तीसरे पहर कोहरा पड़ने लगा और थोड़ी ही देरमें इतना घना हो गया कि दस-पन्द्रह हाथसे अधिक कुछ सूझता ही न था। ड्राइवर धीरे-धीरे गाड़ी चलाने लगा। थोड़ी देर बाद ही रातका अन्धकार आ गया। हम लोग अन्धोंकी तरह तंग पहाड़ी रास्तेपर जा रहे थे। लैम्पमें पीला शीशा होनेसे कोहरेमें भी रोशनी काम देती है, इसलिए मोटरकी हेड लाइटपर पीले शीशे पहरा दिये गये; लेकिन उससे कोई ख़ास फ़ायदा न हुआ। अचानक गाड़ीका एक तरफ़का पहिया धँस गया और टेढ़ा पड़ गया। हम सब घबराकर उतरे, तो देखा कि अगर गाड़ी पन्द्रह-बीस फीट और बढ़ती, तो नालेमें चली जाती और शायद हम सबका जीवन-अभिनय भी शेष हो जाता। सड़कके दोनों तरफ़ नीची ज़मीन थी; लेकिन बर्फ जो गिरी, तो सड़क और ज़मीन सभीका एक ही धरातल हो गया। बर्फकी चादरके नीचे यह पहचानना मुश्किल था कि कहाँ सड़क है और कहाँ नीची ज़मीन। इसी नीची ज़मीनमें गाड़ीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिया धँस गया था। गाड़ीको उठाकर सड़कपर पहुँचाना असम्भव-सा था। अब क्या हो? हम सब निरुपाय हो गये। इधर सर्दीका यह हाल था कि गर्म कपड़े, ओवरकोट, हाथोंमें दस्ताने, पैरोंमें मोज़े, ऊपरसे कम्बल—सब-कुछ होनेपर भी ख़ून जमा जा रहा था।

अगर सारी रात इसी तरह काटनी पड़ी, तो जान ही निकल जायगी। और कोई उपाय न देखकर हमारे दलके मैनेजर मि० बाँगनर दूरवर्ती बस्तीको रवाना हुए—गाँववालोंकी सहायतासे कुछ करनेके लिए। रहे हम लोग, सो हम लोगोंने मिलकर गाना शुरू किया। गाड़ीके भीतर बैठना ख़तरनाक था, क्या जाने कब गाड़ी उलट जाय, इसलिए हम लोग गाते-गाते सड़कपर चहलक़दमी करने लगे। कुछ देर बाद किसी गाड़ीकी रोशनी दिखलाई पड़ी। हम लोगोंके पास आकर रोशनी रुक गई। एक मोटर साइकिलसे दो तगड़े नौजवान जर्मन उतरे। उन्होंने पहले हम लोगोंपर नज़र डाली, फिर गाड़ीके चारों ओर घूम-फिरकर देखा। उनकी देहाती जर्मन हम लोगोंकी समझमें आना नामुमकिन थी, इसलिए हम लोगोंने गूँगोंकी तरह इशारोंसे उन्हें अपनी मुसीबत बताई। वे अपनी साइकिलपर चढ़कर चलते बने।

कोई आध घंटेके बाद वे दो गाड़ियाँ लेकर आ मौजूद हुए। वे गाड़ियाँ नहीं थीं, बल्कि मोटरसे चलनेवाले हल (ट्रैक्टर) थे। इधर हमारे मैनेजर साहब भी बहुत-सा लोहा-लक्कड़—अस्त्र-शस्त्र—लेकर दो लारियोंके साथ आ गये। आगेसे ठेलकर पीछेसे घसीटकर हमारी गाड़ी फिर सड़कपर रखी गई। सबको कुछ-कुछ रुपया दिया गया; मगर मोटर-हलवाले रुपया लेनेपर राज़ी नहीं होते थे। बहुत-कुछ धन्यवाद देकर कोई एक बजे रातको हम लोग फिर रवाना हुए।

जनवरी और फरवरीके महीनोंमें हम लोग जर्मनीके भिन्न-भिन्न नगरोंमें अभिनय दिखलाते रहे। २५ जनवरीको कैसेल (Cassel) में हम लोगोंका अभिनय हुआ। इस जगह जिस रंगमंचपर हमारा अभिनय हुआ था, उतने बड़े रंगमंच समस्त यूरोपमें मुश्किलसे चार-पाँच होंगे। अभिनयके पहले हम लोग रंगमंच देखने पहुँचे। इससे पहले जो अभिनय वहाँ हुआ था, उसके दृश्यपट और साज-सरंजाम स्टेजपर बिखरे पड़े थे। इतना बड़ा अम्बार लगा था कि उसे साफ़ करनेमें बहुतसे आदमियोंको लगानेपर भी कम-से-कम डेढ़ घंटा लगता। इधर हमारा अभिनय शुरू होनेमें सिर्फ एक घंटा बाक़ी था। यह देखकर हम लोग रंगमंचके कार्यकर्ताओंकी बदइन्तज़ामीकी आलोचना करने लगे। देखते-देखते आध घंटा और भी बीत गया। अम्बार जैसेका तैसा लगा था, किसीने उसे छुआ तक नहीं। अब तो हम लोग अधीर हो उठे। कुछ मिनट बाद एक व्यक्ति आया। उसने आते ही एक स्विच दबा दिया। पल-भरमें वह लम्बा-चौड़ा स्टेज समूचेका समूचा खिसक गया और उसके स्थानमें हम लोगोंके उपयोगी एक दूसरा स्टेज आ मौजूद हुआ!

मार्चके महीनेमें हम लोग चेकोस्लोवाकिया गये। एक तो हमारी मोटर बहुत बड़ी थी, दूसरे हम सब नये देशके लोग थे, इसलिए सीमान्तके रक्षकोंने हम लोगोंकी बहुत कड़ी छान-बीन की। गाड़ी और अस्त्रोंकी तलाशीके साथ-साथ हममें से कुछके जेबों तककी तलाशी ले डाली। हमारे बाजोंको जिस ढंगसे उलट-पलट और हिला-डुलाकर देखा, उससे तो यह डर हुआ कि कहीं उन्हें तोड़-ताड़कर न रख दें। इनके भीतर क्या है। बेचारोंने इतनी अनोखी चीज़ें इससे पहले कभी देखी ही न थीं।

चेकोस्लोवाकियाकी राजधानी प्राग नगरमें हम लोगोंका अभिनय हुआ। यहाँ अनेक गुणियों और बड़े-बड़े आदमियोंसे हमारा परिचय हुआ। कई बड़े-बड़े आदमियोंने हम लोगोंको दावतें दीं। चेकोस्लोवाकियाके सेनापति जनरल वाल्डमीर क्लैकैंडिया (General Valdmir Clacandia) के घर एक दिन निमन्त्रित होकर गये। उनका घर पहाड़के ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी अमला नन्दी—
नृत्य-भंगिमामें

एक प्राचीन किलेमें है। जनरल वाल्डमीर पिछले यूरोपियन महायुद्धमें चेकोस्लोवाकियाके प्रधान सेनापति थे। उनका घर क्या था, एक छोटा-मोटा अजायबघर था। पृथिवीकी अनेक दुष्प्राप्य प्राचीन वस्तुएँ उनके घरमें ख़ूबसूरतीसे सजी हुई दीख पड़ीं। उनमें कौन चीज़ कितनी क़ीमती थी, इसका अन्दाज़ा लगाना मेरी सामर्थ्यके बाहरकी बात थी। काँचके ख़ूबसूरत बक्समें एक किताब बहुत हिफ़ाज़तसे रखी थी। उसे हम लोगोंको दिखलाकर जनरलने कहा—"यह पुस्तक मेरे जीवनका सर्वस्व है।" पूछनेपर उन्होंने बताया—"पिछले महायुद्धमें मैं और मेरे अधीन सैनिक रूसियोंके हाथ क़ैद हो गये थे। रूसियोंने हम लोगोंको सेंट पीटर्सबर्ग (लेनिनग्रेड) ले जाकर क़ैद किया और हम सबको मौतकी सज़ाका हुक्म हुआ। मृत्यु-दण्ड प्राप्त बन्दीकी अवस्थामें जब हम लोग जेलमें दिन काट रहे थे, उस समय हम लोगोंकी मानसिक अवस्था बहुत शोचनीय हो गई थी। हम लोगोंकी मानसिक अवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर एक रूसी सेनापति एलेक्स अलाडिन (Alex Aladin) ने मुझे यह पुस्तक पढ़नेको दी। इस पुस्तकको पढ़कर मेरी आत्माको बहुत बल और शान्ति प्राप्त हुई। फिर तो मैंने अपने तमाम साथियोंको यह पुस्तक पढ़ाई। इससे उन सबका चित्त भी स्थिर हुआ। यह पुस्तक है श्रीमद्भगवद् गीताका जर्मन अनुवाद !"

वहीं एक चित्रकारने सिर्फ चार-पाँच मिनटमें पेनसिलसे मेरी एक तसवीर बनाई, जो बादमें मेरे नृत्य-परिचयके साथ अखबारोंमें छपी थी।

जहाँ कहीं हमारा अभिनय होता था, वहीं अनेक दर्शक प्रसन्न होकर हम लोगोंको फूलोंके गुलदस्ते उपहारमें देते थे। प्रागमें हमें जो अनेक गुलदस्ते उपहारमें मिले, उनमें किसी-किसीमें देवनागरी लिपिमें 'ॐ भगवते ब्रह्मणे नमः' 'ॐ भगवते गुरवे नमः' आदि वाक्य भी स्वर्णाक्षरोंमें लिखे थे !

प्रागमें पाँच दिन रहनेके बाद हम लोग हंगरी गये। बुडापेस्टमें हम लोगोंका अभिनय हुआ। अभिनय ओपरा-हाउसमें हुआ था। इस ओपरा-हाउसमें संसारके उच्चकोटिके अभिनय ही होते हैं। अखबारवालोंने हम लोगोंके नृत्यके सम्बन्धमें लिखते हुए लिखा था कि महायुद्धके बाद सुप्रसिद्ध रूसी नर्तकी अन्ना पेवलोवाके नृत्यको छोड़कर और कोई नृत्य इतना आकर्षक नहीं हुआ।

प्राग नगरसे हमें फिर दूसरी बार अभिनय दिखलानेका निमन्त्रण मिला। बुडापेस्टसे प्राग साढ़े तीन सौ मील है। हम लोग ३१ मार्चको रवाना हुए। दूसरे दिन शामको सात बजे हमारा अभिनय होनेको था। सिर्फ सौ मील जानेके बाद ही हंगरी और चेकोस्लोवाकियाका सीमान्त आ गया। सीमान्तके बड़े अफसर साहब चौकीपर मौजूद न थे। बिना उनकी अनुमतिके छोटे अफसर इतने विदेशियोंको चेकोस्लोवाकियामें प्रवेश करने देनेको तैयार न थे। मजबूरन रुकना पड़ा। रात हो गई थी। बहुत कहने-सुननेपर छोटे अफसरने बड़े अफसरको बुलानेके लिए साइकिलपर आदमी भेजा। साथमें खानेका कुछ सामान भी न था। सिर्फ कुछ पकौड़ियाँ खाकर और चाय पीकर ही सन्तोष करना पड़ा। दो बजे रातको बड़े अफसर साहबने आकर हम लोगोंको छोड़ा। थोड़े ही दूरपर ब्राटिसलावा नामक कस्बेमें जाकर रात बिताई। दूसरे दिन फिर रवाना हुए। लगभग २५० मील चलना था। दोपहरको एक छोटी नदीके पुलपर पहुँचकर देखा कि मरम्मत होनेकी वजहसे पुल बन्द है। पचीस मील कच्चे रास्तेसे जाकर दूसरे पुलसे नदी पार करनी पड़ेगी। मजबूरन वही करना पड़ा। रास्तेमें पहिये इतने कीचड़में घुस जाते थे कि गाड़ी चलाना कठिन होता था। मगर सबसे बड़ा दुख इस बातका था कि ठीक वक्तपर प्राग पहुँचकर अभिनय न दिखला सकेंगे। अन्तमें एक आदमीके मार्फत प्रागको तार दिलाया कि राहमें दो-दो दिन आ जानेके कारण आज शामको अभिनय न हो सकेगा। यूरोपमें वक्तका ख़याल बहुत रखा जाता है। सब जगह अभिनयका विज्ञापन देकर भी समयपर अभिनय न कर सकना बड़ी लज्जाकी बात थी। हज़ारों दर्शक आकर लौट जायँगे। मगर हमारे मैनेजरने बड़ी तेज़ीसे गाड़ी भगाई और बीचमें एक जगहसे दूसरा तार दिया कि रातको नौ बजे तक हम लोग पहुँच सकते हैं।

नौ बजे अभिनय-स्थानपर पहुँचकर देखा, तो लोगोंकी अपार भीड़ मौजूद है। भीतर तिल धरनेकी जगह न थी। जिन लोगोंको टिकट न मिल सके वे सिर्फ हम लोगोंको देखने-भरके लिए बाहर डेरा जमाये खड़े थे। जैसे-तैसे अभिनय दिखलाया। अभिनयके बाद प्रसन्न होकर दर्शकोंने इतनी मालाएँ और गुलदस्ते हम लोगोंपर बरसाये कि स्टेजपर एक खासा ढेर लग गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका एक महत्त्वपूर्ण भाषण

गत फरवरीके 'हंस' में स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका एक भाषण छपा है; जिसे उन्होंने आर्यसमाजके अन्तर्गत आर्य-भाषा-सम्मेलनके वार्षिक उत्सवपर लाहौरमें दिया था। भाषणको पढ़कर हमें प्रेमचन्दजीकी बहुत याद आई। जो आदमी इतनी विद्वत्तापूर्वक और इतनी निष्पक्षताके साथ साहित्य-सम्बन्धी गुत्थियोंको सुलझा सकता था, उसे अभी कुछ दिन तो और जीवित रहना चाहिए था। प्रेमचन्दजीकी मृत्यु ऐसे अवसरपर हुई, जब कि हमारे देश और हमारे साहित्यको उनकी सख्त ज़रूरत थी।

हिन्दीका विकास और मुसलमान

हिन्दी कैसे विकसित हुई और मुसलमानोंने उसके लिए क्या किया, इसका ज़िक्र करते हुए प्रेमचन्दजीने कहा था—

"मैं यहाँ हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति और विकासकी कथा नहीं कहना चाहता, वह सारी कथा भाषा-विज्ञानकी पोथियोंमें लिखी हुई है। हमारे लिए इतना ही जानना काफ़ी है कि आज हिन्दुस्तानके पन्द्रह-सोलह करोड़के सभ्य व्यवहार और साहित्यकी यही भाषा है। हाँ, वह लिखी जाती है दो लिपियोंमें और उसी एतबारसे हम उसे हिन्दी या उर्दू कहते हैं; पर है वह एक ही। बोलचालमें तो उसमें बहुत कम फ़र्क़ है, हाँ, लिखनेमें वह फ़र्क़ बढ़ जाता है, मगर उस तरहका फ़र्क़ सिर्फ़ हिन्दीमें ही नहीं, गुजराती, बँगला और मराठी वग़ैरह भाषाओंमें भी कमोबेश वैसा ही फ़र्क़ पाया जाता है। भाषाके विकासमें हमारी संस्कृतिकी छाप होती है, और जहाँ संस्कृतिमें भेद होगा, वहाँ भाषामें भेद होना स्वाभाविक है। जिस भाषाका हम और आप व्यवहार कर रहे हैं, वह देहली-प्रान्तकी भाषा है, उसी तरह जैसे ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली, भोजपुरी और मारवाड़ी आदि भाषाएँ अलग-अलग क्षेत्रोंमें बोली जाती हैं और सभी साहित्यिक भाषा रह चुकी हैं। बोलीका परिमार्जित रूप ही भाषा है। सबसे ज्यादा प्रसार तो ब्रजभाषाका है, क्योंकि वह आगरा-प्रान्तके बड़े हिस्सेमें ही नहीं, सारे बुन्देलखंडकी बोलचालकी भाषा है। अवधी अवध प्रान्तकी भाषा है। भोजपुरी प्रान्तके पूर्वी ज़िलोंमें बोली जाती है, और मैथिली बिहार-प्रान्तके कई ज़िलोंमें। ब्रजभाषामें जो साहित्य रचा गया है, वह हिन्दीके पद्य-साहित्यका गौरव है। अवधीके प्रमुख ग्रन्थ तुलसीकृत रामायण और मलिक मुहम्मद जायसीका रचा हुआ 'पद्मावत' हैं। मैथिलीमें विद्यापतिकी रचनाएँ ही मशहूर हैं। मगर साहित्यमें आम तौरपर मैथिलीका व्यवहार कम हुआ। साहित्यमें तो अवधी और ब्रजभाषाका व्यवहार होता था। हिन्दीके विकासके पहले तो ब्रजभाषा ही हमारी साहित्यिक भाषा थी, और प्रायः उन सभी प्रदेशोंमें जहाँ आज हिन्दीका प्रचार है, पहले ब्रजभाषाका प्रचार था। अवधमें और काशीमें भी कवि लोग अपने कवित्त ब्रजभाषामें ही कहते थे। यहाँ तक कि गयामें भी ब्रजभाषाका ही प्रचार होता था।

"तो एकाएक ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदिको पीछे हटाकर हिन्दी कैसे सबके ऊपर ग़ालिब आई, यहाँ तक कि अब अवधी और भोजपुरीका तो साहित्यमें कहीं व्यवहार नहीं है, हाँ ब्रजभाषाको अभी तक थोड़े से लोग सीनेसे चिपटाये हुए हैं। हिन्दीको यह गौरव प्रदान करनेका श्रेय मुसलमानोंको है। मुसलमानों ही ने दिल्ली-प्रान्तकी इस बोलीको, जिसको उस वक्त तक भाषाका पद नहीं मिला था, व्यवहारमें लाकर उसे दरबारकी भाषा बना दिया और दिल्लीके उमरा और सावंत जिन प्रान्तोंमें गये, हिन्दी भाषाको साथ लेते गये। उन्हींके साथ वह दक्खिनमें पहुँची और उसका बचपन दक्खिन ही में गुज़रा। दिल्लीमें बहुत दिनों तक अराजकताका ज़ोर रहा और भाषाको विकासका अवसर न मिला। पर दक्खिनमें वह पलती रही। गोलकुंडा, बीजापूर, गुलबर्गा आदिके दरबारोंमें इसी भाषामें शेर-शायरी होती रही। मुसलमान बादशाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः साहित्य-प्रेमी होते थे। बाबर, हुमायूँ, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, दाराशिकोह सभी साहित्यके मर्मज्ञ थे। सभीने अपने-अपने रोज़नामचे लिखे हैं। अकबर खुद शिक्षित न हो, मगर साहित्यका रसिक था। दक्खिनके बादशाहोंमें अकसरोंने कविताएँ कीं और कवियोंको आश्रय दिया। पहले तो उनकी भाषा कुछ अजीब खिचड़ी-सी थी, जिसमें हिन्दी, फ़ारसी सब-कुछ मिला होता था। आपको शायद मालूम होगा कि हिन्दीकी सबसे पहली रचना खुसरोने की है, जो मुग़लोंसे भी पहले खिलजी राजकालमें हुए थे।

"मुसलमानी ज़मानेमें अवश्य ही हिन्दीके तीन रूप होंगे। एक नागरी-लिपिमें ठेठ हिन्दी, जिसे भाषा या नागरी कहते थे, दूसरी उर्दू यानी फ़ारसी-लिपिमें लिखी हुई फ़ारसीसे मिली हुई हिन्दी, और तीसरी ब्रजभाषा। लेकिन हिन्दी भाषाको मौजूदा सूरतमें आते-आते सदियाँ गुज़र गईं। यहाँ तक सन् १८०३ ई० से पहलेका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सदल मिश्रकी 'चन्द्रावती' का रचना-काल १८०३ माना जाता है, और सदल मिश्र ही हिन्दीके आदि लेखक ठहरते हैं। इसके बाद लल्लूलालजी, सैयद इंशा अल्लाह ख़ां वग़ैरहके नाम हैं। इस लिहाज़से हिन्दी-गद्यका जीवन सवा सौ सालसे ज्यादाका नहीं है, और क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि सवा सौ साल पहले जिस ज़बानमें कोई गद्य रचना तक न थी, वह आज सारे हिन्दुस्तानकी क़ौमी ज़बान बनी हुई है? और इसमें मुसलमानोंका कितना सहयोग है, यह हम बता चुके हैं। हमें सन्देह है कि मुसलमानोंका सहयोग पाये बग़ैर हमको आज यह दर्जा हासिल होता।"

संगमरमरके घाटवाला तालाब और बहती हुई धारा

पढ़े-लिखे समाजकी संस्कृतयुक्त अथवा अरबी-फ़ारसीमय भाषा और जनताकी ज़बानका अन्तर प्रेमचन्दजीने इन शब्दोंमें बतलाया था—

"हिन्दुओंकी ख़ासी तादाद अभी तक उर्दू पढ़ती जा रही है; लेकिन उनकी तादाद दिन-दिन घट रही है। मुसलमानोंने हिन्दीसे कोई सरोकार रखना छोड़ दिया। तो क्या यह तै समझ लिया जाय कि उत्तर-भारतमें उर्दू और हिन्दी दो भाषाएँ अलग-अलग रहेंगी, उन्हें अपने-अपने ढंगपर, अपनी-अपनी संस्कृतिके अनुसार बढ़ने दिया जाय, उनको मिलानेकी और इस तरह उन दोनोंकी प्रगतिको रोकनेकी कोशिश न की जाय? या ऐसा सम्भव है कि दोनों भाषाओंको इतना समीप लाया जाय कि उनमें लिपिके सिवा कोई भेद न रहे। बहुमत पहले निश्चयकी ओर है। हाँ, कुछ थोड़े-से लोग ऐसे भी हैं, जिनका ख़याल है कि दोनों भाषाओंमें एकता लाई जा सकती है और इस बढ़ते हुए फ़र्क़को रोका जा सकता है; लेकिन उनकी आवाज़ नक्क़ारख़ानेमें तूतीकी आवाज़ है। ये लोग हिन्दी और उर्दू नामोंका व्यवहार नहीं करते, क्योंकि दो नामोंका व्यवहार उनके भेदको और मज़बूत करता है। यह लोग दोनोंको एक नामसे पुकारते हैं, और वह 'हिन्दुस्तानी' है। उनका आदर्श है कि जहाँ तक मुमकिन हो, लिखी जानेवाली ज़बान और बोलचालकी ज़बानकी सूरत एक हो, और वह थोड़े-से पढ़े-लिखे आदमियोंकी ज़बान न रहकर सारी क़ौमकी ज़बान हो। जो-कुछ लिखा जाय, उसका फ़ायदा जनता भी उठा सके, और हमारे यहाँ पढ़े-लिखोंकी जो एक जमाअत अलग बनती जा रही है और जनतासे उनका सम्बन्ध जो दूर होता जा रहा है, वह दूरी मिट जाय और पढ़े-बे-पढ़े सब अपनेको एक जान, एक दिल समझें, और क़ौममें ताक़त आवे। चूँकि उर्दू ज़बान अरसेसे अदालती और सभ्य समाजकी भाषा रही है, इसलिए उसमें हज़ारों फ़ारसी और अरबीके शब्द इस तरह घुल-मिल गये हैं कि एक देहाती भी उनका मतलब समझ जाता है। ऐसे शब्दोंको अलग करके हिन्दीमें विशुद्धता लानेका जो प्रयत्न किया जा रहा है, हम उसे ज़बान और क़ौम दोनों ही के साथ अन्याय समझते हैं। इसी तरह हिन्दी या संस्कृत या अंगरेज़ीके जो बिगड़े हुए शब्द उर्दूमें मिल गये हैं, उनको चुन-चुनकर निकालने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी जगह ख़ालिस फ़ारसी और अरबीके शब्दोंके इस्तेमालको भी हम उतना ही एतराज़के लायक़ समझते हैं। दोनों तरफ़से इस अलगौझेका सबब शायद यही है कि हमारा पढ़ा-लिखा समाज जनतासे अलग होता जा रहा है, और उसे इसकी ख़बर ही नहीं कि जनता किस तरह अपने भावों और विचारोंको अदा करती है। ऐसी ज़बान, जिसके लिखने और समझनेवाले थोड़े-से पढ़े-लिखे लोग ही हों, मसनूई, बेजान और बोझल हो जाती है। जनताका मर्मस्पर्श करनेकी, उन तक अपना पैग़ाम पहुँचानेकी, उसमें कोई शक्ति नहीं रहती। वह उस तालाबकी तरह है, जिसके घाट संगमरमरके बने हों, जिसमें कमल खिले हों; लेकिन जिसका पानी बन्द हो। क्या उस पानीमें वह मज़ा, वह सेहत देनेवाली ताक़त, वह सफ़ाई हो सकती है, जो खुली हुई धारामें होती है? क़ौमकी ज़बान वह है, जिसे क़ौम समझे, जिसमें क़ौमकी आत्मा हो, जिसमें क़ौमके जज़बात हों। अगर पढ़े-लिखे समाजकी ज़बान ही क़ौमकी ज़बान है, तो क्यों न हम अंगरेज़ीको क़ौमकी ज़बान कहें? क्योंकि मेरा तजरबा है कि आज पढ़ा-लिखा समाज जिस बेतकल्लुफ़ीसे अंगरेज़ी बोल सकता है और जिस रवानीके साथ अंगरेज़ी लिख सकता है, उर्दू या हिन्दी बोल या लिख नहीं सकता। बड़े-बड़े दफ़्तरोंमें और ऊँचे दायरेमें आज भी किसीको उर्दू-हिन्दी बोलनेकी महीनों, बरसों ज़रूरत नहीं होती। ख़ानसामे और बैरे भी ऐसे रखे जाते हैं, जो अंगरेज़ी बोलते और समझते हैं। जो लोग इस तरहकी ज़िन्दगी बसर करनेके शौक़ीन हैं, उनके लिए तो उर्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तानका कोई झगड़ा ही नहीं। वह इतनी बलन्दीपर पहुँच गये हैं कि नीचेकी धूल और गर्मी उनपर कोई असर नहीं कर सकती। वह मुअल्लक़ हवामें लटके रह सकते हैं। लेकिन हम सब तो हज़ार कोशिश करनेपर भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकते। हमें तो इसी धूल और गर्मीमें जीना और मरना है। Intelligentsia में जो कुछ शक्ति और प्रभाव है, वह जनता ही से आता है। उससे अलग रहकर वे हाकिमकी सूरतमें ही रह सकते हैं, ख़ादिमकी सूरतमें, जनताके होकर नहीं रह सकते। उनके अरमान और मंसूबे उनके हैं, जनताके नहीं। उनकी आवाज़ उनकी है, उसमें जनसमूहकी आवाज़की गहराई और गरिमा और गम्भीरता नहीं है। वे अपने प्रतिनिधि हैं, जनताके प्रतिनिधि नहीं।"

सुनहरी सलाह

आगे चलकर प्रेमचन्दजीने कहा था—

"संयुक्तप्रान्तके साबिक़से पहलेके गवर्नर सर विलियम मैरिसने इलाहाबादकी हिन्दुस्तानी एकाडेमी खोलते वक्त हिन्दी-उर्दूके लेखकोंको जो सलाह दी थी, उसे ध्यानमें रखनेकी आज भी उतनी ही ज़रूरत है, जितनी उस वक़्त थी, शायद और ज़्यादा। आपने फ़रमाया था कि हिन्दीके लेखकोंको लिखते वक्त यह समझते रहना चाहिए कि उनके पाठक मुसलमान हैं। इसी तरह उर्दूके लेखकोंको यह ख़याल रखना चाहिए कि उनके क़ारी हिन्दू हैं।

"यह एक सुनहरी सलाह है, और अगर हम इसे गाँठ बाँध लें, तो ज़बानका मसला बहुत-कुछ तय हो जाय। मेरे मुसलमान दोस्त मुझे माफ़ फ़रमावें, अगर मैं कहूँ कि इस मुआमलेमें वे हिन्दू-लेखकोंसे ज़्यादा ख़तावार हैं। संयुक्त-प्रान्तकी कॉमन लैंग्वेज रीडरोंको देखिये। आप सहल क़िस्मकी उर्दू पायँगे। हिन्दीकी अदबी किताबोंमें भी अरबी और फ़ारसीके सैकड़ों शब्द धड़ल्लेसे लाये जाते हैं; मगर उर्दू-साहित्यमें फ़ारसीयतकी तरफ़ ही ज़्यादा झुकाव है। इसका सबब यही है कि मुसलमानोंने हिन्दीसे कोई ताल्लुक़ नहीं रखा है और न रखना चाहते हैं। शायद हिन्दीसे थोड़ी-सी वाक़फ़ियत हासिल कर लेना भी वे क-सरे-शान समझते हैं, हालाँकि हिन्दी वह चीज़ है, जो एक हफ़्तेमें आ जाती है। जब तक दोनों भाषाओंका मेल न होगा, हिन्दुस्तानी ज़बानकी गाड़ी जहाँ आकर रुक गई है, उससे आगे न बढ़ सकेगी। और यह सारी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Panipat. Digitized by S3 Foundation USA

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करामात फोर्ट विलियमकी है, जिसने एक ही ज़बानके दो रूप मान लिये। इसमें भी उस वक्त कोई राजनीति काम कर रही थी, या उस वक्त भी दोनों ज़बानोंमें काफ़ी फ़र्क आ गया था, यह हम नहीं कह कह सकते; लेकिन जिन हाथोंने यहाँकी ज़बानके उस वक्त दो टुकड़े कर दिये, उसने हमारी क़ौमी ज़िन्दगीके दो टुकड़े कर दिये। अपने हिन्दू दोस्तोंसे मेरा भी यही नम्र निवेदन है कि जिन शब्दोंने जनसाधारणमें अपनी जगह बना ली है, और जिन्हें लोग आपके मुँह या क़लमसे निकलते ही समझ जाते हैं, उनके लिए संस्कृत कोषकी मदद लेनेकी ज़रूरत नहीं। 'मौजूद' के लिए 'उपस्थित', 'इरादा' के लिए 'संकल्प', 'बनावटी' के लिए 'कृत्रिम' शब्दोंको काममें लानेकी कोई ख़ास ज़रूरत नहीं। प्रचलित शब्दोंको उनके शुद्ध रूपमें लिखनेका रिवाज़ भी भाषाको अकारण ही कठिन बना देता है। खेतको क्षेत्र, बरसको वर्ष, छेदको छिद्र, कामको कार्य, जमुनाको यमुना लिखकर आप मुँह और और जीभके लिए ऐसी कसरतका सामान रख देते हैं, जिसे ९० फ़ी-सदी आदमी नहीं कर सकते। इसी मुश्किलको दूर करने और भाषाको सुबोध बनानेके लिए कवियोंने ब्रजभाषा और अवधीमें शब्दोंके प्रचलित रूप ही रखे थे। जनतामें अब भी उन शब्दोंका पुराना बिगड़ा हुआ रूप चलता है; मगर हम विशुद्धताकी धुनमें पड़े हुए हैं!"

एक व्यावहारिक तदबीर

प्रेमचन्दजीके निम्न-लिखित वाक्य शिक्षा-विभागके अधिकारियों तथा साहित्य-स्रष्टाओंके ध्यान देने योग्य हैं—

"हिन्दुस्तानीको व्यावहारिक रूप देनेके लिए दूसरी तदबीर यह है कि मैट्रिकुलेशन तक उर्दू और हिन्दी हरएक छात्रके लिए लाज़मी कर दी जाय। इस तरह हिन्दुओंको उर्दूसे और मुसलमानोंको हिन्दीमें काफ़ी महारत हो जायगी, और अज्ञानताके कारण जो बदगुमानी और सन्देह है, वह दूर हो जायगा। चूँकि इस वक्त भी तालीमका सीग़ा हमारे मिनिस्टरोंके हाथमें है और कैरीकुलममें इस तब्दीलीसे कोई ज़ायद ख़र्च न होगा, इसलिए अगर दोनों भाई मिलकर यह मतालबा पेश करें, तो गवर्मेन्टको उसके स्वीकार करनेमें कोई इनकार न हो सकेगा। मैं यक़ीन दिलाना चाहता हूँ कि इस तजवीजमें हिन्दी या उर्दू किसीसे भी पक्षपात नहीं किया गया है। साहित्यकारके नाते हमारा यह धर्म है कि हम मुल्कमें ऐसी फ़िज़ा, ऐसा वातावरण, लानेकी चेष्टा करें, जिससे हम ज़िन्दगीके हरएक पहलूमें दिन-दिन आगे बढ़ें। साहित्यकार पैदाइशसे सौन्दर्यका उपासक होता है। वह जीवनके हरएक अंगमें, ज़िन्दगीके हरएक शेवेमें, हुस्नका जल्वा देखना चाहता है। जहाँ सामंजस्य या हमआहँगी है, वहीं सौन्दर्य है, वहीं सत्य है, वहीं हक़ीक़त है। जिन तत्त्वोंसे जीवनकी रक्षा होती है, जीवनका विकास होता है, वही हुस्न है। वह वास्तवमें हमारी आत्माकी बाहरी सूरत है। हमारी आत्मा अगर स्वस्थ है, तो वह हुस्नकी तरफ़ बेअख़्तियार दौड़ती है। हुस्नमें उसके लिए न रुकनेवाली कशिश है। और क्या यह कहनेकी ज़रूरत है कि निफ़ाक़ और हसद तथा सन्देह और संघर्ष यह मनोविकार हमारे जीवनके पोषक नहीं, बल्कि घातक हैं, इसलिए वह सुन्दर कैसे हो सकते हैं? साहित्यने हमेशा इन विकारोंके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई है। दुनियामें मानव-जातिके कल्याणके लिए जितने आन्दोलन हुए हैं, उन सभीके लिए साहित्यने ही ज़मीन तैयार की है—ज़मीन ही नहीं तैयार की, बीज भी बोये और उसकी सिंचाई भी की। साहित्य राजनीतिके पीछे चलनेवाली चीज़ नहीं, उसके आगे-आगे चलनेवाला 'एडवांस गार्ड' है। वह उस विद्रोहका नाम है, जो मनुष्यके हृदयमें अन्याय, अनीति और कुरुचिके विरुद्ध उत्पन्न होता है, और लेखक अपनी कोमल भावनाओंके कारण उस विद्रोहकी ज़बान बन जाता है। और लोगोंके दिलोंपर भी चोट लगती है; पर अपनी व्यथाको, अपने दर्दको दिल हिला देनेवाले शब्दोंमें वे ज़ाहिर नहीं कर सकते। साहित्यका स्रष्टा उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोटोंको हमारे दिलोंपर इस तरह अंकित करता है कि हम उनकी तीव्रताको सौगुने वेगके साथ महसूस करने लगते हैं।"

साहित्य-सेवियोंकी पोज़ीशन और उसके कर्तव्योंका ऐसा अच्छा वर्णन हमने किसी हिन्दी-लेखककी कलमसे नहीं पढ़ा। रोमाँ रोलाँने अपनी नवीन पुस्तक 'I will not rest' (मैं आराम नहीं करूँगा) में, जो हाल ही में प्रकाशित हुई है, बिलकुल ऐसे ही भाव प्रकट किये हैं।

किसीने रोमाँ रोलाँसे पूछा था—"आप किसके लिए लिखते हैं?" इसका जवाब उन्होंने इन शब्दोंमें दिया था—" 'मैं किनके लिए लिखता हूँ?' मैं उनके लिए लिखता हूँ, जो आगे बढ़ती हुई फौजके अगुआ हैं; मैं उन लोगोंके लिए लिखता हूँ, जो महान अन्तर्राष्ट्रीय युद्धमें संलग्न हैं, जिसमें विजय होनेपर ऐसे मानव-समाजकी स्थापना हो सकेगी, जिसकी कोई भौगोलिक सीमा न होगी और जिसमें किसी प्रकारका ऊँच-नीच श्रेणीका भेद-भाव न होगा। हम जो लेखक हैं, हम फिसड्डी लोगोंसे कहते हैं कि 'बढ़े चलो', पर हम उन फिसड्डियोंका इन्तज़ार नहीं करते। यह उनका फर्ज है कि वे आगे बढ़कर हमारे निकट आवें। आगे बढ़नेवाली फौज रुकती थोड़े ही है।"

रोमाँ रोलाँके उपर्युक्त कथनकी तुलना कीजिए स्व० प्रेमचन्दजीके इस वाक्यसे—"साहित्य राजनीतिके पीछे चलनेवाली चीज़ नहीं, उसके आगे-आगे चलनेवाला 'ऐडवान्स गार्ड' है।"

दोनों कितने मिलते-जुलते हैं! ये दोनों महान् लेखक सर्वथा स्वतन्त्र रूपसे साहित्य-सेवियोंके आदर्शके विषयमें एक ही परिणामपर पहुँचे थे।

साहित्य और मनुष्यता

प्रेमचन्दजीके निम्न-लिखित वाक्य प्रत्येक भारतीय साहित्य-सेवीको हृदयंगम कर लेने चाहिए:—

"साहित्य बदगुमानियोंको मिटानेवाली चीज़ है। अगर आज हम हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके साहित्यसे ज्यादा परिचित हों, तो मुमकिन है कि हम अपनेको एक दूसरेके ज्यादा निकट पायें। साहित्यमें हम हिन्दू नहीं हैं, मुसलमान नहीं हैं, ईसाई नहीं हैं, बल्कि मनुष्य हैं, और वह मनुष्यता हमें और आपको आकर्षित करती है। क्या यह खेदकी बात नहीं है कि हम दोनों, जो एक ही मुल्कमें आठ सौ सालसे रहते हैं, एक-दूसरेके पड़ोसमें रहते हैं, एक-दूसरेके साहित्यसे इतने बेख़बर हैं? यूरोपियन विद्वानोंको देखिये। उन्होंने हिन्दुस्तानसे मुतअल्लिक़ हरएक मुमकिन विषयपर तहक़ीकातें की हैं, पुस्तकें लिखी हैं, वह हमें उससे ज्यादा जानते हैं, जितना हम अपनेको जानते हैं। उसके विपरीत हम एक-दूसरेसे अनभिज्ञ रहने ही में मगन हैं! साहित्यमें जो सबसे बड़ी ख़ूबी है, वह यह है कि वह हमारी मानवताको दृढ़ बनाता है, हममें सहानुभूति और उदारताके भाव पैदा करता है। जिस हिन्दूने कर्बलाकी मारकेकी तारीख़ पढ़ी है, यह असम्भव है कि उसे मुसलमानोंसे सहानुभूति न हो। उसी तरह जिस मुसलमानने रामायण पढ़ा है, उसके दिलमें हिन्दू-मात्रसे हमदर्दी पैदा हो जाना यक़ीनी है। कम-से-कम उत्तरी हिन्दुस्तानमें हरएक शिक्षित हिन्दू-मुस्लिमको अपनी तालीम अधूरी समझनी चाहिए, अगर वह मुसलमान है, तो हिन्दुओंके और हिन्दू है, तो मुसलमानोंके साहित्यसे अपरिचित है। हम दोनों ही के लिए दोनों लिपियोंका और दोनों भाषाओंका ज्ञान लाज़मी है। और जब हम ज़िन्दगीके पन्द्रह साल अंगरेज़ी हासिल करनेमें कुरबान करते हैं, तो क्या महीने दो महीने भी उस लिपि और साहित्यका ज्ञान प्राप्त करनेमें नहीं लगा सकते, जिसपर हमारी क़ौमी तरक़्क़ीका ही नहीं, क़ौमी ज़िन्दगीका भी दारमदार है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

निर्वाचनमें कांग्रेसकी सफलता

नये विधानके अनुसार प्रदेशोंमें जो व्यवस्थापिका सभाएँ बनेंगी, उनके सदस्योंका निर्वाचन हो गया। निर्वाचनके फलसे यह देखा जाता है कि इस विषयमें कांग्रेसकी चेष्टा सफल हुई। भारतके ग्यारह प्रदेशोंमें से छै प्रदेशोंकी व्यवस्थापिका सभाओंमें कांग्रेस-पक्षके सदस्योंकी संख्या सम्पूर्ण सदस्य-संख्यासे आधीसे अधिक है। बाक़ी पाँच प्रान्तोंमें यद्यपि कांग्रेसका बहुमत नहीं है, फिर भी कांग्रेसी सदस्योंकी संख्या नगण्य नहीं है। अन्य प्रदेशोंकी बात तो नहीं कह सकता; किन्तु बंगालमें कांग्रेसी सदस्योंकी संख्या बहुत ज़्यादा होती, यदि ब्रिटिश पार्लमेन्ट बंगालकी स्वाधीनता-इच्छुक शिक्षित श्रेणीको नाना प्रकारसे बलहीन करनेकी नाना विधियाँ नवीन भारत-शासन-विधानमें न जोड़ देती। इन उपायोंमें साम्प्रदायिक निर्णय प्रधान है—यद्यपि अन्य सब प्रदेशोंमें भी यही उपाय काममें लाया गया है। बंगालमें स्वाधीनता चाहनेवाले शिक्षित लोगोंमें हिन्दू ही अधिक हैं। उनकी शक्ति कम की गई है। पहले तो हिन्दुओंको व्यवस्थापिका सभाओंमें उनकी शिक्षा, योग्यता, सार्वजनिक कार्योंमें उत्साह तथा सरकारी राजस्वमें उनके प्रदत्त करके अनुपातमें प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। इतना ही नहीं, वरन् जनसंख्याके हिसाबसे भी उन्हें जितना प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए, उतना भी नहीं दिया गया। दूसरे जो जातियाँ अवनत और अस्पृश्य नहीं हैं तथा जो अवनत जातियोंकी सूचीमें शुमार की जानेपर प्रबल आपत्ति करती हैं, उन जातियोंको भी अवनत जातियोंमें दाखिल करके हिन्दुओंकी ८० सीटोंमें से ३० सीटें 'अवनत' हिन्दुओंको दे डाली गई हैं, और इस प्रकार 'अवनत' और 'अनवनत' हिन्दुओंमें से योग्यतम हिन्दुओंके निर्वाचनमें बाधा उपस्थित कर दी गई है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि बंगालमें अंगरेज़ोंको २५ सीटें दे डाली गई हैं। वे लोग अपनी जनसंख्याके अनुसार १ सीट भी न पा सकते थे। अंगरेज़ लोग जितना कर देते हैं, उसके अनुसार भी वे २५ सीटें नहीं पा सकते। इसके अतिरिक्त यदि प्रदत्त करके अनुसार सीटोंका विभाजन किया जाय, तो बंगालमें २५० सीटोंमें से १८७ सीटें हिन्दुओंको मिलनी चाहिए।

जो भी हो, ब्रिटिश पार्लमेन्टकी इन सब चेष्टाओंके होते हुए भी बंगालमें कांग्रेसी सदस्योंकी संख्या अन्य किसी भी एक दलके सदस्योंकी संख्यासे ज़्यादा ही हुई है।

समूचे ब्रिटिश भारतवर्षमें कांग्रेसकी इस सफलताका कारण क्या है?

इस सफलताके प्रधानतः दो कारण हैं। कांग्रेस देशको अभी तक स्वाधीनता नहीं दिला सकी, फिर भी कांग्रेस देशको स्वाधीनता दिलानेकी आशा अन्य सब राजनैतिक दलोंसे अधिक देती है। स्वाधीनता प्राप्त करनेकी इच्छाको जाग्रत रखनेमें तथा उसे प्रबल बनानेमें कांग्रेसने सबसे अधिक चेष्टा की है, और साथ-ही-साथ अपने ज्ञान, बुद्धि और विवेचनाके अनुसार स्वाधीनता प्राप्त करनेकी कोशिश भी उसने सबसे अधिक की है। यह चेष्टा करनेमें कांग्रेस दलके लोगोंको अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी है और अनेकों दुःखोंको वरण करना पड़ा है।

स्वाधीन होने और स्वाधीन रहनेकी इच्छा मनुष्यमें प्रकृतिसे ही होती है, इसलिए जो लोग देशको स्वाधीन करनेकी आशा देते हैं और उसके लिए चेष्टा करते हैं, वे लोकप्रिय होंगे ही। यह बात स्वाभाविक है। यह ठीक है कि कांग्रेसकी स्वाधीनता-प्राप्तिकी चेष्टा अभी तक सफल नहीं हुई; किन्तु कितने पराधीन देश ऐसे हैं, जिनकी स्वाधीनता-प्राप्तिकी चेष्टा इतने थोड़े समयमें सफल हुई हो?

कांग्रेसके किसी-किसी व्यक्तिके दोषोंकी अथवा समूची कांग्रेसकी किसी नीतिके भ्रमकी आलोचना करना यहाँ अप्रासंगिक होगा। फिर एकदम निर्दोष कौन-सा दल या व्यक्ति है?

कांग्रेसके लोकप्रिय होनेका एक और कारण है गवर्नमेन्टके प्रति देशवासियोंका विराग। देशमें दरिद्रता, स्वास्थ्यहीनता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञता आदि अन्य नाना कारण हो सकते हैं—उनकी आलोचना यहाँ हम नहीं करते। किन्तु देशके लोगोंकी धनवृद्धि, उत्पन्न धनको देशमें रक्षित रखना, रोगोंके विरुद्ध युद्ध करना, रोगोंकी रोक-थाम, देशकी शोचनीय निरक्षरताको दूर करनेकी व्यवस्था आदि विषयोंपर सरकारने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया, यह सभी जानते हैं। इसके ऊपर है सरकारकी बहुवर्षव्यापी दमन-नीति, जिसका गुरुभार मनुष्यके मनको अवसादग्रस्त और नैराश्यपूर्ण कर रहा है। इसलिए यदि सरकार जनतामें अप्रिय है, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। कांग्रेस सरकारकी सबसे अधिक निर्भीक और अक्लान्त समालोचक है, और यह समालोचना करनेमें सबसे अधिक दण्डित हुए हैं कांग्रेसवाले ही। अतः उनका लोकप्रिय होना और निर्वाचनमें विजयी होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

—

महात्मा गांधीकी स्वाधीनता

दक्षिण-अफ्रिकामें महात्मा गान्धीके शिष्य और सहकर्मी तथा आजकल लन्दनके सालिसिटर मि० पोलकने गांधीजीसे पूछा कि वे जो स्वाधीनता चाहते हैं, वह किस ढंग की है। जब गोलमेज़ कानफरेन्समें महात्माजी लन्दन गये थे, तब उन्होंने जो कहा था, क्या अब भी उनका वही मत है? प्रश्नके उत्तरमें गान्धीजीने कहा कि तब उन्होंने कहा था कि 'स्वाधीनताका सार' मिलनेसे ही वे सन्तुष्ट हो जायँगे। उनके मतानुसार वेस्ट मिनिस्टर स्टैट्यूट नामक कानूनके अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्य मिलनेसे ही स्वाधीनताका सार प्राप्त हो जायगा। कनाडा, दक्षिण-अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, आदि उपनिवेश अपने-अपने देशोंके अन्दरूनी मामलोंमें सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। इंग्लैण्ड उन्हें उनकी इच्छाके विरुद्ध किसी अन्य देशके युद्धमें नहीं घसीट सकता और न उनकी सेनाओंको ही किसी अन्य देशमें भेज सकता है। बेशक ये उपनिवेश इंग्लैण्डकी इच्छाके विरुद्ध किसी देशसे युद्ध नहीं ठान सकते और न किसी ऐसे देशसे मित्रता कर सकते हैं, जो इंग्लैण्डसे लड़ रहा हो; किन्तु वे अन्य देशोंसे स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापारिक सन्धि कर सकते हैं और उनमें अपने व्यापार-दूत रख सकते हैं। वेस्ट मिनिस्टर स्टैट्यूटके अनुसार ये उपनिवेश इच्छा, या आवश्यकता होनेपर इंग्लैण्डसे सम्बन्ध-विच्छेद करके ब्रिटिश साम्राज्यसे पृथक् हो सकते हैं।

इस अधिकारका विशेषरूपसे उल्लेख करके गांधीजीने कहा है कि वे वेस्ट मिनिस्टर स्टैट्यूटके अनुसार इस अधिकार-समेत औपनिवेशिक स्वराज्य पानेसे सन्तुष्ट हो जायँगे। हम उनके मनका भाव समझ सकते हैं और उसके गुणोंका अनुभव करते हैं। उनके मनके भाव एक सुधारकके मनके भाव हैं, जिसे कांग्रेसके साम्यवादी दलवाले 'रिफार्मिस्ट' भाव कहते हैं। अवश्य ही औपनिवेशिक स्वराज्य न मिलनेसे गांधीजी इंगलैण्डसे एकदम सम्बन्ध तोड़कर पूर्ण स्वाधीनता चाहेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

औपनिवेशिक स्वराज्य पाकर और देशके अन्दरूनी मामलोंमें तथा अन्य राष्ट्रोंके साथ वाणिज्य-विषयक बातोंमें पूर्ण स्वाधीन होनेपर भी, भारतवर्षको इंग्लैण्डके साम्राज्यवादके दोषसे कुछ-कुछ दोषी रहना ही पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं। इस समय इंग्लैण्ड अपने अधीन देशोंके प्रति जिन-जिन विषयोंमें न्यायसंगत व्यवहार नहीं करता, या स्पष्ट अन्याय व्यवहार ही करता है, उपनिवेश या तो उसका समर्थन करते हैं, अथवा उनका प्रतिवाद नहीं करते। औपनिवेशिक स्वराज्य पाकर भारतवर्षको भी इसी प्रकारके दोषका दोषी होना पड़ेगा। इसलिए सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त होनेके लिए पूर्ण स्वाधीनता ही वांछनीय है।

किन्तु इस प्रकारके दोषसे मुक्त रहनेका उपाय औपनिवेशिक स्वराज्यके भीतर ही है। वह उपाय है इंग्लैण्डके साथ सम्पर्क त्याग कर देना। ऐसा करनेका अधिकार वेस्ट मिनिस्टर स्टैट्यूटने उपनिवेशोंको दिया है।

पंडित जवाहरलाल नेहरूने महात्माजीकी बातका विरोध किया है। नेहरूजीके मनके भावोंको हम समझ सकते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके उत्कर्षका अनुभव करते हैं। औपनिवेशिक स्वराज्य पाकर पूर्ण स्वाधीनताकी आकांक्षा कुछ कम हो जानेकी आशंका है। इसके सिवा वे साम्राज्यवादी ब्रिटेनके साथ कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहते। किन्तु यदि ब्रिटेन भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, तो भारतवर्षके सम्बन्धमें ब्रिटेन साम्राज्यवादी न रह जायगा—हालाँ कि अपने अधीन अन्य किसी-किसी देशके सम्बन्धमें तब भी ब्रिटिश जाति सम्राज्यवादी बनी रहेगी। यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि राष्ट्रके लिए पूर्ण स्वाधीन होना ही सर्वश्रेष्ठ वांछनीय अवस्था है। उस अवस्थामें जो देश है, अथवा पहुँचता है, वह देश यह स्थिर कर सकता है कि अन्य किसी देशके साथ वह किस प्रकारका सम्बन्ध रखेगा या न रखेगा। भारतवर्षके लिए इस अवस्था तक पहुँचनेके दो मार्ग हैं—औपनिवेशिक स्वराज्यकी तरफसे होकर, या विप्लवकी सहायतासे। नवीन भारत-शासन-कानूनका मसविदा पार्लमेंटमें पेश करनेके पहले और उसपर बहस होनेके पहले इंग्लैण्डके राजा, प्रधान-मन्त्री और भारतके बड़े लाट आदिने भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य देनेकी आशा दी थी, अंगीकार किया था; लेकिन इस मसविदेके तैयार होनेके ठीक पहलेसे ही सभी अंगरेज़ राजपुरुषोंने औपनिवेशिक स्वराज्यकी बात छोड़ दी, उसे दबा देनेकी चेष्टा की और पार्लमेन्टमें बिना प्रतिवादमें कहा गया कि पहले औपनिवेशिक स्वराज्य देनेके वचनका कोई मूल्य नहीं, वचन देनेवालोंको इस प्रकारका वचन देनेका कोई अधिकार नहीं था। इसके परिणाम-स्वरूप यदि भारतवर्षमें विप्लवकारी मनोभाव प्रबलतर हो जायँ, तो ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंको विस्मित होना उचित नहीं। कांग्रेसवालोंको याद रखना होगा कि लिबरल या नरम - दलवाले कांग्रेस - नेता गांधीजीकी तरह ही औपनिवेशिक स्वराज्य चाहते हैं।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

शान्ति-रक्षाका अनोखा उपाय

एबरडीनमें एक भाषण देते हुए ब्रिटेनके परराष्ट्र-सचिव मि० एन्थोनी ईडनने कहा है—"शस्त्रास्त्रोंकी भारी वृद्धिसे यह परिणाम निकालना कि युद्ध अनिवार्य है, ठीक नहीं। ब्रिटेन इस घातकवादमें कभी सहयोग न देगा। शान्तिके लिए बहुत-सी शक्तियाँ और प्रभाव काम कर रहे हैं, जिनमें से एक तो यह है कि लोग दिन-दिन उन भयानक खतरोंसे आगाह होते जा रहे हैं, जो युद्धके फूट पड़नेपर अवश्यम्भावी हैं। लोग इस बातसे परिचित हैं कि यदि बड़े पैमानेपर कोई अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध छिड़ गया, तो इसके अनिवार्य परिणाम जीते और हारे हुए पक्षोंको समान रूपमें भोगने पड़ेंगे।

"सरकारका विश्वास है कि शान्तिके लिए शस्त्रीकरण प्रोग्राम लाज़मी है, और वह उसे आवश्यकतानुसार अन्तिम सीमा तक अवश्य पहुँचायेगी।"

मि० ईडनका यह कथन कि शस्त्रास्त्रकी वृद्धिसे युद्धोंका होना अवश्यम्भावी नहीं हो सकता, अथवा यह कहना कि शस्त्रास्त्रोंकी वृद्धि विश्वकी शान्तिके लिए है, ठीक उसी प्रकार है, जैसे कोई अक़्लमन्द यह कहे कि मकानमें आग न लगने पाये, इसीलिए हम अपने घरमें पेट्रोल, बारूद, दियासलाई आदि इकट्ठा करके रखते हैं!

—

शासनका मोह ?

श्रीयुत राजगोपालाचारीने अपने एक भाषणमें कहा है—"It was more difficult to carry on the responsibilities of offiice than going to jail. One thing wanted was character & ability."—'पदकी ज़िम्मेवारियोंको निभाना जेल जानेकी अपेक्षा कहीं अधिक मुश्किल है। उसके लिए दृढ़ चरित्र तथा योग्यताकी आवश्यकता है।'

यही शब्द यदि किसी उच्च पदाधिकारी सरकारी अफ़सरने कहे होते, तो अनेक पत्रकार उनका मज़ाक उड़ाये बिना न रहते; पर ये शब्द कांग्रेसके एक ज़िम्मेवार नेताने कहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि इन शब्दोंके अन्तर्गत भावना ठीक है, तो फिर श्रीयुत चिन्तामणि प्रभृति लिबरल नेताओंको, जिन्होंने पिछले सुधारोंके दिनोंमें मंत्री बनना स्वीकार किया था, हम किस मुँहसे दोष दे सकते हैं? और जिन दिनों उन लोगोंसे यह अपराध बन पड़ा था, गवर्नरकी शक्तियाँ आजकलकी अपेक्षा कम ही थीं। दरअसल बात यह है कि कांग्रेसमें भी अनेक नेता ऐसे हैं, जिनकी मनोवृत्ति लिबरल दलवालोंकी तरहकी है। जब कोई लिबरल नेता ईमानदारीके साथ कहते हैं—"पत्थरके नीचे दबी हुई उँगली धीरे-धीरे ही निकाली जा सकती है," तो उनके तर्कको हम भलीभाँति समझ सकते हैं; पर जब कांग्रेसके नेता, जो क्रान्तिकारी मनोवृत्तिका दम भरते हैं, इस प्रकारकी बात कहते हैं, तो हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता।

वस्तुतः बात यह है कि अधिकांश व्यक्तियोंमें दूसरोंपर शासन करनेका मोह पाया जाता है। जब साम्यवादी लोग डिक्टेटरशिपकी बात करते हैं, तब वही मोह सूक्ष्म रूपसे उनकी मनोवृत्तिमें झलक जाता है, जो भद्दे तौरपर हिटलर और मुसोलीनीकी तानाशाहीमें स्पष्टतया प्रतीत होता है।

'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'—तुलसीदासजीका यह कथन सर्वथा सत्य है। पर प्रभुता-प्राप्तिकी सम्भावनामें भी एक प्रकारका मद—एक तरहका नशा है। हमें शक है कि कहीं श्री राजगोपालाचारी तथा श्री सत्यमूर्ति आदि इस नशेके शिकार तो नहीं हो गये हैं। हम उपर्युक्त महानुभावोंके उद्देश्योंपर आशंका नहीं करते, वरन् उनकी इस फिसलनका मनोवैज्ञानिक कारण तलाश करना चाहते हैं।

—

बर्माका पोस्टेज

आगामी १ ली अप्रेलसे बर्मा भारतसे अलग हो जायगा। राउण्ड टेबिल कानफरेन्सने तै किया था कि तीन वर्ष तक बर्मा और भारतका व्यापारिक सम्बन्ध वैसा ही बना रहेगा, जैसा अब तक था। इसके बाद दोनों देश आपसमें मिलकर जो समझौता करें, वैसा होगा। मगर इसी बीचमें बर्माने भारतका पोस्टेज बढ़ा दिया है। १ ली अप्रेलसे बर्माके लिए पोस्ट-कार्डपर दो आने, लिफाफेपर ढाई आने और बुक-पोस्ट तथा अखबारोंपर प्रति दो औंसपर तीन पैसेका टिकट लगेगा। मामूली तारका चार्ज आठ शब्दोंके लिए नौ आनेकी जगह एक रुपया दो आने लगेगा, यानी कलकत्तेसे रंगूनके लिए—जिसका फ़ासला कुल ७०० मील है—उतना ही डाक-महसूल लिया जायगा, जितना कलकत्तेसे ब्रिटिश-गायनाके लिए लिया जाता है, जिसका फ़ासला १२,००० मीलसे ऊपर है!

बर्मामें मेहनत-मज़दूरीके मोटे काम भारतीय करते हैं। हर साल फ़सल तैयार होनेपर बर्माके पास इतने आदमी नहीं होते, जो उसकी कटाई-दँयाई कर सकें। इस कामके लिए अन्दाज़न ३०,००० हज़ार आदमी हर साल भारतसे बर्मा जाते हैं। ये मज़दूर अधिकांशमें उड़ीसा और आन्ध्र-देशसे आते हैं, और फ़सल खत्म होनेपर वापस चले जाते हैं। मोटे हिसाबसे कम-से-कम तीन-चार लाख भारतीय मज़दूर बर्मामें स्थायी रूपसे निवास करते हैं। डाक-महसूलकी इस आकस्मिक वृद्धिसे इन गरीब मज़दूरोंको अपने घरोंसे सम्बन्ध रखनेमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। इसके सिवा बर्मा और भारतका व्यापारिक सम्बन्ध बहुत घना है। बर्माकी पैदावारमें तीन चीज़ें मुख्य हैं—चावल, सागौनकी लकड़ी और मिट्टीका तेल। बर्माका ६० फ़ी-सदी चावल, ८० फ़ी-सदी सागौन और लगभग सब-का-सब पेट्रोल भारत ही खरीदता है। डाक-महसूलकी इस वृद्धिसे बर्मा-भारतके व्यापारपर भी बुरा असर पड़ेगा।

सरकारकी ओरसे कहा गया है कि यह वृद्धि बर्मा-सरकारके इच्छानुसार हुई है। अभी तक बर्मामें नया मंत्रिमंडल नहीं बन पाया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह बर्मियोंकी करतूत है। यह असलमें आई० सी० एस० वालोंकी करतूत है, जिनके हाथमें बर्माका शासन है। निस्सन्देह बर्माकी नई व्यवस्थापिका सभामें भारतीय सदस्योंने इस वृद्धिके विरोधमें प्रस्ताव पेश किया था, जो तीन वोटसे अस्वीकृत हुआ—प्रस्तावके पक्षमें ४० वोट और विपक्षमें ४३ वोट आये। इस वोटिंगसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यही प्रकट होता है कि अगर बर्मा-सरकारका आई० सी० एस० गुट्ट इस प्रश्नको अभी न उठाता, तो बर्मी लोग स्वयं इस प्रश्नको न उठाते।

भारतसे बर्माके पृथक्करणके सम्बन्धमें भारतीयोंका कहना था कि ग्रेट ब्रिटेन अपने स्वार्थके लिए बर्माका आर्थिक दोहन करना चाहता है, इसीलिए उसने बर्माको भारतसे अलग करनेकी योजना बनाई है। बर्माके मौजूदा गोरे शासकोंकी नीति यह मालूम होती है कि भारतीय बर्मामें न जायँ। सम्भव है कि डाक-महसूलकी यह वृद्धि इसी दुर्नीतिका फल हो। बर्माके शासकोंका खयाल हो कि पोस्टेज बढ़ जानेसे बर्माको जानेवाले और बर्मामें बसनेवाले भारतीयोंका अपने देशवासियोंसे सम्बन्ध कम हो जायगा और इस प्रकार बर्मा जानेवाले भारतीयोंकी संख्या घट जायगी। हिन्दुस्तान और बर्मामें भारतीयोंको इस नीतिका तीव्र विरोध करना चाहिए।

—

सम्मेलनका सभापतित्व

साप्ताहिक 'अर्जुन'के ८ मार्चके अंकमें श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री दयाशंकर दुबे इत्यादि महानुभावोंने एक लेख छपाया है, जिसमें उन्होंने एक "सम्मेलनका सभापति कौन हो" शीर्षक लेखके लेखक महोदयकी शैलीको 'निन्दनीय' बतलाया है। उनके शब्द ये हैं—

"मतभेद किसी विषयपर हो सकता है; किन्तु हिन्दी लेखकोंको और हिन्दीके क्षेत्रमें काम करनेवालोंको भूलना न चाहिए कि महात्मा गांधीकी शक्तिसे हिन्दीका गौरव कितना बढ़ा है और हमारे देशके उन सब आदरणीय व्यक्तियोंने, जिनका नाम ऊपर आया है, हिन्दी-प्रचारके काममें कितनी बड़ी सहायता दी है और दे रहे हैं।"

आजसे दो वर्ष पहले जब महात्माजी तथा अन्य कार्यकर्ताओंपर इसी प्रकारके 'निन्दनीय' दोषारोपण किये गये थे, उस समय श्रीमान टंडनजी तथा उनके साथियोंने उनका सार्वजनिक रूपसे क्या और कितना विरोध किया था, इसका हमें पता नहीं। "महात्माजीकी शक्तिसे हिन्दीका गौरव" उस वक्त भी काफी बढ़ चुका था; पर उस समय दो-तीन पत्रोंको छोड़कर किसीने भी उन ऊटपटांग लेखोंका विरोध नहीं किया, बल्कि अनेक पत्रोंने उन लेखोंको छापकर और उनका प्रचार करके इस अक्षम्य अपराधमें शामिल होना मुनासिब समझा था। श्रीमान टंडनजी तथा उनके साथियोंका कहना है—"सिद्धान्तोंको लेकर व्यक्तिगत कटुता लाना और देशके नेताओंके अभिप्रायोंपर आक्षेप करना किसी जिम्मेदार लेखकके योग्य नहीं।"

यदि "अभिप्रायोंपर आक्षेप करना" अनुचित है, तो यह अपराध हिन्दी-जगतमें पहली बार ही नहीं हुआ है। अगर श्रीमान टंडनजी थोड़ा समय दे सकें और ज़रा धैर्यसे काम लें, तो बीसियों लेखोंके कटिंग उनकी सेवामें भेजे जा सकते हैं, जिनमें अनेक कार्यकर्ताओंके अभिप्रायोंपर ही नहीं, चरित्रपर भी निन्दनीय-से-निन्दनीय आक्षेप किये गये थे। राजनैतिक आन्दोलनमें व्यस्त रहनेके कारण सम्भवतः वे लेख टंडनजीकी निगाहसे न गुज़रे होंगे; पर अन्य लोगोंको तो इस विषयमें सतर्क रहना चाहिए था।

दुःखकी बात तो यह है कि हिन्दी-जगतमें घोर-से-घोर अन्याय दिन दहाड़े होते रहते हैं; पर किसीके कानोंपर जूँ नहीं रेंगती। हमारे यहाँ किसीके अभिप्रायोंपर आक्षेप करना तो एक मामूली-सी बात हो गई है। १० मार्चके 'भारत' में 'दिव्यचक्षु' के निम्न-लिखित नोट पढ़ लीजिए—

"हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके आगामी अधिवेशनके लिए सभापतिकी खोज बड़े ज़ोरोंके साथ हो रही है। काका कालेलकर महोदयने श्री जमनालाल बजाजके लिए बड़े मार्मिक शब्दोंमें सिफ़ारिश की है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दीके प्रति बजाजजीकी सेवाएँ बहुत हैं। दूसरी बात यह है कि 'अंधा बाँटे रेवड़ी हिर-फिर अपनोंको ही दे।'

× × ×

रही सेवाकी बात, सो जनाब, साहित्य-सेवा तो कोई क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा नहीं। साहित्य-सेवी तो गली-गली जूतियाँ चटकाते फिरते हैं। असली सेवा तो वही है, जो हिन्दी-प्रचारके लिए थैलीका मुँह खोले। थैलीका मुँह खोलनेवाला ही आजकल सबसे बड़ा 'सेवी' है। यदि ऐसे आदमीको भी सभापति न बनाया जाय, तो क्या फिर उन साहित्य-सेवियोंको बनाया जाय, जिनके घरमें भूनी भाँग भी नहीं है ? तोबा !

× × ×

उस दिन एक साहित्यिक महोदयने प्रश्न किया कि—'सभापतिकी हैसियतसे बजाजजीको हिन्दी-साहित्यपर भी अपने विचार प्रकट करने पड़ेंगे। तो क्या बजाजजी हिन्दी-साहित्यके मर्मज्ञ हैं ?' अपने राम बोले, अवश्य होंगे। और यह कोई आवश्यक है कि सभापति हिन्दी-साहित्यपर अपने विचार प्रकट ही करे ? वह अपने विचार न प्रकट करना चाहे, तो किसीका इजारा है ? दूसरी बात यह है कि पैसेवाला सब कुछ कर सकता है। हिन्दी-साहित्य और मराठी, गुजराती, बँगला, तेलगू तो मामूली बात है, बजाजजी यदि चाहें तो लैटिन साहित्यपर भी अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। काका साहबका इन्तजाम कुछ ऐसा-वैसा थोड़ा ही है। बोल साँचे दरबारकी जय।"

इस प्रकारके आक्षेपोंको पढ़नेके बाद भी श्री जमनालालजीने सभापति - पद कैसे स्वीकार कर लिया, यह हमारी समझमें नहीं आता। सभापति हुए बिना भी उन्होंने राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी अत्यन्त प्रशंसनीय सेवा की है और भविष्यमें भी वे कर सकते थे। क्या ही अच्छा होता, यदि वे श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवाल अथवा श्रीमान राहुलजीके लिए इस स्थानको रिक्त कर देते और स्वागतकारिणी सभाके एक साधारण सदस्यकी हैसियतसे इन विद्वानोंका मदरासमें स्वागत करते। इससे उनके गौरवकी वृद्धि ही होती।

—

सेवा-उपवनका बीज

बहुत दिन पहलेकी बात है। सदियाँ गुज़र गईं। किसी गाँवमें एक बढ़ई रहता था, जो किसानों और मजदूरोंका सखा था और उनके घरेलू कामोंमें मदद दिया करता था। एक दिन वह अपने साथी-संगियोंको मिट्टी और बाँसके झोंपड़े बनानेमें मदद दे रहा था। उन लोगोंने बहुतसे बाँस इकट्ठे कर रखे थे। उनमें एक बाँस जगह-जगहपर फटा टूटा था। एक साथीने उस बाँसको उठाकर कहा—"यह तो बिल्कुल निकम्मा है, इसे फेंक देना चाहिए।" वह उसे तोड़-मरोड़कर फेंकना ही चाहता था कि उस बढ़ईने रोककर कहा—"नहीं भाई ! ऐसा न करो। इसके कुछ ही हिस्से तो फटे-टूटे हैं। इसे मुझे दे दो, मैं इसका उपयोग कर लूँगा।"

जब शाम हुई, तो उस बढ़ईने वह बाँस उठाया, इधर-उधरसे उसे देखा और यह जाँच की कि उसका कौनसा हिस्सा सही-सलामत है। फिर अपना चाकू निकालकर उस बढ़ईने उस बाँसमें से एक साबित पोर काटी और उससे एक बाँसरी बनाना शुरू किया। इतनेमें वहाँ गड़रियेका एक बच्चा आ पहुँचा। बढ़ईने बच्चेसे कहा—"लो, यह चीज़ तुम्हारे लिए है। भेड़ चराते वक्त इसे बजाते रहना। यह बाँसरी तुम्हारी साथिन बनेगी।"

इस प्रकार उस बढ़ईने क्रियात्मक रूपसे अपने साथियोंको यह उपदेश दिया कि जैसे फटे-टूटे बाँसोंसे यदि घर नहीं बन सकता, तो बाँसरी तो बन सकती है, उसी तरह दीन-हीन अपाहिजोंका जीवन मानव-समाजके लिए किसी-न-किसी रूपमें कल्याणकारी बनाया जा सकता है। वह बढ़ई कौन था ?

ईसा मसीह, जिनके सन्देशसे आज करोड़ों मनुष्योंको मानसिक और आत्मिक शान्ति मिलती है। एक कुष्ठीका आलिंगन करके साढ़े उन्नीस सौ वर्ष पहले ईसाने जो बीज बोया था, वही आज सेवा-उपवनके रूपमें विद्यमान है।

'सेवा-उपवन'-विषयक लेख अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि वे इस कार्यके लिए जो कुछ भी सहायता भेजना चाहें, सीधे मि० ए० डी० मिलर पुरुलिया (बिहार) को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशासनके अपवाद

स्वामी रामतीर्थने कहीं कहा था—"Blessed are those who do not read newspapers."—'धन्य हैं वे, जो अखबार नहीं पढ़ते।' और थोरोने बताया था कि बूढ़ी औरतें चायचक्रममें चाय पीते वक्त जो गप लड़ाया करती हैं, बस समाचारपत्र भी वैसी ही चीज़ हैं। किसी-किसी दिन इन आर्ष वाक्योंसे बेजा तौरपर प्रभावित होकर हम दैनिक अखबार नहीं पढ़ते। शायद ऐसे ही किसी दिनके समाचारपत्रमें कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीका कोई प्रस्ताव निकल गया है, जो हमारी आँखोंसे नहीं गुज़रा, पर जिसकी कल्पना हम कर सकते हैं। प्रस्ताव कुछ ऐसा होगा :—

प्रस्ताव—कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटी यह निश्चित करती है कि यदि कांग्रेसका कोई भी मेम्बर उसके निर्णयके विरोधमें कार्रवाई करे, तो कई वर्षके लिए वह कांग्रेसकी मामूली मेम्बरीसे भी निकाल दिया जाय।

अपवाद—(१) अनुशासन-सम्बन्धी इस नियमके कुछ अपवाद भी होंगे, यथा मालवीय-वंश।

(२) यदि प्रान्तीय अथवा स्थानीय कांग्रेस कमेटियोंने प्रान्तीय सभाके सदस्योंके नामज़द करनेमें कुछ अन्याय किया हो, तो उनके विरुद्ध अनुशासनकी कोई कार्रवाई न की जायगी।

अगर 'विशाल भारत' के किसी पाठकने इस तरहका कोई प्रस्ताव देखा हो, तो वे कृपया उसकी प्रति हमारे पास भेज दें। बहुत दिमाग़ लड़ानेपर भी यह बात हमारी समझमें नहीं आई कि जिस अपराधके लिए अनेक छुटभइयोंको कांग्रेसकी मेम्बरीसे भी हाथ धोना पड़ा, उसी अपराधके अपराधी महामना मालवीयजी तथा श्रीमान कृष्णकान्त मालवीयके विरुद्ध कोई कार्रवाई क्यों नहीं की गई? क्या ये अनुशासन-नियमके अपवाद समझे जायँ?

—

सर सिकन्दर हयात और साम्प्रदायिकता

यह पक्के तौरपर निश्चित हो गया कि नये विधानके अनुसार सर सिकन्दर हयात ख़ां पंजाबके प्रथम प्रधान मन्त्री होंगे। लाहौरके पत्रकारोंने इसके उपलक्षमें सर सिकन्दर हयातको एक चाय-पार्टी दी थी। इस अवसरपर सर सिकन्दरने कहा था—"अगले तीन वर्षके भीतर प्रान्तसे साम्प्रदायिकता ग़ायब हो जायगी और लोगोंमें ऐसी एकता स्थापित होगी, जैसी अब तक नहीं हुई। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अपने वश-भर मैं इस उद्देशको पूरा करनेका प्रयत्न करूँगा।"

लाहौर-पत्रकार-समितिके मन्त्रीने अख़बारोंपर लगे हुए दमनकारी क़ानूनोंके बारेमें जब सवाल किया, तो सर सिकन्दर हयात ख़ांने उत्तर दिया—"भविष्यमें प्रेस ऐक्टका उपयोग औरोंकी अपेक्षा उन लोगोंके विरुद्ध अधिक किया जायगा, जो साम्प्रदायिकता फैलाते हैं।" आगे चलकर सर सिकन्दर हयातने कहा—"विभिन्न सम्प्रदायोंमें द्वेषकी भावना फैलानेवालोंको मैं हर्गिज़ नहीं सहन कर सकता।"

सर सिकन्दर हयात ख़ांके राजनैतिक विचारोंसे बिलकुल सहमत न होते हुए भी हम उनकी इस बातका सहर्ष स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि वे अपने प्रयत्नमें सफल होंगे। साम्प्रदायिकताका ज़हर फैलानेमें पढ़े-लिखे लोगोंका ही हाथ है, और इसमें साम्प्रदायिक अख़बारोंका दोष भी थोड़ा नहीं है।

जहाँ तक ग्रामीण जनताका सम्बन्ध है, अभी तक उनमें यह विष उतनी दूर तक व्याप्त नहीं हो पाया है, जितना शहरके पढ़े-लिखे लोगोंमें। इसमें शक नहीं कि इन पढ़े-लिखे लोगों और अख़बारोंसे छन-छनकर साम्प्रदायिकताका ज़हर धीरे-धीरे ग्रामोंमें भी पहुँच रहा है। यदि सर सिकन्दर इस विषके फैलानेवालोंको सबक़ सिखला सकें, तो वे अपने सूबेका ही नहीं, तमाम मुल्कका बहुत बड़ा उपकार करेंगे। सर सिकन्दरके कथनसे स्पष्टतः रूपसे यह प्रकट होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सरकारने अब तक साम्प्रदायिकता रोकनेके लिए काफी सख्तीसे काम नहीं लिया। क्यों नहीं लिया, इसका जवाब देना फिजूल है; पर हमारा विश्वास है कि पिछले पन्द्रह वर्षमें सरकारने जिस मुस्तैदीसे राजद्रोहके लिए लोगोंको सजाएँ दी हैं, अगर उसकी चौथाई मुस्तैदीसे भी वह साम्प्रदायिकताका ज़हर फैलानेवालोंके खिलाफ़ कार्रवाई करती, तो आज मुल्कमें यह ज़हर इतना न फैल पाता।

—

लक्ष्मी-सरस्वती-संग्राम

गत ५ मार्चके 'आज' में श्री महावीरप्रसाद गहमरीका एक छोटा-सा नोट प्रकाशित हुआ है, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"हिन्दी-साहित्यिक चिल्लाते ही रह गये कि हिन्दू-विश्वविद्यालय हिन्दी-साहित्यके आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीको डाक्टरकी सम्मानित पदवी दे; मगर महामना मालवीयजी या उनके विश्वविद्यालयकी सीनेटके कानपर जूँ तक नहीं रेंगी! अब देखता हूँ कि उसी विश्वविद्यालयकी सीनेटकी सिफारिशपर मालवीयजीने राजा बलदेवदास बिड़लाको 'डाक्टर'की उपाधि दी है। यह देखकर बरबस मुँहसे निकल पड़ता है—हाय रे पैसा!"

गहमरीजीने जिन भावोंसे प्रेरित होकर यह नोट लिखा है, उनका सम्मान करते हुए भी हम एक निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं, वह यह कि संस्थाओंके हृदय नहीं होता। वे मेशीनकी तरह काम करती हैं, और जितने अंशों तक कोई मनुष्य—चाहे वह महात्मा गांधी अथवा महामना मालवीयजीके समान महापुरुष ही क्यों न हो—अपनेको संस्था रूपमें परिवर्तित कर लेता है, उतने ही अंशों तक उसकी सहृदयता कम हो जाती है। संस्थाओंके संचालकोंको अपने साथियोंको संग लेकर चलना पड़ता है। यदि अकेले मालवीयजीकी इच्छापर यह मामला निर्भर होता, तो सम्भवतः आचार्य द्विवेदीजीको डाक्टरकी उपाधि देकर वे विश्वविद्यालयका गौरव बढ़ा लेते; पर जैसा कि हमने सुना है, विश्वविद्यालयके अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक सज्जन इस प्रस्तावके विरोधी थे। ख़ैर, यह अच्छा ही हुआ कि पूज्य द्विवेदीजी इस उपाधि-व्याधिसे बच गये। हमारा विश्वास है कि वे अनेक डाक्टरोंको वर्षों तक हिन्दी ही नहीं, मनुष्यताका भी पाठ पढ़ा सकते हैं; पर गहमरीजीकी तरह हमें भी एक बातका खेद अवश्य है कि सरस्वतीके मन्दिरमें भी लक्ष्मीको प्राधान्य दिया गया। सट्टेके बाज़ारमें यदि यह घटना घटी होती और किसी धनाढ्यको Doctor of the Science of Speculation (सट्टा-विज्ञानाचार्य) अथवा व्यापाराचार्यकी उपाधि दी जाती, तो हमें कुछ भी खेद या आश्चर्य न होता। गहमरीजी यदि किसीको यह भेद न बतलावें, तो प्राइवेट तौरपर कुछ साहित्यिक उनके सामने यह स्वीकार करनेको तैयार हैं कि इस प्रकारकी उत्तेजक घटनाओंको देखकर उनके मनमें भी सट्टेबाज़ीके प्रति घोर आकर्षण प्रारम्भ हो गया है, और अगर लक्ष्मी-सरस्वतीकी इस प्रतिद्वन्द्वितामें लक्ष्मीजी विजयी हों, तो दोष उनका न होगा, वरन हिन्दू-विश्वविद्यालयका।

—

गोरी सभ्यताके कारनामे

इटली-अबीसीनियन युद्धमें अपने कार्योंका औचित्य सिद्ध करनेके लिए मुसोलीनी और उसके समर्थकोंने सभ्यताकी बड़ी दुहाई दी थी। वे अबीसीनियनोंको असभ्य, जंगली, बर्बर, सभ्यताके दुश्मन आदि शब्दोंसे पुकारते थे और सभ्यताकी रक्षाके लिए, जंगली अबीसीनियनोंको सभ्य बनानेके लिए, अबीसीनियापर इटलीका कब्ज़ा होना उचित बताते थे।

ज़रा मुसोलीनीकी इस गोरी सभ्यताका नमूना देखिये। अबीसीनियाके इटेलियन वायसरायपर किसी अबीसीनियनने एक बम फेंका, जिससे वे सख्त घायल हुए। उसके बाद 'स्टेट्समैन' की ख़बर है:—

"बम फेंके जानेके बाद फौरन ही इटेलियन फौजने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस हलकेको चारों तरफसे घेर लिया, और घेरेके अन्दरका प्रत्येक अबीसीनियन मार डाला गया।

तीन दिन बाद स्वस्थ शरीरवाले प्रत्येक इटेलियनको अबीसीनियनोंकी हत्या करनेको उत्साहित किया गया। इस कामके लिए काली कुर्तीवालोंको और इटेलियन मज़दूरोंको राइफलें, पिस्तौल, छुरे और डंडे आदि बाँटे गये, और वे अबीसीनियनोंके मुहल्लेमें घुस पड़े। वहाँ उन्होंने हरएक अबीसीनियनको—मर्द, औरत, बच्चा, जो कोई सामने पड़ा—कत्ल कर दिया। कुछ दूसरे इटेलियन पेट्रोलके टिन लेकर निकले, जिससे उन्होंने अबीसीसियनोंके मकानोंमें आग लगा दी, जिस किसीने जलती आगसे निकल भागनेकी कोशिश की, उसे गोली मार दी गई।"

लन्दनमें हाउस आफ कामन्समें एक प्रश्नका जवाब देते हुए वाइकौन्ट क्रैनबोर्नने कहा कि आदिस अबाबाके ब्रिटिश दूतावाससे जो ख़बरें आई हैं, उनसे मालूम होता है कि बमकी घटनाके बाद बहुत गहरा फसाद हुआ, जिसमें "इटेलियन सिपाहियोंने बहुत भयानक बदले लिये। परिणाम स्वरूप बहुतसे लोग मारे गये और बहुत जायदाद भी नष्ट की गई।"

यह है मुसोलीनीकी गोरी सभ्यताका नमूना! अबीसीनियामें इस तरह लोगोंका कत्लेआम किया जा रहा है और यूरोपियन राष्ट्र टुकर-टुकर बैठे देखते हैं। अभी तक किसी भी यूरोपियन गवर्नमेंटने इस नृशंस अमानुषिकताके ख़िलाफ आवाज़ नहीं उठाई। यूरोपियन गोरे सभ्य हैं और काले हब्शी असभ्य!

—

प्रवासी भारतीय और भारत-सरकार

दिल्लीकी लेजिस्लेटिव एसेम्बलीने प्रवासी भारतीयोंकी स्थितिपर सरकारकी निन्दाका प्रस्ताव पास किया। कांग्रेसी सदस्य ही नहीं, अधिकांश गैर-कांग्रेसी सदस्यों तथा यूरोपियन सदस्यों तकने ब्रिटिश साम्राज्यमें भारतीयोंके साथ होनेवाले दुर्व्यवहारकी निन्दा की। सरकारकी ओरसे कहा गया कि सरकार प्रवासियोंकी अवस्था सुधारनेकी भरसक कोशिश कर रही है और 'प्रवासियोंकी स्थितिमें बिगाड़ नहीं हुआ है।' सरकारके इस कथनका गैर-सरकारी सदस्योंने प्रतिवाद किया। दक्षिण-अफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध कई क़ानून दक्षिण-अफ्रिकन व्यवस्थापिका सभाके सामने पेश हो चुके हैं, ईरान और ईराक़में भारतीयोंका शान्तिपूर्वक रहना और व्यापार करना दूभर बनाया जा रहा है, लंकामें भारतीय-विरोधी भाव बढ़ाये जा रहे हैं, जंज़ीबारमें भारतीय व्यापारियोंके साथ जो अन्याय किया गया था, वह अभी तक दूर नहीं हुआ, जिससे वहाँके भारतीयोंकी आर्थिक अवस्था दिनोंदिन ख़राब होती जा रही है, बर्माका पोस्टेज महसूल एकदम बढ़ा दिया गया है, जिससे गरीब हिन्दुस्तानियों और हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी दिक्कतें बढ़ जायँगी। इतना सब होते हुए भी सरकारका यह कहना कि प्रवासी भारतीयोंकी स्थितिमें बिगाड़ नहीं हुआ है, कहाँ तक सही हो सकता है?

सरकारकी ओरसे कहा गया कि प्रवासी भारतीयोंकी दशा सुधारनेके लिए उन्हें उनके प्राप्य अधिकार दिलानेके लिए सरकार 'नैतिक समझावन-बुझावन' की नीतिका अनुसरण कर रही है; मगर पिछले पचीसों वर्षसे इस 'हें-हें' नीतिपर चलकर भी क्या प्रवासियोंके दुःख दूर हो सके हैं? 'नैतिक समझाना-बुझाना', 'हमारी माँगोंका औचित्य' और 'अन्यायियोंसे न्याय करनेकी अपील'से अब तक कुछ नहीं हुआ और न आगे ही कुछ हो सकेगा। अगर भारत-सरकार सचमुच प्रवासियोंकी दशा सुधारना चाहती है, तो उसे समझ लेना चाहिए कि सीधी अंगुलीसे घी नहीं निकला करता।

—

भूल-सुधार

इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित "भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता" शीर्षक लेखमें जहाँ-जहाँ 'प्रत्यावर्तन' शब्दका प्रयोग हुआ है, वहाँ पाठक 'आवर्तन' करके पढ़ें।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

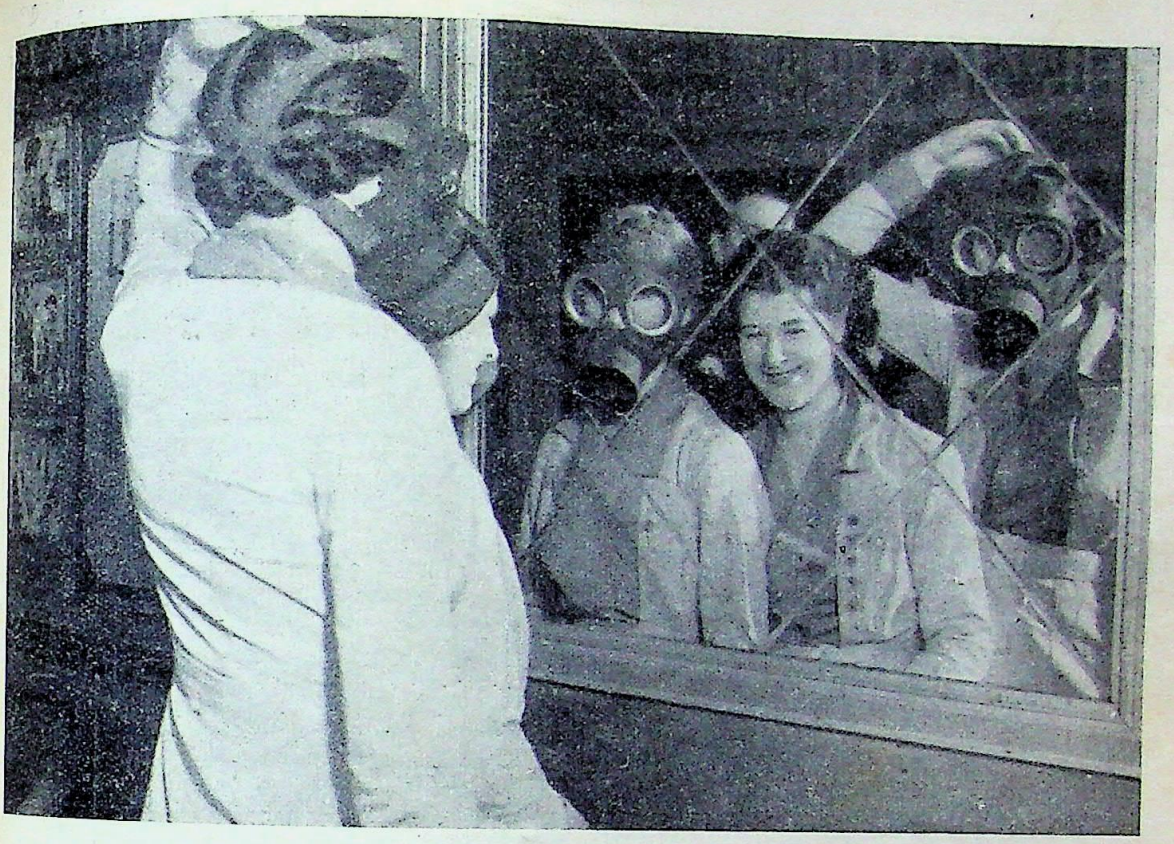

गैसके हमलेसे बचनेकी नवीन व्यवस्था। इंग्लैण्डके एक सिनेमामें गैससे बचनेवाली नकाबें लगानेकी क़वायद हो रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हिटलर अपनी काली कर्तीवाली फौजका निरीक्षण कर रहा है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

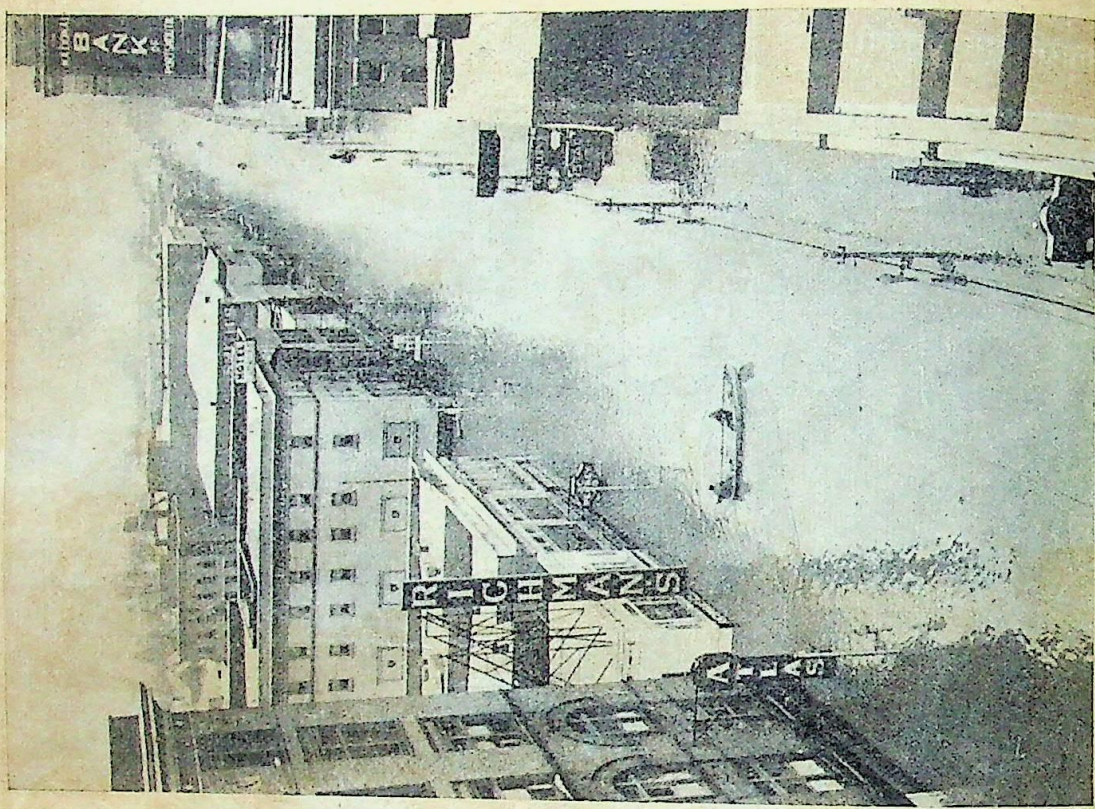

हालमें अमेरिकामें भीषण बाढ़ आई है। पोर्ट्समाउथके प्रधान व्यापार केन्द्रमें ट्रामकी जगह नावें चल रही हैं

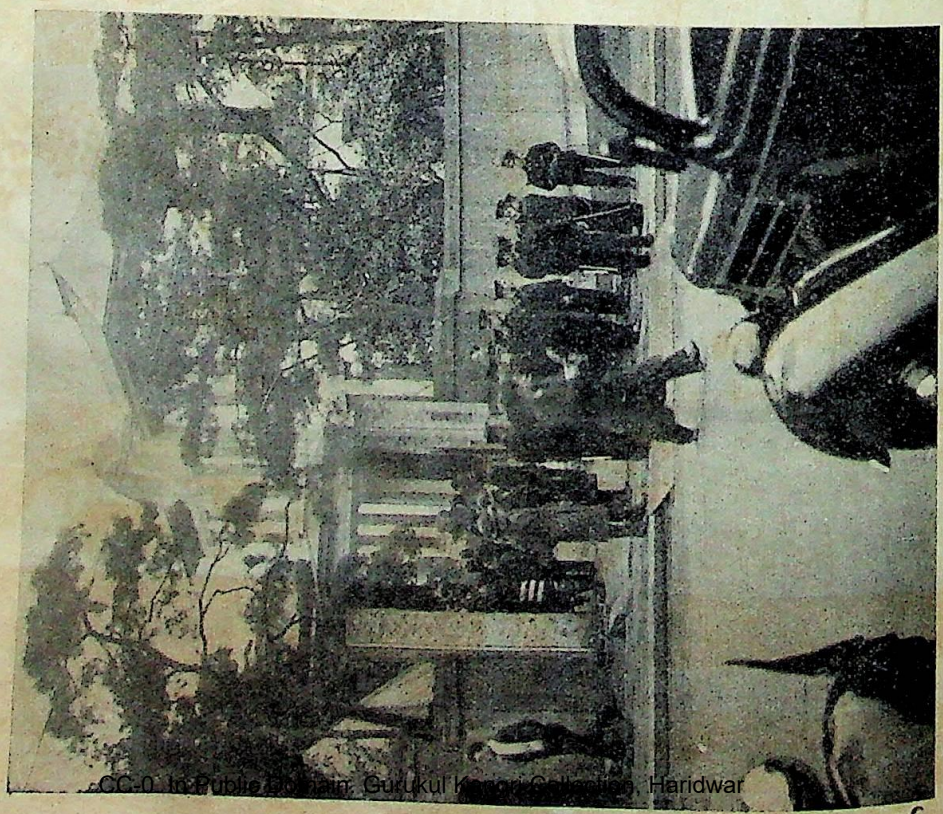

जापानमें नये मन्त्रिमण्डलका संगठन। मि० योकोयामाके इस मकानमें जनरल हयाशीके नेतृत्वमें नये मन्त्रिमण्डलकी चर्चा हो रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल-भारत

मई १९३७ को कोटकादर से
Redirected होकर प्राप्त

सम्पादक—बनारसीदास चतुर्वेदी

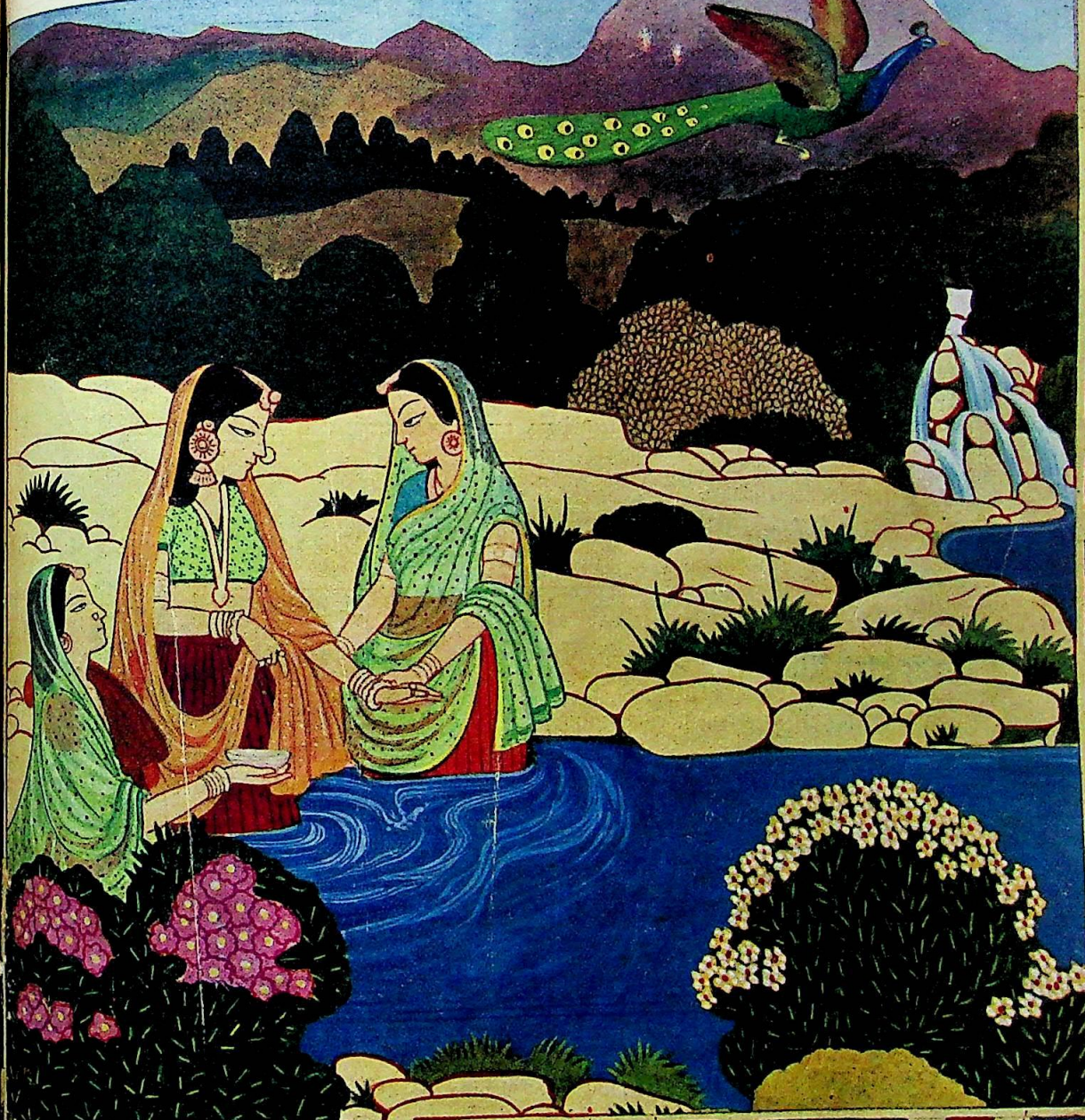

अप्रेल १९३७

एक अंकका मूल्य ॥–)

'विशाल-भारत' कार्यालय
१२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता

वार्षिक मूल्य ६)
विदेशका मूल्य ९) [बर्माके लिए ८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त जी की काव्य धारा

[ले० श्री० गिरिजादत्त शुक्ल बी० ए०]

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक विशेष स्थान है। गत तीस वर्षों से विविध काव्य-पुस्तकोंकी रचना करके गुप्तजी ने हिन्दी-संसार को वह अमूल्य निधि प्रदान की है, जिसपर समस्त हिन्दी-भाषियों को गर्व है। 'गुप्तजी की काव्य-धारा' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थमें गुप्तजी की प्रायः सम्पूर्ण साहित्यिक कृतियोंका एक सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आरम्भ में विद्वान लेखक ने गुप्तजी के काव्य के अध्ययन के लिए एक कसौटी की खोज की है। कसौटीमें जिन सिद्धान्तों का समावेश किया गया है वे सर्वथा निर्विवाद हैं। इसी कसौटीपर सम्पूर्ण समालोचना की इमारत खड़ी की गई है। गुप्तजी के काव्य के प्रायः समस्त अंगोंपर विचार प्रस्तुत किया गया है। वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों को तथा जहाँ इस ग्रन्थ के अध्ययन से गुप्तजीके काव्य के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश मिलेगा वहाँ वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य की प्रगति के विषय में विचारशील लेखकों को बहुत सुलझे हुए विचार भी देखने को मिलेंगे। हिन्दी की वर्त्तमान आलोचना-शैली में यह ग्रन्थ, निश्चय ही क्रान्ति उपस्थित कर देगा। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।)।

ये पुस्तकें हाल ही में छपी हैं:—

(१) मछली गली (सामाजिक उपन्यास) लेखक बाबू रामकृष्ण वर्मा, मूल्य २)

(२) मेरी तिब्बत-यात्रा—लेखक महापंडित राहुल सांकृत्यायन, मूल्य १।)

मैनेजर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग

पि० वेंकटाचल पंडितकी आयुर्वेदीय लोकामयहर

कस्तूरी गोलियाँ

ये गोलियाँ बहुमूल्य पदार्थोंसे, जैसे सोना, चाँदी, नेपाली कस्तूरी, मूँगा आदिसे बनाई गई हैं। इनको अलग-अलग या २ से ४ तक पानमें खानेसे हाज़मा बढ़ता है। हर प्रकारका बुखार दूर होता है। जल-वायु और भोजनके परिवर्तनका असर बराबर होता है। रक्त साफ़ होता है, तथा उसकी चाल अबाध्य होता है। खाँसी, सरदी, जुक़ाम, पेटका दर्द, क़ब्ज़ियत, कमर और छातीका दर्द, कमज़ोरी, जूड़ी, बुखार और प्लेगको नाश करती हैं। जिस स्थानमें छूतकी बीमारियाँ फैली हों, वहाँ नित्य पानके साथ ३-४ गोलियाँ दीजिए। बच्चोंके रोगमें जादूके समान असर दिखायेंगी। दाम ३०० गोलियोंकी बोतलका ।), डाक-महसूल अलग। ६ बोतलोंका १॥)

१२ बोतलोंका मूल्य डाक-व्यय सहित २॥।-)

२५ " " " " ५≡)

मिलनेका पता—**श्रीसीताराघव वैद्यशाला, मैसूर**

नाज़ी जर्मनी

लेखक—

कन्हैयालाल वर्मा एम० ए०

राजनीति विभाग, हिन्दू-विश्वविद्यालय बनारस

हिन्दी भाषामें नाज़ी जर्मनी सम्बन्धी सर्वोत्तम पुस्तक। लेखकने नाज़ी-आन्दोलनको उत्पत्ति कार्यक्रम, उत्थान, सैद्धान्तिक आधार, सफलता और भविष्यपर जो प्रकाश डाला है, वह हिन्दी-भाषा भाषियोंके लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

छपाई सफ़ाई कागज़ जिल्द कवर अतिसुन्दर मूल्य १)

प्रकाशक—

भार्गव पुस्तकालय, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एक जापानी पुल

'विशाल भारत']

[चित्रकार—हीरो शीगे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १९, अंक ४] वैशाख १९९४ :: अप्रेल १९३७ [पूर्ण-अंक ११२.

बरफसे दबे नगरमें

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

अपनी तबीयतके प्रतिकूल पूरे पाँच सप्ताह तक पंजाब एसेम्बलीके पिछले निर्वाचनकी दलदलमें फँसे रहनेके बाद यदि मैं सभी बन्धन तोड़कर २१ जनवरीको प्रातःकाल काश्मीरके लिए सहसा भाग खड़ा न होता, तो शायद कॉन्वेसिंगकी गंदी स्मृतियोंसे महीनों तक छुटकारा न हो पाता। किसी विशेष अप्रिय घटनाके बाद जिस तरह गंगा-स्नान आवश्यक माना जाता है, उसी तरह अपनी तबीयत और स्वभावपर एक बहुत बड़ा बोझ डाल लेनेके बाद कुछ समयके लिए प्रकृतिमाताकी खुली और सुशीतल गोदमें जा पहुँचना मुझे नितान्त आवश्यक प्रतीत हुआ, और इसी कारण किसीको भी सूचना दिये बिना, सिर्फ़ आध घंटेमें सारी तैयारी करके, मैं मेल-मोटर द्वारा काश्मीरके लिए रवाना हो गया।

मैं प्रतिवर्ष काश्मीर जाता हूँ, इससे काश्मीरके दोनों प्रसिद्ध मार्ग मेरे अच्छी तरह जाने-पहचाने हुए हैं; परन्तु यह जनवरी मासके अन्तिम सप्ताहकी काश्मीर-यात्रा मेरे लिए भी एक नया अनुभव थी। आसमानपर बादल छाये हुए थे। तेज़, ठंडी हवा सनसनाती हुई चल रही थी। मोटरके सभी दरवाज़े बन्दकर मैं ड्राइवरके निकट बैठा हुआ था, ताकि गतिमान इंजनकी गरमी पैरोंका ख़ून जमनेसे बचाती रहे। दिनका समय था; परन्तु तापमान करीब-करीब शून्यपर ही होगा। रावलपिंडीसे सिर्फ़ ३६ मील दूर पहुँचकर ही हिमवर्षा शुरू हो गई। सभी ओर हिम-ही-हिम थी। पिछली रात जो हिमपात हुआ था, उसे कुलियोंने सड़कके ऊपरसे काटकर हमारी मेल-मोटरके लिए रास्ता बना दिया था। सड़कके दोनों ओर बरफ़के अम्बार लगे हुए थे। चारों ओरके पहाड़ श्वेत हो गये थे। वृक्षोंकी शाखाओंपर रुईके समान हलकी-हलकी बरफ़ पड़ी हुई थी। मोटरके शीशेपर भी बरफ़ जमनी शुरू हो गई। जगह-जगह गाड़ीके फिसल जानेका भय प्रतीत होता था; मगर ड्राइवर कुशल व्यक्ति था। अपने हाथोंपर मोटे-मोटे दस्ताने पहने वह सफलतापूर्वक मामूली चालसे गाड़ी बढ़ाये चला जा रहा था।

हिमपात देखनेकी चीज़ है। मैं उसका वर्णन करनेका व्यर्थ-प्रयत्न यहाँ नहीं करूँगा। इतना ही कहना काफ़ी होगा कि यदि पानीकी वर्षा इस पृथिवीकी वर्षा है, तो हिमपातको स्वर्गकी वर्षा कहना चाहिए।

रास्तेमें बरफ़ पड़ी हुई थी, और सूरज जल्दी छिप गया था, इससे हम लोग दिन-भरमें एक सौ मीलका ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुषार-आच्छादित गुलमर्ग। निचला बाज़ार और महारानीका मन्दिर

सफ़र कर पाये। दूसरे दिनका दृश्य और भी अधिक मनोरम था। रायपुर पर्वतके निकट पहुँचते-न-पहुँचते फिरसे हिमपात शुरू हो गया और यह हिमपात पहले दिनकी अपेक्षा बहुत प्रबल था। निकट ही झेलम नदीकी क्षीण-सी जलधारा गोलमोल होकर बह रही थी। नदीके बीचके टापू, किनारे और निकटके ढलान सभी श्वेत-श्वेत बरफ़से ढके पड़े थे, और इस अनन्त-श्वेतिमाके बीचोबीच झेलमकी चक्कर खाती हुई मटियाले रंगकी फेनिल जलधाराएँ। चारों तरफ़ मृत्युका-सा सन्नाटा। बरफ़की नीरव बौछारोंके साथ तेज़ हवाके झोंके। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं किसी दूसरे और सर्वथा अपरिचित लोकमें आ पहुँचा हूँ। ड्राइवरने कोई बात कहनी चाही। मैंने उसे रोक दिया। प्रकृतिमाताका यह अछूता और पवित्रतम सौन्दर्य मानो असंख्य धाराओंमें होकर आस्मानसे बरस रहा है। सुन्दरतम और शान्ततम।

काश्मीर पहुँचकर मालूम हुआ कि पिछले ३६ घंटोंमें तापमान लगातार शून्यसे नीचे ही रहा है। इतनी शीतलतामें भी मुझे सन्तोषकी भावना नहीं मिली। जी चाहता था कि इन दिनों कहीं ऐसी जगह जा पहुँचूँ, जहाँ मनुष्यका प्रवेश ही न हो। प्रकृतिमाताकी गोदके किसी अछूते भागमें पहुँचनेकी, चाहे कुछ घंटोंके लिए ही सही, मेरी प्रबल इच्छा हो उठी। और शीघ्र ही मुझे ऐसी जगहका नाम भी सूझ गया।

गुलमर्ग भारतवर्षका सबसे ऊँचा हिल-स्टेशन है। जिन लोगोंने संसार-भरकी यात्रा की है, उन लोगोंका कहना है कि गुलमर्गके समान सुन्दर स्थान इस धरती पर बहुत कम हैं। वर्ष-भरमें ७ महीने गुलमर्ग बरफ़के नीचे दबा रहता है। सिर्फ़ ५ महीनोंके लिए वहाँ बिजली, डाकखाना, फोन, तारघर आदि वर्तमान युगके सभी साधनोंकी व्यवस्था कर ली जाती है। मईमें भी वहाँ असह्य सरदी होती है। केवल चार महीने—जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बरमें वहाँ अच्छी रौनक हो जाती है। गुलमर्गके करीब ४०० बँगलोंमें, जो प्रायः ८ मीलके घेरेमें फैले हुए हैं, लगभग ३,००० सैलानी देश-विदेशसे आकर रहते हैं। मसूरी, शिमला, दार्जिलिंग, शिलांग आदि भारतवर्षके सभी हिल-स्टेशन मिलकर भी सौन्दर्य और विस्तारकी दृष्टिसे गुलमर्गका मुकाबला नहीं कर सकते। गुलमर्गसे २,००० फीटकी उँचाईपर खिलनमर्ग है। खिलनके साथके पहाड़की चोटीपर 'अलपत्थर' नामकी एक झील है, जो समुद्र-तटसे १४,५०० फीटकी उँचाईपर अवस्थित है और जहाँ पूरे साल-भर बरफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनी रहती है। गरमियोंमें भारतवर्ष-भरके सैकड़ों-हजारों सैलानी इन स्थानोंका आनन्द लेने जाते हैं।

परन्तु सरदियोंमें ? सरदियोंमें गुलमर्गकी कल्पनासे भी जाड़ा लगता है। जिस स्थानका तापमान जून महीनेमें भी ४५° से प्रायः ऊपर नहीं जाने पाता, सरदियोंमें उसकी शीतलताकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है। अक्टूबरका महीना शुरू होते ही गुलमर्ग जनशून्य हो जाता है। दिसम्बर तक सारा गुलमर्ग बरफ़के नीचे दब जाता है। लोग अपनी-अपनी कोठियोंमें ताले लगाकर सितम्बरमें नीचे चले जाते हैं। नवम्बर तक सभी चौकीदार भी नीचे उतर आते हैं, क्योंकि उसके बाद साधारण दशाओंमें वहाँ किसी मनुष्यका जीवित रह सकना सम्भव ही नहीं। फिर भी सारा सामान हिफ़ाजतसे इसलिए रहता है कि गुलमर्गमें किसी मनुष्यके लिए आना-जाना सम्भव ही नहीं होता, तो चोर भी वहाँ क्योंकर पहुँच सकते हैं। सिर्फ़ बड़े दिनोंकी छुट्टियोंमें अंगरेज़ लोग स्केटिंगके लिए गुलमर्ग पहुँचते हैं। उनके साथ विशेष इन्तज़ाम रहता है। जनवरी और फरवरीमें बरफ़की उँचाई प्रायः दस-दस फीट हो जाती है, और तब स्केटिंगके लिए भी वहाँ कोई नहीं जा सकता। गत वर्ष फरवरी मासमें कुछ अंगरेज़ पूरे इन्तज़ामके साथ स्केटिंगके लिए खिलनमर्ग गये थे; परन्तु रातको बरफका तूफ़ान आ जानेके कारण वे सब तथा उनके नौकर बरफ़में दबकर ढेर हो गये। इसी कारण इस वर्ष जनवरी और फरवरीमें स्केटिंगके लिए भी वहाँ कोई नहीं गया। अब शीन स्की क्लबका समारोह वहाँ २० मार्चसे शुरू होगा।

३१ जनवरी सन् १९३७ के दिन अपने कुछ मित्रोंके साथ, जो मेरे निकट-सम्बन्धी हैं, मैंने इसी गुलमर्गकी यात्रा की थी। गरमियोंमें अनेक बार गुलमर्ग जाकर रहा हूँ। सन् १९३६ के जून और जुलाई मासमें भी मैं वहाँ ही था। गुलमर्गके कोने-कोनेसे मैं भली प्रकार परिचित हूँ; परन्तु वहाँ इतनी भीषणताके साथ बरफ पड़ती होगी, इसकी मैं भी कल्पना नहीं कर सका था।

टनमर्गके डाक-बँगले तक बरफ काटकर हम लोगोंकी स्पेशल बसका रास्ता बना दिया गया था। टनमर्गसे गुलमर्ग तक २,००० फीटकी सीधी चढ़ाई है। गरमियोंमें भी कार टनमार्गसे आगे नहीं जा सकती। इन दिनों तो आगेकी सड़क बरफकी बदौलत पहाड़के साथ एकाकार हो चुकी थी। कहीं-कहीं उसका निशान तक मिलना भी दूभर था।

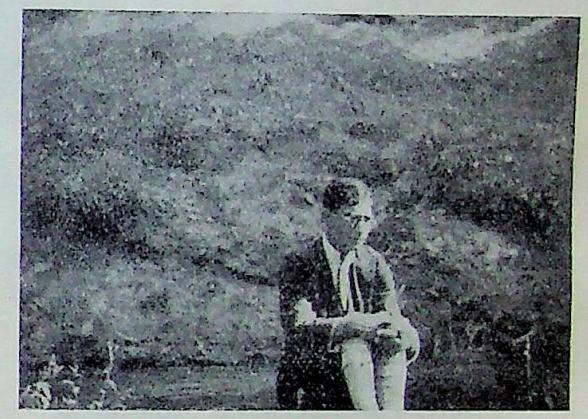

लेखक एक झरनेके किनारे

गुलमर्गके सब-डिविजनल आफिसर साहब भी हम लोगोंके साथ थे। उन्हें सरदियोंमें स्टेटकी जायदादका निरीक्षण करनेके लिए गुलमर्गका एक चक्कर अवश्य लगाना होता है। उनके साथ होनेसे सभी तरहकी सुविधाएँ आसानीसे मिल गईं। पचीस-तीस कुलियोंकी सहायतासे हम पाँच व्यक्तियोंने (एस० डी० ओ०, श्री जयदेवजी, श्री देवराजजी, कुमारी सन्तोष और मैंने) उस बरफके पहाड़पर चढ़ना शुरू किया। क़रीब दो फर्लांग ऊपर पहुँचकर हम लोगोंने देखा कि सड़कका निशान तक भी बाकी नहीं रहा। बरफकी बहुतायतके कारण गुलमर्गका मार्ग और पहाड़ सब एकाकार हो गये हैं। अपना एकमात्र मार्ग बरफके मोटे आवरणमें छिपाकर मानो वह पर्वत अनन्त मार्गोंवाला बन गया था। अगर आप बरफपर चढ़ सकते हैं, तो चाहे जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगहसे चढ़ना शुरू कर दीजिए। वही मार्ग बन जायगा। हम लोगोंने भी यही किया। क़रीब दस कुली आगे-आगे चल रहे थे, जिनके चलनेसे बरफ दब जाती थी और उस दबी हुई बरफपर ठीक पैरके निशानोंपर अपने पैर रखते हुए हम लोग आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

गर्मियोंमें गुलमर्गका रास्ता

पन्द्रह हज़ार फीटकी उँचाई तक अनेक बार मैं ख़ूब मज़े-मज़ेमें चढ़ा हूँ। पैदल चलनेका मुझे व्यसन है, और उँचाईपर चढ़नेमें भी मैं कभी नहीं घबराता; मगर बरफपर चढ़ाई करना कुछ और बात है। जहाँ हमारे हाथकी बल्लमें पूरी-की-पूरी बरफ़के अन्दर घुसकर भी ज़मीनका पता न पा सकें, जहाँ ज़रा-सी भी असावधानताका अभिप्राय गले-गले तक बरफ़में डूब जाना हो, जहाँ प्रतिक्षण आपके बूटोंमें, जेबोंमें और दास्तानोंमें नई-नई बरफ भर जानेका अन्देशा हो, वहाँ एक-एक क़दम आगे बढ़ाना किसी नई मंज़िलपर पहुँच जानेके समान प्रतीत होता है।

कोई शान्त, निर्जन रेगिस्तान कभी देखा है आपने? नहीं तो समुद्र-तटका कोई निर्जन विस्तृत रेतीला भाग शायद आपने देखा होगा। और नहीं तो मीलों तक फैले हुए परिपक्व गेहूँके निश्चल खेत तो उत्तर-भारतमें सब कहीं देखे ही जा सकते हैं। यदि अधूरी और वह भी हीनोपमा देना क्षम्य हो, तो मैं कहूँगा कि इन सब चीज़ोंसे मीलों तक फैले हुए विशालकाय चीड़ (fir) के वृक्षोंके नीचे अछूती पड़ी हुई चाँदकी ज्योत्स्नासे बढ़कर स्वच्छ उन महाश्वेत हिम-राशियोंकी कुछ-न-कुछ कल्पना की जा सकती है।

एस० डी० ओ० साहबको आठ-दस कुलियोंने घेर रखा है। वे बड़ी उम्रके सज्जन हैं। थक गये हैं, तो क्या हुआ। जयदेवजी स्वस्थ और क्रियाशील युवक हैं। बचपनसे वे काश्मीरमें ही पले हैं। कुछ अधिक ऊँचा जाकर जब वे ऊँची आवाज़में देवव्रतको बढ़ते चले आनेका आश्वासन देते हैं, तो उनका वह आश्वासन एक खुले व्यंग्यके समान सम्पूर्ण घाटीमें गूँज उठता है। देवराजजी युवक हैं सही, परन्तु प्रकृतिने उन्हें चरबी और मांस जी खोलकर दिया है। वे हाँफ रहे हैं और क़दम-क़दमपर फिसलकर बर्फमें आगे डूबने-से लगते हैं। चार कुली उनपर तैनात हैं, जिन्हें हर तीसरे मिनट देवराजजीको बरफमें से खींचकर खड़ा करना पड़ता है। वे इतने थक गये हैं कि उनके सम्पूर्ण वस्त्र बरफसे ओतप्रोत रहनेपर भी उनके चेहरेसे पसीनेकी धाराएँ फूट रही हैं। और कुमारी सन्तोष? स्त्री-जातिकी लज्जा बचानेके लिए वह सभी कष्ट सहन कर सकती है। वह बुरी तरह थक गई है, कभी-कभी फिसलती भी है; परन्तु किसीकी मदद लेना उसे मंजूर नहीं। अपने तीनों कुलियोंको अपनेसे कम से-कम पचास गज़ दूर रहनेका उसने स्थायी हुक्म दे रखा है। और मेरे पास तो कैमरा है। प्रकृतिका यह अछूता और नग्न सौन्दर्य यदि आज भी अपने कैमरेमें बन्द न करूँगा, तो इस कैमरेका उपयोग ही क्या? कभी दाएँ जाता हूँ और कभी बाएँ जाता हूँ। कभी सबसे ऊपर चला जाता हूँ और कभी सबसे पीछे रह जाता हूँ। वाटरप्रूफ गरम बूटोंमें सेर-सेर बरफ ज़बरदस्ती घुस गई है और उसकी बदौलत पैर मानो जलमग्न हो गये हैं। हो जाने दो। थकावटके मारे घुटने जवाब दे रहे हैं। परवा मत करो। चमड़ेके दास्ताने बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीले हो गये हैं, उन्हें उतार दो ; मगर बढ़ते जाओ और फोटो खींचते जाओ। क़रीब तीन घंटेकी मेहनतके बाद आख़िर हम सभी लोग ऊपर पहुँच ही गये।

पूरे छै महीनेके बाद आज पुनः मैं उस स्थानपर पहुँचा था, जहाँ खड़े होकर एक ओर गुलमर्गका पूरा दृश्य दिखाई देता है और दूसरी ओर बहुत निचाईपर काश्मीरकी मनोहर घाटीका दृश्य। एक बिन्दुपर पहुँचते ही जैसे सामनेसे परदा-सा हट गया। छै महीने पहले जब मैं उस स्थानसे विदा हुआ था, तब उस घाटीमें सैलानियोंकी चहल-पहल थी। हिन्दुस्तान, इंग्लैण्ड और अमेरिकाके सैकड़ों-हज़ारों युवक, युवतियाँ और बच्चे उस जगह आनन्द-मंगल मना रहे थे।

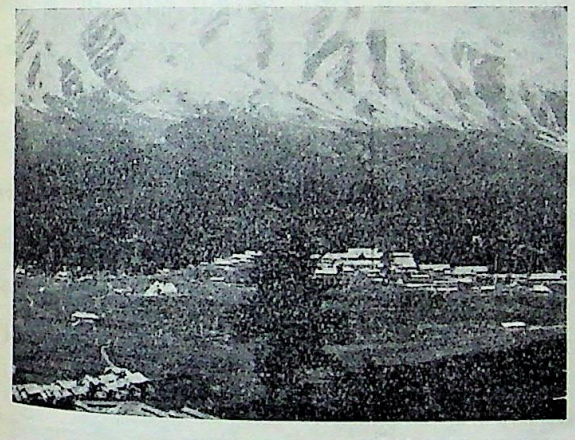

गर्मियोंमें गुलमर्गका दृश्य

सुन्दर सजे हुए बाज़ार थे, होटल थे और सैकड़ों घोड़ेवाले 'हहो' (काश्मीरी मज़दूर और किसान) थे। परन्तु आज ? आज सभी जगह मृत्युके समान गम्भीर सन्नाटा व्याप्त था। कहीं कोई भी न था। आस्मानमें पक्षी तक न थे। सभी ओर श्वेत-शुभ्र बरफ़ ! प्रायः सभी मकानोंकी निचली मंज़िलें बरफमें डूबी हुई थीं। छतोंपर टनों बरफ़ लटकी होगी। बरफ़की औसतन गहराई १० फीटसे कम न होगी। एक जगह अचानक मेरा पाँव जो फिसला, तो उसी क्षण मैं गले तक बरफमें डूब गया। पाँच फीट बरफ़में डूबकर जब मेरे पैर किसी चीज़से टकराये, तो मालूम हुआ कि वह एक इमारतके छै फीट ऊँचे जंगलेका सिरा था ! कम उँचाईके मकानोंकी छतें तक बरफ़में डूब गई थीं।

एक घंटा मेहनत करके भी हम लोग गुलमर्गमें आधा मीलसे अधिक नहीं घूम पाये। इच्छा हुई कि कुछ देर कहीं बैठकर आराम किया जाय ; मगर एस० डी० ओ० साहबने बताया कि गुलमर्गमें पहुँचकर इस तरह बैठ जानेका परिणाम सदाके लिए बैठ जाना भी हो सकता है। चलते-फिरते रहो और शरीरकी गर्मी बनाये रखो। पाँच-सात मिनट ही एक स्थानपर बैठकर हमें ज्ञात हो गया कि वे ठीक कह रहे थे।

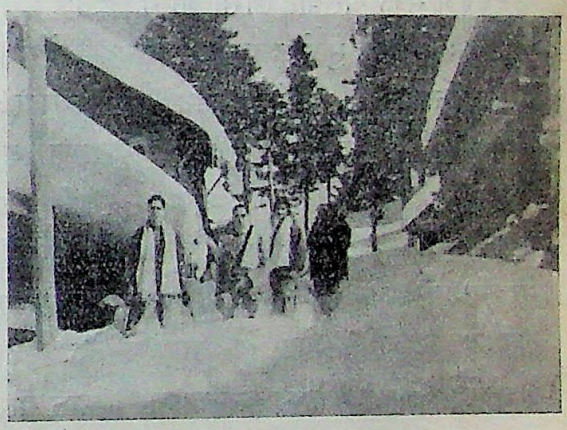

: होटलके सामने जयदेवजी, देवराजजी और कुमारी सन्तोष

सूर्यास्त होते-न-होते बरफकी ऊपरी स्तर जमकर ठोस हो जाती है, और वह दशा और भी ख़तरनाक होती है। इससे क़रीब ५ बजे बरफ़में दबे उस नगरको प्रणामकर हम लोग नीचे उतरने लगे। नीचे पहुँचनेमें बहुत समय नहीं लगा। टनमर्गके डाक-बँगलेमें हम लोगोंके लिए गरम चाय, सूखे ऊनी कपड़े और धधकती हुई आग—ये सब चीज़ें पहलेसे ही तैयार थीं।

आज गुलमर्गसे वापस आये दस दिन हो गये हैं। कल सायंकाल एस० डी० ओ० साहब मिले थे। उनकी टाँगोंपर अभी तक क़रीब एक घंटा तेलकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिश की जाती है। देवराजजीका कहना है कि उन्हें अभी कम-से-कम एक महीना और कसरत करने या सैरपर जानेकी आवश्यकता नहीं है। पिछले दस दिनोंसे प्रत्येक रातको उन्हें बरफ़में डूबनेके सपने आ रहे हैं—वास्तविकतासे भी अधिक भयानक। कुमारी सन्तोषकी खाँसी और जुकाम अभी तक नहीं छूटे। जयदेवजी एक अपवाद हैं। उन्हें कभी किसीने थकी हुई अथवा निराश दशामें नहीं देखा। अब भी नहीं। और मैं? मुझे इस बातकी खुशी है कि हमारी इस गुलमर्ग-यात्राकी चर्चा सारे श्रीनगरमें है और बहुतसे लोग मेरे पास बर्फमें दबे हुए गुलमर्गके फोटो देखने आते हैं।

ज़ंज़बार और भारतीय

श्री सत्यदेव वेदालंकार

"आज मुझे बार-बार खाँसी आ रही है।"

"दो लौंगें मुँहमें दाब लो, खाँसी थमी रहेगी।"

उपर्युक्त ढंगकी बातें हम लोग प्रायः बराबर ही सुनते रहते हैं; मगर भारतमें शायद यह बात आम तौरपर ज्ञात न होगी कि ये 'लौंग' या लवंग किस देशकी चीज हैं, पैदा कहाँ होती हैं, आती कहाँसे हैं? सारे संसारको लौंग देनेवाला हिन्द महासागरका एक छोटा टापू है, जो 'ज़ंज़बार' के नामसे परिचित है।

ज़ंज़बार पूर्वी अफ्रिकाके समीप एक अत्यन्त सुन्दर और सदा हरा-भरा रहनेवाला टापू है। आजकल जो जहाज़ दक्षिण-अफ्रिकाकी तरफ आते-जाते हैं, वे सब यहाँ ठहरते हुए जाते हैं। ज़ंज़बार टापूमें ज़ंज़बार शहर ही मुख्य है। ज़ंज़बारसे कुछ दूर एक दूसरा टापू 'पेम्बा' है। वह भी यहाँकी सरकारके ही अधीन है। ब्रिटिश साम्राज्यमें इन दोनों मुख्य टापुओंका एक प्रदेश समझा गया है, जिसका नाम ज़ंज़बार प्रोटेक्टरेट है। इस समूचे 'प्रोटेक्टरेट' का क्षेत्रफल १०२० वर्गमील है, जो भारतके एक ज़िलेके बराबर होगा। आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व यह प्रदेश पूर्वीय अफ्रिकाका केन्द्र समझा जाता था और इसका ज़ंज़बार शहर पूर्वीय अफ्रिकाकी राजधानी रह चुका है। इसके इस महत्वका कारण यहाँपर अरब सुल्तानका रहना तथा यहाँकी लौंग या लवंगकी पैदावार और उसका व्यापार है। कुछ वर्ष पूर्व, जब तक मेडागास्कर (अफ्रिकाका दक्षिण-पूर्वमें एक विशाल टापू, जो फ्रांसका उपनिवेश है) में लवंगकी खेती शुरू नहीं हुई थी, तब तक संसार-भरमें लौंगकी उपजका ९० प्रतिशत भाग इसी टापूमें पैदा होता था। आज भी यह टापू संसारको ८२ प्रतिशत लौंग भेजता है। संसारमें लौंगकी सबसे ज्यादा खपत भारतमें है। उसके बाद पूर्वीय द्वीपसमूह (ईस्ट इंडीज़), चीन, अमेरिका और यूरोपका नम्बर आता है। इन टापुओंकी दूसरी विशेष उत्पत्ति नारियल या खोपेकी है। इसका भी पर्याप्त निर्यात है; परन्तु लवंगकी तरह वह अच्छी कीमतपर नहीं निकलता। परन्तु अब दिन-पर-दिन मेडागास्कर भी लवंगकी उत्पत्तिमें अग्रसर हो रहा है, और आशा है कि कुछ साल बाद वह यहाँका प्रबल प्रतिस्पर्द्धी हो जायगा।

ज़ंज़बारका साधारण इतिहास

'ज़ंज़बार' शब्द ईरानी है। ईरानी लोग पूर्वी अफ्रिकाके हब्शियोंको 'ज़ंग' जातिके नामसे पुकारते थे और 'बार' शब्दका अर्थ है समुद्र-तट। इस प्रकार ज़ंज़बारका शाब्दिक अर्थ 'ज़ंग-जातिका समुद्र-तट' होता है। टापूका प्राचीन लिपिबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ंज़बारमें लौंगोंके बाग़

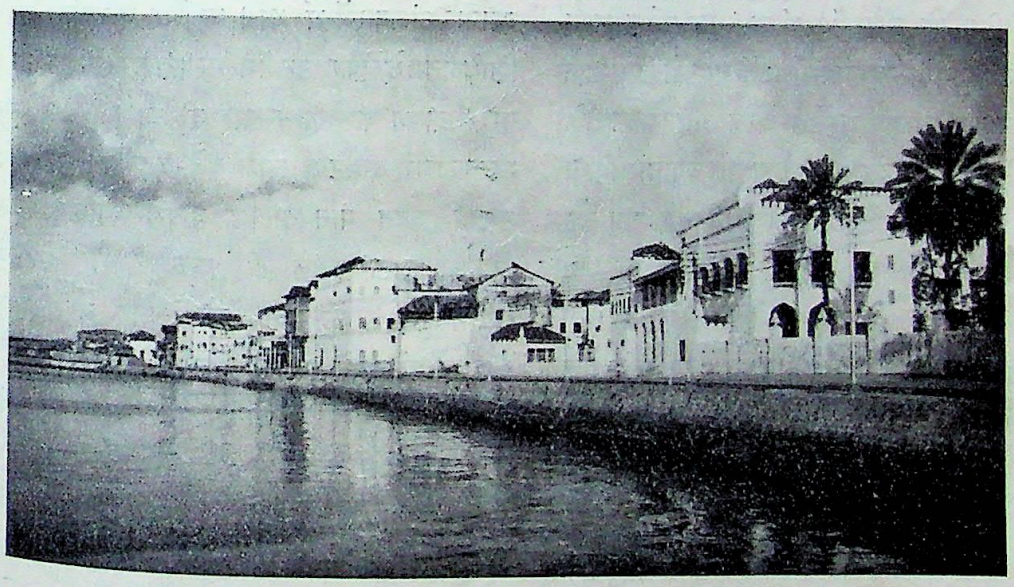

समुद्रसे ज़ंज़बार नगरका दृश्य

इतिहास तो मिलता नहीं ; पर इसका पता ज़रूर लगता है कि इतिहासके भूले हुए युगसे ही भारतके— विशेषकर काठियावाड़के—मल्लाह जंज़बार टापूको जाया-आया करते थे।

सन् १४९८ में उत्तमाशा अन्तरीप (केप आफ़ गुड होप) होता हुआ भारतका रास्ता ढूँढनेवाला वास्कोडिगामा अफ्रिकाके पूर्वी किनारेपर चलते-चलते इस टापूपर पहुँचा था। यहाँसे केनियाके बन्दरगाह किलिंडिनी होता हुआ वह लामू बन्दरपर पहुँचा। लामूमें वास्कोडिगामा काठियावाड़के खाखा जातिके एक मल्लाहसे, जिसका नाम 'काना' कहा जाता है, मिला और उसको साथ लेकर, उसके पथप्रदर्शनमें, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

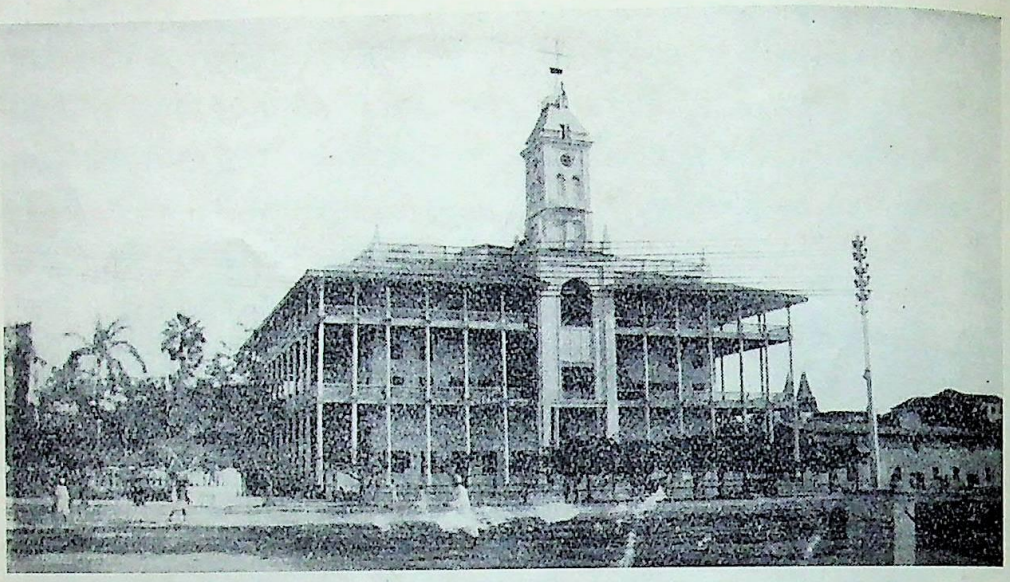

ज़ंज़बारकी सबसे सुन्दर इमारत 'बैतुलयजब'। पहले यह सुल्तानका महल था, अब इसमें सरकारी दफ्तर है

भारतके पूर्वी किनारेके बन्दर 'कालीकट' तक पहुँच सका था। काठियावाड़के खाखा लोग, वास्कोडिगामाके कथनानुसार, अरब समुद्रके रास्तेसे अरब और अफ्रिकाके पूर्वीय किनारेके साथ बहुत पुराने ज़मानेसे व्यापार किया करते थे। इन लोगोंके पालके जहाज़ जंजबार टापू तक आया करते थे—उस समयसे यहाँ आते रहे थे, जब अरब लोग भी यहाँ न पहुँच पाये थे। वह कौनसा समय था, जब प्रारम्भमें ये खाखा लोग ईस्ट अफ्रिकाके किनारेपर व्यापारके लिए आये, यह अभी तक इतिहासमें अस्पष्ट है। धीरे-धीरे आवागमन बढ़ता गया। अरब लोग भी इधर आये, और उन्होंने यहाँका शासन भी अपने हाथोंमें कर लिया। बादमें पोर्चुगीज़ आये, और उन्होंने अपना शासन क़ायम किया। सन् १७३० में अरबोंने जंजबारसे पोर्चुगीज़ोंको मार भगाया। मस्कतके सय्यद सईदने समूचे पूर्वी अफ्रिकाको पोर्चुगीज़ोंसे मुक्त करके सन् १९३३ में ज़ंजबार शहर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाकर शासन शुरू किया। वर्तमान सुल्तान भी उसीके वंशमें से है। किस्सा मशहूर है कि मस्कतमें कुछ भाटिया लोग (कच्छ-प्रदेश-निवासी) व्यापार करते थे। उनका व्यापार जंजबारमें भी था। यहाँपर पोर्चुगीज़ोंकी सत्ताकी शिथिलता देखकर उन्होंने मस्कतके सुल्तानको जंजबार पर आक्रमण करनेकी सलाह दी थी। इस सुल्तानके राज्यकालमें भाटिया लोग बड़े-बड़े आफ़िसर थे और उनका बहुत मान था। बादमें पालके जहाज़ोंसे, जिनको 'ढाऊ' कहते हैं, कच्छ और काठियावाड़से मुस्लिम धर्मके अनुयायी खोजे और बोरे लोग विशेष संख्यामें जंजबार आये। उनके बाद लुहाणे, बाणिये (जैनी व्यापारी) आदि भी आये। जंजबारमें भारतीयोंकी आबादीमें ९० प्रतिशतसे ज्यादा कच्छ और काठियावाड़ प्रदेशके ही हैं।

इस तरह भारतके कच्छ और काठियावाड़ प्रदेशोंका जंजबारके साथ सम्बन्ध बहुत पुराने समयसे है। इस प्रकार ज़ंज़बार वृहत्तर गुजरातका एक अंश है। ऐतिहासिक खोजसे इतना ही ज्ञात नहीं होता कि अफ्रिकाके पूर्वी प्रदेशों तथा जंजबारमें अन्य लोगोंके आनेके बहुत पहलेसे ही भारतीय अपने पालके जहाज़ोंके साथ इस तरफ़ व्यापार किया करते थे, बल्कि यह भी पता चलता है कि शुरू-शुरूमें बहुतसे अरब लोग भी भारतीयोंके जहाज़ों द्वारा ही इधर पहुँचे थे। अफ्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यभागमें व्यापारको पहुँचानेवाले भारतीय ही हैं। पूर्वीय अफ्रिकाकी पुरानी राजधानी जंजबारको समृद्ध बनानेका श्रेय भी भारतीयोंको ही है। राज्य द्वारा अरक्षित होते हुए भी भारतीय साहूकारोंने रुपयेके लेन-देनसे जंजबार आदि प्रदेशोंके व्यापार - व्यवसाय, उद्योग-धन्धों और धन-समृद्धिको विकसित किया। अफ्रिकन लोगोंके मालको संसारकी मण्डियोंमें सबसे प्रथम लानेका श्रेय भी बहुत दूर तक भारतीयोंको ही है।

अफ्रिका महाद्वीपके अज्ञात मध्यभागकी खोज करनेवाले प्रसिद्ध पर्यटक स्टैनले और लिविंगस्टोन तथा अन्य ईसाई प्रचारकोंको भी ज़ंज़बारके भारतीयोंने हर तरहकी सहायता पहुँचाई थी। किसी ज़मानेमें ज़ंज़बार अरबोंके गुलामोंके रोज़गारका भी अड्डा था। यहाँसे अरब रोज़गारी यूरोप और अमेरिकाको गुलामोंका चालान करते थे। इंग्लैण्ड तथा अमेरिकाकी 'दास-प्रथा' नष्ट करनेके प्रयत्नमें ज़ंज़बारके भारतीयोंने प्रमुख भाग लिया था। उनके पास जो भी दास थे, उन सबको दासतासे मुक्तकर बादमें उनका यथोचित संरक्षण भी किया था।

१८७२ में अदनसे ज़ंज़बार तक स्टीमसे चलनेवाले जहाज़ोंका आवागमन प्रारम्भ हुआ, और १८६९ में इन दोनों प्रदेशोंका तार (Cable) का सम्बन्ध भी हो गया था। इससे व्यापारके लिए अरब लोगोंका ज़ंज़बारकी तरफ आना-जाना प्रारम्भ हो गया। १८९० तक ईस्ट अफ्रिकामें यूरोपियन लोगोंका भी विशेष रूपसे प्रवेश हो चुका था। इनकी शक्ति प्रबल थी। इसी वर्ष इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनीने आपसमें सन्धि कर ली, जिसके अनुसार मैडागास्करमें फ्रान्सकी, टांगान्यिकामें जर्मनीकी और केनिया, यूगाडा तथा ज़ंज़बारमें इंग्लैण्डकी सत्ता स्वीकार की गई। इस तरह इन जातियोंने इन प्रदेशोंका पूर्ण शासन अपने-अपने हाथोंमें ले लिया और उनके पारस्परिक झगड़े भी निपट गये। १८९६ में सुल्तान सैयद खालिदने विद्रोहका झण्डा उठाया; परन्तु ब्रिटेनके एक लड़ाकू जहाज़ने आध घंटेमें ही सम्पूर्ण विद्रोहको शान्त कर दिया। सुल्तान जर्मन राजदूतकी शरणमें आकर टांगान्यिका भाग गया। उसके बाद उसके लड़केको नाममात्रका राजा बना दिया गया।

ज़ंज़बारके सुल्तान खलीफ़ा-बिन-हरफ़। आप हिन्दी बोल लेते हैं

यद्यपि ज़ंज़बारमें अरब सुल्तान हैं, डाकके टिकटपर भी उनकी तसवीर छपती है; मगर उन्हें शक्ति कुछ भी नहीं। टापूका कर्ता-धर्ता-विधाता ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट है। १९१३ तक ज़ंज़बार ब्रिटिश साम्राज्यके विदेशीय विभाग (Foreign office) के नीचे था; परन्तु उसके बादसे औपनिवेशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग (Colonial office) के अधीन कर दिया गया है। सन् १९१४ तक ज़ंज़बारके मुक़दमोंकी अपील बम्बई हाई-कोर्टमें होती थी। १९२६ में यहाँ व्यवस्थापिका सभाका निर्माण किया गया।

अरब लोगोंके शासनमें भारतीयोंका अरबोंके साथ बहुत ही भ्रातृभावका सम्बन्ध था। मुस्लिम धर्मके माननेवाले अरब सुल्तानोंके समयमें भी बड़े-बड़े अफ़सर भारतीय हिन्दू लोग ही थे, इसीलिए भारतीयोंने ज़ंज़बारको समृद्ध करनेमें कुछ उठा न रखा था। ज़ंज़बारमें अंगरेज़ोंको लानेका प्रथम श्रेय या अश्रेय भी भारतीयोंको ही है। बम्बई-सरकारके प्रोत्साहनसे भारतीयोंने अपने संरक्षणके लिए प्रथम ब्रिटिश कौन्सलेटको यहाँ बुलाया था, और यहींसे अरब सत्ताका नाश प्रारम्भ हुआ। तभीसे ब्रिटिश सत्ता ज़ंज़बारमें जमने लगी। इसके पश्चात् ही १८९० में यूरोपीय राष्ट्रोंकी उपर्युक्त सन्धि हुई थी। इसीको पुष्ट करते हुए ईस्ट अफ्रिकाके प्रथम कौन्सुल-जेनरल जान किर्कने १९१० में सैन्डरसन-कमेटीके सामने साक्षी देते हुए कहा था—"भारतीय व्यापारियोंके कारण ही हम इधर अपना प्रभाव या स्थिति बना सके हैं।" भारत-विरोधी चर्चिलने भी 'My African Journey' नामक अपनी पुस्तकमें लिखा है—"भारतीय साहूकारोंकी पूँजीपर ही अधिकतर इधरका व्यापार आश्रित है और गौरांग लोगोंको भी भारतीय साहूकारोंके पास धनकी सहायता लेनेके लिए जाना पड़ता है। जब कोई ब्रिटिश अफसर इधर आया भी न था, उससे भी बहुत पहलेसे भारतीय यहाँ बसे हुए हैं। क्या यह किसी भी सरकारके लिए सम्भव है कि वह किसी ऐसी नीतिका आश्रय ले, जिससे भारतीयोंको ऐच्छिक रूपसे इस प्रदेशसे बाहर निकलना पड़े, जहाँ उन्होंने जनताके विश्वासमें हर तरहका संरक्षण प्राप्त कर लिया हो।" परन्तु ऐसी अवस्थाके होते हुए भी जिस तरह अफ्रिकाके प्रत्येक प्रदेशसे—विशेषकर ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत प्रदेशोंसे—भारतीयोंके निकालनेका प्रयत्न किया जा रहा है, उसी तरह इस छोटेसे प्रोटेक्टरेटमें भी कुछ काले क़ानून पास किये गये हैं, जिससे भारतीयोंके हाथोंसे व्यापार छिन जाय और इन्हें इस प्रदेशको छोड़ना पड़े।

ब्रिटिश उपनिवेशोंसे भारतीयोंको निकालने और उनके व्यापार और माल-मत्तेको हथियानेके प्रयत्न गोरे लोग ज़ोरोंसे कर रहे हैं। जहाँ भारतीय अंगरेज़ोंसे कई गुना अधिक संख्यामें बसे हुए हैं, वहाँ उन्हें कोई अधिकार नहीं दिये गये हैं। यद्यपि कई उपनिवेशोंको नितान्त जंगली अवस्थासे मनुष्योंके रहने-योग्य बनानेमें भारतीयोंका खून और पसीना बहा है, और उपनिवेशोंकी सरकारोंने अपने देशोंको विकसित करनेके लिए स्वयं ही भारतीय श्रमिकोंको बुलाया था; लेकिन अब जहाँ-जहाँ भारतीयोंके बिना काम चल सकता है, वहाँ-वहाँसे भारतीयोंको निकालनेकी कोशिश हो रही है—यह बात दक्षिण-अफ्रिका और किसी हद तक पूर्वीय अफ्रिकामें स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है। भारतीयोंको खुल्लमखुल्ला निकालना असम्भव-सा है, इसीलिए उल्टे-सीधे क़ानूनों द्वारा भारतीयोंके व्यापारको हथियाकर, उन्हें तंग करके, बेकार बनाकर स्वतः देश लौटनेके लिए बाधित किया जा रहा है।

जनसंख्या

ज़ंज़बार प्रोटेक्टरेटकी कुल जनसंख्या २,३५,००० है। इसमें २५० यूरोपियन, १५,००० भारतीय, ३३,००० अरब और १,८६,००० अफ्रिकन हैं। ये अफ्रिकन हब्शी बन्टू जातिके हैं, और उनकी भाषा सुहाली कहलाती है।

शासन

इस प्रोटेक्टरेटका शासन ब्रिटिश रेज़िडेन्टके अधीन व्यवस्थापिका सभा करती है। इस सभामें बहुसंख्यामें सरकारी अंगरेज़ अफ़सर ही होते हैं। इनके अतिरिक्त ३ अरब, २ भारतीय और १ यूरोपियन जनताके प्रतिनिधि हैं; पर उन्हें एक प्रकारसे सरकार ही चुनती है। यद्यपि इन प्रतिनिधियोंके बारेमें उन-उन जातियोंकी प्रतिनिधि-सभाओंसे पूछा जाता है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु उनके अनुसार प्रतिनिधियोंको स्वीकृत करने या न करनेका अधिकार सरकारको है। इस तरह रेज़ीडेन्ट साहब सरकारी अफ़सरोंके बहुमत और अपने ही मनोनीत सदस्योंकी सहायतासे मनमाना क़ानून पास कर सकते हैं। इसीलिए १९३४ के जून मासमें भारतीयोंसे लौंगका व्यापार छीननेके लिए एक दूसरेके पूरक कई क़ानूनोंके पास किये जानेमें देर न लगी।

व्यापार

ज़ंज़बार तथा पूर्वी अफ्रिकाके अन्य सब प्रदेशोंमें बैंक और जहाज़ी कम्पनियाँ यूरोपियन लोगों—विशेषकर अंगरेज़ों—के हाथमें हैं। ज़ंज़बारमें लगभग एक दर्जन बड़े-बड़े 'आयात-निर्यात' के व्यापारी आफिस हैं, जो गोरोंके हाथमें हैं। सम्पूर्ण ईस्ट अफ्रिकामें किसी भी विशुद्ध भारतीय बैंककी शाखाके न होनेसे भारतीयोंको व्यापारमें धनकी सहायता यूरोपियनोंकी अपेक्षा बहुत कम मिलती है। यहाँ भारतीय बैंक अपनी शाखाओंको बहुत अच्छी तरह चला सकते हैं, अगर सरकारकी तरफ़से कोई रुकावट न हो। अभी तक सम्भवतः भारतीय बैंकोंकी शाखाओंको रोकनेवाला कोई क़ानून नहीं है। फिर भी ज़ंज़बारमें प्रायः ९० प्रतिशत व्यापार अभी तक प्रयत्न और पुरुषार्थसे भारतीयोंने अपने हाथोंमें कर रखा था। लवंगका निर्यात तथा स्थानीय फुटकर व्यापार भी भारतीयोंके हाथोंमें था। इस टापूमें भारतीयोंने अपनी करोड़ों रुपयोंकी जायदाद और व्यापार बना रखा है।

ज़ंज़बारमें ११० के क़रीब यूरोपियन आफिसर हैं। गत वर्षोंमें व्यापारके मन्दे होनेसे अधिकतर भारतीयोंको ही नौकरियोंसे निकाला गया है, यद्यपि उनके वेतन यूरोपियन लोगोंसे बहुत थोड़े होते हैं। समान योग्यतामें, पदकी उच्चता देकर, केवल अंगरेज़ होनेसे भी, एक यूरोपियन एक भारतीयसे दस गुना अधिक वेतन पाता है। इन भारी-भारी वेतनोंको कम न करके 'ग़रीबमार' नीति उचित प्रतीत नहीं होती। इससे नौकरीपेशा लोगोंका भी बुरा हाल हुआ, जिसके परिणाम-स्वरूप बहुतोंको भारत लौटना पड़ा।

इस प्रदेशका मुख्य व्यापार लवंगका निर्यात जहाँ भारतीयोंके हाथमें था, वहाँ लवंगकी उत्पत्तिके लिए जो पूँजी लगी हुई है, वह भी साहूकारीपेशा भारतीयोंकी है। इस व्यापारमें भारतीयोंका कम-से-कम ८० लाख रुपया लगा हुआ है। भारतीय इस साहूकारीमें भी अच्छा नफ़ा उठाते रहे हैं; परन्तु १९३४ के क़ानूनोंसे भारतीयोंके जो अधिकार छीन लिये गये हैं, उनसे इस व्यापारपर भी बड़ा प्रभाव पड़ा है। ज़ंज़बारके भारतीय संघने अत्यन्त विस्तारसे उपर्युक्त क़ानूनोंका विश्लेषण अपने एक निवेदन-पत्र (Memorandum) में किया है। इन क़ानूनोंका पूरा खुलासा मि० मैननकी ज़ंज़बार-विषयक रिपोर्ट भी देती है। संक्षेपमें इन क़ानूनोंका रूप तथा उससे उत्पन्न भारतीय समस्याका विचार हम किसी दूसरे लेखमें करेंगे।

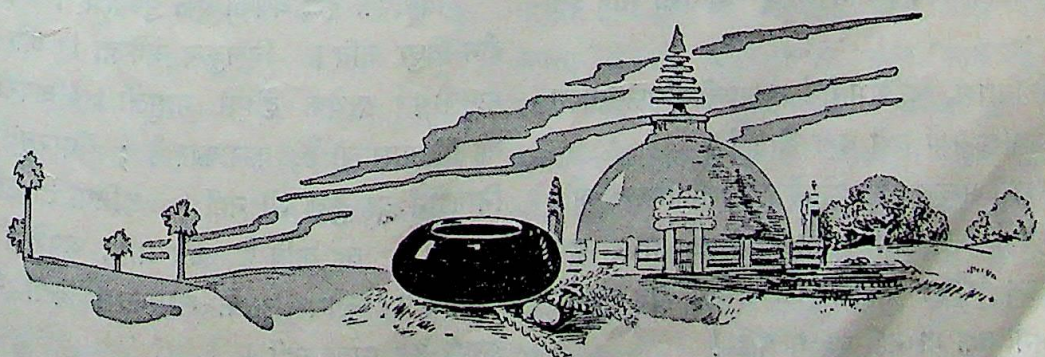

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

भारतवर्षके जगत्प्रसिद्ध बूढ़े महाकवि विनायक जबसे शिवपुर आये थे, उनके चेहरेपर एक विशेष प्रकारकी गम्भीरता छाई हुई थी। इस समय नागरिकोंकी महासभामें एक ऊँचे आसनपर बैठे हुए उनकी वह गम्भीरता जैसे और भी गहरी हो गई। लोगोंको ज्ञात है कि महाकवि विनायकने अपनी युवावस्थाके अनेक वर्ष इसी शिवपुरमें बिताये हैं; परन्तु उसके बाद पिछले ४० वर्षोंमें शिवपुर-निवासियोंके बीसियों निमन्त्रणों और सैकड़ों अनुनयोंके रहते भी वे कभी इस नगरमें क्यों नहीं आये, इस सम्बन्धमें कोई कुछ भी नहीं जानता। युवावस्थाके उस बीते-युगमें जब उन्होंने शिवपुरमें आकर रहना शुरू किया था, उन्हें कोई नहीं जानता था। एक दिन अचानक ही वे शिवपुर छोड़कर चल दिये थे। उसके बाद जीवनके उत्तरार्द्धमें पहुँचकर जब उनकी ख्याति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो गई, तब संसारके सभी देशोंसे उन्हें लगातार निमन्त्रण आने लगे। वे और सभी जगह हो आये; मगर शिवपुरमें आना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वही महाकवि विनायक ४० वर्ष और कुछ महीनोंके बाद इस नगरमें पधारे हैं।

जनताकी हर्षध्वनिके समाप्त होते ही छै-सात सालकी एक कुलीन बालिका महाकवि विनायकके स्वागतमें एक गीत गाने खड़ी हुई। मगर ओह, यह गीत तो स्वागत-गीत नहीं है! यह तो उन्हींका बनाया हुआ एक विषाद-गीत है। गीतका भाव इस प्रकार था :—

"ओ निराश, ओ अभागे! तू अपनी असफलताको ही अपनी शक्ति क्यों नहीं बना लेता?

"तुम्हारी भावुकताकी बाढ़में तुम्हारा मस्तिष्क और तुम्हारे शरीरकी अन्य सभी शक्तियाँ बेबस होकर डूब गईं; परन्तु तुम्हारी चाहकी यह प्रबल बाढ़ तुम्हारे देवताको नमी तक भी नहीं पहुँचा पाई!

"तुम अभागे हो न?

"निरन्तर यादकी इस कठिन साधनाकी आँचमें तुमने अपने शरीरको सुखा डाला है; परन्तु तुम्हारे अन्तःकरणकी यह तीव्र ज्वाला तुम्हारे देवताके हृदयकी साधारण सहानुभूति तकको नहीं पिघला सकी!

"तुम तिरस्कृत हो न?

"तुम्हारे प्रेमके इस भूचालको तुम्हारा देवता पागलपन समझता है, तुम्हारी वेदनाने तुम्हारे मुँहपर गम्भीर निराशाकी छाया अंकित कर दी है, उसकी बदौलत तुम्हारा हृदय-देव तुम्हें खब्ती समझने लगा है।

"तुम उपेक्षित हो न?

"तो फिर ओ चिर-अभागे! ओ चिर-तिरस्कृत! ओ चिर-उपेक्षित! विश्वके सर्वत्र व्याप्त इस गहरे विषादके साथ एकाकार हो, तू अपनेको, सभी जगह प्रकाशित की जा सकनेवाली सच्ची सहानुभूतिके रूपमें परिवर्तितकर, अजेय क्यों नहीं बना लेता?"

गीत शुरू हुआ और विश्वकवि विनायकने उस नन्हीं-सी बालिकाके चेहरेकी ओर ज़रा ध्यानसे देखा। गीतका भाव, बालिकाका अछूता स्वर और उसका सुन्दरतम निष्कलंक चेहरा—इन सभी चीज़ोंमें कोई विशेषता थी। बहुत ही असाधारण गीत शुरू हुआ और कवि भूतकालके कुछ धुँधले चित्रोंको बड़ी स्पष्टताके साथ मानो अपनी आँखोंके सम्मुख देखने लगे।

× × ×

विनायक २८ वर्षका एक युवक है। एक सन्तान-हीन विधुर कवि। बिलकुल अकेला। और बिलकुल मामूली। प्रत्येक दृष्टिसे मामूली। अपनी समझमें वह प्रतिभाशाली है, कलाकार है; परन्तु दुनियाकी निगाहोंमें वह कुछ भी नहीं। दुनिया तो उसे जानती ही नहीं। वह कवि है, और प्रायः अपने ही में मस्त रहता है। लोग उसके सम्बन्धमें क्या कहते हैं, इसकी उसे परवा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही शिवपुर। आजसे ३७ वर्ष पहलेका शिवपुर। विधाताने विनायकको विधुर बना दिया है। दो वर्ष हुए, वह अपना 'हनी मून' भी ठीक तौरसे नहीं मना पाया था कि महाकालने उसे फिरसे अकेला कर दिया। परिस्थितियाँ बदल डालनेके ख़यालसे वह शिवपुर रहने लगा था। इन दिनों विनायकके जो थोड़ेसे दोस्त हैं, वे उसे सलाह देते हैं कि वह फिरसे विवाह कर ले। परन्तु विनायक कवि है। भावुक है। उसे इन बातोंको सोचनेमें भी चोट पहुँचती है। विनायक फिर कभी विवाह नहीं करेगा, ऐसा भी उसने कभी नहीं सोचा। परन्तु इस सम्बन्धमें कुछ सोच सकनेकी जैसे उसमें शक्ति ही नहीं रही। जो-कुछ है, ठीक है। जिस तरह है, उसी तरह चलने दो। ज़िन्दगी है, कट ही जायगी। रुकेगी नहीं।

× × ×

गानके पहले ही चरणपर जनता करतल ध्वनि कर उठी। बूढ़े कविके जागृत-स्वप्नमें जैसे क्षण-भरकी बाधा पड़ गई। एक बार पुनः उसने उस छोटी-सी बालिकाकी ओर देखा, जो लगभग बिना समझे-बूझे कविके हृदयसे निकले उन भावोंको बहुत ही मधुर स्वरमें केवल गाये जा रही थी। सहसा बालिकाकी आँखोंकी ओर देखकर कविका सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा। ओह, यह तो सुलोचनाकी-सी आँखें हैं! ठीक वैसी ही उज्ज्वल और बिलकुल उसी ढंगकी।

आजसे सैंतीस बरस पहले विनायकने जिस सुलोचनाको देखा था, उसकी आँखें इस बालिकाकी अपेक्षा अवश्य ही अधिक परिपक्व थीं; परन्तु यह कितनी असामान्य समानता है! कविके सम्पूर्ण जीवनका सबसे अधिक गहरा, सबसे अधिक सिहरन उत्पन्न करनेवाला और सबसे अधिक विषादपूर्ण अध्याय हाल ही में देखे गये स्वप्नके समान उनके मानस-पटलपर छा गया।

सुलोचना विनायकके एक घनिष्ठ मित्रकी बहन थी। संकोची स्वभावके विनायकने सुलोचनासे स्वयं परिचय प्राप्त नहीं किया। किसी मासिक पत्रमें विनायककी कोई कविता पढ़कर सुलोचनाने स्वयं ही अपने भाईके इस मित्रसे जान-पहचान बढ़ाई थी। वह उसकी कविताओंको पसन्द करती थी। अपने कालेजकी सहेलियोंसे भी वह अक्सर एकाकी रहनेवाले इस विधुर कवि युवक विनायकका ज़िक्र किया करती थी। उसके हृदयमें विनायकके प्रति जैसे दयाका-सा भाव उत्पन्न हो गया था। प्रतिभाशालिनी, ज़िद्दी स्वभावकी और साफ़-साफ़ सुना देनेवाली सुलोचनाकी एकमात्र सुन्दरता उसकी आँखें ही थी। हूबहू इसी बालिकाकी आँखोंका विकसित रूप।

वृद्ध कविके हृदयमें सुलोचनाकी याद बचपनमें सुने किसी मधुर संगीतकी सुखद स्मृतिके समान झनझना उठी और अगले ही क्षण मानो चोट खाकर उस तानका वाद्य-यन्त्र ही टूट गया। सुलोचना विनायकका सम्मान करती है, उसे आदरकी दृष्टिसे देखती है और उसके हृदयमें उसके प्रति दयाका भाव भी है; परन्तु यह सब होते हुए भी वह उसे प्यार नहीं करती।

असमय ही में अपनी जीवन-संगिनीको खोकर संसारको निराशाकी दृष्टिसे देखनेवाले कवि-हृदय विनायकने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि उसके जीवनमें फिरसे कोई ऐसा अवसर आयेगा, जब कोई उसे प्यार करेगा। मगर अचानक उसके भावुक हृदयने यह अनुभव किया कि सुलोचना उसे आदरकी दृष्टिसे देखती है, उसका सम्मान करती है और उसकी छोटी-छोटी हरकतोंमें भी दिलचस्पी लेती है। अट्ठाईस बरसके होते हुए भी नासमझ और भोले विनायकने अपना परिपक्व और गम्भीर हृदय कालेजके द्वितीय वर्षमें पढ़नेवाली सुलोचनाको अर्पण कर दिया। सुलोचनाके आदरमें उसने प्यारकी झलक नहीं देखी थी, फिर भी सुलोचना-जैसी किशोरीकी ओरसे मिली ज़रा-सी आदरपूर्ण सहानुभूतिके बदलेमें जैसे उसने अपना सम्पूर्ण हृदय, अपना सभी कुछ स्वेच्छापूर्वक उसने अर्पण कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनों तक तो सुलोचना इस बातको समझ ही नहीं सकी। और जब कवि-हृदय विनायकने कविताशून्य ढंगसे अपने हृदयके भाव सुलोचनापर प्रकट कर दिये, तब उसने देखा कि सुलोचना कविके हृदयकी अभिलाषाको पूरे तौरसे अनधिकार चेष्टा समझती है।

× × ×

छै-सात बरसकी वह नन्हीं-सी बालिका इस समय जैसे सम्पूर्ण सभाके लोगोंकी अन्तर्हित मनोव्यथाका पता पा गई थी और अपनी कोमलतम स्वर-लहरीसे, सैकड़ों-हज़ारों हृदयोंमें छिपे हुए गम्भीर विषादको उघाड़-उघाड़कर, कह रही थी—'तुम अभागे हो न ?'

वृद्ध कविने पूरी गहराईके साथ अनुभव किया—ओह, वह तो सचमुच अभागा है !

गीतका अभी दूसरा चरण ही शुरू हुआ था।

उसके बाद क़रीब अठारह महीनों तक विनायक शिवपुरमें ही बना रहा। आजके महाकवि और विश्व-भरमें पूजा पानेवाले विनायकके ७० बरसके जीवनमें उन अठारह महीनोंसे बढ़कर निराशापूर्ण और साथ ही साथ आशापूर्ण समय और कोई नहीं बीता।

विनायकको जब यह ज्ञात हुआ कि सुलोचनाका उसके प्रति भाव ही बदल गया है और वह उसे रोषपूर्ण भयके साथ देखने लगी है, तब उसके चित्तको गहरी चोट लगी। कई सप्ताहों तक वह सुलोचनाके घर नहीं गया। बहुत तरहसे उसने प्रयत्न किया कि वह अपने जीको समझा ले कि सुलोचनाके प्रति प्रेमभाव उत्पन्न करना उसकी अनधिकार चेष्टा है। वह तो एक अभागा विधुर है। वह किसीसे यह आशा क्यों करे कि कोई उसे निकटतम आदरकी, अपनेपनकी, प्यारकी दृष्टिसे देखे ? अपने हार्दिक प्रेमके बदलेमें किसीसे उसी तरहके भावोंके प्रतिदानकी चाह रखनेका भी उसे क्या अधिकार है ? दुनिया-भरके प्राणी एक दूसरेके साथ—कोई किसीके साथ और कोई किसी सम्बन्धसे—बँधे हुए हैं, संयुक्त हैं। दुनिया-भर प्रेमका प्रतिदान चाहती है, तो चाहा करे; मगर विनायक तो अकेला है। विधाताने उसे अकेला बना दिया। वह क्यों अपने इस अकेलेपनसे नजात पानेकी अनधिकार इच्छा करे ?

मगर जी नहीं माना। पूरे मनोयोगके साथ उसने एक कविता लिखी। शिवपुरमें कोई बड़ा कवि-सम्मेलन था। विनायक भी निमन्त्रित था। उसने अपनी कविता वहाँ सुनाई। एक करुण गीत था। ऐसा गीत, जो पत्थरको भी रुला दे। विनायकको अपनी कविता सुनानेमें पन्द्रह मिनटसे अधिक न लगे होंगे। जब वह अपनी कविता समाप्त कर चुका, तो उसने देख लिया कि विनायक न केवल शिवपुरका, अपितु अपने प्रान्तका सर्वश्रेष्ठ कवि है।

कवि-सम्मेलन जब समाप्त हुआ, तो आस्मानमें तारे निकल आये थे। अपने प्रशंसकोंसे जिस किसी तरह छुटकारा पाकर विनायक सुलोचनाके घरकी ओर चल पड़ा। उड़ती हुई-सी चालमें। उस समय उसका दिमाग़ आशाकी उत्साहदायिनी महकसे भरा हुआ था। उसे ज्ञात था कि कवि-सम्मेलनमें सुलोचना भी उपस्थित थी। यह कवि-सम्मेलन विनायकके लिए एक विजय-यात्रासे कम सिद्ध न हुआ था। इससे वह भलीभाँति यह कल्पना कर सकता था कि सुलोचनापर उसकी इस असाधारण सफलताका कैसा प्रभाव पड़ा होगा।

उमंगोंमें भरा हुआ विनायक जब सुलोचनाकी कोठीके फाटक तक पहुँचा, तो उसे दिखाई दिया कि सामनेके बरामदेमें, बिजलीकी बत्तीके नीचे, सुलोचना धीरे-धीरे अकेली टहल रही है। विनायक स्वभावसे बहुत आशापूर्ण तो न था; परन्तु आजकी सफलताने उसकी आशाओंका माप यकायक बहुत ऊँचा कर दिया था। क्षण-भरके लिए विनायकको ऐसा जान पड़ा, मानो सुलोचनाके चेहरेपर आजके कवि-सम्मेलनमें घटी घटनाकी छाप स्पष्ट तौरसे अंकित है। और वह उसीके बारेमें सोच रही है; मगर नहीं, इस दिशामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनायकने अपनी कल्पनाको आगे नहीं बढ़ने दिया।

धीरे-धीरे वह सुलोचनाके निकट पहुँच गया। वह अंधकारमें था, इससे सुलोचनाकी निगाह उसपर नहीं पड़ी। साहसपूर्वक सीढ़ियोंपर चढ़कर विनायक बरामदेमें जा खड़ा हुआ और तब सहसा सुलोचनाकी निगाह उसपर पड़ी। सुलोचना इस समय किसी व्यक्तिगत चिन्तामें मग्न है, यह देखे बिना ही भोलेभाले विनायकने मुसकराकर उसे नमस्कार किया। जवाबमें सुलोचनाने अपने दोनों हाथ तो जोड़ दिये; परन्तु उसके चेहरेपर कोमलताकी एक रेखा तक भी दिखाई नहीं दी। उसका मुँह किसी मरीज़के समान तेजहीन और पीला पड़ गया। इसी समय सुलोचनाने अविचलित भावसे पूछा—"कहिये, क्या काम है?"

बेचारे विनायकको एक ही काम सूझा—"भाई साहब कहाँ हैं?"

"वह बाहर गये हैं, और शायद जल्दी नहीं लौटेंगे।" कहकर सुलोचना पीछेकी ओर घूम गई।

चोट खाकर जैसे युवक कविका अनुभूतिपूर्ण हृदय पुकार कर उठा। उसने धीरेसे कहा—"आप मेरे प्रति इस तरह अनावश्यक रूपसे कठोर क्यों हो गई हैं?"

"मैं किसीके प्रति कठोर-वठोर कुछ नहीं!" कहकर सुलोचना तेज़ीसे अन्दर चली गई।

कहाँ गया वह कवि-सम्मेलन; कहाँ गई आजकी वह विजय-यात्रा और कहाँ गया उसका तेज़ नशा? जैसे किसीने शादीके दिन थप्पड़ मार दिया हो! विनायकका रोम-रोम अपनेको अपमानित अनुभव करने लगा। चुपकेसे वह बरामदेसे नीचे उतरा और अन्धकारमें पहुँचते ही सिसककर रो उठा। सम्पूर्ण शिवपुरको अनायास ही विमोहित कर लेनेके सिर्फ़ आध घंटा बाद ही वह अभागा युवक कवि इस तरह अपमानित होकर अन्धकारमें चुपचाप आँसू बहाता हुआ अपने घरकी ओर लौट चला।

बूढ़े महाकविकी अर्द्ध-चेतनाको जान पड़ा, जैसे कोई बहुत दूरपर अत्यन्त कोमल और संगीतमय स्वरमें याद दिला रहा है—'तुम तिरस्कृत हो न?'

हाँ, उस दिनके अभागे विनायकसे बढ़कर तिरस्कृत और कौन होगा?

× × ×

परन्तु सुलोचना भी पत्थरकी नहीं बनी है। वह एक अनुभूतिशील नारी है। उसके भी हृदय है। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसे वह पहचानती है। वह इस प्रतिभाशाली कविके प्रति अविनीत हुई थी, इसका उसे खेद है। सुलोचनाका भाई विनायकको बड़े सन्मानकी दृष्टिसे देखता है, और जब कभी सम्भव होता है, उसे अपने घर तक चलनेके लिए बाधित करता है। अपने कमरेके भीतरसे सुलोचनाने अनेक बार देखा है कि निराशाका मूर्तिमान अवतार-सा बना एक युवक बड़ी झिझकके साथ उसकी कोठीके द्वार तक पहुँचता है और उसके बाद कोई-न-कोई बहानाकर वापस लौट जाता है।

इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिससे सुलोचनाको भी विनायककी श्रेष्ठता जीसे स्वीकार करनी पड़ी। सुलोचना एफ० ए० पास कर चुकी थी। इसके बाद भी वह पढ़ाई जारी रखे, यह उसकी माँको स्वीकार न था। उनकी एक ही तो कन्या है। माँ और भाई साहब ही सुलोचनाके अभिभावक थे। उसके पिता अब इस दुनियामें नहीं थे। उसके अन्य रिश्तेदारोंका भी यही ख़याल था कि अब सुलोचनाका विवाह हो जाना चाहिए। भाई साहब माँका आग्रह न टाल सके। सुलोचनाके एक निकट-सम्बन्धीने एक बहुत ही अच्छा समझा जानेवाला प्रस्ताव भी उसकी माँके सम्मुख पेश कर दिया। अकेली सुलोचनाको छोड़कर घरमें और कोई व्यक्ति ऐसा न था, जो उसके कौमार्य और पढ़ाईको अभी और जारी रखनेके हक़में हो।

इस अवसरपर विनायक ही सुलोचनाके काम आया। सुलोचनाने कभी उससे अपने जीकी बात नहीं कही; परन्तु जैसे विनायकका अन्तःकरण स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बातको जानता था कि इस सम्बन्धमें सुलोचनाकी क्या राय हो सकती है। उसने सुलोचनाके भाईको समझाया और उसे अपने साथ सहमतकर उसकी वृद्धा माताको भी यह भली प्रकार समझा दिया कि आजकलके ज़मानेमें लड़कियोंका जी दुखानेका बहुत भयंकर परिणाम भी हो सकता है, और यह भी कि अच्छी लड़कियोंके लिए अच्छे लड़कोंकी कमी कभी नहीं रहती।

सुलोचनाको जब यह बात मालूम हुई, तो उसका अन्तःकरण विनायकके प्रति कृतज्ञतासे भर उठा। वह अब विनायकको सन्मानकी दृष्टिसे देखती है; जब कभी सम्भव होता है, उसे अपने घरपर निमन्त्रित करती है, और कभी-कभी उसका यह अपनापन इतना बढ़ जाता है कि वह उसपर शासन भी करने लगती है।

विनायक अब सुखी है। और क्या उसका अन्तःकरण अब यह अनुभव नहीं करता कि उस अभागेके लिए इतना ही काफी है; परन्तु विधाताने मनुष्यको हृदय नामकी जो चीज़ दी है, वह सन्तोष करना जानती ही नहीं। उसकी चाह कभी पूरी नहीं होती। विनायक डरता है और अपने भावोंपर संयम रखता है, परन्तु उसके अन्तःकरणमें—"और! और! अभी और!" जो पुकार प्रतिक्षण मची रहती है, उसका दमन वह किस तरह करे?

महीनों तक विनायक आशा और निराशाके इन हिंडोलोंपर झूलता रहा। वह समझदार था। उसके जीको इस बातका भ्रम तो एक बार भी नहीं हुआ कि सुलोचना उसे प्यार करने लगी है; परन्तु यह अनुभूति उसे अनेक बार होती कि यदि वह अपने हृदयकी गहरी व्यथा ठीक ढंगसे सुलोचनाके सन्मुख व्यक्त कर सके, यदि वह किसी तरह अपना जी खोलकर सुलोचनाको यह दिखा सके कि उसका भावुक हृदय किस गहराई और कितनी तल्लीनताके साथ उसका उपासक बना हुआ है, तो सुलोचना अवश्य ही उसपर अनुकम्पा करेगी। और नहीं तो विनायक-जैसे प्रतिभाशाली युवकके सर्वस्व समर्पणकी यह दरख़्वास्त सुलोचनासे ठुकराई न जायगी।

इन दो व्यक्तियोंके इति-ह-आस (ऐसा हुआ था) ने अपनेको दोहराया। सुलोचनाको जब यह ज्ञात हुआ कि विनायक अभी तक उसे उसी तरह चाहता है; उसकी स्पष्ट अस्वीकृतिके रहते भी वह अपनी चाहका रूप तक भी नहीं बदल सका, तो उसके हृदयमें विनायकके प्रति गहरे रोषकी भावना फिरसे उत्पन्न हो गई। सुलोचना पुनः विनायकसे बच-बचकर रहने लगी।

इन्हीं दिनों रंगमंचपर सुधाकर नामके एक नये व्यक्तिका प्रवेश हुआ। चंचल और क्रियाशील स्वभावका यह नवयुवक शिवपुरके एक कालेजमें अंगरेज़ीका प्रोफ़ेसर नियुक्त हुआ था। काफ़ी हँसोड़, मजलिसी और विनोदप्रिय। सुलोचनाके मकानपर ही उसके भाईने विनायकसे सुधाकरका परिचय करवाया था। सुधाकरको देखते ही न-जाने क्यों विनायककी देह-भरमें एक कँपकँपी-सी दौड़ गई और चायकी टेबिलपर बैठे हुए उसने अनुभव किया कि सुधाकरके मुक़ाबलेमें वह स्वयं जैसे बिलकुल फीका और बेस्वाद है।

शीघ्र ही विनायकको मालूम हो गया कि सुलोचना और सुधाकरके विवाहकी बातचीत चल रही है। और यह भी कि सुलोचनाको यह प्रस्ताव पसन्द है। अभी तक विनायकका ख़याल था कि सुलोचना एक बालिका है; कम-से-कम वह बालिका बनकर ही रहना चाहती है। अपने प्रति उसने सुलोचनाके जो कठोर भाव देखे थे, उन्हें वह सुलोचनाकी अभी काफ़ी समय तक अबोध बालिका ही बनकर रहनेकी चाहका परिणाम समझता था, और इसलिए वह उन्हें खुशीसे सहन करता था और अन्तःकरणसे क्षमा कर देता था। परन्तु आज जैसे उसकी आँखोंके सामनेसे परदा हट गया। उसने देखा, किसी भी युवतीके समान सुलोचना विवाह कर लेनेके लिए प्रस्तुत थी। उसे ज़रूरत थी केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी इच्छाके, अपनी पसन्दके साथीकी। विनायकको उसने स्वीकार नहीं किया। विनायकका उसने अपमान किया, केवल इसी कारण कि उसकी बाल-बुद्धिको विनायक ऐसा गम्भीर व्यक्ति पसन्द नहीं था। इसी बीचमें सुधाकर रंगमंचपर आया और इतना शीघ्र विजय-पताका उड़ा ले गया!

युवक कविका हृदय क्षोभ और रोषसे भर गया। ओह, सुधाकरसे वह किस बातमें कम है! सुधाकर साहित्यकी व्याख्या करता है, और वह साहित्यका निर्माण करता है। मजलिसीपनको छोड़कर सुधाकर और किस बातमें विनायकका मुक़ाबला कर सकता है? फिर उसकी यह अवहेलना क्यों? यह पराजय क्यों? आज शामकी चाय उन सभी लोगोंने एक साथ पी थी। वहाँ विनायकने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है कि विनायकके लिए वही पत्थर-सी कठोर सुलोचना सुधाकरको कितनी समर्पणमयी और प्यार-भरी दृष्टिसे देखती है!

× × ×

आजसे ४० बरस और ६ महीना पहलेकी एक रात बूढ़े महाकविकी कल्पनामयी आँखोंके सामने मानो प्रत्यक्ष होकर आ खड़ी हुई।

ठंडी अँधेरी रात है। आस्मानमें बादल नहीं, मगर तारे दिखाई नहीं देते। पृथिवी घने कोहरेसे ढँकी है। सब तरफ सन्नाटा है। कहीं किसी तरहका शब्द नहीं है। रातका एक बजा होगा। बेहोशीकी-सी दशामें विनायक अपने बिस्तरेपर लेटा हुआ है। सहसा वह उठ बैठा। रज़ाईके अन्दर सिकुड़ा हुआ वह अन्धकार ही में उकड़ूँ होकर बैठ रहा। उसे कुछ भी मालूम नहीं कि सुलोचनाके घरसे यहाँ तक वह पहुँचा किस तरह। उसके अनुभूतिशील हृदयमें कोई गहरी वेदना, कोई गहरी जलन, कोई गहरी टीस उठ खड़ी हुई है, जिसने उसकी सभी वृत्तियोंको लगभग बेहोश-सा बना डाला है। इस दशामें संसारकी कोई सहानुभूति उसे किसी तरहकी कुछ भी सान्त्वना नहीं पहुँचा सकती। अगर वह ज़रा-सी शराब पी सकता। मगर नहीं, उसने कभी शराब नहीं पी। उसे शराबका ख़याल भी नहीं आ सकता। यह जीका दर्द है। यह एक भावुक अन्तःकरणकी जलन है। यह एक कवि-हृदयकी टीस है। इसका इलाज विश्व-भरमें किसीके पास नहीं।

न-जाने कितनी देर तक विनायक उसी तरह बैठा रहा। ठीक उसी तरह। एक ही आसनसे। संज्ञाहीन-सा। पत्थरके बुतका-सा।

आख़िरकार रज़ाईके उस ढेरमें गति दिखाई दी। विनायकने हाथ बढ़ाकर स्विच दबा दिया। कमरा आलोकित हो उठा। सिरहानेकी ओर एक बड़ी टेबिलपर कुछ काग़ज़ रखे थे, एक फ़रनाकलम भी था। विनायकने उन्हें उठा लिया और वह कुछ लिखने लगा। लिखना समाप्त करते-न-करते जैसे उसकी घनीभूत मनोव्यथा पिघल पड़ी। वह चुपचाप आँसू टपकाने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही साहस करके विनायक सुलोचनाके घर गया। उसका चेहरा बरसोंके मरीज़के समान निस्तेज हो रहा था। सारी रात जागे रहनेके कारण उसकी आँखें लाल-लाल होकर मानो दहक-सी रही थीं। विनायकने देखा, आँगनमें सब ओर सन्नाटा है। वह सीधा सुलोचनाके कमरेकी ओर गया। कमरेका दरवाज़ा भीतरसे बन्द था। विनायकने दरवाज़ा खटखटाया। अन्दरसे सुलोचनाकी रोबीली-सी आवाज़ आई—"कौन है?"

"मैं हूँ, विनायक।"

"भाई साहब यहाँ नहीं हैं।"

विनायकने साहस करके कहा—"मुझे आप ही से काम है।"

"ठहरिये, दरवाज़ा खोलती हूँ।"

पूरे दो मिनट तक दरवाज़ा नहीं खुला। इस गहरे अपमानको भी युवक विनायक शान्त भावसे खड़े रहकर सहता गया, जैसे मान-अपमानके बन्धनोंसे वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ऊपर निकल गया हो। अन्तमें दरवाज़ा खुला और विनायकको अन्दर आनेके लिए कहे बिना ही दरवाज़ेपर खड़ी रहकर सुलोचनाने पूछा—"कहिये ?"

विनायकने काँपते हुए हाथोंसे एक नीला लिफ़ाफ़ा बाहर निकाला।

सुलोचनाने पूछा—"यह किसकी चिट्ठी है ?"

"आपकी।"

सुलोचनाको ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह सभी कुछ समझ गई। उसने दृढ़ताके साथ कहा—"मुझे इस तरहकी चिट्ठियाँ पढ़ना पसन्द नहीं है !"

और इसके साथ-ही-साथ अत्यधिक निर्दय भावसे उसने उसी क्षण दरवाज़ा बन्द कर दिया। अगर सुलोचना उस लिफ़ाफ़ेको स्वीकार कर लेती, तो वह देखती कि उसमें एक मटियाले काग़ज़पर केवल वही गीत अंकित था, जिसे इस समय यह नन्हीं-सी बालिका अत्यधिक मधुर स्वरसे इस महासभामें गाकर सुना रही थी !

× × ×

इसी समय सम्पूर्ण सभा-भवन तालियोंकी तड़तड़ाहटसे गूँज उठा। बालिकाका गीत समाप्त हो चुका था, और वह फूलोंकी एक बहुमूल्य सुन्दर माला लिये इस जगत्वन्द्य बूढ़े महाकविकी ओर बढ़ी आ रही थी। महाकविकी बूढ़ी परन्तु स्वच्छ आँखोंमें जो दो बूँद आँसू भर आये थे, वे लुढ़ककर उनकी अत्यधिक भव्य और चाँदी-सी श्वेत दाढ़ीमें जा अटके। बालिका निकट आ गई थी। महाकविने अपना सिर उसके सन्मुख झुका दिया। बालिकाने अपने दोनों हाथ उठाकर वह माला उनके गलेमें डाल दी। सम्पूर्ण सभा-भवन एक बार पुनः ऊँची करतलध्वनिसे गूँज उठा।

बूढ़े कविने अपना आशीर्वाद भरा शुभ्र हाथ बालिकाके सिरपर रखकर उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

बालिकाने उत्तर दिया—"विजयकुमारी।"

महाकविने पूछा—"तुम किसकी कन्या हो ?"

बालिकाने मानो बड़े उत्साहके साथ जवाब दिया—"श्रीमती सुलोचना देवीकी।"

सभाके मंत्री महोदयने बताया—"यह कन्या स्वर्गवासी प्रोफेसर सुधाकरकी पोती है।"

वास्तवमें बालिकाकी दादी उसे इतना अधिक प्यार करती थी कि वह अपनी दादीको छोड़कर दुनिया-भरमें और किसीको जानती ही न थी।

महाकविने सहसा बालिकाको खींचकर अपनी छातीसे लगा लिया और पूरे चालीस सालके बाद उनकी बूढ़ी आँखें विजयकी एक उज्ज्वलतम ज्योतिसे चमक उठीं।

इसी समय बालिका मंचसे नीचे उतरी और एक बूढ़ी सम्भ्रान्त महिलाके पास जा पहुँची। यह देखकर बालिकाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि उसकी बूढ़ी दादीकी आँखोंमें आँसू भरे हुए हैं, और वह अपनी पोतीको अपने प्रगाढ़ आलिंगनसे पृथक् ही नहीं करना चाहती।

बालिकाको माध्यम बनाकर क्षणभरके अन्तरसे एक वृद्ध और एक वृद्धाके दो पवित्रतम आलिंगन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा साहित्य और साम्यवाद

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

एक समय था, जब प्रत्येक देश अपनी-अपनी सीमामें एक पूर्ण संसार था, और उसने बिना किसी मिलावटके अपना मौलिक विकास किया। आजकी नाना संस्कृतियाँ और विभिन्न देशोंकी अनेकरूपता इसी मौलिक विकासका प्रतिफल है। यह विकास प्रत्येक देशने अपने सामाजिक आदर्शोंके आधारपर किया और यह सामाजिक आदर्श आज भी इस बीसवीं शताब्दीमें विभिन्न देशोंकी दन्तकथाओं और लोक-गीतोंमें देखा जा सकता है। सच पूछिये, तो सभी देशोंका सांस्कृतिक निर्माण एक साहित्यिक मनोहरताके संरक्षणमें हुआ। उनके हृदयकी सुन्दर, मधुर, कल्याणपूर्ण भावनाओंने ही किम्बदन्तियों और लोक-गीतोंमें एक स्वप्नका रूप पाया है। उनकी सभ्यता हृदयकी सभ्यता थी और हृदयके आधारपर ही उन्होंने अपना संगठन किया था। उस हृदयका लक्ष्य कितने मनोरम लोकमें रहता था, यह उसके प्राचीन साहित्यसे ही ज्ञात होता है।

उस सीधे-सादे हृदयके उपासक समाजपर जब रूक्ष और दुर्दर्ष प्राणियोंका आक्रमण हुआ, तब प्राचीन साहित्य और प्राचीन सामाजिक मर्यादाओंका लोप होने लगा। हृदयके स्थानपर शारीरिक प्रभुताने अपना साम्राज्य विस्तार किया, लेखनीके अस्तित्वको तलवारने घेर लिया और उस युगका मनुष्य और साहित्य आज हमारे लिए एक पौराणिक वस्तुमात्र रह गया है। आज हम अपने उन सामाजिक आदर्शोंको भूलकर अपने आदर्श इतिहासके पृष्ठोंमें ढूँढ़ते हैं। हमारी आजकी सारी अशान्तिका एकमात्र कारण यही है कि तलवारोंकी चकाचौंधमें आकर हमने जीवनका आदर्श पौराणिक प्राणियोंसे न ग्रहणकर ऐतिहासिक पुरुषोंसे लिया है। दूसरे शब्दोंमें सामाजिक प्राणियोंके आदर्शको तो हमने पौराणिक और अव्यावहारिक कहकर उपेक्षित कर दिया, और आतंकके बलपर प्रभुत्वका विस्तार करनेवाले मनुष्योंको ऐतिहासिक तथा व्यावहारिक मान लिया है। इस प्रकार हमने अपने जीवनमें एक बिना रोगका रोग उत्पन्न कर लिया है—महत्त्वाकांक्षाके भ्रममें एक विडम्बनाको पसन्द कर लिया है, और यह कितने मजेकी बात है कि इसी विडम्बनामें, इसी ऐतिहासिक रुग्णतामें हम अपने जीवनका स्वास्थ्य और सुविधा खोज रहे हैं। जीवनका ठीक-ठीक निदान पा जानेके लिए आज भी संसारमें कितना नरसंहार और रक्तपात देखनेमें आ रहा है, यह आजके किसी भी व्यक्तिसे छिपा नहीं है। ऐसे ही हिंसक प्रयत्नोंका परिणाम है आज संसारके राजनीतिक क्षितिजपर फैसिस्टवाद और साम्यवादका उदय। आवश्यकता तो इस बातकी थी कि हम आजकी सम्पूर्ण अशान्तिका निराकरण मैत्री और मनुष्यत्वके आधारपर करते—उसे हम हृदयसे सुलझाते, न कि द्वन्द्व और प्रतिशोधके द्वारा। गांधीजीने जीवनके इस निदानको ठीक-ठीक समझा, और वे ऐतिहासिक आदर्शोंको विशेष महत्त्व न देकर पौराणिक आदर्शोंको संसारके सामने ले आये, जिसमें हिंसा नहीं, विद्वेष नहीं, बल्कि प्रेम और आत्मीयताका समावेश है। पौराणिक आदर्शके कारण ही वे इस बीसवीं शताब्दीके कठोर वास्तविक जगतमें 'राम-राज्य' का स्वप्न देख रहे हैं। हाँ, जिन्हें अशान्तिपूर्ण वातावरणमें ही रहनेका अभ्यास हो गया है, उन्हें तो गांधीजी भी एक अव्यावहारिक जान पड़ते हैं और उनके आदर्श-तत्त्वोंका आजके भौतिक तथ्यवादके ऊपर टिके हुए साम्यवाद और साम्राज्यवादसे कोई सादृश्य न मिलनेपर साम्राज्यवादी तो उन्हें विद्रोही और साम्यवादी उन्हें साम्राज्यवादी समझते हैं; परन्तु गांधीजी जीवनकी किस गहराईमें उतर गये हैं, यह पृथ्वीके ऊपर दिन-रात क्षुद्र स्वार्थके लिए संघर्ष करनेवाले प्राणी नहीं जान सकते। इन संघर्षोंसे सब तरह निराश्रित और पराजित हो जानेपर आजके अशान्त विश्वको अपने भौतिक साधनोंसे उपराम हो जायगा, तब वह भी उसी ओर मुड़ेगा, जहाँ गांधीजीका हृदय है।

यदि आज भारत स्वतंत्र होता और अन्य देशोंकी भाँति उसे भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धकी सुविधा प्राप्त होती, तो गांधीके आदर्शोंका किसी हद तक सारे संसारमें क्रियात्मक प्रचार हो जाता। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-सूत्रसे यदि कभी लेनिन और ट्राट्स्कीको संसारके अन्य यात्रियोंकी भाँति गांधीजीसे विचार-विनिमय करनेका अवसर मिलता, तो हमें दृढ़ विश्वास है कि उनके आतंककारी विचारोंमें बहुत अन्तर पड़ जाता और वे आइन्स्टाइन और रोमाँ रोलाँकी तरह गांधीके विचारोंके पुजारी हो जाते और उस स्थितिमें हमारे घरका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी जोगना न होकर हमारे साम्यवादी बन्धुओं द्वारा भी एक सिद्ध-पुरुष ही समझा जाता और बात-बातमें हमें लेनिन और रूसका उदाहरण न देना पड़ता। जब विज्ञान अपनी उन्नतिसे स्वयं थक जायगा, तब मनुष्य अपने हृदयकी उन्नतिमें अपना खोया हुआ स्वर्ग पायेगा। सच तो यह है कि एक दिन सारे संसारको गांधीजीकी तरह स्वप्नदर्शी बनना पड़ेगा। जो स्वप्नदर्शी है, वही कवि है और कविका आदर्श ही संसारका सम्बल रहा है और रहेगा।

परन्तु आज हम अपने जीवनमें कविका आदर्श कहाँ पाते हैं? आज तो हमारे जीवनमें पश्चिमी सभ्यताकी अशान्त विभीषिका उथल-पुथल मचाये हुए है और एक रोगको हटानेके लिए हम जो दूसरा रोग उत्पन्न करना चाहते हैं, उसीको जीवनका श्रेष्ठ उपचार समझकर हृदयकी वास्तविक शान्तिकी ओरसे पराङ्मुख हैं। किन्तु जब हम प्रत्यक्ष जीवनमें उसको सफल होते नहीं देखते, तो यह खयाल करते हैं कि शायद साहित्यका सहयोग न मिलनेके कारण ही हमारी यह असफलता है, फलतः हम अपने साहित्य और साहित्यकारोंको कोसते हैं और चाहते हैं कि जबरन वे भी हमारे पीछे-पीछे दौड़ें। साहित्यमें साम्यवादका तकाज़ा आज इसी प्रकारका बलात् आह्वान बन रहा है। एक ओर तो हमारे साम्यवादी बन्धु साम्राज्यवादका विरोध कर रहे हैं, दूसरी तरफ़ वे अपने इस प्रकारके आदेशोंसे साहित्यिकोंको एक मानसिक परतन्त्रतामें आबद्ध करना चाहते हैं। किन्तु यह ध्यान देनेकी बात है कि साहित्य मनुष्यकी मानसिक तथा हार्दिक विचार-धाराका एक चिरन्तन प्रवाह है, जो समय, परिस्थिति तथा प्रलोभनोंसे बाँधा नहीं जा सकता। हाँ, यदि कलाकार कभी सामयिक आवश्यकताओंकी ओर अपना हाथ बढ़ा भी दे, तो समझना चाहिए कि वह अपने पार्थिव लक्ष्यकी यात्रामें जाते समय कहीं स्थान-विशेषपर ठहर-सा गया है; किन्तु इसका मतलब यह कदापि नहीं कि वह ऐसा करनेको बाध्य है। लेकिन हमें आश्चर्य है कि आज साहित्य और साहित्यकारको इसी प्रकार बाध्य किया जा रहा है।

अभी गत मार्चके 'विशाल भारत' में एक लेख 'भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता' शीर्षक प्रकाशित हुआ है, उसके लेखक महोदयने भारतकी राजनीति और साहित्यका कुशल-मंगल एकमात्र साम्यवादमें ही माना है। राजनीतिका कल्याण साम्यवादसे ही सम्भव है या नहीं, हम इस विस्तृत प्रसंगपर नहीं जाना चाहते। कुछ देरके लिए हम माने लेते हैं कि साम्यवाद राजनीतिका एक हमदर्द साथी हो सकता है; परन्तु हमें इसमें सन्देह है कि वह साहित्यका भी एकमात्र सहयोगी बन सकता है।

राजनीतिके कुछ सामयिक प्रश्नोंको साहित्य समय-समयपर प्रदर्शित तो कर सकता है; परन्तु साहित्य किसी भी राजनीतिक प्रगति तक ही, चाहे वह कोई 'वाद' क्यों न हो, सीमित नहीं रह सकता, क्योंकि साहित्यमें हृदयकी जिन प्रगतियोंकी अभिव्यक्ति होती है, वे किसी सामयिक आन्दोलनमात्रसे परिचालित नहीं रहतीं। जैसे हमारा अनुराग और विराग एक व्यक्तिका नहीं, एक युगका नहीं और किसी एक राजनीतिक प्रगतिका नहीं है, बल्कि समस्त मनुष्य, समस्त युग और समस्त प्रगतिकी अक्षय वस्तु है, उसी प्रकार हमारी अन्य अनेक हार्दिक वृत्तियाँ भी देश, काल और सामयिक ज़रूरतोंसे परे हैं। यदि हम साम्यवादको ही साहित्य और जीवनका सर्वोत्कृष्ट विषय मान लें और एकमात्र उसीके विचारोंको अपना भोजन और पठन-पाठन बना लें, तो क्या यह हमारी साहित्यिक प्रगतिमें रुकावट नहीं डालेगा, हमें एक ऐसे स्टेशनपर रोक नहीं देगा, जिसके आगे भी हमारी यात्राका विस्तार हो सकता है? इसका कोई सबूत तो नहीं है कि साम्यवाद ही संसारका अन्तिम निदान होगा। अभी तो वह एक परीक्षणीय विषय है। ऐसी स्थितिमें यदि हम आज साहित्यमें एकमात्र साम्यवादकी सामयिक पुकार उठाने लगें, तो कल क्या कोई और भी ऊँची राजनीतिक पुकार आजकी पुकारको असामयिक नहीं कर देगी? और जैसे हमारे साम्यवादी बन्धु आज हमें कोस रहे हैं, उसी तरह हमारी साम्यवादी पुकारोंके लिए हमारे नवीन मतवादी हमें न कोसेंगे? ठीक तो यह जान पड़ता है कि साहित्य केवल सामयिक राजनीतिक वस्तु न रहकर चिरन्तनकी हार्दिक वस्तु बने—वह प्रशस्त हो, संकीर्ण नहीं। यदि वह प्रशस्त होगा, तभी सामयिक आन्दोलनोंमें समय-समयपर वह एक स्वयंसेवककी तरह अपना हाथ बँटा सकेगा। संकीर्ण होनेपर तो वह बद्ध सरोवरकी तरह गति-रहित हो जायगा। हमें खेद है कि 'विशाल भारत' के उक्त कथित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखके लेखक महोदय हमारे साहित्यको अपने साम्यवादके लिए स्वयंसेवक न बनाकर बन्दी-चाकर बनाना चाहते हैं और राजनीतिकी तंग कोठरीमें उसे क़ैद-तनहाई दे देना चाहते हैं।

सम्पूर्ण लेखके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि लेखक विदेशी ज्ञानसे इतना आक्रान्त है कि उसे अपने देशकी साहित्यिक और राजनीतिक प्रगतिका किंचित् आभास भी नहीं मिला है। भारत किन-किन राजनीतिक प्रगतियोंके भीतरसे वर्तमान काल तक पहुँचा है और किस प्रकार आज संसारके सामने खड़े होनेका बल पा सका है, यह जाने बिना लेखकने हमारी सम्पूर्ण प्रगतिको कदर्थित कर दिया है और एकमात्र साम्यवादको ही हमारा परीक्षक बना दिया है। यह दृष्टिकोण ठीक इसी प्रकारका है, जिस प्रकार कोई रशियन लेखक भारतीय असहयोग-आन्दोलनको परीक्षक बनाकर रूसी साम्यवादकी आलोचना करे।

लेखकने भारतीय राजनीतिकी प्रगतिको समझनेमें कितनी लापरवाहीका परिचय दिया है, इसका सबसे साफ़ उदाहरण है गुप्तजीकी राष्ट्रीय कविताओंपर उसकी आलोचना—

गुप्तजीकी 'भारत-भारती' के लिए लेखकने लिखा है—"'भारत-भारती' न साम्राज्य-विरोधी है और न दलित-श्रेणीकी भावनाओंकी रक्षक।" यहाँपर लेखकको उस समयका ध्यान होना चाहिए, जिस समय 'भारत-भारती' लिखी गई थी। उस समय भारतकी राजनीतिक प्रगति क्या थी? हमारे देशमें 'स्वराज्य' शब्द कहना भी भीषण अपराध था, और नई सभ्यताके प्रवाहमें स्वराज्यकी भावना तो दूर, हममें राष्ट्रीयता भी पूर्ण रूपसे न जग पाई थी। ऐसी स्थितिमें भारतको उद्यत करनेके लिए 'भारत-भारती' के लेखकको राजनीतिकी अपेक्षा सांस्कृतिक आधार लेना पड़ा, और यही सांस्कृतिक उद्बोधन 'भारत-भारती' की विशेषता है। रही 'भारत-भारती' में ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रशंसाकी बात, जिसके सम्बन्धमें लेखकने उद्धरण देकर लिखा है—"जिस ऐतिहासिक जीवन-युद्धके बीचसे हम गुज़र रहे हैं, उस युगकी यह प्रतिनिधि-कविता है, यह सोचकर भी हमें शर्म लगती है।" लेकिन आलोचक यह क्यों भूलते हैं कि 'भारत-भारती' के समयमें आजके जीवन-युद्धका स्वरूप ही कहाँ था? उस समय तो बड़े-बड़े गरम नेता भी ब्रिटिश राज्यकी छत्र-छायामें कुछ सुधार पा जानेसे ही सन्तोष मानते थे, और ऐसे ही युगके अनुरूप 'भारत-भारती' में ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रशंसा है। आज भी यदि 'भारत-भारती' में ये प्रशंसात्मक पंक्तियाँ ज्यों-की-त्यों मुद्रित हैं, तो इसका कारण यह नहीं कि गुप्तजीको आज भी साम्राज्यके प्रति कोई आशा या प्रलोभन है, बल्कि वे पंक्तियाँ तो एक युगकी भावनाको सूचित करनेके लिए विज्ञप्ति-स्वरूप हैं, जिनसे आनेवाली पीढ़ीको ज्ञात होगा कि हमारा भारत कितनी असहाय दशासे आगे बढ़ा है। उस समयकी भावना केवल साम्राज्यकी प्रशंसा तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि एक वैध सीमाके अन्दर रहकर ब्रिटिश राज्यकी त्रुटियोंके प्रति उसमें असन्तोष भी था, और यह असन्तोष 'भारत-भारती' में दीख पड़ता है। यह वैध असन्तोष 'भारत-भारती' ही में नहीं, बल्कि भारतेन्दुकी 'भारत-दुर्दशा' में भी मिलता है। यही असन्तोष क्रमशः परिवर्द्धित होकर 'सविनय अवज्ञा-भंग' में परिणत हो गया।

'भारत-भारती' के द्वारा गुप्तजीकी राष्ट्रीयताको मापना या तो संकीर्ण द्वेषका परिचय देना है, या अपने अध्ययनकी कृपणता प्रकट करना है। गुप्तजी तो भारतकी राष्ट्रीय प्रगतिके साथ-साथ अपनी राष्ट्रीय कृतियोंमें गतिशील हुए हैं। (किन्तु याद रहे, यह प्रगतिशीलता भारतके अनुरूप हुई है, न कि किसी विदेशी राजनीतिक प्रगतिके अनुसार; जैसा कि आज हमारे कुछ मित्र गांधीवादकी होड़में साम्यवादको भारतकी राष्ट्रीय वस्तु बनाना चाहते हैं।) गुप्तजीकी राष्ट्रीयता गांधीजीकी मनोधाराके साथ-साथ प्रवाहित हुई है। क्या राष्ट्रीय, क्या सामाजिक, गुप्तजीकी सभी भावनाएँ गांधीजीके आदर्शसे ओत-प्रोत हैं। इसी प्रकार प्रेमचन्दजी भी अपने औपन्यासिक क्षेत्रमें गांधीजीके अनुयायी रहे हैं। किसी साम्यवादी नेतासे उन्हें श्रमजीवियोंके सम्पर्कमें कम नहीं रहना पड़ा है, फिर भी उन्हें जो-कुछ भी उपचार मिला है, वह गांधीजीके आदर्शोंमें ही मिला है, क्योंकि भारतकी और भारतके साहित्यकी आवाज़ हम गांधीमें ही सुन सकते हैं, लेनिन या स्टैलिनमें नहीं।

महायुद्धके समयमें जब कि महात्माजी दक्षिण-अफ्रिकामें सत्याग्रहको सफल बनाकर भारत लौटे थे, तब उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यकी सहायताके लिए रंगरूटोंकी भरतीपर ज़ोर दिया था। उस समय गुप्तजीने भी प्रवासी भारतीयोंके कष्ट-कथापूर्ण अपने 'किसान' नामक खण्ड-काव्यमें गांधीजीके इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्रायको किसानोंके सम्मुख रखा था। आजके अहिंसक गांधीको यदि कोई उस समयके दृष्टिकोणसे जज करते हुए यह कहे कि वे साम्राज्यपोषक हैं, तो वह अपने विवेकके प्रति कितनी प्रवंचना करेगा। गुप्तजीकी पिछली कृतियोंमें उनके क्रमिक विकासकी दृष्टिसे हम उनका अध्ययन कर सकते हैं, न कि उनमें उनकी सम्पूर्ण परिणति देखनेके लिए। गांधीजीके स्वरमें स्वर मिलाकर महायुद्धके दिनोंमें रंगरूटोंको प्रोत्साहन देनेवाले 'किसान' के कवि गुप्तजी असहयोग-आन्दोलनके महात्माजीसे भी अपनी कविता द्वारा आ मिले और बारडोली-सत्याग्रहके अवसरपर उनके कविने कहा—

"ओ बारडोली !
ओ विश्वस्त बारडोली, ओ
भारत की 'थर्मापोली',
नहीं, नहीं, फिर भी सशस्त्र थी
ग्रीक सैनिकोंकी टोली ;
उठी नहीं तू कि जो बुरा है
उसे नष्ट कर देनेको ,
तुली हुई है किन्तु बुरेको
आज भला कर लेनेको।"

हमें आश्चर्य होता है कि गुप्तजीकी राष्ट्रीयताका अध्ययन करते समय हमारे आलोचक बन्धु गुप्तजीकी इन पंक्तियोंपर न जाकर एकमात्र 'भारत-भारती' की उन पंक्तियोंपर क्यों चले जाते हैं ! यह प्रयत्न ऐसा ही अवांछित है, जैसा कि उनके कवित्वको समझनेके लिए हम 'साकेत' न देखकर उनकी प्रारम्भिक रचनाओंको देखें। लेखकने क्या गुप्तजी, क्या पन्तजी और क्या महादेवीजी सभी कवियोंको एक ही लाठीसे हाँका है और उन्हें प्रतिक्रियावादी (सामन्तवादी) बतलाया है।

गुप्तजीके बाद खड़ी बोलीके प्रतिनिधि कवि पन्तजी हैं। अतएव यहाँपर उनकी काव्य-प्रगतिके विषयमें हम एक दृष्टिपात करना चाहते हैं, क्योंकि यदि पन्त-ऐसा कवि भी आलोचककी दृष्टिमें प्रतिक्रियावादियोंकी कोटिमें आ सकता है, तो हमें खेदके कहना पड़ेगा कि आलोचकमें साहित्यिक रसात्मकताका निरा अभाव है। पन्तजी सौन्दर्य और प्रेमके एक विशिष्ट कवि हैं और प्राचीन तथा नवीन दोनों ही प्रकारके साहित्यिकों द्वारा सम्मानित हैं। अपनी कविताओंमें उन्होंने जिन विशद प्राकृतिक दृश्यों और जिन महत मानवी भावोंको व्यंजित किया है, वे न तो साम्राज्यवादकी वस्तु हैं, न साम्यवादकी ; वे विवाद-रहित मनुष्य-हृदयकी वस्तु हैं। एक खिले हुए फूलको देखकर जिस प्रकार साम्राज्यवादी देश जापान प्रसन्न हो सकता है, उसी प्रकार उससे प्रेम करनेके लिए एक रशियन साम्यवादी युवक भी आगे बढ़ सकता है। इसी प्रकार सौन्दर्य और प्रेमकी अनेक विभूतियाँ सामन्तवादी मनोविनोदकी साधनमात्र नहीं हैं, बल्कि प्रकृतिके आँगनमें बिना किसी द्वन्द्वके प्रत्येक प्राणीके विश्रामके लिए उपकरण हैं। पन्तने ऐसे ही मनोहर उपकरणोंको अपनी कविता द्वारा मनुष्य-समाजके लिए सुलभ किया है। यही नहीं कि पन्तने मनुष्यके तात्कालिक जीवनपर दृष्टिपात नहीं किया। पन्तकी कविता वर्तमान जगतकी प्रगतिमें एक स्वयंसेवककी तरह भी सम्मिलित हो गई है। हमारे सौन्दर्य और प्रेम तो हमारी चिरन्तन सुरक्षित वस्तु हैं, उन्हें हमसे कोई छीन नहीं सकता है, इसलिए आज जो-कुछ अरक्षित है, उसे सँजो लेनेके लिए पन्तने स्वेच्छासे अपने स्थायी कविको आजके सामयिक कविके रूपमें परिणत कर दिया है और आजके पन्तकी यह टेक है—

"जग पीड़ित है अति दुखसे
जग पीड़ित रे अति सुखसे
मानव - जगमें बँट जावें
सुख दुखसे औ' दुख सुखसे !"

इस प्रकारका उदार भाव रखते हुए भी पन्त साम्यवादी नहीं हैं। उन्होंने गणितके हिसाबसे सुख-दुखका आर्थिक विभाजन नहीं किया है। उनको मनुष्यकी बाहरी सामाजिक एकतापर नहीं, मनुष्यकी आन्तरिक एकतापर विश्वास है। यह आन्तरिक एकता किसी राजनीतिक अधिकारपर अवलम्बित नहीं, यह मनुष्यकी संवेदनशील आत्मापर निर्भर है। इस प्रकार पन्तने मनुष्य-समाजमें उस 'हृदय'के जगानेका उपक्रम किया है, जो फूलोंके सौन्दर्यको, कोयलके स्वरको और और सरिताके प्रवाहको मुग्ध नेत्रोंसे प्यार करता है ; वही हृदय उसी तरह मनुष्यको भी प्यार कर सके, यही पन्तको अभीष्ट है। साम्यवाद तो इस आन्तरिक एकताका एक राजनीतिक समझौतामात्र है, जो अनेक समझौतोंकी तरह जुड़-तुड़ सकता है। पन्तकी नई कविता-पुस्तक 'युगान्त' से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जिसको बिना देखे कोई भी आलोचक पन्तकी काव्य-प्रगतिको नहीं समझ सकता) ज्ञात होता है कि 'पल्लव' और 'गुंजन'के पन्त केवल एक छायावादी कवि नहीं हैं, वरन् वस्तुवादको भी वे समझते हैं और वस्तु जगतकी भाषामें मनुष्यको जगाना और उसे प्रेमसे गले लगाना जानते हैं।

छायावाद और वस्तुवादकी कविता कोई दो भिन्न चीज़ें नहीं हैं, अन्तर केवल इतना है कि वस्तुवादमें कवित्वकी अभिव्यक्ति पाठकोंकी अबोधताको ध्यानमें रखकर करनी पड़ती है और छायावादमें उनकी सुबोधताको केवल संकेत देना पड़ता है। हृदय दोनोंमें एक ही रहता है। किन्तु साम्यवादीका छायावादसे सन्तुष्ट होना तो दूर, उसे वस्तुवादसे भी पूर्ण सन्तोष नहीं, वह तो वस्तुवादके भीतर भी अपनी एक विशेष प्रभुता चाहता है। उसकी इसी मनोवृत्तिका परिणाम है कि हमारे आलोचकने यथार्थवादके भीतर एक 'साम्यवादी यथार्थवाद'का घेरा बाँधा है। यह साम्यवादी मनोवृत्ति फासिस्टवादी अहंकी द्योतक है। वह अपनेसे बाहर कुछ नहीं देखना चाहती, उसकी यही संकीर्णता उसके अस्तित्वके लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

खैर, आलोचकने अपनी साम्यवादी प्रकृतिके अनुसार छायावादको बड़ी हिकारतकी निगाहसे देखा है, छायावादके विषयमें आलोचकका कहना है कि—

"छायावादकी धाराने हिन्दीके साहित्यको जितना धक्का पहुँचाया है, उतना शायद ही हिन्दू-महासभा या मुस्लिम लीगने भारतको पहुँचाया हो; यहाँ तक कि अगर आज कविता लिखने बैठता है तो उसका प्रियतम खो जाता है, उसका सोनेका संसार नष्ट और उसकी हृदतन्त्रीके तार झंकृत होकर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, उस पारसे मौन सन्देश आने लगते हैं। और न-जाने क्या-क्या होता है।"

जान पड़ता है कि ये पंक्तियाँ लिखते समय लेखक एक लौहयन्त्र मात्र रह गया था। उसके भीतर मनुष्य नामका कोई हृदय स्पन्दित नहीं हो रहा था। उसने जीवनको इतना ही समझा है कि कुछ ज़रूरी सामानोंकी सुविधासे मेशीन अपना काम करती रहे; केवल 'प्रगति' उसका उद्देश्य है, उसके पास हाथ-पाँव हैं, पर हँसी और रुदन नहीं है। अन्यथा क्या जीवनकी ऊँची-नीची भूमिमें चलते-चलते कहीं किसी काँटेसे उसका हृदय न कसक उठता, किसी उद्यानसे विहँस न पड़ता, या दूर क्षितिजमें फूटती हुई पौको देखकर उस पारसे आती हुई किसी नई स्फूर्तिका अनुभव न होता? साम्यवादके मानी क्या यह हैं कि मनुष्य अपनी सुकुमार वृत्तियोंका बलिदानकर केवल ठूँठमात्र रह जाय, उसमें प्रेमका कोई पल्लव न लहरे, सौन्दर्यकी कोई कली न फहरे और उदयाचलसे मनुष्यके लिए किसी नवीन जीवनका सन्देश न आवे? अगर आवे भी तो केवल 'हाय रोटी, हाय रोटी' की आवाज़?

माना कि आजके साम्यवादी रूसमें सभी समान सुखी और सम्पन्न हैं (यद्यपि यह केवल दूरके ढोलका सुहावनापन है); पर वहाँकी कोई विरहिणी क्या चाँदनी रातमें इन शब्दोंमें चीख नहीं सकती कि—"आज भी प्रिय क्यों न आये?"

शायद इसकी रुकावट साम्यवादी सरकारने, हमारे आलोचककी तरह, कभी घोषित नहीं की और न भविष्यमें कर सकती है। क्या साम्यवादका यही विधान है कि मनुष्य एकमात्र मनुष्यकी कृपापर ही अवलम्बित रहे—प्रकृतिने हृदयके माध्यमसे मनुष्यको जो वरदान दिये हैं, उनके उपभोगसे वंचित रहे? यह तो एक नैतिक दासता है, जो राजनैतिक दासतासे भी भयानक है।

कवियोंको मानव-जीवनको मधुर बनानेका उतना ही श्रेय है, जितना किसी भी जनसेवी कर्मवीर महापुरुषको। रचनात्मक साहित्य और रचनात्मक कार्य इन दोनोंके प्रकारमें अन्तर हो सकता है।

अन्तमें हमारा आलोचक महोदयसे यह निवेदन है कि एक खास प्रकारकी टकसालमें साहित्यको ढालनेका प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। रूसमें भी इस प्रकारका प्रयत्न साहित्यके विकासके लिए अहितकर समझा जा चुका है। वहांकी प्रमुख साहित्यिक एकेडेमीकी तत्त्वावधानतामें खास प्रकारके साम्यवादी साहित्यको प्रस्तुत करनेके लिए कुछ काल तक लेखकोंको बाध्य किया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँका साहित्य एकांगी, नीरस और वृद्धि-रहित हो गया। विश्व साहित्यमें कलाकी दृष्टिसे जो क्षति रूसी साहित्यकी होने लगी, उसकी ओर गोर्कीका ध्यान गया, और उसने रूसकी शासन-शक्तिके हाथसे साहित्यको मुक्ति दिलाकर उसे अनेक रूपमें प्रस्फुटित होनेका अवसर दिया। रूसको गोर्कीने अपनी दूरदर्शितासे जिस साहित्यिक मृत्युसे बचा लिया। आज उसी मृत्युकी ओर अग्रसर होनेमें हमारे साम्यवादी मित्र अपना और भारतीय साहित्यका नवजीवन समझ रहे हैं। उनका यह नवजीवन उन्हींके लिए मुबारक हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाकी

श्री भगवतीचरण वर्मा

(१)

मैं एकाकी—है मार्ग अगम,
है अन्तहीन चलते जाना;
नभमें व्यापकताका सँदेश,
क्षितिमें सीमासे टकराना;
उजले दिन, काली रातोंमें,
लय हो जाते हैं हास-रुदन;
धुँधली बनकर इन आँखोंने
केवल सूनापन पहचाना।
है उस जीवनका बोझ असह,
मैं निर्बलतासे चूर प्रिये!
उर शंकित है, पग डगमग हैं,
तुम मुझसे कितनी दूर प्रिये!

(२)

लेकर अक्षय विश्वास, अरे!
उस दिन जब पत्थरके दिलमें
मैंने जागृतिका पाठ पढ़ा
सोनेवालों की महफिलमें;
'भेदन करना है अन्धकार!'
तब पागल-सा मैं बोल उठा;
कब सोचा था, डिग जाऊँगा
मैं बस पहिली ही मंज़िलमें?
उस पार!—अरे उस पार कहाँ?
है अन्तहीन इस पार प्रिये!
पैरोंमें ममताका बन्धन,
सिरपर वियोगका भार प्रिये!

(३)

अब असह अबल अभिलाषाका
है सबल नियतिसे संघर्षण;
आगे बढ़नेका अमिट नियम,
पग पीछे पड़ते हैं प्रतिक्षण;
पर यदि सम्भव ही हो सकता
केवल पल-भर पीछे हटना—
तो बन जाता बरदान अमर
यह सबल तुम्हारा आकर्षण!
मैं एक दयाका पात्र अरे,
मैं नहीं रंच स्वाधीन प्रिये!
हो गया विवशताकी गतिमें
बँधकर हूँ मैं गतिहीन प्रिये!

(४)

शशि एकाकी मिटता रहता,
रवि एकाकी जलता रहता,
मरु एकाकी आहें भरता,
हिम एकाकी गलता रहता;
कोयल एकाकी रो देती
कलि एकाकी मुरझा जाती
एकाकीपन में बनने का,
मिटनेका क्रम चलता रहता!
एकाकीपन ही अपनापन
मैं अपनेसे मजबूर प्रिये!
उर शंकित है, पग डगमग हैं,
तुम होती जाती दूर प्रिये!

विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता, से आगामी मई मासमें प्रकाशित होनेवाली 'प्रेम संगीत' नामक पुस्तकसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

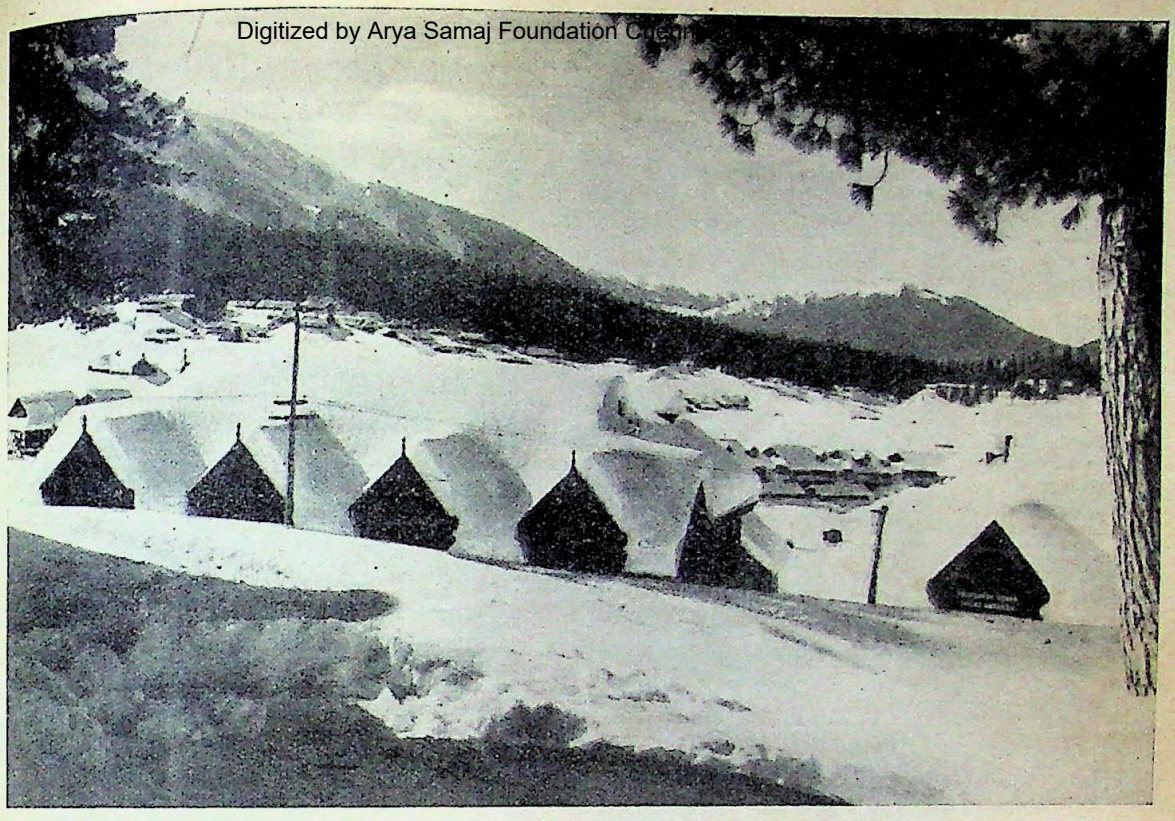

गुलमर्गका प्रधान बाज़ार। रास्तेमें इतनी बर्फ जमी है कि दूकानोंके साइनबोर्ड तक ढक गये हैं

(देखिये पृष्ठ ३५५)

बर्फसे ढका हुआ गुलमर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

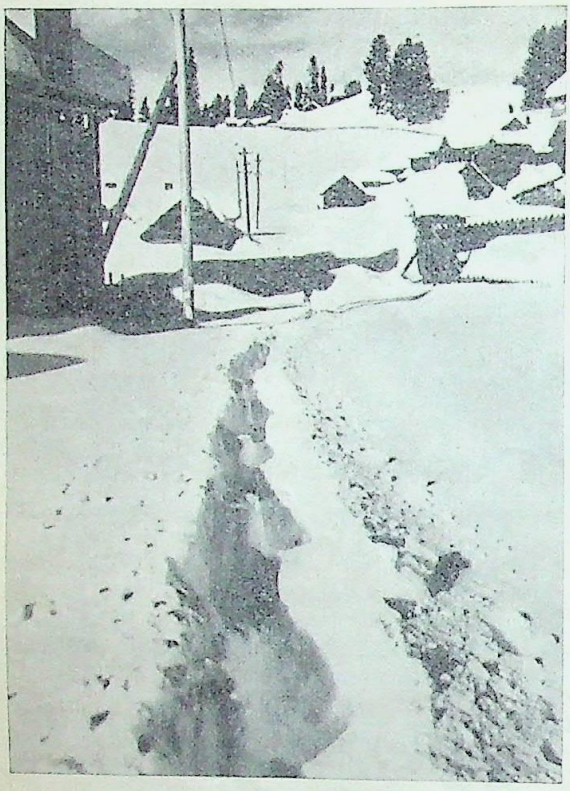

बर्फसे ढका हुआ गुलमर्गका रास्ता

गुलमर्गमें बर्फने पेड़ोंकी चोटियोंपर गुम्बद बना रखे हैं

गुलमर्गका डाकघर । बर्फके गालोंने सब-कुछ ढक रखा है

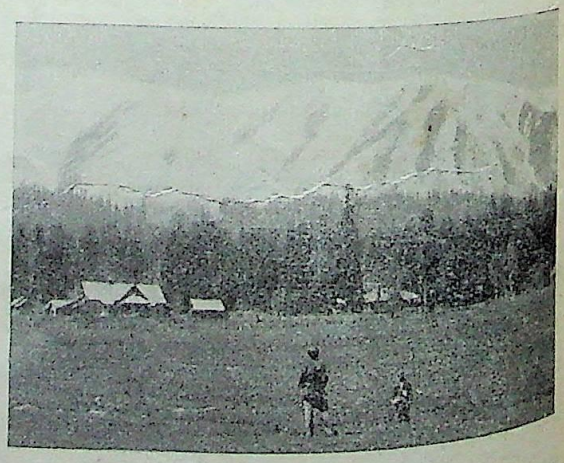

गर्मियोंमें गुलमर्गका दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय राजाबहादुर रुक्मांगद सिंह

श्रीराम शर्मा

जून सन १९३२ की बात है। कलकत्तेकी बाराणसी घोष स्ट्रीटमें बैठा अपने एक बन्धुके साथ भोजन कर रहा था कि एक मित्रने आकर कहा—"कहिये, आप अवधमें नौकरी करने तो नहीं जाना चाहते, एक ताल्लुकेदारके यहाँ ?"

"लानत है ऐसी नौकरीपर।"—मैंने उपेक्षा-मिश्रित हँसीमें कहा।

"नहीं, आदमी भले कहे जाते हैं।"—गम्भीर मुद्रामें मित्र बोले।

"ताल्लुकेदार और भले !"—मैंने मित्रकी ओर घूरकर देखा।

"तो फिर उनसे मिलनेमें क्या हर्ज है ?"—मुसकराहटसे मित्रके अधर हिले।

"बेकार नहीं हूँ। फ़िज़ूलके लिए क्यों जाऊँ ?"—झुँझलाहट और विस्मयसे मैंने उत्तर दिया।

उस समय तक मैं सब ताल्लुकेदारों और राजा-महाराजाओंको नैतिक-मेरुदण्डहीन प्राणी समझता था, और अवधके ताल्लुकेदारोंका तो मैं एक भिन्न Sex ही मानता रहा हूँ, इसलिए जब मैं कटियारी-रियासतके राजा साहबसे मिलने भवानीपुर गया, तब मेरी भावना नौकरीके लिए उम्मेदवारकी-सी न थी, वरन एक पत्रकारकी ऐसी भावना थी, जो किसीके अध्ययनके लिए उसे प्रेरित करती है।

× × ×

भवानीपुर (कलकत्ता) के एक दुतल्ले मकानके कमरेमें जैसे ही मैंने प्रवेश किया, वैसे ही दक्षिणकी ओर मुँह किये, कुर्सीपर बैठे, आगे मुढ़ियापर पैर रखे, पल्ला टोपी पहने, एक सुडौल, सुसंगठित, कमाये हुए शरीरवाले सज्जन दिखाई पड़े ; लजीले नेत्र, तेजवान चेहरा, गौरवर्ण। चारों ओरकी नीरवताने मुझे कुछ प्रभावित किया।

सकतेका आलम था कमरेमें। कुर्सीपर मैं बैठा था, और सामने दक्षिणकी ओर मुँह किये मुझसे पूर्वकी ओरको राजा साहब कटियारी बैठे थे। कई मिनट तक हम लोग चुपचाप बैठे रहे, मानो चुप रहनेकी बाज़ी लगी थी। हाँ, राजा साहबके हुक्केकी नली उनके कानके करीब कुछ काना-फूँसी-सी करती मालूम होती थी। अन्तमें मुझे ही बोलना पड़ा, और उनकी तबीयतका हाल पूछा—इलाजके लिए ही वे कलकत्ते आये थे। रियासतके एक महाशयने मेरे रियासतकी नौकरी करने—राजकुमारका गार्जियन ट्यूटर बननेका प्रस्ताव रख दिया। बस, फिर क्या था। मेरी ज़बान खुल गई, और राजा-महाराजाओंकी कमज़ोरीकी मैंने कड़ी आलोचना प्रारम्भ की। अन्त इस प्रकार किया—राजा महाराजा ग़रीबोंपर तो हुकूमत दिखाते हैं ; पर सरकारी अफ़सरोंके इशारोंपर बन्दरकी भाँति नाचते हैं। वे नैतिक दृष्टिसे बड़े डरपोक होते हैं। नतीजा यह होता है कि रियासतकी नौकरी करनेवाले अपना व्यक्तित्व खो बैठते हैं। चौबीसो घंटे चाटुकारी, राग-द्वेष और दलबन्दीका वायुमंडल रहता है। व्यक्तिगत विचार-स्वतन्त्रताका कोई ख़याल नहीं करता।* फलस्वरूप मनुष्य अपनेपनको खो बैठता है। शरीर और रुपयेसे वह सम्पन्न हो सकता है ; पर आत्मासे कोढ़ी और हेय। और फिर मुझसे मुसाहिबी नहीं हो सकती। किसीके यहाँ जाये और छै-सात मासमें उल्लू बनकर लौट आये, यह महज़ हिमाकत है।

एक साँसमें मैं दिलके गुबार निकाल गया—खरी-खरी बातें सुना गया। मेरे सब-कुछ कहनेपर

* Man shall treat with man as a sovereign state with a sovereign state.—मनुष्यको दूसरे मनुष्यके प्रति ऐसा व्यवहार करना चाहिए, जैसे कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्रसे करता है। —एमर्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी राजा साहब उसी आसनपर डटे रहे और एक शब्द भी उनकी ज़ुबानसे न निकला। उनकी चुप्पीसे वे चिकने घड़े नहीं जँचे, वरन अटूट, निश्चल और समुद्रमें खड़ी एक चट्टानके समान, जिससे हुंकारती, फुफकारती और क्रुद्ध लहरें टकराती हैं और अपनी शक्ति क्षीण करके फिर लौट जाती हैं। बस, हुक्केकी नली सजीव-सी होकर गुड़गुड़ाकर धुआँके कशके साथ राजा साहबकी भावनाओंको अपनी भाषामें प्रकट कर रही थी।

मुलाक़ात—भेंट—होनेके पश्चात मुझे दूसरे कमरेमें बैठाया गया और राजा साहका आदेश आया कि आख़िर मैं चाहता क्या हूँ। क्या पक्की लिखा-पढ़ी चाहता हूँ? आदेश लानेवाले सज्जनने कहा—"महाराजका कहना है कि पंडितजी लिखा-पढ़ी चाहते हैं, तो हम जन्म-भरके लिए लिखा-पढ़ी करनेको तैयार हैं। हमारे यहाँ पुश्तहा-पुश्त आदमी रहते हैं।"

मैंने कहला भेजा कि मैं तो साल-भरकी गारन्टी चाहता हूँ और लिखा-पढ़ीकी कोई बात नहीं। बस, इतनी-सी बातचीतसे मैं फँस गया। न कोई अर्जी थी, न सिफारिश और न कोई दौड़-धूप, और मेरी नियुक्ति हो गई।

× × ×

कई मित्रोंने कहा—"आप ग़लती करते हैं, जो एक ताल्लुक़ेदारके यहाँ जाते हैं। आपके साहित्यिक जीवनमें तो फ़र्क़ न पड़ेगा; पर A rolling stone gathers no moss.—धोबीका कुत्ता घरका न घाटका।"

मैंने कहा—"A rollig man gathers experience.—एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेवाला व्यक्ति अनुभव प्राप्त करता है, और काई (Moss) एकत्र करना ही तो जीवनका उद्देश नहीं।"

बस, १७ जुलाई सन् १९३२ को मैं कटियारी-रियासत आ गया। नौकरीकी जड़ें उल्टी—आकाशकी ओरको होती हैं और प्राइवेट नौकरीकी तो ख़ास तौरसे। फिर 'नौकरी करी ना करी'। मैं इसी भावनासे रियासतमें रहा हूँ—एक साधारण मज़दूरकी भाँति; पर राजा साहबने मुझे अपने कुटुम्बके व्यक्ति-जैसा ही समझा। मुझे ही क्यों, जितने भी आदमी उनकी रियासतमें थे, उन्हें उन्होंने अपने कुटुम्बका आदमी समझा।

× × ×

गत १९ जनवरीकी आधी रातको लखनऊमें राजा साहब सदाके लिए वहाँ चले गये, जिस ओर एक-न-एक दिन हम सबको जाना है। जीवनके इस आवश्यक पड़ाव—मौतमें सभी मिलते हैं नदियोंके समान, जो किसी-न-किसी रूपसे समुद्रमें लीन हो जाती हैं। बड़े-बड़े ऋषि उठ गये। विश्व-विजेताओंकी क़ब्रपर आज धूल उड़ रही है, कीड़े-मकोड़े तक उनपर निस्संकोच चलते-फिरते हैं! हवाके झकोरे उनकी खिल्ली-से उड़ाते हैं और उनकी सड़ी-गली हड्डियों—क़ब्रमें दबी हड्डियों—का उपहास प्रकृतिके प्रत्येक पहलूसे हो रहा है, तब फिर राजा साहब कटियारीकी महायात्रापर क्यों अफ़सोस हो रहा है! मरना जब है ही, तब रोने-धोनेसे क्या लाभ?—

"यह चमन यों ही रहेगा और सारी बुलबुलें,
अपनी-अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जायँगी।"

ठीक है। इस ज़मीनपर जब भीम और अर्जुन ही न रहे, तब राजा साहब कटियारीकी क्या हस्ती थी। राजा साहब कटियारी भी थे इस मानवी चमनकी एक विचित्र विशेष बुलबुल।

इन पंक्तियोंका लेखक भारतवर्षके अमीरों, ज़मींदारों, राजा-महाराजाओंका तीव्र आलोचक है और चाटुकारीसे कोसों दूर, पर गुणोंका प्रशंसक! कलाका प्रेमी और मनुष्यत्वका क़ायल वह ज़रूर है; और इसी ख़यालसे उसकी समझमें राजा साहबका निधन एक भारी दुर्घटना है—एक बड़े मनुष्यका—अमीर और राजाका नहीं—उठ जाना है। देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक दीया लेकर ढूँढ़ आइये, आपको रईसों, राजा-महाराजाओंमें ऐसा आदमी शायद ही मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समयके प्रभावने, आर्थिक और क़ानूनी परिस्थितियोंने, देशके अधिकांश अमीरोंको निकम्मा बना दिया है ; पर राजा साहब कटियारीकी विचित्रता इस बातमें थी कि उनमें रईसी, क्षात्रधर्म, सहृदयता, वीरता और बातपर मर-मिटनेकी प्रवृत्तिका एक अजीब समन्वय था। निष्पक्ष वे इतने थे कि उन्हें मज़हब और मिल्लत, रिश्तेदारी और बिरादरी और हिन्दू और मुसलमानका ख़याल न था। बातके ऊपर वे अटल रहते थे। जो बात हृदयंगम हो गई, उससे उन्हें कोई भी ताक़त हटा नहीं सकती थी। राजा साहबकी माताजी एक बार चाहती थीं कि उनके एक रिश्तेदारको, जो राजा साहबकी कृपाके आसर्तू हैं, रियासतकी नायबी मिल जाय। राजमाताने बेहद सिफ़ारिश की, अनुनय-विनय की ; पर राजा साहबने नायबीका स्थान न दिया, ज़िलेदारी दे दी और कह दिया कि प्रबन्धके मामलोंमें हम मा, स्त्री और बेटे तककी बेजा सिफ़ारिश नहीं मानेंगे।

कितने हैं ऐसे, जो अपनी बातपर क़ायम रहें, जिनकी बात पत्थरकी लकीर हो। राजा साहबने जो बात एक बार कह दी, उसे उन्होंने निभाया। दुनिया एक ओर और राजा रुक्मांगद सिंह एक ओर। पारसालकी बात है। हरदोई ज़िलेके डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी चेयरमैनीका चुनाव था। कुछ ज़िम्मेदार सरकारी अधिकारियोंने राजा साहबसे चेयरमैन होनेके लिए कहा। रियासतके एक कर्मचारीने चेयरमैन बननेकी इच्छापर धार-सी रख दी थी। राजा साहब क़रीब-क़रीब राज़ी-से थे ; पर पूर्ण निश्चय नहीं किया था। लखनऊसे लौटकर हरदोई आये और तीन-चार व्यक्तियोंकी एक कानफरेंस की। उसमें मैं भी था। मेरा स्पष्ट मत था कि राजा साहब चेयरमैन न हों। ५० वर्षकी आयुमें डिस्ट्रिक्ट बोर्डके चक्करमें न पड़ना चाहिए, जब उन्होंने कई आदमियोंको कौंसिलका मेम्बर बनवाया है। पक्ष और विपक्षकी बातें सुनकर राजा साहबने निर्णय किया कि वे चेयरमैन नहीं बनेंगे और न राजकुमार साहबको बनने देंगे। डिपुटी-कमिश्नर हरदोईने राजा साहबसे इस विषयमें मिलना भी चाहा ; पर राजा साहब टससे मस न

राजाबहादुर श्री रुक्मांगद सिंह

हुए। मिलनेसे इनकार कर दिया और फ़ौरन ही खद्दीपुर—रियासतके हेडक्वाटरको चल दिये।

यह बात न थी कि उनमें दोष न थे ; और ऐसा कौन है, जो दोष-रहित हो ? राजा साहबमें सत, रज और तमका पूरा प्राबल्य था, और जब जिस गुणका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राधान्य होता था, तब उनकी धुन निराली होती। तमोगुणके रूपसे लोग घबराते थे। उनकी मारसे लोगोंके छक्के छूटते थे। जब कभी किसी ख़िदमतगारपर बिगड़ते, तो सावधान कर देते, और जब कभी उसपर मार पड़ती, तब रुईकी-सी धुनाई होती। दूर-दूर तक उनकी गर्जन सुनाई पड़ती। दीवारें तक उनके डरसे काँपतीं। पाठक कहेंगे कि फिर तो राजा बड़ा ही ज़ालिम था; पर तनिक इसके दूसरे रूपको देखिये—इकतरफ़ा डिग्री करना ठीक नहीं। हर कोई न पिटता था। मर्दुमशनाश वे अव्वल नम्बरके थे। पीटते थे बस नर-पशुओंको, और पीटनेमें एक बार तो उन्होंने अपने अत्यन्त निकट-सम्बन्धीको, जो रियासतमें कर्मचारी हैं, नहीं छोड़ा। साथ ही जब कोई ज़्यादा पिट जाता, तब उनके ही चौकेसे उसके लिए हलुआ और पूरी बँध जाती, कभी-कभी तो पिटनेवालेकी तरक्की भी की जाती थी। कुछ लोग तो पसन्द करते थे कि उनकी धुनाई हो!

इसके अतिरिक्त उन्होंने रियासतके किसी भी आदमीको जेल नहीं भिजवाया, चाहे उसने कितना ही कुसूर किया। दो-दो हज़ार और चार-चार हज़ारकी चोरियाँ लोगोंने कीं; पर किसीका भी चालान नहीं कराया। बेधर्म, बेईमान कह दिया, गालियाँ सुना दीं और बहुत हुआ तो ठुकवा दिया। दो-चार बार लोगोंने—समझदार लोगोंने—उनसे पूछा भी कि आप लोगोंको सज़ा क्यों नहीं करा देते? बोले—"सज़ा करानेसे चोरको तो कोई सज़ा नहीं मिलेगी। उसके बिना उसके बाल-बच्चे भूखे मरेंगे। उन्होंने क्या बिगाड़ा है? उन्हें सज़ा क्यों दी जाय? जिसने हमारा नुक़सान किया है, उसे हम ठोंक-पीटकर ठीक कर लेंगे।" सज़ाके विषयमें उनका ख़याल नैतिक अधिक था, क़ानूनी कम।

उनका एक दोष यह भी था कि उनमें विलासिता थी; पर उस विलासितामें उन्होंने रियासतको बर्बाद नहीं किया। इसके मानी यह नहीं कि हम उनके उस रूपको युक्तियुक्त कहते हैं; पर उसकी भी सीमा थी। बड़ी ज़बरदस्त बात उनमें यह थी—बड़प्पनका एक चिह्न यह था—कि उन्होंने अपने प्रत्येक शौक़को क़ाबूमें रखा। किसी शौक़के अधीन वे नहीं रहे और रियासतकी प्रतिष्ठा और अपने मानकी उत्तरोत्तर वृद्धि की।

× × ×

रियासत-भरके बड़ेसे लगाकर छोटे नौकर तकको वे अपना घरका आदमी ही समझते। उनके सुख-दुःखमें शामिल होते। साधारणसे साधारण नौकरके यहाँ विवाह-शादीमें हाथी और अन्य सामानको भेजते और राजकुमार साहब तकको विवाह-शादीमें शामिल कराते और ख़ुद भी शामिल होते।

पुराने ढंगके रईस थे। करुणाकी बातें सुनकर उनकी आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग जाती। दिलके साफ़ थे। क्रोधका तूफ़ान-सा आता और शान्त हो जाता। किसीसे द्वेष न करते। यदि कोई उन्हें दुबारा किसीके कुसूरकी याद दिलाता, तो वे बिगड़ पड़ते। रियासतमें भिन्न रुचि और भिन्न प्रकारके लोगोंका एक ऐसा जमघटा रहता कि कहीं और देखनेमें नहीं आता। गप्पें लड़ा रहे हैं, तो चपरकनाती लोगोंकी बन आती। वह बढ़-बढ़के बातें होतीं कि आकाश-पातालके कुलाबे मिलाये जाते; पर जहाँ रियासतका कोई काम आया और किसी व्यक्ति-विशेषकी आवश्यकता हुई, तो फिर और लोगोंकी न चलती थी। जब कबूतरबाज़ी होती, तब जदुआ कबूतरबाज़की ख़ूब क़द्र होती। उस समय रायबहादुर ठाकुर मशाल सिंहजी कोई चीज़ न थे। जब रियासतकी नीति, किसी समस्याकी अड़चन आ पड़ती, तब ठाकुर मशाल सिंहजी ही सब-कुछ थे। प्रत्येक आदमी अपने विभागमें अपना मान पाता था।

धाक उनकी इतनी थी कि विरले ही उनका विरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठियारी राज्यके पहलवान

कर पाते। स्वर्गीय रायबहादुर ठाकुर मशाल सिंहको वे बहुत मानते थे। साफ़गोई ठाकुर साहबकी प्रसिद्ध थी। सेवाएँ भी रियासतके लिए उनकी अनेक और महत्त्वपूर्ण थीं। राजा-महाराजाओंको अपने अधीनस्थ अधिकारियोंका मत-विरोध पसन्द नहीं आता। राजाके मतमें मत मिलाइये या टिकट कटाइये; पर राजा रुक्मांगद सिंह इस बातके अपवाद-स्वरूप थे। कितने ही क्रुद्ध हों, उन्हें कोई ठीक बात समझाये, बस क्रोध शान्त हो जाता था। इन पंक्तियोंके लेखकसे कई बार कई बातोंपर तीव्र विरोध हो गया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और प्रान्तीय एसेम्बलीके लिए खड़े होनेके लिए कहा गया, तब उनके पास उत्तर भेज दिया—"मैं अपना राजनैतिक जीवन रियासतके बूतेपर नहीं बनाना चाहता।" उत्तर सुनकर झल्ला गये। दौड़े हुए दो मुसाहिब आये और कहने लगे—"महाराज पूछते हैं कि हम शर्माजीको एसेम्बलीके लिए खड़ा करेंगे, तो भी वे राज़ी न होंगे।" दृढ़तापूर्वक मैंने कहा—"हर्गिज़ नहीं, और न मैं रियासतके किसी उम्मेदवारके लिए कुछ करूँगा। मजबूर किया जायगा, तो अपना रास्ता नापूँगा।" उत्तर सुनकर कहा—"भई, अंगरेज़ी पढ़े लोगोंकी बात अजब होती है। अच्छा, तो कह दो कि कहींसे स्वतन्त्र रूपसे खड़े हो जायँ।" बात यह थी कि वे अपने आदमीकी प्रतिष्ठा और मानमें अपनी प्रतिष्ठा समझते थे।

बिना बुलाये या बिना कामके इन पंक्तियोंका लेखक एक बार भी उनके पास न गया। यों दैनिक अभिवादनके लिए एकाध मिनटका जाना कोई जाना न था; पर जब कभी घंटे आध घंटेका मौक़ा लगा उनके पास बैठनेका, तब उनके अनेक विषयोंके ज्ञानपर आश्चर्य होता था। कबूतर, तीतर, मुर्ग़, घोड़े, बैल, हाथी और देहात-सम्बन्धी बातोंके पूरे ज्ञाता थे। सैकड़ों कोसके कबूतरबाज़ और तीतरबाज़ उनके पास आते। ढाई-ढाई सौ रुपयेका कबूतर सुनकर एक दिन मैंने कहा—"आख़िर कबूतरोंके रखनेकी कलामें क्या ख़ास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात है ? एक दिन कुछ घंटे देनेकी कृपा कीजिए।" बातें करके बड़ा आश्चर्य हुआ।*

× × ×

संस्थाओं और अमीरोंकी जड़ें— उनका टिकाऊपन— त्याग, लोक-सेवा और विद्याकी रक्षामें है, न कि बैंकोंमें रखे रुपयोंमें। संस्थाएँ और अमीरी प्रगतिशील होनी चाहिये। वे लोक-सेवा और कलाकी रक्षाकी ट्रस्टी हैं और जब उनसे देश-हित नहीं होता, तब वे रुके पानीकी भाँति सड़कर निकम्मी हो जाती हैं। बड़प्पनकी कसौटी केवल रुपया नहीं है। रुपया तो सदा-सुहागिनियोंके पास भी होता है; उनमें सौन्दर्य भी होता है; पर पूजा और मान होता है सतीका। वर्तमान अमीरों और राजा-महाराजाओंके ख़ात्मेका एक कारण होगा उनका उपयोगी न रहना—उनके द्वारा कला, विद्या और विद्वत्ताकी रक्षा न होना।

भारतवर्षमें आज ऐसा कोई नहीं, जो भारतकी मल्ल-विद्याका इतना रक्षक और पोषक हो, जितना कि स्वर्गीय राजा बहादुर। भारतवर्षके किसी भी अखाड़ेमें चले जाइये, या किसी पहलवानसे खद्दीपुर कटियारीके राजा साहबका नाम पूछिये। हिन्दू हो या मुसलमान, पंजाबी हो या बिहारी, पहलवानी जगतका आदमी राजा साहबको इस विद्याका आचार्य और मुरब्बी मानता था। और खद्दीपुरके वार्षिक दंगल! कुछ न पूछिये। जिसने खद्दीपुरका दंगल एक बार देख लिया, उसे और कहींका दंगल पसन्द न आता था। गंगाजल पान करके ताल-तलैयोंका पानी किसे अच्छा लगेगा? साठ रुपये रोज़ाना पहलवानोंकी ख़ुराकमें लगातार अट्ठाईस वर्ष तक—मरते दम तक—किसने ख़र्च किया है? वार्षिक दंगलमें इस रक़मके अतिरिक्त दस हज़ार प्रतिवर्ष कौन ख़र्च करता है और प्रतिदिन चार घंटे अखाड़ेपर बैठकर कौन-सा रईस पहलवानी सिखाता है? भारतवर्ष-भरके पहलवान राजा साहबको अपना सिरताज समझते थे। खद्दीपुरमें जो आदर पहलवानोंका होता था, वह कहाँ सम्भव है? 'कबूतर' पर लेख पढ़कर राजा साहबने मुझसे कहलवाया कि मल्ल-विद्यापर मैं पुस्तक क्यों न लिखूँ? हिन्दी-साहित्यके नाते तबीयत तो करती थी कि पुस्तक लिखी जाय, और मेरी क़लमसे वह लिखी गई, तो मुझसे कुछ साहित्य-सेवा बन पड़ेगी। अनूठी पुस्तक रहेगी। भारतीय मल्ल-विद्यापर हिन्दी तो क्या, किसी और भाषामें भी कोई पुस्तक नहीं। मैंने कहला भेजा—"पुस्तकमें काफ़ी ख़र्च पड़ेगा। तीन-चार सौ चित्र रहेंगे; पर राजा साहबको अमर करनेके लिए वह पुस्तक काफ़ी होगी।" पर बादमें यह ख़याल करके कि कहीं राजा साहब या रियासतके दलबन्दीके अन्य लोग यह न समझें कि मैंने भी खुशामंद और स्वार्थका एक ढंग निकाल लिया, मैं पुस्तकके श्रीगणेशसे बचता ही रहा।

पर आज स्वर्गीय राजा साहबकी आत्मासे मैं क्षमाप्रार्थी हूँ—बहुत लज्जित हूँ कि मैं उनकी इच्छाको दो वर्ष तक टालता आया और उनके इन शब्दोंको यादकर "अच्छा हो, लिख लें, फिर कोई बतानेवाला न मिलेगा। दस हज़ार पुस्तकपर ख़र्च कर देंगे।" अपने ऊपर शर्म आती है। दिलमें एक हूक उठती है। अपनी अकड़—मूर्खतापूर्ण अकड़—छोड़ दी होती, तो राजा साहबके निधनसे एक वर्ष पूर्व पुस्तक छप गई होती। और जब पुस्तक लिखनेका मैंने संकल्प किया—इन्टरव्यू लेकर एक लेख 'विशाल भारत' में लिखा, तब अन्तरिक्षमें बैठा विधाता हँस रहा था और राजा साहबकी जीवन-पोथीके अन्तिम पन्ने पलट रहा था। फोटोग्राफरका प्रबन्ध हो चुका था। दो फोटो ले भी लिये गये थे। गामा और इमाम बख़्श भी आनेवाले थे, यद्यपि कुश्तीके मामलेमें राजा साहब गामासे भी अधिक ज्ञान रखते थे; पर काम न होना था।

× × ×

मल्ल-विद्याके उनके प्रेमका अनुमान लगाइये। लखनऊकी नुमाइशमें नुमाइशकी ओरसे दंगलका

* 'विशाल भारत' में 'कबूतर' शीर्षक एक लेख उसी इन्टरव्यूके बाद लिखा गया था। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयोजन था प्रति रविवारको। इतने दिनों तक पहलवानोंका टिकना मुश्किल होता है। पड़े-पड़े ठलुआ विरला पहलवान ही गाँठसे खा सकता है। पहलवानोंको पता ही था कि कटियारीके पहलवान ज़रूर आयँगे। बस, राजा साहबके पहुँचते ही बाहरके पहलवान रियासतकी कोठीपर टूटने लगे और कोठी ठसाठस भर गई। १५० पहलवान बाहरके आ गये और सबकी खुराक बँध गई और उनको ज़ोर भी रोज़ कराने लगे। किसीने कहा—"महाराज, दंगल कोई करायेगा और ख़र्च आप कर रहे हैं?" बोले—"अब हम बदनामी नहीं लेते। ज़िन्दगीका क्या ठिकाना? हम अख़ीर तक अपनी बात निभायेंगे।" और उसके डेढ़ मास बाद वे चल बसे!

जुकाम और बुख़ारसे पीड़ित थे; पर जमकर बैठकर पहलवानोंको ज़ोर ज़रूर कराया। १०२° से कम बुख़ारको वे बुख़ार ही नहीं मानते थे और न चारपाईपर लेटते थे। हाय या कमज़ोरी दिखाना तो जानते ही न थे। एक बार कारबंकलका चीरा लगा। पीठपर बारह इंच लम्बा चीरा लगा और गहरा इतना कि पीठसे फेफड़ेकी झाँई मारती थी। बाल्टी-भर खून और पीव निकला; पर चीरा क्लोरोफार्म लेकर नहीं कराया। हुक्का भराकर बैठ गये। डाक्टरका खपाखप चाकू चलता था और उधर हुक्कासे कश गुड़गुड़ खिंचते थे। कई देखनेवाले बेहोश हो गये और राजा साहब कहते—"हुइहै। चार-पाँच सेर खून निकल जैहै तो का भयो।" अपनी कड़ाई और बहादुरीके कारण अपने रोगकी उन्होंने परवा न की। पहलवानोंको ज़ोर कराते ही रहे। अन्तमें हालत अधिक ख़राब हो गई। शरीर सूज गया। मसाना ख़राब हो गया; पर आह न निकली।

गामाको मालूम हुआ कि राजा साहब बीमार हैं। भागा हुआ आया। दोनोंके सजल नयन हो गये। गामाने दुआ की राजा साहबकी आयुके लिए। पर उन्हें कुछ आभास हो गया था। गामासे बोले—"अब हमारा भोग नहीं रहा। बहुत दिनोंसे इमाम बख़्शको नहीं देखा।" दो सौ रुपया विदाईके मिले गामाको।

इमाम बख़्श भी भागा आया और करुणाकी नदी फूट पड़ी। इमाम बख़्शने विह्वल होकर कहा—"परवरदिगार राजा साहबको सेहत बख़्शे।" पर परवरदिगारने फ़ैसला दीगर ही दिया। इमाम बख़्श भी दो सौ रुपये विदाईके लेकर रोता चला गया।

मरनेसे आठ घंटे पूर्व जर्मन पहलवान क्रेमर मिलने आया। आँखोंमें प्रेमाश्रु भरकर कहने लगे—"साहब, अब हमारे अख़ीर वक़्तमें मिलने आये हो?" ज़ुबान लुकनन करने लगी थी; पर फिर भी पहलवानीपर बातें कीं और क्रेमरसे कहा कि हिन्दुस्तानी कुश्ती सीखो। हिन्दुस्तानी कुश्ती सीखनेके लिए क्रेमर खड़ीपुर आनेको तैयार था। पर राजा साहबकी आत्मा शरीरमें रहनेको तैयार न थी। राजा साहबकी धज अख़ीर तक वैसी ही रही। ज़बान टूटने लगी। हाथ-पैर ठंडे होने लगे। राजकुमार और रानियाँ पूछते थे कि तबीयत कैसी है? उत्तर मिलता—"अच्छी है।" अन्तिम साँसें चलने लगीं। पहलवान घेरे खड़े थे। पहलवानोंको उस समय भी न भूले। कहा—"जाओ, सोओ। काहेको तकलीफ़ करते हो?" लोगोंके दिल पिघलकर आँखोंसे निकल रहे थे। ज़मीनपर ले लिये गये। पूछनेपर कहा—"तबीयत अच्छी है।" और रातके १२ बजकर १० मिनटपर उनकी तबीयत हमेशाके लिए अच्छी हो गई!

× × ×

मरनेसे पूर्व राजकुमार—अब राजा साहब—उदयप्रताप सिंहजीसे कहा—"अपने आदमियोंका ख़याल करना। सदाचारी रहना। एक बातका अफ़सोस है कि हमारे काश्तकार दुखी रहे।" ख़िदमतगारोंसे कहा—"तुम्हारा ऐहसान हम नहीं भूल सकते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही काश्तकारोंकी बात, सो उनके लिए उन्होंने भरसक किया—बेगार नहीं ली, सताया नहीं। सताया तो बीचके आदमियोंने। दुःख दिया तो धूर्त, स्वार्थी और अन्य लोगोंने, इसी कारण उन्हें दुःख था।

× × ×

राजा साहबकी बीमारीके दिनोंमें इन पंक्तियोंका लेखक भी टायफाइडसे घरपर बीमार था। अपनी बीमारीके दिनोंमें अनेकों बार याद किया और कहा—"हमारी तरह दुखिया वह भी पड़े होंगे।" यही नहीं, देखनेके लिए गाँव आदमी भेजा।

कहाँ हैं ऐसे स्नेही और गुणग्राहक राजा! उनके कबूतर गुटरगूँ-गुटरगूँ करते हैं; शायद वे भी उनके निधनको महसूस करते हैं। संगीत-विद्या भी उनके निधनपर सिर धुन रही है। आज उनकी रानियाँ ही विधवा नहीं हो गई हैं, पहलवानोंकी दुनिया भी वैधव्यको प्राप्त हो गई। राजा साहबके निधनसे पुरानी रईसीका एक नमूना ही मिट गया।

प्रात-प्रदीप

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प्राचीकी पलकोंमें जागा सुन्दर स्वर्ण-विहान;
गूँज उठे नीड़ोंके नभमें मीठे मादक गान!
तम भागा, आभा इठलाई,
वनकी कली-कली मुसकाई,
प्रकृति-परीने ली अँगड़ाई,
तुहिन-कणोंने फूलोंके मुख कर डाले अम्लान;
प्राचीकी पलकोंमें जागा सुन्दर स्वर्ण-विहान!

मदिरालयमें चहल-पहल जागी, जागे मैख्वार,
ओठोंपर है जाम-जाम, आँखोंमें अन्ध खुमार;
खाली भरे, भरे रीते हैं,
जीनेवाले तो पीते हैं,
भर-भर पीते हैं, जीते हैं,
ढाल-ढाल मदिरा-मायाकी सब करते हैं पान;
प्राचीकी पलकोंमें जागा सुन्दर स्वर्ण-विहान!

उठो-उठो कहकर धीरेसे, सोई पलकें चूम,
मत्त समीरण एक नशेमें नाच रहा है झूम;
उठी, उठी वह निंदियामाती,
बल खाती, लट-लट छिटकाती,
वह पग-पगपर प्रलय जगाती,
बिछनेको चरणोंमें आकुल हैं धरतीके प्राण;
प्राचीके पलकोंमें जागा सुन्दर स्वर्ण-विहान!

कोयल कूक उठी आमोंपर, नाच रहे हैं मोर,
वनकी मधुशालाओंको अलि चले मचाते शोर;
पात-पातका सिहर उठा तन,
डाल-डालपर आया यौवन,
उत्फुल्लित हैं वन-वन, उपवन,
मूक मुखर, स्थिर अस्थिर, आये निष्प्राणोंमें प्राण;
प्राचीकी पलकोंमें जागा सुन्दर स्वर्ण-विहान!

किन्तु विजनमें भग्न क़ब्रपर धुँधला प्रात-प्रदीप,
सारी रात बहाकर दिलको अब है मरण समीप;
मत्त पवनका कोई झोंका
सब सौदा चुकता कर देगा,
जिसके स्नेहहीन जीवनका
इस विहानमें देख रहा है अब अपना अवसान;
प्राचीकी पलकोंमें जागा सुन्दर स्वर्ण-विहान!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

यहीं

राजा ?
वे भी
ग्रा भी
उनकी
वानोंकी
साहबके
।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदरासमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें महात्मा गांधीका भाषण

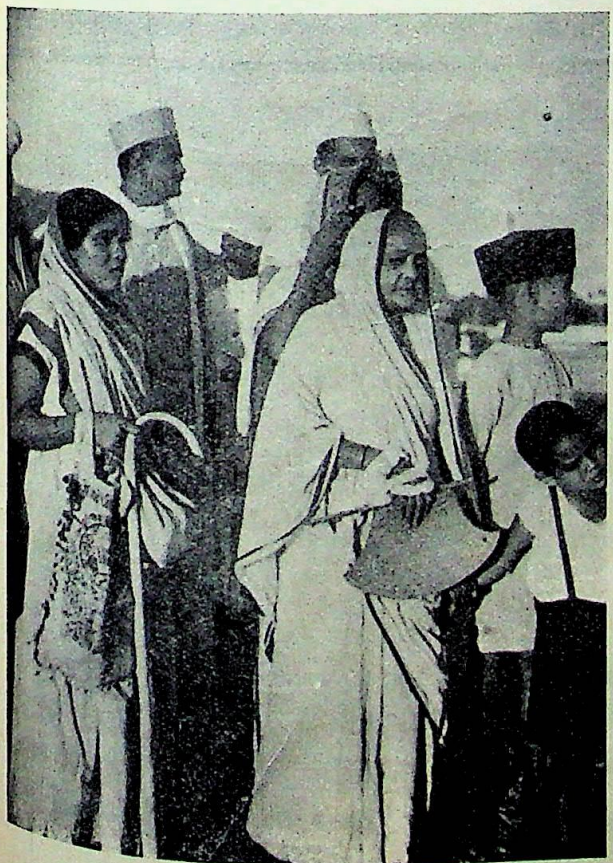

साहित्य-सम्मेलनमें श्रीमती कस्तूरबाई गांधीका आगमन

महात्माजी साहित्य-सम्मेलनमें जा रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण-अफ्रिका (रोडेसिया) का प्रसिद्ध विक्टोरिया जल-प्रपात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[illegible] । अमेरिकाके पैसिफिकको और ओकलैण्ड शहरोंको यह पुल मिलाता है । यह ढोतला और साढ़े चार मील लम्बा है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफीमकी पिनक

श्री रघुकुल तिलक

गाड़ी ठसाठस भरी थी। कुम्भका अवसर था, रातका समय और तूफ़ान मेलका तीसरे दर्जेका डिब्बा। मेरा खिड़कीके पास पहुँचना था कि दस-बारह यात्री एकदम चिल्ला पड़े—"आगे-आगे, यहाँ बिलकुल जगह नहीं है, आगे जाओ।"

मैंने बड़े नम्र स्वरमें कहा—"भाई साहब, सब डिब्बोंमें यही हाल है, गाड़ीके डिब्बेसे लेकर इंजन तक देख आया हूँ। ज़रा खड़े होनेको ही जगह दे दीजिए, बड़ी कृपा होगी।"

इसपर उत्तर मिला—"देखते नहीं हो, यहाँ तिल धरनेको तो जगह है नहीं। इतने आदमी तो पहले ही से खड़े हैं। प्रयाग जानेवाली एक यही गाड़ी तो है नहीं, किसी दूसरी गाड़ीसे आ जाना।"

पर साथ ही एक वृद्ध-से सज्जनने नाकमें बोलते हुए कहा—"अरे भाई, आ जाने दो न। थोड़ी ही देरका तो और मामला है। मेले-हुजूममें तो ऐसा हुआ ही करता है।"

इससे मेरा भी कुछ साहस बढ़ा। मैंने हैण्डिल घुमाकर दरवाज़ेको धक्का दिया। उधर गार्डने सीटी दे दी। इसपर एक स्थूलकाय व्यक्ति, जो दरवाज़ेपर अधिकार जमाये खड़े थे, उन वृद्ध सज्जनकी ओर बड़े क्रोधसे देखते और मुँहसे कुछ बड़बड़ाते हुए पीछे हट गये और दरवाज़ा खुल गया। मैंने अन्दर प्रवेश किया और दरवाज़ा बन्द करके ऊपरकी खिड़कीमें से अपना बिस्तर और झोला कुलीसे ले लिया। गाड़ी चल पड़ी।

मैंने अपना झोला तो छतमें लगे हुए हुकमें लटका दिया और बिस्तर वहीं दरवाज़ेसे लगाकर सीधा खड़ा कर दिया। सब लोग अपनी-अपनी जगह जाकर बैठ गये। केवल मैं ही अपने बिस्तरके पास खड़ा रह गया। मैंने ऊपर-नीचे, दायें-बायें चारों ओर देखना शुरू किया, बैठनेका कहीं ठिकाना दिखाई न पड़ा। यद्यपि वह स्थूलकाय सज्जन सामनेकी ओर लगभग आधी बेंचपर लेटे हुए थे; पर उनकी ओर बढ़नेकी मुझे हिम्मत न हुई। दरवाज़ेसे लगी हुई दाहनी ओर जो बेंच थी, उसके दूसरे कोनेपर, जो पाखानेके निकट था, प्रौढ़ अवस्था और भारी शरीरकी एक महिला नाना प्रकारके आभूषण धारण किये और नाकमें बड़ी-सी नथ पहने विराजमान थीं। उन्हींके निकट आठ-दस महीनेकी एक लड़की सोई हुई थी, जो शायद उन्हींकी सन्तान थी। लड़कीसे और मेरी ओर बढ़कर १०-१२ वर्षका एक शरारती-सा लड़का खिड़कीके शीशेको खोलकर बाहर देखनेकी कोशिश कर रहा था, और वह महिला उसे बार-बार बलपूर्वक पीछेको खींच लेती थीं और साथ ही बड़े कर्कश स्वरमें डाटती भी जाती थीं। यह भी शायद उन्हींका चिरंजीव था। इस लड़केके पास एक गठरी रखी हुई थी। इस गठरीसे इधरकी ओर, मुझसे निकट ही, चश्मा पहने एक नवयुवक बैठे थे, जो किसी कालेजके विद्यार्थी मालूम होते थे।

इसके सामनेवाली बेंचपर उन महिलाके ठीक सम्मुख वही नाकमें बोलनेवाले वृद्ध थे, जिनकी कृपासे मैं डिब्बेमें घुस पाया था। वे दीवारके सहारे रखे हुए तकियेसे कमर लगाये ऊँघ रहे थे। उनकी अवस्था पचास और साठके बीच मालूम होती थी। चेहरेपर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं और बड़े ही दुर्बल, दुःखी और रोग-पीड़ित-से दिखाई पड़ रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ कि वे इतनी जल्दी कैसे ऊँघने लगे और साथ ही सन्देह भी हुआ कि शायद इस भयसे कि कहीं मैं बैठनेके लिए स्थान दिलानेमें भी उनसे सहायता न माँग बैठूँ, उन्होंने जान-बूझकर आँखें मूँद ली हैं। यह सन्देह इस कारण और भी पुष्ट हो गया कि वास्तवमें मेरा ऐसा विचार था भी। जो हो, फिलहाल इस ओरसे कोई आशा न थी, और मैंने अपना निरीक्षण पूर्ववत् जारी रखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन वृद्ध सज्जनके पास ही उनकी टाँगोंको पूरे तौरपर फैलनेसे रोकते हुए एक और सज्जन लगभग उन्हींकी अवस्थाके बैठे हुए थे। वे अपनी दाढ़ी, मूँछ और पाजामेकी काटसे मुसलमान मालूम होते थे। वे भी मेरे देखते-ही-देखते अपने पीछेके तख्तेपर कोहनी और कोहनीपर सिर रखकर ऊँघने लगे। उनके इस ओर एक नवयुवक खाकी निकर-कमीज़ पहने और हरा साफ़ा बाँधे बैठे थे। युवककी दाहनी ओर एक झोला और उससे लगी हुई एक लाठी रखी थी। मालूम होता था कि वे सेवा-समितिके स्वयंसेवकोंमें काम करने जा रहे हैं। इनके बाद एक और सज्जन थे, जो गांधी-टोपी और खद्दरका कुर्ता पहने थे और एक मोटी-सी ऊनी चादर ओढ़े हुए थे। वे शायद कांग्रेसवादी रहे होंगे। उन्होंने कई बार सहानुभूतिसे मेरी ओर देखा, मानो कहना चाहते हों—"आइये, बैठ जाइये," पर कहीं स्थान न देखकर दूसरी ओर देखने लगते थे।

मेरा निरीक्षण यहीं तक चल पाया था कि उन वृद्ध सज्जनने खाँसना शुरू किया और मेरा ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया। खाँसीका वेग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। यहाँ तक कि उन्हें साँस लेनेमें कठिनाई मालूम होने लगी। वे पाखानेका हैण्डिल पकड़े आगेकी ओर झुके हुए थे और वहीं थूकते जाते थे। उनके ठीक सामने वही महिला अपनी अर्द्धजाग्रत कन्याको अपने दोनों पाँवोंपर बिठाये मुँहसे सीटी-सी बजा रही थीं और सम्मुखस्थ सज्जनकी थूका-थाकीको बड़ी आलोचनात्मक दृष्टिसे देखती जाती थीं।

आखिर खाँसी थमी और उन वृद्ध सज्जनने फिर बिस्तरका सहारा लिया। इस बार उनकी आँखें खुली हुई थीं। मैं उनकी ओर देख ही रहा था। उन्होंने भी मेरी ओर देखा और यद्यपि श्वास अभी अपनी स्वाभाविक गतिपर नहीं लौटा था, वह तुरन्त बोले—"अरे, आप अभी तक खड़े हैं! जान पड़ता है, सफर करनेका अधिक अनुभव नहीं है। आइये, यहाँ आकर बैठिये। बहनजी, ज़रा इस गठरीको नीचे रख दीजिए; ये बेचारे भी ज़रा सुस्ता लें।"

महिलाने कड़ककर उत्तर दिया—"नीचे कैसे रख दूँ? इसमें बच्चोंके लिए खाना बँधा है। और यहाँ मुन्नी भी तो सो रही है। यहाँ जगह कहाँ है! बड़ी सुघड़ भलाई लेने चले हैं!"

मैंने कहा—"जाने भी दीजिए। मैं यहीं ठीक हूँ।"

परन्तु वे ज़रा भी हतोत्साह नहीं हुए। बड़ी नम्रतासे बोले—"राम-राम, कैसी बात कहती हो! कुम्भके स्नानको जा रही हो। दया-धर्मका कुछ तो ध्यान रखो। तुम्हारे बेटा-बेटी जीते रहें, हम-सब आशीर्वाद देंगे, तो भगवानकी और भी कृपा होगी। लो, इस गठरीको मेरे टूंकपर रख दो।"

अब देवीजी ज़रा पसीजीं। कुछ बड़बड़ाती हुई उठीं और उस गठरीको धमसे टूंकपर रख दिया। परन्तु जब तक बीचकी अड़चनोंको पार करके मैं वहाँ तक पहुँचूँ, चिरंजीव पाँव फैलाकर गठरीकी जगह लेट चुके थे। मैं हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया। इन महाशयने व्यर्थ ही यह झगड़ा उठाया। इससे तो मैं खड़ा ही अच्छा था; परन्तु जान पड़ता है, देवीजीको आशीर्वादकी बात लग गई थी। उन्होंने तड़से एक थप्पड़ उस लड़केके सिरमें जमाया—"नास पीटे, उठता नहीं है। यहाँ कोई नहीं सोने देगा। तेरे बाबूजी साथ होते, तो क्यों इतनी विपत सहनी पड़ती! पर उन्हें अपने काम-काजके सामने और किसी बातका ध्यान थोड़े ही है।" साथ ही उन्होंने उसे बलपूर्वक खींचकर बिठा दिया।

थप्पड़ बहुत ज़ोरोंसे नहीं लगा था, तो भी वह लड़का इस ज़ोरसे चीख़कर रोया कि डिब्बेमें जितने यात्री ऊँघ रहे थे, सभी चौंक पड़े। मैं अभी तक खड़ा था और सब मेरी ही ओर देख रहे थे, मानो मैंने ही उसे पीटा हो। संकटके समय बुद्धि तीव्र हो जाती है। मैंने लपककर अपना झोला उतारा और उसमें से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सन्तरे और कुछ मेवा निकालकर उस लड़केके सामने रख दिये। स्वयं भी उसे पुचकारता हुआ उसके निकट बैठ गया।

रोना एकदम बन्द, मानो किसीने घड़ीकी निद्रा-भंजनी घंटी बन्द कर दी हो! फिर उसने प्रश्नसूचक दृष्टिसे माँकी ओर देखा और उस ओरसे विशेष आपत्ति न होनेपर तुरन्त खाना शुरू कर दिया।

"आप भी प्रयाग ही जायँगे?"—वृद्ध सज्जनने पूछा।

"जी हाँ, मुझे भी वहीं जाना है।"—मैंने उत्तर दिया।

वृद्ध सज्जन बोले—"मैं पहले ही समझ गया था। पर भई, सफ़रमें बहुत संकोच करनेसे काम नहीं चलता। लम्बा सफ़र हो, तो सोनेका इन्तज़ाम कर ले, वरना बड़ी तकलीफ़ होती है। मैं तो बहुत दूर-दूर घूमा हूँ। इसीसे थोड़ा-बहुत अनुभव हो गया है। कैसी ही भीड़ हो, हम तो अपने लिए जगह निकाल ही लेते हैं। और एक बात और बताता हूँ।" (अब उनकी आकृति गम्भीर और आवाज़ कुछ धीमी हो गई थी) "अगर सफ़रमें तन्दुरुस्ती ठीक रखना चाहो, तो थोड़ी अफ़ीमका सेवन किया करो। कैसा ही ख़राब पानी हो, मज़ाल क्या, जो असर कर जाय। अधिक नहीं, बस एक बाजरेके बराबर, केवल औषधिके रूपमें।"

मैंने बीच ही में बात काटकर कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं? जान पड़ता है, आप स्वयं इस बुरी आदतमें फँस गये हैं। मुझे तो विश्वास है कि इसी कारण आपकी तन्दुरुस्ती ऐसी ख़राब हो गई है कि आप बिलकुल रोगी-से दिखाई पड़ते हैं। आपकी उम्र तो अधिक मालूम नहीं होती।"

वृद्ध सज्जन क़हक़हा मारकर हँस पड़े—"मैं जानता था, तुम यही समझोगे। मेरे कई मित्र भी इसी भ्रममें पड़े हुए हैं; पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यह बात नहीं है। मैं तो अफ़ीम ही के सहारे ज़िन्दा हूँ। नहीं तो अब तक कभीका परलोक सिधार गया होता। अबसे पन्द्रह वर्ष पहलेकी बात है। मैं नेपाल गया हुआ था। और भी एक मित्र साथ थे। हम लोग यात्रा समाप्त करके लौट ही रहे थे कि रास्तेमें मुझे इस ज़ोरकी पेचिश हुई कि प्राण बचनेकी ज़रा भी आशा नहीं रही। उसी समय एक दंडी संन्यासी वहाँ आ निकले। बस, उन्हींकी कृपासे जान बची। उन्होंने ज़रा-सी अपने झोलेमें से निकाली और पानीमें घोलकर मुझे पिलाई। इसका पीना था कि पेचिश गायब! उसके बादसे हज़ारों मीलकी यात्रा की, तरह-तरहके पानी पिये और सभी प्रकारकी बदपरहेजी कर ली; पर पेचिश आज तक नहीं हुई। कारण यही है कि बिला नाग़ा तीन बार सेवन करता हूँ। सफ़रमें ज़रा मात्रा बढ़ा देनी पड़ती है। अब तुम्हीं बताओ कि मैं अपने अनुभवकी बात मानूँ या मित्रोंकी बकवासपर ध्यान दूँ?"

मैं चुप रहा। समझ गया, कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। वह स्वयं ही फिर बोले—"अभी तुमने देखा, कैसे ज़ोरसे खाँसी उठी थी। इसमें खाँसीका दोष नहीं, मेरा ही दोष है। डिबिया बक्समें बन्द थी। शामकी मात्राका समय हुआ, तो मैं ही आलस्य कर गया; सोचा, भीड़-भाड़में कौन झंझट करे। पर अब देखता हूँ, काम नहीं चलेगा। ज़रा मेरे ट्रंकपर से यह गठरी तो उठाओ।"

मैंने बिना कुछ कहे, वह गठरी उठाकर अपने स्थानपर रख दी और स्वयं खड़ा हो गया। गठरीकी मालिकिनने मेरी और उन वृद्ध सज्जनकी ओर बहुत ही कड़ी दृष्टिसे देखा; पर कुछ बोलीं नहीं। वृद्ध सज्जनने अपने कुर्तेके नीचेसे खींचकर अपना जनेऊ निकाला और उसमें बँधी हुई चाबीसे ट्रंक खोला। उसमें भरी हुई चीज़ोंको इधर-उधर करनेके बाद आख़िर उन्होंने एक छोटी-सी डिबिया और एक चाँदीकी कटोरी निकाली, ट्रंकका ताला बन्द किया और फिर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानपर जा बैठे। मैं भी गठरीको यथास्थान रखकर अपनी जगह बैठ गया।

उधर मेरे मित्र अफ़ीम घोलने लगे। उनका यह कार्य बड़े मनोयोगसे चल रहा था। अधखुली आँखोंसे कटोरीकी ओर देखते जाते थे और होठोंपर हल्की-सी मुसकराहट थी, मानो भावी सरूरकी कल्पनाने ही आधे सरूरका काम कर दिया हो।

इधर वह लड़का सन्तरे और मेवा ख़त्म कर चुका था और मेरे झोलेकी ओर देख रहा था। मैंने पूछा—"और खाओगे?"

उसने मुँहसे तो मना ही किया; पर मैं उसका असली मतलब समझ गया। मैंने एक सन्तरा और कुछ मेवा और निकालकर उसके सामने रख दिया।

अब मेरे मित्र अफ़ीम घोल चुके थे। उन्होंने प्याली हाथमें लेकर मेरी ओर देखा—"फिर आज ही श्रीगणेश हो जाय न? थोड़ी-सी लीजिए।"

मैंने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। वह चुस्की ले-लेकर पीने लगे। इसी प्रकार सारी प्याली ख़त्म कर गये और इसके बाद सिगरेट सुलगाकर तकियेके सहारे लेट रहे।

इस समय ११ बज चुके थे। ख़ूब जाड़ा पड़ रहा था। डिब्बेमें सभी यात्री नींदसे पराभूत थे। ऊँघ तो सभी रहे थे; पर कहीं-कहींसे खर्राटोंकी आवाज़ भी आ रही थी—विशेषकर उन स्थूलकाय सज्जनकी नाकका स्वर सबसे ऊपर सुनाई पड़ रहा था। दाहनी ओरसे मेवा चबानेकी आवाज़ कानोंमें आ रही थी। आख़िर मुझे भी नींदने आ दबाया। मेरे पीछेकी खिड़कीका शीशा चढ़ा हुआ था। उसीके सहारे सिर रखकर मैं भी ऊँघने लगा।

"लल्लू, लल्लू, ओ लल्लू! थप, थप, थप! अरे लल्लू!"

मैं शायद उस समय स्वप्न देख रहा था—मानो मैं अपने कमरेमें सोया हुआ हूँ और पिताजी बाहरसे बुला रहे हैं कि उठो सबेरा हो गया; पर मुझसे न बोला जाता है, न उठा जाता है।

"अरे सो गया क्या? ओ लल्लू! ओ दरवाज़ा खोल। ओ लल्लू! थप, थप।"

इस बार मेरी आँख खुल गई। देखा, तो मेरे पासकी जगह खाली है और देवीजी खड़ी हुई पाखानेका दरवरज़ा थपथपा रही हैं।

मैंने पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

"क्या बताऊँ भैया,"—देवीजी रुँआसी-सी आवाज़में बोलीं—"लल्लू घंटे-भरका पेशाब करने गया है। अभी तक नहीं निकला। न-जाने उसे क्या हो गया।"

मैंने कहा—"तो इसमें घबरानेकी क्या बात है! आख़िर है तो इसीमें, अब आ जायगा। शायद उसे टट्टी लग आई होगी।"

लल्लूकी अम्माको कुछ ढाढ़स बँधा और वह अपनी जगह बैठ गईं। वास्तवमें मुझे उनसे ज़रा भी सहानुभूति न थी, बल्कि उल्टा गुस्सा आ रहा था कि ज़रा-सी बातपर शोर मचा डाला। शीघ्र ही मैं फिर सो गया।

"धम धम धम! ओ लल्लू! हाय मेरे लल्लू!"

इस बार मैं तुरन्त ही उठ बैठा। देखा, तो फिर वही दृश्य! पर इस बार लल्लूकी अम्मा बहुत घबराई हुई थीं। और भी कई यात्री जग गये थे; पर मेरे अफ़ीमची मित्र मुँह ढके बेख़बर सो रहे थे।

मैंने पूछा—"क्या लल्लू अभी तक नहीं निकला?"

क्रन्दन तथा क्रोधसे काँपती हुई आवाज़में देवीजीने उत्तर दिया—"निकलता तो आँखोंसे दीखता नहीं? यह सब तुम्हारी ही करतूत है। न-जाने तुमने उसे क्या खिला दिया! मैं अपने बच्चेको ऐसी-वैसी चीज़ कभी नहीं खाने देती।"

स्थिति वास्तवमें चिन्ताजनक थी। उस समय दो बज चुके थे और लल्लूको पाखानेमें बन्द हुए दो घंटेसे अधिक समय हो गया था। इलाहाबाद पहुँचनेमें थोड़ी ही देर बाक़ी थी। शीघ्र ही कुछ उपाय करनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता थी। सौभाग्यवश इसी समय गाड़ी रुकती हुई मालूम हुई। शीशा खोलकर देखा, तो फ़तेहपुरका स्टेशन था। मैं तुरन्त उतरकर गार्डके पास पहुँचा और सारा हाल कह सुनाया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मेरे साथ-ही-साथ डिब्बेमें आ गया।

यहाँ पाख़ानेके पास भीड़ लगी हुई थी। लल्लूकी अम्माँ बैठी सिर पीट रही थीं। उनकी बच्ची बड़े ऊँचे स्वरसे रो रही थी। वही विद्यार्थी, जो मेरी बाईं ओर बैठे हुए थे, हैण्डिलको घुमा-घुमाकर खोलनेकी कोशिश कर रहे थे। गार्डको देखते ही सबोंने रास्ता छोड़ दिया। परन्तु दरवाज़ेको धक्का देने और हैण्डिलको घुमानेके सिवा उसको भी कोई उपाय समझमें नहीं आया। फिर उसने बाहरकी खिड़कीको देखा। वहाँ भी चिटकिनी और शीशा दोनों बन्द थे। उसने कहा—"शीशेको तोड़कर दरवाज़ा खुल सकता है; पर इसमें लड़केको चोट लग जानेका अन्देशा है। अब तो इलाहाबाद पहुँचकर ही कुछ किया जायगा।"

फिर उसने अन्दर जाकर लल्लूकी अम्मासे पूछा—"आपने इतने नासमझ बच्चेको अकेला क्यों जाने दिया? आपको खुद भी उसके साथ अन्दर जाना चाहिए था।"

"लो और सुनो," देवीजीने कहा—"आपको नासमझ ही मालूम होता है। बारह बरसका तो हो चुका।"

"बारह बरसका हो चुका?" गार्डने पूछा—"तब तो आपने उसका पूरा टिकट लिया होगा न?"

अब देवीजी ज़रा सकपकाईं, बोलीं—"बारहवाँ बरस तो अब लगेगा। टिकट तो आधा ही लिया है।"

गार्डने कहा—"अच्छा, इलाहाबाद चलकर देखा जायगा। अब गाड़ी छोड़नेका वक्त हो गया।"

मैंने सोचा, यह टिकटकी बात अच्छी निकल आई, अन्यथा देवीजी गार्डसे मेरे प्रति अपना सन्देह प्रकट किये बिना न रहतीं। वे अब भी कोनेमें बैठी अस्पष्ट भाषामें कुछ कह रही थीं, जिससे यह जानना कठिन था कि उनके मनमें मेरे प्रति क्रोध अधिक है या अपने भाग्यके प्रति असन्तोष।

गाड़ी चल पड़ी। सब लोग अपनी-अपनी जगह बैठ गये। सभी इस घटनाके कारण चिन्तित-से दिखाई पड़ रहे थे और शायद लल्लूको निकालनेके भिन्न-भिन्न उपाय सोच रहे थे।

स्थूलकाय सज्जनने कहा—"पर यह हुई बड़ी विचित्र बात। अगर लड़का सो गया होता, तो भी इतने शोर-गुलके बाद तो अवश्य ही जग जाता। क्योंजी? (लल्लूकी अम्मासे) तुम्हारे लड़केको मिर्गी-विर्गीका दौरा तो नहीं होता?"

लल्लूकी अम्मा झल्ला गईं—"मिर्गीका दौरा हो तुम्हारे धी-पूतोंको। एक तो मुसीबतमें मदद करनेसे गये और उल्टे लगे कोसने-काटने। शर्म नहीं आती, इतने मोटे-ताज़े होकर ऐसी बात करते हो।"

"मोटी-ताज़ी तो बहनजी तुम भी कम नहीं हो;" स्थूलकाय सज्जन उत्तर दिया—"पर मैं तो यों ही पूछता था। रही मदद करनेकी बात, सो दरवाज़ा तो एक लातमें खुल सकता है; पर इस बातको आप सब लोग देख लीजिएगा कि पीछे रेलवाले यह न कहें कि हमारा नुक़सान कर दिया।"

मैंने कहा—"पर इससे लड़केको चोट लग जानेका भी तो भय है।"

वे बोले—"हाँ, फिर यह तो है ही। इस बातको भी आप लोग सोच लीजिए।"

इसपर खद्दरधारी सज्जन, जो मेरे सामनेकी बेंचपर बैठे थे, बोले—"अजी, क्यों परेशान होते हैं? अब तो इलाहाबाद पहुँचे ही जाते हैं। मगर ये रेलके कर्मचारी भी होते बड़े स्वार्थी हैं। एक रेल ही के क्या, किसी भी सरकारी विभागके आदमियोंका जनताके साथ तो ज़रा भी सहानुभूति होती नहीं। लड़का चाहे घुटकर मर जाय; पर रेल ठीक ही वक्तपर चलेगी।"

मेरे पास बैठे हुए सज्जन, जो विद्यार्थी-से दिखाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ते थे, बोले—"जी हाँ, और टिकट माँगनेका भी यही मौक़ा था ! अभी अगर फर्स्ट या सेकेंड क्लासका डिब्बा होता, तो हज़रत सीधे हो जाते। बात यह है कि हर जगह पूँजीवालोंकी पूजा है, इसीलिए तो हम कहते हैं कि जब तक किसान और मज़दूरोंके हाथमें ताक़त नहीं आयेगी, इस प्रकारकी धाँधली दूर नहीं हो सकती। समाजवादके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है ही नहीं।"

"है क्यों नहीं," खद्दरधारी महाशय कुछ उत्तेजित होकर बोले—"ग्राम उद्योगका ही कार्यक्रम है। पीछे प्रत्येक ग्राम और नगर अपनी आर्थिक आवश्यकताओंके लिए स्वावलम्बी बन जाय, तो सारी समस्या एक दिनमें हल हो सकती है। ये बड़े-बड़े पुतलीघर, रेल, मोटर, तार, टेलीफोन—इन्हीं सब चीज़ोंने तो हमें गुलाम बना रखा है, और आप इन्हीं शैतानी साधनोंको और बढ़ाना चाहते हैं। आख़िर एक समय वह भी तो था, जब रेल नहीं थी और लोग बैलगाड़ियोंकी यात्रा करते थे, रथों और पालकियोंसे काम लेते थे, हाथी-घोड़ोंकी सवारी करते थे। उस समयके इतिहासमें तो कहीं इस बातका ज़िक्र नहीं मिलता कि लड़के इस प्रकार पाख़ानोंमें बन्द हो जाया करते थे।"

समाजवादी मित्र कुछ बोलना ही चाहते थे कि एक मुसलमान सज्जन, जो अब तक बड़े ग़ौरसे इस बातचीतको सुन रहे थे, बीच ही में पूछ बैठे—"क्यों जनाब, यह समाजवाद क्या चीज़ है ? इसीको तो शायद सोशलिज़्म भी कहते हैं ? अख़बारातमें आजकल इसका बहुत ज़िक्र रहता है ; मगर हमारी तो कुछ समझमें नहीं आता।"

समाजवादी मित्रने उत्तर दिया—"आपको इस मामलेमें दिलचस्पी है, यह जानकर मुझे बेहद ख़ुशी हुई। समाजवाद तो इन्सानी ज़िन्दगीका बुनियादी उसूल है। इसके समझनेमें तो ज़रा भी दिक्क़त नहीं होनी चाहिए। मगर बात यह है कि लोगोंने अपनी लियाक़त जतानेके लिए बड़ी-बड़ी किताबें लिखकर इसको भी एक मुअम्मा बना दिया है। मोटे तौरपर यों समझिये कि एक ओर जो ये आलसी, निकम्मे, मुफ़्तख़ोर लोग बड़ी-बड़ी शानदार मोटरोंमें उड़े फिरते हैं और दूसरी ओर हम और आप-जैसे ग़रीब, मगर शरीफ़ आदमियोंको सड़कपर खड़े होकर धूल फाँकनी पड़ती है—समाजवाद इसी अन्यायको दुनियासे मिटा देना चाहता है। या तो सभी लोग धूल फाँकें या सभी मोटरोंमें सवार हों—बस, यही समाजवाद है।"

ख़ां साहबको इस बातपर बहुत हँसी आई—"तो आप सीधी तरह क्यों नहीं कहते कि समाजवादके मानी है मुसावात। अरे मियाँ, इतनी-सी बात नहीं जानते ! इस मुसावातका सबक़ सबसे पहले इस्लामने ही तो दुनियाको सिखाया है और इसी मुसावातका पैग़ाम लेकर इस्लाम हिन्दुस्थानमें आया था। मगर नहीं सुना लोगोंने। अब अपनी हिमाक़तका नतीजा भुगत रहे हैं। और जनाब, एक बात और भी तो है। इस्लाममें सिर्फ़ रूहकी निज़ातका नहीं, बल्कि जिस्मकी परवरिशका भी ख़याल रखा जाता है। यही वजह है कि जो गिज़ा मुक़व्वी हो, वही इस्तेमाल की जाती है। यह नहीं कि घास-पात ही खाकर रह गये। इसीलिए तो आप देखते हैं कि औसतन एक मुसलमान एक हिन्दूसे ज़्यादा ताक़तवर होता है। अब देखिये न, यह लड़का बेचारा बन्द है। चटख़नी किसी वजहसे बन्द हो गई और इस ग़रीबसे नहीं खुलती। अगर किसी मुसलमानका बच्चा होता, तो क्या मुमकिन था कि इस तरह चुपचाप बन्द पड़ा रहता ?"

अब जो सज्जन स्वयंसेवकोंकी वर्दी पहने थे, एकदम बोल उठे, मानो किसी विराट सभामें भाषण कर रहे हों—"सज्जनो, इस व्यर्थके वाद-विवादसे क्या फ़ायदा ? देशका हित तो काम करनेसे होगा, बात करनेसे नहीं। इधर रोगीकी जानपर बन आई है और आप यही तर्क करनेमें लगे हैं कि उसकी आयुर्वेदिक चिकित्सा की जाय या ऐलोपैथिक अथवा होम्योपैथिक। जब तक आपका निर्णय होगा, रोग असाध्य हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी कोई बुद्धिमानीकी बात है ? चलिये, मैं आपको निमन्त्रण देता हूँ। इस समय कुम्भका अवसर है और सेवा-समितिमें स्वयंसेवकोंकी बहुत आवश्यकता है। और कुछ नहीं तो चलिये, सब मिलकर वहीं काम करें। बोलिये, क्या कहते हैं ?"

सबसे पहले समाजवादी मित्र ही बोले—"जी नहीं, मुझे इस प्रकारके काममें ज़रा भी विश्वास नहीं है। मैं तो चाहता हूँ, आपके मेलेकी व्यवस्था और और ख़राब हो जाय, लोग कुचल-कुचलकर मरें और महामारीका प्रकोप हो, ताकि इसी प्रकार इन मूर्खोंको ऐसी वाहियात बातोंकी ओरसे अरुचि हो उठे और फिर कभी कुम्भ-स्नान और तीर्थ-यात्राका नाम भी न लें। मैं तो एकदम क्रान्ति चाहता हूँ। आपकी तरह सुधारवादी नहीं हूँ।"

"मैं तो अवश्य चलता ;" खद्दरधारी महाशयने कहा—"पर मुझे तो बनारस जाकर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें शरीक होना है।"

"और मैं बूढ़ा हो गया,"—ख़ां साहब बोले—"वरना मुसलमान होते हुए भी अपनी ख़िदमत ज़रूर पेश कर देता।"

मैं भी बोल उठा—"इस समय तो सबसे पहला काम लड़केको निकालना है। और सब बातें पीछे सोची जायँगी। देखिये, इलाहाबादका स्टेशन भी आ रहा है।"

गाड़ी धीमी पड़ने लगी थी। शीघ्र ही स्टेशन आ पहुँचा। मैं तुरन्त उतरकर फिर गार्डके पास गया। इस बार वह अकेला ही मेरे साथ नहीं आया, बल्कि स्टेशन मास्टरसे कहकर एक मिस्त्रीको भी साथ लिवा लाया। मिस्त्रीने एक पैना-सा औज़ार लगाकर बाहरकी खिड़की और शीशेको नीचे गिरा दिया और फिर दरवाज़ा खोलनेके लिए स्वयं अन्दर घुस गया।

हम सब लोग पहले ही अन्दर पहुँचकर दरवाज़ेके आगे जा खड़े हुए थे। सबसे आगे लल्लूकी अम्माँ थीं।

दरवाज़ा खुल गया।

लल्लूकी अम्माँ झपटकर आगे बढ़ीं ; परन्तु कुछ देखकर तुरन्त ही पीछेकी ओर लौट पड़ीं।

"अरे यह तो·····"

मैंने भी उचककर देखा, तो मेरे अफ़ीमची मित्र घुटनोंमें सिर रखे कदमचेपर बैठे ऊँघ रहे हैं !

इसी समय आवाज़ आई—"अम्माँ, ओ अम्माँ !"

हम सब चौंक पड़े और लल्लू अफ़ीमची मित्रकी रज़ाईमें से निकलकर अपनी अम्माँके गलेसे लिपट गया।

समस्या ज़रा सुलझी, तो पता चला कि लल्लूको अन्दर जाते हुए तो उसकी अम्माने देखा था ; पर इस बीचमें ऊँघ जानेके कारण बाहर निकलते नहीं देखा। उसी समय अफ़ीमची महाशयको अन्दर जानेकी ज़रूरत पड़ी। लल्लू कब चूकनेवाला था। उसने मैदान ख़ाली पाकर तुरन्त उनके स्थानपर अधिकार जमा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मध्ययुग काव्य और श्रीकृष्ण'

श्री ललिताचरण गोस्वामी, बी० ए०

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तकके हिन्दी - साहित्यपर श्रीकृष्णके व्यक्तित्वकी विलक्षण और सर्वतोमुखी छाप देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। साहित्योंके इतिहासमें यह घटना अद्वितीय है। संसारकी प्रत्येक जातिमें वीर-पूजा (Hero-worship) की प्रथा अनादिकालसे प्रचलित है। दुनियाकी प्रत्येक भाषामें, जिसका कि अपना साहित्य है, वीर-गाथाओंकी रचना हुई है। परन्तु भारतवर्षमें श्रीकृष्णके व्यक्तित्वको लेकर जिस लोकोत्तर काव्यरसकी अखण्ड मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है, उसने इस लोकको ही नहीं, तीनों लोकोंको ही नहीं, वरन् इनके भी परे यदि चैतन्यताके कोई धाम हैं, तो उनको भी पुनीत करनेकी चेष्टा की है। विचार करनेपर मालूम होगा कि मात्र वीर-पूजाकी भावना काव्यके यह करिश्मे नहीं दिखला सकती। यह सच है कि इस भावनाने कभी-कभी समर्थ कवियोंको मानवकी महत्ताके उच्चतम प्रदेशका दर्शन कराया है ; परन्तु महत्ताके सौन्दर्य-चयनमें ही तो कविताकी सम्पूर्ण सार्थकता सिद्ध नहीं हो जाती। यदि विभु सुन्दर है, तो अणु भी तो उतना ही सुन्दर है। अन्य भाषाओंके कवि जब साधारण (Common place) के सौन्दर्यकी ओर आकर्षित हुए हैं, तब उनके आदर्श वीर उनका साथ नहीं निभा सके हैं, फलतः उनको अपने काव्यके लिए किसी साधारण (Common place) आलम्बनका आश्रय लेना पड़ा है ; परन्तु श्रीकृष्णको काव्यका आलम्बन बनाकर चलनेवाले हमारे मध्ययुगकालीन कवियोंको अन्यत्र भटकनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। श्रीकृष्णके चरित्रमें साधारण और असाधारणका विरल योग ही हमारी मध्ययुगकालीन काव्य-समृद्धिका सबसे ज़बर्दस्त पोषक था।

एक बात और भी है। कविताको यदि 'जीवनकी समीक्षा' (Criticism of life) ही मान लें, तब तो वह वीर-गाथामें पूर्णताको प्राप्त हो सकती है, परन्तु वास्तवमें कविताकी यह परिभाषा एकांगी और अपूर्ण है। कवितामात्र जीवनकी समीक्षा ही नहीं, 'जीवनकी आविष्कर्त्री' (Discovery of life) है। मानव-जीवन और विस्तृत विश्वमें ओतप्रोत आनन्द और रसका आविष्कार इसीके द्वारा होता है। श्रीकृष्णके चरित्रको आनन्द और रसका एकान्त अधिष्ठान बनाकर हमारे कवियोंने जो अपूर्व रस-हिलोरें हमारे काव्योदधिमें उत्पन्न की है, उनके अनुभवसे कौन-सा साहित्यिक वंचित है ?

× × ×

श्रीकृष्ण योद्धा थे या राजनीतिज्ञ, रसिक-शिरोमणि थे या तत्त्वचिन्तक—ये प्रश्न हमारी इस चर्चाके लिए असंगत है। उनके चरित्रकी ऐतिहासिक भूमिका किस प्रकारकी है और कितनी सबल है, इसका उत्तर भी उनके चरित्रके लेखक ही दे सकते हैं। हम तो यहाँ उनको अपने कवियोंकी आँखोंमे ही देखना चाहते हैं। जो श्रीकृष्ण भक्त कवियोंको प्रेरणा प्रदान किया करते थे, जो श्रीकृष्ण उनकी हृत्तन्त्रीके प्रत्येक तारको अपनी एक अबोध मुसकानसे झंकृत कर देते थे, जिन श्रीकृष्णकी वंशीमें हमारे कवियोंको 'वेद्यान्तर स्पर्शशून्य' और 'ब्रह्मास्वाद सहोदर' रसका अनुभव करानेकी विलक्षण शक्ति थी, वह श्रीकृष्ण भावुक कवियोंकी दिव्य कल्पनाके बाहर और कहाँ निवास करते थे, इसका पता कोई क्या बतलाये ? भक्त कवियोंके कृष्णको मानव-इतिहासकी अँधेरी गलियोंमें ढूँढ़ना उतना ही व्यर्थ है, जितना सौन्दर्यके मूलकारणको वस्तु-विज्ञानके अटपट सिद्धान्तोंमें ढूँढ़ना ! कवि 'सत्य' की शोध नहीं करता, वह 'सुन्दर' की तलाशमें रहता है, और सत्यका व्यक्त रूप ही तो सुन्दर है (Truth expressed is Beauty)। कृष्णके व्यक्तित्वमें मध्ययुगके कविने पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौन्दर्यकी झाँकी देखी थी—उस सौन्दर्यकी, जिसमें विभु और अणु, साधारण और असाधारण सब एकाकार होकर एकरस हो जाते हैं। यह सब कविकी कल्पना थी, इसमें तो सन्देह ही नहीं ; परन्तु कविकी कल्पना कोरी कल्पना ही होती है या सत्य, इसका भी तो निर्णय अभी तक हमारा संसार नहीं कर पाया है।

कवि स्वर्ग और मर्त्यकी मध्यभूमिका वासी होता है ; उच्च कविता भी पार्थिव और अपार्थिवके सुन्दर सामंजस्यमें ही कृतकृत्य होती है ; स्पष्ट और अस्पष्टकी सीमा-रेखाको क्रमशः धुँधली बनानेमें ही कवि-कर्म सार्थक होता है ; कृष्ण और गौरकी पुण्याभिसन्धिमें ही कवि-कौशल पूर्ण बनता है। मध्ययुगके महान कविने भी स्वभावतः कवित्वकी इसी दिशाकी ओर प्रयाण किया था। पार्थिव और अपार्थिवके पुण्य-संगमपर ही उसको श्यामसुन्दरके दर्शन हुए थे ; इस संगमपर विश्वके प्रत्येक कविको पड़ाव डालना पड़ा है और पड़ाव डालना पड़ेगा। उच्चतम भूमिकापर प्रवेश करनेके लिए उसको यहीं—इसी संगमपर—किसी न किसीका आश्रय लेना पड़ता है, फिर चाहे वह श्यामसुन्दर हों, या रहस्यवादका अज्ञात प्रेमी या प्रियतम, बात एक ही है। भक्त कविको एक सुभीता था, वह यह कि वह अपने प्रियतमके रूपकी कल्पनाके कष्टसे बच जाता था ; उसको एक अड़चन भी थी, वह यह कि प्रियतमके चुनावमें जो रुचि-स्वातन्त्र्यका आनन्द है, वह उसके भाग्यमें नहीं था ; परन्तु एक श्रीकृष्ण ही भिन्न-भिन्न हृदयोंमें भिन्न-भिन्न रूप और सजधजके साथ प्रकाशित होकर इस अड़चनको बहुत-कुछ दूर कर दिया करते थे। भक्तवर सूरदास और श्री हित हरिवंशके कृष्णमें वस्तुतः भेद न हो, रूपतः तो है ही। भक्त कविको श्रीकृष्णके श्याम वर्णमें छाया और प्रकाशकी अन्तर्क्रीड़ाका दर्शन होता था ; उनके पीतपटकी 'फहरन'का अनुभव करके उसके हृदयके भाव-चांचल्यको सान्त्वना मिलती थी ; उनके 'त्रिभंग ललित' रूपको देखकर उसको अपने हृदयकी रस-ग्रन्थियोंका भान होता था और उनकी 'मुसकान-माधुरी' से उसका भाव-प्रदेश आलोकित हो उठता था—उनका 'वंशीनाद' तो उसको रह-रहकर कवित्वके अन्तिम लक्ष्य—पूर्ण आनन्द—का स्पर्श कराता रहता था। धीरे-धीरे वह अपने प्रियतम (श्रीकृष्ण) के साथ एकरूपताका अनुभव करने लगता था ; परन्तु इस स्थितिपर पहुँचकर रस जम न जाय, भावनाकी तीव्रता कहीं गतिशून्यता (Complete deadlock) में परिणत न हो जाय, इसका उसको खास ध्यान रखना पड़ता था। गतिशून्यताकी इस स्थितिसे बचनेके लिए—वह स्वयं ही प्रियतमके प्रेम-सौन्दर्यमें कहीं विलीन न हो जाय, इस भयसे—उसको, प्रत्येक युगके कविकी भाँति, अपने प्रियतमको अपने भावमें, अपने प्रेमकी महत्ता और व्यापकतामें, लीन करनेकी चेष्टा करनी पड़ती थी !

उसके प्रेम-क्षेत्रमें नन्दनन्दन खेलते रहें, उसके हृदयमें ही उनका अखंड नृत्य होता रहे, इस कल्पनाको वह जाग्रत करता था। महाकवि देवने इसी युक्तिका सहारा लेकर, देखिये, किस विलक्षण सौन्दर्यकी सृष्टि कर दी है—

"हौंही ब्रज बृन्दावन, मोहीमें बसत सदा,
यमुना तरंग श्याम रंग अवलीनकी ;
चहूँ ओर सुन्दर सघन वन देखियतु,
कुंजनमें सुनियतु गुंजन अलीनकी।
वंशीवट-तट नटनागर नटतु मोमें,
रासके विलासकी मधुर धुनि बीनकी ;
भरि रही भनक बनक ताल-ताननकी,
तनक तनकतामें झनक चुरीनकी।"

× × ×

कवि, तत्त्वचिन्तक और विज्ञानवेत्ता ये तीनों एक ही पथके पथिक होते हैं ; तीनोंका ही लक्ष्य अंड और ब्रह्माण्डके रहस्योंको उद्घाटित करनेका होता है, भेद तीनोंकी कार्यशैलीमें है। कवि कल्पना और अन्तर्प्रेरणा (Intuition) का सहारा लेकर जड़ और चेतनमें व्याप्त शुद्ध और नित्यमुक्त आनन्दका दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहता है ; तत्त्वचिन्तक विश्वके परस्पर विरोधी-से दिखलाई देनेवाले विभिन्न तत्त्वोंको एक अविभाजित और अन्तर्विरोधहीन तत्त्वके रूपमें लानेकी चेष्टा करता है ; भौतिक विज्ञानशास्त्री अपनी विश्लेषणात्मक शैली द्वारा सृष्टिके आदि रहस्यको जाननेके लिए प्रयत्नशील होता है। कवि भी तत्त्वचिन्तक और विज्ञानवेत्ताकी तरह सत्यका ही शोधक कहा जा सकता है ; भेद इतना ही है कि उसका 'सत्य' साथमें 'शिव' और 'सुन्दर' भी होता है। जो सुन्दर नहीं, वह उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। एक बार सत्यका सौन्दर्य कविकी कल्पनामें आना चाहिए, फिर तो जिस सत्यको सिद्ध करनेके लिए तत्त्वचिन्तक और वैज्ञानिक तर्क और प्रयोगोंके पिरामिड रच डालते हैं ; मगर फिर भी उसको निर्विवाद स्थितिपर पहुँचानेके लिए समर्थ नहीं होते, उसीको कवि अपने रंगीन कैमरेमें उतारकर इस रूपमें उपस्थित कर देता है कि तार्किकों और युक्तिपरायणोंके छक्के छूट जाते हैं, और उनको झेंप मिटानेके लिए यही कहते बनता है कि 'यह तो कवि-कल्पना है।' गोया झूठ है ! कवि सत्यकी सिफारिश सत्यको सुन्दर रूपमें उपस्थित करके ही करना जानता है, और इस कार्यमें उसको आनन्द आता है।

नन्ददासके 'भ्रमर-गीत' में जब गोपिकाएँ उद्धवको तर्क-युद्धमें परास्त न कर सकीं, तब उन्होंने षट्पदको फरीक़ बनाकर सौन्दर्य और संगीतका वह दृश्य उद्धवके सामने उपस्थित कर दिया कि बेचारेका सारा ज्ञान-नशा क़ाफ़ूर हो गया।

श्रीकृष्णका चरित्र भारतीय संस्कृतिकी एक अमर समस्या है, अनेक तत्त्वचिन्तकों और नीति-धुरन्धरोंको इस चरित्रकी गुत्थियोंको सुलझानेके लिए व्यर्थ परिश्रम करना पड़ा है। मध्ययुगके कविके सामने यह समस्या अपने असली रूपमें पेश थी ; परन्तु वह इसको देखकर घबराया नहीं और न उसने इसको सुलझानेकी ही व्यर्थ चेष्टा की। उसने इस उलझनको अपने प्राण-रक्तमें रँगकर उस रूपमें उपस्थित कर दिया, जिसको देखकर तर्क मूक और युक्ति वंध्या हो जाती है। उदाहरणके लिए, कृष्णकी रासलीलाको ही लीजिए। यह 'लीला' मानव-नीतिशास्त्रके किसी भी सिद्धान्तकी कसौटीपर सही-सलामत पार नहीं उतरती ; परन्तु देखिये, कविवर नागरीदास इसको किस रूपमें जनताके आगे रखते हैं :—

"एक रात ही में कोटि कलप अलप जाने,
ऐसी केलि कमनीय इनहीं सों हो सकै ;
एक बाँसुरीकी धुनि थिर चर मोहि डारे,
त्रिभुवनमें कौन सुनि धीर गहि जो सकै ?
एक नटनागरकी मुकुट लटक माँहि,
अटक पर्‍यौ है मन छूटि नाँहि सो सकै ;
एक भुव-भंगमें अनंग मान भंग होत,
वाके रासरंगकौ बखान करि को सकै ?

नागरीदासजीके इस संगीतमय शब्द-चित्रके अन्तिम 'बखान करि को सकै' में कितना 'बखान' (व्याख्यान) भरा हुआ है, इसका अनुभव करनेके लिए मनुष्यको स्वयं भी महाकवि होनेकी आवश्यकता नहीं है।

श्रीकृष्णके व्यक्तित्वका आश्रय लेकर ब्रजभाषाके महाकवियोंकी सरस्वतीने काव्यके जो-जो रंग दिखलाये थे, उन सबका समावेश इस छोटे-से लेखमें हो जाता है, यह कहना तो मात्र साहस है ; परन्तु उपर्युक्त पंक्तियोंके वाचनसे कदाचित हमारे पाठक कविवर नागरीदासके इस निर्णयसे सहमत हो जायँगे कि यदि श्रीकृष्णका चरित्र हमारी पौराणिक संस्कृतिमें न होता, तो कमसे कम हमारे इतिहासके मध्ययुगमें तो—

"छाय जाती जड़ता, विलाय जाते कवि सब ;
जरि जातों रस औ' रसिक कहा गावते ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल-आज

श्री मोहनलाल गुप्त

(१)

कल अखिल भूलोकमें था
हो रहा सम्मान मेरा ;
गूँजता था व्योम-वसुधा बीच
जय का गान मेरा !
कल सुखोंका बाल - रवि
जीवन-क्षितिजपर था प्रभासित ;
माँगता था दीन बन जग
ज्ञानका वरदान मेरा ;
कल विभवका राज्य प्रतिपल
लोटता था चरण - रजपर ;
आज तो पर लुट गये हैं
वे अलौकिक स्वर्गके सुख ;
इसलिए क्योंकर न मानस हो
व्यथित सब ओर जब दुख ?

(२)

कल सुराही थी, सुरा थी,
मधुप्रिया, मधुयामिनी थी ;
प्रेमके घनमें घुमड़ती
त्यागकी सौदामिनी थी !
कल कनक-घटमें न था—
विषका भरा भण्डार, आली !
राग प्राणोत्सर्गका था ;
सत्यकी परिवादिनी थी !
कल परस्पर स्नेह-सौरभसे—
दिशाएँ थीं सुवासित ;
आज तो पर लग रही है
छल-कपट विद्रोहकी रट ;
इसलिए क्योंकर न चाहूँ
विगत-जीवनका सुखद पट ?

(३)

कल मची थी धूम घर-घर
हर्षकी अठखेलियाँ थीं ;
लालसा-द्रुममें सफलताकी
लगी वर - वेलियाँ थीं !
कल विजयके दीपसे
आकाश जगमग हो रहा था ;
राजभवनोंसे कुटी तक
एक-सी रँगरेलियाँ थीं ;
कल उमड़ते लोचनोंमें
तृप्तिके थे श्वेत - सागर ;
आज तो पर बन गया है
शुष्क मरु भयभीत पनघट ;
इसलिए सोचूँ न क्यों लख
सौख्य-गृहको शून्य मरघट ?

(४)

कल कनक - रेखा - खचित
उज्ज्वल अमित आख्यान सुन्दर ;
विश्व - नभमें थी विहसती
कीर्तिकी ऊषा मनोहर !
कल लिये मकरन्द अलिको—
थे पुहुप अविरल पिलाते ;
मुक्तिकी मन्दाकिनी थी
बह रही प्रतिपल प्रखरतर ;
कल खड़ा था भाग्य, करतल
पर लिये संसारका सुख ;
आज पर दुष्प्राप्य हैं
करतल पड़े सामान मेरे ;
इसलिए क्यों हों न व्याकुल
बन्धनोंसे प्राण मेरे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

कल सुखद स्वाधीनताका
था मृदुल-मलयज-समीरण ;
एक तटपर कर रहे थे सब
अभय - स्वच्छन्द-विचरण ।

कल न भावोंपर हृदयके
था लगा प्रतिबन्ध - अंकुश ;

थी न मानवता विलखती
देख निज दारुण-विदारण ;

कल विहंगोंका गगनमें
था मधुर उन्मुक्त - कलरव ;

आज तो गुंजार तक भी
कर न सकते तुच्छ मधुकर ;
इसलिए तज 'आज' क्यों
'कल'के लिए दौड़ूँ न सत्वर ?

(६)

कल निरंतर हास-लास-विलास
नव - उल्लासका सुख ;
कोकिला की काकली में
था प्रदीप्त वसन्तका मुख !

कल न कातर - करुण - क्रन्दन
का निरुत्तर - नाद विश्रुत ;

था कलापीको न घनका
चातकोंको स्वातिका दुख !

कल दया - सौहार्द - समताकी
तरंगिनि थी प्रवाहित ;

आज तो पर हो रहा है
अनवरत अवसान इनका ;
इसलिए क्योंकर न फेंकूँ
आज पर मैं तोड़ तिनका ?

(७)

कल न था विज्ञान करता
मानवोंका रक्त - शोषण ;
न्यायके शुभ नामपर
था सत्यका होता न रोदन ।

कल न फैला शस्य-श्यामल-
भूमिपर था पश्चिमानल ;

सभ्यता के सलिल से
पशुता-विटपका था न पोषण ;

कल न था निज वेश-भूषा
भाव - भाषा का अनादर ;

आज पर घर हो गया मेरा
पराये का बसेरा ;
इसलिए कैसे करूँ सानन्द
उत्सव ; है अँधेरा ?

(८)

कल हुआ सीता-हरण, लंका
जली सुख-साज-सज्जित ;
द्रौपदीकी आहने वसुधा
बना दी रक्त - रंजित !

कल शिवाने अन्त तक
गैरिक - पताका था उड़ाया ;

वीर राणाने दिया होने
न माका दूध लज्जित !

कल बिना आदेश नत आँखें
न ऊपर उठ रही थीं ;

आज बाणोंसे घिरा है
हो रहा अभिमन्यु जर्जर ;
इसलिए क्योंकर न टेरूँ
फिर गदाधारी, धनुर्धर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९)

कल न शरद-मयंकपर थे
घिर रहे श्रावण-अमा-घन ;
लूटता पतझड़ अचानक था
न ऋतुपतिका सुमन वन ।
कल न गोपा-गोदसे राहुल
छिना जाता सबल था ;
टूटता असमय युवतियोंका
न था सौभाग्य - कंकण !
कल न रहता मौन भ्राता
निरख रोदन भगिनियोंका ;
आज तो पर धमनियोंमें
है शिथिलता, भीरुतालस ;
इसलिए क्यों आजके पीयूष
को समझूँ न विष-रस ?

(१०)

कल सुमनके सेज-सम था
मिलनका वरदान आली ;
तितलियों-सी उड़ रही थीं
कल्पनाएँ नव निराली !
कल न बाधाएँ बिछातीं
मार्गमें थीं कंटकोंको ;
माधवीसे रिक्त रहती
लोचनों की थी न प्याली !
कल जगतका और ही
इतिहास था, परिहास है अब ;
आज असमय काल-कवलित
हो रहे अरमान मेरे ;
इसलिए न अतीतके आवें
हृदय क्यों ध्यान मेरे !

(११)

कल सृजनकी ओटसे
संहारका चलता न था शर ;
मंजरीके अंकमें था घात
में बैठा न विषधर ।
कल न था वरदानमें
अभिशापका उन्मत्त-ताण्डव ;
जग-जलधिमें था न जीवन-
यानको तूफानका डर ;
कल सुनाते थे विहग सन्देश
ऋतुपति - आगमन का ;
आज वैभवशून्य - उपवन
हो रहा एकान्त खँडहर ;
इसलिए क्योंकर न होवे
बन्द वनप्रियका मधुर स्वर ?

(१२)

कल न यौवनमें जराका
था अमंगल-चिह्न लक्षित ;
हर्ष-बेलामें न था अवसाद
से मन भय - प्रकम्पित !
कल न बनते सांध्य-बन्दनवार
प्रातः मरण - डोरी ;
पुतलियोंमें पतनकी रेखा
न थी अणुमात्र अंकित !
कल भुवनको थी विदित
उत्थानकी मेरी कहानी ;
आज तो जगसे अपरिचित
ले रहा शिशु श्वास-अन्तिम ;
इसलिए चाहूँ न क्यों इक बार
'कल' का स्वप्न स्वर्णिम ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भोला अतिथि

एच० डब्ल्यू० नेविनसन

बड़े कड़ाकेकी सर्दी थी। मैं बिजलीकी अंगीठीपर झुका बैठा था। दो-चार चिट्ठियाँ टाइप करने और कुछ पढ़नेके लिए थोड़ी फुरसत मिल जानेसे तबीयत खुश थी। इतनेमें बिना पूछे-गाछे या खबर दिये हुए अकस्मात् एक विचित्र व्यक्ति कहींसे मेरे कमरेमें आ मौजूद हुआ। वह अबसे कोई अस्सी वर्ष पहलेकी पोशाक पहने हुए था—लम्बा कोट, कामदार वास्कट, धारीदार पाजामा और लटकती हुई लम्बी नेकटाई। उसके गालोंपर गलमुच्छे थे और हाथमें बहुत ऊँचा टॉपहैट, जो थोड़ा-बहुत टेढ़ा-मेढ़ा पड़ गया था—ठीक वैसा ही, जैसा चार्ल्स डिकेन्सकी किताबोंकी पुरानी तसवीरोंमें नज़र आता है।

इस प्रकार मदाखलतबेजाके लिए माफी माँगते हुए उसने सिर झुकाया और कहा—"मैं एक अज्ञात पहाड़ीपर एक झोपड़ेमें बहुत दिनोंसे मज़ेसे सो रहा था; लेकिन पिछले कई दिनकी भयंकर सर्दीने मुझे नींदसे जगा दिया है, इसीलिए ज़रा गरमानेके लिए आपके यहाँ आ गया हूँ।"

बातचीतसे वह काफ़ी सुशिक्षित मालूम हुआ। उसने कहा—"मैं अपना नाम भूल गया हूँ। नाममें तीन शब्द थे। पहले दो थे रिपवान। तीसरा याद नहीं आता।"

मेरे रेडियोपर आधुनिक अमेरिकन संगीत बज रहा था।

"यह कानफोड़ू आवाज़ काहेकी है?"—रिपने बैठते हुए पूछा—"और कम्बख्त आ कहाँसे रही है?"

"ओह, यह वायरलेस है। पेरिससे हवाकी तरंगोंपर चलकर यह आवाज़ इस रेडियोके बक्सके द्वारा आ रही है।"

"कैसे आश्चर्यकी बात है!"—उसने कहा—"क्या तुम्हारे कहनेका मतलब यह है कि तमाम हवा आवाज़ोंसे भरी हुई है, जिनमें से कुछ कर्णमधुर भी हो सकती हैं, यद्यपि यह नहीं है? अगर ऐसा हो, तब हम दुनियाके मशहूरसे मशहूर गवैयोंका गाना सुन सकते हैं! क्या यह भी मुमकिन है?"

"हाँ,"—मैंने जवाब दिया—"लेकिन वायरलेसका सबसे बड़ा व्यावहारिक उपयोग जंगी-जहाज़ोंको खबर देना है। इससे उन्हें समुद्रमें ही खबर दी जा सकती है कि कहाँ किस बन्दरगाहपर दुश्मनका सामना होनेकी उम्मीद है। स्थलमें भी फौजोंको हुक्म और खबरें देनेमें यह बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। पुराने ढंगके तार देनेके तरीकेसे यह दुश्मनकी फौजोंको नष्ट करनेमें कहीं ज्यादा बढ़कर सहायक हुआ है। मैं समझता हूँ कि यह हमारे ज़मानेका सबसे उत्कृष्ट आविष्कार है। आकाशकी बिजलीको युद्धकी अकथनीय सहायतामें लगाना कैसी गौरवपूर्ण बात है!"

उसी क्षण हवामें ज़ोरकी घड़घड़ाहट सुनाई दी और एक हवाई-जहाज़ भर्राटे भरता हुआ हमारे घरके ऊपरसे निकल गया।

"अरे, यह इतनी बड़ी चिड़िया कौन है?"—रिपने खिड़कीसे देखकर कहा—"मैंने आज तक इसके आधे आकारका भी गिद्ध नहीं देखा!"

"यह एक मामूली हवाई-जहाज़ है।"—मैंने कहा—"जल-थलके ऊपर उड़नेकी करामात तो हम लोगोंने तीस साल पहले ही ईजाद कर ली थी, और आजकल तो हवाई-जहाज़ कौओंकी तरह साधारण चीज़ हो गये हैं।"

"क्या तुम लोग सचमुच ही चिड़ियोंकी तरह हवामें उड़ सकते हो?"—रिपने उत्तेजित होकर कहा—"यह भी कैसी शानदार बात होगी! मनुष्य हमेशासे हवामें उड़नेके लिए लालायित रहा है।"

"बेशक, बेशक!"—मैंने जवाब दिया—"हम लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ तीन दिनमें हवामें उड़कर दक्षिण-अफ्रिका पहुँच सकते हैं; हिन्दोस्तानको तो अब बाक़ायदा हवाई-सर्विस हो गई है। लेकिन इस अनोखे आविष्कारका सबसे बड़ा उपयोग है दुश्मनोंपर विष्फोटक और आग लगानेवाले बम बरसाना। इन बमोंमें अकसर ज़हरीली गैस भर दी जाती है, जिससे चन्द घंटोंमें ही मर्द, औरत, बच्चा, कोई भी न बच सके। जब दुश्मनोंकी आबादी ही नेस्तनाबूद कर दी गई, तब विजय तो निश्चित ही है।"

"आपकी बातें आश्चर्य पैदा करनेके साथ-ही-साथ दिल दहलानेवाली भी हैं।"—रिपने जवाब दिया—"मैं तो यही जानता था कि युद्धमें यह नियम है कि निरस्त्र प्रजा स्वतन्त्रतापूर्वक जो चाहे सो करे, उसपर हमला नहीं किया जाता।"

"जी नहीं!" मैंने जवाब दिया—"हवाई-जहाज़का सबसे बड़ा फायदा तो यही है कि इससे दुश्मनके मुल्कमें इधर-उधर फैले हुए शान्त ग्रामोंको बमोंसे उड़ाया जा सकता है। लन्दन, पेरिस और बर्लिन जैसे बड़े शहरोंको हवाई हमलोंका निशाना बनाना और भी आसान है। इस प्रकार इसके ज़रिये दुश्मनोंका नाश और भी पूरा हो जाता है। हवाई-जहाज़ोंके कुछ बेड़े बम बरसाकर लन्दन या बर्लिनको खलिहान बना सकते हैं और सारी-की-सारी आबादीको मार सकते हैं। यह हम लोगोंका दूसरा महान आविष्कार है।"

मिस्टर रिप आश्चर्यसे मुँह बाये बैठे थे। उनके चेहरेपर भयके चिह्न स्पष्टरूपसे दीख पड़ते थे।

"हम लोगोंने प्रकृतिपर और जो बड़ी-बड़ी विजय पाई हैं, शायद आप उनके बारेमें और भी कुछ जानकर प्रसन्न होंगे।"—मैं कहता गया—"हम लोगोंने एक ऐसा जहाज़ ईजाद किया है, जो समुद्रमें पानीके नीचे-नीचे चलता है। उसे हम 'सब-मेरीन' कहते हैं।"

"तब तो आप लोगोंने मछली मारनेका अनोखा तरीक़ा निकाला है।"—रिप बोला—"मैं समझता हूँ, इस जहाज़से आप लोग ह्वेल मछली पकड़ते होंगे।"

"नहीं, हम लोग 'सब-मेरीन' को इस काममें नहीं लाते।"—मैंने उत्तर दिया—"हम लोग उसे सिर्फ दुश्मनोंके जहाज़ी बेड़ेको नष्ट करनेमें इस्तेमाल करते हैं। सब-मेरीनमें बड़ी-बड़ी तोपें और तारपेडो होते हैं, जो पानीके भीतर-ही-भीतर चलते हैं और बड़ेसे बड़े जंगी-जहज़को चन्द मिनटमें ही ऐसे डुबा देते हैं कि कोई भी बच न सके। थोड़ेसे सब-मेरीन तोपों और टारपेडोंसे लैस हों और उनके साथ-साथ ऊपरसे विस्फोटक और बम बरसानेके लिए हवाई-जहाज़ोंका एक बेड़ा हो, तो इंग्लैण्डके समुद्री बेड़ेसे दुगुने बड़े बेड़ेको भी बहुत सन्तोषजनक रीतिसे नष्ट किया जा सकता है। उसपर मज़ा यह कि इसमें न तो ख़र्च ही बहुत ज़्यादा होता है और न बहुत मेहनत ही पड़ती है। हमारा यह आश्चर्यपूर्ण आविष्कार भी उसी दर्जेका है, जैसे मेरे बताये हुए पहले दो आविष्कार।"

मिस्टर रिप ताज्जुबसे कुछ देर तक अंगीठीकी तरफ देखते रहे फिर बोले—"आपने जो बातें सुनाईं, उनसे मेरा मन समूची मानव-जातिके लिए भयंकर आशंकाओंसे भर उठा है। इससे तो उन्नतिकी और सभ्यताकी प्रगतिकी सारी आशाएँ ही नष्ट हो जाती हैं। लेकिन क्या संसार विनाशके इन आश्चर्यजनक आविष्कारोंका प्रयोग न करनेके लिए राज़ी नहीं हो सकता?"

"इसकी कोशिश तो कई बार की गई;"—मैंने जवाब दिया—"मगर अभी तक बेकार ही साबित हुई। दुश्मनोंको मारनेके लिए जो-जो नये तरीके निकले हैं, अभी मैंने वे सब आपको नहीं गिनाये हैं। ऐसी तोपें निकली हैं, जो बीस मीलकी दूरीपर विष्फोटक और आग लगानेवाले गोले फेंक सकती हैं। छोटे टैंक निकाले गये हैं, जो ऊबड़-खाबड़ ज़मीनपर भी तीस मीलकी तेज़ीसे दौड़ सकते हैं। थोड़े ही दिनोंमें घुड़सवारोंकी जगह यही टैंक ले लेंगे। इनकी मार भी घुड़सवारोंसे ज़्यादा कारगर होगी और अन्तमें ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़ोंसे सस्ते भी पड़ेंगे। फिर हम लोगोंने बारबेड वायर (कटीला तार) निकाला है, जो पैदल सेनाको आगे बढ़नेसे रोकता है। होता यह है कि जब सिपाही इन तारोंके जंगलेको पार करके घुसना चाहते हैं, वे इसके काँटों और फलोंमें उलझ जाते हैं, और हम लोग दूसरी तरफसे अपनी राइफलोंसे उन्हें बहुत आसानीसे उड़ा देते हैं। मैंने खुद अपनी आँखोंसे कोड़ियों सिपाहियोंको इस तारके जालमें लटके हुए देखा है। ये सिपाही अगर गोलीसे न भी मरें, तो भूख-प्याससे तड़प-तड़पकर मर जाते हैं, और जब तक उनकी लाशें सड़-गलकर खुद ही नहीं गिर पड़तीं, इसमें लटकी रहती हैं। बारबेड वायर भी फौजके बहुत कारगर हथियारोंमें शुमार किया जाना चाहिए। और मेशीनगनकी बात तो मैंने कही ही नहीं। मेशीनगन फौजके समूचे दस्तेके दस्तेको भाड़में चनेकी तरह भूनकर रख देती है।"

"लेकिन युद्धके इन सब तरीकोंपर बहुत पैसा खर्च होता होगा।"—रिपने बहुत परेशान होकर कहा।

"बेशक,"—मैंने जवाब दिया—"इसके लिए हम लोगोंको बहुत खर्च करना पड़ता है। उदाहरणके लिए, इंग्लैण्डकी वर्तमान सरकारने राष्ट्रकी रक्षाके सामानकी कमी पूरी करनेके लिए ३,९२,००,००,०००) रु०का कर्ज़ निकाला है। इस कर्ज़का सूद साधारण नागरिकोंको देना पड़ेगा। फौज, जहाज़ी फौज और हवाई फौजका साधारण खर्च १,४०,००,००,०००) रु० इससे अलग है। हमें अपनी रक्षाके लिए यह मूल्य चुकाना पड़ता है, और देशको सुरक्षित तो रखना ही पड़ेगा। और सब राष्ट्र भी इसी प्रकार अस्त्र-शस्त्र बढ़ा रहे हैं। अस्त्र-शस्त्रोंमें यह विशाल वृद्धि युद्धकी ओर अग्रसर करती है, क्योंकि इन अस्त्र-शस्त्रोंसे फायदा ही क्या, अगर उन्हें इस्तेमाल न किया जाय!"

"लेकिन क्या यूरोप अब ईसाई नहीं रहा? क्या वह दयाके अवतार प्रभु ईसाको नहीं मानता?"—मिस्टर रिपने पूछा।

"लोग कहते तो यही हैं कि यूरोप ईसाका अनुयायी है।"—मैंने कहा—"लेकिन अब पादरी लोग भी बहुत देशभक्त हो गये हैं। जब युद्ध शुरू होता है, तब वे सैनिकों और मल्लाहोंको आशीर्वाद दिया करते हैं। एक पादरी तो इतना बहादुर निकला कि पिछले युद्धमें उसने खाकी वर्दी पहन रखी थी, मानो रणक्षेत्रमें जानेके लिए उतावला हो। हम लोगोंने धर्म नहीं छोड़ा है। लड़ाईमें जो लोग मारे जाते हैं, हम उनके कब्रिस्तान बनाकर रखते हैं और उनकी कब्रोंपर लकड़ीके ज़रा-ज़रासे सलीब (क्रास) गाड़ देते हैं, जिससे मालूम हो कि हम ईसाके अनुयायी हैं। पिछले महायुद्धमें यूरोपके बढ़ियासे बढ़िया १,००,००,००० नौजवान मारे गये थे।"

"लेकिन आखिर ये लोग एक दूसरेको मारते क्यों हैं?"—रिपने हदसे ज्यादा परेशान होकर पूछा—"ये लोग एक दूसरेसे इतनी भयंकर घृणा क्यों करते हैं?"

"ओह! वे एक दूसरेसे बिलकुल घृणा नहीं करते।"—मैंने जवाब दिया।

"तब वे एक दूसरेसे लड़ते क्यों हैं?"—उसने फिर पूछा।

"इस फुरसतके वक्तके लिए यह सवाल बहुत कठिन है।"—मैंने कहा।

"तब माफ कीजिए। मैं अपनी शान्तिपूर्ण कुटियामें जाकर फिर सोऊँगा। अच्छा, सलाम।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पेनका गृह-युद्ध

मैड्रिडके स्टेशनपर बम-वर्षा

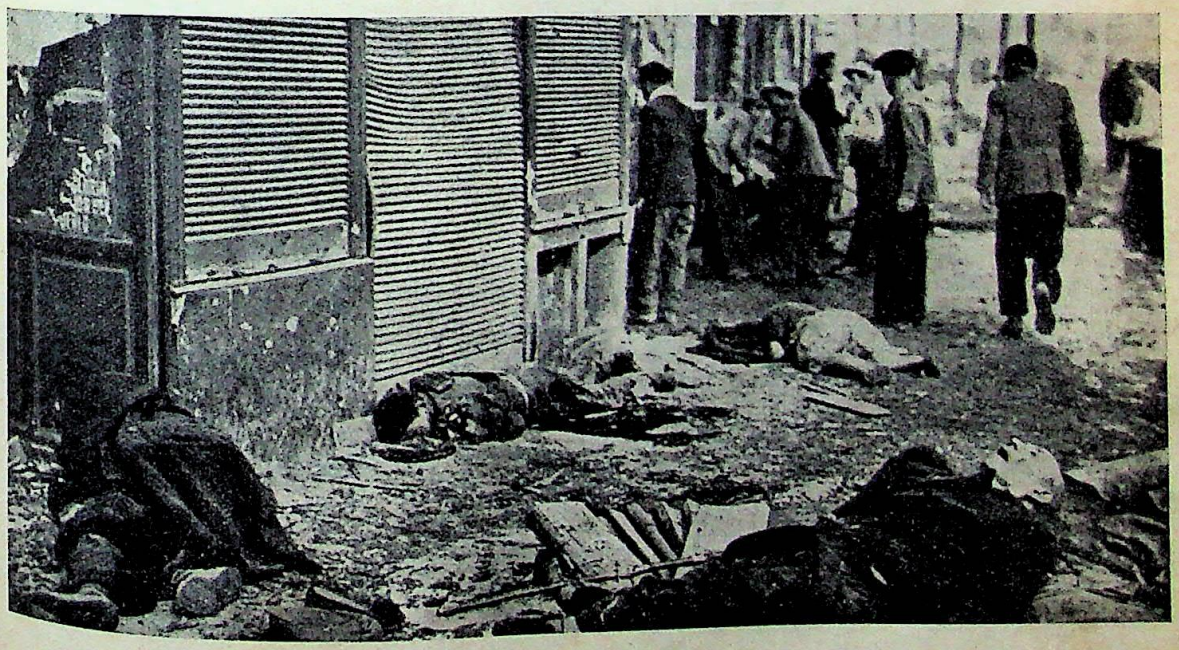

मैड्रिडमें बम-वर्षाका दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

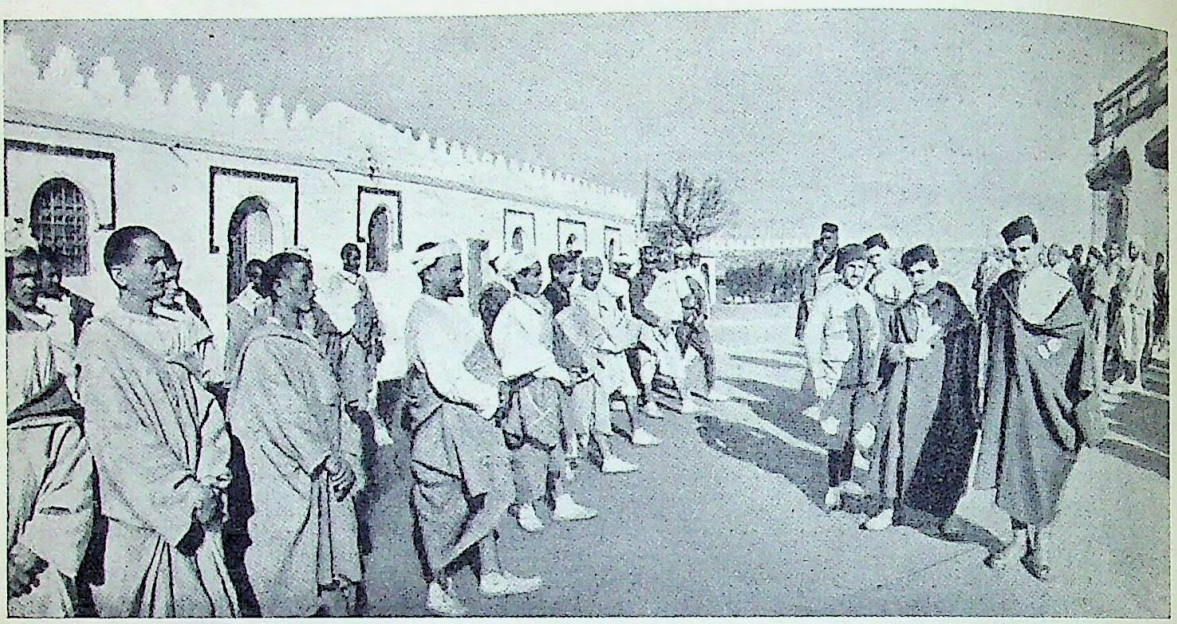

स्पेनके विद्रोही सरकारको हरानेके लिए मोरक्कोके मूर सैनिकोंको काममें ला रहे हैं। ऊपरके चित्रमें मूर सिपाहियोंको सैनिक-शिक्षा दी जा रही है

दक्षिण-स्पेनमें विद्रोही सेनाके मूर सैनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसवन्ती

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

अरी ओ रसवन्ती सुकुमार !
लिये क्रीड़ा-वंशी दिन - रात,
पलातक शिशु - सा मैं अनजान,
कर्मके कोलाहलसे दूर,
फिरा गाता फूलोंके गान।

कोकिलोंने सिखलाया कभी
माधवी - कुंजोंका मधुराग,
कण्ठमें आ बैठी अज्ञात
कभी बाड़व-सी दाहक आग।

पत्तियाँ फूलोंकी सुकुमार
गईं हीरे - से दिलको चीर,
कभी कलिकाओंके मुख देख
अकारण ढुलक पड़े दृग-नीर।

तृणोंमें कभी खोजता फिरा
विकल मानवताका कल्याण,
बैठे खँड़हरमें करता रहा
कभी निशि-भर अतीतका ध्यान।

श्रवणकर चल-दल-सा उर फटा
दलित देशोंका हाहाकार,
देखकर शिरपर मारा हाथ
सभ्यताका जलता शृंगार।

शापका अधिकारी यह विश्व
किरीचोंका जिसको अभिमान,
दीन - दलितोंके क्रन्दन बीच
आज क्या डूब गये भगवान ?

तप्त - मरुके सिंचनके हेतु
टटोला निज उरका रस-कोष,
ओसके पीनेसे पर हाय,
विश्व क्या पा सकता सन्तोष ?

बिन्दु या सिन्धु चाहिए उसे ?
हमें तो निजपर ही अधिकार,
मुरलिकाके रन्ध्रोंमें लिये
चला निज प्राणोंका उपहार।

साधनाकी ज्वाला जब बढ़ी
गया वासवका आसन डोल,
पूछने लगी मुझे पथ रोक
ठगिनि माया जीवनका मोल।

प्रिये रसवन्ती ! जग है कठिन,
मनुज दुर्बल, मानव लाचार,
परीक्षाको आया जब विश्व,
गया जीवनकी बाज़ी हार।

द्वार काराका बीचों - बीच,
इधर मैं बन्दी, तुम उस ओर ;
प्रिये ! तो भी ममतासे हाय,
खींचती क्यों मेरा पट-छोर ?

प्रणय उससे कैसा यह ? जो कि
गया पहली ही बाज़ी हार ;
चीखती क्यों ले - लेकर नाम
अरी, ओ रसवन्ती सुकुमार !

अरी ओ रसवन्ती सुकुमार !
दुखोंकी सुखमें स्मृतियाँ मधुर,
सुखोंकी दुखमें स्मृतियाँ शूल ;
विरहमें किन्तु, मिलनकी याद
नहीं मानव मन सकता भूल।

याद है वह पहला मधुमास
कोरकोंमें जब भरा पराग,
शिराओंमें जब तपने लगी
अर्द्ध-परिचित-सी मीठी आग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक क्षण कोलाहलके बीच
पुलककी शीतलतामें मौन,
सोचने लगा हृदयमें आज
हुआ नूपुर मुखरित यह कौन ?

खोल दृग देखा प्राची ओर
अलंकृत चरणोंका शृंगार,
तुम्हारा नव उद्वेलित रूप
व्योममें उड़ता कुन्तल - भार।

उठा मायाविनि ! अन्तर बीच
कल्पनाका कल्लोलित ज्वार,
लगा सद्यस्फुट - पाटल सदृश
दृगोंको मोहक यह संसार।

लगी पृथ्वी आँखोंको देवि !
सिक्त सरसीरुह - सी अम्लान,
कूलपर खड़ी हुई - सी निकल
सिन्धुमें करके सद्यः स्नान !

ग्रहण कर उस दिन ही सुकुमारि !
तुम्हारे स्वर्णाञ्चलका छोर,
खोजने तृषितोंका कल्याण
चला मैं अमृत-देशकी ओर।

गिरे थे जहाँ धर्मके बीज,
उगा था जहाँ कभी भी ज्ञान,
वहाँकी मिट्टीपर हम चले
प्रणतिमें झुकते एक समान।

पन्थमें दूर्वासे सज तुम्हें
पिन्हाया गंगाका गलहार,
शीशपर हिम-किरीट रख किया
देशकी मिट्टीसे शृंगार।

विमूर्च्छित हुई तपोवन बीच
कराया निर्झरका जल पान,
बोधि - तरुकी छायामें बाँह
हुई शुचि बनकर तव उपधान।

धराका जिस दिन सौरभ-कोष
खोलने लगी प्रथम बरसात,
न - जानें क्यों नालन्दा बीच
रहे रोते हम सारी रात ?

प्रेम - विरवा आँगनमें रोप
रहे थे हम जब हिलमिल सींच,
अचानक कुटिल नियतिने मुझे
लिया उस दिव्यलोकसे खींच।

अचानक हम दोनोंके बीच
पड़ा आकर माया - व्यवधान,
रचा मेरे बन्धनके हेतु
भीषिकाओंने दुर्ग महान।

प्रकम्पित कर सारा ब्रह्माण्ड
किया प्राणोंने जब चीत्कार;
विहँसने लगा व्यंगसे विश्व,
अरी, ओ रसवन्ती सुकुमार !

अरी ओ रसवन्ती सुकुमार !
बन्धनोंसे होकर भयभीत
किन्तु क्या हार सका अनुराग ?
मानकर किस बन्धनका दर्प
छोड़ सकती ज्वालाको आग ?

पुष्पका सौरभसे सम्बन्ध
छुड़ा सकता कोई व्यवधान ?
कौन सत्ता वह, जिसको देख
रश्मिको तज सकता दिनमान ?

आपदाएँ सौ बन्धन डाल
प्रेमका कर सकतीं अपमान ?
यहाँ शापित यक्षोंके रोज़
उड़ा करते अम्बरमें मान।

उठेगा व्याकुल, दुर्दमनीय,
क्षुब्ध होकर जब पारावार ;
रुद्ध होगा कैसे हे देवि !
घुट शैलोंसे कण्ठ - द्वार ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोड़ दूँगा मायाके दुर्ग,
तोड़ दूँगा यह वज्र-कपाट ;
व्योममें गानेको जिस रोज़
बुलाएगा निर्बन्ध विराट ।

मिटा दूँगा ब्रह्माका लेख,
फिरा लूँगा खोया निज दाँव ;
चलूँगा निज बल हो निःशंक,
नियतिके शिरपर देकर पाँव ।

तरंगित - सुषमाओंपर खेल
करूँगा देवि ! तुम्हारा ध्यान,
दुखोंकी जलधारामें भींग
तुम्हारा ही गाऊँगा गान ।

सजेगा जिस दिन उत्सव हेतु
देश - माताका तोरण - द्वार,
करेंगे हम ले मंगल - शंख
उदयका स्वागत—मन्त्रोच्चार ।

निखिल जन्मोंमें जिसपर देवि !
चढ़ाए हमने तन - मन-प्राण ;
सुनेंगे हूति-हेतु इस बार
एक दिन फिर उसका आह्वान ।

काल - नौकापर हो आरूढ़
चलेंगे जिस दिन प्रभुके देश,
विश्वकी सीमापर सुकुमारि !
करेंगे हम-तुम संग प्रवेश ।

चकित होंगे सुनकर गन्धर्व
तुम्हारी दूरागत मृदु तान,
श्रवणकर नूपुरकी झंकार
भग्न होगा रंभाका मान ।

'स्वर्गसे भी सुन्दर यह कौन ?'
करेंगे सुर जब चकित पुकार,
कहूँगा मैं दिवसे भी मधुर
विश्वकी रसवन्ती सुकुमार !

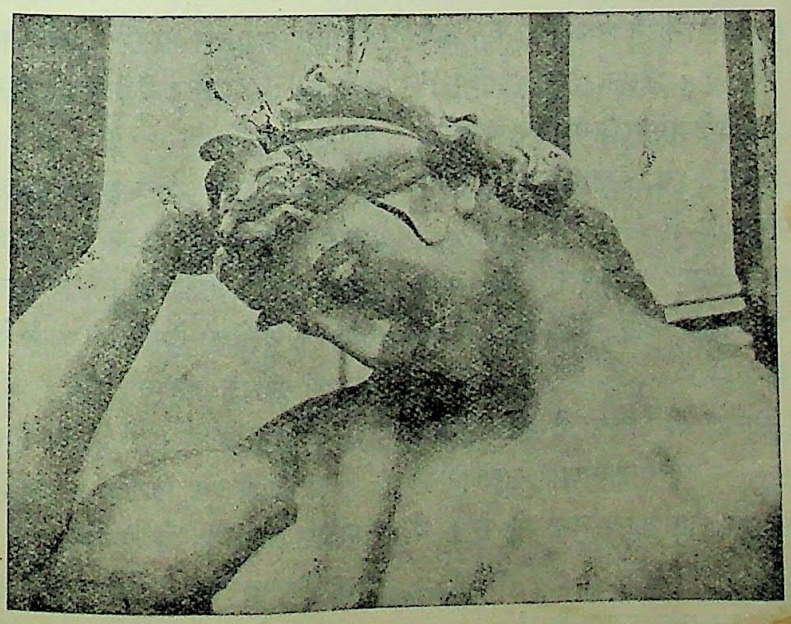

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कितनी भूलमें था !

प्रो० मार्कण्डेय सिंह, एम० ए०, साहित्यरत्न

'चित्र तो सभी अच्छे प्रतीत होते हैं।'—आँखें दौड़ाते हुए उतावले विनोदशंकरने कहा।

'जी हाँ। देखिये, ज़रा मुग़ल-क़लमकी विशेषता देखिये। इसमें व्यापकत्वके स्थानमें सूक्ष्मताकी ओर कितना अधिक ध्यान दिया गया है!'

'हाँ, हाँ, यह तो है ही। मुग़ल, राजपूत, बौद्ध, प्राचीन, नवीन सभी चित्रोंमें पर्याप्त कलाका समावेश है।'—कहते हुए मेरे मित्र आगेकी ओर बढ़ने लगे; परन्तु मैं अविचल रहा। वे भी रुक गये लाचार होकर।

'अहा, मुग़ल हरममें चिन्तित नूरजहाँके चित्रमें मुद्रा और भंगिमाका कितना सूक्ष्म अंकन हुआ है! साथ ही उसके शरीर-विन्यास और वेश-भूषामें ब्योरेका कितना अधिक ख़याल रखा गया है!'

मेरे मित्र चुप रहे। मैं तन्मय होकर कुछ देर तक देखता रहा। फिर आगे बढ़ा और दूसरे चित्रके पास पुनः रुक गया। इसपर विनोदके संयमका बाँध मानो टूट गया। उन्होंने कहा—'भाई प्रभाकर, अभी हिन्दुस्तानी एकेडमीकी मीटिंगमें भी चलना है। ढाई बज गये, आध घंटा और है; शीघ्रता करनी चाहिए।'

मैंने कहा—'अरे, एकेडेमीमें झाँव-झाँवके अतिरिक्त क्या रखा है? देखिये, इन कलाकी विभूतियोंमें कितना आन्तरिक आनन्द है!'

'अच्छा, तो मुझे क्षमा कीजिए। मेरा जाना वहाँ ज़रूरी है। आप कवि और कलाकार ठहरे। वक्तसे न पहुँचे, परवा नहीं।'

मैं एक 'निर्जन संध्या' का चित्र देखने लगा। चित्रकी मदिर अलसता, नीरव वातावरण, अरुणिमाकी विक्षिप्त रेखाएँ—सभी एक गूढ़ रहस्य सुना रहे थे। मैं आत्म-विस्मृत-सा देख रहा था।

'चित्र तो अर्थहीन-सा जान पड़ता है।'

मैंने चित्रकी ओरसे आँखें हटाकर देखा। मेरी दृष्टिमें तीव्रता थी।

'क्या आप सहमत नहीं?'—वीणा-विनिन्दित स्वरने पूछा।

'जी नहीं।' युवतीके नेत्रोंमें मैं धीरे-धीरे स्त्री-हृदयकी भूमिका पढ़ रहा था।

'कृपा करके क्या मुझे भी आप कुछ समझा देंगे?'

'क्यों नहीं। देखिये, छाया और प्रकाशके सहारे पहले चित्रमें व्यापकताका कैसा सुन्दर बोध कराया गया है। रंगोंके सामंजस्यसे ही नीरवताका सृजनकर कलाकारने कैसे कौशलसे जीवनके अन्तिम दृश्यका प्रभावशाली संकेत किया है। इसकी प्रत्येक वर्ण-रेखामें संध्याका दार्शनिक स्वरूप मूर्तिमान हो रहा है।'

युवती मौन थी। मैं प्रसन्न था।

'आपका शुभस्थान?'

'काशी।'

'सुनते ही युवतीके मुखमंडलपर प्रसन्नताकी एक हल्की आभा दौड़ गई। उसे जिस बातका पता लगाना था, लग गया। अब वह अधिक विनम्र हो रही थी; परन्तु मैं उसकी विनम्रताको कुछ दूसरा ही समझता रहा।

हम दोनों साथ-साथ चित्र देखने लगे। मैं प्रायः व्याख्या करता जाता था, और वह श्रद्धा एवं प्रेमसे सुनती जाती थी। बीच-बीचमें आँखें बचाकर हम एक दूसरेको देखते भी जाते थे; परन्तु युवतीको इसका अधिक अवसर मिलता था, मुझे कम।

'अभी आप यहाँ कितने दिन और रहेंगे?'

'केवल एक दिन।'—युवतीके इन व्यक्तिगत और मार्मिक प्रश्नोंसे मैं फिसला जा रहा था। मैंने तीस वर्षकी आयु तक विवाह न करनेकी घोषणा की थी। इसपर मुझे झुँझलाहट आ रही थी। मैंने चटपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत-कुछ निश्चय कर डाला। कल्पनाका प्रासाद तैयार कर लिया। फिर पूछा—'क्या आप भी अपना परिचय दे सकेंगी ?'

युवतीने एक कार्ड दे दिया। मैंने काँपते हुए हाथसे कार्ड ले लिया और जेबके हवाले किया। मैं चंचल हो उठा था। कुतूहल, जिज्ञासा, आकर्षण और न-जाने किन-किन भावोंसे थपेड़ा खाते हुए तृणकी भाँति मैं लहरोंमें बह रहा था। घड़ी देखी, साढ़े तीन बजे थे। एकेडेमीमें जानेका बहानाकर चित्र-वीथिकासे बाहर आना चाहा।

युवतीने पूछा—'कल शिक्षा - भवन देखने आइयेगा ?'

मैंने कहा—'हाँ, ढाई बजे।'

और घूम पड़ा। वह देखती रही।

[२]

कुमारी कमला, बी० ए०,

हज़रतगंज, लखनऊ।

दौड़ती हुई निगाहोंसे पढ़ा। आँखें हँस पड़ीं। मन उछलने लगा। मस्तिष्कके सामने गन्धर्व-लोक झूलने लगा। सोचा, अहा, अभी कुमारी है! आशाने प्रोत्साहन दिया। विश्वासने अनुमोदन किया। आकांक्षाने कहा—किला फतह है। मैं फूला न समाया। भविष्यके सुख-स्वप्नोंसे मेरे कपोलोंपर उत्तेजनाकी लाली दौड़ गई। फिर ख़याल गया नामपर। कितना प्यारा नाम है! कमला! हाँ, कमल-सी ही कोमल और सुन्दर है, बल्कि बढ़कर ही, क्योंकि कमलमें वह कोकिल-कंठ कहाँ ? उसकी वाणीमें कैसी अद्भुत मोहिनी है! कार्डकी ओर फिर ध्यान गया। बी० ए० देखा। स्पष्ट स्वरमें कह उठा—'सोनेमें सुगन्ध है।' अकस्मात् सन्देह-बुद्धिने कहा—'व्यर्थ क्यों हवाई-किला बना रहे हो ? अरे, कार्ड दे दिया तो इससे क्या ? कोई भी सभ्य व्यक्ति ऐसा ही करेगा।' परन्तु उसी क्षण चित्र-वीथिकाकी सारी घटनाएँ वायस्कोपकी तरह आँखोंके सामने फिर गईं—ख़ासकर वह दृश्य रह-रहकर नाचने लगा कि कैसे सतृष्ण नेत्रोंसे वह मेरी ओर मेरी आँखें बचाकर देखती थी। तर्कने भी मेरे ही पक्षमें समर्थन किया। मैंने सोचा, उसने जो मेरा निवास-स्थान पूछा और फिर जानना चाहा कि मैं यहाँ कितने दिन रहूँगा, इससे क्या स्पष्ट नहीं कि वह मेरी ओर आकृष्ट है ? फिर 'कल शिक्षा-भवन देखने आइयेगा ?' इस प्रश्नसे तो सन्देहके लिए गुंजाइश ही नहीं रह जाती। बस, निश्चय है कि वह मुझे चाहती है।

मैं इस तरह विजयोल्लाससे गर्वोन्नत हो गया, जैसे अबीसीनियाकी विजयके बाद मुसोलिनी। मैं अपने भाग्यको सराहने लगा कि मैंने अभी तक शादी नहीं की। उतने ही में एकेडेमीका ध्यान आया। आगे बढ़ा; लेकिन नशेबाजकी तरह। दस ही क़दम गया था कि फिर विचार-तरंगोंके साथ बहने लगा। 'ठीक है, मुझे काफी Decent समझा होगा। आजका नया सूट पहनना तो काम कर गया।' सोचते-सोचते न-जाने कैसे पानवालेकी दूकानके सामने पहुँच गया। शीशेमें देखा। टाई ज़रा टेढ़ी हो गई थी। खींचकर ठीक किया। बालोंपर हाथ फेरा। अपने सौन्दर्यपर स्वयं रीझ गया। तब तक पानवालेने पूछा—'बाबूजी, पान लीजियेगा ?' मैं जैसे चौंक पड़ा। कुछ झेंपते हुए पान ले लिया। अन्यमनस्क हो बीड़ा मुँहमें रखा और पैसे देकर सड़ककी ओर फिर मुड़ा। मन-ही-मन पुनः अपनी वेश-भूषाकी प्रशंसा करने लगा और रूपगर्वित हो अकड़कर चलने लगा।

[३]

कैसी बुरी बलामें फँसा ? लाख बहाना किया, लेकिन पिंड न छूटा। देखता हूँ, कल एकेडमीमें दो बजे जाना ही पड़ेगा। क्यों कल वहाँ चला गया। यार लोगोंने मेरा नाम वक्ताओंमें दे ही दिया। प्रतिनिधि होकर आया हूँ। दायित्व भी है। कुछ तो सक्रिय भाग लेना ही चाहिए। तो फिर क्या करूँ ? बड़ा बेढब मामला आ अटका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेपर फिर जल्दी छुट्टी तो मिल नहीं सकती। न जाऊँ, तो भी अब उचित नहीं। अच्छा, पहले ही बोलनेके लिए आग्रह करूँगा और ढाई बजे तक भाषण समाप्त कर दूँगा। इन विचारोंसे तनिक सान्त्वना मिली। भोजन करके चारपाईपर गया; लेकिन फिर वही दिनवाली घटना स्मरण हो आई। जितना मन बहलाता था, उतना ही इस ओर अधिक खिंचता जाता था। न-जाने कब सो गया, पता नहीं। आँखें खोलीं तो देखा सवेरा हो गया है। ऊषा पूर्वमें रंगभरी पिचकारी चला रही थी। प्राची सलज्ज भावसे प्रियतमका स्वागत करनेके लिए नीला पर्दा हटाकर खड़ी थी। जौहरी चन्द्रमा अपने रत्नोंको समेट चुका था और अमीनाबादकी दूकानें खुलने की तैयारी कर रही थीं। मैं फुर्तीसे उठ बैठा। खूँटीके पास गया। कोटके पाकेटमें हाथ डालकर देखा कि 'कार्ड' खो तो नहीं गया। निकालकर देखा। आँखोंकी गर्मी शान्त हुई। प्रोग्राम देखा, बहुत लम्बा था—९ बजे दिनसे १० बजे रात तकका। झट नित्यकर्मसे निवृत्त हो भोजन किया और प्रदर्शिनीकी ओर चल पड़ा।

[४]

प्रदर्शिनीमें बड़ी धूम थी। भिन्न-भिन्न रुचिके और भिन्न-भिन्न रंग-रूपके लोग इधर-उधर टहल रहे थे। यहाँ सबकी रुचिके अनुकूल सामग्री थी। कोई औद्योगिक विभागोंको देख रहा है, कोई वैज्ञानिक। कोई कृषि-विभागकी टीका-टिप्पणी कर रहा है, तो कोई मनोरंजन-विभागके आनन्दकी व्याख्या। चारों ओर प्रसन्नताका साम्राज्य है। अपूर्व उल्लास है और गजबकी चहल-पहल। वसन्तकी कुसुम-वाटिकाकी भाँति प्रदर्शिनी खिली हुई है। दरिद्र भारतके विशाल अंकमें ऐसा सुसज्जित दृश्य विस्तृत सहाराके एक छोटे-से मनोहर उर्वर भूमिखण्ड-सा प्रतीत होता था। जरठ लखनऊके विदीर्ण हृदयमें भी अपने अतीत-वैभवकी कसक-भरी स्मृति जग गई थी। ऐसे ही प्रमोद-क्षेत्रमें मैं अनिर्दिष्ट रूपसे टहल रहा था, पर अकेला। बारह बजे एकेडेमीकी कार्यवाही भोजन करनेके लिए स्थगित हुई थी। मुझे आज सभी चीज़ें अधिक सुन्दर प्रतीत होती थीं; पर दिल कहीं नहीं लगता था। बनारसी दूकानपर गया, रेशमी साड़ियाँ देखीं, मन न-जाने कैसा हो गया। 'खरीदने लायक चीज़ है,' कहकर बाहर आया। आज हठात् मेरी आँखें ऐसी चीज़ोंपर अधिक पड़ रही थीं, जो स्त्रियोंके उपयोगकी होती हैं। उनको देख-देखकर मैं कल्पना दोलपर पेंगें मारने लगता था। आगे बढ़ा, बिजलीके बलसे काठके घोड़ोंकी घुड़दौड़ हो रही थी। अपने स्वभावके बिलकुल प्रतिकूल मैंने भी बाजी लगाई। मेरे घोड़ेका आधा शरीर विजय-स्तम्भ (Winning post) से आगे निकल गया था; लेकिन आधा पीछे ही था। मैं उछल पड़ा कि बाजी मार ली; लेकिन फैसला खिलाफ हुआ। फिर भी मैं तो आज तरंगपर था, जैसे नशाकी पिनक हो। आगे बढ़ा, प्रसन्न और मस्त। मेरे स्वभावसे पूर्व-परिचित कोई भी व्यक्ति यदि आज मुझे देखता, तो सहसा विश्वास न करता। चर्खीके पास पहुँचा। वहाँ बच्चे, जवान और बूढ़े, बालिकाएँ और युवतियाँ सबको झूलते और हँसते देखा। मेरा दिल भी बढ़ा और एक घोड़ेपर जा बैठा। ख़ूब झूला, एक बार नहीं, दो बार। सम्भवतः हृदय कल्पनाकी ऊँची उड़ानें भर रहा था, इसीलिए यह सब उसका बाहरी परिणाम-स्वरूप हुआ। ठीक ही है, मनुष्यका प्रत्येक कार्य उसकी मानसिक दशापर निर्भर रहता है। परन्तु यहाँसे भी मन उचटा, जैसे किसी चीज़का अभाव खटकने लगा। चल पड़ा। थोड़ी ही दूर गया था कि सामने जाती हुई एक युवतीपर दृष्टि पड़ी। चकपका गया खुशीके मारे और सोचने लगा। वही तो मालूम होती हैं। चाल वही है। क़द भी वही, फैशन भी वही। हाँ, आजकी साड़ी दूसरी है नीली। लेकिन गतिमें मादकता और लचक तो हूबहू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती है। ऐंड़ियोंमें लाल रंगकी महावर भी कलकी-सी ही है। हो न हो, वही हैं। तो फिर चलूँ। मिल लूँ। बुरा तो न मानेंगी ? साथमें एक आदमी भी तो है, शायद अनुचित समझें। अच्छा, तो बातचीत नहीं करूँगा। केवल समीपसे चला जाऊँगा। देह-भर दिखा दूँगा, और इतने ही से मतलब भी है। लेकिन अगर बग़लसे जानेपर मेरी ओर निगाह न पड़ी, तो गुनाह बेलज्ज़त हो जायगा। तो फिर घूमकर आगेसे आऊँ। आमने-सामने रहनेपर साक्षात्कार अवश्य हो जायगा। बस, आँखें चार हो जायँगी, तो फिर पौ-बारह हैं। ऐसा सोचकर तेज़ीसे मैं आगे बढ़ा। अकस्मात् एक सम्भ्रान्त वयोवृद्धसे टक्कर खा गया और सम्हलकर चलनेकी चेतावनी पाई। लेकिन मुझे सुननेकी फ़ुर्सत कहाँ ? कतरा कर सामनेसे घूम पड़ा। अब मैं उस युवतीकी प्रतिकूल दिशामें चल रहा था। देखा, तो अनुमान ग़लत निकला, वह दूसरी स्त्री थी। ठिठक गया। तब तक वह युवती भी सामने आ गई। मेरा चेहरा ऐसा उतरा हुआ था कि मानो मेरी कोई बहुमूल्य चीज़ खो गई हो। स्त्रीके साथवाले व्यक्तिने पूछा, 'कहिये, क्या कुछ खो गया है ?' मुझसे जल्दीमें कुछ उत्तर देते न बना। ऐसा मालूम हुआ, मानो वह व्यंग कर रहा है। सहसा मुँहसे निकल पड़ा—'हाँ, नहीं, जी नहीं।' उसने आगे बढ़ते हुए कहा—'घबड़ाइये मत साहब, लेकिन मिलना अब दुश्वार है।' इसी समय एकका घंटा बजा। मैं सतर्क हो गया, अव्वल वक्तपर मीटिंगमें पहुँचना है। अभी मन्त्रीजीसे निवेदन भी करना है। ढाई बजे ! ठीक ढाई बजे। ज़रूर, ज़रूर चला आना है।

[५]

'जैसी सुनती थी, वैसा ही पाया भी। चेहरेसे अपूर्व शान्ति और गम्भीरता टपकती है। तेजस्वी मुखमण्डल निःसन्देह उनके भावुक हृदयका दर्पण है। उनकी वाणीमें विद्वत्ता भरी हुई है। उनकी मर्मज्ञता कितनी सूक्ष्म और उनकी व्याख्या कितनी पूर्ण है। भारतके ऐसे ही लाल माताके मस्तकको ऊँचा किये हुए हैं। प्रभाकरजी वस्तुतः प्रभाकर हैं। सौजन्य कितना अधिक है। कितना संकोच करते-करते उन्होंने मेरा परिचय पूछा। कितनी उदारतासे परिचय न होनेपर भी अपना समय देकर मुझे चित्रोंका मर्म समझाया। ओह ! इनके लेखों और कविताओंमें कितनी अनुभूति रहती है। मेरे विचारमें तो हिन्दीमें इनके ऐसा चूड़ान्त समालोचक दूसरा नहीं। अवश्य मैं इनसे परिचय प्राप्त करूँगी और सम्पर्क रखूँगी। आज अवसर पाकर शिक्षा-भवनमें इस आशयका निवेदन अवश्य करूँगी।'

दो बज गये। माताने कहा—'कमला, आज किशोरीरमणके घर चलना है। निमन्त्रण आया है। तीन बजे पहुँचना है।'

'नहीं अम्मा, मुझे प्रदर्शिनी जाना है। कुछ ज़रूरी चीज़ें देखनी हैं।'—कमलाका दिल धड़कने लगा।

'कल देख लेना। कोई लूट लगी है। प्रदर्शिनी तो अभी महीनों रहेगी।' कमला बड़े संकटमें पड़ी। माताके चिड़चिड़े स्वभावको जानती थी। घबड़ा गई। कोई माकूल बहाना नहीं मिलता था। सच्ची बात कहनेमें शर्म आती थी, इसलिए चुप खड़ी रही। 'जाओ, कपड़े पहन लो। ज़रा अच्छे कपड़े पहनना।' कमलाकी मा किशोरीरमणको अपना दामाद चुन चुकी थी। केवल सगाई पक्की होनेकी देर थी।

ऐन मौक़ेपर कमलाकी तुरत-बुद्धिने काम किया। उसने कहा—'अम्मा, बहुत ज़रूरी काम है, नहीं तो चलती क्यों नहीं। तुम जानती ही हो, आज कवि-सम्मेलन है। मुझे भी कविता सुनानी है। सभी जान भी गये हैं। अगर न जाऊँगी, तो बड़ी भद होगी।'

'अच्छा, तो फिर मैं अकेली ही जाऊँगी। लड़कियोंको पढ़ाने-लिखानेसे तो यही होता है कि वे अपने ही मनका करती हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं अम्मा, अगर कहो तो न जाऊँ।' कमलाको विश्वास हो गया था कि उसकी मा अब उसे न रोकेगी, क्योंकि पढ़ने-लिखनेके सम्बन्धमें वह कभी-कभी कमलाको कहीं जानेसे नहीं रोकती।

'नहीं, नहीं, जाओ। जब सभामें पढ़ना है, तो ज़रूर जाओ।'

कमलाको माँगी मुराद मिली। घरसे निकल पड़ी और सीधे प्रदर्शिनी पहुँची। आँखोंमें विश्वका उत्साह समाया हुआ था। हृदय उछल रहा था। नस-नसमें मानो उत्तेजना भरी थी। वह बड़ी तेज़ीसे शिक्षा-भवनकी ओर बढ़ती जा रही थी। घड़ीकी ओर रह-रह देखती जाती थी, जैसे मानो सुइयोंसे होड़ लगी हो। पाँच मिनट और। चाल और तेज़ हो गई। पसीनेकी बूँदें स्वर्णिम ललाटपर गंगा-जमुनीके कामकी तरह शोभित हो रही थीं। सामने ही साँचीका भव्य गैरिक वर्णका प्राचीन स्तूप दिखलाई पड़ा, जो यहाँ यत्नसे रखा गया था। कमलाकी गति मन्द हो गई। शिक्षा-कोर्टके द्वारपर पहुँची। पहुँचते ही आँखें दौड़-दौड़कर किसीको ढूँढ़ने लगीं; पर जहाज़के पक्षीकी भाँति निराश हो पुनः लौट आती थीं। प्रभाकरजी वहाँ दिखलाई न पड़े। सोचा, शायद अन्दर गये हों। व्यग्रतासे अन्दर पहुँची और शीघ्रतासे चारों ओर घूम आई। दूसरोंको देख रह-रहकर उनका सन्देह होता था; पर शीघ्र ही वह निरा भ्रम ठहरता था। भेंट न हुई। अब कमलाको आन्तरिक वेदना हो रही थी। वह झूठ बोली; माताको धोखा दिया; किशोरीरमणके घर निमन्त्रित होनेपर न गई। ये बातें उसे दुख पहुँचाने लगीं। सोचा, 'क्या हो गया कि कहकर नहीं आये। क्या भूल गये? बड़े आदमी हैं, शायद भूल गये हों। परन्तु उनको देखनेसे तो मालूम होता था कि बड़े ही संयत, दृढ़ और विचारके पक्के आदमी हैं। तो सम्भवतः कोई अनिवार्य अड़चन आ पड़ी होगी। हाँ, ज़रूर यही बात हुई होगी। फिर संयोग भी तो कोई चीज़ है। उनसे भेंट होना नहीं बदा था।' कमला खिन्न थी। उदास हो, पौन घंटे तक इधर-उधर देखा। कहीं दिखाई नहीं पड़े। निराश हो, दूसरी ओर चली गई भावोंमें निमग्न और तर्क-वितर्कमें उलझी हुई।

'हैं, आज प्रभाकरजीको क्या हो गया है? आज इनकी वाणीमें वह ओज नहीं, भावोंमें वह प्रौढ़ता नहीं, तर्कोंमें वह बल नहीं, जो पहले रहा करता था।' इधर-उधर लोग कानाफूँसी करने लगे।

मैंने ज्यों-त्यों व्याख्यान समाप्त किया। करतल-ध्वनि हुई। अपनी जगहपर आ बैठा; किन्तु शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ। सभा-व्यवस्थापकसे निवेदनकर बाहर आया और वेगसे आगे बढ़ा। साढ़े तीन बज चुके थे। शिक्षा-भवनके अन्दर ढूँढ़ा। आसपास देखा, कमला न मिली। मनकी शंका ठीक निकली। अपनेको कोसने लगा। क्यों नहीं भाषण देना अस्वीकार किया और बोला भी तो क्यों नहीं शीघ्र खत्म कर दिया। पौन घंटा लगा दिया, पूरा पौन घंटा। तो फिर अब पछताऊँ क्यों? जो किया, उसका फल पाया। भला, कमलाने क्या सोचा होगा? उसके दिलपर क्या बीती होगी? समझा होगा कि निर्दयी हैं। मेरी आँखोंके सामने यक्षकी विरहिणीका चित्र खिंच गया। सोचते-सोचते मैं उद्विग्न-सा हो उठा। कभी मन करता कि कमलाके घर चलूँ, फिर हिचक जाता। अन्तमें निश्चय किया कि एक पत्र लिखकर क्षमा माँग लूँगा। पत्र मैं चातुर्यसे अपने प्रेमको भी व्यंजित करूँगा। क्या करूँ, अब यहाँ रुक तो सकता नहीं। पराधीनता है। कल कालेजमें हाज़िर होना है। अच्छा, तो फिर यही तै रहा। पत्र लिखूँगा कौशलसे। उत्तर मिलनेपर व्यवहार बढ़ाऊँगा। फिर देखा जायगा। आशाने डूबते हुएको सहारा दिया, अँधेरेमें भटकते हुएको ज्योति दिखलाई। मैं डेरेपर पहुँचा। रात ही गाड़ीसे प्रयाग लौटना था। स्थिर होकर पत्र लिखा; लेकिन अक्षर वगैरह इस तरह लिखे कि जिससे मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो कि बहुत जल्दीमें पत्र लिखा गया है। पत्र लेटर बक्समें छुड़वा दिया।

× × ×

डाकियेने एक चिट्ठी मेज़पर रख दी। मैं 'भारतवर्ष' के लिए कहानी लिख रहा था। कनखियोंसे देखा, लिफाफेपर स्त्रीकी लिखावट है। उत्सुकता बढ़ी। लिखना बन्द कर दिया। साश्चर्य लिफाफा खोला। ऊपर लखनऊ देखा। एक साँसमें सारा पत्र पढ़ डाला। हृदय विक्षुब्ध सागरकी भाँति उद्वेलित हो रहा था। सहसा मेरी सारी भावनाएँ उलट-पुलट हो गईं। क्या सोचे बैठा था, क्या हो गया। मैंने फिर पत्र पढ़ना शुरू किया, ग़ौरसे और धीरे-धीरे। पत्रमें लिखा था:—

"पूज्य प्रभाकरजी,

सादर बन्दे! मैंने जैसा अनुमान किया था, उससे बढ़कर आपको पाया। मैं आपकी एक तुच्छ भक्त हूँ। हिन्दीसे मेरा अपार प्रेम है। मैं चाहती हूँ कि हिन्दी-सेवा अपना जीवन व्रत बनाऊँ। अतः मेरा करबद्ध निवेदन है कि आप मेरे साहित्यिक पथ-प्रदर्शक बननेकी कृपा करें। आजीवन अनुगृहीत रहूँगी। आशा है, आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। उस दिन मैं शिक्षा-भवन ठीक समयपर गई; पर दुर्भाग्यवश आपसे भेंट न हुई। इसके लिए क्षमा।

विनीत प्रार्थिनी—कमला।"

मेरा स्वप्न टूट गया। मोह-निद्रा भंग हुई। सहसा मुँहसे निकल पड़ा—'अरे, मैं कितनी भूलमें था!'

दलित

रणछोड़दास

आहोंका पुतला ढाला हूँ, कड़े कसाले पाला हूँ,
कुलके जीवन-अन्धकारपर मैं ही एक उजाला हूँ।
धर्म-रूढ़ियोंकी वेदीका मैं बलि-पशु मतवाला हूँ,
मूर्तिमान हिन्दू-संस्कृतिका मैं यह खड़ा दिवाला हूँ।
अरे पुजारीको बिसात क्या, लौट पड़े सारा संसार,
फिर भी अपनी धर्म-लीकपर मैं न्यौछावर सौ-सौ बार।१

जन्मोत्सवमें मुखियाजीने सातों साख बखानी थी,
द्वारेसे देवी-पूजनकी माने मनखत मानी थी।
कभी शीतला, कभी तिजारी, पसली कभी पिरानी थी,
कभी सुनी गुड़धानीकी भी मैंने कहीं कहानी थी।
खेली क्षुधा सहचरी होकर, मिला झिड़कियोंसे सत्कार,
भरा रहा पर सुख मानसमें, नस-नसमें भारतका प्यार।२

पंडितजी, फल है करनीका जापे में घरनी खोई,
उसे छोड़ सन्तति-शिक्षणकी है चटसार नहीं कोई।
श्रम अपना है, करवा, कंथा, भोजन हाथ पराये है,
सदा सौधका सूद लौधकी कुटियापर मुँह बाये है।
जोत जखैयाकी कर देता, गंगा न्हा लेता परिवार,
मरनेसे पहले यदि ऋणसे हो जाता मेरा निस्तार।३

नहीं परेखा रहा कभी, गाढ़ेमें आड़े आता हूँ,
मिलनेको बंधन हैं, फिर भी मैं तलवार उठाता हूँ।
देख चुके हैं यहाँ बहुतसे अभिमानी मेरा पानी,
मेरे शवके सिंहासनपर बैठे हैं राजा-रानी।
जाकर पूछो अरावलीसे, या देखो बनास[1] के घार[2],
गूँज रहा मेरे खाँड़ेका जहाँ आज भी जय-जयकार।४

कहो अवतरित हुए कहाँसे कवि रविदास प्रकाश लिये?
नामदेव जन किस जननीने अगणित जीव सनाथ किये?
नहीं पुराण रचे सन्तोंने कहें इसे क्या नादानी?
छोड़ ज्ञानकी भूमि गगनमें चलती है उनकी बानी।
नहीं मानका नाम वहाँ है, नहीं चोचले, नहीं विकार,
चन्द्र-किरण-सा अमृत-स्रोतसे स्रवता है वह अनुभव-सार।५

सावधान, मैं खड़ा महत्ता, पावनताका मान यहाँ,
पतित, दलित, शंकित, व्यामोहित, बढ़ा एक व्यवधान यहाँ।
जागरूक हो उठा सबलता-निर्बलताका ज्ञान यहाँ,
खुले खेलने-खानेके हैं सदियोंके अरमान यहाँ।
जहाँ धर्मको हुई विकलता, चकित मनुजता बैठी हार,
वहाँ पटा लेगा सौदेको निपट राजनैतिक व्यापार!६

---

१. चम्बलकी एक सहायक नदी, जो जयपुर रियासतमें होकर बहती है। २. कछार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-समाज शान्ति-निकेतन

श्री राय सोमनारायण सिंह

'शान्ति निकेतन' संसारके विख्यात स्थानोंमें है। इसका कारण यह है कि यहाँ विश्वकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी 'विश्व-भारती' की स्थापना की है। विश्व-भारतीमें केवल भारतवर्षसे ही नहीं, वरन् संसारके अन्य अनेक देशोंसे भी विद्यार्थी आया करते हैं। संसारके प्रायः सभी देशोंके यात्री शान्ति-निकेतन देखने तथा विश्व-कविके दर्शन करनेके लिए पधारते हैं। शान्ति-निकेतनके सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखनेकी इस समय आवश्यकता नहीं है। मैं यहाँके 'हिन्दी-समाज' का संक्षिप्त वर्णन करूँगा।

'विश्व-भारती' के हिन्दी-समाजकी स्थापना श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी साहित्याचार्य, हिन्दी तथा संस्कृत अध्यापक, के द्वारा सन् १९३४ में हुई थी। श्रीयुत द्विवेदीजी उसके सर्वप्रथम सभापति थे। पहले यहाँ हिन्दी पढ़नेवाले अथवा हिन्दीमें रुचि रखनेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या बहुत कम थी। धीरे-धीरे यह संख्या बढ़ती गई। यहाँके हिन्दी-भाषा-भाषी तथा अन्य भाषा-भाषी विद्यार्थियोंमें हिन्दीके प्रति अनुराग उत्पन्न करनेके उद्देशसे ही समाजकी स्थापना की गई थी। समाजका प्रथम वार्षिकोत्सव १५ अप्रेल, १९३५ को मनाया गया था। उस अवसरपर बाहरके अनेक प्रसिद्ध सज्जनों और महिलाओंने आकर हिन्दीके लिए यथोचित उत्साह दिखलाया था। उनमें पं० श्रीराम शर्मा, प्रोफेसर ललिताशंकर शुक्ल, श्रीयुत भागीरथमल कानोडिया, प्रोफेसर रामनारायण चतुर्वेदी, श्रीमती सरस्वती देवी काव्यतीर्थ तथा श्रीयुत श्यामसुन्दर खत्री विशेष उल्लेखनीय हैं। उसके बाद रायबहादुर रामदेव चोखानी एम० एल० सी० आये और वे विश्व-भारतीके जीवन-सदस्य भी बन गये। उनके साथमें श्री नारायणदास बाजोरिया भी पधारे थे। हिन्दी-विद्यार्थियोंकी संख्या बढ़ जानेसे श्री सीताराम सेकसरिया तथा श्री भागीरथमल कानोडियाकी आर्थिक सहायतासे एक और हिन्दी-अध्यापक पं० दुर्गाप्रसाद पाण्डेयकी नियुक्ति हुई, जो अब भी यहाँपर हिन्दी तथा संस्कृतके अध्यापकका कार्य करते हैं।

यहाँपर जब मैं जुलाई सन् १९३५ में आया, श्री दुर्गाप्रसाद पाण्डेय 'समाज' के सभापति निर्वाचित हुए। उस समय हिन्दी-समाजकी संख्या (स्त्री तथा पुरुष) लगभग २० थी, जो देशके प्रायः सभी प्रान्तोंके थे। हम लोग सप्ताहमें एक बार (बुधवारको*) मिलकर आपसमें अपनी समस्याओंके सम्बन्धमें साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे परामर्श करते हैं। सदस्यगण अपने लेख, कहानी, निबन्ध तथा कविताएँ इत्यादि भी पढ़ते हैं।

इस वर्ष श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी पुनः सभापति निर्वाचित हुए तथा मुझे इसके मंत्री होनेका सौभाग्य फिर प्राप्त हुआ। हिन्दी न जाननेवाली जनताको हिन्दी-साहित्यसे परिचय करानेके लिए हिन्दी-समाजकी ओरसे कई विद्वानोंके यहाँपर व्याख्यान भी दिलवाये गये। ३ दिसम्बर सन् १९३५को प्रयाग-विश्वविद्यालयके प्रोफेसर श्री रामकुमार वर्मा एम० ए० ने 'Trends in Modern Hindi Poetry'—आधुनिक हिन्दी-कविताके रुखपर व्याख्यान दिया। उसी दिन सायंकालको कवि-सम्मेलन हुआ, जिसमें श्री मनोरंजनजी एम० ए० (प्रोफ़ेसर काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय), श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', 'हृदयेश' जी तथा हिन्दीकी सुविख्यात कवियित्री तथा 'चाँद' की सम्पादिका श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० ने अपनी-अपनी कविताएँ सुनाईं। गत वर्ष ९ अगस्त, १९३६ को प्रसिद्ध कहानी-लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजीसे हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी बहुत-सी बातोंपर परामर्श हुआ। दूसरे दिन श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने Post War Hindi Poetry (महायुद्धके पश्चात्

* बुधवारके दिन आश्रममें छुट्टी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

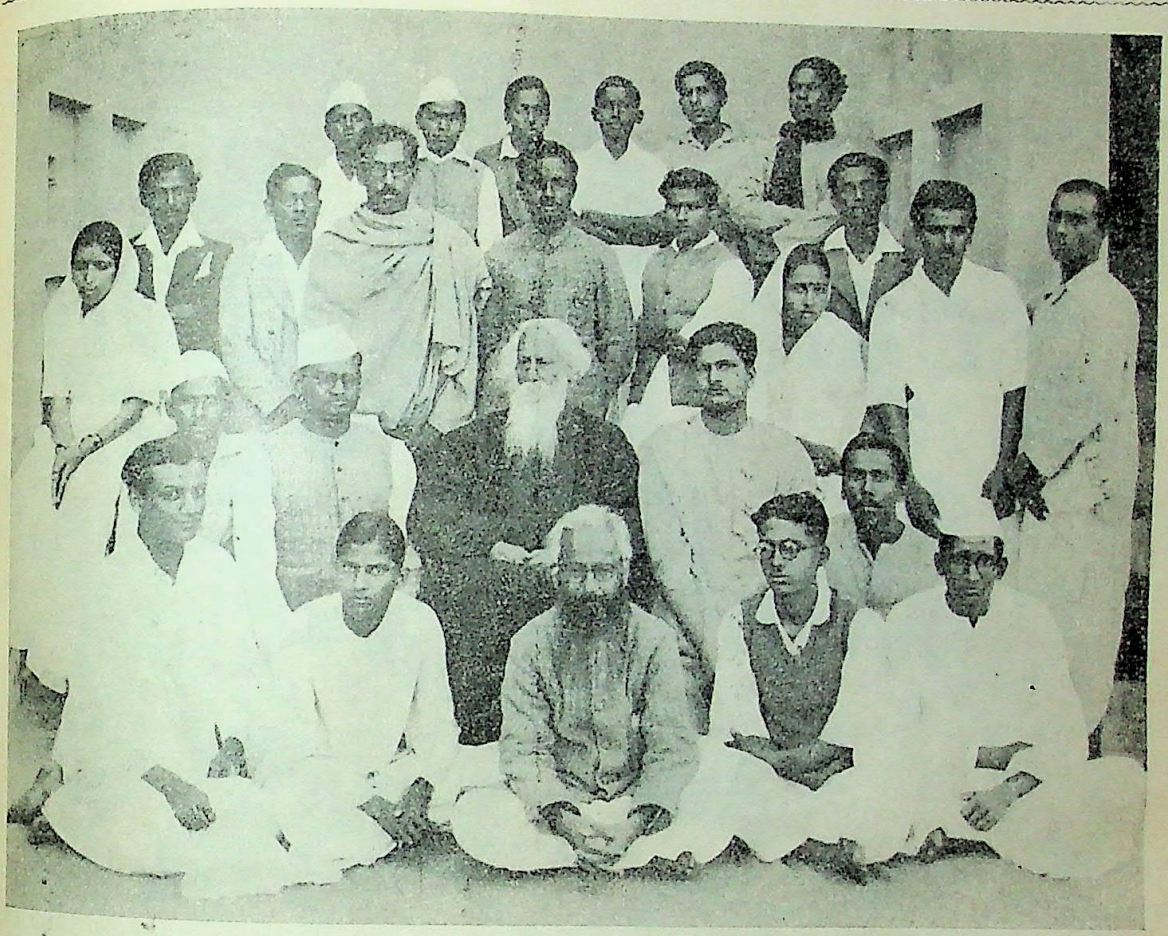

बाईं ओरसे—प्रथम पंक्ति—पी० अ० गावड़े, हीरालाल, प्रो० गु० द० मल्लिक, अ० कलाम तथा गुप्तेश्वर। द्वितीय पंक्ति—टि० प० रड्डी, राय सो० ना० सिंह (मंत्री), डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रा० प्र० शुक्ल तथा ललिताशंकर। तृतीय पंक्ति—श्री प्रेमलता खंडूरी, स० ग० खड़के, चि० वि० आप्टे, पं० ह० प्र० द्विवेदी (सभापति), पं० दुर्गा प्र० पाण्डेय, गो० लाल जोशी, कु० जयन्ती देवी पाण्डेय, बा० ब० जागीरदार, हि० सिंह सिसोदिया तथा दुर्गा कु० राय। चतुर्थ पंक्ति—म० ना पण्डया, श० प्र० बघेल, वे० सत्यनारायण, गु० प्र० सिंह, अरुण मिश्र तथा न० के० बोब्डे।

हिन्दी-कविता) पर व्याख्यान दिया। ११ अगस्तको श्री जैनेन्द्रकुमारजीने Potentialities and Drawbacks of the Hindi Literature (हिन्दी-साहित्यके निहित गुण तथा दोष) पर व्याख्यान दिया। व्याख्यानोंके लिए पं० श्रीराम शर्मा द्वारा हिन्दी-समाजको १७५) का दान मिला, जिसके लिए हिन्दी-समाज चिर-कृतज्ञ रहेगा। इस धनमें से इस समय ८६) समाजके कोषमें है। हम लोग प्रायः अहिन्दी-भाषा-भाषी लोगोंसे भी मिलते हैं। ६ अगस्त १९३६, २३ सितम्बर १९३६ तथा २७ जनवरी १९३७ को गुजराती-भाषा-भाषी लोगोंके साथ हिन्दी-समाजकी सभाएँ हुईं। स्थानीय व्यय सदस्योंके चन्दे द्वारा होता है।

हम लोगोंकी एक बड़ी आकांक्षा यह है कि यहाँपर (शान्ति-निकेतन ऐसे शिक्षा-केन्द्रमें) एक हिन्दी-भवन बनाया जाय। इस अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रमें, जहाँ चीन तकने अपना पृथक् भवन बना रखा है, एक हिन्दी-भवनकी परम आवश्यकता है। २५ अगस्तको श्री भागीरथमल कानोडिया यहाँपर पधारे थे। उस समय हिन्दी-भवनके लिए एक स्थान भी चुन लिया गया था। गुरुवार १८ फरवरी १९३७ को संध्याके ६॥ बजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति-निकेतन हिन्दी-समाजकी बालिका सदस्याएँ

कवि रवीन्द्रनाथके कलकत्तेके वास-स्थानपर राजस्थान रिसर्च सोसाइटीके तत्त्वावधानमें एक सभा हुई थी, जिसमें कवीन्द्रने उपस्थित होकर भाषण दिया था। इस अवसरपर श्री सीताराम सेकसरिया तथा रायबहादुर रामदेव चोखानीने शान्ति-निकेतनमें हिन्दी-भवनके सम्बन्धमें अपील की तथा ७०००) की आवश्यकता बतलाई। सेकसरियाजीने यह भी कहा कि वहाँके वर्तमान हिन्दी-अध्यापकोंको धनाभावके कारण बहुत साधारण वेतन दिया जा रहा है। सभामें हिन्दी-भवनके निर्माणके लिए १७००) एकत्रित हो गये, जिसके लिए हिन्दी-समाज दाताओंको हार्दिक धन्यवाद देता है।

अन्तमें कृतज्ञताके साथ हिन्दी-समाजके मुख्य-मुख्य कार्यकर्ताओंका उल्लेख करना आवश्यक होगा। विश्वविख्यात दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज़ने समाचारपत्रोंमें हिन्दी-समाजके सम्बन्धमें लेख लिखकर जनतासे हर प्रकारकी सहायता करनेकी अपील की है। १ दिसम्बर १९३६ को हिन्दी-समाजकी सभामें भी आपने हिन्दी तथा हिन्दी-भवनके लिए अपने विचार प्रकट किये और यह भी कहा कि हिन्दी-भवनका शान्ति-निकेतनमें होना परम आवश्यक है। जनताने भी आपकी अपीलके प्रति उत्साह दिखाया है। श्री भगीरथमल कानोडिया, श्री सीताराम सेकसरिया, श्री रामदेव चोखानी आदि अनेक सज्जन हिन्दी-समाजके कार्यमें दिलचस्पी ले रहे हैं। आशा है कि श्रीयुत ऐण्ड्रूज़ तथा उपर्युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जनोंके उद्योगसे शीघ्र ही हिन्दी-भवन बन जायगा। कुछ महानुभावोंने समाजको हिन्दी-पुस्तकें भेजी हैं और कुछ सम्पादक महोदय अपने समाचारपत्र भेजते हैं—'कर्मवीर' और 'स्वराज्य' खंडवा, 'राजस्थान' अजमेर, 'नव-राजस्थान' अकोला तथा 'बालक' लहेरियासराय। इन सबको मैं हिन्दी-समाजकी ओरसे धन्यवाद देता हूँ।

हम लोग इस बातके स्वप्न देखा करते हैं कि अब जब कभी दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ और महात्मा गांधी शान्ति-निकेतन पधारें, तो उनका स्वागत हिन्दी-भवनमें ही किया जाय।

इस समय हिन्दी-भाषा-भाषी तथा अहिन्दी-भाषा-भाषी हिन्दी-समाजके सदस्योंकी संख्या कुल मिलाकर लगभग ६०के है।

चले चलो, चले चलो !

नाना श्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम्,
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सदा।
चरैवेति चरैवेति।

हे रोहित, जो हाथ-पर-हाथ रखे बैठा रहता है, उसे श्री नहीं मिलती। आलसी आदमी पापी है, तुच्छ है। इन्द्र सतत विचरणशीलके ही साथी हैं, इसलिए सदा चले चलो, चले चलो।

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः,
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।
चरैवेति चरैवेति।

चलनेवालेकी जंघाएँ पुष्पिणी होती हैं, आत्मा वर्द्धिष्णु और फलग्राही होता है, सभी पाप मार्गमें ही हत होकर (तीर्थक्षेत्रादिके मार्गमें, देवताओंके दर्शन और तीर्थजन्य श्रमसे हत होकर—सायण) सो जाते हैं—दब जाते हैं। चले चलो, चले चलो।

आस्ते भग आसीनस्योर्द्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतिः,
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः।
चरैवेति चरैवेति।

बैठे हुए आदमीका सौभाग्य रुका रहता है, उद्योगके लिए खड़े होनेवालेका सौभाग्य भी उठ खड़ा होता है, सोनेवालेका भाग्य भी सो जाता है और चलनेवालेका सौभाग्य भी (वृद्धिकी ओर) चल पड़ता है—चले चलो, चले चलो।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः,
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।
चरैवेति चरैवेति।

सोनेवाला कलियुग है, जगनेवाला द्वापर, उठ खड़ा होनेवाला त्रेता और चलते रहनेवाला सत्ययुग होता है—चले चलो, चले चलो।

चरन्वै मधु विन्दन्ति चरन् स्वादु मुदुम्बरम्,
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।
चरैवेति चरैवेति।

चलते हुएको मधु मिल जाता है, वह सुस्वादु उदुम्बर (गूलर—उस युगका रसगुल्ला!) पा जाता है, सूर्यकी श्रेष्ठता (तेज) तो देखो, जो चलता हुआ कभी थकता ही नहीं—चले चलो, चले चलो।

ऐतरेय ब्राह्मण ७।३।३।१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फीरोज़खांकी बन्दूक़

श्री आर० टी०

बुड्ढा फज़ल क़ादिर ज़ातका खट्टक पठान है। वह बन्नूकी सरहदपर पैदा हुआ था और अपने गाँव कूज़-पराराका 'लम्बरदार' है। कूज़-परारा मुट्ठी-भर गन्दे कच्चे मकानोंका एक गाँव है, जो अटकके पास सिन्धु नदीके पश्चिम धूपसे तपी हुई पहाड़ियोंके ऊँचे दामनमें बसा हुआ है। हिन्दुस्तानकी सरहदके इस हिस्सेकी नाहमवार चटियल ज़मीन संगदिल, और अनउपजाऊ है। निचाट नंगी चट्टानें तीन-तीन चार-चार हज़ार फीटकी उँचाई तक दीवारकी तरह उठती चली गई हैं। आसपास गहरे-गहरे नाले हैं, जो बरसातमें तो घरघराकर बहते हैं; पर सालके ग्यारह महीने सूखे पड़े रहते हैं। तरावट देनेवाली सब्ज़ीकी खोजमें दर्शककी आँखें चारों तरफ़ हेरती-हेरती थक जाती हैं, मगर हरियालीका तिनका भी नज़र नहीं आता। इस बियाबान वीरान खित्तेकी जहाँ-तहाँ बिखरी हुई आबादी अपने दीन-हीन गाँवोंके पास छोटे-मोटे खेतोंको खरोंच-खरोंचकर कुछ पैदा कर लेती है और उसीपर किसी तरह मार-पीटकर ज़िन्दगी बसर करती है। उनकी बकरियाँ और सूखे-साखे मवेशी भी चट्टानी ढालोंपर न-जाने किस ढंगपर ज़िन्दा रहते हैं। ५०० फीट ऊँचा एक ढाल कूज़-पराराको पहाड़ियोंके असली सिलसिलेसे मिलाता है। इस ढालके ऊपरसे सिन्धु-नदी अटकके पुराने क़िलेके नीचे मटीली धारासे बहती नज़र आती है। इस टीबेके ऊपर प्रकृतिने चट्टानोंका एक अजीब ढेर-सा इकट्ठा कर दिया है, जो नकशा बनानेवालोंको डाँडेका काम देता है। सचमुच ही सर्वेके नक्शोंमें टीलेका यह ढेर 'प्वाइंट नंबर ३०३१' के नामसे लिखा गया है।

कूज़-पराराके लम्बरदारको नकशेका ज्ञान नहीं है। सर्वेयरके लिए 'प्वाइंट नंबर ३०३१' का क्या महत्त्व है, उससे भी वह नावाकिफ़ है। मगर वह भलीभाँति जानता है कि चारों तरफ़के इलाक़ेकी चौकसीके लिए यह टीला लासानी है। दोपहरके बाद सूरजकी रोशनीसे महफ़ूज़ और देखनेवालोंकी नज़रोंसे छिपा हुआ वह इस टीबेपर घंटों बैठा रहता था। आसपासकी सारी दुनिया उसके नीचे बिखरी होती थी और वह उसकी निगरानी किया करता था।

उसके पैरोंके नीचे सिन्धुके उस पार दो मीलकी दूरीपर पंजाबका चौरस मैदान शुरू हो जाता है, और जहाँपर ज़मीन-आसमान मिलते नज़र आते हैं, वहाँ तक फैला हुआ दीख पड़ता है। उत्तरकी तरफ़ गर्दन घुमाकर देखनेसे बहुत दूरपर जहाँ-तहाँ काबुल नदीकी धाराके कुछ फुटफैल हिस्से नज़र आते हैं, जो पहाड़ोंपर होती हुई सिन्धुके मटीले पानीमें मिलनेको आती है।

पूर्वकी तरफ़से नार्थ वेस्ट रेलवेकी पटरीके साथ-साथ सूतके धागेकी तरह पक्की सड़क नदीकी तरफ़ आती दीख पड़ती है। अटकसे दक्षिणकी तरफ़ एक बदनुमा, कमर झुका-सा, लोहेका पुल सिन्धुको पार करता है। इस पुलके दो भाग हैं—एकसे रेल गुज़रती है और दूसरेसे सड़क। हिन्दुस्तानकी तरफ़से जो कोई भी शख्स सूबा सरहदमें दाखिल होना चाहता है—चाहे वह सड़कसे चलकर आवे, या फ्रांटियर-मेलपर आरामसे बैठकर—उसे इस पुलके ऊपरसे होकर गुज़रना लाज़िमी है।

अटकके पुलकी चला-फिरी बूढ़े फज़ल क़ादिरके लिए बेहद दिलचस्पीकी चीज़ थी। उसके टीलेके नीचे पुलपर हर तरहके आदमी, जानवर, सवारियाँ और सामान गुज़रा करते थे। कभी बैलगाड़ियोंका ताँता बँध जाता था—क्योंकि हिफ़ाज़तके ख्यालसे अधिकतर गाड़ीवाले इकट्ठे होकर ही चलते हैं—और कभी खैबरकी राह अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तानके बीच चलनेवाले कारवानोंके ऊँटोंकी क़तारें नज़र आती थीं। 'पिण्डो और पेशावरके दरम्यान छावनियाँ बदलते वक्त गोरी या काली फ़ौज मार्च करती हुई इसी पुलपर से निकलती थी। कभी तेज़ रफ़्तारवाली मोटरें आतीं और कभी फ़ौजी पहरेमें सामानसे लदी हुई कमसरियटकी लारियाँ गुज़रतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़कके ज़रिये पुल पार करनेवालोंका कोई दिन या समय नियत नहीं। कभी तो कई-कई दिन तक एकदम सन्नाटा रहता और कभी आमद-रफ़्त इतनी ज़्यादा हो जाती कि खत्म होने ही न आती। मगर पुलके रेलवाले हिस्सेमें हर रोज़ निश्चित वक़्तपर निश्चित गाड़ियाँ गुज़रा करतीं। रोज़-रोज़ देखते हुए फ़ज़ल क़ादिर इतना अभ्यस्त हो गया था कि वह ठीक-ठीक यह बता सकता था कि अब कौन-सी ट्रेन किधरसे आयेगी और उसके आनेमें कितनी देर है!

कैम्बेलपुर स्टेशनसे जैसे ही कोई गाड़ी अटककी तरफ़को छूटती, वैसे ही बुड्ढे फ़ज़ल क़ादिरकी तेज़ आँखें ग्यारह मीलकी दूरीसे आस्मानपर उसका सफ़ेद धुआँ देख लेती थीं। धीरे-धीरे बढ़ती हुई गाड़ी नदीकी तरफ़ आती और आकर पुलके क़रीब स्टेशनपर खड़ी हो जाती। पुलकी हिफ़ाज़तके लिए पुलके किनारेपर फ़ौजी चौकियाँ और फसीलें (वाच टावर) बनी हैं। गाड़ी खड़ी होते ही फसीलके भीतरसे खाकी वर्दीवाले सिपाही निकलते और फ़ज़ल क़ादिर अपने टीलेसे उन्हें चीटियोंकी तरह दौड़ते-धूपते देखता। ये सिपाही खड़खड़ाकर पुलके विशाल फौलादी फाटक खोल देते। गाड़ी भक-भक धुआँ उड़ाती हुई पुलमें दाखिल हो जाती। जैसे ही गाड़ीकी आखिरी गाड़ी पुलमें घुसती, वैसे ही भड़भड़ाहटकी आवाज़के साथ पुलका फौलादी फाटक बन्द कर दिया जाता। जब गाड़ी पुलके दूसरे सिरे—पश्चिमी सिरे—पर पहुँचती, तो वहाँ भी इसी तरह फाटक खोला जाता था। गाड़ी पुलसे निकलकर साँपकी तरह रेंगती हुई खैराबादकी सुरंग (टनेल) में घुस जाती। दोनों तरफ़के फाटक बन्द हो जानेपर सिपाही फिर अपनी फसीलके भीतर आड़में गायब हो जाते थे और पुलपर सन्नाटा छा जाता था। सुरंगके भीतर घुसते और निकलते समय ट्रेनोंकी सीटीकी आवाज़ फ़ज़ल क़ादिरको सुनाई पड़ती थी। सुरंगसे निकलकर नौशेराकी तरफ़ बढ़ती हुई गाड़ी जब छै मील दूर जहँगीराके पास पहुँचती, तब वह फिर फ़ज़ल क़ादिरको नज़र आती थी।

क़रीब-क़रीब हर रोज़ कूज़-परारका लम्बरदार—अपनी जातिके स्वभावके अनुसार—टीलेपर चढ़कर घंटों चुपचाप बैठा रहता। वह कुछ सोचता हो, सो भी नहीं। बस, चुपचाप खाली दिमाग़ बैठे-बैठे पुलकी तरफ़ ताकनेमें ही उसे संतोष था। लेकिन एक दिन—जब हमारा क़िस्सा शुरू होता है—फ़ज़ल क़ादिर बहुत चिन्तामें डूबा बैठा था। वह अपने लिए चिन्तित नहीं था, उसकी चिन्ता थी अपने बेटेके लिए, जिसने दो-तीन दिन पहले ही एक ऐसा काम किया था, जो उसे मौतके तख्ते तक पहुँचा सकता था। बात यह थी कि उस साल गर्मियोंमें सरहदी क़बीलोंने अंगरेज़ी सरकारके खिलाफ हथियार उठाये थे। गर्मी-भर छोटे-मोटे मोर्चे होते रहे, और अन्तमें सिर्फ़ तीन दिन पहले इन क़बीलोंके एक दलने पेशावर छावनीके सप्लाई डिपोपर हमला किया था। फ़ज़ल क़ादिरका बेटा भी इस हमलेमें शामिल था।

इस हमलेके असफल होनेपर 'लश्कर' वाले * तितर-बितर होकर अपने गाँवोंको भाग रहे थे। फ़ज़ल क़ादिरका बेटा फ़ीरोज़खां भी अपने गाँव कूज़-परारको लौटकर गिरफ़्तारीके डरसे दुबका बैठा था। सरहदकी पहाड़ियोंपर खबरें और अफ़वाहें बड़ी तेज़ीसे फैलती हैं। इसके सिवा सरहदके मरभुक्खे लोग चाँदीके चंद टुकड़ोंकी लालचमें मुखबिरी करनेको हमेशा आमादा रहते हैं। इसलिए कोई नहीं जानता कि उसका पड़ोसी कब दग़ाबाज़ी करके उसे गिरफ़्तार करवा दे।

यही सोचते-सोचते फ़ज़ल क़ादिर एकाएक अपने टीलेकी बैठकसे उठ खड़ा हुआ और सिन्धुकी तरफ़ पीठ करके लम्बे क़दम रखता हुआ ढालसे नीचे उतरकर कूज़-परारको चल दिया। उसके बुढ़ापेको देखते हुए उसकी तेज़ रफ़्तार और उसके तने हुए ज़िस्मपर हैरत होती थी।

गाँवमें नीची छतवाले कच्चे मकानके एक धुँधले कोठेमें फ़ीरोज़ चुपचाप लेटा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। इस बातका खयाल करके कि गिरफ़्तार होनेपर उसके गलेमें फाँसीका फंदा ज़रूर ही झूलेगा, फ़ीरोज़खां बहुत शान्त और गम्भीर दीख पड़ता था।

* सरहदी क़बीलोंके हथियारबन्द दल 'लश्कर' कहलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँहसे बिना कुछ कहे फज़ल क़ादिर बेटेके पास जाकर आगकी बग़लमें बैठ गया। फीरोज़ने हुक्केकी मुँहनाल बापके आगे बढ़ा दी ; फज़ल क़ादिर मुँहनाल हाथमें लेकर धुँआ उड़ाने लगा। थोड़ी देर तक खैबरके ये दोनों बेटे उल्लूकी तरह टकटकी लगाये आगकी तरफ़ देखते रहे। एकाएक बुड्ढेने एक लम्बा कश खींचकर हुक्का बेटेके आगे सरका दिया। फिर आहिस्तासे—मानो अनिच्छासे—गला साफ़ करनेके लिए खखारा और खखारको सामनेकी आगपर थूककर बोला—"तीन दिन पहले पेशावरमें जो मार-काट हुई थी, उसमें तुमने क्या हिस्सा लिया था ?"

नौजवानने नथुने फुलाकर हिक़ारतसे कहा—"किसी भी मार-काटमें हिस्सा लेनेका मुझे मौक़ा ही कैसे मिल सकता है ? हमारी मुरदार बन्दूक़ ऐसी है कि कभी गोली इधर फेंकती है, कभी उधर। जिस आदमीके निशाना साधो, उसे लगता ही नहीं ! इस बन्दूक़के बजाय अगर मैं लाठी ही लेकर जाता, तो बेहतर था।"

"क्या ऊटपटाँग बकते हो ?" फज़ल क़ादिरने चिड़चिड़ाकर कहा—"मेरे हाथों और मुझसे पहले बाबा (पिताजी) के हाथोंसे इसी बन्दूक़ने पाँच बार पाँच आदमियोंका सफाया किया है ; लेकिन तुम्हारे हाथोंमें जाकर बन्दूक़ निशाना ही नहीं लेती ! ज़रा बन्दूक़ लाओ तो।"

फीरोज़ने धीरे-धीरे अपने लम्बे शरीरको ऊपर उठाया और हाथ बढ़ाकर छतकी धन्नीपर से एक पुरानी बन्दूक़ उतारकर फज़ल क़ादिरके आगे बढ़ा दी। बन्दूक़ पुराने ज़मानेकी 'ली-मेटफोर्ड राइफल' थी, जो बहुत खस्ताहाल हो रही थी। फज़ल क़ादिर बन्दूक़के कुटे-पिटे कुन्देपर प्यारसे हाथ फेरता हुआ बोला—"यह मालक़न्दकी जंगमें बाबाके हाथ लगी थी, जब तुम पैदा भी नहीं हुए थे।" कुन्देकी तलीमें चाकूसे काटी हुई पाँच गहरी लकीरें बनी थीं। उनमें से पहली लकीरको दिखलाते हुए फज़ल क़ादिरने कहा—"यह उस शख्सकी यादगार है, जिसके हाथोंसे बाबाने बन्दूक़ छीनी थी। बाक़ी दो निशान मोहमन्द इलाक़ेमें लगे थे, जब तुम बहुत छोटे थे। यह चौथा निशान ईसाखेलका है। उस चोट्टेने शबक़दरके रास्तेमें मुझे लूटना चाहा था, मगर इसी बन्दूक़ने उसे जहन्नुम-रसीद कर दिया—" फज़ल क़ादिर अपनी पुरानी स्मृतिको जगाकर खुश होता हुआ कहता गया—"और आखिरी निशान अलीज़ईके उस बदमाशका है। उसे तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ। और अब तुम यह कहते हो कि बन्दूक़ आदमीपर निशाना ही नहीं लेती—कभी गोली इधर फेंकती है, कभी उधर ! गोया निशानेबाज़का क़सूर नहीं, हथियारका क़सूर है ! 'ज़ोया' (बेटा), इसका इम्तहान अभी हुआ जाता है कि बन्दूक़का क़सूर है, या बन्दूक़चीका।"

बुड्ढेने ढीठतासे एक अधजली लकड़ी उठाई और मकानके बाहर खुलेमें निकल आया। वहाँ एक खँडहरकी मिट्टीकी दीवारपर उसने अधजली लकड़ीके कोयलेसे खरबूज़े-इतना बड़ा 'चाँद' और 'गुल'* बनाया। फिर लम्बे-लम्बे क़दमोंसे उसने दीवारसे गिनकर सौ क़दमकी दूरी नापी और वहाँ पेटके बल लेटकर एक पत्थरपर दृढ़तासे बन्दूक़ जमा दी।

उसके तीन ओर दर्शकोंका हुजूम भी जुड़ गया। दर्शकोंमें तीन-चार कुत्ते थे, जिनके बदनपर खारिश हो रही थी, दो थके-माँदे मरियल-से बूढ़े थे और लगभग एक दर्जन आवारा लड़के। बुड्ढेने बहुत सम्हलकर—दम साधकर—तीन बार बन्दूक़ भरी और दागी। हर बार पुरानी बन्दूक़की घनगरज आवाज़पर आसपासकी पहाड़ियाँ प्रतिध्वनिसे गूँज उठतीं। आखिरी गूँज खत्म हो जानेपर फज़ल क़ादिर उठा और अपने बेटे तथा दर्शकोंके झुण्डके साथ जाकर दीवारको देखने लगा ! 'गुल'पर या 'चाँद'के भीतर निशाना पड़ना तो दूर रहा, सिर्फ एक गोली 'चाँद'के किनारेपर पड़ी थी। दूसरा निशाना 'चाँद'से लगभग दो फीट ऊपर पड़ा था और तीसरा उससे भी ज़्यादा फासलेपर नीचेकी तरफ। इतने ही

* निशानेके अभ्यास (चाँदमारी) के लिए दीवारपर एक गोल वृत्ताकार रेखा बनाई जाती है, जिसके केन्द्र-स्थानपर एक काला निशान बनाते हैं। वृत्ताकार रेखा 'चाँद' और केन्द्रीय बिन्दु 'गुल' कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मामला खत्म नहीं था। राइफलकी घूमती हुई गोली जब ठीक-ठीक किसी चीज़पर पड़ती है, तो साफ गोल सूराख बनाती है। लेकिन फज़ल क़ादिरने देखा कि एक भी निशानेका सूराख गोल नहीं है। उसकी राइफलसे निकली हुई गोलियाँ नोककी तरफसे सीधी न घुसकर टेढ़ी-मेढ़ी होकर पड़ी हैं।

दीवारपर लगे हुए तीनों छपक्के मूक भाषामें पुकार-पुकारकर कह रहे थे कि लम्बरदारकी बन्दूक़ अब ऐतबारके क़ाबिल नहीं रही। जो गोली इत्तफाकसे 'चाँद' के सिरेपर पड़ी थी, वह भी कुलाचें खाकर लम्बी होकर दीवारमें घुसी थी। यह देखकर फज़ल क़ादिर हदसे ज्यादा सन्नाटेमें आ गया और चुपचाप मुँह फेरकर शामके बढ़ते हुए अँधेरेमें अपने घरको चल दिया।

उस रातको सोते-सोते फीरोज़खांने जो करवट बदली, तो उसे मालूम हुआ कि उसका 'ज़ोड़ बाबा' (बूढ़ा बाप) उठकर उसके पास खड़ा है। फज़ल क़ादिरने बेटेके पास बैठकर धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"इन्सानकी तरह बन्दूक़ भी सिर्फ एक ही पुश्त ज़िन्दा रहती है। हमारी यह बन्दूक़ दो पुश्त तक काम दे चुकी। अब इससे यह कहना कि यह तीसरी पुश्त भी ज़िन्दा रहे, बेवकूफी है। 'ज़ाया' (बेटा) अब ऐसी तरकीब निकालनी चाहिए, जिससे तुम्हारे पास अपनी अलग नई बन्दूक हो।"

दूसरे दिन सूरज निकले फज़ल क़ादिर इस बातकी टोह लगानेके लिए कि पेशावरकी वारदातके मुतल्लिक उसके बेटेके खिलाफ तो कुछ नहीं हो रहा है, रेलवेकी तरफ जाता हुआ नज़र आया। पहाड़ी घाटियोंसे अभी छाया दूर भी नहीं हुई थी कि वह हाथमें लाठी लिये शहीदान खार (नाले) की सूखी तलेटीसे होकर चलने लगा। दो घंटे तक तेज़ीसे चलकर वह उस ठिकाने पहुँचा, जहाँ कंकरीटके एक भोंडे-से पुलपरसे रेलवे लाइन नालेको पार करती है। यहाँ नालेके ऊपर चढ़कर वह मैदानकी पगडंडीपर पहुँच गया। सामने ही खैराबादका गाँव आबाद है। गाँवमें घुसकर फज़ल क़ादिर गाँवके 'मलिक' (मुखिया) और अपने दोस्त तथा रिश्तेदार दीवानशाहके यहाँ पहुँचा।

फज़ल क़ादिर और दीवानशाह—दोनों बुड्ढे मुहब्बतसे मिले और बैठकर बातें करने लगे। घरकी खैरसल्ला, नाते-रिश्तेदारोंकी खबरें, गाँवकी गप्पें और अफवाहें, एक दूसरेको दी गईं और बाहरी दुनियाँकी खबरें मालूम की गईं। अफरीदियोंकी लड़ाईकी जो खबरें दीवानशाहको मालूम हुई थीं, वह उसने पूरे विस्तारके साथ कह सुनाई। उसने बतलाया कि किस तरह पेशावरके दक्षिण, वज़ीरीबागमें अफरीदी लोग कई दिन तक सरकारकी बीस हज़ार फौजोंका सामना करते रहे।

उसने बतलाया कि सरकारी फौज पैदल, घुड़सवारों और हवाई-जहाज़ोंसे हमला करनेकी अचूक योजनाएँ तैयार करती है; लेकिन भागनेमें कामिल और फरेबी अफरीदी चरका देकर उसे रेगिस्तान या पहाड़ियोंमें ले जाकर भटकाते हैं, जहाँ उसकी सारी योजनाएँ फिस्स हो जाती हैं। सरकारी फौज भटक-भटकाकर जैसे ही अपने तारके घेरेके अन्दर लौट आती है, वैसे ही उसके पीछे-पीछे अफ़रीदी भी आ धमकते हैं और फिर वही पीछा करना और लुकना-छिपना शुरू हो जाता है। दिन-भर तो अफरीदी सरकारी फौजसे बचनेके लिए दूर-दूर भागते फिरते हैं; लेकिन रातमें कम्बख्त ठीक छावनीके दरवाज़ेपर पहुँचकर पहरेदारोंकी ताक़त-आज़माई करते हैं!

यह सब कहकर आखिरमें जब दीवानशाह हवाई-जहाज़ोंसे बम बरसानेकी बात कहने लगा, तो उसका चेहरा घृणासे भर उठा। उसने थूककर कहा—"भला, पहले कभी इस बेहूदा तरीकेसे जंग तै की जाती थीं! यह भी कोई बहादुरीका काम है?"

धीरे-धीरे फज़ल क़ादिरके दिलको कुछ इत्मीनान हुआ। बातचीतसे उसे मालूम हो गया कि आसपासके इलाक़ेमें किसीको इस बातका पता नहीं कि हाल ही में उसके बेटेने भी सरकारके खिलाफ़ हथियार उठाया था। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि अलग-अलग बाग़ियोंकी गिरफ्तारीके लिए भी सरकार कोई सरगर्मी नहीं दिखला रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने सुना है कि रेलवे लाइनकी हिफाज़तके लिए रेलवेके गाँवोंमें 'ख़स्सादार' * भरती किये जानेवाले हैं। क्या यह सच है ?"—एकाएक फज़ल क़ादिरने पूछा।

खैराबादके मलिकने जवाब दिया—"यहाँ नहीं। जहाँ ख़स्सादार मुक़र्रर किये जायँगे, वह जगह यहाँसे बहुत दूर—नौशेरा और पेशावरके बीचमें—है।"

"अगर आयन्दा कभी खैराबादके नज़दीक ख़स्सादारोंकी ज़रूरत हो, तो क्या आप समझते हैं कि फीरोज़खां उनमें भरती हो सकता है ?"—फज़ल क़ादिरने पूछा।

"पिछले कई सालसे खैराबादका इलाक़ा एकदम 'कलार' (खामोश) है।" दीवानशाहने जवाब दिया—"इसके सिवा अटकमें फौजकी एक पूरी कम्पनी रहती है, जो यहाँसे सिर्फ एक घंटेकी राहपर है, इसलिए खैराबादमें ख़स्सादारोंकी कभी ज़रूरत ही न होगी।"

"आपका कहना शायद सच है।"—फज़ल क़ादिरने मायूस होकर कहा—"इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरा बेटा कभी खस्सादार न हो सकेगा। कूज़-परारा-जैसे गाँवमें किसी दिलेर नौजवानकी तबीयतके मुआफ़िक़ कोई काम मिलना आसान बात नहीं है। फिर भी दीवानशाह, मैं आपसे यह इल्तिजा करता हूँ कि अगर कभी खैराबादमें खस्सादार चाहने पड़ें, तो आपके रिश्तेदार और दोस्त फज़ल क़ादिरका बेटा फीरोज़खां भुलाया न जाय।"

"इस बातका मैं अभी ही वादा किये देता हूँ।" दीवानशाहने कहा—"लेकिन यह समझ रखिये कि अमन-पसन्द खैराबादको कभी भी ख़स्सादारोंकी ज़रूरत न होगी।"

शामके नज़दीक फज़ल क़ादिरने दीवानशाहसे रुखसत ली और धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ता हुआ कूज़-पराराको लौट आया। वहाँ उसने फीरोज़खांको वह सब ख़बरें बतलाईं, जो उसने दिन-भरमें इकट्ठा की थीं। रातमें जब दोनों बाप-बेटे अपनी-अपनी चारपाइयोंपर अगल-बगल लेटे, तो बेटे कहा—"आप बार-बार मुझे यह क्यों सुनाते हैं कि रेलवेके ख़स्सादारोंको साहब लोग एक रुपया रोज़ देते हैं, और हरएक ख़स्सादारको एक-एक राइफल और तोबड़ा भरके कारतूस भी मिलते हैं। आप यह तो जानते ही हैं कि ख़स्सादारोंमें सिर्फ वही भरती हो सकता है, जो अपनी ड्यूटीकी जगहसे दो-चार मीलके भीतरका रहनेवाला हो। दूरका रहनेवाला ख़स्सादार नहीं हो सकता, और सबसे नज़दीककी जगह जहाँ ख़स्सादार हैं, यहाँसे कम-से-कम एक दिनकी दूरीपर है। कूज़-पराराके नज़दीक कभी ख़स्सादार मुक़र्रर होनेके नहीं।"

" 'ज़मा ज़ोया', (मेरे बेटे) थोड़ा सब्र करो।"—बुड्ढेने जवाब दिया—"कलकी खबर कल ही जानता है।"

दूसरे दिन रोज़मर्राके वक़्तपर फज़ल क़ादिर बग़लमें अपनी बेएतबार खान्दानी राइफलको दबाकर कूज़-पराराके टीलेपर—अपने बैठनेके स्थान 'प्वाइंट नं० ३०३१' पर—चढ़ा। वहाँ पहुँचकर काई दस मिनट तक वह चारों तरफ़के इलाक़ेको ग़ौरसे देखता—छानता—रहा। फिर पेटके सहारे लेटकर धीरे-धीरे रेंगता हुआ वह एक नालेमें पहुँचा, जो सामनेके ढालपर होकर गुज़रता था। नालेके भीतर वह धीरे-धीरे लुढ़ककर अटकके पुलकी जानिब बढ़ने लगा। दस-पाँच गज़ लुढ़ककर वह कुछ देरके लिए एकदम ठिठक जाता और जब इत्मीनान हो जाता कि उसकी हरकतपर किसीकी निगाह नहीं पड़ी, तो फिर आगे बढ़ता। इस तरह बढ़ते-बढ़ते वह सुरंगके ऊपर एक ऐसी छिपी हुई जगहपर पहुँच गया, जो अटकके पुलके ठीक सामने पड़ती थी।

उसने अपनी पुरानी बन्दूक़को बहुत होशियारीसे भरा। आहिस्तासे उसकी नाल झाड़ियों और पत्थरोंके बीचमें घुसेड़कर पुलकी तरफ़ कर दी और खुद पीछेके अदृश्य गढ़ेमें आरामसे लेट रहा। उसने शिस्त लगाकर देखा, तो मालूम हुआ कि उस जगहसे वह पुलके फाटकपर या पुलसे गुज़रनेवाली किसी भी चीज़पर आसानीसे निशाना ले सकता है। बन्दूक़को इस तरह जमाकर कि ज़रूरत पड़नेपर बिना हिले-डुले वह उसको

* सरहदी इलाकेमें अनेक बार रेल लूटी गई या लाइन उखाड़ फेंकी गई थी। इसे रोकनेके लिए लाइनपर पहरेदार मुक़र्रर किये गये हैं, जो खस्सादार कहलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नली इधर-उधर घुमा सके, फ़ज़ल कादिर इन्तज़ार करने लगा।

शीघ्र ही उसके नीचेकी सुरंगसे घड़घड़ करती एक मालगाड़ी निकली और पुल पार करके थोड़ी ही देर बाद कैम्बेलपुरकी तरफ़ अदृश्य हो गई। बीच-बीचमें दो-चार मोटरें अपने पीछे धूलके अम्बार उड़ातीं और पुलके सन्तरियोंके आराममें खलल डालतीं इधरसे उधरको या उधरसे इधरको निकल जाती थीं। आध घंटे बाद बहुत दूरीपर आस्मानमें फ़ज़ल क़ादिरकी पठानी आँखोंने उस चीज़के आसार देखे, जिसका वह इन्तज़ार कर रहा था।

दस मिनट बाद मुसाफ़िरी डब्बोंसे भरी हुई लम्बी फ्रांटियर मेल पंजाबकी जानिबसे आकर अटक स्टेशनपर थमी। पुलके उस सिरेपर कोई आधा दर्जन सिपाही खाकी वर्दी और खाकी पगड़ी पहने चौकीकी फसीलसे निकले और उन्होंने भड़-भड़ करते हुए पुलका फाटक खोल दिया। गाड़ी पुलपर दाखिल हुई। अब पुलके इस तरफ़का फाटक भी खोला गया और इंजन भाप और धुएँके गुब्बारे उड़ाता हुआ धीरे-धीरे तेज़ी पकड़ने लगा।

फ़ज़ल क़ादिरका ऐन मौक़ा आ गया!

अपनी खान्दानी बन्दूक़पर गोकि उसे भरोसा जाता रहा था, फिर भी उसने इंजनके सामनेके चमचमाते हुए गोल—थालीनुमा—भागपर निशाना लेकर घोड़ा दबा ही तो दिया। गोली ज़ोरकी झनझनाहट करती इंजनसे लगकर छिटक गई। बन्दूक़की घनगरज आवाज़ और उसके साथ गोलीकी झनझनाहट आसपासकी पहाड़ियोंमें बार-बार ध्वनित-प्रतिध्वनित हुई। इन पहाड़ियोंमें आवाज़ ऐसे ज़ोरसे और ऐसे ढंगसे प्रतिध्वनित होती है कि यह पता लगाना नामुमकिन है कि आवाज़ आई किस सिम्तसे—बन्दूक़ चलानेवाला है किधर।

इसके बाद जो तमाशा हुआ, उसे देखकर कूज़-पराराका लम्बरदार अपनी हँसी न रोक सका। वह शैतानी भरी खुशीसे खामोश हँसी हँसने लगा। ब्रेकोंकी खिचखिचाहटके साथ गाड़ी रुक गई। आश्चर्यसे अकचकाये हुए ड्राइवर और फोरमैन इंजनसे उतरे और परेशानीसे सिर खुजाते हुए इंजनके चारों तरफ़ घूम-फिरकर देखने लगे। शीघ्र ही पुलके सन्तरी और कुछ मुतफर्रिक मुसाफिर भी आकर जमा हो गये। कुछ तो बन्दूक़की आवाज़का सबब जाननेके लिए उतर आये और कुछ सिर्फ़ टाँगें सीधी करनेका बहाना पाकर ही आ गये। कोई पूरा सूट पहने था, कोई सिर्फ़ बनियाइन और शलवारमें था और किसीका साफ़ा सिरपर न होकर गलेमें लटक रहा था। वे लोग स्लीपरों और रोड़ोंपर उचकते, फाँदते, धोकेसे एक-दूसरेका पैर कुचलते हुए, बिना माँगे ही अपनी राय देने लगे। दस मिनट तक इसी तरह चला-फिरी और रायज़नी होती रही; मगर गोलीकी पहेली हल न हुई। आखिरकार मुसाफ़िर अपनी-अपनी जगह वापस गये और गाड़ी सीटी देकर फिर आगे बढ़ने लगी।

अचानक फ़ज़ल क़ादिरकी प्रतिभा जाग उठी और इस बार उसने दूसरे निशानेके लिए पुलका विशाल फौलादी फाटक चुना। फाटक इतना लम्बा-चौड़ा था कि निशाना चूकनेकी सम्भावना ही न थी।

उसकी इस गोलीने तो ऐसा रंग दिखलाया, जो फ़ज़ल क़ादिरकी उम्मीदसे कहीं बढ़कर था। गोलीने फौलादी फाटकसे टक्कर लेकर बड़ी ज़ोरदार झनझनाहटकी आवाज़ की। ड्राइवर अभी तक अनिश्चित-सा था, मगर इस गोलीने उसकी अनिश्चयता दूर कर दी। उसने फ़ौरन ट्रेनको पुलकी तरफ तेज़ीसे 'बैक' किया (पीछे हटाया) और ले जाकर उसे पिछले स्टेशनकी इमारतकी हिफ़ाज़तमें खड़ा कर दिया।

इधर आनन-फाननमें पुलके दोनों फाटक भड़भड़ाकर बन्द कर दिये गये। सबसे ताज्जुबकी बात यह हुई कि फसील (वाच टावर) के धुस्सपर दस-बारह राइफ़लोंकी थूथनी और उनके पीछे उतनी ही खाकी पगड़ियाँ नज़र आने लगीं और कुछ ही मिनटमें ये राइफलें गोलियाँ बरसाने लगीं। पहाड़ियाँ इस अनोखी जंगके शोर-गुलसे गूँज उठीं। दस-पन्द्रह मिनट तक बड़े ज़ोर-शोरसे यह इकतर्फ़ा 'गोलीबारी' होती रही। चूकि दुश्मन तो कहीं नज़र आता न था, लिहाज़ा सिपाही अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोलियाँ इधर-उधर आस्मानमें दागते थे; मगर उस तरफ़ एक गोली भी नहीं छोड़ी गई, जिधर इस सारे तमाशेका बानी, कूज़-पराराका लम्बरदार, लेटा हुआ मन-ही-मन मुसकरा रहा था।

एकाएक गोलियाँ थम गईं। बुर्जकी आड़से सतर्कताके साथ कुछ खोपड़ियाँ निकलीं। उसके बाद उठी हुई उँगलियाँ हर तरफ इशारा करके दुश्मनोंकी उपस्थिति इंगित करने लगीं। उँगलियाँ दसों दिशाओंको इशारा कर रही थीं—अगर इशारा नहीं करती थीं, तो सिर्फ़ उस ओर, जिधर फज़ल क़ादिर बैठा था! इसके बाद बहुत गहरा सन्नाटा छा गया। अगले दो घंटोंमें दो रेलगाड़ियाँ और कोई एक कोड़ी मोटरें तथा सड़कपर चलनेवाली अन्य गाड़ियाँ आईं; लेकिन वे सब पुलके उसी पार स्टेशनकी आड़में रोक दी गईं। किसीको पुल पार करनेकी इजाज़त नहीं दी गई।

जब सूरज ढलने लगा, तब सुरंगके मुँहसे एक हथियारबन्द आर्मर्डकार निकली, जो नौशेरासे फ्रान्टियर मेलका उद्धार करनेको भेजी गई थी। यह आर्मर्डकार शोर मचाती फज़ल कादिरके नीचेसे गुज़रती हुई पुलकी तरफ बढ़ी। आर्मर्ड-कारके भीतर मेशीनगनोंके पीछे चाक-चौकन्ने सिपाही बैठे थे। फौलादी गाड़ीमें गोली चलानेके लिए जगह-जगह मोखले बने थे। इन मोखलोंसे रह-रहकर राइफलोंकी थूथनियाँ झाँकती थीं। आर्मर्डकारके अगले हिस्सेके ठीक बीचो-बीच चढ़ी हुई १२ पौण्डवाली एक तोप बड़े डरावने ढंगसे थूथन उठाये थी। उसके पीछे फौलादी ढालकी आड़में तोपची गोलाबारीको तैयार डटे हुए थे।

लम्बरदार यह सब ग़ौरसे देखता रहा। जब शामके अँधेरेने पहाड़ियों और घाटियोंके ऊपर अन्धकारकी काली चादर बिछा दी, तब वह अपने छिपनेकी जगहसे निकला और तेज़ीसे बढ़ता हुआ घर जा पहुँचा। दिन-भरके दिलचस्प तमाशेसे वह बहुत खुश था।

जिन दिनों सरहदपर फसाद चलता रहता है, उन दिनों पेशावरका फौजी हेडक्वार्टर अपने अफसरोंकी जानकारीके लिए दिन-भरकी फौजी कार्रवाइयोंका एक बुलेटिन निकाला करता है। इस बुलेटिनके अगले अंकमें अन्य खबरोंके साथ यह खबर प्रकाशित हुई:—

"अटक—अफरीदी क़बीलोंने आज अटकके पुलके नज़दीक फ्रान्टियर मेलको रोककर लूटनेकी ज़बरदस्त कोशिश की; मगर पुलपर तैनात पल्टनने बड़ी बहादुरीसे उनका सामना किया, जिससे उनकी कोशिश नाकाम हुई।

बादमें आर्मर्ड ट्रेनकी हिफाज़तमें फ्रान्टियर मेल पेशावर लाई गई। तावक्ते कि दूसरा हुक्म न निकाला जाय मामूली गाड़ियोंका आना-जाना मुल्तवी कर दिया गया है। खास-खास ज़रूरी ट्रेनें ही आयें-जायेंगी। उनकी हिफाज़तके लिए इस हेडक्वार्टरने उनके साथ आर्मर्ड ट्रेन भेजनेका इन्तजाम किया है।"

पुलके इस मार्केके बाद दूसरा दिन सन्नाटेमें बीता। तीसरे दिन उद्योगशील बुड्ढेने दो मील दूर खैरावादकी सड़कपर ध्यान देनेका फैसला किया। यहाँ तीसरे पहर फज़ल क़ादिर सड़कके ऊपर एक ऊँचे टीलेपर छिपकर जा बैठा। इस टीलेसे पूरब और पश्चिम दोनों तरफसे आने-जानेवालोंका सामना होता था।

इस बार फज़ल कादिरने अपनी पुरानी राइफलका मुँह नौशेराकी तरफ रखा। बन्दूक़को ठीक-ठिकाने जमाकर उसने अपनी पीठकी तरफ सड़कपर आँखें गड़ाईं। इस जगहसे आधा मीलकी दूरीपर एक टीलेके नीचेसे सड़क मुड़ गई थी। इस तरफ देखते हुए फज़ल क़ादिरको ज़्यादा देर न हुई थी, कि मोड़पर घूमकर एक 'क्रासले' मोटर सड़कपर आई। मोटरके अगले हिस्से—रेडियेटर—पर अकसर लोग खिलौने या झंडी लगाकर रखते हैं; मगर इस मोटरपर खिलौने या झंडीकी जगह एक खास शक्लका लाल निशान था, जो यह प्रकट करता था कि मोटर किसी फौजी अफसरकी—स्टाफ कार—है।

बुड्ढे लम्बरदारने फौरन सतर्क होकर राइफल थामी और मोटरकी तरफ पीठ करके बन्दूककी अगली 'मक्खी'पर अपनी नज़र जमा ली। घरघराती हुई मोटर उसके नीचेसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुज़री। एक सेकेंड बाद ही मोटरकी पीठ उसे दिखाई पड़ी। मोटरके 'हुड'की पुश्त लगा हुआ अंडाकार शीशा जैसे ही उसकी बन्दूक़की 'मवखी'की सीधमें आया, वैसे ही लम्बरदारने घोड़ा दबा दिया। उस क्षण मोटर उससे मुश्किलसे तीस-चालीस गज़पर थी।

कांचके टूटनेकी झन्नाहटके साथ गोलीने मोटरके अगले शीशे—विंड स्क्रीन—को खील-खील उड़ा दिया। क़ासलेकार पहले तो सड़ककी दाहनी तरफ ऐसे ढंगसे फिसली, मानो उलटनेवाली हो, मगर शीघ्र ही सम्हल गई। ड्राइवर भरपूर ताक़तसे 'एकलेरेटर'को दबाता ही चला गया और मोटर बेतहाशा तेज़ीसे भाग उठी। पहाड़ियोंमें बन्दूक़की प्रतिध्वनि शान्त होनेके पहले ही मोटर धूलके अम्बारमें गायब हो गई। फ़ज़ल क़ादिरने भी पहाड़ी-पहाड़ी चढ़ते हुए कूज़-पाराकी राह पकड़ी।

दूसरे दिन पेशावर हेडक्वार्टरके फौजी बुलेटिनमें प्रकाशित हुआ :—

"खैराबाद—आज खैराबाद गाँवके नज़दीक सरकारी फौजके जनरल आफिसर कमांडिंगकी जानपर हमला करनेकी कोशिश की गई। जनरल साहबकी कारपर गोलियाँ बरसाई गईं। मगर सौभाग्यसे मोटर खाली थी। उसपर सिर्फ ड्राइवर ही था। ड्राइवरको मामूली चोट आई।"

सरहदको थोड़ा गरमानेके लिए फज़ल क़ादिरने अपना जो प्राइवेट प्रोग्राम बनाया था, उसके चौथे दिनका ज़िक्र है। शामके वक्त खैराबादके छोटे स्टेशनका स्टेशन मास्टर नवाबखां अपने आफिसमें बैठा काम कर रहा था। उसके सामने मेज़पर बिल्टियों और रसीदोंका ढेर था, जिन्हें देख-देखकर वह एक बड़े-से रजिस्टरकी खानापुरी कर रहा था। शाम हो चुकी थी मगर अभी बिलकुल अँधेरा नहीं हो पाया था। नार्थ वेस्ट रेलवेके रद्दी बादामी काग़ज़पर रेलवे बाबुओंकी 'घसीटी लिपि' में पेंसिलसे लिखे हुए अंकोंको पढ़ सकना कोई मामूली बात नहीं है, इसलिए अंकोंको पढ़नेके लिए नवाब खांने एक धुँआधार बत्ती जला रखी थी।

नवाबखां मोटा-सा बदनुमा आदमी था। उसके सिरपर मटमैले रंगका साफा, बदनपर भूरे रंगका अंगरेज़ी चेस्टर, टाँगोंमें मैली शलवार और पैरोंमें बहुत पीले रंगके अंगरेज़ी बूट थे। इस तरह उसकी पोशाक देशी और विलायती फैशनोंकी बेहूदगियोंका खासा मिश्रण थी। नवाबखांकी आँखोंपर पीतलकी कमानीवाला चश्मा था, और सामने मेज़पर तामचीनीके तामलोटमें चाय भरी रखी थी, जिसे वह बीच-बीचमें पीता जाता था। नवाबखां मेहनती आदमी था, और रेलवेका नौकर होनेके लिए जिन-जिन खूबियोंकी ज़रूरत होती है, वे भी किसी हद तक उसमें थीं, अगर नहीं थी तो एक चीज़, जिसे कहते हैं विनम्रता या मिलनसारी।

उस दिन खैराबादसे बहुत थोड़ी ट्रेनें ही गुज़री थीं। मालगाड़ी और मामूली पैसेंजर ट्रेनोंकी आमद-रफ्त तो मुल्तबी ही थी; रातमें किसी भी ट्रेनका आना-जाना क़तई बन्द था। इसलिए स्टेशनपर मामूलसे ज़्यादा सन्नाटा छाया था। प्लेटफार्मपर एक मेहतर मुरदार हाथोंसे झाड़ू लगा रहा था, और लाइनके किनारे लगे हुए नलपर एक भिश्ती ऊँघता हुआ मशक भर रहा था। स्टेशनके बाहर, सीढ़ियोंकी बग़लमें, मुसाफिरोंका एक खान्दान अगली पैसेंजर गाड़ीके इन्तज़ारमें बैठा था, जिसके आनेकी संभावना अगले हफ्तेसे पहले कम थी!

एकाएक नवाबखांको मालूम हुआ कि उसके आफिसका दरवाज़ा खोलकर दो अस्पष्ट मूरतें कमरेमें दाखिल होकर मेज़की तरफ बढ़ रही हैं। बिना सिर उठाये ही उसने देखा कि दो जोड़ नंगे पैर उसकी मेज़के सामने आकर रुक गये।

यह बात नवाबखां-जैसे ऊँचे अफसरकी शानके खिलाफ थी कि वह अपना काम रोककर ऐरे-गैरे चपरकनातियोंकी ज़रूरतें पूछता फिरे। नंगे पैर फिरनेवाले छोटे आदमियोंको चाहिए कि वे बड़े अफ़सरोंका रुख देखते रहें; जब बड़े लोग अपने कामसे फारिग़ हों, तब उनके सामने आज़िजीसे अपनी दरखास्त पेश करें। लिहाज़ा नवाबखांने आँख उठाकर देखा तक नहीं और अपने सरकारी काममें मशगूल रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर नवाबखां एक बार आँख उठाकर देखनेकी तकलीफ़ गवारा करता, तो उसे मालूम होता कि सामनेके दोनों आदमी बहुत लाँबे क़दके हैं, वे अजीब तरहका लिवास पहने हैं और उन्होंने अपनी शक्लें छिपानेके लिए आँखोंको छोड़कर सारे मुँहपर कपड़ा लपेट रखा है, जिसने उनके चेहरोंको और भी दहशतनाक बना दिया है। इतना ही नहीं, वह यह भी देखता कि एक ज़ंग लगी हुई पुरानी राइफलकी नली खौफ़नाक ढंगसे उसकी छातीकी तरफ़ तनी हुई है और उसके तथा उनके दरमियान सिर्फ़ मेज़-भरका फ़ासला है!

कोई तीस सेकेण्ड तक यह दृश्य ज्यों-का-त्यों रहा। उसके बाद इन बिना बुलाये मेहमानोंमें से एकने, जिसके हाथ खाली थे, स्टेशन-मास्टर साहबका ध्यान खींचनेके लिए फैशनके खिलाफ़ ढंगसे चायका बर्तन रजिस्टरपर उलट दिया। नवाबखांने उबलकर जो सिर उठाया, तो सामने तनी हुई राइफल और अपने मेहमानोंकी शक्लें देखकर उसकी रूह कब्ज़ हो गई और चीखनेके लिए मुँह खुल गया।

मगर बिजलीकी तरह कौंदकर एक फौलादी पंजेने उसका मुँह इस ज़ोरसे दाब लिया कि निकलती हुई चीख एक घुटी हुई गलगलाहट बनकर ही रह गई। दूसरे फौलादी हाथने गर्दन पकड़कर उसे इस तरह उठा लिया, जैसे 'क्रेन' गेहूँके गठियेको उठाता है।

नवाबखांको उठाये हुए वह भीतरी कमरेके दरवाज़े तक ले गया। वहाँ रुककर उसने अपने दाँतोंसे नवाबखांकी पगड़ी खींच ली और दरवाज़ेकी मज़बूत चौखटपर स्टेशन-मास्टर साहबकी नंगी खोपड़ीको एक बार, दो बार, तीन बार ठोकरें दीं। फिर बेहोश नवाबखांको उठाकर भीतरी कमरेके एक कोनेमें डाल बाहरसे चटखनी चढ़ा दी।

अब दोनों मेहमानोंने बड़ी फुर्तीसे आफिसके बीचोबीच रजिस्टरों, काग़ज़ों, फर्नीचर तथा जल सकनेवाली हरएक चीज़का बाक़ायदा अम्बार लगाया। मेज़पर एक खुला हुआ कैश-बक्स था, जिसमें सात रुपये तीन आने नौ पाई—उस दिनकी रोकड़-बाक़ी—पड़ी थी। रेलवेके धनकी रक्षा करना अपना परमकर्तव्य समझकर नौजवान मेहमानने इस रक़मको हिफाज़तसे अपनी जेबके हवाले किया।

जलती हुई बत्तीका तेल छिड़ककर और उसी बत्तीसे देहको सुलगाकर दोनों मेहमान बाहर निकले और दरवाज़ा उटकाकर चलते बने। जब दरवाज़े और खिड़कियोंकी सँधोंसे ज़ोरोंसे धुआँ निकलने लगा, उस वक़्त ये दोनों लम्बी-चौड़ी मूर्तियाँ शहीदानख्वारके नालेकी राह कूज़-पाराकी तरफ़ तेज़ीसे बढ़ रही थीं।

अगले फ़ौजी बुलेटिनमें यह वाक़या दर्ज हुआ था :—

"खैराबाद·····तारीखको २० बजे अफ़रीदियोंके एक दलने—जिसमें अन्दाज़न ५० आदमी थे—खैराबाद स्टेशनपर धावा किया। एक रेलवे कर्मचारी घायल हुआ; मगर चोट गहरी नहीं आई। आक्रमणकारियोंने स्टेशनकी इमारतमें आग लगा दी और रेलवेकी तहबीलसे तीन सौ सत्तानवे रुपये लूट ले गये।

"यह निश्चय किया गया है कि लाइनकी हिफाज़तके लिए खस्सादारोंका सिलसिला नौशेरासे बढ़ाकर अटक तक जारी कर दिया जाय। इसके लिए हर स्टेशनसे लोकल खस्सादार रंगरूटोंकी भर्ती फ़ौरन शुरू की जायगी।"

इस तरह फज़ल क़ादिर और उसके बेटे फीरोज़खांकी मुराद पूरी हुई, और फीरोज़खांको सरकार इंगलिशियाकी खिदमतगुज़ारीका फ़ख्र हासिल हुआ!

एक छोटा लड़का उन्हें खैराबादसे बुलाने आया। खैराबाद जाकर वे मलिक दीवानशाह तथा तीस अन्य रंगरूटोंके साथ रेलपर सवार होकर पेशावर गये। पेशावरके क़िलेमें आर्डनेन्सके सब-कंडक्टरने उनमें से हर रंगरूटको एक-एक नई 'ली इनफील्ड राइफिल' दी और दो-दो खाकी कारतूसी पेटियाँ दीं, जिनमें पचास कारतूस भरे थे।

उस दिन मेसमें बियर पीते हुए आर्डनेन्सके सब-कंडक्टरने सार्जेन्टसे कहा—"आज मुझे बन्दूक देना बहुत अखरा। ये बन्दूकें फैक्टरीसे ताज़ी आई हुई एकदम नई हैं। उनमें पहला कारतूस तक फायर नहीं किया गया। और हम लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी बढ़िया कोरी राइफलोंको इन बदमाशोंके हाथमें दे रहे हैं। सच मानो, उनके चेहरोंसे खूँख्वारी बरसती है। हमारे अफसर भी कैसे बेवकूफ हैं, जो इन लुटेरोंको हथियार देते हैं।"

उधर फीरोज़खां अपने दिल-ही-दिलमें जो सोच रहा था, वह सब-कण्डक्टरके विचारोंसे भिन्न नहीं था। जब बन्दूककी रसीदपर फीरोज़के अंगूठेका निशान लगवाया गया, तो फीरोज़ने अपने बापकी तरफ देखकर हिक़ारतसे कहा—"दाग़ तो दाग़ ही है। अंगरेज़ साहब भी कैसे बेवकूफ हैं, जो यह समझते हैं कि एक आदमीके अंगूठेका दाग़ दूसरेके अंगूठेके दाग़से जुदा होता है!"

अब फीरोज़खां हर तरहसे खुश था; लेकिन घर लौटते वक्त एक बातने मज़ा थोड़ा किरकिरा कर दिया। अभी तक उसने अपने साथके बाक़ी तीसों रंगरूटोंको अच्छी तरह नहीं देखा था। लौटते वक्त रेलपर अपने सामने बैठे हुए रंगरूटपर नज़र पड़ते ही फीरोज़खां जलभुनकर रह गया। उसने देखा, उसके सामने कुंडका रहनेवाला अयूब गफ्फ़ार बैठा है। अभी हालमें जब फीरोज़ गाँवसे 'कुछ ज़रूरी काम' का बहाना करके ग़ायब हुआ था, तब उसकी ग़ैरहाज़िरीमें अयूबने अकोड़ा-खट्टक गाँवकी एक नौजवान लड़कीसे निकाह कर लिया था, और उस लड़कीपर फीरोज़खांकी निगाह पहलेसे ही थी।

अपने कामयाब रक़ीबको दू-बदू सामने देखकर फीरोज़के बदनमें आग सुलगने लगी। उसकी ज़बान तालूसे सट गई, इसलिए उसने किसीसे बातचीत भी न की। गाड़ी पेशावरसे चलकर नासरपुर, तारू जब्बा, जँहगीरा वग़ैरह स्टेशनोंपर रुकती हुई आखिरकार कुंडपर ठहरी।

अयूब भी फीरोज़के रुखसे उसके मनका भाव समझ गया था, और उसके दिलमें भी फीरोज़के लिए वैसी ही दुश्मनीके भाव जग उठे थे। कुंड स्टेशनपर वह उतर गया। रक़ीबके आँखोंके सामनेसे दूर हो जानेपर फीरोज़का दिल कुछ ठंडा हुआ फिर तो वह खैराबाद तक अपने साथियोंसे मज़ेमें बातें करता गया।

कुछ दिनों तक खैराबाद और आसपासके इलाक़ेमें खामोशी और अमन-चैन रहा। फीरोज़खांको रोज़ आठ घंटे, छायामें बैठकर, गुज़रती हुई ट्रेनोंको देखना पड़ता था। अपनी इस मेहनतकी उजरतमें उसे सरकारकी तरफसे, मलिक दीवानशाहकी मार्फत, रोज़ एक रुपया मिला करता था। हाँ, इस रुपयेमें से प्राइवेट समझौतेके मुताबिक़ दीवानशाह अपनी 'दस्तूरी' काट लेता था, और काटता क्यों नहीं, आखिर दीवानशाहको भी तो अपनी लम्बरदारीकी इज़्ज़त बनाये रखनेके लिए कुछ खर्च चाहना ही पड़ता था।

दिनका दोतिहाई हिस्सा फीरोज़खांका अपना था; उन सोलह घंटोंको वह कैसे बिताता था, यह तो वही बता सकता है। दो-चार दिन बाद फीरोज़खांने लगातार आठ घंटेकी ड्यूटीकी मेहनतको कम करनेके तरीक़े भी निकाल लिये। वह गाँवकी एक छोटी लड़कीको चौकसीपर बिठा देता और खुद चारपाईपर लेटकर या यार-दोस्तोंके साथ ताश या दूसरे खेल खेलकर वक्त काटा करता।

इस तरह दो हफ्ते बड़े चैनसे गुज़रे। खैराबादके इलाक़ेमें इतना अमन-आमान हो गया कि फौजी बुलेटिनमें वहाँकी हालतके बारेमें यह प्रकाशित हुआ :—

> "ऐसा जान पड़ता है कि दस-बारह दिन पहले अफरीदियोंका जो दल खैराबादकी दक्षिण-पश्चिमकी पहाड़ियोंपर शोरिश कर रहा था, वह अब उस इलाक़ेको छोड़ गया है। सेकेण्ड इनफैन्ट्री ब्रिग्रेडका एक दस्ता आज नौशेरासे कुण्ड, खवारा, बारमालीखेल वग़ैरहका चक्कर लगाकर लौटा है। उसे इन मुक़ामोंमें कहीं भी दुश्मनोंका कोई निशान नहीं मिला।"

फीरोज़खांकी फौजी मुलाज़मतके सोलहवें दिन, खैराबादमें फ्रान्टियर फोर्स राइफल्सके एक मेजर साहब आये। वे खस्सादारोंकी देखभालके लिए तैनात किये गये थे। बातचीतमें उन्होंने दीवानशाहसे कहा—"सरकार तुमसे बहुत खुश है। तुम्हारे आदमियोंने ऐसी मुस्तैदीसे काम किया है कि आस-पासके इलाक़ेमें बहुत जल्द फिरसे अमन-चैन क़ायम हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें उम्मीद है कि थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारे वफ़ादार सिपाहियोंकी ज़रूरत न रह जायगी और खस्सादारोंका दल तोड़ दिया जायगा।"

जब यह खुशखबरी खस्सादारोंकी चौकियोंपर पहुँची, तो वहाँ खुशीके बजाय अफसोस और रंजके आसार नज़र आये। फीरोज़खां खास तौरपर ग़मगीन-सा हो गया। इधर कई दिनोंसे नौजवान फीरोज़ फ़ुरसतके वक्त नज़दीक़के गांव कुण्डके खस्सादारोंकी चौकीके अरीब-क़रीब चक्कर काटा करता था। वह ऐसा क्यों करता था, इसका खुद उसे साफ-साफ पता न था। मगर इससे पहले वह खस्सादारोंकी चौकीके अस्सी गज़के भीतर ही दो बार छिपकर लेट चुका था। कुण्डकी इस चौकीपर अयूब ग़फ्फार पाँच और खस्सादारोंके साथ, पटरीके किनारे एक ऊंची जगहपर चारपाईपर बैठे-बैठे, गप लड़ाकर ड्यूटीके घंटे पूरे किया करता था।

उस दिन अपने छिपनेकी जगहमें लेटे-लेटे फीरोजखांने एक हास्यजनक स्वांग देखा। शामके वक्त जब आर्मर्ड ट्रेन लाइनपर पेट्रोल करती (गश्त लगाती) हुई अटकके पुलकी तरफको गुज़री, तो ये छहो खस्सादार एक कतारमें खड़े हो गये और उन्होंने अपनी राइफलें उस ढंगसे आगे बढ़ाईं, जैसे सलामीके लिए अंगरेज़ी फौज 'प्रेज़ेन्ट'के हुक्मपर बढ़ाती है। इस भोंडी नक़लसे अपनी चौकसीका सबूत देकर, सारे खस्सादार फिर आरामसे चारपाइयोंपर जा बैठे। सिर्फ एक आदमी चारपाईपर नहीं बैठा। वह था अयूब ग़फ्फार, जिसके घरमें फीरोजखांका दिल चुरानेवाली बैठी थी। छिपे हुए फीरोज़के ठीक सामनेकी तरफ अयूब ग़फ्फार एक दरख्तके सहारे ज़मीनपर बैठ गया।

फीरोज़के दिलमें हफ्तोंसे सुलगता हुआ विद्वेष धू-धू करके जल उठा, चेहरेसे हिक़ारत टपकने लगी। उसने बहुत सम्हलकर राइफलकी नाल खोली और उसमें रेशम-सा चिकना कारतूस खिसका दिया।

अयूबके दोनों कंधोंपर जनेऊकी तरह कारतूसकी दो पेटियाँ पड़ी थीं। छातीपर जहाँ ये दोनों पेटियाँ गुणाका चिह्न × बनाती थीं, फीरोज़ने ठीक उस जगह शिस्त लगाई और बहुत चौकन्ना होकर, साँस रोककर, घोड़ा दबा दिया।

फीरोज़खांकी खुशीका ठिकाना न था। आज पहली बार उसकी बन्दूकने आदमी मारा था। आजकी बात वह मरते दम तक गर्वके साथ याद करता रहेगा। गोली अयूबकी छातीमें बैठी। उसका सिर एक बार पेड़से टकराया पर दूसरे ही क्षण उसकी प्राणहीन देह मुँहके बल गिर पड़ी। उसके हाथकी राइफल छिटककर रेलके किनारेकी ढलुवाँ जमीनपर लुढ़कती हुई नीचे आ गिरी।

गोलीकी आवाज़ सुनकर और अयूबको लुढ़कता देखकर बाक़ी पाँचों खस्सादार जान लेकर भाग खड़े हुए।

कोई घंटा-भर बाद वे लोग गाँवके कुछ और लोगोंके साथ बहुत सम्हलते और डरते हुए, आये और अयूबकी लाशको उठा ले गये। मगर अयूबकी बन्दूक और कारतूसकी दोनों पेटियोंका पता न लगा।

फ़ौजी बुलेटिनके अगले नम्बरमें प्रकाशित हुआ :—

"कुंड—आज अफ़रीदियोंने कुंडके नज़दीक नार्थ वेस्ट रेलवेकी लाइन उखाड़ फेंकनेकी बहुत ज़ोरोंसे कोशिश की। आक्रमणकारी दलमें अन्दाज़न ५० से १०० आदमी तक होंगे। स्थानीय खस्सादारोंने बड़ी बहादुरीसे सामना करके आक्रमणकारियोंको पहाड़ियोंकी तरफ़ भगा दिया। इस हमलेमें एक खस्सादार जानसे मारा गया और एक राइफिल नम्बरी के० एस० ५३६०१ गायब हो गई।"

यह घटना 'कुण्डकी वारदात' के नामसे मशहूर हो गई। जिन फ़ौजी अफ़सरोंने लाइनकी रक्षाके लिए खस्सादारोंकी स्कीम निकाली थी, उन्होंने 'कुण्डकी वारदात' को दिखलाकर यह साबित कर दिया कि उनकी स्कीम बहुत कारगर साबित हुई। अगर खस्सादार न होते तो लाइन उखड़ जाती और पेशावरके साथ समूचे हिन्दोस्तानकी आमदरफ्त बन्द हो जाती। नतीजा यह हुआ कि खस्सादारोंको बरखास्त करनेका प्रस्ताव अनिश्चित कालके लिए उठाकर ताक़पर रख दिया गया। खस्सादारोंकी नौकरी मुस्तक़िल हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अब सभीको सन्तोष हो गया। फ़ौजी अफ़सरोंको रेलवे लाइनकी रक्षाके लिए नियमित फ़ौज नियुक्त करनेकी चिन्ता न रही। स्थानीय आदमियोंके सहयोगसे थोड़े ही खर्चमें इलाक़े-भरकी लाइनकी हिफाज़त होते देखकर डिप्टी-कमिश्नर साहबको भी खुशी हुई। कुण्डके खस्सादारोंको भी शिकायत नहीं थी। इसमें शक नहीं कि उन्हें अपने साथी अयूब ग़फ़्फ़ारसे हाथ धोना पड़ा था; लेकिन एक तो अयूब ग़फ़्फ़ार बड़ा लड़ाकू और ज़ालिम आदमी था, दूसरे उसकी मौतसे उन सबकी आरामकी नौकरी सदाके लिए पक्की हो गई, इसलिए अयूबके मरनेका सदमा खस्सादारोंने बहुत दिलेरीसे बरदाश्त किया! मलिक दीवानशाह भी बहुत खुश था। उसकी मातहतीमें तीस आदमी सरकार बहादुरकी खिदमत करते हैं। एक रुपये रोज़के हिसाबसे महीनेमें उनकी तनखाहें हज़ार रुपयेके क़रीब पहुँच जाती हैं, जिसमें दीवानशाहकी 'दस्तूरी' की रक़म भी कम नहीं होती।

हाँ, अगर कोई खुश नहीं थे, तो आर्मर्ड ट्रेनवाले, क्योंकि उन्हें रोज़ पैट्रोल करना पड़ता था, और उन्हें यह तै करना मुश्किल होता था कि जगह-जगहपर बदमाशोंकी शक्ल-सूरतवाले हथियारबन्द पठानोंके जो दल इधर-उधर घूमते दीख पड़ते थे, उनपर गोली चलायें या नहीं। दूसरा आदमी जो खुश नहीं था, वह था पेशावर क़िलेका आर्डनेन्सका सब-कण्डक्टर। उसे अभी तक तीस नई-नई राइफलोंको इन खूनी खस्सादारोंको दे डालनेका ग़म सताया करता था।

मगर सबसे ज़्यादा खुश अगर कोई था, तो वह फज़ल क़ादिरका बेटा फीरोज़ख़ां। खुदाके फज़लसे उसे हर तरहकी आसूदगी थी। कूज़-पराराकी एहसान-फरामोश ज़मीनको खुरच-खुरचकर वह महीने-भरमें भी एक रुपया न पैदा कर सकता था, अब उसे हर रोज़ एक चमकता हुआ कलदार मिल जाता है। उसका फ़ौजी काम उसकी तबीयतके माफ़िक़ है। इस काममें उसे फुरसत भी इतनी मिलती है कि वह जहाँ तबीयत चाहती, पहाड़ोंपर घूमा करता है। उसके हाथमें एक फर्स्ट क्लास नई राइफल रहती है, जो इधर-उधर गोली नहीं फेंकती, बल्कि आनन-फाननमें ठीक निशानेपर जाकर बैठती है।

कूज़-परारामें उसके घरके नज़दीक चर्बीसे तर कपड़ेमें लिपटी हुई एक राइफल हिफाज़तके साथ ज़मीनमें गड़ी है। इस राइफलमें किसी ज़मानेमें तीन जगह 'के० एस० ५३६०१' का नम्बर खुदा था। अपनी क़ब्रके भीतर राइफल भी अकेली नहीं है। उसका साथ देनेके लिए दो खाकी पेटियाँ भी हैं, जिनमें पचीस-पचीस भरे हुए कारतूस हैं।

अगले साल गर्मियोंमें जब सरहदी पहाड़ियोंके बेटे लूटपाट और खूँरेज़ीके दिलचस्प कामोंकी तलाशमें फिर बाहर निकलेंगे, तो फीरोज़ उनके साथ होगा, और उसके हाथमें उन सबसे बढ़कर राइफल होगी।

इस तरह इस मामलेका नतीजा हरएकके लिए खुशीका बायस हुआ, और ऐसा खुशगवार नतीजा पैदा करनेके लिए अगर किसी शख्सको अगली 'आनर्स लिस्ट' में जगह मिलनी चाहिए, तो वह है कूज़-पराराका बुड्ढा लम्बरदार फज़ल क़ादिर, जिसने अटकके पुलके ऊपर अपनी पुरानी ज़ंग लगी हुई राइफलका घोड़ा दबाया था!

—ब्रजमोहन वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहाती मज़दूर

श्री रामजीवन शर्मा

पराधीन भारतके समस्त शोषित वर्गोंको एक पंक्तिमें बैठाकर यदि हम यह जाननेकी चेष्टा करें कि उनमें कौन सबसे अधिक शोषित है, तो हम इसी परिणामपर पहुँचेंगे कि ग्रामीण मज़दूर ही एक ऐसा प्राणी है, जिसकी शक्ल-सूरत तो मनुष्य-जैसी है; परन्तु खान-पान और रहन-सहनमें जिसकी हालत पशुओंसे भी बदतर है। अधिक-से-अधिक काम करके भी जो कमसे कम मज़दूरी पानेका हक़दार है और जेलसे बाहर रहनेपर भी जिसका जीवन जेलखानेके समान है, उससे बढ़कर अभागा इस संसारमें और कौन होगा?

बिहार और बंगालमें ज़मीनका स्थायी बन्दोबस्त है। 'काश्त' और 'बकाश्त'—प्रधानतः इन्हीं दो श्रेणियोंमें प्रान्तकी सारी ज़मीन विभाजित है; उनमें से काश्त रैयतोंके कब्ज़ेमें है और बकाश्त या 'जिरात' (सीर) ज़मींदारोंके अधिकारमें। इधर आकर इन ज़मींदारोंकी भी दो श्रेणियाँ हो गई हैं—एक तो वे, जिन्होंने काश्तके समान अपनी सारी 'जिरात'का बन्दोबस्त असामियोंके हाथ कर रखा है और स्वयं शहरोंमें रहते हैं, और दूसरे वे, जिनकी अट्टालिकाएँ अकसर देहातों ही में होती हैं और जो अपनी ज़िरातो ज़मीनके बड़े-बड़े चकले बनाकर खुद खेती करते हैं। इनमें कुछ तो निलहे साहब हैं, और बाक़ी वे गढ़ैत बाबू, जो अपनेको बादशाही ज़मानेके ज़मींदारोंका वंशज बतलाते हैं और ज़मीनपर अपना ईश्वरप्रदत्त अधिकार समझते हैं!

प्रथम श्रेणीके ज़मींदारोंसे अधिक सम्पर्क किसानोंका यानी रैयतोंका ही रहता है। खेतीके मज़दूरोंसे उनका सीधा सम्पर्क नहीं रहता। मज़दूरोंके भाग्यविधाता तो स्वयं खेती करनेवाले छोटे-बड़े ज़मींदार, धनी काश्तकार और कहीं-कहीं ऐसे किसान भी हैं, जो स्वयं ज़मींदारों द्वारा शोषित होते हुए भी मज़दूरोंके साथ ज़ालिमाना बर्ताव करनेमें नहीं हिचकिचाते। ज़मानेसे चली आई हुई पद्धतिने इन ज़मींदारों और काश्तकारोंको अपने-अपने मज़दूरोंपर यकसाँ अधिकार दे रखा है। इनकी बकाश्त या काश्त ज़मीनमें बसे हुए मज़दूरोंकी दशा अमेरिकाके उन हब्शी गुलामोंकी तरह है, जिनका दयनीय चित्र श्रीमती स्टोने 'अंकिल टाम्स केबिन' नामक अपने सुप्रसिद्ध उपन्यासमें खींचा है। दोनोंमें फ़र्क़ यही है कि अमेरिकन गुलामोंकी दुःख-यामिनी कभीकी समाप्त हो चुकी है और ये बेचारे अभी तक, इस १९३७ में भी, अपनी गुलामीकी ज़िन्दगी उसी तरह बिता रहे हैं, मानो कालचक्रके असाधारण परिवर्तनसे इनका कोई सम्पर्क ही नहीं और विपत्तिकी गोदमें पलना ही इनके भाग्यकी अमिट रेखा है। 'दैव भी दुर्बलोंका ही दुश्मन है,'—यह लोकोक्ति इनके ऊपर पूर्णतः चरितार्थ होती है।

घर और चल-अचल सम्पत्ति

सौमें शायद एकआध ही कोई ऐसा भाग्यशाली मज़दूर होगा, जिसका घर अपनी ज़मीनमें हो। अपनी ज़मीनसे हमारा तात्पर्य उस काश्त ज़मीनसे है, जिसमें निवास करके भी बेचारा स्वतन्त्ररूपसे मज़दूरी कर सके। अन्यथा निन्यानबे फ़ी-सदी मज़दूरोंका घर उस नौकाकी तरह पराश्रित है, जो हमेशा पानीपर डोलती रहती है और वरुणदेव जब चाहें उसे उदरस्थ कर सकते हैं। अपने घरोंपर इनका कोई अधिकार नहीं होता। एक मालिककी ज़मीनसे जब ये दूसरेकी पट्टीमें जाने लगते हैं, तो इनको अपनी घास-फूसकी झोपड़ीसे भी वंचित होना पड़ता है! और वह झोपड़ी तैयार किन चीज़ोंसे होती है? दो-एक बाँस, दो-चार गट्ठर फूस तथा खड़ और थोड़ी-सी मूँजकी रस्सी—इन्हीं तीन वस्तुओंसे बनी हुई दो झोपड़ियाँ मज़दूरोंकी, चल या अचल जो समझिये, सम्पत्ति हैं, जिनमें से एकमें तो वह खुद बाल-बच्चोंके साथ रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूसरीमें उन बकरियोंको बाँधता है, जो उसके दरवाज़ेकी शोभा बढ़ाया करती हैं। तीन-चार परिवारोंके बीच एक जाँता (चक्की), एक ओखल-मूसल और लोहेके तीन औज़ार—कुदाल, हँसुआ, खुरपी—यही उनकी कुल सम्पत्ति हैं, जिनको वे अपने प्राणोंसे भी प्रिय समझते हैं। सोते वे जाड़ेमें पुआलपर हैं और गर्मीमें मचानपर। हाँ, किसी-किसी भाग्यशाली मज़दूरके पास मामूली बाँसकी पाटी-पायेकी मूँजसे बनी हुई एक खाट भी होती है, जिसपर बेचारा डरते हुए रातमें सोता है कि कहीं मालिक साहबकी नज़रमें न पड़ जाय, वरना बेचारा कहींका नहीं रह जायगा!

मज़दूरीकी रक़म

देहाती मज़दूरोंको कृषि-कार्यके कठिन परिश्रमके बदले नाममात्रकी मज़दूरी मिलती है। वह परिमाणमें इतनी भी नहीं होती कि वे और उनके बाल-बच्चे अपना पेट भर सकें। इक्के-गाड़ीवालोंकी बात तो जाने दीजिए, शहरके मामूली मज़दूर और स्टेशनके कुली जितना पैसा दस-पन्द्रह मिनटमें पैदा करते हैं, उतनेके लिए इन बेचारोंको जेठ-बैसाखकी कड़ी धूप और आषाढ़-सावनकी मूसलधार वर्षामें भी चार-चार घंटे तक कठिन परिश्रम करना पड़ता है। मज़दूरी दो श्रेणियोंमें बँटी हुई है; दुपहरिया और भरदिना। दोपहर तक काम करनेवालोंको दो सेर अनाज या चार पैसा और सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक काम करनेवालेको चार सेर अनाज या दो आने पैसे मिलते हैं। इस निर्धारित रक़मसे अणुमात्र भी वे किसी हालतमें ज्यादा नहीं पा सकते। और न दूसरेके यहाँ, बिना मालिक साहबकी रज़ामन्दीके, मज़दूरी करनेके लिए जा ही सकते हैं। मालिकके यहाँ यदि चार सेर अनाज मिलता है और दूसरे स्थानपर पाँच सेर, तो उचित तो यह था कि मज़दूरको पाँच सेरवालेके यहाँ काम करनेकी स्वाधीनता होती; परन्तु वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। पाँच सेरके बजाय यदि दस सेर भी कहीं मज़दूरी मिले, फिर भी उसको अपने मालिकका ही काम बजाना पड़ेगा, और मज़दूरी वही बँधी-बँधाई चार सेर! मालिक साहब स्वयं या उनके कारिंदे सुबह ही मज़दूरसे कह देंगे कि आज अमुक स्थानपर अमुक काम होगा। मज़दूरको ठीक समयपर वहाँ पहुँच जाना चाहिए। मालिक साहबके चले जानेके बाद यदि दूसरा कोई आया और उसने कार्यवश दो-एक सेर ज्यादा मज़दूरीका लालच दिया, तो बेचारा मज़दूर मन मसोस कर रह जाता है। यदि दुर्भाग्यवश लुक-छिपकर वह पाँच सेरवालेके यहाँ चला गया, तो मालिक महोदय उसे पकड़वा मँगाते हैं और फिर ऐसी मरम्मत करते हैं कि आयन्दा बेचारा ऐसी भयंकर भूल करनेका नाम भी नहीं लेता। मज़दूरीके विषयमें उसको यह कहनेका कोई अधिकार नहीं कि हमको जहाँ अधिक मिलेगा वहाँ जायँगे, आपका काम नहीं करेंगे। इस ज़ुल्मकी न तो कहीं फरियाद हो सकती है और न कोई उस फरियादका सुननेवाला। गाँवके दूसरे मालिक मज़दूरोंके मामलेमें बहुत सतर्क रहते हैं। आपसमें मतभेद और वैमनस्य रखते हुए भी इस विषयमें उनका संगठन इतना ज़बर्दस्त होता है कि मज़दूर-मालिकके झगड़ेमें कोई मालिक भूलकर भी मज़दूरोंका पक्ष नहीं लेता। वे डरते हैं कि आज हम यदि अमुकके मज़दूरकी तरफदारी करेंगे, तो कल वह भी हमारे मज़दूरोंको बहका देगा। अपवाद-स्वरूप यदि किसी मालिकने किसी अन्यके असन्तुष्ट मज़दूरका पक्ष लेकर उसे अपनी ज़मीनमें बसा भी लिया, तो बेचारे मज़दूरके भाग्यचक्रपर इस स्थान-परिवर्तनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ ही दिनोंके बाद नये मालिकका भी उसके साथ वही बर्ताव होने लगता है। अन्तमें वह भाग्यका मारा अपने कर्मको ठोंककर 'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये' की मसल चरितार्थ करता हुआ अपने जीवनके शेष दिन पूर्ण करता है।

खान-पान और रहन-सहन

पूँजीवाद या भाग्यवादकी निर्मम चक्कीमें पिसनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन ग़रीबोंके खान-पानके विषयमें इतना ही कहना काफी होगा कि कटनीके अगहन और बैसाखके दो महीनोंको छोड़कर सालके बाक़ी दस महीनोंमें शायद ही कोई ऐसा दिन होगा, जिस दिन वे या उनके बच्चे दोनों वक्त भरपेट खा सकते हों। 'ग़मखाना और आँसू पीना' की लोकोक्ति यदि किसीके ऊपर ठीक-ठीक लागू हो सकती है, तो इन्हीं ग़रीबोंके ऊपर। ऊपर कहा जा चुका है कि उनके दिन-भरके परिश्रमका मूल्य सिर्फ चार सेर अनाज है। कूट-पीसकर मनुष्यके खाद्य-रूपमें परिणत होते-होते वह भी सिर्फ ढाई सेर रह जाता है। उसमें से यदि नमक और तेलके बदले साहूकारके यहाँ जानेवाले अनाजको घटा दें, तब डेढ़-दो सेर आटा या चावल ही शेष बचता है। उसीको रोटी-भातका रूप देकर बेचारी मज़दूर-गृहिणी अपने पति और बच्चोंको खिला देती है, और स्वयं माँड़ पीकर या साग-पात खाकर रह जाती है। रोटी-भातके साथ दाल और तरकारी, जो शहरी मज़दूरोंका आवश्यक भोजन है, उन्हें शायद ही कभी नसीब होती हो। कभी यदि दाल पक गई तो तरकारी नहीं और तरकारी हुई तो दाल नदारद। उनके बच्चोंसे या उनसे यदि कोई पूछ बैठे कि रोटीके साथ क्या तुमने तरकारी खाई है, तो वे कहेंगे कि आज दाल पकी थी। दोमें से एकका पा जाना ही ये ग़नीमत समझते हैं। और वह तरकारी भी क्या वे खरीदकर खाते हैं? शीतऋतुमें बथुएका साग, छप्परपर के कुम्हड़े एवं बरसातमें गड्ढोंकी मछलियाँ ही उनके लिए आलू-गोभी हैं। देहातमें रहकर भी दूध-दहीके दर्शन उनके लिए दुर्लभ है। हाँ, जो लोग स्वयं या जिनके बच्चे मालिकके यहाँ गाय-भैंस चराते हैं, उन्हें कभी-कभी कटिया-भर मट्ठा ज़रूर दे दिया जाता है, जिसे वे बड़े आनन्दसे अलुआ (शकरकन्द) के साथ खाते हैं।

मानव-जीवनकी दो सर्वप्रधान आवश्यकताओंमें से एक—भोजनका ही जब यह हाल है, तो वस्त्रके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है। जिनके पास कमर ढँकनेके लिए धोती है और कंधेपर अंगौछा भी, उनकी गिनती खुशहालोंमें की जाती है! फिर उनकी औरतोंके बदनपर चाहे सैकड़ों पैबन्दवाले चिथड़े ही क्यों न लटक रहे हों। बिछावनके लिए पुआल और ओढ़नेके लिए चटाई जब बनी-बनाई है ही, तो फिर और अधिक चाहिए क्या? कुशल यही है कि प्रकृतिने पुआलको दीनसुलभ और गर्म बनाया है, अन्यथा भयंकर शीतमें उनकी क्या हालत होती, भगवान ही जानें। कपासको बोने और उपजानेवाले इन बेचारोंको 'रुईदार रज़ाई' क्या चीज़ है, इसका पता ही नहीं। जो किसी मालिककी नौकरी बजाते हैं और जिनके भोजन-वस्त्रका भार मालिक महोदयने स्वयं ले रखा है, उनको भी सालमें दो-एक धोती और पुराने कम्बलोंसे अधिक और कुछ नहीं मिलता। दस-दस सालके लड़के सिर्फ लँगोटीपर गुज़र करते हैं, जो उनकी भाषामें 'भगवा' कहलाती है, और यह पुरानी साड़ी या धोती फाड़कर बनाई जाती है!

उनके रहन-सहनके विषयमें और अधिक लिखा ही क्या जा सकता है? सुबह उठकर वे मुँह-हाथ धोकर निन्नेमुँह या कुछ खाकर कामपर चल देते हैं। फिर एक-दो बजे घर लौटकर भोजन करते हैं। बादमें या तो फिर कामपर जाते हैं, या अपने दरवाज़ेपर ही कोई छोटा-मोटा काम करते हैं। न नहानेका मौक़ा मिलता है और न नित्य नहाना उनके भाग्यमें बदा होता है। तेल-फुलेलकी तो चर्चा ही मत चलाइये। कुशल यह है कि उनको हमेशा खुली हवा मिलती है, और यही कारण है कि भोजनादिकी तंगी रहते हुए भी उनका स्वास्थ्य ग्रेजुएटोंसे कहीं ज्यादा अच्छा रहता है। शिक्षितोंके प्रधान दो रोग 'पायरिया' और बालकी सफेदी उनके नज़दीक शीघ्र नहीं फटकते। यह हमारा अपना अनुभव है। साठ-साठ सालके व्यक्ति हमारे नज़दीक मौजूद हैं, जिनके बालोंपर अभी तक ज़रा भी सफेदी नहीं आई है और दाँतोंसे तो सेर-सेर भर भूँजा नित्य खा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठनका अभाव

आजकल जब हर जगह ग़रीबों और शोषितोंके संगठनकी चर्चा चल रही है, तब इनकी ओर सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका ध्यान न देना बड़े दुर्भाग्यकी बात है! इस प्रकार शोषितोंके इस सबसे बड़े दलकी ओर अभी तक हमारा ध्यान नहीं गया। मिल-मज़दूरोंका अमोघ अस्त्र हड़ताल क्या बला है, बेचारे देहाती मज़दूर जानते तक नहीं। सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका उनके साथ सम्पर्क भी कम ही होता है। किसानोंसे इनकी दशा बिलकुल ही ख़राब है; परन्तु चूँकि वे एकदम अशिक्षित हैं और मौजूदा गुलामी-पद्धतिने उन्हें इस प्रकार अपने चंगुलमें दबोच रखा है कि वे अपने उद्धारकी कल्पना तक नहीं कर सकते। यदि संयोगसे या दैवयोगसे कभी उनमें जागृतिके भाव आ भी जाते हैं, तो उनका नेतृत्व करनेवाला कोई नहीं मिलता। इसका जीता-जागता उदाहरण बिहारके मुसहरोंकी वह ज़बर्दस्त जाग्रति और उसकी समाप्ति है, जो अभी साल-भर पहले बिहारमें फैली हुई थी। ख़ैर, वह विषय इतना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है कि उसपर एक स्वतन्त्र लेख लिखकर पाठकोंको उसकी पूर्ण जानकारी करानेकी हमारी इच्छा है, इसलिए यहाँ हम उसका प्रसंग नहीं छेड़ना चाहते। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि देहाती मज़दूरोंकी दीन दशा बड़े करुण शब्दोंमें पुकारकर अपनी ओर सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका ध्यान आकर्षित कर रही है और सुदामा-गृहिणीकी तरह कह रही है—

"कोदों - समा जुरतौ भरि पेट
न चाहति हौं दधि-दूध मिठौती;
सीत व्यतीत भयो सिसिआतहि
हौं हठती पै तुम्हें न हठौती।
जो जनती न हितू हरि से
तो मैं काहेको द्वारिका ठेल पठौती;
या घरसे कबहूँ न गयो प्रभु!
टूटी तवा अरु फूटी कठौती।"

—नरोत्तमदास

आशा है, हमारे नेता इन ग़रीबोंकी मूक पुकारपर अवश्य ख़याल करेंगे।

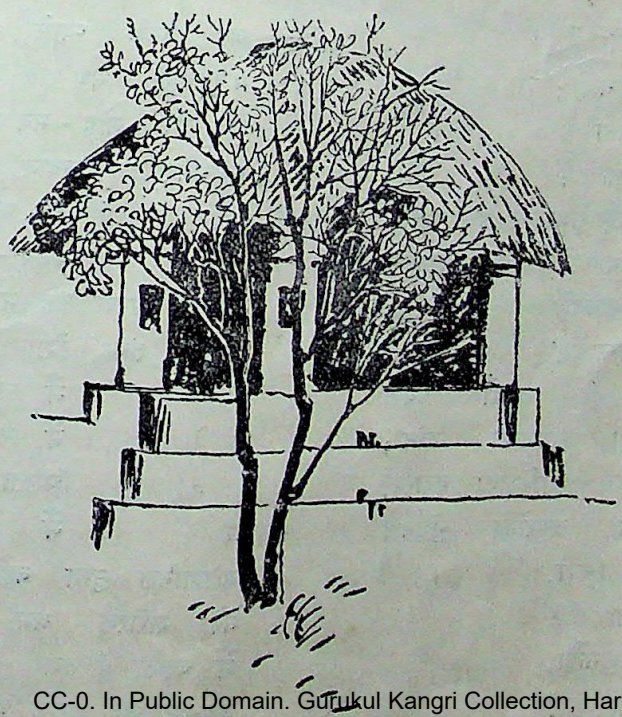

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिर-यात्री

श्री आरसीप्रसाद सिंह

(१)

मैं एक अपरिचित यात्री हूँ,
जाना है इतनी दूर मुझे ;
है किसने पिला दिया जीवन-
मदका प्याला भरपूर मुझे ?
बस, खींच रहा कोई मुझको,
मैं विवश खिंचा-सा जाता हूँ ;
मैं चलता, चलनेको कोई
कर रहा क्योंकि मजबूर मुझे !
मैं किसी दिवस थक जाऊँ भी,
ये पैर नहीं मेरे थकते ;
पथ-भ्रष्ट नहीं मुझको जगके
ऐश्वर्य-प्रलोभन कर सकते !
मुझको न किसीसे कुछ परिचय
कुछ पास नहीं मेरे सम्बल ;
मैं एक अपरिचित यात्री हूँ,
इतना ही ज्ञात मुझे केवल !

(२)

मत पूछ कहाँसे आया हूँ,
किस देश आज जाना मुझको ;
मत पूछ जगत क्यों कहता है
पागल या दीवाना मुझको ?
क्या सोच-समझकर इस पथपर
रक्खा था मैंने प्रथम-चरण ?
सूझा इस निर्जन - काननमें
क्यों मस्तीका गाना मुझको ?
दोनों ही पार्श्वोंमें पथके
हो रहा कामनाका नर्तन ;
मैं सुनता कोकिलका कलरव,
इच्छाके भ्रमरोंका गुंजन !
किसने भेजा है मुझे यहाँ,
सन्देश कौन-सा लाया हूँ ?
कुछ भी है पता नहीं मुझको,
मत पूछ कहाँसे आया हूँ ?

(३)

सुन पड़ा किसीका परिचित स्वर,
मुझको किसने आह्वान किया ?
चल दिया अचानक मैं पथपर,
मैंने सहसा प्रस्थान किया !
देखा अवरुद्ध भवन सारे,
सन्तरियोंसे प्रति-द्वार घिरे ;
मैंने मानवकी जय कहकर
मानवताका गुण गान किया !
वह शंख घोष मेरा सुनकर
जागी अणु - अणुमें तरुणाई ;
मैंने नगपतिके शिखरोंपर
निज विजय - पताका फहराई !
फिर मेरी वाणीसे उतरा
पृथिवीका स्वर्ग सुखद-सुन्दर ;
मैं चौंक उठा उस दिन, ज्यों ही
सुन पड़ा किसीका परिचित स्वर !

(४)

जब जगके प्यासे अधरोंपर
मादककारी मधु-पान मिला ;
जब लोभ - मोह - मय भूतलको
सुख-निद्राका वरदान मिला !
तब पाप स्वर्णका स्पर्श मुझे,
वैभव - विलास सन्ताप हुआ ;
मुझको अपना यह मार्ग और
वायव्य तथा ईशान मिला !
मैं सदा एक - सा, एकाकी,
मैं नित्य एक-रस, गृह-त्यागी ;
चलता सदैव अपने पथपर
मैं निर्वासित हूँ वैरागी !
मलयानिल सुखा नहीं सकता
मेरे शरीरके श्रम - सीकर ;
मैं चलता हूँ तब भी, होता
मधु-मय जब जगके अधरोंपर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

चिन्तित-सा कभी न कर सकते
ये मान और अपमान मुझे ;
मैं यहाँ एक परदेशी हूँ,
बस, इतना-सा ही ज्ञान मुझे !

मैं युग - युगान्तसे चलता हूँ,
कुछ पता नहीं, कब तक चलना ;

मैं अमृत-तत्त्वको खोज रहा,
करना उसका सन्धान मुझे !

मैं मुक्ति चाहता कब अपनी ;
कब अपनाया मैंने बन्धन ?
मुझको तो यहाँ पकड़ लाया
सन्तप्त मनुजताका क्रन्दन !

मैं जब तक जीवित हूँ, मेरे
निःश्वास नहीं ये मर सकते ;
कीटाणु अमरताके मुझको
चिन्तित-सा कभी न कर सकते !

(६)

इस पथके वनवासी तरुवर,
पशु-पक्षी सब स्वच्छन्द यहाँ ;
उड़ता पुष्पों के प्राणों से
नित सुषमाका मकरन्द यहाँ !

होता व्यवहार यहाँ निशि दिन
निःस्वार्थ प्रेमका आपसमें ;

मैं चलता, चलनेमें मिलता
मुझको अतुलित आनन्द यहाँ !

इस विस्तृत विश्व - सरोवरमें
शतदलके शत शत दल खिलते ;
जितने तापस, जो वनचारी,
सब सस्मित मुख मुझसे मिलते !

मैं देख रहा, मेरे पीछे
चलते द्रुत-गतिसे जो सहचर ;
हँसकर करते स्वागत मेरा
इस पथके वनवासी तरुवर !

(७)

फैलाकर बाँहें वल्लरियाँ
करती हैं मेरा आलिंगन ;
'दो-क्षण भी मेरे निकट रहो',
आता कुंजोंसे आमन्त्रण !

मैं दो-क्षण भी कैसे अपना
बहलाऊँ जी इस मधुवनमें ?

द्रुत-गतिसे भागा जाता जो
मेरा यह आँधीका जीवन !

बहुमूल्य एक क्षण भी मेरा,
कैसे मैं खो दूँ इस क्षणको ?
मैं चल देता तत्क्षण अपने
पथपर ठुकराकर मधुकणको !

मैं हँसकर बढ़ जाता आगे,
संकेत मुझे करतीं परियाँ ;
मैं बच जाता, झुकतीं ज्यों ही
फैलाकर बाहें वल्लरियाँ !

(८)

मेरे असीम नभमें नीरव
होता रवि-शशिका उदय नहीं ;
पर कहो न—मेरे दृग अचपल,
निस्पन्दित मेरा हृदय नहीं !

मैं सुन्दरताका प्रेमी हूँ,
फिर भी बढ़ जाता यह कहकर—

'कैसे मैं तुम से प्रेम करूँ ?
मुझको इतना भी समय नहीं !'

जब मेरी विनत पुतलियोंपर
तितलियाँ बैठ जातीं आकर ;
मैं कहता उनसे—'क्षमा करो,
जाने दो मुझको हे सुन्दर !'

मैं एक तपस्वी हूँ जगका,
मैं मना न सकता हूँ उत्सव !
संध्या-प्रभात, कोई न कहीं
मेरे असीम नभमें नीरव !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९)

विस्तीर्ण मार्ग मेरे सम्मुख,
मस्तकपर शोभित नीलाम्बर ;
छायाका शीतल छत्र मधुर,
चलता ले ऊपर नव-जलधर !

फल देते नाना विटपी-गण
कर प्रेम-सहित मुझको इंगित ;

मैं मौन-पथिक, चलता रहता
निशि-वासर अपने ही पथपर !

कर लूँ आलाप किसीसे मैं,
इतना मुझको अवकाश कहाँ ?
दो शब्द किसीको मैं कह दूँ,
है इसका भी अभ्यास कहाँ ?

मैं जगका दुख लेकर देता
बदलेमें अपना सारा सुख ;
मैं द्रुत-गामी हूँ पद-चारी,
विस्तीर्ण मार्ग मेरे सम्मुख !

(१०)

मैं दूर-देशसे आता हूँ,
मुझको क्षण-भर विश्राम नहीं ;
मैं बढ़ता जाऊँगा आगे,
रुकनेका मेरा काम नहीं !

मैं कहीं ठहर जाऊँ दो पल,
वह आज्ञा मुझको मिली नहीं ;

मेरे नयनोंमें नींद कहाँ ?
मैंने पाया आराम नहीं !

मुझको न रोक सकते पर्वत,
निर्झर-नद विचलित कर सकते ;
संकट न अपरिमित भी आकर
मेरा साहस-बल हर सकते !

मैं मुक्त-मार्गके गीत बना
इस निर्जन-पथमें गाता हूँ ;
है दूर-देश जाना मुझको,
मैं दूर-देशसे आता हूँ !

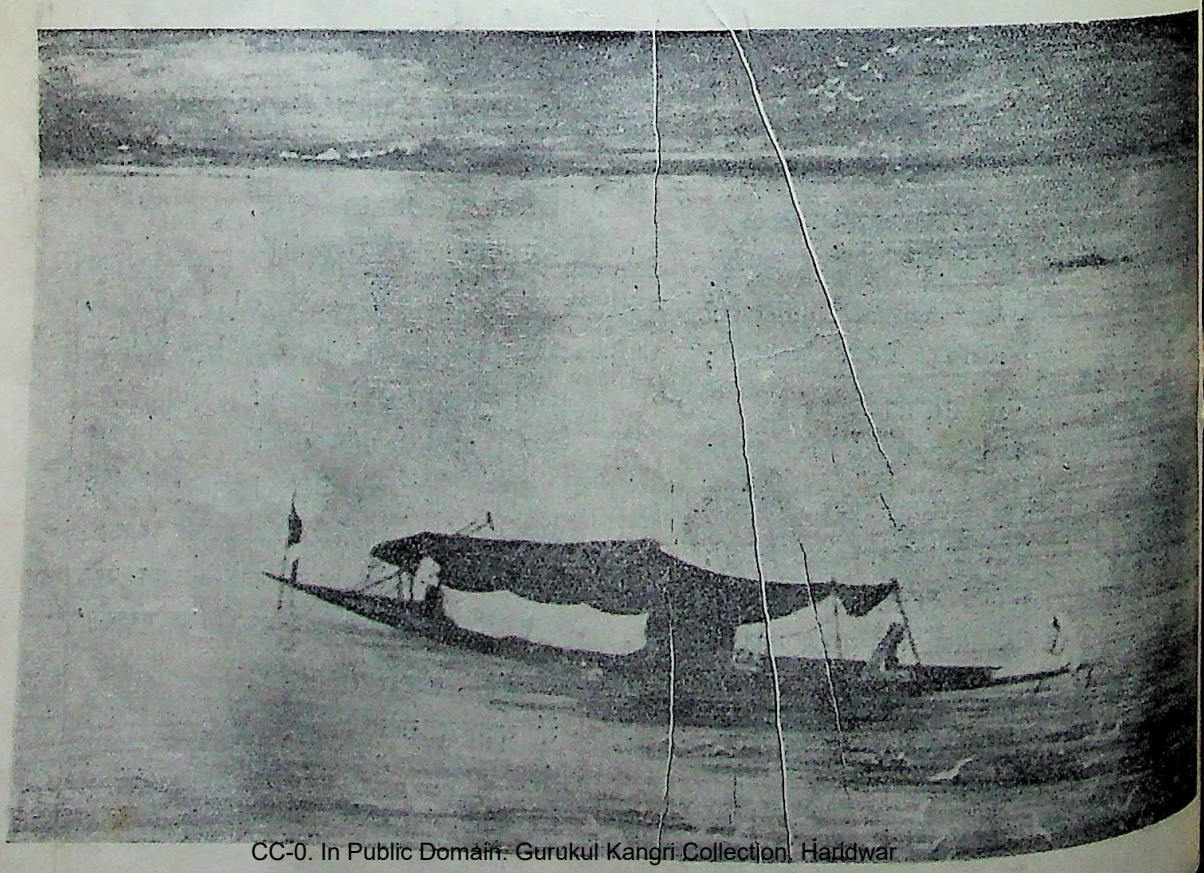

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

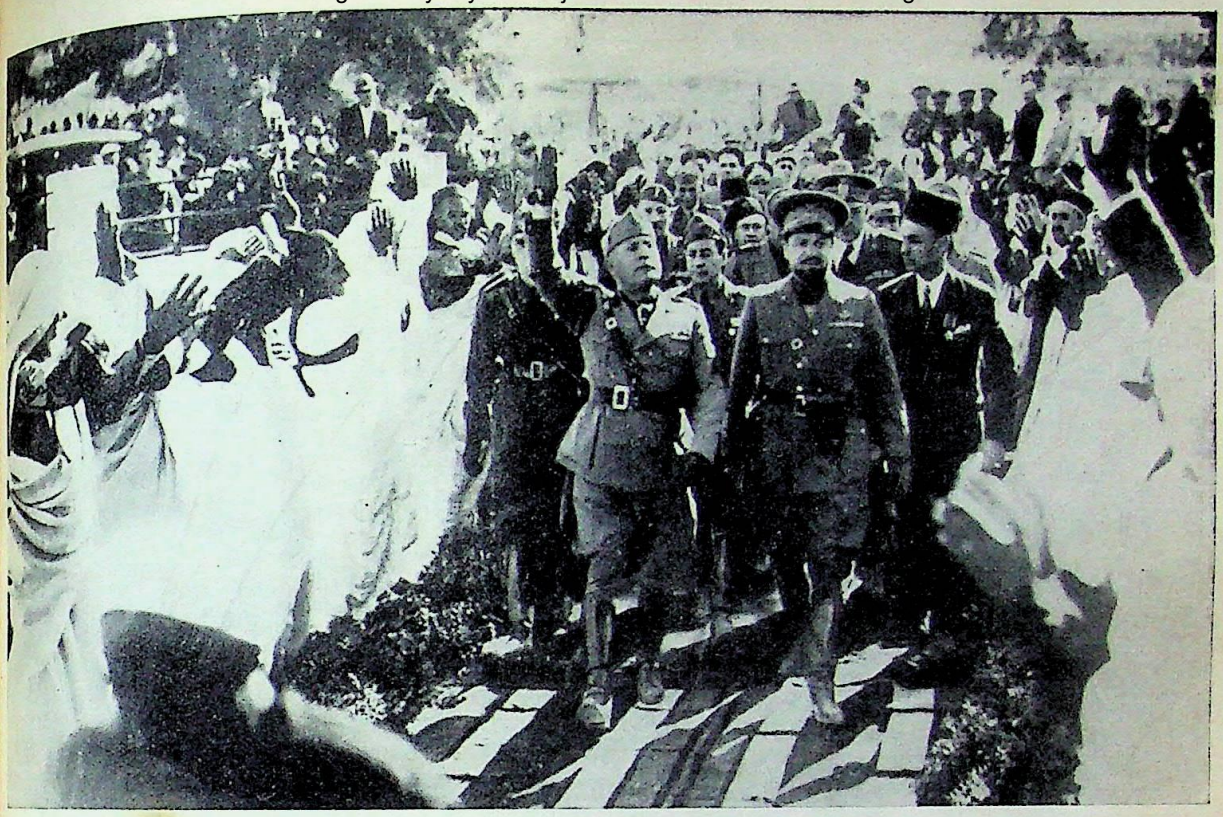

हाल में मुसोलिनीने अफ्रिकाके लीबिया-प्रदेशका दौरा किया था। लीबियामें मुसोलिनीका स्वागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लीबियाके अधिवासी मुसलमान हैं, इसलिए मुसलमानोंमें मुसोलिनी अपनेको इस्लामका रक्षक कहता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

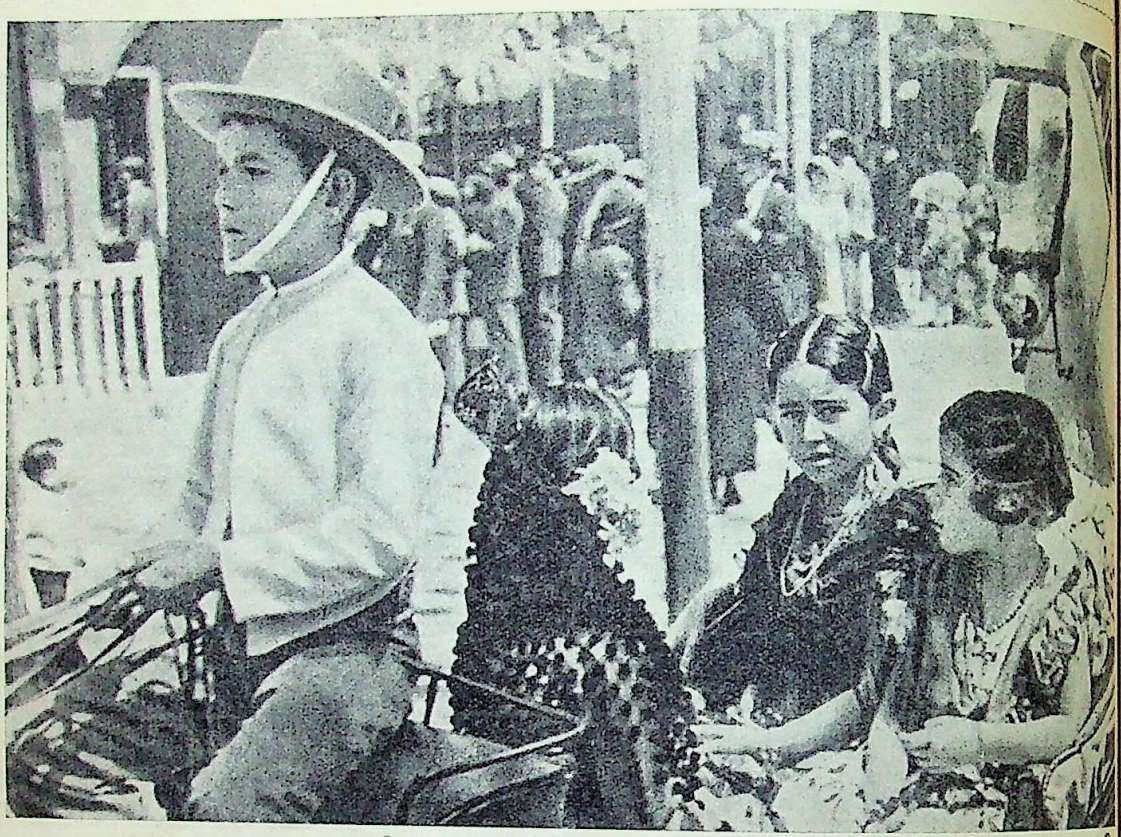

स्पेनमें प्रजातन्त्रकी स्थापनाके समय (१९३१) का एक जुलूस । आज उसी स्पेनमें लाशोंके जुलूस निकल रहे हैं

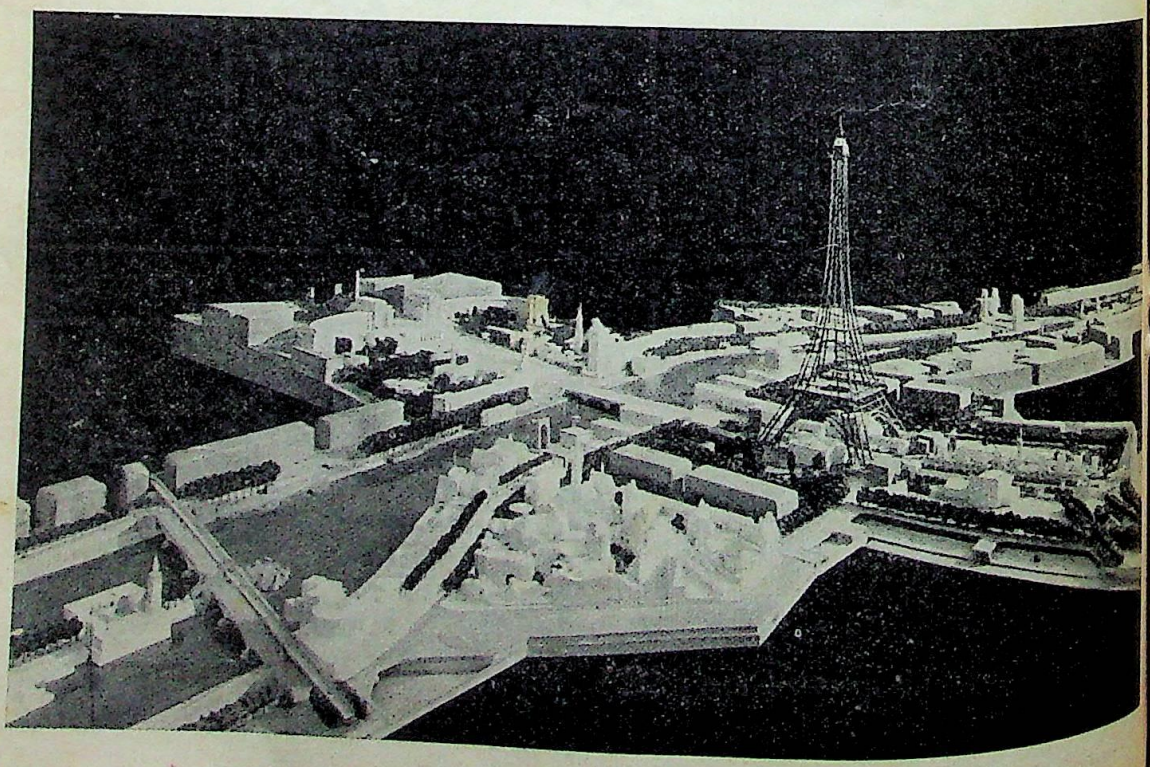

पेरिसमें होनेवाली शिल्प और ललित-कलाकी आगामी विश्व-प्रदर्शिनीका नक्शा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध और उसके उपयोग

कुँवर सुरेन्द्र सिंह 'इन्द्र', आई० डी० डी०

क्या बुड्ढा, क्या जवान, क्या औरत, क्या मर्द, क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित—सभी दूधके नामसे भलीभाँति परिचित होंगे ; किन्तु इसका पता बहुत कमको होगा कि आखिर दूध है क्या, बनता कैसे है और आता कहाँसे है ? यथार्थमें यह समस्या है भी बड़ी गूढ़

समस्त सस्तन प्राणियोंके शरीरमें दुग्धोत्पादक पिंड या गिल्टियाँ (Mammary glands) होती हैं । इनके अलावा शरीरमें और भी पिंड होते हैं ; किन्तु उनसे दूध पैदा नहीं होता। हाँ, उनसे और अनेक प्रकारके पिंडरस अवश्य पैदा होते हैं। वे रस बच्चोंके लिए निरुपयोगी हैं। सस्तन प्राणियोंमें नरके भी दुग्धोत्पादक पिंड होते हैं ; किन्तु उनसे दूध नहीं निकलता ।

पाश्चात्य देशोंमें दूधकी उत्पत्तिके विषयमें सन् १८४० तक वैज्ञानिकोंकी यही धारणा थी कि 'दूध छना हुआ रक्त है।' पर वे लोग इसी धारणाको लिये बैठे नहीं रहे । उन्होंने दूध और खूनकी पूर्णरूपसे परीक्षा की, जिससे इस सिद्धान्तका कि 'दूध छना हुआ रक्त है', खण्डन हो गया। दूध और खूनमें, परीक्षाओंके पश्चात्, जो विभिन्नताएँ देखनेमें आईं, वे निम्न-लिखित हैं :—

(१) दूधमें मांसजनक पदार्थ जिस रूपमें होते हैं, रक्तमें उसी रूपमें नहीं होते ।

(२) दूधमें स्निग्ध पदार्थोंका जो परिमाण प्रतिशत होता है, रक्तमें किसी भी अवस्थामें नहीं होता ।

(३) दूधमें शर्करा (Milk-sugar) होती है ; किन्तु रक्तमें नहीं ।

(४) भिन्न-भिन्न चारोंके खिलानेसे जो विभिन्नता जानवरके रक्तमें पैदा होती है, वह दूधमें नहीं ।

(५) रक्तमें नमकके क्षारका परिमाण अधिक होता है ; किन्तु दूधमें पोटाशके क्षारका परिमाण अधिक होता है ।

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया कि दूध और रक्त अलग-अलग चीज़ें हैं ।

शायद लोगोंने यह देखा कि जैसे ही बच्चा पैदा होता है, रक्तका गर्भाशयकी ओरका प्रवाह बन्द हो दुग्धोत्पादक पिंडोंकी तरफ हो जाता है । इसी हेतु लोगोंने विचार किया कि पहले जो वस्तु गर्भ-पोषणमें काम आती है, वही बच्चा पैदा हो जानेके बाद दूधके बननेमें काम आने लगती है । इस प्रकार इस विषयमें मत-मतान्तरोंके ताँते लगे हुए थे ; किन्तु आज तक किसीने भी इस बातका ठीक-ठीक पता नहीं लगा पाया कि दूधके बननेमें होता क्या है ।

सस्तन प्राणियोंके दो दुग्धोत्पादक पिंड होते हैं—एक दाहनी ओर और दूसरा बाईं ओर । गायका अयन इन दोनोंको मिलाकर एक गोला-सा बन जाता है । इन पिंडोंपर बाहरसे एक पतली त्वचा (Membrane) का आवरण होता है । प्राणिवर्गके जात्यानुसार प्रत्येक दुग्धोत्पादक पिंडके दो भाग होते हैं । अतः दोनों पिंडोंको मिलाकर कुल चार थन होते हैं । कभी-कभी चारसे भी अधिक थन देखनेमें आते हैं ; किन्तु उनसे दूध नहीं निकलता । इन थनोंके सिरोंपर छेद होता है और उसीसे दूध निकलता है ।

अयनकी अन्तर रचना यों है कि दोनों दुग्धोत्पादक पिंड आपसमें मिले हुए होते हैं । इन पिंडोंमें शुद्ध व अशुद्ध रक्तवाहिनियाँ होती हैं । इनके सिवा 'लिम्फ' (Limph) के पिंड, मज्जातन्तु, स्नायु दुग्धवाहिनियाँ, दुग्धोत्पादक मुख्य भाग और दूधके संचयार्थ रिक्त स्थान होता है । प्रत्येक दुग्धपिंडके अनेकों भाग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक 'लोब्यूल' (Lobule) कहलाता है । प्रत्येक लोब्यूलके पुनः अनेकों उपभाग होते हैं, जिन्हें 'एलव्योल' (Alveoli) कहते हैं । इन छोटे-छोटे विभागोंमें अनेकों दुग्धोत्पादक पेशियाँ होती हैं । प्रत्येक दुग्धोत्पादक पेशीमें छोटा-सा रिक्त स्थान होता है, जिसमें नलिका-द्वार होता है । पेशीके इस रिक्त स्थानमें ही दूध एकत्रित होता रहता है । जब दूध अधिक हो जाता है, तो उपर्युक्त नलिका-द्वारसे बहना आरम्भ हो जाता है । ऐसी बहुत-सी दुग्धोत्पादक पेशियों और दुग्ध वाहक नलियोंके परस्पर मिल जानेसे क्रमशः बड़ी-बड़ी नलियाँ बन जाती हैं । ये नलियाँ दुग्ध संचय-स्थानमें खुल जाती हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुग्धोत्पादक पेशियोंको बिना सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) के देखा नहीं जा सकता। इनमें से सबसे छोटी $\frac{४७}{१००००}$ इंच लम्बी और $\frac{३५}{१००००}$ इंच चौड़ी तथा सबसे बड़ीकी लम्बाई $\frac{७८}{१००००}$ इंच और चौड़ाई $\frac{४३}{१००००}$ इंच होती है। ये समस्त पेशियाँ अन्दरसे पोली होती हैं। ये जितनी ही अधिक संख्यामें होंगी, गाय उतनी ही अधिक दुधारु होगी। ये पेशियाँ ६ वर्ष तक बराबर बढ़ती रहती हैं। इससे सिद्ध होता है कि गायकी पूर्णावस्था छै वर्ष ही तक रह सकती है। गायके तीसरे प्रसव (Lactation) तक दूध बढ़ता ही जाता है।

दूधका विश्लेषण करनेसे उसमें अनेक उपादान पाये जाते हैं। ये उपादान विभिन्न जन्तुओंके दूधोंमें एक ही अनुपातमें नहीं होते। निम्न-लिखित तालिकासे कुछ विभिन्न जन्तुओंके दूधोंके उपादानोंका अनुपात ज्ञात होगा :—

उपादान	गाय	भैंस	भेड़	बकरी	घोड़ी	गधी	स्त्री	हेल	बारासिंहा
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
जलांश	८७·७५०	८२·४७	८१·०८	८६·३४	९०·३८	९०·३०	८८·३२	६०·६७	६७·५
घृतांश	३·४००	७·६३	७·६७	४·२५	१·१०	१·३०	३·४३	२०·००	१७·१
पोषकतत्त्व	३·५००	४·६९	६·०८	४·४०	१·९८	१·८०	१·५५	१२·४२	१०·९
दुग्धशर्करा	४·६००	४·३०	४·२६	४·२६	६·२८	६·२०	६·४४	५·६३	२·८
क्षार	०·७००	०·८१	०·९१	०·७५	०·३६	०·४०	०·२६	१·४८	१·५
विशिष्ट गुरुत्व	१·०३१५	१·०३३	१·०३८	१·०३६	१·०३४	—	१·०३२	—	—

उपर्युक्त उपादानोंके अतिरिक्त मि० ब्लाइथका मत है कि दूधमें निम्न-लिखित गैसें भी इस अनुपातमें पाई जाती हैं :—

प्राणवायु (Oxygen)	—	१९·१३ प्रतिशत
कारबनाम्ल (CO_2)	—	३·२७ ,,
नेत्रजन (Nitrogen)	—	७७·६० ,,
		१००·००

इनके अलावा 'ल्युकोसाइट्स' (Leucocytes), 'लेक्टिक एसिड' (Lactic acid) तथा अनेक कीटाणु (Bacteria) भी दूधमें सम्मिलित रहते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि अन्य कीटाणुओंकी तरह ये अहितकर नहीं होते। वैसे तो दूधमें न-जाने कितने प्रकारके कीटाणु हुआ करते हैं, और यदि उनपर विस्तारपूर्वक लिखा जाय, तो एक पुस्तक ही बन सकती है।

अब पाश्चात्य डाक्टरोंकी यह धारणा हो गई है कि दूधसे उत्तम और उपयोगी संसारमें शायद कोई अन्य खाद्य वस्तु है ही नहीं। उन्हीं लोगोंका यह भी कथन है कि केवल दूध ही ऐसा पदार्थ है, जिसमें पाँचो प्रकारके विटामिन मौजूद हैं। शरीर संचालन और पालनके निमित्त जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है, वे सभी दूधमें मौजूद हैं।

मिस्टर ओ०ई० रीडने—चीफ़, ब्यूरो ऑफ डेरी इन्डस्ट्री, यूनाइटेड स्टेट्स, कृषि-विभाग—लिखा है—"दूध अत्यावश्यक भोजन है। इसमें पहले तो वे चीज़ें हैं, जिनकी बच्चोंके शरीर बढ़ानेमें आवश्यकता होती है। दूसरे वे वस्तुएँ, जिनकी नौजवान और बूढ़ोंको अपने-अपने शरीर-यन्त्रके संचालन और मरम्मतके लिए ज़रूरत पड़ती है। तीसरे वे चीज़ें, जिनसे शरीरमें गर्मी और काम करनेकी ताकत मिलती है।" आगे चलकर मि० रीड और भी लिखते हैं—"बच्चोंके विशेषज्ञों और अन्य आचार्योंका कहना है कि बच्चोंको प्रतिदिन कम-से-कम एक क्वार्ट या एक पिन्ट दूध तो अवश्य ही पीना चाहिए।" आपने 'दूध और घरोंमें उसका इस्तेमाल' (Milk and its uses in the Homes) नामक पुस्तिकामें अपने जो विचार प्रकट किये हैं, उन्हें हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Milk is one of the most important food. It excels almost all others in the variety and quality of materials that it furnishes the body, and is suitable for persons of all ages...Milk is one of the easiest of all foods to digest for the normal healthy persons and for many invalids as well."

—'दूध एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खाद्य है। शरीरको भिन्न-भिन्न प्रकारके और अच्छे-से-अच्छे मसाले देनेमें दूध अन्य सब प्रकारके भोजनोंसे बढ़कर है। फिर यह सभी उम्रके लोगोंको माफिक आता है। साधारण स्वस्थ मनुष्य तथा रोगसे उठे हुए अधिकांश कमज़ोर आदमी और सब भोजनोंकी अपेक्षा इसे आसानीसे हज़म कर लेते हैं।'

हमारे हिन्दू-धर्ममें भी दूधकी कुछ कम क़दर नहीं है। दूधको अत्यन्त पवित्र और अमृततुल्य माना जाता है। यहाँ तक कि जब कभी सत्यनारायणका पूजन होता है, तो दूध और दहीके बिना तो कुछ काम ही नहीं चलता। दूध और दहीके मिश्रणसे ही शालिग्रामको स्नान कराया जाता है। इसी प्रकार जब कोई मनुष्य कहीं बाहर सुदूर देशको या किसी शुभकार्यके लिए घरसे चलने लगता है, तो उसे दही अवश्य चखनेको देते हैं। इस प्रकार दूध-दही मंगलके प्रतिरूप बना दिये गये हैं।

आयुर्वेदमें जिस प्रकरणमें बलवर्द्धक औषधियोंकी व्याख्या की गई है, उसके अन्तमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा गया है कि "पय समान औषधि नहीं, जो पय विशुद्ध हो।" है भी यह सत्य ही।

नीचे गायके दूधके तथा दूधसे बननेवाली अन्य वस्तुओंके नामदान और उनका प्रतिशत अनुपात दिया जाता है। हमारे शरीरके संचालनमें जो गर्मी खर्च होती है, उसका अनुपात प्रत्येक पौण्डमें कैलोरीज़ (Calories) के हिसाबसे दिखाया गया है:—

नाम चीज़ (Products)	जलांश प्रतिशत	पोषकतत्त्व प्रतिशत	घृतांश प्रतिशत
दूध	८७·०	५·३	४·०
दूध मलाई निकला	९०·५	३·४	०·१
मलाई	७४·०	२·५	१८·५
मट्ठा	९३·४	०·८	०·३
मीठा गाढ़ा दूध	२८·०	७·८	९·३
गाढ़ा दूध	७३·०	७·०	८·०
सूखा दूध बिना मलाईका	४·०	३५·०	२·०
सूखा दूध	४·०	२५·५	२९·०
मक्खन	१३·०	१·०	८३·०
पनीर (Cheddar Cheese)	३३·५	२६·०	३५·५
पनीर (Swiss Cheese)	३१·४	२७·६	३४·९
पनीर बेमलाईके दूधका	६९·८	२३·३	१·०
केफीर (Kephir)	८९·६	३·१	२·०
क्यूमिस (Kumiss)	९०·७	२·२	२·१
मक्खनका मट्ठा (Butter milk)	९१·०	३·५	०·५

नाम चीज़ (Products)	कारबोहाई-ड्रेट्स प्रतिशत	निरिन्द्र-क्षार प्रतिशत	फ्यूल वैल्यू प्रति पौंड कैलोरीज़
दूध (Whole milk)	५·०	०·७	३१५
दूध मलाई निकला	५·१	०·७	१६५
मलाई (Cream)	४·५	०·५	८८०
मट्ठा (Whey)	४·८	०·७	११५
मीठा गाढ़ा दूध	५३·५	१·७	१४८०
गाढ़ा दूध	१०·५	१·५	६४५
बेमलाईका सूखा दूध	५१·०	८·०	१६४०
सूखा दूध	३६·०	५·५	२३००
मक्खन (Butter)	—	३·०	३४१०
पनीर (Cheddar Cheese)	१·५	३·५	१९५०
पनीर (Swiss Cheese)	१·३	४·८	१९५०
पनीर मलाई निकले दूधका (Skimmilk cheese)	४·०	१·९	५३५
केफीर (Kephir)	४·५	०·८	२२०
क्यूमिस (Kumiss)	४·१	०·९	२००
मक्खनका मट्ठा (Butter milk)	४·२	०·८	१६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यकके मतानुसार भी दूधके गुण कुछ कम नहीं हैं। महर्षि चरक दुग्धके गुणोंको यों लिखते हैं:—

"स्वादुशीतं मृदुस्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरुमन्दं प्रसन्नश्च गव्यं दशगुणं पयः॥
तदेवम् गुणमेवौजः सामान्यादिभिवर्द्धयेत्।
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥"

अर्थ—गोका दूध स्वादु, शीत, मृदु, स्निग्धघन, श्लक्ष्ण-पिच्छिल, गुरु, मन्द और पवित्र उपर्युक्त दस गुणवाला होता है। यही ऊपर कहे हुए दस गुण ओजमें भी होते हैं। समान गुण होनेसे यह दूध वीर्यवर्द्धक है। दूध और वीर्यमें जितनी समानता है, उतनी समानता और किसी भी पदार्थमें नहीं है, इसलिए गोदुग्ध सम्पूर्ण जीवनीय द्रव्योंमें श्रेष्ठ रसायन है।

सद्वैद्योंने दूधकी बड़ी महिमा कही है। उनका कहना है—"सद्योबलकरम् पयः।"

हालमें मौजूदा वायसरायने शिमलामें कमज़ोर लड़के-लड़कियोंको स्कूलमें दूध देनेका प्रबन्ध किया था। तीन महीनेके अनुभवसे इस प्रयोगका फल बहुत सन्तोषजनक साबित हुआ। जिन लड़के-लड़कियोंको अतिरिक्त दूध मिलता था, उनके वज़न औसतमें ३·८४ पौण्ड फी लड़का और ४·५४ पौण्ड फी लड़कीके हिसाबसे बढ़ा और लड़कोंकी ऊँचाईकी वृद्धिका औसत ·६७ इंच और लड़कियोंका ·४१ इंच हुआ। इसी अर्सेमें जिन्हें अतिरिक्त दूध नहीं मिलता था, उनके वज़नकी वृद्धिका औसत १·६ पौंड और ·९२ पौण्ड तथा ऊँचाईकी वृद्धिका औसत ·४ इंच और ·०६ इंच था। इंग्लैण्ड और अमेरिकामें बच्चोंको अतिरिक्त दूध देनेसे १२ महीनेमें जो वृद्धि हुई थी, शिमलाके तीन महीनेकी वृद्धि तेज़ीमें उससे भी बढ़कर निकली। इसका कारण यह है कि यहाँ बच्चोंको जो भोजन मिलता है, पुष्टताकी दृष्टिसे वह बहुत हीन है। उस भोजनमें एकाएक दूध-जैसे पुष्टिकर पदार्थके बढ़ जानेसे बच्चोंकी शारीरिक वृद्धिकी रफ्तार इतनी तेज़ हो गई।

अनजानकारी ही कारण हुआ करती है

हमारी सभी बुराइयों, कष्टों और असफलताओंका एकमात्र कारण हमारा अज्ञान ही हुआ करता है। अबीसीनिया जैसे शिला-साम्राज्यके लोप होनेका कारण भी यही अज्ञान ही था। क्योंकि वहाँके लड़ाके आधुनिक युद्धोपकरणों और अभिनव-युद्ध-संचालन नीतिसे सर्वथा अनभिज्ञ थे, तभी तो वीर और सबल होते हुए भी अभिनव-युद्धकलासे अपरिचित होनेमें वासनायन सिपाही असफल हुए। यही बात भारतके विषयमें भी लागू होती है। बेशक बात-बातका फेर है। हृदक्षय, श्वास, श्लेष्म ज्वर आदि श्वास-सम्बन्धी रोगोंके जितने अधिक लोग भारतमें शिकार होकर मरते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य देशमें इस कारणसे मरते हों। इसका कारण भी वही अज्ञान ही है। यहाँके लोग आधुनिक चिकित्सासे अपरिचित हैं, यह लोग यह नहीं जानते कि मामूली-सी खाँसी, ज़रा-सा जुखाम यद्यपि कोई भारी चिन्ताकी बात नहीं होती, तथापि वे किसी भयंकर रोग क्षयादिके आनेकी सूचना देनेका भी काम करते हैं। और यदि इस चेतावनीका अर्थ ठीक-ठीक समयपर समझ लिया जाय और आगे आनेवाले भारी रोगसे बचनेके लिए एक-दो चम्मच सिरोलिनका शर्बत पी लिया जाय, तो फिर उस रोगका ज़ोर ही मारा जाता है। और इस प्रकार भारी संकटसे बच सकते। लेकिन उनका अज्ञान वैसा नहीं होने देता।

अतः यह सिद्ध कर देनेकी ज़रूरत है कि श्वास रोगोंके लिए अव्यर्थ महौषधि यदि कोई है तो वह है सिरोलिन रचि! और वह आज सारे संसारमें ४॥ बरससे लोकप्रिय बन रही है। उसका सेवन सर्वथा निर्दोष है, और असर पूरा-पूरा दिखाती है। यदि वे लोग इस बातको समझ लें, तो जिससे वे घरमें होनेवाली खाँसी या जुखामको तत्काल रोकनेमें और ऋतु-परिवर्तनसे होनेवाले रोगोंसे बचनेमें सिरोलिनका उपयोग कर सकें। जैसा कि अन्य सभी देशोंके लोग नियमतः ऐसी दशामें किया करते हैं। किन्तु इन सब बातोंकी खबर भी हमें लोगोंको होनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावाके 'केडावूंग' कारखानेकी यात्रा

श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०

फौन रोसम साहबने कहा था कि पेसुरुआनसे केडावूंग निकट है और दोनों स्थानोंकी यात्रा एक ही दिनमें समाप्त हो सकती है। लेकिन पेसुरुआनमें देर हो जानेके कारण मैं उस दिन केडावूंग नहीं जा सका, इसलिए दूसरे दिन वहाँ जानेकी ठानी। फौन साहबने टेलिफोन द्वारा स्मिथ साहब (केडावूंग मिलके मालिक) को सूचना भेज दी थी कि मैं दूसरे दिन साढ़े आठ बजे आऊँगा। मैंने फौन साहबसे सुना था कि स्मिथ साहब बड़े धनी व्यक्ति हैं और भिन्न-भिन्न देशोंमें भ्रमण करना उनकी प्रिय धुन है। भिन्न-भिन्न देशोंका ज्ञान उन्हें ख़ूब है, और उसकी बराबर वृद्धि करनेमें वे मग्न रहते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल पाँच बजे ही मैंने यात्रा प्रारम्भ की, क्योंकि ठीक साढ़े आठ बजे वहाँ पहुँचना था। इस यात्रामें मैं अकेला ही था। केवल एक चीनी किरानी साथ था कि कहीं दुभाषियेकी ज़रूरत न पड़े। मधुमास था (क्योंकि जावामें दो ही ऋतुएँ हैं, ग्रीष्म और वर्षा) और प्रभातकालकी शीतलमन्द वायु हृदयको आह्लादित कर रही थी। गन्ना अब अच्छी तरह पक चुका था, और कई कारखाने चालू भी हो चुके थे। केडावूंग कारखाना भी उनमें से एक था। ईखके खेतोंका दृश्य मनोरम था। शायद ही कहीं कोई गन्ना अठारह फीटसे छोटा नज़र आवे। P. O. J. 2878 नस्लके गन्नेका प्रभुत्व चारों ओर दीख पड़ता था। जावामें एक एकड़ ज़मीनमें क़रीब पचास-साठ मन गन्ना होता है, जब कि भारतमें पन्द्रह-बीस मनसे अधिक नहीं होता। जावाका यह चमत्कार विज्ञानका आभारी है। इस चमत्कारका अन्दाज़ इसी बातसे होगा कि किसी समय जावामें क़रीब ढाई लाख एकड़ ज़मीनके गन्नेसे तीस लाख टन चीनी बनाती थी। अब तो चीनीके बाज़ारकी मन्दीके कारण डच सरकारकी ओरसे चीनीके कारखानोंपर रुकावट लगा दी गई है। यहाँ Sulphate of Amonia ही मुख्य खाद है। जावाके सर्वोत्तम गन्नेके खेतोंका एक बड़ा अंश सिद्धोआर्जोके निकट है। यह जगह पेसुरुआनके रास्तेमें है। सुनते हैं, सामुद्रिक वायुका प्रभाव गन्नेपर बहुत अच्छा होता है। सिद्धोआर्जो समुद्रके निकट है। 'सिद्धोआर्जो' नाम सुनते ही मुझे प्राचीन हिन्दू-धर्मावलम्बी जावाका स्मरण हो आया।

ठीक साढ़े सात बजे पेसुरुआन पहुँचा। होटलमें चाय पीकर आगे बढ़ा। केडावूंग पेसुरुआनसे लगभग दस मील दूर होगा। मोटरने आठ बजकर दस मिनटपर वहाँ पहुँचा दिया। कारखानेकी बनावट आकर्षक थी। इर्द-गिर्दके साफ-सुथरे बँगले बड़े सुन्दर लगते थे। उद्यानोंका तो कहना ही क्या। सभी बँगले उद्यानोंके बीचमें बने हुए थे। हरी दूबके तख़्ते—लान—मखमली कालीन-जैसे प्रतीत होते थे। कारखानेके चारों ओर तारका घेरा था। मुख्य द्वारपर पहुँचकर मैंने सन्तरीसे स्मिथ साहबको ख़बर देनेको कहा। उसने विनयपूर्वक अस्वीकार किया और कहा कि जब आपने अपने आनेकी ख़बर स्मिथ साहबको भेज दी है, तो वे स्वयं यहाँ ठीक वक़्तपर आ जायँगे। बिना इजाज़त मैं किसीको भीतर नहीं कर सकता। ठहरनेके सिवा और कोई चारा न देखकर मैं मोटर ही में बैठा रहा। ठीक साढ़े आठ बजे स्मिथ साहब आये। मेरी मोटरके निकट आकर हाथ मिलाया और बोले—"मुझे खेद है कि आपको ठहरना पड़ा। इसमें मेरा क्या दोष? फौन साहबने ख़बर दी थी कि आप साढ़े आठ बजे पहुँचेंगे। ख़ैर, मैं कष्ट देनेके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"

उनकी वक़्तकी पाबन्दी देखकर मैं अवाक् रह गया। ग़लती मेरी ही थी कि मैं कुछ जल्दी आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने जवाब दिया—"कुसूर मेरा था। आपका क्या दोष ? क्षमा कीजिए। हाँ, इस सन्तरीने कहनेपर भी आपको खबर नहीं दी !"

स्मिथ साहब बोले—"इस सन्तरीने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है। इन्हीं कारखानोंमें जावाकी औद्योगिक सफलताकी कुंजी है, इसलिए इसकी रक्षा यत्नपूर्वक की जाती है। बाहरी आदमियोंपर, खास करके विदेशियोंपर, कड़ी नज़र रखी जाती है। खैर, उसकी अभद्रताके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। आइये, हम लोग एक दूसरेको क्षमा करें।"—यह कहकर हँसते हुए अपना हाथ मेरे कंधेपर रखा और मुझे भीतर ले गये।

जावामें इस बातका बड़ा ख़याल रखा जाता है कि विदेशी वहाँका कोई रहस्य न जान सकें। वे सन्देहकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। कोई उनसे दिल खोलकर बातें नहीं करेगा। शायद कहीं असावधानीसे उनकी औद्योगिक सफलता अपना रहस्य खो बैठे ! इसका अनुभव मुझे पग-पगपर हुआ। मुझे जो-कुछ सुविधाएँ मिलीं, वे फौन रोसम साहबके प्रभावके कारण। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता शब्दोंमें प्रकट नहीं कर सकता।

× × ×

स्मिथ साहब सर्वप्रथम मुझे अपने बँगलेमें ले गये। बँगला बहुत खूबसूरत था और स्वच्छता तथा सजावट परस्पर स्पर्धा कर रही थी। वे मुझे अपनी लायब्रेरीमें ले गये। उसमें करीब दो-तीन हज़ार पुस्तकें थीं। वे विविध विषयोंकी थीं—वैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक आदि। उपन्यासोंकी भी भरमार थी। मैंने साश्चर्य देखा कि कुछ भारतीय लेखकोंकी कृतियाँ भी उसमें थीं। स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त, श्री राधाकुमुद मुकर्जी, श्री के० टी० शाह तथा अन्य दो-एक लेखकोंकी पुस्तकें थीं। इन पुस्तकोंसे स्मिथ साहबका विश्व-प्रेम तथा उनके ज्ञानकी व्यापकता प्रकट होती थी। कुछ देर वहाँ बैठकर हम लोगोंने बातचीत की। उन्होंने मुझे चाय पीनेको कहा ; परन्तु पेसुरुआनमें इन कामोंसे फारिग हो चुकनेके कारण मैंने विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया। आध घंटेके बाद हम दोनों कारखानेमें गये।

इस कारखानेमें प्रतिदिन चार सौ टनसे लेकर छै सौ टन तक गन्ना पेरनेकी क्षमता है। जावाके सभी कारखाने चार सौ टन या उससे अधिक क्षमतावाले हैं। चार सौ टनसे कमका एक भी नहीं। सबसे बड़ा 'जातिरतो' दो हज़ार टनकी क्षमता रखता है। सर्वप्रथम जिस वस्तुने मुझे आकर्षित किया, वह यहांकी गन्ना डालनेकी रीति थी। भारतवर्षमें Cane Carrier में गन्ना हाथसे डाला जाता है, जिसके लिए अनेक मज़दूर रखने पड़ते हैं, और गन्ना भी अस्तव्यस्त रूपमें गिरता है। जावामें यह काम Hoist (एक यन्त्र) द्वारा लिया जाता है। इससे गन्ना नियमानुकूल, यथायोग्य और व्यवस्थित रूपमें गिरता रहता है और कुलियोंकी आवश्यकता नहीं रहती। जावामें इस बातका बराबर ख़याल रखा जाता है कि कम ख़र्चमें ज़्यादा-से-ज़्यादा काम हो। तभी तो जावाकी चीनी भारतमें इतना आयात-कर देकर भी भारतीय चीनीका मुक़ाबला करनेपर तुली रहती है। भारतमें इस प्रकारका यन्त्र केवल सरदारनगर (जिला गोरखपुर) में व्यवहृत होता है, जहाँका मुख्य कार्यकर्ता डच है। मिलके रोलरों (Rollers) की संख्या चौदह थी ; परन्तु वे कार्यदक्षतामें इतने बढ़े थे कि खुइयामें माधुर्यका परिमाण केवल १५ से लेकर २ तक ही रह जाता था। ईंधनका काम खुइया करती थी। कोयलेकी ज़रूरत नहीं पड़ती। किसी भी मिलकी दक्षताका प्रमाण यह भी है कि ईंधनका काम खुइया द्वारा हो। जावाकी समस्त मिलोंमें ईंधनका काम खुइया करती है। तारीफ यह कि P. O. J. 2878 का fibre% (शुष्क पदार्थ प्रमाण)। ११ से कुछ ही अधिक है। भारतीय गन्नोंका fibre% कभी १४ के नीचे नहीं गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावाके गन्नेका छिलका इतना मुलायम होता है कि पैरसे दबानेसे ही रस प्रचुर मात्रामें निकलने लगता है। भारतीय गन्नोंका छिलका बहुत कड़ा होता है। इसमें भारतीय गन्नोंका दोष नहीं। पहले भारतमें न तो वैज्ञानिक पद्धतिपर खेती होती थी और न गन्नेकी भिन्न जातियोंकी ओर वैज्ञानिक ढंगसे ध्यान दिया जाता था, इसलिए गन्ना गरमी और दुश्मनोंसे अपनी रक्षा स्वयं करता था। इन शत्रुओंमें मुख्य top borer नामक कीड़ा, भाँति-भाँतिके कीटाणु, चूहे, शृगाल तथा वन्य शूकर हैं। जब मनुष्योंने उसकी रक्षा नहीं सोची, तब प्रकृतिने उसकी मदद की। इसी कारण उसका छिलका इतना कड़ा हुआ कि शत्रुगण शीघ्र विजय प्राप्त न कर सकें। अब भी भारतमें कृषिका वही हाल है। यद्यपि देशमें चीनीकी अनेक मिलें बन गई हैं और बनती जा रही हैं; मगर गन्नेकी खेतीके तरीक़ोंमें विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। एक विद्वानने भारतीय गन्नोंका उपहास करते हुए कहा है—"सुनते थे कि गन्ना एक प्रकारकी घास है। मुझे इस कथनमें विश्वास नहीं था; पर जब भारतमें चार-पाँच फीट ऊँचा टेढ़ा-मेढ़ा देशी गन्ना देखा, तब मुझे इस कथनमें विश्वास हुआ कि गन्ना वास्तवमें एक प्रकारकी घास है!"

आनन्दका विषय है कि रावबहादुर वेंकटरामन महोदयने कोयम्बटूरमें विविध प्रकारके गन्नोंकी खोज की है और कर रहे हैं, जिससे भारतीय कृषकोंको फायदा होगा। परन्तु अभी तो प्रारम्भ है। कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि जावाके कारखानोंकी मेशीनरी भारतीय कारखानोंकी मेशीनरीकी अपेक्षा अच्छी है। इसीलिए वहाँ कम लागतमें ज्यादा चीनी तैयार होती है; परन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं। जो यन्त्र-विक्रेता जावामें मेशीनरी देते हैं, वे ही भारतवासियोंको भी देते हैं। जावामें कोई मिल बनानेके पहले विशेषज्ञोंकी राय ली जाती है, खास-खास ज़मीनोंकी वैज्ञानिक परीक्षा की जाती है और वाणिज्य-सुविधा तथा आवागमनका पूरा ख़याल रखा जाता है। इन बातोंके सन्तोषजनक प्रबन्ध हो जानेपर और पेसुरुआनके दक्ष वैज्ञानिकोंकी सम्मति लेनेके बाद ही मिलें बनाई जाती हैं। भारतमें इन बातोंका ख़याल किये बिना ही मिलें खड़ी कर दी जाती हैं। एक ही जगह कई-कई मिलें बना दी जाती हैं।

स्मिथ साहबने मुझे बताया—"चीनी खेतमें बनती है, न कि कारखानोंमें, जैसा बहुतसे लोग समझते हैं।" उनके इस गूढ़ कथनका तात्पर्य यह है कि यदि गन्नेमें रस अधिक होगा और वह रोग मुक्त होगा, तो चीनी अच्छी और ज्यादा बनेगी। गन्ना ख़राब होगा, तो चीनी भी उसीके अनुरूप होगी। जावामें जब मिल मेशीनरी मँगाई जाती है, तो किसी ख़ास फर्मसे नहीं, वरन् जिस फर्मकी जो चीज़ अच्छी है, उसे ख़रीदकर सामग्री तैयार की जाती है। इससे फायदा यह होता है कि सभी फर्मोंको कुछ-न-कुछ लाभ प्राप्त होता है। चीनी बनानेकी जो विधि भारतमें है, वही जावामें भी है; परन्तु जावामें रासायनिक देख-भालकी ओर बहुत ध्यान दिया जाता है। इससे जहाँ कहीं त्रुटि हो, जल्दी पता लगता है, और पेसुरुआनके विशेषज्ञोंकी राय ली जाती है। जावामें दो-तीन मिलें एक विशेषज्ञकी निगरानीमें रहती हैं। वह तीनोंमें घूम-घूमकर देख-भाल करता है। उसके साथ तीनों मिलोंमें अलग-अलग असिस्टेन्ट केमिस्ट रहते हैं, जिनका काम यही है कि उसकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करें। इससे हरएक मिलको बहुत बचत हो जाती है, क्योंकि विशेषज्ञ रखनेका ख़र्चा बहुत होता है।

यहाँ खास मार्केकी बात है मज़दूरों तथा विशेषज्ञोंकी कार्यदक्षता। जावाका एक मज़दूर तीन भारतीय कुलियोंका मुक़ाबला करेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि जावा-निवासी भारतीयोंकी अपेक्षा बली होते हैं, बल्कि बात यह है कि उनकी तत्परता, कार्यपटुता और तल्लीनता भारतीयोंसे कहीं बढ़ी-चढ़ी है। जावावासी स्वभावतः गम्भीर होते हैं और सौंपे हुए काममें दत्तचित्त रहते हैं। भारतीय कुली तभी तक काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा, जब तक निगरानीके लिए कोई सरपर मौजूद रहेगा ; जहाँ वह दूर हुआ कि वे शिथिल हो गये। यही कारण है कि जावाके एक कारखानेमें निर्धारित समय (shift) के लिए जहाँ चालीस आदमियोंसे काम चलता है, वहाँ भारतमें डेढ़ सौ आदमियोंकी ज़रूरत होती है। चीनीके कारखानेमें ही नहीं, भारतके सभी कारखानोंमें यही हाल है। इससे यहाँका उत्पादन-व्यय (लागत) बहुत बढ़ जाता है। केडावूंग मिलमें मैंने देखा कि सभी आदमी अपने काममें लगे हुए हैं, कोई व्यर्थ समय नहीं गँवाता और जब तक वक्त पूरा नहीं होता, अपने स्थानसे नहीं हटता। जावाके चीनीके कारखानेमें काम करनेवाले कड़ाहबरदार (Panmen—रसका गाढ़ा करके चीनी बनानेवाले) अपने काममें बड़े प्रवीण होते हैं। ये अधिकांश चीन देशके निवासी हैं। यदि जावाकी चीनी अपना सानी नहीं रखती है, तो इसका बहुत-कुछ श्रेय इन्हीं चाइनी कड़ाहबरदारोंको है। जावाकी चीनीका Standardisation (कोटिकरण) हो गया है। जैसी पहले दिन निकलेगी, वैसी ही आखिरी दिन भी निकलेगी। यदि भारतका हाल जावामें रहता, तो नित्यप्रति व्यापारियों और मिलोंमें झगड़ा ही बना रहता। यह चाइनी कड़ाहबरदारोंकी दक्षताका प्रताप है कि जावाकी चीनी चमकीली और दानेदार होती है। ऐसी चीनी भारतमें बनानेके लिए काफ़ी समय लगेगा। केडावूंगकी चीनी जावाके स्टैण्डर्डके अनुसार तेईस कोटिकी थी। स्मिथ साहबकी इच्छा थी कि चीनी उसी प्रकारकी बने, जिसकी माँग चीन देशमें हो। इसलिए सबसे सफेद चीनी वे नहीं बनाते थे। उनका कहना था कि भारतका व्यापार जावाके हाथसे चला गया और भविष्यमें उसके हाथ आनेकी सम्भावना भी नहीं है। हाँ, चीन देश आगामी अनेक वर्षों तक जावाकी चीनी खरीदा करेगा। स्मिथ साहबकी इस दीर्घदृष्टिके कारण केडावूंग मिलका जीवन भी लम्बा होगा, इसमें सन्देह नहीं।

इसके बाद हम दोनों उनके बँगलेपर गये और शरबत पीकर मोटरमें उनके गन्नेके खेतोंको देखने चले। स्मिथ साहब बड़े विनयी और सौम्यमूर्ति थे ; पर इस विचारको कि वे धनिक हैं और जगतमें धनिकोंका स्थान न्यारा है, वे अपने दिमाग़से दूर नहीं कर सकते थे। इस अहंभावका एक कारण था। जावाकी अधिकांश मिलोंका विक्रय-कार्य एक संस्था करती है, जिसका उस समय नाम V. J. P. था ; पर इस समय उसका रूपान्तर Nivas (निवास) है। उसके अध्यक्ष फौन रोसम साहब थे। जो मिलें इस संस्थामें शामिल नहीं हैं, वे अपना विक्रय-कार्य स्वयं करती हैं। फौन साहबके परिचित होनेपर भी स्मिथ साहब उस संस्थामें शामिल नहीं थे। अपना विक्रय-कार्य स्वयं करते थे। उनकी बातचीतसे यह अहंभाव बारम्बार झलक उठता था। मोटर तीव्र वेगसे जा रही थी। शान्ति भंग करते हुए वे बोले—"तुम्हारे बारेमें होनिग साहबने कल मुझे पेसुरुआनके क्लबमें कहा था। तुमसे मिलकर मैं बहुत खुश हूँ।"

मैंने कहा—"यह फौन रोसम साहबका सौजन्य है कि मैं आपसे मुलाकात कर सका। आप-जैसे बहुश्रुत आदमीसे साक्षात्कार होना कठिन है।"

उन्होंने हँसते-हँसते कहा—"मैं और बहुश्रुत? अभी बहुत बाक़ी है।"

मैंने पूछा—"विश्व-यात्रा करते समय आप रूस अवश्य गये होंगे। रूसके विषयमें आपकी क्या राय है?"

स्मिथ साहबका मुख गम्भीर हो गया। वे सोचते हुए बोले—"रूसकी हालत अश्रुतपूर्व है। राज्य-संचालित उद्योग और कला-कौशलमें सब आदमी अपना वैयक्तिक बुद्धि-बल और चातुरी उपेक्षित पाकर किस तरह सन्तुष्ट होंगे, यह मैं समझ नहीं सकता। सभीको अपनी कुशलता प्रकटकर उसका लाभ उठानेका अवकाश मिलना चाहिए। इसके बिना वैज्ञानिक गति, सामाजिक और धार्मिक गति, अपना पथ निर्भयतापूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं देख सकती। यह सब होते हुए भी रूसके लोगोंके साहस और नूतनतम राजनैतिक तथा सामाजिक अन्वेषण-प्रेमकी प्रशंसा मैं अवश्य करूँगा।"

उनके खेत-समूहोंके निकट पहुँचकर मैंने देखा कि P. O. J. 2878 गन्ना लहलहा रहा है। स्मिथ साहब बोले—"जावाके विस्मयोत्पादक गन्ने (Wonder Cane) की बहार देखिये !"

मैंने बधाई देते हुए कहा—"वैज्ञानिक कृषि-सम्बन्धी अन्वेषणका जावाको श्रेष्ठतम दान क्या यही कहा जायगा ?"

स्मिथ साहब—"इतनी जल्दी ? डा० पोस्थमस (Posthumus) अभी इससे भी बढ़कर गन्नेकी खोजमें हैं। विज्ञानका अन्त कहाँ ? अनन्त आकाशकी तरह वह भी अनन्त है !"

उनके कुछ खेतोंमें 'रातून' उगा था ; परन्तु उसकी हालत अच्छी नहीं थी। जब गन्ना परिपक्व होनेपर काटा जाता है, तब जड़से नहीं काटा जाता। उसी जड़से जो पौधा निकलता है, उसे 'रातून' कहते हैं। क्यूबामें इसका रिवाज बहुत है। उसके पासमें हरित शाली-क्षेत्र समीर द्वारा दोलायमान होकर आमन्त्रण-सा दे रहे थे। ऐसे व्यवस्थित धान्य क्षेत्र यदि मैंने भारतमें कहीं देखे, तो श्री त्रिभुवनराम मेहताके नगीना फार्मपर। क्या ही अच्छा होता, यदि भारतके कृषक भी इस व्यवस्थित पद्धतिका अनुकरण करते।

खेतोंकी शोभासे मन नहीं ऊबता था। एक घंटे बाद हम दोनों लौटे। रास्तेमें स्मिथ साहबने कहा—"क्यूबाने शक्करके व्यापारकी मिट्टी पलीद कर दी है। जरूरतसे ज्यादा चीनी बनाना और दुनियाके मत्थे जबरदस्ती मढ़ना ! ये क्यूबावाले मानो चीनीकी बदौलत ही जीते हैं।"

मैंने कहा—"चैडबोर्न (Chadborne) साहब इसके निवारणके लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।"

स्मिथ साहबने निराशासे कहा—"शक्करका भविष्य बड़ा अन्धकारमय है। ईश्वर ही मालिक है। अच्छा, अब मैं तुम्हें अपना पानीका कुंड दिखलाऊँगा, जहाँसे मिलको पानी मिलता है। एक प्राकृतिक निर्झरको मैंने कुंडाकार कर दिया है।"

पन्द्रह-बीस मिनटमें हम वहाँ पहुँचे। कुंडका पानी अत्यन्त निर्मल था। भ्रान्ति होती थी कि वह बिलकुल गहरा नहीं है। मैंने पूछा—"यह तो गहरा बिलकुल नहीं मालूम होता ?"

हँसते हुए वे बोले—"क़रीब तीस फीट होगा ! इस पानीमें ऐसा गुण है कि पैर रखते ही पैर चाँदीके रंगका दीख पड़ेगा—जब तक उसमें रहेगा, एकदम चाँदीका प्रतीत होगा। इसका उद्भव ज्वालामुखी-जनित है।"

मैं कई मिनट तक मंत्र-मुग्धकी नाईं उस जलको देखता रहा।

× × ×

स्मिथ साहबने मेरे कन्धेपर हाथ रखकर कहा—"धूप कड़ी हो रही है, चलो चलें।" मोटरपर सवार होनेके बाद मैंने ब्रोमोके दर्शनका उनसे वर्णन किया और वृष्टि द्वारा जो तकलीफ़ हुई थी, उसका मनोरंजक बयान सुनाया। उन्होंने कहा—"वर्षाऋतुमें वहाँ नहीं जाना चाहिए। ख़ैरियत हुई कि तुम्हें किसी दुर्घटनाका सामना नहीं करना पड़ा। ब्रोमो देखनेके लिए ग्रीष्म ऋतु ही अनुकूल है।"

मैंने कहा—"जावाकी वनश्री और पार्वत्य-शोभाने मुझे मुग्ध कर दिया। ऐसी छबि दूसरे द्वीपमें शायद ही मिले ?

वे बोले—"अभी तुमने सुमात्रा नहीं देखा है, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। मुझे तो सुमात्रा जावासे अधिक सुन्दर प्रतीत हुआ। वहाँकी वनश्री अभी जनसमाज द्वारा नष्ट होनेसे बची है। लौटती बार सुमात्रा होकर जाना।"

स्मिथ साहबके निवास-स्थानपर पहुँचकर मैंने देखा कि उनके नौकरोंने एक बाघके बच्चेको पकड़ा है। जावामें बाघ पकड़नेकी रीति निराली होती है। एक बाँसके पिंजरेमें मांसका टुकड़ा रख देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोलुप बाघ उसमें प्रवेश करता है और उसके झटकेसे वह पिंजरा अपने-आप बन्द हो जाता है।

दोपहर हो चुका था, और मुझे सुराबाया वापस लौटना था। मैंने स्मिथ साहबसे विदा माँगी। उन्होंने कहा—"मिलका कार्य सीखनेके लिए कुछ दिन यहीं रहो। तुम्हें मैं भूल नहीं सकता, और आशा है, तुम भी मुझे न भूलोगे। विविध देशोंके लोगोंसे समागम होना क्या कम सौभाग्यकी बात है ?"

उनके आमन्त्रणको सहर्ष स्वीकार करते हुए मैंने कहा—"यदि आप मुझे याद रखेंगे, तो मेरे लिए वही बहुत होगा। मैं भी आपको भूल नहीं सकता।"

हाथ मिलाते हुए वे बोले—"मैं भाव-प्रधान व्यक्ति नहीं; पर ऐसे समयपर मैं भी हृदयावेग (Sentimentalism) नहीं रोक सकता। लेकिन तुम फिर लौटोगे और हम लोग कुछ दिन सुखसे व्यतीत करेंगे।" यह कहकर कुछ सोचकर पुनः बोले—"बायु बीरु (Bayu Biru) का प्राकृतिक स्नानागार रास्तेमें पड़ेगा। उसे देखकर तब सुराबाया लौटना। उसे अवश्य देखना।"

उनको धन्यवाद देकर मैं मोटरसे रवाना हुआ। थोड़ी देर तक स्मिथ साहब मोटरकी गति देखते रहे, फिर वे लौट गये। मैं भी जब तक वे दृष्टिपथकी ओट नहीं हुए, उनकी ओर देखता रहा। ऐसे धनी-मानी व्यक्तिसे जान-पहचान हो जानेके कारण मैं हर्षोत्फुल्ल हो गया।

× × ×

बायु बीरु (नील वारि) का स्नानागार पेसुरुआनके रास्तेमें है। एक प्राकृतिक निर्झरको कुंडका रूप दिया गया है और उसके चारों ओर मकान बनाया गया है। अनेक डच स्त्री-पुरुष स्नान कर रहे थे। जल अत्यन्त शीतल और स्वच्छ था। पानीमें जाते ही शरीरका रंग चाँदी-जैसा प्रतीत होता था। यह गुण, स्मिथ साहबके कथनानुसार, शायद ज्वालामुखी-जनित हो। इस कुंडकी उत्पत्ति-कथा यह है कि पांगीरन प्रभु नामक एक राजाका पुत्र एक समय शिकारको गया। दोपहरके समय उसे प्यास लगी। देखा, पास ही में एक छोटा सोता बह रहा है। उसका पानी उसने पिया, तो बड़ा मधुर लगा। कुतूहलवश उसने अपने एक अनुचरसे कहा कि इसका उद्भव-स्थान खोज निकालो। अनुचर बहुत देर तक खोजता रहा और अन्तमें इसी स्थानमें पहुँचकर देखा कि जल यहीं भूमिसे निकल रहा है। वह लौटा और कुमारको उसी स्थानपर ले गया। एक क्षुद्र स्थानको खोजनेमें इतनी देर करनेके कारण क्रोधी कुमारने अनुचरका वहीं बध कर डाला। उसी क्षण सोता एक भयानक शब्द करता हुआ ज़मीनसे फूट पड़ा। दुष्ट कुमार वहीं डूब गया। तभीसे जावावासी इस कुंडको पवित्र मानते हैं। स्नानागारके द्वारके निकट मैंने देखा कि कुछ हिन्दूकालीन मूर्तियाँ पड़ी हैं। गणेश, देवी और गरुड़की मूर्तियाँ शीघ्र पहचानी जा सकती हैं। ये बेचारी मूर्तियाँ मानो इस प्रतीक्षामें पड़ी हैं कि पुनः कभी कोई उनकी देख-भाल करेगा।

पुनः इन स्थानोंके दर्शन कब होंगे, यह सोचते-सोचते पेसुरुआन होता हुआ जब सुराबाया पहुँचा, तो शाम हो गई थी। स्मिथ साहबके उत्साहवर्द्धक और स्निग्ध शब्दोंकी ध्वनि कानोंमें गूँज रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'षड्यन्त्र'

श्री ब्रजमोहन गुप्त

"मैं भी ऐसी बातोंपर विश्वास नहीं करता था, मिस्टर जेम्स !"

"तो फिर....?"

"जब अपने ही साथ ऐसी घटना हो गई, तो अब क्या करूँ ?"

"हूँ....!"

"सुनी हुई बातोंपर अविश्वास किया जा सकता है, अपनी आँखों देखी या अपने अनुभवकी बातोंपर नहीं।"

"किन्तु....?"

"आँखों देखी होनेपर भी मैं उसके विषयमें चिन्तित न होता ; किन्तु....किन्तु अब तो मेरे जीवन तथा मेरी सम्पत्तिका प्रश्न है। अब मैं उसके विषयमें कैसे निश्चिन्त बैठा रहूँ ?"

"जीवन तथा सम्पत्तिका प्रश्न....?"

"हाँ, किन्तु आपकी इस प्रकारकी बातोंके विषयमें क्या धारणा है ?"

"वैज्ञानिक तो केवल उन्हीं बातोंपर विश्वास करता है, मिस्टर स्मिथ, जो विज्ञानशालामें सिद्ध की जा सकती हैं। इन बातोंको तो आज तक कोई भी विज्ञानशालामें सिद्ध कर नहीं सका !"

इसके बाद जेम्स फिर सामने रखे अणुदर्शक यन्त्र (Microscope) पर झुक गया। अणुदर्शक यन्त्रके नीचे मेज़पर काँचकी एक चपटी प्यालीमें किसी रासायनिक पदार्थके नीले रवे (Crystals) रखे हुए थे और समीप ही खुली हुई एक नोटबुक और कोहनूर पेंसिल।

स्मिथ छतपर दृष्टि गड़ाये, आरामकुर्सीपर बैठा धुआँ छोड़ रहा था। उसके पैर सामने फैले हुए थे और सर पीछे कुर्सीपर टिका था। उसके एक हाथमें पाइप था, कभी-कभी सीधा होकर गहरा दम खींच लेता था। उसके दाहने हाथकी अंगुलीमें हीरेके नगकी बहुत पतली-सी जगमगाती हुई अंगूठी और सम्बूरी ओवरकोट उसके धनाढ्य होनेका परिचय दे रहे थे। नीली आँखें और सुनहले बाल भरे हुए चेहरेकी छटाको द्विगुणित कर रहे थे। आयु लगभग पचीस वर्ष होगी।

जेम्सने समीप रखी नोटबुकमें कुछ लिखा और फिर स्मिथकी ओर दृष्टि फेरी।

"हाँ, तो फिर जैसा आप कहें ?"

"आप वहाँ चलकर सब परिस्थिति देखेंगे, तो खुद सब बातोंपर विश्वास कर लेंगे। चलिये, मैंने तो इसीलिए पहले ही आपके पास सूचना भेज दी थी कि आप तैयार रहें।"

"हाँ, मैं स्वयं ही इसकी जाँच-पड़ताल करनेको उत्सुक हूँ, क्योंकि यह तो मेरे लिए एक नवीन आविष्कारका रूप ग्रहण कर लेगा।"

जेम्सने कलाईमें बँधी सुनहली रिस्टवाचपर दृष्टि डाली। आठ बजे थे। पीछेकी ओर फिरकर खिड़कीसे बाहर देखा, कोहरा बहुत घना था। कमरेसे बाहरके समीपकी वस्तुएँ भी छाया-सी प्रतीत होती थीं और दूरीके साथ ही बढ़ती हुई प्रतीत होनेवाली कोहरेकी सघनताने दूरकी सब वस्तुओंपर काला परदा-सा डाल रखा था।

"कोहरा आज बहुत अधिक है ; किन्तु चलो, कुछ हर्ज नहीं। शायद दिन चढ़नेपर 'वेदर' अच्छा हो जाय।"—जेम्सने कुर्सीसे उठते हुए कहा।

उसने खूँटीसे उतारकर हैट पहना और फिर भूरे-से रंगके दस्ताने। "हाँ, पत्रमें उन सब घटनाओंका हाल तो आपने साफ़-साफ़ लिखा न था ? मैं अभी तक भी सब-कुछ पूरी तरह समझ नहीं सका।"—जेम्सने प्रश्नसूचक दृष्टिसे स्मिथकी ओर देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मार्गमें आपको सब बतला दिया जायगा।"—स्मिथने उत्तर दिया।

जेम्सने समीप रखे 'अटैचीकेस' में, जिसमें पहले ही से कुछ सामान रखा हुआ था, एक नोटबुक, एक दूरदर्शक यन्त्र और अपना रिवाल्वर रखा और एक छोटा-सा 'पोर्टेबिल डाइनमो' भी साथ लिया।

"शायद दो-तीन दिनमें लौटना हो, सब सामान ले लेना।"—स्मिथने कुर्सीसे खड़े होते हुए कहा।

"सामानकी क्या आवश्यकता है? फिर आप तो साथ हैं ही!"—जेम्सने मुसकराते हुए उत्तर दिया। दोनों कमरेसे बाहर चले गये।

× × ×

कार कोहरेको चीरती, पों-पों करती, चली जा रही थी। जेम्स और स्मिथ दोनों पिछली सीटपर बैठे थे। ड्राइवरके हाथ मोटरके 'स्टीयर'पर कार्य कर रहे थे; किन्तु उसका मस्तिष्क स्मिथकी बातोंमें उलझा था। कार कभी सड़क छोड़कर बराबरकी पटरीपर आ जाती और वह फिर सजग होकर उसे सड़कपर ले आता।

"....आजसे पन्द्रह दिन पूर्व मैंने उसे सबसे पहले देखा था,"—स्मिथ कह रहा था—"तब कुछ आवश्यक कार्यवश मैं कैंटफ़ोर्टशायर गया था। वह सारा क़स्बा मेरा ही है। कार्यमें इतना व्यस्त रहा कि सायंकालके चार बज गये। ड्राइवरने दो-तीन और आवश्यक कार्य याद दिला दिये, उनमें दो-तीन घंटे और बीत गये। मार्ग अच्छा न था और वर्षा भी बहुत ज़ोरकी होने लगी थी, इसलिए रातको लौटना उचित न समझा। मुझे किसीके यहाँ टिकना अच्छा नहीं लगता, और वैसे किसी सम्बन्धी अथवा मित्रका मकान वहाँ है भी नहीं, यों कहनेको तो वहाँका प्रत्येक व्यक्ति अपना परिचित या भाड़ेदार है। दुर्भाग्यवश वहाँपर कोई होटल अथवा सराय भी नहीं है।

बस्तीसे थोड़ी दूर प्राचीन समयका एक छोटा-सा क़िला है। आने-जानेवाले यात्री उसे ठहरनेके काममें लाते थे। दो-एक छोटी दूकानें भी वहाँ इसलिए खुल गईं थीं। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि अब वहाँ कोई भी ठहरनेका साहस नहीं करता, क्योंकि वह भूतोंका निवास-स्थान हो गया है।"

"आपने यह नहीं पूछा कि ठहरनेवाले व्यक्तियोंको यह कैसे ज्ञात हुआ कि वहाँ भूत रहते हैं?"—जेम्सने बीच ही में बात काटकर उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"हाँ, मैंने पूछा था।"—स्मिथने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"उन्होंने मुझे अनेक विचित्र कहानियाँ सुनाईं थीं; किन्तु उस समय मुझे उनमें से एकपर भी विश्वास नहीं हुआ था। मुझे बतलाया गया था कि ठहरनेवालोंने वहाँ रात्रिके समय गाने-बजानेकी आवाज़ सुनी, कभी-कभी पयानोंकी ध्वनिपर कोई नाचता हुआ भी प्रतीत होता था। इधर-उधर बहुत खोज की गई; किन्तु कहीं कुछ पता नहीं चला। आवाज़ क़िलेके अन्दर ही सुनाई देती थी, बाहर नहीं। इसके अतिरिक्त वहाँ बहुत बार ठहरनेवालोंके सम्मुख अन्दरके हालमें रक्तकी वर्षा हुई। रक्त गिरता दीखता था; किन्तु यह ज्ञात न होता था कि रक्त कौन गिरा रहा है, कैसे गिरा रहा है। ऊपर छत थी, और वहाँ कोई भी दीखता न था। कुछ व्यक्तियोंका तो कथन है कि वहाँ उन्होंने भूतोंको स्पष्ट अपनी आँखोंसे देखा। उन्होंने उज्ज्वल प्रकाशके घेरेमें विचित्र भूतोंको ऊपरसे आते, हवामें चलते और फिर हवा ही में अन्तर्धान होते देखा है।"

"क्या कभी किसीने भूतोंके भेदको जाननेका प्रयत्न नहीं किया?"—जेम्सने एक हाथसे अपना मस्तक खुजाते हुए प्रश्न किया।

"हाँ, एक बार एक 'डिटेक्टिव' आया था," स्मिथने उत्तर दिया—"वही वहाँ सबसे अधिक दिन ठहर पाया। जिस दिन वह आया था, उसके सातवें रोज़ उसकी लाश चारपाईपर पड़ी मिली। उसकी जेबमें एक डायरी भी मिली, जिसमें उसने उस रातका सोते समय तकका हाल लिख रखा था। उसे भी नाच-गाना, रक्तकी वर्षा, भूत आदि सब विचित्र चीज़ें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई दी थीं ; किन्तु वह उनसे डरा नहीं, वहीं टिका रहा। उसने आवाज़ ज़मीनके अन्दरसे आती हुई प्रतीत होती लिखा है। जिस रातको वह मरा, उससे पहली रातको उसे आवाज़ सुनाई दी थी कि तुम यहाँसे कल चले जाओ, नहीं तो अगली रातको मार दिये जाओगे। और हाँ, एक बात और, उसका सारा शरीर नीला हो गया था !"

"सारा शरीर नीला हो गया था !"—जेम्सने एकाएक चौंककर कहा—"तब तो एक प्रकारकी ज़हरीली गैस द्वारा उसकी हत्या की गई !"

"कुछ भी हो, लोगोंने तो भूतोंको ही उसकी मृत्युका कारण समझा। लाशके 'पोस्ट मार्टम' के बाद पुलिस जाँच-पड़ताल करने आई थी ; किन्तु कुछ भी पता न चला। और आप जानते हैं कि गाँव-क़स्बोंके मामलेमें बहुत छानबीन भी तो नहीं होती।"

"क़स्बेमें रहनेवाले व्यक्तियोंको तो किसी तरहकी हानि नहीं पहुँचाई जाती ?"

"नहीं।"

"और न कभी क़िलेके बाहर कोई उस प्रकारकी विचित्र घटना ही हुई ?"

"नहीं।"

"और आपकी अपनी घटना तो अभी····"

"वह अब सुनाऊँगा। उनमें से बहुत-सी बातें तो मुझे बादमें ज्ञात हुईं ; किन्तु जितना उस दिन सुना था, वह सब तो मुझे कहनेवालोंके मस्तिष्ककी ख़राबी और अन्ध-विश्वासका फल ही प्रतीत हुआ था। मैंने उस दिन ड्राइवरसे क़िलेपर चलनेके लिए कहा। वहाँ दो व्यक्ति रहते थे। उनसे पूछनेपर मालूम हुआ कि वे वहाँ भूतोंकी सिद्धि करनेमें लगे हैं। प्रतिदिन उनकी पूजा करते हैं, इसलिए वे उन्हें कुछ हानि नहीं पहुँचाते। मैंने उनसे ठहरनेके लिए कहा। उन्होंने मुझे बड़े हालके पासकी कोठरीमें ठहरा दिया। विश्वास उन बातोंपर न होनेपर भी कुछ भय हृदयमें था ही। बाहर हालमें अँधेरा था, कोठरीमें लालटेन जल रही थी। मैं वहाँ अकेला था, क्योंकि ड्राइवर वहाँ ठहरनेके लिए तैयार न हुआ था। मैंने सोनेका प्रयत्न किया ; पर सो न सका। बैठा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था। घड़ी देखी, बारह बजे थे। मुझे लालटेनकी रोशनी कुछ धीमी-सी पड़ती प्रतीत हुई। मैंने सोचा, शायद तेल समाप्त हो गया है। लालटेनको हिलाकर देखा, तो तेल उसमें काफ़ी था ; फिर भी लौ छोटी पड़ती जा रही थी। वह धीमी हुई, धीमी हुई और बुझ गई। कमरेमें अँधेरा कुप्प हो गया। मैंने ज़ोरसे आवाज़ दी ; किन्तु आवाज़ शायद हालके बाहर तक भी न पहुँची हो, क्योंकि बाहर मूसलधार पानी पड़ रहा था। मैंने अनुभव किया कि मेरे मुँहसे आवाज़ ठीक नहीं निकल रही है और मेरे हृदयकी गति तीव्र हो गई है।

'घबराना मत, तुम्हें किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाई जायगी।'—मुझे उस भयानक अन्धकारमें से आवाज़ सुनाई दी।

'कौन ?····'—मैंने किसी प्रकार पुकारा ; किन्तु मुझे कुछ भी उत्तर न मिला। उसके बाद ही छतके समीप प्रकाश-सा होता दिखाई दिया। प्रकाश बढ़ा और फिर उज्ज्वल प्रकाशसे घिरी ऊपरसे नीचे तक सफ़ेद चोग़ा-सा पहने हुए एक झिलमिलाती पारदर्शक-सी शकल दिखाई दी। न वह पृथिवीपर टिकी थी और न छतसे लगी थी। अधरमें ऐसी स्थित थी, मानो हवापर खड़ी हो।

'तुम कौन हो ?'—मैंने बड़ी कठिनाईसे कहा। मेरा गला घुट-सा गया था।

'मैं तुम्हारे चाचाकी रूह हूँ।' उस सफ़ेद शकलसे आवाज़ आई—'मुझे तुम्हारे पिताने, जब हम दोनों ज़मींदारीके कार्यवश यहाँ आये थे, क़त्ल करा दिया था। फिर उन्होंने मेरी सारी जायदादपर जालसाज़ीसे कब्ज़ा कर लिया। मेरा लड़का आजकल भूखों मर रहा है। अपने पिताकी करोड़ोंकी सम्पत्ति, जिसमें से अधिकांशका हक़दार वह था, तुमने पाई है। या तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिताके पापके प्रायश्चित्त-स्वरूप तुम अपनी आधी सम्पत्ति मेरे लड़केके नाम कर दो, वरना एक मास बाद तुम्हारे पिता द्वारा कराये गये अत्याचारके प्रतिशोध-स्वरूप तुम जानसे मार दिये जाओगे।' इसके बाद ही वह शकल ग़ायब हो गई, मानो गलकर हवामें मिल गई हो। फिर कमरेमें पूर्ववत अँधेरा हो गया।

'किन्तु तुम्हारे लड़केका तो कुछ पता नहीं, वह तो बहुत दिनोंसे गायब है।'—मैंने चिल्लाकर कहा।

'तुम जायदाद उसके नाम करनेका निश्चय कर लो, वह तुम्हारे पास आ जायगा।'—अन्धकार ही में से आवाज़ सुनाई दी। फिर मेरे हृदयके अतिरिक्त और सब-कुछ शान्त हो गया। मैं उस समय बहुत भयभीत हो गया था। यदि मुझे पहले ही निडर रहनेका आश्वासन न दे दिया गया होता, तो शायद भयवश 'हार्ट फेल' हो जानेसे मेरी मृत्यु हो जाती।"

इतनेमें ही कार केंटफोर्टशायर आ गई।

× × ×

स्मिथने उठकर बाहर देखा, ड्राइवर सड़कके दूसरे किनारेपर खड़ा कपड़ेसे कार साफ़ कर रहा था—"बॉय, चार टोस्ट लाओ।"—स्मिथने पुकारा, और फिर जेम्ससे वार्तालाप करने लगा।

"क्यों, आपने अपने चाचाकी हत्याके विषयमें पहले भी सुना था?"—जेम्सने चायका प्याला टेबिलपर रखते हुए कहा।

"सुना था। मेरे पिताजीकी मृत्यु तो तभी हो गई थी, जब मैं बहुत छोटा था; किन्तु मेरे ड्राइवरने कई बार मुझसे चाचाकी हत्याके विषयमें चर्चा की थी। उसने यह तो नहीं कहा कि पिताजीने उसकी हत्या कराई; किन्तु चाचाका ख़ून हो जानेकी बात कही थी। अस्पष्ट ढंगसे कुछ जायदादके विषयमें भी जिक्र किया था।"

"क्या यह ड्राइवर आपके पिताके समयका है?"—जेम्सने चायकी घूँट भरी।

"हाँ, जब मैं बहुत छोटा था, तभी यह पिताजीकी मृत्युके बाद नौकरी छोड़कर चला गया था। कोई चार माह हुए यह फिर आया और इसने इस बातका प्रमाण दिया कि वह हमारा बहुत पुराना ड्राइवर है और अब आर्थिक संकटमें है। मैंने उसे फिर रख लिया।"

"प्रमाण! प्रमाण क्या है?"

"प्रमाण यही कि उसने हमारी बहुत-सी ऐसी घरेलू बातें बताईं, जिन्हें कोई भी व्यक्ति, जब तक वह बहुत दिनों तक पिताजीके साथ न रहा हो, जान नहीं सकता।"

जेम्स दोनों हथेलियोंपर सर रखे बहुत गम्भीरता-पूर्वक कुछ सोच रहा था। इतनेमें ही ड्राइवर अन्दर आया। "हुज़ूर, हुक्म हो तो थोड़ी देरके लिए कहीं हो आऊँ।"—ड्राइवरने स्मिथसे कहा—"मुझे अपने ठहरनेका भी इन्तजाम करना है।"

"क्या तुम हमारे साथ नहीं ठहरोगे?"—स्मिथने प्रश्न किया।

"आप कहाँ टिकेंगे, हुज़ूर?"

"क़िलेमें।"—जेम्सने उत्तर दिया।

"यही मैं भी सोच रहा था और इसीलिए तो कहा।"—ड्राइवरने विनय की—"वहाँ ठहरनेका तो साहस मुझमें नहीं। वहाँ तो....वहाँ तो....सो तो आप जानते ही हैं।"

"अच्छा, जाओ; किन्तु जल्दी लौट आना।"—स्मिथने आज्ञा दे दी।

ड्राइवर चला गया, तब स्मिथने जेम्ससे कहा—"आप क़िलेमें ठहरनेका विचार तो कर रहे हैं; किन्तु....किन्तु...."

"हाँ, हाँ, किन्तु क्या?"

"इस उद्देश्यसे वहाँ आकर ठहरनेवाले एक व्यक्तिकी हत्या भी तो हो चुकी है।"

"यह मुझे ज्ञात है; पर यदि आघातकी सम्भावना हो भी, तो वह मेरे लिए हो सकती है, आपके लिए नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों ?"—स्मिथको आश्चर्य हुआ।

"यदि आपके चाचाकी रूहको इस बातका भय न होता कि कहीं आप भयसे गल न जायँ, तो वह आपको निडर रहनेके लिए प्रकट होनेसे पहले कभी चेतावनी न देती।"—जेम्स मुसकराया।

"पर यदि····यदि····" स्मिथकी समझमें कुछ भी आ नहीं रहा था।

जेम्सने बीचमें ही बात काटकर कहा—"यदि किसी प्रकार भी आपकी मृत्यु हो जाय, तो उनका सब परिश्रम निष्फल हो जायगा।"

"किनका परिश्रम, मिस्टर जेम्स ?"—स्मिथने आश्चर्यके साथ पूछा।

"उन्हींका, जिन्होंने यह सब षड्यन्त्र रचा है।"

"षड्यन्त्र ?"

"हाँ, षड्यन्त्र। आपके लड़केकी आयु अभी केवल पाँच वर्षकी है। यदि किसी प्रकार भी आपकी मृत्यु हो जाय, तो फिर तेरह वर्ष तक वे लोग कुछ भी कर नहीं सकते। सम्पत्तिका प्रबन्ध 'कोर्ट आफ वार्ड्स'के हाथोंमें चला जायगा।"

"पर यदि आप ही के····"

"आपको उसकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं, वह मैं स्वयं कर लूँगा। वैज्ञानिक तथा 'डिटेक्टिव'का एक पैर सदा मृत्युकी परिधिके भीतर रहता है, और मैं इस समय दोनोंका कार्य कर रहा हूँ।"

इसके बाद दोनों मित्र वहाँसे चले गये।

× × ×

"क्या जब आप पहले आये थे, तब यही दो व्यक्ति यहाँ थे, जिन्होंने हमें लालटेन दी है ?"—जेम्सने प्रश्न किया।

"एक तो उन्हींमें का है ; पर एक नया है।" स्मिथने उत्तर दिया—"यह जो भारी-से बदनका हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति है, तब नहीं था ?" दोनों क़िलेके हालमें बैठे वार्तालाप कर रहे थे। इतने बड़े हालमें केवल एक लालटेन टिमटिमा रही थी और चारों ओर सन्नाटेमें साँय-साँय-सी हो रही थी।

"देखिये।"—स्मिथने सहसा लालटेनकी ओर इशारा करते हुए कहा। जेम्सने देखा कि लालटेनकी रोशनी धीमी पड़ती जा रही है। उसने शीघ्रतासे लालटेनको हिलाकर देखा, तेल काफ़ी था ; रिस्टवाचपर स्मिथकी निगाह गई, साढ़े ग्यारह बजे थे। "लगभग इसी समय उस दिन भी लालटेन बुझ गई थी !" उसने घबराकर कहा। इतने ही में दोनोंने देखा कि लालटेन बुझ गई। हालमें बिलकुल अँधेरा हो गया।

"देखो, तुम घबराना नहीं।"—जेम्सने स्मिथसे कहा। इतनेमें ही हालके एक कोनेमें छतके समीप प्रकाश-सा हुआ ; फिर झिलमिलाती एक विचित्र शकल दृष्टिगोचर हुई।

"स्मिथ, तुम कुछ भी उपाय करो ; पर जो-कुछ मैंने कह दिया है, वह टल नहीं सकता।"—उस शकलसे आवाज़ आई।

धाँय - धाँय - धाँय जेम्सने उसपर रिवाल्वरसे गोलियाँ दागीं। क्षण-भर ही में सब-कुछ वहीं ग़ायब हो गया और हालमें फिर अँधेरा हो गया।

दोनों मित्र रात-भर बैठे रहे, क्षण-भरके लिए भी सोये नहीं। बहुत-सी विचित्र ध्वनियाँ उन्हें वहाँ सुनाई दीं ; किन्तु चारों ओर केवल अन्धकार था, कुछ भी सूझता न था। रात अब बीते, अब बीते। वे एक-एक क्षण गिन रहे थे और रात मानो स्थिर हो गई थी। ज़रा भी वे बोलते थे, तो उसकी प्रतिध्वनि उन्हें हालमें गूँजती सुनाई देती थी।

अन्तमें रात बीती और हालमें थोड़ासा प्रकाश हुआ। जेम्स एक हाथमें अपने बाल पकड़े चक्कर लगा रहा था। घूमता-घूमता वह बाहर चला गया। बहुत देर तक चलता चला गया। कुछ सोचता हुआ चला जा रहा था कि सहसा चौंका, जैसे कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद आ गया हो और शीघ्रताके साथ वह क़िलेको लौट आया।

"ज़रा लालटेन तो दिखाना।"—जेम्सने हालमें आकर स्मिथसे कहा।

"उसे तो अभी वह आदमी, जिसने लालटेन दी थी, ले गया।"—स्मिथने उत्तर दिया।

"ले गया, कब ले गया?"—जेम्सने हड़बड़ाहटके साथ पूछा।

"अभी कोई पाँच मिनट हुए!"—स्मिथने जेम्सके चेहरेपर कुछ पढ़नेका प्रयत्न किया।

"ज़रा उसे मँगवाना।"—जेम्सने कुछ सोचते हुए कहा।

स्मिथ लालटेन ले आया। जेम्सने उसे खोलकर देखा। बत्ती ठीक थी। थोड़ा-सा तेल एक कपड़ेपर डालकर जलाया, वह भी ठीक था, ख़ूब जलता था। फिर उसका चेहरा और भी गम्भीर-सा हो गया। 'लालटेन लौटा दो।'—उसने धीमे स्वरमें स्मिथसे कहा।

× × ×

"आज आपने प्रकाशका प्रबन्ध क्यों नहीं किया?"—स्मिथने आश्चर्यके साथ जेम्ससे प्रश्न किया।

"लालटेनसे क्या लाभ? वह तो बुझ जाती है!"—जेम्सने उत्तर दिया—"मैंने बहुत सोचा; किन्तु समझ न सका कि वह कैसे बुझ जाती है! बताओ न, उससे लाभ क्या?" वह स्पष्ट शब्दोंमें कह रहा था। उनमें किसी प्रकारका प्रकम्पन नहीं था, घबराहट नहीं थी। उसके पास ही एक लोहेका बक्स-सा रखा हुआ था और उसकी कोहनी उसीपर टिकी थी। दोनों मित्रोंमें वार्तालाप हो रहा था और चारों ओर अँधेरा था।

"क्या समय हुआ होगा?"—जेम्सने पूछा।

"शायद साढ़े ग्यारह बज गये हों।" उसे उत्तर मिला। और अन्धकारमें उसने कुछ ध्वनि सुनी, मानो किसीने बिजलीका 'स्विच आन' कर दिया हो।

"तुम दोनों बेकार अपनी जान गँवानेपर तुले हुए हो। तुम्हारा रिवाल्वर यहाँ काम नहीं देगा। तुम लोग यहाँसे चले जाओ।" अन्धकारमें से आवाज़ आई।

जेम्सने समीप रखे डाइनमोका एक बटन दबाया और बिजलीका एक बल्ब जल गया। सारे हालमें प्रकाश हो गया। स्मिथको किसी वस्तुकी छाया-सी छतके समीप दिखाई दी। धाँय-धाँय! उसने उसपर रिवाल्वरसे निशाना लगाया।

कड़ाकसे एक गोली आकर बिजलीके बल्बपर लगी। वह चूर-चूर हो गया और फिर सब-कुछ अन्धकारमें छिप गया।

"ठीक है।"—जेम्सके मुँहसे सहसा निकल गया और उसने शीघ्रतासे एक और बटन 'डाइनमो' का दबा दिया। हालमें फिर प्रकाश हो गया। दूसरा बल्ब लोहेकी जालीके भीतर था। उसने फिर उस छायाके समान वस्तुपर गोली दागी—धाँय-धाँय!

उसके ऊपर भी 'फ़ायर' की गई—धाँय-धाँय! दो गोली आकर उसके लगी; किन्तु वह अन्दर स्टीलकी जालीका एक प्रकारका वस्त्र पहने हुए था, गोलियोंका उसपर कुछ भी असर नहीं हो सकता था।

धाँय-धाँय-धाँय! उसने लगातार तीन गोलियाँ और चलाईं। 'कड़क····कड़क····कड़क····धम' कुछ काँच-जैसे यन्त्र टूटनेकी आवाज़ हुई और कोई वस्तु धमसे पृथिवीपर आ गिरी।

वह एकदम उठकर झपटा। उसने देखा कि सफ़ेद-सा चोग़ा पहने हुए एक आदमी है। उसने फुर्तीसे रिवाल्वर उसके माथेपर रख दिया और कड़ककर कहा—"ख़बरदार!"

दूसरा व्यक्ति चुप रहा।

"या तो जो-जो प्रश्न करूँ, उनका उत्तर सच-सच दे दो, नहीं तो घोड़ा दबाया और तुम्हारा काम तमाम हुआ।"

दूसरा व्यक्ति अब भी चुप है।

"बोलो।"

चुप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक"

चुप।

"दो"

चुप।

"ती...."

"ठहरो।"

"बोलो।"—जेम्सने फिर कहा।

"आप पूछें, क्या पूछते हैं?"

"अपने विषयमें सब-कुछ मुझे बता दो।"

"मैं एक क्रान्तिकारी दलका नायक हूँ। मैं मृत्युसे नहीं डरता। मैं क्या, हमारे दलका कोई भी व्यक्ति मृत्युसे नहीं डरता; किन्तु....किन्तु...."

"किन्तु क्या?"

"क्या मैं आपका परिचय पूछ सकता हूँ?"

"मेरा नाम जोम्स है!"

"जेम्स?"

"हाँ।"

"क्या वैज्ञानिक जेम्स? वही, जो अपने आविष्कारोंके लिए बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं?"

"हाँ।"

"तब मुझे अधिक चिन्ता नहीं। एक महान व्यक्तिके हृदयमें महान कार्योंके लिए सम्मानका भाव रहता है। हाँ, मैं मृत्युसे नहीं डरता; पर यदि मैं इस समय अपनेको नहीं बताऊँगा, तो सैकड़ों व्यक्तियोंका महीनोंका परिश्रम बेकार हो जायगा। मैं भी वैज्ञानिक हूँ और मेरे दलमें और कोई भी व्यक्ति मेरे षड्यन्त्रके 'प्लान'से भली प्रकार परिचित नहीं। देखो, मैं रूसकी राजसत्ता उलट देनेका इरादा रखनेवाले दलका नायक हूँ। रूसी राज्यने हमारे दलके अनेक व्यक्तियोंको प्राणदंड दिया और अनेकको कारागारमें डाल रखा है। अब हम यहाँ षड्यन्त्रकी तैयारीमें लगे हैं। हमारे पास नवीन वैज्ञानिक आविष्कारोंकी अद्भुत शक्ति है।"

"तो फिर आप लोग मि० स्मिथके पीछे क्यों पड़े हैं?"

"हमारी उनसे कोई शत्रुता नहीं। हमारे दलको धनकी आवश्यकता थी। इनका चचेरा भाई हमें मिल गया था। उसने कहा था कि यदि हम इनसे रुपया वसूल करा दें, तो उसका दोतिहाई दल ले सकता है, इसीलिए इनके विरुद्ध यह षड्यन्त्र रचा गया था।"

"अब इनका चचेरा भाई कहाँ है?"

"यह बताना हमारी नीतिके विरुद्ध है।"

"खैर, इसे जाने दीजिए, आप अपने यहाँके इन विचित्र कार्योंके विषयमें बताइये।"

"इस किलेके नीचे बहुत बड़ा तहखाना है—इससे भी बड़ा—जितना सारा क़िला ऊपर है। वहीं हम सब रहते हैं।" जेम्सका रिवाल्वरवाला हाथ अब भी तना था और वह व्यक्ति कह रहा था—"हमारे पास दो नवीन यन्त्र हैं। एक तो ऐसा है, जिसकी सहायतासे मनुष्य अदृश्य (invisible) हो सकता है। हमने वह यन्त्र इतना छोटा बनाया है कि 'डाइनमो' सहित उसे व्यक्ति अपने पास रख सकता है। दूसरा यन्त्र है ऊपर उड़नेका। हाइड्रोजन (Hydrogen) ही की तरहकी एक नये किस्मकी गैस है। वह रबरकी ट्यूबसमें भरी रहती है। उसे बनानेका यन्त्र छातीसे बँधा रहता है। उसकी सहायतासे व्यक्ति हवामें ऊपर उठ सकता है। आपकी गोलियोंका कुछ भी प्रभाव मुझपर न हुआ, ऐसी वस्तु अन्दर पहने हूँ; किन्तु अचानक आपकी एक गोली काँचकी नलीपर लगी। उसका सम्बन्ध दोनों यन्त्रोंसे था। उसके टूटते ही दोनों यन्त्र बेकार हो गये। आजकी घटनासे भी एक प्रकारसे लाभ ही हुआ। दोनों यन्त्रोंमें केवल एक काँचकी नली है, और अब मैं अनुभव करता हूँ, उसे भी मुझे निकाल देना होगा।

"और तो सब ठीक समझमें आ गया; किन्तु वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालटेनवाली बात ?"—जेम्सने उत्सुकताके साथ पूछा।

"वह तो बहुत साधारण-सी बात है ?"—उसने उत्तर दिया—"वे दोनों हमारे ही आदमी हैं। यहाँ लोगोंके ठहरनेसे हमारे कार्योंमें बाधा पड़ती है, इसीलिए हम लोग यहाँ किसीको ठहरने नहीं देते। लालटेनके अन्दर बत्तीकी जगह तारकी जाली है। उसके ऊपर केवल इतना जलनेवाला पदार्थ लगाया जाता है, जो लगभग चार घंटे तक जलता रहे।"

"किन्तु लालटेन तो मैंने खोलकर देख ली थी।"

"किन्तु कब ? जब वह बदल दी जा चुकी थी। अब मुझे आज्ञा मिले।"—उसने प्रार्थना की—"और देखिये, आप लोग हमारे कार्यमें किसी प्रकार बाधा न पहुँचावें, क्योंकि हमारा सम्बन्ध आप लोगोंसे कुछ न रहेगा।"

जेम्सने रिवाल्वर नीचा कर लिया और वह व्यक्ति वहाँसे चला गया।

× × ×

अगले दिन प्रातःकाल जब स्मिथ और जेम्स क़िलेसे बाहर आये, तो उन्हें न तो वे दो व्यक्ति ही मिले और न ड्राइवर। बहुत खोज कराई गई; किन्तु स्मिथको ड्राइवरका पता ही न चला!

आशा

श्री उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश', एम० ए०

यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

(१)

पहले ही पहले मैंने
पीनेकी की अभिलाषा,
भीतर-ही-भीतर बढ़कर
हो गई विलीन पिपासा।
यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

(२)

आँसूके दर्पणमें था
प्रियका प्रतिबिम्ब चमकता,
मैं हुआ ध्यानमें ढलकर
पलभर उनकी प्रतिमा-सा।
यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

(३)

वह जीवन-संध्यामें थी
चल-लोक रंजनी सुषुमा,
फिर अश्रुनयन तारोंमें
जागृत हो उठी निराशा।
यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

(४)

सब तिमिराकाश सिमिटकर
साँसोंमें उतर समाया,
प्राणोंके ऊपर छाया
कुहरा-सा नील धुआँ-सा।
यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

(५)

मरु-पथपर मौन पड़े हैं
मेरे श्लथ-गीत विहग ये,
मिट गई चमककर उनकी
डूबे - तारोंमें भाषा।
यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

(६)

प्रिय! कौशाम्बरसे ढक लो
मेरा यह कोमल जीवन,
पीड़ासे हुआ प्रकम्पित
दिनमुखकी दीपशिखा-सा।
यह इन्द्रधनुष-सी आशा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'माधुरी' का कहानी-अंक

देशी और विदेशी कलाकारोंकी ३१ कहानियों तथा कहानी-साहित्य-सम्बन्धी ८-१० लेखोंसे पूर्ण करीब ३०० पृष्ठमें 'माधुरी' का कहानी-अंक हमारे सामने है।

प्रस्तुत अंकके तीन विभाग किये गये हैं। प्रत्येक विभागके पूर्व कहानी-साहित्यकी प्रगतिके सम्बन्धमें सम्पादकीय नोट दिये गये हैं।

प्रथम भागमें विदेशी कलाकारोंकी सुन्दर एवं भावपूर्ण १५ कृतियाँ हैं, जो कि एक-से-एक बढ़कर हैं। गोधूलि, फूल, झरबेरियाँ, बुढ़ापा, उपहार, बदला इत्यादि सभी कहानियाँ कहानी-प्रेमियोंकी प्यास बुझानेके लिए झरनेके स्वच्छ शीतल जलकी भाँति हैं। दूसरे भागमें हिन्दीके प्रसिद्ध लेखकोंकी २० कहानियाँ हैं, जिनमें ये चिट्ठी-पत्री, नारी, कूड़ाकर्कट, कल्लन कालू, स्वाभिमान, अभावकी प्रतिक्रिया, टूस्नेप, त्रिवेणी आदि अच्छी चीज़ें हैं।

हाँ, 'झूठे खत' नामक कहानीपर हमें सम्पादक महोदयसे खास शिकायत है। यद्यपि हम यह नहीं चाहते कि हम अपनी रचनाओं द्वारा केवल दुःख तथा व्यथा ही प्रकट करते रहें अथवा मर्सिये ही पढ़ते रहें, तथापि यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि हमारे साहित्यका यही प्रमुख विभाग अर्थात् कहानी-साहित्य ही हमारे बच्चों, नवयुवकों और नवयुवतियोंके हाथमें जाता है। कहानीके चावसे ही वे साहित्यकी ओर बढ़ते हैं, और इस प्रकारकी लिखी गई चीज़ोंसे उन कोमल मस्तिष्कोंपर कितना बुरा असर पड़ सकता है।

बँगला, तेलगु, उर्दू और मराठीकी ४ सुन्दर कहानियाँ अन्तिम भागमें दी गई हैं। 'कहानीकी कला', 'संसारके कहानी-साहित्यका इतिहास', 'कहानीका शीर्षक' नामसे तीन महत्त्वपूर्ण लेख नये कहानी-लेखकोंके लिए आवश्यक एवं उपयोगी वस्तु हैं। कहानी-अंक प्रत्येक साहित्य-प्रेमीके लिए संग्रहणीय चीज़ है।

—सत्यवती मलिक

ओसवाल नवयुवक—सम्पादक, श्री विजयसिंह नाहर बी० ए० और श्री भंवरमल सिंघी बी० ए०, साहित्यरत्न। वार्षिक मूल्य ३); पता—ओसवाल नवयुवक कार्यालय, २८ स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता।

इस पत्रके दस अंक इस समय हमारे सामने हैं, और हमने उन्हें सरसरी निगाहसे दो बार देखा है और कई लेखोंको आदिसे अन्त तक पढ़ा भी है। जातीय और साम्प्रदायिक पत्रोंके विषयमें हमारे मनमें यह आशंका निरन्तर बनी रहती है कि उनका दृष्टिकोण संकुचित होगा, और प्रायः जातीय पत्र ऐसे ही दृष्टिकोणसे सम्पादित होते भी हैं; पर 'ओसवाल नवयुवक' में हमें इस संकीर्णताके लक्षण प्रायः नहीं दीख पड़े। उपर्युक्त दस अंकोंमें कितने ही लेख ऐसे हैं, जो किसी अच्छेसे अच्छे सार्वजनिक पत्रकी शोभा बढ़ा सकते थे; यथा :—

(१) नाहरजीके साथ परिचय — श्री वासुदेवशरण अग्रवाल;

(२) राजस्थानके दोहे
(३) राजस्थानके ग्राम-गीत } श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया

(४) मेक्सिम गोर्की — श्री मोहन आर० व्यास;

(५) भारतवर्षका पशुधन — श्री सेठ अलच सिंह;

(६) जापानी चीज़ें इतनी सस्ती क्यों? — श्री गोबर्द्धनसिंह महनोत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अंकोंमें कितने ही लेख व्यापारसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, और यह होना ही चाहिए, क्योंकि पत्रके ग्राहक-समुदायमें से अधिकांश व्यापारी-समुदायके होंगे। जीवन-बीमा, करेंसी, 'मुद्दती हुंडी' और 'हिसाबमें जालसाज़ी' आदि विषय इसी बातको ध्यानमें रखकर लिखे गये हैं। कितने ही लेख विद्यार्थियोंके लिए बड़े उपयोगी हैं; यथा—आँखोंकी रक्षा। चित्रोंके विषयमें हमें एक निवेदन करना है, वह यह कि उनके चुनावके क्षेत्रको विस्तृत करनेकी आवश्यकता है।

ओसवाल नवयुवकोंकी संगठन-शक्तिको देखकर हमें हर्ष और आश्चर्य हुआ। बिना सुदृढ़ संगठनके ओसवाल नवयुवक समिति बिहार-भूकम्पके पीड़ितोंकी सहायताके लिए साढ़े अट्ठाईस हज़ार रुपये एकत्र न कर पाती।

क्या ही अच्छा हो, यह शक्ति सद्ग्रन्थोंके प्रकाशनमें भी लगे। साधारण जनताके लिए लाभदायक छोटे-छोटे ट्रेक्ट तथा उपयोगी पुस्तक-पुस्तिकाओंके छपानेके लिए समितिको प्रयत्नशील होना चाहिए। 'ओसवाल नवयुवक' के संचालक यदि साल-भरमें १२ ट्रेक्ट और २।३ ग्रन्थ भी निकाल सकें, तो बहुत अच्छी बात हो। जातीय विषयोंके लिए एक फार्म रिज़र्व करके शेष फार्मोंमें सार्वजनिक हितके लेख रहने चाहिए। साम्प्रदायिक पत्रोंका कल्याण इसीमें है कि वे राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयताकी ओर अधिकाधिक बढ़ते रहें। इन छोटे-छोटे फिरकोंको विशाल भारतीय समाजमें मिला देना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

चिट्ठी-पत्री

सम्पादकजी,

आपके मार्चके अंकोंमें प्रकाशित 'भारतकी प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता' लेखमें मेरे नामका ज़िक्र भी आ गया है। पर एक भूल रह गई है। प्रगतिशील साहित्य-संघके लखनऊवाले पहले वार्षिकोत्सवमें मैं शामिल हुआ था। सभापति वहाँ प्रेमचन्दजी थे। पर वह अपनी इच्छाके प्रतिकूल, मैं संघका बाक़ायदा सदस्य नहीं हो सका। संघके मैनिफेस्टोपर दस्तखत करनेमें मैं असमर्थ रहा। मैनिफेस्टोके कुछ शब्द मुझे स्वीकार्य न थे। फिर भी संघके अधिकारीजन कृपापूर्वक मुझे अपनोंमें ही गिनते रहे और सभाओं-कानफरेंसोंमें बुलाते रहे। मैं भी पहुँचता रहा। उनकी अब भी मुझपर कृपा है और मेरे साथ अच्छे सम्बन्ध हैं। पर उस मैनिफेस्टोपर दस्तखत करके होनेवाला बाक़ायदा सदस्य मैं प्रगतिशील लेखक-संघका नहीं हूँ। यों मैं अपनेको प्रगतिशील गिनता हूँ, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

कृपया इसे अपने पत्रमें प्रकाशित कर दें।

—जैनेन्द्रकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

बजट और गवर्नर-जनरल

कांग्रेसने मंत्रित्व स्वीकार करनेके लिए गवर्नरोंसे इस बातका वादा माँगा था कि वे मंत्रियोंके मतके विरुद्ध, यानी व्यवस्थापिका सभाके मतके विरुद्ध, अपने विशेष अधिकारोंका उपयोग न करेंगे। गवर्नरोंने वादा देनेसे इनकार कर दिया। भारत-मंत्री लार्ड ज़ेटलैण्डने अपने एक लेखमें इस बातका ढिंढोरा पीटा है कि इंग्लैण्डने भारतको प्रजासत्तात्मक विधान दे डाला है। लार्ड लिनलिथगोने भी ऐसी ही बात कही है। हालमें भारत-मंत्री साहबने कहा है—"कोई कारण नहीं है कि गवर्नरोंके विशेषाधिकार कभी काममें लाये जायँ। वे काममें लाये जायँगे या नहीं, यह तो मंत्रियोंकी नीति और उनके कार्योंपर निर्भर करेगा। यह क़ानून मंत्रियोंकी स्थितिको सहानुभूतिपूर्ण ढंगसे समझकर और सद्भावपूर्ण सहयोगके साथ काममें लाया जायगा।"

लेकिन व्यवस्थापिका सभाओंमें भारतीय जनताके प्रतिनिधियोंके साथ गवर्नर-जनरल साहब किस ढंगका बर्ताव करते हैं, इसका जवाब देनेके पहले यह बतला देना चाहिए कि नये क़ानूनके अमलमें आनेके बाद भी लार्ड लिनलिथगो कई वर्ष तक भारतके गवर्नर-जनरल रहेंगे और व्यवस्थापिकाओंके बहुतसे भारतीय प्रतिनिधि भी नये विधानके अन्दर भारतीयोंके प्रतिनिधि बने रहेंगे। इस प्रकार जिस ढंगसे लार्ड लिनलिथगो मौजूदा व्यवस्थापिका सभाके प्रतिनिधियोंके साथ बर्ताव करते हैं, उससे इस बातका सही आभास मिल सकता है कि भावी व्यवस्थापिकाके प्रतिनिधियोंके साथ कैसा बर्ताव होगा। यदि लार्ड लिनलिथगो अभी स्वेच्छाचारी हैं, तो अपने शासनके बाक़ी वर्षोंमें भी वे स्वेच्छाचारी ही रहेंगे। और यदि भारतके मौजूदा व्यवस्थापकोंकी राजनैतिक समझ, क्षमता और आर्थिक ज्ञान अभी घृणाके योग्य है, तो इन्हीं आदमियोंकी (या इन्हींके समान आदमियोंकी) राजनैतिक समझ और क्षमता आगे भी कुछ कम घृणाके योग्य न होगी।

दिल्लीकी एसेम्बलीमें सरकारको हारके बाद हार खानी पड़ी, और रेलवे बजट और साधारण बजटमें कटौतीके कई प्रस्ताव पास किये गये। एसेम्बलीने शक्करपर आबकारीकी चुंगी बढ़ानेके विरुद्ध और तीन पैसेके पोस्ट कार्डको दो पैसेका कर देनेके पक्षमें मत दिया था; लेकिन सरकारपर कोई असर नहीं हुआ। सरकारने सर जेम्स ग्रिगके बजटमें किसी तरहका कोई परिवर्तन न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। क्या सरकारकी यह कार्रवाई शासकोंकी जनसत्तात्मक मनोवृत्तिका परिचय देती है? क्या इससे यह प्रकट होता है कि सरकार जनताके प्रतिनिधियोंके मतपर कुछ भी ध्यान देनेका रुख रखती है?

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

एशियाई कौन है?

दक्षिण-अफ्रिकामें एशियाई लोगोंके ख़िलाफ़ दो क़ानून बन रहे हैं। उन क़ानूनोंमें एशियाई लोगोंकी परिभाषा ख़ास तौरपर की गई है। इस परिभाषाके अनुसार एशिया महाद्वीपके सभी देशोंके लोग 'एशियाई' क़रार दिये गये हैं, सिर्फ जापानको छोड़कर। क़ानूनमें यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि वह जापानी नागरिकोंपर लागू नहीं हो सकता। ऐसा क्यों किया गया? क्या जापान एशियामें नहीं है, या जापानियोंकी नसोंमें यूरोपियन रक्त बहता है? कहनेको तो इसका कारण यह कहा गया है कि जापानके साथ दक्षिण-अफ्रिकाका व्यापारिक सम्बन्ध है, इसलिए जापानियोंको 'एशियाई' होनेके जुर्मसे बरी किया जाता है। अगर व्यापारिक सुविधा जापानियोंके साथ रियायतका असली कारण है, तो यह कहा जा सकता है कि दक्षिण-अफ्रिकाके व्यापारको और दक्षिण-अफ्रिकाकी रियासतोंको विकसित करनेमें भारतीयोंने जितना परिश्रम किया है, उतना किसी भी अन्य देशवालोंने नहीं किया। दक्षिण-अफ्रिकापर भारतीयोंका एहसान जापानियोंसे हज़ार गुना ज़्यादा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानियोंको एशियाई होनेके जुर्मसे बरी करनेका मुख्य कारण है जापानियोंकी फौजी ताक़त और जापान-सरकारकी अपने देशवासियोंकी मान-रक्षाकी तत्परता। हमने क़िस्सा सुना है कि एक जापानीके साथ दक्षिण-अफ्रिकाके गोरे अफसरोंने वैसी ही बदतमीज़ीका बर्ताव किया था, जैसा कि वे अकसर दूसरे काले आदमियोंके साथ करते हैं। उक्त जापानी इत्तफ़ाकसे दक्षिण-अफ्रिकाके एक मन्त्रीसे मिलने गया। उसने गोरे अफसरोंकी बदतमीज़ीका क़िस्सा मन्त्री साहबको कह सुनाया और अन्तमें कहा—"तुम अपना भाग्य सराहो कि तुम अंगरेज़ी झंडेके नीचे हो, वरना मैं तुम्हें बता देता कि किसी जापानीके साथ बदतमीज़ीका बर्ताव करनेका क्या नतीजा होता है।"

दक्षिण-अफ्रिकाके गोरे—और ब्रिटिश साम्राज्यवादी भी भलीभाँति जानते हैं कि जापानकी फौजी ताक़त कम नहीं है, और जापान-सरकार अपने नागरिकोंकी सम्मान-रक्षाके लिए तथा उनके उचित—और अनुचित भी—अधिकारोंकी रक्षाके लिए उस फौजी ताक़तको इस्तेमाल करनेको भी सदा तैयार है। वह तमाचेका जवाब घूँसेसे देती है, इसीलिए जापानी सौ फी-सदी एशियाई होते हुए भी एशियाई नहीं हैं।

फौज भारतके पास भी कम नहीं है—ज़रूरतसे ज्यादा है। मगर उसका इस्तेमाल विदेशी बेलजियनोंकी रक्षाके लिए हो सकता है, भारतीयोंके हितोंकी रक्षाके लिए नहीं!

—

गांधी-संग्रहालय

आजसे १५ वर्ष पहलेकी बात है। इन पंक्तियोंके लेखकने साबरमती-आश्रममें श्री जमनालालजी बजाजके सामने एक प्रस्ताव रखा था कि यदि वे एक टाइपिस्ट क्लार्कका प्रबन्ध कर दें, तो महात्माजीके पत्र-व्यवहारको, जो भारतके तथा विदेशोंके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें फैला हुआ है, इकट्ठा किया जा सकता है। खेदकी बात है कि आदरणीय सेठजीने उस प्रस्तावके महत्त्वको नहीं समझा। अतएव महात्माजीका जो थोड़ा-बहुत पत्र-व्यवहार आश्रममें बिखरा हुआ पड़ा था, उसे ही हमने एकत्र करके एक अलमारीमें रख दिया था। बाहरसे मसाला मँगानेकी बात तो दूर रही, उस अलमारी तकको हम लोग सुरक्षित नहीं रख सके! आश्रम टूटनेके समय वह अलमारी कहाँ गई, इस बातका पता लगानेके लिए मैंने महात्माजीको लिखा था; पर निश्चयपूर्वक अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। गांधी-संग्रहालयके विषयमें मैं श्री जमनालालजी, श्री घनश्यामदासजी बिड़ला, श्री भगीरथमल कानोड़िया, श्री सीताराम सेकसरिया तथा अन्य कितने ही सज्जनोंसे निवेदन कर चुका हूँ; पर परिणाम अभी तक कुछ भी नहीं निकला। श्री प्यारेलालजी तथा श्री महादेवभाईसे भी इसका ज़िक्र आया था। बहुत-कुछ सोचनेपर भी यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि इस कार्यकी आवश्यकता या महत्त्वको उपर्युक्त महानुभावोंने क्यों नहीं समझा। शायद मुख्य कारण यह है कि महात्माजीके अत्यन्त निकट रहनेसे वे लोग इस संग्रहालयके गौरवको नहीं समझते। यह भी हो सकता है कि अन्य आवश्यक कार्योंमें व्यस्त होनेके कारण उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिलता, जो इधर ध्यान दे सकें। महात्माजीके भक्तों तथा प्रशंसकोंमें सैकड़ों ही लखपती आदमी हैं और सहस्रों ही विद्वान और लेखक। क्या उनमें से दो-चार भी ऐसे नहीं निकल सकते, जो गांधी-संग्रहालयके लिए अपने समय, धन तथा शक्तिके एक अंशको लगा दें? बाज़-बाज़ भक्तोंको लाखों रुपये सालकी आमदनी होती है, और वे उसे अनेक अनावश्यक कार्योंमें—उदाहरणार्थ, मन्दिर तथा धर्मशाला बनवानेमें—व्यय किया करते हैं; पर गांधी-संग्रहालयको, जो कभी संसारके लिए एक तीर्थ-स्थान बन सकता है, वे महत्त्वपूर्ण नहीं समझते!

अभी उस दिन हम 'इंडियन ओपिनियन' के दिवाली-अंकमें पोलक साहबका लेख पढ़ रहे थे। उसमें उन्होंने लिखा है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह बात अब भी मुझे आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि महात्मा गांधीके दृष्टिकोणमें जो महान परिवर्तन हुआ, उसका कारण मैं बन गया, और सो भी बिना जाने-बूझे। बात यह हुई थी कि महात्माजी जोहान्सबर्गसे डरबन जा रहे थे। मैंने उन्हें रस्किनकी लिखी पुस्तक 'Unto this Last' दे दी। महात्माजीने आत्म-चरितमें इस बातका ज़िक्र किया है कि उस पुस्तकके पढ़नेसे उनके जीवनक्रममें क्या क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। अब भी मेरे पास 'Unto this Last' की वही प्रति मौजूद है, और साथ ही साथ 'Song Celestial' की महात्माजीके हस्ताक्षरकी पुस्तक भी है, जिसे मैं उनके संग पढ़ा करता था। ये दोनों किताबें जब गांधी-संग्रहालय स्थापित होगा, तब उसकी भेंट की जावेंगी।"

यह बात पोलक साहबने १३ नवम्बर १९३६ के अंकमें लिखी थी, और दिल्लीके 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के एक विशेषांकमें उन्होंने इस बातको दुहराया भी था। महात्मा गांधीके सुपुत्र श्री देवीदास गांधी 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में ही काम करते हैं और पोलक साहबका यह लेख उनकी निगाहसे गुज़रा भी होगा। मालूम नहीं कि उन्होंने इस विषयपर कुछ विचार किया भी या नहीं। सुना है कि वरधामें मगनबाड़ीका निर्माण प्रारम्भ हो गया है। क्या ही अच्छा हो, यदि श्री जमनालालजी बजाज तथा श्री घनश्यामदासजी बिड़ला अपने अन्य साधन-सम्पन्न सहयोगियोंकी सहायतासे इस गांधी-संग्रहालयके शुभकार्यको भी प्रारम्भ कर दें।

—

प्राचीन विशाल भारतसे भारतका सम्बन्ध

'अमृतबाज़ार पत्रिका' के गत ५ अप्रेलके अंकमें मद्रासका निम्न-लिखित तार छपा है—

"वरधाकी अखिल भारतीय हिन्दी-प्रचार-सभाकी ओरसे सीलोन, श्याम, जावा और सुमात्राको, जो प्राचीन कालमें भारतीय उपनिवेश थे, एक सांस्कृतिक दूत-मंडलका जाना निश्चित हुआ है। यह मंडल उन उपनिवेशोंमें भारतके सांस्कृतिक प्रभावका अध्ययन करेगा। इसमें निम्न-लिखित सदस्य होंगे—श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री राजेन्द्रप्रसाद, श्री जमनालाल बजाज, लेडी रमन और श्री काका कालेलकर। यह मंडल जुलाईमें अपनी यात्रा प्रारम्भ करेगा और सितम्बरके अन्त तक लौट आवेगा।"

हमारी समझमें यह कहीं अधिक लाभदायक होता, यदि यह सांस्कृतिक दूत-मंडल प्राचीन विशाल भारतकी यात्राके बदले आधुनिक विशाल भारतकी यात्रा करता। उदाहरणार्थ, मारीशसको लीजिए। वहाँकी सम्पूर्ण जनसंख्या ३,९३,४१८ है, और उनमें २,६५,७९६ यानी ७० फी-सदी भारतीय हैं। इस प्रकार संख्याकी दृष्टिसे हम मारीशसको भारतीय उपनिवेश कह सकते हैं। इन लोगोंमें हिन्दीके प्रति काफ़ी उत्साह है। श्रीयुत जी० रोतू नामक सज्जनने 'Indian Culture Review' नामक पत्रिकाके जनवरीके अंकमें लिखा है—

"In conclusion, I shall review the different languages spoken within the community. First of all there is Hindi or rather Hindustani, which is understood by all and can be spoken too by all if only they care to try. Then comes Tamil. It is confined within the Tamil people and there is no likelihood of its ever crossing its present bounds, for it is somewhat difficult to learn and even to speak. Thirdly there is Telugu. It may be a very musical language and, indeed, it contains more Sanskrit words and sounds than either of the first two, but the same remarks apply to it as to Tamil. In these circumstances, why should we not all make of Hindustani a common language ? The gain to the community would be infinite."

'इंडियन कलचर रिव्यू' का एक हिन्दी-विशेषांक 'वसन्त' के नामसे प्रकाशित हुआ है, जिसका सम्पादन किया है श्रीयुत उमाशंकर गिरजानन्द बी० ए० ने, जो मारीशसमें ही उत्पन्न एक सुशिक्षित भारतीय युवक हैं। हालमें पं० आत्मारामजी द्वारा लिखित 'हिन्दू मारीशस' नामक ४३७ पृष्ठकी एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। निस्सन्देह यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौक़ा है, जिसका हम अपनी राष्ट्र-भाषाके प्रचारके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर सकते हैं। प्राचीन 'विशाल भारत'की सांस्कृतिक यात्राको भी हम उपयोगी समझते हैं ; पर उसका उपयोग ऐतिहासिक दृष्टिसे है, हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे बिलकुल नहीं, क्योंकि जावा, सुमात्रा, श्याम तथा सीलोनमें हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी संख्या नगण्य ही है।

यदि प्राचीन विशाल भारतकी यात्रा करनी है, तो उसमें Greater India Society के डा० कालिदास नाग तथा कलकत्ता-विश्वविद्यालयके श्रीयुत डा० सुनीतिकुमार चटर्जी जैसे विद्वानोंको भी साथ ले लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ये लोग इस विषयका गम्भीर अध्ययन अनेक वर्षोंसे कर रहे हैं। इनके सिवा किसी कलाकारको साथ ले जानेकी ज़रूरत है—उदाहरणार्थ, श्री नन्दलाल वसु, श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, श्री कनूदेसाई इत्यादि। पर जैसा कि हम लिख चुके हैं कि प्राचीन विशाल भारतका महत्त्व इस समय केवल इतिहासकी दृष्टिसे ही है, आधुनिक विशाल भारतकी बात इससे विभिन्न है, वह एक सजीव और बढ़ती हुई चीज़ है।

यात्री-मंडलके नामोंपर भी हमें ऐतराज है। इसमें शक नहीं कि उसके सभी व्यक्ति हमारे लिए श्रद्धेय हैं ; पर जिस विशेष कार्यके लिए वे जा रहे हैं, उसके लिए उनके पास पूरा समय है भी या नहीं, इसमें सन्देह किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, श्रीमान टंडनजीको किसान-आन्दोलन और राजनैतिक झंझटोंसे इतना अवकास कहाँ मिल सकता है कि वे इस ऐतिहासिक कार्यमें अपने समयके चार छै महीने भी लगा सकें ? और बाबू राजेन्द्रप्रसादजीपर बिहार-प्रान्तका बोझ कौन कम है, जो यह नवीन कार्य उन्हें सौंपा जा रहा है ? श्री जमनालाल बजाजको तो, यदि वे अपने सभापतित्वके कर्तव्यको यथोचित रीतिसे करना चाहें, साल-भर तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके लिए भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके दौरे करने चाहिए। और काका साहब कई संस्थाओंका भार लिये बैठे हैं। ढाई-तीन महीनोंमें चार उपनिवेशोंकी यात्राके मानी यह होंगे कि एक उपनिवेशमें ये लोग पन्द्रह-बीस दिनसे अधिक व्यय न कर सकेंगे। पन्द्रह-बीस दिनमें यह मंडली कुछ उल्लेखयोग्य कार्य कर सकेगी, इस बारेमें हमें बहुत शक है। प्राचीन विशाल भारतके विषयमें बहुत कुछ मसाला फरासीसी तथा डच भाषाओंमें है। इस मंडलीमें इन भाषाओंके ज्ञाता कितने हैं और कलाओंके विषयमें आलोचनात्मक दृष्टिकोण किन-किनका है, यह बात हमें नहीं मालूम। और फिर सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न यह है कि इस यात्रापर से लौटनेके बाद इन सज्जनोंमें से कौन-कौन इस विषयको अपनाये रहेंगे ?

यदि इस यात्राके बजाय मारीशस तथा फिजीकी यात्रा की जाय, तो हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे कहीं अधिक उपयोगी काम हो सकता है। फिजीमें तो हिन्दी वहाँकी सरकार द्वारा भारतीयोंकी भाषा स्वीकृत हो चुकी है। और मारीशसमें हिन्दी-भाषा-भाषियोंका ही बाहुल्य है। पुराने वृक्षकी जड़ोंका अध्ययन करनेके बजाय नये उगते हुए पौधोंको पानी देना कहीं अधिक आवश्यक है। हमारा फिर भी यही अनुरोध है कि यह मंडली आधुनिक विशाल भारतको हाथमें ले। भारतीय राजनीतिका भी उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राचीन विशाल भारतके खँडहरोंके अध्ययनका काम इतिहासज्ञ व्यक्तियोंपर छोड़कर हमें नवीन विशाल भारतका निर्माण करना चाहिए। प्रश्न यह है कि कौन-सा काम अधिक आवश्यक है—मृत बाबाका श्राद्ध करने गया जाना अथवा जीवित नातीकी शिक्षाका प्रबन्ध करना ?

—

नायिका-भेदका पुनरागमन

किसीने सच कहा था कि दुनियामें कोई चीज़ नष्ट नहीं होती, उसके रूपमें परिवर्तन हो जाता है। युगधर्मकी पुकारने हिन्दी-साहित्यसे नायिका-भेदको कुछ दिनोंके लिए बाहर निकाल दिया था ; पर वह अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताके बजाय किस्से-कहानियोंके रास्ते फिर साहित्यमें प्रवेश कर रहा है। फ़र्क केवल इतना ही है कि प्राचीन कालके कवि अपनी कविताओंमें स्वकीया, परकीया, खंडिता, नवोढ़ा इत्यादिका प्रवेश विधिवत् अध्ययन करनेके बाद कराते थे और बाज़-बाज़ नायिकाओंको तो अँधेरी रातमें बड़े भयंकर समयमें यात्रा करनी पड़ती थी ; पर हमारे गल्प-लेखक उन्हें दिन-दहाड़े साहित्यके मैदानमें सरपट दौड़ा रहे हैं। ऐसी-ऐसी कहानियाँ पढ़नेको मिलती हैं कि उन्हें पढ़कर कहना पड़ता है कि इससे तो पुराने ज़मानेका नायिका-भेद ही अच्छा था।

एक कहानीमें कोई सज्जन विदेश चले जाते हैं और अपने मित्रके पास अपनी पत्नीको छोड़ जाते हैं। लौटकर आते हैं, तो उनकी पत्नी उन्हें एक सन्तान भेंट करती है और कहती है—"यह है आपके मित्रका उपहार !" लेखकके कहानी लिखनेके ढंगसे कहीं भी यह प्रगट नहीं होता कि उपहारकी यह भयंकर प्रथा वर्तमान सामाजिक जीवनमें एक ग़दर मचा देगी।

दूसरे कहानी-लेखक एक अविवाहिता लड़कीका सम्बन्ध एक विवाहित पुरुषसे करा देते हैं, और फिर बादमें उस लड़कीकी शादी भी किसी अन्य व्यक्तिसे करा देते हैं।

तीसरी कहानीमें एक स्त्री अपने पतिकी क्षणस्थायी ग़ैरहाज़िरीमें परपुरुषसे उसी तरह प्रलोभनकारी बातचीत करती है, जिस प्रकार नायिका-भेदके ग्रन्थोंकी कोई नायिका किसीसे कहती है—"सास मेरी अन्धी है और प्रीतम विदेश गये हुए हैं और रात अँधेरी है," इत्यादि-इत्यादि। यह सब नायिका-भेद नहीं, तो क्या है ?

हम इस बातको मानते हैं कि साहित्यसे श्रृंगार-रसको कदापि अलग नहीं किया जा सकता और नायिका-भेद भी किसी-न-किसी रूपमें बना ही रहेगा। हमारा कहना सिर्फ इतना ही है कि अभी इस युगमें साहित्यके उस अंगको वृथा पुष्ट करनेकी ज़रूरत नहीं है। यदि हमारा साहित्य अन्य विषयोंमें भरापूरा होता, तो नायिका-भेद भी चल सकता था ; पर अब तो वह ऐसा लगता है, जैसे लटे हुए चेहरेपर लम्बी नाक।

जिस बातको हम लिखना चाहते थे, उसे श्री बालकृष्णजी शर्मा 'नवीन'ने अपने मुंगेर-साहित्य-परिषदके भाषणमें बड़ी ख़ूबीके साथ कह दिया है। उनके शब्द ये हैं :—

चित्रपट और प्राणकी लघुता

हमारे वर्तमान साहित्यकी चित्रशालामें दूसरी कमी मुझे यह दिखलाई देती है कि हमारे साहित्यकारोंका चित्रपट (Canvas) बहुत छोटा है। इसलिए हमारे उन कलाकारोंकी कूचीसे आकाशके विस्तारका चित्रण नहीं हो पाता। कहानीमें, उपन्यासमें, निबन्धोंमें हम यह कमी अनुभव करते हैं। दायरा इतना छोटा रहता है कि कला जैसे अपने पंखोंका विस्तार नहीं कर पाती। सामाजिक जीवनकी सम्पूर्णताका चित्रण एक जगह देखनेको नहीं मिलता। जिस तरह टाल्स्टायकी 'आनाकरेनिना'में या गाल्सवर्दीके 'फोर्साइट सागा' उपन्यासमें उन-उन देशोंकी तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक और आर्थिक तथा गार्हस्थिक दशाका एक पूर्णचित्र देखनेको मिलता है, उस तरह हमारे साहित्यकी कृतियोंमें वह चित्र हमें नहीं मिलता। कारण वही है—हमारे चित्रपटका छोटा होना और जीवन-अध्ययनके सामर्थ्यका अभाव। क्यों न हमारे कुछ साहित्यिक, ज़रा हिम्मत करके, एक बार अपने पंखोंको फैलावें और पैंतीस करोड़के इस हा-हा-हूती मुल्कको एक छोरसे दूसरे छोर तक स्पर्श करनेका प्रयत्न करें ? वर्तमान हिन्दी-साहित्यमें कुछ ऐसी प्रेरणा-सी आ गई है कि हम अपने चित्रपटको छोटा ही रखते हैं और उसीमें गुचुर-गुचुर करके रंगामेजी किया करते हैं। हमें विस्तार की, फैलनेकी आवश्यकता है।...

विविधताकी कमी हमारे काव्य-साहित्यमें ही हो, सो बात नहीं है। हमारे उपन्यासों और हमारी कहानियोंका भी वही हाल है। विषय-वैचित्र्य हम जानते ही नहीं। दूसरे देशोंकी कहानियोंको देखिये, वहाँके उपन्यासोंको देखिये, आत्मा तृप्त हो जाती है। ड्राइंगरूम और होटलोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नज़ाकतसे लेकर युद्धस्थलकी खाइयों तककी विभीषिकाओंका जीवित वर्णन आपको मिलेगा। पेरिस, लन्दन, न्यूयार्क और रोमके जनसंकुलित स्थानोंसे लेकर सहाराकी मरुभूमि, दक्षिण-अफ्रिकाके जंगलों और कैनेडाके हिमवेष्टित भू-भाग तकके जीवनकी झाँकी वहाँ देखनेको मिलेगी। हमारे कथा-साहित्यमें इस तरहकी विविधता नहीं है। इसका कारण है। साहित्यकोंके जीवनमें अनुभवकी कमी है। उन्होंने दुनिया देखी ही नहीं है। और यही कारण है कि हमारे कथा-साहित्यमें विषयोंकी एकता-सी रहती है। प्रेम, बिछोह, रेलगाड़ी, कभी-कभी कभी मोटर, थर्डक्लास होटल, विधवा सो भी बाल और अक्षतयोनि, भागना, या भगाना, भिन्न जातिके युवक-युवतियोंका स्नेह, शराबी पति या कहीं-कहीं क्रान्तिकारी और बस। हमारा दायरा क़रीब-क़रीब इतना ही बड़ा है। गांधीजी और प्रेमचन्दजीके प्रभावसे कुछ देहातोंकी तरफ भी साहित्यिकोंका ध्यान गया है। पर ज़ियादातर हमारा कथा-कहानी-साहित्य नागरिक ही है। यहाँ भी हमें बहुत-कुछ करना है। हमारे साहित्य-महारथियोंको जीवनके सम्पर्कमें आकर उससे अनुभव और प्रेरणाकी प्राप्ति करनी है। अपनी कृतियोंमें जब तक वे रस-विभिन्नताका आविर्भाव नहीं करेंगे, तब तक सच्चे साहित्यका निर्माण होना कठिन होगा।

नवीनजीसे इस बातमें हम सोलह आने सहमत हैं कि हमारे लेखक अत्यन्त छोटे कनवैस या चित्रपटपर तसवीर खींचते हैं। साहित्यमें शहरी गलियोंके बजाय विस्तृत आकाश, गहन वन और अथाह समुद्रके लानेकी ज़रूरत है। रक्तहीन पीली नायिकाओं और निर्जीव नायकोंके प्रेमके किस्से पढ़ते-पढ़ते हम तंग आ गये हैं, और इनके बजाय ठगोंके कारनामे पढ़ना हमें अधिक प्रिय लगता है। अंगरेज़ीमें Wide world (विस्तृत संसार) नामक एक मासिक पत्र निकलता है, उसमें सब सच्चे किस्से ही छपते हैं। इस पत्रपर लिखा रहता है For men only (सिर्फ मर्दोंके लिए)। हमारे साहित्यमें भी मर्दानगी लानेकी ज़रूरत है। श्रीराम शर्मासे हम कहेंगे कि इस वक्त आपका मौक़ा है। वन्य पशु-पक्षियोंका वर्णन सुनाइये और अज्ञेयजीकी सजीव कहानियोंके लिए यही उपयुक्त अवसर है। और कुछ न हो, तो विदेशोंकी ऐसी कहानियोंका अनुवाद ही होना चाहिए।

ऐसे मौक़ेपर ठाकुर गदाधर सिंहकी याद आती है, जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों द्वारा हमारे साहित्यमें एक नवीनताका संचार किया था। 'चीनमें तेरह मास', 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' और 'रूस-जापान-युद्ध'को हम लोग कभी नहीं भूल सकते। श्रीयुत डाक्टर सत्यनारायण सिंहके लिए भी यही अवसर है। अपनी पुस्तक 'आवारेकी यूरोप-यात्रा' (पुस्तकका यह नामकरण-संस्कार रूसके महान लेखक मैक्सिम गोर्कीने किया था) को उन्हें शीघ्र ही छपा डालना चाहिए।

अन्तमें हमें एक बात कहनी है, वह यह कि हम डंडे मारकर या ज़ोर-जबर्दस्तीसे किसी साहित्य-सेवीसे कोई सजीव चीज़ नहीं लिखा सकते। उनसे यह अनुरोध अवश्य कर सकते हैं कि वे देशके वर्तमान वातावरणके प्रति संवेदनशील रहें। जिस समय किसान और मज़दूर क्रान्ति-पथपर चलनेके लिए उत्सुक हों, उस वक्त

"पीतमें पान खबाइवेको पर्यंकके पास लौं—"

नायिकाओंका भेजना बेवक्तकी रागिनी है।

—

देव-पुरस्कार

देव-पुरस्कारके नियमोंमें परिवर्तन करनेके विषयमें हम कई बार लिख चुके हैं। २४ अक्टूबर सन् १९३६ के 'प्रभाकर'में और नवम्बर १९३६ तथा फरवरी १९३७ के 'विशाल भारत'में हमने अपने विचार इस विषयमें स्पष्टतया प्रकट किये थे। आज हमें फिर उसके बारेमें लिखना पड़ रहा है। हर्षकी बात है कि श्रीवीरेन्द्र केशव साहित्य-परिषद (ओरछा) ने इस बार अपना निर्णय-पत्र प्रकाशित कर दिया है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देव-पुरस्कार-निर्णय-पत्र

सन् १९३७ ई०; वि० सं० १९९३

प्रत्येक पुस्तकके पूर्णांक १००. लब्धांक (यथालिखित) प्रत्येकके नीचे

क्रमांक	नाम निर्णायक	रचयिता और पुस्तकका नाम												
		रामेश्वर 'करुणा' 'करुणा सतसई'	सीताराम पांडेय 'काव्योद्यान'	किशोरीदास वाजपेयी 'तरंगिणी'	अम्बिकाप्रसाद वर्मा 'दिव्य दोहावली'	कसरी सिंह बारहट 'प्रताप-चरित्र'	उमाशंकर वाजपेयी 'व्रजभारती'	रायकृष्णदास 'व्रजराज'	हरिहरशरण मिश्र 'मुक्तक'	रामनाथ ज्योतिषी 'श्रीरामचन्द्रोदय काव्य'	नाथूराम माहौर 'वीर बधू'	वचनेश मिश्र 'शबरी'	शिवरत्न शुक्ल 'सिरसनीति सतसई'	विशेष विवरण
१	रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर	७०	४५	६७	४९	६०	६९	६६	५०	५१	४१	७२	५५	
२	पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', काशी	७५	६२	८५	६३	८०	८५	७०	६४	८१	६५	६१	८५	
३	डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रतिनिधि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग	६०	४०	४५	४५	५०	५५	५५	४५	६०	५०	५०	४५	
४	बा० शौकिन सिंह, प्रतिनिधि नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा	५७	५२	४८	६५	५६	६२	६३	५२	५४	४६	५३	५०	
५	पं० श्रीनिवास चतुर्वेदी, प्रतिनिधि म०भा०हि०सा०स०, इन्दौर	४१	४८	३८	३५	२७	८२	४२	४३	७२	३५	४१	३८	
६	श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव, " नागरी-प्रचारिणी सभा, आगरा	५५	६५	५५	४५	५०	२०	३०	४५	६०	३५	९५	२५	
७	पं० अवधनन्दनजी, प्रतिनिधि हिन्दी-प्रचार-सभा, मदरास	७०	३०	५५	५०	४०	४५	५०	५०	४०	५०	२५	६०	
८	रायबहादुर श्यामबिहारी मिश्र, प्रतिनिधि ओरछा राज्य	४५	४०	५०	६०	५०	७२	५०	४५	७२	५५	६५	५५	
९	श्री बालकृष्णदेव तैलंग, प्रतिनिधि वी०के० सा० प०, टीकमगढ़	४५	२५	३०	६०	२०	३५	६०	५०	७०	१५	४०	६५	
	प्रत्येक कविके लब्धांकोंका योग	५१८	४०७	४७३	४७२	४३३	५२५	४८६	४४४	५६०	३९२	५०२	४७८	
	प्रत्येक कविका तुलनात्मक स्थान	३	११	७	८	१०	२	५	९	१	१२	४	६	

रमाशंकर शुक्ल
प्रधान मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णायकोंकी न्यायबुद्धिपर किसी प्रकारकी आशंका प्रकट करना अत्यन्त अनुचित होगा। हमें यही मानना चाहिए कि उन्होंने जो-कुछ किया है, सत्य समझकर और ईमानदारीके साथ ही किया है। हमें देखना यह है कि इन निर्णायकोंकी सम्मतियोंमें कितना फर्क है।

श्री वचनेशजीकी 'शवरी'को ओझाजीने ७२ नम्बर दिये हैं और श्री अवधनन्दनजीने २५। यानी अन्तर हुआ ४७ का।

श्री नाथूरामजी माहौरकी 'वीर बधू'की वीरतापर मुग्ध होकर श्री हरिऔधजीने ६५ नम्बर दिये हैं और श्री बालकृष्ण देवजीने उसी वीरतासे भयभीत होकर १५। इस प्रकार ५० नम्बरका अन्तर हुआ।

श्री हरिऔधजीने श्री किशोरीदासजी वाजपेयीकी 'तरंगिणी' को ८५ नम्बर दिये हैं और तैलंगजीने कुल जमा ३०। फर्क हुआ ५५ नम्बरका।

श्री केसरी सिंहके 'प्रताप' 'चरित्र' पर हरिऔधजीने ८० नम्बर दिये हैं और तैलंगजीने २०। ६० नम्बरका फर्क रहा।

श्री सिरसजीको हरिऔधजीने ८५ नम्बर दिये हैं और श्रीवास्तवजीने २५। ६० नम्बरका अन्तर है।

श्री उमाशंकरजीकी 'व्रजभारती'को हरिऔधजीने ८५ नम्बर दिये हैं और श्रीवास्तवजीने २०। अन्तर रहा ६५ का।

श्री वचनेशजीकी 'शवरी' पर श्रीवास्तवजीने ९५ नं० दिये हैं और अवधनन्दनजीने २५। इस प्रकार अन्तर हुआ ७० नम्बरका!

इस प्रकार एक ही पुस्तकपर दिये गये कुलजमा १०० नम्बरोंमें ४७, ५०, ५५, ६० और ६५ तथा ७० नम्बर तकका फर्क पाया जाता है!

यदि उपर्युक्त महानुभाव इस बातकी शिकायत करें कि नम्बरोंकी प्रथाके कारण उनके प्रति अन्याय हो गया है, तो उनकी यह शिकायत बेजा न होगी। हमारी समझमें नम्बरोंकी इस प्रथाको तो बिलकुल ही उड़ा देना चाहिए।

जिन संस्थाओंको निर्णायक चुननेका अधिकार दिया गया है, उनसे यह कहना चाहिए कि प्रत्येक संस्था नौ निर्णायकोंके नाम चुने और तत्पश्चात् जिन निर्णायकोंके सबसे अधिक वोट आवें, उनके द्वारा पुस्तकोंकी जाँच कराई जाय। यह जाँच सिफारिशके रूपमें ही मानी जाय और अन्तिम निर्णय श्रीवीरेन्द्र केशव साहित्य-परिषद्को सौंप दिया जाय। साहित्य-परिषद् अन्तिम निर्णयके पहले निर्णायकों तथा अन्य चार-पाँच विशेषज्ञोंकी एक मीटिंग करे और तदनुसार अपना निर्णय प्रकाशित करे। विशेषज्ञोंसे हमारा अभिप्राय श्री कृष्णविहारी मिश्र, श्री रामदयालु तिवारी, अध्यापक पं० रामचन्द्र शुक्ल, कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री हरिशंकर शर्मा, प्रो० मनोरंजनजी आदिसे है। कनवेसिंगको बिलकुल बन्द करनेका प्रयत्न किया जाय। यदि कोई महानुभाव कनवेस करनेकी कोशिश करें, तो उनकी पुस्तक प्रतियोगितासे निकाल दी जाय।

नियमोंमें परिवर्तन करनेके लिए हमने अपनी ओरसे ये प्रस्ताव रखे हैं।

अन्तमें एक बात हम स्पष्टतया कह देना चाहते हैं कि पुरस्कारके निर्णयमें अभी तक श्रीमान ओरछ-नरेशने किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किया। नौ निर्णायकोंमें सात बाहरवाले रहे हैं, और अन्तिम निर्णय मुख्यतया उन्हीं बाहरवालोंपर निर्भर रहा है। श्रीमान महाराजा साहबको हम निकटसे जानते हैं, और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि वे भविष्यमें भी इस मामलेमें सर्वथा तटस्थ ही रहेंगे और हिन्दी-जनता इस पुरस्कारके विषयमें जो परिवर्तन सुझावेगी, तदनुसार वे कार्रवाई करेंगे। अन्य साहित्य-सेवियों तथा पत्र-पत्रिकाओंसे हमारा अनुरोध है कि वे भी अपनी सम्मति इस विषयमें प्रकाशित करें।

—

भाषा और संस्कृति

महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायनने 'बिजली' के साहित्यांकमें लिखा है—

"असल तो सारा झगड़ा है सांस्कृतिक। जब तक हिन्दुस्तानी मुसलमान, जो स्वयं पुराने हिन्दुओंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान हैं, हिन्दुस्तानकी संस्कृति और उसके इतिहासको पराई चीज़ समझते हैं और उसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, तब तक भाषाके विषयमें कोई समझौता हो सकेगा, इसकी सम्भावना नहीं। जिस वक्त मुसलमानोंमें भी ईरानकी भाँति भारतीयताके प्रति गौरव और अभिमान पैदा होगा, उसी वक्त इसके विषयमें किसी समझौतेकी आशा है, और जब तक वह समय नहीं आ रहा है, तब तक हमें उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

श्री राहुलजीने एक गम्भीर प्रश्न उठाया है। इस बातसे तो कोई समझदार आदमी इंकार नहीं कर सकता कि हम लोगोंको एक दूसरेके रीति-रिवाज, संस्कार तथा धार्मिक विश्वासोंको समझनेकी कोशिश करनी चाहिए; पर क्या यह प्रयत्न इकतर्फा ही होना चाहिए? कौन कह सकता है कि कबीर, दादू, रसखान, रसलीन और रहीमने हिन्दू-संस्कृतिको समझनेका प्रयत्न नहीं किया? और ये सब मुसलमान थे। यदि इन मुसलमान कवियोंकी रचनाओंको आप हिन्दी-साहित्यमें से निकाल दें, तो उसका एक बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग निकल जायगा। क्या राहुलजी इन्हींके मुक़ाबलेके हिन्दू-कवि हमें बतला सकते हैं, जिन्होंने उतने ही प्रेम और उतनी ही श्रद्धाके साथ मुस्लिम संस्कृतिका अध्ययन किया हो?

हमारी समझमें यह प्रश्न मुख्यतया साहित्यिक है, सांस्कृतिक नहीं। राहुलजी अपने लेखमें एक वाक्य उद्धृत करते हुए लिखते हैं—"अब हमारे नये पन्थके पैगम्बर लोगोंकी भाषा देखिये, 'बायकाट करनेका बड़े ज़ोरोंसे ऐलान किया। हमने उस नीतिकी उसी सम्मेलनमें कड़ाईके साथ मुख़ालफ़त की और इस बातपर ज़ोर दिया कि दूसरी भाषाओंके जो शब्द किसी भाषामें आमफहम हो गये हैं, उन्हें विदेशी या ग़ैर-बिरादरीका नहीं माना जाना चाहिए'।"

यदि उपर्युक्त वाक्य लिखनेसे कोई आदमी 'नये पन्थका नया पैग़म्बर' मान लिया जाय, तो हिन्दीके कितने ही लेखक पैग़म्बरीके अधिकारी सिद्ध होंगे, और इन पैग़म्बरोंमें सबसे प्रमुख स्थान देना चाहिए हिन्दीके आधुनिक गद्यके निर्माता पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीको। राहुलजीसे हमारी प्रार्थना है कि वे एक बार द्विवेदीजीके 'विचार-विमर्श' नामक ग्रन्थको, जिसे भारती-भंडार (रामघाट बनारस) ने प्रकाशित किया है, पढ़ जायँ। यह उनके 'सरस्वती' में प्रकाशित अनेक लेखों और नोटोंका संग्रह है। द्विवेदीजीने कभी यह शर्त पेश नहीं की कि पहले मुसलमानोंको हिन्दू-संस्कृतिका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना चाहिए, तब हम आमफहम भाषा लिखेंगे। द्विवेदीजीकी भाषामें 'ऐलान, आमफहम, मुख़ालफत' की तरहके सैकड़ों शब्द मिलेंगे। सबसे ज़रूरी बात यह है कि सर्वसाधारण यानी गाँवके रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान हमारी भाषाको समझें। आख़िर लिखता आदमी किसलिए है? जो महानुभाव केवल विद्वत्ता-प्रदर्शनके लिए लिखते हैं, उनकी बात हम नहीं कहते। हम तो राहुलजी जैसे मिशनरी आदमीकी बात कहते हैं। मान लीजिए कि राहुलजी बौद्धधर्म और साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार जनतामें करना चाहते हैं (निस्सन्देह दोनों ही विषय राहुलजीको प्रिय भी हैं), तो क्या उनका कर्तव्य नहीं है कि वे अपनी भाषाको आमफहम बनावें? यदि उर्दू शब्दोंके प्रयोगसे उनका सन्देश चार-पाँच करोड़ मुसलमानों तक और भी पहुँच सके, तो क्या उर्दू शब्दोंको इस्तेमाल न करके उस 'समयकी प्रतीक्षा' करते रहेंगे, जब कि 'भारतीय मुसलमानोंमें ईरानकी भाँति भारतीयताके प्रति गौरव और अभिमान पैदा होगा'? हमारी समझमें राहुलजी उल्टी बात कर रहे हैं। यदि राहुलजी 'बायकाट' और 'ऐलान' तथा 'मुख़ालफ़त' और 'आमफहम' जैसे प्रचलित शब्दोंसे भी डरते हैं, तब तो मुसलमानों तक उनका सन्देश पहुँच चुका। खेद है कि भाषाके मामलेमें राहुलजी खुद तो गुमराह हो ही गये हैं और दूसरोंको भी गुमराह कर रहे हैं।

एक सवाल और भी। यह मुस्लिम और हिन्दू-संस्कृति आख़िर हैं क्या चीज़? इनके मूल सिद्धान्तोंमें क्या-क्या एकता है और क्या-क्या भिन्नताएँ हैं, इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैसला कौन करेगा ? संस्कारोंमें तो युगधर्मके अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। देशमें जब साम्यवादियोंका शासन होगा, तब उसके अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंके संस्कारोंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए बिना नहीं रह सकते। ज़रूरत इस बातकी है कि हम इन so-called (तथाकथित) हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियोंको भावी संस्कृतिकी कसौटीपर कसें। कमसे कम एक बात तो निश्चित है ही, वह यह कि साम्यवादी सरकार अपने शिक्षा-विभागकी बागडोर मुल्लाओं और पुरोहितों तथा पंडितोंके हाथमें नहीं देगी। जहाँ हिन्दू और मुसलमान बच्चोंकी तालीम साम्यवादियोंके हाथमें आई कि वे कुरान, वेद और पुराणोंको ताकमें रखकर नवीन संस्कृतिका निर्माण शुरू कर देंगे। हमारी समझमें संस्कृतियोंकी भूल-भुलैयामें न पड़कर उनके अन्वेषणका सवाल इतिहासज्ञों तथा रिसर्च-स्कालरोंपर छोड़ देना चाहिए।

हिन्दी-लेखकोंसे हमारा तो एक ही निवेदन है। अगर आप अपनी आवाज़ हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें पहुँचाना चाहते हैं, तो आपको अपनी ज़बान आमफहम बनानी ही पड़ेगी। हिन्दुस्तानके आठ करोड़ मुसलमानोंमें कम-से-कम चार करोड़ उर्दू ज़रूर समझ सकते हैं। अगर उनको भी आप अपने विचारोंके दायरेमें लाना चाहते हैं, तो आपको ऐसे उर्दू शब्दोंका व्यवहार करना ही होगा, जिन्हें वे रोज़मर्रा इस्तेमालमें लाते हैं।

स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्माने, जो खुद संस्कृतके ज़बरदस्त विद्वान थे, अपने 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' नामक भाषणमें बड़ी दूरन्देशीकी बात कही थी—"कुटुम्बके बटवारेकी तरह भाषाका यह बटवारा भी कुटुम्ब-कलह और सम्पत्ति-विनाशका कारण है। बहुतसे सम्पन्न घराने बटवारेकी बदौलत टुकड़े-टुकड़े होकर बिगड़ गये, राज-परिवार भिखारी बन गये। ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारोंको इस विपत्तिसे बचानेको गवर्नमेंटने अवधमें एक ऐसा क़ानून बना दिया है कि ज़मींदारियाँ और ताल्लुक़े तक़सीम न हो सकें और बर्बाद होनेसे बचे रहें। हिन्दुस्तानी एकेडेमीकी एसेम्बली भी हिन्दी-उर्दू-परिवारके लिए कोई ऐसा ही क़ानून या नियम बना सकी, जिससे यह दोनों विभक्त न हो सकें, तो भाषाके इस कुटुम्बपर बड़ा अनुग्रह होगा। यदि हिन्दी-उर्दू दोनों संयुक्त परिवारकी दशामें आ जायँ, तो फिर इसकी साहित्य-सम्पत्तिका संसारकी कोई भाषा मुक़ाबला न कर सके।

"हिन्दी-उर्दूका भंडार दोनों जातियोंके परिश्रमका फल है। अपनी-अपनी जगह भाषाकी इन दोनों शाखाओंका विशेष महत्त्व है। दोनों ही ने अपने-अपने तौरपर यथेष्ट उन्नति की है। दोनों ही के साहित्य भंडारमें बहुमूल्य रत्न संचित हो गये हैं और हो रहे हैं। हिन्दीवाले उर्दू-साहित्यसे बहुत-कुछ सीख सकते हैं। इसी तरह उर्दूवाले हिन्दीके ख़ज़ानेसे फ़ायदा उठा सकते हैं। यदि दोनों पक्ष एक दूसरेके निकट पहुँच जायँ और भेद-बुद्धिको छोड़कर भाई-भाईकी तरह आपसमें मिल जायँ, तो वह ग़लतफहमियाँ अपने आप ही दूर हो जायँ, जो एकसे दूसरेको दूर किये हुए हैं। ऐसा होना कोई मुश्किल बात नहीं है। सिर्फ मज़बूत इरादे और हिम्मतकी ज़रूरत है, पक्षपात और हठधर्मी छोड़नेकी आवश्यकता है। बिना एकताके भाषा और जातिका कल्याण नहीं। इस बारेमें हज़रत 'अकबर' ने जो चेतावनी दी है, उसपर अमल करनेके लिए आपसे अपील करता हूँ और बस करता हूँ—

"उर्दूमें जो सब शरीक होनेके नहीं,
इस मुल्कके काम ठीक होनेके नहीं।
मुमकिन नहीं शेख 'अमरुल् क़ैस' बनें,
पण्डितजी बालमीक होनेके नहीं।"*

---

* यहाँ उर्दूसे मुराद एक मुश्तरका ज़बान 'हिन्दुस्तानी' से है—यह उसे उर्दू कहो या 'हिन्दी'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे राजनैतिक नेता और साहित्य-सेवी

अभी हम Alexander Kaun द्वारा लिखित मैक्सिम गोर्कीका जीवन-चरित पढ़ रहे थे। उसमें अनेक स्थलोंपर लेनिन और गोर्कीका ज़िक्र आया है। यद्यपि गोर्कीकी क्रियात्मक सहानुभूति क्रान्तिकारी आन्दोलनोंके साथ थी, पर वह किसी दल विशेषका सदस्य कभी नहीं बना और बोल्वेशिकोंकी नीतिकी खरी आलोचना करनेका काम उसने कभी नहीं छोड़ा। अनेक विषयोंपर लेनिन और गोर्कीका मतभेद था, और एक दूसरेसे वे काफी झगड़ते भी थे, पर लेनिनको गोर्कीके स्वास्थ्यकी वैसी ही चिन्ता रहती थी, जैसी कि किसी माताको अपने बच्चेकी तन्दुरुस्तीकी। सन् १९३१ में कामरेड लूनाचरस्कीने लेनिनके सामने एक प्रस्ताव रखा था कि 'प्रोलेटेरी' नामक पत्रका साहित्य-विभाग गोर्कीके सुपुर्द कर दिया जाय, तो उस समय लेनिनने उसके जवाबमें लिखा था :—

"आपका प्रस्ताव मुझे निहायत पसन्द है, और उससे मुझे अत्यन्त खुशी हुई है। दर असल मेरा तो यह एक स्वप्न रहा है कि 'प्रोलेटेरी'में मैं साहित्यकी समालोचनाका एक स्थायी विभाग खोल दूँ और उसे मैक्सिम गोर्कीके सुपुर्द कर दूँ; लेकिन इस प्रस्तावको सीधे गोर्कीके सामने पेश करते हुए मैं डरता था, मेरे मनमें भयंकर आशंका थी, क्योंकि मुझे इस बातका पता नहीं था कि गोर्कीने आजकल क्या साहित्यिक कार्य ले रखा है और न मुझे यही मालूम था कि काम करनेकी ताक़त उनमें कितनी है। अगर वे किसी महान और गम्भीर कार्यमें व्यस्त हों, तो उन्हें अखबार-नवीसीके क्षुद्र कार्यमें फँसाना बेवकूफी होगी—जुर्म होगा। इस मामलेमें मेरी भावना काफी प्रबल है। मगर आप इस वक्त गोर्कीके साथ हैं और इस मसलेको बेहतर तौरपर समझ सकते हैं। अगर आप समझें कि गोर्कीको पार्टीके काममें जोतनेसे उनके स्थायी साहित्यिक कार्यमें बाधा नहीं पड़ेगी, तो आप इस मामलेको तय कर सकते हैं।"

लेनिन गोर्कीके स्वास्थ्यको देशकी सम्पत्ति समझते थे और उन्होंने पत्रोंमें अनेक स्थलोंपर गोर्कीको खासी फटकार बतलाई थी, क्या हमारे देशके राजनैतिक नेता—खास तौरसे साम्यवादी—लैनिनकी इस अनुकरणीय दूरदर्शितासे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे? हमें नहीं मालूम कि स्वर्गीय प्रेमचन्दजीके जीवनमें उन्हें किन-किन राजनैतिक नेताओंसे कितनी सहानुभूति मिली, उनकी भयंकर बीमारीमें किस-किसने उनकी पूछताछ की और अब उनकी मृत्युके बाद कौन-कौन उनकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिए क्या-क्या कार्य कर रहे हैं। महात्मा गांधीको छोड़कर हम अन्य किसी भारतीय राजनैतिक नेताको नहीं जानते, जो साहित्यिक कार्यकर्ताओंके प्रति ऐसी हार्दिक सहानुभूति रखता हो। हाँ, श्रद्धेय गणेशजीमें यह गुण असाधारण मात्रामें अवश्य पाया जाता था, और मालूम होता है कि वह उन्हींके साथ खत्म भी हो गया।

सुना है कि लोकमान्य तिलकने एक बार कवीन्द्र रवीन्द्रके सामने यह प्रस्ताव रखा था कि आप विदेशकी यात्रा करें। उनका ख़याल था कि कवीन्द्र जैसे महान साहित्यिककी उपस्थिति ही स्वराज्यके पक्षमें ज़बरदस्त प्रचारका कार्य करेगी। यह बात माननी पड़ेगी कि हमारे यहाँ अभी रवीन्द्र और गोर्कीकी तरहके महान साहित्य-सेवी उत्पन्न नहीं हुए; पर यह प्रश्न महत्त्व या क्षुद्रत्वका नहीं है, हृदयकी भावनाका है और सच्चे साहित्य-सेवी भी प्राचीनकालके 'सँवलिया'की तरह 'भावके भूखे' हैं। काश कि हमारे राजनैतिक नेताओंमें कुछ अधिक सहृदयता और थोड़ी-सी भावुकता भी होती!

—

मुजरिम

सन् १९३५ के दशहरेकी छुट्टियोंमें हमें दो दिनके लिए मौलवी अब्दुल हक़ साहबके साथ स्वर्गीय डाक्टर अन्सारी साहबके घरपर ठहरनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। साम्प्रदायिकताके सिलसिलेमें एक दिन डाक्टर साहबने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"फिरकेबन्दीके बारेमें क्या कहूँ। हर रोज़ अख़बारोंमें छपता रहा है कि कोई मुसलमान गुण्डा किसी हिन्दू औरतको ले भागा, या हिन्दू गुण्डेने मुसलमानोंपर यह ज़ुल्म किया; और ये गुण्डे न हिन्दू होते हैं, न मुसलमान; इनकी तो जात ही अलग है। एक बार मैं चार महीने तक इस तरहकी ख़बरोंके कटिंग इकट्ठे करता रहा, जो तादादमें कई सौ हो गये, और मैंने उन्हें एक ऐडीटर साहबके पास भेज दिया और लिखा—"हज़रत, आप कर क्या रहे हैं? ख़बरोंको इस तौरसे छापना क्या मुनासिब है?"

डाक्टर अन्सारी साहबकी बात ठीक थी। हमारे यहाँके संवाददाता ख़ुद साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे घटनाओंको देखते हैं, फिर भला उनकी रिपोर्टोंमें फिरकेबन्दी क्यों न झलके? किसी अख़बारको आप उठा लीजिए, इस तरहकी ऊटपटांग ख़बरें आपको बीसियों मिलेंगी; और तो और अनेक सिनेमा-एक्ट्रेसोंकी छोटी-से-छोटी बातोंका सचित्र विवरण आपको मिल जायगा! पर अत्यन्त आवश्यक समाचारोंका कोई प्रबन्ध नहीं करता। उदाहरणार्थ, स्वर्गीय प्रेमचन्दजीकी बीमारीका वृत्तान्त लीजिए। जब तक हमने 'भारत' में श्रीयुत निरालाजीका लेख नहीं पढ़ा, तब तक हमें यही पता नहीं लगा कि उनकी बीमारी इतनी भयंकर है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथने ठीक ही कहा था कि प्रेमचन्दजी केवल हिन्दीवालोंके ही नहीं थे, वरन् सम्पूर्ण देशके थे। उनके स्वास्थ्यका समाचार भारतीय पत्रोंमें छपते रहना चाहिए था; पर ऐसा नहीं हुआ। अभी कुछ दिन पहले पूज्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी मरणासन्न हो गये थे; पर श्री कमलाकिशोरजीके एक पत्रको और 'प्रताप' तथा अन्य पत्रोंमें एकआध नोटको छोड़कर और कुछ भी समाचार हमारे पत्रोंमें प्रकाशित नहीं हुआ। जब हिन्दी-साहित्यके भीष्म-पितामहके साथ हमारी न्यूज़-पेपर-एजेन्सियाँ यह व्यवहार करती हैं, तो फिर दूसरोंको पूछता ही कौन है। अभी 'सैनिक'-सम्पादक श्रीयुत श्रीकृष्णदत्त पालीवाल दिल्लीमें सख़्त बीमार पड़े हुए हैं। श्रीयुत श्रीरामजीके पत्रसे ज्ञात हुआ कि बीचमें उनकी हालत बहुत ख़तरनाक हो गई थी। समाचारपत्रोंमें हमने इसका वृत्तान्त नहीं पढ़ा। बहुत दिनों बाद शायद १० अप्रेलके 'हिन्दुस्तान' में एक सम्पादकीय नोट अवश्य देखनेमें आया। आख़िर ये एसोसियेटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस किस मर्ज़की दवा हैं? और हिन्दी पत्रों तथा उनके संवाददाताओंकी बुद्धि तथा तत्परताके विषयमें क्या कहा जाय। क्या उन्हें इस बातका पता नहीं है कि पालीवालजी संयुक्त-प्रान्तके उन इने-गिने लीडरोंमें से है, जिनका साधारण जनतासे घनिष्ठ सम्पर्क है? स्वर्गीय गणेशजीके बाद वे ही हमारे प्रान्तके mass-minded आम लोगोंकी मनोवृत्ति समझनेवाले नेता हैं, और उनका दम किसानोंके लिए ग़नीमत है। हज़ारों ही किसान ऐसे होंगे, जो पालीवालजीको अपने हितोंका संरक्षक समझते हैं। उनके साहित्यिक मित्रोंकी संख्या भी कम नहीं। यदि वे साहित्य-सेवाको ही अपने जीवनका प्रधान लक्ष्य बना लेते, तो अमर ग्रन्थोंकी रचना करनेमें समर्थ होते। आज भी उन जैसी ज़ोरदार सजीव भाषा शायद ही कोई दूसरा लिखता हो। क्या उनका जीवन मिस फलानी और मिस ढिकानीके चोंचलोंसे कम महत्त्वपूर्ण है?

यदि पूज्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पालीवालजी तथा स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका स्वास्थ्य देशकी वास्तविक सम्पत्ति नहीं तो फिर यह साहित्य-सेवा और अख़बारनबीसी ढकोसलामात्र हैं। हमारी समझमें साहित्यिक तथा नैतिक दृष्टिसे भी वे समाचारपत्र, संवाददाता और न्यूज़-एजेन्सियाँ, जो साहित्य-सेवियोंकी ऐसी उपेक्षा करती हैं, मुजरिम हैं और अपने कर्तव्यको पालन न करनेके अपराधमें उन्हें कुछ सज़ा मिलनी चाहिए।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी प्रेस, [illegible], अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

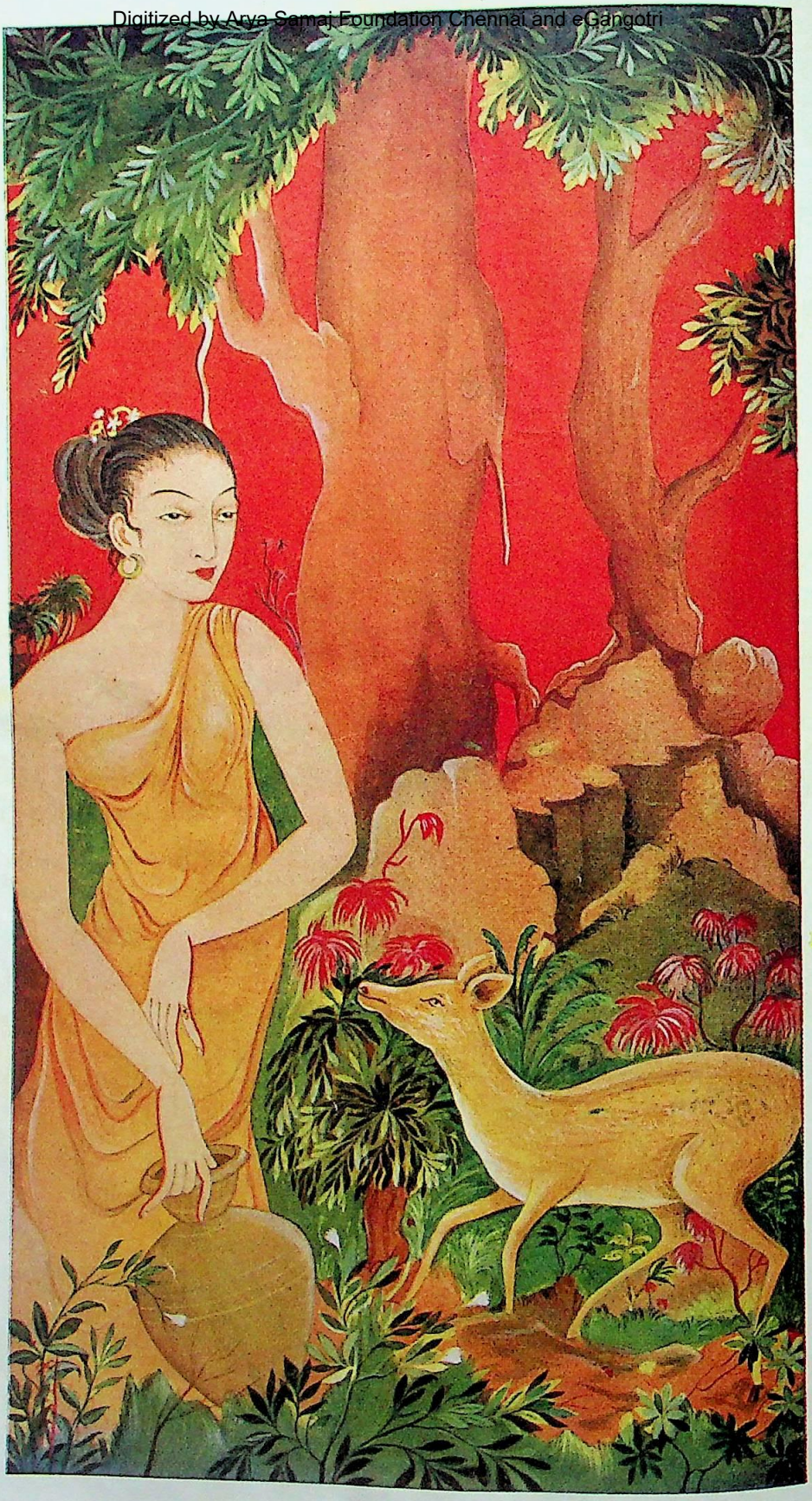

शकुन्तला

'विशाल भारत'] [श्री शचीन्द्रनाथ मित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १९, अंक ५] जेठ १९९४ :: मई १९३७ [पूर्ण-अंक ११३.

किस पार—

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, बी० ए०

कहो, लिए जाते हो नाविक, नैयाको किस पार ?
बतला दो इस यात्राका है कहाँ अन्त, क्या सार ?
इन ओझल हाथोंसे तेरे,
मेरे नाविक, खेवट मेरे,
बहती नौका साँझ - सवेरे,
पहुँचाओगे कहाँ बता दो, मेरे कर्णाधार ?
कहो, लिए जाते हो नाविक, नैयाको किस पार ?

ऊषाकी लालीमें जाने किसका था आह्वान,
प्राणोंकी वीणामें किसका बजा मनोहर गान ;
बजे न-जाने किसके पायल,
तन-मन हुए अचानक चंचल,
बैठ गया नौकामें पागल,
सोच कहाँ ! उन्माद चला तब चीर सिन्धुका ज्वार ;
कहो, लिए जाते हो नाविक, नैयाको किस पार ?

पथ अज्ञात, दिशा अनजानी, है अदृश्य पतवार,
बेसुध हूँ मैं, काट रहा हूँ यह तूफानी धार ;
लहरें हैं मानो दीवारें,
या हैं सर्पोंकी फुंकारें,
या मेरे जीवनकी हारें,
बढ़ता आता है प्रतिपल वह तमका पारावार ;
कहो, लिए जाते हो नाविक, नैयाको किस पार ?

आँधी है, बिजली है, बादल, तूफानोंका ज़ोर,
अरे, प्रलय टूटा पड़ता है, मचा हुआ है रोर ;
सागरका उन्माद भयानक,
लहरोंका आह्लाद भयानक,
मनका यह अवसाद भयानक,
आर-पार, इस तट उस तटका, सोच आज बेकार ;
कहो, लिए जाते हो नाविक, नैयाको किस पार ?

अगर डूब जाना सागरका पा जाना है पार,
तो फिर व्यर्थ प्रतीक्षा किसकी, कैसा सोच-विचार ?
बहने दो, नौका बहने दो,
लहरोंको अपनी कहने दो,
यह पतवार, इसे रहने दो,
आज डुबा दो चिर-विस्मृतिमें मेरा सब संसार ;
कहो, लिए जाते हो नाविक, नैयाको किस पार ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्भाग्य

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

गुस्सेमें भरकर यूथिका अपनी माको बहुत-कुछ सख्त-सुस्त और सरद-गरम सुना गई ; परन्तु मापर उसकी किसी बातका कोई असर न पड़ा। वह जानती थी कि यूथिका अभी छोटी है, अपना भला-बुरा नहीं समझती। आजकलकी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ विवाहके नामसे घबराती हैं, यूथिकाकी इस बौखलाहटको वह इसी मनोवृत्तिका परिणाम समझती थी।

यूथिकासे जब और कुछ न बन पड़ा, तो वह तेज़ीसे उठी और अपने कमरेमें जाकर उसने दरवाज़ा भीतरसे बन्द कर लिया। उसकी साँस बड़ी तेज़ीसे चल रही थी, जैसे उसकी कोमल छातीके भीतर कोई भारी चीज़ अटक गई हो और उसके फेफड़े पम्प करके उसे बाहर निकाल डालना चाहते हों। यूथिकाने चाहा कि वह फुफकारकर रो उठे ; मगर उसकी रुलाई फूट नहीं पाई। दुनियामें उसके लिए सभी ओर अन्धकार-ही-अन्धकार है। उसकी सगी मा भी उसके हृदयकी गहरी व्यथाको नहीं समझती। तब और किसको उसके साथ सहानुभूति हो सकती है ? दुनियाके सामने वह अपना दिल चीरकर किस तरह रख दे ? लोगोंसे वह किस तरह कहे कि वह पुरुषमात्रसे नफरत करती है ? पुरुषकी कल्पनासे ही उसे तीव्र घृणा है। इस छोटी-सी उम्रमें उसने देख लिया है कि पुरुष स्वभावसे बेवफ़ा है। उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। वह परले दर्जेका स्वार्थी और चलितचित्त है। बेटी होकर अपनी मासे वह अपनी गोपनीय कठोरतम अनुभूतियोंकी बात कैसे कह सकती है ?

बिस्तरेपर लेटकर यूथिकाने अपने तकियेको कसकर छातीके नीचे दबा लिया और तब उसकी रुलाई सहसा फूट पड़ी। जिस तरह समतल भूमिमें बाढ़का पानी निःशब्द रूपसे सभी ओर फैलता जाता है, उसी तरह यूथिका चुपचाप पड़ी रहकर अजस्र रूपसे आँसुओं द्वारा अपना तकिया गीला करती रही। मा अपनी किसी सहेलीके घर चली गई थी, इससे यूथिकाको जी भरकर रो लेनेका स्वच्छन्द अवसर मिल गया।

और तब सहसा यूथिकाके दिलमें विद्रोहकी ज्वाला भड़क उठी। वह हरगिज़-हरगिज़ विवाह नहीं करेगी। उसकी आयु अठारह बरसकी हो चुकी है। वह जानती है कि क़ानूनन अब उसपर कोई ज़बरदस्ती नहीं कर सकता। वह किसीकी ज़बरदस्ती सहन नहीं करेगी। मा रोयेगी, बाप गुस्सा होंगे। उसकी बलासे ! वे क्यों नहीं उसके दिलको समझनेकी चेष्टा करते ? जब वह विवाह नहीं करना चाहती, तो क्यों वे ज़बरदस्ती उसे किसीके पल्ले बाँध देना चाहते हैं ? यदि वह उन्हें भार प्रतीत हो रही है, तो वे साफ़-साफ़ क्यों नहीं कह देते ? वह किसीपर बोझ बनकर नहीं रहना चाहती—अपने सगे मा-बापपर भी नहीं।

अचानक उसे ख़याल आया कि क्यों न वह घरसे भाग खड़ी हो। वह तेरहवीं जमात तक पढ़ी है। मौक़ा मिलता, तो इस साल बी० ए० भी पास कर लेती ; परन्तु अब भी इतना जानती है कि वह कुछ-न-कुछ कर सकती है। कम-से-कम अपना जीवन-निर्वाह तो कर ही सकती है। उसके जिस्मपर पाँच-सात सौ रुपयेके जो गहने हैं, उनकी सहायतासे अपना कुछ समय आसानीसे बिता सकती है। उसके बाद ज़िन्दा रहनेका कोई-न-कोई मार्ग वह निकाल ही लेगी। घरसे भाग खड़े होनेकी इस कल्पनाने जैसे यूथिकाके दिलमें उत्साहका संचार कर दिया। वह उठ खड़ी हुई और उद्विग्नताके साथ कमरेमें टहलने लगी।

[२]

उस दिन यूथिकाके पिता बहुत रात गये घर वापस आये। खाना वे बाहर ही खा आये थे, इससे आते ही अपने सोनेके कमरेमें चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन सुबह उन्हें कहीं इन्सपेक्शनके कामपर जाना था। इससे बहुत तड़के ही तैयार होकर जब वे चाय पीने बैठे, तो उन्होंने अपनी पत्नीसे पूछा—"यूथिका किधर है ?"

"अपने कमरेमें। शायद अभी वह सोकर नहीं उठी।"

बापने पूछा—"उस सम्बन्धमें तुमने उससे बात की थी ?"

माने ज़रा मुसकराकर कहा—"जी हाँ।"

"वह क्या कहती है ?"

"वह कहती है कि विवाह करनेकी अपेक्षा ज़हर खाकर मर जाना अधिक पसन्द करूँगी।"

बापने माथेपर त्योरी चढ़ाकर सिर्फ हुँकार भर दिया। मुँहसे वे कुछ नहीं बोले।

माने कहा—"यूथिका विवाह करनेके लिए हरगिज़ तैयार नहीं है।"

"क्यों ?"

"यह तो मैं नहीं जानती। परन्तु इतना मैं समझती हूँ कि उसका यह इनकार मामूली इनकार नहीं है।"

"कैसे ?"

"कल शाम तक मेरा ख़याल था कि जिस तरह आजकलकी सभी लड़कियाँ विवाहके नामसे घबराती हैं, उसी तरह यूथिका भी इस सम्बन्धमें जल्दी करना नहीं चाहती ; परन्तु कल रातको उसका चेहरा देखकर मुझे अपना वह विचार बदल देना पड़ा।"

"तुम्हारी रायमें इसका क्या कारण हो सकता है ?"

"अभी मैं कुछ भी नहीं कह सकती।"

बापने काफ़ी देर तक इस बातका कोई जवाब नहीं दिया। टोस्टका शहद नीचे बहने लगा था, इससे उसके बचे हुए भागको वह एक साथ ही मुँहमें डाल गये। अतः इस बड़े ग्रासकी बदौलत उनके नकली जबड़ेको अपनी जगह बनाये रखनेके लिए उन्हें जो संघर्ष करना पड़ा, उसने उन्हें दो-तीन मिनट तक बोलने नहीं दिया। इसके बाद बहुत धीमी आवाज़में उन्होंने कहा—"सुनो, एक भेदकी बात मैं तुम्हें बताता हूँ। विनयको तुम जानती ही हो।"

"कौन-सा विनय ?"

"वही शंकरलाल कायस्थका बेटा।"

"वह तो विलायत गया हुआ था।"

"हाँ, वही विनय। पिछले साल केम्ब्रिजसे डिग्री लेने विलायत गया था। मालूम होता है, यूथिका और वह एक दूसरेको चाहने लगे थे।"

"तुम्हें यह कैसे मालूम ?"

"विलायतसे प्रति सप्ताह वह एक चिट्ठी यूथिकाके नाम भेजता रहा। पहले तो मैंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। दोनों एक कालेजमें पढ़ते रहे हैं, इससे उनका परिचय होनेमें कुछ बड़ी बात न थी। परन्तु पाँच-छै महीनोंकी बात है कि सिर्फ कौतूहलवश मैंने उसकी एक चिट्ठी खोलकर पढ़ ली। वह सौ फी-सदी एक प्रेम-पत्र था।"

माके हृदयको एक गहरा धक्का-सा लगा। उसकी नन्हीं-सी बेटी चोरी-चोरी किसीसे प्यार भी करने लगी है, यह बात जैसे उसके लिए अचिन्त्य और बहुत अधिक विचित्र थी। काँपती हुई-सी आवाज़में माने पूछा—"उसके बाद ?"

"वह पत्र मैंने यूथिकाको नहीं दिया। इतना ही नहीं, विनयके जितने भी पत्र यूथिकाके नाम आते रहे, मैंने उनमें से एक भी उसे नहीं दिया। मैंने देखा कि विनयका पत्र न मिलनेसे यूथिका बहुत अधिक उदास और एकान्तप्रिय-सी बन गई है। यह देखकर मुझे भी दुःख हुआ ; परन्तु जो बात बिलकुल असम्भव थी, उसे जड़से ही काट डालना मैंने मुनासिब समझा। इसीसे इस सम्बन्धमें मैं एक ऐसा कार्य करनेको भी लाचार हुआ, जिसे साधारण दशाओंमें मैं स्वयं जालसाज़ी गिनता।" कहते-कहते उनका स्वर भारी हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माने घबराहट-भरी आवाज़में पूछा—"वह क्या ?"

"वह यह कि मैंने विनय द्वारा भेजे गये एक लिफ़ाफ़ेमें से चिट्ठी तो निकाल ली और उसकी जगह अगरेज़ीमें टाइप किया हुआ 'मुझे भूल जाओ !' तथा एक अंगरेज़ युवतीका फोटो रख दिया। वह लिफ़ाफ़ा ज्यों-का-त्यों बन्दकर मैंने यूथिकाके पास भिजवा दिया। यूथिकाकी इस गहरी उदासीका यही कारण है। अब तो इसका एक ही इलाज है कि यथाशीघ्र किसी अच्छे लड़केसे उसका विवाह कर दिया जाय।"

माका चेहरा घबराहट और भयसे पीला पड़ गया; परन्तु वह मुँहसे कुछ भी नहीं बोली।

बापने सफ़ाईके तौरपर कहा—"क्या कभी यह सम्भव था कि यूथिका और विनयका विवाह हो सकता ? काश्मीरी पंडितोंने कभी अपनी लड़की किसी कायस्थको दी है ?"

समाजकी इन संकुचित बाधाओंके प्रति माका दयापूर्ण हृदय सहसा विद्रोहसे भर उठा। ओह, मा होकर अनजानमें ही अपनी पुत्रीके कोमल हृदयको वह कितनी कठोर वेदना पहुँचाती रही है ! और यह बूढ़ा बाप कितना बेरहम है ! वह काँप उठी। कहीं यूथिका सचमुच आत्मघात कर बैठती तो !

अपने पतिसे कुछ भी कहे बिना वह कमरेसे निकल गई और सीधे यूथिकाके कमरेमें पहुँची। दरवाज़ा भिड़ा हुआ ज़रूर था; परन्तु भीतरसे बन्द न था। एक आवाज़ देकर वह भीतर पहुँची। अन्दर कोई नहीं था।

इसके पाँच-सात मिनट बाद ही न केवल घर भरको, अपितु सम्पूर्ण मुहल्लेको यह समाचार मिल गया कि यूथिका न-जाने कहाँ चली गई है। मेज़पर उसकी एक चिट्ठी मिली थी, जिसपर सिर्फ़ इतना ही लिखा था—"सदाके लिए प्रणाम !"

[३]

सुबहका समय था। झाँसी स्टेशनसे बाम्बे मेलको सिगनल नहीं मिला था, इससे गाड़ी सहसा एक हरी-भरी छोटी-सी पहाड़ीके निकट धीमी होकर खड़ी हो गई। सभी तरफ़ सन्नाटा था। आसमानमें बादल छाये हुए थे। सहसा पटरीके नज़दीक ही कोई पथिक आसावरी रागमें कुहुक उठा। पासकी पहाड़ीसे प्रतिध्वनित होकर उसका मधुर स्वर जैसे सम्पूर्ण उपत्यकामें भर गया, और तब यूथिकाकी नींद भी सहसा उचट गई।

यूथिका चौंककर उठ बैठी। यह घर नहीं है, रेलगाड़ी है। घरसे वह पचासों मील दूर निकल आई है। ये खेत, ये पहाड़, ये जंगल—सभी-कुछ यूथिकाके लिए अदृष्टपूर्व हैं। ओह, वह तो घरसे भागी जा रही है ! उसके घरमें मातम छाया हुआ होगा। मा-बाप सभी चिन्तित होंगे। किसीको नहीं मालूम कि यूथिका कहाँ है। इतने भयंकर साहसका काम वह सहसा कैसे कर गई।

इन्टर क्लासके उस ज़नाने डिब्बेमें सिर्फ़ दो ही तीन सवारियाँ और थीं। यूथिकाने उनकी ओर गहरी निगाहसे देखा। साफ़ मालूम होता था कि वे सब किसी-न-किसीकी संरक्षतामें सफर कर रही हैं। परन्तु यूथिका ? ओह, यूथिकाने अपने जीवनकी नाव किस तूफ़ानमें छोड़ दी है !

पथिक गाते-गाते दूर निकल गया था; परन्तु उसकी मधुर तान किसी क्षीण प्रतिध्वनिके समान अब भी सुनाई दे रही थी। आस्मानके घने-घने और काले-काले बादलोंमें एक ओरसे दूसरे छोर तक सहसा एक चमकीली गरज-सी घूम गई। नज़दीककी किसी झाड़ीमें से एक मोर और एक मोरनी व्याकुल-से स्वरमें बादलोंकी प्रतियोगिताका प्रयत्न करने लगे, और तब यूथिकाके हृदयमें तीव्र व्यथा और गहरी निराशाका तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ।

वह सपना नहीं देख रही। यह दिनका समय है, और वह जाग रही है। एक कुलीन परिवारमें जन्म लेकर अठारह सालकी एक कुमारी घरसे भागी जा रही है ! इस तरह ! रेलगाड़ीमें ! बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकेले! यूथिका भयसे सिहर उठी। उसका वर्तमान महाभयंकर है। भविष्य एकदम अन्धकारमय है, और भूत? इस दशामें कुमारी यूथिकाको अपना बचपन पिछले जन्मकी विस्तृत घटनाओंसे कम पुराना नहीं जान पड़ा। जिस दुनियामें वह अकेली फाँद पड़ी है, वह उसकी ज़रा भी देखी-भाली हुई नहीं है। आज इस दुर्घट प्रातःकालमें वह क्या पहने, क्या खाये, क्या करे, क्या सोचे—यह सभी कुछ यूथिकाके लिए सहसा अगम्य हो उठा है।

सब ओरसे निराश होकर यूथिकाका चित्त सहसा विनयकी यादसे भर उठा। डेढ़ बरस पहलेकी घटनाएँ यद्यपि उसे डेढ़ सदी पुरानी घटनाओंके समान जान पड़ने लगी थीं, तथापि उनमें इतनी मिठास थी कि क्षण-भरके लिए मानो यूथिकाका उद्विग्न हृदय सहल-सा गया। उन दिनों मानो संसारका सम्पूर्ण सौन्दर्य और सम्पूर्ण आकर्षण इसी विनयमें आकर केन्द्रित हो गया था। अपने अपरिपक्व और अछूते हृदयकी सम्पूर्ण चाह, सम्पूर्ण समर्पण-भावना और सम्पूर्ण प्रेम उसने विनयको अर्पित कर दिया था। वह विनय कितना मधुर और कितना प्यारा था! विनय विलायत गया। वह बराबर उसे लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ भेजता रहा। सुन्दर-सुन्दर फूल-पत्ते वह अपनी चिट्ठियोंमें अनगिनत प्रेम-चिह्नोंके रूपमें डालता रहा। इंग्लैण्डकी हृष्ट-पुष्ट, आकर्षक और स्वच्छन्द नवयुवतियोंका ज़िक्र भी उसने अपने अनेक पत्रोंमें किया था; परन्तु सदैव वह लिखता रहा कि उसे सोते-जागते, उठते-बैठते प्रतिक्षण यूथिकाका ही ध्यान रहता है। धीरे-धीरे उसके पत्र संक्षिप्त होने लगे। एक पत्रमें उसने यह भी लिखा कि परीक्षा निकट आ जानेके कारण वह विस्तारसे नहीं लिख सकता; परन्तु उसके बाद अचानक ही उसकी चिट्ठियाँ आनी बन्द हो गईं! यूथिकाके अनुनय-विनयसे भरे पत्रोंका भी उसने कोई जवाब नहीं दिया। और उसके बाद?

कुछ ही समय पहलेके एक सायंकालकी यादसे कुमारी यूथिकाका हृदय क्रोध, क्षोभ और गहरे दुःखसे भर उठा। उस दिन वह कालेजसे कितनी खुश-खुश घर वापस आई थी। अपने कमरेमें पहुँचते ही अपनी टेबिलपर उसे गहरे नीले रंगका चिरपरिचित-सा एक सुन्दर लिफ़ाफ़ा दिखाई दिया था। कितनी मुद्दत और कितनी प्रतीक्षाके बाद! उसका हृदय बल्लियों नाच उठा, जैसे उसे राज मिल गया हो। आख़िर वे भूले नहीं हैं। प्रसन्नताके आवेगसे काँपते हुए उसने वह लिफ़ाफ़ा खोला; परन्तु अन्दरसे क्या निकला! यूथिकाके उल्लासपूर्ण कल्पना-जगतको ख़ाकमें मिला देनेका परवाना।

उस नन्हीं-सी विद्रोहिणीका हृदय एक बार फिरसे आवेशपूर्ण हो गया। पुरुष स्वभाव ही से कपटी है। वह आजन्म पुरुषका शासन स्वीकार नहीं करेगी, और उसके मा-बाप उसकी शादी कर देना चाहते थे! आख़िर किसी पुरुष ही से तो न। उसने अच्छा ही किया, जो घरसे भाग खड़ी हुई। वह सभी तरहके कष्ट सहन कर लेगी; परन्तु अब घर वापस नहीं जायगी—किसी भी तरह नहीं।

गाड़ी एक स्टेशनपर रुक गई और यूथिकाके डिब्बेमें, लाल कपड़ोंमें लिपटी, रोती हुई एक नववधू आकर सवार हो गई। स्टेशनपर बहुतसे लोग उसे विदा देने आये हुए थे। प्लैटफार्मपर बराती भी थे और नौशा भी था। यूथिकाने एक बार आग्नेय नेत्रोंसे उस लड़कीकी ओर देखा और उसके बाद छिपी निगाहोंसे भीतरको झाँकते हुए नौशाकी ओर।

[४]

पिछले तीन महीनोंमें कम-से-कम ३६ बार हिन्दुस्तानकी डाक समुद्र और आस्मानके रास्ते इंग्लैण्ड पहुँची थी, और उससे भी अधिक बार अत्यधिक उत्सुक होकर विनय डाकख़ानोंकी ख़ाक छानता फिरा था; मगर जो-कुछ वह चाहता था, वह उसे न मिला।

शुरू-शुरूमें उसे चिट्ठियाँ न मिलनेकी अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकायतें आई थीं; परन्तु उसके बाद अचानक यूथिकाके पत्र आने बन्द हो गये। विनयकी समझमें न आया कि आखिर मामला क्या है। उसकी अक्ल कुछ काम न देती थी। उसे यह भी शक हुआ था कि कहीं यूथिकाके पिताने ही तो उसे चिट्ठियाँ लिखनेसे मना नहीं कर दिया। परन्तु आज सायंकाल सारा भेद खुल गया है। यूथिकाके सारे वादे कच्चे वादे थे। वह कमज़ोर हृदयकी थी, अपनी बातपर टिक न सकी। आजकी डाकसे विनयके भाईका पत्र आया है, उससे मालूम हुआ है कि यूथिकाकी सगाई पक्की हो गई और कुछ समयके बाद उसका विवाह भी हो जायगा। यदि यूथिका ऐसी लड़कियाँ भी इतनी आसानीके साथ अपने मा-बापके सामने झुक जा सकती हैं, तब तो किसी भी लड़कीके साहस और व्यक्तित्वपर भरोसा ही नहीं किया जा सकता। बेचारे विनयके लिए यह कितना दारुण समाचार है।

तो क्या सचमुच यूथिकाने बिना किसी तरहकी बाधा उपस्थित किये ही अपनी सगाई स्वीकार कर ली? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। विनयका जी नहीं मानता। उसकी यूथिका इतनी कमज़ोर और व्यक्तित्व-विहीन नहीं थी।

एडिनबराके सुप्रसिद्ध सामुद्रिक सैरगाहकी रेतपर पड़ी पत्थरकी एक बेंचपर लेटे-लेटे विनय ख़याली घोड़े दौड़ाने लगा। यूथिका-जैसी साहसी लड़कीको अपनी इच्छाके प्रतिकूल विवाह कर लेनेके लिए बाधित करनेमें उसके मा-बापने कितनी नृशंसता और क्रूरतासे काम लिया होगा। ओह, यदि वह आज अपने देशमें होता! कहीं ऐसा तो नहीं कि लज्जावश यूथिका अपने इस आकर्षणका ज़िक्र तक भी अपने मा-बापसे न कर सकी हो। इस दशामें क्या यह ठीक न होगा कि वह स्वयं यूथिकाके पिताको हवाई-डाकसे सारी बातें साफ़-साफ़ लिख दे।

परन्तु यह कैसे सम्भव है? यूथिका न तो अब दुधमुँही बच्ची है और न वह इतनी दब्बू ही है। फिर यदि ऐसी बात होती भी, तब भी वह उसे चिट्ठी तो लिख ही सकती थी। यदि वह इशारा भी कर देती, तो विनय यह नौबत कभी न आने देता। नहीं, ऐसी बात नहीं है। विनय अभागा है, और यहाँ भी उसका अभाग्य ही बाज़ी मार ले गया है। यूथिका उसे भूल गई है। उसने ठीक ही सुना था कि लड़कियाँ किसी तरहका ख़तरा नहीं उठा सकतीं। प्रेमकी ख़ातिर पुरुष अँधेरेमें कूद सकता है, बड़े-से-बड़ा साहसका काम कर सकता है; परन्तु नारी ऐसे मामलोंमें सदा फूँक-फूँककर कदम रखती है। वह कभी ख़तरा नहीं उठाती। विनय आज विस्मृत है। वह आज निर्वासित-सा है। अभागा है। लेटे-लेटे सहसा विनयकी आँखोंमें आँसू भर आये। समुद्रमें ज्वार आना शुरू हो गया था, और उसका पानी बढ़कर विनयकी बेंच तक आ गया था। सहसा एक लहर आई और विनयके बालोंपर छींटे डालती हुई नीचेकी ओर लौट गई। विनय चौंककर उठ बैठा और उसने देखा कि आसपासका रेतीला मैदान जलमग्न हो गया है, और वहाँ कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं है।

उस जगहसे चल देनेके इरादेसे विनयने अपने बूट खोले और अपने नंगे पैर समुद्रके जलमें डाल दिये; मगर वह उठ न सका। वहीं पानीमें पैर डाले हुए वह बेंचपर बैठा ही रह गया। जैसे उसमें किसी कार्यके लिए कोई उत्साह ही बाक़ी न बच रहा हो। बचपन ही से विनय अपने साथियोंमें सबसे अधिक क्रियाशील और उत्साही गिना जाता रहा है; परन्तु इस दारुण आघातने जैसे उसके जीवनके स्रोतको मूर्च्छित बना दिया। वह घर जाकर भी क्या करेगा? पानी बढ़ रहा है, बढ़ने दो। पत्थरकी ये बेंचें आखिर बह नहीं जायँगी। ओह, यूथिका कितनी निष्ठुर है! वह मुझे इस तरह, बिलकुल अचानक भूल क्यों गई!

सहसा विनयको याद आया कि उसके स्वदेशको वापस जानेके दिन नज़दीक आ रहे हैं। वह परीक्षा दे चुका है और परिणामकी प्रतीक्षामें है; परन्तु अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हिन्दुस्तान वापस जाकर क्या करेगा ? यह दारुण समाचार सुन लेनेके बाद विनयके लिए अपने देशमें कौन-सा आकर्षण बाक़ी बच रहा है। नहीं, अब वह हिन्दुस्तान नहीं जायगा। उसके नाम बैंकमें काफ़ी रुपया है, और वह दुनिया-भरका चक्कर काटेगा। माँ-बापको सूचना दिये बिना वह संसारके अज्ञात प्रदेशोंमें, जब तक जी चाहेगा, भटकता फिरेगा।

लहरोंका एक ज़बरदस्त उफ़ान-सा उठा और उसकी पैन्टको बुरी तरह भिगोकर वापस लौट गया। विनयके चेहरेपर पागलोंकी-सी एक मुसकराहट चमक गई, और वह उठ खड़ा हुआ।

[५]

अपने परिवार और अपनी बिरादरीमें अत्यधिक बदनाम हो जानेपर भी एक ही वर्षमें कुमारी यूथिकाका नाम देशकी सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रीके रूपमें बच्चे-बच्चेकी ज़बानपर पहुँच गया है। दुनिया उसे मिस लताके नामसे जानती है। उसने किसीकी नहीं सुनी, अपने बापकी नहीं सुनी और अपनी माकी भी नहीं सुनी। उसे मालूम था कि वह शिक्षिता और सुन्दरी है। उसे यह भी भरोसा था कि उसपर ज़बरदस्ती कोई नहीं कर सकता है—न तो क़ानूनकी रूहसे और न व्यवहार ही में। अपनी रक्षाके लिए उसमें काफ़ी साहस है। उसने निश्चय कर लिया था कि वह आज़ादीसे रहेगी और सफल अभिनेत्री बनकर सम्पूर्ण पुरुष-समाजको बेवक़ूफ़ बनानेका प्रयत्न करेगी।

यूथिकाका अनुपम नृत्य दर्शकके हृदयमें भक्ति और आत्मार्पणकी भावना उत्पन्न नहीं करता। उसके कलापूर्ण अंगविक्षेपका अछूता और अतुलनीय सौन्दर्य दर्शकोंके हृदयपर बरछी-सी चला जाता है। उसका मधुरतम स्वर वासनाको उद्दीप्त करनेवाला है, हृदयको कोमलतासे भर देनेवाला नहीं। बम्बईके विविध रंगमंचोंपर यूथिका प्रायः दर्शन देती रहती है। जिस दिन उसका अभिनय होता है, रंगशालामें सभी ढब और सभी अवस्थाके नागरिकोंकी भीड़ टूटी पड़ती है; परन्तु रंच-मंचपर उत्तेजनाकी बाढ़-सी ले आनेवाली वही यूथिका रंगशालाके बाहर किसी पुरुषसे सीधे-मुँह बात भी नहीं करती। न वह लोगों द्वारा भेजा गया कोई उपहार स्वीकार करती है और न किसीको मिलनेकी ही अनुमति देती है। इस नियमका एक भी अपवाद नहीं। ग़ैरज़िम्मेवार नौजवानोंके दिलोंमें आग सुलगाकर उनका तमाशा देखना जैसे उसका व्यसन बन गया है।

अगस्त मासकी एक रात। हौर्नबी रोडकी एक सुप्रसिद्ध रंगशालामें मिस लता अपना एक अद्भुत और नया नृत्य दिखा रही हैं। हॉल खचाखच भरा हुआ है। क़रीब दो हज़ार आँखें मिस लताके परिपुष्ट, अत्यन्त कोमल और आदर्श सुन्दर अर्धनग्न अंगोंके कलापूर्ण अवक्षेपको तन्मय होकर देख रही हैं। मिस्री, भारतीय और पाश्चात्य नृत्योंके सम्मिश्रणसे यूथिकाने सम्मोहन-नृत्य नामके एक नये नृत्यका आविष्कार किया है, और बम्बईमें आज पहली बार उसका प्रदर्शन किया जा रहा है। यह सम्मोहन-नृत्य महाभारतके सम्मोहनास्त्रसे कम भयंकर नहीं। बम्बईके चुने हुए, समृद्ध और कुलीन नागरिक मुग्ध होकर मिस लताका यह अद्भुत नृत्य देख रहे हैं।

एक बार। दो बार। शोर हुआ, तीसरी बार। यूथिकाको बाध्य होना पड़ा और बाईं ओरके परदेकी ओटसे धीरे-धीरे वह रंगमंचके मध्य भागकी ओर अग्रसर हुई।

सहसा यूथिकाकी निगाह हालके दाहनी ओरवाले ऊपरके बक्समें बैठे एक व्यक्तिपर पड़ी और एक चीख़ मानो बलपूर्वक उसके कंठसे निकल गई। ओह, यह तो विनय है! इतना दुर्बल और इतना कान्ति-विहीन! और उसके साथ जो अंगरेज़ रमणी बैठी है, वह ?

परन्तु यूथिका तो इस समय स्टेजपर है। संसारकी कोई बड़ी-से-बड़ी घटना भी इस समय उसे विचलित न कर सकेगी। लगभग उसी क्षण यूथिकाने यह अभिनय-सा किया, जैसे यह चीख़ भी उसके नृत्यका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भाग ही थी। दर्शकोंके मस्तिष्कपर हल्का-सा आघात पहुँचाकर यूथिका पुनः अपने कलापूर्ण आविष्कारके प्रदर्शनमें व्यस्त हो गई।

यूथिकाके आह्लादशून्य और मेशीनकी तरह काम करनेवाले अन्तःकरणमें अचानक भावोंका एक प्रबल आवेग-सा उठ खड़ा हुआ, जिसने आकर्षक नृत्यको सचमुच अलौकिक बना दिया। मुग्ध-सी होकर नृत्यके साथ-ही-साथ वीणा-विनिन्दित स्वरमें वह एक गीत भी गुनगुनाने लगी। सभी दर्शक व्याकुल होकर अश-अश कर उठे।

परन्तु यह हालत अधिक देर तक नहीं रही। यूथिकाके हृदयका उफ़ान जैसे भाटेकी-सी दशामें आ गया। उसके चेहरेपर थकावट और साथ-ही-साथ गहनतम वेदनाके भाव व्यक्त होने लगे। नृत्य क्रमशः शिथिल पड़ता गया और एक क्षण आया, जब वह मूर्छित होकर रंगमंचपर गिर पड़ी। गिरते हुए भी अपने सहज स्वभावसे वह दर्शकोंकी निगाहोंको धोखा दे गई। वे कुछ भी नहीं समझे और परदा गिरनेके साथ-ही-साथ सम्पूर्ण रंगशाला तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठी।

परदा फिरसे उठा और अब अन्य अभिनेत्रियाँ रंगमंचपर आईं। विनय अपने स्थानपर अर्द्धमूर्छित-सी दशामें बैठा था और अस्पतालमें उसकी परिचर्या करनेवाली एक करुण-हृदय नर्स उसके निकट बैठी उसकी दशा देखकर परेशान हो रही थी। सहसा बक्सके द्वारपर किसीके थपथपानेकी आहट सुनाई दी। विक्षिप्त मस्तिष्क विनय तो जैसे कुछ भी नहीं सुन पाया, परन्तु नर्स उठी और द्वार खोलकर उसने पूछा—"कौन है ?"

नर्सके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि अभिनयकी वही भड़कीली पोशाक पहने मिस लता स्वयं उनके बक्सके द्वारपर खड़ी है। उसने आदरपूर्वक कहा—"भीतर आ जाइये !"

"नहीं, धन्यवाद। आप कृपया अपने पतिदेवको एक मिनटके लिए इधर भेज सकेंगी ?"

नर्स भौचक्की-सी रह गई। वह इस बातका प्रतिवाद करने ही वाली थी कि विनय उठकर द्वारपर आ पहुँचा। जैसे वह इसी बातकी प्रतीक्षामें था। विक्षिप्त मस्तिष्क होते हुए भी जैसे वह सभी-कुछ समझ गया था। अपने आभाविहीन, मुरझाये-से चेहरेपर ज़बरदस्ती मुसकराहटकी छाया लानेका प्रयत्न करते हुए विनयने कहा—"तुमने कमाल कर दिया, यूथ ! परन्तु तुम्हारे पति महोदय इन सबको कैसे बरदाश्त करते हैं ?" और इसके साथ-ही-साथ पगले विनयपर जैसे स्फूर्ति और आह्लादका नशा-सा छा गया। वह बकने लगा—"अपने विवाहकी सूचना मेरे पास भेज देनेमें तुम्हारा क्या हर्ज था यूथ ?"

यूथिकाका चेहरा भयसे पीला पड़ गया। यह कैसा निर्लज्ज मज़ाक है ! क्या यह वही विनय है, जो शालीनताका पुतला बना रहता था ! अपने हृदयमें प्रतिहिंसाकी ज्वाला ज़बरदस्ती दहकाकर अन्दरकी ओर इशारा करते हुए उसने कहा—"तुमने भी तो अपने विवाहपर मुझे निमन्त्रित नहीं किया था, विनय !"

वह नर्स इन दोनोंको बक्सके द्वारके बाहर छोड़कर स्वयं अपनी जगह जा बैठी थी। विनयने उसकी ओर लक्ष्य करके कहा—"रोज़के सम्बन्धमें पूछती हो ? वह तो देवी है।"

यूथिकाको लगा, जैसे इस बेहूदे युवकने शराबका ओवरडोज़ ले रखा है, तभी तो इस निर्लज्जताके साथ वह ऐसे घृणित मज़ाक कर रहा है। तो भी उसने पूछा—"विलायतसे कब लौटे ?"

"कल ही।"

"कहाँ ठहरे हो ?"

विनय बेवकूफ़ोंकी तरह अट्टहास कर उठा—"मेरे निवास-स्थान पूछकर क्या करोगी ! हः हः हः !"

यूथिका काँप गई। इसी समय ड्रेसिंग-रूममें रोशनीके साथ घंटी बजी और यूथिका समझ गई कि उसकी वहाँ ज़रूरत है। विनयको प्रणाम तक कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना वह अत्यधिक उद्विग्न और निराश भावसे लौट चली। जैसे वह अपने प्रियतमकी समाधिसे लौट रही हो। उसकी आँखोंमें हठात् आँसू भर आये थे और जी खुलकर रो लेनेके लिए मचल पड़ा था।

विनय फिर लौटकर बक्समें नहीं गया। नर्स समझती थी कि बाहर खड़े रहकर वह मिस लतासे बातें कर रहा है। परन्तु विनय बम्बईका पैरेड मैदान पार करता हुआ समुद्र-तटकी ओर बढ़ता चला जा रहा था। आस्मानमें बादल घिर आये थे। पश्चिम आकाशमें कहीं छिपकर बैठा हुआ इन्द्र जैसे इन बादलोंमें बिजलीकी आतिशबाज़ी चला रहा था। सभी ओर अन्धकार व्याप्त था। दूरपर बम्बईकी चौड़ी सड़कोंके किनारेकी बत्तियाँ प्रकाशमयी झंडियोंकी कतारोंके समान दीख पड़ती थीं। रह-रहकर ज़ोरोंसे बादल गरज उठते थे और अभागा विनय अस्पतालके बजाय चुपचाप समुद्र-तटकी ओर बढ़ा जा रहा था।

अंगरेज भारतमें क्यों हैं ?

श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

मिस्टर एडविन बेवन भारत-बन्धुके रूपमें अपना परिचय दिया करते हैं। लन्दनमें गोवर स्ट्रीटपर भारतीय विद्यार्थियोंके लिए ईसाई सम्प्रदायका जो छात्र-निवास और भोजनालय है, उसकी कमेटीके आप एक सदस्य हैं। आपने गत महीनेमें लन्दनके 'टाइम्स' पत्रमें अंगरेजोंके भारतवर्ष दखल करके बैठे रहनेके कारण बतलाते हुए जो-कुछ लिखा है, रायटरने उसे (१७ अप्रेलको) भारतके दैनिक पत्रोंके लिए तारसे भेजा है। उसका तात्पर्य नीचे दिया जाता है :—

"जो भी कोई ब्रिटिश राष्ट्रका मौजूदा मिजाज जानते हैं और जिन्होंने हमारे देशके हालके कई वर्षके किसी-किसी कार्यपर विचार किया है, वे जानते हैं कि ऐसा अनुमान करना असंगत है (जैसा अनुमान मि० गांधी अब भी करते हैं, मालूम होता है) कि हमारा राष्ट्र अन्य देशपर प्रभुत्व करनेके सुख या सुविधाके कारण ही अपना प्रभुत्व उस देशकी जनतापर नहीं छोड़ना चाहता। हम मिस्रसे हट गये हैं। हम ईराकसे हटे, और वहाँसे बहुत जल्द हट जाना यह साबित करता है कि हमारे हटनेके बाद ही वहाँके असीरियन लोग, जिनकी रक्षा करनेको हम बाध्य थे, झुंड-के-झुंड मारे जाने लगे।

"यह सम्पूर्ण सत्य है कि हमारा राष्ट्र अभी हाल ही भारतसे चले आनेमें अनिच्छुक है। परन्तु वह इसलिए नहीं कि भारतीयगण चरित्र, बुद्धि और संस्कृतिमें मिस्र या ईराकवालोंसे निकृष्ट हों; यह कतई सच नहीं। कारण यह कि जो देश एकदेशत्व (ऐक्य) प्राप्त करनेकी उच्च आकांक्षाका पोषण करते हैं, उनमें से कोई भी देश भारतकी तरह इतने अधिक परिमाणमें जाति, धर्ममत और वर्णभेद-जनित परस्पर-विरोधिता द्वारा बहुधा विभक्त नहीं है।"

अंगरेजोंके भारतवर्षपर कब्जा करके बैठे रहनेके कारणके सम्बन्धमें मि० बेवनने जो लिखा है, वह कोई नई बात नहीं। इसके पहले औरोंने भी ऐसे कारण विभिन्न शब्दोंके प्रयोगों द्वारा उपस्थित किये हैं। कांग्रेसके मंत्रित्व-अस्वीकारके विषयमें भारत-सचिव लार्ड ज़ेटलैण्डने पार्लामेन्टमें जो पहला भाषण दिया था, उसमें इसी तरहके एक बहानेका आभास होनेसे हमने मि० बेवनका मन्तव्य भारत तक पहुँचनेके पाँच दिन पहले प्रकाशित वैशाख मासके 'प्रवासी'में लिखा था—

"ब्रिटेनमें बहुत दिनों तक यहूदी, रोमन कैथोलिक और नानकन्फर्मिस्ट ईसाइयोंपर अन्याय और अत्याचार होता रहा है। अन्य अनेक देशोंमें भी ऐसा पक्षपात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौजूद है। परन्तु फिर भी, कोई भी यथार्थ स्वाधीनता प्रेमी व्यक्ति यह नहीं चाह सकता कि कोई तथाकथित निरपेक्ष राष्ट्र उन्हें पदानत करे। आदर्श तो यही है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने दोषोंको आप ही सुधार ले। अंगरेजोंने क्या अपने देशके पूर्वोल्लिखित सम्प्रदायोंके प्रति अपने आचरणकी उन्नति नहीं की? अंगरेज अगर भारतमें सचमुच ही निरपेक्ष होते, तो भी यह वांछनीय नहीं हो सकता कि वे हमेशा यहाँ प्रभुत्व करते रहें। हम अपने दोष स्वयं ही सुधार लेंगे, सुधार रहे हैं और इस बीचमें कुछ सुधार भी लिये हैं।"

मि० बेवन समझते हैं, या समझनेका-सा भाव दिखलाते हैं कि ब्रिटिश राष्ट्रकी वर्तमान प्रकृति और ब्रिटेनके अति आधुनिक किसी-किसी कार्यपर विचार करनेसे यह धारणा नहीं हो सकती कि अंगरेज़ सिर्फ प्रभुत्व, सुख और मुनाफेके लिए ही भारतपर कब्जा किये बैठे हैं। लेकिन हमें ब्रिटिश राष्ट्रके स्वभाव-चरित्रमें अंगरेज़ोंके अधीन राष्ट्रोंको स्वाधीनता देनेकी ओर झुकावका कोई नया आविर्भाव नहीं दिखाई देता। अति आधुनिक जिन दो कामोंका उन्होंने उल्लेख किया है, उससे भी उनके मन्तव्यका समर्थन नहीं होता।

भारतवर्षपर अंगरेज़ोंने जैसा प्रभुत्व जिस रूपसे स्थापित किया है, मिस्रपर उन्होंने वैसा प्रभुत्व उस रूपसे कभी भी स्थापित नहीं किया। भारतवर्षपर उनका प्रभुत्व जितने ज्यादा समयका है, मिस्रपर उतने समयका नहीं। भारतपर प्रभुत्व करना उनके लिए जितना लाभदायक है, मिस्रपर उतना लाभदायक कभी भी नहीं था। मिस्रका आधुनिक इतिहास बतलाता है कि वह तुर्क-साम्राज्यका अंश कतई न था, और १९१४ ई०के १८ दिसम्बरको घोषित हुआ था कि ब्रिटिशका उसपर संरक्षण-अधिकार (ब्रिटिश प्रोटेक्टरेट) स्थापित हुआ है। यह सच नहीं कि मिस्रपर से ब्रिटिश सिंहका पंजा हट गया है। मिस्रपर उनका प्रभुत्व किस प्रकार और कितना था, इस बातकी आलोचना अभी करनेकी नहीं। वह प्रभुत्व जिन उद्देश्योंसे रखा गया था, मिस्रके साथ जो 'सन्धि' हुई थी, उसमें उन उद्देश्योंकी सिद्धिके लिए पूरी व्यवस्था रखी गई है। और ब्रिटेन तथा मिस्रके सम्बन्धमें वाह्यतः जो-कुछ परिवर्तन हुआ है, ब्रिटेन उसे मिस्रकी स्थिति और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके दबावसे करनेको वाध्य हुआ है, अपनी महानुभावताके कारण उसने ऐसा नहीं किया।

ईराकका संक्षिप्त आधुनिक इतिहास यह है कि गत महायुद्धमें वह तुर्क-साम्राज्यकी अधीनताके बन्धनसे मुक्त हुआ। तब स्वाधीन राष्ट्रोंमें उसकी गिनती हुई, और यह तय हुआ कि लीग-आफ-नेशन्ससे आदेश-प्राप्त कोई शक्ति ('मैंडेटरी पावर') उसकी अभिभावक होगी। और यह अभिभावकत्व दिया गया ब्रिटेनको। १९२७ के १४ दिसम्बरको ब्रिटेन और ईराकमें जो सन्धि हुई, उसके फल-स्वरूप ब्रिटेनने ईराकको स्वाधीन राष्ट्र मानना अंगीकार कर लिया। १९३२ के ४ अक्टोबरको ईराक लीग-आफ-नेशन्सका सदस्य हो गया और तबसे ब्रिटेनका अभिभावकत्व भी खतम हो गया। लिहाजा यह स्पष्ट है कि भारतवर्षके साथ ब्रिटेनका जैसा सम्बन्ध है, ईराकके साथ वैसा कभी भी न था। ईराकके रक्षणसे ब्रिटेनको भक्षणकी जो सुविधाएँ प्राप्त हुई थीं, वे प्रकारान्तरसे अब भी मौजूद हैं। ब्रिटेनका ईराकसे जो 'अभिभावकत्व' लुप्त हुआ है, वह अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिका फल है, न कि ब्रिटिशकी महानुभावताका दृष्टान्त।

ब्रिटेनने अपनी इच्छासे, उदारतावश, मानवमात्रकी स्वाधीनताके मूल्य और आवश्यकताको समझकर अपनी अधीनतासे किसी राष्ट्र या और देशको मुक्त कर दिया हो, ऐसा कोई दृष्टान्त ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासमें नहीं मिलता। बाहरसे सरसरी तौरपर देखनेसे जहाँ ऐसा मालूम हो सकता है, वहाँ भी, जरा गम्भीरताके साथ विचार करनेसे, देखेंगे कि परिस्थितिके दबावमें पड़कर ब्रिटेन उदार होनेको मजबूर हुआ है। आयरलैण्ड अगर स्वाधीन हो जाय, तो उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता भी ब्रिटेन वाध्य होकर स्वीकार करेगा, अपनी इच्छासे नहीं।

यह भी याद रखना होगा कि जहाँ-जहाँ ब्रिटेनने अपने अधीन देशोंको औपनिवेशिक स्वाधीनता या डोमीनियनत्व दिया है, वहाँ श्वेतकायों या गोरोंका ही प्रभुत्व है, अश्वेतकाय या काले आदमियोंको उसने कहीं भी मालिक होने नहीं दिया।

ब्रिटिश राष्ट्रमें कुछ ऐसे आदमी भी हैं, जो पराधीन देशोंके लिए, भारतके लिए भी, स्वाधीनताका समर्थन करते हैं। परन्तु वे ही अगर पार्लामेन्टमें अपना बहुमत स्थापित करके गवर्मेन्ट बन बैठें, तब उनकी उदारता टिकेगी या नहीं, यह बात भविष्यमें ही समझनेकी है।

मि० बेवनका कहना है, अपने अधीन देशपर प्रभुत्व कायम रखनेके सुखके लिए अथवा उससे उत्पन्न मुनाफेके लिए अंगरेज़ लोग अन्य देशको अधीन बनाये नहीं रखते। दूसरे किसी देशको अधीन बनाये रखकर वे सुख पाते हैं या नहीं, यह उनके मनकी बात है। उनके मनमें प्रवेश करनेका अधिकार हमें नहीं। लिहाजा उस विषयमें हम कुछ न कहेंगे। मगर मुनाफा बाहरकी चीज है। उसके बारेमें कुछ कहा जा सकता है।

भारतवर्षको अपने अधीन रखकर ब्रिटेन मुख्यतः तीन प्रकारसे लाभ उठाता है।

भारतवर्षकी सामरिक और असामरिक मुख्य-मुख्य नौकरियोंसे अंगरेज़ बहुत बड़ी-बड़ी तनखाहें, भत्ते और पेन्शन पाया करते हैं। अगर उनपर उनका लोभ न होता, तो वे उन्हें अपने कब्ज़ेमें बनाये रखनेके लिए नाना प्रकारके अनुचित कौशल और तरह-तरहकी तरकीबोंका आश्रय न लेते। उन कामोंके लिए अगर योग्य भारतीय न मिलते, तो अंगरेज़ कह सकते थे कि भारतका राष्ट्रीय काम चलानेके लिए उन्हें मजबूर होकर यह काम करना पड़ता है। परन्तु वास्तविक अवस्था कुछ और ही है। कुछ दृष्टान्त लीजिए।

भारतीय सिविल सर्विसके लिए योग्य व्यक्तियोंको छाँट लेनेके लिए अंगरेज़ोंने एक प्रतियोगिता-मूलक परीक्षाकी प्रथा चलाई। उसमें ज्ञान - सम्बन्धी योग्यताकी परीक्षा है और साथ ही शारीरिक योग्यताकी परीक्षा भी। उसमें क्रमशः भारतीयोंने अधिकसे अधिकतर संख्यामें अंगरेज़ प्रतियोगियोंको परास्त किया और काम पाते रहे। इससे मालूम होता है कि अंगरेज़ोंकी ही निर्दिष्ट की हुई योग्यताकी नापके अनुसार बहुतसे भारतीय देशके काम चलानेके योग्य हो गये हैं, और आगे और भी ज्यादा तादादमें लोग योग्य होंगे। (हालाँ कि इन युक्तियोंके आधारके बिना भी हमारा ऐसा विश्वास है कि अपने देशका काम चलानेका अधिकार हमें ही है, और योग्यता भी हममें है।) परन्तु भारतपर कब्जा करके प्रभुत्व करनेके प्रति और नौकरियोंके प्रति लोभ होनेसे, भारतीयोंमें प्रमाणित योग्यता होनेपर भी, अंगरेज़ अब उन्हें प्रतियोगिता-मूलक परीक्षा द्वारा सिविल सर्विसके सब कामोंमें नियुक्त न करके अपने चुनावसे अनेक अंगरेज़ छोकरोंको ले रहे हैं।

लिहाजा भारतको अधीन रखनेके मुनाफेपर अंगरेज़ोंका काफी लोभ है।

चिकित्सा-विभागकी बड़ी-बड़ी नौकरियाँ ज्यादातर इंडियन मेडिकल सर्विसकी प्रतियोगिता-मूलक परीक्षामें उत्तीर्ण लोगोंको दी जा रही थीं। मगर इस विभागमें भी अधिक संख्यामें भारतीय युवकोंके कृतित्व दिखानेपर भी उस प्रतियोगिता-मूलक परीक्षा द्वारा उनकी नियुक्ति नहीं होती। उसमें भी, किसी भी तरह हो, अंगरेज़ डाक्टरोंको नौकरी देनी ही होगी, इस जिदसे भी मुनाफा उठानेका लोभ प्रमाणित होता है।

भारतीय सिपाही किसी भी देशके सैनिकोंसे साहस, श्रमशक्ति, कष्ट-सहिष्णुता और रण-कौशलमें निकृष्ट नहीं। पिछले महायुद्धमें यूरोपके रणक्षेत्रमें भी यही प्रमाणित हुआ है। लिहाज़ा बाहरके आक्रमणोंसे भारतवर्षकी रक्षा करनेके लिए अंगरेज़ सेना अनावश्यक है। परन्तु प्रभुत्व और प्रभुत्वजनित मुनाफेपर लोभ होनेसे, हर भारतीय सिपाहीके खर्चसे चौगुना खर्च करके भी, काफी अंगरेज़ सैनिक भारतमें रखे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीयोंमें सेनानायकका काम करनेकी योग्यता रखनेवाले भी काफी आदमी हैं। पिछले महायुद्धमें जब बहुत ज्यादा तादादमें अंगरेज़ सेनानायक मारे गये, तब देशी राज्योंके देशी सेनानायकोंने, और ब्रिटिश भारतके देशी सेनानायकोंने भी, जिस साहस और दक्षताके साथ अंगरेज़ोंके पक्षसे बहुत-सी सेनाओंका जो परिचालन-कार्य किया था, वह अन्य किसी राष्ट्रके सेनानायकोंसे कम न था। लेकिन सेनानायकके कामोंमें भारतीय लोग इतनी कम संख्यामें लिये जाते हैं कि भारतवर्ष अंगरेज़ोंके अधीन रहते हुए कभी भी भारतकी समग्र सेना भारतीय नायकोंके संचालनमें नहीं हो सकती।

ब्रिटेनने प्रभुत्व और प्रभुत्व-जनित मुनाफेके लोभसे ही भारतीय सेना-विभागमें उपर्युक्त अनुचित व्यवस्था कायम रखी है।

भारतमें कारखाने खोलकर भारतमें व्यवसाय-बाणिज्य करके तथा ब्रिटेनसे भारतके साथ व्यवसाय-बाणिज्य तथा जहाज़ोंके जरिये भारतमें और भारतसे यात्री और मालकी आमद-रफ्त करके ब्रिटेन सौ-सौ करोड़ रुपया लाभ करता आया है। भारतके नये शासन-विधानमें इस लाभकी रक्षा करने और बढ़ानेके लिए नाना धारा-उपधाराओंका समावेश हुआ है। किसी देशके क़ानूनमें अन्य किसी देशको लाभवान करने और बनाये रखनेके लिए ऐसी व्यवस्था नहीं हुई। १९३५ के नये क़ानूनमें इस तरहकी जो व्यवस्था की गई है, वह पहलेके, १९१९ के, भारत-शासन-विधानमें नहीं थी। इससे सिद्ध होता है कि व्यवसाय-बाणिज्य और जहाजी व्यापारसे प्राप्त जबरदस्त मुनाफेपर ब्रिटेनका लोभ इतना अधिक है कि उसकी रक्षा और वृद्धिके लिए ब्रिटेनने नये विधानमें अश्रुतपूर्व अन्यायपूर्ण व्यवस्था की है।

इन सब धारा-उपधाराओंके विषयमें शुरू-शुरूमें 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी'में बहुत-कुछ लिखा गया है। अभी हालमें भी हमने अमेरिकाके प्रसिद्ध मासिक पत्र 'एशिया' के मईके अंकमें इस विषयपर निबन्ध लिखा है, जो कि भारतमें आ गया है।

ब्रिटेनने भारतवर्षसे पिछले दिनोंमें जो लाभ उठाया है, वह दूसरी तरहका था। पलासी-युद्धके बाद बंगालसे जो करोड़ों रुपया विलायत गया था, उसीकी सहायतासे विलायतकी नई-नई मिलोंको चलनेकी शक्ति मिली थी और ब्रिटेनने तैयारी माल बेचनेके बाज़ारमें प्रधानता पाई थी। इसका विशेष वृत्तान्त मेजर वामनदास वसुकी 'रुइन आफ इण्डियन ट्रेड ऐण्ड इण्डस्ट्री' नामक पुस्तकमें मौजूद है।

भारतवर्षसे ब्रिटेनके लाभका सिर्फ एक दृष्टान्त और देंगे। काफी तादादमें भारतकी सहायतासे और भारतसे प्राप्त जनबल और अर्थबलकी सहायतासे ब्रिटेन अपना विशाल ब्रिटिश साम्राज्य बना सका है। इस साम्राज्यकी रक्षाके लिए भारतका प्रभु बना रहना उनके लिए जरूरी है। और इसीलिए ब्रिटेनसे भारत आनेका रास्ता निरापद या साफ रखना आवश्यक है, और इस बातका भी ध्यान रखना जरूरी है कि पूर्वकी तरफसे समुद्री मार्गसे कोई आक्रमण न करने पावे। भूमध्यसागरपर ब्रिटेनका प्रभाव अब घट गया है, और इटलीका बढ़ा है। यही वजह है कि ब्रिटेनको अब जलपथसे भारत आनेके उपायके अलावा दूसरा उपाय भी निश्चित करना पड़ रहा है। इसीलिए नाना स्थानोंमें उन्हें किसी न किसी तरहसे विमान-घाटीके लिए जगह अपने कब्जेमें करनी पड़ रही है। पूरबसे समुद्री मार्गसे भारतपर आक्रमण न हो सके, इसके लिए उन्हें सिंगापुरमें फौजी जहाजोंके लिए बहुत बड़ा पोताश्रय या बन्दरगाह बनाना पड़ा है।

मि० बेवनने कहा है—"भारतवर्षमें अनेक जाति ('रेस'), धर्ममत ('क्रीड') और जात-पाँत ('काष्ट') का भेद होनेसे तथा उनमें परस्पर-विरोध होनेसे ब्रिटेनको भारतमें रहना पड़ रहा है।" इसके मानी यह हुए कि विरोध होनेसे उसे दमन करना या रोकना तथा विरोध और विरोधके कारणोंका उच्छेद करना ब्रिटेनका उद्देश्य है। दंगा-फसाद होनेपर लाठी चलाकर और अन्ततोगत्वा गोली चलाकर उसे रोकनेकी कोशिश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है, यह सच है। उसके बाद कुछ आदमियोंको पकड़कर अदालतके सामने पेश किया जाता है और उनके विरुद्ध मुकदमा चलाकर बहुतोंको सज़ा दी जाती है, यह भी सच है। लाठी और गोली चलाना तथा मुकदमा चलाना साधारणतः निष्पक्षतासे होता है या नहीं, इस विषयकी आलोचना न करके यहाँ सिर्फ इस बातपर विचार करना है कि क्या इन सब उपायोंसे विरोधका और विरोधके कारणोंका उच्छेद हुआ है, या हो रहा है ? नहीं हुआ, और न हो रहा है। किसी देशमें अगर बहुत ज्यादा मैलेरिया हो, तो वहाँ बहुतसे डाक्टर और काफी तौरपर दवाएँ रख देनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ ठीक और काफी व्यवस्था कर दी गई, बल्कि जिससे मैलेरिया बुखारका होना रुके, मलेरियाके कारण नष्ट हों और फिर वह पैदा ही न हो सके, इस तरहकी व्यवस्था भी करना ज़रूरी है। इस तरहके साम्प्रदायिक और श्रेणीगत विरोध और दंगा-हंगामा होनेकी वजहसे काफी पुलिस, सेना और उनके अस्त्र-शस्त्र, गिरफ्तार किये हुए लोगोंके मामलोंपर विचार करने और सज़ा देनेके लिए काफी तादादमें न्यायाधीश और कारागार रखनेसे ही यथोचित व्यवस्था हो गई, यह नहीं कहा जा सकता। सरकारी तरफसे ऐसे क़ानून बनाये जानेकी तथा अन्य प्रकारकी व्यवस्था होनेकी ज़रूरत है, जिससे साम्प्रदायिक ईर्ष्या-द्वेष बढ़े नहीं, बल्कि घटे और लुप्त हो जाय। ऐसा कोई क़ानून या अन्य प्रकारकी व्यवस्था है ? ऐसा क़ानून और अन्य सरकारी व्यवस्था हर्गिज न होनी चाहिए, जिससे साक्षात् या परोक्षरूपसे सम्प्रदाय-सम्प्रदायमें और श्रेणी-श्रेणीमें परस्पर ईर्ष्या-द्वेष बढ़े। परन्तु भारतके नये शासन-विधानमें साम्प्रदायिक और श्रेणीगत ईर्ष्या-द्वेष और अन्य व्यवस्था अवांछनीय मनोभाव बढ़ रहे हैं। योग्यता कम हो या अधिक, प्रान्तोंके अनुसार कौन-कौन सम्प्रदाय संख्यामें अधिक या कम है, इस बातपर विचार किये बिना ही, सर्वत्र किसी-किसी सम्प्रदायके लोगोंको कुछ निर्दिष्ट नौकरियाँ देनी ही पड़ेंगी, इस तरहके नियमोंसे भी ईर्ष्या-द्वेष बढ़ता जाता है। कौन धर्म-सम्प्रदाय अपने किस धर्मानुष्ठानको कर सकता है या नहीं कर सकता, इस बातका निर्णय करते समय निषेध और अधिकार-संकोच एक ही मानदण्डके अनुसार सभी सम्प्रदायोंके लिए प्रयुक्त होना चाहिए। मगर कार्यतः यह देखनेमें आता है कि निषेध और अधिकार-संकोच हिन्दुओंके भाग्यमें ही, सर्वत्र या अधिकांश स्थलोंमें, पड़ता है। देशमें मानसिक कटुता और ईर्ष्या-द्वेष बढ़नेका यह भी एक कारण है।

ईर्ष्या-द्वेष बढ़नेके अन्य कारण भी हो सकते हैं। हमने जिन क़ानूनों और नियमोंको ईर्ष्या-द्वेषकी वृद्धिका कारण बताया है, अंगरेज़ोंके मतसे अगर वे कारण न भी हों, तो भी यह बात सरकारी उच्च पदाधिकारी अंगरेज़ राजपुरुषों द्वारा स्वीकृत हो चुकी है कि ईर्ष्या-द्वेष, झगड़ा-टंटा और दंगा-फसाद बढ़ रहे हैं। भारतीय व्यवस्थापिका सभामें भारत-सरकारके स्वराष्ट्र-सचिव सर हेनरी क्रेकने कुछ दिन पहले कहा था कि पिछले पचीस वर्षोंमें साम्प्रदायिक असद्भाव मनोमालिन्य आदि जैसा था, अब उससे भी ज्यादा बढ़ गया है। भारतीयों द्वारा अनुमान या निर्दिष्ट किये गये कारण अगर सत्य नहीं हैं, तो आखिर सत्य कारण क्या हैं ? उसके रोकनेका उपाय क्या है ? अंगरेज़ व्याधिके निर्णय और इलाजके लिए प्रयत्न किया है या क्या कर रहे हैं ? उनका कहना है कि यह रोग है और इसीलिए वे भारतमें हैं। व्याधि तो चिरकाल तक रहेगी, हो सकता है कि बढ़ती ही जाय, और वे भी चिरकाल तक प्रभु बने रहें, यह वांछनीय नहीं हो सकता,—कम-से-कम हम अपनी तरफसे इसे वांछनीय नहीं समझते। हम समझते हैं, अगर हमें यही मान लेना पड़े कि वास्तवमें वे इसी व्याधिके लिए ही इस देशमें हैं, तो उन्हें दिखाना होगा कि वे व्याधिका मूलोच्छेद कर रहे हैं और उस सदुद्देश्यके प्रयत्नमें उन्हें कम-से-कम थोड़ी-बहुत कुछ-न-कुछ सफलता भी मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मि० बेवन क्या इस बातको दिखा सकते हैं ? या और कोई अंगरेज़ दिखा सकते हैं ?

हमारी बात यह है कि हमारी व्याधिके समान व्याधि और भी बहुतसे देशोंमें थी और अब भी किसी-किसी देशमें है। जहाँ-जहाँ इसका प्रतिकार और उच्छेद हुआ है, या हो रहा है, वहाँ उसी-उसी देशके स्वाधीन बाशिन्दोंकी कोशिशसे ही हुआ है या हो रहा है ; बाहरसे आये हुए और उस व्याधिसे फायदा उठानेवाले किसी प्रभु-राष्ट्रके द्वारा ऐसा नहीं हुआ, और न हो सकता है।

मि० बेवनने कहा है, अंगरेज़ ईराकका अभिभावकत्व छोड़ आनेके बाद वहाँके काफी असीरियन (संख्यामें अधिक मुसलमानों द्वारा) मारे गये हैं। उन्होंने जो बात नहीं कही, उसे हम जोड़े देते हैं ; यानी समस्त असीरियनोंके अन्य किसी देशको चालान कर देनेकी कोशिश होती आई है, नहीं तो वे बहुसंख्यकों द्वारा निर्मूल हो सकते हैं।

मि० बेवनके कथनमें यह इशारा है कि भारतवर्षसे अंगरेज़ोंके चले जानेपर यहाँके हिन्दू लोग कम संख्यावालोंको निर्मूल कर देंगे, या अन्य किसी देशको चालान कर देंगे। राष्ट्रीय प्रकृति सहसा नहीं बदलती। भारतके इतिहासमें भारतीय प्रकृतिका क्या ऐसा ही परिचय मिलता है कि यहाँके बहुसंख्यकोंने कम संख्यावालोंको निर्मूल किया है, या उन्हें विदेशको चालान किया, या करनेकी कोशिश की है ? बल्कि इतिहास क्या यही नहीं कहता है कि धर्म-सम्बन्धी उदारता और नाना-मत-सहिष्णुताका प्राचीनतम प्रकृष्ट दृष्टान्त भारतवर्षमें ही मिलता है, और स्वाधीन भारतमें ईस्वी सन्‌की शुरूआतसे ही यहूदी, सीरियन, क्रिश्चियन, ईरानी आदि विदेशी जातियोंने आतिथ्य और आश्रय पाया है ?

साहित्यका भविष्य

श्री जवाहरलाल नेहरू

कुछ दिनसे फिर हिन्दी और उर्दूकी बहस उठी है, और लोगोंके दिलोंमें यह शक पैदा होता है कि हिन्दीवाले उर्दूको दबा रहे हैं और उर्दूवाले हिन्दीको। बगैर इस प्रश्नपर ग़ौर किये जोशीले लेख लिखे जाते हैं, और यह समझा जाता है कि जितना हम दूसरेपर हमला करें, उतना ही हम अपनी प्रिय भाषाको लाभ पहुँचाते हैं। लेकिन अगर ज़रा भी विचार किया जाय, तो यह बिलकुल फिज़ूल मालूम होता है। साहित्य ऐसे नहीं बढ़ा करते।

दूसरी बात यह भी देखनेमें आती है कि अक्सर साहित्यका अर्थ हम कुछ दूसरा ही लगाते हैं। हम भाषाकी छोटी बातोंमें बहुत फँसे रहते हैं और बुनियादी बातोंको भूल जाते हैं। साहित्य किसके लिए होता है ? क्या वह थोड़े-से ऊपरके पढ़े-लिखे आदमियोंके लिए होता है या आम जनताके लिए ? जब तक हम इसका जवाब न दें, उस समय तक हमें साहित्यके भविष्यका रास्ता ठीक तौरसे नहीं दीखता। और अगर हम इस बातका निश्चय कर लें, तब शायद हमारे और झगड़े हिन्दी-उर्दू आदिके भी हल हो जायँ।

पहली बात जो हमको याद रखनी है, वह यह कि हमारा आजकलका साहित्य बहुत पिछड़ा हुआ है। यूरोपकी किसी भी भाषासे मुक़ाबला किया जाय, तो हम काफ़ी गिरे हुए हैं। जो नई किताबें हमारे यहाँ निकल रही हैं, वे अव्वल दर्जेकी नहीं होतीं। अगर कोई आदमी आजकलकी दुनियाको समझना चाहे, तो उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह विदेशी भाषाओंकी किताबें पढ़े। नई विचार-धाराएँ अभी तक हमारे साहित्यमें कम पहुँची हैं। इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति इत्यादिपर हमारी भाषाओंमें माक़ूल पुस्तकें बहुत कम हैं। हमें इधर पूरे तौरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान देना है, नहीं तो हमारी भाषाएँ बढ़ नहीं सकतीं। जो लोग इन बातोंके सीखनेके प्यासे हैं, उनको मजबूरन और जगह जाना पड़ेगा।

बहुत सारे प्रश्न उठते हैं। इन सबोंपर मैं इस समय नहीं लिख सकता; लेकिन चन्द बातोंकी तरफ़ ध्यान दिलाना चाहता हूँ :—

१. मेरा पूरा विश्वास है कि हिन्दी और उर्दूके मुक़ाबलेसे दोनोंको हानि पहुँचती है। वे एक दूसरेके सहयोगसे ही बढ़ सकती हैं। और एकके बढ़नेसे दूसरेको भी फ़ायदा पहुँचेगा। इसलिए उनका सम्बन्ध मुक़ाबलेका नहीं होना चाहिए, चाहे वह कभी अलग-अलग रास्तेपर ही क्यों न चलें। दूसरेकी तरक्कीसे खुशी होनी चाहिए, क्योंकि उसका नतीजा अपनी तरक्की होगा। यूरोपमें जब नये साहित्य (अंगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन) बढ़े, तब सब साथ बढ़े, एक दूसरेको दबाकर और मुक़ाबला करके नहीं।

२. इसके मानी यह नहीं कि हर भाषाके प्रेमी अपनी भाषाकी अलग उन्नतिकी कोशिश न करें। वह अवश्य करें; लेकिन वह दूसरेके विरोधमें कोशिश न हो और मूल सिद्धान्त सामने रखें।

३. यह खाली उर्दू-हिन्दीके लिए नहीं, बल्कि हमारी सब बड़ी भाषाओंके लिए—बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम—यह बात साफ़ कर देनी चाहिए कि हम इन सब भाषाओंकी तरक्की चाहते हैं, और कोई मुक़ाबला नहीं। हर प्रान्तमें वहाँकी भाषा ही प्रथम है। हिन्दी या हिन्दुस्तानी राष्ट्र-भाषा अवश्य है और होनी चाहिए। लेकिन वह प्रान्तीय भाषाके पीछे ही आ सकती है। अगर यह बात निश्चय हो जावे और साफ़-साफ़ कह दिया जावे, तो बहुत ग़लतफ़हमियाँ दूर हो जावें और भाषाओंका सम्बन्ध बढ़े।

४. हिन्दी और उर्दूका सम्बन्ध बहुत क़रीबका है, और फिर भी कुछ दूर होता जा रहा है। इससे दोनोंको हानि होती है। एक शरीरपर दो सिर हैं और वे आपसमें लड़ा करते हैं। हमें दो बातें समझनी हैं और हालाँकि वह दोनों बातें ऊपरी तौरसे कुछ विरोधी मालूम होती हैं, फिर भी उनमें कोई असली विरोध नहीं है। एक तो यह कि हम ऐसी भाषा हिन्दी और उर्दूमें लिखें और बोलें जो कि बीचकी हो, और जिसमें संस्कृत या अरबी और फारसीके कठिन शब्द कम हों। इसीको आम तौरसे हिन्दुस्तानी कहते हैं। कहा जाता है, और यह बात सही है, कि ऐसी बीचकी भाषा लिखनेसे दोनों तरफकी खराबियाँ आ जाती हैं, एक दोग़ली भाषा पैदा होती है, जो किसीको भी पसन्द नहीं होती और जिसमें न सौन्दर्य होता है, न शक्ति। यह बात सही होते हुए भी बहुत बुनियाद नहीं रखती, और मेरा विचार है कि हिन्दी और उर्दूके मेलसे हम एक बहुत ख़ूबसूरत और बलवान भाषा पैदा करेंगे, जिसमें जवानीकी ताक़त हो और जो दुनियाकी भाषाओंमें एक माकूल भाषा हो।

यह बात होते हुए भी हमें याद रखनी है कि भाषाएँ ज़बरदस्ती नहीं बनतीं या बढ़तीं। साहित्य फूलकी तरह खिलता है, और उसपर दबाव डालनेसे मुरझा जाता है। इसलिए अगर हिन्दी-उर्दू भी अभी कुछ दिन तक अलग-अलग झुकें, तो हमको उसपर एतराज नहीं करना चाहिए। यह कोई शिक़ायतकी बात नहीं। हमें दोनोंको समझनेकी कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि जितने अधिक शब्द हमारी भाषामें हों, उतना ही अच्छा।

५. लिपिके बारेमें यह बिलकुल निश्चय हो जाना चाहिए कि दोनों लिपियाँ—देवनागरी और उर्दू—जारी रहें और हरएकको अधिकार हो कि जिसमें चाहे वह लिखे। अक्सर इस बातकी चर्चा होती है कि एक प्रान्तमें हिन्दी लिपिको दबाते हैं, जैसे सरहदी प्रान्त; या दूसरे प्रान्तमें उर्दू लिपिको मौक़ा नहीं मिलता। हमें एक तरफ़की बात खाली नहीं कहनी है, बल्कि सिद्धान्त रखना है कि हर जगह दोनों लिपियोंको पूरी आज़ादी होनी चाहिए। हिन्दी और उर्दू दोनोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमियोंको मिलकर यह बात माननी चाहिए और इसका यत्न करना चाहिए।

६. यह प्रश्न असलमें हिन्दी और उर्दूसे भी दूर जाता है। मेरी रायमें हर भाषा व हर लिपिको पूरी आज़ादी होनी चाहिए—अगर उसके बोलने और लिखनेवाले काफ़ी हों। मसलन, अगर कलकत्तेमें काफ़ी तमिल बोलनेवाले रहते हैं, तो उनको अधिकार होना चाहिए कि उनके स्कूलोंमें तमिल द्वारा पढ़ाई हो। ज़ाहिर है कि एक प्रान्तके राजनैतिक कार्यका अन्य काम बहुत सारी भाषाओंमें नहीं हो सकता। वह तो प्रान्तकी भाषामें ही हो सकता है। उत्तर-भारत और मध्य-भारतमें जहाँ हिन्दुस्तानी भाषा जनताकी है, वहाँ एक भाषा और दो लिपियाँ सब जगह आज़ादीसे चलनी चाहिए। इसके मानी यह नहीं हैं कि हरएकको दो लिपियाँ सीखनी पड़ेंगी। यह बच्चोंपर बहुत बोझा हो जावेगा, और इसलिए वे या उनके माँ-बाप कह सकें कि वह किस लिपिको सीखें। कोशिश यह भी होनी चाहिए कि कुछ लोग दोनों लिपियाँ सीखें।

७. हिन्दी और हिन्दुस्तानी शब्दोंपर बहुत बहस हुई है और ग़लतफहमियाँ फैली हैं। यह एक फिज़ूलकी बहस है। दोनों ही शब्द हम अपनी राष्ट्र-भाषाके लिए कह सकते हैं, दोनों सुन्दर हैं और हमारे देश और जातिसे सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन अच्छा हो, अगर इस बहसको बन्द करनेके लिए हम बोलनेकी भाषाको हिन्दुस्तानी कहें और लिपिको हिन्दी या उर्दू कहें। इससे साफ-साफ मालूम हो जावेगा कि हम क्या कह रहे हैं।

८. यह हिन्दुस्तानी भाषा क्या हो? देहली या लखनऊके रहनेवाले कहते हैं कि हमारी बोली आमफहम है। इसीको हिन्दुस्तानी बनाओ। लेकिन बनारस और पटना तथा मध्यभारत या राजपूतानामें जाइये, तो काफ़ी फ़र्क़ मिलता है। और अगर शहरोंको छोड़कर देहातोंमें हम जावें, तो और भी फ़र्क़। फिर कौन भाषा हमारी हो?

हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिए, जो सभ्य हो और जिसे अधिक-से-अधिक जनता समझे। इसको हम बैठकर कुछ कोषोंका मुक़ाबला करके नहीं बना सकते, और न दो-चार साहित्यकार (उर्दू और हिन्दीके) मिलकर पैदा कर सकते हैं। इसकी बुनियाद तभी मज़बूत पड़ेगी, जब लिखनेवाले आम जनताके लिए लिखेंगे और बोलनेवाले उनके ही लिए बोलेंगे। तब यह दफ्तरी बहसें कि कितनी उर्दू और कितनी हिन्दी, यह सब ख़त्म हो जावेंगी। जनता फैसला करेगी। जो उसकी समझमें आवेगा वह रहेगी, जो नहीं समझेगी वह हल्के-हल्के दब जावेगी। इसलिए हमारे लिए सबसे बुनियादी प्रश्न यही है कि हम आम जनताके लिए अपना साहित्य बनावें और उनको हमेशा अपने दिमाग़ोंके सामने रखकर लिखें। हर लिखनेवालेको अपनेसे पूछना है—"मैं किसके लिए लिखता हूँ?"

९. एक और बात। यह आवश्यक है कि हिन्दीमें यूरोपकी भाषाओंसे प्रसिद्ध पुस्तकोंका अनुवाद हो। इसी तरहसे हम दुनियाके विचार यहाँ लायँगे, और उनके साहित्योंसे लाभ उठायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

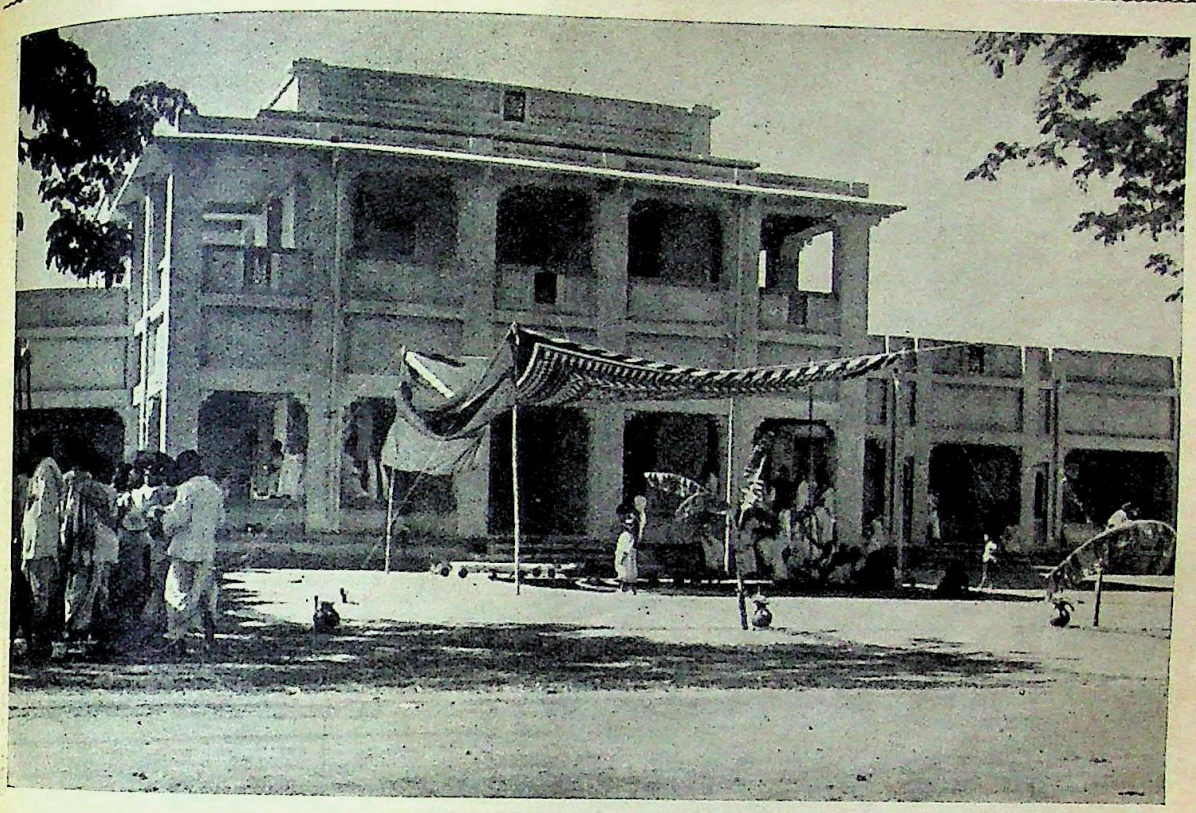

शान्ति-निकेतनमें चीनियों द्वारा बनवाया हुआ चीनी भवन

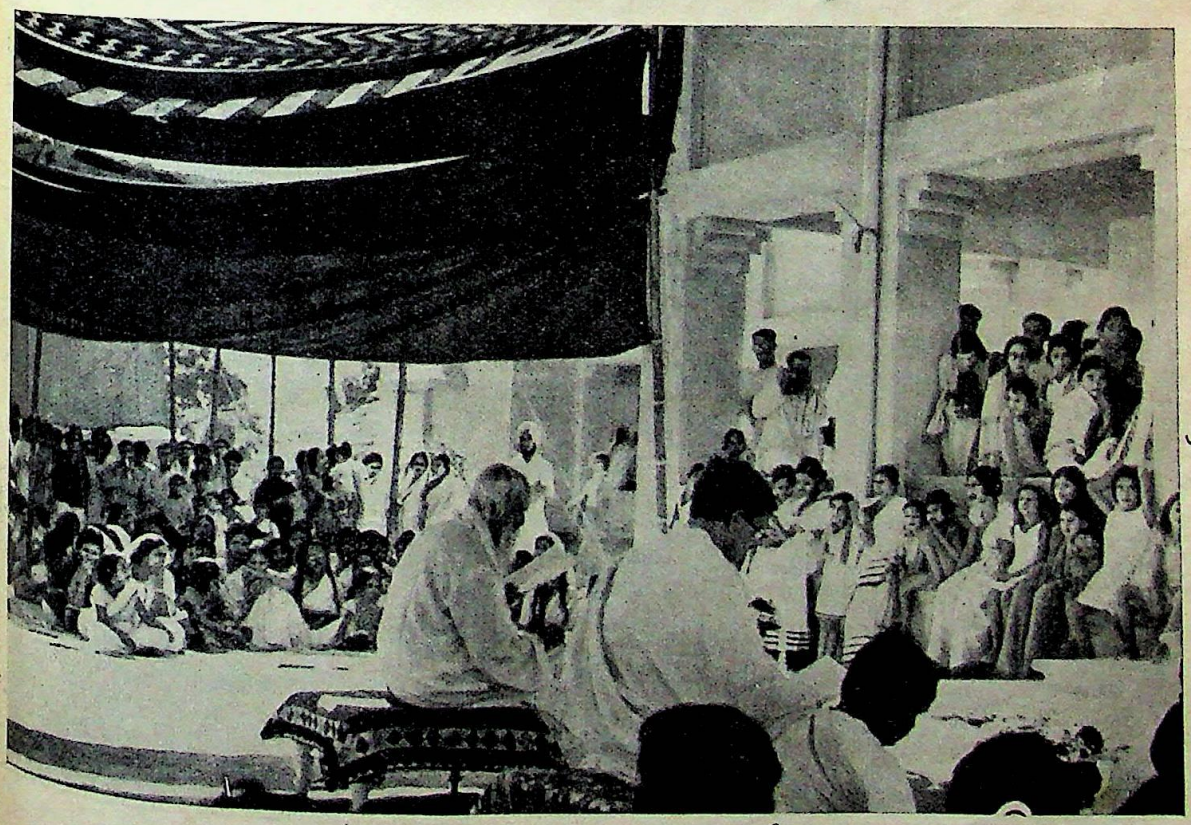

चीनी भवनका उद्घाटन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी भवनके उद्घाटनके समय रवीन्द्रनाथ चीनी राजदूतसे बात कर रहे हैं

चीनी भवनके उद्घाटनके समयकी पूजाका सामान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या-भवनकी वनशाला

(उदयपुर)

श्री वंशगोपाल झिंगरन, एम० एस-सी०

चतुर्दिकी उन्नतिके इस युगमें शिक्षा-शालाओं और शिक्षा-शास्त्रमें भी शीघ्रतासे परिवर्तन हो रहे हैं। जगह-जगह पुरानी संस्थाओंमें सुधार हो रहे हैं, अथवा नवीन शिक्षाके लिए नई संस्थाएँ खुल रही हैं। और सब क्षेत्रोंकी भाँति इस ओर भी पाश्चात्य देशोंने ही पहले पग बढ़ाया था। हमारा देश तो अब भी शिक्षाके विषयमें उन देशोंकी त्यक्ता रीतिका ही अनुसरण कर रहा है। कहीं-कहीं कोई एक-आध संस्था नवीन सिद्धान्तोंका प्रयोग कर रही है; परन्तु उनकी संख्या अभी तक अंगुलियोंपर ही गिनी जाने योग्य है। ऐसी संस्थाओंमें उदयपुरका 'विद्या-भवन' भी गिना जा सकता है।

हर वर्ष १५ दिनके लिए स्कूल उदयपुरसे हटाकर मेवाड़के किसी रम्य स्थानका होता है। अवसर और स्थितिके उपयुक्त इस पखवारेके लिए विशेष पाठ्यक्रम (Syllaus) बनाया जाता है। कक्षाएँ बाहर खुली जगहमें लगती हैं। अध्यापक और विद्यार्थी पास ही डेरोंमें रहते हैं। इस पाक्षिक स्कूलके लिए 'वनशाला' ही उपयुक्त नाम है। यह प्रयोग यहाँ प्रथम बार सन् १९३२ में किया गया था; पर उसमें इतनी सफलता मिली कि अब उसे हर वर्ष करनेका नियम-सा हो गया है। इस बार मुझे भी इसमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

यह वनशाला इस वर्ष उदयपुरसे ५० मील दूर मेवाड़के सुप्रसिद्ध दुर्ग कुम्भलगढ़में फरवरीके दूसरे पक्षमें हुई थी। यह दुर्ग ऐतिहासिक महत्वमें चित्तौरके बाद मेवाड़में द्वितीय स्थान रखता है और नैसर्गिक सुन्दरतामें प्रथम। वनशाला स्काउट कैम्प नहीं है, प्रत्युत पाठशालाका एक विशेष अधिवेशन है, जिसमें स्कूल अपने निश्चित स्थानमें न होकर बाहर होता है, और जिसमें कक्षाओंके स्थानमें बालकोंको उनके मानसिक विकास और अवस्थाके विचारसे श्रेणियोंमें विभाजित करते हैं, ताकि वे इस नैसर्गिक प्रवाससे पूरी शिक्षा प्राप्त कर सकें और वर्गोंकी अप्राकृतिक दीवार उनके पारस्परिक सहवास तथा आदान-प्रदानमें बाधक न हो।

कुम्भलगढ़ कौआ-उड़ानकी नापसे उदयपुरसे केवल ५० मील दूर है; परन्तु यह ५० मील सीधा जाना बड़ा कठिन है। मार्गमें भयंकर जन्तुओंसे भरे हुए वन और पर्वत उसे दुर्गम बना देते हैं। दुर्गका निकटतम स्टेशन गड़बोड़ रोड मावली-मारवाड़ जंकशन लाइनपर स्थित है। यहाँसे १५ मील दूर चारभुजा विष्णुका प्रसिद्ध मन्दिर है। इस स्थान तक लारी जाती है। यहाँसे केलवाड़ा तक पैदल अथवा ऊँट या घोड़े द्वारा ही जाना हो सकता है। केलवाड़ा मेवाड़के इस प्रान्तका प्रधान नगर है। यहींसे कुम्भलगढ़ दुर्गकी चढ़ाई शुरू होती है। यह कठिन मार्ग भी पाँच कोसका है। मार्गकी कठिनाइयोंका विचार करते हुए तथा अनुभव और मानसिक विकासका ध्यान रखते हुए सारा स्कूल पाँच श्रेणियोंमें बाँटा गया था। उनको निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचनेके लिए भिन्न-भिन्न मार्ग निश्चित किये गये थे। सबसे बड़े लड़कोंकी श्रेणीको पैदल ही दुर्ग तक पहुँचना था। उससे छोटी श्रेणीको सारा मार्ग साइकिलपर चलना था। तीसरीको कांकरौली तक रेलमें और फिर बाकी मार्ग पैदल तै करना था। चौथी श्रेणी गड़बोड़ रोड तक रेलमें और वहाँसे पैदल गई। पाँचवीं अथवा अन्तिम श्रेणी गड़बोड़ रोड तक रेलमें, चारभुजा तक लारीमें और वहाँसे दुर्ग तक पैदल गई। इस श्रेणीमें पाँच वर्ष तकके बालक भी सम्मिलित थे।

प्रत्येक श्रेणीके साथ दो-तीन अध्यापक थे। अध्यापकोंमें मास्टरपनकी बूकी जगह प्रेम और समताका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

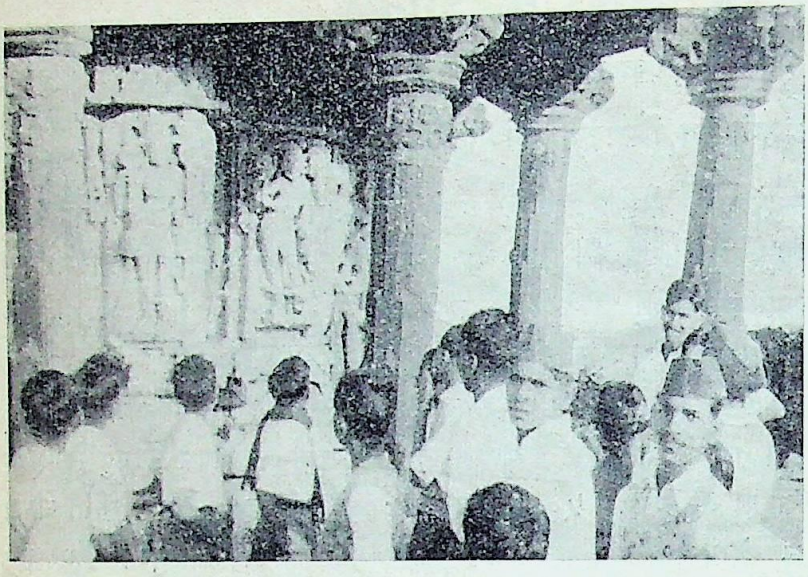

बालक एक पुराने मन्दिरकी कारीगरी देख रहे हैं

भाव था। वे बालकोंके ताड़क और उपदेशक न होकर सहयोगी और शिक्षक थे। यही कारण था कि कष्टमय मार्ग होनेपर भी बालकोंके मुखपर उल्लास, हृदयमें उमंग और मनमें जिज्ञासा थी। मार्गमें बालकोंको प्रकृति-निरीक्षणका पूरा सुयोग था, और था सुअवसर ग्रामोंमें जाकर ग्रामीणोंके संसर्गमें आनेका। अवस्थाके अनुसार श्रेणी-मास्टर उन्हें रास्तेमें मिलनेवाली चीज़ोंका ज्ञान कराते जाते थे—छोटे बच्चोंको मनोहर कहानियों द्वारा, बड़े बालकोंको उनकी उपयोगिता और इतिहास द्वारा, सबसे बड़े बालकोंको वैज्ञानिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणसे। इस प्रकार बालकोंको हल्दी घाटी देखकर सैन्य परिचालनकी वास्तविक कठिनाइयोंका; जैन एवं वैष्णव मन्दिर देखकर प्राचीन वास्तुकलाका; खेतोंको देखकर भिन्न-भिन्न प्रकारकी सिंचाई और कृषकके परिश्रमका; रुईके पेंच (Press) को देखकर आधुनिक मेशीनों और ग़रीब मज़दूरोंके रक्त शोषणका ज्ञान कराया गया। जिन-जिन बातोंको वे केवल पुस्तकोंमें ही पढ़ते थे, अथवा चित्रों द्वारा देखते थे, उन्हें वास्तविक रूपमें देखनेका उन्हें अवसर मिला। सजीव जीवनके लिए ऐसी ही शिक्षा आवश्यक है।

मेरे साथ मेरी स्त्री और एक वर्षका बच्चा भी था, इसलिए हम लोगोंको सबसे छोटे बालकोंवाली श्रेणीका संग मिला। इसका नाम था 'कच्चा-बच्चा' श्रेणी। विद्या-भवनके स्टाफकी एक अंगरेज़ महिला इस श्रेणीकी नायक थी। मार्ग-भर बच्चे बड़े प्रसन्न रहे। उन्होंने रास्तेमें पड़े अभ्रकके टुकड़ोंका, ग्योरे (सोप स्टोन)का और तरह तरहकी चट्टानोंका बड़े ध्यानसे निरीक्षण किया। नमूनेके टुकड़े अपने साथ ले लिये। चिड़ियाका एक घोंसला मिल गया, उसे भी उन्होंने अपने साथ अपने म्यूज़ियम (अजायबघर) के लिए रख लिया। पड़ावोंपर उन्हें तरह-तरहकी कहानियाँ सुनाई जाती थीं, जिन्हें वे बड़ी लगन और उत्सुकतासे सुनते थे। चलनेके लिए वे सदा तत्पर रहते थे। चारभुजाके मन्दिरका इतिहास उन्हें सुनाया गया और वहाँकी नई बनती हुई धर्मशाला दिखाई गई। ग्रामोंकी पाठशालाओंमें भी वे गये।

सब श्रेणियोंका एक प्रकारसे केलवाड़ेमें मिलन हुआ। वहाँका आतिथ्य स्थानीय नाज़िम साहबने किया। बालक उत्साहसे फूटे पड़ते थे। थकावटका पता ही न चलता था। मार्चिंग-गान गाते हुए थोड़े-थोड़े समयके अन्तरपर श्रेणियोंका एक-एककर आना-जाना बड़ा सुन्दर लगता था। सब श्रेणियाँ १८ फरवरीकी शाम तक कुम्भलगढ़ पहुँच गईं। यहाँ उनके लिए अलग-अलग पड़ाव थे। छोटी दो श्रेणियाँ नीचे यज्ञमण्डपमें और उसके पासके भवनमें ठहरीं और बड़ी तीन श्रेणियाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उनसे दो मंज़िल ऊपर। हम लोगोंका एक टेन्ट अलग था। हरएक श्रेणी एक प्रकारसे स्वतन्त्र ईकाई (यूनिट) थी। सारा प्रबन्ध श्रेणी-नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-अपने श्रेणी-मास्टरकी सहायतासे करते थे। श्रेणियोंके अतिरिक्त जूनियर स्कूल (४ थी और ५ वीं श्रेणी) और सीनियर स्कूल (१ली, २री और ३री श्रेणी)—ये दो विभाग भी किये जा सकते थे। प्रातः और सायं संयुक्त स्कूल एकत्रित होता था।

वहाँके जीवनकी एक झाँकी उनके दैनिक कार्यक्रमसे की जा सकेगी :—

५॥ उठना ; ५॥ से ६। तक नित्यकर्म ;
६।-६॥ निरीक्षण ; ६॥-६॥। तक ड्रिल—जूनियर तथा सीनियर कक्षाओंकी अलग-अलग।
७-७॥ प्रातःकालकी एसेम्बली। इसका आरम्भ ईश्वर-गानसे होता था। तदनन्तर ५-१० मिनट तक किसी एक मनोभावपर भाषण होता था। फिर हेड मास्टर उस दिनका कार्यक्रम बताते थे। जिन-जिन विषयोंपर भाषण दिये गये, उनमें से कुछ ये थे :—

१. मानसिक स्वतन्त्रता (के० एल० श्रीमाली हेडमास्टर)
२. भक्ति और शक्तिका समन्वय (डा० मोहनसिंह मेहता, प्रधान)
३. संगठन और स्वावलम्बन (लेखक)
४. पशुओंसे प्रेम (मिस न्यूमैन)

७॥-८ तक नाश्ता ; ८ से ११॥ तक शिक्षा, स्नान और श्रेणी-कार्य ;
११॥-१२॥ भोजन ; १२॥ से १॥ तक सीनियर श्रेणियोंके मध्याह्नको आराम ; १२॥ से २ तक जूनियर—
१॥ अथवा २ से ४ तक श्रेणी-कार्य ;
४ से ६॥ तक खेल-कूद अथवा पर्यटन (Excursions) ;
६॥ से ७ तक मौन साधन और गायन ;
७-८ तक भोजन ;
८॥-९॥ अथवा १० तक कैम्पफ़ायर अथवा चाँदनी रातके खेल ;
९॥ अथवा १० बजे शयन।

इस प्रकार ५॥ बजे प्रातःकालसे १० बजे रात तक बालकोंको काममें ही लगा रहना पड़ता था। कार्यके साथ-साथ मनोरंजनकी भी प्रचुरता थी। इससे वे थकते न थे, सदा नवीन कार्यके लिए उत्सुक रहते थे। कार्यक्रममें प्रत्येक बालकको उसके इच्छानुसार कार्य करनेके लिए एक घंटा मिलता था। इसमें वे अपनी डायरी लिखते, दुर्गके चित्र खींचते अथवा कैम्पफ़ायरकी तैयारी करते थे।

८ से ९ तक सीनियर श्रेणियोंको प्रतिदिन किसी विषयपर भाषण दिया जाता था। उसपर प्रश्न पूछनेका अवसर भी उन्हें मिलता था। यह भाषण स्कूलके किसी विशेष विषयपर नहीं होते थे, वरन् बालकोंका साधारण ज्ञान (General knowledge) बढ़ानेके निमित्त साधारण विषयोंपर (General topics) होते थे, जिनकी अत्यन्त आवश्यकता है ; परन्तु जिनपर साधारण स्कूलोंमें ध्यान नहीं जाता। कुछ विषय ये थे :—

(१) मेवाड़का राज्य-प्रबन्ध—डा० मोहन सिंह मेहता।
(२) बच्चा कैसे उत्पन्न होता है ?—श्री कालूलाल श्रीमाली।
(३) ग्राम-संगठन—डा० मेहता।
(४) साहित्य और सामाजिक भावना—श्री शान्तिस्वरूप।
(५) विज्ञानपर एक दृष्टि—लेखक।
(६) कुम्भलगढ़का इतिहास और मेवाड़में उसका स्थान—श्रीयुत तिलक।

उनपर दृष्टि डालनेसे पता लग सकता है कि जिन बालकोंको ऐसी शिक्षा मिलेगी, उनके जीवनका दृष्टिकोण क्या होगा और उनका सर्वज्ञान दूसरे बालकोंकी अपेक्षा कितना अधिक और विस्तीर्ण होगा। हमारे यहाँके विद्यार्थियोंका सर्वज्ञान यूरोपीय देशोंके विद्यार्थियोंकी अपेक्षा कितना कम होता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। साथ ही स्कूलके नित्य कार्यक्रममें इन्हें उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

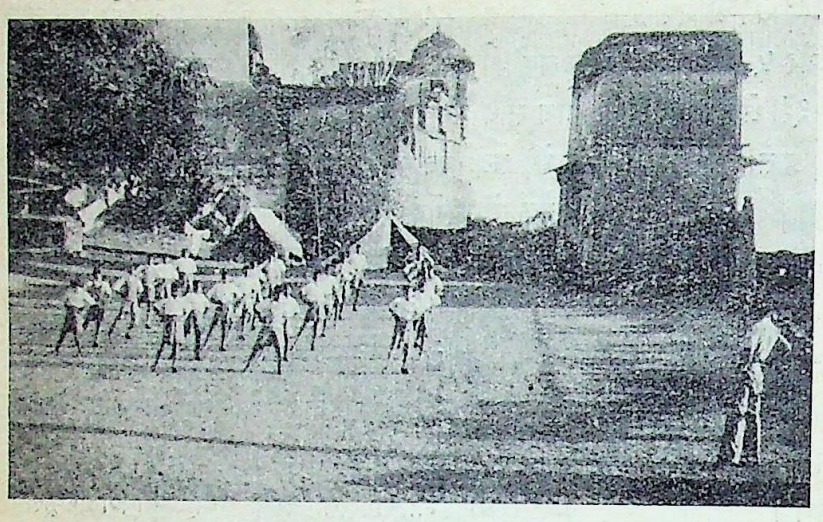

प्रातःकालकी श्रेणी-शिक्षा

स्थान मिलना भी आधुनिक प्रणालीमें सम्भव नहीं है, उसके लिए वनशाला कितनी उपयुक्त है !

इस दैनिक कार्यक्रममें एक विशेष महत्त्वका कार्य है, वह है सायंकालका मौन-साधन। सूर्यास्तकी सुन्दरता—विशेषकर पहाड़पर स्थित ऊँचे दुर्गपर—मनके ऊपर अजीब प्रभाव डालती है। इस सुन्दरताके आनन्दका अनुभव हम अपने काम-काजमें लगे हुए, खेल-कूदमें व्यस्त अथवा अट्टालिकाओंसे घिरे हुए नगरोंमें बैठकर नहीं कर सकते। उस समय शान्त रहकर यदि उसको निहारें, तो अद्भुत शान्ति और सुख मिलता है। साथ ही साथ बालकोंको आत्म-संयमकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। मौन-साधनका कार्य मधुर संगीतसे प्रारम्भ होता था। संगीतके माधुर्यमें लीन होकर पन्द्रह मिनट की पूर्ण शान्ति, पूरी निस्तब्धता, सारे दिनके परिश्रमको दूरकर आत्माको जिस आनन्दमें विभोर कर देती है, उसका अनुभव केवल प्रयोगसे ही किया जा सकता है। मुझपर तो कमसे कम बहुत प्रभाव पड़ा।

कुम्भलगढ़के आसपास प्रकृतिके सुन्दर स्थानोंकी कमी नहीं। साथ-ही-साथ जैनियोंके सुन्दर-सुन्दर मन्दिरोंके खँडहरोंका भी अभाव नहीं। किसी-किसी मन्दिरमें वास्तुकलाके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। कोई-कोई अंश अभी सुरक्षित हैं। इनमें मुख्य पीपलदेवजीका मन्दिर है। एक और मन्दिर भी विशेष रूपसे दर्शनीय है। यह यज्ञमंडपके समीप ही शिवका मन्दिर है। बाहरसे इसकी आकृति किसी ग्रीक मन्दिर-सी लगती है। इसका जीर्णोद्धार भी किया गया है; परन्तु उसमें सुन्दरताकी अपेक्षा कुछ कुरूपता-सी आ गई है। एक समयकी वास्तुकलापर दूसरे समयकी वास्तुकलाका भद्दा पैबन्द लगाया गया है। इन खँडहरों और रमणीय स्थानोंकी सैर समय-समयपर की गई। बालकोंको उनके इतिहास और

कैम्पमें प्रातःकालका व्यायाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तु-ज्ञानका परिचय कराया गया। रास्तेमें जगह-जगहपर बड़े सुन्दर भूगर्भशास्त्र-सम्बन्धी (Geological) और भौगोलिक नमूने (Specimens) मिलते थे, जिनके द्वारा उन जटिल विषयोंकी शिक्षा सरल तथा रोचक बनाई जा सकती है। मार्गमें हल्दीघाटी, आमचमाताका मन्दिर, कुम्भलगढ़की झोंक दर्शनीय स्थान हैं। समीप परशुराम महादेवका मन्दिर है। इसे देखनेके लिए भी दो श्रेणियाँ की गई थीं। मन्दिरका मार्ग दुर्गम, परन्तु सुन्दर है।

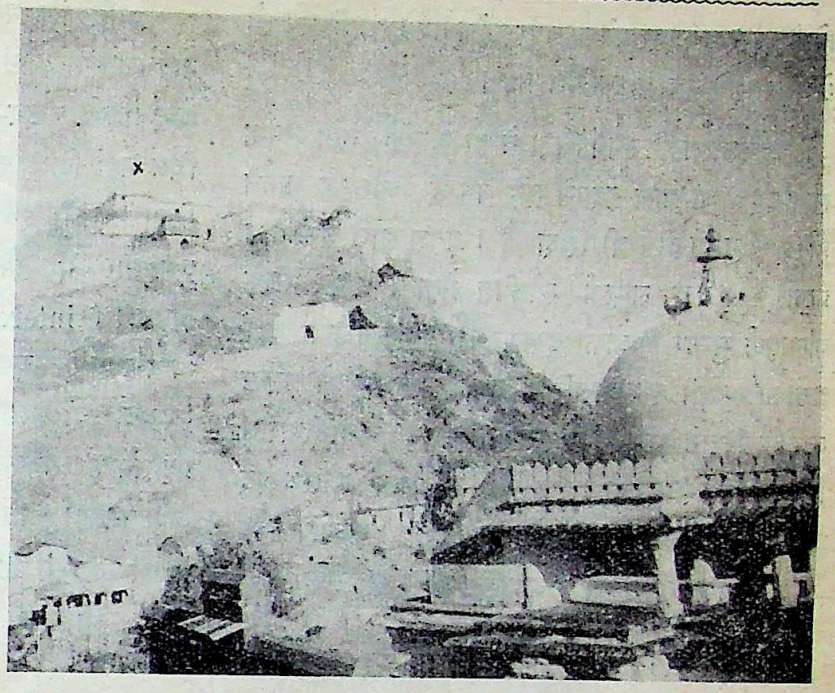

कुम्भलगढ़। पृष्ठभागमें क़िलेके भीतरका राजमहल है × चिह्नित

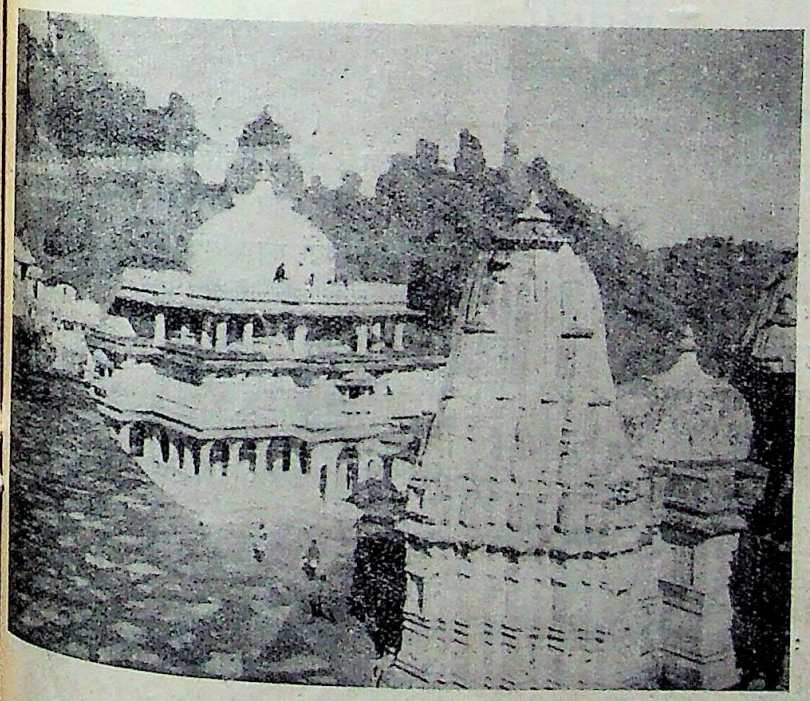

कुम्भलगढ़—मन्दिर और वेदी। यहाँ छोटे बच्चोंका कैम्प था

इस वनशालामें एक विशेषता और थी। किसी प्रकारके द्वेष, जाति और धर्मकी भिन्नताका प्रवेश भी न था। मध्याह्न और सायंकाल दोनों समय १०० विद्यार्थी और अध्यापक सब एक साथ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करते थे। उस समयका दृश्य बड़ा सुन्दर लगता था।

एक दिन कैम्पमें आसपासकी जनताको आमन्त्रितकर बालकोंने स्वरचित छोटे-छोटे कामोंका प्रदर्शन करके उनका मनोरंजन किया। स्कूलके हेडमास्टर श्रीयुत कालूलालजी श्रीमाली और उसके सभापति डा० मोहन सिंह मेहताने वनशालाकी उपयोगितापर वहींकी भाषामें ओजस्वी भाषण भी दिया। मार्गसे लाई हुई शिक्षाप्रद चीज़ोंका तथा श्रेणियोंकी हस्त-लिखित पत्रिकाओं और चित्रोंका प्रदर्शन भी किया गया, जो काफ़ी सुन्दर था। वनशालाका कुम्भलगढ़-प्रवास २५ फरवरीको समाप्त हुआ। यहाँसे श्रेणियाँ गड़बोड़ रोड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हुई २८ फरवरीको उदयपुर पहुँच गई। साइकिलवाली श्रेणी साइकिलपर ही वापस गई।

वनशालाकी उपयोगिता वे ही अच्छी तरह समझ सकते हैं, जो बाल-हृदयसे परिचित हैं और यह जानते हैं कि अनुभव ही सच्ची शिक्षा है। वनशालामें बालकका प्रकृतिसे प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित होता है। वह उसके कलापूर्ण सुन्दर चित्रोंको देखकर खिल उठता है। वहाँ बच्चोंको अपनी अभ्यान्तरिक सुन्दर प्रवृत्तियोंको प्रकट करनेके जितने अवसर मिलते हैं, उतने चहारदीवारीसे घिरे हुए कमरोंमें नहीं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यप्रद वातावरणमें प्रकृतिके बीच बालकों और अध्यापकोंका साथ-साथ रहना उनके पारस्परिक जीवनको सरस तथा उपयोगी बनाता है।

अधिकांश माता-पिता वनशालाकी उपयोगिताको नहीं समझते। उनकी दृष्टिसे तो यदि बालकने गणितके कुछ प्रश्न, पाठ्य-पुस्तकके कुछ पृष्ठ और भूगोलके चित्र नहीं किये, तो उसने समयका अच्छा उपयोग नहीं किया। वे इस बातका विचार नहीं करते कि यदि एक बार भी किसी विषयके प्रति बालकका सच्चा अनुराग (interest) उत्पन्न हो जाय, तो वह कहीं अधिक और अच्छा काम कर सकता है। वनशालाके स्वतन्त्र वातावरणमें बच्चेके अनुराग और उत्पादक प्रवृत्तियोंके विकासके लिए स्कूलोंके बन्द कमरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अवसर मिलते हैं, और इनके द्वारा वे अल्पकालमें भी शिक्षासे अधिक लाभ उठा सकते हैं। और यही है वनशालाओंकी उपयोगिता।

द्वितीया

श्रीयुत अज्ञेय

(१)

मेरे सारे शब्द प्यारके,
किसी दूर विगताके जूठे—
तुम्हें मनाने हाय कहाँसे
ले आऊँ मैं भाव अनूठे?
तुम देती हो अनुकम्पासे,
मैं कृतज्ञ हो लेता हूँ;
तुम रूठीं—मैं मन मसोसकर
कहता, भाग्य हमारे रूठे!

(२)

मैं तुमको संबोधन करके
मीठी-मीठी बातें कहता हूँ;
किन्तु हृदयके भीतर किसकी
तीखी चोट सदा सहता हूँ!
बातें सच्ची हैं, यद्यपि वे
नहीं तुम्हारी हो सकती हैं—
तुमसे झूठ कहूँ कैसे जब
उसके प्रति सच्चा रहता हूँ?

(३)

मेरा क्या है दोष कि जिसको
मैंने जी भरकर प्यार किया था;
प्रात-किरण ज्यों नव-कलिकामें,
जिसको उरमें धार लिया था,
मुझ आतुरको छोड़, अकेली
जाने किस पथ चली गई वह—
एक आगके फेरे करके
जिसपर सब कुछ वार दिया था!

(४)

मेरा क्या है दोष कि मैंने
तुमको बाद किसीके जाना?
अपना जब छिन गया, पराये-
धनका तब गौरव पहचाना?
प्रथम बारका मिलन चिरन्तन,
सोचो, कैसे बन सकता है;
जब इस जगके चौराहेपर
लगा हुआ है आना-जाना?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

होगी यह कामुकता जो मैं
तुमको साथ यहाँ ले आया ;
किसी गताके आसनपर जो
बरबस मैंने तुम्हें बिठाया ।
किन्तु देखता हूँ, मेरे उर
में अब भी वह रिक्त बना है—
निर्बल होकर भी मैं उसकी
स्मृतिसे अलग कहाँ हो पाया ?

(६)

तुम न मुझे कोसो, लज्जासे
मस्तक मेरा झुका हुआ है ;
उरमें वह अपराध व्यक्त है,
शब्दोंमें जो रुका हुआ है ।
आज तुम्हारे सम्मुख जो
उपहार-रूप रखने आया हूँ—
वह मेरा मन-फूल दूसरी
वेदीपर चढ़ चुका हुआ है !

(७)

फिर भी मैं कैसे आया हूँ,
क्योंकर यह तुमको समझाऊँ—
स्वयं किसीका होकर कैसे
मैं तुमको अपना कह पाऊँ ?
पर मन्दिरकी माँग यही है
वेदी रहे न क्षणभर सूनी—
वह यह कब इंगित करता है,
किसकी प्रतिमा यहाँ बिठाऊँ ?

(८)

नहीं अंग खोकर लकड़ीपर
हृदय अपाहिजका थमता है ;
किन्तु उसीपर धीरे-धीरे
पुनः धैर्य उसका जमता है ।
उर उसको धारे है फिर भी
तेरे लिए खुला जाता है—
उतना आतुर प्यार न हो, पर
उतनी ही कोमल ममता है !

(९)

शायद यह भी धोखा ही हो,
तब तुम सच मानोगी इतना—
एक तुम्हींको दे देता हूँ,
उससे बच जाता है जितना ।
और छोड़कर मुझ को वह
निर्मम इतनी अब है संन्यासिनि—
उसको भोग लगाकर भी तो
बच जाता है जाने कितना !

(१०)

प्यार अनादि स्वयं है यद्यपि
हममें अभी - अभी आया है ;
बीच हमारे जाने कितने
मिलन-विग्रहोंकी छाया है—
मति तो उसके साथ गई, पर
यह विचार कर रह जाता हूँ—
वह भी थी विडम्बना विधिकी,
यह भी विधनाकी माया है !

(११)

उस अत्यन्त-गताकी स्मृतिको
फिर दो सूखे फूल चढ़ाकर ;
उस दीपककी अनमिष ज्वाला
आदरसे थोड़ा उकसाकर,
मैं मानो उसकी अनुमतिसे,
उसकी याद हरी करता हूँ—
उससे कही हुई बातें फिर—
फिर तेरे आगे दुहराकर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगुला भगत

श्रीमती होमवती

कितने ही फूल-से बच्चे गँवानेके बाद तब कहीं जीजीने प्रमोदका मुँह देख पाया था। और शायद इसीलिए उनके परिवारमें वह एक विशेष स्थान पा गया था। मानो सब उसीका मुख देखकर जीते थे। अधिक लाड़-प्यार होनेपर भी प्रमोद बिगड़ा हुआ लड़का न था। चतुर, मिलनसार और उदार हृदयवाला प्रमोद घरवालोंके अतिरिक्त बाहरवालोंका भी दुलारा बन गया था।

यह उसका बीसवाँ वर्ष चल रहा था। बी० ए० की परीक्षामें सफल होनेकी पूर्ण आशा भी थी। इसी वर्ष एक कुलीन घरानेकी सुन्दर, स्वस्थ और सुशिक्षित कन्यासे उसकी सगाई भी हो गई। विवाहका केवल एक मास रह गया। यह सब कार्य प्रमोदके बाबा द्वारा हठपूर्वक किये गये आग्रहसे, चलती-फिरती मेशीनकी नाईं, सम्पन्न होने लगा। जीजी तथा जीजाजी आदि किसीमें भी उनकी बात टाल देनेका साहस न था। यदि वह प्रमोदका विवाह अपनी आँखोंसे न देख सके, तो उनका जन्म अधूरा ही रह जायगा। प्रमोदके बाबाको ऐसा ही विश्वास हो गया था।

प्रमोद जब गाँवसे मैट्रिक पास करनेके उपरान्त कालेजमें दाखिल होने ही वाला था, तभी मेरा सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया। उस घरसे मैं चारों पल्ले और दोनों हाथ झाड़कर मैके चली आई, शायद सदाके लिए ही। उस समय मेरी आयु बीस वर्षके लगभग रही होगी। प्रमोद था पन्द्रह-सोलह सालका। उनके गाँवमें कालेज न था, इसीसे नानीके पास रहकर वह पढ़ने लगा। और तभी मेरी उसकी इतनी घनिष्ठता बढ़ गई कि मौसीका नाता पीछे ही छूट-सा गया और हम दोनों भाई-बहनकी भाँति ही रहने लगे। उसका नाम मैंने बड़े दुलारसे रख लिया था जुगनू। प्रायः इसी नामसे मैं उसे पुकारा करती हूँ। जुगनूके विवाहमें जानेके लिए मैं स्वयं बहुत उत्सुक थी, फिर जीजी और अम्माका भी तक़ाज़ा कुछ कम न रहता था; परन्तु मनकी बात छिपाकर मैं केवल उन्हें चिढ़ानेके लिए ही कह उठती—"मैं नहीं जाऊँगी किसीके विवाहमें।"

अम्मा कहतीं—"भला, यह कैसे हो सकता है?"

मैं उत्तर देती—"तुम्हीं तो कहती हो कि खेल-तमाशोंसे मनको दूर रखकर भगवानकी भक्तिमें मन लगाना चाहिए। नित्य उपदेश सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गये और मन खेल-तमाशोंसे दूर हो गया।"

यद्यपि यह सब मैं कह तो देती ही थी; किन्तु यह असम्भव था कि मैं जुगनूके विवाहमें न जाऊँ। इस बातको स्वयं जुगनू भी जानता था, क्योंकि एक दिन उसने अपने माथेपर हाथ धराकर मुझसे शपथ ले ली थी कि मैं अवश्य ही उसके विवाहमें जाऊँगी। जुगनूकी दुलहिनको देखनेका चाव मेरे मनमें किसीसे कम थोड़े ही था; किन्तु इस बातको कोई तीसरा व्यक्ति नहीं जानता था और नित्य जाने-आनेके विषयको लेकर घरमें वाद-विवाद हुआ करता। धीरे-धीरे विवाहका दिन निकट ही आ गया। खूब धूमधामसे तैयारियाँ होनी आरम्भ हो गईं।

[२]

उस दिन हमारे यहाँ मढ़ा था। जीजीके बहुतसे कुनबेवाले और नातेदारोंकी दावत थी। मैंने सोचा कि जल्दी-जल्दी स्नान-ध्यानसे अवकाश पा लूँ, आखिर जीजीका हाथ बँटाना ही चाहिए। सिरके बाल अभी गीले ही थे। मैं उन्हें जल्दीसे सुखाकर बाँध लेनेकी इच्छासे ऊपर चली गई। अभी बालोंमें तेल ही लगा पाई थी कि जीजीकी आवाज़ सुन पड़ी—"अखिला! क्या नीचे न उतरेगी? देख तो कितना काम पड़ा हुआ है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुले माथे ही मैं जीनेकी ओर दौड़ी। देखा, ठीक सामने ही चिड़ीतनके गुलाम-जैसी सूरत-शक्लका एक पुरुष खड़ा मेरी ओर बड़ी विचित्र दृष्टिसे देख रहा है। उसका धूसर रंग तो बिलकुल उबले हुए सिंघाड़े-जैसा ही मुझे दीख रहा था। तिसपर नाक थी बिलकुल चपटी। आयु तीस वर्षके ऊपर ही होगी—सम्भव है कि चालीस तक पहुँच गई हो। मैं कुछ डर-सी गई—कुछ तो एक अपरिचित व्यक्तिको इस प्रकार दृढ़तासे सामने खड़ा देखकर और कुछ उसकी दृष्टिसे। यह तो मैं मान ही नहीं सकती थी कि वह कोई घरका सेवक होगा, जो मुझे बुलानेके लिए ही ऊपर भेजा गया हो। कारण, प्रथम तो उसकी हिम्मत एक साधारण नौकरसे बहुत बढ़ी-चढ़ी जान पड़ती थी, दूसरे वेष-भूषा भी असाधारण थी। चूड़ीदार पाजामेपर डिज़ाइनदार कपड़ेकी अचकन तथा मोज़ोंके ऊपर पम्प शू! भला, बेचारे अल्पवेतन सेवकको क्योंकर प्राप्त हो सकते थे।

यहाँ आये मुझे कुल चार ही दिन हुए थे। यहाँके लोगोंसे भलीभाँति परिचित न थी, और इन महाशयको तो आज तक देखा ही न था। यह पूछनेकी भी हिम्मत न हुई कि 'तुम कौन हो? क्या चाहते हो?' जीनेके चौखट तक आ गई; पर रास्ता बन्द था। मेरा मन बल्लियों उछलने लगा। यदि रास्ता दीख पड़ता, तो कदाचित् छज्जेपर से नीचे ही कूद पड़ती। मेरी घबराहट और बेचैनीको देखकर ही शायद वह हँस रहा था। अब मुझे वास्तवमें कुछ क्रोध हो आया। मन-ही-मन अपनेको धिक्कारा भी—'क्या इसी साहस और वीरतापर हम भारतकी देवियाँ अपने आदर्शकी दुहाई दे डालती हैं? क्या इसी शक्तिपर हम स्वतन्त्रताकी इच्छुक हैं?' और फिर बिना किसी सिलसिलेके कह उठी—"तुम कौन हो जी? इस प्रकार हँसते क्यों हो? मैं यहाँ अकेली हूँ, और तुम वैसे ही चले आये।"

वह और भी हँसकर बोला—"आप ही को बुलाने आया था; पर यहाँ आते ही भूल गया। आपको भाभी बुला रही हैं।"

इतना कहकर वह नीचे उतर गया। मेरा मन हवामें उड़े पत्तेकी तरह विचारोंकी आँधीमें डाँवाडोल हो उठा। मैं कितनी मूर्खा हूँ? किसी भले आदमीके विषयमें इतनी जल्दी ग़लत धारणा बना लेना क्या उचित है? यह तो कोई उतने ग़ैर भी नहीं। जीजीको अपनी भाभी ही तो बतलाते हैं। यह सब सोचा और भी कुछ सोचना चाहा; पर मन शान्त न हुआ। कुछ भी निश्चय न कर सकी कि इस नवीन व्यक्तिके विषयमें मैं कौन-सा विचार दृढ़ बनाऊँ? और न यही कि उसके विषयको ही मनसे दूर कर दूँ। उस व्यक्तिकी विषैली दृष्टि मुझे उसके प्रति घृणाके भाव मनमें लानेके लिए बाध्य कर रही थी। नीचे आते ही सबसे पहला प्रश्न मैंने जीजीसे यही किया—"यह कौन था, मुझे बुलानेके लिए जिसे तुमने ऊपर भेज दिया था? मैं तो आप ही आ रही थी।"

वे बोलीं—"वह मेरे देवर हैं, अखिला! बेचारे बड़े सज्जन हैं। जबसे घरवाली मरी है, संसारसे ही नाता तोड़ लिया। दूसरा विवाह तक नहीं किया। अपना अधिक समय पूजा-पाठ तथा गंगा-स्नानमें ही बिताते हैं। चार दिनसे बड़ी दीदीको लेने बाँदा गये थे। आज ही तो अभी-अभी लौटे हैं। आजकलके ज़मानेमें ऐसा भजन-पूजन किससे बनता है? अभी वैसी उमर ही क्या है; पर रात-दिन गीता-रामायण पढ़ा करते हैं। मैं तुम्हें आवाज़ दे रही थी, तभी पूछने लगे—'क्या अखिलेश्वरी आ गई? मैं बुलाये लाता हूँ।' कहकर ऊपर चले गये थे।"

जीजी यह सब कहती गईं, और मैं चुपचाप सुनती रही; किन्तु मेरे मनको तनिक भी सन्तोष न हुआ। जीजीके देवर मोहन बाबूके विषयमें बहुत-कुछ सुन रखा था। अब उन्हें भलीभाँति देखनेका अवसर मिला था; किन्तु चेष्टा करनेपर भी मेरा मन जीजीके विचारोंके अनुकूल न बन सका। इस विषयको लेकर तर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेकी तनिक भी इच्छा न थी। अस्तु, आँगनमें पड़ी हुई ढेर-सी सब्ज़ीको चुपचाप सँवारने लगी। मन-ही-मन यह भी सोचती जाती थी—'गीता और रामायणको खाली पढ़ने-भरसे ही कोई आत्मज्ञानी कदापि नहीं हो सकता।'

[३]

निरन्तर बुद्धिसे तर्क करते-करते हमारा मन कभी-कभी अनावश्यक और बिलकुल निठल्ली बातोंकी ओर हमें अनायास ही खींचकर ले जाता है और बिना सिर-पैरकी उलझनमें डाल देता है। जैसे-जैसे मोहन बाबूका बढ़ता हुआ आदर-सत्कार मैंने इस घरमें देखा, वैसे-वैसे मेरी इच्छा उनके विषयमें अधिक जाननेकी हो उठी। मैंने देखा कि घरका प्रत्येक प्राणी उनकी इच्छापर बिका हुआ है। जहाँ वे पैर रखते हैं, वहाँ सब सर रखनेको तैयार रहते हैं। छोटेसे लगाकर बड़ों तकके लिए उनकी आज्ञाका नम्बर शायद ईश्वरकी आज्ञासे दूसरा ही है। वास्तवमें मोहन बाबूका अपना व्यवहार भी प्रत्येक प्राणीके साथ अनोखा ही है। बच्चोंसे लेकर बूढ़ों तक तथा वृद्धाओंसे लेकर युवतियों तकको उनकी बातोंमें रुचि है। यदि किसीके अंगमें सुई गड़नेकी पीड़ा मोहन बाबूके फावड़ा लगनेपर कम हो सकती हो, तो वे उसके लिए भी सहर्ष तैयार रहते थे। घर और मोहल्लेवालोंकी तो बात ही क्या, नाई-धोबीसे लगाकर घरकी पनिहारिन तकका दुखड़ा दूर करनेकी सामर्थ उनमें है। तन मन-धनसे परोपकार करनेमें वे सदा संलग्न रहते जान पड़ते हैं। घर-मोहल्लेके छोटे-छोटे बच्चे ठाकुरजीका भोग-प्रसाद पानेकी लालचसे उन्हें शहदकी मक्खियोंकी भाँति घेरे रहते हैं।

मैंने देखा कि जुगनू भी उनका यथेष्ट आदर करता है। शायद इन्हीं सब कारणोंसे हृदयमें निरन्तर उठते द्वन्द्वों तथा विरोधी विचारोंको दबानेका यत्न करते हुए मैंने भी उनके प्रति श्रद्धाके भाव जाग्रत करनेका यत्न किया। अपनेको बहुत-कुछ धिक्कारा भी कि किसीके विषयमें बुरे भाव मनमें लाना अपनेको ही गिरा देना है। बिना सोचे-समझे किसी भले आदमीके चरित्रपर टीका-टिप्पणी करना उचित नहीं।

अब मैं मोहन बाबूको सामने देखकर भागती न थी। जीजीके कहनेपर अब उनके लिए पान लगा देनेमें भी मुझे वैसा संकोच न था। प्रायः उनके लिए बादामका निशास्ता बनानेमें भी जीजीकी मदद कर देती थी। मैं यह जानती थी कि मोहन बाबू भी अनावश्यक रूपसे मुझसे बातचीत करनेमें अधिक भाग लेते थे। 'तुम्हारे शहरमें पक्की सड़कें अब अधिक बन गई हैं, बिजली और पानीका भी ख़ूब आराम है, तुम्हारा रहन-सहन और सफ़ाई मुझे बहुत पसन्द है,' इत्यादि बातोंपर वे सदा मुझे बोलानेकी चेष्टा किया करते। यह सब-कुछ था; परन्तु मुझे कभी उनकी ओर देखनेका साहस नहीं हुआ—यत्न करनेपर भी मैं उनकी दृष्टिसे अपनी दृष्टि न मिला सकी। दिनके उपरान्त रात्रिको सब कार्योंसे अवकाश पाकर जब मैं सोनेके लिए जाती, तो चारपाईपर पड़ते ही मेरे विचारोंमें बाढ़-सी आ जाती और मेरे विचारोंका केन्द्र जीजीके देवर मोहन बाबू ही बन जाते। उनकी सन्तानके नाम केवल एक लड़की थी, जो अपने घरबारकी हो चुकी थी और दो बच्चोंकी मा थी। मैं बिना किसी कारणके अपनी आयुका अन्दाज़ा उस लड़कीसे लगाने लगती। कभी उनके हाव-भाव और चाल-ढालपर मन-ही-मन सोचकर विरक्त हो उठती। साथ ही अपने मनमें उन्हें बहुत अच्छा और सज्जन स्वभावका व्यक्ति माननेका यत्न करती भी, तो सफल न हो पाती। दिन-भरके सहेजे हुए भाव रात्रिकी नीरवतामें यों ही बिखर जाते। मैं यह जानती थी कि चाहे कोई कैसा भी क्यों न हो, मुझे उससे क्या? आख़िर सदा तो यहाँ रहना है नहीं। कहाँ यह लोग और कहाँ मैं? परन्तु बचपनकी खोजपूर्ण आदतसे मैं हार गई। न-जाने क्यों मुझे ऐसा जान पड़ता था कि यह सब ढोंग है। मोहन बाबू चाहे जो कुछ हों;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मुझे वे न तो हृदयके उतने साफ दीखते थे और न वैसे कुछ चतुर ही जान पड़ते थे। साथ ही जिनपर उन्होंने अपना सिक्का जमा रखा था, उन सभीकी बुद्धिपर मुझे दया-सी आती थी—विशेषकर जुगनूपर मुझे अधिक आश्चर्य था। उसे तो मैं बड़ा बुद्धिमान समझती थी।

किन्तु यह सब बातें रात्रिके समयकी हैं। दिन निकलते ही फिर मुझे मोहन बाबूके विषयको भुलानेका यत्न करते हुए उनके तथा जीजी इत्यादिके अनुकूल ही अपनेको बनानेका यत्न करना पड़ता था। धीरे-धीरे पन्द्रह दिन यहाँ आये हुए हो गये थे। शादीकी धूमधाम कम हो चली थी। कुछ मेहमान जा चुके थे, कुछ जानेको बाकी थे। अब एक दूसरेके सम्पर्कमें आनेका काफी अवसर मिलता था। जुगनूकी चन्दा-सी दुलहिन मुझे बहुत भाई थी और मेरा अधिकांश समय उसीके निकट व्यतीत होता था। अगले रविवारको मैं और जुगनू बनारस लौटनेको थे।

[४]

तीसरे पहरका सुहावना समय था। वर्षाऋतु न होनेपर भी बादलोंके दो-चार हलके टुकड़ोंने न-जाने किधरसे आकर आकाशको घेर-सा लिया। ठंडी हवाके शान्त झोंके घरकी चहारदीवारीसे बाहर खींच रहे थे। मैं सीनेकी मेशीन और सामने पड़े हुए ढेर-के-ढेर कपड़ोंको एक ओर सरकाकर पीछेवाले लानमें आकर बैठ गई। ठीक उसी अमरूदके पेड़के नीचे, जिसपर बैठे बहुतसे तोते कुछ कच्चे और कुछ अधपके फलोंको बड़ी लापरवाहीसे कुतर-कुतरकर नीचे गिरा रहे थे। मुझसे यह देखा न गया। फलोंकी रक्षाके विचारसे मैंने ज़मीनपर पड़े अमरूदोंके दो-चार टुकड़े उठाकर पेड़पर बैठे तोतोंके झुंडपर फेंक मारे। सबके सब एक साथ फुर्रसे उड़ गये। मुझे यह देखकर कुछ हँसी-सी आ गई। इसी समय पीछेकी ओरसे मोहन बाबूका स्वर सुनकर मेरा हृदय ठीक उसी प्रकार वेगसे धड़क उठा, जैसा एक बार छतपर उन्हें अकेलेमें देखकर धड़कने लगा था; परन्तु मैं उतनी विचलित न हुई, जैसी उस दिन। वे बोले—"क्यों बेचारोंको निराश करती हो? ये फल और किस काम आयेंगे?"

मैंने कहा—"क्या ख़ूब? ये फल जब पक जायँगे, तब न-जाने कितने स्वादिष्ट रूपमें भगवानकी उदारता और कारीगरीका परिचय देंगे, तब न-जाने कितनोंको तृप्त करेंगे। अभी इन्हें बर्बाद कर देनेसे क्या लाभ?"

इतना सब कहकर मैं वहाँसे भागनेका विचार कर रही थी कि मोहन बाबू मेरा रास्ता रोककर बोले—"भागो नहीं, अखिला! मैं कोई शेर या भेड़िया तो हूँ नहीं कि तुम्हें साबित ही निकल जाऊँगा। अरे, सुनो तो, चार दिन बाद तो चली ही जाओगी—केवल अपनी स्मृति छोड़कर।"

मैं हतबुद्धि-सी खड़ी-खड़ी सब सुनती रही। कभी इधर-उधर देख लेती थी। मनकी विचित्र दशा थी। मोहन बाबूकी ओर देखनेकी हिम्मत मुझमें न थी। दूसरी ओर मुँह किये ही मैंने कहा—"मनुष्यको जीता ही निगलनेवाले मनुष्य नहीं कहला सकते, और आपको तो आज तक मैं मनुष्य ही मानती आ रही थी।"

वे बोले—"दया-भाव दिखलाना तो प्रत्येक प्राणीका कर्तव्य है। मैंने अपनी गृहिणीके साथ ही साथ अपने संसारको मिटा डाला—यह सभी जानते हैं; परन्तु न-जाने क्यों तुम्हारी भोली-भाली आकृतिने मुझे प्रथम बार ही पागल-सा बना दिया, अखिला! तुम दयामयी हो, थोड़ी दया दिखलाओ। परस्पर प्रेम-भाव रखना प्रत्येक प्राणीका पहला कर्तव्य है। मैं यह तो नहीं बतला सकता कि तुमसे कितना प्रेम हो गया है। तुम भी हमसे प्रेम कर सकती हो, यह मैंने ख़ूब सोच लिया है। प्रेम करनेका अधिकार सभीको है।"

मोहन बाबूकी अन्तिम बात सुनते-न-सुनते मेरे सरमें चक्कर-सा आने लगा। पृथिवी और आकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँपता-सा जान पड़ने लगा। इच्छा हुई कि इनकी ज़बान काट डालनेकी शक्ति यदि मुझमें होती। मन ही मन ईश्वरको स्मरण किया। हृदयमें कुछ बल-सा जान पड़ा। इस बार मैंने मोहन बाबूकी ओर साहस करके देखनेका प्रयत्न करते हुए उन सब बातोंका उत्तर दृढ़तासे देनेके विचारसे जैसे ही दृष्टि उठाई कि बेहोश होकर गिर पड़ी। फिर वही दृष्टि—फिर वही विषैली चितवन, जिसे लाख यत्न करनेपर भी मैं आज तक भूली न थी! जब कुछ होश हुआ, तो मैंने अपनेको पलंगपर पड़े हुए पाया। जीजी कुछ दवा-सी हाथमें लिये हुए थीं, मोहन बाबू पंखा झल रहे थे और जुगनू मेरे माथेपर यू-डी-कलोनके जलमें तर किया हुआ कपड़ा रख रहा था। साथ ही कहता जाता था—"काकाजी! अम्मा! जाइये, आप लोग भोजन कीजिए। अखिला मौसीको कुछ हुआ नहीं, वे अभी ठीक हुई जाती हैं।"

मुझे पूरा होश आ चुका था। सब सुना, समझा भी और सब-कुछ याद भी हो आया। अब दोबारा आँखें खोलनेकी हिम्मत न हुई और न कुछ बोलनेका ही साहस हुआ। थोड़ी देर बाद प्रमोदने मुझे झकझोरकर कहा—"मौसी, आँखें खोलो; लो, दवा पी डालो। हमारी जीजी रानी है।"

इस बार देखा, वहाँ तीसरा कोई न था। अवसर पाकर आँसुओंका बाँध टूट पड़ा, हृदयकी समस्त ग्लानि आँखोंकी राह बह निकली। न-जाने कितनी रोई। फिर जुगनूसे कहा कि वह आज ही मुझे मेरे घर पहुँचा दे। इसपर तैयार होकर वह हठपूर्वक सौगन्ध दिलाकर मुझसे सारी बातें जाननेकी चेष्टा करने लगा। जब मैंने शुरूसे आख़िर तक उसे सब-कुछ बता दिया, तब वह बोला—"मैं भी अखिला जीजी, कुछ-कुछ समझनेकी कोशिश कर रहा था; परन्तु तुम तो बड़ी डरपोक हो। ऐसा मन रखकर दुनियाका सामना कैसे कर सकोगी जीजी?"

और फिर उसकी बताई हुई युक्तिपर मुझे अनायास ही हँसी आ गई।

[५]

मेरा मन आज ख़ूब स्वस्थ था। हृदयमें अपूर्व शक्ति जान पड़ती थी, मानो रात-भरमें आज तककी सारी थकावट दूर हो गई हो। आज सचमुच ही संसार मुझे केवल हँसी और मनोरंजनका क्रीड़ास्थल-सा ही दीख रहा था। जीजीने मुझे चौकेमें बुलाकर थोड़ा बादामका निशास्ता पिलाया और बाकी बचा हुआ निशास्ता एक कटोरेमें भरकर कहा—"ले, यह अपने छोटे जीजाजीको दे आ।"

निशास्ता लेकर मैं हँसती हुई मोहन बाबूकी पूजाकी कोठरीकी ओर चली, जहाँ वे अब भी ध्यानावस्थामें भगवानकी प्रतिमाके सामने आसन जमाये बैठे थे। आज मुझे अपने विचारोंकी पूर्ण रूपसे पुष्टि करनी थी और परीक्षा भी। क्षण-भर खड़े रहकर जैसे ही मैंने उनके सामने कटोरा रखा कि उनका ध्यान भंग हुआ। एक बार उन्होंने मेरी ओर देखा। मैं तब भी हँसनेकी ही चेष्टा कर रही थी। उन्होंने झपटकर मेरा हाथ पकड़ना चाहा। शायद वे भी भगवानकी उस प्रतिमाके सामने अपनी परीक्षा दे रहे थे, जो अपनी मन्द मुसकानसे उनका उपहास-सा करती जान पड़ती थी।

मैंने हाथ खींच लिया; पर डरी बिलकुल नहीं। मुझे अपने ऊपर आश्चर्य था। मोहन बाबूने मुझे बैठाना चाहा। मैंने कहा—"ठहरो, जीजी अभी इधर ही आ रही हैं। मैं ऊपर जाकर लेटती हूँ। सरमें कुछ दर्द है। तुम वहीं आना, तभी बातें होंगी।"

इतना कहकर मैं जुगनूके पास उसके पढ़नेवाले कमरेमें जा बैठी। प्रायः आध घंटेके बाद छतपर किसीके पैरोंकी आहट जान पड़ी। मैं और प्रमोद दोनों चुपके-चुपके सीढ़ियाँ चढ़कर ज़ीनेकी चौखटपरसे देखते रहे। मोहन बाबूने बहुत आहिस्ता-आहिस्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे चौबारेमें प्रवेश किया। फिर पलँगके पास जाकर रज़ाई उठाई, जो इस ढंगसे फैलाई गई थी, मानो कोई सचमुच सो रहा है। इसके बाद रज़ाई अलग फेंककर काग़ज़का वह बड़ा टुकड़ा उठाकर पढ़ना आरम्भ किया, जो मेरे बिस्तरपर रज़ाई ओढ़े सो रहा था और जिसपर लाल रोशनाईसे बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा था—'एप्रिल फूल !'

इसी समय प्रमोद खिलखिलाकर हँस पड़ा और मुझे घसीटता हुआ मोहन बाबूके सामने ले ही गया। उस समय मोहन बाबूकी जो दशा थी, वह देखने ही से सम्बन्ध रखती थी। उन्होंने मेरे और प्रमोदके पैर पकड़ लिये। सचमुच उस समय मुझे उनके ऊपर दया हो आई। मैंने उनकी इस शक्लकी तो कभी कल्पना भी नहीं की थी। प्रमोद अब भी ख़ूब हँस रहा था। मोहन बाबूको उठाते हुए मैंने कहा—"ऐसी भूल अब कभी न करना।"

"क्षमा...."

मैंने कहा—"हाँ, जाओ क्षमा कर दिया।"

हल्ला-गुल्ला सुनकर जीजी भी ऊपर आ गईं। उन्होंने आते ही कहा—"यह सब क्या हो रहा है, प्रमोद ? अखिला, चुप क्यों हो ? कैसा शोर-गुल मचा रखा है ?"

फिर मोहन बाबूके उतरे हुए चेहरेकी ओर वे ध्यानसे देखने लगीं। मैंने तो कुछ कहा नहीं ; पर प्रमोद चुप रहनेवाला लड़का थोड़े ही था। बोला, "अम्मा ! आज अप्रेलकी पहली तारीख़ है न ? सो अखिला मौसीने काकाजीको ख़ूब बेवकूफ़ बनाया।"

पर जीजी अब भी मोहन बाबूको ही आश्चर्यसे देख रही थीं !

विमर्श

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

जब रहा नहीं मनमें विकार ;
तब कैसे सीमित करूँ प्यार।
इस शून्य मौन नीलाम्बरमें तारावलिका सहास नर्तन,
हँस-हँसकर कुटिल कलाधरका स्वच्छन्द चतुर्दिक आवर्तन,
—कह गया आज, मुझको पुकार—
न कभी सीमित रह सका प्यार।१

हिमशैल-शिलाओंसे लड़कर निर्झर जो गाता है कल-कल ;
वह प्रियके उरमें उमड़-घुमड़ बन जाता क्षण-भंगुर दृग-जल।
जब रुदन शान्तिकर है अपार ;
तब कैसे सीमित रहे प्यार ?२

प्रति सन्धि-कालमें रजनीका रवि चुम्बन लेता दुर्निवार,
तब प्रेम-रूप यह मनुज क्यों न, हँस-हँसकर रो ले दिवस चार ?
क्यों साध शेष रक्खे उधार ?
कैसे सीमित कर सके प्यार ?३

जब पल्लव-पुष्पोंसे मिलकर हँस-खेल लिया करता मधुकर,
रति-पतिका वासन्तिक दोलन उद्वेलित कर जाता अन्तर,
पल-पल बन जाता कल्प चार ;
तब कैसे सीमित करूँ प्यार ?४

जब मेरी इस अमराईका पीतवर्ण हो रहा आम्रवन ;
शुक-समूहको देख-देख तब, क्या करने बैठूँ अनुशोचन ?
ऐसा अवसर क्या बार-बार ?
कैसे सीमित कर सकूँ प्यार ?५

चिर युगके पश्चात् स्वप्नवत् आज कोकिलाका यह कूजन ;
मेरे इस विशुष्क जीवनमें घोल रहा विसर्ग-सम्मोहन।
तू गाये जा री पुनर्वार ;
कैसे सीमित कर सकूँ प्यार ?६

अर्चना, भक्ति, अनुरक्ति-मध्य, कुछ थोड़ा-सा ही तो अन्तर,
जिसको कहते उत्सर्ग, वही तो प्यार हमारा अविनश्वर ;
तब 'मेरा-तेरा' क्या विचार ?
कैसे सीमित कर सकूँ प्यार ?७

जब जीवनसे भी पूर्ण न हो, जीवनकी तृष्णा नवल-नवल ;
तब क्यों न अजीवन ही पाकर मैं निजको कर जाऊँ अविकल।
बस, तब सीमित हो सके प्यार ;
कैसे सीमित कर सकूँ प्यार ?८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकलचर

श्री हरिहरप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०

डाक्टर श्रीधर नेहरू, एल-एल० डी०, आई० सी० एस०, भारतके उन विज्ञानवेत्ताओंमें से हैं, जिन्होंने कुदरती बिजलीका वनस्पतियों, पशुओं और मनुष्योंपर प्रयोग करके आज सारे संसारको दिखला दिया है कि प्रकृति जिस डालमें चार फल लगाती थी, उसमें बिजलीसे आप सोलह फल पैदा कर सकते हैं—वह भी अपने इच्छानुसार जल्दी या देरमें। जिस पशुकी मूक वेदनाको अब तक लाइलाज समझकर विधाताकी इच्छापर छोड़ देते थे, उसे थोड़े ही प्रयत्नसे भला-चंगा कर सकते हैं। यही नहीं, वरन् दूध देनेवाले जानवरोंका दूध भी बढ़ा सकते हैं, मनुष्योंकी जीवन-परिधि भी बढ़ सकती है, उनकी तरहतरहकी बीमारियोंको—जैसे नींदका न आना, पाचनशक्तिका कमज़ोर होना, लकवा, दर्द व पागलपन आदि—आप थोड़े ही समयमें, बिना ज्यादा पैसा खर्च किये, एक सीधे-सादे इलाजसे आराम कर सकते हैं।

संसारके सभी उन्नत देशोंमें आज लगभग २०० केन्द्र डाक्टर नेहरूके बताये हुए तरीकोंपर काम कर रहे हैं; पर अभाग्यवश हमारे ही देशवासी और विशेषकर हिन्दी-भाषा-भाषी उनसे अपरिचित हो हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं; एक तो डाक्टर नेहरू अपना विज्ञापन नहीं चाहते, दूसरे उनके पास अमेरिका इंग्लैण्ड, जर्मनी, इटली आदि देशोंसे लेखोंकी इतनी माँग रहती है और हरएक विलायती डाकसे उनके पास इतने ज्यादा पत्र सलाह लेनेके लिए आते हैं कि उन्हें समय बिलकुल नहीं मिलता। डाक्टर नेहरू स्वयं मातृभाषाके बड़े पक्षपाती हैं। उनके सभी वक्तव्य हिन्दीमें ही होते हैं, जो केवल 'ग्राम-सुधार' नामक पत्रमें प्रकाशित होते हैं। पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि अमेरिका और यूरोपमें 'ग्राम-सुधार' की अनेकों कापियाँ जाती हैं, जिन्हें विदेशी या तो भारतीय विद्यार्थियोंसे पढ़वाते हैं, या ब्रिटिश इम्बैसीमें जाकर किसी हिन्दी जाननेवाले कर्मचारीसे अनुवाद कराते हैं। एक बार डाक्टर नेहरूसे पूछा—"अगर किसी विदेशमें, जहाँ 'ग्राम-सुधार' जाता है, हिन्दी जाननेवाले विद्यार्थी न हों और इम्बैसीके कर्मचारी भी हिन्दीसे अनभिज्ञ हों, तो वहाँके लोग क्या करेंगे?"

डाक्टर नेहरूने फौरन उत्तर दिया—"अगर विदेशी लोग हमारे तजरुबोंसे फायदा उठाना चाहते हैं, तो उन्हें लाज़िम है कि हमारी भाषा सीखें। हमीं उनके फायदेकी बात बतलायें और वह भी उनकी ज़बानमें! यह कहाँका न्याय है?"

हिन्दीके लिए यह कम गौरवकी बात नहीं। अगर हमारे विज्ञानके सभी महारथी डाक्टर नेहरूका अनुकरण करने लगें, तो हिन्दीका माथा भी रशियन, फ्रेंच और जर्मनकी भाँति ऊँचा हो सकता है।

डाक्टर नेहरूने भारतकी ग़रीबीका नग्न चित्र देखा है। पूरे छै महीने ज़िलेके गाँव-गाँवमें दौरा करते हैं। वे जानते हैं कि हमारे किसानोंके पास इतना पैसा नहीं है कि वे क़ीमती फरटिलाइज़र या बड़ी-बड़ी मेशीनें और क़ीमती खाद इस्तेमाल कर सकें। उन्हें तो कमखर्च और बालानशीन चीज़ चाहिए, तभी उनकी उदर-पूर्ति हो सकती है, तभी ग्राम-सुधार हो सकता है। डाक्टर नेहरू कागज़ी घोड़ों और लेक्चरबाज़ीको अच्छा नहीं समझते। वे कहते हैं कि लेक्चरबाज़ी नई सभ्यताका एक रोग है। वे प्रत्यक्षमें विश्वास रखते हैं और सब-कुछ प्रत्यक्ष ही कर दिखाते हैं।

उनका विश्वास है कि हमारी ग्रामीण जनताकी दशा तब तक नहीं सुधर सकती, जब तक हमारे किसान कोई सहकारी उद्योग-धन्धा करके अपनी आमदनी न बढ़ावें। सभी विदेशोंमें खेती करनेवाले लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल-फूलकी खेती, तरकारियोंकी काश्त, मुर्गीके अण्डोंकी तिजारत, गाय-बकरीका रोज़गार, या ऐसा ही कोई और काम ज़रूर करते हैं, जिसकी वजहसे अगर खेतीमें किसी साल कुछ नुक़सान भी हो जाय, तो वे भूखों नहीं मरते। बागवानी और तरकारियोंकी खेती हमारे किसानोंके लिए बड़ी उपयुक्त है। ५०-६० वर्ष पहले तक हरएक खाता-पीता किसान अपनी ज़िन्दगीमें दो-एक फलदार दरख़्त लगाना अपना फ़र्ज़ समझता था। जानवरोंकी अच्छी नसल पैदा करनेके लिए लोग अपने पुरखोंके नामपर साँड़ छोड़ा करते थे; पर आजकल ये बातें बन्द-सी हो गई हैं। तिसपर ज़मीनकी पैदावार कम हो चली है। मीलोंके ऊसर नज़र आने लगे हैं। फलोंमें बाज़ जगहका नाम बिकता है—जैसे नागपुरका संतरा, सहारनपुरका लुकाट।

हमारे किसान इस प्रतियोगितामें कैसे सफल हों, इसी उद्देश्यको सामने रखते हुए डाक्टर नेहरूने बड़ी खोज-बीनके बाद कुदरती बिजलीका प्रयोग निकाला है, जिसे अंगरेज़ीमें इलेक्ट्रोकलचर कहते हैं। इसका सिद्धान्त वृक्ष, पशु और मनुष्यपर एक-सा ही लागू होता है। यह तो सभी जानते हैं कि जिस तरह हमारे शरीरमें करोड़ों छिद्र हैं, इसी तरह वृक्षमें भी होते हैं, और जिस तरह हमारे शरीरका ख़ून रगों द्वारा हरएक हिस्सेके छिद्रों तक पहुँचकर उनमें हरकत पैदा करता है, इसी तरह पेड़ोंमें भी होता है। पेड़में जो पानी और गैस पहुँचती है, वह उसके प्रत्येक भागमें ऐसे छोटे छिद्रों तक ले जाई जाती है, जिससे उनमें हरकत पैदा होती है। उनकी हरकतसे वृक्षोंके शरीरमें बिजलीका संचार होता है। अगर इन हरकत करते हुए छिद्रोंपर बाहरी बिजलीका असर भी डालें, तो नतीजा यह होगा कि शरीरके अन्दरकी बिजलीकी ताक़त और बढ़ेगी और शरीर अधिक बलिष्ठ हो जायगा—

"Wherever there is cellular activity there is electrical energy developed and conversely, wherever electrical energy is applied celluar activity is increased and better growth obtained."

वनस्पति

वनस्पतिकी उन्नतिके लिए डाक्टर नेहरू तीन तरीके बतलाते हैं—(१) बीजमें बिजली लगाना, (२) पौधे या क्यारीमें जाली लगाना, (३) बिजलीका पानी देना, जिसे अगस्कर साहबके नामपर 'अगस्करायज़ेशन' भी कहते हैं। मान लीजिए कि आपको एक पपीतेका बीज बोना है, तो पहले बीजको किसी धातुकी तश्तरीपर रखकर अगर आपके पास मोटर है, तो डायनमोसे उसे सम्बन्धित करके २००० वोल्टसे एक मिनट तक 'स्पार्क' कीजिए और फिर हाथमें रबरका दस्ताना पहनकर बिना हाथसे छुये हुए उसे बो दीजिए। गाँववालोंके लिए जहाँ न मोटर है और न बिजली, सबसे सहल तरीक़ा यह है कि सब लोग मिलकर किसी कबाड़ीके यहाँसे किसी पुरानी मोटरका मैगनेट ख़रीद ले। यह अक्सर १२ आनेसे लेकर १०) तक अच्छा मिल जाता है। एक मैगनेट एक छोटे गाँवके लिए काफ़ी है। उसमें बढ़ईसे, चलानेके लिए, एक दस्ता लगवा लेना चाहिए। मैगनेटका एक तार धातुकी तश्तरीमें, जिसमें बीज रखा हो, सम्बन्धित करके मैगनेटको तीन-चार मिनट चलनेसे बीजमें बिजली आ जायगी। एक दूसरा तरीक़ा यह भी है कि एक मिट्टीके घड़ेमें पानी भरकर बीज उसमें डाल दीजिए और मैगनेटका एक तार घड़ेके अन्दर पानीमें डालकर तीन-चार मिनट चलाइये। फिर बीजको उसीमें पड़े रखनेके बाद निकालकर बिना हाथसे छुये बो दीजिए।

पौधोंके लिए जालीका प्रयोग बहुत लाभदायक साबित हुआ है। जाली पीतलकी नहीं, बल्कि लोहेकी मामूली पाँच या छै आने गज़वाली इस्तेमाल की जाती है, जिसका जाल क़रीब एक इंच चौड़ा होता है। पौधेकी जड़ व तनेकी मोटाईके हिसाबसे १० इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े टुकड़े कर लीजिए और सिर्फ़ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टुकड़ा पौधेकी जड़पर चारों ओरसे चिपटाकर इस तरहसे लगाइये कि क़रीब इंच जाली मिट्टीसे ऊपर रहे और बाक़ी हिस्सा जड़के साथ नीचे रहे। अगर किसी शाखपर आपको ज्यादा फल या फूल लगाना है, तो उसपर जालीकी एक जैकेट-सी पहना दीजिए। बस, उसपर बहुतसे कल्ले निकल आवेंगे। अगर बीज क्यारीमें बोना है, तो पहले ६ इंच मिट्टी खोदकर बारीक कर लीजिए, फिर जाली इस तरहसे बिछाइये कि उसके चारों ओर किनारेकी हिस्सा मिट्टीसे ऊपर रहे। उसपर २-३ इंच गहरी मिट्टी फैला दीजिए। बिजलीका पानी डाक्टर नेहरूका रामबाण है। जैसे ऊपर बताया जा चुका है, थोड़ी ही देरमें आप मैगनेट द्वारा बहुत-सा पानी बना सकते हैं। वही पानी पौधेमें देना चाहिए। देखा गया है कि बिजलीका पानी साधारण पानीसे ५० गुना अधिक लाभदायक होता है। एक लोटा बिजलीका पानी मामूली पानीसे ५० गुना असर रखता है। जिन जगहोंमें पानीकी कमी है, वहाँ बिजलीका थोड़ा पानी उसके अभावकी पूर्ति कर सकता है। आँधी आनेपर तजरुबा करके देखा गया है कि जिन पेड़ोंमें बिजलीका पानी दिया गया था, उनके फल बहुत कम तादादमें गिरे, और जिनमें साधारण पानी दिया गया था, उनके ज्यादा तादादमें गिरे। कारण यह था कि बिजलीके पानीसे सिंचे हुए पेड़ोंके फल हवाके झोंके बरदाश्त करनेका ज्यादा माद्दा रखते थे। बिजलीका पानी देनेसे पत्तोंका रंग गहरा हो जाता है, पत्ते ज्यादा बड़े होते हैं और आम तौरपर पेड़ जल्दी बढ़ता और मज़बूत हो जाता है।

पशु

पशुओंको ज्यादा बलिष्ठ बनानेके लिए डाक्टर नेहरूकी तीन तरकीबें मुख्य हैं। पहली यह कि उनका चारा सुबहकी निकलती हुई सूर्य-रश्मियोंके सामने रखा जाय, जिससे हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जायँ और उनमें किरणोंके समावेशसे बलकारक गुण पैदा हो जायँ। दूसरी, उनको बिजलीका पानी पिलाया जाय। तीसरी, उनके गलेमें बिजलीके तारसे कभी-कभी स्पार्किंग किया जाय। बिजलीका पानी सानीमें मिलनेसे उसको पाचक बना देता है। उससे नहलानेसे जानवर स्वस्थ रहते हैं। गलेपर मैगनेटका तार लगाकर हैंडिल चलानेसे बिजलीकी जो चिनगारियाँ पशुके शरीरमें प्रवेश करती हैं, उनसे उसके सारे शरीरमें स्फूर्ति-सी आ जाती है। जानवरोंके घावोंपर बिजलीका पानी डालनेसे घाव जल्दी भर जाता है; लेकिन स्पार्किंग ज़रूर करना चाहिए। गलेपर जो गिल्टी (Thyroid Glands) होती है, उसका शरीरके बाकी अवयवोंसे सीधा सम्बन्ध होता है, इसीलिए गलेपर स्पार्किंग किया जाता है। इसका पाचन-शक्तिपर बड़ा असर पड़ता है।

मनुष्योंपर

भोजन सामग्रीको प्रातः सूर्यकी रश्मियोंके सामने रखने, बिजलीका पानी पीने तथा गलेपर स्पार्किंग करनेके अलावा सबसे ज्यादा फायदा नींद न आनेवालोंको डाक्टर नेहरूकी एक साधारण-सी तरकीबसे हुआ है। वह है चारपाईके पावोंके नीचे मोटरके टायरके टुकड़े रखना। किसी पुराने टायरमेंसे चारपाईके पायेकी चौड़ाईके अनुसार ४ टुकड़े काट लीजिए और एक-एक टुकड़ा चारपाईके हरएक पायेके नीचे रख दीजिए, इससे रातमें बहुत गहरी नींद आती है और तन्दुरुस्तीपर भी इसका अच्छा असर पड़ता है। जिन लोगोंको नींदकी पुरानी शिकायत हो, उन्हें डाक्टर नेहरू एक माला पहननेको देते हैं, जिससे नींद खूब आती है; लेकिन हरएक केसमें पहले उनकी राय ले लेना ज़रूरी है। उनके पास अनेक देशोंसे चिट्ठियाँ आती हैं, उनका उत्तर जल्द-से-जल्द दिया जाता है। डाक्टर नेहरूकी अध्यक्षतामें मैनपुरीमें 'इलेक्ट्रोकलचर और फ्रूट ग्रोअर्स एसोसियेशन' क़ायम हुआ है, जिसके द्वारा ही सब काम सम्पादित होता है। इसके मेम्बर कई देशोंमें फैले हुए हैं और वे अपने-अपने तजरुबे बराबर भेजते हैं, जो किताबोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकलमें छापे जाते हैं। अभी तक क़रीब २०० ऐसी किताबें छप चुकी हैं। मेम्बरोंको यह सब किताबें मुफ्त मिलती हैं और अपने बाग़के बारेमें और बिजलीके इलाजके बारेमें सलाह मुफ्त मिलती है। जिलेसे बाहरवालोंसे सिर्फ़ २५) लाइफ़ मेम्बर यानी आजीवन सदस्य बननेके लिये जाते हैं। इलेक्ट्रोकलचरके तजरुबे बड़े मनोरंजक है। सबसे ज्यादा अचम्भेकी बात यह है कि ऊसरमें भी ऊपर लिखे हुए तरीकोंसे बाग़ लगाया जा सकता है। मैनपुरीके ज़िलेमें नगला-हारमें चौधरी सियारामने उनका इस्तेमाल किया और आज क़रीब-क़रीब सभी तरहके फलदार दरख़्त वहाँ हरे-भरे नजर आते हैं, जो ऊसरमें ख्वाबमें भी नहीं दिखलाई पड़ते। पपीता, शहतूत, आम, सन्तरा, लुकाट, फालसा, रबर, क़हवा आदि तरह-तरहके दरख़्तोंपर तजरुबे कामयाबीके साथ बहुतसे मुल्कोंमें किये जा चुके हैं। अभी हालमें मिस्टर जोज अन्तोनिया सालबेरियाने सेंट्रल अमेरिकासे लिखा है कि डाक्टर नेहरूके तरीकोंको कुछ ही दिनों इस्तेमाल करनेके बाद क़हवेके वे पौधे, जो बहुत कमज़ोर नज़र आते थे, एकदम बदल-से गये, उनमें नये-नये कल्ले फूटने लगे और वे इतनी जल्दी बढ़ने लगे कि आप यक़ीन न करेंगे। फिर उन्होंने नारंगियोंपर तजरुबा किया। उनमें बहुत ज्यादा फल आ गये, हालाँकि वे पौधे अपनी पूरी ऊँचाईको भी नहीं पहुँच पाये थे। मिस्टर जोज़ अब अपने क़हवाके बड़े खेतोंपर इनका तजरुबा करना चाहते हैं, क्योंकि उनका विचार है कि ये तरीक़े मुश्किल नहीं हैं, और इनके इस्तेमालसे बहुत-सा रुपया बचता है, जो वे अभी तक तरह-तरहकी खादपर खर्च किया करते थे।

मुर्गियोंकी बीमारियोंपर बिजलीके पानीका कैसा अच्छा असर होता है, यह अमेरिकाके 'Reedley Exparent' नामक अख़बारकी एक रिपोर्टसे अच्छी तरहसे ज़ाहिर होता है। वह यह है; जान पर्ल रांचमें डाक्टर नेहरूने एक मुर्गीका इलाज किया, जो बहुत दिनोंसे बीमार थी। उन्होंने एक प्याला बिजलीका पानी लेकर उसके गलेमें डाल दिया। वह बग़ैर किसी तकलीफ़के उस पानीको पी गई, क्योंकि मालूम होता था कि वह उसे अच्छा लगा। थोड़ी देर बाद मिसेज़ पर्लने देखा कि मुर्गीकी चोटीका गोश्त पीलेसे एकदम लाल रंगका हो गया, और वह अन्य मुर्गियोंकी तरह फिरसे चुगने लगी। उसको पहचानना भी मुश्किल हो गया।

हाथी-जैसे डीलडौलके जानवरपर भी तजरुबे किये गये हैं। एक राजाके हाथीकी आँख बिलकुल बेकार हो गई थी। उसपर बड़े-बड़े प्लास्टर लगाये जा चुके थे और बहुतेरी दवाइयाँ हो चुकी थीं; लेकिन किसीसे कुछ फायदा नहीं हुआ। हाथीकी वह आँख बन्द ही रहती थी। डाक्टर नेहरूने पहले कपड़ेको बिजलीके पानीमें भिगोकर उसकी आँख धुलवाई, फिर धार बाँधकर उसपर वही पानी डाला गया। इससे हाथीको बहुत आराम मिला और थोड़ी देरमें उसने आँख खोल दी; लेकिन आँखका धोना इसी तरहसे जारी रखा गया। उसकी आँखमें जाला-सा पड़ गया था, जो बिजलीके पानीसे कट गया, और वह भला-चंगा हो गया। एक दूसरे हाथीके सिरपर एक बहुत बड़ा आबला पड़ गया था, जिसका कारण महावत दिमाग़की खुश्की बतलाता था। उसपर भी बहुत-सी दवाइयाँ लगाई जा चुकी थीं। आख़िरकार उस आबलेपर बिजलीके तारसे स्पार्किंग किया गया और वह बहुत जल्दी फूटकर अच्छा हो गया। घोड़ा, बकरी, गाय, बैल, ऊँट आदि जानवरोंपर उनकी तरह-तरहकी बीमारियोंमें बिजलीके तरीके इस्तेमाल किये गये और उनसे बहुत जल्द फायदा हुआ। एक ख़ास बात और है। दूध देनेवाले जानवरोंको बिजलीका पानी पिलानेसे देखा गया है कि उनका दूध सवाया हो जाता है। कलकत्तेमें उस दूधका बना हुआ घी 'बिजली मार्का घी' के नामसे बिकता है और उसके दाम भी अच्छे मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करीब १२,००० आदमियोंपर तरह-तरहकी बीमारियोंमें यह तरकीबें आज़माई जा चुकी हैं। रेडियमके मुकाबलेमें भी कुदरती बिजली ज़्यादा फायदेमन्द साबित हुई है। अभी हालकी बात है कि ज़िला फरुख़ाबादकी एक ठकुरानी जिसकी उमर ३५ वर्षकी थी, अपने एक बच्चेकी मौतके बादसे पागल हो गई थी। वह न खाती थी और न पीती थी—सिवा चीख़ने-चिल्लानेके उसे दूसरा काम न था। वह डाक्टर नेहरूके पास लाई गई और उसका इलाज़ शुरू किया गया। उसकी चारपाईके पावोंके नीचे रबरके टुकड़े रखे गये, सूर्यकी किरणोंके सामने रखी हुई भोजन-सामग्रीमें बना हुआ भोजन खिलाया गया, बिजलीका ही पानी पीने व नहानेको दिया गया और उसकी थायरायड ग्लांड्सपर स्पार्किंग किया गया। २४ घंटे अन्दर उसका चिल्लाना बन्द हो गया, उसे नींद आ गई और वह तबीयतसे खाने-पीने लगी। कुछ दिन बाद वह बिलकुल भली-चंगी हो गई।

एक दूसरा केस लीजिए। एक महाजन मन्दीकी वजहसे सब-कुछ विभूति खो बैठा और पागल हो गया। वह बहुत चिल्लाता था। जब वह पकड़कर डाक्टर नेहरूके पाससे लाया गया, तो उन्होंने उसकी गर्दनपर पीछेकी तरफ स्पार्किंग किया। फौरन ही उसका चिल्लाना बन्द हो गया और कुछ दिन बाद वह बिलकुल अच्छा हो गया।

लखनऊके शीशमहलके नवाब सादिक़ अली ख़ाँको नींद न आनेकी शिकायत थी। बिजलीके पानी पीने, रबरके टुकड़े चारपाईके पायोंके नीचे रखने और एक ख़ास तरहकी माला पहननेसे उनकी यह शिकायत दूर हो गई।

हरएक मर्ज़के लिए इतना सस्ता नुस्ख़ा मिलना मुश्किल है। आशा है कि पाठक लाभ उठायेंगे।

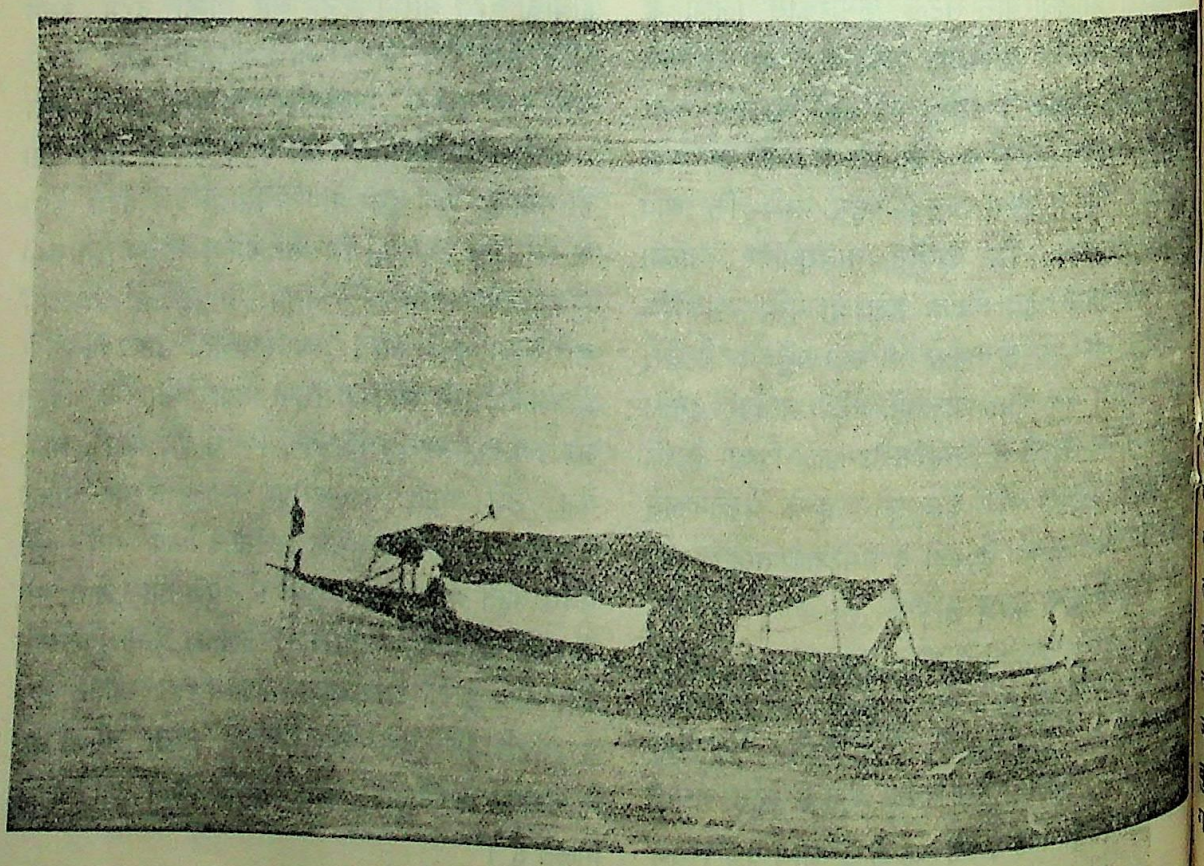

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज़ी

श्री कमलाकान्त शर्मा

जिस साल मैंने बी० ए० पास किया, उसी साल मेरी फुफेरी बहनकी शादी थी। मेरे फूफा बिलासपुरमें सब-असिस्टेन्ट सर्जन थे। शादीके पन्द्रह दिन पहले ही मैं फूफाजीके यहाँ रवाना हुआ। बात यह थी कि उनके घरमें कोई सयाना आदमी न था। फूफाजी व्यस्त रहते थे। उन्हें कामसे ही फुर्सत कम मिलती थी। उनके घरमें जितनी शादियाँ होतीं, सभीके इन्तज़ामका भार चचाजीके सर पड़ता। अब मैं बी० ए० पास कर चुका था। अब मेरी गणना भी सयानोंमें होने लगी थी। चाचाजी एक मुक़दमेमें परेशान थे। मुझसे कहा कि तुम पहले चलो, मैं शादीके दो रोज़ पहले आऊँगा। मैंने इस प्रस्तावका हृदयसे स्वागत किया, और पन्द्रह दिन पहले ही चल पड़ा।

मगडनपुर रेलवे-स्टेशन है, और वहाँसे बिलासपुर तीन मील है। पक्की सड़क है, साफ़-सुथरी और एकदम सीधी। मैं बिलासपुर पहले कभी नहीं गया था। बैसाखका महीना था। ट्रेन रातको साढ़े तीन बजे स्टेशनपर पहुँची। साथमें असबाब कुछ बहुत नहीं था; एक छोटा बक्स, बिस्तर और एक खँचोलेमें कुछ फल और मिठाइयाँ। छोटा-सा स्टेशन था। सवारीके नाम उन्नीसवीं शताब्दीका एक इक्का मिला। इक्केवानने पहले तो दो रुपयेकी फर्माइश की, फिर फूफाजीका नाम सुनकर कुछ ढीला पड़ गया। उसकी मौसीके दामादके भाईको कभी कालरा हुआ था, उस समय फूफाजीका इंजेक्शन उसे कालके मुँहसे लौटा लाया था। उसने कहा कि चलिये, जितना भी दीजिएगा, ले लूँगा; किन्तु मुझे उसके लँगड़े घोड़ेपर तरस आने लगा। एक फर्लांग भी उसपर चढ़कर जाना उसपर क्रूरता थी। मैंने एक तगड़े कुलीको बुलाया। पूछा, बिलासपुर चलोगे? कुली राज़ी हो गया। बस, मैं पैदल ही चल पड़ा।

रात ढल चुकी थी। गायकके शब्दोंमें मालकोश बीत रहा था, भैरव आ रहा था। प्रकृति जागरणकी अँगड़ाई ले रही थी। साँवले आकाशमें हल्का पीलापन भीन गया था। जान पड़ता था, किसी अर्ध-बर्बर देशमें सभ्यताके नवयुगका विधान हो रहा है। प्रभात-वायुके शीतल मादक स्पर्शसे रह-रहकर सिहरन हो आती थी। तीन मीलका रास्ता दोपहरके स्वप्नकी तरह कैसे ख़त्म हो गया, पता ही नहीं चला।

बिलासपुर एक क़स्बेकी तरह था। जहाँ पक्की सड़क ख़त्म होती थी, वहीं एक मन्दिर था और बग़लमें एक तालाब। तालाब किसी धर्म भीरु धनिक महाजनकी रूढ़िबद्ध दानप्रियताका सजीव नमूना था। पक्के घाट जगह-जगहसे टूट गये थे, किनारेपर चारों ओर घने वृक्षोंकी छाया थी। उसके एक-एक कोनेसे जान पड़ता था, मानो रोमांस झाँक रहा है। थोड़ी दूरपर एक बड़ा बग़ीचा था, भीतर दो बँगले थे। मैंने अनुमान किया कि इन्हींमें से फूफाजीका भी एक होगा। हम लोग बग़ीचेमें घुसे। पहला बँगला छोटा था, आगे कँटीले तारोंका घेरा था और पीछे नील काँटेकी झाड़ी। भीतर फूलोंकी क्यारियाँ बनी थीं। वहीं एक ओर गुलाबकी झाड़ीमें उलझी-सी एक सोलह-सत्रह सालकी लड़की खड़ी थी। पासमें एक बच्चा फूल तोड़ रहा था। मैं सोच रहा था कि कोई मर्द निकले, तो पूछूँ कि डाक्टर साहबका मकान कौन-सा है, तब तक कुली पूछ बैठा—"डाक्टर बाबूका मकान यही है?"

लड़कीने एक बार घूमकर देखा, फिर हम लोगोंको देखकर झिझककर मुँह फेर लिया। गुलाबके काँटे भी हम लोगोंसे कम शरारती नहीं होते। वह जल्दीमें जैसे-जैसे अपनेको छुड़ाना चाहती, वैसे ही और भी फँसती जाती थी। कुलीने फिर पूछा—"डाक्टर बाबूका मकान किधर है?" मैं वहाँसे हटना ही चाहता था कि बच्चेने कहा—"यही है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। यदि यही उनका मकान है, तो फिर ये दोनों कौन हैं ? मैं सोच ही रहा था, तब तक कुली अहातेका फाटक खोलकर भीतर घुस पड़ा। पीछे-पीछे मैं भी घुसा। कुलीने बरामदेमें असबाब रख दिया। मैं सोच ही रहा था कि अन्दर चलूँ, तब तक लड़कीने कहा—"डाक्टर बाबूका मकान यह नहीं, वह है।"

उसके स्वरमें रोष भी था और विनोद भी। ओठोंपर परिहासकी एक हल्की-सी रेखा थी और आँखोंमें झिझक। उँगलीमें एक काँटा गड़ गया था। वह आँचलसे लहू पोंछ रही थी। मुझे बड़ी शर्म आई। मैं सिर्फ इतना ही कह सका—'I am sorry.' और एक ही छलाँगमें कम्पाउण्ड पार करके सड़कपर आ रहा। सड़कपर पहुँचते ही बच्चेने ज़ोरका ठहाका लगाया। मैं ज़मीनमें गड़ा जा रहा था। यह मुझे कैसा मूर्ख समझती होगी ; लेकिन मेरी बेवकूफ़ी थी ही क्या ? मैं अपने मनसे तो अहातेमें घुसा नहीं था। मैं क्या जानता था कि कौन किसका मकान है ? फिर भी जानते या अनजानतेमें बेवकूफ़ी तो हुई ही थी। मुझे कुलीपर रोष आया ; लेकिन उस बेचारेका भी क्या दोष ? सारी शरारत तो उस बच्चेकी थी। बात कोई बड़ी नहीं थी, फिर भी ज़िल्लत तो हुई ही। मैंने पहुँचते ही फ़फ़ाजीपर दिलका बुख़ार निकाला।

"आपने स्टेशनपर कोई आदमी क्यों नहीं भेज दिया ?"—मैंने पहुँचनेके साथ पहला सवाल पूछा।

"कौन, कुमुद ? आ गये ? तुम तो कल शामकी गाड़ीसे ही आनेवाले थे ?"

"वह ट्रेन छूट गई।"

"कल शामको तो आदमी स्टेशनपर गया था। मैंने उससे कह दिया था कि रातकी गाड़ीमें भी चले जाना। मुमकिन है, रातमें सो गया हो। तुम्हें रास्तेमें कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?"

"नहीं, तकलीफ़ तो नहीं हुई ; लेकिन यहाँ पता ही नहीं चलता था कि कौन-सा मकान आपका है। मैं ग़लतीसे उस मकानमें चला गया।"

"विभू बाबूके मकानमें ? ऐसी ग़लती अकसर हो जाया करती है। एक बार उनके यहाँकी तरकारी मेरे यहाँ चली आई, और इसका पता तब चला, जब हम लोग सब-कुछ खा-पी गये ! हाँ, मुन्नू, भैया आये हैं। देखो, अन्दर लिवा ले जाओ।"

अब यह कौन किसको समझावे कि दूसरेके यहाँकी तरकारी अपने यहाँ चली आनेमें और खुद दूसरेके घरमें घुसकर बेवकूफ़ बननेमें—और वह भी एक षोड़शीके सामने—कितना अन्तर है। उसके ओठोंका परिहास, आँखकी झिझक और उस बच्चेका ठहाका—मैं दिन-भर नहीं भूल सका। सोचा, अब उधर भूलकर भी न जाऊँगा।

दूसरे दिन खा-पीकर मैं बाहरके कमरेमें सोनेका उपक्रम करने लगा। गर्मीके मौसममें दिनमें सोना भी एक कला है। मैंने खिड़कियाँ बन्द कर दीं। उनके सूराखोंमें कपड़े ठूँस दिये। बाहरी दरवाज़ेपर खसकी एक टट्टी, जो बहुत खोजनेपर गोदाममें फेंकी हुई मिली थी, लटका दी और उसपर पानी छिड़क दिया। कमरेमें एक बाल्टी पानी और एक पिचकारी रख ली। पलंगपर से मोटा गलीचा हटाकर एक हल्की-सी दरी और एक चादर बिछाई। पासमें तिपाईपर एक सुराही और थोड़ेसे बताशे रख लिये। और ताड़के पंखेके साथ लेटकर एक डिटेक्टिव नावेल पढ़नेकी तैयारी करने लगा। इतनेमें ही बाहरसे किसीने ज़ोरसे दरवाज़ा खटखटाया।

मैंने क्रोधसे पूछा—"कौन है ?"

उत्तर आया—"हम हैं।"

"कौन, मुन्नू ?"

"हाँ।"

"क्या है ?"

"दरवाज़ा खोलिये।"

"क्या काम है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यों ही।"

"नहीं, काम बताओ।"

"खोलिये भी तो।"

"मैं नहीं खोलता।"

मुन्नू चला गया। मैं लेटकर पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते कब आँख लग गई, पता नहीं; किन्तु आध घंटेके बाद फिर ज़ोरसे दरवाज़ा खटखटा उठा।

"कौन, मुन्नू?"—मैंने डाँटकर पूछा।

"हाँ।"

इस बार मुन्नू अकेला नहीं था। साथमें मिनिया और चुनिया भी थीं—पूरी बैटेलियन थी। दिनकी नींद परकीया नायिकाकी तरह पहले तो जल्दी आती ही नहीं, और यदि आती भी है, तो तृप्ति नहीं होती। मैंने बड़े क्रोधसे कहा—"क्या है? मार खाओगे?"

"जी नहीं।"

"जी नहीं, उल्लू कहींका! भागता है या नहीं?"

"ज़रा चलिये, अम्मा बुला रही हैं।"

"पूछ आओ, क्या काम है?"

"ताश खेलनेको बुला रही हैं।"

"मैं ताश नहीं खेलता, जाओ।"

लेकिन मुन्नू ऐसा अधूरा सिपाही नहीं था, जो खाली लौट जाय। उसने तर्क शुरू किया—"आखिर अब आपको नींद तो आयेगी नहीं।" मैं कुछ नहीं बोला। "जानते हैं, दिनमें सोनेसे विद्या नहीं आती।"

मैं फिर भी चुप रहा। इसपर मिनिया-चुनियाने तुमुल आन्दोलन शुरू किया। जान पड़ा, दरवाज़ा तोड़ देंगी। लाचार उठना ही पड़ा। ताश खेलना बुआजीका पुराना मर्ज़ था। मैं जानता था बिना खेले छुटकारा नहीं होनेका। अन्तमें दो-चार बताशे खाकर और थोड़ा-सा पानी पीकर मैं ताश खेलने चला।

कमरेमें ताश-पार्टी बैठी थी। पहुँचते ही बुआजीने कहा—"आओ, कुमू! बहुत दिन हुए तुम्हारे साथ ताश खेले। आज ऐसा हारोगे कि याद करोगे।"

मैंने देखा खेलनेवालियोंमें एक तो थीं बुआजी, दूसरी थी मनोरमा उनकी लड़की और तीसरी?—तीसरी वही कलवाली लड़की थी। मेरा कलेजा एक बार धक्से हो गया। और उसने भी मुझे देखकर संकोचसे सर झुका लिया।

खेल शुरू हुआ। हम और मनोरमा एक साथ थे। बुआजीने आज मुझे हरानेका निश्चय कर लिया था। बोलीं—"देख उम्मी, ज़रा ठीकसे खेल। अगर आज कुमूको नहीं हराया, तो कुछ नहीं किया। अगर आज तू जीत जाय, तो मैं तेरे लिए ख़ूब अच्छा ताश मँगा दूँगी।"

लेकिन मनोरमा भी अपनी मासे कम न थी। बोली—"कुमू भैया, तुम ज़रा मनसे खेलो तो मैं अम्माको ऐसा हराऊँ कि जिसका नाम। आज तक कभी जीती भी हैं कि आज ही जीतेंगी?"

बुआजीने तैशसे कहा—"अरी वाह! आई है बड़ी खेलनेवाली बनकर। खेल तो पता चलेगा। मैं क्या कुमूसे डरती हूँ। बी० ए० पास कर लिया, तो क्या हुआ। मुझीसे तो ताश खेलना सीखा था! उम्मी, जरा पत्ते ठीकसे फेंट तो बेटी!"

खेल ज़ोर-शोरसे शुरू हुआ, और हम लोग लगातार हारने लगे। हारनेका कारण था, कुछ तो मनोरमाकी बेवकूफ़ी और कुछ मेरी लापरवाही। मैं हार-जीतके विषयमें उतना चिन्तित न था, जितना यह जाननेके लिए कि उम्मी मेरे विषयमें क्या समझ रही है। और यह जानना आसान न था।

वह मेरी ओर भूलकर भी न देखती थी; मगर मैं समझ रहा था कि मेरी छोटी-से-छोटी हरकत भी उसकी सूक्ष्म दृष्टिसे छूटकर नहीं जा सकती। उसकी ऊपरी उदासीनताके भीतर उत्सुकता और कौतूहलकी गहरी धारा बह रही थी। और मैं इस आवरणको खोल देना चाहता था। उसकी उदासीनता मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असह्य हो चली और मैंने निश्चय किया कि अब इसे किसी-न-किसी तरह छेड़ूँगा।

आख़िर एक मौक़ा भी मिल गया। वे लोग खेलमें भी जीत रहे थे। मैंने उसकी मेमपर ट्रंप मारा। मेरे पास उस रंगका पत्ता था, और वह जानती थी कि मेरे पास वह पत्ता है, और मैं भी जानता था कि वह जानती है कि मेरे पास वह पत्ता है। फिर भी मैंने ट्रंप मार ही दिया। वह एक बार ज़रा झिझकी; लेकिन फिर तुरत ही सचेत-सी होकर अन्यमनस्क हो गई। फिर वही उदासीनता, मानो कुछ हुआ ही नहीं। हम लोग जीत गये। मनोरमाने उत्साहके साथ कहा—"भैया, इस बार हम लोग जीते।"

बुआने पूछा—"हाँ, उम्मी पत्ते गिनकर कर देख तो।"

उम्मीके ओठोंपर परिहासकी एक लहर-सी दौड़ गई, उसने कहा—"हाँ।"

मैं शर्मसे लाल हो गया। फिर भी मैंने शरारत नहीं छोड़ी। सोचा, इसे बोलवाऊँगा ज़रूर, देखूँ कब तक चुप रहेगी। मैं उससे झगड़ा करना चाहता था। उसका समझना और समझकर चुप रह जाना—यही तो असह्य था। उसका एक पत्ता हाथसे छूटकर गिर पड़ा। मैंने कहा—"आपको यही चलना पड़ेगा।"

बुआजीने आवेशके साथ पूछा—"यही क्यों चलना पड़ेगा?"

मैंने कहा—"यह खुल गया है।"

"तो तुम इसे रख सकते हो; लेकिन चला नहीं सकते।"

"नहीं, मैं इसे चला सकता हूँ।"

"यह कौनसा क़ायदा है?"

"यह नया क़ायदा है।"

"वाह, तुम्हीं एक नया क़ायदा जानते हो, या और भी कोई जानता है?"

उम्मीने एक बार मेरी ओर दयापूर्ण दृष्टिसे देखा, फिर कहा—"नहीं अम्मा, यह क़ायदा है, और अभी नया चला है। अब मुझे यही पत्ता चलना पड़ेगा।"

उस बार भी हम लोग जीते और उस बार भी मनोरमाने उत्साहके साथ कहा—"भैया, इस बार हम लोग जीते।" फिर वही हल्की-सी परिहासकी लहर, वही उदासीनता, वही लापरवाही! मैं अपने आपपर खीझ उठा। कहना न होगा कि उसके बाद हम लोग हारते ही गये।

उसी दिन शामको फूफाजीने विभू बाबूसे मेरा परिचय कराया। विभू बाबू बिलासपुर हाई इंग्लिश स्कूलके हेड मास्टर थे। पूरा नाम था विभवप्रकाश गुप्त। अधेड़ उम्र, लम्बे-तगड़े, हृष्ट-पुष्ट। देखनेसे श्रद्धा होती थी। मिलनसार आदमी थे और हँसमुख, जैसा कि स्कूली मास्टर बहुत कम होते हैं।

उन्होंने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा, वह यह था—"आपके जीवनका लक्ष्य क्या है?"

मैंने कहा—"मैंने आपके प्रश्नका अभिप्राय नहीं समझा।"

"आप जीवनमें क्या करना चाहते हैं?"

मैंने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"मैं विद्वान होना चाहता हूँ।"

"विद्वान बनना तो कोई लक्ष्य नहीं है। कोई विद्या पढ़कर फिर उसमें कुछ उन्नति करना अलबत्ता एक आदर्श माना जा सकता है।"—उन्होंने कहा।

मैंने कहा—"दोनोंमें कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर तो है नहीं।"

उन्होंने कहा—"है; मनुष्य विद्वान होता है अपना कौतूहल मिटानेके लिए, संसारके आश्चर्यजनक सत्योंसे अवगत होनेके लिए। किन्तु यह बहुत-कुछ स्वान्तः सुखाय होता है। इसके विपरीत जो उस विद्यामें कुछ उन्नति करना चाहता है, उसका भाण्डार बढ़ाना चाहता है, वह अपने व्यक्तित्वका विकास करके उसकी छाया उसपर डाल देता है, स्वयं परिश्रम करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी मेहनतका फल दूसरोंके लिए रख छोड़ता है। दोनोंमें यही अन्तर है।"

मैंने कहा—"आपके कहनेका अभिप्राय शायद यह है कि विद्याका उपयोग क्रियात्मक होना चाहिए। केवल स्वान्तः सुखाय जो विद्या होती है, वह दिमाग़ी ऐशके समान हो जाती है। किन्तु मैं तो कहूँगा कि विद्याके क्षेत्रमें भी उपयोगिताका स्थूल सिद्धान्त घुसानेसे उसकी मधुरता और स्वाभाविकता नष्ट हो जायगी। क्रिया विचारका ही एक छोर है। एक क्षितिजके इसपार है और दूसरा उसपार। दोनोंके पूर्ण सामंजस्यसे ही दोनोंका समुचित विकास हो सकता है।"

विभू बाबू कुछ कहने ही जा रहे थे, तब तक बीचमें फ़ूफाजी टपक पड़े—"विभू बाबू, चाय ठंडी हो रही है और आपकी बहस छिड़ी है। यही तो बुरी आदत है आपमें।"

विभू बाबू सस्ते ही छोड़नेवाले आदमी न थे, बोले—"कुमुद बाबू, इस विषयपर हम लोग फिर बातें करेंगे।"

मैंने कहा—"ज़रूर, ज़रूर।"

इस विषयपर बातें करनेका हम लोगोंको मौक़ा ही नहीं मिला; लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि उसी रातको जब मैं खाकर सोनेकी तैयारी कर रहा था, तब मुन्नू हँसता हुआ मेरे पास पहुँचा। उसकी आँखोंसे रहस्यपूर्ण कौतूहल छलक रहा था। उसने कहा—"भैयाजी, कहिये तो आपको एक ख़बर सुनाऊँ।"

मैंने कहा—"सुनाओ।"

उसने कहा—"ऐसे नहीं। कुछ दीजिए, तब।"

मैंने पूछा—"ऐसी कौन-सी ख़बर है, जो मैं तुम्हें रिश्वत दूँ?"

वह बोला—"नहीं, वह ऐसी ही ख़बर है।"

मैंने कहा—"तुम अपनी ख़बर अपने पास रखो, मैं नहीं सुनूँगा।"

उसने कहा—"ज़्यादा नहीं, आप अपनी सेंटकी शीशी मुझे दे दीजिए तो मैं बता दूँ।"

मैंने कहा—"तुम शीशी ऐसे ही ले लो, ख़बर बेचनेकी क्या ज़रूरत है?"

उसने कहा—"नहीं, यह बात तो आपको सुननी ही होगी। अभी विभू बाबू बाबूजीसे पूछ रहे थे कि कुमुद बाबूकी शादी हुई है या नहीं?"

"तो इससे मुझे क्या?"—मैंने कौतूहल दबाकर कहा।

"इसपर बाबूजीने कहा कि अभी नहीं हुई है और न होगी ही। तब विभू बाबूने पूछा कि क्यों? तो उन्होंने कहा कि हम लोगोंकी राय है कि कुमुदको ऊँची शिक्षाके लिए विलायत भेजा जाय। ऐसी हालतमें अभी शादी होना ठीक नहीं। इसपर और न-जाने क्या-क्या बातें हुईं।"

"तो इससे मुझे क्या करना है?"—मैंने खीझकर पूछा।

"हाँ, हाँ, मैं ख़ूब समझता हूँ। ऊपरसे ऐसी बातें करते हैं कि कोई मतलब ही नहीं, लेकिन पेटमें चूहे कूदते होंगे। अब मैं उम्मी दीदीको ख़ूब खिझाऊँगा।"

"अच्छा, ठहरो।"—मैं उसे पकड़ूँ-पकड़ूँ, तब तक वह शरारती भाग गया। मैं रातमें बड़ी देर तक जागता रहा।

उम्मी सिनेमा-स्टारोंकी तरह सुन्दरी नहीं और न उनकी तरह प्रेम ही करना जानती है। बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय विषयोंपर बातें कर सके। जिसकी वह लड़की है, वह भी कोई बड़ा आदमी नहीं है। कोई ख़ास बात नहीं है। फिर भी····फिर भी वह आदर्श गृहिणी हो सकती है। पतिके हृदयको सुख और शान्ति पहुँचानेके लिए उसके पास बहुत-कुछ है। और एक चीज़ जो उसके पास है, वह शायद बहुतोंके पास न मिलेगी····वह परिहासकी लहर····वह झिझक····उदासीनताकी बर्फ़ीली तहके नीचे बहती हुई आलोचनात्मक विश्लेषणकी वह धारा।

दूसरे दिन मैं बैठककी तसवीरोंको साफ़ कर रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि बुआजीने कहा—"कुमू, ज़रा मेरी तसवीरोंको भी ठीक कर देना।"

मैं बैठकसे निबटकर उनके सोनेके कमरेकी ओर जा रहा था कि मुन्नूने अन्दरसे ही आवाज़ दी—"भैयाजी, इधर मत आइयेगा।"

मैं सहम गया, पूछा—"क्यों ?"

मुन्नूने कहा—"यहाँ उम्मी दीदी बैठी हुई हैं।"

मैंने पूछा—"तो इससे क्या हुआ ?"

वह हँसी रोककर बोला—"वे....वे ज़रा आपसे शर्माती हैं।"

मैंने कमरेमें घुसकर कहा—"मुन्नू, तुम हदसे ज्यादा शरारती हुए जाते हो। मैं फूफाजीसे शिकायत करूँगा।"

उसने कहा—"और मैं नहीं शिकायत करूँगा कि उम्मी दीदी आपसे शर्माती हैं, फिर भी आप मानते नहीं, घुसे ही आते हैं।"

कमरा सेंटसे मुअत्तर हो रहा था। मैं समझ गया कि मुन्नूने मेरी शीशीपर हाथ साफ़ कर दिया है। मैंने पूछा—"तुमने सारा-का-सारा सेंट ख़राब कर दिया न ?"

मुन्नू बोला—"वाह ! आपने तो मुझे दे ही दिया था। मेरे जो जीमें आये, करूँगा। अब आपसे मतलब ?"

तब तक मिनिया बोली—"यह देखो, उम्मी दीदी भी सेंट लगाये हुए हैं।"

उम्मी शर्मसे लाल हो गई। वह बेचारी क्या जानती थी कि मुन्नू मेरा ही सेंट लेकर इतनी उदारता दिखला रहा है। तब तक मनोरमा भी पहुँच गई। बोली—"वाह भैया, खूब अकेले-अकेले बातें कर रहे रहे हो !"

मैंने समझ लिया कि सबका गुट है। चुपचाप तसवीरें उतारकर साफ़ करने लगा। इतनेमें ही बुआजी पहुँचीं, बोलीं—"अरे, आज इतना सेंट कहाँसे महक रहा है ?"

मुन्नू बोला—"भैयाने मुझे एक खुशखबरी सुनानेका इनाम दिया है।"

बीचमें मिनिया बोल उठी—"और देखो न, उम्मी दीदीने भी तो लगाया है।"

बुआजी हँस पड़ीं, बोलीं—"मैं तुम लोगोंकी सारी शरारत समझती हूँ। कुमू, ज़रा यह घड़ी तो ठीक कर दो। बन्द हो गई है, चलती ही नहीं।"

मैंने कहा—"देखूँ।"

मौक़ा पाते ही मैं घड़ी लेकर वहाँसे बाहर भागा। जाते-जाते मेरी और उम्मीकी आँखें चार हो गईं। मैंने देखा, पलकोंके नीचेसे शर्म झाँक रही थी, ओठोंपर अनुराग बिखर पड़ा था।

इसके बादसे दो दिन तक लाख कोशिश करनेपर भी मुझे उम्मीके दर्शन न हो सके। वह मेरी आवाज़ सुनते ही न-जाने किधर छिप जाती। मुझे जान पड़ता कि सभी मेरा परिहास करना चाहते हैं, इसलिए स्वयं जहाँ वह रहती, उधर जानेमें मुझे झिझक होती थी। फिर भी मुझे एक बेचैनी-सी रहती थी। जान पड़ता कि कुछ खो गया है। अन्तमें मैंने एक उपाय सोचा। मैंने उसके छोटे भाईको पकड़ा। उसके लिए मैं चाकलेट ख़रीद लाया और दफ्तीका एक जहाज़ बनाया। फिर तो वह मेरे साथ बहुत हिल-मिल गया।

उसका नाम था आनन्दप्रकाश। मैंने एक दिन उससे कहा—"आनन्द, मुझे यहाँ अच्छी चाय नहीं मिलती ; तुम अपने यहाँसे चाय ला सकते हो ?"

वह बोला—"दीदी ख़ूब अच्छी चाय बनाती हैं। कहिये तो लाऊँ ?"

मैंने अनिच्छापूर्वक कहा—"नहीं, यहाँ लानेसे तो ठंडी हो जायगी।"

वह बोला—"फिर वहीं चलिये।"

मैंने कहा—"वहाँ ? कभी नहीं।"

वह आश्चर्यसे बोला—"क्यों ?"

मैंने कहा—"तुम्हारी दीदी नाराज़ होंगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दीदी क्यों नाराज़ होंगी ?"

"वे···शायद वे मुझे देखकर चिढ़ती हैं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं हो सकती।"—आनन्दने सर हिलाकर कहा।

मैंने कहा—"नहीं, तुम लड़के हो; तुम क्या जानो। पहले दिन जब मैं तुम्हारे यहाँ ग़लतीसे चला गया था, तभीसे वे मुझे मूर्ख समझती हैं। ख़ैर, यह सब तुम अपनी दीदीसे मत कहना।"

"पहले दिनकी बात !" आनन्द हँसने लगा—"वह तो मेरी ही शरारत थी। नहीं, नहीं, दीदी आपसे चिढ़ती नहीं हैं।"

मैंने गम्भीरतापूर्वक कहा—"तुम क्या जानो ?"

थोड़ी देर बाद आनन्द चला गया। शामको मैं पैरमें मलहम लगाकर पट्टी बाँध रहा था। पैरमें ज़रा चोट आ गई थी। इतनेमें ही एक आदमी आकर बोला—"हुज़ूर, विभू बाबूका नौकर आपको बुलाने आया है।"

मेरा जी सन्नसे हो गया। आनन्दने जाकर कहीं विभू बाबूसे तो नहीं कह दिया ? मैंने पूछा—"विभू बाबू क्या कर रहे हैं ?"

"मैच देखने जा रहे हैं।"

मैंने कहा—"पैरमें चोट है। मैं तो मैच देखने नहीं जा सकता।"

आदमी चला गया; पर थोड़ी देरमें लौट आया और बोला—"विभू बाबू आपको चाय पीनेके लिए बुला रहे हैं।"

मैंने कहा—"चलो, आता हूँ।"

आदमी चला गया। मैं तैयार होने लगा। फिर भी डर रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि आनन्दने उन्हींसे सब-कुछ कह दिया हो। वे मनमें क्या समझेंगे। इसका तो पहले मैंने ख़याल ही नहीं किया था। अब मैं कपड़ेकी तजवीज़ करने लगा, क्या पहनूँ; किन्तु इससे भी कठिन समस्या यह थी कि क्या न पहनूँ। पड़ोसीके यहाँसे बुलावा आनेपर चाय पीने जानेके लिए ठीक कपड़ेकी तजवीज करना उतना आसान नहीं, जितना जान पड़ता है। ख़ैर, किसी तरह कुर्ता, धोती, चप्पल पहनकर, रिस्टवाच लगाकर और कुर्तेके पाकेटमें फाउन्टेनपेन डालकर मैं चला।

विभू बाबू चाय पी रहे थे, बोले—"'वेरी सॉरी', कुमुद बाबू स्कूलमें इम्तहान हो रहा था, इसलिए मैं इतना व्यस्त था कि आपकी कुछ भी ख़ातिरदारी न कर सका। बैठिये, ओहो, पैरमें जख़्म हो गया है क्या ?"

"हाँ, ज़रा चोट लग गई है।"

"माफ कीजिएगा, मैं इतना 'बिज़ी' था कि—"

मैंने बात काटकर कहा—"वाह ! यह तो अपना घर है, ख़ातिरदारीकी कौन-सी बात है ?"

"आनन्द, यह देखो, कुमुद बाबू आये हैं। कुमुद बाबू, आज बहुत अच्छा फुटबाल मैच है, बाहरकी टीम आई हुई है। आप तो नहीं चल सकते हैं ?"

मैंने कहा—"अफ़सोस है, मैं तो नहीं जा सकता; लेकिन शायद टाइम तो हो गया होगा ?"

विभू बाबूने कहा—"हाँ, टाइम तो हो गया।"

मैंने कहा—"फिर आप चलिये। मैं चाय पी लूँगा। आनन्द तो है ही।"

विभू बाबू चले गये। मेरे जीमें जी आया, ख़ैर उन्हें कुछ नहीं मालूम। मैं अख़बार उठाकर अनमना-सा पढ़ने लगा। इतनेमें चायकी ट्रे लेकर उम्मीने कमरेमें प्रवेश किया। मैं कुर्सीसे उठकर खड़ा हो गया।

"बैठिये,"—उम्मीने मधुर स्वरमें कहा—"बड़े आश्चर्यकी बात है, आपको यहाँकी चाय अच्छी नहीं लगती।"

"यह आपको कैसे मालूम कि मुझे यहाँकी चाय अच्छी नहीं लगती ?"

"मेरे मालूम होनेके लिए ही तो आपने आनन्दसे कहा था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं, मैंने तो उसे मना कर दिया था।"

"छोटे बच्चेको मना करनेका अर्थ क्या होता है?"—उम्मीने प्याला बढ़ाते हुए कहा।

"लेकिन मैंने....मैंने तो उसे...."

"अच्छा, मैं मनोरमासे पूछूँगी, वह ऐसी ख़राब चाय क्यों बनाती है?"—उम्मीने शक्कर डालते हुए कहा।

"नहीं, नहीं, ईश्वरके लिए मनोरमासे न कहना—किसीसे न कहना। वे....वे बड़े शरारती हैं।"—उम्मी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"कुमुद बाबू,"—उसने कुछ गम्भीर होकर कहना शुरू किया—"उस दिन मुझसे बड़ी ग़लती हो गई।"

मैं चुप रहा।

"आनन्द बड़ा शरारती है। कुलीको बेवक़ूफ़ बनानेके लिए उसने मज़ाक़ किया था।"

"लेकिन बेवक़ूफ़ बना मैं।"

"मुझे इसका सख़्त अफ़सोस है।"

मैं कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर तक चुप रहकर वह फिर बोली—"आप ताश बहुत अच्छा खेलते हैं। उस दिनवाला नया रूल...."

"मुझे भी उसका सख़्त अफ़सोस है।"—मैंने गम्भीरतापूर्वक कहा। उसके ओठोंपर मुसकराहट नाच उठी।

"तो क्या आप मुझसे बदला चुका रहे थे?"

"नहीं,"—मैंने रुककर कहा—"मैं झगड़ना चाहता था।"

"हूँ!"—चायकी खाली प्यालियाँ ट्रेमें लेकर वह चली गई। मैं जानेकी तैयारी करने लगा, इतनेमें ही वह फिर लौटी—"क्या जा रहे हैं?"

"हाँ, कितने ही काम हैं। आप आजकल आती क्यों नहीं हैं?"

"आती तो हूँ।"

"लेकिन....मैं तो नहीं देखता।"

"हाँ...." उसने पैरके अँगूठेसे मिट्टी खोदते हुए कहा।

"लेकिन मैं तो यहाँ बहुत दिनों तक नहीं रहूँगा। शादीके बाद ही चला जाऊँगा। और फिर इससे उन लोगोंको शरारत करनेका और भी मौक़ा मिल सकता है।"

मैं इतना एक साँसमें ही कह गया और फिर उसके उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही चल दिया। रास्तेमें घूमकर देखा, तो उम्मी दरवाज़ेपर प्रतिमाकी तरह खड़ी थी। किसीको पता न चले, इसलिए मैं जल्दीसे घर लौट आया।

रातको बहुत देर तक मैं सो नहीं सका। घटनाएँ जो रुख़ पकड़ रही थीं, उनका मैंने अनुमान भी न किया था। मैं एक नई वेदना, एक अनजान बेचैनीका अनुभव करने लगा। सबसे बड़ी विचित्रता तो यह थी कि दोनों ही एक-दूसरेके मनकी बातें समझ रहे थे। फिर भी कहना कोई नहीं चाहता था। पहले-पहल मुझे मालूम हुआ कि उलझन सिनेमाके पर्देपर ही नहीं, रोज़मर्राके जीवनमें भी हो सकती है।

शादीका दिन नज़दीक आने लगा। घर मित्रों और रिश्तेदारोंसे भरने लगा। मुझे दम मारनेकी भी फ़ुरसत न मिलती। सारा इन्तज़ाम मेरे ही सर था। जितने लोग आये थे, उनमें बहुत बड़ी संख्या ऐसोंकी थी, जिनका एकमात्र काम था प्रबन्धकर्ताकी नुक्ताचीनी करना। एसेम्बलीकी कांग्रेस बेंचें भी उनके सामने मात थीं। दूसरा दल उन लोगोंका था, जो शादी-ब्याहके मौक़ोंको आमोद-प्रमोदकी चीज़ समझते हैं। ताश, शतरंज, हारमोनियम, ग्रामोफोनके सिवा उनके लिए दुनियामें और कोई काम ही नहीं था। बारातमें नाच होगा या नहीं, आतशबाज़ी रहेगी या नहीं—उनके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यही थे। मैं इन सभी लोगोंसे कोसों दूर रहनेकी कोशिश करता था। चाचाजीके आनेका कोई ठीक न था। फूफाजीको अस्पतालसे फ़ुरसत ही न मिलती थी। दूसरे उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरीज़ोंकी संख्या इतनी ज्यादा थी कि इच्छा रहते हुए भी कोई प्रबन्ध अपने हाथमें न ले सकते थे। फलतः सारी ज़िम्मेदारी मेरे सर थी। अगर किसीको समयपर खाना नहीं मिला, तो मेरा दोष; बारातके लिए किसी चीज़का इन्तज़ाम करना है, तो मैं ही करूँ; लेने-देनेकी चीज़ मँगवानी हो, तो मैं मँगवाऊँ। बुआजीकी तबीयत कुछ ख़राब हो गई थी, इसलिए भीतरका प्रबन्ध उम्मीके ज़िम्मे था। उसकी भी वही अवस्था थी, जो मेरी। दिनमें हम लोग सैकड़ों बार मिलते; लेकिन बातें बहुत कम होतीं। जो कुछ होतीं, कामके ही विषयमें। केवल एक बार मुझे याद है, उसने कहा था—"कुमुद बाबू, इतनी मेहनत कीजिएगा, तो मुझे डर है कि कहीं आपकी तबीयत न ख़राब हो जाय।"

"मैं भी आपसे यही कहनेवाला था।"—मैंने उत्तर दिया।

"फिर कहा क्यों नहीं?"—उसने मुसकराकर कहा।

"मैं कहने ही आया था, तब तक आपने कह दिया।"

"झूठी बात!"—वह हँसकर चली गई। मैं भी अपने काममें लग गया।

नौशेको देनेके लिए सूट बननेवाला था। बड़ी खोजके बाद मनलायक कपड़ा मुझे मिला। कपड़ा दर्ज़ीको दिया गया। दर्ज़ी खुद जाकर नौशे साहबकी नाप ले आया। शादीके दो दिन पहले कपड़ा तैयार होकर आया। कपड़ा अच्छा सिला था। मुझे पसन्द आया। सभीने क़रीब-क़रीब पसन्द किया। कपड़ा लेकर बुआजीको दिखला रहा था, इतनेमें उम्मी पहुँची। बुआजीने कहा—"देख तो उम्मी कपड़ा ठीक सिला है या नहीं?"

उम्मीने समालोचककी दृष्टिसे सारे कपड़ोंको देखा। फिर बोली—"ठीक तो है, लेकिन यह आस्तीन चढ़ जायगी।"

"आपने कैसे समझ लिया?"—मैंने पूछा।

"जिसकी छाती इतनी चौड़ी हो, मुमकिन नहीं कि उसकी बाँह इतनी पतली हो, जितनी यह है। यह ज़रूर तंग होगा।"

"लेकिन आपको जानना चाहिए कि दर्ज़ी खुद जाकर वहाँसे उनकी नाप लाया है।"

"तो इससे क्या? दर्ज़ी ग़लतियाँ नहीं करते?"

"यह दर्ज़ी बहुत होशियार है।"

"होशियार लोग ही बेवकूफ़ी किया करते हैं।" उसने भौंहें टेढ़ी करके कहा।

यह कटाक्ष मेरे ऊपर था। मैं झल्ला उठा। बोला—"ख़ैर, वक्त आनेपर मालूम हो जायगा कि कौन बेवकूफ़ है।"

उसने कोटकी तह लगाते हुए कहा—"लेकिन अफ़सोस तो इसीका है कि ऐन मौक़ेपर अगर कोट फिट न हुआ, तो दर्ज़ी बेवकूफ़ नहीं बनेगा, बनेंगे आप।"

"और अगर फ़िट हो गया, तब?"

"तब मैं अपनेको बेवकूफ़ मान लूँगी।"

"लेकिन महज़ बेवकूफ़ बननेसे किसीका बिगड़ता ही क्या है?"

"ऐसी बात? तो मैं इस बातपर बाज़ी लगा सकती हूँ कि यह कोट नौशेको फिट नहीं करेगा।"

"फिट नहीं करनेका मतलब?"

"मतलब यह कि या तो सीनेसे ढीला होगा और नहीं तो आस्तीनसे तंग।"

"अच्छी बात है, बाज़ी रही।"

"कितनेकी?"

"दस-दस रुपयेकी।"—मैंने तैशके साथ कहा।

"मंजूर। मगर....."

"अब मगर क्या?"

"मगर जो देगा, वह रुपये नहीं देगा। दस रुपयेकी कोई चीज़ दे देगा।"

"ख़ैर, एक ही बात है।" मैंने कपड़े बक्समें रखते हुए कहा—"बुआजी, आप गवाह रहियेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुआजीने कहा—"उम्मी, मुझे डर है कि कुमुद जीत जायगा। दर्ज़ी वहाँ ख़ुद जाकर नाप लाया था और कपड़ा सीनेमें भी वह बहुत होशियार है।"

उम्मीने सर हिलाकर कहा—"ख़ैर, मैं एक नई बात सीख जाऊँगी।"

इसके बाद उम्मीसे बातें करनेका अवसर मुझे बहुत कम मिला। कामकी भीड़ बहुत बढ़ गई। नियत समयपर बारात आई। दो दिन तक ख़ूब चहल-पहल रही। मेरे लिए खाना और सोना दोनों हराम हो गये। इतनी मेहनत पड़ी कि हरारत-सी हो आई। चाचाजी आख़िर तक नहीं आ सके, इसलिए सब-कुछ मुझे ही निभाना पड़ा। खुशी सिर्फ एक ही बातकी थी। मनोरमाके लिए दूल्हा बहुत अच्छा मिला था—पढ़ा-लिखा, सुन्दर, सुशील और ख़ूब हृष्ट-पुष्ट। जो देखता, वही मुग्ध हो जाता। आख़िर बरात रुख़सत होनेका दिन आया। भीतर दूल्हेकी विदाई हो रही थी। बाहर मिलनीकी तैयारी की जा रही थी। मैं मेशीनकी तरह चारों ओर नाच रहा था। इतनेमें ही मुन्नू पहुँचा—"भैयाजी, आपको अम्मा बुला रही हैं।

मैंने कहा—"ठहरो, अभी फ़ुरसत नहीं है।"

मुन्नू बोला—"बहुत ज़रूरी काम है, अभी चलिये।"

"क्या काम है?"

"चलिये, वहीं मालूम होगा।"

मैं झल्लाया हुआ भीतर आया—"क्या काम है।"

बुआजीने कहा—"कुमुद, बड़ी मुश्किल हुई। लड़का कोट पहनता ही नहीं।"

"क्यों?"

"जाओ पूछो।"

मैं नौशेके पास गया। पूछा—"क्यों हुज़ूर, अब क्या देर है? कोट क्यों नहीं पहन लेते?"

"क्या पहनूँ! यह तो एकदम तंग होता है।"

"तंग? कहाँपर?"

"आस्तीनके पास।"

"लेकिन दर्ज़ी तो आपकी नाप लाया था।"

"लाया तो था; लेकिन देखिये, गलत थोड़े ही कहता हूँ।"

कोट सचमुच आस्तीनके पास तंग हो रहा था, ऐसा कि बेचारा पहन ही नहीं सकता था। अब क्या हो? इतनी जल्दी मरम्मत भी नहीं हो सकती थी। वहाँ मिलनीकी तैयारियाँ हो रही हैं। इसी समय उम्मी पहुँच गई, बोली—"कुमुद बाबू, अब क्या करना होगा? बात तो बड़े बेमौक़े हुई।"

बड़ी मुश्किलोंसे वह अपनी हँसी रोक रही थी। मैंने कहा—"होगा क्या, तुम्हारा सर?"

इतनेमें नौशेने कहा—"भाई साहब, रहने दीजिए। इस समय मैं अपना ही कोट पहन लूँगा। पीछे देखा जायगा।"

मैंने कहा—"धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद।" कहकर मैं ऐसा भागा कि पीछे घूमकर देखा भी नहीं।

बारात चली गई। सम्बन्धी लोग भी एक-एक करके चले गये। केवल मैं रह गया था। मनोरमाके चले जानेसे बुआजी बहुत उदास हो गई थीं। उन्होंने मेरे साथ ही चलनेकी इच्छा प्रकट की। फूफाजी भी राज़ी हो गये। मेरे लिए अब कोई काम न था। उम्मी भी बहुत कम आती थी। मुझे इतना उदास लगता कि जी चाहता कहीं बैठकर ख़ूब रोऊँ।

एक दिन तड़के मेरी नींद टूट गई। घरके सभी लोग सोये हुए थे। मैं बिछावनपर पड़ा न रह सका। सोचा, उठकर ज़रा घूम आऊँ। टहलता हुआ मैं तालाबकी ओर चला गया। वहाँ देखा, उम्मी एकाग्रचित्तसे मछलियोंको आटेकी गोलियाँ खिला रही है। मैं उसके पास चला गया। उसने सरका आँचल ठीक करते हुए कहा—"नमस्ते।"

"नमस्ते।"—थोड़ी देर तक हम दोनों चुप रहे। फिर मैंने पूछा—"कई दिनोंसे इधर मैंने आपको देखा नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इधर बाबूजीकी तबीयत कुछ खराब हो गई थी। घरमें कोई दूसरा नहीं है, इसलिए····"

"मुझे तो मालूम नहीं हुआ····क्या हुआ था ?"

"बुखार।"

"अब कैसे हैं ?"

"अच्छे हैं।"—थोड़ी देर तक चुप रहनेके बाद फिर उसने कहा—"आप लोग कल जा रहे हैं ?"

"जी नहीं, आज ही शामको जा रहे हैं।"

"आज ही ?"

"जी हाँ।"

"हम लोग भी एक हफ्तेमें घर चले जायँगे।"

"आपका घर किस ज़िलेमें है ?"

"कानपुर ज़िलेमें। गर्मीकी छुट्टियोंमें बाबूजी झाँसी जायँगे, और फिर शायद वहीं रह जायँ।"

"क्या वहाँ कोई काम मिल रहा है ?"

"सुना तो है।"

"फिर····फिर तो आप लोग यहाँ नहीं आइयेगा ?"

"कैसे आ सकेंगे ?"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। फिर मैंने कहा—"आपका परिचय प्राप्त करके मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं आजीवन इसे याद रखूँगा।"—वह कुछ नहीं बोली, केवल सर थोड़ा और झुका लिया।

गोलियाँ खत्म हो गईं। वह उठ खड़ी हुई। मैंने कहा—"एक बात और। अगर मुझसे कोई ग़लती हो गई हो, तो····तो मुझे क्षमा कीजिएगा।"

उसने विषादकी हँसी हँसते हुए कहा—"यह तो मुझे आपसे कहना चाहिए।"

"ज़रा अपनी उँगली बढ़ाना तो"—कहकर बिना उसके उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही मैंने अपनी उँगलीसे अपनी इनामेलकी अँगूठी निकालकर उसकी उँगलीमें पहना दी। वह काँप उठी।

"यह····यह क्या ?"

"हम लोगोंकी बाज़ी—मैं हारा, आप जीतीं।"

"लेकिन मैं यह अँगूठी नहीं लूँगी।"

"आपको लेना ही होगा। यही तो शर्त थी कि रुपयेके बदलेमें कोई चीज़ देनी होगी।"

"लेकिन····इसपर····तो····R····खुदा है। कोई देख लेगा तब ?"

"मैं कुछ नहीं जानता। यह अँगूठी आपको लेनी ही होगी। चलिये, आपके पिताजीको देख आऊँ।"—वह चुप हो गई। रास्तेमें फिर कोई नहीं बोला।

शामको जानेकी तैयारी होने लगी। उम्मी जाकर बुआजीसे मिल आई। मुन्नू कह रहा था कि दोनों खूब रोईं। बुआजी रोते-रोते बेहोश हो गईं। अन्तमें घोड़ागाड़ी स्टेशन ले जानेके लिए आई। बुआजी और बच्चोंके साथ मैं भीतर बैठा। मुन्नू कोचबक्सपर बैठा। गाड़ी चल दी। मैंने देखा, उम्मी दरवाज़ेपर पाषाण-प्रतिमाकी तरह खड़ी थी। गाड़ी पक्की सड़कपर आकर घूम गई। फिर मैं कुछ देख नहीं सका। पलकोंके नीचे आँसू कुहासेकी तरह फैल गये।

इसके बाद तीन महीने बीते। फूफाजीका पत्र आया कि बिलासपुरसे उनका ट्रान्सफर दूसरी जगह हो गया। विभू बाबूके विषयमें उन्होंने लिखा कि वे झाँसी चले गये। वहाँ उन्हें कोई अच्छी-सी नौकरी मिल गई है। इसके बाद मेरे अध्ययनका प्रश्न छिड़ा। आगे क्या पढ़ा जाय। सबकी राय थी कि मैं विलायत जाऊँ। अन्तमें मुझे भी यही मानना पड़ा। और सेप्टेम्बरके महीनेमें मैं विलायतके लिए रवाना हो गया।

× × ×

तीन साल बाद मैं घर लौटा। ऑक्सफोर्डसे बी० ए० की डिग्री ली। काफ़ी प्रसिद्धि हो गई। लौटनेपर कालेजमें प्रोफेसरी भी मिल गई। मेरा संसार बहुत-कुछ बदल गया था। दोस्त-मित्र सभी बदल गये थे। विचार-धारामें भी बहुत-कुछ परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया था। अतीतकी बातें सपनेकी तरह लगती थीं।

अन्तमें ब्याहकी बातें चलने लगीं। ब्याहके विषयमें मेरे विचार बड़े ऊँचे थे। लड़की ग्रेजुएट तो ज़रूर होनी चाहिए। सुन्दरी ख़ूब हो और स्वस्थ भी। संगीत-ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। तिलक-दहेजकी कोई चिन्ता नहीं। जात-पाँतकी भी फ़िक्र नहीं। बहुत जगह बातें चलनेपर अन्तमें एक जगह शादी तै हुई। लड़की फोर्थ इयरमें पढ़ती थी। अत्यन्त सुन्दरी थी और नृत्य-कलामें यकता थी। मैंने उसे बहुत पसन्द किया। मित्रोंने बधाइयाँ दीं, मनचले लड़कोंने दावतकी फर्माइश की। मैं मन-ही-मन फूला न समाता था।

शादी हो गई। मैं सालियोंसे बातें कर रहा था। इतनेमें किसीने कहा, सबसे इनका परिचय करा दो। मुझे सबका परिचय दिया जाने लगा। अन्तमें मेरी सालीने कहा—"ये हैं आपकी सबसे छोटी सरहज।"

कौन उम्मी····और वह भी····विधवा वेषमें ?

मुझे बिजली-सी मार गई। लेकिन उम्मीने मुझे पहलेसे ही पहचान लिया था। उसके ओठोंपर सूखी-सी मुसकान लोट गई। आँखोंमें आँसू छलछला आये। और····और····फिर मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। उसके बाद मुझे याद नहीं, क्या हुआ—कब रुख़सती हुई और कब मैं घर पहुँचा।

चाँदनी रात थी। छतपर मैं लेटा था। मेरी पत्नीने कहा—"लाओ, तुम्हारे सरमें तेल डाल दूँ।"

मैंने कहा—"नहीं, रहने दो।"

उसने चिन्तित होकर कहा—"तुम इस तरह उदास क्यों रहते हो ?"

उसका हाथ अपने हाथमें लेकर मैंने कहा—"कुछ नहीं।"

अचानक उसकी उँगलीमें इनामेलकी एक अँगूठी झलक उठी। मुझे जान पड़ा, मानो मैंने बिजलीका तार छू लिया हो।

"तुमने यह अँगूठी कहाँ पाई ? क्या ख़रीदी है ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"यह उम्मी भौजीने मुझे दी है।"

"उन्होंने····तुम्हें····?"

"जिस दिन मैं आ रही थी, उसी दिन हम लोगोंने एक बाज़ी बदी थी····मैं जीती, वे हारीं। बस, यही अँगूठी उन्होंने मुझे दे दी।"

चार साल पहलेके दृश्य मेरी आँखोंके सामने घूम गये। मेरी स्त्रीने पूछा—"क्यों, क्या इसमें कोई ख़ास बात है।"

"मैंने स्वप्नकी तरह कहा—"नहीं, यों ही।"

थोड़ी देर चुप रहकर उसने फिर पूछा—"क्या सोचते हो ?"

मैंने कहा—"ज़िन्दगी जुएका एक खेल है। इसकी प्रत्येक घटना एक बाज़ी है। शादी-ब्याह, जन्म-मरण—सब-कुछ किस्मतकी बात है। कब बाज़ी किधर पलटेगी, दाँव कैसा पड़ेगा, कोई नहीं जानता। अगर चार साल पहले—" मैं चुप हो गया।

"लेकिन इस फ़िलासफ़ीसे और इस अँगूठीसे क्या मतलब ?"—उसने पूछा।

—"कुछ नहीं।"

आकाशमें मेघोंके साथ चन्द्रमाकी बाजी लगी थी—छाया हो या प्रकाश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य या रुदन ?

श्री नीलकण्ठ तिवारी 'ज़ख्मी', बी० ए०, साहित्य-रत्न

(१)

स्वप्न-सा है हास्य रे कवि, पर रुदन भी हाय दुस्तर,
बाल्य जीवन-वृन्तपर तू खिल कली-सा मस्त झूमा,
रश्मि यौवन-वल्लरीने फिर लिपट सस्नेह चूमा ;
फिर पलक-दल खोल तेरे दृग-कुसुमने दृष्टि फेरी,
बन मलयकृत उर्वशी नाची सुरभिमय साँस तेरी ;
कवि-कुसुम, पर जग-प्रभंजनने तुझे हा नोच डाला,
हाय आशा-पंखुरियोंको धूलि-कण-सा रौंद डाला ;
वह सुरभिमय साँस तेरी उड़ गई बस आह बनकर,
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि, पर रुदन भी हाय दुस्तर !

(२)

क्रूर जीवनसे सहा भी ना गया वह मधुर मधु-क्षण,
हाय यौवन बन गया दुर्भाग्यका ताण्डव-निनर्त्तन ;
हे नियतिके चक्र, तूने एक क्षणमें पीस डाला,
काल-करिने लहलहाती - सी लताको तोड़ डाला ;
क्रूर-जीवन-क्षेत्र, तू हा, मृत्युप्रद-ज्वालामुखी है,
प्राण-यमुनामें कलोकी कालिया तू विषमुखी है ;
राख भव-चिन्ता-चिताने कर दिया तुझको जलाकर,
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि, पर रुदन भी हाय दुस्तर !

(३)

हाय वर्षाएँ हज़ारों द्वयदृगोंसे झर चुकी हैं,
हाय कितनी ग्रीष्मऋतुएँ आह बनकर उड़ चुकी हैं ;
प्राण अधरोंपर रमाशत, धूनियाँ बस थक चुकी हैं,
हाँ, इसी जड़ लेखनीसे रक्त-झरने झर चुके हैं ;
है नहीं अधिकार जीनेका तुझे रे कवि अभागे,
स्वार्थ-युगमें कर रहा परमार्थ फिर क्यों प्राण त्यागे ;
तू स्वयं हत क्रौंच पक्षी, तू स्वयं वाल्मीकि ऋषिवर,
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि, पर रुदन भी हाय दुस्तर !

(४)

सभ्यताके सप्त - स्वरमें आज मानव-प्राण रोते,
हा कुबेरोंके इशारोंपर हज़ारों ख़ून होते ;
आज जगको कपि बनाकर स्वर्ण-पुतली है नचाती,
क्रूरताके खा थपेड़े आज करुणा - कूक रोती ;
रट रहा जब 'धन-तृषा' यह विश्व-चातक तृषित पापी,
अश्रुको घन तब समझ तू, नाचता क्यों कवि-कलापी ?
फिर कँटीली क़ैदमें कवि, काव्य-कोकिल क्यों अनश्वर ?
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि, पर रुदन भी हाय दुस्तर !

(५)

शब्द - गागरमें भरे जा तू हृदयके अश्रु - सागर,
अश्रु-दर्पणमें झलकते ब्रह्म, शिव औ' सत्य, सुन्दर ;
मूर्तियाँ आदर्शकी शुचि अश्रु-मन्दिरमें रखी हैं,
अश्रु ही तो सीढ़ियाँ सर्वोच्चताके स्वर्गकी हैं ;
कर्मके ये मर्म-पथ हैं, द्वार जग-बन्धुत्वके हैं,
अश्रु ही तो काव्य-भाषा बीज जग-अमरत्वके हैं ;
हाँ, लिखे जा पूछते हैं अमर तेरे अश्रु-अक्षर—
'स्वप्न-सा है हास्य क्यों कवि, क्यों रुदन भी हाय दुस्तर ?'

(६)

है चिरन्तन वेदनाका विकृत स्वर यह हास्य रे कवि,
और मायाकी भड़क प्यासे हृदयकी आग रे कवि,
'शक्ति, लक्ष्मी'के उपासक ध्वंस होंगे शीघ्र ही कवि,
यह क्षणिक झंझा-झकोरा हो रहा फिर क्यों विकल कवि,
तरनि, तारे, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब हों नष्ट रे कवि,
पर प्रलय भी स्वर अमर तेरा करेगा गान रे कवि,
जब रुदन ही गान शाश्वत् फिर दिवाने झूम गाकर—
'स्वप्न-सा है हास्य रे जग, पर रुदन तो है अनश्वर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आवारे' की यूरोप-यात्रा

डा० सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी०

'आवारे' से मेरी बड़ी पुरानी दोस्ती है। जबसे होश सम्हाला है, तभीसे मेरा उसका गहरा सम्बन्ध रहता चला आ रहा है। पूर्वी बंगालमें मँडरानेवाले मेघ, हिमालयसे निकलनेवाली नदियोंके कल-कल नाद, पश्चिमी घाटपर टकरानेवाली लहरों तथा महासमुद्रके गर्जनसे बातें करना मुझे उसीने सिखलाया है।

यूरोप भी मुझे उसीने दिखलाया, अथवा यों कहा जाय कि मैंने उसीकी दृष्टिसे देखा है। 'आवारेकी यूरोप-यात्रा' कोई काल्पनिक यात्रा नहीं, यथार्थ यात्राका ही वर्णन इस रूपमें लिखा गया है। हाँ, कई कारणवश स्थान तथा व्यक्तियोंके नाम अवश्य ही बदल दिये गये हैं; पर हैं वे यथार्थ। जिस प्रकार पेरिस, बर्लिन, नेपल्स आदि यूरोपके यथार्थ शहर हैं, उसी प्रकार हाना, केटी और हांस भी वास्तविक व्यक्ति हैं। इतनी बात अवश्य है कि जो बातें इन पात्रोंसे कहलाई गई हैं, अथवा जो कार्य वे करते हुए दिखलाये गये हैं, वे उस हद तक कहे वा पूरे न किये गये हों।

कुछ लोग कहेंगे कि स्थान तथा पात्रोंमें अथवा घटनाओंमें ही इस प्रकारके परिवर्तन लानेकी क्या आवश्यकता थी? क्यों नहीं उनका वास्तविक स्वरूप ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया। बात उपयुक्त होनेपर भी इससे मेरे उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हो सकती थी। मैं पाठकोंके सामने यूरोपीय समाजका 'फोटो' नहीं उपस्थित करना चाहता था, क्योंकि मुझे स्वयं ही वह नीरस जँचता था। आगेके पृष्ठोंमें यूरोपीय समाजकी वास्तविकताको न भूलते हुए, वहाँका एक कलापूर्ण चित्र अंकित किया गया है; वहाँके समाजके स्थिर नहीं, बल्कि चलायमान, परिवर्तनशील स्वरूपको आँखोंके सामने लाने तथा उन्हें अध्ययन करनेकी चेष्टा की गई है। मुझे उसका यही स्वरूप सच्चा, सजीव तथा जीवित-जाग्रत दीखता है, उसीसे हम बहुत-कुछ सीख भी सकते हैं।

[१]

वह मार्सेल*में जहाज़-घाटके पास ही गिरफ्तार किया गया। गिरफ्तारीका प्रत्यक्ष कारण तो मालूम नहीं; पर इतना स्पष्ट था कि इस प्रकारकी वेश-भूषावाले 'सज्जनों' का पदार्पण यूरोपके बन्दरगाहोंमें बड़े बिरले मुहूर्तमें ही हुआ करता है। उसकी कमरमें बड़ी लापरवाहीसे बाँधी हुई लुंगीके दो खूँट खुँसे थे। सामनेके दोनों फेंटे इस तरह ऊँचे बन गये थे कि चलते समय जान पड़ता था, मानो मुर्गीकी दो बच्चियाँ दोनों ओर वीरासन लगाये बैठी हों और एक-दूसरेपर हमला करनेके लिए पैंतरे बदल रही हों। लुंगीके फेंटोंको ढकनेका प्रयत्न ऊपरकी गंजीसे किया गया था, जिसके भीतरसे छातीके बाल बाहर झाँकी लगा रहे थे। उसके ऊपरसे एक काला कोट डाल लिया गया था, जिसमें केवल एक-आध टूटा हुआ बटन लटक रहा था। कोट और उसके क़दका ऐसा हिसाब था कि बटन और शरीरके बीचके फासलेसे एक गीदड़ आसानीसे आर-पार निकल जा सकता था। उसका यह समूचा 'विलायती लिबास' इतने अधिक झरोखोंसे बना था कि उसके समय-निर्धारणके लिए किसी अच्छे पुरातत्त्ववेत्ताकी आवश्यकता थी।

उसका क़द मझोला, पर ठीक बाँसके खूँटेके आकारका। खूँटोंके ठोंकनेपर जैसे उनका उपरला भाग चिप्टा हो जाया करता है और चारों ओरसे रेशे लटकते दिखलाई देने लगते हैं, ठीक उसी भाँति उसके चिपटे सरसे निकले हुए बाल चारों ओर लटक रहे थे। रंग ऊपरसे नीचे तक काला। चेहरेका रंग शायद वास्तवमें उतना काला न रहा हो; पर इस समय कोयलेसे पुते रहनेके कारण वह भी बिलकुल काला दीखता था। कोयलेकी बू उसके सारे शरीरसे निकल रही थी। इतना ही नहीं, चलते समय वह झड़-झड़कर उसके शरीरसे गिरता भी जा रहा था। अपने कपड़ोंको ज़रा झाड़ लेनेका भी कष्ट उठाना उसे पसन्द नहीं था।

जिस समय वह जहाज़से बाहर निकला, सवेरा भी नहीं हो पाया था। चारों ओर बड़े घने कुहासेके कारण अन्धकार छाया हुआ था। हवा बड़े ज़ोरोंकी चल रही थी। बन्दरगाहका सारा काम-काज बन्द रखा गया था। जो छोटे-छोटे स्टीमर बड़े-बड़े समुद्री जहाजको खींचकर बन्दरगाहके हातेमें ले आया करते हैं, उन्होंने भी मौसम खराब रहनेके

* मार्सेल दक्षिण फ्रांसका सबसे बड़ा बन्दरगाह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना काम उस समय बन्द कर रखा था। चुंगीवाले भी यह सोचकर कि इतना सवेरे और ऐसे मौसममें कोई बाहर न निकलेगा, निश्चिन्त हो झपकियाँ लेने लगे थे। वह शायद ऐसे ही मौकेकी ताकमें था। यदि नहीं, तो फिर ठीक ऐसे समयमें ही जहाज़से क्यों उतरा?

अक्सर सितम्बरके महीनेमें जैसी सर्दी उतने सवेरे मार्सेलमें रहा करती है, उसके हिसाबसे आज काफ़ी अधिक सर्दी थी। हवाके कारण वह सर्दी शरीरके भीतर हड्डियों तक चुभी जाती थी; पर शायद उसे इसकी ज़रा भी परवा न थी। अपने हाथ कभी हिलाता, कभी कोटके पाकेटमें रखे और कभी दोनों बग़लोंके नीचे दबाये वह बराबर आगे बढ़ता जा रहा था। जिस समय वह छोटा पुल पार कर रहा था, सामनेकी हवा ऐसी तेज़ थी कि उसे पीछे ढकेल देना चाहती थी। वह एक क्षण खड़ा रहा, फिर उसके चेहरेपर रूखी हँसीकी रेखा दिखलाई दी, मानो वह कह रहा था—"यह क्या है? मैंने इससे कहीं अधिक बड़ी मुसीबतोंका सामना किया है। तुम इतनेसे ही मुझे डराना चाहते हो?"

छोटे पुलके दूसरी ओर पहुँचते ही उसकी अगवानीके लिए आया हुआ एक कुत्ता उसके पीछे लग गया। कुत्तेने उसके पाँव चूम लेनेकी चेष्टा की; पर उसे उत्तर मिला—"धत्...तेरे...की..."

फिर दोस्ती आगे बढ़ानेकी चेष्टा न कर वह दुम हिलाता हुआ उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उसकी दूसरी ओर मार्सेल शहर अन्धकारमें छिपा था। अभी वह आधा पुल ही पार कर पाया होगा कि तेज़ हवाके साथ-ही-साथ बड़ी-बड़ी बूँदें भी टपकने लगीं। उसने चारों ओर घूमकर देखा। कुहासेके सिवा और कुछ भी न था।

इसी समय सामनेसे कर्कश स्वरमें आवाज़ आई—"आँ ताँ दे।"

वह इस शब्दका मतलब नहीं समझ पाया, फिर भी रुक गया। तुरत ही लम्बे-चौड़े डील-डौलवाले दो फ्रेंच सिपाही उसके सामने आ खड़े हुए। एक क्षण उन्होंने उसकी ओर बड़े गौरसे देखा, फिर एकने फ्रेंचमें पूछा—"अवरिये (मज़दूर)?"

उसे कोई उत्तर नहीं मिला। फिर उसने पूछा—"जिप्सी?"

इस बार भी उसे कोई उत्तर नहीं मिला। दूसरे सिपाहीने हँसते हुए अपनी ही भाषामें कहा—"आवारे भैया हैं।"

सिपाही उसे पकड़ ले चले। कहाँ और किसलिए लिये जा रहे हैं, इस बातका उसे पता न था; पर इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि वह गिरफ्तार कर लिया गया है। इतना होनेपर भी उसके चेहरेका हाव-भाव पहले ही जैसा बना रहा। मालूम पड़ता था, जैसे वह इसके लिए पहलेसे ही तैयार था, अथवा गिरफ्तारी-जैसी बातें उसके लिए बिलकुल स्वाभाविक-सी ही हो गई थीं।

कुत्ता भी पुलिसकी चौकी तक उनके साथ-साथ आया। जब दोनों सिपाही अपने असामीके साथ फाटकके भीतर चले गये और अपने पीछे फाटक बन्द कर लिया, तो वह बाहर बैठा उसके निकलनेकी बाट जोहता रहा। जब बहुत देर हो जानेपर भी कोई बाहर निकलता न दिखलाई दिया, तो वह दुम हिलाता हुआ आसपासकी मिट्टी सूँघकर वहाँसे चला गया।

[२]

उसी दिन तीसरे पहरकी बात है। मार्सेलमें एक रास्तेके किनारे जिप्सियोंकी एक घोड़ागाड़ी आ खड़ी हुई। जैसा प्रायः हुआ करता है, उनके पड़ाव डालते ही वहाँपर उनका अपना एक विशेष प्रकारका बाज़ार-सा लगने लगा। सबसे पहले गाड़ी हाँकनेवाला एक नौजवान जिप्सी गाड़ीसे उतरकर घोड़ोंको खोलने लगा। फिर एक युवती गोदमें एक बच्चेको लेकर उतरी और घोड़ोंके खानेके लिए जो घास फैलाई गई थी, उसीपर बैठ बच्चेको दूध पिलाने लगी। इसके बाद जैसे किसी कसकर आलू-भरे बोरेके फट जानेपर उसके भीतरसे आलू बाहर निकलने लगते हैं, उसी प्रकार गाड़ीके भीतरसे बूढ़े, बच्चे, नौजवान, स्त्री, पुरुष बाहर निकलने लगे।

ये जिप्सी भारतके अनेक भागोंमें पाये जानेवाले मगहिआ डोम अथवा बद्द जातियोंकी तरह अपना सारा जीवन गाड़ियोंपर ही बिताया करते हैं। वे चोरी, ठगी अथवा भीख माँगकर अपना निर्वाह किया करते हैं। उनके जीवनकी आवश्यकताएँ अधिक नहीं, पर जब जैसा हाथ लग गया, या भाग्य सुधर गया, उसीके अनुसार हुआ करती हैं।

इसी कारण उनके लिबास अपने निजी ढंगके ही थे। कितने बुड्ढोंके पाँवमें स्त्रियोंकी ऊँची एड़ीवाली जूतियाँ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी स्त्रियोंके पाँवमें पुरुषोंके बूट जूते थे, और कितने इस प्रकारके थे कि एक पाँवमें पुरुषका जूता और दूसरेमें स्त्रीका जूता पहने थे। उनके पायजामे, कोट आदि रंग-बिरंगके थे। एक पाँवमें हरे रंगका कपड़ा, तो दूसरे पाँवमें काले, उजले अथवा किसी चितकबरे रंगका था।

गाड़ीसे उतरकर एक जिप्सी भीख माँगने जानेके पहले अपने बेहलेका साज-बाज ठीक करने लगा। नालेके पास, जहाँसे बड़ी बदबू आ रही थी, बूढ़े आग जलाकर भोजन पकानेकी तैयारी करने लगे। कुछ स्त्रियाँ अपने लहँगोंपर कई प्रकारके अन्न बिछाकर साफ़ करने लगीं। दूसरी, जिनकी किशोरावस्था थी, शहरमें जानेपर सरलतासे लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें, इस बातके लिए तरह-तरहके आडम्बर रचने लगीं।

जिप्सियोंकी गाड़ीसे थोड़ी दूरपर ही वह अजीब विदेशी युवक बैठा था, जो आज सवेरे जहाज़से उतरा था और जिसे पुलिसने कुछ घंटे हाजतमें रखकर छोड़ दिया था। उस विदेशीकी विचित्र पोशाक देखकर एक जवान जिप्सी उसके पास पहुँचा और अपनी ज़बानमें कुछ बोला। उत्तरमें एक नये प्रकारकी ज़बान सुन, जिसका वह कुछ मतलब नहीं निकाल सका, उसे हँसी आ गई। फिर भी वह वहाँसे टला नहीं। उसके पास ही बैठकर अपना बेहला बजाने लगा। थोड़ी देर बाद उसने विदेशीको अपने साथ चलनेका इशारा किया; पर असफल रहा।

जिप्सी अकेला अपनी गाड़ीके भीतर गया और अपने हाथमें एक जाँघिया लेता आया। जाँघियेका आधा भाग काले कपड़ेसे तथा आधा सफेद फ़लालेनसे बना था, जिसमें लाल धारियाँ लगी थीं। जाँघिया दिखलाते हुए जिप्सीने अपनी ज़बानमें कुछ पूछा। युवकने समझा, शायद जिप्सी जाँघिया बेचने आया है। उसने अपने कोटका पाकेट उलटकर दिखलाते हुए कहा—"पासमें कानी कौड़ी भी नहीं।"

जिप्सी इसका मतलब समझ गया। थोड़ी देर तक वह रुका रहा, कुछ निश्चय नहीं कर पाया; फिर हँसते हुए जाँघिया उसके सामने फेंक दिया और अपनी गाड़ीकी ओर चला गया।

युवकने जाँघिया कमरमें डाल लिया और अपनी लुंगी समेटकर बग़लमें दबाया ही चाहता था कि एकाएक ज़ोरोंसे वर्षा आई। अब कम्बलकी तरह अपनी लुंगी ऊपरसे डाल वह रास्तेके किनारेके एक पेड़के नीचे जा खड़ा हुआ।

जिप्सी अपने बाहर डाले हुए असबाब समेट, अपने बच्चोंको लेकर फिरसे गाड़ीके भीतर चले गये थे। गाड़ीकी सभी खिड़कियाँ बन्द कर ली गई थीं; पर उसका दरवाज़ा खुला हुआ था और उसके बीच युवा जिप्सी बेहला लिये बैठा था।

मूसलधार पानी बरसने लगा।

वह पेड़के नीचे खड़ा-खड़ा सरसे पाँव तक भींग गया। सर्दीके कारण उसके दाँत कटकटाने लगे। जहाज़से उतरनेके बादसे अब तक वह अपने-आपको एक प्रकारसे भूला हुआ था। इस समय ऐसा मालूम पड़ा, जैसे वह आहिस्ता-आहिस्ता होशमें आ रहा हो। अभी उसे यह भी याद आया कि सवेरेसे उसने कुछ खाया नहीं है।

अब अन्धकार छा जानेसे संध्या हुई-सी दिखलाई देती थी। रात कहाँ बितायेंगे, इसकी भी चिन्ता हो रही थी। बार-बार उसके मनमें आता कि पानी रुकते ही रात बितानेके लिए स्थान ढूँढ़ने निकलेंगे; पर आकाशमें काले बादलोंके घिरते जानेके कारण अधिकाधिक अन्धकार छाता जा रहा था और वर्षा रुकनेके आसार ही नहीं दिखलाई देते थे।

उसने आँखें उठाकर सामने देखा। जिप्सी अपनी गाड़ीके दरवाज़ेपर बैठा बेहला बजा रहा था। बेहलेका राग रुलानेवाला था। उसके तारोंसे जो राग निकल रहा था, शायद ठीक उसी प्रकारका राग पेड़के नीचे खड़े उस युवकके हृत्तन्त्रीसे निकल रहा था।

बाहर ज़ोरोंकी वर्षा हो रही थी।

रह-रहकर उस युवकके मनमें आता—'घर न छोड़ता, वही अच्छा था। वहाँ कम-से-कम ऐसी सर्दी तो नहीं थी; पर नहीं, वहाँ भी मेरे लिए कौन-सा स्वर्ग था! चारों ओरसे कुत्तोंकी तरह दुतकारा जाता था, यहाँ भी वही हाल है। मेरे लिए जैसा वहाँ, वैसा यहाँ। मेरे भाग्यमें सुख नहीं।

'फिर क्या ऐसे ही भूखे-प्यासे और सर्दीसे ठिठुरते हुए मैं यहाँ मर जाऊँगा? लोग किसी मरे हुए कुत्तेको जैसे घसीटकर कहीं फिंकवा देते हैं, ठीक उसी प्रकार क्या मेरी लाश भी फिंकवा दी जायगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरी लाशको दफ़न करनेवाला भी कोई नहीं मिलेगा ? किसीको यह भी पता न चलेगा कि मैं भी कभी आदमीके रूपमें ज़िन्दा था ?'

उसने अपने होंठ दाँतोंके नीचे कसकर दबा रखे थे। सरका पानी ठुड्डीसे होकर नीचे गिर रहा था। कभी-कभी उसकी एकआध बूँद वहाँपर अटक जाया करती और उस युवकके गालोंकी नसें इस प्रकार तन जाया करतीं, मानो उसका रोम-रोम कह रहा हो—'नहीं, मैं इस प्रकार कदापि नष्ट नहीं हो सकता।'

उधर जिप्सी अपनी गाड़ीके दरवाज़ेपर बैठा बेहला बजा रहा था। हवा सायँ-सायँ करती हुई वृक्षोंको झकझोर रही थी।

और मूसलधार पानी बरसता जा रहा था।

[३]

वह दिन आज अतीतके गर्भमें कितनी दूरपर दिखलाई देता है! उस दिनकी याद करनेपर जिप्सीके बाजेका वह सुर मेरी तन्त्रियोंको आज भी उसी दिनके समान स्पन्दित करता है। हाँ, इतना अवश्य है कि उस दिनके अपने वेष तथा स्वरूपको बिलकुल पहचान पानेके लिए मुझे थोड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। क्या वह वास्तवमें मेरा अपना चित्र है ? नहीं, वह चित्र नहीं, वह तो स्वयं मैं ही हूँ। फिर इस प्रकार और इस वेषमें आखिरमें विदेश आया ही क्यों ?

नहीं, मैं आया नहीं, बल्कि इधर भटक पड़ा। जन्मसे ही मेरी भटकनेकी आदत है। अपनी विपरीत इच्छा रहनेपर भी भाग्यका ऐसा कोप मेरे ऊपर रहता चला आया है कि सदा किसी तरह पृथिवीके एक कोनेसे दूसरे कोनेमें लुढ़कता रहा हूँ। मेरे इस प्रकारसे भटकते रहनेमें दोष चाहे जिस किसीका हो, बाल्यकालसे अब तकके अपने जीवनपर यदि कभी मैं दृष्टि डालता हूँ, तो मेरे भीतर मुझे सताने अथवा दबा रखनेवाले समाजके ही प्रति नहीं, बल्कि सारे संसारके प्रति एक प्रकारका क्रोध-सा भर आता है।

मेरा जीवन किन्हीं विशेष कारणोंसे बड़ा कठिन तथा दुःखमय बीतता आया है, और मैं बाल्यकालसे ही एक प्रकारका अकेलापन अनुभव करता आ रहा हूँ। मनुष्य मेरे लिए सदा अपरिचित-से ही रहते चले आ रहे हैं, क्योंकि उनके साथ थोड़े समयके सहवाससे ही मेरा दम घुटने लगता है, और मैं अपने योग्य किसी दूसरे स्थानकी खोजमें निकल पड़ता हूँ।

पर यह 'दूसरा स्थान' है कहाँपर ? अपनी सोलह वर्षकी अवस्था पूरी भी नहीं हो पाई थी कि हिमालयसे लेकर कुमारी अन्तरीप तक और अरब समुद्रसे लेकर बंगालकी खाड़ी तकके सारे प्रदेश छान डाले ; पर मेरी अवस्थामें कोई सुधार नहीं हुआ। सत्रहवाँ वर्ष आरम्भ हो रहा था, उस समय संयोगसे एक बार फिर कलकत्ते आया। इस बार मेरी यात्रा करनेकी इच्छाका वेग थोड़ा कम हुआ-सा दीखने लगा। उस समय मैं स्ट्रैन्ड रोडपर ठीक गंगा किनारेके एक मकानमें रहा करता था। गरमी समाप्त हो चली थी और वर्षाऋतु आरम्भ हो गई थी। संध्या समय जब काम-काजसे थोड़ी देरके लिए फुर्सत मिलती, तो मकानकी सबसे ऊपरवाली छतपर चला जाया करता और मेघाछन्न आकाशके नीचे खड़े हो गंगाकी ओर बहुत देर तक देखा करता। वहाँपर कई बार बड़े-बड़े जहाज़ सामनेसे जाते हुए दिखलाई देते। उन्हें देखकर मनमें आता—'क्या ही अच्छा होता, यदि गंगाका दूसरा किनारा बिलकुल ही न होता और फिर एक ऐसे ही जहाज़में अकेले बैठकर इन दीन मनुष्योंसे, इस नरकतुल्य शहरसे, इस कष्टमय जीवनसे छुटकारा पाकर सदा सुदूर क्षितिजकी ओर चलता चला जाता।'

उस समय और भी अनेक प्रकारके भाव मनमें आया करते। ये भाव कभी बड़े विषाद भरे होते और कभी इतने उत्फुल्लता तथा आशा भरे हुआ करते कि शरीर बिलकुल हलका-सा बोध होता और मालूम पड़ता कि इस घरसे भी 'उड़' जाना कुछ कठिन नहीं।

जबसे उस घरके 'मेजदादा' यूरोपमें अपनी पढ़ाई समाप्त कर घर लौटे और वहाँका हाल सुनाने लगे थे, उस घरसे 'उड़' जाना मैंने बिलकुल निश्चय कर लिया। उनकी यूरोप-सम्बन्धी बातें मैं बड़े ध्यानसे सुना करता। बातोंका सारांश यह होता अथवा उनका मतलब मैं यह लगाता कि यूरोप सुख-ऐश्वर्यकी खान है ; दुःख किस चिड़ियाका नाम है, वहाँ कोई जानता ही नहीं ; भोग-विलासका तो वह अगाध समुद्र ही है।

मेरे मनमें आता—'फिर उस समुद्रमें भी एक गोता क्यों न लगाया जाय ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेजदादा पेरिस शहर और वहाँकी लड़कियोंके विषयमें अकसर विस्तारपूर्वक चर्चा किया करते। उनकी बातें मेरी आँखोंके सामने एक अनोखे, अब तक अपरिचित, सुन्दर, मधुर, ऐश्वर्यमय संसारका चित्र ला खड़ा किया करतीं। इस प्रकारके संसारका भी पृथिवीपर होना सम्भव है, यह बात पहले-पहल ही मेरे मनमें स्थान ग्रहण कर सकी। उसी क्षणसे उस संसारकी एक झलक लेनेके लिए मैं उतावला हो उठा।

पर 'मेजदादा'के कथनानुसार उस संसारमें उनके जैसे ही बड़े लोगोंके लिए स्थान मिलना सम्भव था। मैं उनकी बातसे हतोत्साहित नहीं हुआ। उस यूरोपीय संसारकी एक झलक देखनेकी मेरे भीतर इतनी प्रबल इच्छा थी कि मैंने यह निश्चय किया कि यदि उस भोग-विलास, सुख-ऐश्वर्यके स्वयं उपभोग करनेका अवसर मुझे न मिला तो न सही, कम-से-कम उसे देखकर तो अपनी आँखें ही ठंडी कर लूँगा!

एक बार मेजदादाने बतलाया कि वे पेरिसमें लुव्र देखने गये और वहाँपर संगमरमरकी बनी नग्न स्त्रियोंकी अनेक अवस्थाओं और भावोंकी मूर्तियाँ देखीं और उनसे उनका मन विचलित होने लगा। फिर वे उसी दिन शामको सीन नदीके किनारे टहलने निकले, तो ठीक उस मूर्तिके ही समान एक सुन्दर स्त्री स्वयं हँसती हुई उनके सामने आई और उन्हें लुभानेकी तरह-तरहकी चेष्टाएँ करने लगी। वह सुन्दरी उनपर बिलकुल मुग्ध थी, और उससे उन्होंने बड़ी कठिनाईसे कई महीनोंके बाद अपना पीछा छुड़ाया। मेजदादा कह रहे थे कि उनके भारत लौट आने तक वह उन्हें प्यार करती रही और प्यारके खत प्रति सप्ताह हवाई-डाकसे भेजती रही।

मेरी आँखोंके सामने एक बड़ी कोमल तथा सुन्दरी स्त्रीका चेहरा नाचने लगा। वैसी सुन्दरता वास्तवमें कभी अपनी आँखों देखी नहीं थी; पर चित्र आदि देखकर सुन्दरताकी पराकाष्ठाकी जो कल्पना की जा सकती है, वही आँखोंके सामने नाचने लगी। इतना ही नहीं, किसी शहर या देशकी सुन्दरता, वहाँके लोगोंकी कान्ति, वहाँके ऐश्वर्य आदिकी जितनी भी ऊँची तथा सुन्दर कल्पना की जा सकती थी, मैं उस अनोखे यूरोपीय संसारमें देखने लगा। उस समय तकके मेरे जीवनमें मेरा परिचय केवल उन्हीं चीज़ोंसे हुआ था, जिनका नाम लोग दरिद्रता, दुख अथवा हतभाग्य दिया करते हैं; इनसे केवल विभिन्न ही नहीं, बल्कि ठीक विपरीत जितना अधिक धनधान्य, सुख-सम्पन्न देश उस समय कल्पना द्वारा देखा जा सकता था, मैं यूरोपके संसारमें देखने लगा।

मेजदादाके विषयमें सोचता—'इस आदमीने इतना सब देखा है! और मैं?'—

मेजदादासे अपनी तुलना करनेपर मुझे दिखलाई देता कि केवल उनके कपड़े मुझसे अच्छे थे, नहीं तो दूसरे किसी भी मामलेमें वे मुझसे श्रेष्ठ नहीं। वे न तो मेरे जितना दौड़ सकते थे और न मुझसे कुश्तीमें ही जीत सकते थे; फिर यदि उनके लिए उस यूरोपीय संसारकी झलक देखना सम्भव हो सका, तो मेरे लिए भी अवश्य ही हो सकता था।

यूरोपकी झलक देखनेका जोश ऐसे ज़बर्दस्त रूपमें सरपर सवार था कि कठिनाइयाँ चाहे जितनी बड़ी भी क्यों न हों, सबका सामना करनेके लिए खुशीसे तैयार था।

प्रत्येक क्षण मनमें आया करता—'लपककर किसी जहाज़में जा बैठूँ और अपने संसारसे विभिन्न तथा विपरीत उस यूरोपीय संसारकी चमक देखूँ; स्वयं एक दिन लुव्रमें जाकर अपनी आँखों संगमरमरकी वे मूर्तियाँ देखूँ और संध्या समय सीन नदीके किनारे उस अलौकिक सुन्दरीके प्रेमका पात्र बनूँ।'

उस समय यह मेरा केवल एक स्वप्नमात्र था।

[४]

फिर भी यह स्वप्न इस प्रकारका था कि मुझे एक क्षणके लिए भी चैन नहीं लेने देता। चाहे जिस प्रकार भी हो, उसे सफल होते देखना चाहता था। जब मेरी इस भावनाका मेरे मालिकोंको पता लगा, तब तो हँसीके मारे उनके पेट फूलने लगे। साथ ही वे बात-बातमें मुझे ऐसा बनाने लगे कि उनके घरमें और अधिक दिन टिकना मेरे लिए भार-सा हो गया।

अब मेरी मालिकिन मेरे कामकी नुक्ताचीनी पहलेकी अपेक्षा अधिक कड़ाईसे करने लगीं। यदि टेबिल अच्छी तरह साफ न की होती अथवा बच्चों द्वारा फेंका गया कूड़ा-करकट ज़रा देर तक फर्शपर पड़ा रह जाता, तो मुझे ताना देते हुए कहने लगतीं—'तू अब नवाबका नाती बनने चला है! यूरोप जानेकी सोच रहा है! अब तुझे हमारी नौकरीकी क्या परवा?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन आध घंटा तक ऐसी ही फटकार सुनानेके बाद कह भी दिया—'अब तू यहाँसे बोरिया-बस्ता बाँध ; मेरे यहाँ तेरे लिए स्थान नहीं।'

उस दिन संध्या समय छतपर जानेपर मनमें आने लगा—'अब इस जीवनसे मैं वास्तवमें ही ऊब गया। नया जीवन आरम्भ करनेका मुझे दृढ़तापूर्वक निश्चय कर लेना चाहिए।'

मौसम उस दिन अच्छा न था, फिर भी किसी नये स्थानपर काम ढूँढ़नेके लिए घंटों घूमता रहा। रातमें भी नींद नहीं आई। दूसरे दिन यह सोचकर कि और नहीं तो मोट ढोनेका काम करूँगा, जहाज़-घाटकी ओर गया ; पर वहाँ पहुँचनेपर मालूम हुआ कि इसके लिए भी सर्वप्रथम जमादार साहब और सिपाहीजीको दो-दो रुपये दक्षिणा देने पड़ते हैं।

उस दिन मेरे सोनेका सिलसिला जहाज़-घाटके निकट एक पानवालेकी दूकानके सामनेकी पटरीपर जमा। मुझे नींद नहीं आ रही थी। पासमें ही एक बहुत बड़ा जापानी जहाज़ लंगर डाले खड़ा था और उसमें मालकी बोझाई हो रही थी।

मैं रास्तेके किनारे खड़ा-खड़ा बड़ी देर तक बोझाईका काम देखता रहा। लोहेके विशाल क्रेन बड़ी-बड़ी जूटकी गाँठोंको, जिन्हें चार-पाँच आदमी शायद ही लुढ़का पाते, नचाते हुए ऊपर उठाते और भीतर ले जाकर छोड़ आते। उनके लिए यह बच्चोंके खेलके समान था।

कुछ देर बाद मेरे पीछेसे एक मोटर वहाँपर आ खड़ी हुई और उसके भीतरसे दो सूट-केस तथा और भी बहुत-सा सामान लिये एक आदमी निकला। वह आदमी कोई जहाज़में काम करनेवाला अफसर-सा दीखता था। उसने इधर-उधर देखा और मुझे जहाज़की ओर निहारते देख पुकारकर कहा—"कुली!"

मैं उस आदमीका सामान उठाये जहाज़में घुसा। पहरेपर के सिपाहियोंने बिलकुल ही नहीं टोका। जहाज़में भी कई बार सीढ़ियोंपर चढ़ना-उतरना पड़ा। अन्तमें एक केबिनका दरवाज़ा खोल उसने मुझे भीतर सामान रख देनेको कहा और जब मैं तनकर उसके सामने खड़ा हुआ, तो उसने मेरे हाथमें एक अठन्नी पकड़ा दी। मैं जैसे ही उसकी केबिनसे निकला, उसने अपना दरवाज़ा बन्द कर लिया।

मैं जहाज़से बाहर निकलनेका रास्ता भूल गया। जाना था मुझे बाहर निकलनेकी सीढ़ियोंके पास, किन्तु पहुँच गया कोयला रखनेके स्थानपर। वहाँपर बड़ी गर्मी थी। थोड़ी चेष्टा करनेपर पोर्ट होलका शीशा खुल गया। मैं ठंडी हवामें साँस लेने लगा। बाहर झाँककर देखा, फिर भी जिस सीढ़ीसे उस जहाज़में घुसा था, वह दिखलाई नहीं पड़ी।

घड़घड़ाहट हुई। किसीके बिगुल बजानेकी आवाज़ हुई। जहाज़ हिलने लगा। मेरे पाँव थरथर काँपने लगे। कुछ देर बाद सामने देखा, तो मालूम हुआ कि सामनेकी पृथिवी चलने लगी।

वास्तवमें जहाज़ खुल चुका था।

तो क्या सचमुच ही मेरा स्वप्न पूरा होने जा रहा था?

[५]

मुझे बचपनकी बातें याद आने लगीं। घोड़ागाड़ीके पीछेकी पटरीके सहारे लटकता हुआ अकसर स्कूल जाया-आया करता था। घोड़ेके लिए बात समान ही रहती ; मेरे लटकनेसे उसका कुछ भी बोझ बढ़ता हुआ नहीं दिखलाई देता। हाँ, अन्तर केवल बेहूदे कोचवानोंको दीखता, जो अपनेको बैठा देख और सभी लोगोंको अपनेसे नीचा देखते थे।

फिर सोचता—'किराया देकर तो चाहे कोई भी बेवकूफ़ सारी ज़िन्दगी सफ़र करता रह सकता है ; उसे आखिर करना ही क्या पड़ता है? लदके किसी गाड़ी अथवा जहाज़पर बैठ जाना और दिनमें आठ-आठ बार ठूँसा करना। उसमें आखिर हिकमत ही क्या अथवा अक़्लसे ही क्या वास्ता?'

मनमें आता—'इस जहाज़पर सफ़र करना भी तो घोड़ागाड़ीकी पटरीपर सफर करने-जैसा ही आसान दीखता है।'

क्रमशः कलकत्ता शहर आँखोंकी ओट हो गया। अब नदी किनारे बहुत दूर-दूरके फासलेपर छोटे-छोटे गाँव दिखलाई देने लगे, जहाँपर अधिकांश घर केवल फूसके ही बने थे। धूप निकल आई थी। नदी किनारे बहुतेरे नर-नारी पुण्य-सलिला भागीरथीमें गोते लगा रहे थे। ये लोग भी अपरिचित थे ; पर न-जाने आज क्यों उनके प्रति भी मेरे भीतर एक विचित्र प्रकारका भाव आ रहा था। मुझे जीवनमें दूसरा और कोई वैसा मौक़ा याद नहीं आता, जब मैंने मनुष्योंको उतनी प्यारकी दृष्टिसे देखा हो।

इस प्रकार किनारेकी ओर देखते-देखते घंटों बीत गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब गाँव भी बहुत दूर-दूरपर मिलने लगे और किनारेकी हरियाली भी वैसी घनी नहीं रह गई। किनारा सूखा हुआ और बालुकामय दीखने लगा। धीरे-धीरे उस किनारेसे भी हमारा जहाज़ दूर हटता चला गया। उस समय भी मैं कोयलेसे भरे संकीर्ण स्थानमें ही था। रह-रहकर मेरे मनमें उठता—'पता नहीं, आगे मुझपर क्या बीतेगी? आखिर मेरे भाग्यमें लिखा क्या है?'

मुझे ज़ोरोंकी प्यास लग आई। पिछले दिन शामको जिन लोहेकी सीढ़ियों और जिस लोहेके फाटकको पारकर आया था, उसी रास्तेसे बाहर निकलने लगा। उठकर चलते समय बड़ी कमज़ोरी मालूम पड़ने लगी; मालूम पड़ता था, शरीर सूखकर काँटा हो गया है।

मैं मेशीनघरमें जा पहुँचा। वहाँ कोनेमें पानीका एक पीपा रखा था और जंजीरसे बँधा एलोमीनियमका एक गिलास उसके पास लटक रहा था। जो लोग मेरी ओर कौतूहल-भरी दृष्टिसे देखने लगे, बिना उनकी ओर ध्यान दिये ही मैं सीधे उस पानीके पीपेके पास गया और एक ही साँसमें तीन गिलास पानी पी गया।

लोग मुझे पकड़कर कप्तानके पास ले गये। मुझे देखकर कप्तान अपनी ज़बानमें फटकार सुनाने लगा; पर यह अच्छा था कि मैं उसकी ज़बान नहीं जानता था। डर मुझे इस बातका था कि कहीं वह मेरे गालोंपर तमाचे न जमाने लगे; पर इस बातका भय भी यह देखकर जाता रहा कि कप्तान क़दमें मुझसे छोटा और दुर्बल था।

मेरी ओरसे अपनी फटकारोंका कोई उत्तर न पा उसने एक रसोइयेको बुलाया। यह रसोइया भारतवासी था। उस रसोइयेको दुभाषिया बनाकर मुझसे कई प्रश्न किये गये। उनका मैंने ऐसा-वैसा ही उत्तर दे दिया। थोड़ी देर बाद मुझे यह सूचित किया गया कि अगले बन्दरगाहमें मैं पुलिसके हवाले कर दिया जाऊँगा और उस समय तक मुझे रसोईघरमें काम करना होगा।

मैं यह आशा नहीं करता था कि जान इतने सस्तेमें छूटेगी, इसीलिए कप्तानके कमरेसे निकला तो पाँव हल्के पड़ने लगे। रसोईघरमें जा पहुँचनेपर खानेकी कोई कमी नहीं दिखलाई दी। मेरे सूखते हुए अंग फिरसे पनपने लगे। रसोइयेने एक कोनेमें रखा फलका टोकरा दिखलाते हुए कहा—"जितना मनमें आये, खाओ; पर यहाँसे जाते समय दरवाज़ा बन्द कर देना।"

इतना कहकर वह चला गया। उसके जाते ही मैं फल खाता हुआ उठ खड़ा हुआ और पोर्ट होलसे बाहर समुद्र देखने लगा।

जहाज़ आगे चलता चला जा रहा था।

[६]

मेरी पाक पंडिताईसे आजिज आकर दूसरे दिन ही उस्ताद रसोइयेने कहा—'तुम्हारी मुझे यहाँ ज़रूरत नहीं! तुम मुझे सहायता नहीं करते, बल्कि मेरे काममें अड़ंगा ही लगाया करते हो! जाकर छतपर नावोंमें पालिश लगाया करो।'

उसी दिनसे जहाज़में मेरा एकमात्र काम सबसे ऊपरवाली छतपर रखी नावोंमें पालिश करना था। सबसे पहली घंटी पाँच बजे सवेरे बजा करती, उसी समय उठकर मैं सीधे छतपर चला जाया करता। जहाँपर क्षितिज दिखलाई देता, वहाँ तक चारों ओर पानी ही पानी रहता। उसे देखकर आप-ही आप कह उठता—'नहीं, इसका कहीं भी अन्त नहीं है।'

हाथमें दाँतोंसे आधा कुतरा हुआ सेब लिये और समुद्रकी विशालताकी ओर दृष्टिपात करते समय जब कभी कलकत्ते अथवा उसके पूर्वके जीवनपर एक दृष्टि जाती, तो मनमें आने लगता—'आखिर मनुष्य-समाज कितना संकुचित है?' यह प्रश्न मनमें आते ही शंका होने लगती—'आखिर वैसे संकुचित जीवनसे दम घुटकर हम मर क्यों नहीं जाते?'

'अच्छा हुआ कि उन मनुष्योंसे दूर, अधिकाधिक दूर, अनन्तकी ओर बढ़ता चला जा रहा हूँ।'

पर 'उन मनुष्यों' से दूर कहाँ हो पाया था! कोलम्बोमें मुझपर क्या बीतेगी, यह चिन्ता अकसर सताया करती। इन चिन्ताओंसे थोड़ी देरके लिए उसी समय मुक्ति मिला करती, जब जहाज़में कोयला झोंकनेवाले कासिमोव नामके एक तातारसे बातें हुआ करतीं। अरब सागरमें चलनेवाले जहाज़ोंपर रहते-रहते इस तातारने भी हिन्दी सीख ली थी, और इसी भाषामें वह मुझसे बातें भी किया करता था।

वह डेकपर अपने हाथोंका तकिया बनाकर लेट जाता और बड़ी देर तक अपनी लाल दाढ़ी हाथोंमें थामे रहता। मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा न होनेपर भी वह अपने साथ बातें करनेके लिए मुझे लाचार किया करता और सदा ही अपने बीते हुए जीवनको धिक्कारा करता। कोलम्बोमें जहाज़ लगनेके एक दिन पहले उसने कहा—'अब इस जहाज़से ऐसा ऊब गया हूँ कि एक दिन भी यहाँ टिके रहनेकी तबीयत नहीं होती। पोर्टसैद पहुँचते ही मैं बड़ा-सा अलखला शरीरपर डाल लूँगा और जुम्माके दिन मस्जिदमें जाकर नमाज पढ़ूँगा, मुल्लेको मक्के-मदीनेकी बड़ी-बड़ी बातें सुनाऊँगा और कहूँगा कि वे मुझे अपना शागिर्द बना लें। फिर ग्रीसकी एक बीवीके साथ उसी मस्जिदमें निकाह कराऊँगा और चैनसे ज़िन्दगी बिताऊँगा।'

अपने भविष्यके कार्यक्रमके विषयमें मैं भी उसीसे राय लिया करता। पुलिसके भयकी उससे चर्चा की, तो उसने कहा—'जब तुम्हारा नाम ही उनके लाल रजिस्टरमें दर्ज नहीं, तो फिर किसी पागल कुत्तेने उन्हें थोड़े ही काट खाया है कि वे तुम्हारी अगवानीके लिए आगे आयँगे!'

मैंने उत्तर दिया—'लेकिन कप्तानने तो मुझे वैसी ही धमकी दी है।'

'तुम निरे मूर्ख हो। कप्तानको क्या पड़ी है कि वह फ़िज़ूलकी झंझटमें पड़े। उसका तो तुमसे काम ही निकलेगा। आजकल पोर्टसैदमें अफ़ीम और कोकेनके व्यवसायमें बहुत लाभ है। चुंगीवालेकी आँख बचानेके लिए इन दोनों चीज़ोंकी पुटलियाँ कप्तान तुम्हारे ही हवाले कर देगा और उसे बाजार तक पहुँचा आनेके लिए कहेगा। इसमें तो उसकी चाँदी-ही-चाँदी है।'

[७]

कोलम्बोमें हम लोगोंका जहाज़ कोयला लेनेके लिए चार घंटे तक टिका रहा। मुझे कोई टोकने नहीं आया। मैंने वह समय कासिमोवकी केबिनमें बैठकर उससे बातें करनेमें बिता दिया। आगेके भी कई दिन निरापद बीत गये।

समुद्रकी लीला प्रत्येक दिन देखते रहनेका मैं ऐसा अभ्यस्त-सा हो गया था कि एक दिन जब स्वेज़की नहरके पास हमारा जहाज़ आ टिका, तो मुझे उस परिवर्तनमें आश्चर्य होने लगा। अब पुलिसके हवाले कर दिया जाऊँगा, यह भय भी आँखोंके सामने नाचने लगा।

हम लोगोंका जहाज़ दो घंटे तक टिका रहा; पर कोई मुझे बुलाने नहीं आया। मैं सबसे ऊपरवाले डेकपर खड़ा नहरके मुहानेपर बनी नई इमारतें देख रहा था और सोच रहा था कि वहाँ शायद किसी कठिनाईका सामना न करना पड़ेगा। पर इसी समय हमारे देशी रसोइयेने आकर कहा—'तुम्हें कप्तान साहब नीचे बुला रहे हैं।'

कप्तानके पास काली पोशाकमें एक यूरोपियन बैठा था। वह मेरी ओर देखकर इस प्रकार हँसा, मानो मेरे-जैसे उद्दंड लोगोंसे बहुत पहलेसे ही परिचित हो चुका है। मैंने सोचा, शायद वह जेलर है, जिसके हवाले मुझे कर दिया जायगा; पर मेरी आशंका निर्मूल निकली। काली पोशाकवाला डाक्टर था और उसके सामने केवल एक बार हाजिरी दे आनेकी आवश्यकता थी।

जहाज़ फिर आगे बढ़ने लगा। स्वेजकी नहरसे होकर हम जा रहे थे। दोनों ओरके किनारे बहुत निकट थे और कभी-कभी वहाँपर ऊँचे बाँधपर रेलगाड़ी दौड़ती हुई दिखलाई देती थी। कभी-कभी हमारे जहाज़-जैसे ही बड़े-बड़े जहाज़ बग़लसे होकर गुज़र जाते थे।

अँधेरा हो जानेके बाद हमारे जहाज़ने पोर्टसैदके बन्दरगाहमें प्रवेश किया। वहाँ बड़ी देर तक पुलिसके दो सिपाहियोंने मुझसे देशी रसोइयेके सहारे जिरह की और बार-बार मुझसे मेरा पासपोर्ट माँगा। फिर मैं वास्तवमें ही वर्दी-पेटी लगाये सिपाहीके हवाले कर दिया गया। वह हमारी भाषाके दो शब्द जानता था—'बदमाश' और 'चल'। मैं उसके साथ-साथ जहाज़से उतरा। जहाज़का एक कर्मचारी भी हमारे साथ हो लिया, जिसकी छोटी-सी पोटली मुझे ले चलनेके लिए दी गई। चुंगीघरसे आगे निकल जानेपर मुझे ऐसा दिखलाई देने लगा, मानो पुलिस-कर्मचारी स्वयं ही अपने साथ और आगे मुझे नहीं ले जाना चाहता। एक चौराहेपर पहुँचकर मेरे हाथसे पोटली लेते हुए उसने एकाएक कहा—'भाग जा।'

अब मैंने समझा कि उसे मेरी ज़बानके दो नहीं, बल्कि तीन शब्द आते थे। वह स्वयं जहाज़-कर्मचारीके साथ आगे चलता चला गया और मैं दाहनी ओर घूमा। कहाँ और किसलिए जा रहा हूँ, मुझे मालूम नहीं था; मैं केवल आगे बढ़ता जा रहा था। इसी समय पीछेसे परिचित स्वरमें किसीने मेरा नाम पुकारा। मैं आश्चर्यचकित हो उधर देखने लगा। लाल दाढ़ीवाला कासिमोव हँसता हुआ मेरी ओर आया। अब उसने ऐसा अच्छा सूट पहन लिया था कि पहली झलकमें उसे पहचानना ही मुश्किल हो रहा था। उसने हँसते हुए कहा—'कहो, क्या हाल है? मैंने तो पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कह दिया था न कि यदि लाल रजिस्टरमें नाम दर्ज नहीं, तो कप्तान साहब अथवा सिपाहियों तकको तुम्हारी सेवाओंसे इनकार नहीं। सस्ते छूट आये ? मार तो नहीं पड़ी ?'

'नहीं।'

'यह मैं पहलेसे ही जानता था। चलकर अब कहीं एक छाक पीया जाय।'

'मैं नहीं पीता।'

'सच ! बड़े ही मनहूस हो। यह तुम्हें सीखना पड़ेगा।'

हठात् हमारे सरके ऊपरसे किसीके सीटी बजानेकी आवाज़ आई। हम लोग एक बड़े फाटकवाले घरके सामने खड़े हो गये। एक आदमी अरबी लिबासमें उस फाटकसे बाहर निकला और कासिमोवसे बातें करने लगा। मैं उनकी बातोंका सारांश नहीं समझ पाया ; पर मुझे इतना पता अवश्य लग गया कि वे किसी चीज़की मोल-मोलाई कर रहे हैं। उस आदमीसे बातें खतम करते ही कासिमोवने मुझसे पूछा—'फिर तुम क्या करोगे ?'

'पता नहीं।'

'अच्छा, एक काम करो। सीधे इस सड़कसे जाकर बाईं ओर घूम जाना। वहाँ हम लोगोंका जहाज़ लगा है, उसके पास ही घूमते रहना। मैं कुछ देर बाद लौटूँगा। तुम मेरे साथ ही जहाज़में घुस चलना और मार्सेल तकका सफ़र कर लेना।'

'इच्छा तो है, पर···'

'फिर डरकी कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी मदद करूँगा।'

वह अरबके साथ उस घरमें घुस गया और मैं उसी सड़कपर टहल लगाने लगा। दो घंटेसे अधिक बीत जानेपर भी कासिमोव उस घरसे नहीं निकला। मैं जहाज़की ओर लौट चला।

रातको एक बज गया था ; पर सड़कपर काफी चहल-पहल थी। रंग-बिरंगे कपड़े पहने अरब लोग जहाज़से निकलने-घुसनेवाले यात्रियोंके हाथ तरह-तरहकी छोटी-मोटी चीज़ें बेचनेका प्रयत्न कर रहे थे। उन चीज़ोंमें अधिकतर चित्रित पोस्ट कार्ड तथा गुड़िया, ये दो चीज़ें थीं। खरीदार उन चीज़ोंको खरीदना नहीं चाहते, फिर भी अरब उन्हें खदेड़ते चलते। कुछ अरब जवानोंके हाथमें कोई चीज़ दिखलाई नहीं दी, फिर भी वे चिल्ला-चिल्लाकर यात्रियोंके पाससे फटकनेके समय 'लबलब लबलब' कह रहे थे।

मेरी शकल-सूरत, वेश-भूषा देखकर ही कोई मेरे सामने कुछ बेचने नहीं आया ; पर मैं बड़ी देर तक यह तमाशा देखता रहा। मुझे सर्दी लगने लगी। एक ओसारेमें सर्दीसे सिकुड़ता हुआ बड़ी देर तक खड़ा कासिमोवके आनेकी बाट जोहता रहा ; पर उसका कहीं नामोनिशान भी नहीं था।

अब धीरे-धीरे सवेरा भी हो चला। जहाज़की मुख्य सीढ़ी हटा दी गई और उसके खुलनेका भी समय आ गया। मुझे पक्का निश्चय हो गया कि मैं यहाँ ही अपने भाग्यको कोसता रह जाऊँगा।

जहाज़के पास ही कई बड़ी-बड़ी नौकाएँ लगी थीं और उनमें से कोयला ले-लेकर बहुतेरे कुली जहाज़में चढ़ा रहे थे। जिस रास्ते वे कोयला ले जाया करते थे, वह अब खाली पड़ा था। मालूम पड़ता था, अब वह दरवाज़ा भी तुरत ही बन्द हो जायगा और जहाज़ खुल जायगा। कासिमोवका कहीं भी पता न था।

कोयला भरा जानेवाला दरवाज़ा बन्द ही किया जानेवाला था कि उस ओरसे कासिमोव लड़खड़ाता हुआ आ निकला। उसका सूट जो कल वैसा सुन्दर दीखता था, आज कीचड़से भर गया था और कई स्थानोंपर फट गया था। चेहरेपर भी कई स्थानोंसे खून निकल रहा था। उससे और कुछ पूछनेकी आवश्यकता न थी। उसने जो मजा लूटा होगा, वह उसका चेहरा ही कह रहा था। उसका नशा टूट गया था।

मैं लपका हुआ उसके पास गया और एक मिनट बाद ही हम दोनों छलाँगे मारते, एक नौकासे दूसरीपर कूदते, जहाँसे कोयला भरा जा रहा था, उसी रास्तेसे जहाज़में घुस आये। कासिमोव मुझे अपनी केबिनमें ले गया और कहने लगा—'अब और कोई भय नहीं है। जिस प्रकार छिपकर यहाँ घुस आये हो, वैसे ही बाहर भी निकल जाना। अब यहाँसे मार्सेलका सिर्फ पाँच दिनोंका रास्ता है।'

उसने अपनी पहनी हुई पोशाक उतार फेंकी और पुरानी पहनकर केबिनसे निकलते हुए कहा—'अब मुझे कामपर जाना है। तुम मेरे बिस्तरेपर सो सकते हो। ताला भीतरसे लगा लेना।'

मैं कम्बल ओढ़कर उसके बिस्तरेपर लेट गया। उस समय उस गरम कोठरीमें बिस्तरेपर लेटनेसे बढ़कर दूसरा और कोई सुख मुझे मिल भी नहीं सकता था। थोड़ी ही देरमें मुझे नींद भी आ गई। पर नींद आनेसे पहले वैसे थके रहनेपर भी एक क्षणके लिए बिजलीकी तरह अपना देश, कलकत्ता, अलखल्ला पहने हुए अरबोंसे भरी हुई सड़कें आदि अनेक दृश्य एक साथ ही आँखोंके सामने नाच गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

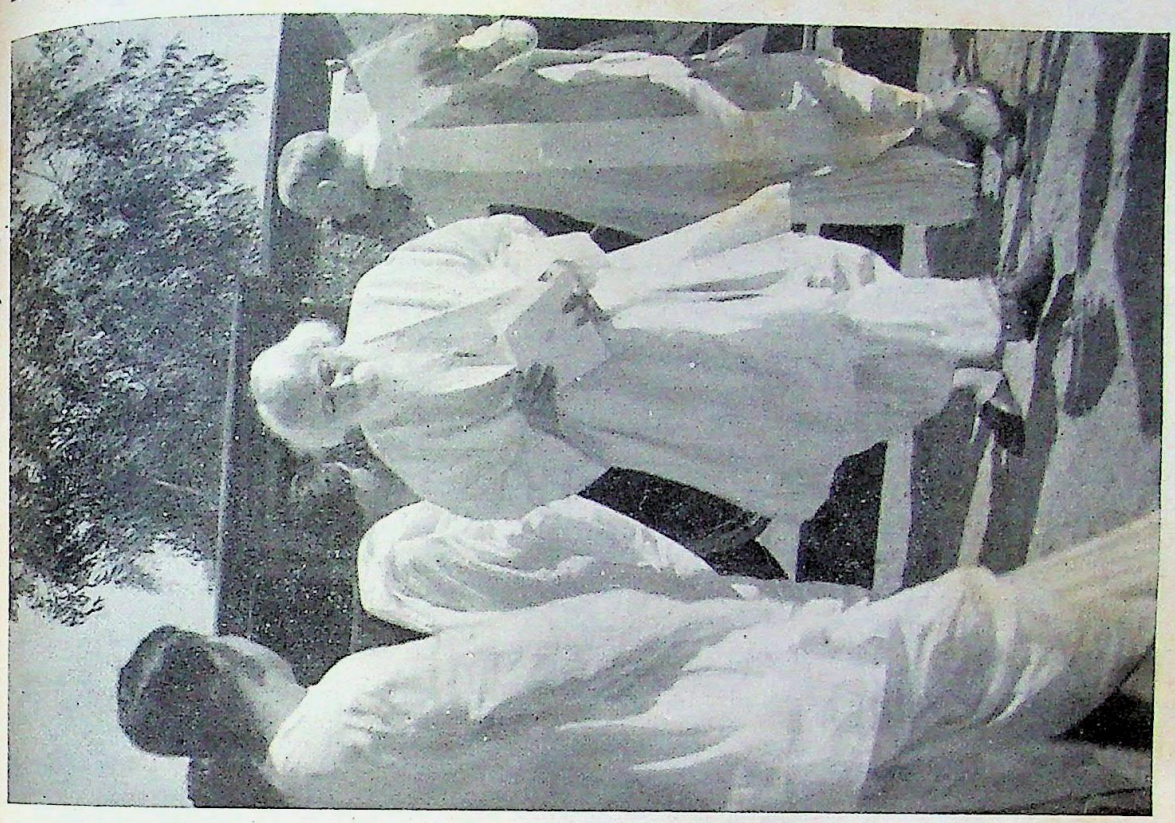

शान्ति-निकेतनमें चीनी भवनके उद्घाटनके लिए कवीन्द्र जा रहे हैं

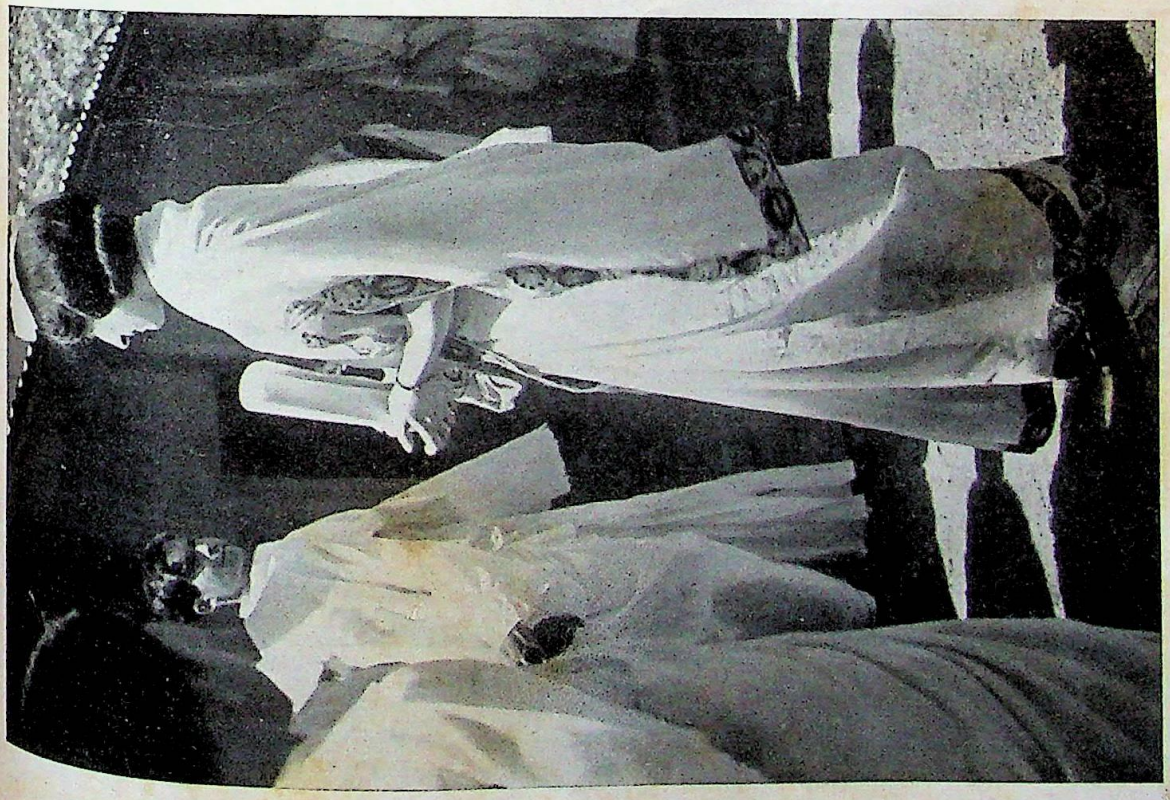

उद्घाटनपर पं० जवाहरलाल नेहरूका संदेश उनकी पुत्री कुमारी इन्दिरा लिये जा रही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेतुबन्ध रामेश्वरके प्रसिद्ध मन्दिरपर शिवरात्रिके दिन तीर्थ-यात्रियोंकी भीड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रामेश्वरके मन्दिरमें सहस्र स्तम्भोंवाला मण्डप

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराश कवि

76120

श्री देवनारायण कुँवर 'किसलय'

प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारे पर बसूँ मैं ?

आज मानवता हृदयके बीच कटुता बो रही है ;
विकल उरकी मधुर गरिमा आपदामें सो रही है !
मचलते उर-विहग प्राणोंके शिथिल नैराश्य-वनमें ;
तड़पते हैं प्राण घुल - घुल वेदनाकी मृदु जलनमें !
नयन मोतीको पिरोते हृदय - सरिके वारिजोंमें ;
सींच अपने ही चरण - युग, खोजते हैं ठौर जगमें !
अधरकी इस करुण फड़कनमें प्रिये कैसे हँसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

सोचती हर साँसकी लघु तन्त्रिका बिरमू कहाँपर ;
सोचते चित-चपल सुखकी वापिका पाऊँ कहाँपर ?
नाचती हैं लालसाएँ आज तितली बन हृदयमें ;
नाचते हैं स्वप्न क्षण-क्षण सजग हो सरसिज नयनमें !
अग-जग दिशाएँ नूपुरोंके मधुर रवसे झूमती हैं ;
आज जड़-चेतन सभीको लालसाएँ चूमती हैं !
मिलनके इस विरह-पथमें प्रिय, कहो, कैसे फँसू मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

सोचनेमें मग्न मानव आज अपने ही सुखोंको ;
सोचकर ही व्यथित दुनिया रो रही अपने दुखोंको !
आज सुख-दुखसे अलग क्या है बचा जीवन किसीका ?
आज सुख-दुख बीचमें ही है बसेरा सब किसीका !
आज सुखमें हास औ' दुखमें निराशा है दिखाती ;
क्यों न दोनों बीच निर्जन और सरिता गुनगुनाती ?
आज सुख-दुखके थपेड़ोंसे कहो, कैसे हँसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

चाहता हूँ, हिय-सलिल बहना किसी अज्ञात पथमें ;
मधुर गतिमें लीन हो जीवन जहाँ प्रिय, शान्ति-पथमें !
चाहता हूँ सुख न छूटे, दुख न भी निज भूल जाऊँ ;
पा सकूँ उल्लास औ' उद्धार, मधुमय गीत गाऊँ !
दलित भावोंका झुका पीला मृदुल उर-तरु न सूखे ;
और जगके तप्त झोकोंसे न अन्तः सलिल सूखे !
आज प्रिय, किस मधुर सुखकी कल्पना कर अब हसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

यह जगत उपहास रह-रह कर रहा जाने न किसका ;
आज अपनी विवशतापर बह रहा आँसू न किसका !
एक कोनेमें निराशाएँ दुखोंको पालती हैं ;
कामनाएँ उर-विपिनको निठुर बनकर सालती हैं !
प्राण-पिक पंचम भुलाकर तड़पता, निश्वास भरता ;
व्यथित मानवके हृदयमें आज पतझड़ बास करता !
आज जीवनकी उषाका अन्त लख कैसे हँसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

हृदयकी नवजात कलियाँ झड़ रहीं अज्ञात रह-रह ;
झड़ रहे हैं स्नात नयनोंसे विकल हो विमल निर्झर !
मृदुल इच्छाएँ चरणसे आज रज-कण बन लिपटतीं ;
आपदाएँ औ' निराशाएँ करुण, कोमल सिसकतीं !
शलभ-सा प्रिय, मृदुल अन्तस, अनलमें निर्वाण पाता ;
आज जीना ही दुखोंका भार ढोना है सिखाता !
वेदनाके आवरणसे किस मधुर-छविपर हँसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

वेदनाकी रागिनी - सा कँप रहा यह उर-अलापी ;
कामनाके बाल - घन लख नाचते हैं मन-कलापी !
गा रहे हैं मृदु-मलारें आज अणु-परमाणु भी प्रिय ;
पर नियतिके अनयसे निपतित बना सोया मनुज-हिय !
जगतकी विगलित हँसीमें सो रही है विजित आशा ;
प्राण-पिकके करुण स्वरमें गा रही कम्पित दुराशा !
किस सुखद मुखकी मधुरिमा देख प्रिय रह-रह हँसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

आजकी दुनिया विवशता देखकर हँस दिया करती ;
आज दुनिया निज सुखोंकी प्राप्तिमें ही मगन बहती !
कौन देखे, किधर आँसूके भरे हैं कुमुद-लोचन ;
तड़पते, पर नत नयनसे कर रहे जो अश्रु-मोचन !
जहाँ दुखकी चिर-निशामें सो रही है विजित आशा ;
विपिनताके विजन उरमें, छा रहा दुखका कुहासा !
सिसकती संभ्रम दिशाओंमें किसे देखूँ, हँसूँ मैं ?
प्रिय, कहो, इस व्यथित जगके किस किनारेपर बसूँ मैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूक उत्तर

श्री एस० के० दत्त

महेश न चाय पीता था, न सिगरेट और न पान ही खाता था। कपड़े भी कोई कीमती न होते थे। यही साधारण दो-चार धोती-कुर्ते। तो भी वह देखता कि पन्द्रह रुपयेमें वह कालेजकी फीस देकर अपनी दैनिक आवश्यकताओंको भी पूरा नहीं कर सकता। उसके माता-पिता भी तो कोई धनी नहीं हैं। वह सबसे बड़ा लड़का है, इसलिए वे अपने आप तंग रहते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार पन्द्रह रुपये उसे भेजते रहते हैं।

दिसम्बरका महीना था। 'फाइनल' परीक्षाके लिए 'फार्म' भरे जा रहे थे। महेश डेढ़ सौ रुपयेके लिए पिताजीसे कैसे कहे? पिताजी कहींसे कर्ज लेकर दे देंगे, यह तो वह जानता था; मगर आगे नौकरियोंका जो हाल है, उसे देखते हुए यह कर्ज उतारना भी कठिन था। उसकी अवस्था इस समय चौबीस-पचीसकी होगी। माता-पिता भी पचास-साठसे ऊपर ही हैं। ऐसी अवस्थामें वे बेटेसे कमाईकी ही आशा रखते हैं। माता अक्सर बीमार रहती है। काँटे लगी ओस है, न-जाने किस दिन झड़ जाय। फिर चाहे महेश कलक्टर भी हो जाय, तो उसे क्या सुख होगा? अपने देखते-देखते तो वह पैसे-पैसेको तरसती रही। ये बातें महेशके दिमागमें इस तरहसे आ रही थीं कि उसके हृदयमें समीप ही मिलनेवाली 'डिग्री'के प्रति कुछ भी मोह न रह गया। अपनी तंग-दस्ती और माता-पिताकी करुण अवस्थाने उसे शिक्षाके प्रति एकदम विद्रोही बना दिया।

× × ×

आजके पढ़े-लिखोंकी बड़ी दुर्दशा है। सरकारी नौकरी मिलती नहीं। साधारण दुकानदार आदि उन्हें रखते नहीं। उनका कहना है कि पढ़े-लिखे जब कामपर आते हैं, तो जेबमें किताब होती है और हाथमें समाचारपत्र। ज़रा कामसे फुर्सत मिली नहीं कि चटसे किताब उठा ली। बेचारे क्या करें—न इधर जगह, न उधर ही स्थान।

महेशने बड़ी कठिनतासे एक बजाज़की दूकानपर पन्द्रह रुपये मासिककी नौकरी कर ली। सुबह वह उधारके बिल लेकर चल देता और शामको पैसा उगाहकर ले आता! छुट्टी न इतवारकी थी, न सोमवारकी?

एक दिन बजाज़ने दो लिफाफे देते हुए कहा—"लो, आज तो बस दो ही हैं। इन्हें निबटाकर तुम घर चले जाना। पता तो इनपर लिखा ही है, खोज लोगे न?"

महेशने लिफाफे जेबमें रखते हुए कहा—'हाँ', और वह चल दिया।

डा० राधाचरणकी कोठी डालनवालामें 'रिसपना' नदीसे तीन-चार कोठियाँ हटकर 'कर्ज़न रोड'पर है। उधर रिसपनासे होकर सड़क महेशके गाँवको चली गई है। उधरसे ही महेश घर चल देगा।

वह 'गेट'के पास पहुँचा ही था कि एक मोटर अन्दरसे निकली और घर्र-घर्र करती हुई निकल गई! वह डाक्टर साहबको पहचानता न था। सोचने लगा, शायद डाक्टर साहब ही निकल गये हों। फिर सोचा, घरमें किसीको दे दूँगा।

महेशका अनुमान ठीक था। डाक्टर साहब निकल गये थे। लड़के भी स्कूल-कालेज चले गये थे! डाक्टर साहबकी बड़ी लड़की मिस शालिनी घरपर थी। उसे 'प्रिपरेशन लीव' मिली हुई थी। परीक्षा निकट थी। वह बाहर लीचीके पेड़के नीचे एक बेंच डाले, उसीपर चारों ओर किताबोंका ढेर लगाये हुए बैठी पढ़ रही थी। जैसे ही महेश अहातेमें घुसा, जंजीरमें बँधा 'टामी' भूँक उठा। महेश कुछ हिचकिचाकर पीछे हटने लगा। शालिनीसे पीठ घुमाकर देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेशको पीछे हटता देखकर उसने वस्त्रोंको सँभालकर कहा—"आइये, महेश बाबू आइये।" वह ओटमें थी। अपना नाम सुनकर महेशको कुछ आश्चर्य-सा हुआ। इतनेमें वह पेड़के नीचेसे निकलकर बाहर आ गई। महेशको अन्दर ले गई। कुर्सीपर बैठते हुए शालिनी बोली—"सुनती हूँ, महेश बाबू, आपने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया है।"

शालिनी महेशकी सहपाठिनी थी। दोनोंके विषय एक ही थे। दोनों एक दूसरेको जानते थे; पर कभी बातचीत नहीं हुई थी। महेश जबसे उसके सामने आया है, उसकी अजीब-सी हालत हो रही है। पुरुषने स्त्रीके सामने अपनी हीनता स्वीकार करना कभी नहीं चाहा। आज अचानक ही उसकी हीनता शालिनीके सामने बिखर रही थी, यह देख-देखकर वह लज्जासे गड़ा-सा जा रहा था। एक मिनट बाद उसने उत्तर दिया—"जी हाँ, परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी हो गई थीं कि छोड़ना ही पड़ा।" और वह चुप हो गया।

शालिनीने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—"कम-से-कम बी० ए० फाइनल तो कर ही लेते।"

महेश कुछ नहीं बोला और चुपचाप बैठा रहा। फिर शालिनी उठकर अन्दर गई और कुछ खानेका सामान नौकरके हाथ लेकर आई। सेबकी फाँक महेशके प्लेटमें रखती हुई बोली—"हाँ, आज आप इधर कैसे निकल आये, आपने यह तो बतलाया ही नहीं?"

महेश जिस बातसे डर रहा था, वही सामने आ गई। महेशने जेबमें से लिफाफा निकालकर शालिनीके हाथमें देते हुए कहा—"लीजिए, इसीलिए आया था।"

शालिनीने पूछा—"अच्छा, 'रामकिशन-क्लाथ-हिपो' आपका ही है?"

महेशने उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो सिर्फ बिल उगाहता हूँ।"

शालिनीके लिए जैसे यह एक अनहोनी बात थी! बी० ए० का एक विद्यार्थी और बिल उगाहनेकी नौकरी! उसने अभी तक 'मोहर'का एक ही रुख देखा था। उसे ही वह सत्य समझती थी। मनुष्यका ज्यादा ध्यान 'मोहर'के उसी रुखकी ओर होता है, जिस ओर बादशाहकी तसवीर खुदी रहती है। यह तो उसे आज ही मालूम हुआ कि मोहरका एक दूसरा भी पहलू है, जिस ओर उभरे हुए बदनुमा सन्-संवत होते हैं। काफी समय हो गया था। महेशने बिदा चाही।

शालिनीने कहा—"परसों आप आइयेगा, मैं बाबूजीसे कह दूँगी; लेकिन देखिये, आना भूलियेगा नहीं।" अन्तिम वाक्य शालिनीने कुछ ज़ोर देकर कहा था।

× × ×

शालिनीके पिता राधाचरण बाबू भले आदमी थे। शालिनीकी बात सुनकर बोले—"देखो, बम्बईमें मेरी जान-पहचानके एक आदमी हैं। उनकी बिजलीके कामकी एक बड़ी कम्पनी है। महेशको मैं एक पत्र दे दूँगा। वे रख लेंगे। फिलहाल पचास-साठ रुपया मिलने लगेंगे। इसके बाद अपनी उन्नति अपने हाथ! अभी फिलाहाल यदि वे स्वीकार करें, तो विमलाको एक घंटा पढ़ा दिया करें। बीस रुपया हम दे दिया करेंगे।"

शालिनीने कहा—"हाँ, ठीक है, मैं पूछूँगी।"

महेश विमलाका 'ट्यूटर' हो गया। विमला शालिनीकी छोटी बहन है। अभी किसी स्कूलमें नहीं पढ़ती। अंगरेज़ीकी पहली दो पुस्तकें पढ़ाकर उसे स्कूलमें बिठाया जायगा। दो मास पढ़ाते हो गये। इस बीचमें महेश और शालिनीकी काफी घनिष्ठता हो चुकी थी। शालिनीने महेशपर जो कृपा की थी, उसके लिए वह उसके निकट कृतज्ञ था।

यदि हम एक युवक और एक युवतीके निःस्वार्थ पारस्परिक सम्बन्धका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण करें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो बहुधा उन दोनोंके बीचमें स्वार्थका सूक्ष्मातिसूक्ष्म एक रेशा हमें अवश्य दिखलाई देगा।

शालिनी यद्यपि यह चाहने लगी थी कि महेशको बम्बई जानेसे कुछ दिन और रोक रखे; पर महेशके भावी-लाभके विचारने उसे ऐसा न करने दिया। फिर भी उसने महेशसे वादा करा लिया कि वह उसे बराबर पत्र लिखता रहेगा। महेशको भी यह 'वादा' कोई भार अनुभव नहीं हुआ।

बम्बईमें :—

ट्रिनिटी इलेक्ट्रिक कम्पनीके मैनेजर मारवाड़ी सज्जन थे। महेश पत्र लेकर उनके पास पहुँचा। पत्र देखकर वे बोले—"हाँ, मैं आपको अपने यहाँ रख लूँगा; पर आपके रहने आदिका प्रबन्ध तो मैं न कर सकूँगा। दो मास तो आपको काम समझनेमें लग जायँगे। उसके बाद मैं आपको कुछ देने लगूँगा। आज छुट्टी है, कलसे आप आ जाइयेगा।" यह कहकर वे चश्मा चढ़ा, अपना हिसाब-किताब देखने लगे।

महेशका चेहरा फक हो गया। उसे राधाचरण और मैनेजर दोनोंपर बड़ा क्रोध हुआ? सोचने लगा, ये धनी कभी किसीके नहीं होते? इस प्रकारके भावोंने शालिनीके प्रति भी उसके हृदयमें एक उपेक्षाका भाव भर दिया। रोटीकी भीषण समस्याने समस्त प्रेम-कीटाणुओंको जलाकर भस्मीभूत कर दिया। उसने अपनी पहुँचका पत्र भी नहीं भेजा।

दूसरे दिनसे वह कामपर जाने लगा। जब वह और साथियोंसे बातचीत करता, उनके वेतनके विषयमें पूछता। उनमें से कोई तीन आने रोज़ और कोई चार आने रोज़ बतलाता; उस समय उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा जाता।

शहरसे बाहर 'रे रोड' पर वह रहने लगा। सुबह पाँच बजे वहाँसे चलकर, चार मील तै कर, सात बजे भूखा कामपर पहुँचता। साढ़े पाँच बजे छुट्टी होनेपर घर आता, तब खाना बनाकर खाता। कभी-कभी शामकी बची रोटियाँ काग़ज़में लपेट कोटकी जेबमें डाल ले जाता। जब दोपहरको एक घंटेकी छुट्टी होती, तब रेलका पुल पारकर दूर वृक्षके नीचे बैठकर खाता। जब किसीको पाससे गुज़रता देखता, तो चटपट रोटियोंको कागज़में लपेट लेता; फिर निकालकर खाने लगता। इस प्रकार वह किसी तरह मुसीबतके दिन काटने लगा।

× × ×

शालिनीके मामा चार मासके लिए यूरोप जा रहे थे। शालिनीकी भी यूरोप जानेकी इच्छा थी। मामाने पूछा, तो फौरन तैयार हो गई। वे बम्बईसे ही जहाज़पर बैठेंगे। शालिनीने महेशको कई पत्र लिखे थे; पर उसने एकका भी उत्तर नहीं दिया। उसके अन्तिम पत्रमें लिखा था—"महेश, तुम ऊँची अट्टालिकाओंमें रहनेवालोंको घृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे। अब जान पड़ता है कि बम्बईकी पँचमंज़िल अट्टालिकाओंमें रहकर इधरका सब-कुछ ही भूल गये—शायद पत्रोंका उत्तर तक देना भी!" लेकिन महेशको यह पत्र भी उत्तर लिखनेके लिए प्रभावित न कर सका। महेशके इस अपराधका दंड वह वहाँ जाकर स्वयं अपने हाथों देगी, इससे वह बहुत खुश हो रही थी।

शालिनी बम्बई पहुँचते ही 'इलेक्ट्रिक कम्पनी' में पहुँची। मालूम हुआ कि पन्द्रह-बीस दिनसे महेश कामपर नहीं आ रहा है। मैनेजर साहबने एक मज़दूर उसके साथ कर दिया, जो वहीं कहीं रहता था।

रे रोडपर :—

बूचड़खानेसे बीस-पचीस कदमके फासलेपर एक गन्दी गलीमें, जहाँ बदबू-ही-बदबू थी, आठ-दस छोटे कमरेमें थे, जिनमें दिनमें भी रात रहा करती थी। मज़दूरने एक कमरेमें जाकर आवाज़ दी। मूर्छितप्राय महेशने आवाज़ न सुनी। दो-एक बार और पुकारकर वह बाहर आया। बोला—"शायद सो रहे हैं, बोल नहीं रहे हैं।"

शालिनीका हृदय एक अज्ञात आशंकासे काँप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। सोच रही थी कि सुखको दुःखमें परिणत होते कितनी देर लगती है। वह स्वयं अन्दर घुसी। कमरेकी लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः छै-सात फीट होगी। उसमें पालनेकी तरह एकके ऊपर एक चारपाई टँगी हुई थीं। मज़दूरने पाँचवीं चारपाईकी ओर संकेत करके कहा—"इसीपर पड़े हुए हैं।" यह दयनीय दृश्य देखकर शालिनीकी आँखमें आँसू छलक आये। उसने बार-बार भर्राई हुई आवाज़में पुकारा। महेशके कानोंमें भनक पहुँची। नीचे झाँका। चारपाईसे उठकर नीचे आने लगा। ज्वरके वेगसे शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। जब नीचेकी चारपाईपर उसका लड़खड़ाता पैर पड़ा, चारपाई आगे-पीछेकी ओर हिली। महेश अपने शरीरके वज़नको सँभाल न सका। धड़ामसे नीचे आ गिरा।

महेशका जीवन-अवसान और उस दिनकी ढलती हुई संध्या दोनों जैसे एकाकार होकर पासके अनन्त समुद्रमें सदाके लिए लीन हो गये!

"पँचमंज़िलपर रहनेवाले एक दिन अवश्य धराशायी होंगे!"—यह मूक उत्तर था शालिनीके अन्तिम पत्रका!

छोटी बच्ची

मौलाना अल्ताफ हुसेन हाली, पानीपती

[स्व० हालीने अपने एक मित्रकी छोटी लड़कीपर निम्न-लिखित कविता लिखी थी। कवितामें बाल्य जीवनका सुन्दर चित्र खींचा गया है। यह कविता उनके पुराने संग्रहमें प्रकाशित नहीं हुई थी। हालमें 'तज़करा-हाली' में प्रकाशित हुई है। —सं०]

सैयदा कैसी प्यारी बच्ची है,
सूरत अच्छी, समझ भी अच्छी है।
ज़रा देखो तो उसकी सूरतको,
सच्ची चीनीकी जैसी मूरतको।
है अभी दो बरसकी खैरसे जान,
पर सब अच्छे-बुरेकी है पहचान।
माँने जो-कुछ उसे सिखाया है,
जो अदब-क़ायदा बताया है।
वे सबक़ सारे उसको हैं अज़बर,
नक़्श एक-एक बात है दिलपर।
है अदबसे बड़ोंका लेती नाम,
सबको करती है हाथ उठाके सलाम।
फिर अदबसे वहीं सलामके साथ,
पूछती है मिजाज़ जोड़के हाथ।
झूठमूठ उसको गर डराते हैं,
बात डरकी कोई सुनाते हैं।
पक्केपनसे यक़ीं नहीं करती,
देर तक है 'नहीं-नहीं' करती।
वह किसी बातपर मचलती नहीं,
अपनी आदत कभी बदलती नहीं।
एक बीमारीसे तो है लाचार,
वरना रोती नहीं कभी ज़िनहार।
ऐसी कमउम्र बेसमझ होकर,
दूध भी माँगती नहीं रोकर।
बे पिये दूध जब नहीं सरती,
है वह माँकी खुशामदें करती।
कभी कहती है प्यारसे 'अम्मा',
और कभी डालती है गलबहियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूट-कूटकर उसमें है भरी ग़ैरत,
उसको कोई घुड़क दे क्या ताक़त।
माँने झूठों कभी जो घूर दिया,
उसने सचमुच वहीं बिसूर दिया।
माँकी खफ़गीसे है बहुत डरती,
उसके तेवर है देखती रहती।
जब ज़रा देखती है चुप माँको,
बार-बार उससे कहती है—'बोलो।'
माँ यह सुनकर अगर ज़रा हँस दी,
फिर कोई देखे उसकी आके खुशी।
हँसती है और खिलखिलाती है,
बच्ची फूली नहीं समाती है।
चाहनेवाले उसके हैं जो-जो,
ख़ूब पहचानती है एक-इकको।
फूफियोंसे तो है लगाव बहुत,
घरके खालाओंका है चाव बहुत।
है चचाओंके नामकी आशिक़,
उनके कलमे-कलामकी आशिक़।
ग़ौरसे उनका पढ़ना सुनती है,
और सुन-सुनके सिरको धुनती है।
खत्म हो चुकते हैं जब उनके बोल,
कहती है बार-बार 'अब्बा औल!'
आरज़ू तो बहुत है बोलनेकी,
पर नहीं उठती है ज़बान अभी।

यों तो थी जब ही प्यारी उसकी जबाँ,
जब कि करने लगी थी वह 'गो गाँ।'
फिर तो आता है उस पै और भी प्यार,
होती जाती है जिस क़दर हुशियार।
नहीं मुँहसे निकलते पूरे बोल,
बोलती है सदा अधूरे बोल।
लोट जाते हैं हँसते-हँसते सब,
ज़रगरी अपनी बोलती है जब।
नये आते हैं, घरमें जब मेहमाँ,
देख-देख उनको होती है खन्दां।
पाके बैठा इधर-उधर सबको,
देखती है मुड़-मुड़कर सबको।
ऊपरी शक्ल से है घबराती,
है मगर जल्द सबसे हिल जाती।
हैं जो माँ-जाये भाई और बहन,
यों तो सबकी है उसके दिलमें लगन।
पर ज़रा भाईसे है लाग उसको,
क्योंकि ऊपर-तलेके हैं दोनों।
पस जहाँ भाई माँके पास आया,
और वहीं उसने हाथ फैलाया।
जा लिपटती है दौड़के माँसे,
भाईसे कहती है—"हटो याँसे।"
उम्र उसकी खुदा दराज़ करे,
इल्मसे उसको सरफ़राज़ करे।

चढ़े माँ-बापकी सलामती में,
सारे परवान भाई और बहनें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काला शैतान

ब्रजमोहन वर्मा

शामका वक्त था। ढाका ज़िलेमें नारायणगंजके पास ब्रह्मपुत्र नदीके किनारेके एक गाँवमें कुछ देहाती नवयुवतियाँ नहाने और पानी भरनेके लिए जा रही थीं। वे आपसमें हँसती-बोलती, चुहलें करती ब्रह्मपुत्रके घाटपर पहुँचीं। पानीमें घुसकर कुछ देर तक तो वे जलक्रीड़ा करती रहीं और फिर अपने-अपने घड़े भरकर सिरपर रखकर चलनेको तैयार हुईं। उनमें से एक सुन्दरी-सी युवती कुछ अधिक चपल थी। दूसरोंके मना करनेपर भी वह कमर तक गहरे पानीमें चली गई। वहाँ उसने अपना घड़ा भरकर एक अदासे सिरपर रखा और धीरे-धीरे पानी मँझाती हुई किनारेकी तरफ बढ़ी। वह दो-चार क़दम ही बढ़ी होगी कि बड़े ज़ोरसे चीख़ उठी और पानीमें गिरकर ग़ायब हो गई। पहले तो साथवालियोंको जान पड़ा कि शायद उसका पैर फिसल गया है; किन्तु एक दृष्टि डालते ही उन्हें मालूम हो गया कि कोई बलपूर्वक उस असहाय लड़कीको पानीके भीतर खींचे लिये जा रहा है। सारी-की-सारी युवतियाँ अपने-अपने घड़े फेंककर किनारेको भागीं और ज़ोर-ज़ोर चीख़ने - चिल्लाने लगीं—"दौड़ियो, काला शैतान ले गया!"

नदीके किनारे ही डाकबँगला था, जिसमें सर्वे विभागके एक साहब मिस्टर आगस्टस समरविल ठहरे हुए थे। लड़कियोंका चीख़ना-पुकारना सुनकर वे अपनी राइफिल लेकर दौड़े; उधर गाँवके कुछ मर्द और औरतें भी दौड़ पड़ीं। उस लड़कीके माँ-बाप भी आ गये और ढाढ़ें मारकर रोने लगे। नदी-तटकी सायंकालीन निस्तब्धतामें एक कोहराम-सा मच गया। हरएक काले शैतानको कोस रहा था।

गाँववालोंने मिस्टर समरविलको दो-चार शब्दोंमें बतलाया कि 'काला शैतान' एक विशालकाय मगर है, जो अब तक पचीसों आदमियोंको खा चुका है, और जिसके नामसे आसपास कई कोस तकका इलाक़ा दहल उठता है। इस आशासे कि शायद अभागी लड़कीकी लाश ही मिल जाय, गाँववाले और मिस्टर समरविल एक घंटे तक नदीका किनारा खोजते रहे; लेकिन सब बेकार हुआ।

दूसरे दिन सवेरे आठ-सात देहाती मिस्टर समरविलके पास पहुँचे और उन्होंने काले शैतानके काले कारनामोंकी दास्तान कह सुनाई। मिस्टर समरविल पुराने शिकारी थे, हिन्दुस्तानके अनेक हिस्सोंमें अनेक बार मगरका शिकार कर चुके थे, और मगरकी चालाकियों और आदतोंसे बख़ूबी वाक़िफ थे। लेकिन देहातियोंकी बातें सुनकर उन्हें मालूम हो गया कि ब्रह्मपुत्रका यह 'काला शैतान' धूर्ततामें उन सबका गुरुघंटाल है। उसका दस्तूर यह था कि घाटपर आकर नहाते हुए आदमियोंमें से किसी एकको हड़प कर जाता था। मगर वह ऐसा चालाक था कि फिर जल्द उसी घाटपर दूसरा हमला न करता था। अगर आज उसने नारायणगंजमें शिकार किया, तो हफ्ते-भर बाद सुनाई देगा कि उसने दस-पन्द्रह मील दूर किसी गाँवमें दूसरे आदमीकी जान ली। दस-पाँच दिन बाद जब नारायणगंजमें मामला ठंडा पड़ जायगा और लोगोंकी सतर्कता ढीली पड़ जायगी, तो वह सहसा फिर प्रकट होकर किसी दूसरे व्यक्तिको चट कर लेगा।

काले शैतानकी यह कार्रवाई महीनोंसे चल रही थी। लोग इतने भयभीत हो रहे थे कि इक्का-दुक्का आदमी नदीमें धँसनेकी हिम्मत ही न करता था। वे दस-पाँच मिलकर ही पानीमें उतरते, सो भी तब, जब यह निश्चय कर लेते कि आसपास काला शैतान नहीं देखा गया है।

इस ख़ूनी मगरको मारनेके लिए बहुत कोशिशें की गईं, लेकिन सब बेसूद। काँटे लगाये गये, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेकार साबित हुए; जाल डाले गये, किन्तु काला शैतान उनमें फँसकर भी उन्हें तोड़कर निकल गया। स्थानीय शिकारियोंने उसे मारनेकी कोशिश की, पर नाकामयाब हुए। पहले तो सरकारने यह क़ानून बना रखा था कि कोई भी गोरा—चाहे वह ख़ूनी, लुटेरा बदमाश ही क्यों न हो—बिना लाइसेन्सके बन्दूक़, रिवाल्वर, राइफिल जो चाहे रख सकता था और अच्छे-से-अच्छे भारतीयको तलवार तक रखनेके लिए लाइसेन्स लेना पड़ता था। अब यद्यपि गोरोंको भी बन्दूक़का लाइसेन्स लेना पड़ता है; लेकिन देहाती तक जानते हैं कि किसी भी गोरेको कहने-भरसे ही लाइसेन्स मिल जाता है, जब कि देहाती भारतीयको लाइसेन्स मिलना अगर असम्भव नहीं, तो बहुत मुश्किल ज़रूर है। इसीलिए दो-चार स्थानीय शिकारियोंके पास जो बन्दूक़ें थीं भी, वे पुराने ज़मानेकी तोड़ेदार या टोपीदार बन्दूक़ें थीं, जिनकी गोलियोंका काले शैतानकी पीठपर कोई असर ही नहीं होता था। देहाती जानते थे कि मिस्टर समरविलकी बन्दूक़ राइफिल होगी, इसलिए उन्होंने समरविल साहबसे इस मर्दुमखोरको मारनेकी प्रार्थना की।

मिस्टर समरविलने भी हामी भर ली। उनके पास बहुत अच्छी राइफिल थी। उन्होंने सोचा कि निकेलकी एक गोली काले शैतानका काम तमाम कर देगी; मगर बेचारे यह नहीं जानते थे कि इस मगर-विशेषने जो काले शैतानका ख़िताब पाया था, वह यों ही नहीं था। हफ्ते-भर तक समरविल साहब अपने काममें बहुत व्यस्त रहे। इस बीचमें मगरकी भी कोई बात नहीं सुनाई दी। हफ्ते-भर बाद मगरकी ख़बर मिली।

जाड़ेका मौसम था। कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी। इतवारको सुबह नदीके विशाल वक्षकी ओरसे बड़ी तेज और ठंडी हवा बह रही थी। ऐसा ख़राब मौसम ही तो काले शैतानके लिए फिर पुरानी शिकारगाहमें प्रकट होनेके लिए उपयुक्त था। मिस्टर समरविल डाकबँगलेमें सो रहे थे। बाहर बहुतसे आदमियोंकी आवाज़ सुनकर नींद खुल गई, उठकर बाहर देखा, कई देहाती खड़े थे। उन्होंने कहा—"काला शैतान आज फिर दीख पड़ा है। आप चलकर उसे मार दीजिए।"

मिस्टर समरविलको यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मगरको ठंडा पानी अच्छा नहीं लगता, इसीलिए जाड़ेके दिनोंमें वे धूप खानेके लिए पानीसे निकल-निकलकर नदीके किनारेकी रेती और चरोंपर लेटा करते हैं, और उसी मौसममें मगरका शिकार होता है। गरमीमें बहुत थोड़े मगर मारे जाते हैं। अतः मिस्टर समरविल राइफिल उठाकर और दस-पाँच कारतूस जेबमें डालकर चल दिये।

देहाती एक पतली पगडंडीकी राह मिस्टर समरविलको नदीकी ओर ले चले। थोड़ी दूर चलकर अगुआ देहातीने दलके और लोगोंको वहीं रुकनेका आदेश दिया और मिस्टर समरविलको बहुत सावधानीसे आगे बढ़नेको कहा। नदीके किनारे एक जगह पहुँचकर मिस्टर समरविलने देखा, सामने कुछ दूरीपर सचमुच काला शैतान रेतीपर पड़ा था।

'काला शैतान' दर असल काला शैतान था। वह पूरे अठारह फीट लम्बा था! इतने लम्बे मगर और भी मिलते हैं; लेकिन काले शैतानकी विशेषता यह थी कि वह चौड़ा—मोटा भी बहुत था। रेतीपर पड़ा हुआ वह ऐसा दीखता था, मानो कोई नाव औंधी पड़ी हो!

समरविल साहबने सारी स्थितिको अच्छी तरह समझा और अब यह सोचने लगे कि छिपे-छिपे मगरके नज़दीक कैसे पहुँचा जाय। जिस वक्त मगर पेटके बल लेटा रहता है, उस वक्त उसको मारना नामुमकिन-सा होता है। सबसे ताक़तवर राइफिलकी गोली भी उसकी अभेद्य पीठपर लगकर उचट जाती है। ऐसी हालतमें सिर्फ तभी वह मारा जा सकता है, जब गोली उसकी गर्दनपर पड़े, इसीलिए सभी शिकारी गर्दनका निशाना लेनेकी ही कोशिश करते हैं।

जब मि० समरविल उसके नज़दीक पहुँचनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़े, तो उन्हें मालूम हुआ कि काले शैतानने लेटनेके लिए जगह चुननेमें कैसी चालाकीसे काम लिया है। उसके तीन तरफ लगभग सौ गज़ तक एकदम खुली रेती थी,—आड़की या छिपनेकी कोई जगह ही न थी। यह प्रत्यक्ष हो गया कि छिपकर मगरके नज़दीक पहुँच सकना नामुमकिन है, और सौ गज़की दूरीसे गर्दनका निशाना मारनेमें सफलताकी कोई आशा नहीं। गोलीकी ज़दके भीतर पहुँचनेकी एक ही तरकीब थी, वह यह कि नदीकी राह मगरकी पुश्तकी तरफसे पहुँचा जाय। समरविल साहबने वही किया।

दूसरी राहसे घूमकर वे नदीके चढ़ावकी कोई आध मील दूर गये। वहाँ एक नावपर दो आदमियोंके साथ सवार हुए। नाव पेड़-पत्तोंसे ऐसी ढक दी गई, जिससे मालूम हो कि कोई पेड़ बहा आ रहा है। नाव धीरे-धीरे धारके साथ मगरकी ओर बहने लगी।

लेकिन काला शैतान इतनी आसानीसे पकड़में आनेवाला नहीं था। वह चुपचाप लेटा-लेटा बहते हुए पेड़-पत्तों—नाव—को देखता रहा। जैसे ही नाव बन्दूक़की ज़दमें पहुँचनेवाली ही थी, वैसे ही वह छपसे पानीमें कूदकर ग़ायब हो गया!

अब सब बेकार था। समरविल साहबने किनारेकी तरफ नाव खेनेका हुक्म दिया। नाव मुश्किलसे पाँच-सात गज़ आगे बढ़ी थी कि वह बुरी तरह हिलने-डोलने लगी। उसका अगला हिस्सा अचानक बहुत ऊँचा उठ गया। पहले तो साहब और उनके साथियोंकी समझमें न आया कि मामला क्या है। हवा भी बहुत ज़ोरकी नहीं है, लहरें भी बहुत बड़ी नहीं हैं; लेकिन क्षण-भर बाद ही असली कारण जानकर नौकारोहियोंको मानो लकवा मार गया। काला शैतान नावके नीचेसे नावको उलट देनेकी कोशिश कर रहा था!

डरके मारे तीनोंके तीनों पत्थर हो गये; साँस भी बन्द होती-सी मालूम होती थी। नावके नीचेसे मगरकी चकत्तेदार पीठ दीखने लगी। नावका एक हिस्सा बराबर ऊपर उठता जा रहा था। वे चन्द सेकेण्ड घंटों-से जान पड़े। एकाएक समरविल साहबने अमानुषीय हिम्मत करके राइफिल उठाई और जैसे ही मगरका ख़ौफ़नाक खुला हुआ थूँथन पानीके बाहर निकला, वैसे ही अन्धाधुन्ध गोली दाग़ दी। मालूम हुआ कि गोलीने कुछ असर ज़रूर किया, क्योंकि दूसरे ही क्षण काला शैतान पानीमें ग़ड़ाप हो गया। ऊपर उठी हुई नाव एक धमाकेके साथ पानीमें इस ज़ोरसे गिरी कि औंधी हो गई और तीनों सवार पानीमें डुबकियाँ खाने लगे।

इत्तफ़ाकसे उस जगह पानी गहरा नहीं था। तीनोंके तीनों जान लेकर किनारेकी ओर भागे। बेचारोंको हर क़दमपर यही मालूम होता था कि अब पीछेसे शैतानने पकड़ा, अब पकड़ा। ख़ैर, वे सही-सलामत किनारेपर पहुँच गये। समरविल साहबको काले शैतानसे इस तरह छकनेपर बड़ी लज्जा आई। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि चाहे जो हो, मैं इस शैतानको मारे बिना न छोड़ूँगा।

अब साहब और मगरमें एक तरहसे लुका-चोरीका खेल आरम्भ हो गया। साहब दिन-रात काले शैतानकी खोजमें घूमते। शैतान भी कभी-कभी दीख जाता था; लेकिन ऐसे ढंगसे कि समरविलको कभी गोली चलानेका मौक़ा ही न मिलता था। सुबह जैसे ही मगर पानीसे निकलकर धूप लेनेके लिए रेतीपर आये, वैसे ही गोली चलायें, इस आशासे साहब गड्ढे खोदकर रात-रातभर कीचड़-कादामें पड़े-पड़े ठिठुरते; परन्तु कभी सफलता न मिलती। उसपर तुर्रा यह कि शैतान नियमित रूपसे आदमियोंका शिकार करता रहा, जिसके मानी यह हुए कि उसे समरविल साहबकी रत्ती-भर चिन्ता न थी। इस प्रकार एक महीनेसे ऊपर हो गया; पर मगर हाथ न चढ़ा।

मगरका पीछा करते-करते समरविल साहब नारायणगंजसे तीस मील दक्षिण एक गाँवमें आ पहुँचे थे। काले शैतानने आख़िरी आदमी इसी गाँवमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाया था। साहब रात-भर नदी किनारे एक घने पेड़पर छिपकर बैठे रहे कि शायद मगर बाहर निकले। मगर वहीं आसपास मौजूद था, क्योंकि रातमें दो बार साहबने उसकी आवाज़ सुनी थी; लेकिन वह दिखाई नहीं दिया।

सवेरे साहब पेड़से उतरे। रात-भर सर्दी और ओसमें सिकुड़े बैठे-बैठे उनके अंग-अंग अकड़ गये थे। सारा बदन दर्द कर रहा था। अब उन्होंने हार मान ली। सोचा, कब तक इस तरह वक्त ख़राब करूँ। इस शैतानसे पार पाना मुश्किल है।

मि० समरविल पेड़के नीचे खड़े होकर हाथ-पैर सीधे कर रहे थे और काले शैतानको कोस रहे थे। इतनेमें पीछेसे एक आवाज़ सुनाई दी। सिर फेरकर देखा, तो एक मुसलमान बुढ़िया खड़ी थी। बुढ़ापेके मारे उसकी कमर झुक रही थी। वह समरविल साहबको देख-देखकर मुसकराने लगी।

उसने पोपले मुँहसे हँसते हुए कहा—"साहब, यह मगर मामूली मगर नहीं है। यह शैतान है, शैतान!"

"हाँ, माई!"—साहबने तिनककर कहा—"वह ज़रूर शैटान है, वरना हम उसको मार डिया होटा।"

बुढ़ियाने क्षण-भर साहबकी तरफ घूरकर देखा, और फिर मुसकराकर बोली—"अच्छा बेटा, मेरे साथ आओ। तुमने अपनी चालाकी और ताक़त दिखा ली; अब ज़रा मेरे बुढ़ापेकी करामात भी देखो।"

यह कहकर बुढ़िया एक पगडंडीपर आगे-आगे चलने लगी।

बुढ़ियाकी शक्ल और बातचीतमें कुछ ऐसा आकर्षण और आत्मविश्वास-सा था कि मि० समरविल चुपचाप उसके पीछे हो लिये। चलते-चलते दोनों एक झोंपड़ीके सामने पहुँचे, जो ठीक जंगलके छोरसे मिली हुई थी। झोंपड़ीके दरवाज़ेपर मि० समरविलको बिठलाकर बुढ़िया भीतर घुस गई। भीतर कुछ देर तक खटपट-सी सुनाई दी। उसके बाद ही बुढ़िया पीतलके लोटेमें दूध भरकर बाहर निकली। उसे साहबको पीनेके लिए देकर उसने ज़ोर-ज़ोरसे कई आवाज़ें दीं। आवाज़ सुनकर एक दुबला-पतला लड़का आ मौजूद हुआ और आश्चर्यसे मुँह बाये साहबकी तरफ घूर-घूरकर देखने लगा।

बुढ़ियाने कहा—"पागल कहींका! मुँह बाये क्या देखता है? ले, साहबसे तीन रुपये ले ले और गाँव चला जा। सोनारबाईके पास दो पाठे (बकरीके बच्चे) बिक्रीको हैं; जाकर उन्हें फौरन ले आ।"

बिना कुछ पूछे-बताये साहबने चुपकेसे तीन रुपये निकाल लड़केके हवाले किये और वह भागता हुआ पगडंडीपर गायब हो गया। साहबने बुढ़ियासे पूछा—"बकरीके बच्चोंका क्या होगा? तुम क्या करना चाहती हो?"

"साहब, तुम चुपचाप बैठे-बैठे देखते जाओ, अभी मालूम हो जायगा कि मैं क्या करती हूँ।"—इसके सिवा बुढ़ियाने और कुछ बतलानेसे इनकार कर दिया। मजबूर होकर साहब चुपचाप बैठे रहे। आध घंटे बाद लड़का बकरीके बच्चे लेकर आ गया। बच्चे क़रीब तीन महीनेके होंगे।

बुढ़ियाने एक बच्चेको पेड़से बाँध दिया और लड़केसे छुरी मँगाकर दूसरेको ऐसी सफाईसे हलाल कर दिया, जिससे मालूम होता था कि बुढ़िया इस काममें पुरानी अभ्यस्त है।

उसने बकरीके बच्चेको इस तरह हलाल किया था कि उसका सिर धड़में ज्यों-का-त्यों लगा रहे। उसने उसका पेट चाक करके भीतरकी आँतें-वातें निकालकर फेंक दीं और लाशको धो-पोंछकर साफ किया। वह फिर झोंपड़ीमें गई और वहाँसे डलिया-भर फुँका हुआ चूना ले आई। उसने मरे हुए बकरीके पेटमें ठूँस-ठूँसकर चूना भरा और फिर टाँके लगाकर सी दिया। अब वह एक ख़ूब मोटा-ताज़ा बच्चा दीखने लगा।

अब बूढ़ी उठ खड़ी हुई। उसने मरे हुए बच्चेको समरविल साहबपर लदवाया और ज़िन्दाको अपनी गोदमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर नदीकी तरफ रवाना हुई। नदी किनारे पहुँचकर बुढ़ियाने साहबको पेड़ोंके एक झुरमुटमें छिपकर बैठनेको कहा और ज़िन्दा बच्चेको ज़मीनपर उतार दिया। मुर्दा बच्चेको अपनी चादरमें छिपाकर बुढ़िया नदीके किनारे चलने लगी। ज़िन्दा बच्चा छूटकर बुरी तरह मिमियाता हुआ बुढ़ियाके पीछे-पीछे चलने लगा।

कुछ देर तक बुढ़िया नदी किनारे इधर-से-उधर उधर-से-इधर बहती हुई लकड़ियाँ और घोंघे इकट्ठे करती हुई फिरती रही और ज़िन्दा बच्चा उसके दामनके पीछे-पीछे मिमियाता घूमता रहा। आख़िरकार मानो अपने कामसे थककर बुढ़ियाने जीवित बच्चेको पानीसे ज़रा-सी दूर एक पेड़से बाँध दिया और खुद थोड़ी दूरपर अलग बैठकर सुस्ताने—ऊँघने—लगी।

इस प्रकार कोई एक घंटा बीत गया। बकरीका बच्चा भागनेमें अपनेको असमर्थ पाकर बार-बार रस्सीको खींचता और प्रतिवाद-स्वरूप ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाता था। बुढ़िया बैठी-बैठी ऊँघती जान पड़ती थी और कुछ दूरीपर पेड़ोंके झुरमुटमें समरविल साहब आँख गड़ाये, कान खड़े किये, चौकन्ने नदीकी ओर देख रहे थे।

नदीके पानीमें कुछ बुलबुले उठते दीख पड़े। फिर किनारेपर छोटी-छोटी लहरें उठने लगीं। लहरें धीरे-धीरे बड़ी होने लगीं, यहाँ तक कि पानीके भीतरसे शैतानका विशाल काला शरीर निकला और बिना शब्द किये धीरे-धीरे बकरीके बच्चेकी ओर बढ़ने लगा। बकरीका बच्चा भी अब भयभीत हो रहा था। उसी क्षण बुढ़िया मानो जाग उठी और गला फाड़-फाड़कर चिल्लाती हुई, हाथकी लकड़ी फटकारती, किनारेकी तरफ दौड़ी। पलक मारते ही काला शैतान पानीमें गायब हो गया और फिर चारों तरफ सन्नाटा छा गया। क्षण-भरके लिए बुढ़िया बकरीके बच्चेके ऊपर झुकी और बड़ी फुर्ती और सफाईसे उसने जीवित बच्चेको मुर्दा बच्चेसे बदल दिया। फिर अपनी पुरानी जगह लौटकर वह ऊँघने लगी।

मिमियाना फिर शुरू हुआ। जान पड़ता था कि जीवित बच्चेको अपनी चादरमें लपेटकर बुढ़िया ऊँघते हुए भी रह-रहकर उसके बकोटे काटती थी, जिससे वह बेचारा मिमियाता था। कुछ देर बाद मगर फिर किनारेपर प्रकट हुआ। इस बार वह कुछ देर तक ग़ौरसे बुढ़ियाको देखता रहा। जब उसे विश्वास हो गया कि बुढ़िया सो रही है, तो वह धीरेसे पानीसे निकला और एक ही झपट्टेमें मुर्दा बच्चेको दबोचकर, एक-दो बार मुँह चबलाकर, निगल गया और दूसरे ही क्षण पानीमें जा कूदा।

बड़ी फुर्तीसे बुढ़िया उठ खड़ी हुई। उसने समरविल साहबको पुकारा। दोनोंके दोनों नदी किनारे जा खड़े हुए और पानीको देखने लगे। कुछ देर तक एकदम सन्नाटा रहा। उसके बाद पेड़के तने-जैसा एक विशाल आकार पानीकी सतहपर निकला और तेज़ीसे इधर-से-उधर तैरने लगा। उसके तैरनेसे बेचैनी-सी जान पड़ती थी। जैसे-जैसे क्षण बीतने लगे, उसकी बेचैनी और बेकली बढ़ने लगी। अब वह मुँह बाये नदीमें ऊपरसे नीचे नीचेसे ऊपर बुरी तरह भागता-फिरता था और रह-रहकर ज़ोरसे दाँत बजाता था। इस बीचमें किनारेपर गाँववालोंकी भीड़ जमा हो गई। कुछ देरमें उसे पानीमें रहना असम्भव-सा जान पड़ने लगा और वह किनारेकी ओर दौड़ा। किनारेपर आते ही एकत्रित भीड़ने पत्थरोंकी वर्षा शुरू कर दी।

मजबूर होकर मगर फिर पानीको लौटा और क्रोध और बेचैनीसे अपनी विशाल पूँछ फटकारता हुआ तेज़ीसे चक्कर काटने लगा। दो-चार मिनट बाद वह फिर किनारेपर चढ़ा। इस बार उसने भीड़के हल्ले-गुल्ले और पत्थरोंकी परवा न की। वह तटपर आकर हाँफता हुआ लेट रहा। उसके खुले हुए जबड़ेसे फेना और ख़ून बह रहा था और वह बेचैनीसे छटपटा रहा था।

साहबको उसकी छटपटाहटपर दया आई। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस लड़केको, जो बकरीके बच्चे लाया था, अपनी राइफिल लानेके लिए दौड़ाया।

बुढ़ियाने कहा—"साहब, उसे छटपटाने दीजिए। उसने भी तो सैकड़ों आदमियोंको इससे ज्यादा छटपटाया है।"

बुढ़ियाका कहना ठीक था, फिर भी उसकी छटपटाहट देखी नहीं जाती थी। समरविल साहबने मगरके नज़दीक जाकर उसकी गरदनमें एक गोली मारकर उसकी छटपटाहटका अन्त कर दिया।

इस प्रकार काले शैतानका खात्मा हुआ। जिस मगरको भारतीय और गोरे शिकारी सैकड़ों कोशिशें करके भी न मार सके, उसे बुढ़ियाकी तदबीरने एक ही दाँवमें खत्म कर दिया। मगरने जैसे ही बकरीके मुर्दा बच्चेको निगला, वैसे ही दबाव पाकर बच्चेके पेटमें लगे हुए कमजोर टाँके टूट गये और उसके पेटमें भरा हुआ सारेका सारा बिना बुझा चूना मगरके पेटमें पहुँच गया। पानी पड़ते ही बिना बुझा चूना गर्म होकर उबलने लगता है। मगरके पेटमें आग लग गई। उसे बुझानेके लिए मगर जितना ही पानी पीता गया, पेटके भीतरका उबाल उतना ही ज़ोर पकड़ता गया।

खाल उतारते वक्त जब मगरका पेट चीरा गया, तो उसके भीतर ८६ चूड़ियाँ, अनेकों अंगूठियाँ और बिछिये तथा एक थर्मस बोतल निकली!*

* 'वाइड वर्ल्ड' में मि० समरविलके लिखे हुए वृत्तान्तके आधारपर।

प्रतीक्षा

श्री महावीर सिंह दत्त

जब विधुर, तप्त, पीड़ित अपार
पृथ्वी कर उठती चीत्कार—
'शीतल कर हर लो हृदय-भार';
जाने बनकर जल-धार कौन
शीतल करता उर-दग्ध, मौन?

पल्लव-विहीन, मृदु-राग-हीन,
सूखा तरु जब हो दुखी-दीन—
कर उठता क्रन्दन करुण क्षीण;
जाने बन कोंपल-नवल कौन
देता नव-जीवन वार, मौन?

पर मैं भी तो हूँ दुखी-म्लान,
करुणा, विषादके मूक गान—
मेरे जीवन में मूर्तिमान;
कब इस जीवनमें 'वही कौन'
भर देगा चिर-सुख-हर्ष, मौन?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई-बहन

श्रीमती सत्यवती मलिक

"माजी !····हाय ! माजी !····हाय !"—एक बार, दो बार ; पर तीसरी बार 'हाय ! हाय !' की करुण पुकार सावित्री सहन न कर सकी। कारबन-पेपर और डिज़ाइनकी कापी वहीं कुर्सीपर पटककर शीघ्र ही उसने बाथ-रूमके दरवाज़ेके बाहर खड़े कमलको गोदमें उठा लिया और पुचकारते हुए कहा—"बच्चे, सवेरे-सवेरे नहीं रोते।"

"तो निर्मला मेरा गाना क्यों गाती है, और उसने मेरी सारी कमीज़ क्यों छींटे डालकर गीली कर दी है ?"

स्नानागारमें अभी तक पतली-सी आवाज़में निर्मला गुनगुना रही थी—"एक····लड़का···· था···· वह रोता····रहता····"

"बड़ी दुष्ट लड़की है। नहाकर बाहर निकले तो सही, ऐसा पीटूँ कि वह भी जाने।"—मासे यह आश्वासन पाकर कमल कपड़े बदलने चला गया।

न-जाने कितनी मंगल कामनाओं, भावनाओं और आशीर्वादोंको लेकर सावित्रीने अपने भाईके जन्म-दिनपर उपहार भेजनेके लिए एक श्वेत रेशमी कपड़ेपर तितलीका सुन्दर डिज़ाइन खींचा है। हल्के नीले, सुनहरे और गहरे लाल रंगके रेशमके तारोंके साथ-ही-साथ जाने कितनी ही मीठी स्मृतियाँ भी उसके अन्तस्तलमें उठ-उठकर बिंधी-सी जा रही हैं, और अनेक वन, पर्वत, नदी, नाले तथा मैदानके पार कहीं दूरसे एक मुखाकृति बार-बार नेत्रोंके सम्मुख आकर उसके रोम-रोमको पुलकित कर रही है। कभी ऐसा भी लगने लगता है, मानो सामने दीवारपर लटकी हुई नरेन्द्रकी तसवीर हँसकर बोल उठेगी। सावित्रीकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक उठे। तितलीका एक पंख काढ़ा जा चुका है ; किन्तु दूसरा आरम्भ करनेसे पूर्व ही कमलकी सिसकियों और आँसुओंने सावित्रीको फिर वहाँसे उठनेको विवश कर दिया।

स्कूलकी चीज़ोंको बेगमें डालते हुए निर्मलाके निकट खड़े होकर सावित्रीने कड़ककर कहा—"निर्मल, तुझे शर्म नहीं आती क्या ? इतनी बड़ी हो गई है ! पूरे चार वर्ष कमल तुमसे छोटा है। किसी चीज़को उसे छूने तक नहीं देती। हर घड़ी वह बेचारा रोता रहता है। अगर उसने तुम्हारे पेन्सिल-बक्सको तनिक देख लिया, तो क्या हुआ ?"

निर्मला सिर नीचा किये मुसकरा रही थी। यह देखकर सावित्रीका पारा अधिक चढ़ गया। उसने और भी ऊँचे स्वरमें कहना शुरू किया—"रानीजी, बड़े होनेपर पता चलेगा, जब इन्हीं दुर्लभ सूरतोंको देखनेके लिए भी तरसोगी ! भाई-बहन सदा साथ-साथ नहीं रहते।"

माकी झिड़कियोंने बालिकाके नन्हें मस्तिष्कको एक उलझनमें डाल दिया। आश्चर्यान्वित हो वह केवल माके क्रुद्ध चेहरेकी ओर एक स्थिर, गम्भीर, कौतूहलपूर्ण दृष्टि डालकर रह गई।

क़रीब आध घंटा बाद किंचित् उदास-सा मुख लिये निर्मला जब कमलको साथ लेकर स्कूल चली गई, तब सावित्रीको अपनी सारी वक्तृता सारहीन प्रतीत होने लगी। सहसा उसे याद आने लगी कुछ वर्ष पूर्वकी एक बात। तब वह नरेन्द्रसे क्यों रूठ गई थी ? छिः ! एक तुच्छ-सी बातपर····किन्तु आज जो बात तुच्छ जान पड़ती है, उन दिनों उसी तुच्छ निकृष्ट ज़रा-सी बातने इतना उग्र रूप क्यों धारण कर लिया था, जिसके कारण भाई-बहनने आपसमें पूरे एक महीने तक एक बात भी न की थी ! एकाएक सावित्रीके चेहरेपर हँसी प्रस्फुटित हो उठी, जब उसे स्मरण हो आया कि नरेन्द्रका दिन-रात नये-नये रिकार्ड लाकर ग्रामोफोनपर बजाना और एक दोस्तसे दूरबीन माँगकर आते-जाते बहनके कमरेकी ओर झाँकना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि किसी तरह इन दोनों चीज़ोंका प्रभाव सावित्रीपर पड़ रहा है या नहीं ! उसे यह भी याद करके ख़ूब हँसी आई कि कैसे वह मौन धारण किये हुए मिठाईकी तश्तरी नरेन्द्रके कमरेमें रख आती थी।

× × ×

टेबिल क्लाथ पुनः हाथमें लेकर काढ़ते हुए सावित्रीने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि अबसे वह बच्चोंको बिलकुल डाँट-फटकार नहीं बतायेगी ; किन्तु इधर बारह बजे आधी छुट्टीमें खानेके समय फिर कई अभियोग कमलकी ओरसे मौजूद थे—"निर्मला मुझे अपने साथ-साथ नहीं चलने देती, पीछे छोड़ आती है। 'मन्दाकिनीर पूर्ण धाराये' के बदले 'कमलकिनीर पूर्ण धाराये' गाना गाती है और गधा कहती है।"

मामला कुछ गम्भीर न था ; और दिन होता, तो शायद निर्मलाकी इन शरारतोंको सावित्री हँसी समझकर टाल देती ; परन्तु यह उद्दण्ड लड़की सवेरेसे ही उसके प्रिय तथा आवश्यक कार्यमें बार-बार बाधा डाल रही है ! एक हल्की चपत निर्मलाके लगाते हुए माने डाँटकर कहा—"बस, कल ही स्कूलसे तेरा नाम कटवा दिया जायगा। यह सब अंगरेज़ी स्कूलकी शिक्षाका ही नतीजा है। ज़रा-सी लड़कीने घर-भरमें आफ़त मचा रखी है। अभीसे भाई-बहनोंकी शकल-सूरत नहीं भाती, बड़ी होनेपर न-जाने क्या-क्या करेगी।" फिर थालीमें पूरी-तरकारी डालकर बच्चोंके आगे रखते हुए ज़रा धीमे स्वरमें कहा—"देखो निर्मला, जब मैं तुम्हारे बराबरकी थी, तो अपने भाई-बहनोंको कभी तंग नहीं करती थी, कभी अपने माता-पिताको दुःख नहीं देती थी।" किन्तु यह बात कहते हुए भीतर-ही-भीतर सावित्रीको कुछ झिझक-सी हो आई।

× × ×

"हम दोनों सीताके घरसे जुलूस देखेंगे मा, अच्छा।"—कमलने विनम्र स्वरमें अनुमति चाही।

"नहीं जी, क्या अपने घरसे दिखाई नहीं पड़ता ?" दरवाज़ेकी ओटमें निर्मला खड़ी थी। "कैसी चालाक लड़की है—इसी ग़रीबको आगे करती है, जब ख़ुद कुछ कहना होता है। जाओ, जाना हो तो।" सावित्रीने झुँझलाकर उत्तर दिया।

पाँच बजे मुहर्रमका जुलूस निकलनेवाला था। पल-भरमें चौराहेपर सैकड़ों मनुष्योंकी भीड़ इकट्ठी हो गई। सावित्रीका ध्यान कभी काले-हरे रंग-बिरंगे वस्त्र पहने जन-समूहकी ओर और कभी जुलूसके कारण रुकी हुई मोटर गाड़ियोंमें बैठे हुए व्यक्तियोंकी ओर अनायास ही खिंच रहा था। और इधर बालिका निर्मलाके होश-हवाश एकाएक गुमसे हो गये, जब उसे सारे घरमें कमलकी परछाईं तक नज़र न आई। व्याकुल-सी हो, वह एक कमरेसे दूसरे कमरेमें और फिर बरामदेमें पंखहीन पक्षीकी नाईं फड़फड़ाती हुई दौड़ने लगी। उसके बाल-नेत्रोंके आगे अँधेरा-सा छा गया। उसे सब कुछ सुनसान-सा प्रतीत होने लगा। वह माँसे कई बार छोटे बच्चोंका भीड़-भाड़में खो जानेका हाल सुन चुकी है। आह···· उसका भैया····कमल····वह क्या करे ?

नीचेकी सड़कपर भाँति-भाँतिके रंग-बिरंगे खिलौने, नये-नये ढंगके गुब्बारे, काग़ज़के पंखे, पतंग, और भिन्न-भिन्न प्रकारके सुर निकलते हुए बाजे लाकर बेचनेवालोंने बाल-जगतके प्रति एक सम्मोहन जाल-सा बिछा रखा है। कुछ दूरसे मानो नेपथ्यमें से ढमाढम-ढमाढम ढोल-बाजोंकी ध्वनि बढ़ती आ रही है। निर्मला इन सब चित्ताकर्षक चीज़ोंको बिना देखे-सुने ही भीड़-भाड़को चीरती हुई वेगपूर्वक भागती-भागती, सीताके घरसे भी हो आई ; पर कमल तो वहाँ भी नहीं है ! रोते-रोते निर्मलाकी आँखें सूज गईं। चेहरेका रंग सफेद पड़ गया। आख़िर हिचकियाँ लेते हुए रुँधे गलेसे उसने माके पास जाकर कहा—"कमल···· कमल तो सीताके घर भी नहीं है !"

सावित्रीका तन-बदन एक बार सहसा काँप उठा। क्षण-भरमें भीड़, मोटर और गाड़ियोंके भयसे कई अनिष्ट आशंकाएँ उसकी आँखोंके आगे घूम-सी गईं ; किन्तु वह अपने भीरु लड़केकी नस-नससे परिचित थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे पूरा विश्वास था कि कमल ज़रूर ही कहीं-न-कहीं किसी दूकानपर खड़ा होकर अथवा किसी नौकरके साथ जुलूस देख रहा होगा; फिर भी उसने फूट-फूटकर रोती हुई निर्मलाको हृदयसे नहीं लगाया और न उसे धीरज बँधाया, बल्कि वह आश्चर्यचकित-सी हो मानो अपनी लड़कीकी रुलाईको समझनेका प्रयत्न कर रही थी। रह-रहकर एक सन्देह-सा उसके मनमें उठने लगा—'मुझसे भी अधिक—भला माके दिलसे भी ज्यादा—किसी औरको दर्द-चिन्ता हो सकती है, और यह निर्मला तो दिन-रात कमलको सताया करती है!''

जुलूस समाप्त हो गया। क्रमशः दर्शकोंके झुण्ड भी छिन्न-भिन्न होने लगे। मोटर गाड़ियोंका धड़ाधड़ आना-जाना पूर्ववत् जारी हो गया। और सामने ही फुटपाथपर सफेद निकर और सफेद कमीज़ पहने पड़ोसी डाक्टर साहबके नौकरके हाथमें हाथ लटकाये कमलकिशोर घर आता हुआ दिखाई दिया।

× × ×

सीढ़ियोंमें से फिर सिसकनेकी आवाज़ सुनकर सावित्रीने देखा तो मन्त्रमुग्ध-सी रह गई। कमलको दृढ़-पाशमें बाँधे निर्मला दुगने वेगसे रो रही है। उसके कोमल गुलाबी गाल मोटे-मोटे आँसुओंसे भीगे जा रहे हैं और वह बार-बार कमलका मुख चूम-चूमकर कह रही है—"पगला! तू कहाँ चला गया था? गधा! तू क्यों चला गया था?"

सावित्रीका हृदय उमड़ आया, पुनीत प्रेमके इस दृश्यको देखकर एक आनन्दकी धारा-सी उसके अन्तस्तलमें बहने लगी। झरते हुए आँसुओंके साथ उसने कमलकी जगह निर्मलाको छातीसे लगाकर उसका मुँह चूम लिया और कहा—"बेटा, बहनको प्यार करो। देखो, वह तुम्हारी ख़ातिर कितना रोई है। तुम बिना कहे क्यों चले जाते हो?"

निर्मलाका इतना आदर होते देख कमल बोल उठा—"तो क्या मैं वहाँ नहीं रोया था?"

"तुम क्यों रोये थे जी?"—माने कौतूहलवश पूछा।

"मैंने गुब्बारा लेना था, पैसा नहीं था।"

निर्मलाने दौड़कर अपनी जमा की हुई चवन्नीके पैसेसे दो गुब्बारे और दो काग़ज़के खिलौने कमलको लाकर दिये और एक बार फिर उसे भुजाओंमें जकड़कर कहा—"गधा! तू क्यों चला गया था?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्बोधन

श्रीयुत गिरिजाशंकर मिश्र 'गिरीश'

['विशाल भारत' के फरवरी १९३७ के अंकमें प्रकाशित 'सेवा-उपवन' नामक लेखमें कुष्ठियोंका विवरण पढ़कर यह कविता लिखी गई है। —सम्पादक]

आज कैसा हो रहा हूँ ?

देख तो तू भी प्रिये, यह
क्या लिखा इस पत्रिकामें ;
राग जिसने भर दिया है
अति करुण उर तन्त्रिकामें।
पुण्य - सलिला वह रही है,
डुबकियाँ तू भी लगा ले ;
और मैं तो आज भावाकुल
विकल-सा हो रहा हूँ।
आज कैसा हो रहा हूँ ? १

फिर रही हैं आज सम्मुख
मूर्तियाँ उन देवियोंकी ;
और पर - दुःखापहारी
आर्त्त जग-जन-सेवियोंकी।
और ऊपर आसमाँसे
झाँकता है एक प्राणी ;
कह रहा है, 'पीड़ितोंके
हित यहाँ भी रो रहा हूँ।'
आज कैसा हो रहा हूँ ? २

प्यार था जिसने किया
गलितांगको छाती लगाकर ;
पर किया जगने पुरस्कृत
था जिसे सूली चढ़ाकर !
देखकर उस सन्तके
अनुयायियोंकी पुण्य-कृतियाँ ;
झुक रहा है शीश मेरा,
मुग्ध-मन मैं हो रहा हूँ।
आज कैसा हो रहा हूँ ? ३

धन्य है तू ओ विदेशी,
धर्म तुझसे चल रहा है ;
धन्य तेरा बहन ! यौवन,
जो गलित हित गल रहा है।
धन्य हैं वे मिट रहे जो,
लीन पर - हित - चिन्तनामें ;
और मैं हूँ स्वार्थमें रत
नींद सुखकी सो रहा हूँ।
आज कैसा हो रहा हूँ ? ४

अब तलक भटका किया, की
ज़िन्दगी बरबाद मैंने ;
सैर की मैंने बहुत, पर
यह न पाया स्वाद मैंने।
की अभी तक जो उपेक्षा,
तू उसे भाई क्षमा कर ;
आज तेरी यादमें मैं
देख, सुध-बुध खो रहा हूँ।
आज कैसा हो रहा हूँ ? ५

आज ही मैंने पढ़ी यह
कुष्ठियोंकी पुण्य - गाथा ;
घूम - सा तबसे रहा है
लाज, दुखसे हाय माथा !
सोचता हूँ, अब तलकका
व्यर्थ था मेरा परिश्रम ;
आज यह कुछ शब्द लिखकर
पाप अपने धो रहा हूँ।
आज कैसा हो रहा हूँ ? ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत-शासन-विधानके विरोधमें १ अप्रेलकी हड़तालपर बम्बईकी एक सभामें श्री नरीमैन भाषण दे रहे हैं

सीमाप्रान्तमें कबीलोंका उपद्रव फिर जारी है। चित्रमें एक अफरीदी कारीगर राइफिल बना रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनघट (एक प्राचीन चित्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'केशवकी काव्य-कला'

श्री मयाशंकर याज्ञिक, बी० ए०

उपर्युक्त ग्रन्थोंको प्रकाशित हुए यद्यपि तीन वर्ष हो चुके हैं; परन्तु उसे देखनेका सौभाग्य हमें हाल ही में प्राप्त हुआ है। ग्रन्थकर्ता हैं पं० श्री कृष्णशंकर शुक्ल एम० ए०। इस ग्रन्थमें महाकवि केशवदासकी और उनके ग्रन्थोंकी आलोचना की गई है। हिन्दी-साहित्यमें केशवदासका एक स्थान है, और वह बहुत ऊँचा है। परन्तु इस ग्रन्थमें आलोचना कुछ इस ढंगसे की गई है कि पाठकके हृदयमें यही धारणा होती है कि ग्रन्थकारका उद्देश्य केशवदासको उच्च स्थानसे गिराना ही है। ग्रन्थमें जगह-जगह अनेक बातें इस रीतिसे लिखी गई है कि पाठकके हृदयमें सहज ही यह भाव उत्पन्न हो जाता है कि केशव कोई नीचे दर्जेके पंडित और कवि थे, लोगोंने बिना समझे उनको आचार्य मान लिया है। हिन्दी-साहित्यमें केशवको कोई उच्च स्थान न मिलना चाहिए इत्यादि।

पं० कृष्णशंकरजी लिखते हैं :—

(१) 'कवि-प्रिया'में अलंकार इत्यादिका वर्णन शास्त्रीय ढंगसे न हो पाया, लक्षणोंकी भाषा साफ़ नहीं है। लक्षणों तथा उदाहरणोंका समन्वय नहीं किया गया। परिभाषाएँ स्पष्ट नहीं हैं।

(२) किसी भाव या रसको पाठकोंके हृदयमें कैसे जगाया जाय, यह केशव नहीं जानते थे। केशवदासजी केवल ठूँस-ठूँसकर विभावादिकी योजना करनेमें रह गये।

(३) सच्चे प्रेमकी सुकुमारताके समझनेकी भी कोमलता सम्भवतः केशवमें नहीं थी।

(४) उनको काव्यमें चित्र खचित करनेकी कलापर बहुत अधिकार न था।

(५) प्रकृतिकी रमणीयतामें सहृदयतासे अनुरक्त होनेके लिए जिस सुकमार हृदयकी अपेक्षा है, वह केशवको नहीं मिला था।

(६) केशव गम्भीर मार्मिक भावोंके चित्रणमें न अभिरुचि रखते थे, न उतनी योग्यता।

(७) भाषाकी प्रौढ़ताकी दृष्टिसे तो कहा जा सकता है कि यदि प्रौढ़तासे तात्पर्य भाषाकी कसावटसे है, तो वह केशवमें नहीं मिलती। प्रायः इनके सभी ग्रन्थोंके प्रवाहमें एक प्रकारका ढीलापन है।

(८) केशव प्रायः किसी अलंकारका प्राणतत्त्व नहीं समझ पाते थे। इन सब बातोंके देखनेसे इस निर्णयपर पहुँचना कठिन नहीं है कि केशवका अलंकार-शास्त्रका यथार्थ ज्ञान नहीं था। आचार्य ऐसे उच्चपदके योग्य जैसी योग्यता तथा अभिज्ञता अपेक्षित है, वैसी केशवमें नहीं थी। 'कवि-प्रिया', 'रसिक प्रिया' आचार्यत्वकी दृष्टिसे केशवको कोई उच्च स्थान नहीं दे सकतीं। केशवके पांडित्यमें गम्भीरता नहीं थी।

इस तरह शुक्लजीकी रायमें केशवदास न पंडित थे, न आचार्य और न वे अलंकारशास्त्रके ज्ञाता ही थे। वे भाव चित्रण करना नहीं जानते थे, भाषा भी ढीली-ढाली लिखते थे।

अब यह देखना आवश्यक है कि शुक्लजीकी इस रायके विरुद्ध प्राचीन और वर्तमान लेखकोंकी क्या राय है :—

(१) प्राचीन समालोचक सूर और तुलसीके बाद केशवको ही तीसरा स्थान देते हैं।

"सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केसव दास;
अबके कवि खद्योतसम, जहँ-तहँ करत प्रकास।"

(२) महाकवि देव भी केशवकी प्रशंसा करते हैं और उन्हें महाकवियोंमें स्थान देते हैं।

(३) सूरज मिश्र इत्यादि प्रसिद्ध टीकाकारोंने केशवके ग्रन्थोंपर पांडित्यपूर्ण टीकाएँ लिखकर केशवके काव्यका आदर दिया है। वर्तमान समालोचक भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशवको उच्चकोटिका कवि मानते हैं और उनके आचार्य-पदको स्वीकार करते हैं।

(४) मिश्र बन्धुओंकी रायमें तो केशव "भाषाके माव····और सर्वव्यापिनी दृष्टिके कवि थे। केशवदासकी भाषा परम प्रशंसनीय तथा चित्ताकर्षणीय है। 'रसिक प्रिया' की मनोहरता दर्शनीय है। 'कवि-प्रिया' बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थसे इनको आचार्यकी पदवी मिली। 'रामचन्द्रिका' बड़ा ही रोचक और प्रशंसनीय ग्रन्थ है।····हम सूरदास, तुलसीदास, भूषण, बिहारी और देवके अतिरिक्त इनको किसी हिन्दी-कविसे नीचा पद नहीं दे सकते।"

(५) केशवके आधुनिक टीकाकार लाला भगवान दीनने लिखा है—"सब बातोंका विचार करके हमारी सम्मतिसे केशवको हिन्दी-काव्य-संसारमें हिन्दी-काव्याचार्यत्वके लिहाज़से सर्वप्रथम स्थान मिलना चाहिए; पर काव्य-चातुरीके लिहाज़से इनका वही स्थान रहेगा, जो पहलेसे चला आया है, अर्थात् तुलसी और सूरके बाद इनका तीसरा नम्बर होगा।"

(६) ग्रन्थकर्ता पं० कृष्णशंकर शुक्लके पूज्य गुरुदेव और हिन्दी-जगतके सुप्रसिद्ध समालोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"साहित्य-मीमांसाका मार्ग अच्छी तरह खोलनेके लिए हिन्दी-साहित्य आचार्य केशवका सदा ऋणी रहेगा। सूर, तुलसी आदिकी-सी सरसता और तन्मयता चाहे इनकी वाणीमें न हो; पर रस, अलंकार आदिके भेद-निरूपण और उदाहरण आदिके द्वारा साहित्यके सम्यक् पर्य्यालोचनका गौरव इन्हींको प्राप्त है।"

इन समालोचकोंकी राय यहाँ उद्धृत करनेसे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि केशवका काव्य बिलकुल निर्दोष है। अन्य महाकवियोंके काव्यकी भाँति केशवके काव्यमें भी गुण और दोष दोनों ही हैं; परन्तु दोष ऐसे नहीं हैं कि जिनके कारण केशवको उतना नीचा गिरा दिया जाय, जितना 'केशवकी काव्यकला' में गिराया गया है। शुक्लजीके समस्त आक्षेपोंकी जाँच तो हम किसी अन्य लेखमें करेंगे; यहाँ हम सरसरी तौरपर दो-चार बातें लिखेंगे, जिनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि शुक्लजीने केशवके प्रति न्याय नहीं किया।

शुक्लजीने केशवके काव्यमें 'कुछ उद्वेगजनक बातें' बतानेकी कृपा की है। पहले उन्हींकी जाँच कीजिए:—

(१) पहला आक्षेप यह है कि "अच्छे-से-अच्छा उपदेश यदि किसी अनधिकारीके द्वारा दिया जाता है, तो उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। कोई पुत्र अपनी माता अथवा पिताको शिक्षा देवे, तो उसका प्रभाव कैसा पड़ेगा। रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे वन जा रहे हैं, उस समय वे कौशल्याको पातिव्रतका उपदेश दे रहे हैं। वास्तवमें उपदेश सारगर्भित है और भगवान रामचन्द्र स्वयं दे रहे हैं; परन्तु भगवान होनेपर भी वे कौशल्याके पुत्र हैं, अतः उनके मुँहसे माताको यह उपदेश फबता नहीं है। एक बात और है, कौशल्या ऐसी साध्वी स्त्रीको किसीके भी द्वारा पातिव्रतका उपदेश अप्रासंगिक ही होगा, क्योंकि जब उपदेश दिया जाता है, तो यह पहले मान लिया जाता है कि उस व्यक्तिको उपदेशकी आवश्यकता है; परन्तु यहाँ ऐसी कोई नई बात नहीं थी।"

उत्तरमें आलोचक महोदयसे हमारा निवेदन है कि केशवदासने यह 'उद्वेगजनक' बात आदि कवि वाल्मीकिसे सीखी है। इस अपराधके प्रथम अपराधी महर्षि वाल्मीकि हैं। वाल्मीकीय रामायणमें भगवान रामचन्द्र माता कौशल्याको उपदेश देते हैं:—

"व्रतोपवास निरता या नारी परमोत्तमा।
भर्तारं नानुवर्तेत साच पापगतिर्भवेत्॥
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।
अपि या निर्नमस्कारा निवृतादेवपूजनात्॥
शुश्रूषामेव कुवर्ति भर्तुः प्रियहितेरता।
एष धर्मस्त्रीणां नित्यो वेदे लोके श्रुतस्मृतः॥"

यदि आलोचक महोदय परिस्थितिपर थोड़ा-सा भी विचार करते, तो उनको मालूम हो जाता कि भगवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्रजीका उपदेश अप्रासंगिक न था। राम वनवासकी बात सुनकर लक्ष्मणजीने क्रोधके आवेशमें आकर यहाँ तक कह डाला :—

"हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्त मानसं।"

—'कैकेयीमें आसक्त इस वृद्ध पिताका मैं नाश करूँगा।'

इसपर माता कौशल्याने लक्ष्मणजीको ऐसा करनेसे रोकनेकी जगह दबे शब्दोंमें इसका अनुमोदन ही किया। इसीलिए कविवर वाल्मीकिने भगवान रामचन्द्र द्वारा साध्वी कौशल्या माताको भी पातिव्रत धर्मके विषयमें कुछ शब्द कहलाना आवश्यक समझा है। यदि ऐसा न किया जाता, तो इसमें भगवान रामचन्द्रजीकी भी अनुमति होनेका संदेह हो सकता था।

'रामचन्द्रिका' में भी कौशल्याके वाक्य कुछ इसी ढंगके है, इसलिए वहाँ भी इस उपदेशकी आवश्यकता थी। रामचरित-मानसमें न लक्ष्मणजीके क्रोधका वर्णन किया गया है और न माता कौशल्याके ही इस रीतिके वाक्य हैं, इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजीको ऐसा उपदेश करानेकी आवश्यकता नहीं थी।

(२) दूसरा आक्षेप यह है—"केशवदासने प्राचीन आचार्योंके समान काल-विरोध दोष माना है; परन्तु उन्होंने अपने काव्यमें इस दोषको बचानेकी ज़रूरत नहीं समझी। पाण्डवोंका, जो एक युग बाद हुए थे, रामचन्द्रजीके समयमें वर्णन किया गया है। दिवालीके जुआ खेलकी प्रथा तथा फाल्गुनकी अश्लीलता आजकी बातें हैं, उस समय इसकी चर्चा करना बहुत खटकता है।"

पहली बात तो यह है कि यदि शुक्लजीने काल-विरोध दोषके जो उदाहरण केशवके दिये हैं, यदि उनपर विचार किया होता, तो वे यह आक्षेप ही नहीं करते। केशवने दण्डीके काव्यादर्शके आधारपर ही यह उदाहरण दिये हैं—

पद्मनी नक्तमुन्निद्रा स्फुटत्यन्हि कुमुद्वनी।
मधुरुत्फुल्लानिचुला निदाघो मेघ दुर्दिनः॥

—दण्डी

प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद विशाल।
कोकिल शारद मधुर मधु, बरषा मुदित मराल॥

—केशव

स्पष्ट है कि जो बात जिस समय प्रायः नहीं होती, उस समय उस बातका वर्णन करना काल-विरोध दोष माना गया है; पर ऐसा वर्णन कभी-कभी कवि कर दिया करते हैं।

कविकुल-गुरु कालिदासने रघुवंशमें इन्दुमतीके स्वयंवरमें सुनन्दासे शूरसेन देशके राजा सुषेणका वर्णन करते हुए मथुराका वर्णन किया है—

"कालिन्द कन्या मथुरां गतापिगङ्गोर्मिसंसक्त जलेवभांति।"

मथुरा तो लवणासुर-वधके पश्चात् शत्रुघ्नने बसाई थी, उसका वर्णन दो पीढ़ी पहले अजके समयमें सुनन्दासे कराया गया है। यही नहीं, सुनन्दाने तो उस समय एक युग बाद हुए भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका भी नाम लिया है—

"वक्षःस्थल व्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं हेपयतवि कृष्णम्।"

इसी रीतिसे अध्यात्मरामायणमें भी रावण-वधके पश्चात् देवताओंने भगवान रामचन्द्रकी स्तुति की है, उसमें एक युग बाद हुए कृष्णावतारका वर्णन किया है—

"को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मया सक्तो माधव सक्तो मुनि मान्यम्।
वृन्दारण्ये वन्दित वृन्दारक वृन्दं
बन्दे रामं भवमुख बन्द्यं सुखकन्दम्॥"

—'हे लक्ष्मीपते, आप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे तथा सर्वथा निर्मान हैं, मायामें आसक्त कौन प्राणी आपके जाननेमें समर्थ हो सकता है। आप महर्षियोंके माननीय हैं तथा (कृष्णावतारके समय) बृन्दावनमें अखिल देव-समूहकी बन्दना करते हुए भी एक रूपसे शिव आदि देवताओंके स्वयं बन्दनीय हैं। ऐसे आनन्दघन रामको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इसी प्रकारके वर्णन और भी कवियोंने किये हैं। संसारकी अन्य भाषाके ग्रन्थोंमें भी ऐसे वर्णन पाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। उनको उद्वेगजनक मानकर कवियोंपर आक्षेप नहीं किया जाता।

इसी तरहसे होली-दिवालीकी बात है। ऐसे वर्णन प्राय: कवि कर ही जाते हैं। कवि स्वभावत: अपने समयका वर्णन करता है। दासजीने भी गीतावलीमें भगवान रामचन्द्रजीके होली खेलनेका वर्णन किया है और उसमें गाली देनेकी अश्लील प्रथाका भी ज़िक्र किया है--

"ऋतु सुभाय सुठि शोभित होहिं विविधविधगारि।"

गोस्वामीजीने राम और शिव-विवाहमें गाली गानेका वर्णन किया है।

(३) इसी सिलसिलेमें शुक्लजीने लिखा है—"मठधारियोंसे केशवदासजी बहुत अप्रसन्न रहते थे। इसका वास्तविक कारण क्या था, यह तो नहीं कहा जा सकता; परन्तु मठाधीशोंकी निन्दा उन्होंने स्थान-स्थानपर की है और श्वानवाले प्रसंगकी कल्पना तो सम्भवत: इसीलिए की गई है। मठोंकी स्थापना बहुत पिछले समयमें बौद्धोंके अनुकरणपर शंकराचार्यजीके समयमें होने लगी थी। अत: मठाधीशोंका वर्णन त्रेतायुगमें ठीक नहीं हुआ है।"

श्वानवाले प्रसंगकी कल्पना मठाधीशोंके विरोधके कारण केशवने नहीं की है। यह कल्पना तो महर्षि वाल्मीकिकी है। वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें इस प्रसंगका सविस्तार वर्णन है। उसीके आधारपर केशवदासने 'रामचन्द्रिका' में लिखा है। इसका दोष केशवके ऊपर रखनेमें शुक्लजीने सरासर भूल की है। शुक्लजीने यह भी भूल की है कि आपने मठका अर्थ बौद्ध भिक्षुकोंके रहनेका या संन्यासियोंके रहनेका स्थान समझ लिया है। केशवदासजीने तो स्कन्धपुराण, पद्मपुराणके श्लोक उद्धृत करके स्पष्ट बता दिया था कि 'मठ' से उनका मतलब देव-मन्दिरसे था, न कि संन्यासियोंके रहनेके स्थानसे। लाला भगवानदीनजीने भी श्लोकका अर्थ लिखनेमें मठका अर्थ मन्दिर ही किया है।

(४) 'रामचन्द्रिका' में काल-देश-विरोध दोष भी बतलाया है, क्योंकि उसमें विश्वामित्रके आश्रममें—

"एला-ललित-लवंग-संग पूंगीफल सोहैं।"

लिखा है। बिहारमें यह वस्तुएँ नहीं होतीं, इसलिए काल-देश-विरोध दोष बतलाया है। इसका समाधान तो लाला भगवानदीनजीने अपनी टीकामें कर दिया था। एला, लवंग, पूंगीफल और राजहंसका बिहारके जंगलोंमें होना असम्भव है; परन्तु कवि-प्रणालीके अनुसार वन-वर्णनमें इनका वर्णन होना ही चाहिए। इसलिए केशवने इनका वर्णन किया है। 'कवि-रहस्य' में कहा है कि काव्योंमें कुछ बातें ऐसी आती हैं, जो न शास्त्रीय हैं, न लौकिक; किन्तु अनादिकालसे कवि उनका व्यवहार करते आये हैं। ये कवि-समय (Poetical convention) के नामसे प्रसिद्ध हैं। कवि-समय तीन प्रकारके हैं :—

(१) असत बातका कहना—(क) नदीमें कमलका वर्णन (बहते जलमें कमल नहीं होता), (ख) जलाशय मात्रमें हंसका वर्णन (हंस केवल मानसरोवरमें रहते हैं), (ग) सभी पर्वतोंमें सोना रत्नादिकी उत्पत्तिका वर्णन।

(२) सतका नहीं कहना—वसन्तऋतुमें मालतीका वर्णन नहीं करना, चन्दन वृक्षके फूलोंका वर्णन नहीं करना, अशोक वृक्षके फूलोंका वर्णन नहीं करना।

(३) अनियतको नियत करना—मगर यद्यपि सभी बड़े जलाशयोंमें पाये जाते हैं, तथापि केवल गंगामें इनका वर्णन करना। भोजपत्र यद्यपि अनेक उच्च पर्वतोंमें मिलता है, तथापि केवल हिमालयमें इसका वर्णन करना। कोकिलकी कूक ग्रीष्म आदि ऋतुमें भी सुनी जाती है, तथापि केवल वसन्तमें इसका वर्णन करना। मयूर यद्यपि और समय भी नाचते हैं, तथापि वर्षा ही में उनका वर्णन करना।

'कवि-समय' के अनुसार केशवदासके वन-वर्णनमें एला, लवंग, पूंगीफलका वर्णन ठीक ही है। इसमें देश-विरोध दोष बताना दुराग्रहमात्र है।

(५) पाँचवाँ आक्षेप शुक्लजीका यह है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सीताकी अग्नि-परीक्षाके समाप्त होते ही इन्द्र, वरुण, ब्रह्मा इत्यादि देवता दशरथजीको लिये-दिये वहाँ आ पहुँचते हैं, और इन लोगोंने साक्षी दी कि सीता संतत शुद्ध है। बस, यह सुनते ही सीताको 'श्रीरामचन्द्र हँसि अंकि लगाय लीन्हों।' चाहे उस समय पर्दाकी प्रथा न रही हो; परन्तु फिर भी गुरुजनोंके सन्मुख ऐसा आलिंगन उस समय भी उचित नहीं समझा जाता रहा होगा।"

केशवदासने यह बात अध्यात्मरामायणसे ली है। इसी प्रसंगमें 'अध्यात्मरामायण' में लिखा है—

'स्वांके समावेश्य सदानयायनीं श्रियं त्रिलोकी जननी श्रियः पतिः।'

—फिर लक्ष्मीपति भगवान रामने अपनेसे कभी विलग न होनेवाली जगज्जननी जानकीको गोदमें बिठा लिया।

उस समय उचित समझा जाता था, तभी तो 'अध्यात्मरामायण' में सीताजीको गोदमें बिठा लेना वर्णन किया गया है। शुक्लजी लिखते हैं :—

(१) राजा दशरथ रामको राज्य देनेका विचार कर रहे हैं। यह बात सुनते ही कैकेयीके हृदयमें रामको वन भेजनेका विचार उठता है। इससे यह दीखता है कि कैकेयीको रामसे स्वाभाविक द्वेष रहा होगा; परन्तु वास्तविक बात ऐसी नहीं थी। कैकेयीका द्वेष वास्तवमें द्वेष नहीं था, वह आकस्मिक क्रोध था, जिसके लिए कैकेयीके स्वभावका भोलापन तथा मंथराकी दुष्टता बहुत-कुछ उत्तरदायी थी। मंथराका चरित्र छोड़ देनेसे कैकेयीका चरित्र एक भिन्न ही प्रकारका हो गया है।

(२) शुक्लजी यह भी लिखते हैं—रामसे वन जानेको अभी किसीने नहीं कहा है। न-जाने किसके मुँहसे उन्हें समाचार मिला और वे वन जानेकी तैयारी करने लगे—

"उठि चले विपिन कँह सुनत राम।
तजि तात मात तिय बन्धु धाम॥"

ऐसा प्रतीत होता है कि अयोध्याका राजमहल माता-पिता तथा अन्य स्वजनोंके स्नेहसे स्निग्ध एक आदर्श कुटुम्ब तथा एक सराय अथवा धर्मशाला थी, जिसमें रामचन्द्रजी कुछ दिनोंको ठहरे हुए थे और अपने नियत दिन पूरे कर चलते बने। सीता लक्ष्मणके साथमें चलनेको प्रस्तुत होनेपर राम न तो पितासे विदा लेने जाते हैं और न माके चरण स्पर्श करते हैं, बस एकदम वनमें बिराजने लगते हैं। ऐसे ही कारण बताकर कहा गया है कि केशव चरित्र-चित्रण करना नहीं जानते थे, और वे कथाके क्रमनिर्वाहमें सफल नहीं हुए हैं।

यह सब आक्षेप निर्मूल हैं। जिस तरह केशवने मन्थराका चरित्र छोड़ दिया है, उसी तरहसे गोस्वामी तुलसीदासजीने भी गीतावली रामायणमें मन्थराका वर्णन नहीं किया, बल्कि कैकेयीके दो वरदान माँगने तकका ज़िक्र नहीं किया है। केवल यह लिखकर छोड़ दिया है :—

"सुनत नगर आनन्द बधावन कैकेयी बिलखानी;
तुलसीदास देवमाया बस कठिन कुटिलता ठानी।"

इसी भाँतिसे कालिदासने रघुवंशमें मन्थराका नाम तक नहीं लिया है; परन्तु इस कारण न तो गोस्वामीजीपर और न कालिदासपर कैकेयीके चरित्रका चित्रण ठीक न करनेका दोष आज तक किसी भी आलोचक द्वारा नहीं लगाया गया है। फिर केशवपर यह दोषारोपण करना कहाँ तक उचित है।

यह बिलकुल ठीक है कि भगवान रामचन्द्रको अयोध्याके राज्यसे सराय या धर्मशालाके बराबर भी मोह नहीं था। गो० तुलसीदासजीने लिखा है—'राजीवलोचन राम चले तजि बापको राज बटाऊकी नाईं।'

'गीतावली'में गो० तुलसीदासजीने तथा 'रामचन्द्रिका' में केशवदासने वन जानेसे पूर्व भगवान रामचन्द्रजीको माता कौशल्यासे आज्ञा लेने भेजा है। कालिदासने तो रघुवंशमें यह भी नहीं कराया। अयोध्याकाण्डकी कथामें कहीं भी कौशल्या तथा सुमित्राका नाम तक नहीं लिया है। न महाराज दशरथके पास बिदा माँगनेके लिए रामजीको भेजा है। परन्तु कालिदासपर यह ऐतराज़ नहीं किया गया कि अयोध्याका राजमहल एक आदर्श कुटुम्बके रूपमें चित्रित नहीं किया गया।

इसी रीतिसे शुक्लजीके तमाम ऐतराज़ोंकी जाँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाय, तो लेख बहुत बढ़ जायगा। केशवके अलंकार-विषयक ज्ञानपर किये गये आक्षेपोंका उत्तर दूसरे लेखमें दिया जायगा। दो-एक बातें कहकर इस लेखको समाप्त करते हैं।

शुक्लजीने एक जगह लिखा है कि दंडीने बहुतसे अलंकार तो प्राचीन मम्मटादि आचार्योंके अनुसार माने हैं। इसी बातको फिर दोहराया है कि दंडीका श्लेश मम्मटादि प्राचीनोंका व्याजोक्ति है। शुक्लजीको सम्भवतः नहीं मालूम कि दंडीका समय ईसाकी सप्तम शताब्दीका अन्तिम चरण है और मम्मटका समय ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी है। मम्मटका दंडीसे प्राचीन मानना भूल है। अपनेसे क़रीब ४०० वर्ष बाद होनेवाले मम्मटके अनुसार दंडी कोई अलंकार कैसे मान सकते थे?

अन्तमें हमें इतना ही कहना है कि केशवके विषयमें इस प्रकारकी समालोचना पढ़कर अपरिपक्व बुद्धिके विद्यार्थियोंके चित्तमें जो थोड़ी-बहुत श्रद्धा केशवके विषयमें होगी, वह भी जाती रहेगी। यदि यह ग्रन्थ सच्ची सहानुभूतिके साथ लिखा गया होता और इसमें केशवके वास्तविक दोष दिखाये गये होते, तो कुछ हानि नहीं थी; परन्तु ऐसा नहीं किया गया है। केशवके व्यक्तिगत जीवन तकको इसमें बहुत हल्का और नीचा दिखलाया गया है। इस समय ब्रजभाषा साहित्यकी ओरसे लोगोंकी रुचि यों ही हट रही है, फिर जब ब्रजभाषा-साहित्यके आचार्य और महाकवियोंकी ऐसी विकृत आलोचना विद्यार्थियोंके सन्मुख रखी जायगी, तो उनकी रुचि और श्रद्धा उस ओरसे स्वभावतः हट जायगी। इसी आशंकाके कारण हमें यह लेख लिखना पड़ा है। क्या ही अच्छा हो, यदि पं० कृष्णशंकर अपने पूज्य गुरुदेव पं० रामचन्द्रजी शुक्लकी शैलीको आदर्श मानकर समालोचना करें। इससे उनका हित होगा और हिन्दी-साहित्यका कल्याण भी।

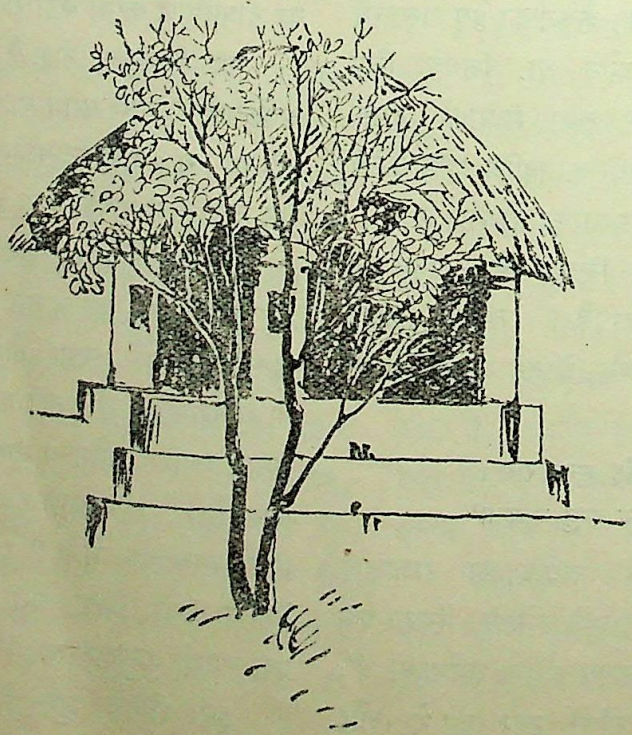

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशील साहित्य किसे कहना चाहिए ?

श्री ललिताचरण गोस्वामी

गत मार्चके 'विशाल भारत' में 'भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता' शीर्षक एक वृहत् एवं पुष्ठ और विचारप्रेरक लेख छपा है। इस लेखके विद्वान लेखकने भारतके प्राचीन व अर्वाचीन साहित्यकी आलोचना करते हुए इस बातकी ज़बर्दस्त पैरवी की है कि भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी सृष्टि होनी चाहिए। साथमें उन्होंने यह भी बतला दिया है कि वे 'प्रगतिशील साहित्य' किसे कहते हैं। लेखके हार्दको पुष्ट करनेके लिए भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी ऐतिहासिक प्रगतिका मुख्य सहारा लिया गया है।

हमारा साहित्य प्रगतिशील होना चाहिए इसमें किसको ऐतराज़ हो सकता है ? Grow or decay वाला सिद्धान्त जितना मानव-समाजके लिए सत्य है, उतना ही साहित्यके लिए भी है ; परन्तु 'प्रगति' हम किसे कहें ?—इस बातपर मतभेद हो सकता है, और ऐसा होना स्वाभाविक है।

वैसे तो अर्थहीन प्रगति ही हमारे इस युगकी विशेषता है ; परन्तु प्रत्येक देश और दिशामें विचारशील मस्तिष्क इस 'प्रगति'को लक्ष्य और अर्थ प्रदान करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी ही एक चेष्टा उपर्युक्त लेखमें भी की गई है। लेखकने हमारी साहित्यिक प्रगतिका आदर्श लक्ष्य 'भारतमें साम्यवादी विचारोंकी स्थापना और वृद्धि' बतलाया है। उनकी इस बातमें किसीको चूँचराँ करनेकी गुंजाइश भी न होती, अगर वे अपने सिद्धान्तोंके प्रतिपादनमें उस मनोवृत्तिका प्रदर्शन न करते, जिसको हम 'डिक्टेटरी मनोवृत्ति' कह सकते हैं। उदाहरणके लिए, लेखक महोदयने जब भारतीय संस्कृतिके इतिहासकी जाँच की है, तो वह ठीक उसी ढंगसे, जिस ढंगसे स्टेलिन-विरोधी षड्यन्त्रकी जाँच अभी हालमें ही रूसमें की गई थी। उस षड्यन्त्र केसके अभियुक्तोंसे मनमाने इक़रार करा लिये गये थे। इस लेखमें भी विद्वान लेखकने इतिहाससे जो चाहा है, वह कहलवा लिया है।

यह सिद्धान्त अब सर्वमान्य हो चुका है कि किसी खास दृष्टिकोणको लेकर इतिहासका अध्ययन नहीं करना चाहिए। भारत-जैसे परशासित देशको तो इस बारेमें सदैव ही सतर्क रहना चाहिए—ख़ास करके उस हालतमें, जब विदेशी दृष्टिकोणको लेकर लिखे हुए इतिहासके शापसे वह अभी तक मुक्त नहीं हो सका है। साथमें यह सिद्धान्त भी कि 'मानव-इतिहास सर्वत्र एक ही गतिसे चला है'—कितना भी सुविधाजनक (Comfortable) क्यों न हो, सर्वथा भ्रममुक्त तो नहीं कहा जा सकता।

यह माना जा सकता है कि मानवकी मूल समस्याएँ सर्वत्र ही क़रीब-क़रीब एक-सी रही हैं ; परन्तु इतनी-सी मौलिक समानता तो भिन्न-भिन्न मानव-समाजोंकी उस विशिष्टताको और भी महत्त्वपूर्ण बना देती है, जो उन्होंने इन समस्याओंको, अपने भिन्न-भिन्न तरीक़ोंसे, हल करनेके बाद प्राप्त की है। विभिन्न समाजोंकी विशिष्टताओंको ध्यानमें न रखकर मानव-समस्याओंकी केवल मौलिक समानताके आधारपर ही सम्पूर्ण मानव-इतिहासमें एक ही धारा और गतिका अनुशीलन करना भ्रमपूर्ण है।

ऐसे ही भ्रममें पड़कर लेखक महोदयने भारतीय समाजके इतिहासमें लगभग तीन हज़ार वर्षोंसे 'सामन्तवाद' (Feudalism) का ही बोलबाला बतला दिया है। समझमें नहीं आता कि उन्होंने किस आधारपर ऐसा लिख मारा है। तीन हज़ार वर्षके दायरेमें तो भारतीय संस्कृतिका लगभग सम्पूर्ण ऐतिहासिक काल (Historical Period) आ जाता है! तो क्या भारतीय समाजकी रचना मूलतः सामंतवादी ही है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समाजके इतिहासका हरएक विद्यार्थी यह जानता है कि इस क्षेत्रमें भारतका अपना एक मौलिक विधान है। उसका यह विधान संसारके इस प्रकारके प्रत्येक विधानसे अनोखा है। यूरोपीय इतिहासके मध्ययुग (Middle Ages) में वहाँ सामन्त-समाज (Feudal Society) का जन्म हुआ था, और यद्यपि भारतीय इतिहासके मुसलमान शासन-कालमें यहाँ भी सामन्त-प्रथाका प्रचार हो गया था; परन्तु यह राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित था। हमारे सामाजिक क्षेत्रमें तो यह प्रथा किसी कालमें भी पूर्ण रूपसे प्रविष्ट नहीं हो सकी थी।

इस बातको स्पष्ट रूपसे समझनेके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने विधानके मूल तत्त्वोंका संक्षिप्त विवेचन इसी स्थानमें कर दें। हमारे इस विधानमें मानवके दोनों रूपों—वैयक्तिक और सामाजिक—का नियन्त्रण अंगांगी भावसे किया गया था। वैयक्तिक जीवनके नियन्त्रणके द्वारा हमारा सामाजिक जीवन स्थायी और सम्पूर्ण बना था, तथा हमारे सामाजिक विधानको अक्षुण्ण बने रहनेके लिए, संसारके अन्य विधानोंकी भाँति, किसी वाह्य सत्ता या दबावकी आवश्यकता नहीं पड़ने पाई थी। नियन्त्रित व्यक्ति नियन्त्रित समाजमें बड़ी सहूलियत और स्वतन्त्रताके साथ उन्नति कर सकता था। समाजके भिन्न-भिन्न—वर्ग तो नहीं—अंगोंमें स्पर्धा और संघर्षण उत्पन्न न हो जाय, इसका भी इस विधानमें ख़ास ख़याल रखा गया था। समाजमें विषमता और शोषणका जन्म वहीं होता है, जहाँ 'शक्ति' और उसका दुरुपयोग करनेकी 'सत्ता' समाजके किसी एक ही अंगके हाथमें केन्द्रित हो जाती है। हमारे विधानमें शक्ति तो थी क्षत्रिय और वैश्योंके हाथमें; परन्तु अन्तिम सत्ता 'व्यावहारिक शक्तिहीन' ब्राह्मणोंके हाथमें थी। यही तो कारण है कि हम भारतीय इतिहासमें वल्कलधारी निस्पृह ब्राह्मणोंको विशाल और समृद्धिशील राष्ट्रोंका संचालन करते हुए पाते हैं। साम्यवादके विधानमें भी सामाजिक विधानोंके इस विस्फोटकसे बचनेकी चेष्टाको ही हम पद-पदपर कार्य करते हुए पाते हैं।

हमारे इस विधानमें अपूर्णता भी थी और वह चतुर्थ वर्ण (अन्त्यजों) की सामाजिक स्थितिके प्रश्नपर। इस चतुर्थ वर्णमें मुख्यतः वे लोग थे, जो आर्योंकी अपेक्षा सभ्यता और संस्कारमें बहुत पिछड़े हुए थे। आर्योंने इन लोगोंको अपने समाजका अंग तो बना लिया, मगर इनकी तरफसे सशंक सदैव रहे। उन्होंने इन लोगोंको सभ्य और संस्कृत बनानेके लिए प्रयास भी किये, मगर अपर्याप्त। परन्तु इस घटनाके आधारपर यह नहीं कहा जा सकता, जैसा कि विज्ञ लेखकने बार-बार अपने लेखमें कहा है कि हमारे कुल साहित्यके मूलमें इस दलित वर्गको अपनी कला और संस्कृतिसे प्रभावित कर देनेकी एकमात्र मनोवृत्ति ही काम कर रही थी! यदि प्राचीन और अर्वाचीन आर्योंका लक्ष्य यही होता कि अपने विशिष्ट साहित्य और कलाके द्वारा इस दलित वर्गपर रोब गाँठ दिया जाय, तो वे लोग समाजके इस दलित वर्गको अपनी भाषा—देववाणी—के अध्ययनके प्रति इस प्रकार निरुत्साहित न करते। जब हम अपने इतिहासमें सर्वत्र ही आर्य-भाषा और साहित्यको इस दलित वर्गके स्पर्शमात्रसे बचानेकी मनोवृत्तिका प्रदर्शन पाते हैं, तो साहित्यको इन लोगोंके शोषणका साधन बनानेवाली लेखककी बातपर हम कैसे विश्वास कर लें? आर्योंने इस वर्गको अँधेरेमें लूटा, यह तो सम्भव हो सकता है; परन्तु टार्च लाइटके सहारे चोरी करनेका फ़न ये 'अर्धसभ्य' लोग भी जानते थे, इसमें हमको सन्देह है!

बात तो यह मालूम होती है कि लेखक भारतीय साहित्यको साम्यवादी विचारोंके प्रचारका साधन बनाना चाहते हैं। इसके लिए यह परमावश्यक है कि वे भारतीय साहित्यिकोंके सामने इस मतलबकी नज़ीर पेश करें कि हमारा साहित्य पहले भी सामाजिक आन्दोलनोंके हाथका खिलौना रह चुका है। इस 'परमावश्यकता' की पूर्ति उन्होंने इतिहासकी सहायतासे करनी चाही है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इतिहास बड़ी निर्लिप्त चीज़ है, और इसको किसी भी मानव-आन्दोलनके साथ पक्षपात करते नहीं देखा गया है !

[२]

'भारतमें प्रगतिशील साहित्यकी आवश्यकता' शीर्षक लेख पढ़ते समय एक बात समझमें नहीं आती। लेखके प्रारम्भमें ही हमको एक ऐसे विरोधके दर्शन होते हैं, जिसका समझना हमारी साधारण बुद्धिके बाहरकी बात है। विद्वान लेखकने अपने लेखको लेनिनके संस्कृति-सम्बन्धी विचारोंके एक उद्धरणसे प्रारम्भ किया है। मालूम तो यही होता है कि लेखकने अपने विचारोंकी साम्यवादी भूमिकाको प्रारम्भमें ही स्पष्ट कर देनेके आशयसे इसको उद्धृत किया है; परन्तु उद्धरणमें प्रदर्शित संस्कृति-सम्बन्धी विचारोंमें और लेखकके अपने विचारोंमें हमको महत्त्वपूर्ण असाम्य दिखलाई देता है। मूल लेखमें इस उद्धरणका हिन्दी-भाषान्तर नहीं दिया गया है। हम अपनी तरफसे इस उद्धरणके पिछले दो वाक्योंका अनुवाद दिये देते हैं और साथमें लेखकके मन्तव्यको भी उद्धृत किये देते हैं।

मज़दूर-संस्कृति (Proletarian Culture) के विकासके सम्बन्धमें लेनिन कहता है—"मज़दूर-संस्कृति कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जो शून्यमें से उत्पन्न हो गई हो। यह उन लोगोंका आविष्कार भी नहीं है, जो अपनेको मज़दूर-संस्कृतिका विशेषज्ञ बतलाते हैं। ऐसा समझना महज हिमाक़त है! मज़दूर-संस्कृति तो उसी ज्ञान-फलका युक्तियुक्त विकसित रूप होना चाहिए, जिसको मानवताने पूँजीवादके जुएके नीचे रहकर उत्पन्न किया है।"

इन वाक्योंकी तुलना हमारे उत्साही लेखकके इन प्रारम्भिक वाक्योंसे कीजिए—"एक ओर उन्हें सड़ी हुई आर्थिक प्रणालीसे लेकर ज़हरीले, घातक और भ्रमात्मक धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक मतोंका जड़ोन्मूलन करना है, तो दूसरी ओर उन्हें एक नई आर्थिक प्रणालीकी स्थापना एक नये समाज, नये विचार, नवीन कला, नवीन विज्ञान, नई संस्कृति और नई बातोंकी रचना भी करनी है····उसे सूखे-फुलसे बाग़की रक्षा नहीं करनी है, बल्कि उसे उखाड़ फेंकनेके बाद उसमें नई पौध लगाना है।"

यदि हम लेनिनके शब्दोंका आशय ठीक समझते हैं, तो क्या लेखक महोदय भारतकी प्राचीन संस्कृतिका 'जड़ोन्मूलन' करनेका आदेश देकर भारतीय जनताको लेनिनके शब्दोंमें 'सम्पूर्ण अहमक़पन' (Complete nonsense)का आश्रय लेनेके लिए उपदेश दे रहे हैं ? लेनिनकी विचार-सरिणी हमको लेखककी विचार-सरिणीकी अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त और संयत प्रतीत होती है। हमको विश्वास है कि यदि हमारे लेखक इस सरिणीपर अपने विचारोंको विकसित (Develop) करते, तो अवश्य ही वे हिन्दी-साहित्य-प्रेमियोंके आगे कोई 'प्रगतिशील' कार्यक्रम रखनेमें सफल हो जाते। इस सरिणीको छोड़ देनेका परिणाम यह हुआ है कि शेक्सपियर और टैगोर जैसे विश्वकवि भी उनकी नज़रमें तुच्छ 'रहस्यवादी' मात्र रह गये हैं, और वह उस हालतमें, जब कि प्रगति और प्रकाशकी जन्मभूमि रूसमें इन दोनोंको ज़बरदस्त सम्मान मिल रहा है। इन दोनों महाकवियोंकी अमर कृतियोंके अनेक संस्करण वहाँ प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं।

एक और भी तमाशा है। लेखक महोदय जब अपना लेख लेनिनकी उपर्युक्त विचार-सरिणीके बिलकुल विरुद्ध दृष्टिकोणसे लिख डालते हैं, तब लेखके बिलकुल अन्तमें इस सरिणीके प्रति अपनी मौखिक सम्मति प्रदर्शित कर देते हैं। भारतीय समाज, कला और संस्कृतिको आपाततः प्रत्याघाती और व्यर्थ सिद्ध करनेकी भरसक कोशिश कर लेनेके बाद भी वे यह कहनेको तैयार हैं कि 'यह (साम्यवादी यथार्थवाद) पुरानी संस्कृतिके समस्त रचनात्मक और प्रगतिशील तत्त्वोंको ग्रहण कर उन्हें नये सिरेसे, नये ढाँचेमें ढालकर उसकी रक्षा करता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनिनके संस्कृति-सम्बन्धी विचारोंके प्रति विद्वान लेखककी इस वफादारीसे हम प्रभावित हुए हैं।

[३]

साहित्यके प्रेरक बलोंका विवेचन करते हुए विज्ञ लेखकने अपने लेखमें 'साहित्यकी मूल मनोवृत्ति' से लेकर साहित्यके गूढ़ सिद्धान्तों तकको 'स्पर्श' किया है; मगर सामन्तवाद, पूँजीवाद, चमगादड़ वगैरह हमारे उत्साही लेखकके पीछे ऐसे हाथ धोकर पड़े हैं कि वे किसी बातपर भी उनको साफ दिमाग़से विचार नहीं करने देते।

लेखककी साहित्यिक चिरौरी उनके इस दृढ़ विश्वासके ऊपर स्थित मालूम होती है कि मानवकी सामाजिक घटना ही नहीं, वरन् वह स्वयं—उसका मानवत्व—भी 'अर्थ'के ऊपर क़ायम है। वह किसी प्रकारका अभिव्यंजन आर्थिक Termsके बाहर नहीं कर सकता—उसकी प्रत्येक बातमें आर्थिक अभिप्राय होना ही चाहिए। साहित्यकी मूल मनोवृत्तिपर चर्चा करते हुए उन्होंने साफ शब्दोंमें कह दिया है कि "सौन्दर्यप्रियता तथा अभिव्यंजनकी भावनाएँ वास्तवमें समाजके अन्तर्गत और गौण रूपसे साहित्यके निर्माणमें सहायता देती हैं, क्योंकि शक्तिमान वर्ग अपनी सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार और रहन-सहनके तरीक़ोंको कलाके भिन्न-भिन्न रूपोंमें व्यक्त करके समाज (दलित समाज) में उनका विस्तृत विज्ञापन और प्रचार करनेकी कोशिश करता है।"

अपनी इसी मान्यताके आधारपर उन्होंने साहित्यके 'अनेकतामें एकता' (Unity in variety) जैसे गूढ़ सिद्धान्तोंकी भी, अपनी समझमें, पूर्ण छीछालेदर कर दी है। परन्तु हमको तो यही कहना पड़ता है कि इस सम्बन्धमें भी उन्होंने अपने आदर्श प्रगतिशील लेखकोंके सिद्धान्तोंके प्रति अपनी विचित्र प्रकारकी वफादारीका ही परिचय दिया है!

विद्वान लेखकने अपने लेखमें 'प्रगतिशील साहित्यकारों'के नामोंकी एक लम्बी लिस्ट पेश की है। उसमें सबसे पहला नाम रोमाँ रोलाँका है! इस नामको इतने उच्च स्थानमें देखकर हमको प्रसन्नता हुई। वाक़ईमें, इस फ्रेंच विद्वान-जैसी तात्त्विक और प्रगतिशील दृष्टि हरएक बड़े साहित्यिकको नसीब नहीं होती। हम इस विद्वानके दिखलाये हुए आलोकमें ही साहित्यकी वास्तविक प्रगतिका दर्शन करनेकी चेष्टा करेंगे।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि मानवके सम्पूर्ण अस्तित्वको आर्थिक चढ़ाव-उतारके ऊपर क़ायम करके विज्ञ लेखकने उसके सुख-दुख, वैर-प्रीति, सौन्दर्य और कला, महत्ता और दुर्बलताको एक विशिष्ट साँचेमें ढालनेकी चेष्टा की है। मानव-जैसे उलझे हुए तत्त्वको सुलझानेके प्रयासमें एक प्रकारका आकर्षण अवश्य है; परन्तु जहाँ मनुष्यके सांसारिक अस्तित्वका नाम ही 'उलझन' है, वहाँ उसको काट-छाँटकर सीधा करनेका प्रयास सीधा उसके अस्तित्वमें बाधक न सही, उसकी उन्नतिमें तो पूर्णरूपसे बाधक है ही। बंगीय विद्वान श्री दिलीपकुमार रायके टालसटायके कला-सम्बन्धी कुछ प्रश्नोंका उत्तर देते हुए रोमाँ रोलाँने अपने पत्रमें लिखा था कि "टालसटाय तथा अन्य अनेक लोगोंकी यह गम्भीर भूल है कि वे मानव-प्रकृतिको अत्यधिक सबल बनानेकी—उसको एक ही रंगमें रँगनेकी—चेष्टा किया करते हैं। दरअसल बात यह है कि मानवका अस्तित्व अनेक अस्तित्वोंका बना हुआ होता है। यह कहना और भी ठीक होगा कि मानवका अस्तित्व एक साथ ही अनेक स्थितियोंपर संचरण करता रहता है। मानव एक रागमाला है। तर्कबुद्धि, जिसका कि सभ्य मनुष्यको एक उत्पीडक पागलपन-सा सवार है, यह चाहती है कि हम अपने अस्तित्वकी इस गहन उलझनको निरुक्तकी भाँति एक सीधे-सादे आम फारमूलाके रूपमें ले आवें! परन्तु यह बात उन मध्यम श्रेणीके लोगोंके लिए ही सम्भव हो सकती है, जिनकी जीवनी-शक्तिको आत्माके इस प्रकारके वामनी-करणसे कुछ विशेष हानि नहीं पहुँचती। हाँ, वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग जो वास्तवमें जीवित हैं, अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको गम्भीर क्षति पहुँचायें बग़ैर इस प्रकारके अंग-छेदनको बरदाश्त नहीं कर सकते। इस अंग-छेदनकी क्रियाको साईकोएनैलेसिसकी भाषामें Repression (दमन) कहते हैं। ऐसी स्थितिमें पड़कर मनुष्यके हृदयमें दुःख, बेचैनी और असन्तोष उत्पन्न हो जाता है, और वह लक्ष्यभ्रष्टता और नैराश्यका शिकार बन जाता है।"

मनुष्य यह 'गम्भीर भूल' वहीं कर बैठता है, जहाँ किन्हीं कारणोंसे वह स्वयं अपने-आपको तथा अपनी गति-विधिको समझनेमें असमर्थ हो जाता है। मानवकी सबसे बड़ी समस्या मानव ही है। वह खुद अपनेको क्या समझता है, इस प्रश्नके उत्तरमें उसके विभिन्न जीवन-आन्दोलनों और प्रगतियोंका रहस्य समाया हुआ है। उसने जब अपनेको जैसा समझा है, उसकी प्रगति और विकासकी दिशा भी वैसी ही रही है। इस बातको हमारे विद्वान लेखकने भी स्वीकार किया है कि मानव सदैवसे प्रगतिशील रहा है ; यह बात दूसरी है कि वे मनुष्यको केवल एक 'सामाजिक वस्तु' ही समझते हैं और उसकी प्रगतिकी जाँच अपनी इसी 'समझ'के मुताबिक करते हैं। अपने अस्तित्वके विषयमें मानवकी इस 'समझ'से सम्बन्धित होकर 'प्रगति'का भाव सापेक्ष हो गया है। जिसे मध्यमयुग 'प्रगति' कहता था, उसको हम आज 'अगति' या 'दुर्गति' कहते हैं ; आश्चर्य नहीं कि जिसको हम आज प्रगति कह रहे हैं, उसको आनेवाला ज़माना इसी दृष्टिसे न देखे। प्रगति और विकासकी परिभाषा और दिशाके भेदका नाम ही तो युग-भेद है। इतिहासके अधिकांश युग मानवताके एक अंगको पकड़कर ही प्रगति करते रहे हैं। कभी मनुष्यने अपने-आपको केवल आत्मा ही आत्मा समझा है और कभी शरीर-ही-शरीर ! परन्तु वास्तवमें वह न केवल आत्मा ही है और न शरीर ही, न केवल दिल ही है और न केवल दिमाग़ ही। प्रगतिकी सापेक्षताको लक्ष्यमें रखकर हम तो 'सम्पूर्ण मानव'के विकासको ही विकास कहेंगे। बाक़ी तो क्रिया और प्रतिक्रियाका खेल है।

रोमाँ रोलाँ सम्पूर्ण मानव किसे समझते हैं, यह भी उन्होंने अपने पूर्व उद्धृत पत्रमें सूचित किया है। उनकी राय है कि पहले अपने-आपसे परिचित होनेके लिए मनुष्यको सबसे पहले अपनी प्रकृतिके इन मूल तत्त्वोंका ज्ञान परमावश्यक है :—

(१) सामाजिक मनुष्य—समाजके एक अंगके रूपमें अपने कर्तव्य तथा अपनी नैतिक आवश्यकताओं-सहित।

(२) वैयक्तिक मनुष्य—अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों तथा अपने आध्यात्मिक कर्तव्यों-सहित।

इन दोनोंमें कोई भी एक दूसरेसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। बहका हुआ दिमाग़ ही मनुष्यको एककी वेदीपर दूसरेकी बलि देनेके लिए प्रोत्साहित कर सकता है। आवश्यकता तो दोनोंको उनका समुचित स्थान प्रदान करनेकी है। यकीन रखिये कि आपकी नैसर्गिक कलात्मक भावनाएँ आपके ऊपर कुछ ऐसी ज़िम्मेवारियाँ डालती हैं, जो भूतानुकम्पा तथा भ्रातृत्वकी ज़िम्मेवारियोंसे किसी प्रकार भी कम नहीं हैं। मानव केवल अपने समकालीन लोगों और पड़ोसियोंके प्रति ही उत्तरदायी नहीं है, वरन् उस 'शाश्वत मानव'के प्रति भी, जो पशुताके निम्न-स्तरोंसे विकसित होकर शताब्दियोंसे दृढ़तापूर्वक प्रकाशकी ओर बढ़ता रहा है, उसका उतना ही उत्तरदायित्व है। इस 'शाश्वत मानव' का एक ही पुरस्कार है आत्मजय। समस्त विद्वानों, विचारकों और कलाधरोंके एकान्त प्रवास आत्मजयके इस सतत युद्धमें ही लगते रहे हैं। जो व्यक्ति इस उत्तरदायित्वसे बचनेकी कोशिश करता है—फिर चाहे वह कोशिश कितने ही उच्च आदर्शोंको लेकर क्यों न की गई हो—वह अपने ख़ास कर्तव्यके प्रति विद्रोह करता है।

अपनी प्रकृतिके उपर्युक्त मूल तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद मनुष्यका यह पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि वह इन विरोधी-से दिखलाई देनेवाले तत्त्वोंमें एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सामंजस्य स्थापित करे। किसी एक ही तत्त्वपर अत्यधिक भार देनेसे वह अपना बैलेन्स खो बैठता है और बैलेन्स निकल जानेपर 'प्रगति' का प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्यके सामाजिक रूपपर हमारे विद्वान लेखकने ज़बरदस्त—बैलेन्सहीन—भार दिया है, और वे इतना तक कहनेको तैयार हो गये हैं कि 'समाजसे साहित्यको न तो अलग ही किया जा सकता है, और न उसे समाजसे अधिक प्रतिष्ठा ही दी जा सकती है।' उनकी इस बातके मानी यह होते हैं कि साहित्यका अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। तब फिर ऐसी व्यक्तित्वहीन और आनुषंगिक वस्तुको प्रगतिशील बनानेका यह प्रयास ही क्यों? समाज प्रगतिशील होगा, तो साहित्य खुद-ब-खुद प्रगतिशील हो जायगा!

एक तरफ़ तो यह बात है और दूसरी तरफ़ अपने लेखके अन्तमें लेखक महोदय यह भी लिख देते हैं—"समाजके निर्माणका भार साहित्यके ऊपर अवश्य पड़ेगा!" समझमें नहीं आता कि साहित्यको समाजके मुक़ाबलेमें गौण बनाकर, उसके पर कतरकर, उसके विचार-स्वातन्त्र्य और कोमल भावोंको कुचलकर विज्ञ लेखक उससे किस 'निर्माण' की आशा रख रहे हैं?

मानव-प्रकृतिके दो भिन्न अंगोंका व्यक्तीकरण साहित्य और समाजके रूपमें होता है। इन दोनोंके सामंजस्यमें ही—एकीकरणमें नहीं—मानवके पूर्णत्व—लाभकी सम्भावना है। इसी भावका विशदीकरण रोमाँ रोलाँने अपने पत्रमें इस मोहक ढंगसे किया है—

"मनुष्यको अपनी आत्मा (अर्थात् कला, विज्ञान और तत्त्व-विचार) तथा मानवता (मनुष्य-जाति) की समान भावसे सेवा करनी चाहिए। यह ध्यान रखियेगा कि मैं 'समान भाव'से कह रहा हूँ—"एक ही भूमिकापर नहीं कहता, क्योंकि दोनों क्रियाओं (आत्म-सेवा तथा मानव-सेवा) का भिन्न भूमिकाओंपर रहना ही ठीक है। मनुष्यकी आत्मा जिस समय सौन्दर्य और सत्यकी खोजमें प्रवृत्त हो, उस समय किसी भी व्यावहारिक विचारको इस स्वतन्त्र और निष्पक्ष शोधमें प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए, और जब उसको मनुष्य-जातिकी सेवा करनी हो, तो अपने व्यक्तिगत अहंकारको भुला देना चाहिए।....दोनोंका अपना उचित स्थान है, और प्रत्येक व्यक्तिको इन दोनोंमें सामंजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।"

वास्तवमें सौन्दर्यकी गहरी भावना और लोक-संग्राहक कर्मके सामंजस्यमें ही वास्तविक प्रगतिकी सम्भावना है, और वही साहित्य 'प्रगतिशील' कहा जा सकता है, जो इन दोनोंके सामंजस्यका प्रतिबिम्ब अपने हृदयमें वहन करता है। लेखक महोदय फिर एक बार समझ लें कि ये विचार हम 'अर्धसभ्यों' के ही नहीं हैं, बल्कि उनके 'प्रगतिशील' साहित्यिक नम्बर बनके भी हैं!

[४]

विज्ञ लेखकने अपने लेखके उत्तरार्धमें वर्तमान हिन्दी-साहित्यकी समीक्षा की है। यह देखकर हमको तो ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ कि हिन्दी-साहित्यका एक भी स्रष्टा उनकी परीक्षामें पास न हो सका। कारण, साहित्यको जाँचनेकी कसौटी भी उन्हीं (लेखक) की है, जाँचका तरीक़ा भी उन्हींका है और फ़तवा देनेका सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हींका है। इतनेपर भी यदि हमारा कोई साहित्यिक सही-सलामत पार उतर जाता, तो हम उसको अवश्य बधाईका तार देते!

अपने लेखके अन्तमें लेखकने यह भी प्रतिज्ञा की है कि 'भविष्यमें भी मौक़ा पाकर मैं कानेको काना कहनेसे चूक नहीं सकता।' कोई मुज़ायका नहीं, दुनियामें न तो कानोंकी ही कमी है और न उनको काना कहनेके मौक़ोंकी ही! किसी प्रकार साहित्य 'प्रगतिशील' रहना चाहिए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमें लोहे और इस्पातका व्यवसाय

श्री रामनारायण कपूर, बी० एस-सी०

कलियुगमें लोहे और इस्पातकी उपयोगिताके बारेमें किसे सन्देह हो सकता है ? सबसे सस्ती धातु होते हुए भी लोहेके समान गुण बहुमूल्यसे बहुमूल्य धातुओंमें भी नहीं पाये जाते। गुणोंकी महत्ताके अनुसार लोहा अद्वितीय है और मूल्यके नामपर अमूल्य। यही कारण है कि लोहा संसारकी धातुओंमें सबसे अधिक उपयोगी है। वर्तमान सभ्यताका ताना-बाना लोहेके तारोंमें बुना गया है। संसारमें दूसरी धातुओंकी तुलनामें लोहा सबसे अधिक मात्रामें पाया जाता है। पृथिवीकी चट्टानों तथा मिट्टीमें भी सबसे अधिक भाग लोहेका ही है। जितने विभिन्न गुण इस धातुमें हैं, उतने किसी दूसरी धातुमें नहीं। 'ठोंक-पीटकर वैद्यराज' बननेका गुण लोहेमें कमालका है। एक खानसे निकाले गये लोहेके खनिजसे तैयार किये गये लोहेके एक ही कुन्देके टुकड़ोंसे आप भाँति-भाँतिके गुण पैदा कर सकते हैं। एक ही कुन्देके भिन्न-भिन्न टुकड़ोंको भिन्न-भिन्न समय तक आगमें तपा और बुझाकर बड़े विचित्र गुण पैदा कर लिये जाते हैं। एक टुकड़ेमें काँचकी भाँति चकनाचूर हो जानेका गुण पैदा कर लिया जाता है, तो दूसरेमें कमानकी भाँति लचक जानेका गुण भी उत्पन्न हो सकता है। एकमें ज़रा भी खिंचाव पड़नेपर टूट जानेका डर होता है और दूसरेको आप गज़ों बढ़ा डालिये, परन्तु टूटनेका डर नहीं है। लोहेमें यह अद्भुत गुण है कि तपा डालनेपर उसको अपने इच्छानुसार तोड़-मरोड़ सकते हैं। यही कारण है कि संसार-भरके सभी कल-पुर्जोंकी ढलाईके लिए लोहेकी ही आवश्यकता होती है। लगभग सभी यन्त्रोंमें लोहेकी लागत है। छोटी-सी सुईसे लेकर बड़े-से-बड़े जहाज़ों और इंजनोंमें लोहा ही लोहा दीख पड़ता है।

लोहेके एक अद्भुत गुणने इस धातुको इंजीनियरोंके लिए पारस पत्थरकी भाँति अमूल्य बना दिया है। आज तक कोई भी वस्तु इस गुणको नहीं प्राप्त कर सकी है। यह गुण है 'चुम्बकत्त्व'। यही गुण वर्तमान इंजीनियरिंगका आधार है। बिजलीकी मेशीनोंका जन्म लोहेके इसी गुणके फलस्वरूप हुआ है। संसारमें आजकल बिजलीका उपयोग किस प्रकार बढ़ गया है, इसको सभी मनुष्य भलीभाँति जानते हैं। संसारमें प्रत्येक वर्ष लगभग १५० करोड़ टन लोहा उपयोगमें आता है। यह तौल ही इस बातकी साक्षी है कि आज संसार लोहेपर कितना निर्भर है। विचार करके देखा जाय, तो यह साफ़ समझमें आ जायगा कि हमारी नित्यप्रतिकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेवाली कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें लोहेकी आवश्यकता न पड़ी हो। यह सम्भव हो सकता है कि एक वस्तु लोहेकी न बनी हो, परन्तु यह असम्भव है कि उसके उत्पादनमें लोहेकी आवश्यकता न पड़ी हो।

एक समय था, जब किसी राष्ट्रकी सभ्यताकी ऊँचाई उस राष्ट्रके निवासियों द्वारा व्यय किये जानेवाले साबुनके परिमाण द्वारा नापी जाती थी। उसी भाँति आजकल किसी राष्ट्रकी शक्तिका अनुमान उस राष्ट्रमें व्यय होनेवाले लोहेके ऊपर निर्भर है। जिस राष्ट्रमें सबसे अधिक लोहे और इस्पातका खर्चा होता है, वही राष्ट्र सबसे अधिक शक्तिशाली माना जाता है। वर्तमान कालमें किसी भी ऐसे देश या राष्ट्रने व्यावसायिक उन्नति नहीं की है, जिसके पास लोहे और कोयलेकी प्रचुरता न रही हो। जिन देशोंने अपनी लोहे और कोयलेकी खानोंका उपयोग किया है, वही आज संसारके अग्रगण्य राष्ट्रोंमें गिने जाते हैं। इंग्लैण्डकी औद्योगिक और सामुद्रिक प्रधानताका कारण यही है कि उसने अपनी लोहे और कोयलेकी खानोंका उपयोग संसारके अन्य राष्ट्रोंसे पहले ही आरम्भ कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहे और फौलादके धन्धेमें इंग्लैण्डको पछाड़नेवाले अमेरिका और जर्मनी आज भी संसारके प्रमुख राष्ट्रोंमें गिने जाते हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाकी उन्नतिका मूलकारण वहाँकी सम्पन्न लोहे और कोयलेकी खाने हैं। जर्मनीने सदैव अलसेस और लोरेन नामक प्रान्तोंपर ललचाई हुई दृष्टि रखी है, क्योंकि इन दोनों प्रान्तोंमें लोहे और कोयलेकी बड़ी-बड़ी खानें हैं। सन् १८७० में इन्हीं दोनों प्रान्तोंके लिए जर्मनोंने फ्रांसके साथ युद्ध किया था। ये दोनों प्रान्त ले लेनेसे जर्मनीकी शक्ति अपार हो गई। इसको देखकर दूसरे राष्ट्र—विशेषकर फ्रांस—भय खाने लगे। फ्रांसने अपने दोनों प्रान्त लौटा लेनेकी नीयतसे ही सन् १९१५ में जर्मनीके विरुद्ध युद्ध छेड़ा था। बहुत मारकाट और खींचातानीके बाद उसको ये दोनों प्रान्त वापस मिले थे; परन्तु जर्मनी भी चुप बैठनेवाला न था, और उसने इन दोनों प्रान्तोंको लौटा लेनेके लिए भरसक उद्योग किया और उसे बहुत अंशोंमें सफलता भी मिल गई। इधर पूर्वमें जापानका भी यही हाल है। अपने पास कोई धनी खनिज-भाण्डार न होनेसे उसने चीनके कोरिया-प्रान्तको हथिया लिया और अब मंचूरिया-प्रान्त दबा बैठा है। यही हाल अन्य देशोंका भी रहा है। संसारमें सदासे खानों और खनिज-भण्डारोंपर अधिकार करनेके लिए युद्ध होते आये हैं और भविष्यमें भी होंगे। विगत इटली और अबीसीनियाके युद्धका प्रधान कारण अबीसीनियाकी खनिज-सम्पत्ति थी, जिसे इटलीने हथिया लिया है।

संसारमें खपनेवाले लोहे और फौलादका आधेसे अधिक भाग संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकामें तैयार होता है। अमेरिकाके लोहे और कोयलेके खनिज-भंडार असंख्य तथा सम्पन्न हैं। अमेरिकाके बाद दूसरा स्थान इंग्लैण्डका आता है, और इंग्लैण्डके बाद जर्मनी और फ्रांसका। पिछले महासमरसे पूर्व जर्मनी इंग्लैण्डसे अधिक लोहा उत्पन्न करता था; परन्तु युद्धके बाद जर्मनीकी दशा बदल गई। उसे कच्चे लोहेके लिए अपनी सीमासे बाहरवाले प्रदेशोंपर निर्भर रहना पड़ता है। वर्तमान कालमें जर्मनीने अपनी स्थिति सुधार ली है। इंग्लैण्ड दूसरे देशोंसे कच्चा लोहा और खनिज खरीदता रहा है—विशेषकर स्पेन और स्वीडनसे। इंग्लैण्डके खनिज-भंडार अब इतने सुसम्पन्न नहीं रह गये हैं, जितने पहले थे। आजकल स्पेनमें गृह-युद्ध होनेके कारण इंग्लैण्डको फिर लोहा मिलनेमें कष्ट हो रहा है। रूसके पंचवर्षीय आयोजनके कारण रूसकी स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गई है। लोहा पैदा करनेवाले संसारके प्रमुख देशोंमें अब रूसका भी नाम लिया जाता है।

भारतवर्षकी स्थिति दूसरी ही है। यों तो यहाँ लोहा और इस्पात बहुत प्राचीन कालसे बनता आया है; परन्तु पश्चिमीय ढंगसे लोहा बनानेका कार्य यहाँ अभी बहुत थोड़े ही दिनोंसे आरम्भ हुआ है। अभी भारतका लोहे और इस्पातका व्यवसाय बचपनमें ही है। भारतमें लोहेका बनना आधुनिक व्यावसायिक रूपसे सन् १८७५ से आरम्भ होता है। यों तो भारतमें बहुतसे विदेशी व्यापारियोंने लोहा बनानेके कारखाने खोले; परन्तु उनमें सफलता बहुत ही कममें हुई। केवल थोड़ी-बहुत सफलता बंगाल आयरन और स्टील कम्पनीको मिली, जिसने सन् १८७५ में कुल्टीमें अपना कारखाना खोला था। इस कम्पनीके कारखाना खोलनेसे पहले भारतमें मदरास, नेलोर, सेलम और गढ़वालमें लोहेके भट्टे बनानेके प्रयत्न किये गये थे; परन्तु लगभग सभी प्रयत्न असफल रहे। कुल्टीमें भी लोहा बनानेके लिए बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। लगभग तीस वर्ष तक कारखाना बड़ी बुरी दशामें रहा और कारखानेके संचालकोंको बराबर घाटा सहना पड़ा; परन्तु संचालकोंके अदम्य उत्साह और अध्यवसायसे धीरे-धीरे कारखानेमें काफ़ी उन्नति हुई और संचालकोंको सफलता प्राप्त हुई।

इसके बाद भारतमें लोहा बनानेके जो प्रयत्न किये गये, उन सबमें महत्त्वपूर्ण सफल प्रयत्न हमारे देशके कर्मवीर जमशेदजी नासरवानजी ताताका था। ताताके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविश्रान्त परिश्रम, दूरदर्शिता तथा अदम्य उत्साहसे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्य-भरमें सबसे बड़ा लोहे और इस्पातका कारखाना स्थापित हुआ। ताताके कारखानेकी नींव १९११ ई० में पड़ी और तबसे यह बराबर उन्नति करता जा रहा है।

भारतमें लोहा और इस्पात बनानेके सभी सामान उपलब्ध हैं। लोहा बनानेके लिए चार वस्तुओंकी विशेष आवश्यकता होती है। ये चार वस्तुएँ हैं—लोह-खनिज (Iron Ore), ईंधन (Fuels), मैल साफ़ करनेका खनिज अर्थात् फ्लेक्स (Flex) तथा आँच सहनेवाली मिट्टी, जिसे रिफ़रेक्टरी क्ले (Refractory Clay) कहते हैं। भारतमें ये चारों वस्तुएँ बहुतायतसे पाई जाती हैं। भारतका लोह-खनिज संसार-भरके खनिजोंसे उत्तम प्रमाणित हुआ है। वैसे तो भारतवर्षके बहुतसे भागोंमें लोह-खनिजके भंडार हैं; परन्तु मध्य-प्रान्त और उड़ीसा-प्रान्तके लोहेके खनिज-भंडार बहुत प्रसिद्ध हैं। दक्षिणमें मदरास-प्रान्तमें भी लोहेकी खानें हैं। युक्तप्रान्तके गढ़वाल ज़िलेमें भी लोह-खनिजके भंडार हैं; परन्तु सबसे उपयोगी लोह-खनिज उसी स्थानका हो सकता है, जो कोयलेकी खानोंके समीप हो। उड़ीसा और छोटा नागपुरके पहाड़ोंमें उत्तम प्रकारके लोह-खनिजकी खानें हैं। मयूरभंज, बोनाई और क्योंझरके राज्योंमें भी उच्चकोटिकी लोहेकी खानें हैं। इन लोह-खनिज-भंडारोंका महत्त्व इस कारण और भी बढ़ जाता है कि ये कोयलेकी खानोंके समीप हैं। लगभग सभी लोह-खनिज-उत्पादक क्षेत्र झरिया और रानीगंजकी कोयलेकी खानोंसे १५० या २०० मीलसे अधिक दूर नहीं हैं।

मैसूर-राज्यकी लोह-खनिजकी खानोंके आसपास कोई भी कोयलेकी खान नहीं है। यही दशा मदरास-प्रान्तके अन्य लोह-खनिज उत्पादक-क्षेत्रोंकी भी है। यही कारण है कि वहाँका लोह-खनिज अभी तक उपयोगमें नहीं लाया गया। मैसूर-राज्यने कोयलेकी जगह लकड़ीका कोयला उपयोगमें लाकर अपने राज्यमें लोहा बनानेका कारखाना खोल लिया है।

पचास वर्ष पूर्व भारतके अपूर्व लोह-भंडारोंसे कोई भी लाभ नहीं उठाया गया था। पी० एन० बोस नामक एक बंगाली इंजीनियरने मयूरभंज राज्यकी कोयले और लोहेकी खानोंका पता लगाया। सिंहभूमि और बोनाई स्टेटके लोह-खनिज-भंडारोंका पता अभी केवल पचीस वर्ष पूर्व ही लगा। यह भारत-भरमें लोह-खनिजका सबसे बड़ा भंडार है, और यहाँका खनिज संसार-भरमें सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो चुका है। भारतके भूगर्भ-शास्त्र-विभागके विद्वान डा० फाक्सका अनुमान है कि सिंहभूमिके इस खनिज-भंडारमें लगभग ३००० लाख टन लोह-खनिज निकलेगा। यह लोह-खनिज संसार-भरमें सबसे उत्तम तो है ही, साथ ही सबसे सस्ता भी है। इतना सस्ता खनिज संसार-भरमें और कहीं नहीं मिलता। भारतका ९५ प्रतिशत लोह-खनिज बिहार और उड़ीसा प्रान्तोंसे निकाला जाता है। यही कारण है कि भारतके लोहे और इस्पातके कारखानें इन प्रान्तोंके अन्तर्गत हैं।

भारतमें लोह-पत्थरके समान ही उत्तम श्रेणीका चूना-पत्थर भी बहुतायतसे तथा सस्ता मिलता है। कटनी और आसाममें बहुत बढ़िया चूना-पत्थर निकलता है। दोनों स्थान लोह-पत्थर उत्पादक क्षेत्रोंसे दूर होनेके कारण इस खनिजका उपयोग बहुतायतसे नहीं किया जाता। अधिकतर लोह-पत्थर-उत्पादक क्षेत्रोंके समीप पाया जानेवाला चूना-पत्थर ही व्यवहार किया जाता है।

भारतमें लोहा बनाने-योग्य उत्तम प्रकारका कोयला उतनी बहुतायतसे नहीं मिलता, जितनी बहुतायतसे लोह-पत्थर और चूना पत्थर मिलता है। यदि हमारे यहाँ कोयला भी उतना ही उत्तम होता, जितना लोह और चूना-पत्थर, तो हमारा देश लोहा और इस्पात बनानेके साधनोंमें सबसे अच्छा समझा जाता। भारतीय कोयलेमें राख और फास्फोरसका अंश आवश्यकतासे अधिक होता है। राख अधिक होनेके कारण कोयलेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिमाण आवश्यकतासे अधिक जलाना पड़ता है। इससे लोहकी उत्तमतामें भी अन्तर आ जाता है। सस्ता होनेके कारण ही भारतीय कोयलेका व्यवहार हो रहा है और लोहेके व्यवसायमें लाभ होता है।

रिफ़रेक्टरी मिट्टी उस मिट्टीको कहते हैं, जो अधिक तापक्रम सहन कर सकती है। इस मिट्टीसे तथा इसकी बनी ईंटोंसे धातु तथा काँच गलानेकी भट्ठियाँ बनाई जाती हैं। इस प्रकारकी मिट्टी भारतके बहुतसे भागोंमें पाई जाती है। कोयलेकी खानोंमें से इसी प्रकारकी मिट्टी निकलती है, जो 'फ़ायर क्ले' कहलाती है। भारतमें इस प्रकारकी मिट्टी बहुतायतसे तथा उच्च श्रेणीकी पाई जाती है। रानीगंजमें इस मिट्टीसे ईंटें बनानेके कई भट्ठे हैं। इसी प्रकार सेलिका नामक मिट्टीकी भी ईंटें बनाई जाती हैं। इस्पात बनानेके लिए मैगनेसाईट नामक पत्थरका व्यवहार किया जाता है। भारतमें संसार-भरसे उच्च श्रेणीका मैगनेसाईट मिलता है। दक्षिणमें सेलमके पास खड़िया मिट्टीकी पहाड़ियोंमें बहुत उत्तम मैगनेसाईट निकलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्षमें लोहे और इस्पात बनानेके सभी साधन वर्तमान हैं। यहाँके धनी व्यक्ति यदि चाहें तो ताता कम्पनी-जैसे दस कारखाने खोल सकते हैं। कारखानेसे निकलनेवाले मालकी खपत भारतमें बहुत आसानीसे हो सकती है। इतना लोहा और इस्पात भारतमें बननेपर भी यहाँके बाज़ारोंमें ५० प्रतिशत विदेशी माल बिकता है। इसका कारण एक तो यह है कि भारतमें लोहा बनानेके इने-गिने तीन ही कारखाने हैं, और इस्पात तो केवल ताताके ही कारखानेमें बनता है। दूसरा कारण विदेशी मालसे प्रतियोगता है। भारतीय धारा सभाओंके बने क़ानूनोंके होते हुए भी विदेशी माल भारतमें बहुतायतसे बिकता है। कच्चा लोहा तो भारतमें विदेशसे उतना नहीं आता, जितना इस्पात और इस्पातसे बनाया गया सामान—जैसे मेशीन, रेल, इंजन, चद्दर आदि। सरकारी संरक्षण मिल जानेसे लोहे और इस्पातके व्यवसायको पनपनेका अवसर मिला; परन्तु विदेशी प्रतियोगितासे इस व्यवसायको बराबर लड़ना पड़ रहा है। कच्चा लोहा, जिसे 'पिग लोहा' कहते हैं, भारतमें विदेशोंकी अपेक्षा बहुत सस्ता बनता है। यहाँ तक कि विदेशके कारखाने भारतीय कच्चे लोहेको सस्ता ख़रीदकर अपने कारखानोंमें इस्पात बनाते हैं और फिर भारतीय बाज़ारोंमें बेचते हैं। जापान इस बातमें सबसे आगे है। भारतीय कच्चे लोहेका सबसे बड़ा ख़रीदार जापान है। अमेरिका और ब्रिटेन भी थोड़ा-बहुत भारतीय कच्चा लोहा ख़रीदते हैं।

पिग लोहेका कम दाममें बिकना इस बातका द्योतक है कि भारतीय इस्पातके कारखाने दूसरे देशोंकी अपेक्षा सुविधामें रहते हैं; परन्तु विभिन्न कारणोंसे इस सुविधाको बिलकुल खो दिया जाता है। इसका फल यह होता है कि इस्पातका दाम बढ़ जाता है। यहाँ तक कि विदेशी इस्पात बनानेवाले भारतमें चुंगी देकर भी भारतके बाज़ारोंमें भारतीय इस्पातसे अपना इस्पात सस्ता बेच सकते हैं। पिछले कई वर्षकी मन्दीने भारतीय लोहे और इस्पातके व्यवसायको विशेष रूपसे हानि नहीं पहुँचाई। भारतीय कारखानोंमें केवल भारतीय माँगको पूरा करने योग्य लोहा और इस्पात न बन सका और विदेशोंसे बराबर माल आता रहा। इधर पिछले वर्षसे, जबसे लोहे और इस्पातका भाव बढ़ गया है, इस व्यवसायकी और अधिक उन्नतिके लक्षण दिखाई पड़ने लगे हैं।

एक समय था, जब यह कहा जाता था कि आधुनिक रीतिसे लोहा और इस्पात बनानेका व्यवसाय भारतमें सफल न हो सकेगा; परन्तु पिछले २५ वर्षोंके अनुभवने यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय जलवायु यहाँके लोहे और इस्पातके व्यवसायमें बाधक नहीं हो सकती। यहाँके निवासी सदैवसे लोहा और इस्पात बनानेमें निपुण रहे हैं। दिल्लीका लौह-स्तम्भ, गुलबर्गाकी तोप तथा अनेकों प्राचीन चिह्न इसके प्रमाण हैं। आज भी भारतीय लोहे और इस्पातके व्यवसायमें किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशसे पीछे नहीं रहना चाहते। गत पचीस वर्षके अनुभवने यह सिद्ध कर दिया है कि भारतके निवासी आधुनिक ढंगके कारखानोंमें लोहा और इस्पात बनानेमें भी अति कुशल हैं। यह भारतके लिए गौरवकी बात है। यदि इसी प्रकार उन्नति होती रही, तो सम्भव है कि भारत एक दिन लोहा और इस्पात बनानेवाले देशोंमें सर्वश्रेष्ठ गिना जायेगा और बहुत सम्भव है कि आजका ग़रीब और निर्बल भारत इसी व्यवसायके कारण कल समृद्ध और शक्तिशाली हो जाय।

भारतमें समय-समयपर लोहा और इस्पात बनानेके कई कारखाने खोले गये; परन्तु कुछ विशेष कारणोंसे उनमें से बहुत कम उन्नति कर सके। इस समय यहाँ तीन प्रगतिशील कारखाने हैं :—

(१) ताता आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लि०।

(२) बंगाल आयरन एण्ड स्टील कम्पनी तथा इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी—सम्मिलित।

(३) मैसूर आयरन एण्ड स्टील कम्पनी।

इनके अलावा कुछ कारखाने और भी हैं; परन्तु इनमें खनिज गलाकर लोहा नहीं बनाया जाता। कुछमें केवल इस्पात और कुछमें पुराना टूटा-फूटा लोहा गलाया जाता है। ऐसे कारखानोंमें उल्लेखनीय केवल चार हैं :—

(१) हुकुमचन्द स्टील वर्क्स।

(२) नेशनल आयरन एण्ड स्टील वर्क्स।

(३) इंडियन स्टील प्रोडक्टस कम्पनी लिमिटेड।

(४) दि नागापटम रोलिंग मिल्स लिमिटेड।

ताता आयरन एण्ड स्टील कम्पनी

भारतमें यह सबसे बड़ी कम्पनी है। भारतमें केवल इसी कम्पनीमें अब तक इस्पात बनता था। अब मैसूरमें भी इस्पात बनाया जाने लगा है। इसका कारखाना बिहार-प्रान्तके जमशेदपुर नगरमें है। जमशेदपुरके रेलवे स्टेशनका नाम टाटानगर है। यह बी० एन० रेलवेपर कलकत्तेसे नागपुर जानेवाली लाइनपर १५६ मील दूर है। इस कारखानेकी नींव सन् १९०८ में डाली गई और सन् १९११ में कारखानेमें काम आरम्भ हुआ। इसमें लोहा गलानेके पाँच बड़े-बड़े भट्टे हैं, और इस्पात बनानेके दो विभाग हैं। यहाँपर रेल बेलनेकी रेल मिल, चद्दरें बेलनेकी शीट मिल तथा कोण आदि बेलनेकी मिल—कई विभाग हैं। इनके अलावा बड़े-बड़े दो पावर हाउस हैं। इस कम्पनीके पास दुनिया-भरके इस्पातके कारखानोंसे कुछ सबसे बड़ी वस्तुएँ भी हैं। इनमें १५०० टन लोहा प्रतिदिन बनानेवाली डी ब्लास्ट फर्नेस, ७,५०० हार्स पावरका बिजलीका मोटर, १,२०००० घनफीट प्रति मिनट हवा देनेवाली मोटर तथा १,३०० टन लोहा भरनेवाला मिक्सर अद्वितीय उदाहरण हैं। एशिया-भरमें ही नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य भरका यह सबसे बड़ा कारखाना है।

इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

इस कारखानेका काम सन् १९२३में आसनसोलके निकट हीरापुर नामक गाँवमें आरम्भ हुआ। इसमें अभी केवल कच्चा लोहा बनाया जाता है। लोहा गलानेके दो भट्ठे यहाँपर हैं। कोयला पकानेके कोक भट्ठे भी यहाँपर हैं तथा तारकोल और एमोनिया भी बनाया जाता है। अभी पिछले वर्ष इस कारखानेके अधिकारियोंने बंगाल आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेडको भी इसी कारखानेमें सम्मिलित कर लिया है। इसका कारण यह था कि इधर कुछ दिनोंसे बंगाल आयरन कम्पनीकी स्थिति बिगड़ गई थी। बंगाल आयरन कम्पनी भारतका सबसे पुराना कारखाना है। यह आसनसोलके निकट कलकत्तेसे १४४ मीलकी दूरीपर कुल्टीमें स्थित है। लोहा गलानेके यहाँपर पाँच भट्ठे थे; परन्तु पिछले कई वर्षसे सब बन्द पड़े थे। केवल लोहेके पाइप और स्लीपर बनाये जाते थे।

इन दोनों कम्पनियोंने मिलकर एक नई कम्पनी दि न्यू इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी खोलना निश्चित किया है। पाँच करोड़ रुपया लगाकर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कम्पनी भारतमें ताताके इस्पातके कारखानेके ढंगका एक नया कारखाना शीघ्र ही खोलने जा रही है। पिछले वर्ष-भर तो इस सम्मिलित कम्पनीने यही प्रयत्न किया कि ताताकी कम्पनीसे मिलकर एक सम्मिलित भारतीय इस्पात कम्पनी खोली जाय; परन्तु यह बातचीत सफल न हुई, और अब यह कम्पनी अपना इस्पात बनानेका स्वतन्त्र कारखाना खोलने जा रही है। इधर ताता कम्पनी भी अपने कारखानेको और अधिक विस्तृत कर रही है।

मैसूर आयरन एण्ड स्टील कम्पनी

यह कारखाना सन् १९२३ में खुला था। यह कम्पनी मैसूर-राज्यकी सम्पत्ति है। इसका कारखाना भद्रावती नामक स्थानपर है। यहाँपर लकड़ीके कोयलेसे लोहा गलाया जाता है। लोहा गलानेका एक छोटा भट्टा है। पिछले वर्षसे यहाँ बीस लाख रुपया लगाकर इस्पात बनानेका विभाग भी खोल दिया गया है। यहाँपर लोहेके पाइप तथा विशेष प्रकारका इस्पात, जिसे मिश्रित इस्पात कहते हैं, बनाया जाता है। नया विभाग खुल जानेसे रेल-मिल आदि विभाग खुलनेकी भी उम्मीद है। यहाँका कच्चा लोहा सबसे अच्छा होता है।

छोटे कारखानोंमें हुकुमचन्द स्टील वर्क्स सबसे प्रसिद्ध है। यहाँपर बिजलीकी भट्ठीमें पुराने टूटे-फूटे इस्पातको गलाकर नया इस्पात बनाया जाता है। इस प्रकारका इस्पात विशेष प्रयोगोंमें आता है और साधारण इस्पातकी अपेक्षा मँहगा पड़ता है। यह कारखाना कलकत्तेके बालीगंज मुहल्लेमें स्थित है।

नेशनल आयरन एण्ड स्टील कम्पनी कलकत्तेसे थोड़ी दूरपर बेलूर नामक स्थानमें स्थित है। यह कारखाना भी नया ही है, और अभी इसका कार्य अधिक बढ़ाया नहीं गया; परन्तु इसको शीघ्र ही बढ़ानेका विचार किया जा रहा है। इसमें भी टूटे-फूटे इस्पात और लोहेको गलानेका काम किया जाता है।

इंडियन स्टील वेयर प्रोडक्ट कम्पनी जमशेदपुर ही में स्थित है। यह कम्पनी केवल काँटेदार तथा सादे तार बनानेका कार्य करती है। भारतमें इसका कारखाना अपने ढंगका अनोखा है। यहाँपर कील-काँटे भी बनाये जाते हैं तथा लोहेके तार भी खींचे जाते हैं। सरियाँ भी बेली जाती हैं। नागापटम रोलिंग मिल सरियाँ आदि बेलनेका दक्षिण-भारतमें नागापटम नामक स्थानपर अकेला कारखाना है। इसमें अब काम बढ़ाया जा रहा है और रुपया अधिक लगाये जानेकी उम्मीद है।

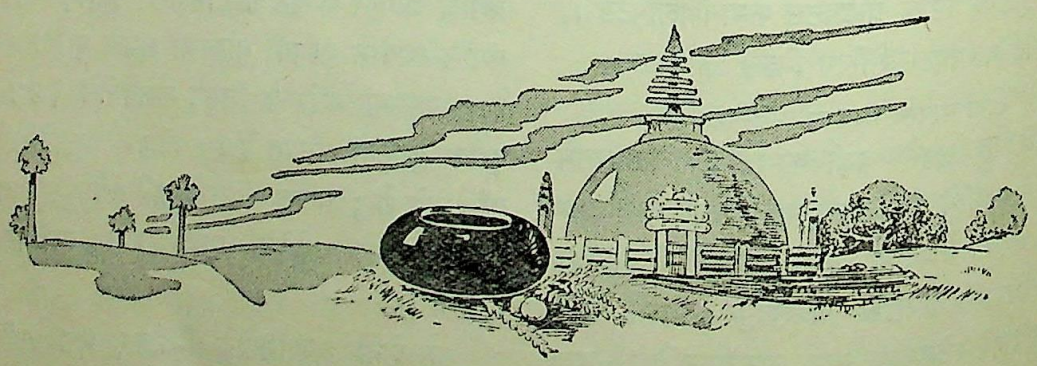

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी यूरोप-यात्रा

लन्दन नगरमें विश्व-धर्म-सम्मेलन

श्री ऋषिराम, बी० ए०

सन् १९२८ में पूर्व-अफ्रिकाकी प्रचार-यात्राके पश्चात् मेरी यह तीव्र इच्छा थी कि मैं इस उद्देश्यसे एशिया तथा यूरोपके देशोंका भी भ्रमण करूँ। सन् १९३० में कलकत्ते तथा बंगालमें आर्यसमाजका प्रचार कार्य मुझे सौंपा गया और चार वर्ष तक मुझे बाहर जानेका कोई अवसर नहीं मिला। सन् १९३४ में यह निश्चय करके कि अब विदेशमें प्रचारके लिए मुझे अवश्य जाना चाहिए, मैंने कलकत्ता छोड़ा। लाहौर पहुँचकर जापान जानेकी तैयारी की, और तीन-चार दिनमें चलनेको ही था कि महात्मा हंसराजजी तथा दयानन्द कालेज कमेटीके आज्ञानुसार दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय लाहौरके आचार्य-पदका भार मुझे लेना पड़ा। मेरा विदेश यात्राका प्रोग्राम स्थगित हो गया। सन् १९३६ के आरम्भमें मैंने सुना कि लन्दनमें विश्व-धर्म-सम्मेलन होनेवाला है, और मैंने इस अवसरसे लाभ उठानेका पूरा निश्चय कर लिया। आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि-सभाने मुझे अपना प्रतिनिधि तो बना दिया; परन्तु धनाभावके कारण सभा मुझे आर्थिक सहायता न दे सकी। कालेज कमेटीमें मुझे ग्रीष्मावकाशके पूर्व दो मासका अवकाश विद्यालयसे दे दिया। लाहौर तथा कलकत्तेके कुछ उदार मित्रोंने मेरी इस यात्राके लिए यथोचित व्ययका प्रबन्ध कर दिया, और वास्तवमें मैं उनकी क्रियात्मक सहायतासे ही इस यात्रापर रवाना हो सका।

८ जून, सन् १९३६ को बम्बईसे इटेलियन जहाज़ 'विक्टोरिया' द्वारा यात्राका आरम्भ हुआ। इस जहाज़में मुसाफिरोंके लिए प्रायः तीन दर्जे होते हैं; परन्तु सौभाग्यवश इस बार इसमें चौथा दर्जा भी खुल गया था। मैंने चौथे दर्जेका ही टिकट लिया, जिससे खर्चमें काफी किफायत हो गई। यात्रा-सम्बन्धी बातोंका वर्णन प्रायः पत्रोंमें निकलता ही रहता है। मैं उस विस्तारमें नहीं जाऊँगा। १९ जूनको यह जहाज़ इटलीके बन्दरगाह जेनेवा पहुँचा। वहाँ दक्षिण-यूरोपके भारतीय ट्रेड कमिशनर (Trade Commissiner) मेरे मित्र श्रीयुत आहूजा मुझे जहाज़पर मिले और चार दिन मैंने उनके साथ इटलीके मिलान शहर आदिको देखा। नगरमें एक दिन अबीसीनियाके विजेता जेनरल वोडोगिल्योका स्वागत हुआ। एक बड़ा भारी जलूस निकला, और मुझे वहाँके लोगोंका उत्साह तथा हर्ष-प्रदर्शन देखनेका अवसर प्राप्त हुआ। २३ जूनको मैं लन्दन पहुँचा। सम्मेलन ३ जुलाईसे होनेवाला था। हमारे देशमें कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि अंगरेज़ी भाषासे सब स्थानोंपर काम चल जाता है। अनुभवसे पता लगा कि यह ठीक नहीं। मुझे इटली तथा जर्मनीका खासा अनुभव है कि वहाँकी भाषा जाने बिना वहाँके लोगोंसे कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। अंगरेज़ी समझने या बोलनेवाला कोई बिरला ही मिलता है, अतः लोगोंके साथ विचार-परिवर्तन न होनेके कारण एक यात्री केवल दृश्य देखते हुए शीघ्र ही थक जाता है और वह जल्दी उन लोगोंमें जाना चाहता है, जहाँ वह अपने भावोंको प्रकट कर सके और दूसरोंके भावोंको जान सके। मेरी मानसिक अवस्था भी ऐसी ही थी। मुझे केवल दृश्य देखनेमें विशेष आकर्षण न था। लोगोंके साथ मैं वार्तालाप नहीं कर सकता था, अतः मैंने सीधे लन्दन पहुँचना ही उचित समझा, यद्यपि सम्मेलनमें अभी काफी समय था।

पाठकोंको स्मरण होगा कि इस प्रकारका प्रथम विश्व-धर्म-सम्मेलन अथवा Parliament of Religions अमेरिकाके शिकागो नगरमें सन् १८९३ में हुआ था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें स्वामी विवेकानन्द भारतवर्षकी ओरसे पधारे थे, और उन्होंने उपस्थित विद्वन्मण्डलीपर हिन्दू-धर्मका गौरव स्थापित किया था। उस सम्मेलनमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके प्रतिनिधियोंने अपने-अपने धर्मकी श्रेष्ठता तथा विशेषताका प्रतिपादन किया था।

इसी प्रकारका दूसरा विश्व-धर्म-सम्मेलन सन् १९३३ में पुनः शिकागो नगरमें हुआ, और भारतवर्षसे कई विद्वानोंने उसमें भाग लिया। कलकत्ता-आर्यसमाजके विद्वान प्रचारक पं० अयोध्या प्रसाद भी इसमें शामिल हुए थे। इस सम्मेलनका उद्देश्य प्रथम सम्मेलनसे कुछ बदल गया था। इसमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके उपदेष्टाओंने यह प्रदर्शित किया था कि संसारमें एकता और शान्ति स्थापित करनेके लिए उनका धर्म क्या शिक्षा देता है, क्रियात्मक रूपसे क्या कर रहा है तथा क्या कर सकता है।

इसी क्रममें लन्दनमें सन् १९३६की जुलाईमें तीसरा सम्मेलन हुआ। उसके सामने दो उद्देश्य थे। प्रथम यह कि सर्वोत्कृष्ट अध्यात्मवाद क्या है; भिन्न-भिन्न धर्म सब धर्मावलम्बियोंमें परस्पर प्रेम और एकता स्थापित करनेके लिए क्या भाग ले सकते हैं और उनकी शिक्षा कहाँ तक इस एकताको स्थापित कर सकती है।

इस सम्बन्धमें यह कहना अनावश्यक न होगा कि सम्मेलनके अधिकारियोंके सम्मुख दो बातें नितान्त रूपसे स्पष्ट थीं। एक यह कि सम्मेलनका आयोजन किसी नये विश्व-धर्मकी स्थापना करना अथवा वैसा प्रचार करना न था। दूसरे सम्मेलन भिन्न-भिन्न महान धर्मोंकी सत्ताको स्वीकार करता था, और उसको यह अभीष्ट न था कि सारे धर्म किसी एक धर्ममें शामिल होकर एकता स्थापित करें। सम्मेलनके अधिकारियोंका कहना था कि जैसे एक बागका सौन्दर्य इस बातमें नहीं कि उसमें केवल एक ही प्रकारके फूल या वृक्ष हों; परन्तु अनेक प्रकारके फल-फूलोंसे ही उसकी शोभा होती है। इसी प्रकार इस संसारमें भी भिन्नताको बिलकुल दूर कर देना ठीक नहीं और शायद ऐसा करना सम्भव भी नहीं। यह भिन्नता ही इसके महत्त्व और सौन्दर्यका कारण है। सम्मेलनका यह यत्न था कि ऐसे उपाय खोजे जावें, जिनसे भिन्न-भिन्न मतावलम्बी अपनी शक्तिको एक दूसरेके विरोधमें लगानेकी अपेक्षा एक दूसरेसे प्रेम करनेमें लगावें और पारस्परिक सहयोगसे संसारमें नेकी तथा धर्मका प्रचार करते हुए समस्त मानव-समाजका कल्याण करें। भारतवर्षकी वर्तमान धार्मिक परिस्थितिमें यह बात शायद परस्पर-विरोधी दीख पड़े; परन्तु यूरोप अथवा अमेरिकाकी परिस्थिति ऐसी धारणाके अनुकूल है और यह कल्पनामात्र नहीं है।

सम्मेलनने इस बातको मुक्तकंठसे स्वीकार किया कि मानव-समाज भिन्न-भिन्न देशों और जातियोंमें विभक्त होते हुए भी स्वभावतः एक ही है और उसका हिताहित तथा सुख-दुख मिला हुआ है। सारी सृष्टिका कर्ता या पालक परमात्मा भी एक ही है, अतः सारे धर्म उन बातोंपर ज़ोर देवें, जो सबमें समान हैं और सबको एक दूसरेके समीप लानेवाली हैं। जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्रमें इस समय यह सिद्धान्त प्रबल होता जा रहा है कि सारा संसार एक साम्राज्यके अधीन नहीं हो सकता और न एक जातिका दूसरी जातिसे पददलित होना उचित है; परन्तु सभी जातियोंकी सुख और शान्तिके लिए यह आवश्यक है कि वह सब एक प्रकारके Commonwealth of Nations में शामिल होकर एक दूसरेके अधिकारोंकी रक्षा करें तथा अपनी स्वतन्त्रताको भी न खोवें, इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें भी यह भाव प्रबल हो रहा है कि सब धर्म या मत इसी प्रकारके समझौतेके आधारपर एक दूसरेसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करें।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि यदि कोई धर्म किसी विशेष सिद्धान्तको सत्य मानता हो, तो वह उसका प्रचार बन्द कर दे, या दूसरोंकी असत्य कल्पनाओंको भी चुपचाप स्वीकार करे। कदापि नहीं। वह उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तका सारी दुनियामें प्रचार करे ; परन्तु उसकी यह धारणा न होनी चाहिए कि जब तक दूसरे लोग मेरे सम्प्रदायमें शामिल होकर मेरा नाम तथा चिह्न धारण न करें, उस समय तक उनकी सद्गति नहीं होगी। ५० वर्ष पूर्व कुछ ईसाई प्रचारकोंकी यह दृढ़ धारणा थी, और वे इसका उल्लेख बिना संकोच दुनियामें करते थे, कि एक समय सारा भारतवर्ष ईसा मसीहको अवश्य अपना धर्म-नेता तथा मुक्तिदाता स्वीकार करेगा ; परन्तु आज शायद ही कोई विचारशील ईसाई हो, जो इस प्रकारकी घोषणा करे, या ऐसी सम्भावनाको व्यावहारिक समझे। अगर यह बात ईसा मसीहके सम्बन्धमें ठीक है, तो भारतवर्षके भी व्यक्ति-विशेषोंपर लागू है। यदि कोई यह धारणा करे कि श्रीराम या श्रीकृष्ण या हज़रत मुहम्मद या भगवान बुद्धको सारी दुनिया अपना धर्म-नेता स्वीकार करेगी, तो कहना होगा कि यह केवल उन महानुभावके अपने मनको बहलानेके लिए कल्पनामात्र है।

आर्य-धर्म या हिन्दू-धर्मका इस भावनासे कोई विरोध नहीं। इस धर्ममें वेद, उपनिषद, दर्शन आदि धर्म-ग्रन्थोंमें जिस धर्मका उपदेश किया गया है, वह सर्वव्यापक ईश्वर तथा मनुष्य-स्वभावको उद्दिष्ट करके किया गया है, और वह सबके लिए समान है। हिन्दू-धर्म ज्ञान और कर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करता है और मोक्षके लिए उन्हींकी प्रधानताको स्वीकार करता है। मेरा विचार है कि भावी धर्म-क्षेत्रमें इन्हीं भावोंकी प्रबलता होगी।

विश्व-धर्म-सम्मेलनका यही उद्देश्य था, और इस उद्देश्यकी उपस्थितिमें किसी प्रकारके विवाद, प्रतिवाद अथवा राग-द्वेषके लिए स्थान न था। जो भी भिन्न-भिन्न धर्मोंके वक्ता थे, उनका मुख्य प्रयोजन अपनी धर्म-पुस्तकों या शिक्षासे उन बातोंको दिखलाना था, जो सबमें समान हैं और जो सबके लिए स्वीकार करनेके योग्य हैं और जिनसे यह निश्चय होता था कि यदि इस भावनासे भिन्न-भिन्न मतोंके लोग आपसमें मिलें, तो वैर-विरोधका कोई कारण न रहेगा। सम्मेलनका वायुमण्डल ही ऐसा था कि वहाँ किसीके विरोध अथवा कटाक्षकी गुंजाइश न थी। शिष्टाचारके कारण भी एक दूसरेके धर्म-भावोंके प्रति आदरका भाव प्रकट होता रहा। वास्तवमें वहाँके लेखों तथा भाषणोंमें कोई ऐसी बात नहीं थी, जिसपर शास्त्रार्थ या विवादकी नौबत पहुँचती।

सम्मेलनकी कार्यवाही विशेषकर विद्वत्ता-प्रधान थी। प्रायः वही विद्वान आमन्त्रित किये गये थे, जो विश्वविद्यालयोंकी विद्वन्मंडलीमें गण्यमान्य हैं। भारतवर्षसे भी बहुतसे महानुभाव शामिल हुए थे, जिनमें विशेष उल्लेखके योग्य डा० राधाकृष्णन्, कलकत्ता-संस्कृत-कालेजके प्रिन्सिपल डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त तथा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ताके दर्शन-शास्त्रके प्रोफेसर डा० महेन्द्रनाथ सरकार थे। ये तीनों महानुभाव अपने दर्शन-सम्बन्धी उच्चकोटिके ग्रन्थोंके कारण प्रसिद्ध हैं। मुस्लिम धर्मके प्रतिनिधियोंमें सर अब्दुलक़ादिर तथा इस्लामिया कालेज लाहौरके प्रिन्सिपल श्री युसुफ अली थे। जापान, सीलोन तथा यूरोपके भिन्न-भिन्न देशों तथा धर्मोंके विद्वान् आये थे। भारतवर्षके लिए यह गौरवकी बात है कि सर राधाकृष्णन पहले-पहल ऑक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटीमें पूर्वीय आचार-पद्धति तथा धर्मोंके प्रोफेसर नियुक्त हुए हैं। संसारके शिक्षा-केन्द्रोंमें ऑक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयका स्थान बहुत ऊँचा है। संसारके समस्त देशोंके विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करनेके लिए आते हैं। ऐसे विद्या-केन्द्रमें पूर्वीय धर्मोंके व्याख्यातारूपमें एक भारतीय विद्वानका उच्च पदपर प्रतिष्ठित होना गौरवकी बात है। पन्द्रह दिन तक सम्मेलनकी कार्यवाही होती रही। बहुतसे लेख पढ़े गये और बहुतसे भाषण हुए। उन सबके उल्लेखका यहाँ न स्थान है और न अवसर। वे पुस्तकाकार शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँगे।

सम्मेलनके दिनोंमें सेंट-पाल गिरजा तथा कैंटरबरी गिरजाके डीन महोदयोंने सम्मेलनके सदस्योंको अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरजाघरोंमें निमन्त्रित किया था। ये दोनों ही यहाँके प्रसिद्ध प्राचीन तथा विशाल धर्म-स्थान हैं। कैंटरबरी लन्दनसे साठ मीलकी दूरीपर एक सुरम्य प्रदेशमें स्थित है। गिरजामें जिन महानुभावने उपदेश दिया, उन्होंने अपने व्याख्यानमें भक्त कबीरजीके नामका बड़ी भक्ति तथा आदरसे ज़िक्र किया। उनके कुछ दोहोंका अंगरेज़ी अनुवाद भी सुनाया और कहा कि ईश्वर तथा धर्म-स्वरूपके सम्बन्धमें ये बहुत पवित्र शब्द हैं, और हम इनका बड़ी श्रद्धासे स्मरण करते हैं। डीन महोदयने, जिनका व्यवहार बहुत ही शिष्ट और माधुर्यसे युक्त था, सब अतिथियोंका अपने विशाल भवनमें चाय आदिसे सत्कार किया और दूसरे सेवकोंके साथ वे स्वयं भी आतिथ्यमें निमग्न थे। उनके निजी पुस्तकालयमें महात्मा गांधीका जीवन-चरित भी दृष्टिगोचर हुआ।

ब्रिटिश राज्यकी ओरसे लार्ड ज़ेटलैण्ड तथा उनकी धर्मपत्नीने प्रतिनिधियोंका लंकास्टर-प्रासादमें स्वागत किया, और उपस्थित सज्जनोंसे घंटों तक चाय आदिके साथ-साथ वार्तालाप भी करते रहे और महलमें सुरक्षित राजपुरुषोंके प्राचीन वस्त्र तथा अन्य सुन्दर संग्रहीत वस्तुओंको दिखाते रहे। इसी प्रकार कई दूसरे महानुभावोंने भी सम्मेलनके सदस्योंको चायका निमन्त्रण दिया।

सम्मेलनके अन्तिम अधिवेशनमें प्रबन्धकारिणी सभाके प्रधान सर फ्रान्सिस यंग हसबैण्डने इस बातका उल्लेख बड़े उत्साह और प्रसन्नतासे किया कि सम्मेलनकी उद्देश्य-सिद्धिमें सबसे बड़ा भाग मेरी जन्मभूमिका है, और मेरी अपनी भूमि भारतवर्ष है। दूसरे वक्ताओंने भी इस बातकी पुष्टि की कि सूर्यका प्रकाश पूर्वसे होता है, और आज भी हम भारतवर्षसे ज्ञानके प्रकाशका आवाहन कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि यह केवल शिष्टाचारमात्र नहीं था। धर्म और अध्यात्मतत्त्वकी वेदीपर आज भी भारतवर्षका स्थान सर्वोपरि है। आज प्राचीन ऋषियोंका तत्त्वोपदेश संसारको आकर्षित कर रहा है।

[२]

लन्दनके हिन्दू-निवासी और उनकी धार्मिक अवस्था

लन्दन इस समय सारे संसारका केन्द्र नगर बन रहा है। ब्रिटिश साम्राज्यका प्रसार भी सारी दुनियामें है। लन्दन नगरकी जनसंख्या पौन करोड़के लगभग है। इतने महान समुदायके लिए निवास, गमनागमन तथा स्वास्थ्य-रक्षाकी व्यवस्था जिस प्रकार की गई है, वह मानव-मस्तिष्ककी संगठनशक्तिका एक अद्भुत दृश्य है। लन्दनके जीवन-प्रवाहका जो चमत्कार भूमिके ऊपर है, उससे बढ़कर भूगर्भमें है। मिनट-मिनटमें ज़मीनके नीचे स्टेशनोंपर रेलें आती हैं और जनसमुदायका प्रवाह उमड़ता रहता है। इस सारे जन-उद्वेलनमें जीवनके सौन्दर्य, शान्ति और प्रेमकी धारा बहती है। [हमें इसमें बहुत शक है।—सम्पादक] इन लोगोंका इस प्रकारका शिक्षण कैसे हुआ है, इसका वर्णन किसी दूसरे लेखमें करूँगा।

इंग्लैण्डका भारतवर्षके ऊपर शासन है, अतः भारतवर्षका—मजबूरन ही सही—इस देशके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, और भारतीय लोगोंकी एक बड़ी संख्या यहाँ एक या दूसरे रूपमें निवास करती है। इस लेखमें मुझे विशेष रूपसे यहाँके हिन्दुओंकी स्थितिका प्रदर्शन करना है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि मुझे दूसरे हिन्दुस्तानियोंसे उपेक्षा या उदासीनता है। सर्वप्रथम हिन्दुओंकी वह श्रेणी है, जो प्रायः यहाँ स्थायी रूपसे रहती है। उनकी संख्या पाँच सौके लगभग मानी जाती है। उनमें इंडिया कौंसिलके प्रतिष्ठित राज-कर्मचारी तथा इंडिया हाउसके अनेक मान्य व्यक्ति हैं; परन्तु अधिक संख्या डाक्टरोंकी है, जो यहाँ वर्षोंसे चिकित्सा-कार्य कर रहे हैं। उनका काम अच्छा चलता है। यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि जहाँ काले-गोरे, शासक-शासितका इतना बड़ा विचार हो, वहाँ यह हिन्दू डाक्टर कैसे सफलतापूर्वक इस देशके लोगोंकी चिकित्सा करके अपना निर्वाह करते हैं। इसका उत्तर किसी दूसरे अवसरपर दूँगा। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारी भी हैं और बैरिस्टर भी। इन लोगोंमें बहुतोंने अंगरेज़ महिलाओंसे विवाह किया है और उनके सन्तान भी हैं। यह प्रायः एक प्रतिष्ठित समुदाय है, जिसकी आर्थिक अवस्था साधारण रूपसे अच्छी है। जहाँ तक हिन्दूधर्म व संस्कृतिका सम्बन्ध है, इनमें वह नाममात्रकी है। इनका जीवन तथा आदर्श प्रायः अंगरेज़ोंके समान है। इनकी शिक्षा भी इसी देशमें हुई है। हिन्दू-धर्मके लिए श्रद्धामात्र है; पर क्रियात्मक रूपसे उसका स्वरूप दिखाई नहीं देता। अंगरेज़ी वेश और भाषा ही घर तथा बाहर प्रयुक्त होते हैं। धर्म तथा साहित्यका इनके घरोंमें कोई समावेश दिखाई नहीं देता। इनकी सन्तानोंका अपने पूर्वजों अथवा भारतीय संस्कारोंसे कोई सम्पर्क नहीं। जीवन-संग्राम भी इतना अधिक है—और रुचि भी नहीं है—कि इस प्रकारके कार्यके लिए ये समय दें।

दूसरी श्रेणी विद्यार्थियोंकी है, जिनकी संख्या दो हज़ारसे ऊपर है और जो सारे प्रान्तोंसे आये हुए हैं। ये भी यहाँ तीन-चार वर्ष तक निवास करते हैं और किसी-न-किसी प्रकारकी शिक्षा ग्रहण करते हैं। इनके अन्दर धर्म-सम्बन्धी बातोंसे घोर घृणा है। ये युवक हैं, जिनके हृदय बाहरके प्रभावोंको बहुत जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। भारतवर्षमें भी इनपर धार्मिक संस्कार नहीं होते। हाँ, देशभक्तिकी भावना अवश्य है, चाहे उसका क्रियात्मक स्वरूप कोई न हो। ये जब भारतवर्षके दासत्व-प्रथा तथा दरिद्रताके वायुमंडलसे निकलकर यहाँकी स्वतंत्रता और महान ऐश्वर्यका अवलोकन करते हैं, तो इनका सारा गुस्सा धर्मपर टूटता है, और इनकी यह प्रबल धारणा हो जाती है कि धर्मने ही भारतवर्षको इस अधोगतिको पहुँचाया है और येनकेन प्रकारेण धर्मको समूल नष्ट करना चाहिए। धर्मके नामपर जो अनाचार, अत्याचार, आडम्बर और मिथ्या पूजा-पाठ हमारे देशमें हो रहा है, उनकी मैं भी आवश्यकता नहीं समझता; परन्तु कठिनता यह है कि यह विद्यार्थी लोग उन चीज़ोंको तिरस्कृत करते हुए धर्मके उच्च भावोंसे भी जो जीवनको वास्तवमें सुन्दर, सुखी और नेक बनाते हैं, हाथ धो बैठते हैं।

तीसरी श्रेणी उन ग़रीब और अशिक्षित लोगोंकी है, जो जैसे-तैसे यहाँ पहुँच गये हैं। कुछ हिन्दुस्तानी होटलोंमें काम करते हैं, जहाज़ोंपर मज़दूरी करते हैं, अथवा ग़रीब आबादीमें फेरी लगाकर छोटी-छोटी वस्तुएँ बेचकर अपना निर्वाह करते हैं। इनकी भी संख्या कई सौ है। ये प्रायः लन्दनके ईस्ट एण्डमें रहते हैं। इनमें से भी बहुतोंने यहाँ विवाह कर लिया है। इनका भी अपनी या किसी दूसरी संस्कृतिसे कोई सम्बन्ध नहीं।

चौथे वे लोग हैं, जो प्रतिवर्ष यहाँ ग्रीष्मऋतुमें भ्रमणार्थ आते हैं। इनमें हमारे देशके राजे-महाराजे, प्रतिष्ठित राजकर्मचारी तथा अन्य धनी व्यक्ति हैं, जो तीन-चार मासमें लाखों रुपया यहाँ ख़र्च करके चले जाते हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य स्थानोंकी सैर अथवा स्वास्थ्य लाभ करना है। शायद उनके लिए भी यहाँकी इस स्थितिके सम्बन्धमें कोई प्रश्न पैदा नहीं होता।

धार्मिक अवस्था

मैं पहले कह चुका हूँ कि उपर्युक्त श्रेणियोंके जो हिन्दू यहाँ निवास करते हैं, उनको अपने धर्म या संस्कृति-सम्बन्धी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई, और भारतवर्षकी भी किसी संस्थाका इस ओर ध्यान आकर्षित नहीं हुआ, अतएव इस समय तक यहाँ आर्य-संस्कृतिका कोई केन्द्र नहीं बन सका, जो स्थानीय हिन्दुओंमें कोई जाग्रति और उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सके। जो कार्य अल्प अंशमें यहाँ हो रहा है, उसका उल्लेख मैं आगे चलकर करूँगा; परन्तु जहाँ तक हिन्दू जनताका सम्बन्ध है, उनकी ओरसे या उनके लिए इस प्रकारका उद्योग नहीं हुआ है। उनकी मनोवृत्तिका पता एक-दो घटनाओंसे लग जायगा। यह दृष्टान्त मैं किसी संस्था या व्यक्तिके विरोधमें नहीं दे रहा हूँ, प्रत्युत यहाँकी साधारण मनोवृत्तिको प्रकट करना ही मेरा उद्देश्य है। दीपावलीके उपलक्ष्यमें यहाँ अखिल भारतवर्षीय सहभोज हुआ, जिसमें तीन सौके लगभग भारतीयोंने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें पत्नी-स्वरूप अंगरेज़ महिलाएँ भी सम्मिलित थीं, भाग लिया। प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति विद्यमान थे। दीपावलीके उत्सवपर ही महाराजा ट्रावनकोरने अपनी प्रसिद्ध घोषणा की थी, जिसके द्वारा उन्होंने अपने राज्यके सब धर्म-स्थान सब हिन्दुओंके लिए खोल दिये। इस घोषणाकी सूचना लन्दनमें भी दूसरे दिन ही मिल गई। मैंने दीपावली-सहभोज-कमेटीकी दृष्टि इस ओर दिलाई कि इस घोषणाकी सूचना सहभोजमें उपस्थित लोगोंको दे दी जाय और साथ ही महाराजाको मंडलकी ओरसे एक बधाईका तार भी भेज दिया जाय। मेरे विचारमें ऐसा करना बहुत ही उचित और कर्तव्यका पालन करना था; परन्तु प्रबन्धकोंको यह बात स्वीकृत नहीं हुई। सहभोज, गान और नाच ही उत्सवका प्रोग्राम था।

दूसरे अवसरपर एक हिन्दू-संस्थाकी ओरसे एक हिन्दू जातीय त्योहारके उपलक्षमें एक सहभोज हुआ। मन्त्री महोदय बहुत दिन पहलेसे मुझसे कहने लगे कि उस अवसरपर मुझे १५-२० मिनटके लिए त्योहारके सम्बन्धमें कुछ बोलना होगा। मैंने इस विचारको सहर्ष स्वीकार किया। सहभोजके अवसरपर सहभोजके पश्चात् संस्थाके प्रधान महोदयने, जो इस सहभोजके भी प्रधान थे, मुझे आदेश किया कि मैं पाँच मिनटके लिए इस जातीय त्योहारके सम्बन्धमें कुछ कहूँ। मैंने उनके इच्छानुसार कुछ कहा। मेरे पश्चात उन्होंने एक प्रतिष्ठित सज्जनको हिन्दू फिलासफीपर व्याख्यान देनेकी आज्ञा की और इस व्याख्यानके लिए तीन मिनटका समय दिया! पाठक इन बातोंको सुनकर हँसेंगे। परन्तु यह यहाँकी वास्तविक मनोवृत्ति है। आठ मिनटी व्याख्यानोंके पश्चात दो घंटे तक गाने-बजानेका दौरदौरा चलता रहा! ये लोग धर्म-सम्बन्धी चर्चाको मिथ्या प्रलाप और समयका नाश करना समझते हैं। इन बेचारोंका भी क्या दोष है? ये ऐसी परिस्थितिमें रहते हैं, जहाँ इनकी उच्च धार्मिक वृत्तियोंको जाग्रत करनेका कोई यत्न ही नहीं किया गया।

पिछले चार-पाँच वर्षोंसे कलकत्तेके वैष्णव मतके गौड़ीय मठकी ओरसे यहाँ वैष्णव भक्ति-सम्बन्धी प्रचार करनेका उद्योग हो रहा है। उनको भारतवर्षसे मठकी ओरसे यथेष्ट धनकी सहायता भी मिल जाती है। यहाँके भी बड़े-बड़े राज-कर्मचारियोंका उन्होंने आश्रय ले लिया है। लार्ड ज़ेटलैण्ड उनकी सोसाइटीके प्रधान हैं। लन्दनमें एक मन्दिर भी बनानेका आयोजन हो रहा है, जिसमें सुवर्णकी मूर्तियाँ स्थापित की जायँगी। बंगालमें टिपराके महाराजने इस कार्यके प्रति कुछ विशेष दान देनेका वचन दिया है; परन्तु मठके प्रचार-कार्यका प्रसार अभी तक कुछ दीख नहीं पड़ता। और मुझे सन्देह है कि इस प्रकारकी कृष्ण-भक्तिका प्रचार यहाँ कुछ फल पैदा कर सकेगा, अथवा लोगोंको अपनी ओर खींच सकेगा। इस प्रचार-कार्यका हिन्दू जनतासे विशेष सम्बन्ध नहीं। रामकृष्ण-विवेकानन्द सोसाइटीकी ओरसे स्वामी अव्यक्तानन्दजी दो वर्षसे कार्य कर रहे हैं। उन्होंने अंगरेज़ स्त्री-पुरुष श्रद्धालुओंका अपना एक छोटा-सा केन्द्र बना लिया है, जिसमें १५-२० व्यक्ति उनके साप्ताहिक सत्संगोंमें शामिल होते हैं। स्वामीजी सज्जन व्यक्ति हैं, और वे अपना प्रचार-कार्य गम्भीरता तथा सौम्यतासे करते हैं; परन्तु उनका भी कार्यक्षेत्र अंगरेज़ लोगोंमें है, और उन्हींके द्वारा उनका खर्च चलता है, ऐसा मेरा अनुमान है।

पं० हरिप्रसाद शास्त्री भी यहाँ आठ वर्षसे इस प्रकारका कार्य कर रहे हैं। वे भी साप्ताहिक व्याख्यान तथा श्रेणी आदि चलाते हैं। कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं। उनका कार्य भी केवल अंगरेज़ों तक ही सीमाबद्ध है। उनके व्याख्यानोंमें भी २० या २५ की उपस्थिति होती है। उनका कार्य व्यक्तिगत रूपसे है। उनका किसी संस्थासे सम्बन्ध नहीं। वे इस कार्य द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं। अपने परिश्रम तथा योग्यतासे उन्होंने कुछ व्यक्तियोंको अपने कार्यके प्रति श्रद्धालु बना लिया है।

ऑक्सफोर्ड - विश्वविद्यालयके अध्यापक सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन्दनमें 'सावित्री-सत्यवान' नाटक खेला गया था, उसका एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन्दनमें भारतीयोंका एक दीपावली-उत्सव

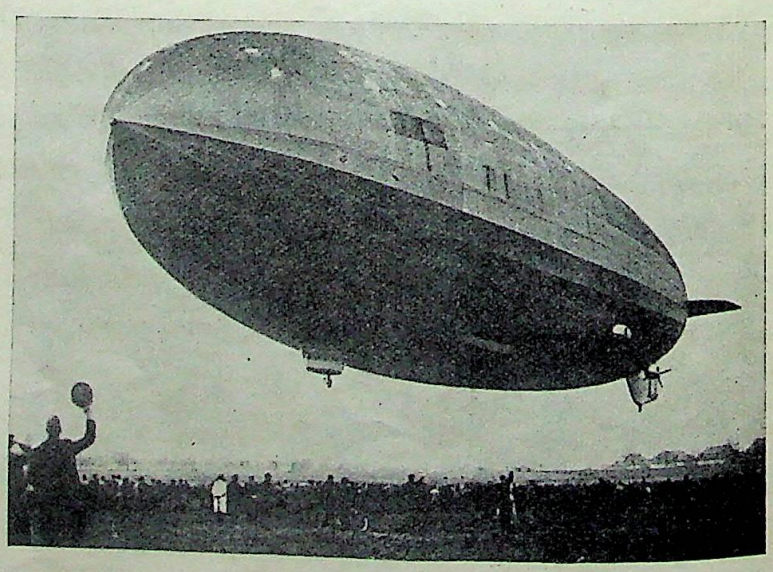

जर्मन वायुयान हिंडनबुर्ग, जो हालमें अमेरिकामें कई यात्रियोंके साथ जलकर राख हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधाकृष्णन आर्य-धर्म और फिलासफीके व्याख्याता-रूपसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। उनके हिन्दू-धर्मपर व्याख्यान, जो पुस्तक-रूपमें छप चुके हैं, बहुत महत्त्वके माने जाते हैं। आप एक उच्चकोटिके वक्ता तथा लेखक हैं। अंगरेज़ लोग विशेष उत्सुकतासे आपके व्याख्यानोंको सुनते हैं। आपकी ओजस्विनी धारा-प्रवाह अंगरेजी भाषाको सुनकर अंगरेज़ अपने ऊपर लजाने लगते हैं। अध्यापक महोदयका सम्बन्ध विश्वविद्यालयसे है। उनका मुख्य कार्य वही है, वहाँ ही रहते हैं और कभी-कभी लन्दनमें व्याख्यान देनेके लिए आते हैं। उनका लन्दनकी किसी हिन्दू-संस्थासे सम्बन्ध नहीं और न उनके पास इस प्रकारके संगठन-कार्यके लिए रुचि अथवा समय ही है; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस देशमें उनकी उपस्थिति आर्य-संस्कृति-प्रचारमें एक बड़ा भारी सहायक साधन है।

गत जुलाई मासमें विश्व-धर्म-सम्मेलनकी समाप्तिके बाद मैं एक मासके लिए जर्मनी चला गया था। वहाँसे वापस आनेपर मेरे मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यहाँकी हिन्दू जनताकी धार्मिक जाग्रतिका उद्योग करना चाहिए। कुछ ठहरकर और कार्य करनेके पश्चात् ही यहाँकी वास्तविक स्थितिका अनुभव हो सकता है, इस विचारसे मैंने यहाँ छै-सात महीने बाद प्रचार-कार्य करनेका निश्चय किया। सौभाग्यवश हिन्दू ऐसोसियेशन आफ यूरोपके अधिकारियोंने मेरे इस विचारका स्वागत किया। यह संस्था अभी सन् १९३६ के आरम्भमें यहाँके-स्थायी रूपसे रहनेवाले, कुछ प्रतिष्ठित हिन्दुओं द्वारा संगठित की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दू-संस्कृतिका प्रचार और एतदर्थ एक मज़बूत केन्द्र स्थापित करने तथा हिन्दुओंको कष्टके समय सहायता करनेका है। इसकी रजिस्ट्री कराई गई है और आय-व्ययका सब हिसाब नियमपूर्वक रखा जाता है।

सितम्बरके अन्तिम सप्ताहसे आर्य-भवनमें साप्ताहिक सत्संगोंका आरम्भ किया गया। प्रार्थनाके पश्चात् आर्य-धर्म-सम्बन्धी किसी विषयपर अंगरेज़ीमें व्याख्यान होता है, और अन्तमें प्रश्नोत्तर भी होते हैं। अधिकारियोंको यह सन्देह था कि इस प्रकारके उपदेश सुननेके लिए हमारे भाई आयेंगे या नहीं, क्योंकि यहाँ सहभोज, चाय आदिके अवसरपर ही लोग इकट्ठे होते हैं; परन्तु मुझे विश्वास था कि इन मनोरंजनके सामाजिक उत्सवोंसे धार्मिक-संगठन नहीं हो सकता। प्रसन्नताकी बात है कि छै मासमें यह प्रचार-कार्य नियमपूर्वक बड़े उत्साहसे चल रहा है। इनमें हिन्दुओंके अतिरिक्त अंगरेज स्त्री-पुरुष भी प्रति सप्ताह सम्मिलित होते हैं। कुछ अंगरेज़ महिलाएँ गीता पढ़ती हैं। ऐसोसियेशनके अधिकारी तथा सदस्य भी प्रायः उपस्थित होते हैं। इस कार्यसे उनके अन्दर उत्साह पैदा हुआ है, और कम-से-कम उनको कार्यकी विधि तो दीख पड़ी है।

अब प्रश्न है स्थायी प्रचारक तथा नियमबद्ध स्थायी निरन्तर कार्यका। ऐसोसियेशनके अन्दर इतनी शक्ति नहीं कि किसी योग्य प्रचारकका सारा भार वह अपने ऊपर ले सके। इस संस्थाकी ओरसे भारतवर्षमें अपील भेजी जा रही है। यदि भारतवर्षके मान्य हिन्दू सज्जन अथवा संस्थाएँ इसकी सहायता करें, तो यह कार्य सुचारु रूपसे चल सकता है, और कुछ वर्ष नियम-पूर्वक कार्य होनेसे यहाँ आर्य-संस्कृतिका एक अच्छा केन्द्र स्थापित हो सकता है। इन सत्संगोंमें हिन्दू विद्यार्थी भी शामिल होते हैं, और यदि उनके सम्मुख धर्मका वास्तविक स्वरूप रखा जाय, तो उनकी घृणा दूर हो सकती है। यहाँके वायुमंडलमें कर्मण्यता और विशालता है, अतः हमारा विद्यार्थी-समुदाय भारतवर्षकी अपेक्षा यहाँ शायद इन भावोंको जल्दी ग्रहण कर सकेगा। यूरोपके लोगोंमें भी हिन्दू अध्यात्मवाद और साधन-प्रणालीके लिए बहुत रुचि है। यदि संगठित ढंगसे कार्य हो, तो इनके अन्दर भी भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी भाव फैल सकते हैं।*

* श्रीयुत ऋषिरामजी तथा Hindu Association of Europe का पता है—Aryabhawan, 30, Belsize Park, London, N. W. 3.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'बालहित'—एक बार महात्माजीने दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज़को अपने एक पत्रमें लिखा था—"हमारे यहाँ विशेषज्ञोंकी बड़ी कमी है। ऐसे व्यक्ति बहुत कम पाये जाते हैं, जो किसी एक विषयमें अपने तन-मनको लगा दें और उस बारेमें कुछ ठोस काम कर दिखलावें। अन्वेषण करनेकी प्रवृत्ति भी हमारे शिक्षितोंमें कम ही पाई जाती है। अपने देशके इस अभावको मैं प्रायः महसूस करता हूँ।"

महात्माजीके ठीक-ठीक शब्द तो हमें याद नहीं रहे; पर उनका भाव ऐसा ही था। हमारे अनेक मासिक पत्र-पत्रिकाओंमें बालकोंके लिए भी कुछ कालम रिज़र्व किये जाते हैं; पर उनकी पूर्ति प्रायः ऐसे लेखकों द्वारा की जाती है, जिनको बालकोंके मनोविज्ञानके विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं; एक रस्म सी अदा कर दी जाती है। इस खेदजनक परिस्थितिपर ध्यान देते हुए हमें प्रत्येक प्रयत्नका, जो विशेषज्ञों द्वारा किसी महत्त्वपूर्ण विषयपर किया जाय, हार्दिक स्वागत करना चाहिए। पितृ-संघ उदयपुरका उद्योग भी ऐसा ही है, और उसका मुखपत्र 'बालहित' अपने विषयका अकेला पत्र है। पितृ-संघके उद्देश्य निम्न-लिखित है :—

(१) माता-पिताओंको बच्चोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें उनके कर्त्तव्योंका ज्ञान कराना।

(२) घर और स्कूलके बीचमें मेल स्थापित करना।

(३) बालहितकी समस्याओंपर पूरा विचार करना।

डाक्टर मोहनसिंह मेहता, एम० ए०, पी-एच० डी०, के एक लेखके निम्न-लिखित अंशसे 'बालहित'के उद्देश्यकी विस्तृत व्याख्या हो जाती है—"आप माता-पिताओंमें अपने बच्चोंके लिए अगाध प्रेम है। क्या उस प्रेमकी सेवामें आप विज्ञानको नहीं आने देंगे? क्या आप उस प्रेम तथा विज्ञान-सेवित नर्सरी-शिक्षा द्वारा अपने बच्चोंका अपार उपकार नहीं होने देंगे? क्या आज सन् १९३७ में भी आप उन मूर्ख पिताओंकी तरह सोचते हैं कि बच्चेकी शिक्षा अक्षर-ज्ञानसे आरम्भ होती है? आपके बच्चेके लिए हर घड़ी सोनेसे भी अधिक मूल्यवान है। कहीं आप भी 'माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठ्यते' वाली कहावतके माफ़िक़ अपने बच्चेके दुश्मन तो नहीं हैं? याद रखिये, एक बालककी शिक्षा-दीक्षा बिगड़नेसे केवल एक कुटुम्ब ही की हानि नहीं होती है, उसमें देशके एक नागरिक और समाजके एक होनहार सदस्यकी क्षति भी तो है।"

'बालहित'का जन्म जनवरी १९३६में हुआ था, और श्रीयुत कालूलालजी श्रीमाली, एम० ए०, बी० टी०, जुलाई १९३६ से उसका सम्पादन कर रहे हैं। अपने प्रथम वर्षमें इस पत्रिकाने अनेक उपयोगी लेखोंको, जो बालक मनोविज्ञानके तथा बच्चोंकी शिक्षाके विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये हैं, प्रकाशित किया है। प्रारम्भमें ही हम दो त्रुटियोंकी ओर इस पत्रके संचालकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। पहली त्रुटि तो यह है कि यद्यपि लेखोंको सरल भाषामें लिखनेका प्रयत्न किया गया है, जिससे ये उपयोगी विचार साधारण लोगों तक पहुँच सकें; पर इस प्रयत्नमें अभी यथेष्ट सफलता नहीं मिली। भाषामें सुधारकी अभी काफी गुंजाइश है। आशा है कि सम्पादक महोदय इधर अधिक ध्यान देंगे। यदि पाठकको ऐसा मालूम हो कि लेखक सोचता अंगरेज़ीमें है और लिखता हिन्दीमें, तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा। दूसरी त्रुटि यह है कि जो उपयोगी लेख इस पत्रमें निकले हैं, उनका यथोचित प्रचार नहीं किया गया। उदाहरणार्थ, डाक्टर मोहनसिंह मेहताकी चिट्ठियोंको अनेक हिन्दी-पत्रोंमें, जो शिक्षाके विषयमें रुचि रखते हैं, उद्धृत कराना चाहिए था। श्रीमालीजीके लेख भी इस योग्य हैं कि उन्हें पुस्तकाकार छपाना चाहिए।

'बालहित'के संचालकोंको एक बातपर बधाई दी जा सकती है, वह यह कि उन्होंने अपने दृष्टिकोणको व्यापक रखा है। उसके लेखक और लेखिकाओंकी सूची ही इस बातका प्रमाण है। मिस ऐम० न्यूमेन (विद्या-भवन), मिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्राई (विद्या-भवन), प्रोफेसर एफ० क्लार्क (डाइरेक्टर इंस्टीट्यूट आफ एजूकेशन लन्दन-यूनिवर्सिटी), मि० के० जी० सईदैन (प्रिंसिपल ट्रेनिंग कालेज, अलीगढ़), हरभाई त्रिवेदी (दक्षिणामूर्ति-भवन, भावनगर), अध्यापक एच० पी० माइती (कलकत्ता-विश्वविद्यालय), श्री एच० आर० भाटिया (बिड़ला-कालेज, पिलानी), अध्यापक एल० आर० शुक्ल (बनारस ट्रेनिंग कालेज) इत्यादिने अपने अनुभवपूर्ण विचारोंको इस पत्र द्वारा प्रकट किया है। पत्रका वार्षिक मूल्य २) है, जो पृष्ठ-संख्याके देखते अधिक मालूम होता है। पथप्रदर्शकोंका कार्य सदैव कठिन होता है, इसलिए हमें यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ कि अभी तक पत्रकी ग्राहक-संख्या सन्तोषजनक नहीं बन पाई।

ज़रूरत इस बातकी है कि देशीराज्योंके अधिपति सौ दो सौ प्रतियाँ इसकी खरीदकर अपने प्राइमरी स्कूलोंके अध्यापकोंमें बँटवावें। बच्चोंके लालन-पालनका प्रश्न किसी राजनैतिक वाद-विवादसे सम्बन्ध नहीं रखता और न फिरक़े-बन्दीसे ही इसका कुछ ताल्लुक है। बच्चे तो सभी प्रेम तथा सेवाके पात्र हैं—चाहे हिन्दूके हों या मुसलमानके अथवा ईसाईके या पारसीके। बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि यदि अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी बच्चोंको कहीं साथ-साथ शिक्षा दी जा सके, तो अनेक राजनैतिक ग़लतफहमियाँ आगे चलकर उठें ही नहीं।

अन्तमें संचालकोंके सम्मुख एक प्रस्ताव रखना चाहते हैं, वह यह कि वे पत्रका एक विभाग बालकोपयोगी लेखोंके लिए भी रखें। अभी हमारे यहाँ अधिकांश माता-पिताओंमें इतनी अक़्ल नहीं आ पाई कि वे केवल अपने लिए ही उपयोगी किसी पत्रको खरीदें, इसलिए उन्हें यह प्रलोभन देनेकी ज़रूरत है। एक ही पत्रको उनके तथा उनके बच्चोंके लिए मनोरंजक बना देनेसे पत्रकी ग्राहक-संख्यामें वृद्धि होनेकी सम्भावना है। जो महानुभाव इस विषयमें अधिक जानना चाहें, वे पितृ-संघ उदयपुरसे पत्र-व्यवहार करें।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

'गुजरात कला-कलाप'—प्रकाशक, कुमार-कार्यालय, रायपुर, अहमदाबाद ; मूल्य १)

सन् १९३६ में अहमदाबादमें गुजराती-साहित्य-सम्मेलनका बारहवाँ अधिवेशन महात्मा गांधीके सभापतित्त्वमें हुआ था। इस अवसरपर गुजरातके कलाकारोंने एक चित्र-प्रदर्शिनी भी की थी। इस अधिवेशनकी स्मृतिमें कुमार-कार्यालयने 'गुजरात कला-कलाप' नामसे एक अल्बम, (पोर्टफोलियो) प्रकाशित किया है। इसमें छै रंगीन चित्र हैं। ग्राहक घर-सजानेके लिए आसानीसे मढ़ा सकें, इसलिए ये चित्र अलग-अलग ही रखे गये हैं। साथमें एक परिचय-पत्र है, जिसमें चित्रों और उनके चित्रकारोंका परिचय दिया गया है। यह पोर्टफोलियो गुजराती कलाकारोंकी ओरसे महात्मा गांधीको समर्पित किया गया है।

इस संग्रहमें श्री रविशंकर रावलके दो चित्र हैं। रावल महाशयने अपने एकाकी प्रयत्नसे गुजरातकी चित्रकलाको पुनर्जाग्रत करके नया जीवन दिया है। बाक़ी चार चित्रोंमें सर्वश्री कनु देसाई, रसिकलाल परीख, सोमालाल शाह और छगनलाल जादवका एक-एक चित्र है। सभी चित्र कलापूर्ण हैं और प्रत्येक कला-प्रेमीके लिए संग्रहणीय हैं। प्रत्येक चित्र बढ़िया आर्ट बोर्डपर (१४"×११" साइज़में) बड़े सुन्दर ढंगसे छापा गया है। उत्कृष्टताको देखते हुए इसका दाम बहुत कम है।

इस सुन्दर प्रकाशनके लिए 'कुमार'-कार्यालय और कुमार-प्रेस बधाईके पात्र हैं।

—व्रजमोहन वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र-भाषामें शब्दोंकी कमी

धन्यकुमार जैन

इस बातको सभी स्वीकार करते हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दीमें ऐसे अनेक शब्दोंकी कमी है, जिनसे संक्षेपमें विस्तृत अर्थ प्रकट होता हो। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जब हम किसी सिद्धान्तपर हिन्दी ही में विचार करने बैठते हैं या आपसमें भावोंका लेन-देन करते हैं, तो पासमें बैठा हुआ अंगरेजी न जाननेवाला हिन्दी या राष्ट्रभाषा-भाषी व्यक्ति भी कभी-कभी उनका मुँह ताकता रह जाता है; क्योंकि सीखने या हृदयंगम करने लायक कामकी बातोंको वे अंगरेजी शब्दों द्वारा प्रकट करने लगते हैं। कारण पूछनेपर वे बताते हैं कि हिन्दीमें उसे 'ऐक्सप्रेस' यानी व्यक्त करना मुश्किल है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस मुश्किलको आसान करनेवाला कौन होगा? यह तो उन्हींका फर्ज है, जिनके पास वे भाव हैं? परन्तु अक्सर ऐसा देखनेमें आता है कि वे अपने इस फर्जको अदा नहीं करते; और चिट्ठी-पत्री लिखते वक्त भी, सिर्फ वर्तमानमें समय बचानेके खयालसे, भावी राष्ट्र-भाषाको अपने दानसे वंचित रखते हैं।

वर्तमान विचार-धारा भारतकी प्राचीन संस्कृतिसे इतनी अधिक भिन्न हो गई है कि उस धारामें संस्कृत शब्दोंकी वही दशा हो रही है, जो गहरे पानीमें तैरनेवालोंके लिए हाथ-भर पानीमें तैरनेकी कोशिशमें होती है, और इसलिए संस्कृत शब्दोंका प्रयोग आध्यात्मिक विषयोंके लिए उपयुक्त होनेपर भी वर्तमान जीवन-संग्रामके भीड़-भम्भड़में अनुपयुक्त सिद्ध होता है। और हर हालतमें राष्ट्रभाषाको हमें पनपाना और धनी बनाना ही है। तब फिर हम भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें प्रचलित उपयोगी या कामके 'बहुअर्थी अल्पाक्षरी'* शब्दोंका प्रयोग और संग्रह करना अभीसे क्यों न शुरू कर दें? अंगरेजी साहित्यमें ऐसे हजारों शब्द हैं, और आये दिन नये-नये शब्द उनमें मिलते रहते हैं। संस्कृतमें भी ऐसे शब्दोंका काफी बड़ा भंडार है, पर उनका प्रयोग प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप ही हुआ है।

मगर अब तो हमें नये भावोंको नई भाषा-शैलीमें ही प्रकट करना पड़ेगा, और इसके लिए अगर हम बराबर विदेशी शब्द प्रकट करते ही रहना चाहते हैं, तो, या तो उन शब्दोंको हिन्दी कोशोंमें आश्रय देना चाहिए या फिर उनका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। लेखकपर बोल-चालकी भाषाका प्रभाव बहुत जबरदस्त पड़ता है, क्योंकि निरन्तर बोलते-बोलते उसका ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि ऐन वक्तपर, लिखते समय, हृद्गत भावोंके अनुकूल शब्द जब उसे ढूँढ़े नहीं मिलते, तब फिर या तो वह ऐसे कड़े शब्दोंका प्रयोग कर बैठता है, जिनके मानी शब्दकोश ही में मिलते हैं, या फिर उसे ऐसे शब्द लिखकर काम चलाना पड़ता है, जो ठीक उसके भावको प्रकट नहीं करते।

खासकर किसी पनपी हुई धनी भाषासे महारथी लेखक या कविकी रचनाका हिन्दीमें अनुवाद करते समय यह दिक्कत अनुवादकके सामने काली दीवारकी तरह आ खड़ी होती है। मूल भाषाके भावोंको समझकर हृदयंगम कर लेनेपर भी, वह गूँगेके गुड़के स्वादकी तरह उसे

* कम अक्षरवाले और ज्यादा मानी रखनेवाले शब्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त करनेमें असफल रहता है। वजह यह है कि ठीक उसी नाप-तोलके, यानी उतने ही कम-बढ़, गहरे या विस्तृत मानी रखनेवाले, शब्द हिन्दीमें उपस्थित नहीं होते और न ये शब्द चालीस-चालीस रुपयेवाले कोशों ही में ही दिखाई देते हैं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि अलग-अलग देशों या प्रदेशोंमें बोल-चालकी शैली अलग-अलग होती है, और अनुवादका पूरा रस तभी मिल सकता है, जब ठीक उसी नाप-तोलके शब्दों और वाक्योंका उपयोग किया जाय।

इसमें तो कोई मतभेद हो ही नहीं सकता कि कोई भी भाषा अगर धनी या सम्पत्तिशाली होना चाहती है, तो उसे समुद्रकी तरह अनेक भाषा-नदियोंकी धाराएँ अपनेमें मिलानी पड़ेंगी।*

हम चाहते हैं कि भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दी समुद्र बने और विभिन्न भाषा-नदियोंको वह अपनावे। इसमें सबका कल्याण है।

राष्ट्रभाषाके शब्दभंडारकी कमीको दूर करनेके अनेक उपायोंमें से एक उपाय यह भी है कि हिन्दीके समस्त लेखकोंको अपने-अपने प्रान्तोंके 'बहुअर्थी अल्पाक्षरी' चालू और कामके शब्दोंके प्रयोग करनेके लिए छुटपट्टी दे दी जाय। पत्र-सम्पादकोंको चाहिए कि उन शब्दोंको अपूर्ण कोशोंकी कसौटीपर न कसें, चाहें तो नीचे नोंदमें उनका विस्तृत अर्थ दे दें। बल्कि उत्तमतर तो यह होगा कि स्वयं लेखक ही ये फुटनोट अपने लेखके साथ दे दें।

अगर ऐसा न हो सके, तो दूसरा तरीका यह है कि राष्ट्रभाषा-परिषदकी तरफसे एक पत्र निकले, और उसमें लिखनेवाले लेखकोंको छुटपट्टी रहे। जब धीरे-धीरे कई सालमें शब्दोंका काफी संग्रह हो जाय, तब कुछ राष्ट्रभाषाके साधक सेवकोंको यह काम सौंप दिया जाय, जो उस पत्रमें प्रयुक्त सम्पूर्ण शब्दोंको चुन-चुनकर संग्रह करें, जो संक्षिप्त होनेपर भी यथासाध्य पूर्ण हो। सारांश यह कि वह कोश अब तक चालू और आगे चालू होने-लायक सभी शब्दोंका भंडार हो। यह कोश देखनेमें भले ही भारी-भरकम और आतंककारी न हो, मगर इसकी उपयोगिता अन्य कोशोंसे कम न होगी।

इस बातपर हम विश्वास नहीं करते कि काम करनेवाले नहीं मिलते हैं। दरअसल ढूँढ़नेवालोंकी आँखें कमजोर हैं, या फिर उनके उद्देश्य और काम करनेवालोंके उद्देश्यमें कुछ फर्क है।

काम करनेवाले अध्यवसायी राष्ट्रभाषा-सेवकोंके पास यदि साधन होते, तो सम्भव है कि अब तक यह काम काफी आगे बढ़ गया होता। आवश्यकता इस बातकी है कि जो साधन-सम्पन्न व्यक्ति इस कार्यसे सहमत हों, उनके तथा काम करनेकी इच्छा रखनेवाले सुयोग्य व्यक्तियोंके बीचमें सहयोग स्थापित हो। संस्थाओंके भरोसे बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा।

* इस विषयमें, इसी अंकमें प्रकाशित राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरूके 'साहित्यका भविष्य' शीर्षक लेखका तीसरा और अन्तिम पैराग्राफ पठनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

थर्ड-क्लासके भाड़ेमें वृद्धि

इस अभागे देशमें यदि सरकारी ख़र्चमें कमी अथवा आमदनीमें वृद्धि करनी हो, तो अधिकारियोंकी अनुग्रह-दृष्टि पहले दरिद्रोंपर ही पड़ती है। ईस्ट इंडियन रेलवेने आमदनी बढ़ानेके उद्देश्यसे तीसरे दर्जेका भाड़ा बढ़ा दिया है। इसका प्रतिवाद करना अरण्य-रोदन ही है।

—

गोरे सिपाहियोंको पाँच बार भोजन

आजकल भारतवर्षमें गोरे सैनिक प्रतिदिन चार बार भोजन करते हैं—अवश्य ही भारतवर्षके पैसेसे। आगेसे गवर्नमेंट उन्हें प्रतिदिन पाँच बार खानेको देगी। भारतीय सिपाही इतनी बार नहीं खाते, फिर भी युद्धमें वे पृथिवीके किसी भी देशके सैनिकोंसे उन्नीस नहीं सिद्ध होते।

अब तक एक-एक गोरे सैनिकके ऊपर वेतन इत्यादिके लिए भारतवर्षको एक-एक भारतीय सिपाहीकी अपेक्षा चौगुना ख़र्च करना पड़ता है। आगे कितना गुना ख़र्च करना पड़ेगा?

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

जंज़बारके विरुद्ध कार्रवाई

जंज़बार टापूका लौंगका बहुत अधिक व्यापार भारतीय व्यापारियोंके हाथमें है। पिछले तीन वर्षसे नये-नये क़ानून बनाकर इस बातकी कोशिश हो रही है कि यह व्यापार भारतीयोंके हाथसे छीन लिया जाय। इन क़ानूनोंके खिलाफ जंजबारके भारतीयोंने बहुत ज़ोरका आन्दोलन किया और भारत-सरकारका दरवाज़ा खटखटाया। भारत-सरकारने भी बहुत ज़ोरदार प्रतिवाद किया; किन्तु नतीजा कुछ भी न निकला।

हालमें ख़बर सुनी गई है कि भारत-सरकार इन क़ानूनोंके विरोधमें जंज़बारके विरुद्ध प्रतिशोधकी कार्यवाही करेगी। सारे संसारमें लौंगकी जितनी उत्पत्ति है, उसमें से ८२ प्रति सैकड़ा लौंग जंज़बारका टापू ही उत्पन्न करता है, और इस लौंगकी खपत संसारमें सबसे अधिक भारतवर्षमें ही होती है। लिहाज़ा सुना जाता है कि भारत सरकार भारतवर्षमें जंज़बारसे लौंगका आना रोक देगी और इस प्रकार जंज़बारके भारतीय विरोधी क़ानूनोंका बदला लेगी। लेकिन इस कार्यवाहीसे नुक़सान किसका होगा? क्या उन लोगोंका जो इन क़ानूनोंके लिए वास्तवमें उत्तरदायी हैं?

जंज़बारका टापू यद्यपि नामको स्थानीय सुल्तानके अधीन है, मगर वास्तवमें सुल्तानको कोई शक्ति नहीं। जंज़बार प्रोटेक्टोरेटका शासन अंगरेज़ रेज़ीडेन्ट, जो लन्दनके कलोनियल आफ़िसके अधीन रहता है, एक व्यवस्थापिका सभाके द्वारा करता है। इस व्यवस्थापिका सभाका संगठन इस प्रकारका है कि उसमें बहुसंख्या सरकारी अफ़सरोंकी है, जो प्रायः सबके सब अंगरेज़ हैं। इन अफ़सरोंके अलावा छै ग़ैर-सरकारी सदस्य होते हैं, जिनमें से ३ अरब, २ भारतीय और एक यूरोपियन (यानी अंगरेज़) होता है। इस प्रकार व्यवस्थापिकाके सदस्योंमें अंगरेज़ोंका प्राधान्य है। जिसके मानी यह हैं कि स्याह-सफ़ेद करनेका सारा अधिकार अंगरेज़ोंके हाथमें है। इसके अलावा सर्वोपरि सत्ता है लन्दनके कलोनियल आफ़िसके हाथमें। जंज़बारके शासनकी नीति निर्धारित करने और उसे रास्ता दिखानेवाला कलोनियल आफ़िस ही है, और उसे अधिकार है कि टापूके किसी भी क़ानूनको चालू रखे अथवा रद कर दे। भारतीयोंके विरुद्ध जो भी क़ानून बने हैं, उनकी आख़िरी ज़िम्मेदारी अंगरेज़ोंके मत्थे है।

भारत-सरकार प्रतिशोध-स्वरूप जंज़बार टापूसे लौंगकी आमद बन्द करनेका विचार करती है। निस्सन्देह इससे टापूकी आमदनीमें कुछ फ़र्क पड़ सकता है और अधिकारियोंको थोड़ी-बहुत आर्थिक कठिनाई हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है ; किन्तु इस प्रतिशोधसे मुख्य हानि होगी लौंग उत्पन्न करनेवाले अरबों और भारतीयोंकी। ज़ंज़बार ही क्यों, अन्य अनेक टापुओंमें—डोमीनियनोंको छोड़कर समूचे ब्रिटिश साम्राज्यमें—भारतीयोंके साथ जो दुर्व्यवहार होता है, उसकी अन्तिम ज़िम्मेदारी लन्दनके कलोनियल आफिसपर ही है। एसेम्बलीकी पिछली बैठकमें प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पेश हुआ था, उसपर बोलते हुए एसेम्बलीके यूरोपियन सदस्योंने भी इस बातका रोना रोया था कि इंग्लैण्डका कलोनियल आफिस भारतीयोंकी उचित शिक़ायतोंपर ध्यान नहीं देता। भारत-सरकारमें इतनी दम नहीं कि वह विलायतके कलोनियल आफिसकी कार्रवाईके बदलेमें कुछ भी कर सके, इसलिए प्रतिशोधकी नीति अन्तमें टाँय-टाँय फिस्स होकर रह जायगी। प्रतिशोधकी कोई कार्यवाही यदि की जाय, तो कलोनियल आफिसके खिलाफ़ की जानी चाहिए।

—

साहित्यका भविष्य

राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरूने गत १५ मईके 'हरिजन-सेवक'में 'साहित्यका भविष्य' शीर्षक एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है। उसे हम अन्यत्र ज्योंका त्यों उद्धृत कर रहे हैं। केवल एक बातको छोड़कर अन्य सब बातें ऐसी हैं, जिनका प्रत्येक समझदार साहित्य-सेवी समर्थन करेगा। छठवीं बात जो श्री जवाहरलालजीने कही है, उसमें उन्होंने अपना यह मत प्रकट किया है, 'बच्चोंपर दोनों लिपियोंका बोझ न डालना चाहिए।' साथ ही वे यह भी कहते हैं कि कुछ लोगोंको दोनों लिपियाँ सीखनी चाहिए। यहीं हमारा मतभेद है। हमारी समझमें सभी बच्चोंको दोनों लिपियाँ सीखनी चाहिए। स्कूलोंमें हिन्दी और उर्दू दोनोंको अनिवार्य बना देनेसे हमारी कठिनाई १०-१२ वर्षमें अनेक अंशोंमें दूर हो जायगी। भूगोल तथा इतिहासको मिला देनेसे अथवा अन्य किसी विषयमें काट-छाँट कर देनेसे यह काम आसानीसे हो सकता है। 'लीडर'में अनेक लेखकोंने इस प्रस्तावको जनताके सम्मुख रखा था। इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार होना चाहिए। उर्दू लिपि सीखना कोई कठिन बात नहीं है।

हमारे मार्गमें सबसे बड़ी कठिनाई यह आ पड़ी है कि भाषा और लिपिका प्रश्न भी साम्प्रदायिक बन गया है। फिरकेबन्दीके दायरेमें आ जानेकी वजहसे ही इसकी इतनी छीछालेदर हुई है। किसी भी सजीव साहित्यिकके लिए, जिसकी ज़िन्दगीका कुछ उद्देश्य है, मुख्य सवाल यह है कि वह अपनी आवाज़को अधिकसे अधिक आदमियों तक पहुँचा सके। इस बातको मद्देनज़र रखकर उसे अपनी भाषामें परिवर्तन करने चाहिए। हिन्दू लोगोंकी खुशी या मुसलमानोंकी नाराज़गीका ख़याल करनेकी कतई ज़रूरत नहीं। भाषाकी 'विशुद्धता'के लिए जो लोग आन्दोलन चला रहे हैं, (उदाहरणार्थ श्री राहुलजी, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा और प्रोफेसर अमरनाथ झा इत्यादि,) उनसे हमारा इतना ही निवेदन है कि वे ज़रा देरसे जनमे और जगे हैं। यदि इन लोगोंका जन्म साढ़े चार सौ वर्ष पहले होता, तो ये हिन्दी-साहित्यके सूर्य सूरदासजीके समकालीन होते। सूरदासजीसे अवश्य ही इन लोगोंकी मुठभेड़ हुई होती। किसी कार्टूनिस्टके लिए क्या ही बढ़िया मसाला है :—

सूरदास अपनी कुटीपर बैठे हुए अपना पद गा रहे हैं—

साँचो सो लिख धार कहावै।
काया ग्राम मसाहत करिकै, जमा बाँधि ठहरावै॥
मनमथ करै कैद अपनेमें, ज्ञान जहतिया लावै।
माँड़ि-माँड़ि खरिहान क्रोधको, पोता भजन भरावै॥
बट्टा काटि कसूर मर्मको, फरद तलै लै डारै।
निश्चय एक असल पै राखै, टरै न कबहू टारै॥
करि अवारजा प्रेम प्रीतिको, असल तहाँ खतियावै।
दूजी करै दूरि करि दाई, नेक न तामें आवै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुजमिल जोरे ध्यान कुल्लका, हरि सौं तहँ लै राखे।
निर्भय रूपै लोभ छाँड़ि कै, सोई वारिज राखै॥
जमा खर्च नीके करि राखै, लेखा समुझि बतावै।
सूर आप गुजरान मुहासिब, लै जवाब पहुँचावै॥

कि इतनेमें सर्वश्री राहुलजी, धीरेन्द्रजी अमरनाथजी आ निकलते हैं।

राहुलजी कहते हैं—"प्रज्ञाचक्षु, यह आप क्या अन्याय कर रहे हैं? अभी मुसलमानोंने भारतीय संस्कृतिका अध्ययन ही नहीं किया और आपने फारसी शब्दोंका प्रयोग प्रारम्भ कर दिया!"

धीरेन्द्रजी—"अवश्य ही बाबाजी सरकारके साथ किसी षड्यन्त्रमें सम्मिलित हैं और ये साहित्यिक भाषाका सत्यानाश कर रहे हैं।"

अमरनाथजी—"यह 'हिन्दुस्तानी'का बबूला शीघ्र ही फूट जायगा।"

पर सूरदासजी इन कटाक्षोंका उत्तर पदों द्वारा दे रहे हैं, जिनमें निम्न-लिखित शब्दोंका प्रयोग होता है :—

मसाहत	नकीब	असल	साबिक जमा	स्याहा
मुसाहिब	सही	जवाब	बरामद	साफ
गुजरान	क़ैद	वासिलबाकी	लायक	माफ़
मुजमिल	जमा	मुहासबा	दामनगीर	निशान
मुहर्रिर	नौबत	दस्तक	ग़रीब	मुहकम
मुस्तौफ़ी	शोर	फौज	बेहाल	सुलतान
दीवान	निवाज़	इत्यादि।*		

पं० जवाहरलालजीसे हम पूर्णतया सहमत हैं कि जब लिखनेवाले आम जनताके लिए लिखेंगे, तब ये दफ्तरी बहसें खुद-बखुद खतम हो जायँगी। हिन्दीमें जिन लोगोंकी भाषा टकसाली मानी जाती है, उनमें से अधिकांशने उर्दू पढ़ी थी। स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा तो उर्दूके अच्छे पंडित थे और बाबू बालमुकुन्द गुप्त पहले एक उर्दू अखबार 'कोहेनूर'के सम्पादक थे। कविवर शंकरजी उर्दूमें भी कविता करते थे, और आधुनिक हिन्दी-गद्यके एक निर्माता पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीके विषयमें इससे अधिक कहनेकी कोई जरूरत नहीं कि उनका दिमाग़ इस विषयमें बिलकुल सुलझा हुआ रहा है। वे भारतीय संस्कृतिके प्रबल समर्थक हैं; पर उन्होंने अपने मस्तिष्कमें भाषा-सम्बन्धी फिरके-बन्दीकी मकड़ीको जाला बुननेकी इजाज़त नहीं दी। पं० अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयीने, जो साफ-सुथरी भाषा लिखनेके लिए सुप्रसिद्ध हैं, बाल्यावस्थामें फारसीका अध्ययन किया था और भोजन इत्यादिके मामलेमें पक्के कान्यकुब्ज होनेपर भी भाषाकी विशुद्धताके विषयमें वे कार्यतः हम लोगोंके साथ हैं। अपनी अंगरेज़ी पुस्तक 'Persian influence on Hindi' के अन्तमें उन्होंने यहाँ तक लिख दिया है कि उर्दूका अध्ययन किये बिना कोई हिन्दीका मास्टर (विशेषज्ञ) नहीं बन सकता।—

"Hindi writers who wish to master the art of writing must go through a course of Urdu, because some master minds have laboured to make it what it is to-day. The reason for the difference between Lucknow and Delhi schools of Urdu is that they mean business. They invent new forms, new idioms and new meanings of words and sometimes they are accepted by the opposite school. Unless one studies Urdu, he cannot be a master of Hindi as he will not be able to know the various stages through which it has passed."

—

हिन्दी-यात्री-मंडल

श्री काका साहब कालेलकरने २० मईके 'भारत' में निम्न-लिखित लेख छपाया है :—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी तरफसे जो हिन्दी-प्रचार-समिति क़ायम हुई है, उसने एक यात्री-मगडल लंका, ब्रह्मदेश, मलया, जावा, बाली, स्याम, आदि, आदि देशोंमें भेजनेका

* सूरदासने इन शब्दोंका प्रयोग 'सूरसागर' में किया है। देखिये श्री वियोगी हरि द्वारा संकलित 'संक्षिप्त सूरसागर'।

स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी शर्माने इन शब्दोंको अपने सुप्रसिद्ध भाषण 'हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी'में उद्धृत किया है और लिखा है—"श्री सूरदासजी ब्रजभाषाके 'अहले जबान' थे, अपने ठेठ तद्भव और तत्सम शब्दोंकी उनके पास कमी न थी। वह चाहते तो इन विदेशी शब्दोंको अपनी कविताकी वाटिकाके पास न फटकने देते, पर वह तो परम उदार वैष्णव थे, शरणागत अंगीकृतका परित्याग कैसे करते?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो निश्चय किया है, उसके बारेमें अभीसे ग़लतफहमियाँ शुरू हो गई हैं। अखबारोंने उस यात्री-मण्डलको 'कल्चरल एम्बेसी'के नामसे घोषित किया है, और 'कल्चर' नाम आते ही नृत्य, संगीत आदि भारतीय ललित-कलाओंको ले जानेकी भी सूचनाएँ आने लगी हैं।

हिन्दी - प्रचार-यात्री-मंडलको बृहद-भारतके साथ पूर्व-अफ्रिका और दक्षिण-अफ्रिका, मारिशस, फ़िजी आदि देशोंमें रहनेवाले वर्तमान बृहद-भारतको पहले लेना चाहिए, ऐसी सूचनाएँ भी आने लगी हैं।

यात्री-मंडलके सदस्योंके चुनावपर आपत्ति उठाई गई है। यात्रा-मंडलके भेजनेका उद्देश्य अनेक हो सकते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने यह काम अच्छी तरहसे किया है। उन्होंने अनेक देशोंमें जाकर भारतका सांस्कृतिक सन्देश पहुँचाया ही है। भारतकी संस्कृति, यहाँके संगीत, नृत्य आदिके बारेमें वे जो प्रचार कर सके हैं, उसीको दुर्बल ढंगसे करनेकी आकांक्षा हिन्दी-प्रचार-यात्री-मंडलकी नहीं है।

जिन देशोंमें जानेका विचार किया गया है, उन देशोंका पुराना सम्बन्ध भारतवर्षसे है ही। प्राचीन कालमें इन देशोंने यहाँकी संस्कृत भाषा सीखकर भारतके साथ सम्बन्ध बाँध लिया था। बौद्ध कालमें पाली भाषा और साहित्य सीखकर भारतके साथका अपना सम्बन्ध कायम रखा था। चूँकि इन देशोंके लोगोंसे प्रार्थना करनी है कि वे भारतको अंगरेज़ीके द्वारा न पहचानें, भारतकी आत्मा भारतीय भाषाओंके द्वारा ही व्यक्त हो सकती है, और सारे भारतके लिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी निश्चित हो गई है, इसलिए उसी भाषाके द्वारा वे सब हमारे संभाव्य पड़ोसी भारतको पहचाने।

भारतकी राष्ट्र-भाषा एक ही है। उसके नामका झगड़ा हमने रखा ही नहीं। इसी एक राष्ट्र-भाषाको आसेतु हिमाचल और पूर्व समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्र तक हम चलाना चाहते हैं।

भारतके राष्ट्र-संगठनमें जिन लोगोंने राष्ट्र-भाषा-प्रचारमें दिलचस्पी ली है, ऐसे लोगोंमें से यात्री-मंडलके सदस्य चुने जा सकते हैं। प्रचार-समितिने इसका भार इस सालके सम्मेलनके अध्यक्ष श्रीयुत जमनालालजीके ऊपर छोड़ दिया है, और उन्होंने पाँच नाम पसन्द किये हैं।

देशकी सेवा करनेवाली प्रधान संस्थाएँ अपनी-अपनी दृष्टिसे यात्री-मंडल भेज सकती हैं। एक ही तरहके लोग हर मंडलमें भेजे जायँ, यह ज़रूरी नहीं है।

मारिशस, फ़िजी आदि देशोंमें जो हिन्दवासी जाकर बसे हैं, वे तो हिन्दीको अपनायेंगे ही। वहाँ जो-कुछ काम करना है, वह वहाँकी परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर करना चाहिए। यह काम हमारे क्षेत्रमें नहीं आता, इसलिए उनको हमने क्षेत्रमें नहीं लिया, न कि उसका महत्त्व कम समझकर।

इस लेखमें श्री काका साहबने 'विशाल भारत' द्वारा उठाये गये प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। काका साहबके कथनका सारांश यह है:—

(१) आधुनिक विशाल भारत (मारिशस, फिजी इत्यादि) के भारतीय हिन्दीको खुद ही अपनावेंगे। वहाँ जो काम करना है, वह उन उपनिवेशोंकी परिस्थितिको देखकर करना चाहिए। यह काम हमारे क्षेत्रमें नहीं आता।

(२) यात्री-मंडलके आदमियोंके नाम सम्मेलनके अध्यक्ष श्री जमनालालजीने चुने हैं, और यह चुनाव उन्हीं व्यक्तियोंमें से किया जाना चाहिए और किया गया है, जिनका भारतके राष्ट्र-संगठनमें कुछ हिस्सा है और जिन्होंने राष्ट्र-भाषाके प्रचारमें दिलचस्पी ली है।

(३) यात्री-मंडलका उद्देश्य है लंका, ब्रह्मदेश, मलाया, जावा, बाली, स्याम इत्यादि देशोंके लोगोंसे यह प्रार्थना करना कि वे भारतको राष्ट्र-भाषा हिन्दी द्वारा पहचानें।

काका साहबके लेखको ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया गया है, इसलिए हमारे पाठक देख सकते हैं कि हमने काका साहबके विचारोंका संक्षेप करनेमें भूल नहीं की।

अब इन तीनों बातोंको अलग-अलग लीजिए।

पहली बात—मारिशस, फिजी इत्यादिमें हिन्दी-प्रचारका काम अखिल भारतीय हिन्दी-प्रचार-सभाके क्षेत्रमें नहीं आता, सचमुच आश्चर्यजनक है। यह काम अखिल भारतीय हिन्दी-प्रचार-सभाका नहीं है, तो किसका है? स्वामी भवानीदयालजीसे तथा अन्य हिन्दी-शिक्षकोंसे, जिन्होंने वर्षों तक उद्योग करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिवेशोंमें हिन्दी-प्रचारका कार्य किया है, हम अनुरोध करेंगे कि वे इस विषयमें अपनी सम्मति दें। भारतमें हिन्दी-प्रचार तथा आधुनिक विशाल भारतमें हिन्दी-प्रचार दोनों एक-दूसरेसे इतने सम्बद्ध हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

हमारा मुख्य ऐतराज़ यह है कि यात्री-मंडल एक निश्चित क्षेत्रको, जहाँ उसकी उपस्थिति अत्यन्त लाभदायक हो सकती है, छोड़कर एक अनिश्चित क्षेत्रको जा रहा है। यात्री-मंडलके दो सदस्योंकी (श्रीमान् टंडनजी तथा श्रीमान् जमनालालजीकी) बातचीत हमने श्रीयुत डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जीसे कराई थी। डाक्टर चटर्जी ब्रह्मदेश, जावा, बाली इत्यादिकी यात्रा कर चुके हैं। उनका कहना है कि इस समय जावा और बालीमें हिन्दी-प्रचारकी कुछ भी गुंजाइश नहीं है। ब्रह्मदेशमें लाख-डेढ़-लाख हिन्दी-भाषा-भाषी हैं, और वहाँकी यात्रासे कुछ काम हो सकता है। श्याम तथा बालीमें संस्कृतके लिए कुछ हो सकता है।

चुनावका तरीक़ा बिलकुल ग़लत है। विशेषज्ञोंको छोड़ देनेका यह ढंग संकुचित दृष्टिकोणका परिचायक है। हमने 'विशाल भारत' में लिखा था—

"यदि प्राचीन विशाल भारतकी यात्रा करनी है, तो उसमें Greater India Societyके डा० कालिदास नाग तथा कलकत्ता-विश्वविद्यालयके श्रीयुत डा० सुनीतिकुमार चटर्जी जैसे विद्वानोंको भी साथ ले लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ये लोग इस विषयका गम्भीर अध्ययन अनेक वर्षोंसे कर रहे हैं। इनके सिवा किसी कलाकारको साथ ले जानेकी ज़रूरत है—उदाहरणार्थ, श्री नन्दलाल वसु, श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, श्री कनु देसाई इत्यादि। पर जैसा कि हम लिख चुके हैं कि प्राचीन विशाल भारतका महत्त्व इस समय केवल इतिहासकी दृष्टिसे ही है, आधुनिक विशाल भारतकी बात इससे विभिन्न है, वह एक सजीव और बढ़ती हुई चीज़ है।"

क्या हम श्री काका साहबके कथनका यह अभिप्राय समझें कि डाक्टर कालिदास नाग अथवा डाक्टर चटर्जी तथा उन-जैसे विद्वानोंका राष्ट्रके संगठनमें कुछ हिस्सा नहीं है? ग्रेटर इंडिया सोसाइटीने प्राचीन विशाल भारतके उद्धारके लिए जितना काम किया है, उतना कार्य करनेमें हमारी अखिल भारतीय हिन्दी-प्रचार-समितिको दस-बारह वर्षसे कम नहीं लगेंगे। सोसाइटीके संचालक अपने विषयके विशेषज्ञ हैं और यात्री-मंडलका कर्तव्य है कि उनके सहयोगसे पूर्ण लाभ उठावे। यात्री-मंडलमें बहुधन्धी आदमियोंकी भर्ती कर लेना और विशेषज्ञोंको छोड़ देना दरअसल सिद्धान्ततः ग़लत है। यदि यह चुनाव श्री जमनालालजी द्वारा हुआ है, तो यह उनकी भूल है।

श्री काका साहबके सामने हम एक प्रस्ताव रखना चाहते हैं, वह यह कि वे यात्रा करनेके पहले उन लोगोंसे मिल लें, जो जावा, सुमात्रा इत्यादिकी यात्रा कर आये हैं और पूर्ण तैयारीके बाद ही वहाँ जायँ। यह हम नहीं कहते कि इस यात्रासे कुछ भी लाभ न होगा। हमारा कहना सिर्फ इतना ही है कि यदि जावा, सुमात्रा, बाली और लंकाके बजाय मारिशस तथा फिजीको रखा जाता, तो हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे पचासगुना लाभ होता। बंगलामें एक कहावत है—'नेई मामार चेये काना मामा भालो'—यानी मामा बिलकुल ही न होनेसे काना मामा होना बेहतर है। इस दृष्टिसे हम भी यात्री-मंडलकी इस यात्राका समर्थन करते हैं।

श्रीमान् टंडनजी तथा श्रीमान् जमनालालजीसे हम इस विषयमें बातचीत कर चुके हैं, और अब काका साहबके भी विचार हमें स्पष्टतया ज्ञात हो गये। लेडी रमन तथा बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके विचार सम्भवतः इनसे मिलते-जुलते होंगे। परिस्थितिपर विचार करते हुए हमें यह आशा नहीं कि यात्री-मंडल स्वयं इस यात्राको स्थगित करेगा। हाँ, राजनैतिक परिस्थिति भले ही उसे इसके लिए बाध्य करे।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माजीका निर्णय

यात्री-मंडलके विषयमें इन पंक्तियोंके लेखकने पूज्य महात्माजीसे पत्र-व्यवहार किया था। महात्माजीने ५।५।३७ के पत्रमें लिखा है—

"सुमात्रा इत्यादिकी यात्राका जो कारण है, उसके तब मारिशस इत्यादिकी यात्रा किसी तरह नहीं मिलती है। ब्रह्मदेश, सुमात्रा, जावा, श्याम इत्यादि पूर्वकी संस्कृतिसे सम्बन्ध रखनेवाले देश हैं, उनका भारतीय भाषाओंके साथ सम्बन्ध होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसमें मतलब यह नहीं है कि वे लोग सबके सब हिन्दी सीखेंगे, लेकिन उनमें से कोई हिन्दीका अभ्यास करे तो आश्चर्यजनक न माना जाय।"

महात्माजीके इस निर्णयके बाद हमें यही उचित प्रतीत होता है कि हिन्दी-यात्री-मंडल-सम्बन्धी वाद-विवादको यहीं समाप्त कर दिया जाय। हाँ, यदि काका साहब अथवा यात्री-मंडलके कोई अन्य सदस्य इस सम्बन्धमें कुछ लिखेंगे, तो हम उसे सहर्ष छाप देंगे।

—

कर्तव्य या सौदा ?

मुसलमानोंको कांग्रेसमें सम्मिलित करनेके लिए जो आन्दोलन हो रहा है, उसका हम हृदयसे स्वागत करते हैं; पर यह आन्दोलन केवल मुसलमानों तक ही परिमित क्यों रखा जाय ? ईसाई, पारसी, सिख इत्यादि सभी सम्प्रदायोंको कांग्रेसके कार्यक्रममें भाग लेनेके लिए प्रेरित करना चाहिए। देशके स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा ईसाई या अन्य कोई धर्मावलम्बी। चूँकि कांग्रेस ही देशकी सर्वप्रधान राजनैतिक संस्था है, और उसने भारतीय स्वतन्त्रताके युद्धमें सबसे अधिक भाग लिया है, इसलिए भारतकी विभिन्न जातियोंका कर्तव्य है कि वे कांग्रेससे सहयोग करें। यदि कोई आदमी कांग्रेसकी उग्र नीतिसे सहमत न हो, तो वह ईमानदारीके साथ लिबरल दलमें सम्मिलित हो सकता है, और लिबरल पार्टी भी साम्प्रदायिकतासे दूर है। पर अगर कोई जाति यह समझती है कि देशके स्वार्थोंसे उसके स्वार्थ सर्वथा भिन्न हैं और वह अकेले ही ब्रिटिश सरकारसे लड़ सकती है, तो यह उसकी मर्ज़ी। उस हालतमें उसे अपना प्रयोग खुद ही करना चाहिए। कांग्रेसको न हिन्दू-महासभाकी ज़रूरत है और न मुसलिम लीगकी।

श्रीयुत कृपलानीजीने पंजाबके प्रधान-मन्त्री सर सिकन्दर हयात खांके भाषणके उत्तरमें एक बात बड़े मार्केकी कही है—"मेरी तो यह दृढ़ सम्मति है कि अगर भारतकी तमाम साम्प्रदायिक संस्थाएँ कांग्रेसकी मुख्य नीतिकी विरोधी हो जायँ, तब भी कांग्रेसको अपनी ही नीतिपर चलना चाहिए। इसका नतीजा यह हो सकता है कि कांग्रेसके लिए संग्राम और भी कठिन हो जाय और उसे और भी अधिक त्याग तथा बलिदान करना पड़े; पर इससे क्या मुज़ायका। जो आदमी दरअसल भारतके सेवक हैं, वे साम्प्रदायिक संस्थाओं द्वारा डाली हुई बाधाओंकी वजहसे अपने राष्ट्रीय कर्तव्यसे विमुख थोड़े ही हो सकते हैं। जिस तरह सरकारी कोपदृष्टि उन्हें कर्तव्यच्युत नहीं कर सकती, उसी तरह साम्प्रदायिक संस्थाओंकी बाधाएँ भी उन्हें नहीं रोक सकतीं।"

कृपलानीजीके तर्कसे हम सर्वथा सहमत हैं। मि० जिन्ना तथा उनके जो साथी देश-सेवाको सौदेका विषय बनाना चाहते हैं, वे समयकी गतिको बिलकुल नहीं जानते। कांग्रेस अब इनेगिने लीडरोंकी संस्था नहीं रही। उसकी शक्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। सन १९१४-१५ का ज़माना कभीका लद चुका, जब कांग्रेस हिन्दू-मुसलिम पैक्टों और समझौतोंमें विश्वास रखती थी। हर्षकी बात है कि कांग्रेसकी बागडोर अब श्री जवाहरलालजी जैसे शुद्ध राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणवाले व्यक्तिके हाथमें है, जो इन राजनैतिक मसलोंपर फिरकेबन्दीके दृष्टिकोणसे विचार ही नहीं करते। फिरकेपरस्त नेता इस बातको अब महसूस करने लगे हैं कि निकट-भविष्यमें देशका शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेसवालोंके हाथमें आवेगा, और यह बात उनके लीडरोंके लिए अत्यन्त ख़तरनाक है। मि० जिन्ना और सर याकूबकी चिल्लाहट इसी ख़तरेकी सूचक है। जब कराची-कांग्रेस अल्पसंख्यक जातियोंके धर्म, संस्कृति, रीति-नीति और लिपि तकके विषयमें गारंटी कर चुकी है, तब फिर उसपर अविश्वास करके नये-नये पैक्टों तथा समझौतोंकी चेष्टा करना महज़ खामख़याली है। देशभक्ति कोई बिक्रीकी चीज़ तो है नहीं।

—

आल इंडिया कांग्रेस कमेटीमें मुसलमान

अभी उस दिन कांग्रेस बुलेटिन नं० ४ (मई सन् १९३७) को पढ़ रहे थे। उसमें वर्किंग कमेटी तथा आल इंडिया कांग्रेस कमेटीके सदस्योंके नाम तथा पते छपे हैं। वर्किंग कमेटीके १४ सदस्योंमें २ मुसलमान हैं, और आल इंडिया कांग्रेस कमेटीके २८५ सदस्योंमें मुसलमानोंकी संख्या कुल जमा दस है। यानी पहलेमें १४·३ फी-सदी मुसलमान हैं और दूसरेमें ३॥ फी-सदी! यदि बड़े लाट साहब और छोटे लाट साहबोंकी कौंसिलोंमें मुसलमान सदस्योंकी संख्याका औसत यही होता, तो मुसलान लोग ज़मीन-आस्मान एक कर देते; पर चूँकि कांग्रेसकी मेम्बरीसे कुछ मिलता नहीं, बल्कि उसमें ज़िम्मेदारी और ख़तरे बहुत होते हैं, शायद इसीलिए मुसलमान उसके लिए विशेष चिन्तित नज़र नहीं आते। कांग्रेसके प्रति उपेक्षा करनेसे खुद मुसलमानोंकी कितनी हानि हो रही है, इसीकी कल्पना वे नहीं कर सकते। जो लोग कांग्रेस कमेटियोंमें भाग लेते हैं, उन्हें त्याग, साधना और तप द्वारा अपने व्यक्तित्वको विकसित करनेके अनेक अवसर मिलते हैं—यद्यपि सब लोग उससे पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाते, फिर भी मौक़े तो आते ही रहते हैं—और मुसलमानोंका इन अवसरोंको खो देना अपने व्यक्तित्वकी हानि करना है। किसी भी समझदार व्यक्तिकी समझमें आल इंडिया कांग्रेस कमेटीकी मेम्बरीका महत्त्व कौंसिलकी मेम्बरीसे अधिक होना चाहिए। दरअसल अपनी जहालत और अदूरदर्शिताके कारण अधिकांश मुसलमान अब तक कांग्रेससे अलग रहे हैं। हाँ, सीमान्त-प्रदेशके मुसलमान इस विषयके अपवाद अवश्य हैं।

मुसलमानोंको अब यह बात कान खोलकर सुन लेनी चाहिए और अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अब कोई आदमी उनकी खुशामद करने और उन्हें पैक्ट द्वारा रिश्वत देने नहीं जायगा। उनकी समझमें आवे तो कांग्रेसमें शामिल हों, न आवे तो अपने घर बैठें। जो बढ़कर बोली बोलेगा, उसको हम अपनी स्वामिभक्ति प्रदान करेंगे, ऐसी आशा करनेवाले लोग अपना रास्ता देखें, क्योंकि कांग्रेस नीलामी माल लेनेको तैयार नहीं।

—

स्वर्गीय ठाकुर महेन्द्रपाल सिंह

यह सुनकर हमें हार्दिक दुःख हुआ कि गत ११ मईको ठाकुर महेन्द्रपाल सिंहका देहान्त हो गया। ठाकुर साहब हिन्दीके बड़े प्रेमी थे, और आजसे २०-२५ वर्ष पहले पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख प्रायः निकला करते थे। डिप्टी कलक्टर हो जानेके बाद भी उन्होंने अपना हिन्दी-प्रेम नहीं छोड़ा और फ़ुर्सतके वक्त वे बराबर कुछ-न-कुछ लिखते रहे। 'विशाल भारत'पर उनकी ख़ास तौरसे कृपा थी, और पिछले वर्षोंमें उनके लेख प्रायः इसी पत्रमें निकले। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सरकारी अफ़सर किसी ऐसे पत्रमें, जिसमें राजनैतिक लेख भी निकलते हों, लिखते हुए डरते हैं; पर ठाकुर साहबने इस बातकी चिन्ता कभी नहीं की। हिन्दीके प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियोंके विषयमें अनुसन्धान करनेकी ओर उनकी रुचि विशेष रूपसे थी, और 'विशाल भारत'में उनके इस विषयके कई महत्त्वपूर्ण लेख छपे थे। ठाकुर साहब स्वर्गीय सत्यनारायणके मित्रों और सहयोगियोंमें से थे और प्रायः सत्यनारायणकी याद कर लिया करते थे। सत्यनारायण-कुटीके निर्माणमें उन्होंने कुछ सहायता भी दी। ठाकुर साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े हँसमुख और मिलनसार थे, और साहित्य-चर्चामें उन्हें आनन्द आता था। प्रायः सरकारी अफसर अपनी दुनिया अलग बना लेते हैं और साधारण कार्यकर्ताओंसे मिलते-जुलते भी नहीं। ठाकुर साहब इस नियमके अपवाद थे। हमने उन्हें कांग्रेसके कार्यकर्ताओंके साथ दिल खोलकर बातचीत करते हुए देखा था।

ठाकुर साहबके कुटुम्बियोंके प्रति—उनके बड़े भाई राजा साहब कुशलपाल सिंह तथा अनुज ठाकुर जोगेन्द्रपाल सिंहके साथ—हमारी हार्दिक सहानुभूति है। ठाकुर साहबके दो लड़के हैं और एक लड़की। आशा है कि अपने पूज्य पिताजीकी तरह वे भी हिन्दी-प्रेमी बनेंगे।

—

उड़ीसामें हिन्दी-प्रचार

उत्कल-प्रचार-हिन्दी-सभाकी सन् १९३६ की रिपोर्ट हमारे सामने है। ५ वर्षसे उत्कलमें हिन्दी-प्रचारके लिए प्रयत्न हो रहा है। यद्यपि जितना कार्य अब तक हुआ है, वह काफी सन्तोषजनक नहीं; फिर भी परिस्थितियोंपर ध्यान देते हुए हम उसकी कठोर आलोचना नहीं कर सकते। जितनी आर्थिक सहायता हिन्दी-प्रचारके लिए मदरास-प्रान्तको मिली है और जिस प्रकार समय-समयपर उत्तर-भारतके साहित्य-सेवी उधर जाते रहे हैं, उसी प्रकारकी सहायता और प्रोत्साहन उड़ीसाको भी यदि मिलता, तो बहुत-कुछ काम हो सकता था। हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि उड़ीसा अत्यन्त निर्धन प्रान्त है, और वहाँ साधारण जनता इतनी ग़रीब है कि हम उससे इस कार्यमें अधिक आर्थिक सहायताकी आशा नहीं कर सकते। सन् १९३६ में जो २ हज़ार ७५ रुपयेकी आय हुई थी, उसमें १७३७ रुपये कलकत्तेकी पूर्व-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभासे मिले थे।

इस समय उड़ीसामें हिन्दी-प्रचारके पाँच केन्द्र हैं, कटक, पुरी, ब्रह्मपुर, भद्रक और बरी। गत वर्ष उड़ीसासे १८ विद्यार्थी सम्मेलनकी परीक्षाओंमें बैठे, जिनमें १४ उत्तीर्ण हुए। बरीके आश्रमकी देख-रेखमें ४० आदमी हिन्दी पढ़ते हैं, जिनमें १८ स्त्रियाँ हैं। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें हिन्दीका प्रचार होना और भी अधिक आवश्यक है। हिन्दी-प्रचारके विषयमें हमें एक निश्चित नीतिसे काम लेना चाहिए, और यह कार्य मुख्यतया उस प्रान्तके ही कार्यकर्ताओंको सौंप देना चाहिए, जिसमें हिन्दी-प्रचार किया जा रहा हो। हर्षकी बात है कि पूर्व-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा इसी नीतिसे काम कर रही है। इसी उद्देश्यसे उसने उत्कलके दो विद्यार्थियोंको हिन्दी पढ़नेके लिए प्रयाग भेजा था और लौटनेपर उन्हें काममें जुटा दिया है।

हमारा एक प्रस्ताव है कि जिन-जिन स्थानोंमें हिन्दी-विद्यालय खुलें, वहाँ साथ-ही-साथ हिन्दीके छोटे-मोटे पुस्तकालय और वाचनालय भी खोल देने चाहिए। कटकके विद्यालयके साथ एक पुस्तकालय और वाचनालय है भी; पर उसमें पुस्तकोंकी बहुत कमी है। यदि जगन्नाथपुरीके यात्री अपने साथ दो-दो, चार-चार किताबें भी हिन्दी-विद्यालयोंको भेंट करनेके लिए लेते जायँ, तो उनकी यात्रा अधिक पुण्यप्रद बन सकती है। जिन महानुभावोंको पुरी-यात्राका सौभाग्य प्राप्त न हो, वे घर बैठे-बैठे उस पुण्यका कुछ अंश लूट सकते हैं, बशर्ते कि वे श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक, हिन्दी-शिक्षा-मन्दिर पुस्तकालय कटक,को अपने पाससे उपयोगी ग्रन्थ भेज दें।

—

मिस्टर बाल्डविनकी सचाई

लन्दनमें साम्राज्य-दिवसके उपलक्षमें एक दावतमें भाषण देते हुए ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री मिस्टर बाल्डविनने कहा—"भारतमें अनेक राजवंशोंने शासन किया है; किन्तु किसी भी राजवंशकी हुकूमत इतनी सर्वव्यापी और बेचँचराके नहीं हुई, जितनी उस राजवंशकी, जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कमरेमें विद्यमान हम सब लोग सेवक हैं। (ब्रिटिश) राजाके प्रति राजभक्ति केन्द्रित करके ही भारतने वह एकता प्राप्त की है, जिस एकताकी अब तक वह खोज करता रहा है। अब हम इस एकताको संघ-शासनका रूप दे रहे हैं, और हमें यह आशा और विश्वास है कि इससे एक ऐसा महान भारत बनेगा, जैसा वह अब तक नहीं बना।

"अब यह अधिकतर उसीका उत्तरदायित्व है, फिर भी हमने इस नये विधानमें सहायता देनेके जो प्रयत्न किये हैं, हम भारतको उनकी सचाईके विषयमें विश्वास दिला देना चाहते हैं। हम भारतको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वह जिस महान दुस्साहसके कार्यको उठानेको जा रहा है, उसके लिए हम जो सहानुभूति बोध करते हैं, वह केवल ग्रेट-ब्रिटेन तक ही सीमित नहीं है, वरन वह सहानुभूति साम्राज्यके सभी भागोंमें है।"

आज मि० बाल्डविन जिस पदपर हैं, कुछ दिन पहले मि० मैकडानल्ड उसी पदपर थे, और उन्होंने उसी पदसे घोषणा की थी कि कुछ ही महीनोंमें भारतवर्ष डोमीनियन पदपर पहुँच जायगा। लार्ड इरविनने ब्रिटिश सम्राटके नामपर घोषणा की थी कि ब्रिटेनका उद्देश भारतको डोमीनियन पद देना है। किन्तु जब नया शासन-विधान बना, तब पार्लामेन्टके मज़दूर सदस्योंके प्रतिवाद करनेपर भी डोमीनियन शब्द तकका उल्लेख उसमें नहीं किया गया। इतना ही नहीं, बल्कि ज्वाइंट पार्लामेन्टरी कमेटीके एक सदस्यने हाउस आफ लार्ड्समें यह भी कहा कि अब भारतके डोमीनियन पद प्राप्त करनेकी बात सदाके लिए खत्म हो गई। इन कठोर तथ्योंके सामने मिस्टर बाल्डविनकी सचाई और सहानुभूतिपर कौन भारतीय विश्वास करेगा ?

—

प्रशंसनीय दान

यह लिखते हुए हमें हर्ष होता है कि भारतके कुष्ठाश्रमोंकी रिपोर्टको हिन्दीमें छपानेके लिए 'विशाल भारत' के पाठकोंने दो सौ बहत्तर रुपये श्रीयुत ए० डी० मिलर, कुष्ठाश्रम-पुरुलिया, को भेज दिये हैं। उनका ब्यौरा इस प्रकार है :—

श्रीयुत दाऊदयाल कोठारी	४०) रु०
श्रीयुत शिवचन्द बागड़ी	११) रु०
'तीन मित्र'	२०१) रु०
एक हिन्दी-कवि	२०) रु०
	२७२) रु०

मि० मिलरसे हम अनुरोध कर रहे हैं कि वे रिपोर्टके साथ इस महत्त्वपूर्ण मिशनका इतिहास भी छपावें, क्योंकि शुष्क रिपोर्ट उतनी प्रभावशाली कदापि नहीं हो सकती। हमारा अनुमान है कि इतिहास तथा रिपोर्ट दोनोंके छपानेमें छै सौ रुपयेसे कम खर्च न होंगे। शेष ३२८) की रक़म भी 'विशाल भारत' के सहृदय पाठक सीधे Mr. A. D. Miller, Purulia (Bihar) के पतेपर भेज दें, तो काम बन जाय। मनीआर्डरके कूपनमें 'हिन्दी रिपोर्ट और इतिहासके लिए' ये शब्द लिख देना आवश्यक है। मिशनके उपयोगी कार्यके विषयमें हम अपने लेख 'सेवा-उपवन' (मार्च १९३७ 'विशाल भारत') में काफ़ी लिख चुके हैं। जिन्होंने उसे न पढ़ा हो, उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे एक बार उसे पढ़ जायँ।

—

देव-पुरस्कारके नियमोंमें संशोधन

देव-पुरस्कार हिन्दीका ही नहीं, हिन्दुस्तानका भी सबसे बड़ा साहित्यिक पुरस्कार है। कई कारणोंसे उसके प्रति हिन्दी-भाषा-भाषियोंका सम्मान घटता जा रहा है। इसमें पुरस्कारके प्रवर्तक श्रीमान ओरछा-नरेशका कोई दोष नहीं, क्योंकि वे उसके विषयमें प्रारम्भसे ही तटस्थ रहे हैं। असली अपराध तो है हमीं लोगोंका—हिन्दी-लेखकों तथा कवियोंका—जिन्होंने कनवेसिंग कर-करके इस पुरस्कारके गौरवको कम कर दिया है। साथ ही हम लोगोंकी अविश्वासपूर्ण नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इसके लिए कम जिम्मेवार नहीं। यार लोगोंने यह अफवाह भी उड़ा दी है कि यह पुरस्कार दिया ही नहीं जाता, यों ही झूठमूठको ज़ाहिर कर दिया जाता है कि पुरस्कार दिया गया! अभी उस दिन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित कार्यकर्ताके मुँहसे यह प्रश्न सुनकर "क्या पुरस्कार दिया भी जाता है?" हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही। तीनों बार पुरस्कार सैकड़ों आदमियोंकी मौजूदगीमें दिया गया है, और पुरस्कार-विजेता इस बातको प्रमाणपूर्वक कह भी सकते हैं। बात दरअसल यह है कि राजा-महाराजाओंपर साधारण जनताका विश्वास नहीं रहा, और अनेक लोग इस बातकी कल्पना नहीं कर सकते कि कोई राजा-महाराजा आजकलके ज़मानेमें किसी साहित्यिक कार्यके लिए सर्वथा निस्स्वार्थ भावसे कुछ व्यय कर सकता है। इस अविश्वासका मुख्य कारण राजा-महाराजाओंकी कार्य-पद्धति है। इन लोगोंमें अधिकांश खुशामदपसन्द होते हैं, और अपने नामके विज्ञापनके लिए वे भले ही लाखों रुपये ख़र्च कर दें; पर स्वार्थके बिना एक कानी कौड़ी भी नहीं दे सकते।

आम जनता इस बातको नहीं जानती कि इस विषयमें श्रीमान ओरछा-नरेश अन्य राजा-महाराजाओंसे बिलकुल भिन्न हैं। वे विज्ञापन-प्रिय नहीं और अपने विषयमें प्रशंसात्मक लेख लिखवानेसे उन्हें दिली नफरत है। ऐसी परिस्थितिमें देव-पुरस्कारके विषयमें ग़लतफहमी फैलना स्वाभाविक था। हम यहाँ श्रीवीरेन्द्र केशव-साहित्य-परिषदके मन्त्री श्री रमाशंकर शुक्लका पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। उससे सब आशंकाएँ दूर हो जायँगी। अब हिन्दी-साहित्य-प्रेमियोंका कर्तव्य है कि वे पुरस्कार-विषयक संशोधन मन्त्री महोदयको १५ जून तक भेज दें। हम लोगोंके लिए यह बात गौरव-जनक कदापि नहीं कि पहले तो अपनी करतूतोंसे देशके सबसे बड़े साहित्यिक पुरस्कारकी इज्ज़तको मिट्टीमें मिला दें और फिर उल्टे उसके प्रवर्तकको ही अपराधी बतलावें!

श्री रमाशंकर शुक्लका पत्र

प्रायः सभी हिन्दी-प्रेमियोंको विदित है कि ओरछाधीश महाराजा सर वीर सिंह देव बहादुर के० सी० एस० आई० की ओरसे प्रत्येक वर्ष क्रमसे ब्रजभाषा तथा खड़ी बोलीके सर्वोत्तम काव्य-ग्रन्थपर देव-पुरस्कार नामक दो सहस्र मुद्राका परितोषिक दिया जाता है। इस पुरस्कार वितरणकी योजना तथा निर्णय इत्यादिका संचालन टीकमगढ़ (ओरछा राज्य) में स्थापित श्रीवीरेन्द्र केशव-साहित्य-परिषद्की ओरसे होता है। उक्त परिषदके वर्तमान नियमानुसार पत्र-पत्रिकाओंके द्वारा हिन्दी-कवियोंसे ३१ जुलाई तक अपनी-अपनी रचनाओंकी ११ प्रतियाँ भेजनेके लिए निवेदन किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त हुई पुस्तकोंकी एक-एक प्रति ९ निर्णायकोंके पास भेजी जाती है। इनमें से केवल दो निर्णायक राज्यके होते हैं—एक राज्यकी ओरसे और दूसरा वीरेन्द्र केशव-साहित्य-परिषद्की ओरसे। शेष सात निर्णायक बाहरके होते हैं। इन सातमें से पाँच निर्णायक अन्य पाँच हिन्दी-संस्थाओं द्वारा चुने जाते हैं और दो स्थायी निर्णायक प्रारम्भमें ही नियुक्त कर दिये गये हैं। प्रत्येक पुस्तकके लिए १०० पूर्णाङ्क रखे जाते हैं और निर्णायक महोदय पुस्तकोंपर अपनी सम्मति अंक देकर प्रकट करते हैं। यह अंक रजिस्टर्ड मोहरबन्द लिफ़ाफेमें परिषदके प्रधान-मंत्रीके पास दिसम्बरके अन्त तक आ जाते हैं। तत्पश्चात् परिषद्की ओरसे नियुक्त एक पुरस्कार-समितिके समक्ष यह निर्णय-पत्र खोले जाते हैं, और योगमें सबसे अधिक अंक प्राप्त करनेवाली पुस्तकके रचयिताको यह पुरस्कार दिया जाता है। सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए प्रत्येक पुस्तकपर निर्णायकों द्वारा दिये गये अंक पत्र-पत्रिकाओंमें भी प्रकाशित करा दिये जाते हैं।

यह पुरस्कार तीन बार वितरण हो चुका है, और आगामी पुरस्कार सन् १९३८ में खड़ी बोलीकी रचनापर दिया जायगा। इस बीचमें समय-समयपर हिन्दी-प्रेमियोंने पुरस्कारके नियमोंकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है जिसके लिए हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं, तथा जहाँ तक हो सका है, हमने उनकी आलोचनाओंको ध्यानमें रखते हुए नियमोंमें परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन किये है। परन्तु कतिपय महाशयोंकी सम्मतिमें अब भी कुछ परिवर्तनकी आवश्यकता है। बहुधा कुछ सम्मतियाँ हमें देरसे प्राप्त हुईं अथवा बिना पूरी परिस्थिति जाने हुए भेज दी गईं। इसलिए हम उनपर ध्यान देनेसे विवश रहे। प्रस्तुत लेख द्वारा मेरा हिन्दी - प्रेमियों, विद्वानों, साहित्य-सेवियों और पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादकोंसे निवेदन है कि वे देव-पुरस्कारके नियमोंके विषयमें अपनी बहुमूल्य सम्मति अधिक-से-अधिक १५ जून १९३७ तक प्रधान-मंत्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद् टीकमगढ़के पास भेजनेकी कृपा करें। हमें आशा है कि मातृ-भाषा-सेवी देव-पुरस्कारके नियमोंकी रही-सही त्रुटियोंको, यदि वे वास्तवमें हैं तो, शीघ्र ही दूर करनेमें हमें सहायता देंगे।

यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि पुरस्कारदाताके इच्छानुसार पुरस्कारके खंड न हो सकेंगे तथा ब्रजभाषा और खड़ी बोलीको क्रमशः सम्मान दिया जायगा। आशा है कि सम्मतिदाता महोदय इन दो बातोंको ध्यानमें रखनेकी कृपा करेंगे।

—

भूल-सुधार

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखते हैं :—

"अप्रैल १९३७ के 'विशाल भारत'में 'याद' शीर्षकसे मेरी जो कहानी छपी है, उसमें दो जगह, मेरी असावधानतासे, 'बयालीस वर्ष' की बजाय 'सैंतालीस वर्ष' छप गया है और इससे कथानक कुछ उलझ सा जाता है। प्रूफ-रीडिंगकी अशुद्धियाँ, जो बहुत कम नहीं है, क्षम्य गिनी ही जानी चाहिए। इस कहानीके सम्बन्धमें अनेक पाठकोंने मेरे पास बधाईके जो पत्र भेजनेकी कृपा की है, उनके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।"

(२) इसी अंकमें प्रकाशित 'बाज़ी' शीर्षक कहानीके लेखक श्रीयुत कमलाकान्त वर्मा हैं। ग़लतीसे वर्माकी जगह शर्मा छप गया है।

—

कवियोंसे प्रार्थना

जो महानुभाव 'विशाल भारत' में कविता भेजनेकी कृपा करें, उनकी सेवामें हमारा यह निवेदन है कि वे अपनी रचनाओंकी नक़ल अपने पास अवश्य रख लें। ऐसा करनेसे उनकी फिक्र कम होगी और हमारा आफिस व्यर्थ पोस्टेज-व्ययसे बच जायगा।

—

'विशाल भारत' के ग्राहकोंसे

इस समय 'विशाल भारत' अंगरेज़ी महीनेके तीसरे सप्ताहमें प्रकाशित हो रहा है, इस त्रुटिके लिए क्षमा माँगते हुए ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे २५-२६ तारीख तक इन्तजार करनेके बाद अंक न पानेकी शिकायत लिखा करें। आशा है, ग्राहकगण इस विषयमें ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

विनीत—व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण शान्ति

'विशाल भारत'] [श्री वासुदेव राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १९, अंक ६] असाढ़ १९९४ :: जून १९३७ [पूर्ण-अंक ११४.

कानन

श्री ठाकुर गोपालशरण सिंह

विश्व-प्रेम के श्रोत प्रधान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

आदिकालसे ही अनादिका
ध्यान सदा धरनेवाले ;
निखिल-ज्ञान-भाण्डार विश्वका
तुम्हीं रहे भरनेवाले ;
ऋषि-मुनियों के जन्मस्थान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

अगणित पत्र-पात्र तरुओं के
तुहिन-बिन्दुओं से भर-भर ;
दिनमणि की पूजा करते हो
अर्घ्य-दान तुम दे-देकर ;
करते हो नित सदनुष्ठान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

करते हो तुम स्नान नित्य ही
पावन नभ-गंगा-जल से ;
किस मुनिसे बरदान मिला है
यह तुमको निज तप-बलसे ?
विश्व-विभव के हो उत्थान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

हो सबसे स्मरणीय पुरातन
तुम जगती के शिक्षालय ;
मुनियोंके उपदेश खिले हैं
बनकर कुसुम और किसलय ;
भरा हुआ है तुममें ज्ञान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

निरपराधिनी सीता का जब
किया रामने निर्वासन ;
तब तुमने ही जीवित रक्खा
उसको दे-दे आश्वासन ;
हो महान तुम करुणावान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

श्रमित-भ्रमित-तापित मनुष्य जब
शरण तुम्हारी आते हैं ;
शान्ति तुम्हारी ही छायामें
अनायास वे पाते हैं ;
जग-सेवा के हो व्याख्यान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला की प्रेम-कथा से
रहकर सभी समय गुंजित ;
तापस मुनियोंके भी मनको
करते हो तुम दया-द्रवित ;
भ्रान्त लोकमें शान्त महान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

दीन - मलीन विश्वकी छाया
कभी न तुमको छूती है ;
राजहंसिनी सदा तुम्हारे
प्रेम - लोक की दूती है ;
हो तुम जग-जीवन अम्लान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

जब प्रेमी पद-चिह्न किसीके
खोज-खोज थक जाता है ;
तब विश्राम तुम्हारी ही मृदु
गोदी में वह पाता है ;
हो सुख-शान्ति-सदन छविमान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

पशुओंके विश्राम-सदन हो,
वन-विहगों के क्रीड़ा-स्थल ;
शोभागार सरस सुमनों के
हो चंचल पर अटल अचल ;
शैलों के सुन्दर परिधान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

जगका सुन्दर प्रथम हास है
छिपा तुम्हारी लाली में ;
वेद-ऋचायें झूल रही हैं
तरु की डाली - डाली में ;
महर्षियों की हो सन्तान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

कितनी ही अनुपम समृद्धियाँ
यह जग तुमसे पाता है ;
सदा तुम्हारे ही शरीर से
सौरभ उड़-उड़ जाता है ;
बनता है विमान पवमान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

वर वसन्तकी सब विभूतियाँ
छिपी तुम्हारे हैं तनमें ;
जगतीका इतिहास छिपा है
कोमल कलियों के मन में ;
क्यों न मिले तुमको सम्मान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

बड़े हुए श्रीकृष्ण लोटकर
वृन्दावन की ही रज में ;
उनकी सभी प्रेम - लीलाएँ
देखी थीं तुमने ब्रज में ;
राधा के सुख-स्वप्न अजान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

कहीं मोरिनी नाच रही हैं,
कहीं भ्रमरियाँ गाती हैं ;
कहीं कोकिला कूक रही हैं,
कल कलियाँ मुसकाती हैं ;
बल्लरियों का तना वितान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

कहीं तितलियाँ खेल रही हैं,
मृगियाँ कहीं विचरती हैं ;
कहीं मानिनी वन्य विहगियाँ
मान विहग से करती हैं ;
पावन प्रेम - सुधा - रस - खान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं अप्सराएँ क्रीड़ा - रत
फूली नहीं समाती हैं ;
कहीं सोम-रस पी किन्नरियाँ
झूम - झूमकर गाती हैं ;
सुन्दर स्वर्ग - सदन - उपमान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

कहीं शिलाओंका आलिंगन
कर - कर झरने झरते हैं ;
खिले प्रसून कहीं किरणों से
आँखमिचौनी करते हैं ;
हो तुम जगत-प्रेम-आख्यान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

पुष्प पराग चढ़ाते तुमको,
लता हृदय अर्पण करतीं ;
मधुऋतु लेकर तुम्हें गोदमें
तृण-तृणमें है छवि भरतीं ;
विधिका अनुपम रुचिर विधान ;
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

तुम सदैव आलोक व्योमका
सिरपर धारण करते हो ;
पर तुम छायालोक हृदय में
सदा छिपाये रहते हो ;
दोनों प्रिय हैं तुम्हें समान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

वसुधा की गोदी में लेटे
शिशु-समान तुम हो सुन्दर ;
तुम्हें कौमुदी सुधा पिलाती
निज उरमें ही भर-भरकर ;
हो तुम अपनी ही मुसकान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

कितने ही लोगोंको तुमने
ज्ञान तथा वरदान दिया ;
प्रेमी जनको ध्यान दिया वर
मुनियों को सम्मान दिया ;
दी वीरों को तीर-कमान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

वनिताओं को वसन-विभूषण
तुमने प्रथम प्रदान किया ;
पुष्पायुध को सुमन-शरासन
जगको रसमय गान दिया ;
दी ब्रजको मुरलीकी तान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

सिंचकर शकुन्तला, दमयन्ती,
ब्रज-वनिता के दृग-जल से ;
बड़े हुए इतने तुम जग में
तपस्वियों के तप-बल से ;
जनक-नन्दिनी के दुख-गान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

अपनी-अपनी ओर तुम्हें सब
ऋतुएँ खींचा करती हैं ;
जलद-घटाएँ तुम्हें प्रेम के
जल से सींचा करती हैं ;
सबको प्रिय हो प्राण-समान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापूका ग्रामीण जीवन

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

सभी लोग मानते और कहते हैं कि भारतवर्षका केन्द्र ग्राम हैं, और बिना गाँवोंकी उन्नति किये हिन्दुस्तान कभी एक जाग्रत राष्ट्र नहीं बन सकता। किन्तु इस सत्यकी गहराईको अच्छी तरह समझनेवाले और ग्रामोंके उत्थानके लिए कुछ ठोस कार्य करनेवाले लोग इनेगिने ही हैं। जब महात्मा गांधीने वर्धाके सेगाँव नामक ग्राममें रहनेकी बात छेड़ी, तो हमारे क़रीब-क़रीब सभी नेता, जो दिन-रात देश-सेवामें लगे रहते हैं, बापूजीके विरुद्ध थे। उनका ख़याल था कि गाँवोंकी कठिनाइयों और कष्टोंसे महात्माजीकी शक्तिका ह्रास होगा और उनके रचनात्मक कार्यको धक्का लगेगा; किन्तु बापूजी सुनते तो सबकी हैं, करते हैं अपने मनकी। वे मीरा बेनके साथ सेगाँवको चल दिये और वहाँ एक झोंपड़ीमें रहने लगे। हिन्दुस्तानके पीड़ित गाँवोंकी हृदय-द्रावक पुकारको बापूजी बहुत वर्षोंसे सुन रहे थे, अन्तमें उस पुकारने उनको खींच ही लिया।

× × ×

पहले तो गाँवसे कुछ दूर उनके लिए केवल एक झोंपड़ी बनाई गई। झोंपड़ीमें केवल एक ही बड़ा कमरा था, और उसके चारों ओर दालान था। बड़े कमरेके एक कोनेमें बापूजी बैठा करते थे, दूसरे कोनेमें कस्तूर बा और तीसरे कोनेमें एक अन्य कार्यकर्ता। बादमें खां साहब अब्दुलगफ्फार खांके आनेपर चौथा कोना उनको मिल गया। यदि कोई मेहमान आ जाता, तो झोंपड़ी पूरी धर्मशाला ही हो जाती थी। अब तो कस्तूर बा और मीरा बेनके लिए अलग झोंपड़ियाँ बन गई हैं, और अतिथियोंके लिए भी एक गृह सेठ जमनालालजीकी ओरसे बन गया है।

कुछ महीने पहले बापूजीको मलेरिया ज्वर आ यग ा था। स्वास्थ्य चिन्ताजनक हो जानेके कारण उनको वर्धाके सिविल अस्पतालमें ले जाया गया। लोगोंने फिर बापूजीसे सेगाँवको छोड़ देनेका अनुरोध किया; किन्तु इसका असर उल्टा ही हुआ। बीमारीके बाद उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि सख़्त बीमारीकी हालतमें भी गाँवको न छोड़ूँगा। अब उनका स्वास्थ्य ठीक है, और उनके कथनानुसार उनकी अच्छी तन्दुरुस्तीका कारण यह है कि जहाँ उनका मन बहुत वर्षोंसे रहता था, वहीं अब उनका शरीर भी पहुँच गया है।

× × ×

बापूजीके आज्ञानुसार मैं हर रविवारको सेगाँव जानेका प्रयत्न करता हूँ। वहाँ दिन-भर रहनेके कारण उनके दैनिक जीवनको नज़दीकसे देखनेका मौक़ा मुझे मिलता है। अधिकतर तो दूरके ही ढोल सुहावने होते हैं; किन्तु बापूजीके जितने ही नज़दीक रहनेका अवसर मिले, उनके प्रति उतना ही प्रेम और श्रद्धा बढ़ती जाती है। उनके सम्पर्कमें आनेके पहले मेरा ख़याल था कि महात्माजी हमेशा बहुत ही गम्भीर रहते होंगे; मुझ-जैसे व्यक्तिसे बात करना भी पसन्द न करेंगे; किन्तु उनके समीप आनेपर तो उनकी प्रफुल्लता, मनोरंजन, मानवता और सहानुभूतिने मेरा हृदय खींच लिया। अब तो मैं उन्हें 'महात्मा' के रूपमें न देखकर 'बापू'के रूपमें ही देखता हूँ, और इसीमें मुझे उनका अधिक गौरव दीख पड़ता है। मुझे तो बापूजीकी गहरी और सच्ची मानवताने ही आकर्षित किया है; और जिसमें मानवता नहीं, उसे तो मैं 'महात्मा' कहनेके लिए तैयार भी नहीं।

× × ×

बापूजीकी ग्राम-सुधार-सम्बन्धी विचार-धाराका ज़िक्र करनेके पहले उनके दैनिक जीवनका हाल बतला देना ठीक होगा। सुबह चार बजे उठकर प्रार्थना करना तो उनका हमेशाका नियम रहा ही है। सुबह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शाम टहलना भी क़रीब-क़रीब वैसा ही अटूट नियम है। अब तो टहलनेके लिए उनको ख़ूब खुला और विस्तृत स्थान है। वे ज्यादातर श्री बिनोबाजीके भाई बालकोबाजीकी झोंपड़ी तक, जो क़रीब डेढ़ मील दूर है, रोज़ सुबह और शाम जाते हैं। साथमें हमेशा कुछ लोग रहा करते हैं, जिनसे बापूजी विभिन्न विषयोंपर बातें करते जाते हैं। प्रत्येक रविवारको अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघके विद्यालयके कार्यकर्ता सुबह सेगाँव जाते हैं, और क़रीब घंटे-भर बापूजीका प्रवचन होता है। भिन्न-भिन्न कठिनाइयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंका वे उत्तर देते हैं।

सुबहका नाश्ता बहुत सादा, किन्तु स्वास्थ्यकर होता है। पहले ताड़ों और खजूरोंको काट डाला जाता था, अब बापूजी उनके रसका गुड़ बनवाते हैं। इसी गुड़के साथ मोटे आटेका दलिया, छुहारे और गायका दूध—यही नाश्तेकी सामग्री होती है। नाश्तेके बाद बापूजी अपने पत्र-व्यवहारमें लग जाते हैं। कुछ दिनों तक पंजाबकी राजकुमारी अमृत कौर भी सेगाँवमें रही थीं। वे बापूजीके पत्र-व्यवहारमें सहायता देती थीं। वैसे तो श्रीयुत प्यारेलाल हमेशा साथ रहते ही हैं। श्री महादेव देसाई तो अभी मगनवाडीमें ही रहा करते हैं और कभी-कभी सेगाँव हो आते हैं। यदि कोई अतिथि आ जाता है, तो बापूजी सुबह उससे बातें कर लेते हैं। कभी-कभी गाँवके कुछ लोग आ जाते हैं, उनके झगड़ों, दुःखों और बीमारियोंकी ओर भी वे ध्यान देते हैं। वैद्य तो अच्छे खासे बन गये हैं। छोटा-सा दवाखाना भी बना रखा है। बापूजी क्या नहीं हैं? कौन-सी विद्या ऐसी है, जिसके सम्बन्धमें उन्होंने प्रयोग नहीं किये हैं? हाल ही में साँपोंके ऊपर भी तो प्रयोग कर ही डाला!

स्नान करके ग्यारह बजे भोजनकी व्यवस्था होती है। आश्रमकी तरह भोजनमें दो-एक उबले हुए शाक, कुछ फल (शंतरा, टमाटर इत्यादि), रोटी, दूध या दही, मक्खन, गुड़ इत्यादि रहते हैं। रोटीपर कई प्रयोग किये गये हैं। भाप द्वारा डबल रोटी भी तैयार की जाती है, जो खानेमें स्वादिष्ट और आसानीसे पचनेवाली होती है। सब लोगोंको बापूजी स्वयं

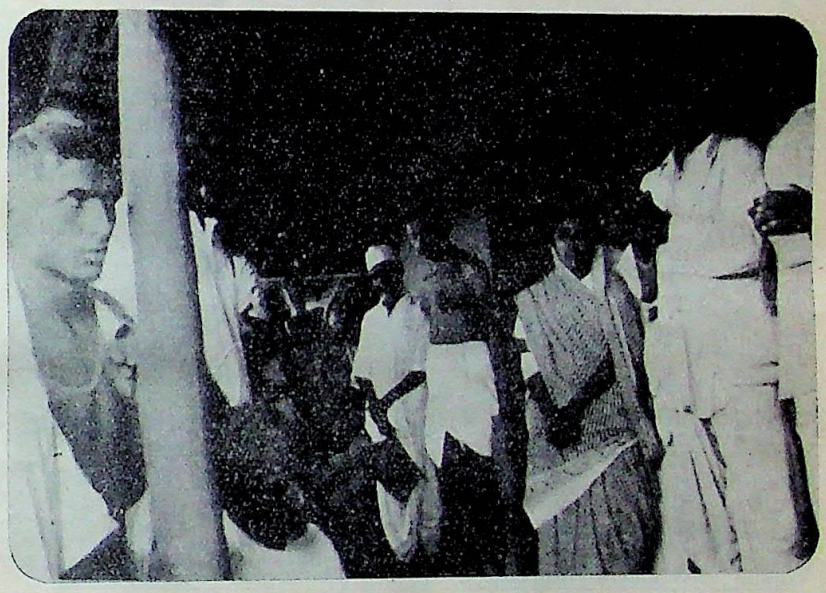

सेगाँवमें एक उत्सवके समय महात्माजी बीचमें खड़े हैं

भोजन परोसते हैं। वे खुद लहसुनको बहुत पसन्द करते हैं, और यदि दूसरे लोग चाहते हैं, तो उनको भी देते हैं। मैंने एक बार उनसे पूछा—"लहसुनका गुण तो तामसिक बतलाया जाता है!"

उन्होंने उत्तर दिया—"यह बात तो वैष्णव सम्प्रदायकी चलाई हुई है। आयुर्वेदमें तो लहसुनकी बहुत महिमा बतलाई गई है। हाँ, अगर उसका अधिक उपयोग किया जाय, तो तामसिक हो ही जायगा।"

खानेके साथ पानी नहीं दिया जाता। सब लोग अपने-अपने बर्तन साफ कर लेते हैं। बापूजी तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेलकी तरहके लोहेके बड़े कटोरेमें ही भोजन करते हैं।

भोजनके कुछ देर बाद बापूजी क़रीब एक घंटा सोते हैं। उनका अनुभव है कि दिनमें कुछ देर विश्राम करनेसे मनुष्य अधिक काम कर सकता है। तीसरे पहर फिर पत्र-व्यवहार होने लगता है। बापूजी हाथके बने काग़ज़का ही उपयोग करते हैं। साधारण कामके लिए आये हुए पत्रोंके पीछेके कोरे काग़ज़का भी उपयोग कर लेते हैं। उनकी मितव्ययिताको देखकर आँखें खुल जाती हैं।

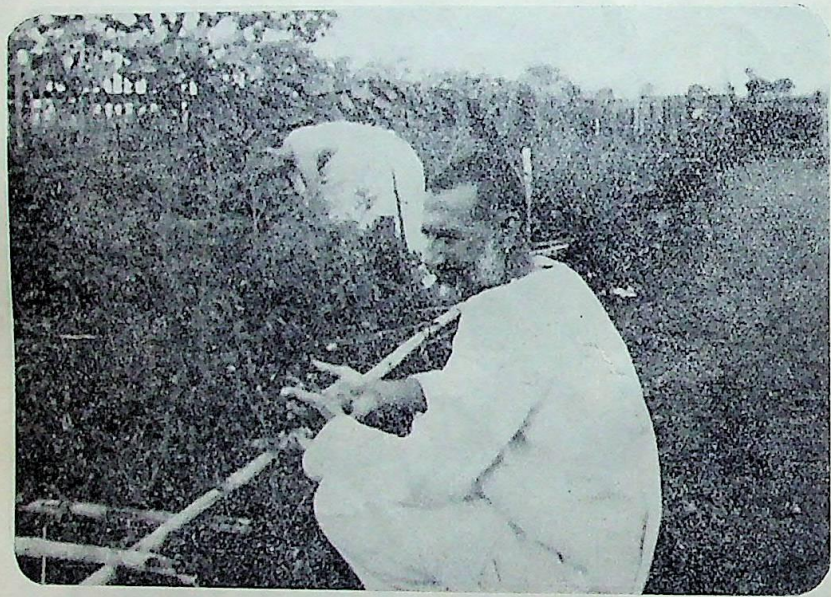

खान अब्दुलगफ्फार खाँ और मीरा बेन बागमें काम कर रहे हैं

आजकल सेगाँवमें बाहरसे इतने लोग मिलने आते हैं कि अकसर बापूजीका सारा समय उनसे बातें करने ही में चला जाता है। बापूजी नम्र तो इतने हैं कि प्रत्येक व्यक्तिसे स्वयं मिलते हैं और उसके सुख-दुखकी बातें सुनते हैं। बड़े पुरुषोंकी तरह वे अपने प्राइवेट सेक्रेटरीको बीचमें नहीं रखते। जनतासे सीधा सम्पर्क रखना उनका हमेशा स्वभाव रहा है। अकसर मिशनरी भाई उनका इतना समय व्यर्थकी चर्चामें ले लेते हैं कि मुझे बड़ा दुःख होता है। पाँच मिनट माँगकर एक-एक घंटे तक बातें करते रहते हैं। बेचारे बापूजी नम्रतावश उनको बीचमें बात समाप्त करनेके लिए कभी नहीं कहते। महादेव भाई यदि इस ओर खुद ध्यान दें, तो अच्छा हो।

शामको पाँच बजे भोजनकी घंटी बजती है। ज्यादातर कस्तूर बा ही सुबह और शाम भोजन बनाती हैं। इस उम्रमें दिन-भर काम करते रहना प्रत्येक स्त्रीका साहस नहीं हो सकता। भोजनके बाद बापूजी टहलने जाते हैं और वापस आकर प्रार्थना होती है। प्रार्थनाके बाद बापूजी जल्दी ही सो जाते हैं। वे हमेशा बाहर आसमानके नीचे ही सोना पसन्द करते हैं, यह तो सबको मालूम ही है।

× × ×

बापूजीके दैनिक जीवनकी कहानी तो मैंने कह दी। अब उनकी ग्राम-सम्बन्धी विचार-धाराकी झलक देना आवश्यक है। एक दिन मैंने पूछा—"आप भविष्यमें हिन्दुस्तानकी किस प्रकारकी सभ्यता चाहते हैं?"

"ग्रामोंकी सभ्यता।"—बापूजीने उत्तर दिया।

"ग्राम-सभ्यतासे आपका क्या अर्थ है?"—मैंने पूछा।

"मैं चाहता हूँ कि लोग ग्रामवासियोंकी तरह सरल जीवन व्यतीत करें। उनकी इच्छाएँ बहुत कम हों। वे भूमिपर परिश्रम करके अपने खानेके लिए अन्न, फल और शाक उत्पन्न करें, पहननेके लिए स्वयं सूत कात लें और वस्त्र बुन लें। लोगोंके जीवनमें कृत्रिमता न हो। उनके सब कार्य कला और संगीतमय हों, सब लोग सत्य और अहिंसाके पुजारी हों।"

मैंने कहा—"यदि स्वराज्य मिल गया, तो फ़ौज और पुलिस तो रखनी होगी, नहीं तो दूसरे ही दिन कोई अन्य राष्ट्र हमारे देशपर कब्ज़ा कर लेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कोई भी राष्ट्र हमारे देशपर राज्य करके करेगा ही क्या ? राज्य तो आर्थिक लाभके लिए किया जाता है। यदि हमारा जीवन बिलकुल सरल और अहिंसामय हो जाय, तो हमारी क्या चीज़ छीनी जा सकेगी ? कोई ज़मीन उठाकर थोड़े ही ले जायगा ! अगर किसी अन्य राष्ट्रके लोग हमारे पास गाँवोंमें आयेंगे, तो हम कहेंगे- 'अच्छा भाई, तुम भी हमारे साथ रहो। काफ़ी ज़मीन पड़ी है। तुम भी हमारे साथ परिश्रम करो और खुशीसे जीवन व्यतीत करो। न हमको तुमसे कुछ ख़रीदना है और न हमारे पास तुम्हारे लायक कुछ चीज़ देनेको है !' ऐसे लोगोंपर राज्य करनेसे किसीको क्या लाभ होगा ?" बापूजीने मुसकराकर कहा—"आज अगर भारतवर्षके लोग मेरे आदर्शके अनुसार ग्राम-जीवन व्यतीत करने लगें, तो कल ही हमको बिना लड़ाई-झगड़ा किये स्थायी स्वराज्य मिल सकता है। लेकिन लोग सुन लेते हैं, मेरे आदेशको अमलमें नहीं लाते, इसका मैं किसको दोष दूँ ?"

"क्या भारतवर्षमें इस प्रकारकी सभ्यता हो सकेगी ?"—मैंने पूछा।

"क्यों नहीं ? हमारी पुरानी सभ्यता तो इसी प्रकारकी थी और फिर हो सकती है। अगर हमने पश्चिमकी सभ्यताका अनुकरण किया, तो हमारा भी वही हाल होगा, जो आज यूरोपका है !"

"क्या आपके आदर्श ग्राम-जीवनमें मेशीनोंके लिए बिलकुल स्थान न रहेगा ?"

"मैं मेशीनोंके ख़िलाफ़ नहीं हूँ, अगर वे मनुष्यको पराजितकर उसकी मालिक न बन बैठें और उसके जीवनको कलाहीन और भद्दा न बनावें।"

यथार्थमें संसारकी समस्या न तो पूँजीवादसे हल होनेवाली है और न रूसी ढंगके साम्यवाद, या इटलीके फासिस्टवादसे। सरल, अहिंसापूर्ण ग्राम-जीवनके द्वारा हमारी सब जटिल आर्थिक एवं नैतिक समस्याएँ आसानीसे सुलझ सकती हैं। क्या भारतवर्ष इस सभ्यताको पुनः अपनाकर दूसरे राष्ट्रोंको राह दिखलायेगा ?

× × ×

हम लोग समझते हैं कि बापूजी राजनीतिसे दूर भाग गये हैं; किन्तु बापूजी ऐसा नहीं सोचते। एक दिन किसी भाईने यही प्रश्न कर दिया—"क्या आपकी रायमें हम लोगोंको भी राजनीतिमें भाग न लेना चाहिए ?"

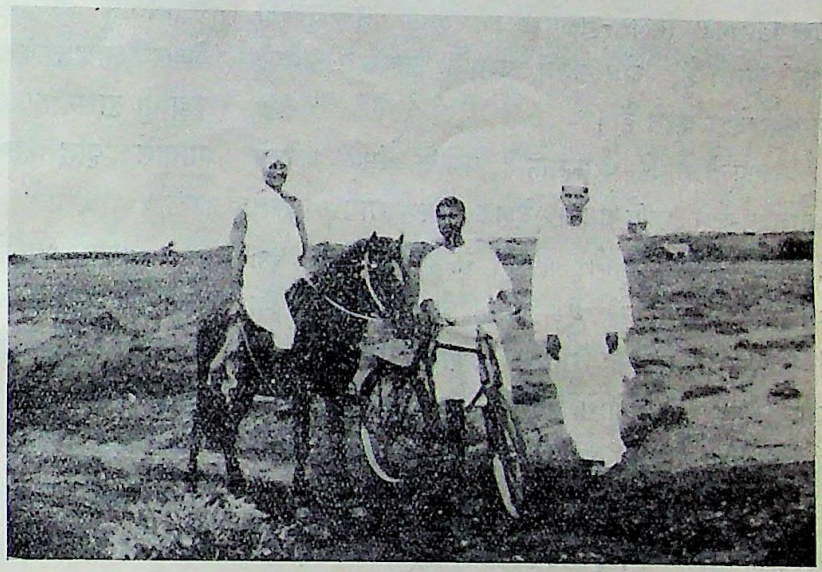

मीरा बेन घोड़ेपर सवार जा रही हैं

बापूजी मुसकराकर बोले—"हाँ, शोरगुलवाली राजनीतिमें अभी भाग लेनेकी ज़रूरत नहीं है। हमको तो गाँवोंमें बैठकर ठोस कार्य करना है। इस ग्रामोद्धार कार्यको मैं 'रचनात्मक राजनीति' मानता हूँ।"

सेगाँवमें बापूजी गाँवोंवालोंकी आर्थिक स्थिति सुधारनेका दिन-रात प्रयत्न करते रहते हैं। ग़रीब किसानके पास कुछ अधिक पैसे कैसे आवें, इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातकी चिन्ता उनको लगी रहती है। खजूरसे गुड़ बनानेका उद्योग सेगाँवमें शुरू हुआ है। मीरा बेन गाँवके कुछ लोगोंसे सूत कतवाती हैं और उनको यथोचित मज़दूरी देती हैं। गाँवकी सड़कें भी सुधारनेका प्रयत्न किया जा रहा है। लोगोंके लिए बापूजी एक छोटा-सा पुस्तकालय भी चला रहे हैं। गाँवके लोगोंके स्वास्थ्यकी ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। उनकी बुरी आदतें छुड़ानेकी भी कोशिश हो रही है। बापूजीके आश्रमके कुछ लोग गाँवमें जाकर लोगोंसे दिल खोलकर मिलते-जुलते हैं। उनके सुख-दुखका हाल सुनते हैं, और उनमें जाग्रति उत्पन्न करनेकी भरसक चेष्टा करते हैं।

बापूजी गायके परम भक्त हैं, क्योंकि भैंसकी अपेक्षा भारतवर्ष-जैसे कृषि-प्रधान देशके लिए गाय अत्यन्त हितकर है। उन्होंने अपनी झोंपड़ीके पास एक गोशाला क़ायम की है, और वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तानके प्रत्येक गाँवमें गोशाला स्थापित की जाय, ताकि किसानोंको पीनेके लिए दूध मिले और खेतीके लिए अच्छे बैल मिलें। अपने व्रतके कारण बापूजी स्वयं तो बकरीका दूध पीते हैं; किन्तु वे और लोगोंसे भैंसके बजाय गायका ही दूध, दही इत्यादि उपयोग करनेका ही अनुरोध करते हैं।

× × ×

"बापूजी, आप हर रविवारको मुझे सुबह और शाम खाना तो खिला देते हैं; लेकिन कुछ काम भी तो बतलाइये ?"—एक दिन मैंने कहा।

"अच्छा, जो मैं काम बतलाऊँ, वह करोगे ?"—बापूजीने हँसकर पूछा—"मेरे पास यहाँ कोई लिखने-पढ़नेका काम तो है नहीं !"

"लिखने-पढ़नेका काम तो मैं भी नहीं चाहता। हफ्तेमें एक दिन तो मज़दूरी ही करना पसन्द करूँगा।"

"तब ठीक है। जो काम मैं कुछ समयके लिए रोज़ करनेका प्रयत्न करता हूँ, वही तुम करो। खादके लिए मिट्टी खोदनी है और उसे बारीक छानना है। ठीक है न ?"

"जी हाँ।"—मैंने हँसकर कहा।

बापूजी हाथके कामको केवल आर्थिक दृष्टिसे ही उपयुक्त नहीं मानते। उनकी धारणा है कि हमारी आधुनिक शिक्षा-पद्धतिमें औद्योगिक शिक्षा न होनेके कारण मानसिक और शारीरिक दोनों शक्तियोंका ह्रास होता है। शारीरिक और मानसिक विकास साथ-साथ होना चाहिए, और यह दस्तकारी और उद्योग द्वारा बड़ी सफलतासे हो सकता है। इसीलिए बापूजी गाँवोंमें केवल साक्षरताका प्रचार करनेके विरुद्ध हैं। वे उद्योगों द्वारा ही गाँववालोंकी शारीरिक, आर्थिक और मानसिक वृद्धि करना चाहते हैं।

× × ×

अन्तमें एक खेदजनक बात भी सुना दूँ। बापूजीके सेगाँवमें बसनेपर भी वहाँके लोग उनकी बातोंपर अधिक ध्यान नहीं दे रहे हैं। कुछ दिन तक तो लोग दर्शन करने चले आते थे; लेकिन जबसे बापूजीने हरिजन प्रश्न छेड़ा, लोगोंका आना बहुत कम हो गया है। ग्राम-सुधार-सम्बन्धी अन्य बातोंको भी वे सुननेको तैयार नहीं हैं और बापूजीके कामको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। इससे अधिक हमारे देशके लिए और कौन-सी शर्मकी बात होगी ? बापूजी स्वयं तो ज़रा भी निराश नहीं होते और कहते हैं—"यह सब हमारे पापोंका ही फल है। हमने सदियोंसे गाँवोंकी कुछ परवा नहीं की, और अब यदि गाँववाले हमारी बात न सुनें, तो कौन-सी दुःखकी बात है ? यह तो स्वाभाविक ही है।"

लेकिन हमारे देशका कितना दुर्भाग्य है कि महात्माजी-जैसे महापुरुषको भी आज सेगाँव-जैसे स्थानमें लोग सुननेको तैयार नहीं है। दर्शन कर लेना तो सब जानते हैं; लेकिन कुछ रचनात्मक काम करनेके समय बिरले ही आगे आते हैं। क्या इसी प्रकार हमारे भारतवर्षका कल्याण होनेवाला है ?

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरग़े

श्री धर्मवीर, एम० ए०

शम्भुनाथ, दीनदयाल और मैं, हम तीनों चाय पी रहे थे कि पता नहीं मुर्ग़ियोंकी बातें कैसे छिड़ गईं। हाँ, याद आ गई। मैंने अपने छोटे भाई सरूपके बारेमें उनसे सलाह माँगी थी। पूछा था कि एन्ट्रेन्स पास करनेके बाद अब वह क्या करे। आगे पढ़ानेकी हिम्मत नहीं है। और फिर चार साल पढ़ानेके बाद हमारे सामने फिर यही सवाल आकर खड़ा हो जायगा कि वह क्या करे। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी ही इस सवालका कोई जवाब क्यों न ढूँढ़ा जाय। इसपर हमारे लम्बे-पतले बुज़र्ग दीनदयालने, जिन्हें हम बचपनमें 'पड़साँग' कहा करते थे, फ़रमाया—"भई, इसे 'पोलटरी' (मुर्ग़ियाँ पालना) सिखला दो। इस काममें आजकल आदमी काफ़ी पैसे बना लेता है।"

मैंने अपनी प्यालीको तिपाईपर रख दिया और कम्बलको ज़रा सम्हालते हुए कहा—"हूँ, अब तुम चूहड़ोंके काम तजवीज़ करोगे; और फिर सरूपके लिए! उसके तो जनाब, मिज़ाज ही आस्मानपर चढ़े हुए हैं। वह तो ख़याल करता है कि बस मैं ही दुनियामें ऐसा शख़्स हूँ, जिसने एन्ट्रेन्स पास किया है। कह रहा था, मुझे सूट सिलवा दीजिए, तब मैं कालेजमें दाख़िल होनेके लिए जाऊँगा। मैंने कहा, यहाँ सूट-वूट कुछ नहीं है। न मेरे पास तुम्हारे सूटोंके लिए पैसे हैं, न तुम्हें कालेजमें दाख़िल करवानेके लिए। बाबा, ख़ुद कमाओ और खाओ।"

अब तो दीनदयालको शायद चोट करनेकी सूझी। बोले—"हाँ साहब, ऐसी हालतमें तो आप उसे पोलटरी मत सिखलाइये। कालेजमें दाख़िल करवा दीजिए। कुछ दिनके बाद एम० ए० कर लेगा, तब मुक़ाबलेके किसी इम्तहानमें बैठ जाये। लायक़ है, निकल जायगा और....,,

"और आई० सी० एस० में चला जायगा,"—मैंने दीनदयालकी बातको काटते हुए कहा—"क्योंकि लाट साहबकी सिफ़ारिश तो उसीके हाथमें होगी।"

"अरे भई, तभी तो मैंने तजवीज़ किया था कि उसे पोलटरीका काम सिखला दो।"

"पोलटरीका काम ही सिखला दूँ; लेकिन रोटी कहाँसे खायगा? अंडे तो हमारे यहाँ कोई खाता नहीं। फिर यह सरूप क्या मुर्ग़ियोंसे पेट भरेगा या अंडोंसे?"

"न अंडोंसे, न मुर्ग़ियोंसे, बल्कि रोटीसे। भई, तुम एक बात नहीं जानते...."

"क्या?"—मैंने अधीरतामें बात काटी।

"यह कि आजकल हरएक शहरमें, छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़ेमें, बेकरियाँ खुल रही हैं। पेस्टरीका रिवाज बहुत बढ़ रहा है। पढ़े-लिखे लोग अब देशी मिठाईकी जगह पेस्टरी खाना ज़्यादा पसन्द करते हैं। लेकिन मैंने सुना है कि उनको अच्छी चीज़ बहुत कम मिलती है। सरूप अगर कुछ महीने किसी बेकरीमें जाकर काम सीख ले, तो फिर किसी दूसरे शहरमें ख़ुद अपनी बेकरी खोल सकता है। साथ ही पोलटरी रखे। सर्दियोंमें अपने ही शहरमें अंडे बेच दे, गरमियोंमें कुछ पेस्टरी बनानेके काम लाये और कुछ बाहर भेज दे।"

"लेकिन इतना टंटा कौन करे?"

दीनदयालने कुरसीके साथ सिर अटकाते हुए कहा—"अच्छा, तो आप उसे घर-बैठे ही हलवा खिलाना चाहते हैं! भई, हलवेके वे दिन गये। अब तो हाथसे मेहनत करनी पड़ेगी। दिन-भर आदमी काफ़ी मेहनत करे, तब कहीं रातको रोटी नसीब हो।"

"मेहनतकी बात तो सच है; लेकिन मेहनतका फ़ायदा तब है न, जब उससे कुछ हाथ-पल्ले भी आये। मैंने तो देखा है कि पोलटरीसे किसीको फ़ायदा नहीं हुआ करता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनदयालने ज़रा चिढ़कर पूछा—"पोलटरीसे किसीको फ़ायदा नहीं हुआ करता ! आप यह किस तरह कह रहे हैं कि पोलटरीसे किसीको फ़ायदा नहीं हुआ करता ? क्या जनाबने किसीको मुर्ग़ियाँ रखते देखा भी है या यों ही....."

"नहीं भाई, यों ही नहीं कह रहा हूँ। वह देखो, इधर मेरी चारपाईकी तरफ़ आओ। वह सामने दरवाज़ा है। वहाँपर एक सज्जन साहबज़ादा बलबीर सिंह रहते हैं। इस मकानके पिछवाड़े उन्होंने मुरग़े-मुर्ग़ियोंके लिए दरबे बना रखे हैं। मुर्ग़ियाँ क़रीब डेढ़ दर्जन होंगी, मुरग़े तीन-चार ही हैं। ये जनाब हर रोज़ रातको बादाम फोड़ते हैं और पचीस गिरियाँ निकालकर भिगो देते हैं। सुबह मुँह-अँधेरे उठकर उन्हें छीलनेके बाद रगड़ते हैं और फिर गूँधे हुए आँटेमें मिलाकर दिन निकलनेपर मुर्ग़ोंको खिलाते हैं। बादामोंकी गिरियाँ खिलाते तो मैंने इनको अपनी आँखोंसे देखा है ; लेकिन सुनता हूँ कि आप मक्खन और अंडे भी खिलाया करते हैं। मगर मुर्ग़ियाँ आख़िर अंडे ही तो देंगी ; कहीं मक्खन और बादाम तो उगलेंगी नहीं। दूसरे-चौथे वे पाँच-सात अंडे देती हैं, जिनमें से तीन-चार गली-मुहल्लेके बच्चे उठा ले जाते हैं और हज़रत फिर दिल-ही-दिलमें कुढ़ा करते हैं। क्या इसीको जनाब पोलटरी कहते हैं ?"

अब दीनदयालकी बारी थी। उनकी हँसी जब बन्द हुई तो बोले—"भाई साहब, कोई शख़्स अगर मुर्ग़े-मुर्ग़ियोंको बजाय आटे-दानेके बादाम खिलाने लगे, यही नहीं, बल्कि अस्सी रुपये तोलेका मकरध्वज खिलाने लगे, तो इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि मुर्ग़ियाँ सोनेके अंडे देने लगेंगी। मुर्ग़ियाँ तो वैसे ही अंडे देंगी, जैसे वे आजसे पाँच लाख बरस पहलेसे देती चली आ रही हैं। बाक़ी रहा बच्चोंका अंडे उड़ा ले जाना। ये तो ख़ैर अंडे हैं, हमारे यहाँ अगर कभी दरवाज़ा खुला रहे, तो सीढ़ियोंमें रखे उपले ही उड़ जाया करते हैं। अपनी लापरवाहीसे आदमी चाहे मुर्ग़े-मुर्ग़ियोंको ही लुटवा दे। इसमें पोलटरीका तो कोई क़ुसूर नहीं हो सकता।"

"लेकिन",—मैंने सवाल किया—"इससे आमदनी भी तो कुछ नहीं हो सकती।"

"अरे भई, आमदनी तब हो सकती है, जब आप इस कामको आमदनीकी ख़ातिर करें। आप काम तो करते हैं किसी सरकारी दफ़्तरमें, बैंक या इन्श्योरेंस कम्पनीमें, अपना सारा वक़्त आप वहाँ ख़र्च करें और फिर कहें कि पोलटरीसे आमदनी हो, यह असम्भव है।"

हमारी इस बहसमें शम्भुनाथने बिलकुल कोई हिस्सा नहीं लिया था। वे इतनी देर चुपचाप चाय पीते रहे। ख़ैर, वे नफ़ेमें रहे। घाटेमें रहे तो हम दोनों। फिर भी मैंने उनसे पूछा—"क्यों शम्भुनाथजी, आपकी क्या राय है ?"

"भाई दीनानाथ, मेरी राय आप दोनोंसे मुख़तलिफ़ है।" शम्भुनाथने प्यालीसे एक घूँट भरते हुए कहना शुरू किया—"दीनदयालजी, आप क्षमा करें, अगर मैं कहूँ कि मेरा इस बारेमें आपसे मतभेद है। (मेरी तरफ़ देखकर) इसलिए नहीं कि पोलटरीसे कुछ आमदनी होती है या नहीं, बल्कि इसलिए कि ये मुर्ग़े-मुर्ग़ियाँ एक तरहसे ज़हमत होती हैं। एक तो ये जानवर गन्दगी बहुत फैलाते हैं। जहाँ देखो, वहींपर इनकी बीट। अन्दर या बाहर, किसी भी जगहको ये कम्बख़्त पवित्र किये बग़ैर नहीं छोड़ते। लेकिन ये सिर्फ़ इतनी ही मेहरबानी किया करें, तब भी शायद कोई हर्ज न हो। ये तो सुबह उठकर कानोंके परदे फाड़ने लगते हैं। पता नहीं, इन कमबख़्तोंको नींद भी आती है या नहीं, जो सुबह-ही-सुबह जाग पड़ते हैं, और जागते भी ऐन उस वक़्त हैं, जब कि आदमीको नींद आनी शुरू होती है। रात-भर तो बच्चा और उसकी मा नहीं सोने देते। कभी दूध गरम हो रहा है, तो कभी पेशाब करवाया जा रहा है। आँखोंमें उस समय नींद भरी होती है ; लेकिन बिजलीकी रोशनीमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भला चैन कहाँ। ख़ैर, कुछ देरके बाद जब बच्चा सोया तो हमारी आँख भी लगी। बस, इसी वक़्त ये ढँढोरची लगे अपनी कर्णकटु आवाज़में सुबहका ढँढोरा पीटने। उस वक़्त कई बार दिलमें आया है कि उठकर सबको गोलीसे उड़ा दूँ; लेकिन पड़े-पड़े रह गया कि दिन निकलनेपर लेनेके देने पड़ जायँगे। सभी पड़ोसी गिर्द हो जायँगे कि आज तो मुर्ग़ियोंको मारा है, कल कहीं कुछ और कर बैठे तब? मुर्ग़ियाँ हैं, कोई अक्लमन्द आदमी तो हैं नहीं। इसी तरह बच्चे भी खेल-कूदमें शोर मचाया करते हैं। लेकिन कल अगर तुमने बच्चोंपर हमला कर दिया, तो उस सूरतमें क्या बनेगा? बस साहब, मुझे तो इन कारणोंसे अपना पहला मकान छोड़ना पड़ा। अब जो लिया तो सबसे पहले यह देखा कि दो मीलके घेरेमें किसीने मुर्ग़े तो नहीं रखे हैं।"

शम्भुनाथकी बात सुनकर मुझे भी अपनी आपबीती याद आ गई। मैंने दीनदयालसे कहा—"दीनदयालजी, कहते तो शम्भुनाथ ठीक हैं। इन मुर्ग़े-मुर्ग़ियोंके मीठे स्वरका कड़ुवा अनुभव मुझे भी कई बार हुआ है। लेकिन इससे कहीं ज्यादा मुसीबत मुझे उस वक़्त होती है, जब बच्चे वग़ैरा यहाँ नहीं होते। बच्चे घरमें हों तो ये मुर्ग़ियाँ अन्दर आनेसे डरती हैं; लेकिन जब मैं अकेला होऊँ, तब ये फ़ौजकी फ़ौज लेकर आ घुसती हैं। अगर मैं इन्हें कुछ न कहूँ, तो ये सब चीज़ें तहोबाला कर देती हैं। इन्हें डराता-धमकाता इसलिए नहीं कि कहीं साहबज़ादा सामनेसे निकल आये, तो मुझे भी कुछ जली-कटी सुना देंगे। अगर वे ख़ुद घरपर न हों, तो उनकी श्रीमतीजी भी कुछ कम रोब नहीं डालतीं।"

शम्भुनाथने आँखें झपकाते हुए चेहरेको ज़रा लम्बा बनाया और कहा—"ऐसा मालूम होता है कि आपको उनके रोबका व्यक्तिगत अनुभव है।"

"हाँ भई, है तो सही।" मैंने कहा—"अभी पिछले इतवारकी बात है। इतवार या शनिवार? नहीं, इतवारकी ही बात है। तब भी मैं अकेला था। सर्दी काफ़ी थी। आजसे कहीं ज्यादा। छुट्टी है, इस ख़यालसे मैं आठ बजे बिस्तरसे उठा। पहले तो सलाह हुई कि हुक़्क़ेको गरम करूँ; लेकिन फिर मालूम नहीं कैसे स्टोव सामने आ गया। इसलिए पानी गरम किया और चाय बनाई। इस साथके कमरेमें कम्बल ओढ़े मैं नीचे दरीपर बैठ गया। खिड़की खोल दी। किसीके ब्याहकी मिठाई आई हुई थी। मिठाईकी टोकरी सामने रख ली और प्यालेमें चाय उँडेलकर पीने लगा। पता नहीं, क्या सोच रहा था। शायद यह कि आज छुट्टी है, इसलिए क्या प्रोग्राम बनाऊँ। इतनेमें उस सामनेके दरवाज़ेपर टक-टककी आवाज़ हुई। कौन है?—मैं अभी यह कह न पाया था कि बाबू हरनारायण अन्दर आ गये। जहाँ हम इस वक़्त बैठे हैं, इन कमरोंके ऊपर एक बाबू हरनारायण रहते हैं। मिलिटरी एकाउंट्समें मुलाज़िम हैं। सज्जन पुरुष हैं। तीस-इकतीसके दर्मियान उम्र है। साहित्यिक रुचि रखते हैं। हिसाब तो उन्हें आता है या नहीं; परन्तु साहित्यको ज़रूर समझते हैं। वे भी मेरी तरह सुस्त हैं, कभी-कभी लिखते हैं; मनमें तरंग उठनेपर। हस्ब मामूल गरम चादर ओढ़े हुए थे। सिरसे नंगे, पाँवमें स्लीपर, नीचे शायद धोती थी। धोती नहीं थी, रातको सोनेके कपड़े थे। इतवार होनेके कारण अभी उन्होंने डाढ़ी-मूँछें साफ नहीं की थीं। इसी कारण चेहरेका रंग कुछ ज्यादा काला मालूम देता था। चादर काली, चेहरा भी काला। यह देखकर एक क्षणके लिए तो मैं हैरान रह गया। लेकिन यह हैरानी दूर होते कुछ देर न लगी। मैंने कहा—'आइये, आइये। चाय पीजिये।'

वे हँसकर बोले—'चाय आप-जैसे ख़ुशक़िस्मत लोगोंको ही नसीब हो सकती है। यहाँ तो चायको देखे उम्रें बीत गईं।'

'हाँ साहब, जिनको कोको मिल जाय, वे भला चायकी तरफ़ क्यों देखने लगे। अच्छा, चाय नहीं पी सकते, तो यह मिठाई ही खाइये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मिठाऊँ खाऊँ या दाँतोंका इम्तहान कराऊँ ? मुझे तो मालूम होता है, ये वे बला हैं कि शीशेसे पत्थरको भी तोड़ दें।'

'हाँ साहब, यह ब्याहकी मिठाई है। अगर इसमें यह ख़ूबी भी न हो, तो फिर ब्याहवालोंका नाम ही बदनाम कर दे। लेकिन अन्दर आइये, बैठिये तो सही।' मैंने एक तरफ़ सरककर उनके लिए दरीपर जगह बनाई ; लेकिन जहाँपर वे खड़े थे, वहीं पड़ी कुरसीपर बैठ गये। दो-चार मिनट इधर-उधरकी बातें हुईं। इसी बीचमें वे कुरसीसे उठकर अन्दर चले आये ; लेकिन बैठे नहीं, खड़े ही रहे। ऐसा मालूम होता है कि जब वे कमरेके अन्दर दाखिल हुए थे, तो उन्होंने अपने पीछे किवाड़ोंको अच्छी तरह बन्द न किया था। मैंने देखा कि एक मुर्ग़ा और एक मुर्ग़ी चुपकेसे अन्दर आ घुसे हैं। वे इधर-उधर कुछ तलाश ही कर रहे थे कि बाबू हरनारायणने टोकरीमें से उठाकर बेसनकी कुछ सेंवइयाँ उनके सामने बिखेर दीं। वे झपटकर खा गये। इतनेमें दो-तीन मुर्ग़े और आ गये। बाबू हरनारायणने बेसनकी वह मिठाई उनके सामने भी बखेर दी। अब वे आपसमें लड़ने लगे। जब लड़-झगड़कर खा चुके, तो मेरे नज़दीक दरीपर आ गये। मैंने भी कुछ सेंवइयाँ डालीं। अबकी तो ख़ूब जंग मचा। भला आटा खानेवाली मुर्ग़ियाँ मक्खन और बादाम खानेवाले मुर्ग़ोंके नज़दीक कैसे फटक सकती थीं ? बाबू हरनारायणने समझा कि यह मुर्ग़ियोंके साथ बेइंसाफ़ी हो रही है। उन्होंने मिठाईकी एक मुट्ठी भरकर मुर्ग़ियोंके आगे डाल दी। मुर्ग़े पहलवान उस तरफ़ ऐसे दौड़े कि मुर्ग़ियाँ कुड़क-कुड़क करती हुईं इधर-उधर हो गईं। जब तक मुर्ग़ोंने वह मिठाई खा न ली, तब तक वे बेचारी जहाँकी तहाँ खड़ी रहीं।

अब तो मुझे गुस्सा आया कि ये कम्बख्त मुर्ग़े-मुर्ग़ियाँ सारी मिठाई खा जायँगे। उधर बाबू हरनारायणको इसलिए गुस्सा आ रहा था कि ज़ालिम मुर्ग़े ग़रीब मुर्ग़ियोंको क्यों कुछ खाने नहीं देते। गुस्सेमें ही उन्होंने ज़ोरसे शित्की आवाज़ की और दाएँ पाँवको एक मुर्ग़ेकी तरफ़ झटका। उस मुर्ग़ेने देखा कि अब कोई काली-सी बला मेरे पीछे आ रही है। लपककर मेरे सिरके ऊपरसे उड़ा और खिड़कीमें से निकलनेकी कोशिश करने लगा। दोनों कमरोंमें अँधेरा होनेके कारण यह प्रकाशमय खिड़की ही उसके लिए बचावका रास्ता थी। उसे ऐसा करते देखकर बाक़ी मुर्ग़े-मुर्ग़ियोंमें भी भगदड़ मच गई। मैं खिड़कीसे परे हो गया। अब मुर्ग़ोंके लिए रास्ता खुल गया। सभी दौड़-दौड़कर खिड़कीमें पहुँचे ; लेकिन वहाँ लम्बी-लम्बी सलाखें लगी हुई थीं। अगर पतली होतीं, तो ये मकरध्वजी पहलवान उन्हें भी तोड़ भी देते ; लेकिन वे तो काफ़ी मोटी थीं। लाचार होकर वे वापस भागे। कुछेक मेरे वाले कमरेमें कुड़-कुड़ करते हुए इधर-उधर भागने लगे। कुछ उस कमरेमें चले गये। मेरा हुक्का उस दरवाज़ेके पास पड़ा हुआ था। उसे उन्होंने नीचे गिराकर चिलम फोड़ दी। चायदानी तो मैंने बचा ली, लेकिन प्याला टूट गया। पिरचका एक किनारा तोड़कर उसे उन्होंने नाकारा बना दिया। कोनेमें कई दिनसे हुक्केकी राख पड़ी थी। अपने पर हिलाकर उन्होंने उसे इस बुरी तरहसे उड़ाया कि सारा कमरा भर गया। धुआँ-ही-धुआँ मालूम देने लगा। मैंने समझा कि डरानेसे मुर्ग़े बाहरकी तरफ़ भाग जायँगे। मैंने दो-तीन बार तालियाँ पीटीं। बाबू हरनारायणने भी मेरी नक़ल की। तालियोंकी आवाज़ सुनकर वे और भी ज़्यादा उछले-कूदे। एक मुर्ग़ा ऊपर अलमारीके ख़ानेमें जा पहुँचा। वहाँ हमारी मेम साहिबाने चीनीके बर्तन सजाकर रखे थे। मुर्ग़ा वहाँपर पहुँचा, तो वे सब एक-एक करके ज़मीनपर आ गिरे। नीचे फ़र्श पक्का है। उनमें एक भी तो साबित न रहा। यह देखकर बाबू हरनारायणको हँसी आ गई। अगर उनके घरमें ऐसा होता, तो निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मुझे भी हँसी आ जाती। हँसीको छिपाते हुए वे इस कमरेमें चले आये। दरवाज़ा उन्होंने खोल दिया, ताकि मुर्ग़े बाहर निकल जायँ। मैं मुर्ग़ोंको उस कमरेसे बाहर निकालकर इस कमरेमें दौड़ आया, तो वे फ़िर वापस उसी खिड़कीपर पहुँचे। मैं उनको डराकर इस कमरेमें करता, लेकिन वे फिर उसीमें पहुँच जाते! तीन-चार बार ऐसा हुआ। एक बार एक मुर्ग़ा ज़ोरके साथ इस कमरेमें आया। इस सामनेकी अलमारीके साथ उसकी टक्कर लगी। ऊपरके ख़ानेमें पड़ी किताबें नीचे आ पड़ीं। बस, फिर क्या था! किताबें अलग, जिल्दें अलग। अब मुझे बहुत ही ज्यादा गुस्सा आया। उस कमरेमें खड़े-खड़े मैंने कोट झाड़नेवाले ब्रशको उठाया और एक मोटे-ताज़े मुर्ग़ेपर निशाना साधकर मारा। मुर्ग़ा चालाक निकला। उसने सिर नीचा कर लिया। ब्रश बिजलीके बल्बपर जा लगा। बल्ब भी टूटा और शेड भी।

यह दृश्य देखकर बाबू हरिनारायणको और भी ज्यादा हँसी आई। मैंने देखा कि उन्होंने दरवाज़ा तो खोल दिया है; लेकिन खुद वे काले यमदूतकी तरह पास खड़े हुए हैं। भला, मुर्ग़े दरवाज़ेके पास ही कैसे जा सकते थे। मेरे आवाज़ देनेपर वे वहाँसे हटकर इस कोनेमें आ खड़े हुए; लेकिन उन मुर्ग़ोंने अब भी दरवाज़ेकी तरफ़ मुँह न किया। भाग-भागकर खिड़कीमें ही जा मरते। मैं जब ज़बरदस्ती उनकी पूँछें पकड़-पकड़कर उन्हें इस कमरेमें फेंकता, तो कुछ क्षणोंके बाद वे फिर वहीं होते। बड़ा तंग आया। उस कमरेमें बर्तन टूटे पड़े थे, राख उड़ रही थी, मिठाई बिखरी पड़ी थी, और इस कमरेमें किताबें फटी पड़ी थी, बिस्तरपर मुर्ग़ोंके पंजोंके निशान पड़े थे, धोबीसे आये हुए कपड़े मिट्टी हो रहे थे, दफ्तर जानेका सूट राख हो चुका था, बल्ब और शेड टूटकर चूर-चूर हो गये थे। समझमें न आता था कि क्या करूँ। हारकर बैठ गया—दरीपर ही। बाबू हरिनारायण चुप थे। अब मुझे हँसी आ गई कि देखो, इन जानवरोंने ही हमारा नमदा कस दिया है। मैं हार गया था; मगर वे मुर्ग़े अभी तक हारनेका नाम न ले रहे थे। कुछ तो खिड़कीमें ही सिकुड़कर बैठ गये, बाक़ीके पहलेकी तरह दौड़ते रहे।

शुक्र किया, जो साहबज़ादाकी धर्मपत्नी आईं। मैं हैरान था कि वे इतनी देर तक आईं क्यों नहीं। मुर्ग़ोंकी हालत यह हो और वे न पहुँचें, यह हो नहीं सकता। लेकिन बादमें मालूम हुआ कि वे उस वक्त अपने मायके गई हुई थीं। तब साहबज़ादा भी साथ थे। अब जब वे अकेली लौटीं, तो मुर्ग़ोंकी आवाज़ सुनकर उन्होंने आव देखा न ताव, लगीं मंत्रोंका उच्चारण करने। दूसरेकी मा, बहन, भाई जिस किसीका भी ख़याल आया, सबको प्रसाद देना शुरू किया। हमारे अगले-पिछलोंको उन्होंने इस तरह याद किया कि वे जहाँ कहीं भी होंगे, 'धन्य हो देवि!' 'धन्य हो देवि!' कहते होंगे। मैंने इसको भी ग़नीमत समझा कि चलो, गालियोंका प्रसाद भी बुरा नहीं, अगर यह फ़ौजी मुसीबत किसी तरहसे निकले। मालिकिनको देखकर वे कम्बख़्त भी कुछ अजीब तरहसे कुड़-कुड़ करने लगे। ऐसा मालूम देता था, जैसे हमारी शिकायत कर रहे हों; लेकिन इस नेकबख़्त औरतको यह क्या मालूम कि उसके लाड़लोंने मुझपर कितनी कृपा की है; पचास-साठ रुपयोंके सिर पानी फेर दिया है। गालियाँ सुनकर मेरे दिलमें एक बार तो ख़याल आया कि इस वक्त कहीं टेलीफ़ोन नज़दीक होता और गुजराँवालेसे अपनी मेम साहिबाको फ़ौरन बुला सकता, तो बड़ा मज़ा आता। अपने घरका यह नज़ारा देखकर वे भी साहबज़ादिनको कुछ देती-दिलवातीं। सचमुच ऐसे महाभारत उम्र-भरमें एक-आध बार ही देखनेमें आया करते हैं।

पाँच-छै मिनटके बाद जब साहबज़ादिन अपनी फ़ौज हाँककर साथ ले गईं, तो उनके दरवाज़ेसे निकलनेपर मैंने हाथ जोड़े कि देवि, तुमने मुझपर बड़ा उपकार किया है, इसे मैं सारी उम्र न भूलूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी लिपिका प्रश्न

श्री कमलाकान्त वर्मा

देवनागरी-लिपिमें सुधार करनेकी कई प्रकारकी योजनाएँ हो रही हैं। इस दिशामें जनमतको लानेका श्रेय मुख्यतः दो आदमियोंको है ; एक तो सर्वश्री हरि जी० गोविलको और दूसरे काका कालेलकर साहबको। गोविलजीने अपनी एक स्कीम पेश की है, जिससे वर्तमान देवनागरी-लिपिमें बहुत-कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तनोंके होनेकी आशा है। काका साहबकी प्रधानतामें देवनागरी-लिपि-सुधार-समितिने भी कुछ परिवर्तनात्मक प्रस्ताव पेश किये हैं, जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समितिके चतुर्थ अधिवेशनमें पास भी हो गये हैं।

अब हमें यह देखना है कि अभी तक जितने प्रस्ताव सुधारके लिए रखे गये हैं, उतने ही काफी हैं या और भी सुधारोंकी ज़रूरत है। लिपि-सुधार ब्रिटिश गवर्मेन्टके वैधानिक सुधारों (Constitutional reforms) की तरह थोड़ा-थोड़ा करके नहीं हो सकता और न होना चाहिए। इसमें तो रूसकी क्रान्तिकी तरह एक बार ही क्रान्ति करनी होगी। ऐसा नहीं हो सकता कि कुछ परिवर्तन आज किये जायँ और कुछ दस वर्ष बाद। इसमें जो भी सुधार करने हों, वे अधिक हों या कम, एक साथ ही कर देने होंगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि देवनागरी-लिपिके प्रधान दोष क्या हैं, जिनका सुधार करना है। यों तो ध्वनिके विचारसे देवनागरी संसारकी सभी लिपियोंमें श्रेष्ठ है ; किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे इसकी एकमात्र कमी यही है कि यह टाइपराइटर और लाइनोटाइपके उपयुक्त नहीं है। यदि कोई ऐसी स्कीम निकले, जिससे यह कमी दूर हो जाय, तो देवनागरी संसारकी सर्वश्रेष्ठ लिपि होगी।

छापेकी मेशीनपर इसके ठीकसे नहीं बैठनेके तीन कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि इसकी वर्णमाला बहुत बड़ी है। इसके अक्षरोंकी संख्या पचाससे ऊपर है। दूसरा कारण यह है कि हिन्दीमें संयुक्ताक्षरोंको लिखनेके लिए अक्षरोंके हाथ-पाँव तोड़ दिये जाते हैं। संयुक्ताक्षरोंमें कोई पेटमें घुसता है, तो कोई कंधेपर चढ़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि सभी अक्षरोंकी रूप-रेखा बदलती रहती है और कोई निश्चित वैज्ञानिकक्रम स्थापित नहीं हो पाता। तीसरी बात यह है कि मात्राएँ वर्णोंके साथ एक पंक्तिमें नहीं रहतीं। कुछ ऊपर जाती हैं, कुछ नीचे। इसलिए टाइप करना या प्रेसमें कम्पोज़ करना बहुत कठिन हो जाता है।

इन तीनों कारणोंको लेकर देवनागरीके टाइपोंकी सेटिंगमें बड़ी अड़चन होती है। पहली बात तो यह कि टाइपोंकी संख्या कुल मिलाकर सात सौसे अधिक हो जाती है! दूसरी बात यह कि 'करन टाइप' और 'डिग्रीदार टाइप' की आवश्यकता पड़ती है, जिससे कम्पोज़ करना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। छापोंके टूटनेका भी बहुत डर रहता है और छपाई बहुत धीरे-धीरे और दिक्क़तके साथ होती है।

गोविलजीके सुधार इस दिशामें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने लाइनोटाइपके लिए छापोंकी संख्या सात सौसे घटाकर सवा सौ कर दी है। 'करन' और 'डिग्रीदार टाइप' का भी इस्तेमाल हटा दिया है। फिर भी अभी इसमें बहुत-कुछ कमी है। वे अभी इस लिपिको रोमनलिपिकी तरह पैंसठ अक्षरोंकी नहीं बना सके हैं। दूसरा भारी दोष यह है कि यह लिपि भी टाइपराइटरके लिए एकदम अनुपयुक्त है। और यह मानी हुई बात है कि जब तक रोमन टाइपराइटरोंकी तरह हिन्दी टाइपराइटर नहीं बनते हैं, तब तक इस लिपिका पूर्ण प्रचार नहीं हो सकता और हिन्दी-भाषा राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती।

लिपि-सुधार-समितिके प्रस्ताव भी ठीक तो हैं ; पर उनमें दोष यही है कि वे अधूरे हैं। उनका अभीष्ट है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्रतत्र कुछ सुविधाजनक परिवर्तन कर देना। किन्तु इतनेसे समस्या हल नहीं हो सकती। हमारी समझमें हिन्दी-लिपिको या तो अच्छी तरह सुधार ही देना होगा और नहीं तो फिर सदाके लिए छोड़ देना होगा। हमारे सामने प्रगतिशील टर्की और ईरानके उदाहरण हैं, जिन्होंने अपनी राष्ट्रीय उन्नतिके लिए अपनी जीर्ण-जर्जर लिपियोंको छोड़कर रोमनको अपनाया है। फिर हमारे सामने चीनका ज्वलन्त दृष्टान्त भी है, जिसके विषयमें एच० जी० वेल्सने कहा है कि उसकी राष्ट्रीय दुर्दशाका एक प्रधान कारण है उसकी भाषा और मुख्यतः उसकी लिपि। इस उपयोगितावादके युगमें भावुकतासे काम नहीं चलनेका। हमें हिन्दीको रोमनके मुक़ाबलेमें बनाना पड़ेगा, चाहे उसके लिए कितने भी परिवर्तनोंकी आवश्यकता क्यों न हो।

हम देख चुके हैं कि हिन्दी-लिपिमें तीन दोष हैं — (१) वर्ण-बाहुल्य, (२) अक्षरोंको संयुक्त करनेकी पद्धति और (३) मात्राओंको ऊपर-नीचे लगानेका तरीक़ा। देखना है कि इनका पूर्ण निराकरण कैसे किया जा सकता है। वर्ण दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं, व्यंजन और स्वर। पहले व्यंजनोंको लीजिए। हमारे यहाँ व्यंजन तैंतीस माने गये हैं; किन्तु हम इनमें एक व्यंजन और जोड़ देते हैं, और वह है 'अ'। 'अ' को शास्त्रकारोंने स्वर माना है, किन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता। उसकी अन्तिम अकारात्मक जो ध्वनि है, उसे स्वर कहा जा सकता है। और व्यंजनोंकी तरह 'अ'को भी एक व्यंजन मानना ही उचित है।

अब हम व्यंजनोंको दो भागोंमें बाँट सकते हैं, अवर्गीय और हवर्गीय। अवर्गीय श्रेणीमें हम 'अ, क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व स को रखेंगे। हवर्गीय श्रेणीमें हम 'ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, और ह को रख सकते हैं। ज़रा ग़ौर करनेसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि दोनों श्रेणियोंके अक्षरोंमें कुछ बहुत अन्तर नहीं है। केवल एक अल्पप्राण है और दूसरा महाप्राण। अवर्गीय अक्षरोंको हवर्गीय बनानेके लिए रोमनमें केवल एक H (एच) का व्यवहार होता है, जैसे KH (ख), GH (घ), PH (फ) इत्यादि। अब यदि हम अपनी लिपिमें H के स्थानमें कोई दूसरा संकेत मान लें और उसे किसी अल्पप्राण अक्षरके साथ लगावें, तो वह महाप्राण बन जा सकता है। मान लिया जाय कि दाहनी ओर शून्य (०) रखनेसे अवर्गीय अक्षर हवर्गीय हो जायगा, तो हम खके बदले क०, घके बदले ग०, हके बदले अ० इत्यादि रख सकते हैं। इस परिवर्तनसे लाभ यह होगा कि व्यंजनोंकी सूचीमें से तेरह अक्षर हट जायँगे। बाकी रहेंगे केवल इक्कीस और उन्हींके साथ आवश्यकतानुसार एक शून्य लगाकर हम हवर्गीय अक्षरोंको भी लिख लेंगे।

अब स्वरोंको लीजिए। हमारे यहाँ स्वर ग्यारह माने गये हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ। इसमें से ऋको इस सूचीमें से एकदम निकाल दिया जा सकता है। बाक़ी रहे दस। इनमें ऐ और औ संयुक्त स्वर हैं। अभी हम उन्हें भी हटा देंगे। बाक़ी मूल स्वर रहे आठ। इनमें ई, ऊ इ, उ के दीर्घ स्वरूप हैं इसलिए उन्हें भी हटाइये। शेष बचे अ, आ, इ, उ, ए और ओ। अब हम देख सकते हैं कि ये सभी स्वर 'अ' व्यंजनके साथ लगे हुए हैं। दूसरे व्यंजनोंके साथ ये मात्राएँ बनकर लगती हैं। मात्राओंके चिह्न बदल जाते हैं। किन्तु यह द्वित्व अनावश्यक है। कोई कारण नहीं है कि 'अ'के साथ लगनेपर इनका जो रूप रहे, वह दूसरे व्यंजनोंके साथ लगनेपर बदल जाय। इसलिए अ, आ, अि, अु, अे और अो लिखना ही अधिक उत्तम है। अब ह्रस्व और दीर्घका प्रश्न है। अ, इ, उ को ह्रस्व और आ, ए, ओ को स्वभावतः दीर्घ माना गया है; पर यह भ्रान्तिमूलक-सा जान पड़ता है। जैसे इ और उ ह्रस्व और दीर्घ दोनों ही हो सकते हैं, उसी प्रकार आ, ए और ओ भी ह्रस्व और दीर्घ दोनों ही हो सकते हैं। इसका प्रमाण है कि दक्षिणकी लिपियोंमें 'ए' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ओ'के ह्रस्व स्वरूप भी होते हैं, जिनके लिए देवनागरीमें अभी तक कोई व्यवस्था नहीं है। रोमनमें भी ऐसा ही होता है। Hen, Pomade इत्यादिमें भी 'ए' और 'ओ' दीर्घ नहीं है, ह्रस्व ही हैं। एक दूसरा उदाहरण लीजिए—'ज़ाहिद शराब पीने दे मसजिदमें बैठके।' यहाँ 'ने' में ए ह्रस्व है और 'दे' में दीर्घ, फिर 'में' में ह्रस्व है और 'के' में दीर्घ। एक तीसरा उदाहरण। कोई पुकारता है—'बाबा गोबरधनदास।' वह 'गो' में दीर्घ नहीं लगावेगा, ह्रस्व ही लगावेगा। इसी प्रकार जोताई, खेसारी इत्यादिमें ह्रस्व 'ए' और 'ओ'का ही उच्चारण होता है। किन्तु खेदकी बात है कि हमारी लिपिमें आ, ए और ओका ह्रस्व स्वरूप नहीं है और अका दीर्घ नहीं है। केवल इ और उमें ह्रस्व-दीर्घका विचार होता है। इसका फल यह हुआ है कि स्वराघात (Accent) का वैज्ञानिक विचार हमारे यहाँ बिलकुल नहीं है। जैसा जिसके मनमें आता है, वह वैसा उच्चारण करता है। इसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

इस मनमानीको दूर करनेका और स्वराघातको वैज्ञानिक रूपसे उच्चारणमें स्थान देनेका एकमात्र उपाय यही है कि सभी स्वरोंके ह्रस्व और दीर्घ स्वरूप रखे जायँ। जब जैसी ज़रूरत हो, वैसा प्रयोग हो; मगर इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ह्रस्वसे दीर्घ बनानेके लिए प्रत्येक स्वरमें भिन्न-भिन्न चिह्न लगें। यह फिज़ूलकी बात होगी। ह्रस्वसे दीर्घ बनानेके लिए केवल एक ही संकेत रखा जाय, और जिस मात्राके साथ वह लगाया जाय, वह दीर्घ समझी जाय। यदि वह संकेत न लगे, तो फिर मात्रा ह्रस्व समझी जाय। इससे लाभ यह होगा कि मात्राओंकी संख्या भी नहीं बढ़ेगी और सभी स्वरोंके लिए ह्रस्व और दीर्घ उच्चारणकी व्यवस्था हो जायगी। वह संकेत चाहे जो भी हो, किन्तु एक ही हो। इस प्रकार हमारी मूल मात्राएँ केवल पाँच रह जायँगी—आ, इ, उ, ए और ओ। इन्हें ह्रस्व या दीर्घ बनानेके लिए किसी एक विशिष्ट संकेतका उपयोग होगा। इस काट-छाँटसे मात्राएँ रहीं केवल पाँच। इस प्रकार इस योजनाके अनुसार हमारी लिपिकी वर्णमाला रोमन लिपिकी तरह केवल छब्बीस अक्षरोंकी होगी—इक्कीस व्यंजन और पाँच स्वर।

अब संयुक्ताक्षरोंको लीजिए। ये दो प्रकारके होते हैं—संयुक्त व्यंजन और संयुक्त स्वर। अभी तक संयुक्त स्वरोंको संयुक्ताक्षर नहीं माना जाता था; किन्तु कोई कारण नहीं है कि वे मूलाक्षरोंके साथ रखे जायँ। हम उन्हें संयुक्ताक्षर ही कहेंगे। रोमनमें संयुक्ताक्षर नहीं होते। वहाँ यदि व्यंजनोंके बीचमें स्वर नहीं रखे जायँ, तो उन व्यंजनोंका संयुक्त उच्चारण होता है। देवनागरीमें यह बात नहीं है। इसमें प्रत्येक व्यंजनके साथ स्वर लगा हुआ होता है। यदि दो या अधिक व्यंजनोंको संयुक्त करना हुआ, तो उन्हें तोड़-ताड़कर एक दूसरेके ऊपर-नीचे कर दिया जाता है। यह प्रणाली बिलकुल भद्दी है। व्यंजनोंका स्वर हटा देना ही उन्हें संयुक्त कर देना है। ऐसी अवस्थामें अक्षरोंके हाथ-पैर तोड़नेसे क्या लाभ? यह तो दाढ़ीके साथ चोटी बाँधकर हिन्दू और मुसलमानोंका समझौता कराना है। इससे अक्षरोंका रूप भी विकृत होता है और छापोंकी संख्या भी बढ़ानी पड़ती है। गोविलजीने इसमें कुछ सुधार किया है; किन्तु उनके सुधारमें अपवाद भी बहुत हैं। हमारी समझमें इसमें अपवादोंकी न तो कोई आवश्यकता है और न कोई गुंजाइश। अक्षरोंको संयुक्त करनेके लिए हलन्त चिह्नकी तरह कोई एक चिह्न रखा जाना चाहिए, जो सभी जगह लगाया जाय। संयुक्तोच्चारणके लिए दूसरी किसी व्यवस्थाकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसका अर्थ होगा अक्षरोंको अप्राकृतिक रूपसे जोड़ना, और टाइपराइटर और लाइनोटाइपमें फिर झगड़ा उठ खड़ा होगा। ऊपर-नीचे करके तोड़-ताड़कर जोड़नेसे अक्षरोंकी शोभा घटती ही है, बढ़ती नहीं। इसके अलावा क्लिष्टता और बढ़ जाती है और नई-नई झंझटें पैदा होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए रोमनकी तरह देवनागरीमें नियम बना देना चाहिए कि अक्षरोंको संयुक्त करनेके लिए तोड़ा-फोड़ा न जाय, केवल उन्हें हलन्त कर दिया जाय। अक्षरोंको तोड़ना अप्राकृतिक भी है और अवैज्ञानिक भी, इसलिए इस नियममें एक भी अपवाद न होना चाहिए।

रही संयुक्त स्वरोंकी बात। देवनागरीमें केवल दो ही संयुक्त स्वर माने गये हैं—ऐ=(अ+ए) और औ=(अ+ओ); किन्तु ये ही दो स्वर संयुक्त हो सकते हैं, दूसरे नहीं, ऐसी बात नहीं है। और भी स्वर संयुक्त हो सकते हैं— जैसे आ+ओ, (ox), आ+ए (Fact), आ+उ (Foul), आ+इ (Fine) इत्यादि। रोमनमें स्वरोंको भी संयुक्त करनेका सबसे अच्छा उपाय है। दो या अधिक स्वरोंको पास-पास रख देनेसे संयुक्त स्वर बन जाते हैं। देवनागरीमें दो दोष हैं। एक तो यह कि संयुक्त स्वर केवल दो ही रखे गये हैं और स्वरोंके संयुक्तोच्चारणके लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं है। फलतः अंगरेज़ी आदि दूसरी भाषाओंके शब्द यथावत् देवनागरीमें नहीं लिखे जा सकते। दूसरा दोष यह है कि जो दो संयुक्त स्वर माने गये हैं, उन्हें संयुक्त करनेका कोई ख़ास चिह्न न बनाकर उनके लिए एक-एक विशेष संकेत ही रख दिया गया है। इसका नतीजा यह हुआ कि ऐ और औ भी मूल स्वरोंकी श्रेणीमें जा पहुँचे और राहु-केतुकी तरह नवग्रहोंमें पूजा पाने लगे। इस प्रकार अक्षरोंकी संख्या घटनेके बजाय बढ़ गई।

इन दोषोंको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि ऐ, औ इत्यादि संयुक्त स्वरोंके लिए कोई विशेष चिह्न रखे ही न जायँ। यदि दोके लिए चिह्न रखे जायँ, तो फिर औरोंके लिए भी रखने पड़ेंगे। इससे अच्छा है कि संयुक्त स्वरोंके विशेष चिह्न उड़ा ही दिये जायँ। जैसे व्यंजनोंको संयुक्त किया जाता है, वैसे ही स्वरोंको भी संयुक्त किया जाय और उसके लिए हलन्त चिह्नका ही प्रयोग किया जाय। इससे लाभ यह होगा कि हम सभी प्रकारके शब्दोंको उनका उच्चारण बिगाड़े बिना ही अपना सकेंगे और अक्षरोंकी संख्या भी बढ़ेगी नहीं।

तीसरा प्रश्न यह है कि उन मात्राओं और वर्णोंको पंक्तिबद्ध कैसे किया जाय। इसमें दो कठिनाइयाँ हैं, एक तो संयुक्ताक्षरोंकी और दूसरी कू, के आदिमें मात्राओंकी। यदि संयुक्ताक्षरोंके लिए केवल हलन्तका प्रयोग हो, तो वह कठिनाई ऐसे ही दूर हो जाती है। बाक़ी रहीं मात्राएँ। उनके विषयमें, जैसा लिपि-सुधार-समितिका प्रस्ताव है, ऐसा हो सकता है कि वे अक्षरोंसे दाहनी ओर हटकर बग़लमें लगें। इससे टाइपराइटर या लाइनोटाइपमें कोई असुविधा नहीं होगी। अनुस्वार आदिके विषयमें भी ऐसा ही किया जा सकता है। इस प्रकार थोड़ेसे परिवर्तनोंमें यह समस्या भी हल हो जा सकती है।

देवनागरीके टाइपराइटर या लाइनोटाइपके उपयुक्त होनेके लिए जिन तीन प्रकारके सुधारोंकी आवश्यकता है, उन्हें हम देख चुके। इस सुधार-योजनाके अनुसार हिन्दी वर्णमालाके अक्षर पचाससे घटकर केवल छब्बीस रह जायँगे, संयुक्ताक्षरोंका बखेड़ा हट जायगा और सभी अक्षर पंक्तिबद्ध हो जायँगे। इन सुधारोंके हो जानेपर देवनागरी किसी भी दृष्टिसे रोमनसे घटकर नहीं रहेगी, प्रत्युत कुछ बातोंमें उससे भी बढ़ जायगी। रोमनमें दो प्रकारके टाइप होते हैं, एक ब्लाक या कैपिटल और दूसरा छोटा। हिन्दीमें यह बात नहीं रहेगी। इसमें केवल एक प्रकारका टाइप रहेगा और वही शुरूसे आख़िर तक लिखा जायगा। दूसरी बात यह कि रोमनमें छापेके जो अक्षर होते हैं, वे हाथकी लिखावटवाले अक्षरोंसे भिन्न होते हैं। हिन्दीमें यह बात भी नहीं होगी। इस प्रकार जहाँ रोमनमें तीन तरहके टाइपोंकी ज़रूरत होती है, वहाँ हिन्दीमें केवल एक तरहके टाइपसे ही काम चल जायगा, और सबसे अधिक तो यह कि देवनागरी अक्षरोंमें सभी प्रकारके उच्चारणोंकी गुंजाइश रहेगी, जो रोमनमें कभी हो ही नहीं सकती। हमारा दावा है कि इन थोड़ेसे परिवर्तनोंसे देवनागरी ध्वनि, वैज्ञानिकता और सुविधा सभीके विचार-कोणसे संसारकी सर्वश्रेष्ठ लिपि हो जायगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक समय आयेगा, जब कि सभ्य यूरोप रोमन-लिपि छोड़कर उसे वैसे ही अपनावेगा, जैसे एक बार रोमन अंकोंको छोड़कर भारतीय अंकोंको उसने अपनाया था। केवल यूरोप ही नहीं, सारा संसार देवनागरी-लिपि ग्रहण करनेके लिए एक दिन बाध्य होगा।

अब प्रश्न यह है कि अपनी लिपिमें हम लोग इतने परिवर्तन कर सकेंगे या नहीं। यदि संसारके और राष्ट्र अपनी उन्नति करनेके लिए अपनी प्राचीन लिपि छोड़कर कोई दूसरी नई लिपि ग्रहण कर सकते हैं, तो हमारी समझमें नहीं आता कि फिर हम अशिक्षा और ग़रीबीका अन्धकार हटानेके लिए अपनी लिपिमें केवल थोड़ेसे परिवर्तन क्यों नहीं कर सकते। यदि रूस एक रातमें ज़ारशाहीसे साम्यवादी हो जा सकता है, तो क्या भारत अपनी लिपिके क्षेत्रमें थोड़ी-सी क्रान्ति भी नहीं कर सकता ?

लिपिका प्रश्न देखनेमें जितना छोटा जान पड़ता है, इसका महत्त्व उतना ही सुदूर-व्यापी है। हमारे सामने स्वाधीनताका संग्राम है, और उस संग्रामके प्रधान सैनिक हैं किसान और मज़दूर। सारे देशमें बन्धुत्वका भाव स्थापित हो सके, इसके लिए एक राष्ट्र-भाषा और एक राष्ट्रीय लिपिकी ज़रूरत है। हमारी राष्ट्र-भाषा केवल हिन्दी हो सकती है और हमारी राष्ट्रीय लिपि देवनागरी।

देशमें जितनी ग़रीबी और जितना अन्धकार है, उसे देखते हुए शिक्षाका जितना भी प्रचार हो, वह थोड़ा है। करोड़ों स्त्री-पुरुषोंके जीवनमें थोड़ी-सी मिठास लानेके लिए, उनके दुःखको हल्का करनेके लिए, हमारा पहला कर्तव्य है उन्हें प्राथमिक शिक्षा देना। जब कि लोकमतमें और सरकारमें पग-पगपर इतना संघर्ष चल रहा है, तब जनसमुदाय आर्थिक और राजनीतिक चालोंको थोड़ा-बहुत भी समझ सके और उनपर अपना निश्चय प्रकट कर सके, इसके लिए शिक्षाकी अधिकसे अधिक आवश्यकता है। शिक्षाका माध्यम है लिपि-ज्ञान, और जिस लिपिमें टाइपराइटर नहीं बन सकते, जिसमें सात सौसे अधिक भिन्न-भिन्न टाइप हैं, जिसमें पुस्तकें या अख़बार सुविधापूर्वक नहीं छप सकते, उस लिपिमें ज्ञान वितरण करना कैसी टेढ़ी खीर है, यह ज़रा सोचनेकी बात है।

हमारा संसार प्रतियोगितावादी है। यहाँ वही जी सकता है, जो जीनेके लायक है। हमें अपने जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें क्रान्ति करनी है। यदि हममें क्रान्ति करनेकी क्षमता नहीं, तो फिर हमें जीनेका भी अधिकार नहीं। हमें थोड़ेसे-थोड़े ख़र्चमें, कम-से-कम समयमें, अधिक-से-अधिक साहित्य-निर्माण करनेकी आवश्यकता है। इसके लिए ज़रूरत है टाइपराइटरों और प्रेसोंकी। विज्ञानका सहारा लेकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। और विज्ञान चिल्लाकर कहता है हमें लिपि दो। इस समय हमारा राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, सामाजिक, यहाँ तक कि धार्मिक कर्तव्य है कि हम लिपि-सुधार करें। यदि हम लिपि-निर्माण नहीं कर सके, तो याद रहे हम राष्ट्र-निर्माण भी नहीं कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापी

(एकांकी नाटक)

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए०, एल-एल० बी०

पात्र

शान्तिलाल	एक नौजवान वकील
छाया	उसकी बीमार पत्नी
रेखा	शान्तिलालकी छोटी साली, छायाकी बहन
ऊषा	शान्तिलालकी बहन
माँ	शान्तिलालकी माँ

समय—सायंकाल साढ़े सात बजे। घरोंमें लैम्प रौशन हो चुके हैं।

स्थान—शान्तिलालके घरका कमरा, जो ड्राइंग-रूमका भी काम देता है।

रंगमंच

सामनेसे तीन दरवाज़े खुलते हैं। नम्बर (१) छायाके कमरेको जाता है, जो ड्राइंग-रूमसे तनिक दूर घरके पिछवाड़ेकी ओर है। नम्बर (२) आँगनमें खुलता है, जिधरसे रसोईघर और ड्योढ़ीको जानेके रास्ते हैं। नम्बर (३) एक कमरेमें खुलता है, जो एक प्रकारका आरामका कमरा है।

ड्राइंग-रूममें एक मेज़ है, जिसके आसपास कुर्सियाँ पड़ी हैं। सामने अंगीठीकी कारनिसपर फूलदान रखे हैं। मेज़पर पुस्तकें चुनी हुई हैं। सामनेके दरवाज़ोंपर काले रंगके परदे हैं, जिनपर श्वेत मोर बने हैं। कमरेके दरवाज़ेपर हलके लाल रंगका परदा है। कमरेको बिजलीके तीन बल्ब रौशन कर रहे हैं।

(परदा उठता है।)

छाया दाईं ओरका परदा उठाकर अन्दर झाँकती है। एक पाँव अन्दर रखती है और कुछ क्षण दहलीज़में ही बैठी रहती है। फिर दूसरा पाँव अन्दर रखती है और किवाड़का सहारा लेकर खड़ी होती है। पतली-दुबली यक्ष्मासे पीड़ित। शरीर सूखकर हड्डियोंका पिंजर रह गया है। अधर शुष्क हैं, गाल पिचक गये हैं, जबड़ोंकी हड्डियाँ उभरी हुई हैं। रंग काला पड़ गया है। शलवार और कमीज़ पहने है; परन्तु दोनों कपड़े उसके शरीरपर ढीले दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे इधर-उधर देखती हुई बढ़ती है। सरमें चक्कर आता है। एक हाथसे सरको थामकर दूसरेसे मेज़का सहारा लेती है और कुर्सीमें धँस जाती है। सर मेज़पर रख लेती है। दो-एक बार मुँहपर रूमाल रखकर खाँसती है, फिर आहिस्ता-आहिस्ता सर उठाती है। मद्धिम आवाज़में जैसे अपने-आप बातें कर रही है।

—जब मर ही जाना है, सब-कुछ छोड़कर मर ही जाना है, तो फिर यह ईर्ष्या क्यों, यह डाह क्यों? आज न सही, कल सही; कल न सही, परसों सही; शीघ्र ही जीवनका टिमटिमाता हुआ दीया बुझ जानेको है। फिर भविष्यकी उस तारीकीमें टोह लेनेसे लाभ? उस अँधेरेमें टटोलनेसे हासिल? कोई उसे प्रदीप्त करे। वह ज्योतिर्मयी मशाल हो, अथवा चकाचौंध पैदा करनेवाली बिजली, कोई हो, दीयेको क्या? बुझे हुए दीपको क्या?

दीर्घ निःश्वास छोड़ती है। ज़ोरकी खाँसी आती है; मुँहपर रूमाल रखकर सर मेज़से लगा लेती है। कुछ देर बाद फिर आहिस्ता-आहिस्ता सर उठाती है। चेहरा कुछ उतर गया है। उसी भाँति अपने-आप—

—नहीं; देखूँगी। अपने हाथों बनाये हुए कल्पनाके भव्य प्रासादोंको अपने सामने जलते हुए देखूँगी! उन्हें जलनेसे बचा तो न सकूँगी; परन्तु चुप भी कैसे बैठी रह सकूँगी। किसीका घर धड़ाधड़ जल रहा हो और वह मौन, चुप; मज़ेसे बैठा रहे, कैसे हो सकता है। वह उसे जलनेसे न बचा सकता हो, वह कुछ भी न कर सकता हो। वह देख तो सकता है—अपनी हसरतों, अपने अरमानों, अपनी चिर संचित आकांक्षाओंको बर्बाद होते देख तो सकता है। वह न देखेगा तो पागल हो जायगा, न देखेगा तो मर जायगा।

(खाँसी आती है, रूमाल मुँहपर रखती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—उसी कमरेमें होंगे वे, मैंने उन्हें कुछ देर पहले इधर आते देखा था। इस कमरेमें तो नहीं, ज़रूर उसीमें होंगे।

उठती है। खाँसी आती है। एक पग चलती है, फिर दूसरी कुर्सीपर बैठ जाती है। फिर आहिस्ते-आहिस्ते कमरेके दरवाज़े तक जाती है। परदा उठाकर देखती है। दरवाज़ा ज़रा-सा खुला है। झाँकती है। जल्दीसे परदा छोड़ देती है, मुड़ती है, चेहरा और भी काला पड़ जाता है, आँखोंके गढ़े और भी गहरे हो जाते हैं।

—(तनिक आवेगसे) रेखा, रेखा, बहन होकर, माँ-जाई होकर मेरी चितापर यह रँगरेलियाँ! हाय, तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम्हें लज्जा नहीं आती रेखा और तुम—तुम्हें मैं क्या कहूँ?

तेज़ीसे जाने लगती है। सरमें चक्कर आता है। कुर्सीका सहारा लेते-लेते गिर पड़ती है और अचेत हो जाती है। कमरेका दरवाज़ा खुलता है। परदेको उठाकर तेज़ीसे शान्तिलाल प्रवेश करता है। केवल एक कमीज़ और पतलून पहने। कमीज़का गिरेबान खुला है।

रसोईकी ओरसे माँ भागी आती है। हाथमें फुंकनी और मुँहपर सियाहीके दाग़ हैं। घबराई हुई है, साँस फूल रही है। फुंकनी फेंकती है, छायापर झुकती है। शान्तिलाल घुटनोंके बल बैठा है।

शान्तिलाल—(आवाज़ धीमी और कंठमें फँसी हुई) छाया, छाया!

माँ—इतनी दूर चलकर यह कैसे आ गई? अपने कमरेसे यहाँ तक! इसे तो चारपाई तकसे हिलनेकी मनाही है।

शान्तिलाल—(छायाको अपनी बलिष्ठ भुजाओंमें उठाता हुआ) मुझे क्या मालूम?

छायाको उठाकर उसके कमरेकी ओर ले जाता है। माँ उसके पीछे-पीछे जाती है। कमरेसे धीरे-धीरे रेखा निकलती है। मझोला क़द, कोमल अंग, उन्नाबी रंगकी साड़ीमें चलती-फिरती ज्वाला दिखाई देती है। मुखपर चिन्ता है। पग-पग चलती मध्यमें आ जाती है।

—(धीरे-धीरे अपने-आप) क्या हो रहा है, क्या होनेको है! मैं तो बीमार बहनको देखने आई थी, मैं तो उसका दुख बँटाने आई थी। क्या मैं उसका दुख दूर कर रही हूँ? क्या मैं उसका ग़म बँटा रही हूँ? (व्यंगसे मुसकराती है) वाह! क्या ख़ूब ग़म बँटा रही हूँ! मैं उसे मृत्युके समीप लिये जा रही हूँ; उसके दुखकी चिनगारीको ज्वाला बना रही हूँ।

(कुर्सीमें धँस जाती है।)

—रेखा, रेखा, तुझे क्या हो गया है? तुझे क्या हो गया है! तुझे अपने-आपपर तनिक भी क़ाबू नहीं रहा। तू बही जा रही है, डूबी जा रही है और अपने साथ उसे भी बहाये जा रही है, उसे भी डुबाये जा रही है, जिसे तू बचाना चाहती है, जिसे तू बचानेको आई है। नहीं, तुझे अपने-आपपर काबू रखना होगा। तुझे अपने-आपको क़ातिल होनेसे बचाना होगा। यह दिल! इस पागल दिलके उद्गारोंको रोक रखना होगा; यह आँखें! इन प्यासी आँखोंकी तृष्णाको दबा देना होगा; यह कान! इन रसिया कानोंकी लालसाको बाँध रखना होगा। तू देखकर भी न देखेगी, सुनकर भी न सुनेगी, अनुभूति रखनेपर भी कुछ महसूस न करेगी।

किवाड़ खुलनेकी आवाज़ आती है। रेखा तेज़ीसे कमरेमें चली जाती है। छायाके कमरेकी ओरसे शान्तिलाल दाखिल होता है। भृकुटी तनी हुई है, फर्शपर गिरी हुई एक पुस्तकको पाँवकी ठोकर मारता हुआ अंगीठीके नीचे गद्देदार कुर्सीपर बैठ जाता है। कुहनियाँ टेक लेता है और हथेलियोंपर ठोड़ी रखकर सोचता है।

(उसी दरवाज़ेसे माँ प्रवेश करती है।)

माँ—तुम इधर आ गये, उसके पास जाकर बैठो।

शान्तिलाल—(चुप)

माँ—जाओ, उसके पास जाकर बैठो; वह बीमार है, मरनेको है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिलाल—(चुप)

माँ—मैं क्या चीख रही हूँ, क्या बक रही हूँ।

शान्तिलाल—(उसी तरह बैठे-बैठे) मैं यह सब-कुछ नहीं सह सकता।

माँ—क्या नहीं सह सकते ?

शान्तिशाल—यह रोज़का दुख-क्लेश, व्यथा-वेदना, व्यंग-उपहास। मैं थक गया हूँ—

माँ—और हममें नित-नई शक्ति आती है! हम नहीं थक गये, हम नहीं ऊब गये ? किन्तु यह कर्तव्य है, यह हमारा धर्म है। कल मैं बीमार पड़ जाऊँ, तो क्या मैं न चाहूँगी कि कोई मेरी सेवा करे, कोई मेरे पास बैठे, मेरी तीमारदारी करे ? जाओ, वह रो रही है, उसे सान्त्वना दो, उसे धीरज बँधाओ।

शान्तिलाल—मैं कहाँ तक सान्त्वना दूँ, कहाँ तक धीरज बँधाऊँ ?

माँ—जैसे तुम सदैव तसल्ली देते हो, सर्वदा धीरज बँधाते हो।

शान्तिलाल—(बेज़ारीसे) नहीं, मैं कुछ नहीं करता ; मैंने कुछ नहीं किया। बस, फिर वही व्यंगके तीर, वही कटु बातें। (तनिक आवेगसे) क्या मैंने महीनों उसकी सेवा नहीं की, महीनों अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता न करके उसकी तीमारदारी नहीं करता रहा, दिनके एक-एक बजे तक बिना खाये-पिये डाक्टरोंके पीछे मारा-मारा नहीं फिरा ; सेनेटोरियममें मैंने उसे नहीं पहुँचाया ; पहाड़पर मैं उसे नहीं ले गया ; दिनका चैन और रातोंकी नींद मैंने हराम नहीं की ? (धीमे स्वरमें) नहीं, मैंने कुछ नहीं किया, मैंने कुछ नहीं किया !

मा—नहीं, तुमने बहुत-कुछ किया है, और उस बहुत-कुछका तो शायद तुम बदला ले रहे हो—और उसकी आँखोंके सामने ही—हाय ! शान्तिलाल, बेटा, तुमने उसकी दशा कैसी शोचनीय बना दी है। दो वर्षोंमें वह ऐसी ख़राब नहीं हुई, जितनी इन दो दिनोंमें हो गई है। वह होशमें है, किन्तु अच्छा था, यदि वह बेहोश होती, चेतनाहीन होती। मैं कहती हूँ, तुम यह व्यवहार छोड़ दो, तुम्हें वह अच्छी नहीं लगती, तो उसे विष दे दो, उसका गला घोंट दो।

शान्तिलाल—(जोशसे खड़ा हो जाता है) मैंने उसकी यह दशा की है, व्यवहार मेरा बुरा है। बच्चा पैदा होनेके बाद दिन-रात मैंने उसे काममें लगाये रखा उसके सरमें पीड़ा रहने लगी, उसे मैंने नख़रा बताया। उसे ज्वर हो आया, तो मैंने तानोंकी खुराकें दीं। टाइफ़ाइडके हमलेके बाद मैंने आराम न लेने दिया। आपको अपने दोष दूसरोंके सर मढ़ने ख़ूब आते हैं। यदि उसे मेरे व्यवहारके कारण ही बीमार होना होता, तो वह अब तक मर चुकी होती। तीन वर्ष जो मेरे पास रही, तब तो उसका सर तक न दुखा ; यहाँ आकर ही उसे बीमारी क्यों चिमट गई ? उसकी बीमारीका उत्तरदायी मैं हूँ या आप ?

मा—(शान्तिके साथ) बेटा, बीमारी न तुम्हारे बसकी है, न मेरे। यह तो न लगाये लगती है, और न हटाये हटती है। जिसके भाग्यमें जितना दुःख लिखा है, उसे भोगना पड़ेगा—चाहे वह धनी हो या निर्धन, सम्पन्न हो अथवा विपन्न।

शान्तिलाल—नहीं, मैं यह नहीं मानता। ये सब रोग हमारे लगाये ही लगते हैं। नवविवाहित युवक यक्ष्मासे उतने क्यों नहीं मरते, जितनी नवविवाहित युवतियाँ ? यह सासोंकी क्षुद्रता और निर्दयता ही तो है, जिसके कारण आज इतनी लड़कियाँ इस रोगके हाथों मृत्युका ग्रास बन रही हैं।

मा—सासें निर्दयी होती हैं ?

शान्तिलाल—नहीं तो क्या दयाका अवतार होती हैं ? मैंने तुम्हें आज तक माके रूपमें देखा था। मा, यदि मुझे ज्ञात होता कि इस दयामयी माके कलेवरमें निर्दयी सास भी छुपी हुई है, तो मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी अस्पतालमें प्रसवका प्रबन्ध कर लेता। उसे बच्चा हुआ, उसकी देख-भाल न की गई, ठीक उपचार न किया गया। मैं आराम-आराम चीखता रहा, उसे आराम न दिया गया। अब तुम्हीं बताओ कि जिस लड़कीने मा-बापके घर बहुत काम न किया हो, पतिके घर बहुत काम न किया हो, वह बच्चेवाली हो, उसे पढ़नेका शौक़ हो, फिर वह काम भी करे, दस-दस कमरोंमें बुहारी दे, ढेर-के ढेर बर्तन माँजे, समय-कुसमय खाना खाये, फिर वह बीमार न हो, तो क्या हो ?

मा—टाइफाइड तो तुम्हारे भाईको भी हुआ था, मरते-मरते बचा था।

शान्तिलाल—वह तुम्हारा लड़का था, बहू न थी। मैं कब कहता हूँ, तुममें मुहब्बतका अभाव है। मैं बीमार हो जाऊँ, तो तुम आकाश-पाताल एक कर दो ; और यदि बहूकी तबीयत ख़राब हो, तो तुम कहो कि नख़रे करती है, बहाने बनाती है ! मैंने लाख कहा कि मैं काम नहीं चाहता, उसे आराम करने दो ; पर तुम लोग तो उसे मारनेपर तुले हुए थे। तुम सबने मिल-मिलाकर उसे बीमार कर दिया, अब अभियोग मुझपर धरा जाता है। विषका प्याला तुम लोगोंने उसे पिलाया, ख़ाली प्याला बरबस मेरे हाथोंमें ठूँसा जा रहा है। (कुर्सीमें धँस जाता है।)

मा—(जोशमें खड़ी हो जाती है) शरम करो, शरम करो। हमें दोषी ठहराते तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम्हें हमारी सेवा सेवा नहीं मालूम होती। हम सारा-सारा दिन काम करते रहें, सारी-सारी रातें जागते रहें, वह किसी गिनतीमें ही नहीं ! मैं कहती हूँ, जो हालत तुमने पैदा कर रखी है, उसमें तुम्हारी मा तो क्या, स्वयं धन्वन्तरी भी चलकर आयें, तो उसे निरोग न कर सकें। ज़रा अपने गरेबाँमें मुँह डालकर देखो। सोचो, बीमार स्त्री तीमारदारी ही चाहती है क्या, सूखी तीमारदारी ही चाहती है क्या ? वह क्या चाहती है, यह तुम भलीभाँति जानते हो ; परन्तु तुम मस्तिष्क रखते हुए भी उससे काम नहीं लेते। समझनेकी शक्ति रखते हुए भी समझनेका प्रयास नहीं करते !

शान्तिलाल—क्या समझनेका प्रयास नहीं करता ?

मा—यही कि बीमार नारी क्या चाहती है।

शान्तिलाल—क्या चाहती है ?

मा—वह चाहती है कि उसका पति उसके पास रहे। उसके सिरहाने बैठे, उसकी सेवा-शुश्रूषा करे और इन सबसे बढ़कर उसे तसल्ली दे। उसे बताये कि वह उसके साथ है। चाहे दुनिया उसका साथ छोड़ दे, रिश्ते-नातेदार उसकी बीमारीसे ऊब जायें ; पर वह न ऊबेगा, वह न घबरायेगा, उसके व्यवहारमें अन्तर न आयेगा। वह उससे उतना ही प्रेम करेगा, जितना पहले करता था ; उसका उतना ही ख़याल रखेगा, जितना पहले रखता था।

शान्तिलाल—क्या मैंने ऐसा नहीं किया, क्या मैंने निरन्तर कई रातें उसके सिरहाने बैठकर नहीं गुज़ार दीं ?

मा—हाँ, गुज़ार दी हैं, और शायद इसीलिए इसी जन्ममें उससे अपने अहसानका बदला भी ले रहे हो और जीते-जी उसके सीनेपर सौत····

कमरेसे रेखा निकलती है और तेजीसे आँगनकी ओर जाती है। मुख क्रोधके कारण लाल हो गया है।

शान्तिलाल—रेखा ! (खड़ा हो जाता है।)

रेखा नहीं सुनती, नहीं देखती, बढ़ी जाती है।

शान्तिलाल—रेखा, रेखा !

एक बार देखती है और चली जाती है।

शान्तिलाल उसके पीछे जाता है।

मा—उसे देखते जाओ, उसे तसल्ली देते जाओ ; उसकी दशा ठीक नहीं, वह न बचेगी।

शान्तिलाल नहीं सुनता है और चला जाता है। मा निराश होकर बैठ जाती है। दूसरे दरवाजेसे ऊषा प्रवेश करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊषा—मा—भौजी !

मा—छाया ?

ऊषा—हाँ ।

मा—क्या है ?

ऊषा—तुम चलो ।

मा—कहो, कहो, घबराई हुई क्यों हो ?

ऊषा—मा, वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे छतको, दीवारोंको, मुझको इस तरह देखती है कि मुझे डर लगता है । उसकी आँखोंके कोनोंमें आँसू हैं और मैं उसे धीरज नहीं बँधा सकती ।

मा—(दीर्घ निःश्वास लेकर) अभागी बहू, मरते समय भी तेरी क़िस्मतमें चैन नहीं ! (फिर दीर्घ निःश्वास लेती है । ऊषासे—) चलो ।

दोनों छायाके कमरेको चली जाती हैं । आँगनसे शान्तिलाल रेखाका हाथ पकड़े प्रवेश करता है । आकर कुर्सीपर बैठ जाता है । रेखा खड़ी है और दूसरी ओर मुँह किये हुए है ।

शान्तिलाल—रेखा !

रेखा—(चुप)

शान्तिलाल—रेखा ! (स्वर भर्राया हुआ है ।)

रेखा—(फिर चुप) ।

शान्तिलाल—(रेखाके हाथको झटककर) रेखा, रेखा !

रेखा—(उसी भाँति खड़े-खड़े) कहो ।

शान्तिलाल—क्या कहूँ, कुछ सूझता भी हो । मस्तिष्कमें हलचल मची हुई है, कुछ सोच नहीं पाता, कुछ समझ नहीं पाता । मैं क्या कहूँ ?

रेखा—तो कुछ न कहो, मुझे जाने दो ।

शान्तिलाल—रेखा, कुछ न कहूँ ? (स्वर भर्राया हुआ है।)

रेखा—कुछ कहो या मुझे जाने दो । मैं तो पूछती हूँ, कहो, कुछ कहो ; बताओ, क्या कहना चाहते हो ?

शान्तिलाल—तुम भाग क्यों गईं ?

रेखा—मैं जाना चाहती थी ।

शान्तिलाल—नहीं, यह बात नहीं, तुम्हें माकी बातें बुरी लगीं ; पर मैं कहता हूँ, उनकी····

रेखा—नहीं, मुझे किसीकी बात बुरी नहीं लगी । मैं स्वयं जाना चाहती हूँ ।

शान्तिलाल—बहनको इस दशामें छोड़कर भी !

रेखा—मैं रहूँगी, तो बहन न बचेगी ।

शान्तिलाल—तुम चली जाओगी, तो मैं न बचूँगा ।

रेखा—(व्यंगसे मुसकराती है) तुम, ओह, तुम बच सकते हो, तुम्हें कुछ न होगा । तुम जो एक प्रेमिकाकी हड्डियोंपर बैठकर दूसरीसे प्रेम कर सकते हो ! हड्डियाँ ! हाँ, हड्डियाँ ही ! बहनमें अब क्या रखा है ? हड्डियोंका एक ढाँचा समझ लो । तुमने उससे कितना प्यार न जताया होगा, कितने वादे न किये होंगे ; कितनी ही बार कहा होगा—मैं तुम्हारे बिना न जी सकूँगा छाया, तुम्हारे बिना न बच सकूँगा । अब वही तुम अपनी उसी छायाकी उपस्थितिमें एक दूसरीसे मुहब्बत जता रहे हो, उससे कह रहे हो—मैं न बचूँगा ! तुम पुरुष हो, तुम्हारा कोई भरोसा नहीं, तुम पत्थरदिल हो ।

शान्तिलाल—रेखा, मैं पत्थरदिल नहीं, दिल तो कबका पानी हो चुका है ।

रेखा—पत्थरदिल नहीं ; इससे अधिक संगदिली कहीं हो सकती है ? ज़रा सोचो, ज़रा ख़याल करो, बहनका ख़याल करो, बीते दिनोंका ख़याल करो, अतीतकी स्मृतियोंका ख़याल करो, उसकी बीमारीका ख़याल करो, उसकी पल-भरको मिट जानेवाली आकांक्षाओं, हसरतों और अरमानोंका ख़याल करो और फिर अपनी संगदिलीका ख़याल करो ।

शान्तिलाल—तुमने मुझे सब-कुछ भुला दिया है, तुमने मुझे दीवाना कर दिया है ।

रेखा—इसीलिए मैं जा रही हूँ । तुम पागल न बनो, होशमें आओ, अपने कर्तव्यको पहचानो ।

शान्तिलाल—रहो, जाओ मत । जिस तरह कहोगी, करूँगा । यों पागल बनाकर न चली जाओ, मैं कुछ न कर सकूँगा । तुम मेरे पास रहो, मुझे आदेश दो, मैं वैसा ही करता जाऊँगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा—तुम नहीं समझते, नहीं समझते, मेरे रहनेसे बहनको कितना दुःख होगा। तुमने उसके वे शब्द नहीं सुने, उसके हृदयमें उठते हुए तूफानका अनुमान नहीं किया, उसे बेहोश होते नहीं देखा—हा! मैं, उसपर, अपनी बहनपर, बीमार, मरनेवाली बहनपर इतने अनर्थ ढानेवाली हो गई! मुझे मौत क्यों न आ गई, मैं मर क्यों न गई—छोड़ दो, छोड़ दो, मुझे जाने दो।

शान्तिलाल—रेखा, आग लगाकर तुम जाना चाहती हो?

रेखा—मैं कुछ नहीं जानती, मैं कुछ नहीं जानती। तुमने मुझे अपना कर्तव्य भुला दिया है। तुमने, तुम्हारी मीठी, मादक, बातोंने, तुम्हारे जादू-भरे शब्दोंने मुझे अपने-आपमें नहीं रखा। पर अब नहीं। मैं स्वयं जली जा रही हूँ, यहाँसे जाकर भी मैं सुखी न रह सकूँगी, मैं जलती रहूँगी; लेकिन मैं जाऊँगी, यह अनर्थ है, यह अन्याय है।

(हाथ छुड़ाकर भाग जाती है।)

शान्तिलाल—(उठकर उसके पीछे जाता है) रेखा!

रेखा—(आँगनसे) मेरे पीछे मत आओ, बहनके पास जाओ।

शान्तिलाल—रेखा, रेखा!

(उसके पीछे जाता है।)

पहले दरवाज़ेसे मा प्रवेश करती है।

माँ—शान्तिलाल, शान्तिलाल, वह तुम्हें बुलाती है, वह तुमसे कुछ कहना चाहती है। (कमरेमें इधर-उधर देखकर)—हैं, अभी नहीं आया!

आँगनके दरवाज़ेसे निकल जाती है। पहले दरवाज़ेसे ऊषा प्रवेश करती है।

ऊषा—माँ, माँ!

माँके पीछे आँगनको जाती है, आहिस्ता-आहिस्ता घिसटती हुई छाया प्रवेश करती है, किवाड़का सहारा लेकर खड़ी होती है।

छाया—(उन्मादिनीकी भाँति) तुम न आओ, तुम न आओ। मैं स्वयं आती हूँ। दोष मेरा है। तुम रुष्ट हो, किन्तु मरनेवालीसे रोष कैसा? (खाँसती है) तुम्हें क्रोध होगा। मैंने तुमपर सन्देह किया, अपनी माँ-जाईको अविश्वासकी निगाहोंसे देखा; लेकिन मैं मौतकी अँधेरी खोहपर खड़ी हूँ। जाने कब अथाह तारीकीमें गुम हो जाऊँगी, मैं होशमें नहीं हूँ। (ज़ोरसे खाँसती है) मुझे क्षमा कर दो। तुमने मेरी बहुत सेवा की, सात जन्म इसका बदला न चुका सकूँगी। ईश्वर करे, अगले जन्ममें फिर तुम्हारी दासी बनूँ और तुम्हारी सेवा करते-करते प्राण दूँ।

सरमें चक्कर आता है, बैठते-बैठते गिर पड़ती है। मा आँगनसे दौड़कर आती है।

मा—छाया, छाया!

ऊषा—(भागकर आती है) भौजी, भौजी!

छाया धीरे-धीरे आँखें खोलती है, साँस चढ़ी हुई है। मा उसका सर अपनी गोदमें रखती है।

छाया—मा, मेरे सब दोषोंको क्षमा कर देना। मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है।

मा—आराम कर बेटी, तू थक गई है।

छाया—बस, अब आराम ही करना है, अनन्त विश्रामकी गोदमें सोना है, अपने पाँव इधर लाओ मा, उनकी धूल अपने माथेपर लगाऊँ।

माँ रोती है, छाया उसके पाँवोंकी धूल अपने मस्तकको लगाती है।

छाया—माँ, मैंने उनपर सन्देह किया, व्यर्थ ही उन्हें दोष दिया। उनसे कहना मुझे क्षमा कर दें, मैं मर रही हूँ।

माँ—उस पापीका नाम न लो, राम-राम कहो।

छाया—वे आयें तो उनके चरणोंकी धूल मेरे माथेपर लगा देना।

(आँखें बन्द हो जाती हैं।)

माँ—छाया, बेटी! (रोने लगती है)

ऊषा—भौजी, भौजी! (रोती है)

माँ—(सिसकते हुए) बस, स्नेह समाप्त हो गया, दीया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुझ गया। ऊषा, रोशनी बुझा दो, इसे आँगनमें ले चले।

ऊषा बिजलीका एक बटन दबाती है, एक बल्ब बुझ जाता है, दो स्त्रियाँ प्रवेश करती हैं।

एक—मर गई।

माँ—केवल रोती है।

दूसरी—बेचारीने बड़ा दुःख पाया।

ऊषा दूसरा बटन दबाती है। सब शवको उठाकर ले जाती है। ऊषा तीसरी बत्ती बुझाती है। कमरेमें अँधेरा हो जाता है, केवल आँगन और उधरके झरोखोंसे प्रकाशकी क्षीण रेखाएँ ड्राइंग-रूमको थोड़ा-सा रोशन रखती हैं।

शान्तिलाल प्रवेश करता है।

शान्तिलाल—चली गई! रेखा भी चली गई, छाया भी चली गई! चारों ओर अँधेरा है, चारों ओर तारीकी है, केवल मैं इस अन्धकारमें भटकनेके लिए रह गया हूँ। छाया देवी थी, रेखा भी देवी थी, मैं ही नीच हूँ, मैं ही पापी हूँ।

(कुर्सीमें धँस जाता है।)

[पटाक्षेप]

परित्यक्ता

श्रीमती होमवती

कहतीं सब अति मधुर सुखद है, अरी सखी! प्रियतमका प्यार;
किन्तु समझ ना पाई मैं कुछ कैसा है वह सरस दुलार!
देखा कभी झाँक अन्तरको, अरी! चाहकी आँखोंसे;
पर न मिला पथ सजनि! वहाँका पूछ फिरी मैं लाखोंसे।
गूँथ-गूँथकर हार गई हा! प्रेम-सुमनका मंजुल हार;
बजते-बजते टूट गये सब उर-तन्त्रीके कोमल तार।
अर्घ अनेकों ही दे डाले अश्रु-कणोंकी भर प्याली;
पर ठुकराते रहे सदा वह मेरी पूजाकी थाली।
कुछ तो यत्न बताओ सजनी! रूठे प्रियतम मन जावें;
अपना मुझे बना लें या फिर मेरे ही वह बन पावें।
या फिर उनके पद-पद्मोंपर चढ़ा सकूँ यह जीवन-फूल;
कंटक बनकर पड़ूँ न पथमें, बन जाऊँ चरणोंकी धूल।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताका प्रेम

श्री श्रीकृष्ण पारख

तीसरे जार्जके ज़मानेकी बात है। ब्रिस्टल नगरके पास एक सुन्दरी युवती रहती थी। वह बहुत ही हठीली और अभिमानिनी थी। उसके माता-पिता तो थे नहीं, इसलिए वह अपने चचाके पास रहती थी। युवती कन्याके आरामका चचा ख़ूब ध्यान रखते थे, और उन्होंने उसे बहुत-कुछ स्वतन्त्रता दे रखी थी।

एक बार वह सुन्दरी युवती अपने चचाके मकानके समीपवाले जंगलमें घोड़ेपर चढ़ी घूम रही थी। एक छोटा-सा लड़का नौकर उसके साथ था। संयोगवश एक गिरे हुए पेड़की जड़से ठोकर खाकर घोड़ा गिर पड़ा। युवती भी ज़मीनपर जा पड़ी; पर उसे अधिक चोट नहीं लगी। उधरसे जाते हुए एक भले आदमीने यह देखा, तो वह उसकी सहायताके लिए दौड़ पड़ा और कुमारीको उठाकर उसके घर तक पहुँचा आया। वह पुरुष डच जातिका था और पासके एक ज़मींदारके यहाँ ठहरा हुआ था। दक्षिणी अमेरिकाके तटपर वह खेती-बारी करता था और कार्यवश या सैर-सपाटेके लिए अक्सर इंग्लैण्ड चला आया करता था।

धीरे-धीरे हेमिअर-परिवार (युवतीके चचाका कुटुम्ब) से उसकी मित्रता बढ़ती गई। युवक और युवती दोनोंके ही हृदयमें कोमल भाव उदय होने लगे और शीघ्र ही उनमें घनिष्ठता हो गई। विदेशी युवक एन्डरलिंग रसिक स्वभावका था। वह अपने मनोभावोंको छिपाता-सा दिखाई पड़ता था; पर यह बात छिप न सकी कि पत्थरपर पड़ी हुई खुरेंचकी अपेक्षा कुमारी मेरिया हेमिअरकी छाप उसके हृदयपर कहीं अधिक गहरी पड़ चुकी है। युवक रह-रहकर सोचता कि उन दोनोंका संयुक्त होना बिलकुल असम्भव है; पर युवतीका प्रेम-बन्धन भी बड़ा ज़बरदस्त था। युवकपर अपनी मोहक शक्तिका प्रभाव देखकर मेरियाको बड़ा आनन्द आता था; मगर जब वह उसकी एकान्तमें ली हुई आहोंको सुनती, तो उसे बहुत दुःख भी होता था।

अन्तमें बड़े साहसके साथ युवकने नवयुवती मेरियाको अपना हाथ और हृदय अर्पण कर ही तो दिया। अपने प्रेमीके समान मेरिया विवाहके लिए बहुत उत्सुक तो न थी; पर जब उसके चचाने इस सम्बन्धपर कोई आपत्ति न की, तो वह सुदूर उपनिवेशमें उसकी जीवन-संगिनी बनकर जानेको राज़ी हो गई। सारांश यह कि विवाहका दिन शीघ्र ही निश्चित हो गया, क्योंकि युवकको अपनी ज़मींदारी देखने शीघ्र ही जाना ज़रूरी था।

विवाहके उपरान्त मेरिया अपने चचाके मकानको छोड़कर अपने पतिके साथ पहले तो लन्दन गई और फिर लगभग दो सप्ताह बाद उस सुदूर-स्थित उपनिवेशमें जानेके लिए जहाज़में बैठकर एटलान्टिक पार करने लगी। उसके पतिने उसे यक़ीन दिलाते हुए कहा—"वहाँ हम बहुत दिनों तक नहीं रहेंगे। युद्धके ख़तम हो जानेपर हम वहाँकी सारी जायदाद बेचकर लौट आयँगे और फिर यूरोपके किसी अच्छे नगरमें रहेंगे।"

जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते गये, मेरियाने देखा कि उसका पति अधिकाधिक व्याकुल होता जाता है, और जब यात्रा समाप्त होनेको आई, तब तो वह और भी खिन्न हो गया। पारामारिबोमें उतरनेसे दो-एक दिन पहले उसने भावावेशमें आकर अपनी पत्नीका अश्रुपूरित नेत्रोंसे आलिंगन किया और कहा—"मैं तुम्हें अपने अपराधकी कथा सुनाना चाहता हूँ। छोटी अवस्थामें दुर्भाग्यसे मैंने एक स्त्रीसे क्यूबेकमें विवाह कर लिया था। बादको पता लगा कि वह बड़ी बदनाम और ख़राब औरत है। इस ख़बरने मुझे अधमरा-सा कर दिया; पर अन्तमें उससे मैं अलग हो गया और अभी तक उसे नहीं देखा है। मुझे आशा थी कि वह मर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई होगी, और उसकी मृत्युके लिए मैं प्रार्थना भी करता रहता था ; पर हाल ही में लन्दनसे प्रस्थान करते समय मुझे मालूम हुआ कि वह जीवित है। पहले तो मैंने निश्चित किया कि अपनी प्रियतमाको यह समाचार न सुनाऊँ ; पर मैं ऐसा नहीं कर सकता। मुझे आशा है कि ऐसी परिस्थिति होनेपर भी मेरे प्रति तुम्हारे अनुरागमें कोई अन्तर न पड़ेगा, और न अपने सारे जीवनमें कोई अन्तर पड़ना ही चाहिए।"

यह सुनते ही उस उद्धत स्वभाववाली अभिमानिनी महिलाके हृदयमें भयंकर तूफ़ानकी-सी हलचल मच गई। अपने घरसे इतनी दूर, उष्ण-कटिबन्धमें सूर्यकी प्रखर किरणोंके ठीक नीचे, अन्य स्त्रियोंकी तरह भग्न-हृदय हो बैठ रहना उसके उग्र स्वभावमें था ही नहीं। उन दोनोंमें पति अधिक हताश और दुखित था। उसका मेरियापर गाढ़ा प्रेम था। उसकी अनुपम सुन्दरताके कारण ही, जिसकी मोहक शक्तिसे बचनेकी उसने पहले दिन-रात व्यर्थ चेष्टा की थी, उससे यह अपराध बन पड़ा था। ऐसी स्थितिमें क्या करना होगा, इसका निश्चय पहले-पहल पत्नीने ही किया।

"मैं तुमसे पूछती हूँ,"—मेरियाने अपने पतिकी अत्यधिक विनती और विरोधकी ज़रा भी परवा न करते हुए कहा—"मैं तुमसे पूछती हूँ—अगर तुममें कुछ भी मनुष्यता है—कि जिस दुर्दशामें तुमने मुझे ला पटका है, उसका प्रायश्चित्त करनेके लिए जो मैं उत्तम समझूँ, वही करनेको तुम तैयार हो या नहीं ?"

पतिने वचन दिया कि वह सब-कुछ करनेको तैयार है। तब मेरियाने कहा—"तो फिर मुझे तत्काल लौट जाने दो। पारामारिबोमें पहुँचते ही शीतज्वरसे तुम्हारी मृत्यु हो जानेकी मैं घोषणा कर दूँगी और फिर अपने जन्म-स्थानमें तुम्हारी विधवा बनकर रहूँगी। तुम वचन दो कि तुम कभी मुझे सताओगे नहीं और अपने जीवन-भर संसारके उस भागमें नहीं आओगे। अगर तुम आये, तो क़ानूनी परिणाम ख़राब हो सकता है।"

एन्डरलिंगने तुरन्त ही वचन दे दिया। अपनी आराध्यदेवीको मनानेके लिए वह सब-कुछ करनेको, यहाँ तक कि अपनी जान तक दे देनेको, तैयार था। अपनी पत्नीको समर्थ बनानेके लिए उसने बान्ड और जवाहरातके रूपमें बहुत-सा धन दिया। पारामारिबोमें दूसरा जहाज़ पकड़कर मेरिया इंग्लैण्डको रवाना हो गई। जुदाईके समय पतिने कहा—"अपनी समस्त अचल सम्पत्तिको नक़दीमें बदलकर तुम्हारे प्रति अपने इस व्यवहारके प्रायश्चित्तमें मैं सारे संसारका चक्कर लगाऊँगा।"

मेरिया इंग्लैण्ड लौट आई। उसने अपने आनेकी सूचना तुरन्त अपने चचाको दी, और उनके घरमें विधवाके वेशमें प्रवेश किया। उसकी कहानी सुनते ही सारे पड़ोसके लोग सहानुभूति दिखाने आये। सिर्फ़ अपने चचाको ही उसने वास्तविक बात और उसके छिपानेका कारण बताया। बाक़ी सब लोग अनजान रहे। इस मामलेमें यद्यपि वह बिलकुल निर्दोष थी ; पर उसका गर्व यहाँ तक बढ़ा हुआ था कि सांसारिक व्यवहारमें उसके मूर्ख बनाये जाने, ठगे जाने या धोखा दिये जानेकी बातका सबपर प्रकट हो जाना उसे असह्य लगता था।

कुछ समय तक अपने चचाके साथ वह शान्तिसे रही, और ठीक समयमें उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अपने अभिमान और एकान्तप्रियताके कारण उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसे बहुत-सा धन अपने कुछ दिनोंके पतिसे मिल चुका था। अब वह अपने चचाकी सहायताके बिना उनके मकानके एक भागमें सुखसे रहने लगी ; पर वह अपनी वास्तविक स्थिति जानती थी, इसीसे वह बेचैन रहती और अकसर अपने मनमें सोचा करती—'मान लो, पतिके जीवित रहनेका समाचार यहाँ सबको मालूम हो जाय और लोग यह भी जान लें कि इस घटनाके छिपानेका वास्तविक कारण मेरा अभिमान ही था, तो फिर क्या होगा ? प्रारम्भसे ही मेरे निष्कपट रहनेसे जो परिणाम निकलता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे कहीं बुरा परिणाम अब निकलेगा। इस बच्चेकी वजहसे ही मैं सीधा-सच्चा व्यवहार नहीं कर सकी।'

उसके मनमें ऐसे चिन्ताजनक विचार बार-बार चक्कर काट रहे थे कि एक उच्चवंशके गौरवशाली पुरुष लार्ड आइसेनवेसे उसकी भेंट हुई। जब उन्होंने मेरियासे विवाहकी इच्छा प्रकट की, तो वह तैयार हो गई। उसने विचारा तक नहीं कि लार्ड महोदय उससे उमरमें बहुत बड़े हैं और रूपवान भी नहीं हैं। उसने केवल यही सोचा कि इस विवाहसे उसकी स्थिति दृढ़ हो जायगी, और प्रथम विवाहका भेद खुल जानेपर भी वह अपनी रक्षा कर सकेगी। कुछ ही दिनों बाद उनका विवाह हो गया, और अब मेरियासे लेडी आइसेनवे बनकर वह अपने पुत्रको लेकर अपने नये पतिके भवनमें चली गई, जहाँ उसकी जान-पहचानका कोई भी न था।

विवाहको हुए बहुत दिन न बीते होंगे कि मेरियाके पास उसके पूर्व पति एन्डरलिंगका एक पत्र आया। वह जल्दीमें लिखा हुआ प्रेमपूर्ण पत्र था, और शायद यह अच्छा ही हुआ कि लार्ड आइसेनवेकी गैरहाज़िरीमें वह आया। एन्डरलिंगने लिखा था कि उसकी अधम पत्नीकी अभी हाल ही में क्यूबेकमें मृत्यु हो गई है। उस अभागीका शव देखकर वह इंग्लैण्ड लौट रहा है। अब वह मेरियाके प्रति किये गये अन्यायकी क्षति-पूर्ति करेगा। उसने लिखा कि मेरिया साउथेम्पटनके बन्दरगाहमें आकर उससे मिले। साथ ही यह भी लिखा कि अब उसने अपना नाम बदल लिया है, और यूरोपमें शायद ही कोई उसे जानता हो। वह तत्काल उसके साथ पुनः पाणिग्रहण करेगा, और जैसा कि पहले सोचा था, यूरोपके किसी अच्छे नगरमें रहेगा और जीवनके शेष दिन उसकी सेवामें ही बितायेगा।

लेडी आइसेनवे इस समाचारसे बेचैन हो उठी। ज्यों ही उसने सुना कि जहाज़ तटपर से दीखने लगा है, वह अपने पूर्व पतिसे मिलनेसे लिए अकेली चल दी। जब वे दोनों एक दूसरेके सामने खड़े थे, तो लेडी आइसेनवेने देखा कि एन्डरलिंगको मुग्ध करनेकी शक्ति अब भी उसमें पहले-जैसी ही है। इसके विपरीत उसे प्रभावित करनेकी शक्ति एन्डरलिंगमें ज़रा भी नहीं रही।

उसपर अपना पूरा प्रभाव देखकर लेडी आइसेनवे बोली—"अपने अपराधके प्रायश्चित्तमें पहले शपथ करो कि मैं जैसा उचित समझूँ, वही तुम्हें करना होगा।" यह सोचकर कि मेरियाका अभिप्राय वास्तविक विवाह करनेसे होगा, उसने शपथ ले ली। तब लेडी आइसेनवेने बताया कि एक दूसरे पुरुषसे उसका विवाह हो चुका है। उसके पति एक कुलीन घरानेके माननीय व्यक्ति हैं, और अपने विवाहसे वह ख़ूब प्रसन्न है।

यह सुनते ही उस बेचारे विदेशीका मुँह पीला पड़ गया; उसका हृदय कुम्हला गया। मेरियाकी सुन्दरता और अभिमानी स्वभावके कारण ही उसे प्राप्त करनेके लिए पहले वह पापकर्ममें प्रवृत्त हुआ था, और अब जब कि उसका रूप अधिक विकसित हो गया था और अपनी सफलतासे वह अधिक उद्धत हो गई थी, एन्डरलिंगको उसकी मनोमोहक शक्ति असह्य-सी प्रतीत हुई। पर वह वचन दे चुका था, इसलिए उसकी आज्ञा माननेको तैयार हो गया। शपथ वही पुरानी थी। वह किसी विदेशमें चला जाय और अपना अस्तित्व मेरियाके मित्रों, लार्ड आइसेनवे या इंग्लैण्डके किसी भी निवासीपर प्रकट न करे। वह उसे कभी न सताये और ध्यान रखे कि इस वचनके उल्लंघनसे उच्चवंशमें विवाहित मेरियाकी हानि हो सकती है।

एन्डरलिंगने अपना सिर झुका लिया और कहा—"और बच्चा—हमारा बच्चा?" दुःखसे वह और अधिक बोल न सका।

"भला-चंगा है," मेरियाने कहा—"बिलकुल अच्छा है।"

इतना सुनकर वह नेक विदेशी वहाँसे चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंग्लैण्डका सफ़र करते हुए उसके दिलका जो हाल था, उससे कहीं ज़्यादा अब वह दुखी था। उसने कल्पना भी न की थी कि उसकी पत्नी मेरिया, उसके बच्चेकी माता बन जानेके बाद, अपने गौरवकी रक्षाके लिए, इतने थोड़े समयमें ऐसा अनोखा मार्ग ग्रहण कर लेगी। उसे क़ानूनके मुताबिक और वास्तवमें अपनी पत्नी बनानेका उसने पक्का इरादा कर लिया था। मेरिया और अपने बच्चेके साथ, जिस बच्चेको उसने पहले कभी देखा न था, आनन्दपूर्वक रहनेका उसका विचार था।

लेडी आइसेनवे अपने घर लौट आई, और इस भेंटके बारेमें अपने प्रतिष्ठित पतिसे उसने एक शब्द भी नहीं कहा। सौभाग्यसे पति महोदय उस दिन भी मौजूद न थे, इसलिए उन्हें कुछ मालूम भी न हुआ।

एक दिन जाड़ेकी ऋतुमें, जब लार्ड आइसेनवे अपने भवनसे दूर, शिकारको गये हुए थे, उनकी पत्नी छतपर धूपमें टहल रही थी। इतनेमें एकाएक उसके पैरोंके पास कोई सफ़ेद-सी चीज़ गिरी, जो पासकी दीवारके ऊपरसे आई थी। उसने उठाकर देखा, तो पत्थरमें लपेटा हुआ वह एक छोटा-सा पत्र निकला। लेडी आइसेनवेने पत्र खोलकर पढ़ा, और छतपर जल्दीसे चलती हुई दरवाज़ेसे निकलकर एक झाड़ीके पास पहुँची, जहाँसे वह पत्र आया था। झाड़ीके नीचे और उनके सामने वही पुरुष खड़ा था, जो पहले उससे विवाह कर चुका था।

"तुम मुझे बदला हुआ पाती हो, मेरी दुलारी!" उसने फिर कहा—"हाँ, मेरिया, यूरोपके नरक-समान जुआघरोंमें तुमने मुझे ज़बरदस्ती ठेल दिया। जुआ खेलकर मैं अपना सारा धन गँवा चुका हूँ; पर संसारमें एक चीज़ मेरी और रह गई है। वह है मेरा बच्चा, और उसीके लिए मैं यहाँ आया हूँ। प्रिये, मुझसे डरो नहीं। मैं देर तक तुम्हें हैरान नहीं करूँगा। मैं तुमसे अत्यन्त प्रेम करता हूँ; पर रात-दिन बालकका ध्यान मुझे रहता है। मैं लाचार हूँ, उसके प्रति अपने भावोंको मैं दबा नहीं सकता। अपने जीवनमें एक बार मैं उसे देखना चाहता हूँ और उससे दो शब्द कहना चाहता हूँ।"

"किन्तु तुम्हारी शपथ?" लार्ड-पत्नीने कहा—"तुमने शब्द या संकेत द्वारा अपनेको प्रकट न करनेका वचन दिया था—"

"मैं कुछ भी प्रकट नहीं करूँगा। मुझे बालकको देख भर लेने दो। निर्दयी स्वामिनी, मैंने तुम्हें वचन दिया है और उसे पूरा करनेका मुझे पूरा ख़याल है। नहीं तो किसी तदबीरसे अब तक मैंने उसे देख लिया होता; पर तुम्हारी आज्ञा लेकर देखनेका स्पष्ट उपाय ही मैंने ठीक समझा।"

उग्र निष्ठुरताके साथ वह कुछ झिझकी। दर्पयुक्त कठोरता उसके चरित्रका एक अंग ही बन गई थी, और उच्च-कुलकी पदवी प्राप्त हो जानेसे घटनेके बजाय वह कठोरता अधिक बढ़ गई थी। उसने कहा—"मैं तुम्हारी प्रार्थनापर विचार करूँगी, और दो दिन बाद मेरे पति शिकारपर चले जायँगे, तो इसी जगहपर इसी समय जवाब दूँगी।"

धीरजके साथ उस भोले विदेशीने यह बात मान ली। लेडी आइसेनवेका अब उसके प्रति ज़रा भी प्रेम नहीं रह गया था। बहुत सोचने-विचारनेके बाद उसने तै किया कि ऐसे स्नेहशील हृदयवाले पुरुषके साथ अधिक कठोरता करना ठीक न होगा। अपने कहनेके मुताबिक़ उसी दिन ठीक वक़्तपर वह उससे मिली।

"तुम बालकको देख सकोगे।"—लेडी आइसेनवेने कहा—"पर तुम अपनेको प्रकट न कर सकोगे। तुम उसे देखोगे, पर वह तुम्हें न देख सकेगा। अगर ऐसा न किया गया, तो तुम्हारे व्यवहारसे तुम्हारा और मेरा भेद खुल जायगा। तीसरे पहरके समय मैं उसे थपकी देकर सुला दूँगी और फिर मैं तुम्हारे पास यहाँ आकर एक गुप्त द्वारसे आन्दर ले चलूँगी।"

उस अभागे विदेशीका अनाचार इस तरह उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गले मढ़ा जायगा, ऐसा उसने कभी सोचा भी न था। लाचार वह लेडी आइसेनवेके उपदेशानुसार चलनेको राज़ी हो गया और झाड़ीके नीचे अपने बुलाये जानेकी बड़ी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करता रहा। लार्ड-पत्नी ठीक समयपर तीन बजेके क़रीब आई और बाग़के दरवाज़ेसे एन्डरलिंगको अन्दर ले गई। फिर ऊपर चढ़कर शिशु-गृहमें पहुँची, जहाँ बच्चा सोया हुआ था। वह छोटेसे पालनेमें आहिस्ता-आहिस्ता साँस ले रहा था। उसका हाथ सिरके ऊपर पड़ा हुआ था और रेशम-से घुँघराले बाल तकियेसे दबे हुए थे। उसका दयनीय पिता उसके ऊपर झुक गया और उसकी आँखोंकी एक बूँद चादरपर टपक पड़ी।

ज्यों ही वह अपना मुख बालकके होठोंके पास ले गया, मेरियाने अपनी निषेध-सूचक उँगली उठाई।

"किन्तु आह! क्यों नहीं?"—उसने प्रार्थना की।

"तो फिर अच्छा,"—मेरियाने दया दिखाते हुए कहा—"पर जहाँ तक हो, कोमलतासे।"

जगाये बिना पिताने पुत्रको चूम लिया। एक बार बच्चेकी ओर फिर देखकर वह मेरियाके पीछे-पीछे कमरेके बाहर निकल आया और जिस राहसे आया था, उसी राहसे बाग़के अहातेके बाहर हो गया।

अपने ही पुत्रसे अपरिचित रहनेसे उसका हृदय अत्यन्त खिन्न रहता था। अपनी इस खिन्नताको दूर करनेका जो इलाज उसने किया, उससे पिताका रोग और दूना बढ़ गया। बालकसे अनजान रहनेके कारण जहाँ पहले वह अपने पुत्रसे अस्पष्ट रूपसे कल्पनामें ही प्रेम करता था, अब अन्य माता-पिताके समान वह बालकके शरीरके मोहमें फँस गया। इस भावने कि वह बालकको, थोड़ी देरके लिए ही सही, देख सके, उसे विह्वल कर दिया और उसकी शपथ भंग होती हुई-सी दिखाई पड़ने लगी; किन्तु मेरियाके प्रति उसका इतना अधिक आदरका भाव था और उसे धोखा देनेकी इतनी घृणा थी कि उसने बलपूर्वक अपने हृदयको क़ाबूमें रखा। अपने अकेलेपनके कारण उसका सारा प्रेम उस बालकके प्रति, जो उसे जानता तक न था, और उस स्त्रीके प्रति, जो उसे प्रेम करना छोड़ चुकी थी, मातृ, पितृ तथा पत्नी-प्रेमके रूपमें प्रवाहित होने लगा।

अन्तमें यह अपूर्व दंड उस बेचारे विदेशी एन्डरलिंगको इतनी दारुण वेदना देने लगा कि अपनी पूर्वपत्नीके सम्मानका ध्यान रखते हुए दण्डकी कठोरता कम करनेका उसने निश्चय कर लिया। बाग़वानीके कामोंका पहले उसे बहुत शौक़ था। अब अपना तमाम धन गँवा बैठनेके बाद वह इंग्लैण्डमें इसी धन्धे द्वारा अपने ख़र्चके लिए थोड़ा-बहुत पैसा पैदा कर लेता था। एकाएक उसे एक नया विचार सूझ पड़ा। उत्साहके साथ वह मालीका काम सीखने लगा और कुछ ही महीनोंमें वह इस काममें बहुत होशियार हो गया। इसी बीचमें लार्ड आइसेनवेके बाग़में एक मालीकी जगह ख़ाली हुई। लार्ड-पत्नीके अनजानमें अपनी मीठी बातों और चतुराईसे वह उस जगहपर रख लिया गया। इसीलिए लेडी आइसेनवेको बड़ा अचम्भा हुआ, जब दो-एक सप्ताह बाद उसने उसे अपने भवनके बागमें काम करते हुए देखा। पहले तो अहंकारसे उसने उसे तुरन्त निकल जानेकी धमकी दी; पर दुबारा विचार करनेपर न निकालना ही ठीक समझा। वह समझ गई कि इस भाँति नौकरी करते हुए वह ज़रा भी हानि न पहुँचायेगा; पर अगर उसे निकाल दिया, तो मनोवेदनासे व्यथित होकर एक क्षणमें वह सारा भेद खोल देगा।

एन्डरलिंग बाग़में मालीका काम करता रहा। एक छोटी-सी कुटिया उसे रहनेको मिल गई। यहाँ वह बिलकुल अकेला रहता था और छुट्टीका वक्त पढ़नेमें लगाता था। अपने बालकके आकारकी झलक पा जानेके लिए वह लेडी आइसेनवेके भवनकी खिड़कियों और घासके मैदानकी ओर ही नज़र गड़ाये रखता। बालकके लिए रोमन कैथोलिक धर्म छोड़कर उसने वहाँके गिरजेमें नियमसे जाना शुरू कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरजेमें लार्ड और लेडी तथा लार्ड महोदयके सौतेले बेटेके पीछे कुछ ही फीटकी दूरीपर बैठा हुआ माली उस बालककी सूरत और चाल-ढालको बिना किसी रुकावटके और बिना शक पदा किये हुए देखता रहता था।

दो साल तक एन्डरलिंग खुशी-खुशी मालीका काम करता रहा। इस खुशीमें दुःख मिला हुआ था, फिर भी उसे बड़ी तसल्ली मिल जाती थी। मेरियाने कभी उसे माफ़ नहीं किया और न उसे अपने बच्चेके प्रति मालीके सिवा किसी और रूपमें प्रकट होने दिया। बालकने दो एक बार कहा भी था—"मालीकी आँखें कैसी भारी रहती हैं! वह मेरी तरफ़ ऐसी दुःख-भरी निगाहोंसे क्यों देखा करता है?"

मेरियाके तिरस्कारको प्रेम ही समझकर एन्डरलिंग पुलकित होता रहा। उसका एक-आध मधुर शब्द सुनकर ही उसके कानोंको प्रेमपूर्ण काव्यका-सा आनन्द मिल जाता था। बड़ी विचित्र बात यह हुई कि वह एन्डरलिंगका जितना अनादर करने लगी, अब उसके प्रति लार्ड महोदय मेरियाके प्रति उतने ही उदासीन रहने लगे। लार्ड आइसेनवेको अपने उत्तराधिकारीकी बड़ी चिन्ता थी; पर अभी तक उत्तराधिकारी पैदा होनेके कोई लक्षण दिखाई न देते थे। एक दिन अपने भाग्यको कोसते हुए अपनी पत्नीसे उन्होंने कहा—"उस मन्दबुद्धि बालकको ही यह सब मिलेगा। इससे तो मैं अपना नाम और पद समुद्रकी तलीमें डूबा हुआ देना अच्छा समझूँगा।"

अपने पतिको सान्त्वना देती हुई लेडी आइसेनवे विचारमग्न हो गई, और लार्ड महोदयपर उल्टा कोई दोष नहीं लगाया। शीघ्र ही एक दिन वह मालीकी कुटियामें उसका हाल पूछने गई। वह कुछ दिनोंसे बीमार था। सब समझते थे कि हालत चिन्ताजनक नहीं है। लेडी आइसेनवे ग़रीबोंके यहाँ अकसर जाया करती थी; पर मालीके पास इससे पहले वह कभी नहीं गई थी। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ—आश्चर्य ही नहीं, सन्ताप और भय भी हुआ—कि वह अपनी शय्यासे उठ तक न सकता था। वह घर लौट गई और थोड़ा-सा शोरवा लेकर फिर वापस आई।

उसकी हालत इतनी नाज़ुक थी और उसका मुख इतना सूख गया था कि मेरियाके पिघलते हुए हृदयको बड़ा धक्का लगा। उसकी ओर एकटक देखते हुए वह बोली—"तुम अच्छे हो जाओ, ज़रूर अच्छे हो जाओ। मैं जानती हूँ, अब तक मैं तुम्हारे साथ बहुत कठोर रही हूँ; पर अब इतनी निर्दयी न बनूँगी।"

बीमार और मरते हुए विदेशीने—वह वास्तवमें मृत्युकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था—मेरियाका हाथ पकड़कर अपने होठोंसे लगाया—"तुम बहुत देरमें आईं, प्रिये, बहुत देरमें।" उसने क्षीण स्वरमें कहा।

"पर तुम मरो मत, मरो मत!"—मेरियाने फिर कहा, और मनोवेगसे व्याकुल होकर उसके मुखपर झुक गई।

हल्की क्षीण होती हुई मुसकराहटके साथ उसने कहा—"आह! तुमने पहले ही मुझसे यह क्यों नहीं कहा? समय था....पर अब बीत चुका है। मुझे मरना ही होगा।"

वास्तवमें दो-चार दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। तब अपनी कठोरतापर मेरियाको बड़ा दुःख होने लगा और वह पछताती हुई अकेलेमें गुप्त रूपसे अपने-आपको बुरा-भला कहने लगी। उसकी स्मृतिमें कोई स्मारक बनवानेकी अब उसकी बड़ी इच्छा हुई। ऐसा स्मारक, जिससे यह न कहा जा सके कि वह उसका ही बनवाया हुआ है। कुछ महीने बाद गिरजाके लिए एक सुन्दर काँचका पारसल आया। जब वह खोलकर इमारतमें लगा दिया गया, तो लार्ड आइसेनवे अपनी पत्नीके साथ घूमते हुए वहाँ पहुँचे।

" 'उसकी शोकाकुल विधवाने उसकी स्मृतिमें निर्मित किया' "—लार्ड महोदयने मालीके नामके साथ काँचपर लिखे हुए शब्दोंको पढ़ते हुए कहा—"मुझे पता भी न था कि उसके पत्नी भी है। मैंने उसे कभी नहीं देखा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, तुमने अवश्य देखा होगा, आइसेनवे, सिर्फ तुम भूल रहे हो।"—उनकी पत्नीने कोमलतासे कहा—"मगर वह उसके साथ नहीं रहती थी और न कभी उसके पास आती हुई दिखाई पड़ती थी। उन दोनोंमें मतभेद हो गया था। इसी कारण उसके न रहनेपर वह अब और भी अधिक दुखी है।"

"और काँचके ऊपर लाल और नीले रंगके क़ीमती बेल-बूटे बनवाकर अपना धन नष्ट कर रही है।"—लार्ड आइसेनवेने शान्तिपूर्वक कहा।

"लोग कहते हैं कि वह धनहीन नहीं है।"—यह उत्तर देकर लेडी आइसेनवे लौट पड़ी।*

* टामस हार्डीकी एक कहानी।

तिब्बत-प्रवेश

श्री अभयसिंह परेरा

हम लोगोंने १५ अप्रैल सन् १९३६ को काठमाण्डूसे तिब्बतके लिए प्रस्थान करना निश्चित किया था। रास्तेके लिए कुछ खाने-पीनेके सामानका प्रबन्ध किया। श्रीयुत राहुलजीने अपने तिब्बती मित्रोंको उपहार देनेके लिए साबुन, किशमिश आदि चीजें खरीदीं। तिब्बतमें दवाओंका उपयोग होता ही नहीं। साथमें कुछ जरूरी दवाएँ भी रख लीं।

तिब्बत जानेके लिए मौसम भी अनुकूल था। हिमालयके बर्फीले दर्रे भी साफ हो गये थे। सामान ढोनेके लिए जीलम् तकके लिए तीन कुली भी ठीक कर लिये थे। यह तै हुआ था कि १५ अप्रैलको बड़े सवेरेसे कुलियोंको असबाबके साथ रवाना कर दिया जाय और हम लोग मोटरपर 'शाखु' तक जाकर, जो काठमाण्डूसे आठ मील दूर है, कुलियोंसे मिल जायँ; फिर वहाँसे पैदल यात्रा शुरू हो। १५ अप्रैलको सवेरे कुली आये। उन्होंने असबाब नीचे उतारकर रखा और फिर तकरार करने लगे। राहुलजीने उनकी बेसिर-पैरकी हुज्जत सुननेसे साफ इनकार कर दिया। नतीजा यह हुआ कि कुली असबाब छोड़कर चल दिये।

'प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः'—यात्राके शुरूमें ही यह विघ्न उपस्थित हुआ। यात्राके खत्म होने तक न-जाने क्या-क्या विघ्न सामने आयेंगे। शकुन तो अच्छा न था, क्योंकि इतनी लम्बी और कठिन यात्राके लिए काठमाण्डूमें एकाएक कुली मिलना टेढ़ी खीर है। हमारे यात्रा-प्रोग्राममें गड़बड़ी होती दीख पड़ी। श्री साहु धर्ममान के मझले भाई श्री साहु ज्ञानवान उस समय आड़े आये। उन्होंने बहुत दौड़-धूप करके चार कुलियों-को ठीक किया। ये कुली भोट (तिब्बत) से काठ-माण्डूको नमक लेकर आये थे और अब वापस अपने घरको जा रहे थे। उनका घर काठमाण्डूसे तीन दिनके रास्तेपर था। चार कुलियोंमें से दो तो छोटी उम्रके लड़के ही थे। मैंने राहुलजीसे कहा—"इन लड़कोंका बोझ लादकर पहाड़पर चढ़ना असम्भव है।"

राहुलजी बोले—"डरो नहीं, ये लोग पहाड़ी हैं। अभी तुमने पहाड़ियोंको देखा नहीं।"

खैर, कुलियोंको रवाना किया। दोनों लड़कोंने एक भारी बोझको दो हिस्सोंमें बाँटकर लाद लिया। १२ बजे हम लोगोंने अपने मेज़बान साहु धर्ममानजीसे विदा ली। वृद्ध साहुने बहुत आदर और प्रेमके साथ हमें विदा किया। अब हम लोग राजगुरु पण्डित हेमराज शर्मासे विदा लेनेके लिए चले। राजगुरु महोदय हम लोगोंकी भोट-यात्रामें बहुत दिलचस्पी लेते थे, जो उनके समान विद्वान और विद्याविलासी व्यक्तिके लिए स्वाभाविक ही था। हेमराजजीने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपाल और तिब्बतके बीच, मार्गका एक सुन्दर झरना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर—मार्गमें एक गाँवके प्रवेश-द्वारपर, नीचे—रास्तेका एक घना जंगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

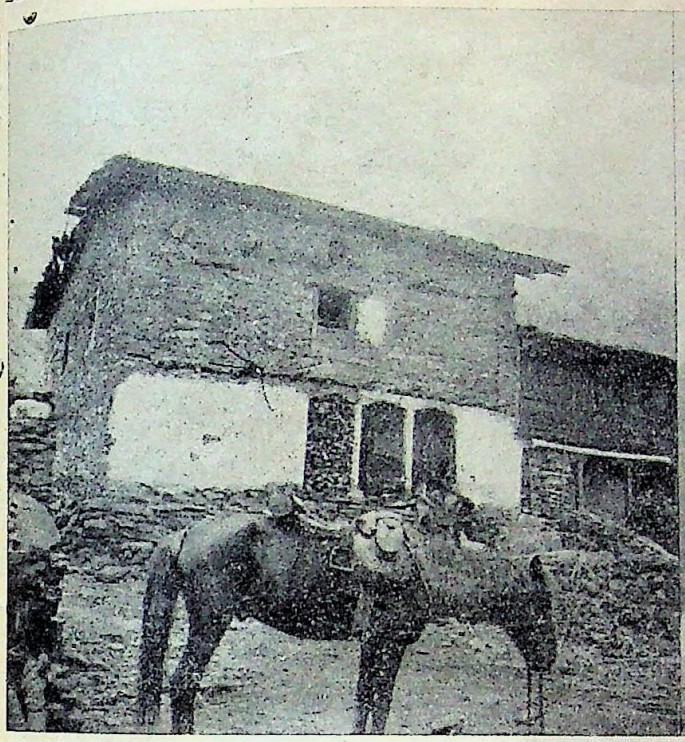

चौतरा—एक नेपाली घर

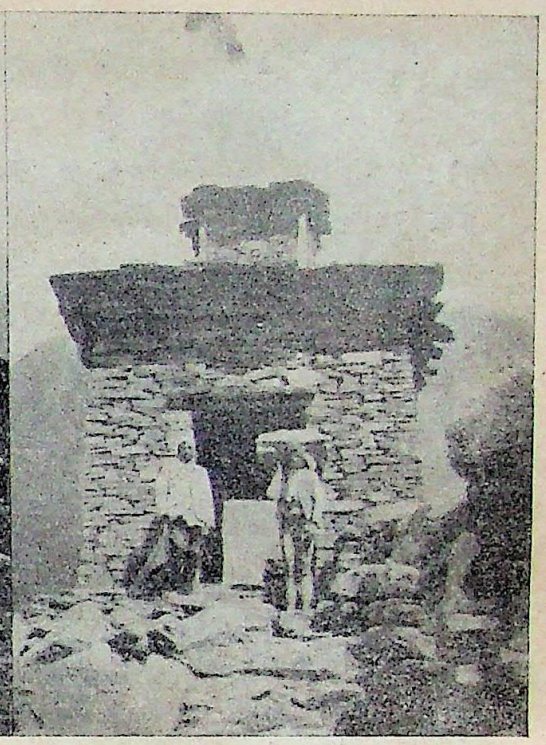

दरवाज़ा, जिसके भीतरसे रास्ता जाता है

सदिच्छा प्रकट करते हुए हमें बहुत उत्साहवर्धक उपदेश दिये और अन्तमें कहा—"हमारे नेपालका दस्तूर है कि जब कोई व्यक्ति किसी बड़े कामके लिए यात्रा करता है, तो चलते समय उसके हाथ फलोंसे भर दिये जाते हैं, जिसका अभिप्राय यह होता है कि उसका मनोरथ सफल हो।" यह कहकर गुरुजीने हम लोगोंके हाथ फलोंसे भर दिये। हमने भी सिर झुकाकर विदा ली और शाखुको रवाना हुए।

शाखु काठमाण्डु उपत्यकामें बसा हुआ एक विशाल ग्राम है। यहाँ प्राचीन कलाका अभास देनेवाले स्थान भी हैं। शाखु 'ब्रजवराही' देवीके मन्दिरके लिए आसपास काफी प्रसिद्ध है। यह मन्दिर ग्रामसे बाईं ओर एक मीलकी दूरीपर एक पहाड़पर है। मोटरकी सड़क यहाँपर आकर खत्म हो जाती है। आगे पहाड़की चढ़ाई और पैदलका रास्ता है। आध घंटेमें ही हम लोग मोटरसे शाखु पहुँच गये। पहले निश्चित किये हुए प्रोग्रामके अनुसार आज सामनेका पहाड़ पार करके रात बितानेका निश्चय किया गया था; लेकिन हमारे कुली वक्तपर न पहुँच सके। वे हमें रास्तेमें शाखुसे तीन मील दूर इस तरफ मिले थे। उनके आनेपर इतनी देर हो चुकी थी कि संध्या तक पहाड़ पार कर सकना असम्भव था। लिहाज़ा उस दिन शाखु ही में रात बिताई।

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही हम लोग चल पड़े। राजगुरु हेमराजजीने हम लोगोंके लिए दो टांगन घोड़ोंका प्रबन्ध भी कर दिया था। मैं और राहुलजी घोड़ोंपर सवार हो लिये; लेकिन अधिक देर तक हम लोगोंको सवारीपर चलना नसीब न हो सका। कोई मील-भर बाद ही पहाड़ आ गया। पहाड़ क्या था सैकड़ों फीट ऊँची एक सीधी खड़ी दीवार-सी थी। हम लोग चढ़ने लगे। पहाड़की चोटीपर पहुँचनेके बाद उतरना शुरू किया। उतराव सहल था। ९॥ बजेके करीब एक दूकान मिली। वहाँ हम लोगोंने भोजन किया और घंटा-भर विश्रामके बाद फिर चलना शुरू किया। मार्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तिब्बती रमणी

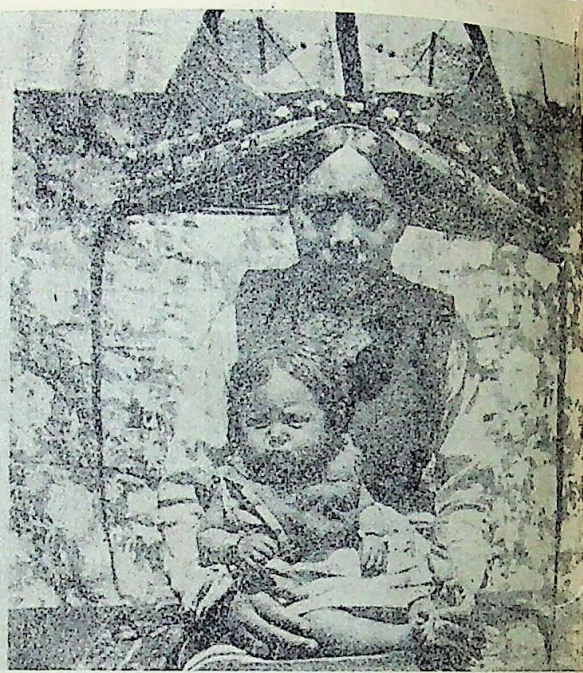

एक तिब्बती मा-बेटी

उतरता जाता था। काफ़ी देर तक चलनेके बाद हम लोग एक नदीके तटपर पहुँचे। नदीके उस ओर चार-पाँच घर भी दीख पड़े। बड़े वेगसे बहनेवाली यह नदी कोसीकी शाखाओंमें से एक है। पार करनेके लिए नदीके आरपार एक बड़ा लक्कड़ पड़ा था। बड़ी मुश्किलसे घोड़ोंको नदीके पार किया। दूसरे तटपर फिर पहाड़ मिला। पहाड़की तलेटीमें हम लोगोंने कुछ देर तक कुलियोंका इन्तज़ार किया। आजकी रात बसनेके लिए सवेरे जब कुलियोंसे पूछा था, तो उन्होंने इस पहाड़की चोटीपर नवलपुर बाज़ारको अच्छा बताया था। ३॥ बजे हम दोनोंने पहाड़पर चढ़ना शुरू कर दिया। चढ़ाई बहुत सख्त थी। घोड़ोंका दम फूल रहा था और वे हर सौ-सौ क़दमपर रुक जाते थे। इस तरह दो-ढाई घंटे बड़े परिश्रमसे चढ़कर हम लोग नवलपुर बाज़ार पहुँच गये। हम लोग तो घोड़ोंपर थे, इसलिए पहुँच गये; परन्तु भारी बोझेसे लदे हुए कुलियोंका उसी रात नवलपुर पहुँच सकना कठिन जान पड़ने लगा। हम लोग उनकी राह देखने लगे। ७ बज गया। हमारा खाने-पीने, ओढ़ने-बिछानेका सब सामान कुलियोंके पास था। नवलपुर बाज़ारमें चनेके सिवा और कोई चीज़ मयस्सर न हुई। घोड़ोंके साथ दो साईस भी थे। सोचा कि उन्हें कुलियोंकी तलाशमें भेजें; लेकिन उन्होंने जानेसे इनकार कर दिया। थकावटके मारे हम लोगोंकी, जो घोड़ोंपर सवार थे, बुरी हालत थी, अतः उन साईसोंकी हालत तो और भी अबतर होनी ही चाहिए। यही सोचकर हम लोगोंने भी उनपर ज़ोर नहीं डाला। इसी समय एक मुसाफिरने आकर बताया कि हमारे कुलियोंने पहाड़पर एक मील ऊपर ही रातके लिए बसेरा कर लिया है।

अब करें तो क्या? खाने-पीनेकी तो खैर कोई बात नहीं, एक वक्त बिना खाये ही रह सकते हैं; लेकिन ओढ़ने-बिछानेकी समस्या कठिन थी। रातमें ठंड लगनेसे अगर बीमार पड़ गये, तो सारा प्रोग्राम ही फिस्स हो जायगा। मेरे मनमें इसी तरहकी आशंकाकी घुड़दौड़-सी मची थी; लेकिन कोई उपाय नज़र न आता था। आखिर यह सोचकर कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

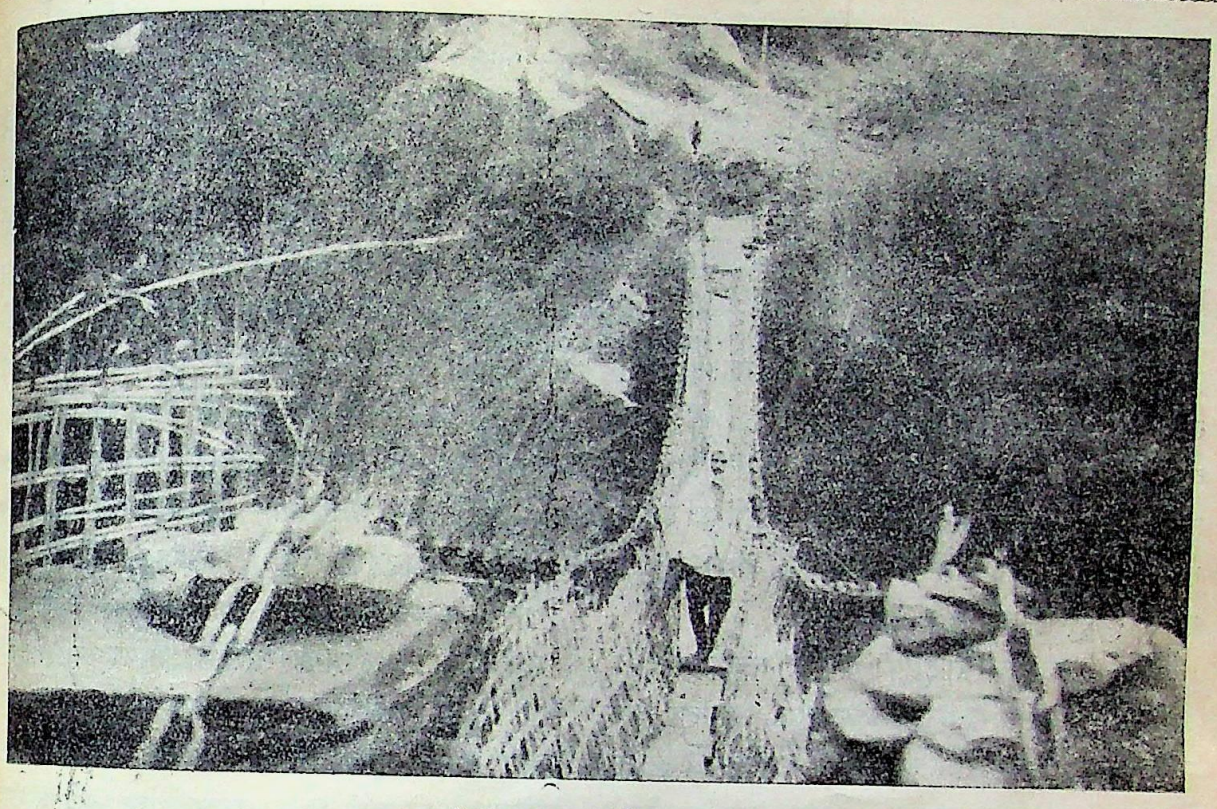

कोसी नदीपर जंज़ीरोंका पुल

"जैसी पड़े सो सह रहै, कह रहीम यह देह ;
धरती ही पर पड़त हैं, शीत, घाम अरु मेह ।"

मैं भी उठ खड़ा हुआ। दूध तलाशा, मगर न मिला। ख़ैर, घोड़ोंको कुछ दाना डलवाया और दौड़-धूप करनेपर उनके लिए कुछ पयाल और बाँसकी पत्तियाँ भी मिल गईं।

राहुलजी अपने कपड़ोंसे किसी तरह रात बिता भी सकते थे ; पर मेरे तनपर एक सूती कोट-पाजामेके सिवा और कुछ न था। इधर ज्यों-ज्यों रात बढ़ रही थी, त्यों-त्यों सर्दी बढ़ती जाती थी ; और ज्यों-ज्यों सर्दी बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों मैं कमरेके कोनेमें पड़ा सिकुड़ता जाता था। राहुलजीने कहा—'लेट जाओ, नींद आ जायेगी।' लेकिन एक तरफ़ भूख और सर्दी और दूसरी तरफ़ अकेली नींद। इन दो-दो दानवोंके सामने नींदका बस चलना कठिन था। ११ बजे रातको बुड्ढे दूकानदारको हमारी विपत्तिका हाल मालूम हुआ। वह आया। हम लोगोंकी मुसीबत सुनकर उसे तरस आया। उसने खाना तैयार करानेको कहा ; लेकिन हम लोगोंने मना कर दिया। इसपर वह एक मोटा कम्बल दे गया, जिससे सर्दीसे तो रक्षा हो गई ; मगर खटमल और पिस्सुओंके मारे नींद न आ सकी।

सवेरे ७ बजे कुली आये और रातमें न आ सकनेके कारण उज्र पेश करने लगे। ख़ैर, हम लोगोंने जो-कुछ मिल सका, पेटमें डाला और एक साईसको कुलियोंके साथ रवाना करके यात्रा शुरू की। कई मीलका उतार एक निर्झरिणीके पास जाकर ख़त्म हुआ। गर्मी काफ़ी थी और प्यास भी ज़ोरसे लग रही थी। हमें और हमारे जानवरोंको बार-बार पानी पीना पड़ता था। इतनी उँचाईपर ऐसी गर्मी और ज़मीनमें ऐसी खुश्की अस्वाभाविक जान पड़ी। किसी ज़मानेमें यहाँ हरा-भरा जंगल था ; लेकिन अब खेतीके लिए जंगल काट डाला गया है, अतः गौरीपति नग्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें दीख पड़ते हैं। ढाई घंटेकी चढ़ाईके बाद हम लोग चौतरा बाज़ारमें पहुँच गये। अभी ३॥ ही बजा था; परन्तु कुलियोंके पहुँचनेमें देर थी, इसलिए यहीं रुक जाना अच्छा था।

दो घंटेके बाद कुली भी आ पहुँचे। दो कुली लड़कोंमें से एककी नाकसे नकसीर फूट रही थी—गर्मीके मारे। वे सब बहुत थके हुए थे। इधर हमारे बड़े साईसको भी हल्का बुखार आ गया। हम लोगोंने एक नेवारके घर अड्डा जमाया। खा-पीकर बरामदेमें सो रहे। आधी रातको हलकी बारिश होने लगी, अतः बरामदेसे उठकर हम लोग कोठेमें जा लेटे; लेकिन उसी कोठेमें कुछ बकरीके बच्चे भी बन्द थे। उनकी खुरखुराहटने नींद न आने दी।

दूसरे दिन सुबह साईसकी हालत अच्छी न थी। उसे आगे ले जाना खतरनाक जान पड़ा, इसलिए उसे यहीं छोड़ दिया। सौभाग्यसे यहाँ 'तातपानी' तकके लिए एक कुली मिल गया। चौतरा इस इलाक़ेकी एक अच्छी बस्ती समझा जाता है। वह पहाड़के सिरहाने बसा है। कुल बीस-बाईस मकान होंगे। चारों तरफ़ खेत थे, फिर भी बस्ती खुशहाल नहीं दीखती थी। ८ बजे चौतरासे चलकर दोपहर तक हम लोग 'जलवीर' पहुँच गये।

जलवीर बाज़ार एक पहाड़ी नदीके दोनों किनारोंपर बसा है। नदीके इस ओर चार-पाँच दूकानें और मकान हैं और उस ओर दस बारह। नदी पार करनेके लिए एक लोहेका पुल भी है। यहाँ थोड़ी देर विश्राम करके हम फिर रवाना हुए। आगे फिर चढ़ाव था। शाखुसे नीलम (तिब्बतमें) तकका सारा मार्ग चढ़ाव-उतारका है। घंटों मेहनत करके चढ़ो, फिर उतरो, फिर चढ़ो—कुछ वैसा ही जान पड़ता था, जैसे पालतू बन्दरके लिए लोग लट्ठा गाड़ देते हैं, जिसपर उसका सारा समय चढ़ते-उतरते ही बीतता है।

अब फिर बारिश होने लगी। थोड़ी देर तक हम एक मकानमें रुके रहे और फिर चल दिये। ३॥ बजे 'पपरा' में पहुँचे और वहीं रात बितानेको ठहर गये। एक पुराने तिमंज़िले मकानकी दूसरी मंज़िलमें डेरा जमाया। इस मकानमें एक बहरी बुढ़ियाके सिवा और कोई न था। बुढ़िया तिमंज़िलेपर पड़ी रहती थी, बाकी सारा मकान यात्रियोंके लिए धर्मशालाका काम देता था। मकानकी सुन्दर खपरैल और उसकी बढ़िया सजावट इस बातकी खबर देती थी कि उसके मालिकोंने कभी अच्छा ज़माना भी देखा था। प्राचीन कालमें भारत और भोट (तिब्बत) के बीच आवागमन दो रास्तोंसे हुआ करता था—एक केरोनकी राह और और दूसरे जीलमकी राह। लेकिन जैसे-जैसे दोनों देशोंका सम्बन्ध कम होता गया, वैसे-वैसे व्यापार भी कम हो गया और दोनों रास्तोंसे आमद-रफ्त भी कम होती गई। इसके बाद जब कलिमपोंग होकर ल्हासाका रास्ता मालूम हुआ, तबसे पब्लिक उसी रास्तेको इस्तेमाल करने लगी। लिहाज़ा केरोन और जीलमके दोनों रास्ते अब व्यापार या जनसाधारणके लिए न रहकर सिर्फ़ नेपाल और भोटके सरकारी कामोंके लिए ही रह गये हैं। यात्रियोंकी कमीके कारण अब इस रास्तेमें कहीं-कहीं घोड़ोंके लिए घास तक मयस्सर नहीं होती।

दूसरे दिन बड़े सवेरे ही कूच किया। यहाँसे चढ़ाई चढ़ना था। काठमांडूसे तातपानी तक पाँच पहाड़ चढ़ने पड़ते हैं, जिनमें से चार पहाड़ और उनके चार दर्रे ज़रा कठिनाईसे पार होते हैं। चारों दर्रोंमें से दो दर्रे—नंगले और देवरैली—विकट हैं। यहाँ कहीं-कहींपर सड़क अपेक्षाकृत नई बनी हुई दीख पड़ी। सन् १९२९-३० में नेपाल और भोट सरकारोंके बीच तनातनी बहुत बढ़ गई थी और युद्ध होनेकी नौबत पहुँच गई थी; किन्तु सौभाग्यसे युद्ध रुक गया। उन्हीं दिनोंमें युद्धकी सम्भावना देखकर नेपाल-सरकारको इस पुरानी सड़कका जीर्णोद्धार कराना पड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ आगे चढ़नेपर हिमाच्छादित पर्वतके दर्शन होने लगे। ९॥ बजे हम लोगोंने पेनलोकोटमें पहुँचकर भोजन बनाया। खा-पीकर और काफ़ी विश्राम करके फिर चढ़ाई शुरू की और १ बजे हम लोग ठीक दर्रेके ऊपर जा पहुँचे। दर्रा वृक्षोंसे भरा हुआ एक सुहावना स्थान था। यहाँ दो थमङ घर भी हैं। कुछ देर कुलियोंकी प्रतीक्षा करके फिर रवाना हुए और चार मील दूर एक गाँवमें जाकर अड्डा जमाया। गाँवमें कुल जमा १०-१५ मकान थे; किन्तु वे वैसे ही दीख पड़े, जैसे काठमांडूके पासकी बस्तियोंके। बहुत तलाश करनेपर रात बितानेके लिए एक मकानका निचला बरामदा मिला, जो बहुत दिनोंसे मुर्गियोंका वास-स्थान बना हुआ था। देखनेसे जान पड़ता था कि मकान पहले किसी बड़े परिवारका रहा होगा; परन्तु उसमें आजकल एक वृद्ध-वृद्धाके सिवा और कोई न था। वृद्ध हमारे पास आतिथ्य-सत्कार प्रकट करनेके लिए आये। उनके चेहरे और बातचीतसे उनके अन्तःकरणकी पीड़ा और सन्ताप प्रकट हो रहा था। कुछ शाक-तरकारी पानेके लिए कोशिश की, लेकिन सफलता न मिली। हमारा चावल भी ख़त्म हो गया था; यहाँ चावल ख़रीदकर अपनी थैलियाँ फिरसे भर लीं।

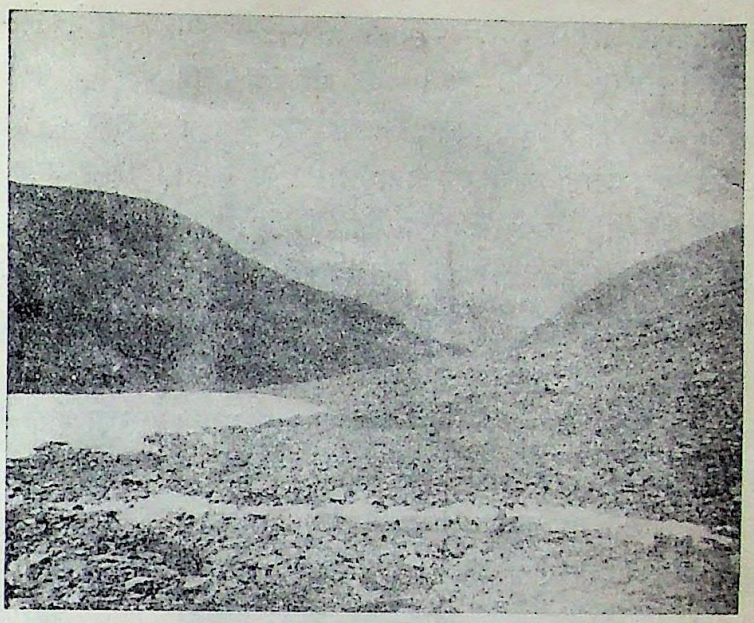

ऊपर—तिब्बती प्रदेशका एक दृश्य
नीचे—तिब्बतमें यात्राका ढंग

तातपानी नेपालकी सरहदपर है। यहाँसे तातपानी तकके लिए दो रास्ते हैं; एक पहाड़पर चढ़कर और दूसरा पहाड़की तलेटीसे होकर। तलेटीवाले रास्तेसे जानेसे पहाड़की चढ़ाई-उतराईसे बच सकते हैं; लेकिन एक तो यह रास्ता लम्बा है, दूसरे इस रास्तेकी पगडण्डी कहीं-कहीं इतनी तंग है कि उसपर घोड़ेपर जाना खतरेसे ख़ाली नहीं है। हमारे कुली एक दिन पहलेसे इसी पगडण्डीसे चलनेको कह रहे थे; आज फिर उन्होंने तकरार की। उनकी ज़िदको मानकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलना हमारे लिए नामुमकिन था, इसलिए सुबह हम पहाड़की राह ही रवाना हुए। दो घंटे तक रास्ता सहल था, फिर चढ़ाव मिला, उसके बाद उतार। ९ बजे एक पहाड़ी झरनेपर जा पहुँचे। यह स्थान बड़ा सुन्दर था। चारों ओर तीन पहाड़ोंसे घिरा हुआ और वृक्षोंसे भरा हुआ यहाँ एक निकुंज-सा दीख पड़ता था। बीचमें बहती हुई निर्झरणी इसकी खूबसूरतीको चार चाँद लगाती थी। अभी तक सूर्यकी किरणें यहाँ न पहुँच पाई थीं। यहीं रुककर हमने भोजन और विश्राम किया और फिर चल पड़े। अबकी जो चढ़ाई मिली, वह बहुत थकानवाली थी। पहाड़पर कुछ नेवार-परिवार खेती करते थे। पहाड़ पत्थरका न होकर मिट्टीका था और जगह-जगह टूटकर मिट्टीका ढेर गिरकर धराशायी हो रहा था। तीन घंटेकी मेहनतके बाद पहाड़की चोटीपर पहुँचे। यहाँ तीन-चार मकानोंका खिलती नामका एक छोटा गाँव है। गाँवके सामने दुर्गाका एक मन्दिर है। मन्दिरके सामने एक शिलास्तम्भ है, जिसे कर्नल गंगा बहादुर नामक किसी फौजी अफसरने अर्पित किया था। स्तम्भके ऊपर एक पीतलका शेर स्थापित है और निचले भागमें देवीकी स्तुतिमें एक संस्कृत स्तोत्र खुदा है। पहले नेपाल-सरकारका चुंगीघर भी यहाँ था; परन्तु आजकल वह तातपानीमें है। खिलतीसे आगे बढ़नेपर कुछ और ही नज़ारा बदल गया। जगह-जगह बाँसकी चटाइयोंसे छाई हुई गोशालाएँ दीखने लगीं।

राहुलजीने कहा—"अब आगे दूध, मक्खन, छाज वग़ैरा बराबर मिलता जायगा।"

दूधकी तलाशमें मैं कई गोशालाओंमें गया; लेकिन उनमें चौकसीके लिए बँधे कुत्तोंके सिवा कोई आदमी नज़र न आया। यहाँ शर्बा जातिवालोंकी बस्ती है, जिनकी मुख्य जीविका पशुपालन है। ये लोग अपने पशुओंको चरानेके लिए दूर-दूर तक ले जाते हैं और कभी-कभी हफ्तों तक थानपर वापस नहीं लाते, जंगलमें ही बने रहते हैं। जानवरोंके दूधसे चरानेवाले अपनी भूख-प्यासकी समस्या हल कर लेते हैं। यहींसे तिब्बती बौद्धधर्मकी झलक भी दीखने लगी। सर्वसाधारणकी आपदा-विपदा हरनेके लिए जगह-जगह लोगोंने नदियोंमें 'माणियाँ' लगा रखी हैं, जो पानीकी धारसे अपने-आप घूमा करती हैं। रास्तेमें भी जगह-जगह माणियाँ स्थापित हैं, राहगीर इन माणियोंको दाहनी तरफ घुमाकर स्वयं बाईं ओरसे निकला करते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करनेसे मार्गमें रक्षा होती है। इन माणियोंके भीतर बुद्धके अनेक चित्र भी होते हैं, जो तिब्बती कलाके सजीव नमूने हो सकते हैं। एक गाँवमें एक सुन्दर बौद्ध मन्दिर भी मिला।

उतराव सहल था। हरे जंगलोंके बीच पहाड़ी पक्षियोंके चहचहाहट सुनते हुए हम लोग बढ़ते-बढ़ते एक नदीके तटपर पहुँचे। नदी दो पहाड़ोंके बीच—कुचली हुई-सी—कलकल नाद करती हुई भागी जा रही थी। नदीके बग़लमें कुछ ऊपरकी तरफ अनाजका एक गोदाम भी दीख पड़ा। युद्ध या दुर्भिक्षके समय ये गोदाम काममें लाये जाते हैं। कहते हैं, नेपाल-सरकारकी ओरसे इस तरहके अनेक गोदाम जगह-जगह बने हैं। नदी पार करनेके लिए एक लकड़ीका पुल था। पुलकी दाहनी तरफ लोहेकी जंज़ीरोंका एक पुराना पुल भी दीख पड़ा। बाईं ओर एक पनचक्की चल रही थी। सूर्यास्तमें देर न थी। सामने शर्बा लोगोंका एक गाँव दीखता था। हम लोगोंने उसीमें रात काटनेका निश्चय किया; लेकिन हमारे कुली थमङ जातिके थे, और वे अपनी बिरादरीवालोंकी बस्तीमें ठहराना चाहते थे। लिहाज़ा इस गाँवसे एक मील आगे बढ़कर एक थमङ घरमें विश्राम लिया। इस जगहका नाम दुम्ना है। दुम्नाके सामने एक शस्त्रागार है; परन्तु अब इसका कोई महत्व नहीं। किसी ज़मानेमें जब तिब्बतपर चीनियोंका आधिपत्य था और चीनी फौज नेपालकी सरहदपर मँडराया करती थी, उस समय नेपालियोंने अपनी रक्षाके लिए यह शस्त्रागार बनवाया होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीलमसे आगे तिब्बतमें जगह-जगहपर क़िले बने दीख पड़ते हैं। सन् १९१२ में चीनमें प्रजातन्त्र स्थापित होनेके पहले तक चीनी फौज इन क़िलोंमें रहा करती थी। दो पहाड़ोंके बीच एक दरवाज़ा बना है। सड़क इसी दरवाज़ेके भीतरसे होकर गुज़रती है। शस्त्रागार इस ढंगसे बनवाया गया है कि उसके ऊपरसे तोपकी सीधी मार इस दरवाज़ेपर पड़े और ज़रूरत होनेपर दरवाज़ेसे गुज़रनेवाले आसानीसे उड़ाये जा सकें।

जिस मकानके बरामदेमें ठहरे थे, वह चारों ओरसे मिट्टीके तेलके टीनसे घिरा था। उसीमें मुर्ग़ियों और बकरियोंके साथ रात गुज़ारी। बड़े सवेरे ही कूच किया। कुछ दूर साधारण चढ़ाव मिला, फिर उतार। आख़िरकार हम लोग भटकोशी नदीपर जा पहुँचे। इस यात्रामें हमारे घोड़ोंकी ज़ीनें भी टूट गई थीं। यहाँ जीन सीनेके लिए सुई-डोरा मिल गया। यहाँ हम लोगोंने कुछ देर आराम किया। यहाँसे तातपानी सिर्फ एक घंटेकी राहपर है। रास्ता नदीके किनारे-किनारे पहाड़की तलेटीमें होकर जाता है। तातपानीमें नेपाल-सरकारका चुंगीघर (कस्टम हाउस) और डाकखाना भी है। दस बजे हम लोग तातपानी जा पहुँचे।

तातपानीमें गर्म पानीके सोते हैं, इसी कारण इसका नाम तातपानी (तप्तपानी) पड़ा है। हम लोग इन सोतोंमें स्नानके लिए चल दिये। इन सोतोंके पानीमें गन्धकका अंश भी है, जिससे इसमें स्नान करनेसे खुजली आदि अनेक रोग भी दूर होते हैं। स्नानके बाद अपने लोगोंने चिउड़ेसे पेट-पूजा की। हमारे मेज़बान वृद्ध ब्राह्मणने दो गिलास छाज और कुछ साग भी प्रदान किया। यहाँ हमें एक कुलीका बन्दोबस्त करना था, क्योंकि चौतरासे जो कुली किया था, वह यहीं तकके लिए थे। आजकल नमकका मौसम था, इसलिए मुसाफिरोंकी कमी नहीं थी। व्यापारी नेपालसे अनाज लादकर जीलम ले जाते थे, और उसके बदलेमें जीलमसे नमक ला रहे थे। फिर भी हमें कोशिश करनेपर भी कुली न मिल सका। कस्टम हाउसके अफसर वृद्ध ब्राह्मण सज्जनसे हमने कुलीके लिए कहा। उन्होंने भी कोशिश की; किन्तु सफलता न मिली। अन्तमें उस भलेमानसने अपना नौकर जीलम तकके लिए हमारे साथ कर दिया।

१॥ बजे तातपानीसे रवाना हुए। एक मील चलनेके बाद ही नेपालका सिवाना आ गया। यहाँ खुदारी नामक स्थानमें नेपाल-सरकारका एक सरहदी दफ्तर है, जहाँ कुछ नेपाली सैनिक रहते हैं और दोनों तरफसे आने-जानेवालोंके नाम-पते वग़ैरह लिखे जाते हैं। यहाँ थोड़ी देर सुस्ताकर फिर एक मील रास्ता तै करनेपर पुनः भटकोशी नदी मिली। बस, यही नदी भोट (तिब्बत) को नेपालसे जुदा करती है। नदीके उसपार तिब्बती इलाका है। एक लकड़ीके पुलको पार करके—सात दिनके कठिन परिश्रमके बाद—२१ अप्रैलको तीन बजे हम लोगोंने भोट भूमिमें पदार्पण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवाँ व्यक्ति

यूरोपियन महायुद्धके समय।

इंग्लैण्डके एक प्राइवेट अस्पतालमें ३६ घायल व्यक्ति पड़े थे। वे युद्धमें इतने सख्त घायल हुए थे कि उनके अच्छे होनेकी उम्मीद नहीं थी, फिर भी वे अस्पतालमें पड़े हुए बहुत धैर्य और साहसके साथ, क़दम-क़दमपर यमराजसे लोहा लेकर, मौतकी घड़ियाँ गिन रहे थे। अस्पतालके अधिकारियोंने प्रिन्स आफ वेल्स (भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड अष्टम) से प्रार्थना की कि वे किसी दिन आकर इन घायलोंको देखनेकी कृपा करें। प्रिन्स एक दिन नियत करके अस्पताल देखने पहुँचे।

आम तौरपर जैसा होता है, अधिकारियोंने उन्हें तमाम घायलोंकी चारपाइयोंके आसपास घुमाया-फिराया, और फिर कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें विदा करनेके लिए दरवाज़ेकी ओर ले चले; लेकिन प्रिन्स सहसा रुक गये, उन्होंने मुँह फेरकर कहा—"मुझसे तो बतलाया गया था कि आपके यहाँ ३६ घायल हैं; लेकिन मैंने तो कुल २९ ही देखे।"

अधिकारियोंने बतलाया—"बाक़ी सात आदमी बहुत बुरी तरह क्षत-विक्षत हो गये हैं, इसलिए हुज़ूरका उनके पास जाना मुनासिब न होगा।"

"मेरा ख़याल करके आप मुनासिब नहीं समझते, या उनका ख़याल करके?"

"हुज़ूरका ही ख़याल करके...."

"तब तो मैं इन सातों आदमियोंको ज़रूर देखूँगा।"

अस्पतालवाले प्रिन्सको एक दूसरे वार्डमें ले गये, जहाँ वे लेटे हुए थे। प्रिन्स हर चारपाईके पास जा-जाकर खड़े हुए, घायलोंसे बात की और उनका उत्साह बढ़ाया। वापस लौटते वक्त दरवाज़ेपर पहुँचकर वे फिर रुक गये।

"लेकिन यह तो छै ही हैं। सातवाँ कहाँ है?" उन्होंने आग्रहके साथ पूछा।

"सातवाँ आदमी इतनी भयानक रीतिसे घायल हुआ है कि कोई उसे देख नहीं सकता। आँखसे अन्धा हो गया है, कानसे बहरा। अंग-अंग इतने क्षत-विक्षत हो गये हैं कि अब आदमीकी समानता भी बाक़ी नहीं है। वह एक अलग कमरेमें अकेला पड़ा है, जहाँसे वह इस ज़िन्दगीमें तो उठकर बाहर निकल नहीं सकता।"

"तब तो मुझे उसे ज़रूर देखना चाहिए।"—प्रिन्सने कहा।

"नहीं, हुज़ूर! बेहतर है कि आप उसे न देखें। आपको वह न देख सकता है, न सुन सकता है। आप उसका कोई उपकार नहीं कर सकते, और उसका दृश्य ही बहुत भयंकर है।"

"कुछ भी हो, मैं उसे देखूँगा।"

अस्पतालका एक कर्मचारी उन्हें एक अँधेरे कमरेमें ले गया, जिसमें मौतकी मनहूसियत छाई हुई थी। प्रिन्स दृढ़तापूर्वक चारपाईकी तरफ बढ़े, उनका चेहरा सफेद पड़ गया। चारपाईके समीप सिर झुकाये हुए वे उस व्यक्तिको देख रहे थे, जो न उनको देख सकता था, न सुन सकता था,—भरी जवानीके उस भग्न खँडहरको देख रहे थे, जो युद्धकी चरम विभीषिकाका साकार रूप था।

प्रिन्स एकाएक झुके और उन्होंने उस लोथड़ेका—जो कभी आदमी था—आहिस्तासे मुख चूम लिया।

ऐसा जान पड़ा, मानो कमरा किसी दैवी करुणा पवित्रताकी आभासे दीप्त हो गया हो!*

× × ×

[इन्हीं प्रिन्स आफ वेल्सको इंग्लैण्डके दक्रियानूसियोंने गद्दीसे उतारकर देश-निकाला दे दिया है! —स०]

* आर्थर मीकी पुस्तक 'Wonderful Day' के आधारपर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्मामें भारतके राष्ट्रपति । रंगूनमें पंडित जवाहरलाल नेहरूका स्वागत

रंगूनकी एक विशाल सभामें पंडित जवाहरलाल नेहरूका भाषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

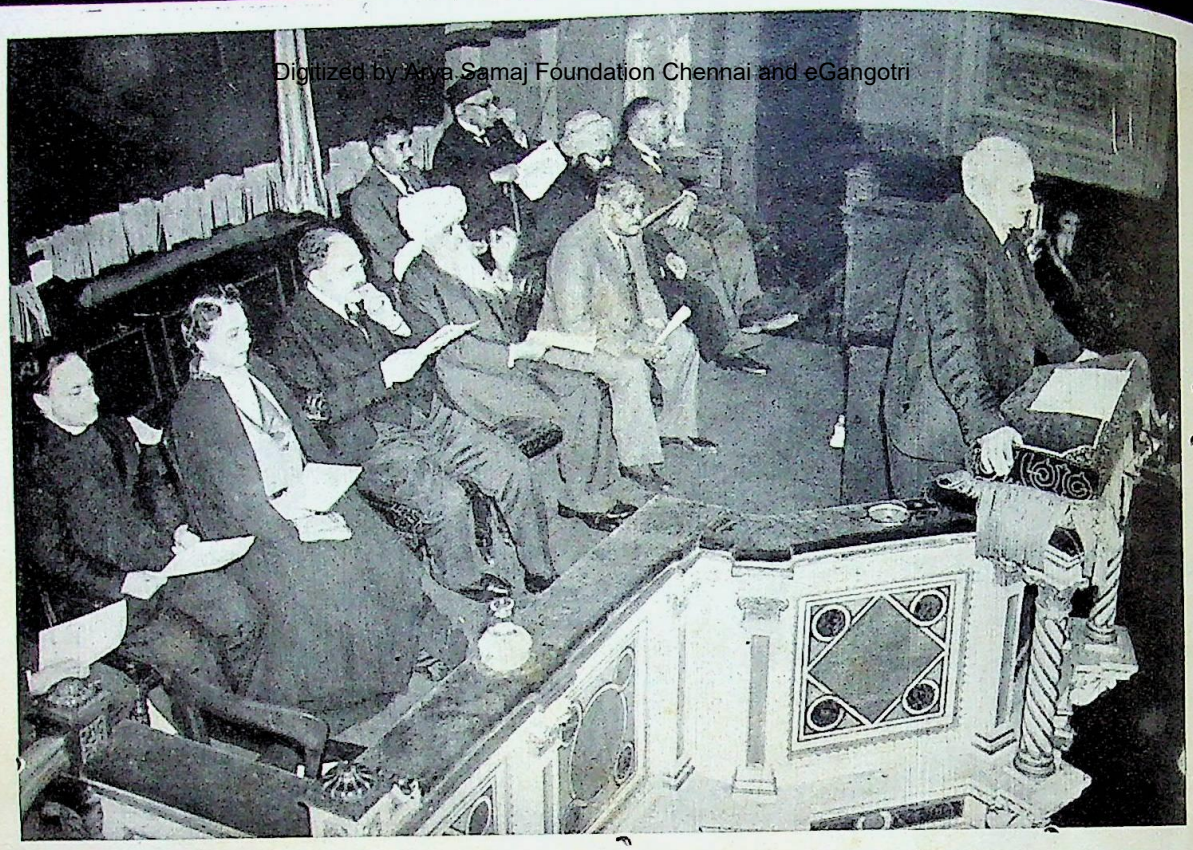

लन्दनके विश्व-धर्म-सम्मेलनमें सम्मेलनके सभापति जार्ज लैन्सबरी वक्तृता दे रहे हैं

इंग्लैण्डमें स्पेनके बच्चे। सहीनों बाद बेचारोंको अच्छा भोजन मिल रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिल ग्राम्य गीत

श्री रामइक़बाल सिंह 'राकेश'

मिथिला प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण प्रान्त है। इसकी लावण्यमयी मंजुल मूर्ति, मधुरिमासे भरी हुई सरस बेलाएँ और उन्मादिनी भावनाएँ किसके हृदयको नहीं गुदगुदा देतीं? यहाँके वसन्तकालीन सुहावने समय, बाँसोंके झुरमुटमें छिपी गिलहरियोंके प्रेमालाप, सुरंजित सुन्दर पुष्प, सुचित्रित पशु-पक्षी और कोमल पत्तियोंके स्पन्दन अपने इर्द-गिर्द एक उत्सुकतापूर्ण रहस्यमय आकर्षण पैदा कर देते हैं। कहीं ऊदे-ऊदे बादलोंकी आँख मिचौनी, कहीं झहर-झहर करती हुई बलखाती नदियोंकी अठखेलियाँ, कहीं धानसे हरे-भरे लहलहाते खेतोंकी क्यारियाँ—मतलब यह कि यहाँकी ज़मीनका चप्पा-चप्पा तथा आसमानका गोशा-गोशा काव्यकी सुरभिसे सुरभित हो रहा है और संगीतकी निर्मल निर्झरिणी सदा अविराम गतिसे 'टलमल' करती हुई दौड़ रही है।

यहाँकी भाषा मैथिली है, जो देवनागरी-लिपिसे बिलकुल भिन्न है, और उसमें अधिकतर बँगला-लिपिका आभास दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि यह एक अद्भुत, सरल, रसपूर्ण और आनन्दमयी भाषा है, तो भी यह सर्वसाधारणमें प्रचलित नहीं है। कारण, यहाँ अनेक जातियाँ और उपजातियाँ हैं, जैसे—ब्राह्मण, क्षत्री, कलवार, धानुक, कुर्मी, गोप, तेली, कुम्हार, लोहार, सुनार, दुसाध इत्यादि। इनमें मैथिली तो सिर्फ़ मैथिल ब्राह्मणोंकी ही भाषा है और बाक़ी सबोंकी ठेठ देहाती। इस ठेठ देहातीमें भी मुज़फ्फ़रपुर, दरभंगा, भागलपुर आदि ज़िलोंकी बोलियोंमें कितने ही भेद हो जाते हैं, इस कारण यहाँके ग्राम्य गीतोंकी भाषाओंमें भेद हो जाना स्वाभाविक ही है।

मैथिल ग्राम-गीतोंके निम्न-लिखित प्रकार हो सकते हैं:—

जट-जटिन—ये प्रश्नोत्तरके रूपमें गाये जाये जानेवाले गीत हैं।

सामा-चकेवा—इसका वर्णन आगे किया गया है।

झिझिया—ये दशहरेके अवसरपर गाये जाते हैं। आधी रातके वक्त एक दर्जनसे ऊपर मैथिल देवियाँ दो-तीन घड़ोंके इर्द-गिर्द और उनकी पेंदियोंमें झीने-झीने छेद बनाकर उनमें दीपक जला देती हैं और उनको सिरपर लेकर झूमती हुई अपने टोलों-मुहल्लोंकी गलियोंमें गाती चलती हैं। इनमें विनोदमय पदोंका भी आभास मिलता है।

विरहा—इनमें वेदना और करुणाका प्राधान्य है, और भवभूतिके 'एको रसः करुणमेव' का जीवित-जाग्रत अंकन किया गया है। कभी-कभी लय-प्रधान गीत भारी बोझोंको उठाने, पुलोंको बाँधने, खेतोंको जोतने और ज़मीनकी तहमें दूर-दूर तक गये हुए लम्बे-लम्बे खम्भोंको उखाड़ने आदि कठिन कामोंके करनेके समय जोश उभाड़नेके लिए भिन्न-भिन्न तर्जोंमें गाये जाते हैं।

इनके सिवाय धोबी-धोबिन-सम्बन्धी सवाल-जवाब अत्यन्त सरस और साहित्यिक होते हैं।

सहाना—आनन्द और मंगलमय भावोंसे परिपूर्ण ये गीत बेटेके विवाहके अवसरपर गाये जाते हैं। इन्हें केवल स्त्रियाँ ही गाती हैं।

सोहर—ये आशा और उल्लास-भरे गीत कवित्वके जीते-जागते चित्र हैं। ये किसी शुभ लग्नमें, उदारणार्थ, बेटेके यज्ञोपवीत-संस्कारके अवसरपर गाये जाते हैं।

बारहमासा—ये करुणरस-प्रधान गीत पावस-ऋतुमें गाये जाते हैं—खासकर श्रावण मासमें वियोगाकुल रमणियाँ डाल-डालपर हिंडोले डालकर काली-काली उमड़ती मेघावलियोंके स्वरमें स्वर मिलाकर इन्हें गाती और झूलती हैं। ये अपनी स्वाभाविकता और सरलताके लिए मशहूर हैं।

नचारी—ये बेटीके विवाहमें गाये जानेवाले गीत हैं। इन गीतोंमें लयकी प्रधानता होती है और शिव-पार्वती-सम्बन्धी प्रशंसात्मक पंक्तियाँ पाई जाती हैं।

प्रभाती—इनमें मानव-हृदयके कोमल भावोंके चित्रण और ब्राह्म-मुहूर्तके आश्वासन मिलते हैं। ये सादगी और सुषमासे ओतप्रोत गीत रात्रिके चौथे प्रहरमें गाये जाते हैं। इनका वर्णन झरनेके जलके माफिक साफ, भाषा मँजी हुई सादी, बात सीधी और आमफहम होती है।

इनमें गुरु, गणेश, शिव, राम और कृष्णकी बन्दना भी गाई गई है। इन्हें केवल पुरुष ही गाते हैं।

होली—इसमें वसन्तकी मस्ती, दीवानी जवानीकी प्रेममयी अभिव्यंजना और उन्मादिनी भावनाओंका सुकुमार सौन्दर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया जाता है। ये फागुन महीनेमें डफ, झाल और बाँसुरी बजाकर गाये जाते हैं।

चैतावर—इन गीतोंके विषय प्रेम हैं। होलीके बाद चैत महीनेमें इनकी बारी आती है। इनके छोटे-छोटे परिचित शब्दोंमें ग़ज़बका माधुर्य भरा हुआ है। साथ ही इनके भावोंकी छलकती हुई रसमयता हृदयको मंत्र-मुग्ध-सा बना देती है।

लोरिकानी—ये गीत कथात्मक हैं और रात्रिमें गाये जाते हैं।

देवास—हिन्दू देवी-देवताओं-सम्बन्धी इन गीतोंमें भक्ति-भावोंकी भागीरथी उमड़ चली है। ये दशहरेके दिनोंमें प्रतिवर्ष रात्रिमें गाये जाते हैं।

फुटकर

उपर्युक्त गीतोंके अलावा कुछ फुटकर गीत भी गाये जाते हैं, जैसे :—

ताजिया—इन्हें मुसलमान लोग मुहर्रमके दिनोंमें गाते हैं।

कुँवर बृजभान—ये कथात्मक हैं और रात्रिमें गाये जाते हैं।

जाँताके गीत—हर महीने और ऋतुमें चक्की पीसनेके समय इन्हें मैथिल देवियाँ गाया करती हैं।

गोदनाके गीत—देवियोंके अंगोंपर गोदना गोदते समय इन्हें गोदपारनी गाया करती हैं।

दरहक़ीक़त इन अशिक्षितोंकी कविताएँ भी इनके जिगरकी उपज हैं, जो आँखके आँसुओंकी तरह अनायास ही छलक पड़ी हैं। यही वजह है कि आज पाठकोंका ध्यान बेअख़्तियार उनकी ओर खिंच जाता है तथा उनकी माधुरीपर चित्तकी तितली चिपककर रह जाती है। कुछ अवतरण लीजिए।

जट और जटिन*के विवाहका ज़िक्र छिड़ा है। दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके प्रति प्रेम और उमंग है। दोनों प्रणय-सूत्रमें बँधना चाहते हैं; लेकिन जट एक ऐसी प्रेमिकाकी खोजमें है, जो प्राचीन आर्य ललनाओंकी तरह बुरी और भली सभी बातोंमें उसका अनुकरण करे। उसे उद्धत तथा अल्हड़ प्रेमिका पसन्द नहीं, इसलिए वह विवाहकी कठिनाइयों तथा शर्तोंको अपनी भावी प्रेमिका जटिनके सामने पेश करता है—

"नवही पड़तऊ गे जटिन,
नवही पड़तऊ गे!
जइसे नवतइ धानक शीशवा,
वइसे नववे गे!"

—'ऐ जटिन, विवाह होनेपर तुमको नव जाना पड़ेगा, अर्थात् नम्र बन जाना पड़ेगा। जिस तरह धानकी बाल फलनेपर झुक जाती है, ठीक उसी तरह तुम्हें भी झुक जाना पड़ेगा।'

किन्तु जटिनको जटकी शर्त पसन्द नहीं, क्योंकि बचपनसे ही पिताके यहाँ स्वतन्त्र वायुमंडलमें पलनेके कारण वह काफी अल्हड़ और गर्वीली हो गई है। अभी उसका बचपनका भोलापन दूर नहीं हुआ है। उसके दिमागमें अभी अपनी सखी-सहेलियोंकी अठखेलियाँ और धमाचौकड़ी घर किये हुई हैं। किसीके सामने झुककर चलनेका कभी उसे मौका ही नहीं मिला। तभी तो वह कह रही है—

"नहिंए नवबऊ रे जटवा,
नहिंए नवबऊ रे!
बाबूके दुलारी बेटी,
ऐंठिए चलबऊ रे!"

—'ऐ जट, मैं अपने पिताकी लाड़ली बेटी ऐंठ कर ही चलूँगी।' 'बाबूके दुलारी बेटी'में कितना उल्लास है, कितनी कोमलता है!

जट जवाब देता है—

"नवही पड़तऊ गे जटिन,
नवही पड़तऊ गे!
जइसे नवतइ केरक घौंदवा,
वइसे नववे गे!"

—'ऐ जटिन, तुमको झुकना ही पड़ेगा, झुकना ही पड़ेगा। जिस तरह केलेके घौंद फलनेपर झुक जाते हैं, ठीक उसी तरह विवाहके बाद तुम्हें भी झुक जाना पड़ेगा।'

जटिन कहती है—

"नहिंए नवबऊ रे जटवा,
नहिंए नवबऊ रे!
जइसे चलतइ बाँसक कोंपरा,
वइसे चलबऊ रे!"

—क्रमशः

* 'जट-जटिन' एक देहाती पद्यबद्ध नाटकके दो पात्र पात्री हैं। यह आश्विन और कार्तिकके महीनेमें मिथिलाके अधिकांश गाँवोंमें खेला जाता है। इसमें केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं; लेकिन कभी-कभी छोटे-छोटे बच्चे भी शरीक कर लिये जाते हैं। बच्चे 'जट' का अभिनय करते हैं और बच्चियाँ 'जटिन' बनती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—'ऐ जट, मैं कभी नहीं झुकूँगी, कभी नहीं झुकूँगी। जिस तरह बाँसकी कोंपल सीधी, ऊपरकी ओर बढ़ती है, उसी तरह मैं भी सीधी निर्भीक होकर चलूँगी।'

जट कहता है—

"नवही पड़तऊ गे जटिन,
नवही पड़तऊ गे!
जइसे नवतई कौनिक शिशवा,
वइसे नववे गे!"

—'ए जटिन, तुमको झुकना ही पड़ेगा, झुकना ही पड़ेगा। जिस तरह कौनीके (एक प्रकारका नाज, जो फलनेपर झुक जाता है) शीश झुक जाते हैं, ठीक उसी तरह तुम्हें भी झुक जाना पड़ेगा।'

जटिन जवाब देती है—

"नहिंए नववऊ रे जटवा,
नहिंए नववऊ रे!
जइसे रहतइ पोखरक पानी,
वइसे रहवऊ रे!'

—'ऐ जट, मैं कभी नहीं झुकूँगी। जिस तरह पोखरेका पानी गम्भीर और स्थिर रहता है, उसी प्रकार मैं भी दृढ़ और गम्भीर रहूँगी।'

निम्न-लिखित गीतमें जट और जटिन दोनों दाम्पत्य-सूत्रमें बँध चुके हैं—एक दूसरेसे हिलमिल गये हैं। जटिन आभूषण पहननेको लालायित है, इसलिए वह अपनी इच्छा जटके सामने पेश करती है—

"जटा रे! जटिनीके मँगवा भइले खाली, मँगटीकवा तू हूँ कब लइबे रे?" अर्थात्—'ऐ जट, तुम्हारी प्रियतमा जटिनका सिर खाली हो गया है। तुम माँगटीका कब ला दोगे?'

जट कहता है—"जटिन गे! सोनरा हऊ तोहरो इआर मँगटीकवा त पेन्हाइए देतऊ गे!" अर्थात्—'अयि जटिन, सुनार तो तुम्हारा दोस्त है ही, वह माँगटीका तो पहना ही देगा।'

जटिन कहती है—"जटा रे! जटिनीके डँड़वा भइले खाली, सड़िअवा तू हूँ कब लइबे रे!" अर्थात्—'ऐ जट, तुम्हारी प्यारी जटिनकी कमर खाली हो गई है। तुम साड़ी कब ला दोगे?'

जट जवाब देता है—"जटिन गे! बजजवा हऊ तोहरो इआर सड़ीअवा त पेन्हाइए देतऊ गे!' अर्थात्—'अयि जटिन! बजाज तो तुम्हारा यार है ही, फिर साड़ी तो वह पहना ही देगा।'

× ×

निम्न-लिखित गीत भी 'जट-जटिन'से ही सम्बन्ध रखता है। जटिनकी फिजूलखर्चीके कारण जट दिवालिया हो गया है। यहाँ तक कि उसके सिरकी टोपी, हाथीके हौदे और हाथके रूमाल तक बिक गये हैं, इसलिए जीविकाका कोई अन्य उपाय न देख जट नौकरी करनेके लिए परदेश जानेको आमादा है। 'जट' कहता है—

"हाथीपर के हौदा बेचबओलेगे जटिन,
बेचबओलेगे जटिन
अब जटा जाइछऊ विदेश।"

—'अयि जटिन, तुमने अपनी फिजूलखर्चीके कारण हाथीके पीठका हौदा बिकवा दिया, हाथीके पीठका हौदा बिकवा दिया। अब तुम्हारा प्रीतम जट विदेश जा रहा है।'

जटिन, जिसकी यदि कोई कामना है तो प्रेमकी और जो आर्थिक संकटकी भट्ठीमें तपकर भी अपने प्राण-प्रीतमका वियोग-दुःख सहनेमें सर्वथा असमर्थ है, जवाब देती है—

"ओहूसे उत्तम बनवा देब हे जटा,
बनवा देब हे जटा,
अब जटा, मति जाऊ विदेश।'

—'ऐ मेरे प्रीतम! मैं उससे भी उम्दा हौदा बनवा दूँगी, उससे भी उम्दा हौदा बनवा दूँगी। अब तुम विदेश मत जाओ।'

जट कहता है—

'हाथके रूमलवा बेचबओलेगे जटिन,
बेचबओलेगे जटिन,
अब जटा जाइछऊ विदेश।"

—'अयि मेरी लाड़ली जटिन, तुमने मेरे हाथका रूमाल भी बिकवा दिया, हाथका रूमाल भी बिकवा दिया! अब तुम्हारा प्राण जट विदेश जा रहा है।'

जटिन जवाब देती है—

"ओहूसे उत्तम हम सी देब हे जटा,
हम सी देब हे जटा,
अब जटा मति जाऊ विदेश।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—'ऐ मेरे प्रीतम ! मैं उससे भी उम्दा रूमाल सी दूँगी । उससे भी उम्दा रूमाल तैयार कर दूँगी ; लेकिन तुम विदेश मत जाओ ।'

× × ×

मिथिलामें इस प्रकारके बहुतसे गीत गाये जाते हैं, जो बड़े सुन्दर और ललित होते हैं। 'जट-जटिन'की तरह यहाँ 'सामा-चकेवा'का गीत भी प्रसिद्ध है। यह कोई निरर्थक गीत नहीं, बल्कि इसकी लय, भाव-व्यंजना और भावोंकी बन्दिश अनोखी है। यह कार्तिकके महीनेमें चाँदनीमें 'सामा-चकेवा'की मृतिका-निर्मित मूर्त्तियोंको सामने रखकर गाया जाता है। इस गीतमें वन-लतिकाओं-सी सुकुमार ग्रामीण बालिकाओंकी कोमलताका अंकन किया गया है, जो फूल लोढ़नेके लिए फुलवाड़ीको चली हैं और कुछ वहाँ पहले ही से फूल चुन रही हैं। वहाँका दृश्य रमणीय है। दोपहरकी चिलचिलाती हुई धूप है। दरख्तोंके डाल-डालपर रेशमी झूले पड़ गये हैं। सुमनोद्यान मौलश्री और चमेलीकी सोंधी-सोंधी सुगन्धिसे महक रहा है। बुलबुलोंकी चहक, कोयलोंकी कूक और मत्त मयूरोंके नृत्यसे प्रकृति संगीतमय हो उठी है। ऐसे अवसरपर ग्रामीण बालिकाएँ वहाँ पहुँचती हैं, और वहाँ एक दूसरी अपरिचित बालिकाको फूल चुनते देखकर आपसमें प्रश्न करती हैं—

"कओन भइआके इहो घनी फुलवड़िया हे,
कि कओन बहिनी लोढ़ेली चमेली फूल हे ?"

—'यह घनी फुलवाड़ी किसकी है और यह कौन बहन चमेलीका फूल चुन रही है ?'

दूसरी बालिका जवाब देती है—

"मोहन भइआके इहो बाड़ी-फुलवाड़ी हे,
कि चम्पा बहिनी तोड़ेली चमेली फूल हे ।"

—'यह मोहन भाईकी फुलवाड़ी है और यह चम्पा बहन चमेलीका फूल चुन रही है ।'

एक तीसरी कहती है—

"फूलवा लोढ़इते बहिनिआ मोरा घामल हे,
कि घामिए गेलई सिरके सेनुरवा हे !
कि घामिए गेलई नयनके कजरवा हे !
छतवा ले ले दऊड़ल अबथिन से मोहन भइआ हे,
कि बइठू हे बहिनी ए हो जुड़ी छँहिया हे,
कि पनिया ले ले दऊड़ल अबथिन से कनिया भऊजी हे,
कि पिऊ हे ननद, इहो शीतल पनिया हे !
कनिया भऊजीके केसिया चँवर सन हे,
कि ए ही केश गूँथबो चमेली फूल हे।"

—'फूल चुनते-चुनते मेरी यह सुकुमार बहन पसीनेसे तर हो गई है। उसके माथेकी सिन्दूर-बिन्दी और आँखोंका स्नेहमय काला काजल भी पसीज (पिघल) गया है। और अपनी सुकुमार बहनको उमससे व्याकुल देखकर यह मोहन भाई छाता लेकर दौड़े आ रहे हैं और उसे छाँहमें आराम करनेको कह रहे हैं। और अपनी ननदको पिलानेके लिए यह सुधा-सा शीतल पानी लेकर कनिया भौजी दौड़ी आ रही हैं। उनके श्वेत बाल चँवरके-से हैं। मैं उसमें चमेलीका फूल गूँथूँगी।'

एक विनोद-रसका फुहारा लीजिए। यह गीत एक बहनका उद्गार है, जिसने अपने भाई और भौजाईकी तारीफका पुल बाँधा है और चुगलखोर तथा उसकी धर्मपत्नीकी मखौल उड़ाई है। मैथिल बालिकाएँ चुगलखोरोंका बड़ा मखौल उड़ाती हैं। इनका मखौल उड़ानेका ढंग भी आकर्षक होता है। दस-दस अथवा सोलह-सोलह ग्रामीण बालिकाओंकी टोलियाँ दो झुंडोंमें बँट जाती हैं। बादमें एक झुंडकी बालिकाएँ दूसरे झुंडकी बालिकाओंसे प्रश्न करती हैं—

प्रश्न—"हमर भइआ कइसे आवे ?"
(हमारा भाई किस प्रकार आवे ?)

दूसरे झुंडकी बालिकाएँ जवाब देती हैं—

"हाथीपर बइठ हँसइत आवे ;
पानसे दाँत रँगइत आवे ;
रूमालसे मुँह पोंछइत आवे ;
कंघीसे केश झाड़इत आवे ।"

—'हाथीपर बैठकर मुसकराता हुआ आवे, पानसे दाँतोंको रँगता हुआ आवे, रूमालसे मुँहको साफ करता हुआ आवे और कंघीसे बालको सँवारता हुआ आवे ।'

प्रश्न—"हमर भउजी कइसे आवे ?"
(हमारी भौजाई किस प्रकार आवे ?)

उत्तर—"पालकीमें बइठ हंसइत आवे ;
सेनुरसे माँग भरइत आवे ;
अयनासे मुँह देखइत आवे ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—'पालकीमें बैठकर हँसती हुई आवे, सिरमें सिन्दूर लगाती हुई आवे और दर्पणसे चेहरा देखती हुई आवे।'

प्रश्न—"चुंगला भंडुआ कइसे आवे?"

(चुगला भडुआ किस प्रकार आवे ?'

उत्तर—"गदहापर बइठ कनइत आवे,
कोइलासे दाँत रँगइत आवे ;
कम्बलसे मुँह पोंछइत आवे,
छूरासे केश ओंछइत आवे।"

—'गदहापर बैठकर रोता हुआ आवे, कोयलासे दाँतोंको रँगता हुआ आवे, कम्बलसे मुँहको पोंछता हुआ आवे और उस्तरेसे बालको मुँड़वाता हुआ आवे।'

प्रश्न—"चुंगला बहू कइसे आवे ?"

(और चुंगलाकी स्त्री किस तरह आवे ?)

उत्तर—"खटुली चढ़ल भँडुई कनइत आवे,
कोइलासे माँग भरइत आवे,
खपड़ीसे मुँड़ फोड़इत आवे।"

—'खटोली (पालकीकी तरह एक काठकी भद्दी सवारी) पर चढ़कर रोती हुई आवे, कोयलासे मुँहको काला करती हुई आवे और खपड़ीसे सिरको फोड़ती हुई आवे।'

× × ×

नपी-तुली उपमाका नज़ारा देखिये। निम्न-लिखित गीत भी 'सामा-चकेवा'से ही सम्बन्ध रखता है, जिसमें एक बहनने अपने भाईके तन्दुरुस्त और उसके लौह-गठित शरीरका बखान किया है—

"जइसन नदिया सेमार,
तइसन भइआ असवार ;
जइसन केरवाके थम्भ,
तइसन भइआके जाँघ ;
जइसन धोबिआके पाट,
तइसन भइआके पीठ ;
जइसन चन्ना बिरीछ,
तइसन भइआ-हाथके लाठी ;
जइसन जरले जराठी,
तइसन चुगला-हाथके लाठी।"

—'जिस प्रकार नदियोंके वक्षस्थलपर शैवाल छा जाता है, उसी प्रकार भाई घोड़ेपर चढ़ा हुआ है ; जैसा केलेका थम्भ होता है, वैसी ही भाईकी जाँघ है ; जैसा धोबियोंके कपड़ा साफ करनेका लकड़ीका मजबूत पाट होता है, वैसी ही भाईकी पीठ है ; जैसा चन्दनका दरख्त होता है, वैसी ही उसके भाईके हाथकी लाठी है और जैसी अध-जली जराठी होती है, वैसी ही चुगलेके हाथकी काली लाठी है।'

उपमाएँ वे ही हैं, जो ग्राम या ग्रामके आसपास दीख पड़ती हैं। इसमें किसी प्रकारकी टीम-टाम या तड़क-भड़क नहीं।

× × ×

निम्न-लिखित गीतमें प्रेमिका अपने प्रीतमसे आग्रह कर रही है—

'तेरे नजर दुनु छँहिया बलमु दुपहरिया गँवालिऊ हो,
चार महीना पिया जाड़ा पड़तु हैं, थर-थर काँपे कलेजवा,
बलमु दुपहरिआ गँवालिऊ हो ! तेरे नजर दुनु०
चार महीना पिया गरमी पड़तु हैं, ठोपे-ठोपे चुए पसीनवा,
बलमु जरा बेनिया डोलादिऊ हो। तेरे नजर दुनु०
चार महीना पिया बरसा बरसतु हैं, ठोपे-ठोपे चुए मन्दिरवा,
बलमु जरा बंगला छबादिऊ हो। तेरे नजर दुनु०"

—'ऐ मेरे प्रीतम ! ज़रा मैं तुम्हारी दोनों आँखोंकी शीतल छाँहमें चिलचिलाती हुई दोपहरी तो बिता लूँ। ऐ मेरे प्रियतम ! चार महीने तो कड़ाकेका जाड़ा पड़ता है और मेरा कलेजा थरथर काँपता है, इसलिए तुम्हारी दोनों आँखोंकी शीतल छाँहमें ज़रा दोपहरी तो बिता लूँ। ऐ मेरे प्रीतम ! चार महीने तो भीषण गर्मी पड़ती है और मेरे शरीरसे बूँद-बूँद पसीना टपकता है, इसलिए ज़रा पंखा तो झल दो। ऐ मेरे प्रीतम ! तुम्हारे युगल नयनोंकी कोमल छाँहमें ज़रा दोपहरी तो बिता लूँ। चार महीने तो पावस-ऋतु रहती है और मेरी यह घास-फूसकी झोंपड़ी टप-टप चूने लगती है, इसलिए ऐ मेरे प्रीतम ! एक बँगला तो बनवा दो। ऐ मेरे प्रीतम ! तुम्हारी दोनों नज़रोंकी शीतल छाँहमें ज़रा दोपहरी तो बिता लूँ।'

निम्न-लिखित गीतकी प्रेमिका गर्मीकी भूख और प्यासके कारण बेचैन है ; पर इच्छा होनेपर भी वह अपने पतिके पूर्व भोजन या जलपान करना भारतीय संस्कृतिके विरुद्ध समझती है। उसके इस प्रेमाधिक्यकी बानगी देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सोनेके झारी गंगाजल पानी,
पिऊ पिया पानी पिलाओ जल्दीसे ;
मोर दिल व्याकुल भई गरमीसे ।
सोनेके थालीमें जेओना परोसल,
जेंवो पिया भोजना, जेंवाओ जल्दीसे ;
मोर दिल व्याकुल भई गरमीसे ।
लवंगामें चुनि-चुनि बिड़िया लगएलो,
चाभो पिया, चभावो जल्दीसे ;
मोको दिल व्याकुल भई गरमीसे ।
फूलोंकी डालीसे सेजिआ सजएलो,
सोओ पिया सेजिया, सुलाओ जल्दीसे ;
मोको दिल व्याकुल भई गरमीसे ।"

—'मेरा दिल गर्मीसे व्याकुल हो गया है। ऐ मेरे प्रीतम ! सोनेके घड़ेमें गंगाका पानी है। इसे पीओ और मुझे भी पिलाओ। सोनेकी थालीमें भोजन परोसे हैं। ऐ मेरे प्रीतम ! इसे खाओ और मुझे भी खिलाओ। लौंगोंसे बिंध-बिंधकर मैंने पानकी खिल्लियाँ लगाई हैं। ऐ मेरे प्रीतम ! इन्हें खाओ और मुझे भी खिलाओ। ऐ मेरे प्रीतम ! फूलोंकी डालीसे मैंने सेज सँवारी है। इसपर सोओ और मुझे भी सुलाओ। मेरा दिल गर्मीसे व्याकुल हो रहा है।'

निम्न-लिखित 'सोहर' गीत पुत्रके यज्ञोपवीत-संस्कारके अवसरपर गाया जाता है। यह सुरुचिपूर्ण रचना पुरानी शैलीका एक लोकप्रिय सजीव उदाहरण है —

"कओने शाहीके ऊँची चौपड़िया कि हारे बाँसे
छाओल रे !
ललना रे कओने बाबूके प्रेम-सुन्दरिया
लोटन-पोटन करु रे !
किशुनदयाल शाहीके ऊँची रे चौपड़िया कि हारे बाँसे
छाओल रे !
ललना रे अवध बाबूके प्रेम-सुन्दरिया कि
लोटन-पोटन करु रे !
ललना रे आन दिन सूतलन पिया कर लागी
बँहिया सिरहना धरी, रे ललना आजु पिया
सुतलन मुँह फेरी कि कइसे जगाइब रे !
कि मोरे सिर वेदन रे !
एतना परन पिया जनि करु हे, पिया
दऊड़ी-दऊड़ी आएव मोरा सेजिया परन
रऊरा नाहिंए रहत हे !"

—"यह बाँसों और पत्तियोंसे सजाया हुआ किस शाहंशाहका बँगला है ? और हे सखी, यह किस बाबूका प्रेम मन्दिर है; ज़रा लोट-पोट कर लूँ। उसकी सखी जवाब देती है—'यह बाँसों और हरी-हरी पत्तियोंसे बनाया हुआ किशुनदयाल शाहीका सुन्दर बँगला है और यह अवध बाबूका प्रेम-मन्दिर है ; जी चाहे तो लोट-पोट कर लो।' वह फिर कहती है—'हे मेरी सखी, और रोज़ तो मेरा मौजी प्रीतम अपने सिरके नीचे मेरी बाँहका गलतकिया रखकर सोते थे, लेकिन आज मुँह फेरकर सोये हैं। मैं कैसे जगाऊँ ? मुझसे उस तरह रुख बदलकर सोनेका कारण अपने सिरकी पीड़ा बतलाते हैं ; पर मेरे प्रीतम मुझसे इस तरहकी प्रतिज्ञा न करें। उनकी प्रतिज्ञा नहीं रहेगी। वह तो मेरी इस प्रेम-सेजपर दौड़-दौड़कर आयेंगे ही।'

पूर्वमें पौ फटती है, तालाबमें कमलिनी खिलती है और चिड़ियाँ धीरे-धीरे खुशीका सन्देश देती हैं। निम्न-लिखित गीतमें एक रमणी अपने प्रीतमसे, जो अभी गाढ़ी निद्रामें खर्राटे ले रहा है, पर्देकी जटिलता और लोक-लाजके कारण शयनागारसे उठ जानेका अनुरोध कर रही है—

"भोर भइले हे पिया, भिनुसरवा भइले हे,
पिया उठु न पलँगिया अब कोइलिया बोले न।
उठवे करबऊ गे धनी, उठवे करबऊ गे,
देही न मुरेठवा हम कलकतवा जइबऊ गे।
कलकतवा जइबा हे पिया, कलकतवा जइबा हे,
हम बाबाके बुलबाइएक नहिहरवा जइबइ हे।
नहिहरवा जइबे गे धनी, नहिहरवा जइबे गे,
जेतना लागलबा रुपइआ, तेतना धइए देही न।
धइए जबओ हे पिया, धराइए जबओ हे,
जइसन अइली बाबा-घरसे तइसन बनाइए देहु हे !
बनाइए देवऊ गे धनी, बनाइए देबऊ गे,
हम अंगूरके शरबतवा पिलाइए देबऊ गे।
हम मोतीचूरके लड्डुआ खिलाइए देबऊ गे।
नहिंए बनबइ हे पिया, हम नहिंए बनबइ हे,
जइसन अइली बाबा-घरसे, तइसन नहिंए बनबइ हे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—"कालिमा फट गई। उजेला छा गया और कोयल भी कूकने लगी, इसलिए ऐ मेरे प्रीतम! अब पलंग छोड़ो और जाओ।' उसका प्रीतम, जिसके जीवनका आधासे अधिक भाग दूसरोंकी गुलामीमें ही बीता और जो शर्मकी जंज़ीरमें बँधकर इस फुर्सतके क्षणिक आरामको नष्ट नहीं करना चाहता, उसकी बातोंसे झुँझला उठता है और क्रोधित होकर फिर नौकरी करने कलकत्ते जानेको आमादा हो जाता है। निम्न-लिखित पंक्तियाँ उसीके उद्गार हैं—'मेरी प्रियतमे! मैं तो जाऊँगा ही और उठकर जाऊँगा ही; पर पहले मेरा मुरेठा तो ला दो। मैं कलकत्ते जाऊँगा।' उसकी प्रियतमा कहती है—'ऐ मेरे प्रीतम! यदि तुम मेरी बातोंसे नाराज होकर कलकत्ते जाओगे तो जाओ; पर मैं भी अपने पिताको बुलाकर अपने नैहर चली जाऊँगी।' उसका पति जवाब देता है—'मेरी प्रियतमे! यदि तुम नैहर जाती हो तो जाओ; पर तुम्हारी शादीमें मेरे जितने रुपये लगे हैं, सब रख दो।' उसकी पत्नी कहती है—'मेरे प्रीतम! मैं तो वे रुपये रख ही जाऊँगी, अथवा रखवा ही दूँगी; पर मैं यहाँ जैसी अपने पिताके घरसे आई थी, तुम भी ठीक वैसा ही बना दो।' उसका पति जवाब देता है—'ऐ मेरे प्रियतमे! मैं तो तुम्हें मोतीचूरकी मिठाई खिलाकर और अंगूरका शरबत पिलाकर ठीक वैसी बना दूँगा। उसी प्रकारकी बना ही दूँगा; पर तुम्हारी शादीमें मेरे जितने रुपये लगे हैं, सब दो।' अन्तमें उसकी प्रियतमा कहती है—'ऐ मेरे प्रीतम! मैं वैसी कभी नहीं बनूँगी—कभी नहीं बनूँगी। मैं यहाँ जैसी अपने पिताके घर आई थी, फिर वैसी कभी नहीं बन सकूँगी।'"

नीचे लिखे गीतमें ज़मींदारोंकी निर्दयता, उनके कारिन्दोंकी बेईमानी, आधुनिक ब्राह्मणोंकी अपवित्रता, मज़दूरोंकी बेबसी और उनके बच्चोंके चीत्कारके सजीव चित्र खींचे गये हैं। यह गीत मिथिलामें वैशाख और जेठ महीनेमें, जब कभी पानी नहीं बरसता और दुर्भिक्षकी सम्भावना दीखती है, चाँदनी रातमें गाया जाता है। इसे केवल बालिकाएँ गाती हैं, और इसमें वर्षाके देवता इन्द्रकी स्तुति की जाती है। जिस रातमें स्तुति की जाती है, उसके सुबहमें एक छोटी-सी बच्ची उपवास करती है। फिर वह रात्रिमें ओखलीपर बैठकर और दाहने हाथमें एक पवित्र जलपात्र लेकर इन्द्रका ध्यान करती है, क्योंकि उनका विश्वास है कि जब जलपात्र छलकने लगेगा, तो दुर्भिक्ष मिट जायगा और वर्षा होगी। उस समय उसकी हमजोलियाँ निम्न-लिखित गीत गाती हैं*—

"हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम। टेक०
चौर सूखल, चाँचर सूखल,
सूखि गेलइ भइआके जिराते हो राम!
राँड़ी बभनिआ हरवा जोतइछइ,
फरवा उछटि, अड़िया लगइछइ हो राम!
हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम!
धोबिआके अँगनामें गादर-गुदर पनिया,
ओहीमें नहाये सब बभना हो राम!
धोतिया फींचल, जनेउआ सोंटल,
रची-रची तिलक चढ़ावे हो राम!
हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम।
जनमाके धीआ-पुता कल्ह-मल्ह करइछइ,
मालिक सब बेढियो न खोलइछइ हो राम!
गाँवके पटवरिया झूठे-मूठे लिखइछइ,
सरले खेसारी बन तौलइछइ हो राम!
हाली-हुलु बरसू इनर देवता,
पानी बिनु पड़इछइ अकाले हो राम।"

—'हे इन्द्र देवता! रिमझिम बरसो, क्योंकि पानीके बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है।

हरे-भरे मैदान सूख गये। नदी-नाले और तालाब मरुभूमि-से दीखने लगे और मेरे भाईके हरी फसलसे भरनेवाले खेत भी ऊसर हो गये। यहाँ तक कि विधवा ब्राह्मणी भी हल जोतने लगी; लेकिन पानीके बिना ज़मीनके पत्थर-सी कड़ी हो जानेके कारण फाल उछल-उछलकर आड़ियोंमें लग

* कहीं-कहीं मेंढ़कको पकड़कर उसकी आँखोंमें काजल और उसके माथेपर सिन्दूर-बिन्दी कर दी जाती है। फिर वे गीत गाती हुई बालिकाएँ उस मेंढ़कको ओखलीमें रखकर आहिस्ता-आहिस्ता चोट पहुँचाती हैं। जब वह 'टर्र-टों', 'टर्र-टों' की आवाज लगाने लगता है, तो वे समझती हैं कि अब वर्षा होगी। —लेखक

यह क्रूरतापूर्ण प्रथा बन्द होनी चाहिए। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। हे इन्द्र देवता! झमझम बरसो, अब पानीके बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है।

सिर्फ धोबीके आँगनमें ही कुछ गदला और मैला पानी (जिसको उसने बड़ी मेहनतसे मर-पचकर कपड़ा धोनेके लिए इधर-उधरसे इकट्ठा किया है) रह गया है। उसी गदले अपवित्र जलमें ब्राह्मण स्नान कर रहे हैं और उसी मैले पानीसे वे धोती कचारते, जनेऊ सोंटते और रच रचकर चन्दन करते हैं। हे इन्द्र देवता! रिमझिम बरसो, अब पानीके बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है।

मज़दूरोंके छोटे-छोटे बच्चे भूखसे आकुल हो रहे हैं; लेकिन उनके मालिक अपनी खत्तियोंको नहीं खोलते। और तो और गाँवके पटवारी भी झूठ-मूठ ग़रीबोंके सिर कर्ज़का बोझ लादकर अन्धेर कर रहे हैं और मज़दूरोंकी मज़दूरीमें सड़ी-गली खेसारी तौल रहे हैं। हे इन्द्र देवता! झमझम बरसो, अब पानीके बिना दुर्भिक्ष पड़ रहा है।'

ये हैं मिथिलाके रहन-सहन, आचार-विचार तथा रीति-रिवाजोंपर प्रकाश डालनेवाले कुछ गीत। किस मिथिलाके? निष्काम कर्मके ज्वलन्त दृष्टान्त राजर्षि जनककी मिथिलाके, न्यायसूत्रोंके रचयिता महर्षि गौतमकी मिथिलाके और जगन्माता जानकीकी जन्मभूमि मिथिलाके। और आज?.....

मध्ययुग-काव्य और श्रीकृष्ण

दूसरा पक्ष

श्री लक्ष्मीनारायण 'भारतीय'

आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी-साहित्यके इतिहास' में हिन्दी-साहित्यको चार कालोंमें विभक्त किया है। मध्यकाल पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें विभाजित है। उत्तर-मध्यकाल 'रीतिकाल' और पर्यायसे 'श्रृंगारकाल' के नामसे सम्बोधित है। राधाकृष्णको लेकर दोनों कालोंमें रचनाएँ हुई हैं, तथापि दोनोंमें बहुत अन्तर है। रीतिकालमें जो रचनाएँ हुई हैं, उनके विषयमें हम यहाँ विचार करेंगे।

जहाँ पूर्व-मध्यकालमें भक्ति और शुद्ध प्रेमकी व्यंजना हुई, वहाँ उत्तर-मध्यकालमें तत्कालीन नृपतियोंकी विलासमयी चेष्टाओंकी और अपनी वासनामयी प्रवृत्तिकी परितृप्तिके लिए कृष्ण और गोपियोंकी आड़में हिन्दीके कवियोंने कलुषित प्रेमकी अत्यधिक उद्भासनाएँ कीं। राजाओंसे पुरस्कार पानेकी होड़में कवितामृत विषैला किया गया। वैवाहिक जीवनकी दृढ़ताके कारण कवियोंको मनमानी रचनाएँ करनेके लिए मौक़ा न था; परकीया आदिकी रचनाएँ स्वतन्त्र रूपसे दोषी होती हैं, अतः कृष्ण और गोपियाँ ही उनको ऐसे आधार मिल गये थे, जिनके कारण वे निरंकुश हो गये। ईश्वर-भक्तिका नाम दिया गया; परन्तु यह स्पष्ट है कि वह सर्वथा ग़लत था। उधर संस्कृतकी पतनावस्था थी, और उसमें रीति-ग्रन्थोंके सम्प्रदाय बन चुके थे, अतः संस्कृतका आधार हमारे हिन्दी-कवियोंको प्राप्त था। लक्ष्य-ग्रन्थोंके बाद लक्षण-ग्रन्थोंका निर्माण होता है। सूर, तुलसीके समय काव्य-शास्त्रपर उतना ध्यान नहीं दिया गया। रीतिकालके कवियोंने इसके लिए कमर कसी। फिर अलंकारोंकी भरमार-सी हो गई। कुछ इनेगिने कवियोंको छोड़कर शुद्ध प्रेमकी व्यंजना किसीमें नहीं हुई।

आना किंग्सफोर्डने कहा है—"It is love which is the centripetal power of the universe." —'प्रेम ही जीवनकी केन्द्रोन्मुख शक्ति है।' यह जीवनकी अखण्ड प्रेरक शक्ति भी है। इसकी स्वर्गीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतिसे कोई नहीं बच सकता है। मानव-जीवनको सरस करनेवाली यही एक ऐसी वस्तु है, जिससे मनुष्य इस लोकके साधारण भावोंसे एकदम ऊँचा उठ जाता है। सच्चा प्रेम जीवनकी आन्तरिक अनुभूति है, जिसके आधारपर वह सब-कुछ सहनेको तैयार होता है। इसका अन्त त्यागमें जाकर होता है। भोग-लालसासे यह सर्वथा परे है। कृत्रिमता अथवा कलुषित वासनाका पुट जहाँ इसको मिला, वहीं यह अपने उच्च आदर्शसे गिरने लग जाता है।

साहित्यमें प्रेमको सदा स्थान मिला है और मिलता रहेगा। अपने उच्च आदर्शको लेकर प्रेम जहाँ भी पदार्पण करता है, वहीं वह एक स्वर्गीय आनन्दका मधुर रस प्रसूत कर देता है। हमारे साहित्यमें जहाँ इस उच्च आदर्शका निबाह मीरा, रसखान, रसलीन आदिकी प्रेम-व्यंजना द्वारा हुआ है, वहीं वह श्रृंगारी कवियों द्वारा कलुषित रूपमें प्रत्यक्ष हुआ है, और वह हुआ है राधा-कृष्णके प्रेमको लेकर। राधा-कृष्णके प्रेमकी आड़में इन श्रृंगारी कवियोंने अपनी कलुषित वासनाओंका जिस प्रकार पोषण किया है, उससे श्रृंगारका वास्तविक महत्त्व बहुत-कुछ कलंकित हो गया है। श्रृंगार-रस सब रसोंमें श्रेष्ठ माना गया है। उसकी व्याप्ति सर्वकालमें किसी-न-किसी रूपमें वर्तमान रहती है। सच्ची श्रृंगार-भावना द्वारा मनुष्यकी मनोवृत्तियाँ कभी कलंकित और वासनामय नहीं हो सकतीं; परन्तु जहाँ उसमें अश्लीलता एवं व्यभिचारी वृत्तिका समावेश हुआ, वहीं साहित्य भ्रष्ट हो उठता है। हमारे साहित्यका रीतिकाल इसका स्पष्ट परिचायक हैं। रीतिकालके कवियोंकी रचनाएँ सरस, कोमल, मधुर होनेपर भी उनका महत्त्व इसलिए घट गया है कि उनमें उनकी उस वासनाका पुट पाया जाता है, जो सच्चे प्रेमके ठीक विपरीत है। इन कवियोंका ठकुरसुहाती या आश्रय दाताओंकी प्रशंसाका ही ध्यान था।

रीतिकालके अधिकांश ग्रन्थ अपने आश्रयदाताओंकी प्रशंसाके लिए बनाये गये माने जाते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वीर-पूजाकी भावना जहाँ पूर्णतः लोप हो जाती है और केवल नर-पूजाका ही प्राबल्य रहता है, वहाँ सत्साहित्यकी आशा करना अपने-आपको धोखा देना है। कवियोंकी निन्दनीय वासनाके संरक्षक राजा-महाराजा थे ही। कवि लोग यदि चाहते, तो लाल अथवा भूषण भी हो सकते थे; पर जनताकी रुचिका उन्हें कोई प्रयोजन न था। नायक-नायिका-भेद, दूति-कर्म, नख-शिख-वर्णन इत्यादिमें ही वे इतने उलझे रहे कि उन्हें सर्वसाधारणकी रुचिका ख़याल ही कैसे रह सकता था।

हिन्दू-समाजमें राम और कृष्णको भगवान-स्वरूप माना जाता है। गोस्वामीजीने रामको लेकर 'मानस'की रचना की और 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की उच्च स्थापना भी की। लोकपक्ष ही गोस्वामीजीकी मुख्य अभिव्यक्ति है। राममें जितने अंशमें लोकपक्ष वर्तमान था, उससे बढ़कर कृष्णमें वर्तमान था। गीता-जैसी तत्त्वज्ञानी रचनाका सृजन कृष्णसे ही माना जाता है। कृष्ण-भक्त कवि यदि चाहते, तो कृष्णका लोकपक्ष भी उतने ही सुन्दरतम ढंगसे, अपनी सतश्रृंगार-भावनाको क़ायम रखते हुए भी उपस्थित कर सकते थे; लेकिन वहाँ तो दूसरी ही बात थी। नितम्ब और कुचोंकी उपमा ढूँढ़नेसे उन्हें फ़ुर्सत कहाँ?

"भारतवर्षमें श्रीकृष्णके व्यक्तित्वको लेकर लोकोत्तर काव्य-रसकी अखण्ड मन्दाकिनी प्रवाहित है।" यह ठीक है; पर साथ-साथ यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि श्रीकृष्णके व्यक्तित्वको ही संकुचित दृष्टिमें लेकर श्रृंगार-रसके नामपर अश्लीलता और वासनाके नरकका परिपोषण भी हुआ है, और उसने "तीनों लोकोंको ही नहीं, वरन इनके भी परे यदि कोई चैतन्यताके धाम हैं तो उनको भी पुनीत" करनेके बजाय कलंकित करनेकी चेष्टा की है। "मात्र वीर-पूजाकी भावना काव्यके यह करिश्मे नहीं दिखला सकती।" इस कथनसे हम सहमत हैं; पर इसके मानी यह नहीं हैं कि श्रृंगारको हम इतना वीभत्स बना दें कि उससे मानव-समाजकी कुप्रवृत्तियोंको उत्तेजना मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यमें प्रेमके नामपर भोग-विलास और कलुषित दृष्टि स्पष्टरूपसे व्यंजित हुई है। रास्तेकी छेड़-छाड़, स्त्रैण-विचार और भाव-भंगी किस बातको लक्षित करती है? शारीरिक आकर्षण अनेक ढंगोंसे उत्पन्न करनेका उद्देश्य भी कहीं जन वा साहित्य-हित हो सकता है? कुटनी दूतियों द्वारा 'बहती नदी पाँय पखारि लैरी' उद्गार निकालना किस मनोवृत्तिका दिग्दर्शक है? अपवाद-स्वरूप शुद्ध भावोंकी व्यंजना यद्यपि किसी-किसीने की है, तथापि अधिकांश रचनाएँ उपर्युक्त श्रेणीकी ही हैं। रीतिकालको शृंगारकाल ही नहीं, यदि 'काम-प्रणयनकाल' कहा जाय, तो हमारी रायमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी।

कविताकी दृष्टिसे रीतिकाल कैसा है, यह भी ज़रा देख लें। यद्यपि यह ठीक है कि इस कालकी कवितासे साहित्यकी एक प्रकारकी प्रगति हुई है; परन्तु वह अमर नहीं मानी जा सकती। आचार्य भरतने शृंगारकी जो परिभाषा लिखी है,—'यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते'—इसपर तो उक्त रचनाएँ तनिक भी कसी नहीं जा सकतीं। काव्यका जो महान उद्देश है, उसकी पूर्ति इस काव्यसे कदापि नहीं हो सकती। मान लिया जाय कि यदि रीति-ग्रन्थोंकी रचना नहीं होती, तो क्या होता—क्या साहित्यकी प्रगति रुक जाती? कदापि नहीं। किसी-न-किसी रूपमें वह अवश्य होती। तब यह कहना—'छाय जाती जड़ता, विलाय जाते कवि सब,

जरि जातो रस औ' रसिक कहा गावते?'

कहाँ तक युक्तिसंगत है?

जो साहित्य हमारी मा-बहनोंके सम्मुख पढ़ने लायक नहीं है, उस साहित्यकी उपादेयता भी कैसे मानी जा सकती है? आधुनिक युगकी कसौटीपर तो यह कसी ही नहीं जा सकेगी। वर्तमान समयमें उसके अध्ययन-अध्यापनकी और संरक्षणकी क्या आवश्यकता है, यह समझमें नहीं आता। प्राचीनका संरक्षण तभी स्तुत्य माना जा सकता है, जब कि उससे कुछ लाभ हो; पर इस प्रकारके कूड़ा-करकटकी रक्षा करनेका क्या प्रयोजन है?

नायिका-भेद

राजाश्रय मिलनेकी देरी, राजाजीको सब प्रकारकी नायिकाओंके रसास्वादनका आनन्द चखानेके लिए कविजीको देरी नहीं। १० वर्षकी अज्ञात-यौवनासे लेकर ५० वर्षकी प्रौढ़ा तकके सूक्ष्मसे सूक्ष्म भेद बतलाकर और उनके हाव, भाव, विलसादिकी सारी दिनचर्या वर्णन करके ही कविजन सन्तोष नहीं करते थे। दुराचारमें सुकरता होनेके लिए दूती कैसी होनी चाहिए; मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादिमें से इस कामके लिए कौन सबसे अधिक प्रवीण होती हैं; इन बातोंका भी वे निर्णय करते थे। नायकके सहायक विट और चेटक आदिका भी वर्णन करनेसे वे नहीं चूकते थे। इस प्रकारकी पुस्तकों अथवा कविताओंका बनना अभी बन्द नहीं, वे बराबर बनती जाती हैं।.....इस प्रकारकी पुस्तकोंमें लिखा क्या रहता है? लिखा रहता है परकीया (परस्त्री) और वेश्याओंकी चेष्टा और उनके कलुषित कृत्योंके लक्षण और उदाहरण, परकीयाके अन्तर्गत अविवाहित कन्याओंके पापाचरणकी कथा!! पुरुषमात्रमें पतिबुद्धि रखनेवाली कुलटा स्त्रियोंके निर्लज्ज और निरगल प्रलाप!!! और भी अनेक बात रहती हैं। विरह-निवेदन करने अथवा परस्पर मेल करा देनेके लिए दूतों और दूतियोंकी योजनाका वर्णन रहता है; वेश्याओंको बाजारमें बिठलाकर उनके द्वारा हजारोंके हृदय-हरण किये जानेकी कथा रहती है। परकीयाओंके द्वारा, कबूतरके बच्चेकी जैसी कूजितके मिष, पुरुषोंके आह्वानकी कहानी रहती है। कहीं कोई नायिका अँधेरेमें यमुनाके किनारे दौड़ी जा रही है; कहीं कोई चाँदनीमें चाँदनी ही के रंगकी साड़ी पहनकर घरसे निकल, किसी लता-मण्डपमें बैठी हुई किसीकी मार्ग-प्रतीक्षा कर रही है; कहीं कोई अपनी सासको अन्धी और अपने पतिको विदेश गया बतलाकर द्वारपर आये हुए पथिकको रात-भर विश्राम करनेके लिए प्रार्थना कर रही है; कहीं कोई अपने प्रेम-पात्रके पास गई हुई सखीके लौटनेमें विलम्ब होनेसे कातर होकर, आँसुओंकी धारासे आँखोंका काजल बहा रही है!!! यही बातें विलक्षण उक्तियोंके द्वारा, इस प्रकारकी पुस्तकोंमें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं। सदाचरणका सत्यनाश करनेके लिए क्या इससे भी बढ़कर कोई युक्ति हो सकती है? युवकोंको कुपथपर ले जानेके लिए क्या इससे भी अधिक बलवती और कोई आकर्षणशक्ति हो सकती है? — महावीरप्रसाद द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारत-भारती' के गायकसे भेंट

श्री काका कालेलकर

बारह-चौदह करोड़ लोगोंकी हिन्दी-भाषाके बहुत बड़े घेरेके अन्दर सर्वश्रेष्ठ कविका पद प्राप्त करना कोई मामूली काम नहीं। श्री मैथिलीशरणजीने उसके लिहाज़से अभी-अभी 'वन'में प्रवेश किया है। हिन्दी-संसारने गत वर्ष उनका 'सुवर्ण-महोत्सव' जगह-जगह खूब धूमधामसे मनाया और उनके प्रेमियोंने उनका सम्मान करनेके लिए एक 'मैथिलीमान' ग्रन्थ तैयार कराकर हाल ही में, काशीमें, महात्मा गांधीके हाथों उनको समर्पित किया है। १९१०-११ सालसे इस प्रतिभावान कविने अपनी काव्य-रचनाका आरम्भ किया और १९१३ में प्रकाशित उसकी 'भारत-भारती'ने—जिसका सुन्दर मंगलाचरण 'मानस-भवनमें आर्यजन जिसकी उतारें आरती, भगवान भारतवर्षमें गूँजे हमारी भारती'की सफल सतरोंके आरम्भसे ही हुआ था—एकाएक उनका नाम सारे हिन्दुस्तानमें मशहूर कर दिया।

'भारत-भारती' लिखकर श्री मैथिलीशरण गुप्तने एक ही क्षणमें भारतीय जनताके हृदयमें दृढ़तापूर्वक अपना आसन जमा लिया। बंग-भंग-आन्दोलनके साथ एक छोरसे दूसरे छोर तक जो जागृतिकी लहर दौड़ गई थी और लोगोंके दिलोंमें आर्य-संस्कृतिके बारेमें जो अभिमान, आदर और आत्म-विश्वास पैदा हो चुका था, उसे व्यक्त करनेवाला कोई समर्थ कवि इस देशमें उत्पन्न होना ही चाहिए था। भारतीय संस्कृतिका जो अच्छी तरह आकलन करेगा, आजके समाजमें जो प्रेरणा भरेगा और भविष्यके चित्रको अत्यन्त उज्वल रूपमें लोगोंकी दृष्टिके सामने खड़ा करेगा, कृतज्ञ जनता-हृदय सहज ही उसका राष्ट्रकविके रूपमें स्वागत करेगा। कर्मवीर गांधीने 'हिन्द-स्वराज्य' लिखकर जिस तरह अपनी भारतीय संस्कृतिकी कल्पना और स्वराज्य-प्राप्तिकी साधना थोड़ेसे शब्दोंमें लोगोंके आगे रखी, उसी तरह कल्पना-वीर गुप्तजीने भारतीय प्राचीन वैभव, वर्तमान अधःपतन और भविष्यकालीन उज्वल आशाका उद्बोधन करानेवाला यह भव्य काव्य लिखा था। इस राष्ट्रीय काव्यके लिए 'भव्य' विशेषण अत्यन्त उपयुक्त है।

"हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी;
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।"

इस तरह कहकर कवि अपने साथ पाठकोंको भारतीय संस्कृतिका सिंहावलोकन करानेके लिए ले चलता है। उन्नीसवीं सदीके अन्त तक जो-कुछ खोज हुई थी, इतिहास लिखा जा चुका था और भारतवर्षकी श्रेष्ठता सिद्ध की जा चुकी थी, उन सबका उपयोग कर कविने अपना अतीत खंड सजाया।

स्वाभिमानकी सबसे ऊँची चोटीपर पहुँचनेके बाद वर्तमानकी ओर देखते ही कविका हृदय भर आया। वह कह उठा—

"जिस लेखनीने है लिखा उत्कर्ष भारतवर्षका;
लिखने चली अब हाल वह उसके अमित अपकर्षका।
जो कोकिला नन्दन विपिनमें प्रेमसे गाती रही;
दावाग्नि-दग्धारण्यमें रोने चली है अब वही।"

कविका 'वर्तमान खंड' करुण-विलापका अखंड स्रोत है। वह अपने सहयोगी कवि-बन्धुओंको लक्ष्यकर कहता है—

"कवि-कर्म कामुकता बढ़ाना रह गया देखो जहाँ;
वह वीर-रस भी स्मरसमरमें हो गया परिणत यहाँ।"
"अश्लील ग्रन्थोंसे हमारा शील चौपट हो रहा।"

और अन्तमें उनको लक्ष्यकर गुप्तजी कहते हैं—

"करते रहोगे पिष्टपेषण और कब तक कविवरो!
कच-कुच-कटाक्षोंपर अहो अब तो न जीतेजी मरो!
है बन चुका शुचि अशुचि अब तो कुरुचिको छोड़ो भला;
अब तो दया करके सुरुचिका तुम न यों घोंटो गला।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"केवल मनोरंजन न कविका कर्म होना चाहिए।"
"धैर्यच्युतोंको धैर्यसे कवि ही मिलाना जानते ;
वे ही नितान्त पराजितोंको जय दिलाना जानते।"
"मृत जातिको कवि ही जिलाते रस-सुधाके योगसे ;
पर मारते हो तुम हमें उलटे विषयके रोगसे।"
"संसारमें कविता अनेकों क्रान्तियाँ हैं कर चुकी ;
मुझे मनोंमें वेगकी विद्युत्प्रभाएँ भर चुकी।"

और अन्तमें भक्ति-नम्र होकर कवि ईश्वरसे प्रार्थना करता है—

"इस देशको हे दीनबन्धो ! आप फिर अपनाइये ;
भगवान भारतवर्षको फिर पुण्यभूमि बनाइये।
सीतापते ! सीतापते ! यह पाप भार निहारिये ;
अवतीर्ण होकर धर्मका निज राज्य फिर फैलाइये।"

यों देखनेसे तो 'भारत-भारती' काव्य न होकर भारतवर्षकी सांस्कृतिक दुन्दुभि है। मैथिलीशरणजीके पहले हिन्दी-कविता अधिकांश ब्रजभाषामें ही लिखी जाती थी। लोगोंकी ऐसी धारणा थी कि आधुनिक हिन्दी, जिसे खड़ी बोली कहते हैं, केवल गद्यके ही कामकी है। गुप्तजीने यह सिद्ध करके हमें बता दिया कि आधुनिक खड़ी बोली काव्य-रचनाके अति अनुकूल, ओजस्विनी और रसवती है। नई शैलीके आदि-कविका सम्मान प्राप्त करना और एक युग (बारह बरस) बाद उसी शैलीके सर्वश्रेष्ठ कविका पद पाकर उस कीर्तिको चिरस्थायी बना देना कोई मामूली बात नहीं है। 'भारत-भारती'के बाद गुप्तजीने लगभग १६-१७ सुन्दर काव्य लिखे हैं। उनका 'जयद्रथ-बध' काफी लोकप्रिय है। 'सिद्धराज' लिखकर उन्होंने मध्यकालीन भारतीय राजपूत वीरके चरित्रको बड़ी ही उत्तम रीतिसे चित्रित किया है। 'यशोधरा' लिखकर उन्होंने बौद्धयुगको अपनी गीतांजलि अर्पण की है ; परन्तु कविकी विशेष कीर्ति तो 'साकेत' और 'द्वापर' द्वारा ही फैली है। 'साकेत' नवीन तर्जसे लिखी हुई रामायण है। उसकी भाषा अत्यन्त सरल और वेगवती है। कविका भाषापर अच्छा अधिकार है और उसके पास भावोंकी विपुल सम्पत्ति है। बौद्धयुगमें उन्होंने जिस तरह यशोधराको आगे लाकर खड़ा किया है, उसी तरह 'साकेत'में वाल्मीकि रामायणमें उपेक्षिता उर्मिलाको ध्यानमें रखकर उसके चित्रको अपनी सहज सरल उर्मिल शैलीमें बहुत ही आकर्षक बना दिया है।

कैकेयीकी काली करतूत देखकर कोपाविष्ट लक्ष्मण जिस तरह 'आज मेरा धर्म राजद्रोह' कहकर गर्जन-तर्जन करते हुए धरतीको कम्पित कर देते हैं, उसी तरह कविके सीधे-सादे शब्दोंमें भी कैसी गज़बकी शक्ति भरी हुई है, इसका परिचय नीचे लिखी चार पंक्तियोंमें सुनिये—

"तात राज्य नहीं किसीका बित्त
वह उन्हींके सौख्य-शान्ति-निमित्त ;
स्वबलि देते हैं उसे जो पात्र
नियत शासक लोक-सेवक मात्र।"

लक्ष्मण कैकेयीको लक्ष्यकर कहते हैं—

"हा ! अराजक भाव जो था पाप,
कर दिया है पुण्य तुमने आप।
राजपद ही क्यों न अब हट जाय ?
लोभ-मदका मूल ही कट जाय।
कर सके कोई न दर्प न दम्भ,
सब जगतमें हो नया आरम्भ।
विगत हों नरपति रहे नरमात्र
और जो जिस कार्यके हों पात्र—
वे रहें उसपर समान नियुक्त
सब जियें ज्यों एक ही कुलभुक्त।"

'द्वापर' गुप्तजीकी बिलकुल ताज़ी काव्यकृति है। इसमें श्रीकृष्ण, राधा, यशोदा, नारद, ग्वाल-बाल, कंस, उग्रसेन, अक्रूर, कुब्जा, उद्धव आदि पात्रोंके मुँहसे अपने विचार कहलवाकर कविने नीलमपर धूपकी बहार बिखेर दी है। 'द्वापर' का पाठ करते समय खलील गिब्रानकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'Jesus the son of man' नामक एक सुन्दर रचना याद आ गई।

बनारसमें अभी थोड़े दिन पहले इस कविका जो महान सम्मान हुआ था, उस समारोहमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य मिलनेपर उनसे चार-पाँच प्रश्न पूछनेका अच्छा मौक़ा मेरे हाथ लग गया। गुप्तजी आदर्श गृहस्थ हैं। श्रीरामकी उपासना जिसका कुलधर्म हो, उसका गृहस्थाश्रम सुन्दर रीतिसे सम्पन्न तो होना ही चाहिए। एक बार चिरगाँव आकर मिल जानेका उनका और उनके प्रिय बन्धु सियारामशरणजीका बहुत पुराना न्यौता होनेपर भी मैं अब तक उनके यहाँ नहीं गया हूँ। देखूँ, वह शुभ दिन और सुघड़ी मुझे कब मिलती है। पिछली बार काशीमें ही मैंने उन्हें पकड़ लिया और उनके आगे अपने सवाल पेश कर दिये। इस आर्य-कविमें कविके जीवन-कर्मके बहुत उन्नत भाव होनेपर भी अपने लिए उसमें रत्ती-भर भी गर्व नहीं है। रायकृष्णदासजी-जैसे कला-रसिक और साहित्य-सेवी सज्जनोंको जिसने अपना अभिन्न-हृदय मित्र—जिगरी दोस्त—बनाया, मुंशी अजमेरीजी-जैसे रजपूत मुसलमान कवि और भाषा-कोविदको अपना भाई बनाया और सियारामशरण-जैसे सहोदर बन्धुको जिसने अपने समान ही कवि और कहानी-लेखक बनाया, उसकी अपनी काव्योपासना किस तरह की है, यह जाननेके लिए मैं सहज ही उनसे प्रश्न कर बैठा।

प्रश्न—आपको कविता लिखनेकी प्रेरणा कैसे हुई?

मैथिलीशरण—कविता भी एक मादक वस्तु है। शुरू-शुरूमें मैंने सहज विनोदवश या कौतूहलकी दृष्टिसे ही कविता-लेखन प्रारम्भ किया था; लेकिन मुझे उसने अपने अधीन कर लिया। मेरे पिताजी अपने इष्टदेवको लक्ष्यकर स्तुति-स्तोत्ररूप कविता बनाया करते थे। मुझे भी उन्हींकी तरह स्तुति या गुण-गान करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। वही इच्छा प्रेरणामें परिवर्तित हो गई और उसकी परिणति हुई आत्म-निवेदनमें—आत्म-समर्पणमें।

इस तरहके स्वल्प उत्तरसे मेरे मनको समाधान नहीं हुआ। मैंने पूछा—कविताके क्षेत्रमें आपको जो असाधारण सफलता मिली है, उसका कारण मैं जानना चाहता हूँ।

उत्तर—प्रत्येक कवि अपने भावोंको कवितामें व्यक्त करता है। मैंने अपनी कवितामें जो भाव प्रकट किये हैं, उनके प्रति पाठकोंकी जो सहानुभूति है, मुझे तो ऐसा लगता है, वही मेरी थोड़ी-बहुत सफलताका कारण है।

कविने सारा श्रेय अपने पाठकोंको दिया है। उसकी विनम्रतासे यही समझना चाहिए कि कवि अपने समाज और वर्तमान पीढ़ीकी आकांक्षाओंका सच्चा प्रतिनिधि है, इसीलिए उसे इतनी सफलता हासिल हुई है।

इसके बाद मैंने दूसरा पहलू लेकर सवाल किया—जीवनकी कौन कौनसी घटनाओंका आपकी काव्य-वृत्तिपर विशेष रूपसे प्रभाव पड़ा है?

मैं सोच रहा था कि इस प्रश्नके उत्तरमें गुप्तजी अपनी आत्म-कथाका कुछ अंश ज़रूर छेड़ दें; लेकिन वे फ़िलासफ़ीमें उतर पड़े और बोले—विशेषतः जो घटनाएँ जीवनके लिए बाधक हैं, उन्हींका ज्यादा प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा है। साधक घटनाएँ—अनुकूल या पोषक घटनाएँ—जीवनको विश्रान्ति देती हैं। जीवनमें क्रान्ति तो हमेशा बाधक घटनाओं द्वारा हुआ करती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कविको पाण्डव-जननी कुन्ती देवीका 'विपदः सन्तु नः शश्वत्' यह वचन अत्यन्त प्यारा है। कविके पूर्वाचार्य कौन हैं, यह जाननेके लिए मैंने पूछा—आपने किन-किन पूर्व कवियोंका अध्ययन किया है, अथवा शुरू-शुरूमें आपने किसका अनुसरण किया?

उत्तर—कइयोंका। लेकिन उनका अध्ययन न कहकर बाँचना कहना चाहिए। उनमें मुख्य तो तुलसीदास और कालिदास हैं। तुलसीके चरणोंमें मैं अपना मस्तक रखता हूँ और कालिदासको अपने मस्तकपर धारण करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत थोड़े शब्दोंमें उत्तर देकर अपना मर्म प्रकट करनेकी कविकी खूबी देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। कविताकी शैलीके सम्बन्धमें पूछा—आपसे पहले भी किसीने खड़ी बोलीमें कविता की है ?

उत्तर—मैंने बहुत ही कम लोगोंकी कविता बाँची है। पूज्य द्विवेदीजी ('सरस्वती' के यशस्वी सम्पादक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी) उनमें मुख्य हैं। पंडित श्रीधर पाठकको, मेरी रायमें, ब्रजभाषामें ही सफलता मिली है।

जब मैं सिन्ध-हैदराबादके जेलमें था, तब गुप्तजीने अपने 'साकेत' की एक प्रति मुझे भेजी थी। हमारे जेलके आवरणमें एक सींगटूटा हिरन था। उसे स्वच्छन्द विचरते देख-देखकर मैंने 'साकेत' का अथसे इति तक पाठ कर डाला था। उसकी याद आते ही मैंने गुप्तजीसे पूछा—आपने अपने 'साकेत' में उर्मिलाको जो स्थान दिया है, उसका कारण रवि बाबूका 'काव्येर उपेक्षिता' नामक बँगला निबन्ध तो नहीं है ?

उत्तर—हाँ, हमारे कुलमें सीतारामकी उपासना होनेके कारण मैं रामचरितपर तो कुछ लिखनेवाला था ही, और उसमें उर्मिलाकी चर्चा भी अवश्य आ जाती। ऐसा होते हुए भी 'साकेत' में उसे जो स्थान मिला है, उसका आधार तो गुरुदेवका वह लेख ही है। (शान्ति-निकेतनमें सब लोग रवीन्द्रनाथको गुरुदेव कहते हैं।) मूल लेख मैंने नहीं पढ़ा, और उस ज़मानेमें मैं उसे पढ़ भी नहीं सकता था। पूज्य द्विवेदीजीने उस लेखके आधारपर अपनी 'सरस्वती' में एक लेख लिखा था। मैंने उसे ही पढ़ा था।

गुप्तजीने उसके बाद चाहे जितनी सर्वोत्कृष्ट कविता क्यों न लिखी हो, फिर भी लोग उन्हें 'भारत-भारती' के रचयिताके रूपमें ही पहचानते हैं। मैंने एक मर्तबा गांधीजीसे कहा था कि दक्षिण-अफ्रिकासे हिन्दुस्तानमें आकर आपने 'हिन्द-स्वराज्य' लिखा है, क्या अब इतने वर्षोंके अनुभवके बाद आप फिर नये ढंगसे 'हिन्द-स्वराज्य' नहीं लिखेंगे ? ठीक ऐसा ही एक प्रश्न मैंने भैयाजीसे किया (चिरगाँवके कुटुम्ब-परिवारमें गुप्तजी इसी नामसे पुकारे जाते हैं)—अगर आज आप फिरसे 'भारत-भारती' लिखने बैठें, तो उसमें कौन-कौनसी नई बातें आ जायँगी ?

उत्तर—ठीक तो तभी कहा जा सकता है, जब उसे लिखने बैठूँ ; परन्तु यह बात तो निश्चित है कि उसका वर्तमान स्वरूप नहीं रहेगा। एक उदाहरण देकर अपनी बातको स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। 'भारत-भारती' में मैंने महात्मा ईसाके सम्बन्धमें एक जगह प्रकार लिखा है—

'था हिन्दुओंका शिष्य ईसा यह पता भी है चला ;
ईसाइयोंका धर्म बहुधा बौद्ध - साँचेमें ढला।'

इसके उपरान्त बहुत दिनों बाद अपने 'हिन्दू' काव्यमें मैंने यही बात इस तरह अंकित की है—

'ईसा महापुरुष है मान्य
क्षमामूर्ति व्रतवीर वदान्य
धर्म - विषयमें वही सुपात्र
है इस भारतका ही छात्र।'

इसके बाद फिर जब ईसाके सम्बन्धमें लिखनेकी मुझे प्रेरणा हुई, तब मुझे यों लिखना ही ठीक लगा—

'धन्य-धन्य हम जिनके कारण
लिया आप प्रभुने अवतार ;
किन्तु त्रिवार धन्य वे, जिनको
दिया एक प्रियपुत्र उदार।'

ईसाके सम्बन्धमें हमारे अधिकांश देशवासियोंका अभिप्राय क्या गुप्तजीके जैसा ही नहीं बना है ? अब हम ईसाई जीवन, कथन और बलिदानको उसके नामपर प्रचलित धर्मसे अलहदा ही देख सकते हैं। तब ऊपर बतलाया हुआ भैयाजीका महात्मा ईसा-सम्बन्धी वृत्ति-विकास ही मुझे ठीक जँचा।

मेरी मुलाक़ात यहीं ख़तम होनेवाली थी ; लेकिन कुछ अख़बारी ढंगके प्रश्न मेरे दिमाग़में उमड़ आये। मैंने पूछा—आप इस युगके प्रतिनिधि-कवि माने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। अपनी किन-किन कविताओंमें आपने इस युगका सन्देश दिया है ?

उत्तर—मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि किसी भी युगकी कविता करते समय मैं अपने युगको भूला नहीं हूँ, चाहे वह द्वापर युग हो या त्रेता। जब मैं किसी ऐश्वर्यशाली प्रदेशमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करता हूँ तब मेरी मति मुझसे यही कहती है कि—

'मैं सुनती हूँ वह दूर देश है सपना ;
तुम उसे देख, घर भूल न जाना अपना।'

प्रश्न—कविता खड़ी बोलीमें ही होनी चाहिए या ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनोंमें ?

उत्तर—मेरी समझमें, ब्रजभाषामें भी जब कविताका प्रारम्भ हुआ होगा, तब उसकी पूर्ववर्ती भाषाके और उसके सम्बन्धमें ऐसी ही खींचतानका सवाल आकर खड़ा हुआ होगा। लौकिक और वैदिक संस्कृतके बारेमें भी यही समस्या उठी होगी। परन्तु आज भी तो संस्कृतमें कविता होती ही है। फिर मैं कैसे कहूँ कि कविता ब्रजभाषामें न हो। मैं स्वयं ब्रजभाषाकी रचना बड़े प्रेम और चावसे पढ़ता हूँ। मैंने एक ही रचना अपनी टूटी-फूटी ब्रजभाषामें लिखी है, और वह भी ब्रजभाषाको लक्ष्य करके लिखी गई है। उसका कुछ अंश आपको सुनाता हूँ—

'ब्रजभाषे, हौं भूल सकत कबहूँ नहिं तोकौं ;
तेरी महिमा और मधुरिमा मोहति मोकौं।
रस - गोरसकी धार बही है जाके ऊपर ;
जनमी है तूं सुकृतसालिनी ऐसी भूपर।
माखन-मिसरी पाय पली है बड़भागिन तूं ;
राग-भरी है सहज सुरीली सुरागिन तूं।
तैने कैसे सरस-सलौने ग्रन्थ लिखाये ;
प्रेम-भक्तिके हाव-भाव सब हमें दिखाये।
पै अब हा ! वह समय कबहुँको बीत गयो है ;
गो-रसको भंडार हमारो रीत गयो है।
तनसौं मनसौं हाय सबै परतन्त्र बने हैं ;
जंत्र मनुज बन गये, मनुज जड़तन्त्र बने हैं।
जो यह तेरी बहिन 'खड़ी' है तेरे आगें ;
दै याकों आसीस और अब हमका माँगें।
याकों पालन भयो याहि जुगमें है, तातें,
यातें याकी छिपी न रैहैं बातें घातें।'

अन्तमें उठते-उठते हमने अपना वही एक पुराना सवाल गुप्तजीसे किया, और वह इसलिए कि उनके काव्योंमें आर्य-संस्कृतिका अभिमान लबालब भरा हुआ है। प्रश्न भाषाकी शुद्धिके बारेमें था—हिन्दी-भाषामें से प्रचलित (आमफ़हम) अरबी-फ़ारसी शब्दोंका भी बहिष्कार (बॉयकॉट) करनेवाला एक दल इस देशमें मौजूद है। इस सम्बन्धमें आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—जो विदेशी शब्द हमारी भाषामें घुल मिलकर एकजीव हो गये हैं, उनको 'बिदा' कर देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उनके पर्यायवाची शब्दोंको भी इस्तेमाल करनेकी हमें स्वतन्त्रता तो है ही। लेकिन जब कोई 'कलम' जैसे आसान शब्दको भी फ़ारसी उच्चारण 'क़लम' कहनेमें अपना गौरव समझता है, तब मुझे शर्म मालूम होती है। हिन्दी-उर्दू मिलाकर हमें तीसरी ही भाषाका निर्माण नहीं करना है। हिन्दीके सामने केवल उर्दूका ही प्रश्न नहीं है। बंग, कलिंग, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि अन्य प्रान्तोंकी भाषाओंको भी तो हमें अपने ध्यानमें रखना चाहिए। सरल संस्कृतकी सहायतासे ही हिन्दी इन भाषाओंके निकट पहुँच सकती है।

मेरे ख़यालसे अब उपयुक्त अवसर आ गया है, जब कि हम महाराष्ट्रियोंको अपने यहाँके साहित्यिक केन्द्रोंमें भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके बड़े-बड़े कवियों और साहित्यिकोंको अतिथि-रूपमें आह्वान करने और उनका उचित स्वागत-सत्कार करनेकी प्रथा जल्दी ही शुरू कर देनी चाहिए। जो लोग राष्ट्रवाणी हिन्दीका अभ्यास करना चाहते हैं, अगर वे श्री मैथिलीशरणकी कवितासे ही प्रारम्भ करें, तो इसमें उन्हें काफ़ी सफलता मिलेगी। हम महाराष्ट्रियोंको 'भारत-भारती'की सहल हिन्दी समझ लेना कोई मुश्किल नहीं है।*

* भा० सा० परिषदकी महाराष्ट्र-शाखाके मासिक मुखपत्र मराठी 'विहंगम'के गत अंकमें प्रकाशित लेखके आधारपर।

अनु०—के० शा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम बात

मरणोन्मुखी

स्वर्गीय कौशलेन्द्र राठौर

रहना समोद सहना न शोक ताप तथा
प्रेम रत्न है इसे न भूलके भी खोना तुम ;
टूटने न देना निज मानस-मुकुल मंजु
विरह-दशामें सदा साहस सँजोना तुम ।
'कौशलेन्द्र' सुखसे मैं मरती हूँ प्रेमधन,
मेरी यादकर कभी खिन्न मत होना तुम ;
लीजिए प्रणाम गुरुजन सामने हैं हाय !
लाज धुल जायगी न मेरे लिए रोना तुम ।

—

मरणोन्मुखीके प्रति

श्री 'करुणेश'

बन्द कर स्वासको हताश करती हो फिर
आश करती हो सर्वनाशका न होना तुम ;
सोना चाहती हो सुखसे क्या सोचकर हाय
छीनके सदाको प्रिये दूसरेका सोना तुम ।
शोकलिप्त होकर विक्षिप्त हो रहे हैं अब
सिखला रही हो हमें साहस सँजोना तुम ;
जीवनका बाँध तोड़नेको उमड़े हैं तब
बाँध बाँधती हो लोचनोंमें—'मत रोना तुम ।'

[२]

गाज रही गाज गिरनेको लाजपर आज
सिखला रही हो तब लाजका न धोना तुम ;
गुरुजन ही क्या जन-जन जानते हैं प्रेम
दम्पतिकी सम्पति ही चाहतीं डुबोना तुम ।
जीते-जी न छोड़ना पतिव्रतको सावधान !
पहले सुलाके प्रेमधन फिर सोना तुम ;
सुरपुरमें भी मुझे वास करनेको प्रिये
निज उरपुर ही में देना एक कोना तुम ।

[३]

घर कर-कर जिन आँखोंमें बसी थीं तुम
क्या विदा तुम्हारी उन्हें चाहिए न खलना ;
चिर-संगिनी ये पुतली क्या चुपचाप हाय
देखें कठपुतली-सी पुतलीका छलना ।
छलक निहारती थीं, पलक न मारती थीं
पलके लिए भी सुन पातीं कहीं चलना ;
आज जब आँखें आप विकल निकलनेको
करती मना हो तब अश्रुका निकलना ।

[४]

जबसे सुना है 'करुणेश' यहाँ रोना मना
तबसे विचारे मन मारे हैं डरे हुए ;
जगसे विरक्त हो गये हैं अनुरक्त नैन
सकल विराग अनुरागसे परे हुए ।
रोते नहीं धोते निज बदन अपावन हैं
पावनका व्रत एक चित्तमें धरे हुए ;
सजल रहेंगे अंत तक मरनेके बाद
देनेको तिलांजलि हैं अंजलि भरे हुए ।

[५]

किंचित भी चिन्तित न होना तुम मेरे लिए—
बतला रही हो वही पथ गह लूँगा मैं ;
छोड़तीं मुझे तो जाओ-जाओ छोड़ जाओ प्रिये,
रहते बनेगा तो अकेले रह लूँगा मैं ।
आश इस जीवनकी जा रही तुम्हारे साथ
जैसे होगा दुःख ये दुसह सह लूँगा मैं ;
विरह-व्यथाको किन्तु प्रकट करूँगा नहीं
एक दिन आकर तुम्हींसे कह लूँगा मैं ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

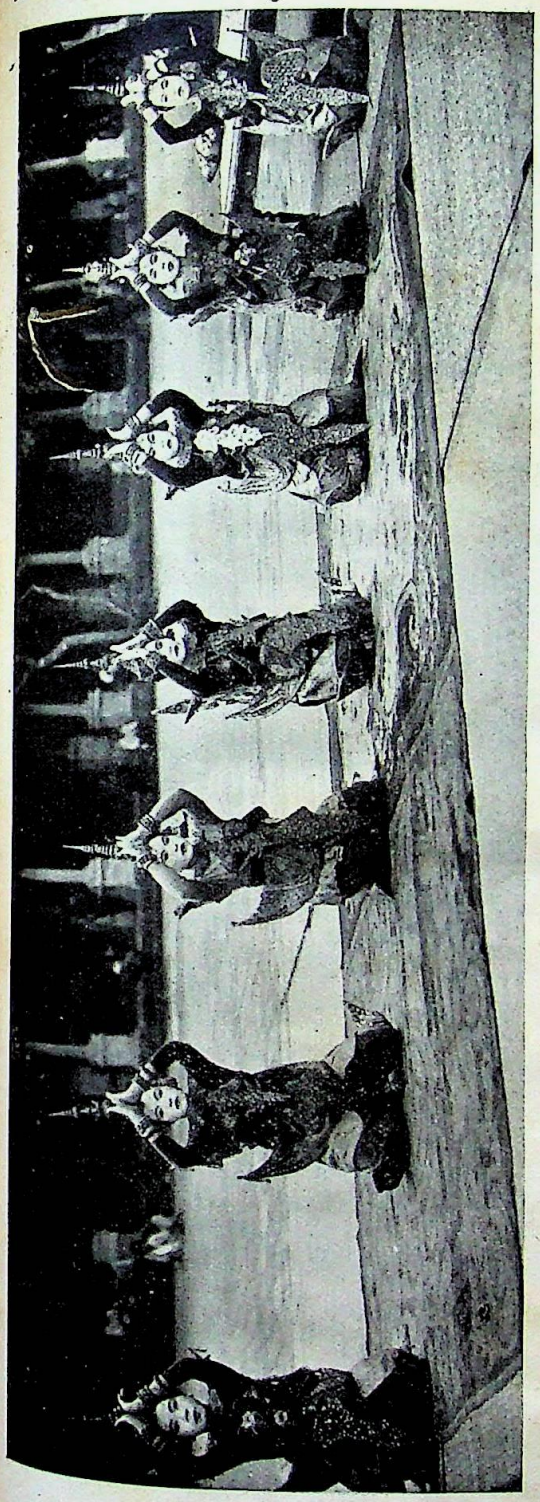

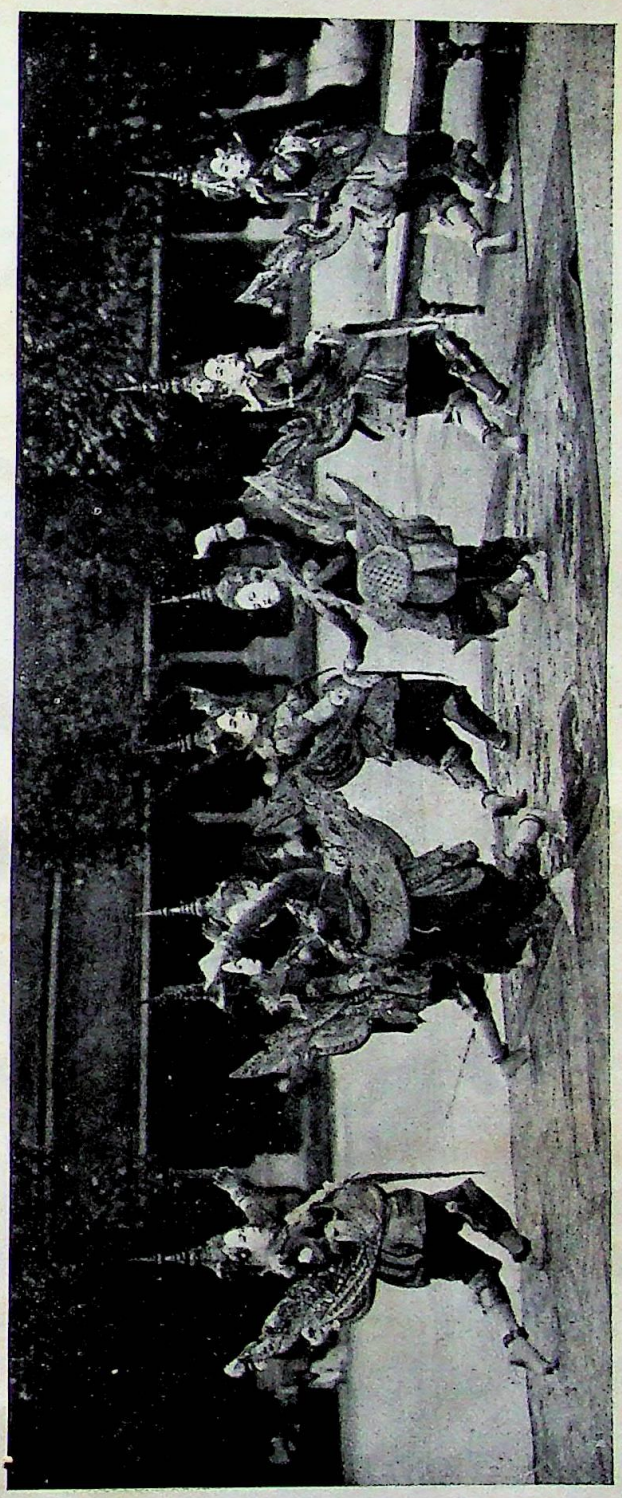

कम्बोडियाके नृत्य

ऊपर—गरुड़ नृत्य : नीचे—किन्नरियोंका अभिवादन नृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

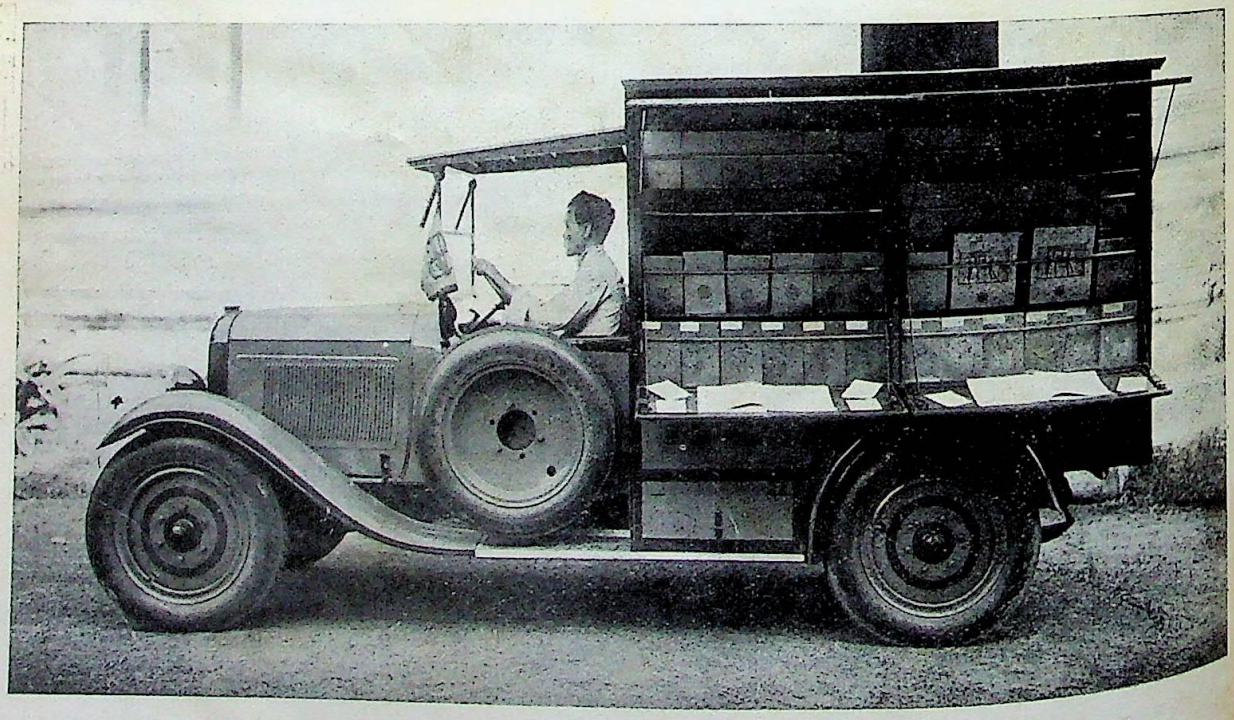

ऊपर—कम्बोडियाकी राजधानीमें भिक्षुओंकी पाली-पाठशाला

नीचे—कम्बोडियाका एक मोटरी पुस्तकालय, जो देश-भरमें घूमकर धार्मिक पुस्तकें पहुँचाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आवारे' की यूरोप-यात्रा

पेरिस

श्री सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी०

यूरोपकी भूमिपर पाँव रखे अभी कुछ ही महीने व्यतीत हुए थे, पर ऐसा मालूम पड़ता था, मानो ज़माना गुज़र गया हो। कहाँ भारत, कलकत्ता और यहाँकी वर्षाऋतु और कहाँ फ्रांस, पेरिस और वहाँकी सर्दी!

मार्सेलमें मुझे अपनानेवाले जिप्सी ही मिले। ख़ानाबदोशोंके दोस्त ख़ानाबदोश ही हो सकते थे। जिप्सी लोगोंके साथ कई महीने रहा। इस अर्सेमें उनके रहन-सहन, हाव-भाव आदिसे बहुत-कुछ परिचित हो गया। इतनी ही ख़ैरियत हुई कि मैं पूरा-का-पूरा जिप्सी नहीं बन गया। दूसरा और कोई समाज मुझे अपनानेके लिए राज़ी न था, इसलिए वाध्य होकर मुझे उनकी संगतिमें रहना पड़ा। फ्रांसके आम लोग मुझे भारतवासी ही माननेके लिए तैयार न थे। उनमें से कुछ आदमी केवल उन्हें ही भारतवासी माननेके लिए उद्यत थे, जो सोनेसे लदकर मोटरोंमें बैठ बाहर निकलें, जो सरपर साफ़ा बाँधे, जिसके बीचमें एक हीरा खुँसा हो और जो सदा अपनेको आलसियोंका सरदार होना सिद्ध करते रहें। कुछ दूसरे केवल जादूकी हिकमत दिखलानेवालेको ही हिन्दुस्तानी समझते थे। कुछ ऐसे भी लोग थे, जो भारतवासियोंको बाघ-भालुओं-जैसा जीव मानते थे, जो किसीको देखते ही उसका मुँह नोच लेनेके लिए खड़े हो जाते हैं। मैं उनकी इन तीन श्रेणियोंमें से किसी एकमें भी रखा जाने लायक़ नहीं था, इसलिए उन्हें मेरा जिप्सी होना ही अधिक यथार्थ दीखता था।

जिप्सी भी खुले हृदयसे मुझे अपनानेके लिए राज़ी थे, यह बात भी नहीं थी। उनके समाजमें केवल वीर युवकोंकी ही कदर होती थी, और वीर वैसे ही लोग गिने जाते थे, जो किसीसे पैसा ठग लेनेमें अथवा किसीकी साइकिल चुरा लानेमें समर्थ हों। मैं इन कलाओंमें निपुण न था, इसलिए वे मेरी गिनती 'मनहूसों' में किया करते थे। पेड़से जलानेकी लकड़ी तोड़ लाना घोड़ेको दाना देना, उन्हें जोतना, मुर्गियोंको दाना देना आदि काम मैंने अपने लिए ले रखे थे। ऐसे काम मुझे पसन्द न थे; पर दूसरा और कोई चारा ही न था। अकेले मार्सेलसे पेरिस तककी चार सौ मील लम्बी यात्रा करना और वह भी वैसे अनजान देशमें, जहाँकी मैं भाषा भी नहीं जानता था, हँसी-खेल न था।

पचासों स्थानोंपर पड़ाव डालते और उठाते हुए तीन महीने बाद हम लोगोंका काफ़ला पेरिस पहुँचा। अब सर्दीका मौसम निकट आता जा रहा था, और मेरे शरीरपर गरम कपड़े नहीं थे। जिप्सी चार-चार पाँच-पाँच आदमी एक रजाईके नीचे सोकर अपना काम चला लेते थे; पर मुझसे इस प्रकार सोया ही नहीं जा सकता था। पेरिस पहुँचते ही मैं अपने लिए काम ढूँढ़ने निकला। बहुतेरे दरवाज़े खटखटाये; पर हताश ही होना पड़ा। जिप्सियों-जैसी पोशाक और हाव-भाव होनेके कारण मुझे लोग चोरी करनेके लिए आया हुआ समझते और काम देनेकी कौन कहे, अपने दरवाज़ेपर अधिक देर तक खड़े भी नहीं रहने देते थे। मुझे जिप्सियोंसे छिपाकर काम ढूँढ़ने निकलना पड़ता था, क्योंकि यदि उन्हें इसका पता लग जाता, तो वे मेरी जानके भूखे हो जाते। उन्हें कहीं काम करने अथवा कोई रोज़गार करनेमें अपना अपमान दीखता है। अन्तमें अपने पायजामेकी सिलाईकर, थोड़ा शिष्ट बनकर, मैं पेरिसके उस हल्केको छोड़कर, जहाँ जिप्सी टिका करते हैं, दूसरे इलाकेमें जा पहुँचा। वहाँ मुझे एक रेस्तराँमें अस्थायी काम मिल गया। उसी समयसे जीवनका सिलसिला एक दूसरे प्रकारका हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

नवम्बरका महीना समाप्त हो चला था। जिधर दृष्टि जाती थी, उधर ही पृथिवी रुईके फाहोंके समान नई गिरी हुई स्नो (बर्फ़) से ढकी हुई दिखलाई देती थी। लोगों तथा सवारी गाड़ियोंके दिन-भर चलते-फिरते रहनेके कारण सड़क तथा उसके किनारेके रास्तोंपर की बर्फ़ कीचड़-जैसी दीखने लगी थी। हवामें रुखाई भरी थी और अधिक चलह-पहल रहनेवाले स्थान भी उजड़े हुए-से दीखते थे।

अभी रातके केवल ग्यारह ही बज पाये होंगे; पर पेरिसकी मुख्य सड़क बिलकुल सुनसान हो रही थी। कुछ सप्ताह पहले जिस सड़कपर डेढ़-दो बजे रात तक लोगोंकी ऐसी चहल-पहल रहा करती थी कि रास्ता चलना कठिन होता था, वहाँ आज इनेगिने लोग ही चलते दिखाई दे रहे थे। सारी रात विहारके शौक़ीन मौजी लोग शहरके रातके अड्डों—काफ़े और रेस्तराँमें जा इकट्ठे हुए थे और शराब तथा धूम्रपानके साथ-ही-साथ नाच और नग्न-सौन्दर्यकी बहार ले रहे थे। रात्रिके इन जमघट-घरोंमें फॉक्सट्रॉट, टांगो, बाल्चर तथा अन्यान्य नाचोंके लिए जो बाजे बज रहे थे, उनकी आवाज़ बाहर सड़क तक भलीभाँति सुनाई दे रही थी। इन बाजोंका सुरीला राग अगर सर्दीकी रूखी हवाका रुख़ बदल देनेका प्रयत्न न करता, तो वहाँपर ऐसा सन्नाटा छाया होता कि उन सड़कोंको पेरिसकी सड़कें मानना कठिन हो जाता।

बीच पेरिसमें ही 'ट्रोकाडेरो' नामका एक नैश-विहार है। यों तो पेरिसमें उससे बढ़े-चढ़े और संसारमें प्रसिद्धि-प्राप्त कई दूसरे स्थान भी हैं, फिर भी 'ट्रोकाडेरो'की एक निजी विशेषता है। उसके मुख्य दरवाज़ेपर दोनों ओर जो तख़्तियाँ लगी रहती हैं, उनपर लिखा रहता है—'अनमोल अलौकिक अप्सराओं-जैसी औरतें; कम-से-कम कीमत।' इसके अलावा उसकी एक दूसरी विशेषता भी है। मुख्य दरवाज़ेके सामने दरबानके स्थानपर अकसर यूरोपमें बिरले पाये जानेवाले रंगके लोग रखे जाते हैं, जिसमें वे रास्ता चलनेवालोंका ध्यान आसानीसे अपनी ओर आकर्षित कर सकें और उस घरकी आमदनी बढ़ायें। पहले उस स्थानपर अफ्रिकाका एक असली हब्शी खड़ा रहा करता था; पर कुछ अर्सेसे मैं उसी कामपर नियुक्त कर लिया गया था। मेरा रूप-रंग हब्शियोंसे बिलकुल विभिन्न होनेपर भी उस स्थान-विशेषकी परिपाटीके अनुसार लोग मुझे नेगर (हब्शी) के नामसे पुकारा करते थे। मेरा काम शामके सात बजेसे लेकर तीन बजे सवेरे तक दरवाज़ेके सामने खड़ा रहना था। 'ट्रोकाडेरो'के भीतरके गरम कमरोंकी तो बात ही दूर रही, उसके बरामदों तकमें प्रवेश करनेकी मेरे लिए मनाही थी।

आज बाहर सर्दी थी और ठंडी हवा चल रही थी। मैं अपनी तिपाई दरवाज़ेके भीतर डाल वहाँसे ही सड़ककी ओर देख रहा था। सड़कपर आने-जानेवाले लोग बहुत ही कम थे। उस स्थानसे होकर गुजरनेवालोंमें केवल कईएक विचित्र पोशाक पहने लड़कियाँ थीं। स्नो पड़ती रहनेपर भी उन लड़कियोंके शरीरपर ओवरकोट नहीं था। वे नीचे मलमल-जैसी महीन कपड़ोंसे बनी पोशाक पहने थीं, जो ऊपरसे गरम कोट डाले रहनेपर भी कई स्थानोंपर खुली दिखलाई देती थीं—ख़ासकर गलेके नीचे और छातीके ऊपरका भाग तो बिलकुल नंगा-सा ही था। यदि उनमें से किसीने खरगोशकी खालका उपयोग भी किया था, तो इस प्रकार कि उसे केवल गलेमें लपेट लिया था, और इस बातका पूरा ध्यान रखा था कि छातीका ऊपरी भाग खुला तथा बाहरसे दिखलाई देता रहे। उनके होंठ लाल रंगसे तथा चेहरे पाउडरसे इस प्रकार पुते थे कि वे हाड़-मांसकी नहीं, बल्कि पाउडर तथा रुईके फाहोंकी बनी दीखती थीं। उनकी भौंहें उस्तुरेसे मुड़ी हुई थीं और वहाँ केवल एक काली लकीर-सी थी। आँखोंकी प्राकृतिक पपनियाँ उखड़ी हुई तथा उनके स्थानपर लम्बी-लम्बी कृत्रिम लगी थीं। उनके पाँवोंकी जूतियोंकी एड़ियाँ बेतरह ऊँची थीं और चलते समय उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलनेवाली 'टिक-टिक'की आवाज़ बड़ी दूर तक सुनाई देती थी। वे केवल सौ-दो-सौ गज़के फासलेके भीतर ही बार-बार चक्कर लगाया करतीं। यदि उनके माफिक कोई आदमी उन्हें दिखलाई देता, तो वे आसपासकी 'शो विंडो'की ओर देखने लगतीं। सर्दीके कारण जब उनके पाँव ठिठुरने लगते, तो वे एक विशेष तालमें उन्हें पटकने लगतीं।

उन्हीं लड़कियोंमें से एक 'ट्रोकाडेरो'के दरवाज़ेपर आ खड़ी हुई। यूरोपके हज्जामोंकी दूकानोंपर रखी मॉडेलोंमें युवा लड़कियोंकी जो अर्धनग्न आकृति दिखलाई जाती है, उस लड़कीकी शक्ल भी बहुत-कुछ उसके ही समान थी। मेरे सामने आकर एक बार भीतर झाँकते हुए उसने कहा—'आ:····आज तू वहाँ जा बैठा है! पहले तो तुझे देखा ही नहीं। समझा था, तू बीमार पड़ गया है। हे··हे··हे··हे·· सर्दी लग रही है?'

मैंने हँकार-सूचक सर हिलाया।

'हे··हे··हे·· इतनेमें ही? अभी तो सर्दी शुरू ही हुई है। अगर अभीसे तेरा यह हाल है, तो फिर फरवरीके महीनेमें क्या होगा? तेरे पास तो ओवरकोट भी है, फिर भी ऐसा सिकुड़कर बैठा है! मैं तो बिना कोटके ही स्नोमें खड़ी हूँ।'

'तुझे ओवरकोटकी क्या ज़रूरत? तेरे भीतर तो वैसे ही भट्ठी जला करती है!'

'हे····हे····हे····वही तो कहा। मुझसे सभी खुश रहते हैं। मेरे यहाँसे सभी सन्तुष्ट होकर लौटते हैं। जो एक बार आता है, मेरा घर सारी ज़िन्दगी नहीं भूलता।'

बातें करते समय वह बड़े ही अद्भुत ढंगसे अपने शरीरका ऊपरी भाग हिला रही थी। इसी समय उसकी बाईं आँखकी पपनी एक सेकेण्डके लिए इतनी फुर्तीसे हिली कि मैं अवाक् रह गया। फिर हँसते हुए उसने कहा—'यहाँ बैठे-बैठे दाँत क्यों कटकटा रहे हो? मेरे साथ चलो; जेनेटके यहाँ सबका स्थान····'

वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि एक बार उसकी दृष्टि सड़कपर दौड़ी और वह क़दम आगे बढ़ाती हुई चली गई। उधरसे वर्दी-पेटी लगाये गश्त लगाता हुआ एक सिपाही निकला। जिस सड़कपर लड़कियाँ टहल रही थीं, उधर बिना देखे ही वह चौराहेपरसे दूसरी ओर निकल गया। जेनेट फिर मेरे पास आकर कहने लगी—'मालूम नहीं, इस बेहूदे जमदूतको किस पागल कुत्तेने काट खाया है कि ऐसे मौसममें भी गश्त लगाने निकला है!'

'आज उसपर ऐसी नाराज़गी क्यों? अभी परसों ही तो तुम उससे मीठी-मीठी प्यारकी बातें कर रहीं थीं।'

'वह जहन्नुममें जाये। उस शैतानने मुझे कम नहीं सताया है। परसों बुलवार-द-मैदलिन तक मुझे सर्दीसे ठिठुरते हुए जाना पड़ा, तब जाकर उससे पिण्ड छूटा। शैतानने मेरी दुर्दशा कर डाली। मालूम नहीं, हमें सता लेनेमें ही इन जल्लादोंको क्या मिल जाता है?'

दरवाज़ेके भीतरसे किसीके निकलनेकी आवाज़ आई। वह वहाँसे टल गई। भीतरसे कोई निकला नहीं। मैं अपने स्थानपर ही बैठा रहा। बाहर स्नो गिर रही थी। रास्तेपर कीचड़के स्थानपर जमी हुई स्नो दिखलाई दे रही थी। जेनेट फिर मेरे सामने आ खड़ी हुई। इस बार उसने अपने कोटके कालरसे कान ढक लिये थे। मैंने उसे टोकते हुए पूछा—'आज कोई हाथ नहीं आया?'

'मन बड़ा उदास है; सर्दी लग रही है।'

'फिर घर क्यों नहीं जाती?'

'तेरे लिए रुकी हूँ।'—उसने हँसकर कहा।

'मेरे लिए?'

'मुझे घर तक पहुँचा दे!'

'नहीं।'

वह थोड़ी अपमानित हुई-सी दिखलाई पड़ी। अपना वह भाव छिपाते हुए उसने कहा—'मौसम कैसा रूखा है! मन बिलकुल उचाट हो गया है। अब घर जाती हूँ। फिर कल। विदा। हूँ····'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-आप ये शब्द दुहराती-तिहराती वह आगे चली गई। मैं अपने स्थानपर बैठा रहा।

चारों ओर वही उदासी छाई हुई थी।

[३]

क्रिसमसके दिन आये और चले भी गये। हर सालकी भाँति इस साल भी पेरिसने यह त्योहार अपनी शानके अनुसार ही मनाया। सड़कें कई दिनों तक सजी-सजाई रहीं। शामके समय दीपावलीकी भाँति सारा पेरिस नगर कई दिनों तक जगमगाता रहा। आमोद-प्रमोदके स्थान लोगोंसे ठसाठस भरे रहे। बच्चेसे लेकर बूढ़ों तक सभी नर-नारियोंने अपने भोग-विलासमें कोई कोर-कसर नहीं रखी। उन्होंने सालका सारा दुःख भुला दिया और जहाँ तक बन पड़ा, आगेके लिए सुख बटोरकर अपने भीतर भर लिया।

हाँ, मेरे लिए ये दिन कोई विशेष महत्त्वके न थे। यदि सच कहा जाय, तो वास्तविक बात यह थी कि मैं इन त्योहारोंके दिनोंमें सदा यह मनाता रहता था कि ज्यों-त्यों करके ये दिन शीघ्र-से-शीघ्र टल जायँ। मेरा इस प्रकारका रुख रहनेका मुख्य कारण यह था कि इन दिनों मुझे 'ट्रोकाडेरो' के सामने शामके छै बजेसे लेकर सवेरके पाँच बजे तक—जब तक मौज करनेवाले अतिथि अपने-अपने घर नहीं लौट जाते—बैठे रहना पड़ता था।

जब नये वर्षका त्योहार समाप्त हो गया, तब मुझे अपना सर हल्का दीखने लगा। जिस समय मैं 'ट्रोकाडेरो' से घरके लिए चला, उस समय भी रास्तोंपर बत्तियाँ जल रही थीं; पर रास्ता चलनेवाले नहींके ही बराबर थे। साँमिशेलके चौमुहानेसे अपने घरकी ओर मुड़ना ही चाहता था कि मुझे एक ओर कुछ लोगोंका ठहाका सुनाई पड़ा। उनके पास पहुँचनेपर मैंने देखा कि बीचमें एक युवती पड़ी है; जिसकी कमरमें स्त्रियोंके पहननेवाला नक़ली रेशमका जाँघिया और ऊपर वैसे ही रेशमसे बना हुआ एक जम्पर चिपका है। उसके शरीरके दूसरे कपड़े तथा ऊपरका कोट पास ही फेंका हुआ है।

लड़की या तो पागल रही होगी, अथवा उसे मिरगीकी बीमारी होगी। यदि ऐसा न होता, तो भला इस सर्दीमें, जब स्नो पड़ रही थी और हवा चल रही थी, वह सड़कपर आकर क्यों लेटती? जो भी हो, लड़की अर्द्ध बेहोशीकी अवस्थामें दीखती थी, और जो लोग उसे घेरकर खड़े थे, उनके लिए वह एक तमाशेकी वस्तु हो गई थी। एकने कहा—'नंगी लड़कियोंको देखनेके लिए थियेटर तथा सिनेमा आदिमें जाकर पैसे खर्च करनेकी क्या आवश्यकता है? यहाँ तो मुफ्तमें ही देखा जा सकता है।'

यह सुनकर सभी लोग हँस पड़े। इसी बातसे प्रोत्साहित होकर एकने अपनी छड़ीसे उस लड़कीके कमरके रेशमी जाँघियेको भी हटा देना चाहा; पर 'सिपाही आया', 'सिपाही आया' की आवाज़ सुनकर वह रुक गया। भीड़के एक आदमीने उस लड़कीका हाथ पकड़कर उसे उठाना चाहा; पर लड़की बेहोशीकी हालतमें थी, उठ न सकी। फिर वह आदमी 'अपने कियेका मज़ा चख' कहता हुआ वहाँसे चलता बना।

जिस समय मैं उस स्थानपर पहुँचा, एक आदमी कह रहा था—'जो भी हो, पुलिस बुलाई जानी चाहिए, नहीं तो यह लड़की सर्दीमें ठिठुरकर यहीं मर जायगी।'

तुरत ही उसे उत्तर मिला—'मर जायगी, तो मर जाने दो न! उसे ऐन सड़कपर आकर ऐसे खुले बदन लेट जानेके लिए किसने कहा था?'

'और आज इतने बड़े त्योहारके दिन और ऐसे समयमें पुलिसकी ही खोज कहाँपर की जाय?'

एकने हँसते हुए कहा—'इसे यहीं पड़े रहने दो। लोगोंका एक बार नंगी स्त्री देखनेका शौक़ तो मिट जाय!'

मैंने बिना कुछ कहे-सुने लड़कीका हाथ पकड़कर ऊपर उठाया और अपने सहारे उसे चलनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाध्य किया। लड़की बेहोशीकी हालतमें कुछ क़दम आगे बढ़ी; पर उसके पाँव क़ाबूमें न थे। वह अपना भार न सम्हाल सकनेके कारण फिर ज़मीनपर गिर पड़ी। लोग ठहाका मारकर हँसने लगे। एकने चेहरेपर से बाल हटाकर उसका चेहरा देखते हुए कहा—'देखो न, जवान लड़की है; पर शरम रत्ती-भर भी नहीं।'

लड़कीको इस प्रकारसे चलानेका प्रयत्न करना व्यर्थ था। सर्दीमें खुले बदन पड़े रहनेके कारण उसके हाथ-पाँव काठ-जैसे अकड़ गये थे। उसे कंधेपर लादकर घर तक ले जाना भी मेरे लिए असम्भव था। मैंने लोगोंकी ओर देखते हुए कहा—'इसके लिए गाड़ीका प्रबन्ध करना चाहिए।'

मेरे मुँहसे विभिन्न रूपमें अपनी ज़बान सुनकर कई आदमियोंकी दृष्टि मेरी ओर फिरी। एकने कहा—'तुझे क्या पड़ी है? उसे अगर अपनी जानकी फिक्र होगी, तो खुद ही उठकर घर चली जायगी।'

एक दूसरेने कहा—'अगर उसे दुनियाको अपना सुहावना नंगा रूप न दिखलाना होता, तो यहाँ सड़कपर आकर यह लेटती ही क्यों?'

'अभी यह शराबके नशेमें है।'—मैंने धीमी आवाज़में कहा।

'जब शराब बर्दाश्त नहीं कर पाती, तो फिर पीती ही क्यों है?'

'और अगर पिया भी, तो चुपचाप घर बैठे रहना अच्छा था कि यहाँपर लेटकर अपनी फ़ज़ीहत कराना?'

इतना कहकर वह अपने जूतेसे लड़कीकी छातीसे चिपटा नकली रेशमका जम्पर हटाने लगा। मुझसे यह बर्दाश्त नहीं हो सका। मैंने उसे धक्का देते हुए कहा—'यह भले आदमीका काम नहीं!'

उस आदमीको मेरे शब्द बुरे लगे। उसने डाँटते हुए कहा—'और तू बड़ा भला आदमी बना है? तुझे हमारे देशकी लड़कियोंसे क्या मतलब? हम जो चाहें, उसके साथ करेंगे। जा, तू अपना रास्ता ले।'

इतना कहकर वह मेरी ओर लपकना चाहता था; पर मुझे गम्भीर और अपने स्थानपर अटल देख वह रुक गया। मैंने उसकी बातका कुछ उत्तर नहीं दिया। जहाँपर वे लोग खड़े थे, उसके पास ही एक घरके भीतर स्नोपर फिसलनेवाली बच्चोंकी एक छोटी-सी गाड़ी खड़ी थी। उसी गाड़ीको लाकर मैंने उस बेहोश लड़कीको लादा। लड़की अपने-आप कुछ गुनगुना रही थी; पर बिना उसकी ओर ध्यान दिये ही मैं गाड़ी खींचकर आगे ले चला। जो आदमी अभी कुछ मिनट पहले मुझसे झगड़ना चाहता था, वह भी गाड़ीके साथ-ही-साथ दो-चार क़दम लपका और बोला—'बेशरम औरत!' इतना कहकर युवतीके मुँहपर थूकते हुए उसने बिदा दी। दूसरे लोग ठहाका मारकर हँसने लगे।

[४]

उन दिनों मैं रूए-दू-सें-ज़ाकके एक पँचतल्ले मकानमें सबसे ऊपरकी छतवाली कोठरीमें रहा करता था। कोठरी छोटी थी; पर सुविधाकी लगभग सभी चीज़ें उसमें मौजूद थीं। कोठरीका तीन-चौथाई भाग चारपाईने घेर रखा था। प्रवेश करनेके दरवाज़ेके पास एक छोटी-सी मेज़ और एक छोटी कुर्सी पड़ी रहती थी। दीवारोंमें कीलें गड़ी थीं, जिनके सहारे बड़ी लापरवाहीसे कपड़े लटका दिये जाते थे।

सवेरेके आठ बज चुके थे; पर सर्दीके मौसममें जैसा पेरिसमें रहा करता है, उस समय तक अन्धकार छाया हुआ था। मेज़परके ऊपर दीवालगीर जल रहा था। उसी मेज़के सहारे मैं अपनी दाहनी कुहनी टेके, सरका भार हाथपर दिये, चारपाईपर लेटी उस लड़कीकी ओर एकटक देख रहा था। लड़की काठके समान अकड़ी हुई खाटपर पड़ी थी। मेरे लिए किसी सफ़ेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमड़ेवाली लड़कीको उतने निकटसे निहारनेका यह सबसे पहलाही अवसर था।

पिछली संध्याको उसने अपने होंठ लाल रंगसे रँगे थे, वे अब फीके हो चले थे; पर बाहर स्नोमें पड़े रहनेके कारण गालोंपर जो लाली आ गई थी, वह अब तक दूर नहीं हुई थी। यदि मुझसे पहले किसीने कहा होता कि लड़कियोंके गाल स्वाभाविक ही इस प्रकार लाल हो जाया करते हैं, तो शायद मैं कभी उस बातपर विश्वास न करता। उसके हाथ गालके नीचे दबे थे, फिर भी पतली उँगलियाँ और उनके लम्बे तिकोने कटे नाखून स्पष्ट दिखलाई देते थे। हाथका चमड़ा दूधकी तरह सफेद था। मुझे यह कुछ अजीब-सा दिखलाई देता था। मैं बहुत देर तक एकटक उसकी ओर देखता रहा। वह नींदमें ही दाँत कटकटाने लगी। मैंने सोचा, शायद उसे सर्दी लग रही है; दीवारकी कीलोंपर लटका एक कोट उतारा और उसके ऊपर डाल दिया। 'शैतान—तुझे शैतान ले जाय' कहती हुई वह जाग पड़ी। चारों तरफ कमरेमें ही दृष्टि दौड़ाकर उसने पूछा—'आखिर मैं हूँ कहाँपर?'

'मेरी कोठरीमें।'

'तू मुझे यहाँ क्यों ले आया?'

मैं चुप रहा। एक झपट्टेमें खाटसे नीचे कूदकर उसने लैम्प बुझा दिया। अब उसे ध्यान आया कि वह केवल कपड़ोंके नीचे पहनी जानेवाली पोशाकमें है। उसने यह भी देखा कि उसकी वह पोशाक केवल कीचड़में सनी ही नहीं, बल्कि स्थान-स्थानपर फट भी गई है। अभी थोड़ी देर पहले मैंने जो कोट उसे ओढ़ा देनेका प्रयत्न किया था, वही मैंने फिरसे उसकी ओर बढ़ा दिया।

उसने हँसते हुए कहा—'मेरे लिए तेरे पास पैसे ही नहीं!'

मुझसे उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही उसने खूँटीसे मेरा ओवरकोट उतारकर पहन लिया और दरवाज़ा खोलकर बाहर जाने लगी; पर सीढ़ियों तक पहुँचनेके पहले ही रुककर उसने मुझसे कहा—'दिनमें सड़कपर अकेले चलनेमें मुझे भय लगता है। मेरे घर तक मुझे पहुँचा दो न!'

[५]

'ट्रोकाडेरो'में मुझे रात-भर जागना पड़ता था, इसीलिए घर लौटकर मैं दिन-भर सोया करता। कामपर जानेके एक घंटा पहले उसी रेस्तराँमें काम करनेवाले एक क्लार्कके घर जाता और फ्रेंच सीखता। जिस समय और लोगोंके घूमने-फिरने, मित्रोंसे हिलने-मिलने, आमोद-प्रमोद करने, सिनेमा-नाटक आदि देखनेका समय होता, उस समय मुझे अपने कामपर रहना पड़ता, इसीलिए मेरी तबीयत थोड़ी उदास-सी रहती।

संध्या समय रेस्तराँके सामने बैठनेपर नित्य मुझे एक ही प्रकारका चित्र दिखलाई देता। नया देश और नई परिस्थिति होनेके कारण वे दृश्य मुझे बहुत-कुछ चित्रपट-से दीखते। जिनके चेहरेसे पाउडर न झड़ता हो, वैसी औरतें आँखोंके सामनेसे बहुत कम गुजरतीं। जो-कुछ भी मेरी आँखोंके सामनेसे गुज़रता, उसे मैं वहाँके समाजका ऊपरी चित्र माननेके लिए बाध्य होता। मेरी इच्छा उसके भीतर घुसकर उसे देखनेकी होती; पर उसके लिए कुछ समय तक प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता थी।

जितने दृश्य आँखोंके सामने देखता, उनमें सबसे बुरा लगता कुछ औरतोंका मतवाला होकर सड़कपर आना। वैसी दूसरी औरतों और जेनेटके बीच मुझे कोई विभेद नहीं दीखता। फिर भी जेनेटकी एक विशेषता थी। उसका रंग-ढंग बहुत-कुछ बहुरुपिएका-सा था। कभी वह छात्रा, कभी सभ्य परिवारकी महिला, कभी दूकानदारिन, कभी किसी बड़े कारखानेवालेकी लड़कीके रूपमें सजकर सड़कपर आती। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि जो लोग उसे पहचानते होते, वे ही उसकी वेष-भूषाके अनुसार उसकी क़दर किया करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जेनेटसे अपना परिचय बनाये रखना चाहता था। इसका एक विशेष कारण था। उसके जैसी औरतोंको 'सतहके नीचेकी दुनिया'से पूरी-पूरी वाकफियत रहा करती है, और वे कभी-कभी बड़े कामकी सिद्ध होती हैं। मैं उस समय तक पेरिसमें निश्चिन्त न था। मुझे एक पासपोर्टकी आवश्यकता थी, क्योंकि उसके बिना पुलिस मुझे बहुत हैरान किया करती और बार-बार नोटिस दिया करती कि अमुक महीनेमें मुझे पेरिस छोड़ देना पड़ेगा। इस बातकी चर्चा मैंने जेनेटसे की, और उसने वादा भी किया कि वह मेरे लिए पासपोर्टका प्रबन्ध कर देगी; पर उसके लिए मुझे कुछ खर्च करना पड़ेगा।

एक दिन यह कहकर कि उसने मेरे लिए पासपोर्टका प्रबन्ध कर रखा है, वह मुझे अपने घर ले गई, और एक भारतीय विद्यार्थीका पासपोर्ट दिया। यह पासपोर्ट उसे कैसे हाथ लगा, वह कहाँसे उसे ले आई आदि बातोंका उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, केवल इतना ही कहा कि उसके लिए मुझे पाँच सौ फ्रैंक (लगभग सौ रुपये) देने पड़ेंगे।

प्रत्येक महीने जिस दिन मुझे तनख्वाह मिलती, मैं स्वयं ही उसके घर जाता और कुछ रुपये बेबाक कर आता। जिस महीने ये रुपये बेबाक कर दिये गये, उसने कहा—'मृग-परिशोधके उपलक्षमें मैं एक दिन तुम्हें आमन्त्रित करूँगी।'

वास्तवमें उसने एक दिन मुझे अपने घर बुलाया। उस दिन वह नशेमें चूर थी; पर मेरी खातिरदारीके लिए उसने कहा—'सबसे पहले थोड़ी ब्रांडी पी जाय।'

उसने आलमारीसे सुनहले चमकते हुए कागज़में लपटी हुई लम्बी गर्दनवाली एक शराबकी बोतल तथा दो शीशेके छोटे गिलास निकालकर मेज़पर रखे और उन्हें शराबसे भरते हुए कहा—'बाहर कैसी ठंडक है! हु···हु···हु···हु···गरमानेके लिए ब्रांडी आवश्यक है। राइन या मोजेलकी बनी शराब या शेम्पेन मुझे अच्छी नहीं लगती। बिअर तो मैं छूती तक नहीं। हाँ, लिकर चाहे जितना उड़ेलो, मैं पी जाऊँगी; पर सबसे अच्छी ब्रांडी है। अच्छा—प्रोस्ट····'

उसने एक बारमें ही अपना गिलास खाली कर दिया। थोड़ी देरमें अधिक नशा चढ़ जानेपर उसने मुझे कुछ वैसी बातें बतलाईं, जिनकी चर्चा वह मेरे सामने कभी भी नहीं उठने देती थी। बातचीतका प्रसंग मेरे पासपोर्टसे आरम्भ हुआ। उसकी कहानी संक्षेपमें यह थी—किसी सड़कके किनारे उसे कोई भारतीय विद्यार्थी मिला। फिर दोनों साथ-साथ एक होटलमें गये और खूब शराब पी। बहुत देर तक काफ़ी हँसी-खेल हो जानेपर जेनेटने अपना 'मेहनताना' माँगा। विद्यार्थीने उत्तर दिया कि वह रक़म भी उसने शराबमें ही खर्च कर दी। दोनों झगड़ने लगे। जेनेट उस विद्यार्थीके टँगे हुए कोटके पाकेटसे उसकी चीज़ें निकाल-निकालकर फेंकने लगी। अन्तमें वह उसका पासपोर्ट, जिसमें कुछ नोट भी दूसरे कागज़ोंके साथ थे, लेती हुई वहाँसे चलती बनी।

इस कहानीने ही उसे और भी कुछ बातोंकी याद दिला दी, जिसके कारण वह अपने स्वभावके विपरीत बहुत गम्भीर बन गई, और उसी सिलसिलेमें कहने लगी—'तुम समझते होगे कि मैं नशेमें मस्त रहनेके लिए ब्रांडी पीती हूँ; पर बात वैसी नहीं है। मैं इसे इसलिए पीती हूँ कि इसके पीनेपर मेरे भीतर सबसे प्रबल आकांक्षा यह उठती है कि मैं मनुष्य-समाजको अपने अन्तःकरणसे घृणा करूँ; किसी आदमीके हक़में जो भी बुरा-से-बुरा कार्य हो सकता हो, वह कर डालूँ। और वह भी ऐसा कार्य नहीं कि जिससे उसे केवल थोड़ी ही तकलीफ बर्दाश्त करनी पड़े, बल्कि इस प्रकारकी कि उसका रोआँ-रोआँ ज़हरीले-से-ज़हरीले विषसे भर जाय; उसके जीवनके प्रत्येक क्षणमें यह विष उसके हृदयको जलाता रहे, उसके शरीरके रोम-रोमको, उसके हृदयके प्रत्येक कणको बराबर पेरता रहे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषैला बनाता रहे और उसे मार्मिक-से-मार्मिक पीड़ा पहुँचाता रहे।'

अन्तिम शब्द कहते-कहते वह दाँत पीसने लगी। उसी उन्मादमें सामनेका गिलास उसने फिरसे खाली कर दिया और आगे कहने लगी—'हमें मनुष्योंसे इस प्रकार घृणा करनेका, उन्हें पीड़ा पहुँचानेका, उनसे प्रतिशोध लेनेका अधिकार है। अगर मेरा बस चले, तो मैं सारे मनुष्य-समाजको ही शैतानके घर भेज दूँ। उन्हें मार्मिक पीड़ा पहुँचाते रहनेका मैंने प्रण कर लिया है; शायद इसीलिए मैं ज़िन्दा भी हूँ। अगर मैं आदमियोंको ज़िन्दा जलते हुए देखूँ, तो भी मेरे भीतर उनके लिए दयाका नामोनिशान तक न आयेगा। नहीं, नहीं, व्यथाके मारे उनका चिल्लाना सुनकर मैं हँसूँगी, ठहाके लगाऊँगी, अट्टहास करूँगी।'

वह पागलोंकी भाँति ठहाका मारकर हँसने लगी। साथ ही उसकी आँखें आँसुओंसे तर दीखने लगीं। उसने उन्हें छिपानेका प्रयत्न नहीं किया। जल्दी-जल्दी अपने सामनेका गिलास दो बार और भरा और उसे इस प्रकार गलेके नीचे उतार लिया, मानो उसके जीवित रहनेकी वही एकमात्र प्रिय औषधि हो। फिर उसने देखा कि बोतलमें बहुत थोड़ी शराब बाक़ी बच रही है, उसे भी उसने पी लिया और खाली बोतल सोफेके नीचे लुढ़का दी। बोतलके लुढ़कते ही शीशेके चूर-चूर होनेकी आवाज़ आई। वह सम्हलकर बैठ गई और कहने लगी—'कुछ दिन पहले जब मैं डाक्टरके यहाँ गई थी, तो उसने कहा कि मेरा फेफड़ा शराबसे बिलकुल खोखला हो चुका है। उसने एक दवा भी दी थी; पर मैंने उसे रास्तेकी नालीमें फेंक दिया और घर लौटकर फेफड़ेके खोखलेपनको दूर करनेके लिए पुनः उसे ६० डिग्री तेज़ ब्रांडीसे तर कर लिया। अब डाक्टर कहा करते हैं कि मेरे जीनेकी बिलकुल ही आशा नहीं।'

वह और कुछ कहना चाहती थी; पर मैंने कहा—'आख़िर तुम्हें इसकी आदत कैसे लगी?'

उसने मेरे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया। वह मेरा प्रश्न टालना चाहती थी, इसीलिए उसने कहा—'ज़रा जाकर एक फ्रैंककी सिगरेट तो ख़रीद लाओ!'

फ्रैंक उसने मेरे सामने पटक दिया। मुझे उसकी हुकूमत अच्छी नहीं लगी, फिर भी मैं सिगरेट लाने चला गया। मेरे लौटनेपर उसने सिगरेट ले लिया और सर-दर्दका बहानाकर मुझे विदाकर दिया।

[६]

उस दिनके बाद जेनेटसे और कई बार मुलाक़ात हुई; पर अपने निजके जीवन-सम्बन्धी प्रश्नोंके छिड़ते ही वह बातचीतका रुख़ बदल दिया करती। वह अपना पिछला इतिहास छिपाये रखना चाहती थी, इसलिए मैंने भी उसे जाननेकी उत्कण्ठा नहीं दिखलाई।

एक दिन शामको सर्दी लग जानेके कारण मैं अपने कामपर नहीं गया। मेरा सारा शरीर दर्द कर रहा था। अभी दरवाज़ा बन्दकर और दीवारगीर बुझाकर सोनेकी तैयारी कर ही रहा था कि एक-ब-एक सीढ़ीपर किसीके ऊपर आनेकी आहट सुनाई दी। मैं पहचान गया। जेनेट थी। उस दिन उसने, न-मालूम क्यों, अपने जीवनका पूरा इतिहास खोलकर मुझे बतला दिया। मैंने समझा, शायद वह शराबके नशेमें रही हो; पर उसके मुँहसे बदबूका नामोनिशान तक न था।

उसने स्वयं ही चर्चा छेड़ी—"मेरा इतिहास सुनोगे? आज मैं तुम्हें खोलकर सुनाऊँगी। यदि तुम सुननेके लिए तैयार नहीं, तो ईंटों, दीवारों और पत्थरोंको कह सुनाऊँगी। बात आजसे पाँच वर्ष पहलेकी है। उस समय मेरी मा ज़िन्दा थी और मेरी छोटी बहन इंगे भी साथ ही रहा करती थी। पिता लिलीके कपड़ेके कारखानेमें काम करते थे। उनके मरनेके बाद हम लोगोंका गुज़ारा चलना मुश्किल हो गया। मैं ही बड़ी बहन थी, इसलिए बूढ़ी मा और छोटी बहनको अपनी आँखोंके सामने भूखों मरते देखना मुझसे बर्दाश्त न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। पहले मैंने कपड़ेके कारखानेमें काम पानेकी बहुतेरी चेष्टा की; पर असफल रही। फिर पेरिस आई। बहुतेरे धक्के खानेके बाद, क्षुधा-ज्वालाको और अधिक न सम्हाल सकनेके कारण, मैंने एक 'नैश-विहार' में काम करना स्वीकार किया। यदि तुम वहाँ पहुँचनेके पहले मुझसे परिचित होते, तो तुमने मुझे किसी दूसरे ही रूपमें देखा होता और उस समय तुम मेरे आजके इस स्वरूपको देखनेका अनुमान तक न कर पाते। उस समय मैं कुछ दूसरी ही थी।"

इतना कहकर जेनेटने एक लम्बी साँस ली, जिससे मालूम हुआ कि उसके भीतर कोई वेदना छिपी हुई है, और वह उस वेदनाके प्रति बिलकुल उदासीन है। वह आगे कहने लगी—"क्षुधाकी ज्वालासे पीड़ित हो मुझे पहले ही दिन अपनी लज्जा और शर्म धोकर पी लेनी पड़ी। तुम मेरी आजकी यह चाल-ढाल देखकर कहते होगे कि मेरा चाल-चलन कभी अच्छा रहा ही नहीं होगा; पर किसी भी कुरूप-से-कुरूप सोलहवर्षीया बालिकासे पूछ देखो, उसे पहले-पहल अपना यौवन बेचना कितना अखरता है। वह उसे बेचनेके पहले कितना रोती है। और सबसे बुरी बात तो यह होती है कि उसका अन्तःकरण उसे इतना कोसता है कि उसका पागल न हो जाना ही आश्चर्यकी बात है।

"नैश-विहारमें जिस दिन मैंने प्रवेश किया, उसी दिनसे मैंने एक दूसरे ही संसारमें पाँव रखा। लोग इस संसारको नरक कहा करते हैं; पर इसके बिना उनका काम चलता भी नहीं। वे इस स्थानपर जितना समय बिताते हैं, उसे अपने जीवनकी सबसे सुन्दर घड़ियोंमें गिनते हैं; पर हम लोगोंपर कैसी बीतती है, यह हम ही जानती हैं।

"पहले दिन शीशेमें अपना बदला हुआ चेहरा देखकर चीख मारकर रोनेकी मेरी इच्छा हुई; पर फिर ख़याल आया कि अब बहुत देर हो चुकी है, अब पीछे लौटना असम्भव हो चुका है। अपने-आपको भूखके मारे बेच चुकी थी; अपने ही शरीरपर मेरा अधिकार नहीं रह गया था। मैं दूसरोंकी बन चुकी थी। दूसरे अब मुझे जिस रूपमें देखना चाहते, मुझे वैसा ही बनना पड़ता था।

"शायद तुमने मनुष्योंका वह 'स्वर्ग' नहीं देखा है। कुरूप-से-कुरूप, बूढ़े-से-बूढ़ा पुरुष वहाँपर जाता है और सुन्दरियाँ उसे अपने 'प्यार' से वंचित नहीं रखती हैं। कुरूप बुड्ढे कमरेमें जाकर एक स्थानपर बैठ जाते हैं, हम उनके पाससे होकर निकलती हैं। हमें कमरके ऊपरके भाग ढके रखनेकी मालिककी ओरसे मुमानियत रहती है, और दूसरे भाग भी वैसे ही ढके होने चाहिए कि हमारे शरीरका पूरा-पूरा गठन दिखलाई देता रहे और पुरुष अपने इच्छानुसार चुनाव कर सकें। फिर वह जो कोई भी हो और चाहे वह जिस रोगसे भी पीड़ित क्यों न हो, यदि उसने हमें चुन लिया, तो हमें उसके पास जाना ही पड़ता है और उसके इच्छानुसार हँसना तथा उसके प्रति प्यार प्रकट करना पड़ता है।

"यही है पुरुषोंका स्वर्ग! उन्हें 'स्वर्गीय' आनन्द पहुँचानेके लिए हमें कितना सहन करना पड़ता है! उस विहार-गृहमें इस प्रकारके कितने लोग आया करते हैं, जिन्हें केवल उतनेसे ही सन्तोष नहीं होता। वे हमें नशेमें ज़मीनपर लोटता हुआ तथा बेचैनीके मारे अंटसंट बकता हुआ देखना चाहते हैं। उन्हें इसीमें आनन्द आता है!

"अब ज़रा आमदनीका हाल सुनो। अपना उतना 'प्यार' सारी रात उड़ेलते रहने और सब-कुछ बर्दाश्त करते रहनेके बाद जब मैं घर लौटती, तो मालिकसे मुझे केवल उतना ही द्रव्य मिलता, जितनेमें मैं अपनी कोठरीका किराया चुकता कर पाती तथा दूसरे दिन शाम तक खानेका ख़र्च चला सकती।

"पुरुषोंके 'स्वर्ग'ने मुझे शराबसे खोखला कर दिया। अभी बीस वर्षकी ही उम्रमें सत्तर वर्षकी बुढ़ियोंकी तरह खाँसने लगी हूँ! यदि ऐसा न होता, तो पुरुषोंके 'स्वर्ग' की नींव ही कैसे कायम रह सकती थी?"

इतना कह वह रूखी हँसी हँसने लगी। वह अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनके प्रति कितनी हताश हो चुकी है, यह उसकी हँसीमें स्पष्ट दिखलाई देने लगा। उपर्युक्त बातें कहते समय उसका कलेजा रो रहा था, यह उसके चेहरेसे जान लेना कठिन नहीं था; पर वह इसे प्रकट नहीं होने देना चाहती थी। वह स्वयं ही आगे कहती गई—"तुम्हारे जैसे सीधे-सादे लोग हमारे संसारसे परिचित नहीं। तुम मनुष्योंको एक दूसरी ही दृष्टिसे देखा करते हो; पर हमें किसी भी मनुष्यके चेहरेमें भयावनेपनके सिवा और कुछ दिखलाई ही नहीं देता। वे जितने ही भयावने होते हैं, हम उनके उतने ही निकट जाती हैं; वे जितने ही कुरूप होते हैं, हम उनकी सुन्दरताकी उतनी ही सराहना करती हैं; वे जितने ही मूर्ख होते हैं, हम उनके गुणोंका उतना ही बखान करती हैं। इसी प्रकार तो हम अपनेको बेच पानेमें समर्थ होती हैं। मुझे सड़कपर अपना चेहरा दिखलानेमें शरम आती है, इसीलिए मुख्य चौराहोंपर जाकर खड़ी होती हूँ। वहाँ जिन पुरुषोंका भद्दा-कुरूप चेहरा देखकर मुझे भय लगता है, उनके ही पास हँसती हुई जाती हूँ। वे अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर मेरे घर आते हैं। उनके नालीसे भी अधिक गन्दे तथा बदबूदार होंठ जब मुझे चूमनेके लिए आगे आते हैं, तो मैं भी अपने होंठ आगे बढ़ा देती हूँ और हँसती हूँ।

"हाँ, उस समय मेरे हृदयमें जो आग जलती रहती है, तुम उसका अनुमान भी नहीं कर पाओगे। जिस समय वे मेरी ओर मुझे एक खिलौनेके रूपमें—एक वैसी चीज़के रूपमें देखते हैं, जिसे उन्होंने एक संध्याके लिए ख़रीद लिया हो, तो मुझे ठीक वैसा ही प्रतीत होता है, जैसे मैं मधुमक्खियोंके छत्तेमें बैठा दी गई हूँ। जिस समय वे मुझे आलिंगन करनेके लिए आगे बढ़ते हैं, उस समय इच्छा होती है कि यदि मेरे हाथमें एक लम्बा छूरा होता, तो मैं उसे उनकी छातीके आरपार कर देती। पर मुझे अपना वह भीतरी स्वरूप दिखलानेका अवसर ही नहीं मिलता। अगर वैसा अवसर मिले, तो एक ही बारमें सभी पुरुषोंको जहन्नुम भेज दूँ।"

वह दाँत पीसती हुई चारपाईपर लेट गई। मैं उसके चेहरेकी ओर एक टक देख रहा था। आँखें खोलनेपर उसने कहा—"क्या देखते हो? संसार इसीको 'प्यार', 'सुख', 'स्वर्ग'का नाम दिया करता है। इसके लिए हमें शरीरका टुकड़ा-टुकड़ा बेच देना पड़ता है; केवल इतना ही नहीं, वह इतना सस्ता बना दिया जाता है कि जिसके पास दो धेले हों, वही हमें जिस स्वरूपमें चाहे देख सकता है। मैं हूँ खिलौनेकी वस्तु और मनुष्योंने उसका दाम लगा रखा है—यदि रक्त-मांसके सहित लो तो दो रुपये और यदि कागजपर तो दो धेले। आज भी यदि इस शहरके अनेक भागोंमें जाओगे, तो देखोगे कि व्यवसायियोंने लेटरबक्सके समान कई बक्स लगा रखे हैं; जिनमें दो धेले डालनेपर तुम मेरा तरह-तरहके वेषमें स्वरूप देख सकोगे। उसका नाम मेरे चित्रसे पैसे कमानेवालोंने दे रखा है—'नग्न सौन्दर्य,' 'फूलती जवानी', 'रातका शृंगार', 'प्रातःकालका शृंगार' इत्यादि। मेरी कीमत भी बाज़ारमें और दूसरी वस्तुओं-की ही भाँति लगाई जाती है।

"और इतना सब होनेपर भी हमें हर समय हँसते रहना पड़ता है! हा····हा····हा····हा····"

ऐसा दीखने लगा, मानो वह स्वयं मुझे आलिंगन करने जा रही हो; पर नहीं, उसने मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे पुनः बैठा दिया और गम्भीर होकर कहने लगी—'नहीं, तुम सुन्दर हो, मुझसे दूर रहो। मैं नीच पापिनी हूँ।'

मैं अवाक्-सा बना रहा। जेनेट स्वयं चिल्लाकर कहने लगी—'देखा, यही मेरी कहानी है, यही मेरा संसार है!'

मैं काँपने-सा लगा। ज़मीनकी ओर देखते हुए मैंने कहा—'मुझे भय लग रहा है।'

जेनेट पहलेकी ही भाँति ठहाका मारकर हँसने लगी और साथ ही उसके गाल भी आँसुओंसे तर होने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमजीवी

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

बालें अनाजकी हरी-भरी लहरातीं,
तेरे उरमें रस-सिन्धु एक उमड़ातीं ;
फिर वे क्रमशः औरोंके घर जाती हैं,
तेरी झोली सूनी ही है रह जाती ।

तेरे पुरखोंके स्वेद-कणोंसे जिसका
कण-कण युग-युगसे सिंचित होता आया ;
वह भूमि अपरिचित निष्क्रियकी 'अपनी' है,
तू मर-मिटकर भी उसके लिए 'पराया' ।

जीवित - समाधि - से यन्त्रागारोंमें तू
है अथक, दैत्य-से यन्त्रोंपर, श्रम करता ;
लगते पहाड़ - से तेरे उत्पादनके,
जिनसे विस्तृत भंडार 'विभव' का भरता ।

पर है अभाग्यका राज्य कुटीमें तेरी,
दुख-दैन्य अटल हैं, अक्षय सूनापन है ;
संघर्ष मरणसे प्रतिपल करनेवाली—
भूखी-नंगी 'मानवता' का क्रन्दन है ।

जगके शोषणको 'अर्थचक्र' आकुल है,
विज्ञान और पशु-बल उसके अनुचर हैं ;
साम्राज्योंके विस्तार नियत साधन हैं,
जो तेरे शोणितकी बलिपर निर्भर हैं ।

जय और पराजय औरोंको मिलती है,
तेरी क़िस्मतमें कट मरना निश्चित है ;
तू निरपराध, विद्वेषहीन बलि-पशु है,
तेरे जीवनका मोल 'एक इंगित' है ।

बन कभी कृषक भंडार भरे औरोंके,
बन श्रमिक कभी औरोंका लाभ बढ़ाया ;
औरोंके हित सैनिक बन बहुत लड़ा तू,
अपने हित मानव बनने कभी न पाया ।

विज्ञान और साहित्य उच्च हैं तुझसे,
हैं कला और संस्कृति अलभ्यतम सपने ;
'दर्शन' के दर्शन तुझे सदा दुर्लभ हैं,
तेरे केवल दारिद्र्य, दैन्य, दुख 'अपने' ।

विज्ञान सिखाया भी तुझको, तो कितना ?—
तू मूक यंत्र-चालक बन जावे, इतना !
तू कला और साहित्य जानता उतना,
'वैभव' के गुण गा सके जानकर जितना ।

तेरी संस्कृति—शोषणको, आघातोंको
नतमस्तक होकर मौन-भावसे सहना ;
तेरा 'दर्शन' है—दोष भाग्यको देना,
ईश्वरकी इच्छा समझ कष्टमें रहना ।

तेरे ही श्रमसे निर्मित प्रासादोंमें
तेरे शोषणकी गूढ़ मन्त्रणा होती ;
इस कठिन कार्य (!) से थक 'विलासकी महिमा'—
नूपुर-झंकारोंपर है सुध-बुध खोती ।

पर रणसे, यन्त्रालयसे या खेतोंसे,
तू जब थककर हो चूर कुटीमें आता ;
रोगी शिशु, भूखी गृहिणीका मुख सूखा—
तेरे उरमें तीखे शर-सा चुभ जाता ।

तेरे शोषणसे संचय जब बढ़ जाता,
जब अधिक मूल्य उसका न 'कृपणता' पाती ;
तू क्षुधा-अग्निमें तिल-तिल जलता रहता,
पर निष्ठुर बन वह राशि नष्ट की जाती ।

कितने अरमानोंको ले वे शिशु बढ़ते,
जिनके पथपर हैं निधियाँ पलक बिछातीं ;
तुतले बोलोंपर स्वर्ण निछावर होता,
मुसकानोंपर मणियाँ लुटनेको आतीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके यौवनमें सपनोंके साधन हैं,
जिनकी रजनीमें मधुका आयोजन है ;
सुखके, सुविधाके नन्दनवनमें जिनकी—
सज्जिता प्रियाका नित्य-नवीन मिलन है ;

वे अपने जगमें जीवन मधुर बिताते,
अनुपम रसके अगणित अवसर हैं पाते ;
बनते उनपर इतिहास, काव्य प्रतिदिन हैं,
चित्रोंके वे 'आदर्श' बनाये जाते।

उन सबके जीवनमें आते मधुके क्षण,
पर तेरा नीरस श्रम ही से नाता है ;
हैं जन्म-मरणके बीच एक-सी घड़ियाँ,
जो नरक-यातना-सी भोगे जाता है।

× × ×

बन मानवताकी नींव छिपा तू नीचे,
इससे कहलाया नीरस, कठिन, असुन्दर ;
पर निर्बल, जर्जर क्षण-भर भी मत बन तू,
यह जग-जीवनका भवन तुझीपर निर्भर !

जो करते कठिन प्रहार शक्तिपर तेरी,
जो तुझे खोखला करते रहते प्रतिक्षण ;
वे नहीं जानते आत्म-नाश उनका भी—
तेरे विनाशमें छिपा हुआ है भीषण।

पर तू अपनेको जान, आत्म-रक्षक बन,
अपने ही बलको त्राण समझ ले अपना ;
ओ महाप्राण, उठ आत्म-ग्लानिके ऊपर,
मत देख जीर्ण युगकी संस्कृतिका सपना।

सुन युग-युगके पीड़ित, नवजीवन-वाणी,
जय-ध्वनि नवयुगकी दिशा-दिशामें छाई ;
जिस बन्धनको तू अक्षय समझ रहा था,
उसके विनाशकी मंगल-वेला आई।

है मानवताकी मुक्ति, मुक्तिमें तेरी,
तेरे बन्धनमें है इस जगका बन्धन ;
है 'विश्व-शान्ति' पाखंड कुटिल राष्ट्रोंका,
जब तक तेरा शोषण 'वैभव' का पोषण।

× × ×

सिंहासन-तल कितनी पलकोंने चूमे,
मुकुटोंका जगमें कितना हुआ समादर ;
खड्गोंके आगे विनत हुए सिर कितने,
कोषोंपर कितने प्राण बिके हँस-हँसकर !

पर तू वंचित ही रहा, उपेक्षित, पीड़ित,
सबकी पद-रज बन रहना तुझको भाया ;
उठ, बलिदानोंके मौन, आज युग-युगकी—
संचित श्रद्धा ले कवि तेरे घर आया।

"वीर पुरुष वही है, जो कि अटल रूपसे डटा रहता है। आदमियोंमें जो बड़ा अन्तर है, वह यह है कि एक आदमी अपने ऐसे सिद्धान्तों तथा कर्तव्योंसे बँधा हुआ है, जिनपर तुम विश्वास कर सकते हो, भरोसा कर सकते हो ; और दूसरा वह जो इस प्रकारके किसी भी सिद्धान्तसे बँधा हुआ नहीं होता। और चूंकि उस आदमीमें कोई नैतिकता नहीं है, वह किसी सिद्धान्तपर चलनेवाला आदमी नहीं है, इसलिए उसपर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।" —एमर्सन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हबीबुल्ला रायल बार्बर

श्री ज्वालादत्त शर्मा

मुरादाबादका एक मुसलमान नाई अपने भाग्यके प्रभावसे, साथ ही अपनी बुद्धिमानीसे भी, बहुत नीचे स्तरसे ऊँचा उठा और बकिंघम पैलेसमें मेहमान तक रहा। उसकी मुलायम अंगुलियाँ लार्ड किचनर और कर्ज़न जैसे सुप्रसिद्ध अंगरेज़ोंकी खोपड़ियों और कपोलोंपर ही नहीं, महामान्य भारत-सम्राट् पंचम जार्ज और संसारके महाविशिष्ट मनस्वी एडवर्ड अष्टमके शुभ मुखके स्पर्शका भी सौभाग्य प्राप्त कर चुकी हैं। जितना उसकी अंगुलियोंमें जादू है, उससे कहीं अधिक ज़बानमें मिठास है—मिठास ही नहीं, सामयिक वार्ताशूरत्व, नाइयोंका प्रधान गुण, इस लम्बे छरेरे और प्राचीन पोशिशके नाईमें बहुत बड़ी मात्रामें है। वह जानता है, किस व्यक्तिसे किस ढंगकी बात करनी चाहिए और कहाँ चुप रहना बुद्धिमानी है। लार्ड कर्ज़न जैसे प्रतिभाशाली विद्वानसे उसने अपनी बातचीतकी योग्यताकी दाद पाई है। लार्डसिंह तो उसे उच्चकोटिका नाई माननेके साथ बहुत ही हृदयग्राही कथा कहनेवाला मानते थे।

कोई ४० वर्षकी आयुमें उसने अपनी योग्यताके सहारेसे गवर्नमेंट आफ़ इंडियाके शाही महलमें प्रवेश पाया और फिर इतनी लोकप्रियता प्राप्त की कि जिस बड़े मेहमानने एक बार हबीबुल्लासे हजामत बनवा ली, दुबारा आनेपर उसने उसकी याद की। कोई तो उसके फनपर इतने लट्टू हो जाते थे कि महीनों नित्य दिनमें दो बार काम लेनेपर भी तृप्त न होते थे।

महामान्य सम्राट् पंचम जार्जके भारतवर्षमें पधारनेपर हबीबुल्ला बराबर सेवामें नियुक्त रहा। सम्राट्की कृपा उसपर इतना अधिक हुई कि वे उसे लौटती बार इंग्लैण्ड साथ ले गये, और क़रीब एक वर्ष तक उसने संसारके सबसे बड़े राजघरानेमें आतिथ्य ग्रहण किया।

महामान्य एडवर्ड अष्टम जब प्रिंस आफ़ वेल्सके रूपमें भारतवर्षमें पधारे थे, उस समय भी हबीबुल्ला बराबर सेवामें नियुक्त रहा और कैम्पके बड़े-बड़े अधिकारियोंसे प्रशंसा प्राप्त की।

इस समय हबीबुल्ला ७२ वर्षकी आयुको पार कर गया है, किन्तु वह बूढ़ा नहीं हुआ है। गर्दन उठाकर चलता है, हाथमें वही हल्कापन है, राशेका नाम नहीं, ज़बानकी वही ताकत कि बात करनेका सदा नया ढंग

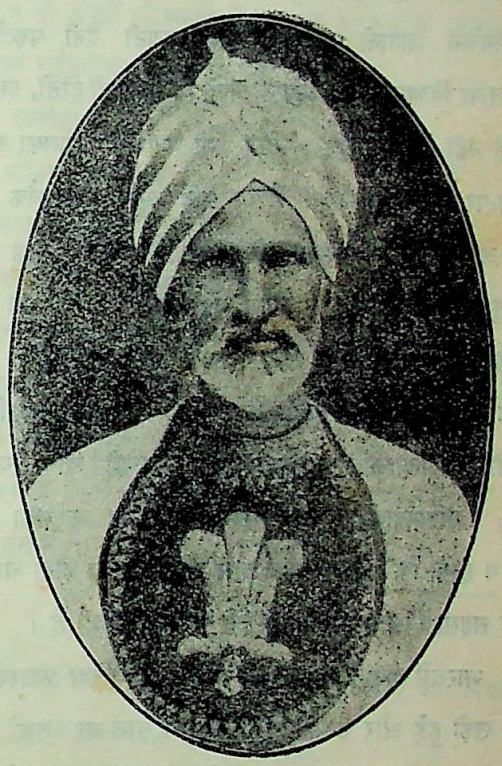

और हर आदमीके साथ उसके स्वरूपके अनुसार बातचीत—इन सबका कारण उसका सादा जीवन है। उसने कभी शराब नहीं पी। वह बहुत थोड़ा खाना खाता है और खुश रहता है। हबीबुल्ला अपनी यादगार खुद है और प्राचीनताका पूरा भक्त है। धनका अधिक संग्रह हो जानेके कारण अपने पेशेसे उसे उदासीनता हो गई है; किन्तु मौसम अच्छा हो, तो फिर हबीबुल्लाको वाइसरीगल लाजमें चक्कर लगानेका और राजा-महाराजाओंसे वसूलयाबी करनेका आज भी अच्छा शौक़ है। दिल्लीके शाही क़िस्सागोकी तरह हबीबुल्ला भी अपना सानी नहीं छोड़ेगा और उसके जाननेवाले बहुत दिनों तक उसे याद रखेंगे। अब वह किसी अच्छे काममें अपनी सम्पत्तिका उपयोग करना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानमें मोटरका व्यवसाय

श्री धर्मचन्द सरावगी

जापान जो न कर दिखाये, वह थोड़ा है। जो चीज़ें अन्य देशोंसे रुपयोंके मूल्यपर आती है, उन्हें जापानवाले पैसोंके मूल्यमें बेंचते हैं। उसपर भी मज़ा यह है कि अन्य देशोंके मुकाबलेमें जापानी मालपर अधिक ड्यूटी देनी पड़ती है। जनताका विश्वास है कि जापानी चीज़ें टिकाऊ नहीं होतीं, इसीलिए उन्हें नहीं लेना चाहिए; फिर भी जापानी मालका आयात दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। यदि आप ध्यानपूर्वक देखें, तो जान पड़ेगा कि जापानवाले अन्य विदेशियोंकी तरह अपनी वस्तुओंका लम्बा-चौड़ा विज्ञापन नहीं करते; फिर भी देशमें करोड़ोंका जापानी माल देखते-देखते खप जाता है। आप एक रुपयेकी चीज़ बाज़ारसे लाकर अपने किसी मित्रसे कहिये—देखो, जापानवालोंने दो आनेमें कैसी अच्छी चीज़ तैयार की है; जापानवालोंकी धाकके कारण उसे यह कहनेका साहस ही न होगा कि इस चीज़का दाम इतना कम न होना चाहिए। उसे सहसा विश्वास हो जायगा कि वह जापानी ही है।

भारतमें जापानी मोटरके सम्बन्धमें एक विचित्र प्रकारकी गप उठ खड़ी हुई और उसकी चर्चा लगभग साल-भर तक रही। लोगोंका कहना था कि जापानवालोंने नई मोटरें बनाई हैं, जो जल्दी ही भारत आयेंगी। जापानी मोटरोंका नाम सुनते ही लोगोंको विश्वास हो गया कि अन्य चीज़ोंकी भाँति वे भी कम मूल्यमें ही बिकेंगी। उनका दाम चार-पाँच सौ होगा। दूसरी गप यह थी कि जापानवालोंने ऐसी मोटरें बनाई हैं, जो स्प्रिंगसे चलती हैं। एक बार स्प्रिंग भर देनेसे वह पचास मीलकी यात्रा बड़े मज़ेमें कर लेती है। उसमें पेट्रोल वग़ैरहकी बिलकुल आवश्यकता नहीं होती। हर पचास मीलपर उसकी स्प्रिंग भरनी पड़ती है। तीसरी गप इससे भी आगे बढ़ी हुई यह थी कि मोटरमें दो स्प्रिंगें होंगी—एकसे मोटर चलेगी और जब मोटर चलेगी, तो दूसरी स्प्रिंगमें चाभी लग जायगी। इस प्रकार वे बारी-बारीसे काम करती रहेंगी।

इस समाचारकी कुछ दिन प्रतीक्षा करनेके पश्चात् यह सुननेमें आया कि ऐसी मोटरें जापानसे आई थीं; पर भारत-सरकारने उन्हें यहाँ उतरने नहीं दिया, इसी कारण वे वापस जापान भेज दी गई हैं। भारत-सरकारके आपत्ति करनेका कारण यह बताया जाता था कि इन मोटरोंके आनेसे पेट्रोलका खर्च एकदम कम हो जायगा, जिससे सरकारको ॥=) प्रति गैलनकी जो ड्यूटी मिलती है, वह न मिल सकेगी। दूसरे वर्तमानमें जो मोटर बेंचनेवाली कम्पनियाँ हैं, उनकी बिक्री भी कम पड़ जायगी, जिससे सरकारको कस्टम ड्यूटी और इनकम टैक्सका नुकसान होगा। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश गाड़ियोंकी खपत घटनेसे इंग्लैण्डमें बेकारीका प्रश्न उठ खड़ा होगा। उपर्युक्त बातोंके साथ-ही-साथ यह बात भी सुननेमें आई कि तेल कम्पनियों और मोटर कम्पनियोंने अपनी रक्षाके लिए उपर्युक्त गाड़ियोंको भारतमें न आने देनेकी प्रार्थना की है। ये बातें अनेक बार कई ज़िम्मेदार व्यक्तियोंके मुँह तकसे भी सुनी गईं। एक बार हमने एक जापानी कम्पनीके मुसद्दीसे पूछा, तो उस भले आदमीने उत्तर दिया कि जापानी गाड़ियाँ आई तो हैं; पर कस्टमवालोंके साथ ड्यूटीका झमेला पड़ा है। गाड़ियाँ अब तक जेटीमें हैं। उसके कुछ दिनों बाद एक दिन क्लाइव स्ट्रीटमें एक जापानी कम्पनीके आफिसके सामने एक छोटी Datson नामक मोटरकार देखी। लोगोंकी वहाँ भीड़ लगी थी।

एसेम्बलीमें सरकारकी ओरसे प्रतिवाद किया गया; पर यह जान पड़ा कि इन गप्पोंमें कुछ तथ्य है। हाँ, इस बातपर विश्वास नहीं होता था कि एक मोटर किस प्रकार स्प्रिंगसे चल सकती है, इसलिए एक दिन अपने एक इंजीनियर मित्रसे इस सम्बन्धमें हमने बात छेड़ी। वे ठहाका मारकर हँसने लगे। उन्होंने पूरे मसलेको एक वाक्यमें ही तय करते हुए कहा—"You cannot get anything for nothing. (संसारमें बिना कुछ खर्च किये कुछ नहीं मिलता।) तो फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी बड़ी गाड़ी केवल स्प्रिंगके सहारे कैसे चल सकती है ? उसमें भी मज़ा यह कि स्प्रिंगको घुमानेके लिए किसी विशेष शक्तिकी आवश्यकता न होगी ! इतना तो सम्भव है कि गाड़ी स्प्रिंगसे चले ; पर उन स्प्रिंगोंमें चाभी देनेके लिए जगह-जगह पावर स्टेशनोंकी ज़रूरत होगी। वे पावर स्टेशन आजकलके पेट्रोल स्टेशनका काम करेंगे। पर समझमें नहीं आता कि तुम्हारे यहाँ इन फ़िज़ूलकी गप्पोंको उड़ानेवाला कौन व्यक्ति है ?"

कुछ महीनों पहले 'The Japan Commercial Guidance' नामक एक मासिक पत्र हाथ लगा। उसमें 'Japan's Automobile Industry of to-day'— शीर्षक एक लेख देखा। उस लेखने तो जापानका सारा कच्चा चिट्ठा खोल दिया। पाठकोंकी जानकारीके लिए उसका उपयोगी अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

जापानमें इस समय लगभग २०,००० मोटरें प्रतिवर्ष खपती हैं, उनमें अधिकतर मोटरें अमेरिकनों द्वारा सप्लाई होती हैं। मि० फोर्ड और जनरल मोटर कम्पनीवालोंने अमेरिकासे सामान मँगाकर यहाँ जोड़ देनेका कारखाना खोल रखा है। यहाँ इन मोटरोंमें जापानी पुर्जे भी व्यवहार किये जाते हैं। इन दोनों कारखानोंमें प्रतिवर्ष १७,५०० मोटरें बनती हैं। बाक़ी २५०० मोटरें जापानी कारखानोंमें बनती हैं। जापानमें मोटर-निर्माणका उद्योग सर्वप्रथम सन् १९२८ में प्रारम्भ हुआ था, और सन् १९२९ तक वहाँ ४३७ मोटरें बनी थीं, जिनमें अधिकतर लारियाँ, ट्रक और टैक्सी थीं। सरकार भी इस उद्योगको सहायता पहुँचानेके लिए इन्हें ख़रीदती थी ; पर इस समय वहाँ २५०० गाड़ियाँ बनने लगी हैं।

सन्	जापानी कारखानोंमें बनी गाड़ियाँ
१९२९	४३७
१९३०	४५८
१९३१	४३४
१९३२	८४०
१९३३	१८०८
१९३४	२५००

२५०० मोटरें जापानी खपतके हिसाबसे १२॥ प्रतिशत पड़ती हैं।

जापानमें सात बड़े-बड़े कारखाने हैं, जो मोटरें बनाते हैं ; पर इनमें तीन ऐसे हैं, जो मोटर बनानेकी ओर ही अधिक ध्यान देते हैं। बाक़ी चार कारखाने औज़ार, मेशीनरी आदि बनाते हैं, साथ ही मोटरें भी बनाते हैं। सन् १९३४ में जापानमें बननेवाली गाड़ियोंकी संख्या इस प्रकार थी :—

फोर्ड (याकोहामा) / जेनरल मोटर (ओसाका)	१७,५००
ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री (टोकियो)	१,०००
वीसन ऑटोमोबाइल (ओसाका, याकोहामा)	३६०
की-वासकी रोलिंग स्टाक (कोबे)	१५०
मीस सुवीसी होमी इण्डस्ट्री (कोबे)	१५०
टोकियो गैस इलेक्ट्रिक (टोकियो)	५५०
जापान रोलिंग स्टाक (टोकियो)	९०
अन्य कारखानें	२००
	२०,८००

सरकारने देशके इस उद्योगके संरक्षणके लिए जो नियम बना रखे हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(१) जापानी गाड़ियाँ वे ही समझी जायँगी, जो जापानके उन कारखानोंमें बनेंगी और जिनको सरकारने जापानी गाड़ियोंके बनानेका लाइसेन्स दिया है।

(२) जापानी गाड़ियाँ वे ही समझी जायँगी, जो केवल जापानके बने हुए पुरजोंसे ही तैयार होंगी।

(३) जापानी गाड़ियोंके निर्माणमें यदि किसी ऐसी वस्तुकी आवश्यकता है, जो देशमें नहीं बनती हो, तो वह सरकारसे आज्ञा लेकर मँगवानी पड़ेगी।

(४) जो कोई कम्पनी इन नियमोंका पालन न करेगी, उसका लाइसेन्स मंसूख हो जायगा।

उपर्युक्त नियमोंके कारण ही देशमें बननेवाली गाड़ियोंकी संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है। हम साथ ही एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारके आँकड़े और देते हैं, जिनसे पता लगेगा कि जापानमें मोटरोंका व्यवहार दिन-प्रति-दिन किस प्रकार बढ़ा। अन्य देशोंकी भाँति यहाँके लोग भी मोटरोंका व्यवहार अधिक करने लगे। यह हम माननेके लिए तैयार हैं कि अमेरिका-वालोंके सामने यहाँ उपयोगमें आनेवाली गाड़ियोंकी संख्या नगण्य है; पर फिर भी इतने छोटे-से देशके लिए यह संख्या पर्याप्त है।

पेट्रोलसे चलनेवाली गाड़ियोंकी संख्या :—

	कार और बस	ट्रक्स	स्पेशल कार्स	योग
जून १९२३	१२७०९	३०२२	४७४	१६२०५
„ १९२४	१७९३९	५३९४	६६८	२४००१
„ १९२५	२१००२	८१६२	१०५१	३०२१५
„ १९२६	२६८५६	१०६१९	१२१८	३८६९३
„ १९२७	३४०७४	१४१७९	१४२५	४९६७८
„ १९२८	४२०१५	१७८७१	१८२५	६१७११
„ १९२९	५४११५	२५२१८	२१३८	८१४७१
अगस्त १९३०	५८६९०	२९७४४	१६६२	९००९६
„ १९३१	६३९१७	३२९२६	२२३२	९९०७५
„ १९३२	६६९०६	३४५३१	२४७८	१०३९१५
„ १९३३	६८२२४	३६११७	२४६२	१०६८०३
सितम्बर १९३४	७६१२४	४२३३७	२७३१	१२११९२
१९२३ से १९३४ तक				
उन्नति प्रतिशत	५९०	१४००	५८०	७५०

इस समय संसारके अन्य देशोंकी तरह जापानमें भी छोटी गाड़ियोंकी माँग बढ़ रही है, क्योंकि इन गाड़ियोंकी सीट शहरमें घूमनेके लिए पर्याप्त होती है। साथ ही खर्च बहुत कम लगता है। इस कामका बीड़ा लीसन ऑटोमोबाइल कम्पनीने उठाया है। और Dotson नामकी गाड़ियाँ बनाई हैं। यह गाड़ी अन्य छोटी अमेरिकन गाड़ीसे किसी भाँति कम नहीं। इसमेंकी एक गाड़ी कलकत्तेमें नमूनेके बतौर आई हुई चल रही है। पर जब जापानवाले अपने देशकी ही माँगको पूरा नहीं कर सकते, तो दूसरे देशोंको भेजनेकी बात अभी दूर है।

"ऐ मेरे आत्मा, ज्यों-ज्यों शीघ्रतासे व्यतीत होनेवाली ऋतुएँ गुजरती हैं, त्यों-त्यों तू अपने लिए दृढ़ भवन निर्माण कर। तू अपने पहले संकुचित निवास-स्थानको त्याग दे और अपने लिए पहलेसे अच्छा नवीन मन्दिर बना। उस मन्दिरमें तू उस समय तक निवास कर जब तक कि तू अन्तमें पूर्ण स्वतन्त्र न हो जाय, मुक्त न हो जाय।"

—ऑलिवर डब्ल्यू होम्स।

× × × ×

"दुःखको जीतो और शान्तिको प्राप्त करो। बुद्धिमत्ता मनकी शान्तिके साथ रहती है। आत्म-संयमी आदमी ही अनन्त सुखको जानते हैं। इसलिए तुम सावधान, निर्भय, विश्वासी, सन्तोषी और पवित्र बनो। सच्चे ध्यान-द्वारा जीवन-रूपी समुद्रकी गहराई और प्रेम तथा बुद्धिमत्ताकी बड़ी ऊँचाइयोंको मापो।"

—जेम्स एलन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स्वीडेनका सहयोग-आन्दोलन

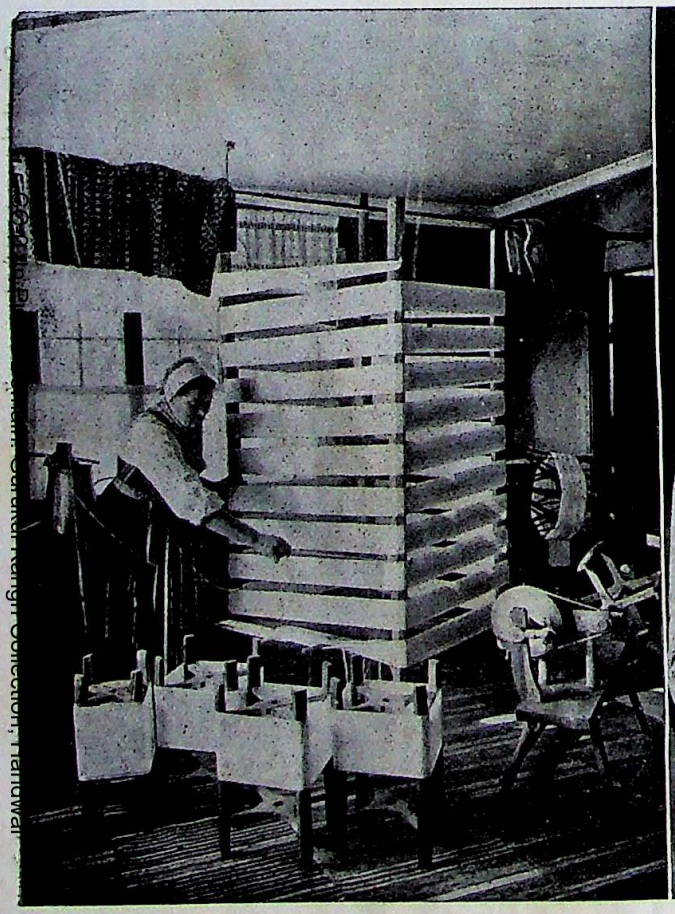

कपड़ेकी बुनाई—डलार्ना प्रान्त

बूढ़ी दादी मोज़ बुन रही है—डलेकार्लिया प्रान्त

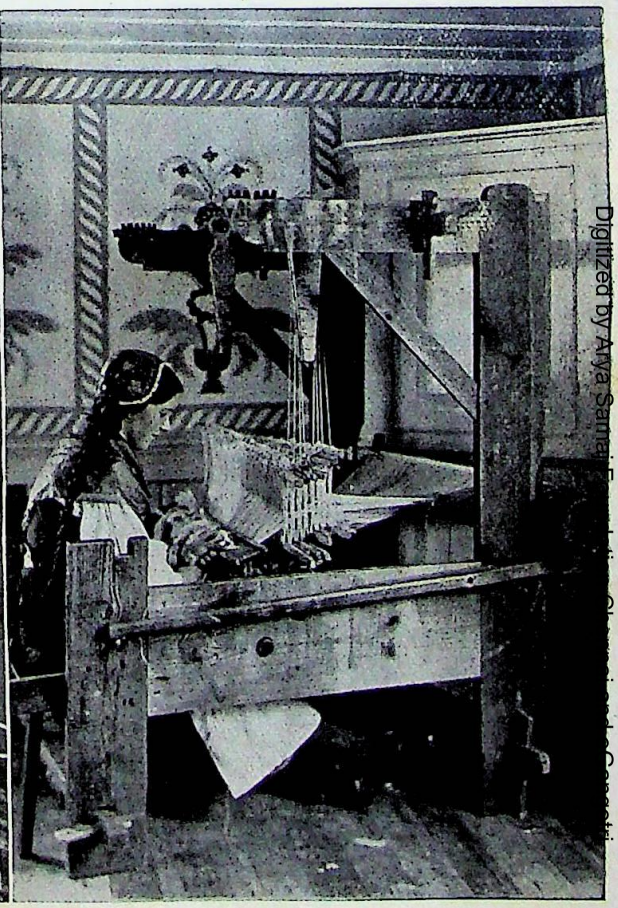

डलेकार्लिया प्रान्तमें बुनाईका स्कूल

(देखिये पृष्ठ ८६६)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

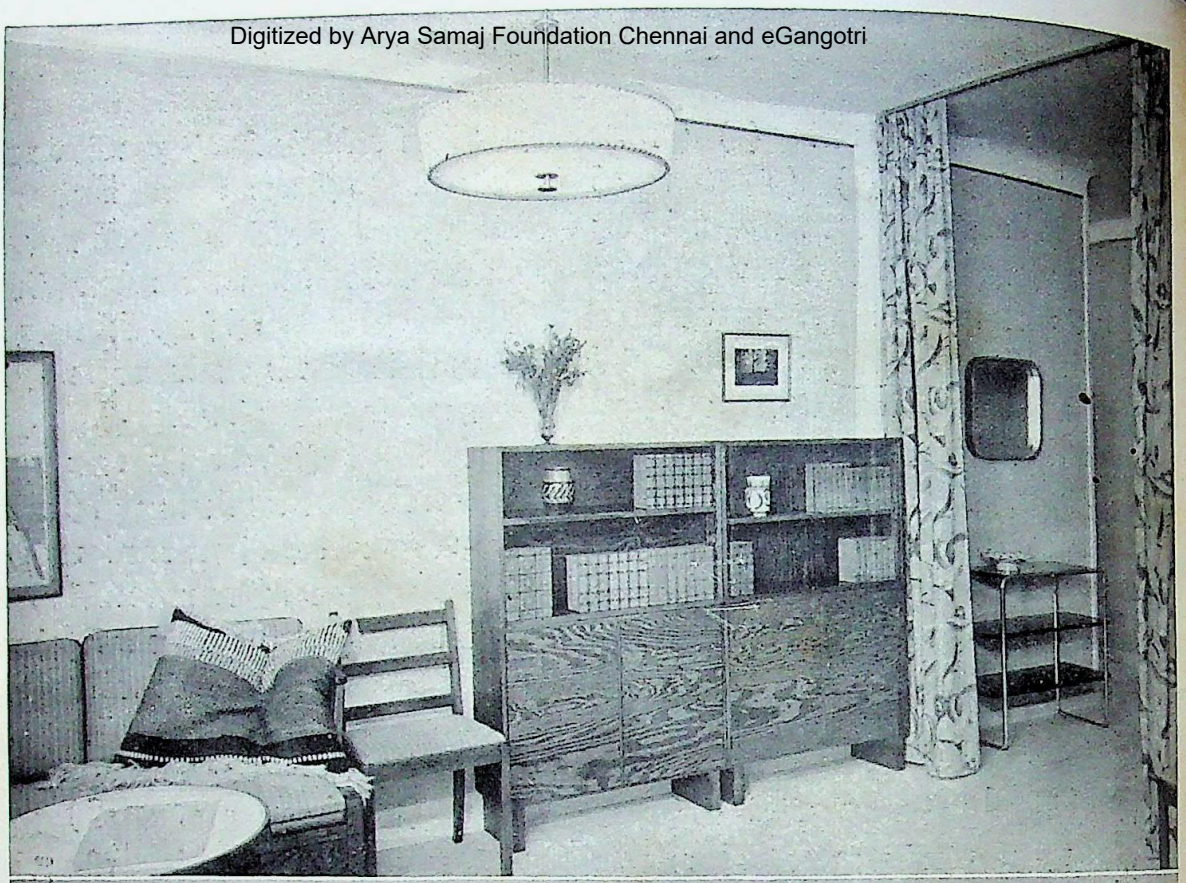

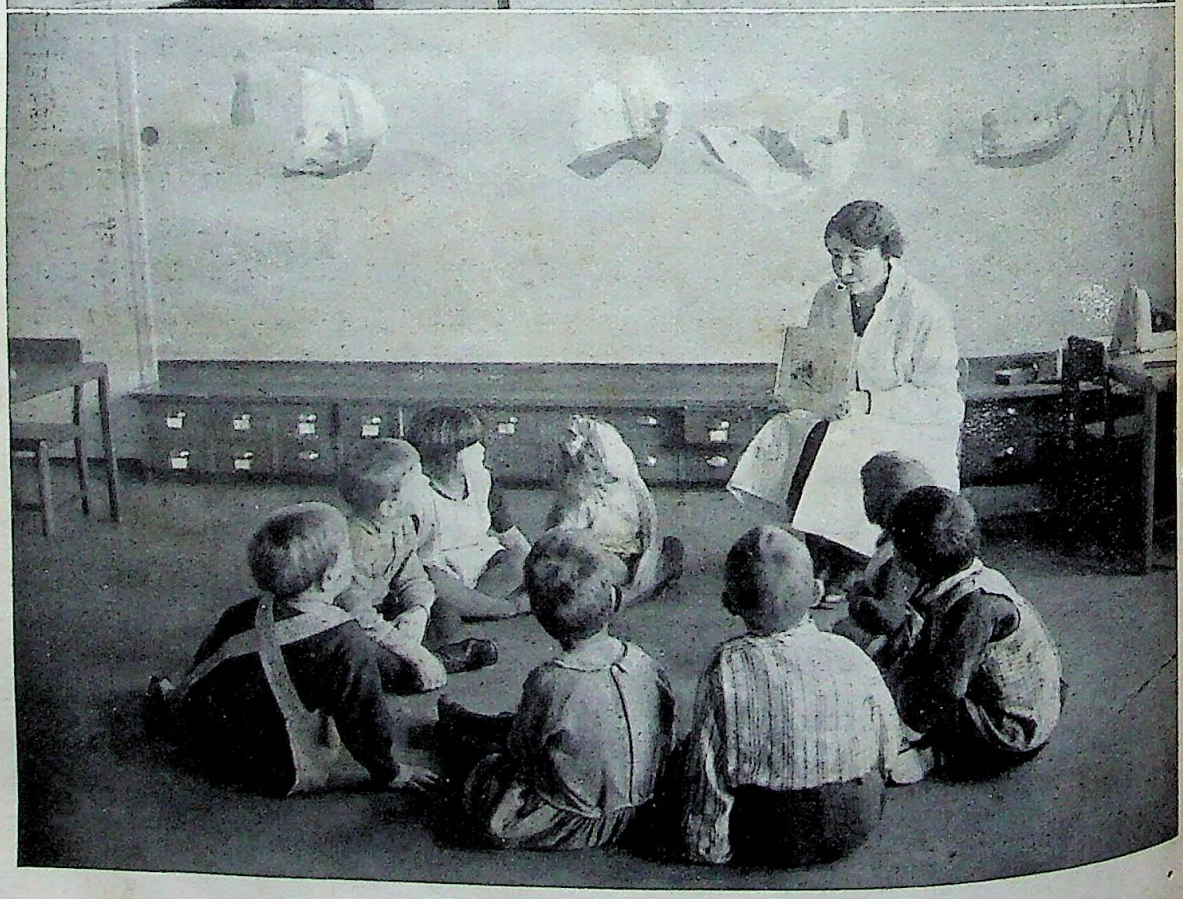

ऊपर—'भाड़ेदारोंके फर्नीचरकी दूकान' से लिया हुआ एक फ्लेटका फर्नीचर

नीचे—सहयोगी समितिकी इमारतमें बच्चोंका किंडरगार्टन स्कूल। शिक्षिका बच्चोंको कहानी सुना रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयन

संस्कृत-साहित्यमें क्या है ?

[काशी-विद्यापीठकी त्रैमासिक पत्रिका 'विद्यापीठ' भाग ४, अंक २-३ में शास्त्राचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीका एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध छपा है, जिसका शीर्षक है—"संस्कृत-साहित्यमें क्या है ?" लेख अत्यन्त उपयोगी और पठनीय है। पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि उस लेखको वे अवश्य पढ़ें। यहाँ उस लेखके अनेक अंश उद्धृत किये जाते हैं। — सं०]

संस्कृतमें लिखे हुए ग्रन्थ

सन् १८४० में एलफिन्स्टन नामक यूरोपियन पंडितने हिसाब लगाकर देखा था कि संस्कृत-साहित्यमें जितने ग्रन्थ विद्यमान हैं, उनकी संख्या ग्रीक और लैटिनमें लिखे हुए ग्रन्थोंकी मिली हुई संख्यासे कहीं अधिक है। मगर उस समय तक संस्कृतके बहुत कम ग्रन्थ पाये गये थे। इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि सन् १८३० में फ्रेडरिश जैसे साहित्यान्वेषीको केवल साढ़े तीन सौ संस्कृत-ग्रन्थोंका पता था, और सन् १८५२ में वेबरने अपने संस्कृत-साहित्यके इतिहासमें जिन ग्रन्थोंकी चर्चा की थी, उन सबकी संख्या ५०० के ही आसपास थी। बादमें वेबरकी संगृहीत पुस्तकोंकी संख्या १६०० हो गई थी। यदि १८४० में ही एलफिन्स्टनकी बात ठीक थी, तो आज तो कहना ही क्या है। सन् १८९१ में थियोडोर आफ्रेस्टने 'कैटलॉगस कैटलागोरम' नामकी सूची तैयार की। इसमें उस समय तकके पाये गये समस्त संस्कृत-ग्रन्थोंका नाम था। इसमें वर्णित ग्रन्थोंकी संख्या ३२ हज़ारके आसपास थी। और सन् १९१६ में महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्रीने, जिन्हें नेपालसे बहुत-सी अज्ञात पुस्तकोंको प्रकाशमें ले आनेका श्रेय प्राप्त है, ४० हज़ारसे ऊपर संस्कृत-ग्रन्थोंकी चर्चा की थी। आज यह संख्या इससे भी कहीं ज़्यादा है।

इन ग्रन्थोंका वर्गीकरण

विन्टरनित्सने लिखा है कि 'लिटरेचर' (साहित्य) शब्द अपने व्यापक अर्थमें जो-कुछ भी सूचित कर सकता है, वह सब संस्कृतमें वर्तमान है। धार्मिक और ऐहिकता-परक (सेक्यूलर) रचनाएँ, महाकाव्य, लिरिक, नाटकीय और नीति-सम्बन्धी कविता, वर्णनात्मक, अलंकृत और वैज्ञानिक गद्य, सब-कुछ इसमें भरा पड़ा है। साधारणतः निम्न-लिखित कई अंशोंमें विभक्त कर लेनेपर इस साहित्यकी चर्चा सुगम होगी :—

(१) वैदिक साहित्य। (२) वेदाङ्ग-साहित्य, जिसमें शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्दःशास्त्र और ज्योतिष सम्मिलित हैं। (३) पुराण और इतिहास। (४) धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र। (५) दर्शन। (६) संस्कृतका बौद्ध साहित्य। (७) आयुर्वेद और अन्य उपवेद। (८) अलंकृत काव्य, गद्य, नाटक, चम्पू और कहानियाँ। (९) नाटक और काव्यके विवेचनात्मक ग्रन्थ। (१०) संकीर्ण काव्य, धर्म और दर्शनपर टीकाएँ। (११) निबंध। (१२) तंत्र-ग्रंथ और भक्ति-साहित्य। (१३) पत्थरों और ताम्रपत्रोंका साहित्य।

वैदिक साहित्य

(१००० ई० पू० तक)

चारों वेदोंके नाम सर्व-विदित हैं। इनमें सामवेद और यजुर्वेदका ज़्यादा सम्बन्ध तो यज्ञोंसे ही है ; लेकिन ऋग्वेद और अथर्ववेद नाना दृष्टियोंसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। ऋग्वेदकी ऋचाएँ कब बनी थीं, इस विषयमें नाना मुनियोंके नाना मत हैं ; पर इतना निर्विवाद है कि सन् ई० से डेढ़ हज़ार वर्ष पहले ये ऋचाएँ बन चुकी थीं। इनकी भाषा एक-सी नहीं है, कहीं-कहीं उसमें अत्यन्त प्राचीनताके चिह्न हैं और कहीं-कहीं अपेक्षाकृत कम प्राचीनताके। कुछ पंडितोंकी रायमें सामवेद और अथर्ववेदके अनेक मंत्र ऋग्वेदसे भी बहुत पुराने हैं। अथर्ववेदमें ऐसे बहुत तरहके लोक-प्रचलित टोटकोंका संग्रह है, जो आश्चर्यजनक रूपमें जर्मनी और पोलैण्डमें प्रचलित प्राचीन युगके टोटकोंसे मिल जाते हैं। वेदोंके जो भाष्य इस समय मिलते हैं, वे अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। सायण और मध्वके प्रसिद्ध भाष्य चौदहवीं सदीमें लिखे गये थे। बंगालमें प्रचलित नगुदभाष्य १० वीं सदीकी रचना है। आलोचनात्मक दृष्टिसे देखनेवाले पंडितोंने बताया है कि ये भाष्य अपेक्षाकृत आधुनिक परंपराओंपर आश्रित हैं, इसीलिए कभी मन्त्रोंके यथार्थ भावको नहीं बताते। फिर भी, जैसा कि मैक्समूलरने कहा है, यह तो मानना ही पड़ेगा कि सायणका भाष्य अन्धेकी लकड़ी है। यूरोपियन पंडितोंके सत्प्रयत्नसे इन प्राचीन मन्त्रोंके समझनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक द्वार उद्घाटित हुए हैं। जेन्दावेस्ताके पाये जानेके बादसे इस अध्ययनको और भी बल मिला है। इसके अतिरिक्त असीरिया, मिस्र और बैबिलोनियामें आविष्कृत प्राचीन भग्नावशेषों, पौराणिक कथाओं तथा अन्यान्य बातोंने इस दिशामें बड़ी सहायता पहुँचाई है।

वैदिक साहित्यको पंडितोंने तीन भागोंमें विभक्त किया है। मूल संहिता, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, ब्राह्मण और उपनिषद्। ब्राह्मण गद्यमें लिखे गये हैं, और इनमें कर्मकाण्डकी ही प्रधानता है।·····ब्राह्मणोंके अन्तमें दार्शनिक अध्यायोंके रूपमें आरण्यक और उपनिषद हैं। इनमें आध्यात्मिक बातोंका बड़ा गम्भीर विवेचन किया गया है। भारतवर्षके सभी दार्शनिक सम्प्रदाय (बौद्धों और जैनोंको छोड़कर) इन उपनिषदोंमें ही अपना आदि अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

वेदाङ्ग-साहित्य

(ई० पू० १०००—४०० ई० तक)

वैदिक साहित्य काफी बड़ा हो चुका था। उसकी वैज्ञानिक छान-बीन भी आरम्भ हो गई थी। वेदाङ्ग-युगमें इन्हीं प्रयत्नोंका संग्रह हुआ। उन दिनों पढ़ने-पढ़ानेके लिए कण्ठस्थ करना निहायत ज़रूरी था, इसीलिए इस युगमें सूत्ररूपसे बातें लिखी गईं।···छठीं शताब्दीसे लेकर आज तक इन सूत्रोंको आश्रय करके एक विशाल साहित्यका निर्माण हुआ है। बादकी बनी स्मृतियों, टीकाओं, भाष्यों और निबन्धोंमें इस साहित्यका प्रचुर प्रसार हुआ है। स्मृतियाँ जो प्रधानतः धर्मसूत्र तथा अंशतः श्रौत और गृह्यसूत्रोंके आधारपर लिखी गई थीं, कुछ तो बहुत पुरानी हैं और कुछ बहुत नई।

व्याकरणके सबसे प्रसिद्ध आचार्य पाणिनिका समय निश्चित रूपसे ई० पूर्वकी चौथी शताब्दीसे पहले था। इनकी लिखी अष्टाध्यायीकी महिमा इस देशमें अब भी प्रतिष्ठित है। कहते हैं कि संसारमें इतना परिपूर्ण व्याकरण अब तक नहीं लिखा गया। अष्टाध्यायीमें ३८६३ सूत्र हैं, इनपर कात्यायनका शोधन और परिवर्द्धन सम्बन्धी वार्तिक हैं। सूत्र और वार्तिकोंकी मिली हुई संख्या ५१०० से भी ऊपर है। इन दोनोंपर पतञ्जलिने लगभग १५० ई० पू० में अपना प्रसिद्ध महाभाष्य लिखा था।··· पाणिनिके बाद उन्हींकी शैली और प्रतिपादित अर्थोंके सम्बन्धमें कई अन्य व्याकरण लिखे गये थे। इनमें से प्रसिद्ध ये हैं— (१) कलाप (द्वितीय शताब्दी), (२) चन्द्र (षष्ठ शताब्दी), (३) संक्षिप्त सार (नवम शताब्दी), (४) सारस्वत (एकादश शताब्दी), (५) मुग्धबोध (१३ वीं शताब्दी), (६) सुपद्म (१४वीं शताब्दी), (७) हेमचन्द्र (१२वीं शताब्दी), (८) जितेन्द्र (८वीं शताब्दी)। आजकल पाणिनिके सम्बन्धमें सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ भट्टोजिदीक्षितकी सिद्धान्त कौमुदी है।

छन्दःशास्त्रका सबसे प्राचीन ग्रंथ पिंगल छन्दःसूत्र है। वेदांगोंमें ज्योतिष एक महत्त्वपूर्ण विषय है। वेदांगज्योतिष नामक लगध मुनिका प्रणीत ग्रंथ उपलब्ध हुआ है। इसके दो रूप हैं, ऋग्वेदका वेदांग और यजुर्वेदका वेदांग। दोनोंमें बहुत थोड़ा अन्तर है। इनमें सब मिलाकर ४५ श्लोक हैं। आर्यभट, लल्ल, वराह, ब्रह्मगुप्त युञ्जाल और भास्कराचार्यने गणित ज्योतिषको अभिनव समृद्धिसे समृद्ध किया था। अत्यन्त आधुनिक कालमें भी संस्कृतमें ज्योतिषके ग्रन्थ बराबर लिखे जाते रहे हैं।

पुराण इतिहास

(ई० पू० ६००—४०० ई० तक)

पुराण और इतिहासका अधिकांश अनुष्टुभ् छन्दमें लिखा गया है। कहते हैं कि महाभारत और रामायण सन् ईसवीसे लगभग पाँच सौ वर्ष पहले लिखे गये थे। महाभारत परम्परा-समागत इतिहासोंका संग्रह था और रामायण परम्परासे प्राप्त काव्य या एपिक था। लेकिन इन दोनों ग्रन्थोंको हम जिस रूपमें आज पाते हैं, वह उतना पुराना नहीं है। समय-समयपर इनमें परिवर्तन होता रहा है। महाभारत प्रधानतः तीन रूपोंमें उपलब्ध होता है। उत्तर-भारतमें उसका एक रूप है, दक्षिण-भारतमें दूसरा और मलाबारमें तीसरा। तीसरा महाभारत, विद्वानोंकी रायमें, ई० पूर्वकी दूसरी शताब्दीमें पूर्ण हो गया था। उत्तर और दक्षिणके महाभारतोंमें बहुत-सा प्रक्षेप है। रामायण भी पूर्वी भारतमें एक तरहका है, मध्य-भारतमें दूसरी तरहका और पश्चिमी भारतमें तीसरी तरहका।

पुराणोंकी संख्या इस देशमें कितनी है, यह बताना कठिन है। साधारणतः १८ महापुराण और इतने ही उपपुराणोंकी प्रधानता है, फिर भी पुराण नामसे प्रचलित ग्रन्थोंकी संख्या सौसे भी ऊपर है। पुराण कब बने थे, यह कहना बड़ा मुश्किल है। सभी पुराण एक ही समयमें नहीं बने। पर्जिटर जो इस विषयके वैज्ञानिक विवेचक माने जाते हैं, कुछ पुराणोंको सन् ईसवीके पूर्ववर्ती माननेमें नहीं हिचकते।···कुछ भी क्यों न हो, म० म० हरप्रसाद शास्त्रीका यह कहना बिलकुल ठीक है कि सन् ई० की पाँचवीं शताब्दीमें पुराण तैयार हो चुके थे, यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादमें भी उनमें प्रक्षेप होता रहा है। इन पुराणोंमें भारतीय धर्ममत, इतिहास और साधनाके अध्ययनकी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। पौराणिक साहित्य बहुत बड़ा और मूल्यवान् साहित्य है। जैनोंके भी बहुतसे पुराण लिखे गये, जो अधिकांशमें ब्राह्मणोंके पुराणोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें उन्हींकी नकलपर हैं।

दर्शन

(सन् ई० २०० से ८०० ई० तक)

भारतीय दर्शनोंके मूलमें वेद और उपनिषद् हैं। जैन और बौद्ध दर्शन भी जो अपनेको वैदिक सम्प्रदायका प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं, इनसे प्रभावित हुए थे। हाल होमें विश्वास किया जाने लगा है कि अध्यात्मवादका मूल उत्स भारतवर्षकी आर्येतर जातियाँ थीं। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि जिस रूपमें आज हम भारतीय दर्शनको पाते हैं, उसकी प्रेरणा वेदोंसे प्राप्त हुई थी। दर्शन छः माने जाते हैं, यद्यपि चौदहवीं शताब्दीमें मध्वाचार्यने १६ दर्शनोंका उल्लेख किया था। छः मुख्य दर्शनोंके नाम इस प्रकार हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त)। ये दर्शन सूत्ररूपमें लिखे गये थे, और इनको समझनेके लिए भाष्योंकी बड़ी ज़रूरत थी।

इन आस्तिक दर्शनोंके सिवा ऐसे दर्शन भी हैं, जिन्हें नास्तिक कहते थे। ये दर्शन न तो वेदोंमें ही विश्वास करते थे और न आत्मामें ही। चार्वाक इनमें बहुत प्रसिद्ध हैं। पर इनके ग्रन्थ सम्पूर्ण रूपसे लुप्त हो गये हैं। इसके सिवा जैनोंके दर्शनका विशाल साहित्य है। जैन न्याय भारतीय दर्शनोंमें अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस दर्शनकी उत्तम पुस्तकें दूसरोसे छठी शताब्दी तक लिखी गई थीं।

संस्कृतका बौद्ध साहित्य

(सन् २०० ई०—८०० ई०)

बौद्ध आचार्योंने संस्कृतमें और भी बहुतसे ग्रन्थ लिखे। खासकर इनके दर्शन और तर्क शास्त्रके ग्रन्थ बहुत उच्चकोटिके थे। दुर्भाग्यवश बौद्धधर्मके इस देशमें लोप होनेके साथ ही साथ इन ग्रन्थोंका भी लोप हो गया। अब तक इस मतके जो-कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, वे मध्य एशिया, तिब्बत और नेपालमें पाये गये हैं। तिब्बती चीनी आदि भाषाओंमें इन ग्रन्थोंके अनुवाद विद्यमान हैं। म० म० पंडित विधुशेखर शास्त्रीने इन अनुवादोंके आधारपर कई मूल ग्रन्थोंका उद्धार किया है। इधर हालमें ही सुना है कि महापंडित राहुल सांकृत्यायनने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तिब्बतमें पाये हैं।

आयुर्वेद और अन्य उपवेद

चारो वेदोंके चार उपवेद हैं। इनका नाम है आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और शिल्पवेद या विश्वकर्म-शास्त्र। चौथा उपवेद किसी-किसीके मतसे तन्त्र है। चरक और सुश्रुतकी संहिताओंके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ वाग्भटका अष्टाङ्गहृदय है। इन तीनोंको आयुर्वेद बृहत्त्रयी कहते हैं। बादमें इस शास्त्रपर असंख्य ग्रन्थ लिखे और अब तक लिखे जा रहे हैं। इन ग्रन्थोंमें से कईका तिब्बती अनुवाद सुरक्षित है, जो मूल संस्कृतमें खो गये माने जाते हैं। आधुनिक कालमें म० म० गणनाथ सेनका 'प्रत्यक्ष शारीरम्' आयुर्वेदिक साहित्यका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

अलंकृत काव्य, गद्य, नाटक, चम्पू और कहानियाँ

सन् ईसवीके आरम्भ तक संस्कृतमें कविता या तो धार्मिक उद्देश्यसे लिखी जाती थी या आध्यात्मिक उद्देश्यसे। (विण्टरनित्सका खयाल है कि बहुत प्राचीन युगमें ऐसी कविता भी ज़रूर लिखी जाती थी, जिसका उद्देश्य केवल रस-सृष्टि था। नल-दमयन्तीका उपाख्यान एक ऐसा ही काव्य है, जो बादमें महाभारतमें अन्तर्भुक्त हो गया।) पर बादमें बात ऐसी नहीं रही। सन् ईसवीके आसपास कविता केवल रस-सृष्टिके उद्देश्यसे लिखी जाने लगी, और इस क्षेत्रमें संस्कृतके कवियोंने कमाल किया। कालिदासके अमर काव्य रस-जगतकी अनमोल सम्पत्ति हैं। बादमें माघ, भारवि और श्रीहर्षकी मनोहारिणी रचनाओंने संस्कृत-साहित्यको अधिक समृद्ध किया है। सैकड़ों कवियोंके प्रबन्ध काव्यों और उद्भट रचनाओंसे संस्कृतका साहित्य बेजोड़ हो गया है।

पद्यमय काव्यके साथ ही गद्यमय काव्यका भी संस्कृतमें विकास होने लगा था। इतना कलामय और 'रिद्मिक' गद्य संसारकी और किसी भाषाने नहीं पैदा किया। वसुबन्धुकी वासवदत्ता और बाणभट्टकी कादम्बरी अपने ढंगकी अनोखी रचनाएँ हैं। गद्य और पद्यके मिलाये हुए रूपमें एक और तरहकी रचना भी संस्कृत-साहित्यकी एक विशेषता है। इसे चम्पू कहते हैं। गद्यका एक दूसरा रूप पंचतन्त्र आदि कहानियोंके रूपमें पाया जाता है। वेनिफीने पहले-पहल पंचतन्त्रकी कहानियोंका अनुवाद करके यूरोपियन कहानियोंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना की। उन्हें इस निष्कर्षपर पहुँचना पड़ा कि संसारकी कहानियोंका मूल भारतवर्ष ही है। वस्तुतः पंचतन्त्रकी कहानियोंने संसारकी सारी भाषाओंके साहित्यको आश्चर्यजनक रूपमें प्रभावित किया है। पंचतन्त्रका माहात्म्य सारे संसारमें प्रतिष्ठित हो गया है। वेनिफीके प्रयत्नसे एक नये शास्त्रका ही जन्म हुआ, जिसे कहानियोंकी आलोचनाका तुलनात्मक साहित्य कहा जाता है। गुणाढ्यने लगभग दो हज़ार वर्ष पहले पैशाची प्राकृतमें बृहत्कथा नामक कथाका ग्रन्थ लिखा था। यह मूल ग्रन्थ खो गया है; पर उसके संस्कृत रूपान्तर, जिनमें कथा सरित्सागर, बृहत्कथा-मंजरी, बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह आदि मुख्य हैं, पाये जाते हैं। इन कहानियोंका आश्रय करके संस्कृतमें अनेक कथा-ग्रन्थ लिखे गये हैं।

नाटक भी संस्कृतके कवियोंकी अपनी विशेषता है। ये ग्रीक नाटकोंके अनुकरण नहीं हैं। प्रो० सिलवाँ लेवीने कहा है कि भारतीय प्रतिभाने एक नई चीज़को पैदा किया है, जिसे सूत्र रूपमें 'रस' कहा जा सकता है। अर्थात् भारतीय नाटककार अभिहित नहीं करता, व्यंग्य करता है। शूद्रकका मृच्छकटिक यूरोपियन दृष्टिसे भी एक सफल नाटक है। इसकी रचना सन् ईसवीकी तीसरी शताब्दीमें हुई थी।.....मध्य-एशियासे कुछ बौद्ध नाटकोंका भी उद्धार हुआ है। फिर कालिदासके नाटक हैं, जिनमें से एक अभिज्ञान शाकुन्तलम् सम्पूर्ण जगतका हृदय-हार बन सका है। भवभूतिका उत्तरचरित भी समान रूपसे समादृत हुआ है। श्रीहर्षकी रत्नावली भारतीय आलोचकोंकी टेकनिककी दृष्टिसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मुद्राराक्षस और वेणी-संहार अपने-अपने ढंगकी अनोखी रचनाएँ हैं।

नाटक और काव्यके विवेचनात्मक ग्रन्थ

नाटक और नाट्यकला सम्बन्धी आलोचना इस देशमें बहुत पुरानी है। कुछ पंडितोंकी रायमें यह वेदोंसे भी बहुत पुरानी है। सन् ईसवीके बहुत पूर्व अनेक नाट्य-सूत्र रचे जा चुके थे। इनमें केवल नाटकोंका ही विवेचन नहीं था, रस, अलंकार, संगीत, अभिनय आदि काव्य-सम्बन्धी सभी विषयोंका समावेश था।...वामन, रुय्यक, राजशेखर आदि अनेक आचार्योंने अपने-अपने विशेष काव्य-सिद्धान्तके प्रतिपादनात्मक अलंकार ग्रन्थ लिखे। अन्तमें आनन्दवर्धनने अपने ध्वन्यालोकमें अत्यन्त विद्वत्ताके साथ इस बातका प्रतिपादन किया कि ध्वनि ही काव्यकी आत्मा है। रस सर्वोत्तम ध्वनि है। आनन्द-वर्धनके मतको सर्वाधिक बल अभिनवगुप्त-जैसे प्रतिभाशाली टीकाकारसे मिला। फिर नाना सिद्धान्तोंपर गम्भीर विवेचना करके मम्मटने ईसाकी दसवीं शताब्दीमें काव्य-प्रकाश लिखा, जो इस विषयका सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है। मम्मटके बाद उल्लेख-योग्य आचार्य साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ और रसगंगा-धरकार जगन्नाथ हुए। पंडितराज जगन्नाथ स्वयं अच्छे कवि थे। उनके विषयमें कहा जा सकता है कि वे आलोचकोंमें सबसे बड़े कवि और कवियोंमें सबसे बड़े आलोचक थे।

संकीर्णकाव्य, धर्म और दर्शनपर टीकाएँ

(८००—१४०० ई०)

काव्यके अपकर्ष कालमें भी संस्कृत-साहित्यमें अच्छी कविताकी कमी न थी; पर इन कविताओंमें ज़्यादातर कृत्रिम वाक्य-विन्यास और दरबारीपन आ गया था। इस कालमें कुछ जीवन-चरित, ऐतिहासिक प्रबन्ध आदि लिखे गये। जैन आचार्योंने कई उल्लेख-योग्य ऐतिहासिक प्रबन्ध लिखे। पर इस युगकी सबसे बड़ी विशेषता है धर्मशास्त्रोंकी टीकाएँ। ये टीकाएँ कभी-कभी विराट् मौलिक ग्रन्थ हुआ करती थीं। टीकापन इनमें नाममात्रको ही रहता था। भाष्यकारोंकी भाँति ये टीकाकार भी असाधारण प्रतिभाशाली पंडित थे। संस्कृत-साहित्यका अधिकांश पांडित्य इन टीकाकारोंके ही हाथ रक्षित हुआ है।

निबन्ध

राजा भोज एक तरहसे अन्तिम हिन्दू संरक्षक थे, जिन्होंने केवल विद्वानोंको आश्रय ही नहीं दिया, नये सिरेसे ग्रन्थ भी लिखे। इन्होंने ज्योतिष, तन्त्र और स्मृति-ग्रन्थ लिखे। बादमें मुसलमानी शासनके प्रभावसे मौलिक ग्रन्थोंकी वृद्धि रुक गई। इसी समय बड़े निबन्ध लिखे गये, जिनमें शत-शत प्रमाणिक ग्रन्थोंके मतोंकी आलोचना करके शास्त्रीय व्यवस्थाओंका निर्देश होता था।

तंत्र-ग्रंथ और भक्ति-साहित्य

म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्रीका विश्वास है कि तंत्र सातवीं शताब्दीमें भारतमें आये। उसी समय नाथ-सम्प्रदायका प्रादुर्भाव था, और इनके प्रधान अचार्यों, मीननाथ, गोरक्षनाथने इसके सम्बन्धमें अनेक ग्रन्थ लिखे थे। किन्तु ऐसे अनेक पंडित हैं, जो इस मतमें सन्देह करते हैं, और विश्वास करते हैं कि अज्ञात कालसे यह मत इस देशमें वर्तमान है। हाल ही में स्वर्गीय श्री वुडरफके तत्त्वावधानमें इंग्लैण्डमें तंत्र-सोसायटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित हुई थी, जिसने तंत्रके अनेक प्राचीन ग्रन्थोंको प्रकाशित किया है। तंत्रोंके सम्बन्धमें अभी विशेष कार्य नहीं हुआ है; लेकिन सैकड़ों तंत्रकी पुस्तकें विभिन्न पुस्तकालयोंमें सुरक्षित हैं। तंत्रोंका बनना उन्नीसवीं सदी तक जारी रहा है।

पत्थरों और ताम्रपत्रोंका साहित्य

संस्कृत-साहित्यका एक बहुत बड़ा हिस्सा पुस्तकोंके बाहर शिलाओं, पर्वतपृष्ठों, मन्दिरों और ताम्रपत्रोंपर बिखरा हुआ है। सबसे पुरानी लिपियाँ ईसवी सनसे भी पुरानी हैं। इन्हें महाराज अशोकने लिखवाया था; परन्तु ये पालीमें हैं। संस्कृतकी लिपियाँ इसके बाद मिलती हैं। इन लेखोंसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अनुसन्धान हुए हैं। महाक्षत्रप रुद्रदामनका खुदवाया हुआ गिरनारका शिलालेख (१५० ई०) गद्यकाव्यका एक उत्तम नमूना है। इसमें अलंकारोंका उपयोग ही नहीं है, अलंकारशास्त्रका उल्लेख भी है। जब तक यूरोपियन पंडितोंने इधर ध्यान नहीं दिया था, साहित्यका यह अंग उपेक्षित और अज्ञात पड़ा हुआ था। पर आज, यद्यपि ये अब भी सम्पूर्णतः उद्धृत नहीं हुए हैं, कोई भी संस्कृतका पंडित इनको जाने बिना अपनेको पूर्ण नहीं समझ सकता। इन विशाल लेखोंका संग्रह बीसियों जिल्दोंमें हुआ है और होता जा रहा है।

फुटकर विषय

संस्कृत-साहित्यके अनेक अंगोंपर इस प्रबन्धमें कुछ भी नहीं कहा गया है। इसमें शिल्पशास्त्र है, वास्तु-विज्ञान है, क्रीड़ा-परक ग्रन्थ हैं, नाचने और गानेकी विद्या है, पशुओं और पक्षियोंके स्वभाव और पालन-पोषण विद्या है, सामुद्रिक शास्त्र है, अरबी और फारसी विद्याओंका अनुवाद है, व्यवहार-शास्त्र हैं, नीति-ग्रन्थ हैं और सबके ऊपर सुभाषितोंका अतुलनीय भाण्डार है। अनेक विषयोंपर ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं, क्वचित् कदाचित् ये मिलते रहते हैं और प्रकाशित भी किये जाते हैं; पर अधिकांश विषयोंके ग्रन्थ नाम-शेष रह गये हैं और उनका परिचय अन्यान्य ग्रन्थोंके उद्धरणोंसे मिला करता है। इसके अतिरिक्त पाली, प्राकृत और अपभ्रंशका समूचा साहित्य किसी न किसी रूपमें संस्कृतको आश्रय करके गठित हुआ था।

अन्तिम बात

जिस भाषाके ग्रन्थोंकी संख्या, अधिकांश नष्ट हो जानेपर भी, आधे लाखसे ऊपर चली गई है—और इन ग्रन्थोंमें से सैकड़ों ऐसे हैं, जो दस हज़ार या उससे भी अधिक, कभी लाख लाख, श्लोकोंसे बने हैं—जिस भाषाके साहित्यकी रचना कमसे कम ५ हज़ार वर्षोंसे अविच्छिन्न भावसे हो रही है, जिस भाषाके ग्रन्थोंकी रचना, पठन, पाठन और चिन्तनमें भारतवर्षके हज़ारों सर्वोत्तम मस्तिष्क सैकड़ों पुश्त तक लगे रहे हैं और आज भी बीसियों देशोंके सैकड़ों मनीषी जिस भाषाकी ओरसे नवीन प्रकाश पानेके लिए आखें बिछाये हुए हैं, उस भाषाके साहित्यका परिचय थोड़ेसे पृष्ठोंमें देना असम्भव है। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि हज़ारों वर्गमीलमें विस्तृत करोड़ोंकी वासभूमि इस महादेशकी हज़ारों वर्षकी निरन्तन साधनाका सर्वोत्कृष्ट सार इस भाषामें संचित है। संस्कृत-भाषा संसारकी अद्वितीय महिमा-शालिनी भाषा है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

—

एक आवश्यक प्रश्न

चाहे जिस पहलूसे देखा जाय, भारतमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता नहीं है। खेद तो इसका है कि जब तक दरिद्र लोग दुःख पाते हैं, तब तक प्रभावशाली सज्जनगणका ध्यान उस तरफ आकर्षित नहीं होता। यह समझ लिया जाता है कि वे ही कष्ट पाते हैं, जो उसके योग्य होते हैं। धनीके लिए तो सभी दरिद्र बदमाश हैं और सदा बन्दी रहनेके योग्य हैं, जब तक वे बिना शिकायत अपने स्वामीकी सेवा नहीं करते, या भोजन न रहनेसे चुपचाप मर नहीं जाते। जब प्रभावशाली वर्गोंके ही लोग अपनी इच्छासे ऐसी कार्रवाइयाँ करने लगे, जिससे अधिकारियोंसे संघर्ष हो गया और उनके साथ साधारण आदमियोंकी ही तरह बर्ताव होने लगा, तब उनके वर्गवालोंको भी ठेस पहुँची और उन्हें यह विचार होने लगा कि अनर्थ हो रहा है। पर शासनके सिद्धान्तमें कोई अन्तर नहीं पड़ा, केवल व्यक्तित्वमें अन्तर पड़ा। इस विषयपर पहुँचते ही हमें एक और आपत्तिपर विचार करना पड़ता है, जिसे वे लोग उपस्थित करते हैं, जो इस समय वैयक्तिक स्वतन्त्रताके आन्दोलनको पसन्द नहीं करते। उनका यह कहना है कि उग्र राजनीति हमें कम्यूनवाद अर्थात् रूसके साम्यवादकी ओर ले जा रही है, और इस खतरेसे जनताको बचाना बहुत आवश्यक है। कम्यूनवाद जनताके लिए इतना खतरनाक क्यों समझा जाता है, यह मेरी बुद्धिमें नहीं आया, यदि 'जनता' का अर्थ यह नहीं है कि जिस गरीहके हाथमें इस समय अधिकार-शक्ति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन-शक्ति है, वही 'जनता' है। इसपर दो प्रश्न उठते हैं—(१) जो लोग किसी प्रकारसे इस समय अधिकारके स्थानपर पहुँच गये हैं, क्या उन्हें ही सदाके लिए उस स्थानपर रखना संघटित समाजका प्रथम कर्तव्य है? और (२) जो पेशे इस समय क़ानूनी समझे जाते हैं, वे ही सदाके लिए समझे जायँगे और दूसरे सभी पेशे वर्ज्य रहेंगे? पहले तो जिस प्रकारसे आजके अधिकारी अपने पदपर पहुँचे हैं, उसकी यदि समीक्षा-परीक्षा की जाय, तो वह बहुत सत्यता, ईमानदारी और औचित्यका मार्ग नहीं माना जायगा। साथ ही क्या यह कहना ठीक होगा कि सामयिक अधिकार-प्राप्त लोग और उन्हींके उत्तराधिकारियोंके हाथमें सदाके लिए शासन-शक्ति रहनी चाहिए और उनके स्थानमें दूसरोंको बैठाना गर्हित कम्यूनवाद है?

इस समय हम उस आदमीको बहुत श्रेष्ठ मानते हैं, जो क़ानून अथवा व्यापारके पेशोंमें अपने मस्तिष्कका दुरुपयोग कर बड़ी धन-राशि एकत्र कर लेता है। क्या यह सम्भव नहीं है कि एक दिन समाज यह विचार करे कि अर्द्ध-रात्रिको ऊँची दीवारोंके पार जाकर कुछ पड़ी हुई चीज़ोंको ले लेना अधिक साहस और प्रशंसाका काम है, बनिस्बत इसके कि कोई अदालतों और व्यापार-केन्द्रोंमें अपने दिमागका अनुचित प्रयोगकर दिनके समय आरामसे बैठे हुए, दूसरोंके मान, स्वतन्त्रता, धन और अन्य ईप्सित पदार्थोंको लूटे? कुछ लोग ऐसा आज भी विचार करते हैं। सम्भव है, आगे चलकर बहुतसे लोग ऐसा विचार करने लगें। तब उन लोगोंको कैसा लगेगा, जो आज अधिकारके स्थानोंपर हैं, यदि वे जेलोंमें ठूँस दिये जायँ या अन्य प्रकारसे सताये जायँ? जिनकी हालत आज अच्छी नहीं है, वे यदि उन्नति करना चाहें, तो कौन-सा पाप कर रहे हैं? जो लोग आजके प्रचलित पेशोंमें अपने उदरपोषणके वास्ते काफी अवसर नहीं पाते, या प्रकृत्या उन्हें पसन्द नहीं करते, तो वे क्यों न दूसरे पेशोंकी तलाश करें? इसमें क्या अनौचित्य है कि कुछ लोग ऐसा विचार करें कि इस समयके समाज-संघटनका आधार पापमय है और संसारमें जितने लोग पैदा हों, उन सबसे उपयुक्त शारीरिक अथवा मानसिक काम लेकर उनके लिए उपयुक्त दाम और आरामका प्रबन्ध किया जाय। इस प्रश्नको पूछनेमें क्या दोष है कि क्यों सब मान, शक्ति, धन और आरामपर सदाके लिए उन्हीं थोड़े लोगोंका अनन्याधिकार समझा जाय जो इस समय किसी प्रकारसे श्रेष्ठ पदको प्राप्त कर सके हैं?

—श्रीप्रकाश

साहित्य और स्वाधीनता

मानव-समाज ही इति नहीं है। पशु-समाज, पक्षी-समाज, वनस्पति-समाज भी है। यही क्यों, सूर्य-नभ-ग्रह-तारा-मंडल भी है। यह सभी कुछ है, और सभी कुछकी ओर हमें बढ़ना है। मानव-समाजको स्वीकार करनेके लिए क्या शेष प्रकृतिको इनकार करना होगा? अथवा कि प्रकृतिमें तन्मयता पानेके लिए मनुष्य-सम्पर्कसे भागना पड़ेगा? दोनों बात ग़लत हैं। धर्म सम्मुखता है। हम उधर मुँह रखें अवश्य, जहाँ वह इन्सान है, जो परिश्रममें चूर-चूर हो रहा है, देहसे दुबला है और दूसरोंके समस्त अनादरका बोझ उठाये झुका हुआ चल रहा है। हम उधर देखें, जहाँ पुरुषको इसलिए कुचला जाता है कि दानव मोटा रहे। पीड़ित मानव-समाजकी ओर हम उन्मुख रहें, अपने सुखका आत्म-विसर्जन करें, उनकी वेदनामें साझा बटायें। यह सब तो हम करें ही, करेंगे ही। अन्यथा हमारे लिए मुक्ति कहाँ है; पर ध्यान रहे, मानव-समाजपर जगतका खात्मा नहीं है। उनसे आगे होकर भी सत्य है। वहाँ भी मनुष्यकी गति है, वहाँ भी मनुष्यको पहुँचना है। और इस जगहपर आकर मैं कहूँ कि अरे, जो चाँद-तारोंके गीत गाता है, उसे क्या वह गीत नहीं गाने दोगे? उन गीतोंमें संसारके गर्भसे ली गई वेदनाको अपने मनके साथ घनिष्ठ करके वह गायक गीतकी राह मुक्त कर दे रहा है। उसको क्या प्रस्तावसे और क़ानूनसे रोकोगे? रोको, पर यह शुभ नहीं है। अरे, उस कविको क्या कहोगे, जो आसमानको शून्य-दिगम्बर देखता है, कुछ क्षण उसमें लीन रहता है और उसी लीनताके परिणाममें सब वैभवका बोझ अपने सिरसे उतार कर स्वयं निरीह बन जाता है और मस्तीके गीत गाता है? कहे राजनीतिक उसे पागल, पर वह लोकहितैषी है। उसका प्रयोजन हिसाबकी बहीमें न आये; पर प्रयोजन उसमें है, और वह महान् है।

ज्ञान जाननेमें नहीं, वैसा बननेमें है। Knowing is becoming असली जानना पाना है। और पाना तद्रूप, तन्मय हो जाना है। हम मनुष्य-समाजकी सच्ची सेवा स्वयं सच्चा मनुष्य बनकर कर सकते हैं। और अहम्-शून्य हो जानेसे बड़ी सत्यता क्या है? कवि स्वयं एकाकी होता है, सम्पदासे विहीन होता है। वह स्वेच्छापूर्वक सबका दास होता है। स्नेहसे वह भीगा है, और अपनी नस-नसमें ग़रीब है। जब वह ऐसा है, तब उसके आगे साम्राज्यकी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिसात क्या है ? वह सब उसके लिए तमाशा है। उस कविसे तुम क्या चाहते हो ? क्या उससे सुधार चाहते हो ? क्या उससे प्रचार चाहते हो ? अरे, क्यों चाहते हो कि जिसके मनमें फ़कीरी समाई है, वह कुनबेदार बना रहकर बस श्रमिक वर्गकी भलाई चाहनेवाला साहित्य लिखे ? श्रमिक और मज़दूर वर्गको साइन्सके द्वारा, इज़्मके द्वारा, प्रस्तावके द्वारा नहीं जाना जायगा ; प्रेमके द्वारा उसे जानना होगा और प्रेमके द्वारा पाना होगा। और जब हम यह करने बढ़ेंगे, तो देखेंगे कि हमें उन्हीं-जैसा, बल्कि उनसे भी निरीह स्वयं बन जाना है। फिर हमें कहाँ फ़ुरसत रहेगी कि हम बहुत बातें करें ? अरे, वैसे फ़कीरकी फ़कीरी और इकतारा क्यों छीनते हो ? अगर वह नदीके तीरपर साँझके झुटपुटेमें अकेला बैठा कोई गीत गा रहा है, तो उसे गाने दो, छेड़ो मत। उसके इस गीतसे किसी मज़दूरका, किसी चरवाहेका बुरा न होगा। होगा तो कुछ भला ही हो जायगा। उसको उस निर्जनतासे उखाड़कर कोलाहलाकुल भीड़में बलात् बिठानेसे मत समझो कि तुम किसीका भला कर रहे हो।

व्यक्तिको वेदनाकी दुनिया पाने दो और पाकर उसे व्यक्त करने दो, जिससे कि लोगोंके छोटे-छोटे दिल क़ैदसे मुक्ति पायें और प्रेमसे भरकर वे अनन्त शून्यकी ओर उठें।

['हंस'] —जैनेन्द्रकुमार

तनिक विचारिये तो

श्रीराम शर्मा

क्रान्तिकारी विचार—कम-से-कम नवीन विचार, जो रूढ़ियोंपर डायनामाइटकी भाँति आक्रमण करते हैं, कठोर और कटु आलोचनाके प्रेरक होते हैं ; पर कोरी रूढ़ियोंपर आधारित विचार-दुर्गको गिरानेके लिए—नवीन गृह-निर्माणकी ख़ातिर—साफ़गोईकी आवश्यकता होती है। राजनीति, समाज-शास्त्र और शिल्प-कलामें यह बात भी नितान्त ठीक है कि जो लोग डायनामाइटमें आग लगाते हैं, रूढ़ियोंकी चट्टानोंको उड़ाते हैं, वे निर्माणकर्ता नहीं होते। कूड़ा-करकटों और चट्टानोंको उड़ाता कोई है और उनके स्थानमें परिस्थितिके अनुसार सुखद सदन कोई दूसरा ही बनाता है। राजनीतिमें दोनोंका समन्वय सम्भव है।

'विशाल भारत' के पिछले अंकोंमें मैंने दो छोटे लेख लिखे। एक तो था 'क्या गोबध रोका जा सकता है'? और दूसरा था 'बन्दरोंकी समस्या'। दोनों लेखोंको लेकर लोगोंमें काफ़ी उत्तेजना-सी फैल गई। अनेकोंने ज़बानी बातें कीं ; बहुतोंने पत्र भेजे ; और सुना है, एकआध पत्रने उन लेखोंकी चर्चा अपने स्तम्भोंमें भी की। इन पंक्तियोंके लेखकने तो 'भारत' और 'प्रताप' में उन लेखोंको उद्धृत ही देखा है। पटनेकी 'बिजली'ने हास्यपूर्ण या व्यंग्यात्मक कोई लेख 'बन्दरोंकी समस्या' पर लिखा है ; पर वह पढ़नेको नहीं मिला, इसलिए उसपर विचार ही नहीं किया जा सकता ; पर कुछ पत्र इतने महत्त्वपूर्ण हैं—इतनी सचाई, ईमानदारी और नेकनीयतीसे लिखे गये हैं कि उनपर विचार करना आवश्यक है। मैंने उन लेखोंपर और मूल प्रश्नपर फिर विचार किया ; पर अपनी राय बदलनेके लिए कोई भी कारण नहीं दिखाई पड़ता। उन लेखोंको मैंने संयत-भाषामें लिखा था और लिखनेमें इस बातका ख़याल रखा था कि किसीके कोमल हृदयपर चोट न लगे, यद्यपि दिमाग़पर चोट मारनेकी कोशिश अवश्य की गई थी। फिर उन साधारण लेखोंमें कौन-से क्रान्तिकारी विचार छिपे हैं ? वे खुली छुरियाँ तो हैं नहीं, जो कलेजोंपर फिरती हैं। हाँ, दिमाग़के कूड़ा-करकटको बुहारनेकी चेष्टा तो कोई ऐसी बुरी बात नहीं।

हाँ, तो एक महाशय लिखते हैं—"मैंने एक लेख 'विशाल भारत' जनवरी सन् १९३७ ई० पृष्ठ ३९ पर 'क्या गोबध रोका जा सकता है' पढ़ा। मैं उसे उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं समझता। कारण यह है कि चाहे यह सत्य ही हो कि भारतमें गोबध रोका न जा सके; परन्तु ऐसे शब्दोंका प्रकाश एक ऋषि-सन्तान ब्राह्मण-वंशधारीके कलमसे नहीं निकलना (होना!) चाहिए। क्या संसारमें जितने सत्य हैं, उनका कहना या लिखना आवश्यक है ? ऐसा नहीं है। बहुतसे सत्य हैं, जिनको हम ज़बानपर नहीं ला सकते। बहुतसे सत्य हैं, जो आवश्यकताके समय ही कहने पड़ते हैं। तब फिर इस सत्यकी ऐसी कोई वास्तविक आवश्यकता नहीं मालूम होती कि वह प्रकाशित किया ही जाय। फिर मैं तो इसको स्पष्ट सत्य भी माननेको तैयार नहीं हूँ। भारतकी अजीब अवस्था है। यदि भारतवर्षमें (अ) मसजिदोंके सामने बाजेका बजाना रोका जा सकता है और (ब) बाईस करोड़ मूर्ख और मूढ़ अत्याचारी हिन्दुओंके निवासपर भी स्वराज्यका स्वप्न देखा जा सकता है, तो मैं ज़ोरसे कहता हूँ कि भारतमें गोबध भी रोका जा सकता है; परन्तु कब ? जब उसके अनुयायी तदनुकूल आचरण स्वीकार करें। यदि नहीं, तो चुप रहना ही उचित है।

"आप स्वयं लिखते हैं—'पहला मुख्य कारण गोबधका है गोरोंकी खुराक और दूसरा है देशकी ग़रीबी।' तब स्पष्ट है कि यदि गोमांस खानेवाले गोरे और भारतकी ग़रीबी' * तब स्पष्ट है कि यदि गोमांस खानेवाले गोरे और भारतकी ग़रीबी दूर होनेके उद्योगका काम ही इसकी पूर्तिका उद्योग है, और उसके साथ ही यह भी पूरा होगा। इनमें कौन-सा सम्भव है और कौन-सा असम्भव, यह विचार साधारण नहीं है।"

'क्या गोबध रोका जा सकता है' शीर्षक लेखका अभिप्राय तो इस कठोर सत्यको प्रकट करना था कि जब तक लोग चमड़ेका बढ़ता प्रचार कम न करेंगे, ग़रीबी दूर न की जायगी, तब तक गोवंशकी उन्नति न होगी, दूध देनेवाली गायोंका कटना बन्द न होगा और तब तक गोबध नहीं रोका जा सकता। हाँ, यह बात 'प्रत्येक सत्यका कहना या लिखना आवश्यक नहीं। बहुतसे सत्य हैं, जो ज़ुबानपर नहीं ला सकते।'—हमें इस दलीलपर आपत्ति नहीं है; पर गोबधका प्रश्न ऐसा सत्य है, जिसपर हमें बोलना भी चाहिए और लिखना भी चाहिए, और वह इसलिए कि गोबध रोका जा सके। हम लोग अन्ध-भक्तिमें गायके प्रति बहुत ज़ुल्म ढाते हैं। हम दो-चार ऐसे गोभक्तोंको जानते हैं, जो गोपाष्टमी मनाते हैं, गायकी पूजा करते हैं और तबीयतसे गोभक्त हैं; पर बाजीकरण और ताक़तके लिए साँड़के अंडकोषों और बछड़ोंके दिमाग़के सतको विलायती औषधियोंमें खा जाते हैं। मसजिदों और मन्दिरोंके सामने चाहे बाजा बजना न रोका जा सके; पर हमारा विश्वास है कि गोबध क़ानूनन रोका जा सकता है। दूध देनेवाले जानवरोंका कटना तो क़ानूनन रोका ही जा सकता है। रही यह बात कि ग़रीबी और गोरोंके भोजनके लिए भी गोबध होता है, सो सोलहो आना ठीक है। गोबधके अनेक कारणोंमें देहातकी ग़रीबी भी है, और यह कठोर सत्य है कि ग़रीबीके दूर हुए बिना—और कारणोंके दूर होनेपर भी—गोबध रोका नहीं जा सकता। इस बातपर हमने मूल लेखमें काफ़ी प्रकाश डाला है।

अब रही यह बात कि भारतवर्षकी ग़रीबी कैसे दूर हो, उसके लिए हमारा गोल उत्तर है कि बिना स्वराज्यके ग़रीबी दूर नहीं हो सकती। ग़रीबी रोगके वाह्य उपचार भले ही हो जाय—थाम-थूम भले ही हो जाय—पर बिना स्वराज्यके ग़रीबी नहीं जायगी, नहीं जा सकती। वह तो परतन्त्रताके संग सती होगी। तो फिर 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी।' राधा नाचें, चाहे न नाचें। वे उछल-कूद भी करें; पर उनका 'लहाछेह' नृत्य तभी होगा, जब नौ मन तेल होगा—परतन्त्रता दूर होगी। स्वतन्त्रताकी यादमें आह्लादित होना कोरा स्वप्न नहीं है। भारतीय स्वतन्त्रता हँसती, थिरकती, युद्ध-भेरी बजाती चारों ओर निनाद कर रही है। तनिक ग़ौरसे देखनेकी ज़रूरत है।

* गोबधका एक और मुख्य कारण है चमड़ेका अधिक प्रयोग, इस बातपर भी उस लेखमें प्रकाश डाला गया है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्ञानगुणसागर'के वंशजोंके विषयमें हमने जो-कुछ कहा था—तर्कपूर्ण और न्यायपूर्ण बातें लिखी थीं—उनपर भिन्न-भिन्न प्रकारके मत हैं। एक साहित्य-सेवी बन्धुने कहा—"आज यदि स्व० शंकरजी होते तो आपके लेखकी दाद देते। उनका कहना था कि एक बन्दरके मारनेका पुण्य सौ गायोंके दान देनेके समान है।"

बन्दरोंके विषयमें स्व० 'शंकर'जीकी राय सुनकर हमारी श्रद्धा उनके प्रति और भी बढ़ गई, और वह इसलिए कि स्व० 'शंकर'जी कोरे चोटीके कवि, पंडित और वैद्य ही नहीं थे, वरन् देशकी परिस्थितिको समझनेवाले सुलझे हुए व्यक्ति थे, जिनके हृदयमें ग़रीबोंके लिए स्थान था।

राँचीसे एक कवि मित्र लिखते हैं—"बन्दरोंकी समस्यापर आखिर आपने लिख ही डाला। उस लेखने आपके कुछ प्रशंसकोंको भ्रममें डाल दिया है। वे आपको हिंसावादी और हिंसामें विश्वास रखनेवाले समझने लगे हैं।"

पवनसुतके कुटुम्बियोंका मैं आभारी हूँ कि उन्होंने मेरे प्रशंसकोंकी आँखें तो खोल दीं। मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ, जो अपने-आपको इस योग्य समझूँ कि लोग मुझमें श्रद्धा और भक्ति रखें। मैं हिंसावादी हूँ या अहिंसावादी, यह बात अप्रासंगिक है; पर तनिक मेरे दोस्त खेती करके देखें और वानर-क्रीड़ाके क्षेत्र बना दें अपने खेतोंको।

श्री खेतानजीने इस विषयमें एक पत्र 'विशाल भारत' सम्पादकको लिखा है, और सम्पादक महोदयने उसे हमारे पास भेज दिया है। खेतानजी लिखते है:—

"श्रद्धेय पंडितजी,

इस महीनेके 'विशाल भारत'की संख्यामें श्रीयुत श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित 'बन्दरोंकी समस्या' शीर्षक लेख पढ़कर मुझे गहरी वेदना पहुँची। शर्मा महोदय ग़रीब किसानोंकी दशासे द्रवित प्रतीत हैं; पर धूर्त बन्दरों द्वारा किये जानेवाले नाशको रोकनेके लिए वे कोई अन्य मानवतापूर्ण उपाय बता सकते थे। शर्माजीके पांडित्यका आदर करते हुए मैं यह बात कहनेका साहस करता हूँ कि ऐसी रचनाओंको आपके प्रतिष्ठित पत्रमें स्थान नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि उनसे पाठकोंकी कल्पनाशक्ति दूषित होती है। इस सम्बन्धमें आपके विचारोंके प्रकटीकरणके लिए प्रार्थना है। आज्ञाकारी—

गीनूलाल खेतान।"

खेतानजी इन पंक्तियोंके लेखकके पांडित्यका आदर न करें, क्योंकि उसमें पांडित्यका खाना खाली है। हाँ, इस बातको हम स्वीकार करते हैं कि उस लेखसे खेतानजीकी कोमल भावनाओंको ठेस लगी है; पर क्या किया जाय? इस गुलाम देशसे ऐसी अनेक रूढ़ियाँ उठानी हैं, जिनके मूलोच्छेद करनेमें हमें अपने प्रियजनोंके कोपका भाजन बनना पड़ेगा। रही मानवतापूर्ण उपायोंकी बात, सो उस लेखमें हमने प्रत्येक पाठकसे प्रार्थना की है कि कोई हमें मारनेके अतिरिक्त अन्य कोई ढंग बताये। जब तक हमें कोई सुगम और सरल उपाय बतानेको तैयार नहीं है, हम अपनी इस बातपर जमे रहेंगे कि किसानोंका उद्धार बन्दरोंसे तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि वे मारे न जायँ। इस विषयमें हम महात्माजीको भी लिख रहे हैं। खेतानजीसे हमारा कहना है कि वे थोड़ी देरके लिए अपने-आपको किसान समझ लें, मज़लूम किसानोंकी कोटिमें अपनेको रखें।

भावनाओंके हम क़ायल हैं। अहिंसामें हमारा विश्वास है; पर हमें जीवन-युद्ध भी करना पड़ता है। और फिर कोई आगे बढ़कर बानर-मुक्तिकी तरकीब बताये; हमारी समस्याकी पूर्ति करे। रही यह बात कि ऐसी रचनाको 'विशाल भारत' जैसे प्रतिष्ठित पत्रमें स्थान नहीं मिलना चाहिए, उसके लिए हमारा कहना है कि महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर कोई रचना न लेना सम्पादकीय शिष्टाचारके विरुद्ध बात है। और फिर 'विशाल भारत'पर 'ज्ञानगुनसागर' के कुटुम्बियोंके भक्तों और शत्रुओंका समान अधिकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नगरोंमें दूधकी समस्या

श्री एम० पी० केदार, आई० डी० डी०

नगर आधुनिक सभ्यताका एक चिह्न है। भारतवर्षमें भी लगातार नगरोंकी संख्या बढ़ रही हैं। नगरोंकी संख्यामें वृद्धि होनेके साथ ही उनमें मनुष्योंका निवास भी असाधारण तौरपर बढ़ रहा है। यह भी गनीमत है कि विज्ञानकी उन्नतिके साथ-साथ नगरोंकी अवस्था सुधारनेकी ओर भी उचित ध्यान दिया जा रहा है। अतएव इस देशमें भी छोटे-बड़े नगरोंमें आवश्यक परिवर्तनों द्वारा उन्हें उन्नत और आदर्श बनानेकी कोशिश की जाने लगी है। लम्बी-चौड़ी पक्की सड़कें बन रही हैं, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ और आकाशचुम्बी भवन तैयार हो रहे हैं, स्कूल और कालेज खुल रहे हैं, अस्पताल और डिस्पेन्सरियाँ स्थापित हो रही हैं, पानी और प्रकाशका अच्छा प्रबन्ध किया जा रहा है और विश्राम तथा भ्रमण आदिके लिए अनेक उद्यान और पार्क भी बनाये जा रहे हैं। यह सब ठीक और उचित होते हुए भी ऐसा ही है, जैसे किसी चिरकालके क्षुधा-पीड़ित व्यक्तिको सुन्दर वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणोंसे सजाकर बढ़िया सैलून गाड़ीमें समुद्र-तटपर ठंडी वायु और रमणीक दृश्योंका आनन्द उठानेके लिए ले जाया जाय।

आज भारतवर्षके नगरोंकी अवस्था भी प्राय: ऐसी ही हो रही है। मनुष्य-जीवनकी बाहरी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए तो भरसक प्रयत्न किया जा रहा है; परन्तु भोजन-जैसी वस्तु, जो जीवनका मुख्य अवलम्ब है, सबकी दृष्टिसे एक प्रकारसे ओझल हो गई है। सच यह है कि आज हम लोग अपना स्वास्थ्य, शक्ति और आयु गँवाकर ऊपरी सजधज और तड़क-भड़कपर ही फूले नहीं समाते। हमारे शरीर उन रंग-बिरंगे फूलोंकी तरह हो गये हैं, जिनमें सुगन्धि नाममात्रको भी नहीं होती और जिनकी पंखुरियाँ हाथ लगाते ही झड़ने लगती हैं।

भारतवर्षमें प्रतिवर्ष मरनेवाले बच्चोंकी गणना हमारी आँखें खोल देनेके लिए पर्याप्त होनी चाहिए। इंग्लैण्ड, डेन्मार्क और जापानकी अपेक्षा यहाँ प्रतिशत दुगुने बच्चे मरते हैं। स्वीडेन और नारवेकी अपेक्षा तीन गुने, हालैण्ड और यूनाइटेड स्टेट्सकी अपेक्षा पाँच गुने और न्यूज़ीलैण्डकी अपेक्षा नौ गुने बच्चोंकी मृत्यु होती है! यदि हम संसारके सब देशोंमें दूधके उपयोगकी तरफ ध्यान दें, तो भारतवर्षमें सबसे अधिक बाल-मृत्यु होनेका एक कारण हमारी समझमें आ जाता है। नीचे मुख्य-मुख्य देशोंमें प्रति मनुष्य पीछे साल-भरमें जितना दूध खर्च होता है, उसके आँकड़े दिये जाते हैं :—

फिनलैण्ड	८३·८	गैलन
स्विटज़रलैण्ड	७०·४	”
स्वीडेन	६९·७	”
नारवे	५६·०	”
अमेरिका	५५·३	”
कैनेडा	५१·०	”
चेकोस्लोवाकिया	४५·८	”
आस्ट्रिया	४५·०	”
नीदरलैण्ड	४२·७	”
न्यूज़ीलैण्ड	३७·४	”
आस्ट्रेलिया	३७·१	”
इंग्लैण्ड	३०·८	”
जर्मनी	२७·३	”
फ्रांस	२५·०	”
डेन्मार्क	२२·०	”
भारतवर्ष	८·५	”

इस अवसरपर यू० पी० हेल्थ डिपार्टमेंटके उच्च अधिकारी कर्नल मैक टेगर्टके शब्द याद आते हैं—"ट्रेण्ड दाइयोंकी फौज खड़ी करनेकी अपेक्षा सबको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध प्रदान करनेके लिए दूधको सस्ता बनाना ही बच्चोंकी मृत्यु-संख्याको कम करनेका सच्चा उपाय है।" लन्दनके चीफ मेडिकल आफिसर सर जार्ज न्यूटनका भी कथन है—"सर्वसाधारणका स्वास्थ्य राष्ट्रकी बहुमूल्य सम्पत्ति है, और इसे बनाये रखनेके लिए हमारी सबसे बड़ी वर्तमान आवश्यकता है अधिक दूध।" मैं समझता हूँ, भारतवर्षमें यह आवश्यकता और भी अधिक है।

यह तो प्रकट ही है कि इस देशके निवासी अपने स्वास्थ्य, बल और पराक्रमके लिए मांस, अंडे और मछलीकी अपेक्षा दूध और दूधके पदार्थोंपर ही निर्भर रहते हैं; परन्तु अवस्था यह है कि यहाँपर, विशेषकर नगरोंमें निवास करनेवालोंको, न तो पर्याप्त मात्रामें ही और न शुद्ध रूपमें ही यह जीवन-सामग्री उपलब्ध होती है। बम्बई-जैसे धनाढ्य नगरमें प्रति मनुष्य पीछे प्रतिदिन सात तोले दूधका अनुमान किया जाता है। बंगाल-प्रान्तके कृषि-विभागके डाइरेक्टर मिस्टर ब्लैकवुड भी यही औसत कलकत्तेके लिए लगाते हैं। लाहौरमें दस तोलेका औसत बैठता है। परन्तु ध्यान रहे, पंजाबी लोग भारतवर्षके अन्य सब प्रान्तोंके निवासियोंकी अपेक्षा दूधका अधिक उपयोग करनेवाले माने जाते हैं।

इसकी तुलनामें लन्दनमें प्रति मनुष्य प्रतिदिन पचीस और न्यूयार्कमें पचास तोले दूधका उपयोग होता है। लाहौर नगरमें सन् १९३० में कुल बारह सौ मन रोज़ाना दूधके ख़र्चका अनुमान लगाया गया था; परन्तु लन्दनमें प्रतिदिन अस्सी-नब्बे हज़ार मन दूधकी खपत होती है। यह परिमाण भी दिनोंदिन बराबर बढ़ रहा है। न्यूयार्कमें गत बीस वर्षोंमें प्रति मनुष्य पीछे दूधका रोज़ाना ख़र्च पहलेसे दुगुना हो गया है। भारतवर्षके सम्बन्धमें इस प्रकारके कोई आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं; परन्तु प्रत्यक्ष रूपसे जो दिखाई देता है, उससे तो यही अनुमान होता है कि भारतमें दूधका व्यवहार—विशेषकर नगर-निवासियोंमें—दिन-ब-दिन कम ही हो रहा है। बम्बई और कलकत्तेमें एक सेर दूधका मूल्य छैसे आठ आने तक देना पड़ता है; परन्तु लन्दन और न्यूयार्क जैसे संसारके सर्वश्रेष्ठ नगरोंमें तीन-चार आनेमें ही सेर-भर दूध मिल जाता है।

भारतवर्षके नगरोंमें जिस प्रकारका दूध मिलता है, वह और भी चिन्ताजनक है। बम्बई कारपोरेशनके डाक्टर जोशीने दूधके १४०० नमूनोंका परीक्षण करके देखा है। उन नमूनोंमें अस्सी प्रतिशतमें पानीकी मिलावट थी और नब्बे प्रतिशतमें अस्वच्छताके कारण कीटाणु भरे पड़े थे। दूधकी इस कमी और ख़राबीका परिणाम यह हो रहा है कि बम्बईमें पैदा होनेवाले बच्चोंमें से आधे तो पैदा होनेके एक वर्षके भीतर ही कालके गालमें चले जाते हैं, और आधे जो बचते हैं, वे बिलकुल निस्तेज, शक्तिहीन और रोगी बने रहते हैं। यही दशा न्यूनाधिक रूपमें सभी नगरोंकी है। दूधकी कमी और ख़राबीका प्रभाव केवल बच्चों तक ही सीमित रहता हो, सो बात नहीं। इस देशमें औसतन आयु कठिनतासे २४ वर्ष रह गई है, जो संसारके अन्य सब देशोंसे कम है। इंग्लैण्डमें औसतन आयु ४५ वर्ष है। भारतवर्षमें मृत्यु-संख्या ४० प्रतिशतके लगभग है; परन्तु इंग्लैण्डमें केवल १४ प्रतिशत ही है। सर जान वुडरफ़ने अपनी एक अर्ज़ीमें एक बार लार्ड चेम्सफोर्डको भारतवर्षमें क्षयसे पीड़ित रोगियोंके बारेमें लिखा था कि सन् १९०२में इस रोगके शिकार ३८,४३५ व्यक्ति थे। सन् १९१९ में उनकी संख्या १,००,१९२ तक पहुँच गई, अर्थात् दो सौ प्रतिशतकी वृद्धि हुई। एक क्षय ही नहीं, इस देशके नगर और ग्राम और भी बहुत-सी विकट बीमारियोंके घर बने हुए हैं।

नगरोंमें न तो शुद्ध वायु मिलती है और न स्वास्थ्य स्थिर रखनेके अन्य साधन ही उपलब्ध होते हैं। जो लोग नगरोंके पुराने तंग हिस्सोंमें निवास करते हैं, उन्हें तो सूर्यकी किरणों तकसे भी लाभ उठानेका पर्याप्त अवसर नहीं मिलता। ऐसी अवस्थामें उत्तम भोजनके ऊपर ही उनके स्वास्थ्य और जीवनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा दारामदार है। और उसका भी यह हाल है कि दूध-जैसे प्रकृतिके सर्वोत्तम खाद्य-पदार्थसे वे प्रायः वंचित रहते हैं। नगर-निवासियोंको ग्राममें रहनेवालोंकी अपेक्षा वैसे भी अधिकतर मस्तिष्क-सम्बन्धी अथवा हल्के शारीरिक कामोंको करना पड़ता है, इसलिए भी उनके लिए दूध-जैसे पौष्टिक परन्तु शीघ्र पचनेवाले सात्विक भोजनकी अधिक आवश्यकता है।

संसारमें जिन बड़े-बड़े देशोंमें दूधका पर्याप्त और उचित प्रबन्ध विद्यमान है, वहाँ बहुत-सी खराबियोंका अभाव देखनेमें आता है। सर्वसाधारणका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, उनके शरीर सुदृढ़ और बलवान होते हैं, उन्हें रोग कम सताते हैं, मृत्यु-संख्या घट जाती है और बालक-बालिका तथा स्त्री-पुरुष सभीका जीवन आनन्द और सुखसे व्यतीत होता है। निस्सन्देह अच्छे नागरिक बनानेमें दूधका काफी हाथ है। इन सब बातोंको ध्यानमें रखनेसे भारतवर्षके नगरोंमें दूधकी समस्याका हल होना नितान्त आवश्यक है।

आजकल जो थोड़ा-बहुत दूध यहाँके नगर-निवासियोंके व्यवहारमें आता है, वह तीन प्रकारका होता है। एक तो कुछ लोग अपने घरोंमें गाय-भैंस रखकर अपनी देख-रेखमें इसे प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस अवस्थामें पशुको साफ़-सुथरा रखने, अच्छा चारा-दाना देने और स्वच्छ बर्तनोंमें दूध निकालनेकी ओर मालिक भलीभाँति ध्यान रख सकता है; परन्तु नगरोंकी बढ़ती हुई जनसंख्या और स्थानाभावके कारण अब दिन-प्रति-दिन निजी पशुओंका रखना कठिन होता जा रहा है। नगरकी रहायश इतनी महँगी होती जा रही है कि मनुष्योंका भी समुचित रूपसे निर्वाह नहीं हो पाता। सफ़ाई आदिकी दृष्टिसे भी नगरोंमें पशुओंका रखना वांछनीय नहीं।

दूसरे प्रकारका दूध नगरोंमें रहनेवाले घोसी, गूजर और अन्य जातिके दूध बेचनेवालोंके यहाँसे मिलता है। इस दूधमें केवल एक ही गुण समझना चाहिए, और वह यह कि प्रातः-सायं दोनों समय यह दूध ताज़ा मिल जाता है। परन्तु स्थानकी तंगी और पशुओंको उत्तम भोजन न मिलनेसे यह दूध न तो पीनेमें स्वादिष्ट होता है और न तो इसके सेवनसे पूरा लाभ ही पहुँचता है। अशिक्षा और निर्धनताके कारण सभी जातियोंके दूधवाले पशुओंका स्थान, दूधके बर्तन और अपना रहन-सहन बहुत गन्दा रखते हैं। पशुओंसे दूध प्राप्त करनेके लिए ऐसी-ऐसी अमानुषिक क्रियाएँ भी की जाती हैं कि यदि पीनेवाले अपनी आँखों उन्हें देख लें, तो कभी दूध पीनेका नाम न लें। इसके अतिरिक्त यह दूध चाहे अपनी आँखोंके सामने ही क्यों न दुहाया जाय, फिर भी इसमें ग्वाले कुछ-न-कुछ मिलावट कर ही देते हैं।

तीसरे प्रकारका दूध वह है, जो आसपासके ग्रामोंसे नगरोंमें आता है। यह दूध शुद्ध वायु और सूर्यके खुले प्रकाशमें रहनेवाले पशुओंका होनेके कारण नगरके पशुओंके दूधकी अपेक्षा अवश्य ही स्वास्थ्यप्रद होता है; परन्तु ग्रामोंके लोग न तो अपनी सफ़ाईका ध्यान रखते हैं और न अपने पशुओंकी सफ़ाईका ही। दूसरे वे निर्धन और अशिक्षित होते हैं, जिससे उनमें न तो पशुओंको अच्छा चारा-दाना देनेकी सामर्थ्य होती है और न वे अपने बर्तनोंको ही साफ़-सुथरा रखने और दूधको नगर तक शुद्ध अवस्थामें पहुँचानेकी ही कोशिश करते हैं।

ऐसे दूधमें मिलावटका तो कुछ कहना ही नहीं। पूनामें परीक्षा करके देखा गया कि जो दूध बाहरसे आता है, उसमें दससे लेकर साठ प्रतिशत तक पानीकी मिलावट रहती है—और पानी भी गन्दा और मैला जैसा ग्रामोंमें उपलब्ध होता है, मिला दिया जाता है। इससे स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दूध भी दूषित हुए बिना नहीं रहता। इसके अतिरिक्त बाहरके दूधमें गाय-भैंसके दूधमें भेड़-बकरियोंका दूध भी मिला रहता है। यही नहीं कि दूधमें ग्राम-निवासियों द्वारा मिलावट कर देनेपर ही बस हो जाता हो, वरन् वह दूध जब नगरोंमें हलवाइयोंके यहाँ पहुँचता है, तो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी दयापर निर्भर है कि वे अपने ग्राहकोंके लिए उसमें और कितने प्रतिशत मिलावटकी कृपा करें! भैंसके पानी मिले दूधको गायका कहकर बेचना तो एक आम बात है।

आजकल मलाई-मक्खन निकालनेवाली मेशीनोंने दूधमें मिलावट करनेमें और भी सहायता दी है। अब शायद ही कोई ग्राम ऐसा रह गया हो, जहाँ दूध उत्पन्न होता हो और यह मेशीन न हो। मक्खन-मलाई निकला हुआ दूध रंग-रूपमें बिलकुल शुद्ध दूधकी तरह ही होता है, इसलिए इसकी मिलावटकी पहचान कर सकना भी सहज नहीं होता। मेरा तो अनुमान है कि नगरोंमें जितना दूध बाहरसे आता है, उसमें तीन-चौथाई नहीं, तो आधा अवश्य मेशीनों द्वारा मलाई निकाला हुआ होता है। सस्ती चाट, दही, खोवा आदि इसी प्रकारके दूधसे ही बनते हैं। बड़े-बड़े होटलों और 'रेस्तराँओं'में चाय आदिके लिए भी प्रायः यही दूध उपयोगमें आता है।

इन तीनों ही प्रकारके दूधोंमें कुछ-न-कुछ खराबियाँ विद्यमान हैं। ये खराबियाँ, इस सम्बन्धमें कोई कंट्रोल न होनेके कारण, दिन-ब-दिन और भी बढ़ती जाती हैं। प्रथम तो दूधकी उत्पत्ति ही बहुत कम होती है। उसपर जो थोड़ी-बहुत होती भी है, उसका यह हाल है। इसका जो दुष्परिणाम हो रहा है, वह सहजमें ही हमारी समझमें आ जायगा, यदि हम अपनी वर्तमान औसत आयु, शारीरिक शक्ति, स्वास्थ्य और काम करनेकी सामर्थ्यका आजसे दो तीन सौ वर्ष पहलेके अपने पूर्वजोंकी आयु, बल, स्वास्थ्य और क्रियाशीलतासे मिलान करें। वास्तवमें दूधकी समस्याका हल करना एक राष्ट्रीय प्रश्न है। जैसा कि अमेरिकाके डाक्टर सैमुअल क्रम्बाइनका कथन है—"प्रत्येक देशके राष्ट्रीय भोजनका अधिकतर अनुमान इसीसे होता है कि उसमें दूधका परिमाण कितना सम्मिलत है।"

आधुनिक ढंगके नगरोंमें दूधकी समस्याके दो ही हल दृष्टिगोचर होते हैं; प्रथम तो यह कि नगरोंसे दूर बड़े-बड़े डेरी फार्मोंकी स्थापना की जाय, जहाँ खुली हवामें उत्तम चारा-दाना खिलाकर अच्छी नस्लके पशुओंसे दूध प्राप्त करके नगरोंमें लाया जाय। दूसरे ग्रामोंमें उत्पन्न होनेवाले दूधको एकत्रकर वैज्ञानिक ढंगपर शुद्ध रूपमें नगर-निवासियोंको सप्लाई किया जाय। यह दोनों ही साधन आज संसारके बड़े-बड़े नगरोंमें व्यवहारमें लाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिकामें ऐसे बहुतसे डेरी फार्म हैं, जहाँ हज़ारों पशु दूधके लिए पाले जाते हैं। लन्दन और न्यूयार्क-जैसे नगरोंमें सौ-सौ और दो-दो सौ मीलसे दूध, शुद्ध और स्वच्छ रूपमें, लाया जाता है। यह सब-कुछ इस देशमें भी हो सकता है; परन्तु इसके लिए आवश्यकता है कि सरकार, म्यूनिसिपल कमेटियाँ और सर्वसाधारण अपने-अपने उत्तरदायित्वको अनुभव करें।

सबसे पहले जब तक सरकार दूध, मक्खन, घी आदि वस्तुओंमें मिलावटकी पूरी रोक-थाम करने और डेरी फारमिंगके काममें विशेष सुविधाएँ पहुँचानेके लिए तैयार न होगी, तब तक इस सम्बन्धमें कार्यरूपेण कुछ भी हो सकना कठिन है। सभी देशोंमें दूध आदिके धन्धेके संचालनके लिए बोर्ड बने हुए हैं। इस कार्यको एक प्रकारसे राष्ट्रीय व्यवसाय (National industry) समझा जाता है। अभी हाल ही में ग्रेट-ब्रिटेनमें Reorganisation Commission for milk नामक विशेष कमीशनने प्रस्ताव किया है कि सस्ते दामोंमें दूध बेचनेमें कृषकोंका घाटा पूरा करनेके लिए पचास लाख पौण्डकी सहायता दी जाय। इधर भारतवर्षमें भी नवीन वायसराय लार्ड लिनलिथगोके आगमनसे इस ओर कुछ-कुछ ध्यान आकर्षित होने लगा है; परन्तु कार्यरूपमें अभी तक कुछ विशेष सामने नहीं आया। भारतीय सरकार जब अन्य कलाओं और व्यापार आदिको उन्नत करनेके लिए अनेक प्रकारसे सहायता देती है, तब कोई कारण नहीं कि दूधके व्यवसायको वह अपनी संरक्षतामें क्यों न ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा उत्तरदायित्व कारपोरेशनों और म्यूनिसिपैलियोंका है। नगरोंमें सर्वसाधारणके स्वास्थ्य और आरामकी यही संस्थाएँ रक्षक समझी जाती हैं, इसलिए इनका कर्तव्य है कि दूधकी समस्या, जिसके ऊपर जनताके स्वास्थ्य और सुखका आधार है, हल करनेमें सब तरहसे सहायक हों। मिलावटको समूल नष्ट करने और स्वच्छता आदिके नियमोंका पालन करानेके लिए उन्हें दृढ़ होकर काम करनेकी आवश्यकता है। आधुनिक ढंगपर नगरोंसे बाहर स्थापित डेरी फार्मोंको उन्हें उत्साहित करना चाहिए। ग्रामोंसे आनेवाले दूधपर भी विशेष निरीक्षण रहना उचित है।

तीसरे स्वयं जनताको दूधकी समस्याके हलमें पूरी दिलचस्पी लेनी चाहिए। जब तक सर्वसाधारण इसके महत्त्व और हलकी आवश्यकताको अनुभवकर सरकार और कमेटियोंपर दबाव नहीं डालेंगे, तब तक उनके द्वारा कुछ भी होनेकी आशा केवल दुराशामात्र है—विशेषतया शिक्षितवर्गको उचित है कि आगे बढ़कर वे आधुनिक डेरी फारमिंगके काम और दूधके प्रबन्धको अपने हाथमें लें। इससे जहाँ उनकी बेकारीका प्रश्न हल होगा, वहाँ नगरोंमें शुद्ध और स्वच्छ दूधकी कठिनाई भी दूर होगी। यह सचमुच अंधेर हैं कि भारतवर्ष-जैसा कृषि-प्रधान और गोभक्त देश अपने दूधकी सप्लाईके लिए भी विदेशोंपर निर्भर रहने लगा। सन् १९३५ में ही चौदह लाख रुपयेके दूधके पदार्थ और पचास लाख रुपयेका जमा हुआ दूध यूरोप आदिसे आकर इस देशमें खर्च हुआ। यह सब और इससे भी बहुत अधिक परिमाणमें हमारा देश दूध, मक्खन-जैसे अमृत पदार्थ उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकता है। क्या यह आशा की जाय कि भारतवर्षमें नगरोंकी दूधकी समस्याको कार्यरूपमें हल करनेकी कोशिश की जायगी?

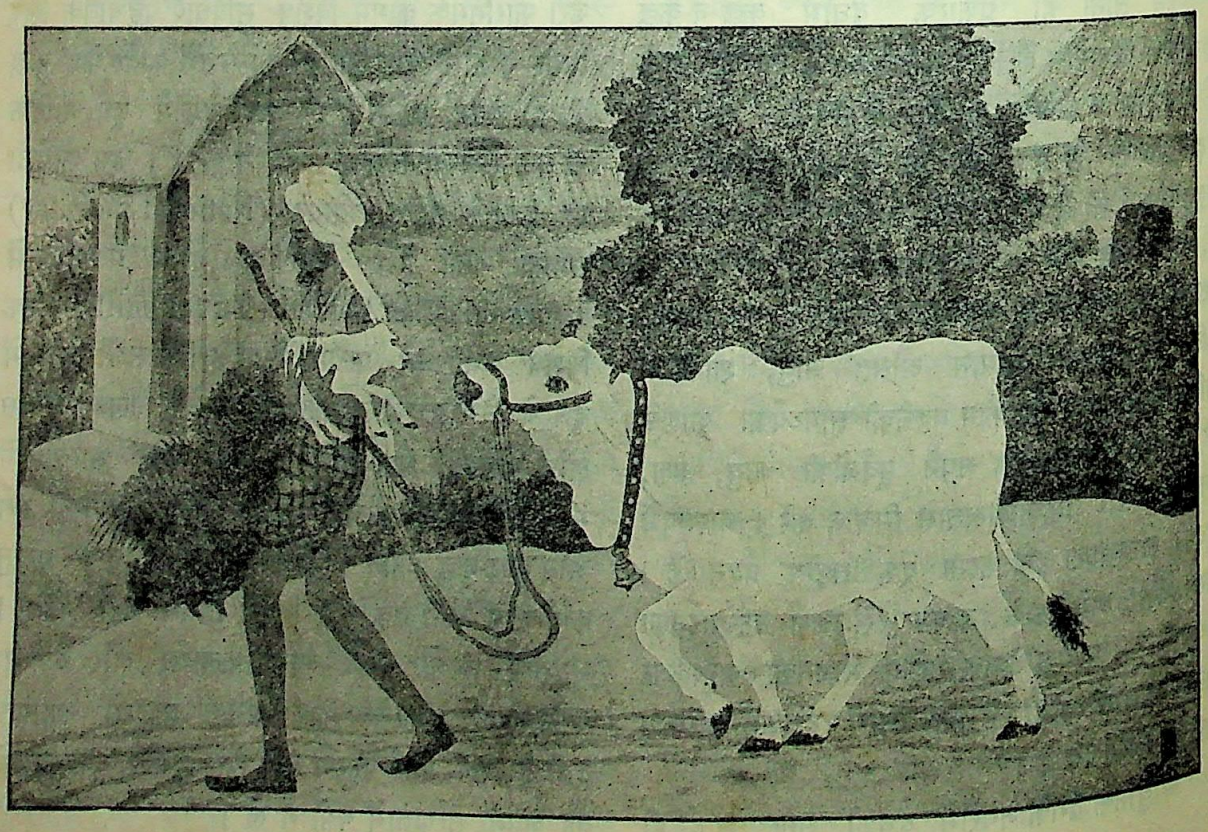

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्खोंके कटाक्ष

श्री तुर्गनेव

"तुझे मूर्खोंके फ़ैसले सुनने पड़ेंगे—बेवकूफ़ोंके कटाक्ष सहने पड़ेंगे।"—पुश्किन

हे रूसके महान गायक! तुम सदा सच्ची बात ही कहते थे, और इस बार भी तुमने सत्य ही कहा। भला, कौन ऐसा होगा, जिसपर मूर्खोंने आक्षेप न किये हों, और असंस्कृत जनताने जिसका मज़ाक न उड़ाया हो?

ऐसी परिस्थितिमें आदमीको क्या करना चाहिए? सहन करना ही सर्वोत्तम उपाय है, और यदि किसीमें सामर्थ्य है, तो वह उससे घृणा कर सकता है।

लेकिन कभी-कभी ऐसे मर्मभेदी कटाक्ष भी होते हैं, जो अन्तस्तलको ही विदीर्ण कर देते हैं....एक आदमीने यथाशक्ति कार्य किया है, भरपूर परिश्रम किया है, प्रेम और ईमानदारीसे अपने कर्तव्यका पालन किया है....फिर भी ईमानदार हृदय उससे नफ़रत करते हैं, ईमानदार चेहरे उसके नामपर क्रोधसे जलने लगते हैं। और ईमानदार युवक उससे चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं—"आप चले जाइये, हमें आपसे कोई मतलब नहीं, हमें आपकी या आपके कार्यकी कोई ज़रूरत नहीं। आप हमारे घरको अपवित्र करते हैं। आप हमें जानते नहीं, पहचानते नहीं, समझते नहीं। आप हमारे दुश्मन हैं।"

ऐसी हालतमें वह व्यक्ति क्या करे? उसका फ़र्ज़ यही है कि वह अपने काममें निरन्तर लगा रहे। उसे अपने पक्षमें न तो कोई कैफ़ियत देनी चाहिए और न अधिक न्याययुक्त फैसलेकी प्रतीक्षा ही करनी चाहिए।

बहुत दिन पहलेकी बात है। कोई यात्री कहींसे हमारे देशमें पहले-पहल आलू लाया था। उस वक्त कितने ही किसान उसपर सख़्त नाराज़ हुए। उन्होंने उस आदमीको ख़ूब कोसा, उसके हाथोंसे आलू छीन लिये और उन्हें कीचड़में फेंककर पाँवोंसे कुचल डाला!

आज आलू उन्हीं ग़रीब किसानोंका नित्यप्रतिका आहार—रोटीके स्थानापन्न—बन गये हैं। किसान लोग आलू खाते हैं, पर वे अपने उस परोपकारी यात्रीका नाम भी भूल गये हैं! ऐसा ही हुआ करता है। एवमस्तु। और उस यात्रीके नामसे उन लोगोंको क्या मतलब? वह अज्ञातनाम यात्री उन्हें भूखसे बचाता तो है।

हम लोगोंको भी ऐसा मानसिक भोजन देना चाहिए, जो वास्तवमें सात्त्विक हो।

अवश्य ही वह जनता, जिसे आप प्रेम करते हैं, इसके बदलेमें आपपर कटुतापूर्ण, अन्याययुक्त आक्षेप करेगी....पर इसे भी सहन करना चाहिए।

यूनानके एक नेताने अपने देशवासियोंसे कहा था—"तुम भले ही मुझे पीटो; पर मेरी बात तो सुन लो!"

उसी प्रकार जनतासे हमें भी यही कहना चाहिए—"भले ही आप हमारी ताड़ना करें; पर सात्विक, मानसिक भोजन करके आप स्वस्थ तो हों!"

फरवरी, १८७८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी रेडियो

श्रीराम शर्मा

डायनेमोंमें अनगिनती वोल्ट्स बिजली है; पर यदि आपका घर उससे सम्बन्धित नहीं, अथवा सम्बन्धित तार जल गये हैं, या घरमें लगी बिजलीमें बल्ब नहीं लगे, तो फिर आपके घरमें प्रकाश नहीं। आपके पास रेडियो सेट हो सकता है; पर बिजलीके अभावमें, बैटरी न होनेपर, आपको ब्राडकास्टिंग स्टेशनोंकी खबरें नहीं मिल सकतीं; पर रेडियोंके स्विचसे लगाते ही गाने, खबरें और व्यापार-भाव बोलनेवालेकी ध्वनिमें सुनाई पड़ने लगते हैं। यदि आपका रेडियो छोटा है, तो दूरकी खबरें वह नहीं दे सकता—उसमें उन समाचारोंके ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं। वैसे वे खबरें आपके चारों ओर व्योमाकाशमें तरंगोंकी भाँति बह रही हैं।

लेखकके दिलोदिमाग़ भी रेडियोके सेट हैं। रेडियोके सेटमें धरा ही क्या है? पर वह इस प्रकार बना है कि बिजलीसे सम्बन्धित होते ही आकाशमें तरंगित समाचारोंको ग्रहण कर लेता है। लेखक भी अपने दिलोदिमाग़ द्वारा विश्वमें फैली हुई विभूतिको बटोर लेता है। आकाशके साफ़ होनेपर समाचार ख़ूब साफ़ सुनाई पड़ते हैं—ठीक इसी प्रकार किसी लेखककी मानसिक आँखका लेंस जितना ही साफ़ होता है, उसके दिमागमें उतने ही बढ़िया विचार आते हैं। हमारे चारों ओर विभूतियाँ बिखरी पड़ी हैं; पर हममें से बहुत कमको वे ग्राह्य होती हैं। हमारे रेडियोमें या तो ग्राह्य शक्ति नहीं, या फिर विचारशीलताकी बिजलीका अभाव है।

कितनोंने लोगोंको मरते न देखा था; पर कर्मविपाक सिद्धान्त गौतम बुद्धके मनके रेडियोमें ही आया। सेब गिरते थे; पर न्यूटनके रेडियोने ही आकर्षण शक्तिके सिद्धान्तको पकड़ पाया। अहिंसात्मक युद्धकी गुत्थी सुलझी तो महात्मा गांधीके मस्तिष्कके रेडियोमें। उपमाएँ और कल्पनाएँ हमारे चारों ओर चक्कर काट रही हैं। एक प्रकारसे वे लेखकोंके दिलोदिमागमें पैठनेके लिए लालायित हो रही हैं; पर वहाँ तो सफ़ाई नहीं, वे प्रवेश कैसे करें? भाषा और भाव दोनोंका ही अभाव है।

तुलसी, सूर, कालिदास, गेटे और रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कलम इतनी पैनी और कारगर क्यों है? क्या वे कोई ख़ास अथवा नई बात कहते हैं? कोई नई बात तो नहीं कहते; पर वायुमंडलमें प्रवाहित विचारों और भावनाओंको अपने दिलोदिमाग़के रेडियोसे वे इस प्रकार ग्रहण करते हैं और व्यक्त करते हैं कि वह विश्वकी एक चीज़ होती है। लेखन-कलामें केवल दो ही बातें मुख्य हैं; क्या कहा गया है और कैसे कहा गया है—बस, इन दो बातोंसे आप किसी रचनाका विश्लेषण कर सकते हैं। वैसे तो सभी कहते हैं और लिखते हैं; पर कहने-कहने और लिखने-लिखनेमें भेद है। अनेक लेखक अपने दृष्टिकोण अथवा कुदृष्टिकोणसे वांछनीय अथवा आवश्यक बातको छोड़ देते हैं।

कौन जाने अभी आकाशमें क्या-क्या नहीं प्रवाहित हो रहा? सम्भवतः द्रौपदीका विलाप, भगवान कृष्णका महाभारतके समयका उपदेश और ईसाके अन्तिम शब्द उन्हींके शब्दोंमें अब भी सुनाई पड़ने लगें। क्या मालूम वे शब्द वायुमंडलमें नहीं घूम रहे? संजयने महाभारतके युद्धका वर्णन बिना देखे ही अपनी भीतरी आँखसे देखकर धृतराष्ट्रको सुनाया था। यदि हम कठमुल्लापन छोड़ दें,—और यह कठमुल्लापन हमारे सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवनमें ज़रूरतसे ज्यादा प्रवेश कर गया है,—तो न-जाने कौन-कौन-सी विभूतियाँ हमारे हाथ लग जायँ और इस लकड़ीके रेडियोके बग़ैर ही हम आकाशसे समाचार ले सकें। आवश्यकता इस बातकी है कि हम अपने दिलोदिमाग़के रेडियोको ठीक रखें और उसमें निकटकी और दूरकी खबरें ग्रहण करनेकी शक्ति पैदा करें। दलबन्दी और फ़ज़ूलकी बकवासके गर्दोगुबारसे अपने दिलोदिमाग़के रेडियोको बचाये रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीडेनमें सहयोग-आन्दोलन

श्री लक्ष्मीश्वरसिंह तथा फ्रू ओलगा इंगहोम

बहुतेरे लोग जानते होंगे कि सहकारी समितियोंके आन्दोलन (Co-operative movement) का जन्म इंग्लैण्डमें हुआ था। उसके जन्मकी तारीख भी निश्चित रूपसे मालूम है। अबसे ९४ वर्ष पहले, २१ दिसम्बर सन् १८४४ को, इस आन्दोलनको विधिवत साकार रूप मिला था। उस दिन इंग्लैण्डके एक छोटे कस्बे रोशडेल (Rochdale) में फलालैन बुननेवाले २८ जुलाहोंने मिलकर सहकारी सिद्धान्त पर एक दूकान खोली थी।

यद्यपि इंग्लैण्ड तथा यूरोपके कुछ अन्य देशोंमें कुछ सहयोगी समितियाँ इससे कई वर्ष पहलेसे ही कार्य कर रही थीं, फिर भी सहकारी आन्दोलनका जन्म रोशडेलकी इस दूकानसे ही माना जाता है। कारण यह है कि इन जुलाहोंने अपनी दूकानके संचालनके लिए जो नियम बना रखे थे, वे इतने व्यावहारिक और माकूल थे कि वे उनकी दूकानके लिए ही उपयोगी सिद्ध नहीं हुए, वरन समय पाकर सारे संसारने उन्हें अपनाया, और वे सहयोगी समितियोंके संचालनके मौलिक सिद्धान्तोंमें माने जाने लगे। यह नियम सात थे, जिनमें से तीन प्रधान हैं :—

(१) न उधार लिया जाय और न दिया जाय।

(२) मुनाफा हिस्सेके अनुसार न बाँटा जाय, बल्कि जो सदस्य जितना अधिक माल खरीदे, उसे उतना अधिक मुनाफा मिले।

(३) प्रत्येक सदस्यको एक ही वोट देनेका अधिकार हो तथा पुरुषों और स्त्रियोंका अधिकार समान हो।

स्वीडेनके सहयोगी-आन्दोलनकी नींव भी रोशडेलके इन्हीं नियमोंपर अवलम्बित है। सन् १८९९ में स्वीडेनकी ३० मौजूदा समितियोंने आपसमें मिलकर एक सहयोगी ऐसोसियेशन बनाया, और तभीसे स्वीडेनके Consumers' Co-operative आन्दोलनका श्रीगणेश हुआ।

सन् १९०४ में इस ऐसोसियेशनने अपने सदस्योंको माल बेचना शुरू किया। उस समय ५७ समितियाँ थीं और साल-भरमें उन्होंने ३,००,००० क्रोनका माल बेचा था और ४,००० क्रोनका मुनाफा किया था। सन् १९३३ में समितियोंकी संख्या बढ़कर ६५० हो गई, मालकी बिक्री ३५,२०,००,००० क्रोन और फायदेकी रकम १,६५,००,००० क्रोन जा पहुँची! (१ रुपया = १⅓ क्रोन)

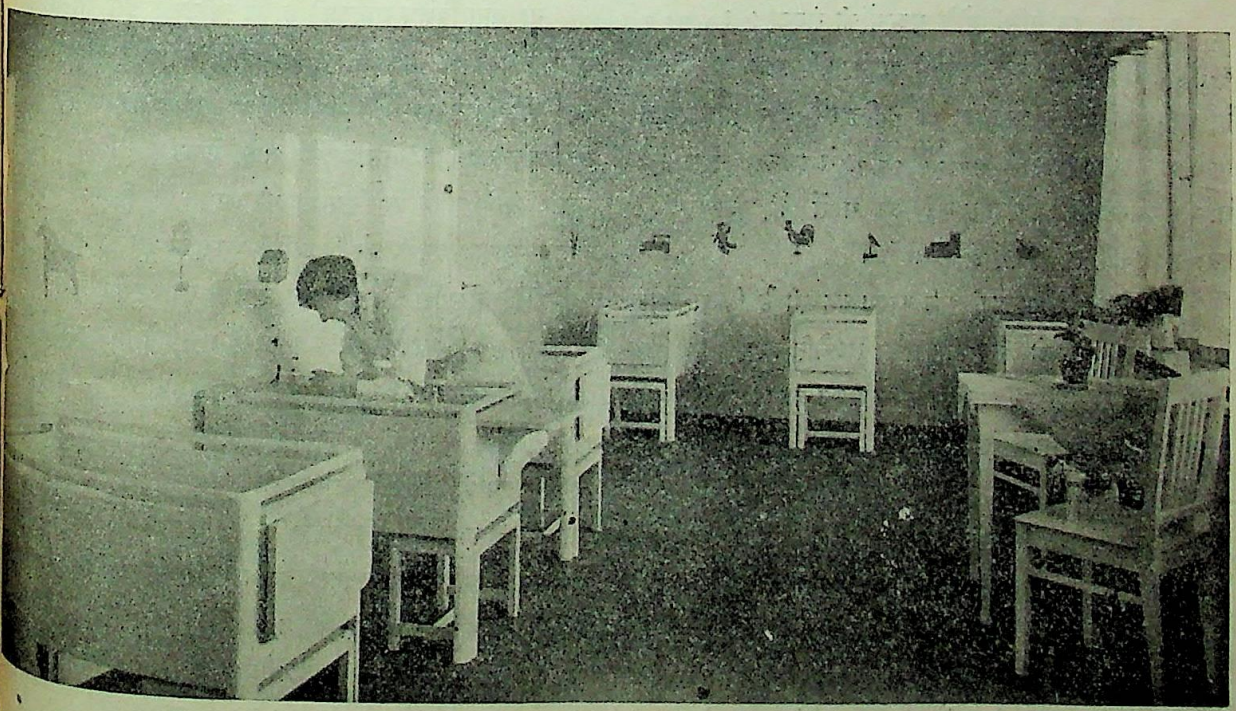

सहयोग समितिकी इमारतमें शिशुशाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहयोग-समितिकी इमारतके किंडर गार्टन स्कूलमें दोपहरको बच्चे आराम कर रहे हैं

इस समय इन समितियोंके सदस्योंकी संख्या ५,३४,००० व्यक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने परिवारका प्रतिनिधि है, अतः यदि औसतमें प्रत्येक परिवारमें चार प्राणी मान लिये जायँ, तो स्वीडेनमें २०,००,००० से अधिक लोग इस सहयोग-आन्दोलनके सदस्य कहे जा सकते हैं, जो देशकी समूची आबादीका एकतिहाई होता है।

इस सफल परिणामका एक कारण यह भी है कि सहयोगी समितियोंने अपनेको सब प्रकारके राजनैतिक और धार्मिक भेदोंसे एकदम परे रखा है, जिसका फल यह हुआ कि देशकी आबादीके सभी वर्गों और ढंगोंके लोग अपनी संख्याके अनुपातमें उसमें शामिल हो सके।

पहले तो ऐसोसियेशन माल खरीदकर अपने सदस्योंके हाथ बेचा करता था। बादमें मालको और भी सस्ते दामोंमें बेचनेके लिए उसने स्वयं माल बनाना शुरू किया। इस समय स्वीडेनके सहयोगी ऐसोसियेशनके पास बाईस कारखाने हैं, जिनमें नाज पीसने और रोटी बनानेके कारखाने, शक्कर मिल, रबर फैक्टरी, काफ़ी भूननेकी फैक्टरी आदि हैं।

यह बात विशेष महत्वकी है कि स्वीडेनके इस आन्दोलनने अपने देशकी ही नहीं, बल्कि अन्य कई देशोंकी फैक्टरियोंका सत्व और संचालन भी अपने साथ सम्बद्ध कर लिया है। स्वीडेनके सहयोगी आन्दोलनने नार्वे, डेनमार्क, फिनलैण्ड और एस्टोनियाके अपने पड़ोसियोंको भी आमन्त्रित किया। स्टाक-होमकी लूमा फैक्टरी, जो बिजलीके बल्ब बनाती है, इन सबकी सम्मिलित सम्पत्ति है। इस प्रकार खर्चकी कमी करके स्वीडिश राष्ट्र प्रतिवर्ष ५० लाख क्रोन बचा लेता है। स्वीडेन, डेनमार्क, नार्वे और फिनलैण्डकी अनेक स्थानीय समितियाँ Nordisk Andelsforbund (उत्तरीय सहयोगी व्यापार ऐसोसियेशन) की सदस्य हैं, जो विदेशोंसे माल मँगाता है और जो यूरोपके सबसे बड़े इम्पोर्टर्स (विदेशोंसे माल मँगानेवालों) में से है।

सहयोगी-आन्दोलनका अपना अलग सेविंग बैंक है, जिसके १,२१,००० सदस्य हैं। उन्होंने उसमें ५,००,००,००० क्रोन जमा कर रखे हैं। दो बीमा कम्पनियाँ भी आन्दोलनके अन्तर्गत चलती हैं। सन् १९३३ में इन दोनों कम्पनियोंने मिलकर ५०,८०,००० क्रोन मृत्यु और दुर्घटनाओंके दावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

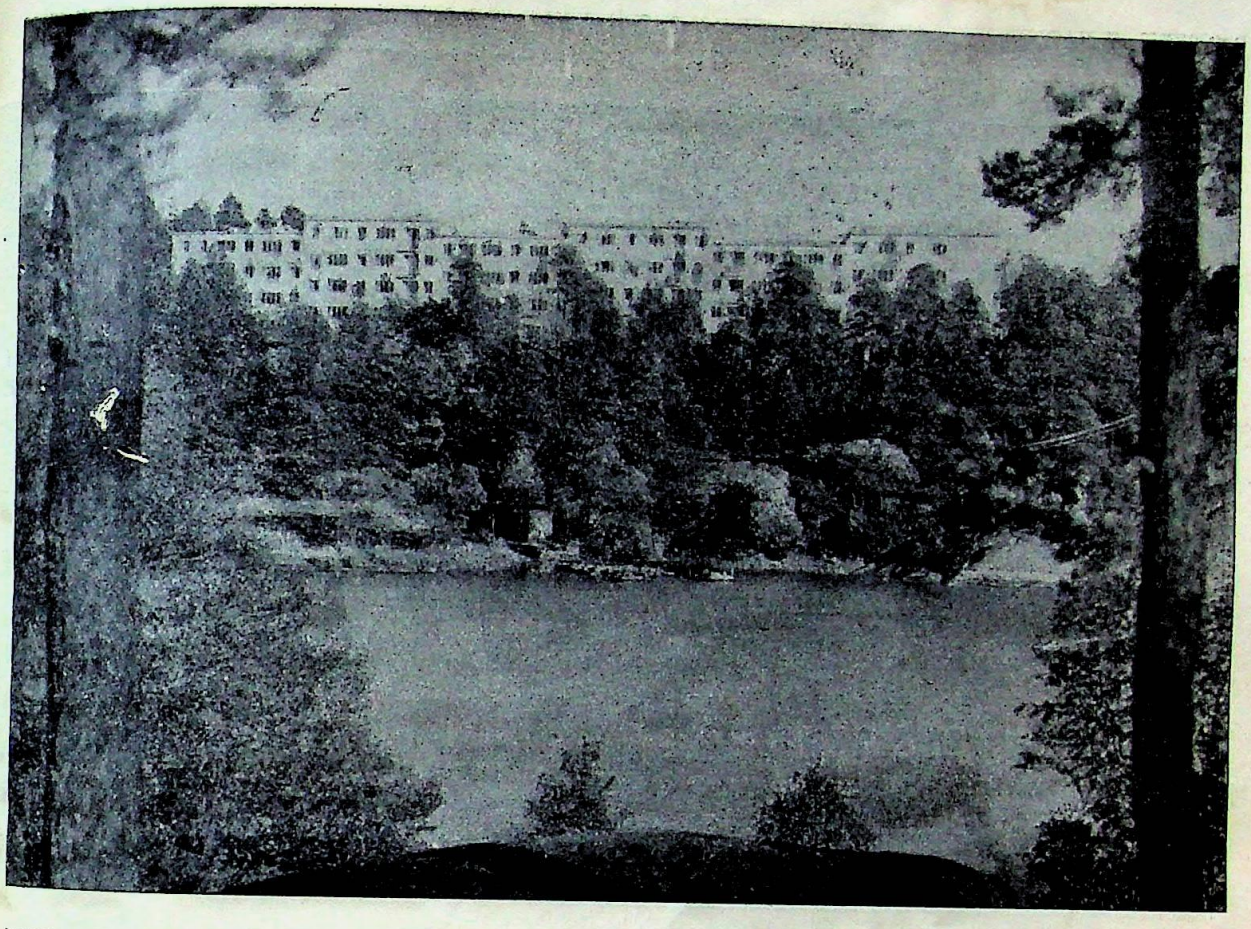

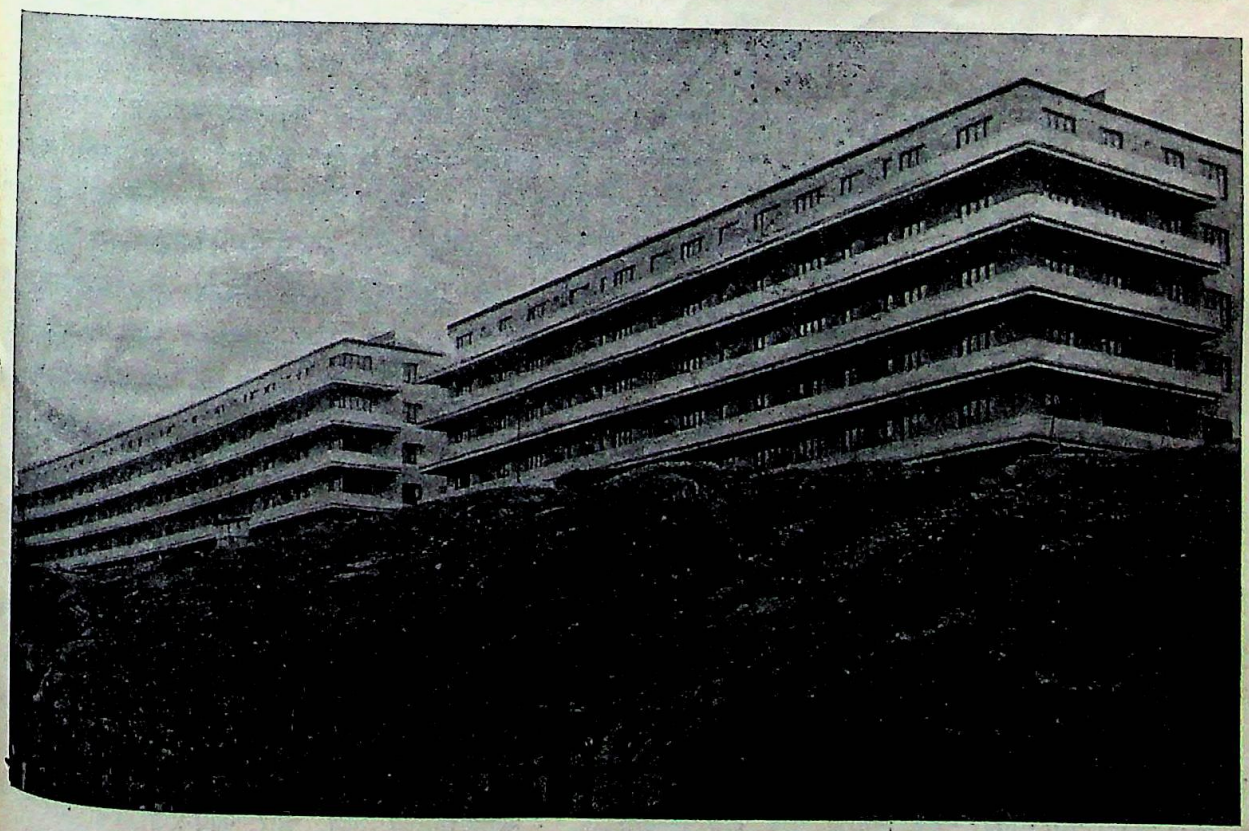

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सहयोग समितियों द्वारा बनवाई हुई मज़दूरोंके रहनेकी दो इमारतें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

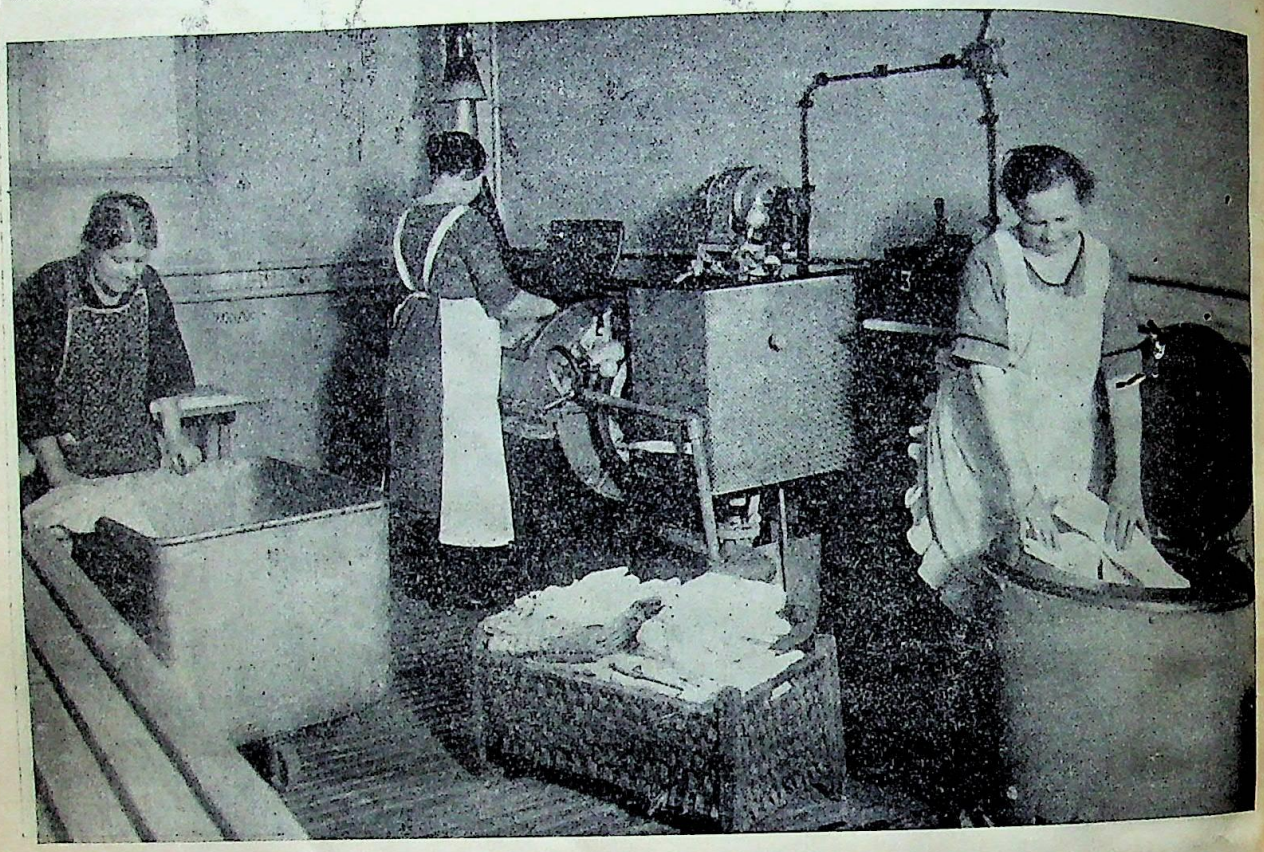

सहयोगी समितिकी इमारतका धोबीखाना

चुकानेमें दिये थे, और उनके फंड ६,६०,००,००० क्रोन थे।

अपने समस्त सदस्योंके सम्पर्कमें रहनेके लिए सहयोग-आन्दोलन एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करता है, जिसका प्रचार ४,६५,००० प्रतियाँ हैं। सहयोगी प्रिंटिंग प्रेसने आर्थिक विषयों और सहयोग-आन्दोलनपर अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सन् १९३३ में इन पुस्तकोंकी बिक्री ३,७७,००० क्रोनकी हुई थी।

स्टाकहोमके समीप साल्ट्सजोबदेनमें एक सहयोगी स्कूल है, जो आन्दोलनके विभिन्न सदस्योंको सहयोग-आन्दोलनपर शिक्षा देता है। प्रतिवर्ष एक हज़ारसे अधिक लोग साप्ताहिक कोर्समें और कई हज़ार आदमी दो दिनके कोर्समें शामिल होते हैं। इसके सिवा पत्र-व्यवहार द्वारा भी इस विषयकी शिक्षा देनेके कोर्स बनाये गये हैं।

पिछले ३५ वर्षमें स्वीडेनमें सहयोग-आन्दोलनसे काफी फायदा हुआ है। सहयोगी समितियोंने रोज़मर्राकी ज़रूरतकी चीज़ें बनाकर तथा मँगाकर उनके दामोंमें घटी और किस्ममें उन्नति की। समितियोंकी प्रतियोगिताके कारण बाज़ारमें भी यही बात हुई—यानी अच्छे किस्मका माल सस्ते दामोंमें मिलने लगा। इससे देशको काफी लाभ पहुँचा। साधारण श्रेणीके लोग अधिक परिमाणमें खाने-पीनेकी चीज़ें ही नहीं खरीदने लगे, बल्कि पैसे बचाकर दूसरी चीज़ें खरीदनेमें भी समर्थ हुए, जिससे देशके उद्योग-धन्धोंकी उन्नति हुई। इस साम्पत्तिक उन्नतिके साथ-साथ एक बड़ा फायदा यह हुआ कि लोगोंको सुलझे हुए ढंगपर आर्थिक विषयोंपर विचार करनेकी शिक्षा मिली।

नई सभ्यतामें कल-कारखानोंकी वृद्धिके साथ-साथ शहरोंकी आबादी और संख्यामें काफी वृद्धि हुई। इस वृद्धिके कारण सभी बड़े शहरोंमें मकानकी समस्या बड़ी जटिल हो गई है—विशेषकर कारखानेमें काम करनेवाले मजदूरोंके लिए। स्वीडेनमें इस समस्याको हल करनेके जो प्रयत्न हुए हैं, उनका कुछ आभास यहाँ दिया जाता है।

उद्योग-धंधोंकी वृद्धि और कृषि-प्रणालीके परिवर्तनोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

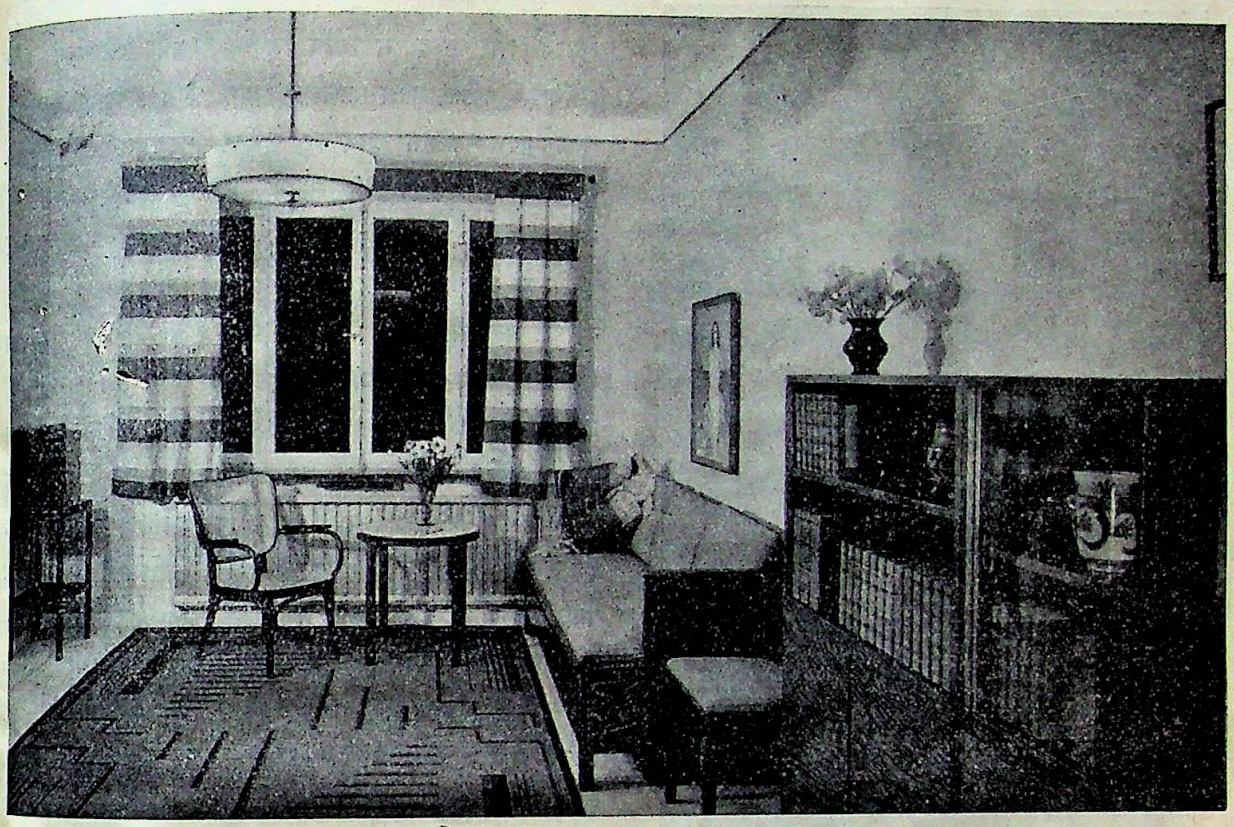

एक छोटे फ्लैटका फर्नीचर और अराइशका सामान, जो भाड़ेदारोंके फर्नीचरकी दूकानसे लिया गया है

साथ-साथ स्वीडेनकी सरकार और जनताने यह महसूस किया कि मकानोंकी समस्या हल करना बहुत ज़रूरी है। उन्हें यह मालूम हो गया कि निम्न और गरीब श्रेणियोंमें फैली हुई सामाजिक बुराइयों—जैसे शराबखोरी, दुराचार आदि—तथा तपेदिक-जैसी बीमारियोंको दूर करनेके लिए साफ-सुथरे और सस्ते मकानोंका होना बहुत आवश्यक है। सन् १८८६ ही से स्वीडेनने कानून बनाकर कम पूँजीवाले गृहस्थोंको अपने निजी मकान बनानेमें सहायता देना शुरू कर दिया था। इस प्रकार स्वीडेनमें 'निजी घर' का एक आन्दोलन शुरू हुआ। सन् १९०५ में सरकारने एक करोड़ क्रोन कर्ज़ देना मंजूर किया। इस रकमसे अपना निजी घर बनानेके इच्छुक लोगोंको कम सूद और सुविधाजनक शर्तोंपर कर्ज़ दिया जाता था। यह कार्य कुछ संस्थाओंके द्वारा होता था, जो दो प्रकारकी थीं—एक प्रान्तीय और देहाती, दूसरी प्राइवेट संस्थाएँ अथवा कम्पनियाँ। सरकार इन संस्थाओंको बड़ी-बड़ी रकमें दे देती थी और ये संस्थाएँ उसे सदस्योंको वितरण करतीं और नये मकानोंके बनने और प्रबन्ध आदिकी देखभाल करती थीं। सरकारकी इस सहायतासे देहातोंमें बहुतसे फार्म और औद्योगिक केन्द्रोंमें बहुतसे घर बने। 'अपने घर' का यह आन्दोलन केवल सरकारी सहायतापर निर्भर था। सरकारका उद्देश्य यह था कि देहातको छोड़-छोड़कर शहरोंको जानेवालों लोगोंकी संख्या घटे तथा देश छोड़कर विदेशोंमें जाकर बसनेवालोंमें भी कमी हो।

कम वित्तवाले लोगोंको मकानोंकी सुविधा देनेमें प्राइवेट लोगोंके प्रयत्नोंने, जो सरकारसे बिलकुल स्वतन्त्र थे, काफी काम किया है। मकानोंकी समस्या हल करनेमें म्यूनिसिपैलिटियोंने काफी उदारतापूर्ण काम किया है। उन्होंने मकान बनानेके लिए ज़मीनें और धन सुविधाजनक शर्तोंपर दिया है। इसी उपायसे स्टाकहोमके समीप मजदूरोंके कई आदर्श कस्बे बस गये हैं। बननेवाले मकानकी ज़मानतपर शहरने कम सूद और सुलभ किश्तोंपर लोगोंको उदारतासे उधार दिया।

'अपने घर' आन्दोलनसे केवल यही नहीं हुआ कि लोगोंके पास अपने निजी मकान हो गये, बल्कि औद्योगिक केन्द्रोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

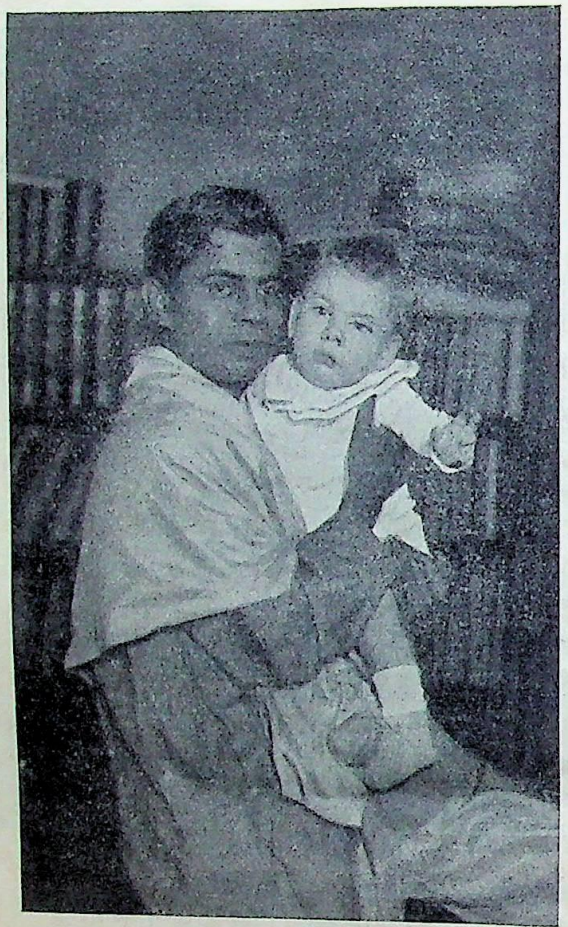

श्री लक्ष्मीश्वर सिंह

मजदूरोंका एक सुव्यवस्थित और सुश्रृंखल समाज बन गया। कारण यह है कि इन मकानोंमें रहन-सहनके कुछ ऐसे सुविधा, जनक नियम रख दिये गये हैं, जिनसे लोगोंमें अपने-आप सुव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। स्वीडेनमें इस प्रकारके बसे हुए कस्बे वास्तवमें देखने लायक हैं। अनेक बड़े कारखानोंने भी अपने मजदूरोंके रहनेके लिए विशेष व्यवस्था कर रखी है।

सरकार और जनता दोनों ही जान गई है कि लम्बे-चौड़े किराये और गन्दे मकानोंसे जनसाधारणके स्वास्थ्य और आर्थिक स्थितिपर गहरा प्रभाव पड़ता है। अन्य क्षेत्रोंमें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर लेनेपर सहयोगी समितियोंने मकानोंकी समस्याको भी उठाया है। शहरोंमें मकानोंकी समस्या कहीं ज्यादा कठिन है। शहरोंमें इतनी ज़मीन नहीं है कि हर आदमी अपना अलग मकान बना सके। समूचे यूरोपके शहरोंमें फ्लैट या तल्लेकी प्रथा है। लोग मकानका एक-एक तल्ला या तल्लेका अंश भाड़े लेकर रहते हैं। सहयोगी समितियोंने बड़ी-बड़ी इमारतें बनाकर कम भाड़ेपर दे रखी हैं। स्वीडेन आनेवाला कोई भी यात्री इन इमारतोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कम आयवाले लोग इन मकानोंमें रहते हैं, जहाँ उन्हें बहुत सस्तेमें सब तरहके आधुनिक सुभीते प्राप्त होते हैं। प्रत्येक इमारतमें एक धोबी-खाना होता है, जिसमें धुलाईकी मेशीनोंसे कपड़े धुलते हैं। इमारतमें 'भाड़ेदारोंके फर्नीचरकी दूकान' होती है, जिससे फर्नीचर आसानीसे मिल जाता है। यह फर्नीचर भी खास तौरपर इस ढंगका बना होता है, जो कम-से-कम जगह घेरे और ज्यादासे ज्यादा कारामद हो। हर इमारतमें एक शिशु-पाठशाला होती है, जिसमें मज़दूर माताएँ कामपर जाते समय अपने बच्चोंको छोड़ जाती हैं। यहाँ बहुत छोटे बच्चोंकी देखभाल की जाती है और उनसे बड़ोंको पढ़ाया-लिखाया जाता है।

सहयोगी समितियोंके इस कार्यसे स्वीडेनके निम्नश्रेणी-वालोंके मकानोंकी समस्या ही हल नहीं हुई, बल्कि इससे उनके स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा-सम्बन्धी तथा सामाजिक अवस्थामें भी काफी सुधार हुआ है।

"अधिकतया पुस्तकावलोकनके द्वारा ही हम उत्कृष्ट हृदयवाले आदमियोंके सत्संगका आनन्द उठाते हैं और सत्संगके लिए अनमोल साधन सब आदमियोंकी पहुँचमें हैं। उत्तम-उत्तम पुस्तकोंसे हमें बड़े-बड़े महात्माओंके उपदेश बिना किसी रोक-टोकके मिलते हैं और उनके विचार बड़ी अच्छी तरह मालूम होते हैं। इन पुस्तकोंके द्वारा हममें नये जीवनका संचार हो जाता है। पुस्तकोंके अस्तित्वके वास्ते परमात्माको धन्यवाद देना चाहिए। वास्तवमें पुस्तकें तो प्राचीन कालके स्वर्गीय महात्माओंकी आवाज़ें हैं, और इनके द्वारा हम प्राचीन कालके आध्यात्मिक जीवनके मालिक बन जाते हैं। जो आदमी इन्हें श्रद्धाके साथ इस्तेमाल करते हैं, उन सबको मानव-जातिके उत्कृष्टके तथा श्रेष्ठ महात्माओंके आध्यात्मिक सत्संगकी प्राप्ति हो जाती है।"

—चैनिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि विद्यापति ठाकुरका हस्त-लिखित भागवत

श्री भुवनेश्वर झा, बी० ए०, बी० एल०

महाराजाधिराज दरभंगाके विशाल और विलक्षण पुस्तकालयमें सबसे दर्शनीय वस्तु मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति ठाकुरकी अपने हाथसे तालपत्रपर तीन जिल्दोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी समूची पुस्तक है। इस पुस्तकका महत्त्व मिथिला और मैथिलीके लिए अनिर्वचनीय है। इसके एक-एक अक्षरसे मिथिलाकी प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति जागृत हो उठती है। महाकवि केवल मिथिलाके ही नहीं, बल्कि उत्तर-भारतवर्षकी भाषाओंके शायद प्रथम महाकवि थे। संस्कृत और मैथिली भाषामें इनके रचे हुए अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं; परन्तु विद्यापतिकी ख्याति उनके श्रुति-मधुर और मनोहर गीतोंके ऊपर अवलम्बित है। जब तक विद्वत्समाज ललित गीतोंका प्रेमी रहेगा, तब तक उनके ये गीत लोकोत्तर आनन्दकी सृष्टि करते रहेंगे। विद्यापतिका अपने हाथका लिखा हुआ कोई भी अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। भागवतकी यही एक पुस्तक उनके अपने हाथकी लिखी हुई है, जो भाग्यवश दरभंगा राजकीय पुस्तकालयमें सुरक्षित दशामें रखी हुई है।

जो विद्वान् इस पुस्तकालयको देखनेके लिए आते हैं, उनकी यही उत्कण्ठा रहती है कि महाकवि विद्यापति ठाकुरकी हस्तलिपि देखें और अपना जीवन सफल करें। यदि कोई प्रमुख और विशिष्ट व्यक्ति पुस्तकालयमें पधारनेकी कृपा करते हैं, तो बड़े प्रेम और उत्साहसे यह ग्रन्थ उनको दिखलाया जाता है। बारम्बार खुलनेके कारण रस्सीके संघर्षसे पुस्तकको थोड़ा-बहुत अभिघात पहुँचा ही करता है। यही कारण है कि तीनों जिल्दोंके आदि और अन्तवाले पृष्ठके चारों कोने क्षीण होते जा रहे हैं। सब दर्शकोंको वह स्थल देखनेकी विशेष उत्कण्ठा रहती है, जहाँ महाकविने अपना नाम पुस्तकके अन्तमें लिपिबद्ध किया है। खासकर विदेशी विद्वानोंको इस बातका सन्देह बना रहता है कि यह पुस्तक विद्यापतिकी लिखी हुई है या नहीं। इसीलिए अन्तिमवाले पृष्ठको, जिसमें विद्यापतिने अपना नाम लिख रखा है, और भी अभिघात पहुँचा है और दिनोंदिन पहुँचता जा रहा है। परन्तु आश्चर्य और साथ-ही-साथ आनन्द उस समय होता है, जब ग्रन्थके अन्तमें 'ल० सं० ३०९ श्रावण शुदि १५ कुजे राज-बनौली ग्रामे श्री विद्यापते लिपिरियम्' सुबोध और सुपाठ्य अवस्थामें पढ़नेको मिलता है। उस समय हृदय-सागरमें आनन्दकी उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं।

अन्तिम पंक्तिसे यह स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि पुस्तककी समाप्ति ल० सं० ३०९ श्रावण पूर्णिमा मंगलवारको हुई थी। यह संवत् चान्द्रमासके अनुसार चलता है, और इसका आरम्भ १११९ ई०में माना गया है। इस प्रकार गणना करनेसे ग्रन्थकी समाप्तिका समय स्थूलरूपसे १४२४ ई० होता है। अतएव यह ग्रन्थ ५१२ वर्षसे भी ऊपरका लिखा हुआ प्रमाणित होता है। इस पुस्तकालयमें इतने दिनोंका और कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। अन्य जगहोंमें भी इतनी पुरानी पुस्तक शायद ही मिले। इतना होते हुए भी पुस्तक प्रायः सब जगह सुपाठ्य और बोधगम्य है। अक्षर पुष्ट और समान हैं। पंक्तियाँ सभी सीधी हैं। अशुद्धि तो प्रायः कहीं भी नहीं है। छूटे हुए पद या अक्षर पंक्तियोंके नीचे-ऊपर सुविधानुसार फिरसे लिखे गये हैं। अक्षर कहीं भी कटे नहीं हैं। अक्षर विशुद्ध तिरहुताके (मिथिलाक्षर) हैं। सभी अक्षरोंमें अपूर्व साम्य है। हाँ, यह जरूर है कि अक्षरोंकी काट-छाँटमें थोड़ी-बहुत विभिन्नता है। स्याही कहीं-कहीं मन्द होती जा रही है। फिर भी अवस्थाको देखते हुए सभी अक्षर आसानीसे पढ़े जा सकते हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी विद्वानने तो अक्षरोंकी पुष्टता और समानता, पंक्तियोंकी विलक्षण सरलता और सर्वोपरि सम्पूर्ण ग्रन्थकी साधारण शुद्धता देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था कि हो-न-हो, महाकविने इसकी पाण्डुलिपि पहले तैयार करके इस ग्रन्थ-रत्नको दुबारा साफ (Fair) करके तालपत्रपर लिखा है।

इतने दिनोंका प्राचीन लेख कम महत्त्वकी वस्तु नहीं; परन्तु उसकी महत्ता और उपादेयता उस समय और भी बढ़ जाती है, जब उसके द्वारा इस भ्रमका सदाके लिए निराकरण हो जाता है कि विद्यापति बंगाली थे। बहुत दिनों तक बंगालका विद्वत्समाज इसी भ्रममें रहा कि विद्यापति बंगाली ही थे। मैथिल समाजकी ओरसे इसके प्रतिवादमें कुछ भी नहीं कहा गया। इसका श्रेय और यश उन निरपेक्ष और सहृदय बंगाली विद्वानोंको है, जिन्होंने तीन प्रबल प्रमाणोंके आधारपर इस विवादका सदाके लिए अन्त कर दिया। श्रीमद्भागवतकी इसी पुस्तकको देखकर, महाराज शिवसिंह द्वारा प्रदत्त विसपी गाँवके ताम्रपत्रको पढ़कर और मैथिल ब्राह्मणोंकी 'पंजी'की छान-बीनकर वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि महाकवि वस्तुतः मैथिल थे। जिस भाषामें उन्होंने अपने अमर गीतोंकी रचना की है, वह प्राचीन मैथिली भाषाके सिवा अन्य भाषा नहीं हो सकती। वस्तुतः इससे और बड़ा प्रमाण कौन-सा हो सकता है कि महाकविका स्वहस्त लिखित ग्रन्थ मिथिलाकी अति प्राचीन लिपि 'तिरहुता'में है? महाकविकी स्मृतिको सदाके लिए जागृत रखनेमें सबसे बड़ा और सुन्दर साधन यही ग्रन्थ है।

पुस्तकके लेखकी समाप्ति राजबनौली गाँवमें ल० सं० ३०९ में हुई। कुछ लोग इस ३०९ को ३४९ और ३८९ पढ़ते हैं। इसका कारण यह है कि स्याहीकी मन्दताके कारण और तालपत्रका निचला अंश क्षीण हो जानेके कारण शून्य (०) का आकार स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता; परन्तु पुस्तकका इतिहास यह साफ तौरसे बतलाता है कि यह संवत ३०९ के अलावा और दूसरा संवत् नहीं हो सकता।

यह सबोंको मालूम है कि विद्यापति ठाकुर महाराज शिवसिंहके समवयस्क थे। राज्यके प्रधान पंडित तो थे ही और थे प्रधान सभासद और राजाके अन्तरंग मित्र। समवयस्क होनेके कारण राजमहिषी लखिमा ठकुराइनका विद्यापति ठाकुरके ऊपर प्रगाढ़ स्नेह था। राजदम्पतिके मनोविनोदार्थ महाकवि अद्भुत गीति-काव्योंकी सृष्टि किया करते थे। गीतोंकी 'भनिताओं'से यह बात साफ जाहिर होती है। महाकविने अपने एक विलक्षण गीतमें, जिसकी 'अवहट्ट' नामक भाषा उनकी खुदकी सृष्टि है, महाराज देवसिंहकी मृत्यु और महाराज शिवसिंहके राज्यारोहणके समयका उल्लेख यों किया है—

"अनल रन्ध्र कर लक्खण णरवइ,
सक समुद्द कर अगिनि ससी।
चैत कारि छठिं जेठा मिलिओ,
वार वेहप्पइ, जाउ लसी।
देवसिंहजी पुहुमी छड्डिअ,...
सतवले गंगा मिलित कलेवर,
देवसिंह सुरपुर चलिओ
सिंहासन शिवसिंह बइट्ठो
उछवै वैरस विसरि गयो।"

इससे स्पष्ट होता है कि महाराज देवसिंहने ल० सं० २९३ चैत्र कृष्ण ज्येष्ठा नक्षत्र मिलित षष्ठी वृहस्पति-वारको इस पृथिवीको छोड़ा और उसी दिन महाराज शिवसिंह सिंहासनासीन हुए। इस घटनाके केवल चार महीने बाद श्रावण शुक्ल वृहस्पतिवारको महाराज शिवसिंहने अपने अनन्य मित्र महाकवि विद्यापतिको 'अभिनव जयदेव' पदसे विभूषित करते हुए उनको जरैल तप्पान्तर्गत 'विसपी' नामक गाँव दानमें दिया। ये सभी बातें ताम्रपत्रसे अभिव्यक्त होती हैं।

महाराज शिवसिंह अधिक दिनों तक राजसुख नहीं भोग सके। जो महाराज दूर-दूर तक अपनी रणचातुरीका सिक्का जमाकर गौड़ेश्वर और गज्जनेश्वरको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराभूत कर चुके थे, वे ही थोड़े दिनोंके बाद यवन-सेनाके द्वारा हीनप्रभ हो गये। मिथिला-पुरातत्त्वके विशेषज्ञ कविप्रवर चन्दा झा लिखते हैं कि महाराज शिवसिंह केवल ३ वर्ष ९ महीने तक राजसुख भोग सके थे। ल० सं० २९६-२९७ के अगहन-पूस महीनेके आसपास यवनोंकी एक विशाल सेना महाराजके राज्यके ऊपर चढ़ आई। ईश्वरके अंशावतार परम तेजस्वी महाराजको भविष्यतका आभास मिल गया। अतएव अपनी प्रियतमा विदुषी लखिमाको अपने अनन्य मित्र विद्यापतिके हाथोंमें सौंप स्वयं युद्धके लिए रवाना हो गये। मिथिलाका सौभाग्य-सूर्य इस युद्धमें अस्त हो गया। विजयश्री यवनोंके हाथ रही। पराजयकी वार्ता सुनकर महाकवि स्वामिपत्नी और सुहृत्पत्नी लखिमाको साथ लेकर राजधानी गजरथपुरको छोड़ नेपालकी ओर भाग खड़े हुए और नेपालके सप्तरी परगनाके दोनवार राजा पुरादित्यके शरणापन्न हुए। इन्हीं राजा पुरादित्यको महाकविने अपनी 'लिखनावली' समर्पित की है। राजा पुरादित्य महाराजा शिवसिंहके मित्रोंमें से थे। जनकपुरके समीप राजबनौली गाँवमें पुरादित्यके आश्रयमें वे राजमहिषीके साथ रहने लगे। बड़ी तत्परतासे उन्होंने महाराजका अनुसन्धान कराया; परन्तु कहीं पता नहीं चला। युद्ध-भूमिमें उनका शव भी नहीं मिला। उन्होंने राजबनौली गाँवमें १२ वर्षकी दीर्घ अवधि महाराजकी प्रत्याशामें बिताई। राजमहिषी लखिमाने १२ वर्ष पूरे होनेपर शास्त्रानुसार कुशपुत्र-दाह-श्राद्ध करके स्वयं सती हो गई। महारानीके सती होनेके बाद विद्यापति निश्चिन्त हुए। इसी बारह वर्षकी अवधिके भीतर राजबनौली गाँवमें बैठे-बैठे महाकविने सारी भागवतकी पोथी लिख डाली, इसलिए ल० सं० ३०९ श्रावणी पूर्णिमाके दिन इसकी समाप्ति होना स्वाभाविक है।

महाराज शिवसिंहके जीवनका इस प्रकार दुःखद और आकस्मिक अन्त होनेसे महाकविके हृदयको कैसी चोट पहुँची होगी, इसका अनुमान प्रत्येक सहृदय व्यक्ति कर सकता है। बाल्यावस्थासे ही जिसके साथ खेल-कूदकर सयाने हुए, अन्त तक जिसकी कृपादृष्टि अनुक्षण रही और जिसकी सौहार्द-भावना लोकोत्तर थी, उसी जीवन-सखाका कहीं कोई पता नहीं! और महाराजके विश्वासके विषयमें क्या कहा जाय। इसी अटूट विश्वासके परिणाम-स्वरूप उन्होंने अन्तिम युद्ध-यात्राके समय अपनी प्रियतमा लखिमा तकको न्यासरूपमें विद्यापतिके हवाले कर दिया, और स्वयं मृत्युका आलिंगन करनेके लिए रण-क्षेत्रमें चले गये।

महाकविके जीवनके सुखके दिन वे थे, जब वे अपने अमर गीतोंकी रचनाकर कत्थक 'जयंत'को पढ़ाते और वह दरबारमें उनका गान करता। महाराजा सुनते और साथ ही सुनता सारा दरबार। स्वयं विदुषी लखिमा गानके समय उपस्थित रहतीं। सारे सभासद पदलालित्य और भावगाम्भीर्यके ऊपर मुग्ध होकर कविकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते। महाकविके वे दिन सचमुच बड़े भाग्यके थे, जब राजदम्पतिकी फरमाइशपर वे उनपर अपनी प्रतिभाके फूल बखेरते थे। सभी कुछ था; परन्तु एक शिवसिंहके बिना सारा संसार सूना था। कहाँ गजरथपुरका राजप्रासाद और कहाँ राजबनौलीकी पर्णकुटी! अभागिनी विधवा लखिमाका भार वहन करना कविके लिए असह्य हो रहा था। अन्नदाता महाराज शिवसिंहका अन्तिम अनुरोध हृदयमें काँटेकी तरह चुभता था। ऐसी विषम परिस्थितिमें यदि विद्यापति ठाकुर-जैसे मनस्वी व्यक्तिके हृदयमें वैराग्यका उदय न होता, तो कब होता। महाकविके हृदयमें अनुताप होता कि राधा और कृष्णके प्रेमके छद्मवेशमें हमने शृंगारिक कविताकी सृष्टिकी है—राधाकृष्णके प्रेमका यथार्थ चित्रण नहीं किया। वस्तुतः हमने शिवसिंह और लखिमाके प्रेम-वैचित्र्यका ही गान किया है। इसी छद्मकारिताकी सजा शायद हमें भुगतनी पड़ रही है। पश्चात्तापकी इस न बुझनेवाली अग्निसे वे दिन-रात जला करते थे। प्रतीत होता है, अपने इसी पाप-पंकके प्रक्षालनार्थ उन्होंने भागवतकी इस पुस्तकको लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि इच्छा करते, तो क्या 'भूपरिक्रमा' के समान किसी अन्य पुराणकी रचना नहीं कर सकते थे ? अथवा कीर्तिलताकी तरह 'देसिल बयना' में क्या नूतन काव्यकी सृष्टि नहीं कर डालते ? अथवा मैथिली भाषाकी नवीन गीतमालाओंमें अभिनव और मनोहर फूलोंको नहीं गूँथ पाते ? परन्तु नहीं, युवावस्थाकी उमंग परिस्थिति-संभूत वैराग्य-भावसे सदाके लिए पराभूत हो गई थी। महाकविके हृदयमें वह उत्साह, भावोल्लास और उमंग अब कहाँसे आ सकती थी ? वैराग्यकी अवस्थामें—मानसिक उथल-पुथलके वातावरणमें महाकविके लिए अन्य काव्योंकी रचना करना जब असम्भव हो गया, तब कृष्ण-कीर्तनके उद्देश्यसे प्रेरित होकर भागवतकी इस पुस्तकको लिखना आरम्भ किया और १२ वर्षमें लिखकर समाप्त कर डाला।

इस दीर्घकालीन अवधिने कविके जीवनमें एक महान परिवर्तन कर दिया। आर्य-संस्कृतिके पूर्णवेत्ता जनकके देशमें उत्पन्न विद्यापति ठाकुर भी कर्मयोगी थे। वैराग्यमें भी कर्म त्याग उन्हें इष्ट नहीं था। अतएव विदुषी लखिमाके परोक्ष होनेपर जब जीवनमें कोई सरसता या सार्थकता नहीं रही, फिर भी कर्मका संन्यास नहीं किया। लौटकर देशमें आये। दरबारमें भी गये, परन्तु कविशेखरके रूपमें नहीं। विद्यापतिका कविशेखर-रूप शिवसिंहके साथ ही तिरोहित हो गया था। अब महारानी विश्वासदेवी और महाराजा धीरसिंहके दरबारमें हम विद्यापति ठाकुरको धर्माध्यक्ष और नैबन्धिकके स्वरूपमें पाते हैं। अब उनकी रचनाओंका विषय काव्य और पुराण, नीति और इतिहास नहीं था, प्रत्युत कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र था। 'शैवसर्वस्वसार', 'गंगावाक्यावली', 'दानवाक्यावली' और 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' आदि पुस्तकें उनके इसी समयकी रचनाएँ हैं। महाकविका बनाया हुआ इस समयका एक भी ऐसा गीत नहीं मिलता, जिसकी भनितामें महारानी विश्वासदेवी और महाराजा धीरसिंहके नाम आये हों। इसलिए भागवतकी यह पुस्तक महाकविके जीवनके उस समयकी कृति है, जिस समय उनके जीवनमें महान आन्दोलन हो रहा था। यह समय उनके जीवनका परिवर्तन-काल था। यह वह समय था, जब 'कविशेखर और अभिनव जयदेव' का अन्त और 'धर्माध्यक्ष नैबन्धिक विद्यापति' का प्रादुर्भाव हो रहा था। इसीलिए हमने प्रारम्भमें ही कहा है कि भागवतकी इस पुस्तकके अक्षर-अक्षरसे मिथिलाकी प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति जागृत होती है।

बड़े सौभाग्यकी बात है कि ऐसा अपूर्व ग्रन्थ हम लोगोंको उपलब्ध है और ऐसी जगह रखा हुआ है, जहाँ पूर्ण उद्योगसे चिरकाल तक सुरक्षित रह सकेगा। अंगरेजोंके यहाँ जो स्थान शेक्सपियरका है, मिथिला और बंगालमें वही स्थान विद्यापतिका है। यदि आज एक कागज़का टुकड़ा शेक्सपियरके हाथका लिखा हुआ मिल जाय और यह प्रमाणित हो जाय कि वह उसी अमर कविका लिखा हुआ है, तो विलायतमें वह एक महान आन्दोलनका कारण बन जायगा। अंगरेज़ी भाषा-भाषी जनता उस छोटे-से टुकड़ेके लिए लाखों रुपये तक देनेको उद्यत हो जायगी। शेक्सपियरसे पूरे दो सौ वर्ष पहले होनेवाले महाकविका लिखा हुआ एक वृहदाकार ग्रन्थ उपलब्ध है। यह हमारे सौभाग्यकी बात है। पुस्तकका जीर्ण-कलेवर होना स्वाभाविक ही है। विज्ञानके वर्तमान युगमें पुस्तकको सुरक्षित रखनेके जो-जो उपाय सम्भव हैं, वे सभी कामके लाये गये हैं। वर्तमान मिथिलाधीशको इस बातका गौरव है कि मिथिलेशके ही आश्रित इस महाकविकी कृति उन्हींके पुस्तकालयमें सुरक्षित है। विश्वास है, चिरकाल तक दरभंगा राजकीय पुस्तकालयमें यह पुस्तक एक दर्शनीय वस्तु रहेगी।*

* हाल ही में लहेरियासरायसे 'भारतीय' नामक एक सुन्दर मासिक पत्रिका निकली है। यह पत्रिका मैथिली-साहित्य-परिषद द्वारा संचालित होती है। इसी पत्रिकाके मार्चके अंकमें पं० रमानाथ झा, एम० ए०, काव्यतीर्थ,का 'महाकवि विद्यापति ठाकुरका हस्त-लिखित भागवत' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। लेखक महोदय दरभंगा राजकीय पुस्तकालयके लाइब्रेरियन हैं। इसी लेखका यह स्वतन्त्र अनुवाद है। —ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

विलायतमें भारतीय सिविल सर्विसके प्रवेशार्थी

पहले भारतीय सिविल सर्विसमें नौकरी पानेके लिए केवल विलायतमें परीक्षा देनेका बन्दोबस्त था। कुछ वर्षोंसे विलायत और इस देश—दोनों ही स्थानोंमें परीक्षा ली जाती है। इसके सिवा पिछले सालसे मनोनयन (नामज़दगीके) द्वारा भी विलायतमें कुछ लोगोंको इस नौकरीमें भर्ती करनेकी व्यवस्था हुई है।

लन्दनकी परीक्षाके लिए सन् १९३५ में ८३ यूरोपियनों और २५१ भारतीयोंने दरख़ास्त दी थी। सन् १९३६ में परीक्षार्थियोंकी संख्या १४५ यूरोपियन और २४८ भारतीय थी ; किन्तु इस वर्ष सन् १९३७ में प्रवेशार्थियोंमें ३२२ यूरोपियन और १४९ भारतीय विद्यार्थी हैं। भारतीय परीक्षार्थियोंकी संख्यामें क्रमिक ह्रास होनेका कारण यह है कि इस समय परीक्षामें जो विद्यार्थी उच्च स्थान प्राप्त करेंगे, सिविल सर्विसके सारे पद उन्हींको नहीं दिये जायँगे—उन पदोंमें कुछ नौकरियाँ मनोनीत अंगरेज़ छोकड़ोंको दी जायँगी, क्योंकि अंगरेज़ छोकड़े खुली प्रतियोगितामें मोटे हिसाबसे भारतीयोंकी अपेक्षा अधिक पारदर्शिता नहीं दिखला सकते थे। इस बार जो ३२२ यूरोपियन युवक सिविल सर्विसके पद-प्रार्थी हुए हैं, उनमें से ८९ युवक केवल परीक्षाके ज़ोरपर सिविल सर्विसमें प्रवेश चाहते हैं। १०० युवक परीक्षा तो देना चाहते हैं ; पर साथ ही वे मनोनीत भी होना चाहते हैं। बाक़ी १३३ पद-प्रार्थी केवल मनोनयनके अनुग्रहपर नौकरी चाहते हैं। इससे दीख पड़ता है कि अंगरेज़ पद-प्रार्थियोंमें जिनमें पौरुष है, उनकी संख्या कम है ; जो अनुग्रह चाहते हैं, उनकी संख्या कहीं ज्यादा है।

—

मुसलमानोंका कांग्रेसमें भाग न लेनेका कारण

सन् १८८५ में जब कांग्रेसकी स्थापना हुई, उस समयसे उसका दरवाज़ा सभी धर्मों तथा सभी श्रेणियोंके भारतीयोंके लिए समान भावसे खुला है। कांग्रेसमें कभी भी कोई ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ, जो किसी धर्म-सम्प्रदायके लिए असुविधाजनक हो। फिर भी मुसलमानोंने अपनी कुल जनसंख्याके अनुपातमें कांग्रेसमें यथेष्ट संख्यामें भाग नहीं लिया। इसके नाना कारण हैं। उनके अनेक नेताओंने निजी सुविधाके लिए और कहीं-कहीं साम्प्रदायिक स्वार्थ-सिद्धिके लिए मुसलमानोंको कांग्रेसमें योग देनेसे अलग रखा है। गवर्नमेंटने मुसलमानोंपर विशेष अनुग्रह दिखलाकर उन्हें अलग रखा है, क्योंकि हिन्दू-मुसलमानोंकी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी सम्मिलित चेष्टा ब्रिटेनके हक़में अवांछनीय है। अनेक मुसलमान नेता एवं बहुतेरे अंगरेज़ मुसलमानोंके मनमें हिन्दुओंके प्रति अविश्वास बढ़ानेकी चेष्टा करते आते हैं। मुसलमानोंमें शिक्षाका विस्तार कम हुआ है। इसी प्रकार और भी कोई-कोई कारण दिखाया जा सकता है। हालमें कुछ दिनसे मुसलमान जनताको कांग्रेसका लक्ष्य और कार्य-प्रणाली बतलाकर उनमें से कुछ व्यक्तियोंको कांग्रेसका सदस्य बनानेकी चेष्टा हो रही है। इसे मि० जिन्ना, मौलाना शौक़तअली, सर मुहम्मद याक़ूब आदि मुसलमान नेता लोग अनिष्ट समझते हैं और असन्तुष्ट हो रहे हैं। सर मुहम्मद याक़ूब विलायतके प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन'में एक चिट्ठी प्रकाशित करके कहते हैं कि कांग्रेस-नेतागण जो-कुछ भी कहें, कांग्रेसके प्रति मुसलमानोंके मनके भावोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है, हालाँकि छात्र-श्रेणीके कुछ भावप्रवण सरल चित्त युवक मुसलमान, दुनियाका तजरुबा न होनेके कारण, स्वाधीनताकी उन्मत्त धारणाके प्रभावसे कांग्रेसकी ओर आकर्षित हुए हैं। उसके बाद सर मुहम्मद याक़ूबने कहा है—

"Since the advent of Mr. Gandhi the congress has become saturated with Hindu culture, Hindu civilisation and Hindu sentiments. In the present circumstances the Moslems will find it difficult to sign the Congress creed,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

but we are prepared to co-operate and collaborate on terms of equality with any political organisation in the country which aims at the elevation of our status to that of equal partner in the British Commonwealth of nations by constitutional means." —Reuter

—'कांग्रेसके कार्यक्षेत्रमें महात्मा गांधीके आविर्भावके बादसे कांग्रेस हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-सभ्यता तथा हिन्दू-भाव-धारासे शराबोर हो गई है। वर्तमान अवस्थामें मुसलमानोंका कांग्रेसके मत-समूहको ग्रहण करना कठिन है; लेकिन देशकी जो कोई भी राजनैतिक संस्था वैधानिक साधनोंके द्वारा हमें ब्रिटिश कामनवेल्थमें समान साझीदारके पदपर पहुँचानेका लक्ष रखती है, हम उसके साथ बराबरीकी शर्तोंपर सहयोग और सहकार करनेको तैयार हैं।"

सर मुहम्मद याकूब चाहे जो कहें; पर सच्ची बात तो यह है कि महात्माजीके कांग्रेस-नेता बननेके बादसे ही कांग्रेसमें मुसलमान-प्रेम बढ़ा है। मुसलमानोंको खुश करनेके लिए कांग्रेस-नेताओंकी अत्यधिक चेष्टाके कारण ही हिन्दू-महासभाके किसी-किसी नेताने कांग्रेसको हिन्दू-विरोधी तक कहा है। हम इस अभियोगको सत्य नहीं समझते; किन्तु यह सच है कि मुसलमानोंको खुश करनेके लिए कांग्रेसने जनसत्तात्मक और राष्ट्रीय नीतिके विपरीत आचरण करके साम्प्रदायिक बँटवारेके सम्बन्धमें 'अ-ग्रहण' और 'अ-वर्जन'-जैसा सिद्धान्त प्रकट किया है।

गांधी-प्रभावित और गांधी-चालित कांग्रेसमें मुसलमान भाग नहीं ले सकते, इसके लिए सर मुहम्मद याकूब इस समय जो कारण बतलाते हैं, वे सत्य नहीं हैं; लेकिन उन्हें थोड़ी देरके लिए सत्य मानकर हम पूछते हैं कि कांग्रेसमें गांधीजीके आविर्भावके पहले मुसलमानोंने उसमें क्यों भाग नहीं लिया था? बहुत थोड़ी संख्यामें ही क्यों वे उसमें शामिल हुए थे? इस समय सर याकूबके कथनानुसार मुसलमान जिस ढंगके राजनैतिक दलमें भाग ले सकते हैं, भारतका लिबरल फेडरेशन ठीक उसी प्रकारका है। उसमें भी सभी धर्म-सम्प्रदायोंके लोग भाग ले सकते हैं, और उसमें मुसलमानोंको अथवा अन्य किसी भी धर्मावलम्बियोंको हिन्दुओंकी अपेक्षा अथवा किसी अन्य धर्मके लोगोंकी अपेक्षा निकृष्ट नहीं माना जाता—सभीको बराबर और समनागरिक समझकर समान अधिकार दिया जाता है। (कांग्रेसमें भी सभी धर्मोंके लोगोंकी मर्यादा और अधिकार समान हैं।) ऐसी हालतमें मुसलमानोंने नेशनल लिबरल फेडरेशनमें क्यों भाग नहीं लिया?

असली बात यह है कि सर मुहम्मद याकूबकी तरह मुसलमान नेता अपने ऊपर और अपने सम्प्रदायके ऊपर सरकारका अनुग्रह बनाये रखना चाहते हैं, इसीलिए वे इस प्रकारके किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन या राष्ट्रीय प्रचेष्टाके साथ शामिल होना नहीं चाहते, जिसका लक्ष्य भारतमें अंगरेज़ नौकरशाहीकी क्षमताका ह्रास और भारतवर्षके ऊपर ब्रिटेनके प्रभुत्वका ह्रास करना हो।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

लेखक हो तो ऐसा

सबसे पहला सवाल, जो किसी लेखकके विषयमें पूछा जाना चाहिए, वह यह है कि उसके जीवनके सिद्धान्त क्या हैं और उनपर चलनेके लिए वह कहाँ तक प्रयत्नशील है। यदि वह मनसा-वाचा-कर्मणा अपने सिद्धान्तोंपर अटल नहीं है, तो उसकी लेखनीमें बल कहाँसे आ सकता है? काठकी हाँड़ी एक बार ही चढ़ सकती है, दम्भ अधिक दिन नहीं चल सकता। पर संसारमें ऐसे लेखक भी पाये जाते हैं, जो अपनी जान हथेलीपर लिये घूमते हैं; सिद्धान्तोंके लिए मर मिटना ही जिनके जीवनका लक्ष्य होता है। एक ऐसे ही अंगरेज़ लेखकने कुछ महीने पहले वीर गति पाई है, और उसका नाम था राल्फ फॉक्स। राल्फ फॉक्सकी उम्र अभी चालीस वर्षकी ही थी। उन्होंने आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई थी, और वहाँसे 'आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास'में आनर्सकी परीक्षा फर्स्ट क्लासमें पास की थी। रूसके गृह-युद्धके बाद जब क्वेकर लोगोंने वहाँके अकाल-पीड़ितोंकी रक्षाके लिए अपना मिशन भेजा, तो राल्फ फॉक्सने उस मिशनके साथ रूसकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर फॉक्स समाजवादी पार्टीमें सम्मिलित हो गये, रशियन भाषा सीखी और मार्क्स-ऐंजिल्स-लेनिन इन्स्टीट्यूटमें दो वर्ष तक अध्ययन करते रहे। सोवियट रूसके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें उन्होंने खूब परिभ्रमण किया। खास तौरसे उन्होंने पूर्वीय जातियों तथा औपनिवेशिक प्रश्नोंका अध्ययन किया। स्वदेश यानी इंगलैण्ड लौटकर उन्होंने मज़दूरोंके संगठन-कार्यको अपने हाथमें लिया, और समाजवादी दलके वे एक मुख्य कार्यकर्ता बन गये। इस दलकी ओरसे 'डेली वर्कर' नामक जो पत्र निकलता है, उसमें फॉक्स लेख लिखने लगे। फॉक्स ग्रन्थकार भी उच्चकोटिके थे, और अपने जीवनके पाँच-छै वर्षमें उन्होंने निम्न-लिखित ग्रन्थ लिखे थे—(१) इंग्लैण्डमें वर्ग-युद्ध (दो भाग), (२) लेनिन, (३) ब्रिटिश साम्राज्यवादकी औपनिवेशिक नीति, (४) समिष्टवाद, (५) चंगेज़ खां और (६) फ्रान्सका लोकप्रिय मोर्चा। फॉक्समें अपनेको उच्च जातीय समझनेकी प्रवृत्तिका, जो अधिकांश अंगरेज़ोंमें पाई जाती है, बिलकुल अभाव था, और उनका दृष्टिकोण सर्वथा अन्तर्राष्ट्रीय था। वे मार्क्सके इस वाक्यको सर्वांशमें सत्य मानते थे—"जो राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्रपर अत्याचार करता है, वह कभी स्वतन्त्र नहीं कहला सकता।" और फॉक्सका यह दृढ़ विश्वास था कि भारत तथा उपनिवेशोंमें क्रान्ति हुए बिना ब्रिटेनमें साम्यवादकी स्थापना हो ही नहीं सकती।

जब स्पेनपर फैसिस्ट लोगोंने आक्रमण करना प्रारम्भ किया, तब राल्फ फॉक्स भला कैसे रुक सकते थे। वे तुरन्त ही अन्तर्राष्ट्रीय सेनामें भर्ती हो गये और वहाँ बड़ी बहादुरीके साथ लड़ते रहे। अन्तमें वहींपर वे मारे भी गये। उनकी बहादुरीके बारेमें उनके फौजी अफसरने, जिनके अधीन वे काम कर रहे थे, लिखा है--"राल्फ फॉक्स एक अत्यन्त बहादुर आदमी थे, और मुख्यतया उनके आदर्शको देखकर हम लोगोंमें हिम्मत आई और हम दुश्मनोंको रोकने तथा अपने आदमियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सके। यह बात मैं बतौर शिष्टाचारके नहीं कह रहा हूँ—जैसा कि मृत मनुष्योंकी प्रशंसा करनेका रिवाज़ है, बल्कि मैं एक फौजी अफसरकी दृष्टिसे कह रहा हूँ कि राल्फ फॉक्स वास्तवमें एक बहादुर आदमी थे।"

अपनी अन्तिम पुस्तक The Novel and the People (Lawrence and Wishart, London, मूल्य ५ शिलिंग) में स्पेनके युद्धका ज़िक्र करते हुए उन्होंने लिखा था—"सवाल हो सकता है कि मैंने राजनैतिक प्रश्नपर इतने विस्तारपूर्वक क्यों लिखा है? इस सवालका जवाब यह है कि इस प्रश्नके उचित रीतिसे हल होनेपर हमारे कला-सम्बन्धी प्रश्नका हल निर्भर है। हमारे भाग्यका आज फैसला हो रहा है। यह हमारे लिए सौभाग्यकी बात है कि हम लोग इतिहासके एक ऐसे अवसरपर पैदा हुए हैं, जो हममें से प्रत्येकसे इस बातका तकाज़ा करता है कि वह व्यक्तिगत तौरपर अपने कर्तव्यका फैसला करे। हेमलेटको इस बातका पछतावा था कि उसके जीवनमें ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण मौका आया, जब कि उसे अपने लिए निर्णय करना आवश्यक हो गया, और हम लोगोंके मनमें भी यह इच्छा हो सकती है कि अधिक शान्तिपूर्ण समयमें हमें निर्णय करना होता, तो अच्छा होता। पर फैसला तो हमें करना ही पड़ेगा। उससे हम बच नहीं सकते। कविवर वर्ड्सवर्थने लिखा था—'एक आध्यात्मिक कुटुम्ब है, जो हम जीवितोंको और युगयुगान्तरके स्वर्गीय वीरों, सत्पुरुषों तथा बुद्धिमानोंको एक सूत्रमें बाँधता है। हम इस कुटुम्बसे बहिष्कृत होना कदापि सहन नहीं कर सकते।' वर्ड्सवर्थकी बात बिलकुल ठीक थी। हम लोग अलग खड़े-खड़े देख नहीं सकते। कार्यक्षेत्रमें भाग लेनेसे ही हम अपनी कल्पनाशक्तिको बढ़ा सकते हैं और इस प्रकार उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजस्वी भावनाओंके प्रति, जो हमारे हृदयमें विद्यमान हैं, हम अपनेको सत्य सिद्ध कर सकते हैं।"

उपर्युक्त वाक्योंका प्रत्येक शब्द फॉक्सके हृदयसे निकला था और रणभूमिमें अन्याय तथा अत्याचारके विरुद्ध लड़ते हुए अपनेको बलिदान करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि लेखक किसे कहते हैं। यदि हमारे देशमें दस बीस लेखक भी इस प्रकारके हों, तो वे हमारे साहित्यका उद्धार कर सकते हैं।

राल्फ फॉक्स समाजवादी विचारोंके थे, पर उनके उज्ज्वल दृष्टान्तका अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक लेखक समाजवादी विचारोंको ग्रहण करके ही अपने-आपको सत्य सिद्ध कर सकता है। उदाहरणके लिए यदि कोई गांधीवादी सत्याग्रह - संग्राममें शान्तिपूर्वक भाग लेते हुए अपने प्राण देता है, तो वह भी उसी प्रकार पूज्य है। स्वर्गीय शहीद गणेशशंकरजीका महान दृष्टान्त हमारे सामने है।

राल्फ फॉक्सको स्वर्गीय हुए अभी तीन-चार महीने भी न हुए होंगे कि उनकी स्मृतिमें एक Memorial Volume (संस्मरणात्मक ग्रन्थ), जिसमें उनके ग्रन्थों और लेखोंसे उद्धरण भी दिये गये हैं, निकल गया है, और वह ३॥ शिलिंगमें मिल सकता है। हमारे यहाँ गणेशजीको स्वर्गवासी हुए अब ७५ महीने हो चुके हैं, पर इस तरहकी कोई चीज़ हम आज तक प्रकाशित नहीं कर सके!

क्या ही अच्छा हो, यदि कोई साधन-सम्पन्न व्यक्ति राल्फ फॉक्सके इस संस्मरणात्मक ग्रन्थकी ६ प्रतियाँ खरीदकर इन महानुभावोंको भेंट कर दे—(१) श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन, (२) श्री माखनलाल चतुर्वेदी, (३) श्री श्रीराम शर्मा, (४) श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, (५) श्री पुरुषोत्तम दास टंडन। खेदके साथ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि एक प्रतिका अधिकारी इन पंक्तियोंका लेखक भी है।

—

हमारे संग्रहालय

अभी उस दिन हम महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायनकी 'मेरी यूरोप-यात्रा' नामक पुस्तक पढ़ रहे थे। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयकी बोड्लियन लाइब्रेरीका ज़िक्र करते हुए राहुलजीने लिखा है :—

अब हम उतरकर बोड्लियन लाइब्रेरीमें गये, जो पास ही में, उत्तर तरफ है। बाहरसे देखनेमें नहीं मालूम होता कि यह वही विश्व-विख्यात पुस्तकागार है। पुराने मकानोंके ऐतिहासिक महत्त्वकी रक्षाके लिए अधिकारियोंने भरसक कोई परिवर्तन नहीं किया है। वैसे जगहें सभी बहुत ही साफ हैं। सीढ़ीसे ऊपर चढ़कर पहले हम उस कमरेमें गये, जहाँ पुराने ग्रन्थकारों और प्रतिष्ठित पुरुषोंके हस्तलेख, कितने ही हस्तलिखित ग्रन्थ तथा चित्र प्रदर्शित किये गये थे। हस्तलेखोंमें एक सम्राट् पंचम जार्जके हाथका भी है। इसे उन्होंने ५ या ६ वर्षकी अवस्थामें लिखा था। पुराने ग्रन्थकारोंके हस्तलेखोंको देखकर हमारे मनमें खयाल उठने लगा कि हम हिन्दी-भाषा-भाषियोंको अभी कितना आगे चलना है! हमारे यहाँ हिन्दू-विश्वविद्यालय, नागरी-प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओंको यह काम अपने हाथमें लेना चाहिए। यदि बहुत पुराने नहीं, तो उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्द्धके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, स्वामी दयानन्दसे लेकर पंडित बालकृष्ण भट्ट, द्विवेदीजी, पं० पद्मसिंह शर्मा आदि सैकड़ों दिवंगत और वर्तमान हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके हस्तलेख तो जमा किये जा सकते हैं। राजनीतिक और धार्मिक नेताओंके भी हस्तलेख इसमें सम्मिलित किये जा सकते हैं। याद रहे, समकालीन या अचिरपूर्वकालीन पुरुषोंके हस्तलेखोंको संग्रह करना सुलभ है। पीछे वह दुष्प्राप्य हो जाते हैं। कोशिश करनेपर तीन-चार सौ वर्षके पुराने महापुरुषोंके भी कितने ही हस्तलेख, यदि मूल प्रतिके रूपमें नहीं, तो फोटोके रूपमें प्राप्त हो सकते हैं।

हमारे यहाँ इस आवश्यक प्रश्नकी ओर ध्यान देनेवालोंकी संख्या अत्यल्प है। जो थोड़ा-बहुत कार्य इस दिशामें हुआ है, वह काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा ही हुआ है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने भी अपना संग्रहालय बनवाया है। बड़ा सुन्दर भवन है, पर उस मन्दिरमें अभी प्राणप्रतिष्ठा होना बाकी है, और इसके लिए सुयोग्य साहित्यिक पुजारियोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है। श्रीमान पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा उनके साथियोंने जितना कार्य अब तक किया है, उसके लिए उनकी प्रशंसा करना हमारा कर्तव्य है; पर अभी बहुत-कुछ करना शेष है। आशा है कि हम लोग अपने संग्रहालयको भरा-पूरा बनानेके लिए तन-मन-धनसे प्रयत्न करेंगे। संग्रहालयके लिए प्रान्तीय कमेटियाँ क़ायम किये बिना यह काम आगे नहीं चल सकता। हमारे अनेक साधन-सम्पन्न नवयुवक व्यर्थके शौकोंमें सैकड़ों रुपये ख़र्च कर देते हैं; पर इस महत्त्वपूर्ण कार्यको अपनानेकी ओर उनकी रुचि ही नहीं है। जगह-जगहके स्टाम्प इकट्ठे करनेके बजाय यदि वे संग्रहालयके लिये उपयोगी मसाला इकट्ठा करें, तो उनके समय तथा शक्तिका भी सदुपयोग हो जाय और हमारी भाषाको भी लाभ हो।

सम्मेलनके संग्रहालयके मंत्री तथा अन्य अधिकारियोंका कर्तव्य है कि वे जनताको इस प्रकारका आश्वासन दें कि हमने अपने संग्रहालयमें चीज़ोंको सुरक्षित रखनेका पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया है। जब तक लोहेकी अलमारियोंका तथा अन्य आवश्यक फर्नीचरका इन्तज़ाम नहीं होता, तब तक कोई समझदार अपनी महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ संग्रहालयको नहीं भेज सकता। इस बातकी भी गारंटी होनी चाहिए कि ये चीज़ें अनधिकारियों द्वारा उड़ाई न जा सकेंगी। संग्रहालयके लिए दिन-रात चिन्ता करनेवाले आदमीके अभावमें यह मन्दिर ईंट-पत्थरका समूह ही बना रहेगा।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका यह संग्रहालय महात्माजी द्वारा खोला हुआ है। कभी-कभी निराशाकी भावनाके समय मनमें आता है कि महात्माजीको लिख भेजें—"आप मन्दिर तो खोल देते हैं; पर देवताकी प्राण-प्रतिष्ठा तथा योग्य पुजारीका प्रबन्ध नहीं करते।" पर सारा काम महात्माजीके सिर डाल देनेसे तो काम नहीं चल सकता। किसीने कहा है—"Be the man thou seekest." 'जिसकी तू तलाशमें है, वह खुद ही क्यों नहीं बन जाता?' इसलिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि हम महात्माजी अथवा अन्य किसीको दोष देनेके बजाय स्वयं ही संग्रह-योग्य वस्तुओंका इकट्ठा करना प्रारम्भ कर दें और उन्हें किसी संग्रहालयको, जिसपर हमारा विश्वास हो, दान कर दें।

—

स्वर्गीय डा० सण्डरलैण्डकी सहृदयता और स्वाधीनता-प्रेम

इंडियन सोशल रिफार्मरके सम्पादक श्रीयुत के० नटराजन अपनी सुपुत्री श्री० कामकोटिके साथ सन् १९३३ में अमेरिकाकी यात्रापर गये थे और वहाँसे लौटकर आपने 'Our Trip to America' नामक एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तकमें आपने डाक्टर सण्डरलैण्डके निवास-स्थानकी यात्राका भी वर्णन किया है। डाक्टर सण्डरलैण्ड उस समय ९३ वर्षके थे; पर उनकी काम करनेकी शक्ति ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। मिस्टर नटराजन तथा उनकी लड़कीका स्वागत करनेके लिए वे स्टेशनपर हाज़िर हुए थे और उनके साथ गर्मीके वक्तमें मोटरपर ६० मील दूर किस्को पर्वतकी यात्रापर भी गये थे! वहाँ पहुँचनेपर चाय-पार्टी हुई। उस वक्त किसीने कहा—"कामकोटि (मि० नटराजनकी पुत्री) सत्याग्रह-संग्राममें दो बार जेल हो आई हैं।" यह सुनते ही डाक्टर सण्डरलैण्डने, जो कामकोटिसे कुछ दूरपर बैठे हुए थे, उसके सम्मानार्थ अपना टोप उतार लिया और अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—Let me have the privilege of shaking you by the hand."—'मुझे अपने साथ हाथ मिलानेका सौभाग्य प्रदान कीजिए।'

यह सुनते ही कामकोटि गद्गद हो गईं, और वे सिर्फ इतना कह सकीं—"मेरे जीवनका यह क्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।" मिस्टर नटराजन सण्डरलैण्डकी इस विनम्रतासे इतने प्रभावित हुए कि उनके मुखसे कोई शब्द ही न निकला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर सण्डरलैण्डकी जीवनचरितकी आवश्यकता

मि० नटराजनने अपनी पुस्तकमें लिखा है:—

"चाय-पार्टीके बाद जो मीटिंग हुई, उसका विषय था 'विविध धर्मोंकी मित्रता'। डाक्टर सण्डरलैण्डने भी इस मीटिंगमें दो-चार वाक्य कहे थे, जिनमें उन्होंने अमेरिकन जनतासे सिफारिश की थी कि वे भारतके दो पत्र खास तौरसे पढ़ें, एक तो 'माडर्न रिव्यू' और दूसरा 'इंडियन सोशल रिफार्मर'। डाक्टर सण्डरलैण्डने कहा था कि ये दोनों पत्र भारतीय जनताकी सम्मतिको गम्भीरतापूर्वक प्रकट करते हैं। दो घंटेके बाद डाक्टर सण्डरलैण्ड अपने घरको वापस चले गये। अब इस बातकी सम्भावना बहुत कम है कि हम लोग इस जीवनमें मिल सकेंगे। जो थोड़ेसे घंटे उनके साथ बितानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, उनसे मुझे बड़ी स्फूर्ति मिली। उन लोगोंकी संख्या अत्यल्प ही होगी, जिनके हृदयमें हिन्दुस्तानके प्रति इतनी हमदर्दी हो और जिन्होंने हमारी मातृभूमिके लिए इतना कार्य किया हो। यह देखकर कि ९३ वर्षकी उम्रमें भी वे इतना श्रम कर सकते हैं, मुझे बहुत उत्साह मिला। उनका यह उत्साहप्रद दृष्टान्त हममें से उन लोगोंके लिए, जो यह कह कर कि अब तो हम वृद्ध हो चले, अपने कर्तव्य और जिम्मेदारियोंसे च्युत होते हैं, खासी फटकार है। अनेक अंशोंमें हम अपनी अमेरिका-यात्राकी सर्वोत्तम घटना डाक्टर सण्डरलैण्डके दर्शनको ही समझते हैं।"

क्या ही अच्छा हो, यदि डाक्टर सण्डरलैण्डका एक जीवन-चरित, जिसके अन्तमें श्रीयुत रामानन्द चट्टोपाध्याय, मि० नटराजन तथा अन्य सज्जनोंके संस्मरण भी हों, प्रकाशित किया जाय। जिस महापुरुषने सहस्रों रुपये भारतके हितके लिए व्यय किये; यही नहीं, अपने जीवनका एक उत्तम अंश भारतीय स्वाधीनताके लिए खर्च किया, क्या हम भारतीय उनके लिए इतना भी नहीं कर सकते? क्या हममें इतनी भी कृतज्ञता नहीं रही?

श्री हरि जी० गोविलसे, जो इस समय अमेरिकामें ही हैं, हमारा अनुरोध है कि वे डाक्टर सण्डरलैण्डके जीवन-चरितके लिए मसाला इकट्ठा करें। गोविलजी उनसे भलीभाँति परिचित थे। सण्डरलैण्डकी एक वर्षगाँठपर (शायद वह अस्सीवीं वर्षगाँठ थी) जब गोविलजीने अन्य भारतीयोंके साथ उन्हें भोज देना चाहा, तो उन्होंने मज़ाकमें कहा—"जनाब मैं आपके भोजमें हर्गिज़ नहीं सम्मिलित होनेका। मालूम होता है, आप मुझे जल्दी ही निकम्मा बना देना चाहते हैं। अभी मेरी उम्र ही क्या है? कुल अस्सी वर्ष। अभी तो मैं कितने ही वर्ष काम करना चाहता हूँ। ये भोज तो जीवनसे विश्राम लेनेवाले आदमियोंको दिये जाते हैं, और मैं विश्राम चाहता नहीं।"

दो-ढाई साल पहले जब हमने 'माडर्न-रिव्यू'के सम्पादक श्री रामानन्दजी चट्टोपाध्यायसे बातचीतके सिलसिलेमें पूछा—"आप इतनी उम्रमें इतना अधिक श्रम कैसे कर सकते हैं?" तो उन्होंने उत्तर दिया—"काम तो करते हैं डाक्टर सण्डरलैण्ड, जो ९० वर्षकी उम्रमें इतने सजीव बने हुए हैं; उनके मुकाबले हम क्या काम कर सकते हैं।"

डाक्टर सण्डरलैण्डके जीवन-चरितसे कम-से-कम एक लाभ तो यह होगा कि हम लोगोंको, जो ४०-४५ वर्षकी उम्रमें अपनेको वृद्ध समझने लगते हैं, अपनी अकर्मण्यतापर कुछ लज्जा आवेगी। निस्सन्देह हमारे प्रमादरूपी भयंकर रोगको दूर करनेके लिए यह जीवन-चरित रामबाण औषधिका काम करेगा। यदि गोविलजी मसाला इकट्ठा कर दें, तो जीवन-चरित लिखना कठिन न होगा, और ऐसी पुस्तकके लिए प्रकाशक भी कोई न कोई निकल ही आयगा।

—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका शिमला-अधिवेशन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अगले अधिवेशनकी तैयारियाँ शुरू हो गई हैं, और उसके सभापतिके चुनावका प्रश्न भी शीघ्र ही जनताके सम्मुख आनेवाला है। अभी हालमें शिमलाकी जो चिट्ठियाँ पत्रोंमें छपी हैं, उनमें दो नाम उपस्थित किये गये हैं; एक तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर मैथिलीशरणजी गुप्तका और दूसरा श्रीमान ओरछा-नरेशका। परिस्थितिके देखते हुए हम पहले नामका समर्थन करते हैं। कई सालसे ऐसा होता आया है कि साहित्य-सम्मेलनके सभापतिके चुनावके समय राजनैतिक अथवा आर्थिक दृष्टिकोणको महत्त्व दिया गया है और साहित्यिक दृष्टिकोणकी उपेक्षा की गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि साहित्य-प्रेमी और साहित्य-सेवी सज्जनोंके मनमें यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि सम्मेलन हिन्दी-प्रचार-विभागके मुक़ाबलेमें साहित्य-विभागको नगण्य समझता है। इस धारणाको दूर करनेकी ज़रूरत है। लोग इस बातको भूल जाते हैं कि राष्ट्र-भाषा होनेके साथ-ही-साथ हिन्दी प्रान्तीय भाषा भी है, उसके निजके साहित्यिक प्रश्न हैं, और उन प्रश्नोंपर वे लोग ही अपनी सम्मति अधिकारपूर्ण ढंगसे प्रकट कर सकते हैं, जिन्होंने वर्षों तक निरन्तर साहित्यकी साधना की हो। यह कार्य नरेशों और सेठोंके बूतेका नहीं है, और सरस्वतीके मन्दिरमें उनकी पोज़ीशन वैसी ही है, जैसी नरेन्द्र-मण्डल अथवा व्यापारी-संघमें लेखकों तथा कवियोंकी। इन कारणोंसे हम यही मुनासिब समझते हैं कि केवल ख़ास-ख़ास अधिवेशनोंको छोड़कर—और ये दस फी-सदीसे अधिक न होंगे—साहित्य-सम्मेलनका सभापतित्त्व किसी साहित्य-साधकको ही दिया जाना चाहिए। इस वर्षके लिए कविवर गुप्तजी ही सर्वश्रेष्ठ सभापति होंगे। दर असल यह पद उन्हें बहुत पहले ही मिल जाना चाहिए था। गुप्तजी हिन्दी संस्कृतिके एक उज्ज्वलतम दृष्टान्त हैं। भारतीयता उनमें कूट-कूटकर भरी है, और यद्यपि उनका स्वाभाविक झुकाव हिन्दू-धर्मकी ओर ही है, तथापि उनमें वह संकीर्णता नहीं है, जो प्रायः कट्टर धर्मावलम्बियोंमें पाई जाती है।

जहाँ वे ईसाके विषयमें कह सकते हैं—

"धन्य-धन्य हम जिनके कारण
लिया आप प्रभुने अवतार;
किन्तु त्रिवार धन्य वे, जिनको
दिया एक प्रिय-पुत्र उदार।"

वहाँ वे भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंकी टक्करको भी भारतीय संस्कृतिके लिए अन्तमें लाभदायक ही मानते हैं—

"देना पड़ा और देना होगा हमें आगे जो,
क्या कुछ मिलेगा नहीं बदलेमें उसके?
संजीवनी शुक्र की है उग्र असुरोंमें भी,
और मय जैसी मंजु-शिल्पकला उनमें।
आया अलक्षेन्द्र यहाँ, वीर पुरु हारा भी,
रहते हुए भी पुरुषार्थ, दैव-योगसे।
किन्तु अन्तमें क्या हुआ? चन्द्रोदय अपना
मूर्तिमन्त नव्य यश। नाता जुड़ा उनसे,
ज्ञान, कर्म और कला-कौशल थे जिनमें;
सब भर पाया नहीं अन्तमें क्या हमने?
होंगे युग-पुरुष स्वयं ही युग-युगमें।
देना पड़े मूल्य हमें चाहे जितना बड़ा,
हम यवनोंसे भी ठगाये नहीं जायँगे।
आर्य भूमि अन्तमें रहेगी आर्य-भूमि ही;
आकर मिलेंगी यहीं संस्कृतियाँ सबकी;
होगा एक विश्व-तीर्थ भारत ही भूमिका।"

'सिद्धराज'

इस अवसरपर हमें स्व० मुंशी अजमेरीजीकी याद आती है। कविवर गुप्तजी और मुंशी अजमेरीजीकी जोड़ी हिन्दी-संसारमें अनोखी थी। क्या ही अच्छा होता, यदि शिमलामें साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर हिन्दी-जनता इन दोनों व्यक्तियोंके दर्शन करती, साहित्य और संगीत संगममें पुण्य स्नान करती और अपनी आँखोंसे उस उदारतापूर्ण एकताको देखती, जो सम्प्रदाय, धर्म अथवा जाति-विशेषसे ऊपर उठकर सर्वथा स्वतन्त्र वायुमंडलमें ही पाई जाती है!

हमें इस बातका खेद है कि सम्मेलन अपनी साहित्यिकता खोता जा रहा है, और इस दोषको दूर करनेके ख़यालसे ही हम ज़ोरके साथ कविवर गुप्तजीके सभापतित्वका समर्थन करते हैं।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

दिल्लीके 'हिन्दुस्तान' में यह पढ़कर हर्ष हुआ कि युक्तप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अब पुनर्जीवित होनेवाला है, और इस निश्चयके लिए हम श्री कमलादेवी चौधरी तथा मेरठके अन्य साहित्य-प्रेमियोंके लिए कृतज्ञ हैं। न-जाने कितने वर्षोंसे युक्तप्रान्तीय सम्मेलन नहीं हुआ, जब कि बिहार तथा पंजाबके अधिवेशन अनेक बार हो चुके हैं। पिछली बार जब बेगूसरायमें बिहार प्रान्तीय सम्मेलन होनेवाला था, तब हमने 'योगी' के १६ अक्टूबर १९३६ के अंकमें एक लेख लिखा था। उसके मुख्य अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"यदि सम्मेलनको सफल बनाना है, तो कार्यकर्ताओंको तुरन्त ही जुट जाना चाहिए। पाठकोंको यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि अब साहित्य-सम्मेलनोंका उद्देश्य केवल Demonstration या तीन-चार दिनकी धूमधाम नहीं रहा। अधिवेशनके पूर्व प्रान्तमें जो आन्दोलन हो और उसके पश्चात् जो रचनात्मक कार्य हो, उसीसे सम्मेलनकी सफलता या असफलताका निर्णय किया जाना चाहिए। दुर्भाग्यकी बात है कि हमारी साहित्यिक संस्थाओंके स्थायी कार्यालय इस विषयमें उतनी कार्यशीलता प्रकट नहीं करते जितनी कि उन्हें करनी चाहिए। ऐन वक्तपर चलनेसे कार्यकी व्यवस्था ठीक तौरपर नहीं हो सकेगी।

साहित्य-सम्मेलनके साथ अन्य कोई उत्सव होने चाहिए या नहीं? कवि-सम्मेलन तो उसका एक आवश्यक अंग ही बन गया है, और उसे छोड़ा नहीं जा सकता। जनताका उससे काफ़ी मनोरंजन होता है, और साहित्यिक उत्सवोंमें से यदि हम मनोरंजनको निकाल डालेंगे, तो वे शुष्क वाद-विवाद-सभाका रूप धारण कर लेंगे। हाँ, कवि-सम्मेलनोंका नियन्त्रण ज़रूर होना चाहिए। इसके विषयमें कुछ नियम बन जाने चाहिए, जिनका पालन अवश्य किया जाय।

कवि-सम्मेलनके सिवा पुस्तकालय-सम्मेलन और अध्यापक-सम्मेलन भी किये जा सकते हैं। पत्रकार-सम्मेलन करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसमें रस्म-सी अदा हो जाती है, काम कुछ होता-जाता नहीं। अध्यापक-सम्मेलन अवश्य एक आवश्यक चीज़ बन सकती है। हिन्दी-पाठशालाओंके अध्यापकोंमें साहित्यिक अभिरुचि उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है, क्योंकि उन्हींके द्वारा हम अपना सन्देश साधारण जनता तक पहुँचा सकते हैं।

साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षाओंको लोकप्रिय बनाने और इस प्रकार जनताके सांस्कृतिक धरातलको ऊँचा करनेमें भी ये अध्यापक लोग बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। स्वयं अध्यापकोंके लिए भी यह लाभदायक होगा कि वे अपने प्रान्तके तथा अन्य प्रान्तोंके साहित्यिक कार्यकर्ताओंके निकटतर संसर्गमें आवें।

पुस्तकालय-सम्मेलनकी उपयोगिताके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं।

इन उत्सवोंके साथ-साथ यात्राका भी प्रबन्ध होना चाहिए। किसी सुन्दर प्राकृतिक या ऐतिहासिक स्थानकी यात्रा की जा सकती है। यथासम्भव यह यात्रा पैदल की जानी चाहिए, जिससे पारस्परिक मेल-जोलके अवसर और भी अधिक मिलें। हाँ, यदि स्थान बहुत दूर हो, तब बात दूसरी है। तीन दिन तो अधिवेशनके लिए रखे जाने चाहिए, एक यात्राके लिए और एक आसपासके स्थानोंमें भाषण इत्यादि करानेके लिए।

सम्मेलनकी कार्यवाहीकी रिपोर्ट ठीक तौरपर की जानी चाहिए। अभी तक हमारे उत्सवोंकी कोई रिपोर्ट ही ठीक ढंगसे प्रकाशित नहीं होती, इसलिए उन पाठकों तक, जिन्हें उन जलसोंमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, उत्सवोंका रूखा-सूखा वृत्तान्त ही पहुँचता है। पूरी-पूरी रिपोर्टके साथ इन उत्सवोंके संस्मरण भी पत्रोंमें छपने चाहिए।"

'योगी' वाले इस लेखपर, जो सर्वथा सद्भावसे लिखा गया था, हमें बिहारके एक ज़िम्मेवार अधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा ऐसी करारी डाँट सुननेको मिली कि उसे भुलाना कठिन है। मेरठके साहित्य-प्रेमियोंसे हमें ऐसी आशंका नहीं है, इसीलिए हमें अपने प्रस्तावोंको दुहरानेका साहस हुआ है। सभापतित्वके लिए हम श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम उपस्थित करते हैं। उनसे बढ़कर सजीव, ज़िन्दादिल और सुलझा हुआ साहित्यिक मिलना मुश्किल है।

—

चले चलो

आजसे कई सौ वर्ष पहले महात्मा कबीरदासने कहा था—

"संसकीरत है कूप-जल भाषा बहता नीर।"

और यह कहनेके बाद उन्होंने इस बातका इन्तज़ार नहीं किया कि 'पवित्र भाषा' के पक्षपाती पंडित लोग क्या कहेंगे और अपने शब्द सीधी-सादी भाषामें कहते गये। अभिमानी पंडितोंने तब भी उनका विरोध किया था—

"संस्कृतहिं पंडित कहै, बहुत करै अभिमान ;
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान।"

पर उन मूढ़ अजान पंडितोंका नाम आज कोई नहीं जानता और कबीरकी वाणी अमर हो गई है।

भाषाके विषयमें जो वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है, उसको अन्त करनेका एक ही तरीक़ा है कि जिन्हें कुछ कहना है, वे अपने मनकी बात सीधे-सादे शब्दोंमें कहते चलें, आलोचकोंकी पर्वाह न करें। हमारी भाषा बहते हुए नीरकी तरह होनी चाहिए। भाषा-शुद्धिका यह आन्दोलन निरर्थक है, लग्गो है। इस विषयमें दो महाराष्ट्रीय विद्वानोंके परस्पर-विरोधी मतोंका यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

'अभ्युदय' को सन्देश भेजते हुए श्रीयुत विनायक दामोदर सावरकरजीने लिखा था—

"'अभ्युदय' हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनानेके कार्यको सदैव पुरस्कार करे! और पर्शियन, अरबी, अंगरेज़ी परकीय शब्दोंके रोगसे उसको मुक्त करे! जो शब्द हमारी भाषामें नहीं, व संस्कृतसे नहीं बन सकता, व जो वस्तु परकीय देशोंसे हमारे देशमें आई और जिसका वह परकीय नाम सुव्यवहार्य है, ऐसे-कुछ अत्यावश्यक शब्द परकीय होंगे, तो भी भाषामें मिला लेनेमें हानि नहीं। जैसे—बूट, कोट, गुलाब, पुलाव, खुर्ची, क्रिकेट ; परन्तु मुसम्मात, वालिद, हक़ीक़त, क़बूल, हरगिज़, क़ौमी, फ़ादर, एलेक्शन ऐसे परकीय अनावश्यक शब्दोंको चुन-चुनके बाहर कर देना चाहिए। इन शब्दोंसे अपने तदर्थक स्वकीय शब्द लुप्त होते चलते हैं, और एक भय सबसे बड़ा यह है कि जिस समय मुसलमान उर्दूको ही राष्ट्र-भाषा बनानेका प्रबल संगठन कर रहे हैं, उस समय हम यदि उतने ही बलसे हिन्दीको परकीय शब्दोंसे अकलंकित रखनेकी संगठित प्रतिक्रिया न करेंगे, तो इस खींचातानीमें हिन्दी हारेगी—उर्दूमय होकर जीती रहेगी भी, तो उसको जीना नहीं बोलते! 'शुद्ध हिन्दी ही हिन्दुओंकी राष्ट्र-भाषा हो सकती है।' अरबी-पर्शियन ग्रसित हिन्दुस्तानी लखनऊकी बोली हो सकेगी ; परन्तु गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रान्तादिक हिन्दूमय प्रान्तोंकी ऐसी उर्दूमय हिन्दी राष्ट्र-भाषा कभी न बन सकेगी!"

अब इनकी तुलना कीजिए आचार्य काका साहब कालेलकरके निम्न-लिखित वाक्योंसे, जो उन्होंने भारतीय साहित्य-पुस्तकमालाकी प्रथम पुस्तिका* में लिखे हैं—"देशकी तमाम प्रान्तीय भाषाओंमें उर्दू या अरबी-फारसीके शब्द कम-बढ़ तादादमें पाये जाते हैं। जहाँ-जहाँ 'भाषा-शुद्धि'के ग़लत ख़यालसे ऐसे शब्दोंको निकाल बाहर करनेका आन्दोलन हो रहा है, वहाँ हम अपनी ओरसे भरसक यह कोशिश कर रहे हैं कि यह 'शब्द बहिष्कारका आन्दोलन' जड़ न पकड़ने पाय। इन प्रान्तीय भाषाओंमें बहुतसे शब्द तो ऐसे समान अर्थवाची हैं, जो हिन्दीमें भी उसी अर्थमें

* भारतीय साहित्य-परिषद और भाषाका प्रश्न मूल्य ६) आना। मिलनेका पता—भारतीय साहित्य-परिषद कार्यालय, वर्धा (सी० पी०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त होते हैं। इस तरह जो शब्द जिन भाषाओंमें एक-से हैं, उन्हींके सहारे अगर हम कुछ लिखें, तो सब प्रान्तके लोग उस मज़मूनको बड़ी आसानीसे समझ सकेंगे। इस तरह हमें इस एक आसान रास्तेसे सब प्रान्तोंके लोगोंको राष्ट्र-भाषाकी ओर खींचना है। जहाँ एक दफ़ा इस भाषाकी रचना, उसके व्याकरण और सर्वसामान्य शब्दोंके साथ परिचय हुआ कि अपना काम आधा सफल हुआ हमें समझना चाहिए। फिर तो उत्तर-हिन्दुस्तानके प्रभावशाली लेखकोंने जिन-जिन शैलियोंका विकास किया है, उन सभी शैलियोंसे परिचय कराना हमारा कर्तव्य होगा।

आज हिन्दुस्तानमें भारतीय संस्कृतिके—हिन्दुस्तानी तमद्दुनके—जितने भी पहलू मौजूद हैं, उन सबसे हमें अपनेको परिचित रखना है। जिन-जिन भाषाओंका प्रभाव आज तक इस राष्ट्र-भाषापर पड़ा है, और आगे भी पड़नेवाला है, उन सबके साथ भी अपना मेल-जोल बढ़ाना हमारा कर्तव्य है।

इस काममें हमें मददगार बहुत कम मिलेंगे, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। जो लोग प्रान्त-परस्त हैं, फ़िरका-पूजक हैं या फिर दलबन्दीके दल-दलमें फँसे हुए हैं, जिनमें कट्टर तंगदिली है, ऐसे लोग तो इसका विरोध करेंगे ही; लेकिन जो उदार विचारोंके हैं, क़ौमियतके उपासक हैं; पर जिनको बात-बातपर शुबहा-सन्देह करनेकी आदत-सी पड़ गई है, वे भी अपनी आदतसे लाचार होकर कुछ-न-कुछ ऐब निकालते ही रहेंगे। और हम भी अपनी अपूर्णताके कारण, साथ ही आलस्यवश बहुत-सी ग़लतियाँ कर बैठेंगे। इतना होते हुए भी अपने 'ध्रुव-तारे' पर नज़र गड़ाकर सबकी सेवा करनेके लिए और मनमें किसीके भी बहिष्कार—बायकाट—का इरादा न रखकर सब प्रान्तोंको, वहाँके साहित्यको और समाज-सेवकोंको एक-दूसरेके समीप लानेकी हमारी कोशिश होगी। अगर दिल हमारा साफ़ है और हमारी कोशिश पाक है, और हिन्दुस्तानके भविष्यको यह सब मंज़ूर है, तो हमारा काम सफलताकी ओर तेज़ क़दम बढ़ायगा और शुबहाकी नज़रसे देखनेवाले अन्तमें यक़ीन करेंगे कि हम सचमुच उनकी भी कुछ ख़िदमत करना चाहते थे।"

कहनेकी ज़रूरत नहीं कि हम काका साहबके विचारोंसे सोलह आने सहमत हैं। श्रीमान् सावरकरजी तथा उनके उन संगी-साथियोंके साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है, जो भाषाके प्रवाहको रोकनेके असम्भव उद्योगमें लगे हुए हैं। प्राचीनकालमें राजा केन्यूटने भी समुद्रकी लहरोंको रोकनेका ऐसा ही मनोरंजक प्रयत्न किया था।

—

भाषाके विषयमें हमारा मुख्य लक्ष्य

भाषा लिखते समय हमारा मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए, इस बारेमें बहुत-कुछ भ्रम फैला हुआ है। कितने ही आदमियोंका यह विचार है कि महाराष्ट्र, बंगाल गुजरात इत्यादि प्रान्तोंके निवासियोंके सुभीतेका ख़याल करके हमें संस्कृत शब्दोंका अधिकाधिक व्यवहार करना चाहिए। यह दृष्टिकोण ही ग़लत है। मुख्य ध्येय यह नहीं है कि काका साहब कालेकर, डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी अथवा श्री कन्हैयालाल मुंशी हमारी भाषाको समझ सकें, बल्कि हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंकी साधारण जनता तक अपने ख़यालात ज्यों-के-त्यों पहुँचना ही हमारा पहला लक्ष्य होना चाहिए। इस बातको आजसे तीन वर्ष पहले श्री पारसनाथ सिंहने बड़ी ख़ूबीके साथ समझाया था। उनके शब्द ये हैं—

"हज़ारों शब्द इस समय हिन्दीमें अछूत माने जा रहे हैं। साहित्य-सेवी अपनी रचनाओंमें उनसे पहलू बचाते हैं—गद्य हो या पद्य, उन्हें औरोंकी बराबरीमें बैठने देना अत्यन्त अनुचित समझते हैं। काफ़ी अच्छे शब्द हैं, अर्थात् कुलीन हैं, कर्मठ हैं, वक़्तपर काम आनेवाले हैं, फिर भी यह शैली-सी हो रही है कि वे कुछ ख़ास लोगोंके बोल-चाल तक ही परिमित रखे जायँ—उन्हें उससे आगे न बढ़ने दिया जाय। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका दोष ? वही जो दूसरे क्षेत्रोंमें अस्पृश्य मानी जानेवाली जातियोंका है ! हिन्दी ऐसी होनी चाहिए, जिसमें शब्दोंके प्रति हमारा व्यवहार किसी प्रकारकी संकीर्णताका समर्थक न हो। आसन-प्रदान करते समय हम किसीसे यह न पूछें कि तुम्हें पहले कहीं टाइपोंकी पंक्तिमें जगह मिल चुकी है या नहीं, बल्कि यह कि तुम्हारी विशेषता या व्यंजन क्या है, तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है, स्वाभिमानी तो हो और सिर ऊँचा करके तो बैठ सकते हो ?.....

हिन्दी इस देशकी राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए, इससे तो हम सभी सहमत होंगे। पर अगर साथ यह कहा जाय कि उस पदकी प्राप्तिके लिए इसका अधिकाधिक संस्कृत होना आवश्यक है, तो यह बात आपत्तिजनक जँचेगी। डर तो इस बातका है कि सबके लिए ग्राह्य बननेकी धुनमें कहीं ऐसा न हो कि हिन्दी न घरकी रहे, न घाट की। हिन्दीके प्रचारकी दृष्टिसे भी यह आवश्यक है कि वह बाहर निकलनेसे पहले अपने हाथ-पाँव काफ़ी मज़बूत बना ले। जिसके फेफड़े कमजोर हैं, वह साँस लेनेके कृत्रिम साधनोंके भरोसे, हिमालयकी चोटियोंकी चढ़ाईमें, कितना ऊपर जा सकता है ? हिन्दीको चाहिए कि वह अपनी इस दिग्विजय यात्रासे पहले अपने-आपको खूब साधन-सम्पन्न बना ले, अपने तरकशको तीखे तीरोंसे भर ले ; नहीं तो संस्कृतकी ओढ़नी ओढ़कर भी या यों कहिये कि उस ज़िरह-बखतरसे अपनी शारीरिक दुर्बलताको ढककर भी वह कहीं कामयाब न होगी। यह जहाँकी है, वहींके पानीसे इसकी जड़को सींचिये, फिर देखिये कि इसमें कैसे फूल-फल लगते हैं और कहाँ-कहाँसे उनकी माँग आती है।"

—'हरिजन-सेवक', ३१ अगस्त १९३४

दरअसल हमारी भाषाको न संस्कृतकी ओढ़नीकी ज़रूरत है और न अरबी, फारसीके सूथनेकी। उसे इन दोनोंसे अपना दामन, जहाँ तक हो सके, बचाना चाहिए।

—

मुसलमानोंको नेक सलाह

सर वज़ीर हसनने मंसूरीमें एक व्याख्यान देते हुए मुसलमानोंको सलाह देते हुए कहा है—

"मैंने पिछले १५ वर्षमें सरकारके साथ यथाशक्ति देशकी भरसक सेवा की है। मैंने नौकरीसे विश्रान्तिके उपरान्त सबसे पहला सार्वजनिक भाषण कानपुरमें दिया था और दूसरा यह है। देशने अपने मन और आत्माको स्वाधीनताके लिए जुझा रखा है। हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयोंमें से ऐसा कोई भी हृदय नहीं, जो आज़ादीके लिए ज़ोरोंसे न धड़क रहा हो। भारत अरसेसे विदेशियों द्वारा शासित है। अब भारतीय अपने देशके शासन-विधानका निर्माण स्वयं चाहते हैं। कोई भी स्वाभिमानी पुरुष इस बन्धन—गुलामीको अधिक नहीं सह सकता। कांग्रेस महासभा अष्ट-प्रहर स्वाधीनताके लिए लड़ रही है। हम सबको इस कांग्रेसमें शामिल होकर आज़ादीकी लड़ाईको बल देना चाहिए। कुछ मुसलमानोंमें यह कुशंका घर कर गई है कि कांग्रेस तो केवल हिन्दुओंकी संस्था है, मैं तो उनके भयोंको समझ भी नहीं पाता। कांग्रेसके भूतपूर्व सभापतियोंकी नामावली देखिये। जस्टिस तय्यबजी, मौलाना अब्दुलकलाम आज़ाद, डाक्टर एम० ए० अन्सारी, मौलाना महम्मद अली आदि मुसलमान कांग्रेसकी गद्दीपर बैठ चुके हैं। गत चुनावमें कांग्रेसने न केवल स्वतन्त्र, बल्कि हिन्दू, मुसलमान ईसाई आदिकी साम्प्रदायिक संस्थाकी ओरसे खड़े होनेवाले उमीदवारोंका विरोध किया और जबर्दस्त विजय प्राप्त की। ये सब बातें बता रही हैं कि कांग्रेस जाति और धर्मके भेद-भावसे दूर रहकर सम्पूर्ण भारतके लिए लड़ी थी। ये हैं वे कारण जो किसी भी स्वाभिमानी मुसलमानको कांग्रेससे अलग नहीं रख सकते।

मुसलमानोंकी मांगें

कांग्रेसमें शामिल होनेके पहले कुछ खास माँगें रखना मुसलमानोंके लिए शर्मकी बात है। मैं इस नीतिको उन चोरोंकी नीति कहता हूँ, जो चोरी करनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले ही मालकी हिस्सा-रसदीका फैसला करने लगते हैं। (हँसी) हमें बनियेका-सा सौदा न करना चाहिए। वह विजय किस कामकी, जिसके लिए हम लड़े नहीं। मुसलमानोंको चाहिए कि पहले वे आज़ादीकी जंगमें हिस्सा बटावें, बादमें अपने दावे रखें। फिर कांग्रेस तो यह घोषणा भी कर चुकी है कि तमाम अल्पमतोंके अधिकार कांग्रेसके हाथों सुरक्षित रहेंगे, इसलिए इसके बारेमें कोई शक न होना चाहिए। अन्तमें मैं युवकोंसे कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। देशका भविष्य भारतके युवकोंपर निर्भर है। बूढ़े-पुराने आदमियोंका जमाना लद चुका। अब समय आ चुका है कि नवयुवक आगे बढ़ें और सब भार अपने कन्धोंपर लेकर बुजुर्गोंको मुक्त कर दें।

नवीन विधान

यद्यपि गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्टको कुछ लोग दुधारू गाय बताते हैं, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इससे एक बूँद दूधकी भी आप आशा न करें। आप बे-दूध गायको दुहने जाइये, केवल लात ही पाइयेगा। नवीन विधान भी हमारे साथ यही कर रहा है। आप सब कांग्रेसमें शामिल हों और उसे पूर्ण स्वाधीनता लानेके लिए ज़बर्दस्त शक्तिशाली संगठन बना दें।" [दैनिक 'हिन्दुस्तान']

सर वज़ीर हसन साहबकी सलाहका हम समर्थन करते हैं, और मुसलमानोंसे शिफारिस करते हैं कि वे तअस्सुबको छोड़कर ठंडे दिलसे एक बार वज़ीर हसन साहबकी बातोंपर ग़ौर करें।

—

निरर्थक हिंसा

सहयोगी 'आज' में 'किताबी कीड़ा' के नामसे कोई सज्जन बड़े पतेकी बातें लिखा करते हैं। अभी पिछले किसी अंकमें उन्होंने लिखा है—

"इंग्लैण्डमें ५० लाख एकड़ भूमि शिकारके लिए सुरक्षित है। इसमें लोमड़ियाँ रखी जाती हैं। शिकारके समय उनको बाहर निकालकर बिल ढक दिये जाते हैं और उनपर कुत्ते छोड़ दिये जाते हैं। वे अपना प्राण लेकर भागती हैं और कुत्ते दौड़ दौड़कर उन्हें चींथते हैं। घोड़ोंपर चढ़े हुए स्त्री-पुरुष तमाशा देखकर प्रसन्न होते हैं। इन शिकारी कुत्तोंपर बड़ा धन खर्च किया जाता है। साल-भरमें एक दलपर ३०,००० रुपये तक उड़ जाते हैं। एक दिनके शिकारमें केवल एक लोमड़ीका इस तरह बध करनेके लिए ७५०से ९०० रुपये तक खर्च हो जाते हैं। मेमोंको महीन और मुलायम रोएँवाली खालके कोट पहनने और गलेमें उनका गुलूबन्द डालनेका शौक होता है। इसके लिए प्रायः ऊदबिलाव (बीवर) की खाल काममें लाई जाती है। एक कोटमें चार-पाँच खालें लग जाती हैं। गोली या किसी अस्त्रके प्रहारसे खाल बिगड़ जाती है। इसलिए जालमें फँसाकर इनको एक टाँगसे लटका देते हैं। उसी दशामें तड़प-तड़पकर उनकी जीवन-लीला समाप्त होती है और मेमोंका शौक पूरा होता है। एक दूसरे जानवर (निरैंक्स) की रीढ़की गुरिया-गुरिया तोड़कर जिन्दा खाल खींची जाती है।"

यह तो हुई विलायतकी बात। अब हिन्दुस्तानका भी हाल सुन लीजिए—

"एक अंगरेज़ शिकारी लिखता है कि भरतपुर राज्यमें सन् १९२४ के एक दिनमें ४,०८२ बतखोंका शिकार किया गया। सन् १९२९ में जब वायसराय बीकानेर गये, तब दो दिनमें १०,९७७ पक्षी मारे गये। केवल एक शिकारीने सवेरे १० बजे तक ९०३ पक्षियोंका शिकार करके अपनी निशानेबाज़ीका परिचय दिया। उन्हीं दिनों काश्मीरमें ७ शिकारियोंने दिन भरमें २,११३ पक्षियोंको बन्दूकका निशाना बनाया। राज्योंमें जब बड़े-बड़े अफसर या विदेशी रईस पहुँचते हैं, तब तरह-तरहके उपायोंसे शिकारके लिए पशु-पक्षी एकत्र किये जाते हैं। मरुस्थलमें रहनेवाली चिड़ियोंके पानी पीनेके स्थान एक दिन पहलेसे बन्द कर दिये जाते हैं, जब वे खोले जाते हैं, तब प्याससे छटपटाती हुई चिड़ियाँ बेतहाशा टूटती हैं। तभी उनपर गोली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और छर्रोंके वार होते हैं। अमुक राज्यमें अमुक साहबने इतने पक्षियोंसे अपना झोला भरा, इतने हिरनोंको मारा, ऐसे समाचार प्रायः पत्रोंमें पढ़नेको मिलते रहते हैं। विदेशियोंके इस शौकको पूरा करना हमारे देशी नरेश उनका सबसे अच्छा आतिथ्य सत्कार समझते हैं। इसमें वे स्वयं भी उनकी नकल करते हैं। अभी दो ही तीन वर्षकी बात है कि ५०० चीतोंके बधकी संख्या पूरी करनेपर एक राजाके राज्यमें उनकी आज्ञासे बड़ा उत्सव मनाया गया था। मृगया-प्रेम पहले भी राजाओंमें था; पर क्या इस तरह निरर्थक पशु-पक्षियोंका संहार होता था।....हिंसक पशु केवल पेट भरनेके लिए शिकार करता है, जंगली मनुष्यको भी खानेके लिए मांस और पहननेके लिए खाल मिल जानेसे सन्तोष हो जाता है; परन्तु आजकलके सभ्य समाजको जीवोंको निरर्थक बध करने और उन्हें यातना देनेमें ही आनन्द आता है! जिनका मांसके बिना काम नहीं चल सकता, जिनके देवता बिना बलि पाये सन्तुष्ट नहीं होते, उनके लिए पशुबध समझमें आ सकता है; पर केवल मनोविनोदके लिए मूक पशु-पक्षियोंका संहार इस युगकी ही विलक्षणता है। पशु-पक्षी देशकी शोभा हैं; पर उनका विनाश कितनी तेज़ीसे हो रहा है।"

—

लार्ड स्नेलकी बहक

लार्ड स्नेलने, जो साम्राज्य पार्लामेन्टरी ऐसोसियेशनके सभापति हैं, हालमें लन्दनके रेडियो स्टेशनसे 'साम्राज्यका उत्तरदायित्व' विषयपर एक व्याख्यान दिया था। लार्ड स्नेल इंग्लैण्डके मज़दूर दलके हैं। उन्होंने इस व्याख्यानमें ब्रिटिश साम्राज्यका गुणगान करते हुए कहा कि पहले उनका दल (मज़दूर दल) साम्राज्यवादको अधीन जातियोंका शोषण समझकर साम्राज्यकी बड़ी आलोचना किया करता था; किन्तु अब अवस्था बदल गई है। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्यवादकी तीन अवस्थाएँ हुईं। पहली पुरानी औपनिवेशिक अवस्था थी, जो (अमेरिकाकी सफल क्रान्तिपर) सन् १७७६ में समाप्त हो गई। उसके बादके ब्रिटिश समुद्री शक्तिके ज़ोरपर साम्राज्यमें राज्य विस्तार, आर्थिक शोषण और शासनके विकासका युग रहा, जो गत महायुद्धकी समाप्ति तक चलता रहा। इस युगके बाद मौजूदा अवस्था आई और ऐसे क़ानूनों और संस्थाओंका युग आया, जिसमें हम लोग आज सन्तोषपूर्वक रह रहे हैं।

'हम लोगों' से यदि लार्ड स्नेलका तात्पर्य सिर्फ इंग्लैण्डके निवासियोंसे है, तब तो हमें कुछ नहीं कहना; परन्तु यदि 'हम लोगों' का अर्थ ब्रिटिश साम्राज्यके समूचे निवासियोंसे है, तो हम कहेंगे कि लार्ड महोदय या तो मूर्खोंके स्वर्गमें रहते हैं, या जान-बूझकर ग़लतबयानी करते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके अधीन जो जातियाँ हैं, जरा उनके दिलसे पूछा जाय कि वे कहाँ तक ब्रिटिश साम्राज्यसे सन्तुष्ट हैं। ब्रिटिश साम्राज्यकी समूची आबादी ४७॥ करोड़ है, जिसमेंसे ३६ करोड़ यानी ¾ के लगभग भारतवर्ष और बर्मामें बसती है। कम-से-कम भारतकी अधिकांश जनता ब्रिटिश साम्राज्यवादकी मौजूदा नीतिसे सन्तुष्ट नहीं है।

आगे चलकर लार्ड महोदय कहते हैं—"ब्रिटिश मज़दूर-दलने साम्राज्यवादके इस नये रूपका नई फिलासफीसे सामना किया। उसे यह मानना पड़ा कि गर्म (काले) देशोंपर गोरोंका राजनैतिक आधिपत्य इतनी दूर तक अग्रसर हो चुका है कि अब पीछे लौटनेकी सम्भावना नहीं रही। लेकिन यदि इंग्लैण्ड अपने अधीन देशोंको त्याग नहीं सकता, तो वह उन्हें इस ढंगसे विकसित कर सकता है, जिससे उनके मूल निवासियोंकी उन्नति हो, वे सम्पन्न हों और उत्तरोत्तर स्वतन्त्रता और स्वायत्त शासनके योग्य बनें।

"इस महान उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यमें मज़दूर-दल ईमानदारीसे सहयोग करेगा, क्योंकि उसे विश्वास है कि नवीन ब्रिटिश साम्राज्यका ध्येय राजनैतिक आधिपत्य या अंगरेज़ जातिकी श्रेष्ठता सिद्ध करना नहीं है और न केवल गोरोंको फायदा पहुँचाना ही है, बल्कि अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका ध्येय साम्राज्यकी समस्त बिखरी हुई जातियोंको समान साझीदारके रूपमें संसारकी सबसे इस महान राजनैतिक संस्थाकी सुविधाएँ, अवसर और उत्तरदायित्व प्रदान करना है।"

काश कि लार्ड महोदयकी इस कल्पनामें सत्य होता। यदि ऐसा होता, तो वास्तवमें आज ब्रिटिश साम्राज्य एक आदर्श साम्राज्य होता। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी भागके गैर-गोरे नागरिकोंको देखनेसे यह साफ ज़ाहिर हो जायगा कि लार्ड महोदयकी कथा चन्द्रकान्ताकी कहानियोंसे ज्यादा तथ्य नहीं रखती। साम्राज्यके सभी नागरिकोंको बराबरीका साझेदार समझना और समान सुविधाएँ और अवसर देना सत्यसे उतना ही परे है, जितना धरतीसे ध्रुवतारा। आज ब्रिटिश साम्राज्यमें हर जगह गोरोंका बोलबाला है। दक्षिण-अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, कैनाडा आदिमें कोई भी गोरा जा सकता है, बस सकता है। जर्मन और आस्ट्रियन, जो महायुद्धमें लन्दनपर गोले बरसाकर अंगरेज़ औरतों और बच्चों तकको कालके मुँहमें झोंकते थे, वहाँ जा सकते हैं; परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यके इन सब प्रधान भागोंमें साम्राज्यके एशियाई साम्राज्यकी ½ आबादीका प्रवेश निषेध है। फिर सभी उपनिवेशोंमें गोरोंके लिए एक कानून है, कालोंके लिए दूसरा। बहुत-सी जगह तो साम्राज्यके काले नागरिकोंको सड़कों तकपर चलनेकी मुमानियत है। यदि लार्ड महोदय एक बार इंग्लैण्डके अधीनस्थ देशोंकी यात्रा करके गैर-गोरे नागरिकोंको देखें, तो उनकी आँखें खुल जायँगी और यदि सच्चे होंगे, तो भविष्यमें तरह-तरहकी लनतरानी न उड़ायेंगे।

—

स्वर्गीय मुंशी अजमेरीजी

अकस्मात् मुंशी अजमेरीजीके स्वर्गवासका समाचार पढ़कर हृदयको बड़ी वेदना हुई। मुंशीजीकी हमपर अत्यन्त कृपा थी, और यद्यपि साहित्यिक आन्दोलनोंमें मतभेद होनेपर कभी-कभी हमें ऐसे लेख भी प्रकाशित करने पड़े थे, जिन्हें मुंशीजीने निहायत नापसन्द किया था; पर उनका हृदय उदार था और उनमें मतभेदके लिए पर्याप्त सहनशीलता थी। स्नेह-सम्बन्धको वे इन मतभेदोंसे कहीं ऊँचे दर्जेकी चीज़ समझते थे। पिछले फरवरी तथा मार्च महीनेमें ही टीकमगढ़में कई दिन उनके सत्संगका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। उनका वह मुसकराता हुआ चेहरा, वे विनोदमयी बातें, वे गुदगुदा देनेवाले मज़ाक, वह संगीतमय स्वर-माधुर्य और उनकी वह भव्य मूर्ति अब भी आँखोंके सामने है, और ऐसा प्रतीत होता है कि वे मानो अभी कहींसे निकलकर सरल ब्रजभाषामें कहनेवाले हैं—"चौं भइया! जि का, अटपटी बातें लिख रए हौ! हम तौ तियाए सामने ही मौजूद हैं। चलौ रैन देउ!"

मुंशीजीकी अनेक बातें याद आ रही हैं; पर उन्हें किसी अगले अंकमें लिखेंगे। इस समय हम मुंशीजीके परिवारके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। श्रीमान ओरछा-नरेशसे हमारा विनीत प्रार्थना है कि वे मुंशीजीके सुपुत्र श्री पन्नालालको राजकविका सम्मान प्रदान करें। बन्धुवर पन्नालालजी इस पदके योग्य हैं, और भविष्यमें उनसे हमारे साहित्यको लाभ होनेकी आशा है।

08182

कवियोंसे प्रार्थना

जो महानुभाव 'विशाल भारत' में कविता भेजनेकी कृपा करें, उनकी सेवामें हमारा यह निवेदन है कि वे अपनी रचनाओंकी नक़ल अपने पास अवश्य रख लें। ऐसा करनेसे उनकी फिक्र कम होगी और हमारा आफिस व्यर्थ पोस्टेज व्ययसे बच जायगा।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी प्रेस, १३०।३, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri